सम्पादक :—बनारसीदास चतुर्वेदी

संचालक :—रामानन्द चट्टोपाध्याय

सहकारी सम्पादक :—ब्रजमोहन वर्मा और धन्यकुमार जैन

मूल चित्रकार प्रिंसिपल ग्रिफिथ

अजंताके कलामंडपमें पूजा प्रतिलिपिकार श्री रविशंकर रावल

चतुर्थ वर्ष ।

कला-अंक
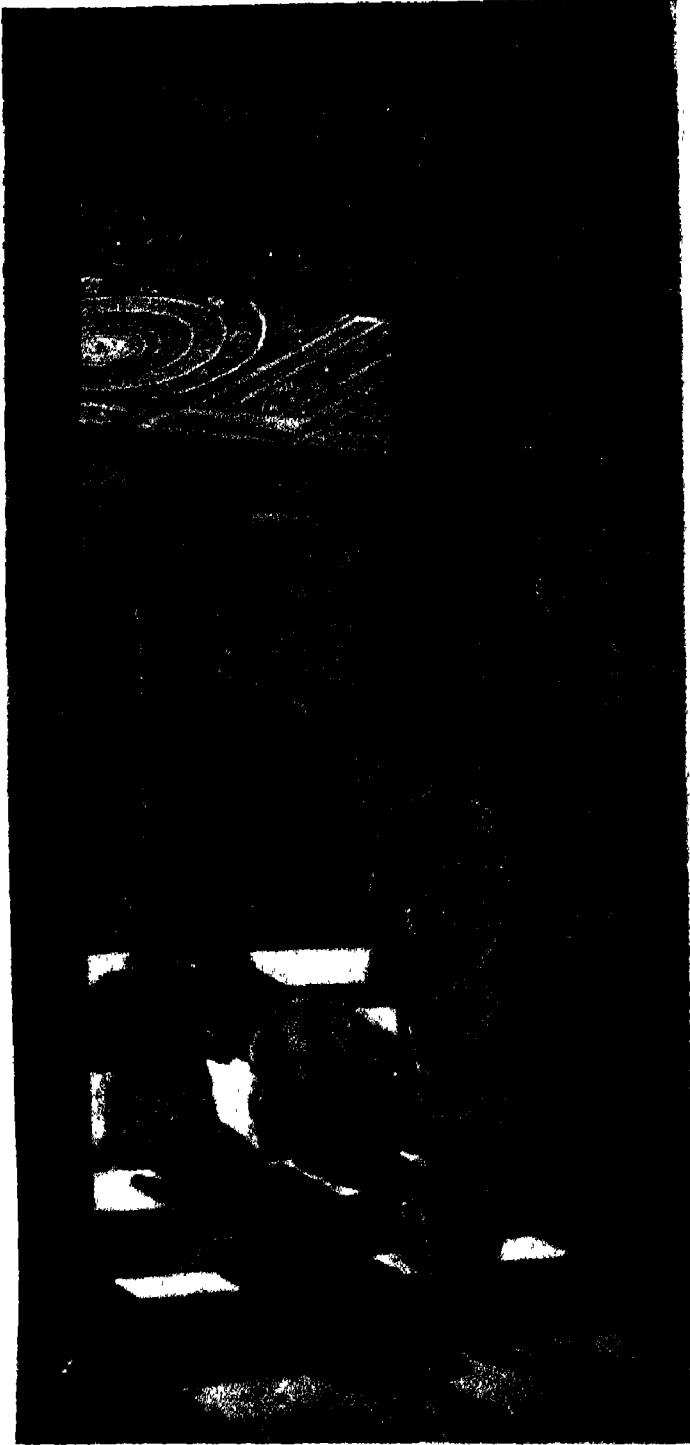
[जनवरी १९३१

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

विधाताका चक्र —कनु देसाई

मंगल-घट

तुझे पात्रमें परिणत पाऊँ :
मेरी मिट्टी, मैं बलि जाऊँ।
खुले खेतमें लाकर छानूँ ;
जल दूँ, भार मिलाकर सानूँ ;
सनूँ स्वेदमें, किन्तु न मानूँ
जब लौं लोच न लाऊँ।
मेरी मिट्टी, मैं बलि जाऊँ।

तू ही मेरी चाँदी-सोना ;
आघातोंमें खिन्न न होना :
रूप बनेगा सुघर सलोना,
पहले पिण्ड बनाऊँ।
मेरी मिट्टी, मैं बलि जाऊँ।

चले पिताका चक्र नियमसे,
बैठ शिलापर तू शम-दमसे,
उठे एक आकृति क्रम-क्रमसे ;
भली भाँति मैं भाऊँ।
मेरी मिट्टी, मैं बलि जाऊँ।

फिर भी तुझको तपना होगा ;
कष्टोंसे न कलपना होगा ;
यों मङ्गल-घट अपना होगा,
भर घर-घर धर आऊँ।
मेरी मिट्टी, मैं बलि जाऊँ।

— मैथिलीशरण गुप्त

अजन्ताका कलामंडप

श्रीयुत रविशंकर रावल

यदि कोई फ्रान्स-निवासी 'लुव्र' के चित्रालयकी बात नहीं जानता या कोई अंग्रेज़ लन्दनकी 'नेशनल गैलरी'से अपरिचित होता है, तो वह अपने समाजमें संस्कारहीन गिना जाता है; परन्तु इसे भारतका दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि भारतवासी कला और कला-धामोंकी चर्चा करना केवल निठल्ले, बेकार और आरामतलब मनुष्योंका ही काम समझ बैठे हैं।

सम्पूर्ण संसारके तिहाई भागसे भी अधिक स्थानमें बौद्ध-धर्मका प्रचार हुआ था। उसने मानव-जीवनमें जिन क्रान्तियों, जिन प्रभावों और जिन संस्कारोंका प्रचार किया था, उनका प्रमाण देनेवाले जो चित्र, मूर्ति या कला-मन्दिर आज एशियामें पाये जाते हैं, उन्हें संसारके विद्वान् एक अमूल्य निधि मानते हैं। मानव इतिहासमें जब-जब मनुष्यके हृदय और मनने पूर्णता प्राप्त की है, तब-तब कलापर उसका अमिट प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। इतिहास या जीवनकी कोई भी घटना जब उच्चकोटिकी कलाके रूपमें प्रकट होती है, तभी उसके महत्वका वास्तविक मूल्य निर्धारित होता है।

इस समय हमारी यह साधारण धारणा हो गई है कि चित्र-कला या संगीतके बिना मनुष्यका काम चल सकता है। इनकी कमी इस समय किसीको नहीं खटकती, किन्तु आजसे केवल दो ही सौ वर्ष पहले लोगोंमें हज़ारों वर्षकी परम्परासे कुछ ऐसे भाव चले आ रहे थे, जिनमें वे सुन्दर गृह-निर्माण, सुन्दर-वस्त्र तथा अन्यान्य सामग्रियों या उत्सवोंकी शोभाके लिए बहुत ही यत्न और व्यय करते थे। उन्होंने भारतकी आत्माको प्रत्येक आकार, प्रत्येक रूप और प्रत्येक व्यवहारमें प्रकट किया था।

धर्म और खान-पानमें विभिन्नता होनेपर भी एशियाके सभी देशोंमें यह कला-प्रेम समान रूपसे व्याप्त हो रहा है। भिन्न-भिन्न देशोंकी भिन्न भिन्न कला-कृतियोंकी छान-बीन करनेवाले विद्वानोंकी दृढ़ धारणा है कि इन सबोंके मूलमें कलाकी एक ही धारा बहती है, और उस धाराका उद्गम और परिपोषण अधिकांशमें भारतमें ही हुआ था।

संसारके महान् विद्वान और प्राच्य अन्वेषक सर ऑरेल स्टीनने हालमें तिब्बत और चीनी तुर्किस्तानकी मरुभूमिमें दबे हुए बौद्धधर्मके जो चित्र और प्रतिमाएँ खोद निकाली हैं, उनसे प्रमाणित होता है कि उनके प्रचारक और शिक्षागुरु भारतमें ही शिक्षा ग्रहण करके निकले थे। जापान, चीन, जावा, सुमात्रा, चम्पा, श्याम और ब्रह्मदेशकी कलामें भी भारतकी केन्द्र-रेखा स्पष्ट दिखाई देती है।

अब यह सभी स्वीकार करने लगे हैं कि समस्त एशियाके इस कलाचक्रकी धुरी अजन्ताकी गुफाएँ हैं। अजन्ताके इन कलामंडपोंकी कला इतनी अपूर्व, सम्पूर्ण और परिपक्व है कि यदि हम उसे भारतीय कलाओंकी गुरुपीठ कहें, तो ज़रा भी अत्युक्ति न होगी।

अजन्ताके कलामण्डपोंमें कलाके अवतरित होनेके पहले किसने उसका आरम्भ किया था, कितने दिनोंसे वे व्यवहृत हो रहे थे और किस प्रकार उनका उत्तरोत्तर विकास हुआ था—इन सब बातोंके जाननेके साधन प्रायः दुर्लभ हो गये हैं। कहते हैं कि ब्रह्मा जब सृष्टि-रचना करने बैठते थे, तब उनके लिए कोई भी चीज़ असाध्य न रह जाती थी; ऐसा मालूम होता है कि मानो वैसी ही शक्ति लेकर अजन्ताके कलावीरोंने शिल्प और चित्रोंका निर्माण किया है।

अजन्ताकी कलाएँ ईसाकी प्रथम तीन शताब्दियोंसे लेकर लगभग छठीं या आठवीं शताब्दि तक विकसित होती रही हैं। मालवेकी 'बाघ', मदरास-प्रान्तकी 'सीतानिवास'

पहाड़के गर्भमें चन्द्राकार कटी हुई अजन्ताकी गुफाओंका दूरसे दृश्य

अजन्ताके रेखांकनका एक नमूना

और लंकाकी 'श्रीगिरि' की गुफाओंमें आज भी कुछ ऐसे चित्र मौजूद हैं, जो अजन्ताके प्रत्यक्ष अनुकरण मालूम होते हैं, उनपर अजन्ताका प्रताप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। परन्तु इससे भी आगे बढ़कर जब हम पहली या दूसरी शताब्दिके तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन, जापान आदिके चित्र देखते हैं, और हमें उनपर अजन्ताकी वैसी ही प्रभाव-पूर्ण छाप पड़ी हुई दिखाई देती है; तब हमारे आश्चर्यका पारावार नहीं रहता, और हम सोचने लगते हैं कि अजन्ताकी कलाने कहाँ-कहाँ तक अपना प्रभाव डाला था! अजन्ताका नाम भारतवासियों तक पहुँचनेके पहले, उसने न जाने कितने यूरोपियनोंको चकित कर दिया था, और आज उन्हींके परिश्रमसे न केवल भारतको ही, बल्कि सम्पूर्ण एशियाको अपने इस अपूर्व उत्तराधिकारके लिए गर्व करनेका अवसर प्राप्त हुआ है।

अजन्ता कहाँ है ?

बम्बईसे रेलमें सवार हो एक रात सफर कीजिए और दूसरे दिन सुबह जलगाँवके पहले पाचोरा स्टेशनपर उतर पड़िये। वहाँसे छोटी लाइनकी गाड़ीमें बैठिये, वह दस बजे पहूर नामक ग्रामको पहुँचा देगी। वहाँसे सात मीलकी दूरीपर निज़ामकी सीमामें फरदापुर नामक गाँव है। उसीके निकट ऊसर पहाड़ियोंमें अजन्ताके कलामण्डप छिपे पड़े हैं।

उस वृक्षहीन पथरीले स्थानको देखकर किसी यात्रीको इस बातका गुमान भी नहीं होता कि यहाँ संसारकी अप्रतिम कलामूर्तियाँ छिपी हुई हैं। फरदापुर गाँवके अधिकांश निवासी मुसलमान हैं। वहाँका टूटा-फूटा क़िला और बेगमसराय नामक बड़ासा मुसाफिरखाना सबसे पहले नज़र

स्तम्भोंवाली एक गुफाकी दालान

आता है। उन्हें सम्राट् औरंगज़ेबने बनवाया था। इस समय तो इस गाँवमें शायद ही तीन-चार सौ मनुष्योंकी बस्ती होगी। वे कपास आदिकी खेती करते हैं और गाड़ियाँ चलाते हैं। सड़ककी एक ओर बम्बईके मूलजी जेठाकी जिनिंग फैक्टरी और दूसरी ओर डाक-बंगला तथा मुसाफिर-खाना है। अजन्ता-गुफाओंके रक्षक अधिकारी (क्यूरेटर) भी वहीं रहते हैं। उन्हींके निरीक्षणमें निज़ाम-स्टेटका बड़ा 'गेस्ट हाउस' है, जिसमें रहनेके लिए राज्यके अधिकारियोंसे अनुमति प्राप्त करनी होती है।

फरदापुरसे चार मीलकी दूरीपर पहाड़ियोंमें बाघोरा नदी बहती है। अजन्ता जाते समय एक बार यह नदी पार करनी पड़ती है। इसके किनारे-किनारे ही घूमता हुआ रास्ता है। नदीमें सर्पाकार इतने घुमाव हैं कि जब तक आप एकदम पास न पहुँच जायँ, तब तक आपको गुफाओंका खयाल भी न आयगा। सुना है कि अब एकदम गुफाओं तक मोटर जाती है, वर्ना वैसे भी पैदल जानेमें बड़ा आनन्द आता है। यदि भूलकर कहीं फरदापुरके इक्केमें बैठ गये, तो समझ लीजिए कि हड्डियोंकी पूरी मरम्मत हो जायगी।

हम लोगोंने अजन्ताके चाहे जितने छपे हुए चित्र देखे हों, उसके सम्बन्धमें चाहे जितनी पुस्तकें पढ़ी हों, फिर भी पहले-पहल वहाँका जो दृश्य दिखाई देता है, वह हमारी कल्पनासे एकदम नया, गम्भीर और विशेष भव्य प्रतीत हुए बिना नहीं रहता। अन्तिम घुमाव समाप्त होते ही प्राय: तीन सौ फीट ऊँचा, वर्तुलाकार दीवार-सा, एक सीधा टीला पहाड़से निकला हुआ दिखाई देता है। उसे देखकर नदीमें खड़े हुए मनुष्यको ऐसा ही मालूम होता है, मानो वह किसी गगनचुम्बी महान प्रासाद खड़ा है। इस टीलेके बीचोबीच बारहदरियोंकी-सी एक क़तार बनी दिखाई देती है। उसे देखकर पहले मनमें स्वभावत: ही यह प्रश्न उठता है कि नदीसे इतनी ऊँचाईपर किस तरह पहुँचा जाय। इतनेमें ही राज्यकी ओरसे प्रस्तुत आधुनिक ढंगकी सीढ़ियोंका सिलसिला नज़र आता है और पथिककी चिन्ता दूर हो जाती है।

अजन्ताका प्राचीन प्रवेश-मार्ग दूसरा था। इस समय जिसे १७ नम्बरकी गुफा कहते हैं, उसके पास अभी भी पुराने मार्गकी सीढ़ियोंके भग्नावशेष दिखाई देते हैं। यह मार्ग गुफाके पास जिस स्थानमें पहुँचता है, उसके दोनों ओर

१६ नं०की गुफाकी दालानकी भीतपर अंकित इन्द्र और उनका परिवार

दो बड़े-बड़े हाथी बने हुए हैं। उनमें से एक तो प्राय: टूट-फूट गया है। यहाँसे आगे बढ़कर बाईं ओर मुड़नेके पहले सामने एक छोटी-सी ड्योढ़ी दिखाई देती है, जिसमें द्वारपालके सदृश नागराजकी एक बृहत् और सुन्दर मूर्ति
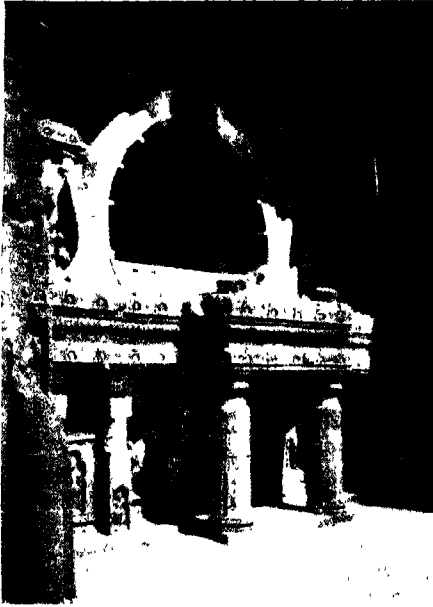
२६ नं० की गुफा चैत्य है, द्वार-प्रदेशमें पीपलके पत्तेके आकारकी महराब कैसी सुन्दर है

कटी हुई है। अजन्ताके चित्रोंकी भाँति अजन्ताकी शिल्प-कृतियाँ भी अनुपम हैं, और उनमें से यह मूर्ति भी एक है, जो भुलाई नहीं जा सकती। यहाँ तककी चढ़ाई बहुत ही सीधी होनेके कारण चढ़नेवालेको कुछ थकावट मालूम होती है, परन्तु इसके बाद ही जो अनुपम दृश्य दिखाई देते हैं, उनसे उसकी सारी थकावट दूर हो जाती है। वह इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि वह कितनी उच्चकोटिकी कला देखने जा रहा है।

यहाँसे ज़रा आगे बढ़ते ही १६ नम्बरकी गुफाका—जो सबसे बड़ी गिनी जाती है—प्रांगण मिलता है। यहाँसे नीचेकी ओर देखनेपर पहाड़से बल खाकर निकलती हुई नदी स्पष्ट दिखाई देती है। यह गुफा समूचे मण्डप-समूहके मध्यमें है, अतः वहाँसे दोनों ओरका घुमाव दूर तक दिखाई देता है, और दोनों ओर की क़रीब-क़रीब सभी गुफाएँ नज़र आती हैं। ऊँचा-नीचा होनेपर भी यह मार्ग एक ही सीधमें होनेके कारण, सभी गुफाओं तक पहुँचना सुलभ मालूम पड़ता है।

चन्द्राकार टीलोंके पेटमें कटी हुई ये गुफाएँ—प्रवेश-द्वारसे लेकर एकदम अन्त तक मनुष्यकी उपासना, धैर्य, प्रेम, भक्ति और हस्त-कौशलका संसार-भरमें आश्चर्य-जनक उदाहरण हैं।

गुफाएँ खोदनेकी कला अजन्तामें पूर्णरूपसे प्रकट हुई है। समस्त रचना देखनेपर मालूम होता है कि यहाँके शिल्प, चित्र, स्थापत्य आदिमें एक ही भावना सुसम्बद्ध शृंखलाके रूपमें प्रकट हुई है। इसमें इतनी सम्पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है कि संसारके किसी दूसरे स्थानसे इसकी तुलना नहीं की जा सकती। यद्यपि सभी बौद्ध गुफाओंके निर्माताओंने प्राकृतिक सौन्दर्य, एकान्त और बड़े जन-पथपर ध्यान रखा है, फिर भी सौन्दर्य और एकान्तके लिए तो केवल अजन्ताको ही श्रेष्ठ पद दिया जा सकता है। नीचे नदी बहती है, उसमें बड़ी-बड़ी पत्थरकी शिलाएँ हैं। पानी उनसे टकराता हुआ गुफाके ठीक नीचे ही एक गढ़ेमें इकट्ठा होता है, जो सप्तकुण्डके नामसे पुकारा जाता है। बौद्ध-भिक्षुक जिस समय नीचेकी झाड़ीसे वहाँ तक आते-जाते

२६ नं० की गुफा (चैत्य) के खम्भोंकी पंक्ति और भीतरी स्तूप

होंगे, उस समयका दृश्य और अनुभव निस्सन्देह अवर्णनीय होगा। इस समय भी उस घाटीमें चारों ओर पारिजात पुष्पोंके वन दिखाई देते हैं। साथ ही यहाँ और भी अनेक प्रकारके पुष्प और फल उत्पन्न होते हैं, इसलिए यहाँ
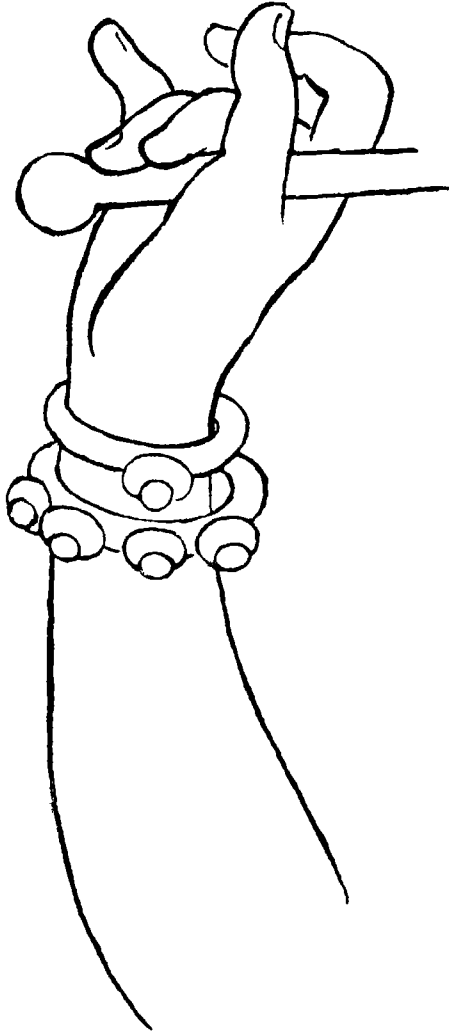
चमर डुलानेवाली महिलाका सुन्दर हाथ—
अजन्ताके रेखांकनका नमूना

यक्ष दम्पति

पक्षियोंका एक विचित्र मेला-सा लग जाता है, और ऐसे ऐसे चित्र-विचित्र पक्षी दिखाई देते हैं, जो और कभी नहीं दिखाई देते। सौन्दर्यका आनन्द लेनेके लिए अक्टूबरसे दिसम्बर तकका समय यहाँके लिए उपयुक्त माना जाता है।

१६ और १७ नम्बरकी गुफाओंसे नीचेकी समूची घाटी स्पष्ट दिखाई देती है। इन दोनों गुफाओंका निर्माण-समय ईसाकी दूसरी शताब्दि माना जाता है। नं० १६ की गुफाका प्रवेश-मार्ग ६५ फीट लम्बा और १२ फीट चौड़ा है। मुखके समीप आधारके लिए छै विशाल स्तम्भ खुदे हुए हैं, जिनसे वह किसी टाउन हालके भव्य प्रवेश-द्वारके समान मालूम देता है। उसका भीतरी खण्ड चौकोर, ६५ फीट लम्बा और १५ फीट ऊँचा है। उसकी छतको बीस स्तम्भ चारों ओरसे उठाये हुए हैं। प्रत्येक स्तम्भपर बेल-बूटे और ज्यामितके आकारोंके खाने बने हुए हैं, जिनमें सुरम्य रंग भरा हुआ है। खंभोंके सिरेपर बड़े पेटवाले कीचक इस तरह खुदे हैं, मानो वे अपने हाथोंपर छतका भार सम्हाले हुए हैं। खंभे छोड़कर दीवार तक चारों ओर ८ फीट चौड़ी प्रदक्षिणाकी जगह है। दीवारमें दोनों ओर छै-छै कोठरियाँ खुदी हुई हैं। प्रवेश-द्वारके सामनेकी दीवारमें भगवान बुद्धकी एक ध्यानस्थ विशाल मूर्ति तथा दो पार्षदोंकी मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। मूर्तिके आस-पास प्रदक्षिणाके लिए खाली स्थान छोड़ दिया गया है।

यह सब काम एक ही टीलेके गर्भमें किया गया है; परन्तु स्तम्भ, छत या प्रतिमाकी खुदाई करते समय क्या मजाल कि पत्थरका एक भी टुकड़ा कहीं ज़रूरतसे ज्यादा कट गया हो! सर्वत्र ही सुन्दर खुदाईकी एक-सी सुरेखा,

सरलता, सुघड़ता तथा सुसंस्कृत आकृतियाँ वर्तमान समयके कारीगरोंको आश्चर्य-चकित कर देनेके लिए पर्याप्त है।

दयाकी भिक्षा माँगती हुई एक अभागी रमणीके चित्रका लालित्यपूर्ण रेखांकन

जहाँ चित्र बने हुए हैं, वहाँ चित्रोंकी ज़मीनको चिरस्थायी बनानेके लिए दीवारोंपर छेनीसे तुलाईकर पहले वे खुरदरी बनाई गई हैं, फिर उनपर एक प्रकारके गारेका और गारेके ऊपर पतले चूनेका पलस्तर चढ़ाया गया है, इस पलस्तरपर लाल रेखाओंसे चित्र अंकित किये गये हैं और उनमें विभिन्न रंग देकर सादृश्य उत्पन्न किया गया है।

सोलहवीं गुफाके बाहरी चौककी छत चित्रोंसे भरी पड़ी है। गगनगामी इन्द्र और उनके परिवारका चित्र इस चौकका प्रधान चित्र है। 'प्रणयोत्सव' नामक बहुत प्रशंसित चित्र भी इसी चौकमें है। भीतरी हिस्सेकी दीवारें ज़मीनसे लेकर छत तक बुद्ध भगवानके जन्मान्तरोंकी कथाओंसे भरी हुई हैं। उनका अधिकांश भाग झड़कर, गिरकर नष्ट हो गया है अथवा किसीने खोद डाला है। जो भाग बच गया है, उससे समूची कथा समझमें न आनेपर भी हज़ारों वर्ष पूर्वके मानव-जीवनके सुख दुःख, करुणा आदिके चित्र हृदयस्पर्शी तथा प्रभावोत्पादक ढंगसे अंकित दिखाई देते हैं। दर्शक ज्यों-ज्यों इन चित्रोंपर दृष्टि डालता है, त्यों-त्यों वह अपने आस-पासकी सृष्टिको भूलकर प्राचीन कालकी राजसभाओं, सुन्दरियों, साधुओं और नागरिकोंकी स्वप्न-सृष्टिमें विचारने लगता है! कहीं राजकुमार दान दे रहा है और भिक्षुक आगे-आगे दौड़ रहे हैं, तो कहीं अट्टालिकाओंसे मुग्धनयना सुन्दरियाँ झुकी पड़ती हैं और उनके हाथसे पुष्पवृष्टि हो रही है। बुद्ध यशोधरा और राहुलका बड़ा चित्र भी इस १६ नं० की गुफामें ही है।

अजन्ताके इन मण्डपोंमें न जाने कितने चित्रकारोंने अपनी तूलिकाका कौशल दिखाया होगा, पर उन सबोंके हृदय एक ही अनिर्वचनीय भावमें रंगे हुए मालूम होते हैं। सभी परम दयामय बुद्ध भगवानके आदर्शोंको दृश्य बनानेके लिए, विश्वकर्माकी तरह तूलिका द्वारा भाव और रूपकी सृष्टि करते हुए दीवारोंपर रात-दिन मस्त होकर जुटे रहते होंगे। तब कहीं वर्षोंमें यह विशाल मण्डप इतना सुसम्पन्न कला-सिद्धिका आदर्श बन सका होगा। दीवारोंपर अंकित प्रत्येक चेहरा मनन करनेका विषय बना हुआ है। एक-एक हाथकी अंगुलियोंका बनाव, उसपर सुशोभित सुन्दर कड़े, चमर लेकर खड़ी हुई टेढ़ी कमरवाली परिचारिकाएँ, लज्जासे अवनत नेत्रोंवाली राज-महिलाएँ, विविध शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित अश्वारूढ़ सैनिक—ये सभी उस कलामण्डपके चित्रकारोंकी सजीव सृष्टि हैं! उन्होंने प्रत्येक बातको स्पष्ट रूपसे दिखानेके लिए एक भी रेखा, एक भी अलंकार या एक भी भाव अप्रकट नहीं रखा। चित्र देखते-देखते हम चित्रकारके जीवनपर विचार करने लगते हैं, और उसके हृदयमें प्रवेश करनेपर हमें मालूम होता है कि उस समयमें ही मानव-हृदय प्रेम, भक्ति, वियोग और अन्तका समान रूपसे ही अनुभव करता आ रहा है।

गुफाओंके भेद

अजन्ताकी गुफाएँ दो प्रकारकी हैं; एक चैत्य, दूसरे विहार। १६ नम्बरकी गुफा विहार मण्डप है। विहार साधुओंके रहने और अध्ययन करनेके लिए बनाये जाते थे। चैत्यमें केवल प्रार्थना या उपासना की जाती थी, इसलिए वह अधिक लम्बा होता है और सामनेके सिरेपर उसमें एक स्तूप रहता है। बुद्ध भगवानके अवशेषपर जो गोलाकार समाधि बनाई जाती थी, उसे स्तूप कहते थे। स्तूपके
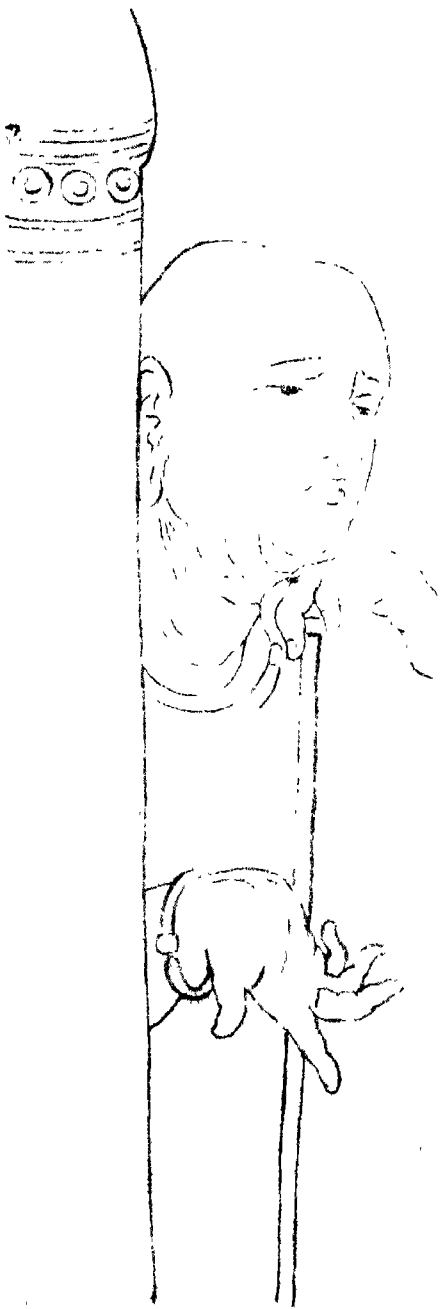
अग्रदूत—१७ नं०की गुफामें अंकित एक चित्रमें यह वृद्ध राजाके पास किसी जहाजके डूबने या युद्धमें पराजय होनेका दुखद संवाद लाया है। उसके चेहरे और हाथकी मूक रेखाएँ उसके भावको उद्घोषित कर रही हैं। संसारमें रेखांकनका यह एक बहुत उत्कृष्ट नमूना है

चारों ओर प्रदक्षिणा करने-भरका स्थान होता है। वहाँसे द्वार तक दोनों ओर स्तम्भोंकी पंक्ति रहती है। चैत्य अधिक ऊँचा होता है और उसका प्रवेश-द्वार सुच.रु कारीगरीसे खूब सुसज्जित रहता है। अजन्ताकी गुफाओंमें १६ नम्बरकी गुफा अजन्ताका सबसे बड़ा चैत्य है। उसके द्वार-देशका दृश्य बहुत ही रमणीय और अलौकिक मालूम होता है। उसके चौकमें दाहनी ओरकी दीवारपर नागराजका समस्त परिवार खुदा हुआ है। यह दृश्य इस प्रकारके शिल्पमें बहुत ही उच्चकोटिका माना जाता है। चैत्यके द्वार-देशकी महराबोंका आकार पीपलके पत्ते जैसा रहता है, इसलिए चैत्योंको पहचाननेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती है।

अजन्तामें चैत्य और विहार दोनों मिलाकर छोटी-बड़ी कुल २६ गुफाएँ हैं। इनमें से १, २, १६ और १७ नम्बरकी गुफाओंके चित्र कुछ अंशमें बचे हुए हैं। शेष सभी गुफाओंमें कहीं किसी दीवारपर किसीका सुन्दर मुख, कहीं किसीके खंडित हाथ-पैर, तो कहीं घोड़े या हाथीपर चढ़े हुए खण्डित शरीर आदि दिखाई देते हैं। उन सबोंको सुरक्षित रखनेके लिए निज़ाम-सरकारकी ओरसे प्रचुर व्यय कर समुचित व्यवस्था की गई है। इस कामके लिए यूरोपसे एक विशेषज्ञ बुलाया गया है। उसने प्रत्येक स्थानमें कीट-नाशक औषधि डालकर पपड़ोंको सीमेन्टसे जोड़ दिया है, ताकि वे ज्यों-के-त्यों लटके रहें और गिरकर नष्ट न हो जायँ। अनुमान किया जाता है कि इस व्यवस्थासे बीस-पचीस वर्ष तक अब कोई हानि न होगी। ८, ६ और २४ नम्बरकी गुफाएँ खुदाई करते-करते अधूरी रह गई हैं, जिससे उन दिनोंकी गुफा खोदनेकी विधि स्पष्ट मालूम होती है। खुदाईके लिए पतले धारदार औज़ार काममें लाये जाते थे। इन औज़ारोंसे पहले सीधी-सीधी नालियाँ-सी खोद ली जाती थीं, बादको दो नालियोंके बीचका हिस्सा गिरा दिया जाता था। खुदाई करनेवालोंके पीछे कारीगरोंका दूसरा दल रहता था, और वह दीवारोंको चिकनी बनाकर उनपर पालिश करता जाता था।

कारीगरी तो सभी गुफाओंकी ज़ोरदार और सुन्दर है,

बोधिसत्त्व—(यह मूर्ति संसारमें कलाका एक अनुपम उदाहरण माना जाता है।)

परन्तु एक नम्बरकी गुफा खोदनेवालोंका कार्य बहुत ही आश्चर्यजनक मालूम होता है। अनेक विघ्न-बाधा और कठिनाइयोंके रहते हुए भी उन्होंने १२० फीटकी सीधी गहराई किस तरह काटकर पार की होगी, यह एक पहेली सी मालूम होती है। उस गुफाका मुख ६५ फीट चौड़ा है। सामनेका मण्डप १८ फीट चौड़ा १६ फीट ऊँचा और बारीक कारीगरीके बेल-बूटों तथा स्तम्भ आदिसे भरा हुआ है। भीतरी हिस्सा ६४ फीट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। उसके चारों ओर बीस स्तम्भ हैं, और स्तम्भोंके आस-पास दालान हैं। इस मण्डपके अन्दर सामनेकी ओर १६ फीट लम्बी एक दूसरी दालान है। वहाँकी कारीगरी बहुत ही सुन्दर है। इसी दालानके बीचोबीच गर्भ मन्दिरमें द्वारपालोंके साथ भगवान बुद्धकी सुन्दर मूर्ति है। बाहरसे इस मूर्ति तककी दूरी १२० फीट है।

इस गर्भ-मन्दिरवाली दालानमें ही एक समूची दीवारपर भगवान बुद्धकी तपश्चर्या और मारके आक्रमणवाला चित्र अंकित है। अनेक प्रकारके प्रलोभन और भयके साधनोंके साथ मार बुद्ध भगवानको विचलित करने आया है। इसमें चित्रकारकी तूलिकाकी अजीब करामात दिखाई देती है। प्रत्येक आकृति स्पष्ट रेखाओंमें विविध अभिनय भाव और अलंकारोंके साथ इस तरह अंकित की गई है कि आधुनिक चित्रकार उनसे बहुत-कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। इस चित्र-मण्डलमें बुद्ध भगवानकी मूर्तिपर अलौकिक शान्त परिलक्षित होती है। समूचा चित्र क़रीब १२ फीट ऊँचा और ८ फीट चौड़ा है। समझमें नहीं आता कि जिस स्थानमें केवल शामको ही प्रकाश पहुँचता है और वह भी कुछ ही क्षणोंके लिए, उस स्थानकी इस दीवारपर इतनी कामकार्ययुक्त और कलापूर्ण आकृतियाँ किस प्रकार अंकित की गई होंगी। आज भी जब शामके वक्त सूर्यकी अन्तिम किरणें इस गुफामें प्रवेश करती हैं, तब थोड़ी देरके लिए सब चित्र जगमगा उठते हैं, और दर्शक अवाक् होकर—'अद्भुत! अद्भुत!' कहने लगता है और उसका हृदय श्रद्धासे प्रणाम करने लगता है।

गुफा नं० १ और २ में सबसे अधिक चित्र सुरक्षित बचे हैं। उनमें ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हैं, जिनसे उनका समय जाना जाता है। १ नम्बरवाली गुफाके मण्डपकी दालानमें एक ऐसा चित्र है, जिसमें हिन्दू राजा पुलकेशी द्वितीयकी राज-सभामें ईरानके राजा खुशरू परवेजके राजदूत भेट अर्पण करते हुए दिखाये गये हैं। इस चित्रसे ईरान और भारतका प्राचीन सम्बन्ध प्रकट होता है। अधिकतर यह घटना सन् ६२६ से ६२८ तककी है। इस १ नम्बरकी गुफाकी चित्रकारी अजन्ताकी कला-समृद्धिकी पराकाष्ठा दिखाती है। संसारके अनेक देशोंकी प्राचीन कलाका साधन रेखाएँ हैं, किन्तु अजन्ताके चित्रकारकी रेखाओंमें जो अनेक तत्त्व प्रकट हुए हैं, वे संसारकी अन्य कलाओंमें दिखाई नहीं देते। यहाँ तूलिकापर चित्रकारका इतना अधिकार दिखाई देता है कि उससे जो रेखा निकलती है, वह भावके अनुसार ही रूप धारण करती जाती है। अजन्ताकी आकृतियोंको देखनेसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि गोल या घन आकृतियोंको रेखा-द्वारा व्यक्त करनेकी क्रिया उनके लिए सुसाध्य हो गई थी। कहीं उभरती हुई आकृतियाँ, कहीं झूलते हुए मुक्ता-हार और मुलायम वक्ष कहीं सुघड़ नासिका और मृदु उदर, तो कहीं

अजन्तामें अलंकारिक कमलोंके रूप

स्तम्भोंके पहलु-ओंकी सजावट
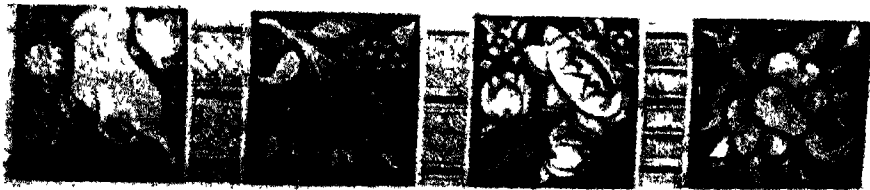
धातुके जगमगाते हुए रत्नजड़ित मुकुट इत्यादि विविध चीजें देखनेपर ही अजन्ताके चित्रकारके आलेखन-सामर्थ्यका अन्दाज़ा लगता है। केवल रेखाओंमें ही मानव शरीरको इतनी विविधतासे अंकित करनेवाले चित्रकार संसारमें शायद ही और कहीं पाये जायँगे। बिना कम्पनके, निःशंक भावसे और छटापूर्ण अर्थभाव लक्षण आदिसे सम्पूर्ण चित्र अंकित करनेवाला अजन्ताका यह चित्रकार, उस युगको देखते हुए, संसारका कोई दैवीपुरुष ही मालूम होता है।

इसी गुफाके गर्भ-मन्दिरके पास दाहनी ओर मण्डपकी दीवारपर 'बोधिसत्व' का बड़ासा चित्र है। यह उस समयका रूपक चित्र है, जिस समय कुमार सिद्धार्थ बुद्धपदके लिए गृह-त्याग करते हैं। इस चित्रमें मनुष्यके वास्तविक आकारसे कुछ बड़े आकारकी, किंचित त्रिभंगीयुत, दाहने हाथमें नीलकमल (इन्दीवर) धारण किये, जीवन मन्थन करते हुए सुकोमल मुखको झुकाकर खड़ी हुई राजेश्वरकी मूर्ति समस्त संसारकी कलामें अनुपम मानी जाती है। दीवारपर स्वाभाविकतासे बहुत थोड़ेमें केवल सरल रेखाओं द्वारा विशाल स्कन्ध और सुन्दर दीर्घबाहुओंके बीचमें किंचित छाया दिखाकर इस चित्रमें बड़ी खूबीके साथ मृदुता और सुघड़ता लाई गई है। मांसल मनोहर मुखारबिंद, जो खाकी रंगोंके मिश्रणसे अंकित किया गया है, चिन्तन, करुणा और मनोमन्थनके भावोंको स्पष्टरूपसे प्रकट करता है। तूलिकाकी एक ही रेखा खींचकर अंकित की हुई भौंहें किसी कला-पारगत उस्तादी हाथका परिचय कराती हैं। नासिका और होठोंपर भाव दिखाने-भरके लिए जो छाया दिखाई गई है, वह हमें बतलाती है कि चित्रकार अपने साधनोंका बढ़ियासे बढ़िया उपयोग करना जानते थे। इस बोधिसत्वका मुकुट भी कारीगरीका एक उत्तम नमूना माना जाता है।

इस भागके समस्त चित्रोंमें यह स्वरूप बहुत विशाल होनेपर भी परम मनोरम है। उसके आस-पासकी दृश्यसृष्टि, मानवसृष्टि और विचार निमग्न यशोधराके चित्रपर दृष्टि डालिये, तब मालूम होता है कि चित्रकार आवेश और स्वस्थता, धीरता, त्वरा आदि सभी भाव दरसानेमें एकसा ही कुशल है। इसके अतिरिक्त समस्त चित्रोंका संविधान भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। इस चित्रके अलावा पास ही के एक दरवाज़ेपर प्रेममग्न यक्ष-दम्पतिका एक निर्दोष चित्र अंकित है। इसी मण्डपकी बाईं ओरकी दीवारपर बुद्धके पूर्वजन्मकी चम्पेय जातक नामक कथाका काशीराज और नागराजके मिलनका भव्य चित्र है। इन सब चित्रोंको देखनेपर मालूम होता है कि अजन्तावासियोंको संसारका ज्ञान और अनुभव भलीभाँति उपलब्ध था।

दूसरे नम्बरकी गुफाके चित्र अन्तिम कालके माने जाते हैं, परन्तु इसमें भी दो-चार ऐसे चित्र हैं, जो अजन्ताके उत्तम चित्रोंकी कोटिमें रखे जा सकते हैं। एक दीवारपर एक बहुत ही करुणापूर्ण चित्र है। इस चित्रका ऊपरी भाग खण्डित हो गया है, फिर भी चित्रकी घटना समझनेमें कोई बाधा नहीं पड़ती। चित्रोंमें एक राजमण्डप अंकित है। मण्डपमें एक सिंहासनपर चारों ओरसे युवतियों द्वारा घिरा हुआ एक राज-पुरुष बैठा है। उसके हाथमें नंगी तलवार है और वह चरणोंमें पड़ी हुई एक अभागिन रमणीपर तन रही है। आस-पासकी सभी आकृतियाँ उसके दुर्भाग्यको देखकर कम्पित और भयभीत हो रही हैं। एक-आध दया-भिक्षा माँग रही हैं। यह चित्र इतना भावपूर्ण है कि उसे देखकर भूतकालकी उस रमणीके लिए हमारे हृदयमें भी दया-याचना करनेकी प्रेरणा उत्पन्न होती है। दर्शक उसे देखकर विषादके साथ मौनावलम्बन कर लेता है।

इस मण्डपमें बादको जो चित्र अंकित हुए हैं, वे

अजन्ताकी सर्वोत्कृष्ट कलाका मुक़ाबला नहीं कर सकते। उन दिनों खोतान और तुर्किस्तानमें जैसी चित्र-कला प्रचलित थी वे उसी कोटिके मालूम होते हैं। उनमें असली तत्त्व लोप हो गया है।

अजन्ताकी कलाकी कुछ विशेषताएँ

अजन्ताका पूर्ण अवलोकन करनेवालेके मानस-पटलपर वहाँकी कला-विषयक कुछ अमिट स्मृतियाँ अंकित हुए बिना नहीं रह सकतीं। अजन्ताके चित्रकारोंने मालूम होता है कि कमल-पुष्पसे बहुत-सी प्रेरणाएँ और चित्रकौशल प्राप्त किया है। मण्डपकी छतोंपर बड़े-बड़े वृताकार चक्रोंके बीचमें बड़े-बड़े कमलदल अंकितकर, आस-पासके चक्रों और ज़मीनपर उसकी अनेक प्रकारकी आकृतियाँ अंकित की गई हैं। उन्हें देखनेपर मालूम होता है कि कलाके स्वरूपमें कमल इतनी विविधता-पूर्वक शायद ही संसारमें और कहीं दिखाये गये होंगे। कमल पुष्प, कमल कालिकाएँ कमल-पत्र, कमलदण्ड या कमलगुच्छकी सुशोभित और सुसंस्कृत रेखाएँ, वल्लरियाँ और बंदनवारें अजन्तामें पद-पदपर दिखाई देती हैं। फिर भी उनकी नवीनता कम नहीं होती। चित्रकारोंको कमलका फूल इतना आकर्षक प्रतीत हुआ है कि बोधिसत्वकी मूर्तिके हाथमें या स्तम्भपरकी पुतलियोंके हाथमें या प्रेमी दम्पतियोंके बीचमें शोभाके लिए उन्होंने उसे अवश्य स्थान दिया है।

अजन्ताकी भीतपर अंगुलियों और हाथकी विविध मुद्राएँ

कमलके बारीक निरीक्षण और अभ्याससे चित्रकारोंने मानव-शरीरके चित्रोंमें भी उसका लालित्य लानेकी चेष्टा की है। भारतीय शिल्प और स्थापत्यकी कृतियोंमें यद्यपि कमलने बहुत प्राचीन कालसे ही स्थान पाया था, परन्तु चित्रोंमें तो अजन्ताने ही उसका माहात्म्य स्वीकार कर उसमें अभिवृद्धि की है।

कमलकी भाँति हाथी भी भारतीय शिल्पका एक प्रिय अंग है, और भारतके सिवा किसी भी दूसरे देशमें उसने वास्तविक राज-सम्मान प्राप्त नहीं किया। सिद्धार्थकी माताको गर्भावस्थामें एक सफेद हाथी आकाशसे उतरकर कुक्षिमें प्रवेश करता हुआ स्वप्नमें दिखाई दिया था। इस घटनाके

बादसे हाथी कला और साहित्यमें देवकोटिका सम्मान प्राप्त करता आ रहा है। बुद्ध भगवानके पूर्वजन्मोंकी जातक

परिचारिकाओंकी पोशाक और अलंकार

कथाओंमें अनेक बार हाथीकी कथाएँ आती हैं। छद्दन्त जातककी कथा उसका एक अद्भुत दृष्टान्त है। बोधिसत्त्व किसी जन्ममें हाथी थे और उनके दो प्रिय हस्तिनियाँ थीं। उनमें से एक किसी कारणवश अपनी सौतसे असन्तुष्ट हो गई। उसने सिर पटककर आत्म-हत्या कर ली। बादको एक राजाके यहाँ उसने जन्म-ग्रहण किया। इस जन्ममें भी वह अपना रोष न भूल सकी, इसलिए वयस्क होनेपर उसने अपने पिताके दूतोंको उस श्वेत हाथीका सिर ले आनेके लिए जंगल भेजा। श्वेत हाथीको यह बात मालूम होनेपर वह अपने आप दूतोंके सम्मुख आ उपस्थित हुआ, और अपने घातमें कोई बाधा न दी। राजदूतोंने उसके दोनों दाँत निकालकर राजकन्याके सम्मुख उपस्थित किये, परन्तु उसकी वैरवह्नि इसके कुछ पहले ही शान्त हो गई थी, इसलिए वह दुःखसे मूर्छित होकर गिर पड़ी।

यह समूची करुण-कथा १७ नम्बरकी गुफाकी दीवारोंपर अंकित है। कहीं-कहीं वह खण्डित हो गई है, फिर भी चित्रोंकी वर्णन शक्ति इतनी ज़ोरदार है कि घटनावली

कलायुक्त परिधान और अलंकारोंसे सजी संगीत-मंडली

समझनेमें देर नहीं लगती, और ऐसा मालूम होता है, मानो यह सब हम अपनी आँखोंसे प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इस कथाके चित्रोंको देखते हुए आप आगे बढ़ते जाइये। जब आप उस स्थानमें पहुँचेंगे, जहाँ गर्भ-मन्दिरकी दालानके पास कथाका अन्त आता है, तो वहाँ परम शान्त बुद्ध भगवानके दर्शन प्राप्त होंगे। इससे हमें इस बातका ज्ञान होता है कि इस प्रकार जन्मान्तर व्यतीत करके आत्म-त्याग और वैराग्य-द्वारा शान्तिपद प्राप्त करनेवाले उस महान आत्माका सर्वांगपूर्णको परिचय देनेके लिए कैसी कलामय योजनाएँ इन भवनोंमें की गई हैं। छद्दन्त जातककी कथामें हाथियोंके जंगलके जंगल अंकित किये गये हैं, और उनमें अनेक हाथी, हस्तिनियाँ तथा उनके बच्चोंके विविध रूप इतने सजीव और भावपूर्ण हैं कि चित्रकारकी स्मृतिके लिए हमारे मनमें असीम श्रद्धा उत्पन्न किये नहीं रहती। हाथीको लेकर इस प्रकारकी

चित्रकारी करनेवाले चित्रकार इस समय मिल सकते हैं या नहीं, इसमें सन्देह ही है।

अजन्तामें चित्रित उस युगके अस्त्र-शस्त्र

अजन्ताकी स्त्रियाँ

अजन्ताकी मानव सृष्टिमें स्त्रियोंका स्थान बहुत ही ऊँचा दिखाई देता है। उस समय वस्त्रोंका व्यवहार परिमित होनेपर भी स्त्रियोंमें ऐसी कला और ऐसा विनय दिखाई देता है,

विचार-मग्ना रानी तथा उससे सहानुभूति प्रकट करती हुई परिचारिका

जो हमें आनन्द और आश्चर्यमें विलीन कर देता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसा भी मालूम होता है, मानो कलाका वह समूचा संसार स्त्रियोंकी मधुरतासे व्याप्त हो रहा था। चित्रकारोंने स्त्रियोंके चित्र अंकित करते समय बहुत ही संयम-

अजन्ताके बर्तन

पूर्वक उनके शरीरके अनुपात और उनके अंग-प्रत्यंगोंकी शोभाकी रक्षा की है। चाहे रानी हो या राजकुमारी, चाहे परिचारिका हो या नर्तकी, कहीं भी वह प्रगल्भता धारण नहीं करती। सर्वत्र वह मर्यादायुक्त सुन्दरी ही दिखाई देती है।

इसके अतिरिक्त समस्त अजन्तामें स्त्रीका एक भी ऐसा चित्र नहीं है, जिसे देखकर मनमें पाशविक वृत्ति या

बुद्ध भगवानपर मारके आक्रमणका चित्र

विकार उत्पन्न हो। प्रेमियोंके जोड़ोंमें भी आत्माका माधुर्य और ऐक्य ही दिखाई देता है। यह चित्र सांसारिक होनेपर भी उसमें इतना विशुद्ध वायुमण्डल सुरक्षित है कि

चित्रकार श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

जीवन-अन्त
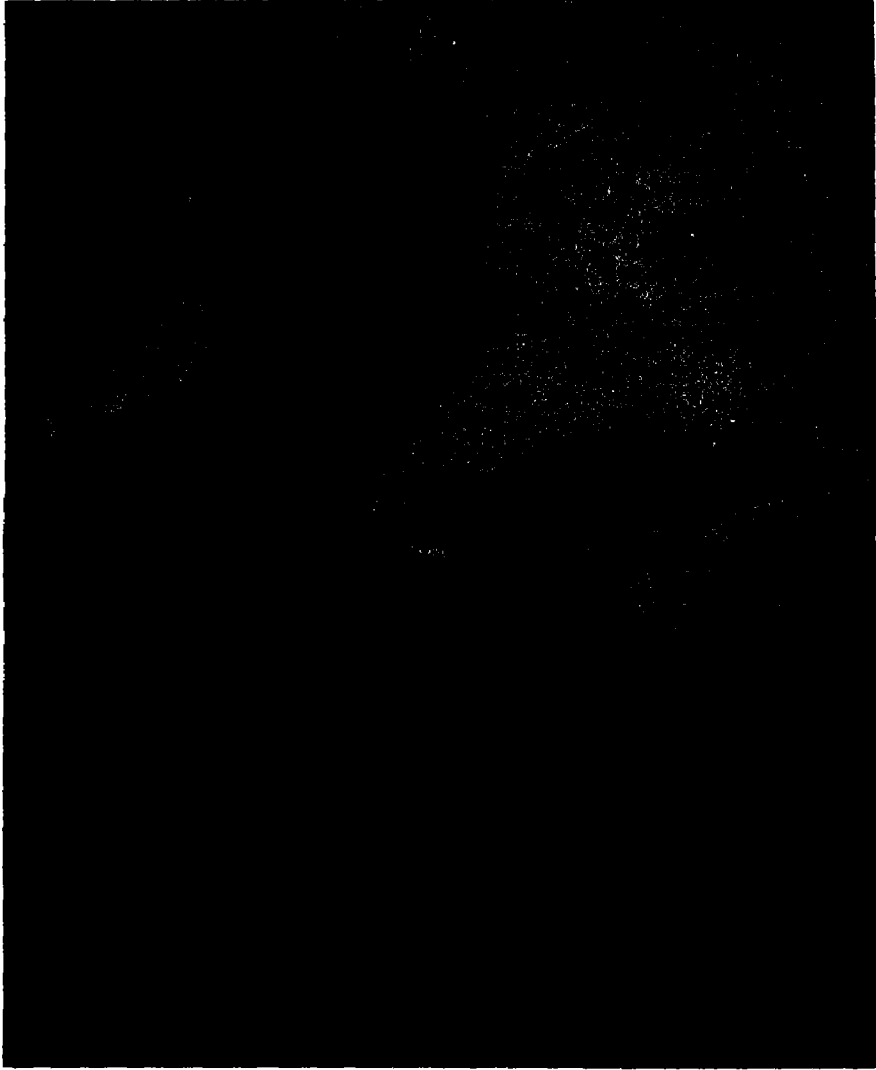
चित्रकार—श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

विशाल-भारत

दी है। प्रणाम करते हुए हाथ, पात्र धारण किये हुई हथेली या पंखा या चमर ढालती हुई अंगुलियोंकी अगणित छटाओंका अजन्तामें बहुत बड़ा भण्डार है। यदि आप ढोलपर ताल देती हुई अंगुलियाँ या करताल बजाती हुई हथेलियाँ और उनके सामने नृत्यमय स्थितिमें खड़े हुए मनुष्योंको देखें, तो आपको यही विचार आयेगा कि अजन्ताके चित्रकारने एक अद्भुत युगको देखा, जाना और उपभोग किया है। अजन्ताको देखनेके बाद अनेक मनुष्य उस तरहके हाव-भाव तथा छटाको समझते और उसमें आनन्द प्राप्त करते हुए देखे गये हैं। अजन्ता देखनेके बाद उस युगके मनुष्योंके सामने हम लोग मानो रूखे, कठोर और जड़ से प्रतीत होते हैं।

इतिहास

यह कहना कुछ बेजा नहीं है कि इन कलामण्डपोंका पूर्व इतिहास प्रायः अज्ञात है। फिर चित्रोंमें जिन घटनाओं और कथाओंका वर्णन है, वे तो और भी पहलेकी हैं, इसलिए वे भी अजन्ताका समय-निरूपण करनेमें विशेष सहायता नहीं करतीं।

चीनसे पाँचवीं शताब्दिमें फाहियान और सातवीं शताब्दिमें ह्युएन-चांग भारतकी यात्रा करने आये थे। उन्होंने इस तरहकी अनेक गुफाओंके वर्णन लिखे हैं। इसके अतिरिक्त यहाँसे चित्र-कलाकी शिक्षा प्राप्तकर वे अपने साथ अनेक चित्र भी चीन ले गये थे। उन्होंने लिखा है कि उन्हें यह शिक्षा भारतके आचार्योंसे प्राप्त हुई थी। ह्युएन-चांगने एक स्थानमें लिखा है कि वह खुद अजन्ता तो न जा सका था, पर उसने उसकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी। उसने लिखा है कि 'महाराष्ट्रका राजा पुलकेशी द्वितीय है। उसके राज्यमें पूर्व ओरके पहाड़ोंमें, नदीके मूलदेशके समीप, विहार खुदे हुए हैं, और उन विहारोंकी दीवारोंपर तथागतके जन्मान्तरोंकी कथाके चित्र अंकित हैं।' निःसन्देह यह वर्णन अजन्ताका ही मालूम होता है।

इस बातसे सभी विद्वान सहमत हैं कि अजन्ताकी ९ और १० नम्बरकी गुफाएँ सबसे अधिक पुरानी हैं, क्योंकि उनकी कारीगरी भरहुत, अमरावती और साँचीके शिल्पसे—जो पहली शताब्दिके हैं—बहुत मिलती-जुलती है। समयका इतना पता चलनेपर यह स्पष्ट मालूम होता है कि अजन्ताकी कलाने दो-तीन युगोंका उलट-फेर देखा है। उपरोक्त ९ और १० नम्बरकी गुफाओंके चित्र देखकर भी यही राय स्थिर करनी पड़ती है कि उन दिनोंमें भी चित्र-कलाकी बहुत उन्नति हो चुकी थी। ये चित्र प्राथमिक दशाके प्राचीन गुफावासी मनुष्योंके चित्रोंकी तरह न तो खिलवाड़ ही हैं, न वे नये प्रयोगोंकी तरह कोरी लकीरें ही; बल्कि वे जिन लोगोंमें बहुत दिनोंसे इसका व्यवहार होता चला आया है, उनके निपुण हाथोंसे अंकित उच्चकोटिकी कला कृतियाँ हैं। उन दिनोंके साहित्यका कथन है कि बुद्धके समयके पहले भी भारतमें अनेक प्रकारकी चित्र-कला प्रचलित थी। उपरोक्त बातोंसे इस कथनकी पुष्टि होती है।

अजन्ताके चित्रोंमें काष्ठ और पाषाण-निर्मित भवनोंका आलेखन भी दिखाई देता है, जिससे उन कलामण्डपोंकी रचनाका समय निर्धारित करनेमें कुछ-कुछ सहायता मिलती है। निःसन्देह किसी समय अजन्ताकी चित्र-पद्धति समस्त भारतवर्षमें प्रचलित होगी, परन्तु विदेशियोंके आक्रमण, आपसकी फूट आदि कारणोंसे वह इस प्रकार नष्ट हो गई है कि आज उसके नामका भी पता नहीं चलता। अजन्ता पहाड़के गर्भमें है तथा उसके चित्र पक्की दीवारोंपर अंकित हैं, इसी कारण वे इतने परिमाणमें सुरक्षित रह सके हैं। इस समय इन गुफाओंका समय इस प्रकार माना जाता है—गुफा नम्बर ९ और १० प्रायः पहली शताब्दिकी; नम्बर १० के स्तम्भ क़रीब ३५० वर्ष बादके; १६ और १७ नम्बरकी गुफाएं इसके बाद ५०० वर्ष तककी और गुफा नम्बर १ और २ सन् ६२६ से ६२८ ईस्वीकी।

अजन्तामें इन सात-आठ सौ वर्षोंमें अनेक प्रकारकी चित्रकारी हुई थी। यदि उन सबोंपर काल और अत्याचारियोंकी कुटिल दृष्टि न पड़ी होती, तो आज वहाँ

चित्रोंका महासागर दिखाई देता। इस समय जो चित्र बचे हुए हैं, उनपर भी बहुत बार हो चुके हैं और वे धुएँसे विकृत हो गये हैं, परन्तु अब निज़ाम-सरकारके निरीक्षणमें उनकी समुचित मरहमपट्टी और उपचार हुआ करता है, जिसके लिए समस्त संसार उसका चिरकृतज्ञ रहेगा।

अजन्ताका अस्तित्व वर्तमान जगत्में सर्वप्रथम सन् १८२४ में जनरल सर जेम्सको मालूम हुआ था। वे स्वयं व्यक्तिगत रूपसे वहाँ गये थे और उसका संक्षिप्त परिचय लिखकर 'रायल एशियाटिक सोसायटी' को दिया था। इसके बाद सन् १८४३ में मिस्टर फरग्यूसनने उसका विस्तृत और हूबहू वर्णन लिखा और तबसे विद्वानोंका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। सन् १८४४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनीने उसके चित्रोंकी नक़ल करा लेना स्थिर किया और मदरासकी सेनाके मेजर आर० गिलको यह काम सौंपा गया, और यह काम १८५७ के ग़दर तक चलता रहा। क़रीब तीस प्रतिलिपियाँ तैयार हुईं और इंग्लैण्डके क्रिस्टल-प्रासादमें उनकी प्रदर्शनी की गई। सन् १८६६ में आग लगनेपर वे समस्त प्रतिलिपियाँ जल गईं। उन चित्रोंके अब ट्रेसिंग या फोटोग्राफ भी उपलब्ध नहीं हैं! यदि वे भी मिलें, तो हमें बहुतसी बातें देखनेको मिल सकती हैं, क्योंकि उसके बाद भी बहुतसे चित्र झर पड़े हैं या नष्ट हो गये हैं।

इसके बाद मि० फरग्यूसनने पुन: सरकारसे अनुरोध किया और मूल चित्रोंकी नक़ल करानेका काम बम्बईके आर्ट स्कूलके प्रिन्सिपल मि० ग्रिफिथको सौंपा गया। वे पहले खुद अजन्ता जाकर सब कुछ देख आये, बादको सन् १८७२ से लेकर सन् १८८१ तक स्कूलके विद्यार्थियोंकी सहायतासे गुफ़ाओंकी नाप आदि ली और छत तथा स्तम्भोंके कतिपय चित्रोंकी नक़लें तैयार कीं। इसमें पचास हज़ारसे भी अधिक खर्च पड़ा। सन् १८८५ में यह काम बन्द कर दिया गया। सन् १८९६ में इस विषयके दो बड़े ग्रन्थ तैयार हुए। इन दोनोंमें अनमोल सामग्री भरी हुई थी। इन ग्रन्थोंकी मूल प्रतियाँ इंग्लैंडमें भारत-मन्त्रीके संरक्षणमें रखी गई थीं। मिस्टर ग्रिफिथ तो उन्हें बम्बईके आर्ट-स्कूलमें ही रखना चाहते थे, किन्तु इसके लिए सरकारसे अनुमति न मिल सकी। उन्होंने इनकी नक़ल करा लेनी चाही, परन्तु भारत-मन्त्रीने यह प्रार्थना भी स्वीकार न की! अन्तमें यह चित्र भी भारत-मन्त्रीके दफ्तरमें आग लगनेपर स्वाहा हो गये, शेष रह गये केवल उनके फोटोग्राफ!

इसके बाद सन् १९१५ में लेडी हैरिंगघम कई भारतीय चित्रकारोंके साथ अजन्ता गईं, और उन्होंने केवल घटना-मूलक चित्रोंकी ही नक़लें कराईं। उस समय तक अजन्तामें निरीक्षणका कोई प्रबन्ध न था, इसलिए उन्हें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा होगा, और असम्भवत: इसी कारणसे उनके कार्यमें बहुतसी त्रुटियाँ रह गई हैं। फिर भी उनके कार्यकी संसारने प्रशंसा की, और उसीपर निज़ाम-सरकारने उनपर पक्का कब्ज़ा कर प्रचुर व्ययसे वहाँ सफाई और थोड़ी बहुत मरम्मत कराई। निज़ाम-सरकार ओरसे गुफाओंकी रक्षाके लिए एक क्यूरेटरकी नियुक्ति की गई। यह पद मि० सैयद अहमदको दिया गया, जो पहले लेडी हैरिंगहामके दलमें सम्मिलित थे और चित्रोंकी नक़लें करनेमें सहायता करते थे। मि० सैयद अहमदने क्यूरेटरके पदपर आनेके बाद जिन चित्रोंकी नक़लें तैयार की हैं, उनमें बहुत ही सावधानी रखी गई है, फलत: उनमें प्रामाणिक सादृश्य दिखाई देता है।

सन् १९२६ में आंध-नरेश श्रीमान बाला साहब पन्त प्रतिनिधिने भिन्न-भिन्न प्रान्तके चित्रकारोंके एक दलको अजन्तामें एक मास तक रहनेकी सुविधा प्रदानकर वर्तमान समयके समस्त साधनोंकी सहायतासे गुफाके कुछ चित्रोंकी नक़लें तैयार कराईं, जो बहुत ही आधारभूत बन सकी हैं। इन पंक्तियोंके लेखकको भी उस दलमें रहकर अजन्ताकी छायामें दीक्षा ग्रहण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, और उस यात्राके फलस्वरूप ही यह लेख लिखा गया है। कलारसिक पाठकोंका चित्त इस लेखको पढ़कर अजन्ताकी ओर आकर्षित हो, वे अजन्ताकी यात्रा करें और उनकी कला-भक्ति नई शक्ति प्राप्त करे, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

मेरे गीत

श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त

चींटियोंकी-सी काली-पाँति
गीत मेरे चल-फिर निशि-भोर,
फैलते जाते हैं बहु-भाँति
बन्धु ! छूने अग-जगके छोर !

लोल-लहरों-से यति-गति-हीन,
उमड़, बह, फैल अकूल-अपार,
अतलसे उठ-उठ, हो-हो लीन,
खो रहे बन्धन गीत उदार ।

दूब-से—कर लघु-लघु पद-चार,
बिछ गए छा-छा गीत अछोर,
तुम्हारे पद-तल छू सुकुमार !
मृदुल-पुलकावलि बन चहुँओर,

तुम्हारे परस-परसके साथ
प्रभामें पुलकित हो अम्लान,
अन्ध-तममें जगके अज्ञात
जगमगाते तारों-से गान ।

हँस पड़े कुसुमोंमें छविमान
जहाँ जगमें पद-चिह्न पुनीत,
वहीं सुखके आँसू बन, प्राण !
ओसमें लुढ़क, दमकते गीत ।

बन्धु ! गीतोंके पंख पसार
प्राण मेरे स्वरमें लयमान,
हो गए तुमसे एकाकार
प्राणमें तुम औ' तुममें प्राण ।

कलापर गांधीजीके विचार

श्रीयुत काशीनाथ नारायण त्रिवेदी

कुछ समय पहले गुजरातीके प्रसिद्ध मासिक पत्र 'प्रस्थान' में 'गांधीजी और कला' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था। उस लेखमें कहा गया था —

''गांधीजीने देशमें जो एक नया जीवन पैदा किया और उस जीवनसे देशमें कई तरहकी जो जाग्रति हुई, उसमें कला-विषयक जाग्रति भी कुछ कम नहीं कही जा सकती—यद्यपि गांधीजीने स्वयं इस सम्बन्धमें प्रत्यक्ष कुछ किया हो, सो नहीं। गांधीजीने धर्मशास्त्रके गहन और विशेष अध्ययनके बिना और भाषाके गहरे अभ्यासके अभावमें भी इन दोनों क्षेत्रोंमें अच्छा काम किया है। गुजरातकी समग्र भाषाने जो एक नया स्वरूप धारण किया है, उसमें उनका प्रत्यक्ष हाथ है। परन्तु दूसरी कलाओंके क्षेत्रमें उन्होंने कोई प्रत्यक्ष काम किया हो, यह जान नहीं पड़ता। उनके चरित्रपर रस्किन और टाल्सटाय जैसे दो प्रखर संत

कलाकारोंका प्रभाव पड़ा है, इसे उन्होंने भी मंजूर किया है ; परन्तु इन कलाकारोंके कारण उनमें कला-विषयक अभिरुचि पैदा हुई हो और इस सम्बन्धमें उन्होंने कोई खास काम किया हो, इसका कहीं पता नहीं चलता। हाँ, उन्होंने संगीतकी अभिरुचि बढ़ाई और लोगोंको उस ओर आकर्षित किया। इसका आरम्भ एक तरहसे आश्रममें अध्यापक श्री नारायण मोरेश्वर खरेके आगमनसे हुआ। तबसे गुजरात संगीत-कलाका किस तरह रसपान कर रहा है, सो सर्वत्र विदित ही है। तो भी यह कहा जा सकता है कि खरे साहब इतने वर्षोंसे आश्रममें रहते हैं, फिर भी यह तो हमने नहीं सुना कि गांधीजीको गाना आया हो। हाँ, वे संगीतसे दिलचस्पी रखते हैं, और यह भलीभाँति जानते हैं कि देशके उत्थानमें संगीतका क्या स्थान है ; पर इस सम्बन्धमें उन्होंने कोई अधिक चर्चा नहीं की है। फक़त कोई पाँच वर्ष पहले श्री दिलीपकुमार रायके साथ थोड़ी संगीत-चर्चा हुई थी और वह 'नवजीवन'में छपी भी थी। इसके अतिरिक्त प्रकाश्य रूपमें उन्होंने खुद संगीतकी कोई चर्चा की हो, इसका हमें पता नहीं।

"संगीतके सिवा किसी दूसरी कलाके बारेमें उन्होंने किसी दिन कुछ भी कहा हो, हम नहीं जानते। आश्रमके मकानोंमें या उनकी बनवाई हुई गुजरात-विद्यापीठकी इमारतमें भी किसी प्रकारकी कलाकी चेष्टा नहीं की गई। गांधीजीकी आत्म-कथामें कहीं भी कला-विषयक चर्चा नहीं पाई जाती।

"गांधीजीपर टाल्सटायका सन्त रूपमें ही प्रभाव पड़ा है, और वे संत बने हैं—कलाकार नहीं बने। इस सिलसिलेमें हम श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ उनकी तुलना कर सकते हैं। गांधीजी और कवि ठाकुर ये दोनों वर्तमान संसारके दो महान् व्यक्ति हैं। इनमें से एकको हम महान् संतके रूपमें और दूसरेको कलाकारके रूपमें पहचान सकेंगे।

"गांधीजीके सम्बन्धमें कदाचित् यह भी कहा जा सकता है कि कलाके क्षेत्रमें विहार करनेका उन्हें समय न मिला हो। इधर उनकी सारी मनोवृत्ति स्वराज्यमें ही तन्मय होनेके कारण सम्भव है, वह इस ओर दृष्टिपात न करते हों।"

मैं इस लेखको पढ़ चुका था, अतः मेरे मनमें गांधीजीके कला सम्बन्धी विचारोंके जाननेकी इच्छा थी, इसलिए गत १५ वीं दिसम्बरको यरवदा-मन्दिर जानेवाली डाकमें मैंने उनसे एक साथ ही कलापर कई प्रश्न कर डाले। २१ दिसम्बरको 'बापू'जीका 'गागरमें सागर'वाली उक्तिको चरितार्थ करनेवाला पत्र मिला। उसमें उन्होंने कलाके सम्बन्धमें जो उद्गार प्रकट किये हैं, उनपर प्रत्येक व्यक्तिको मनन करना चाहिए। हमारे हिन्दी-संसारमें सुरुचिकी कमी और लोगोंकी स्वार्थपरताके कारण कलाका बड़ा ह्रास हो गया है, इसलिए हमारे हिन्दी-पाठकोंको महात्माजीके विचार विशेषरूपसे पढ़ने चाहिए। यहाँ प्रश्न और उत्तर दोनों दिये जाते हैं।

कलाका स्थान और रूप

प्रश्न—"मनुष्यके जीवनमें कलाका क्या और किस रूपमें स्थान है, या होना चाहिए ? सच्ची कला किसमें है ? आज बाज़ारोंमें साहित्य और चित्र-कलामें जो कलाके नामसे पुकारा जाता है, उसमें सच्ची कला कितनी है ? महर्षि टाल्सटायके कला-सम्बन्धी विचारोंपर आपकी क्या राय है ?

संगीत-कलाका जीवनमें महत्त्वपूर्ण स्थान है, ऐसी दशामें इसे प्रत्येक पाठशाला, विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयमें उसे स्थान क्यों न मिलना चाहिए ? यदि मिलना आवश्यक है, तो किस रूपमें ?

सिनेमा आदिमें जो बहनें नटी आदिका अभिनय करती हैं, उनकी मर्यादा क्या हो ? आज उनके अभिनयमें विशुद्ध कला है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

ग़रीब किसान, मज़दूर और नौकरपेशा लोग दिन-भरके परिश्रमके बाद क्या करें, जिससे उनका जीवन सुखमय और कलामय बने ?"

'कर्मसुकौशलम्' ही कला है

उत्तर—"कला-विहीन मनुष्य पशु-समान है, पर कला किसे कहा जाय ? 'कला कर्मसुकौशलम्' हैं। गीताके तीसरे अध्यायका योग, यह सम्पूर्ण कला है। यही बात बाह्य कलापर भी लागू होती है। जिसे करोड़ों ग्रहण न कर सकें, वह कला नहीं, पर स्वच्छन्द है, योग है; फिर भले वह कला कंठकी हो, या कपड़ेकी या पत्थरकी। करोड़ों लोगोंका एक आवाज़से रामधुन चलाना कला है और आवश्यक है। बहुतेरे मन्दिर कलामय हैं और वह कला ऐसी है कि उसे करोड़ों ग्रहण कर सकते हैं। मन्दिरोंमें पूजा-पाठादिका आवश्यकतानुसार श्रद्धापूर्वक होना कलाका नमूना है। यों जहाँ समय, क्षेत्र, संयोगका प्रमाण—खयाल—रखा जाता है; वहाँ कला है। फिल्म मुझे पसन्द नहीं, मैं सिनेमामें कभी गया नहीं।

"×× विचारपूर्वक काम करनेसे उसमें रस पैदा होता ही है। विचारपूर्वक किया गया काम कलामय बनता है। और सच्ची कला सदा रसमय है। कला ही रस है, यों भी कह सकते हैं।

"×× यज्ञमय जीवन कलाकी पराकाष्ठा है। सच्चा रस उसीमें है, क्योंकि उसमें से इसके नित नये झरने झरते हैं। मनुष्य उसे पीते हुए थकता नहीं, झरने कभी सूखते नहीं। जो यज्ञ बोझ-रूप लगे, वह यज्ञ नहीं; खटके वह त्याग नहीं। भोगका परिणाम नाश है। त्यागका फल अमरता। रस स्वतंत्र वस्तु नहीं। रस हमारी वृत्तिमें है। एकको नाटकके पर्दोंमें मज़ा आवेगा, दूसरेको आकाशमें जो नित नये परिवर्तन होते रहते हैं, उनमें मज़ा आवेगा। अर्थात् रस तालीम या अभ्यासका विषय है। बचपनमें रसके रूपमें जिनका अभ्यास कराया जाता है, रसके रूपमें जिनका तालीम जनता लेती है, वे रस माने जाते हैं। एक राष्ट्र या प्रजाको जो रसमय प्रतीत होता है, दूसरे राष्ट्र या दूसरी प्रजाको वह रसहीन लगता है।

'×× सेवामें तो सोलह शृंगार सजाने होते हैं, अपनी समस्त कला उसमें उड़ेलनी होती है, वह है पहली चीज़ और बादमें है अपनी सेवा।"

प्रश्न—"संगीत और चित्र-कला सीखनेसे कौन-कौनसे गुणोंका विकास होता है ? विद्यार्थीके लिए इनका कितना परिचय आवश्यक है ?"

उत्तर—"संगीतसे ईश्वरका ध्यान आसानीके साथ किया जा सकता है। संगीत और चित्र-कला समस्त विश्वकी एक भाषा है। संगीतसे विशेषकर कंठ खुलता है और चित्र-कलासे हाथ या आँख खुलती है। भक्ति-परायणता सीखनेके लिए पर्याप्त हो, इतना इसका परिचय आवश्यक है।"

इस प्रश्नोत्तरके अतिरिक्त गन्धर्व-महाविद्यालयकी 'संगीत-पत्रिका' में गान्धीजीने संगीतके सम्बन्धमें लिखा है—

"एक श्लोकमें कहा है, संगीत-ज्ञानसे शून्य आदमी, अगर वह योगी न हो तो, पशुवत् है। सच पूछा जाय, तो योगी भी संगीतके बिना अपना काम नहीं चलाता। उसका संगीत हृदय-वीणामें से निकलता है, इस कारण हम उसे सुन नहीं पाते। योगी हृदय-द्वारा भगवानका भजन करता है। हम कंठ-द्वारा उसका भजन करें और दूसरे जो इस तरह उसका भजन करते हैं, उसे सुनें। यों करते हुए हम अपने हृदयमें निरन्तर गूँजनेवाले संगीतको सुनने लगेंगे।"

कलाकी एक वस्तु

(कहानी)

अपनी मांका इकलौता बेटा हाशिम डाक्टर खुरशेदके दवाखानेमें आया। वह अपनी बगलमें 'स्टेट्समैन'में लपेटी हुई कोई चीज़ दबाये था। उसे देखकर डाक्टरने कहा—"कहो बरखुरदार! अब कैसे हो? कोई नई बात तो नहीं है?"

"अम्माने आपको सलाम कहा और मुझे आपका शुक्रिया अदा करनेको कहा है," हाशिमने सीनेपर हाथ रखकर उत्तेजना-भरी आवाज़में कहा—"मैं अपनी मांका इकलौता बेटा हूँ, और आपने मेरी ज़िन्दगी बचाई है—मुझे खतरनाक मर्ज़से छुड़ाया है—हम दोनों नहीं जानते कि किस तरह आपका शुक्रिया अदा करें।"

डाक्टरने खुशीसे खिलते हुए कहा—"नौजवान! यही काफ़ी है। मैंने तो सिर्फ वही किया है, जो कोई भी—जो मेरी जगह होता—करता।"

"मैं अपनी मांका इकलौता बेटा हूँ," हाशिमने कहा—"हम लोग ग़रीब आदमी हैं, यह देखकर हमें रंज होता है, हमारा दिल मसोस उठता है कि हम आपकी मेहनतका बदला नहीं दे सकते, इसलिए हम—यानी मैं और मेरी माँ, जिसका मैं इकलौता बेटा हूँ—आपसे यह दरख्वास्त करते हैं कि आप हम लोगोंकी एहसानमन्दीकी यादगारमें इस चीज़को कबूल करें। यह एक पुराने कांसेकी चीज़ है। यह आर्टकी चीज़ है, और बड़ी क़ीमती चीज़ है।"

"इसकी तो दरअस्ल कोई जरूरत नहीं," डाक्टरने मुँह बनाकर कहा—"तुम्हीं बताओ, इसकी क्या ज़रूरत थी?"

"नहीं, नहीं, बराह-मेहरबानी आप इससे इनकार न करें।" हाशिमने बंडलका कागज़ खोलते हुए कहा—"आप इनकार करेंगे, तो मुझे और मेरी मांको बड़ा सदमा पहुँचेगा। यह पुराने कांसेकी मूरत बड़ी उम्दा चीज़ है। इसे मेरे वालिद मरहूम छोड़ गये थे। हम लोग इसे उनकी यादगारमें रखे थे। आप जानते हैं कि मेरे वालिद कांसेकी पुरानी चीज़ोंका रोज़गार करते थे, यानी मौक़ेसे मिलनेपर ऐसी चीज़ें खरीद लेते थे, और फिर उन्हें आर्टके शौक़ीनोंके हाथ मुनाफेपर बेच डालते थे। मैं और मेरी माँ अब भी यही काम करती हैं।"

हाशिमने उस चीज़पर लिपटा हुआ कागज़ अलग करके उसे श्रद्धाके साथ मेज़पर रख दिया। यह एक पुराने कांसेका छोटा, परन्तु बहुत ही कलापूर्ण कारीगरीका बना हुआ शमादान था। इसमें एक सिंहासन पर हज़रते हव्वाकी पोशाकमें (नग्न) दो स्त्रियोंकी मूर्तियाँ थीं। मूर्तियाँ निर्लज्जतासे मुसकरा रही थीं, और उन्हें देखकर यही मालूम होता था कि यदि मोमबत्ती उठानेका भार उनके सिपुर्द न होता, तो वे सिंहासनसे कूदकर कमरेमें ऐसा हुरदंगा मचातीं, जिसके विचार-मात्रसे पाठकोंका मुँह लज्जासे लाल हो जायगा!

इस भेंटकी वस्तुको अच्छी तरह देख-भालकर डाक्टरने अपना कान खुजलाया, कुड़मुड़ाये, नाक साफ की और कहा—"बेशक यह बहुत खूबसूरत है; मगर समझमें नहीं आता कि मैं अपना मंशा तुमसे कैसे ज़ाहिर करूँ? बात यह है—तुम मेरा मतलब समझते हो—यानी यह ज़रा ठीक नहीं है। यह कुछ अश्लीलसा है।"

"मैं नहीं समझता कि आप क्यों ऐसा खयाल करते हैं।"

"अरे भई, दुनियाको बरग़लानेवाला शैतान भी इससे खराब चीज़ नहीं ईजाद कर सकता! ऐसी चीज़को मेज़पर रखना तमाम मकानको नापाक करना है।"

"डाक्टर साहब, आप भी आर्टको किस अजीब निगाहसे

देखते हैं !" हाशिमने ज़रा बिगड़ती हुई आवाज़में कहा—"अजी साहब, यह एक 'मास्टरपीस' है 'मास्टरपीस'। ज़रा इसे ग़ौरसे देखिये। इसमें ऐसी आला दर्जेकी ख़ूबसूरती है, जिसे देखकर दिलमें एक पाकीज़गी महसूस होने लगती है, आँखोंमें आँसू भर आते हैं। जब आप ऐसी ख़ूबसूरतीकी चीज़को देखते हैं, तब थोड़ी देरके लिए तमाम दुनयवी बातें भूल जाती हैं। ज़रा देखिये, कैसा निखार है, चेहरेपर कैसा नूर है !"

"बरख़ुरदार, मैं इसे अच्छी तरह समझता हूँ;" डाक्टरने बात काटते हुए कहा—"मगर मैं बाल-बच्चेदार आदमी हूँ। लड़के-बच्चे बराबर इधरसे उधर दौड़ा करते हैं, मेरे यहाँ अकसर औरतें आया करती हैं—"

"हाँ, अगर आप मामूली—आम जाहिल लोगोंकी—निगाहसे देखें," हाशिमने कहा—"तब तो कारीगरीकी यह नायाब चीज़ बेशक ही दूसरी रोशनीमें दिखाई देगी; मगर डाक्टर साहब, आपको तो मामूली लोगोंकी बनिस्बत ऊँचा होना चाहिए, और इसलिए और भी कि आपके इनकार करनेसे मुझे और मेरी माँको—जिसका मैं इकलौता लड़का हूँ और जिसकी आपने जान बचाई है—बड़ा रंज होगा। हमारे पास जो सबसे क़ीमती चीज़ है, उसे हम आपकी नज़र कर रहे हैं। मुझे इस बातका सख़्त अफ़सोस है कि हमारे पास यह एक ही है, इस शमादानका जोड़ा नहीं है।"

"ख़ैर, तुम अपनी माँसे मेरा सलाम कहना, और कहना कि मैं इसके लिए उनका बहुत एहसानमन्द हूँ; मगर फिर भी, ख़ुदाकी पनाह ! ज़रा तुम्हीं ख़याल करो कि मेरे इस कमरेमें छोटे-छोटे बच्चे बराबर दौड़ा-फिरा करते हैं, मरीज़ा औरतें आया-जाया करती हैं। मगर ख़ैर, इसे रहने दो ! तुम समझानेसे नहीं समझोगे !"

"और इसमें समझनेकी कोई बात ही नहीं है।" हाशिमने ख़ुशीसे कहा—"इसको इधर दाहनी तरफ़, इस गुलदानके पास रख दीजिये। यह बड़ी ही ख़राब बात है कि इसका जोड़ा नहीं है ! अगर कहीं इसका जोड़ा होता, तब तो सोनेमें सुहागा हो जाता ! अच्छा, डाक्टर साहब, आदाब-अर्ज़ !"

हाशिमके चले जानेके बाद डाक्टर देर तक शमादानको देखते रहे और अपना कान खुजला-खुजला कर सोचते रहे।

"शमादान बेशक बड़ी कारीगरीकी चीज़ है। इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता। इसे फेंक देना तो बड़ी बुरी बात होगी; मगर इसे यहाँ रखा रहने देना नामुमकिन है ! हूँ ! अब तो यह बेढब पहेली पैदा हो गई ! इसे मैं किसे नज़रकर दूँ ?"

इस बातपर बहुत देर तक सोचने-विचारनेके बाद डाक्टरको एकाएक अपने वकील मित्र मिस्टर सकसेनाकी याद आ गई। मिस्टर सकसेनाने डाक्टरका एक मुक़दमा कर दिया था, जिसके लिए डाक्टर उनके आभारी थे।

"वाह, यह बात ख़ूब सूझी" डाक्टरने निश्चय किया। "दोस्तीकी वजहसे वे मुझसे मेहनताना नहीं लेते इसलिए यही मुनासिब है कि मैं उन्हें यह तोहफ़ा नज़र कर दूँ। मैं इस शैतानीकी मूरतको लेकर ख़ुद जाऊँगा। हाँ एक और बात भी तो है, मि० सकसेनाने अभी तक विवाह भी नहीं किया है, और वे बड़ी चंचल तबीयतके हैं।"

डाक्टरने बिना क्षण-भर विलम्ब किये, कपड़ा पहना और शमादान लेकर मिस्टर सकसेनाके यहां चल दिये।

"दोस्तमन ! मिजाज़ शरीफ़ ? "डाक्टरने वकील साहबको देखकर कहा। उन्हें इस बातकी ख़ुशी थी कि वकील साहब घर ही पर मौजूद मिले। "भाई जान, आपने मेरे ऊपर जो अहसान किया है, मैं उसका शुक्रिया अदा करने आया हूं। चूँकि आप मुझसे मेहनतानेमें रुपया लेना मंज़ूर नहीं करते, तो कमसे कम मेरे इस तोहफ़ेको क़बूल कीजिए। भाई जान, यह एक आर्टकी चीज़ है, कारीगरीका कमाल है, कमाल !"

शमादानको देखते ही वकील साहब खिल उठे।

"अहा, कैसा ख़ूबसूरत है !" वकीलने हँसते हुए कहा,—"इनपर शैतानकी मार, ये लोग क्या नहीं बना सकते !

बेशक यह लाजवाब अंग्रेज़ है ! कैसा खुशनुमा है ! आपको ऐसी खूबसूरत और नायाब चीज़ कहाँसे हाथ लगी ?"

वकीलने शमादानको मनभरके देख चुकने और उसपर अपनी खुशी ज़ाहिरकर चुकनेके बाद सहमी हुई निगाहसे दरवाज़ेकी ओर देखा, और बोले—"भाई साहब, आप इसे वापस ले जाइये, मैं इसे मंज़ूर नहीं कर सकता।"

"क्यों नहीं ?" डाक्टरने डरकर पूछा—

"क्योंकि यहाँ अकसर मेरी मा आया करती हैं, फिर मुवक्किल आते रहते हैं, और मैं नहीं चाहता कि नौकर-चाकर—"

"नहीं-नहीं, आपको मेरे तोहफ़ेसे इनकार नहीं करना चाहिए।" डाक्टरने हाथ हिलाते हुए कहा—"यह तो एक आर्टकी चीज़ है ! ज़रा देखिये, इसमें कैसा निखार है। चेहरोंपर खयालातका अक्स खिंचा है ! मैं आपका इनकार बिलकुल नहीं सुन सकता ! मैं खफ़ा हो जाऊँगा !"

यह कहकर डाक्टर साहब झपटते हुए वकीलके दरवाज़ेसे निकले और अपने घर चले आये। वे इस बातसे प्रसन्न थे कि उन्हें उस अवांछित भेंटसे छुटकारा मिल गया।

डाक्टरके चले जानेपर वकीलने शमादानको चारों तरफ़से गौरसे देखा। उसे उँगलीसे छुआ भी। अब वे लगे अपना दिमाग़ दौड़ाने कि इस भेंटका क्या किया जाय ?

'चीज़ तो बेशक बड़ी सुन्दर है,' उन्होंने सोचा—'इसे फेंक देना तो बड़ी खराब बात होगी ; मगर इसे अपने घरमें रहने देना भी अनुचित है। ऐसी दशामें सबसे अच्छी बात यही है कि इसे किसीको भेंट कर दिया जाय। मैं इसे आज शामको थियेटरके एक्टर मास्टर रुस्तमके पास ले जाऊँगा। वह अकुआ इस तरहकी चीज़ें पसन्द भी खूब करता है, और आज सौभाग्यसे उसकी 'बेनीफिट नाइट' भी है।'

मिस्टर सक्सेना अपनी बातके पक्के थे। वे शमादानको अच्छी तरह कागज़में लपेटकर उसी दिन शामको थियेटर पहुँचे, और रुस्तमजीको जहाँ फूलोंके गुलदस्तोंकी और अनेकों भेंटे दी गईं, वहाँ वह शमादान भी दिया गया। शाम ही से मास्टर रुस्तमके ड्रेसिंग रूमको लोगोंने घेर रखा था, वे उसे मिली हुई चीज़ोंको देखने आये थे।

खेल खतम होनेपर रुस्तम कंधे बिदकाता हुआ बड़बड़ाने लगा—"मैं इस कम्बख्त चीज़का क्या करूँ ? मैं एक शरीफ़ खान्दानमें रहता हूँ ! एक्ट्रेसें अकसर मुझसे मिलनेके लिए आया करती हैं। यह कोई फोटो या तसवीर तो है नहीं, जिसे अलमारीकी दराज़में छिपाकर रख दिया जाय !"

थियेटरका बैरा रुस्तमको पोशाक उतारनेमें मदद दे रहा था, उसने कहा—"हुज़ूर मैं बतलाऊँ, यहाँ एक बुड्ढी औरत रहती है, हाशिमकी माँ। उसे सभी जानते हैं। वह इन चीज़ोंका रोज़गार करती है। मुझे दीजिए, मैं इसे उसके हाथ बेच आऊँ।"

कोई दो दिन बाद डाक्टर खुरशेद अपनी डिस्पेन्सरीमें बैठे हुए सरपर हाथ रखे नज़ले और ताऊनकी बात सोच रहे थे। एकाएक दरवाज़ा खुला और हाशिम दौड़ता हुआ घुस पड़ा। वह मुसकरा रहा था। उसके तन-बदनसे खुशी फूटी पड़ती थी। उसके हाथमें अखबारके कागज़में लिपटी हुई कोई चीज़ थी।

"डाक्टर साहब !" उसने बिना साँस लिए हुए कहा—"आज मेरी खुशीका ठिकाना नहीं है ! आप बड़े ही खुश-क़िस्मत हैं। हमें आपके शमादानका जोड़ा मिल गया ! अम्मा भी बहुत खुश हैं ! मैं अपनी माका इकलौता लड़का हूँ, और आपने मेरी जान बचाई है !"

हाशिमने कृतज्ञतासे काँपते हुए, डाक्टरके सामने, कागज़से निकालकर शमादान रख दिया। डाक्टरने कुछ कहनेके लिए मुँह बाया, परन्तु वे एक शब्द भी न कह सके। उन्हें मालूम हुआ, मानो उनकी ज़बानको लकवा मार गया हो ! *

* चीखोवकी एक कहानीका मर्मानुवाद।

गहना

श्रीयुत केदारनाथ चटर्जी

गहने या आभूषण उतने ही पुराने हैं, जितनी मनुष्य-जाति। यह बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि हज़रत हव्वा भी हज़रत आदमको और स्वयं अपनी दृष्टिमें खूबसूरत दीख पड़नेके लिए निश्चय ही गहनोंसे बनती-सवरती रही होंगी।

हमारे आदि पुरुष —समारक आदिम मनुष्य भी गहनोंका व्यवहार करते थे, यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है। इतिहासके पूर्व, प्रस्तर-युगके जो चिह्न आज तक संसारमें मिले हैं उनमें उस कालमें भी आभूषणोंका अस्तित्व प्रकट होता है। हाँ, उस समयके गहनोंके लिए पति महाशयोंको चोरी और जालसाज़ी नहीं करनी पड़ती थी और न एक वक्त आधे पेट खाकर गहनेके लिए पैसा ही बचाना पड़ता था। हज़रत हव्वाकी बेटियाँ, चिकने पत्थरके टुकड़ों और विभिन्न जानवरोंकी हड्डियों, नाखूनों और दाँतोंमें छेद करके, उन्हें जानवरोंके बालोंकी बटी हुई डोरी या चमड़ेकी रस्सीमें पिरोकर पहन लेती थीं, और इस प्रकार आभूषित होकर हज़रत आदमके बेटोंको रिझाती थीं।

प्राचीन भारतवर्षमें भी वन और आश्रमवासिनी शकुन्तलाओंको सुनार और जौहरियोंकी सहायताके बिना ही कमल, गुलाब आदिके वृक्ष इतने आभूषण प्रदान कर देते थे, जो पचासों दुष्यन्तोंका हृदय चुरा लेनेमें समर्थ होते थे!

परन्तु धीरे-धीरे, जिस प्रकार ज़माना बदलता गया, उसी प्रकार गहनों और आभूषणोंका स्वरूप, बनावट, आकार और उपादानोंमें महान परिवर्तन होता गया। हड्डियोंके स्थानमें धीरे-धीरे कांसा, पीतल, सोना, चाँदी, प्लैटिनम आदि

पूर्व ऐतिहासिक युग की रमणियोंके आभूषण!

उत्तर भारतका, प्राचीन परिकल्पना (डिजाइन) का एक झुमका।

[illegible] ([illegible]) [illegible] पैरोंमें घुंघरूदार [illegible] और कानोंमें [illegible] — [illegible] कुण्डल है।

[illegible] शताब्द)। गलेमें [illegible] लटकते हैं, [illegible] आभूषण। [illegible] आभूषण [illegible] पहने हैं।

धातुएँ इस्तेमाल होने लगीं और मामूली निरर्थक पत्थरों (उपलों) का स्थान मूल्यवान चमकदार हीरे जवाहरातोंने ग्रहण किया।

वर्तमान कालमें मोटे हिसाबसे आभूषणोंका आकर्षण चार प्रकारके व्यक्तियोंमें पाया जाता है—(१) चोर, डाकू और लुटेरोंमें ; (२) दहेजके नामपर बिकनेवाले वरों और उनके पिताओंमें ; (३) भारतीय रजवाड़ोंमें और (४) संसार-भरकी महिलाओंमें।

इनमेंसे पहले दो प्रकारके व्यक्ति—अर्थात् चोर, डाकू और दहेजू वर—एक ही श्रेणीके हैं। उन्हें गहनेकी बनावट, उसकी सुन्दरता, सुडौल गढ़न और उसकी कारीगरीसे बहुत कम मतलब होता है। किसी गहनेमें कुरूपता बढ़ती है या सुन्दरता, इससे उनका गरज़ नहीं। आभूषण नक़द नारायणका घनीभूत स्वरूप है, वह कलदारका प्रतिनिधि है, इसीलिए उनके प्रति चोरों और दहेजू वरोंको इतना आकर्षण होता है।

हमारे देशी राजा-महाराजोंका आभूषणोंके प्रति जो प्रेम है उसका मुख्य कारण है 'दिखाव' (Show)। वे सर्व-साधारणको अपने वैभवकी ठमक दिखाना चाहते हैं। विशेषकर विदेशियोंपर अपने हीरे-जवाहरातोंकी चमकका प्रभाव जमानेके लिए वे सुरूप और कुरूप आभूषण पहनकर 'दुल-दुल घोड़ी' बने फिरते हैं, इसीलिए महात्मा गांधीने उन्हें 'जवाहरातोंकी टोकरी' के नामसे सम्बोधित किया था।

संसारमें सबसे अधिक 'आभूषण-प्रेम' स्त्री-जातिमें पाया जाता है। यह प्रेम अनादि कालसे चला आता है। उनका
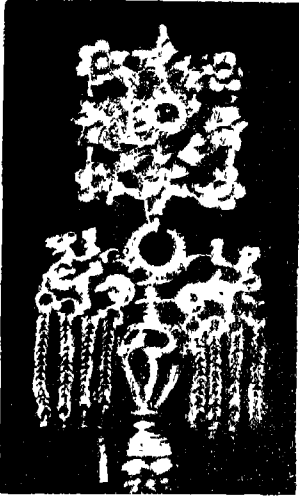
तक्षशिलामें मिला हुआ मणि-खचित सोनेका झुमका। ईसाकी ३री शताब्दि। देखिये डिज़ाइन और बनावट कैसी कारीगरी पूर्ण है।

आभूषण पहननेका उद्देश्य आरम्भमें केवल शरीरका सौन्दर्य बढ़ाना था। हड्डी और पत्थरोंके गहने तथा पुष्पाभरण केवल शारीरिक सुन्दरता हीके लिए थे। परन्तु जैसे जैसे सभ्यताका विकास होता गया और वर्तमान धन-पद्धति तथा सिक्कोंका चलन चला, वैसे वैसे सौन्दर्य-वृद्धिके साथ साथ धन-सामर्थ्य प्रदर्शनकी इच्छा भी मिश्रित हो गई। मानव-स्वभावमें एक दूसरेकी प्रतिस्पर्धा करनेका रोग बड़ा पुराना है। मेरे पास जो चीज़ हो, वह औरोंके पास न निकले — इसी सिद्धान्तके अनुसार गहने हड्डियों और पत्थरोंके समान सुलभ पदार्थोंसे बढ़कर धीरे-धीरे काँसे, पीतल, चाँदी, सोने, प्लैटिनम, चुन्नी, नीलम, मोती, पन्ने, हीरे आदि दुर्लभ पदार्थोंके बनने लगे। निस्सन्देह कारीगरोंकी कारीगरीके विकासके साथ-साथ गहना बनानेके ढंगों और उनके फैशनोंमें भी ज़मीन-आस्मानका अन्तर पड़ गया।

मानव-स्वभावकी यह विशेषता है कि जो चीज़ जितनी ही दुष्प्राप्य होती है, वह उसे उतना ही अधिक चाहता है, और इसीलिए उसका उतना ही अधिक मूल्य होता है।

अजन्ताके आभूषण। ईसाकी छठी शताब्दि।

इसलिए गहनोंके उपादान जितने ही दुष्प्राप्य हों तथा उनकी कारीगरीमें जितनी ही अधिक मेहनत पड़े, वे उतने ही अधिक मूल्यवान होते हैं।

बेशक मनुष्योंमें सुरुचि और सौन्दर्यका ज्ञान भी होता
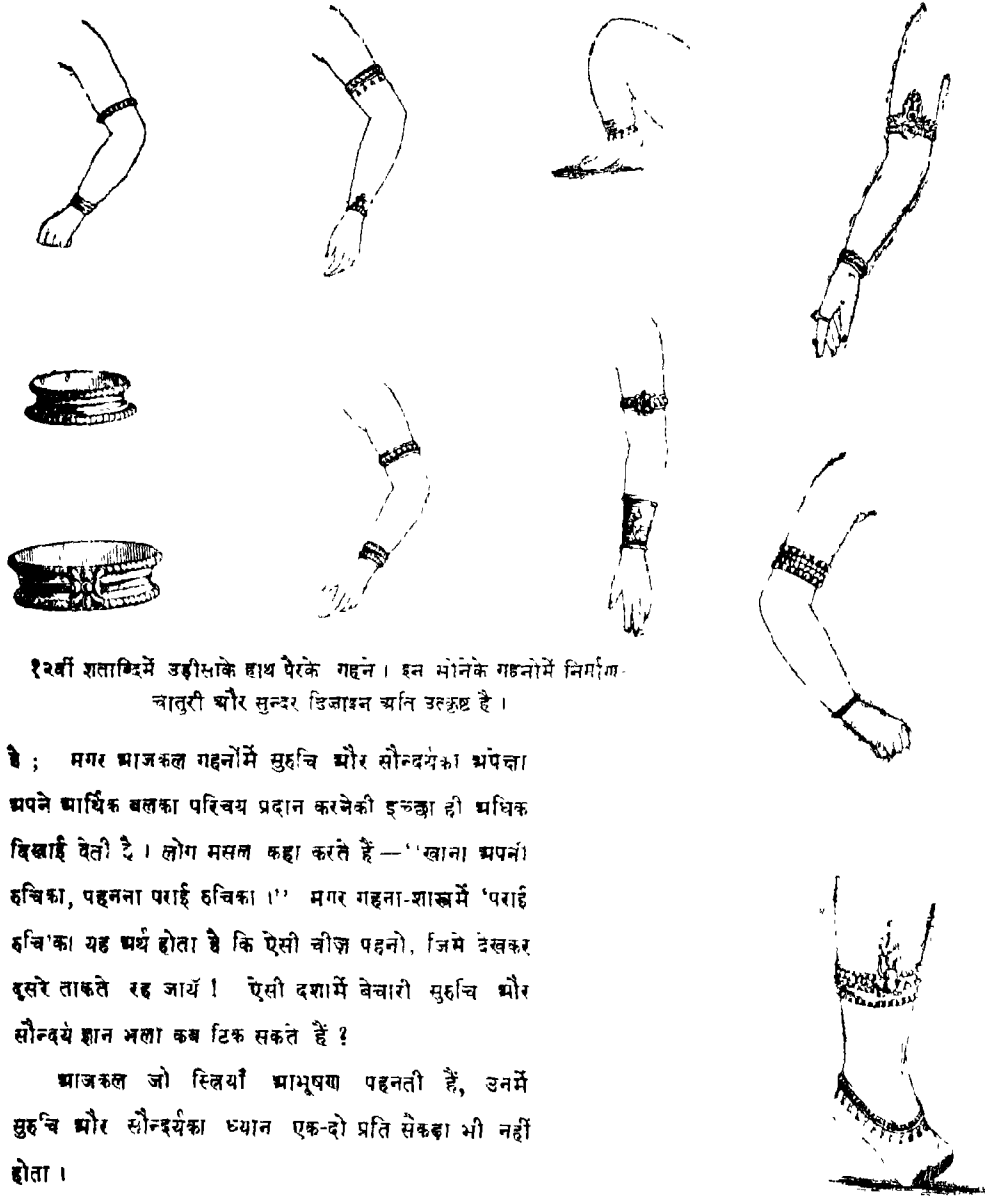
१२वीं शताब्दिमें उड़ीसाके हाथ पैरके गहने। इन भोनेके गहनोंमें निर्माण-चातुरी और सुन्दर डिज़ाइन अति उत्कृष्ट है।

कोनार्क (उड़ीसा) १२वीं शताब्दिके गहने। कंकन, वलय (कड़े) बाजूबन्द, पैजेब और पिंडलीके गहने। रत्नजड़ित और दृढ़-सम्बद्ध

है; मगर आजकल गहनोंमें सुरुचि और सौन्दर्यकी अपेक्षा अपने आर्थिक बलका परिचय प्रदान करनेकी इच्छा ही अधिक दिखाई देती है। लोग मसल कहा करते हैं—"खाना अपनी रुचिका, पहनना पराई रुचिका।" मगर गहना-शास्त्रमें 'पराई रुचि'का यह अर्थ होता है कि ऐसी चीज़ पहनो, जिसे देखकर दूसरे ताकते रह जायँ! ऐसी दशामें बेचारी सुरुचि और सौन्दर्य ज्ञान भला कब टिक सकते हैं?

आजकल जो स्त्रियाँ आभूषण पहनती हैं, उनमें सुरुचि और सौन्दर्यका ध्यान एक-दो प्रति सैकड़ा भी नहीं होता।

किसी समय काँचका बनाना बड़ा दु:साध्य काम था, इसलिए काँचके गहने मूल्यवान् वस्तुओंमें शुमार किये जाते थे। चाणक्यके समयमें 'काँचमणि' नामसे वह सरकारी खज़ानेमें रखी जाती थी; मगर आजकल काँचके गहनेका क्या मूल्य है?

कुछ लोग यह कहते हैं कि जो जवाहरात जितना ही अधिक मूल्यवान होता है, उसमें उतने ही अधिक गुण होते हैं। वे गुण हैं कठोरता और पायदारी। कीमती रत्न बहुत कड़े होते हैं और बहुत दिनों तक स्थित रहते हैं। इसमें सन्देह
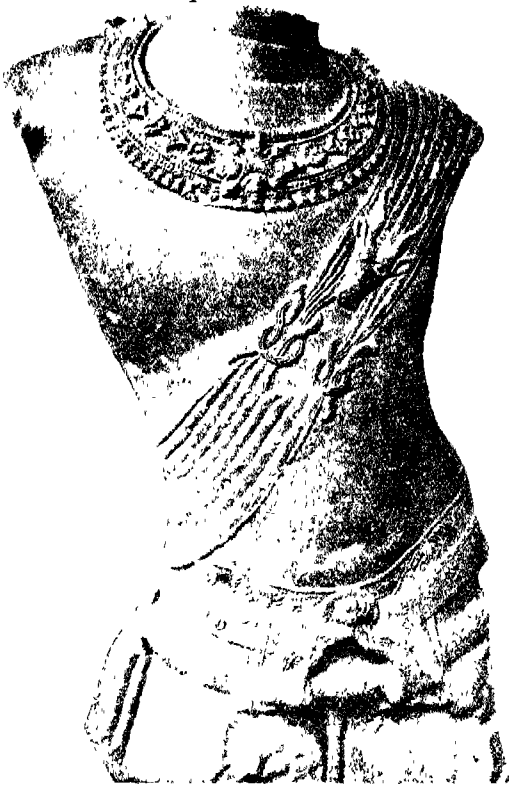
सारनाथ बोधिसत्व (छठी शताब्दि) के गहने। गलेके हारमें चार तरहके 'डिजाइन' हैं। बीचमें मणि-युक्त सुवर्णकी पुष्पमाला है और उसके बीचमें बड़ी जड़ाऊ चकत्ता है और सबसे नीचे मोतीकी मालाके साथ सोनेकी घंटियोंकी कतार है। करधनीमें वक्ररेखायुत कारीगरी। क्या इसे साँचेमें ढलाई और खुदाईका उत्कर्ष न कहना चाहिये ?

नहीं कि हीरे, चुन्नी, नीलम आदिमें गोमेदक, लहसुनिया आदिकी अपेक्षा अधिक चमक, शोभा और कड़ापन होता है। नीलम और चुन्नी एक ही चीज़ है, उनमें केवल रंगका भेद है; मगर चुन्नी अधिक मूल्यवान होती है, उसका आदर अधिक है, क्योंकि वह नीलमकी अपेक्षा दुष्प्राप्य है। इसी प्रकार पुलकमणि (opal) रूप, रंग, चमक और पायदारी आदि सभी बातोंमें मोतीसे बढ़कर है, परन्तु जितने बड़े पुलकमणिका दाम दस रुपये होगा, उतने ही बड़े मोतीका दाम कमसे कम तीस रुपये होगा। कारण यह कि पुलकमणिकी अपेक्षा मोती दुष्प्राप्य होता है।

इस प्रकार आदमियोंने ज़ेवरोंमें काम आनेवाली चीज़ोंकी एक कृत्रिम श्रेणी बना रखी है। इस श्रेणीके अनुसार धातुओंमें सोना और प्लेटिनम उत्तम, चाँदी मध्यम और काँसा पीतल आदि निकृष्ट श्रेणीकी हैं। खनिज पत्थरोंमें हीरेका स्थान सबसे ऊँचा है। उसके बाद चुन्नी, नीलम, पन्ना उत्तम श्रेणीके; लहसुनिया, पुलक, गोमेदक, फीरोज़ा आदि मध्यम श्रेणीके और स्फटिक, लाजवर्द, तामड़ा आदि निकृष्ट श्रेणीके समझे जाते हैं। जानवरोंसे प्राप्त होनेवाले पदार्थोंमें मोती उत्तम; मूँगा, एक विशेष प्रकारके कछुवेकी खपड़ी, हाथी-दाँत और सीप मध्यम तथा शंख, सींग, हड्डी इत्यादि अधम श्रेणीके हैं।

इसके अतिरिक्त अम्बर (Amber) और जेट 'Jet'—एक गहरे काले रंगकी चीज़—इत्यादिकी गिनती भी गहनोंकी श्रेणीमें मध्यम श्रेणीकी समझी जाती है। विदेशोंकी सुसभ्य और एकदम असभ्य जातियोंमें पक्षियोंके पर भी सौन्दर्य-वृद्धिके आभूषणोंमें शुमार किये जाते हैं।

देश और कालके भेदसे गहने-सम्बन्धी रुचिमें काफ़ी अन्तर पाया जाता है। जैसे हमारे देशके पैरके भारी-भारी आभूषणों—यथा कड़े, छड़ा, पाज़ेब, झागल आदि—को यूरोपियन बीबियाँ असभ्यतापूर्ण बेड़ियोंके नामसे पुकारती हैं। दूसरी ओर रंग बिरंगे क़ीमती परोंसे सँवरनेवाली मेमोंको हमारी महिलाएं 'मुर्ग़ीवाली' ही कहकर पुकारेंगी। फिर थोड़े दिन पहले ही हमारे देशमें लटकनेवाले भारी-भारी नथोंका चलन था; मगर आजकल एक पतली-सी सोनेकी 'कील' ही नाकको ख़ूबसूरत बनानेके लिए काफ़ी समझी जाती है।

मगर देश और कालका भेद होते हुए भी काश्मीरकी घाटी और ताजमहलके समान कुछ ऐसी चीज़ें भी होती हैं, जिनका सौन्दर्य स्वाभाविक है और जो प्रत्येक कालमें, प्रत्येक देशके रहनेवालोंको अच्छी लगती हैं।

इस प्रकार सौन्दर्य-विज्ञानके दो अंश हैं; एक तो
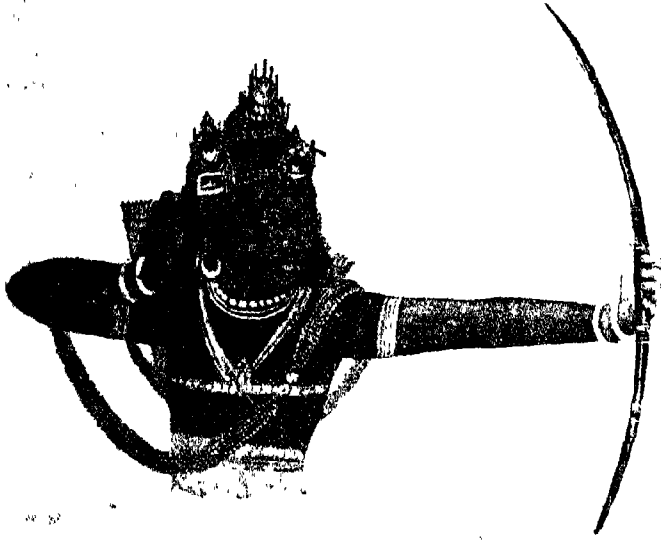
अजन्ता—४वीं शताब्दि। योद्धाके वेशमें कोई राज पुरुष। मुकुटमें बड़ा भारी मणि (मणि या मीना ? मीना ही अधिक सम्भव है) वक्षपर सोनेकी मणि-जटित जंजीर तरकस बाँधनेके निमित्त व्यवहार की गई है।

सभ्य देशोंमें—जहाँ सर्वसाधारणको रूप-रसका ज्ञान है—गहनोंकी अवस्था सुरुचिपूर्ण है। भारतकी वर्तमान अवस्थामें सौन्दर्य ज्ञानकी कमीके कारण हमारे गहनोंकी रुचि विशेष विकसित नहीं हो सकी है।

भारतमें गहनोंके व्यवहारका वर्णन बड़े प्राचीन कालसे मिलता है। ऋग्वेदमें देवताओंके गहनोंका वर्णन लिखा है। रामायण, महाभारत आदिमें कुण्डल, किरीट, वलय आदिके नामोंका उल्लेख है; मगर उनके आकार, आयतन आदिका ब्योरा नहीं है।

अर्थ-शास्त्रमें कई प्रकारके मुक्ता हारोंका विशद वर्णन है, जैसे १,००८ लड़ियोंका इन्द्रच्छन्द हार, उसके आधेका विजयच्छन्द, ६४ लड़ियोंका अर्द्धहार, ५४का रश्मिकलाप, ३२का गुच्छ, २७का नक्षत्रमाला, २४का माणवक इत्यादि। इसी प्रकार अन्य अनेकों हारोंका वर्णन है। अर्थ-शास्त्रसे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय जड़ियोंके काममें दो प्रकारका सोना होता था; एकमें दस भाग सोनेमें चार भाग चाँदी और ताँबा होता था (१७ कैरट) और दूसरेमें आधा सोना, आधा ताँबा रहता था (१२ कैरट)।

अर्थ-शास्त्रके निर्माण-कालमें भारतमें गहनेकी कारीगरोंने काफ़ी उत्कर्ष प्राप्त कर लिया था, यद्यपि उस समय उनका आयतन कुछ पुराने ढंग ही का था। उस समय खुदाई, घिसाई और पच्चीकारी आदिमें यहाँके कारीगरोंने आश्चर्यपूर्ण निपुणता प्राप्त कर ली थी, यह बात पिपरवामें मिले हुए एक पात्रसे प्रत्यक्ष हो जाती है।

ईसाकी प्रथम शताब्दिसे लेकर सप्तम शताब्दि तक यहाँ अनेकों गहने प्रचलित थे, उनमें से कुछ तो विशुद्ध देशी ढगके थे और कुछ विदेशी—ग्रीक, गांधार, पार्सी आदि—प्रभावयुक्त। इस बीचमें धीरे-धीरे गहनोंकी आकृति और आकार बहुत

स्वाभावजात और दूसरा किसी क़दर क्रम-विकसित। यह दूसरा अंश, लोगोंके सौन्दर्यके अभिज्ञान (Perception of Beauty), उसकी मात्रा, सूक्ष्मता और उसके सम्बन्धी मतों (Degree, fineness, creed) पर निर्भर करता है।

गहनोंके क्षेत्रमें सौन्दर्य-ज्ञान और रूप-रस-ज्ञानके साथ-साथ एक और भी ज़हरीला पदार्थ मिला रहता है। वह है धनका गर्व। यह धनका गर्व आसानीसे सभी देशोंके शिल्पकी अवनति कर सकता है। यह तो सभी जानते हैं कि बिना धन-बलके गहना गढ़ाना असम्भव है, साथ ही बिना धनी खरीदारोंके किसी भी शिल्पीको गहनेका काम करना सम्भव नहीं है। यह भी सभी बुद्धिमान व्यक्ति जानते हैं कि धन-बल और सौन्दर्य-ज्ञान सदा साथ-साथ नहीं पाये जाते, इसलिए केवल धनियोंकी रुचिके अनुसार परम्परागतके गहने बनानेके सिवा कारीगरोंको दूसरा चारा ही नहीं है। साधारणत: समाजमें गहनेकी कारीगरीकी अपेक्षा उसके मूल्यकी अधिक क़दर होती है।

अमरावती। ईसासे पूर्व दूसरी शताब्दि। गहनोंके आदिम 'डिजाइन' और उनका बाहुल्य।

अमरावती। स्थूल गहने और उनका बाहुल्य आदिम असम्स्कृत रुचिका निदर्शन। ईसाके पूर्व २री शताब्दि।

अजन्ताके चित्रोंमें भारतीय गहनोंका नौ सौ वर्षोंका (ईसाके पूर्व दूसरी शताब्दिसे लेकर ईसाकी सातवीं शताब्दि तक) इतिहास अंकित है। इन चित्रोंमें अंकित गहने केवल दक्षिणकी कारीगरीके ही नमूने नहीं हैं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय शिल्पकलाके उदाहरण हैं, क्योंकि साँची और भरहुतमें प्राप्त मूर्तियोंमें भी ठीक उसी प्रकारके गहनोंकी सजावट दिखाई देती है।

आरम्भिक काल (ईसाके पूर्व दूसरी शताब्दिसे ईसाकी पहली शताब्दि तक) के गहने अधिक मोटे और भारी थे, और उनमें महीन कारीगरीके अपेक्षा बृहत् आकार और निराली गठन ही अधिक दिखाई पड़ती है; मगर मालूम पड़ता है कि वे पीतल, कांसेके या सोनेके पत्तरके पोले होते होंगे, क्योंकि ठोस सोनेके होनेसे वे बहुत अधिक भारी हो जायँगे।

कुछ परिमार्जित हो चुके थे। अब उनके वज़नकी अपेक्षा उनकी कारीगरीपर विशेष ध्यान दिया जाने लगा था। उस कालके अजन्ताके चित्रों तथा मथुरा, उड़ीसा आदिके मूर्ति-शिल्पपर, एक ही अंगमें पहने जानेवाले गहनोंमें नाना प्रकारकी परिकल्पना (डिज़ाइन) और रचना दिखाई पड़ती है।

इन गहनोंका रूप और बनावट आदि हमें अजन्ता, बाघ आदि गुफाओंकी दीवारोंपर अंकित मूर्तियोंमें दिखाई पड़ती हैं। उसी कालके बने हुए अन्य मन्दिरोंकी मूर्तियोंमें भी उस समयके गहनेका आभास मिलता है। उस समय निस्सन्देह भारतका यह शिल्प संसारके तत्कालीन सभ्य देशोंकी अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचा था। यह बात उस समयके बैज़न्टाइन शिल्पियोंके--जो उस समय यूरोपके सर्वश्रेष्ठ कारीगर थे--गहनोंको देखनेसे प्रत्यक्ष हो जाती है।

एकतारा

चित्रकार—श्री नन्दलाल बसु

एकतारा
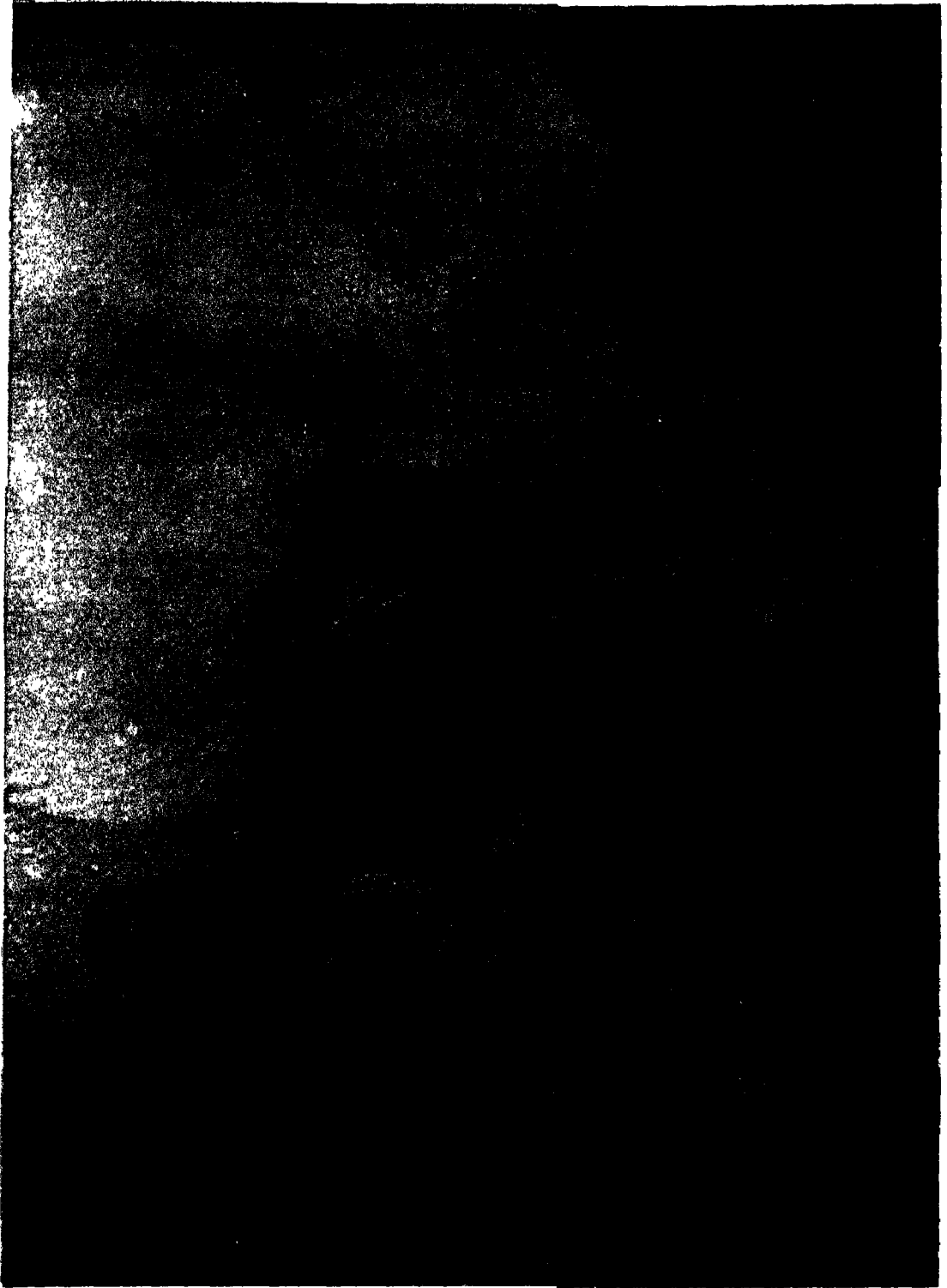
चित्रकार—श्री नन्दलाल बसु
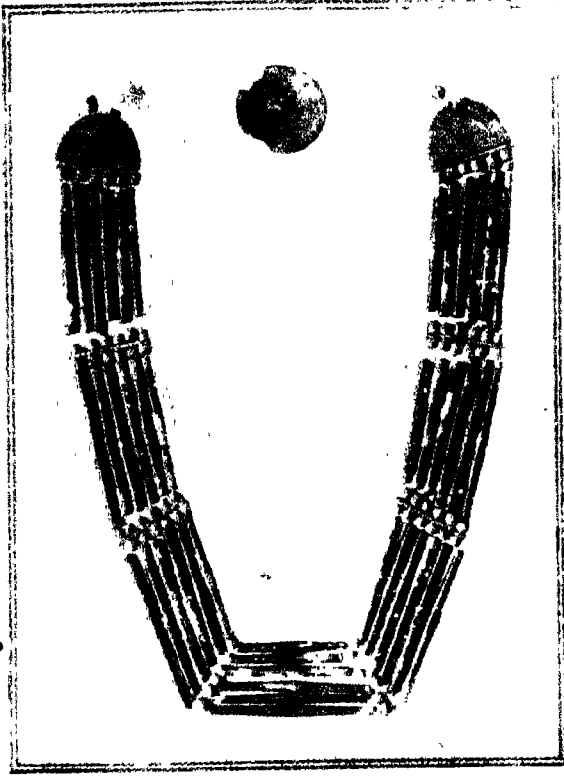
महेन-जो-दड़ोमें निकले हुए भारतके सबसे प्राचीन गहने।
ऊपर कर्णफूल, नीचे स्वर्ण-खचित उपरत्नोंका हार

थे, फिर उन्होंने धीरे धीरे राज्य जमाना आरम्भ किया। बस, उसी समयसे भारतीय शिल्प तेज़ीसे अवनतिकी ओर अग्रसर होने लगा। इसके दो कारण हुए एक तो विदेशियोंकी लूट-मारसे देशमें उत्कृष्ट कारीगरीकी वस्तुओंका—जो आदर्शका काम देती थीं—अभाव हो गया, दूसरे शिल्पको प्रोत्साहन देनेवाले राजा ही न रहे। जिन नये आक्रमण-कारियोंने राजमुकुट धारण किया था, उनकी लूट-खसोट और नाश करनेकी ही शक्ति प्रबल थी। फल यह हुआ कि गहनेके शिल्पमें आदिम कालके दोष पुनः आ गये। भारतका यह शिल्प—जिसकी बराबरी करना वर्तमान कारीगरोंको भी मुश्किल है—असमय ही में नष्ट हो गया।

दक्षिण-भारत और लंकामें विदेशियोंका दौर-दौरा बहुत बादमें हुआ, इसलिए सत्रहवीं शताब्दि तक वहाँके शिल्पमें प्राचीन भारतीय शिल्पकी झलक मिलती है। हाँ, उस

उड़ीसा, दशवीं शताब्दि। अशोक-वृक्ष कुचलती हुई एक युवती।

दक्षिण (या सिंहल) की स्वर्णमय रुद्राक्ष-माला और मणि-खचित पदक, १८वीं शताब्दि

छातीका आधुनिक गहना। पेरिस फ़ैशन। मूगा, मोती, हीरा और 'ओनिक्स' (एक कम क़ीमती उपरत्न) का बना हुआ।
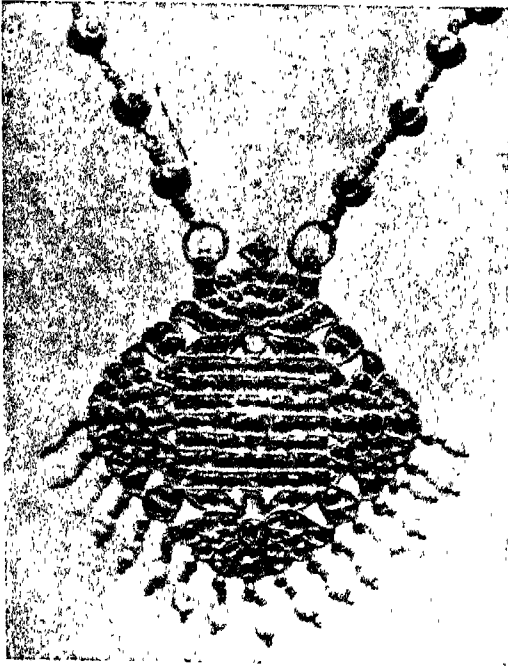
समय वहाँके शिल्पमें कुछ विशेष जान नहीं रह गई थी। वह पुरानी परम्पराका अनुकरण-मात्र था। यही नहीं, बल्कि कहीं-कहीं विदेशी प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगा था।

मध्य युगके भारतीय गहनोंके बहुत कम उदाहरण अब मौजूद हैं, इसलिए उनका आभास तत्कालीन चित्रों और मूर्तियों आदिसे ही लगाया जा सकता है। इस कालके दक्षिणके गहनोंमें प्रायः तेरहवीं शताब्दिका अनुकरण मिलता है। हाँ, मदुरा, रामेश्वरम् आदिके मन्दिरोंकी मूर्तियोंमें दो-एक नये गहने—जैसे जाँघपर पहननेका गहना, कर्णाभरण और नाकके आभूषण—नये दिखाई देते हैं। इसी युगके उत्तर-भारतके गहनोंमें नवीनता, विशेषता या विशुद्ध सौन्दर्य ज्ञान—इनमें से किसीका भी परिचय नहीं मिलता।

मध्य युगके चित्रोंसे उस समयके गहनोंका कुछ आभास मिलता है; मगर चित्रोंमें अधिकांशके शिल्पियों और उनके समयके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है, इसलिए कोई बात निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती।
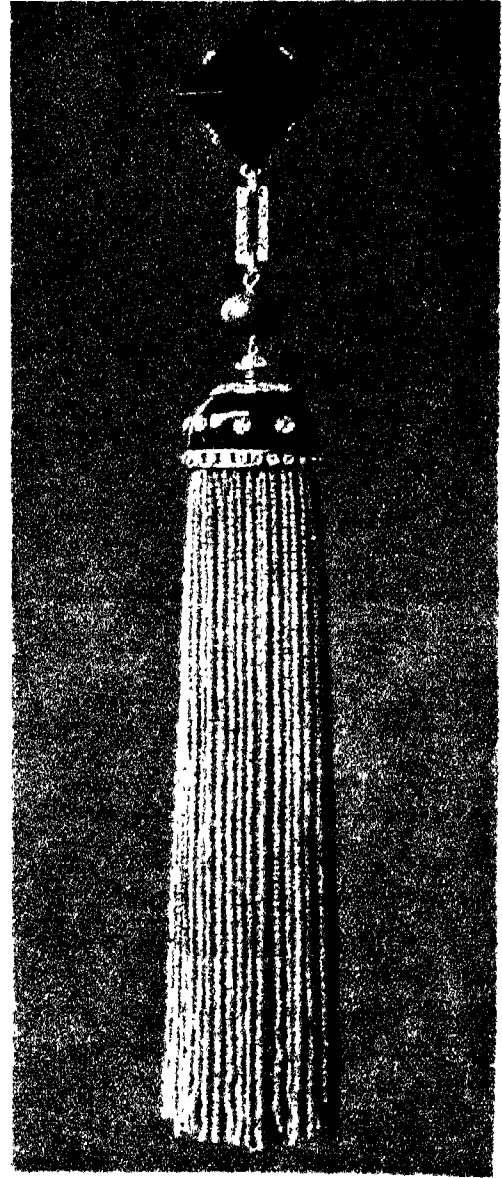
मुग़ल-समयके कुछ प्रामाणिक ग्रन्थोंमें अलबत्ता ऐसे
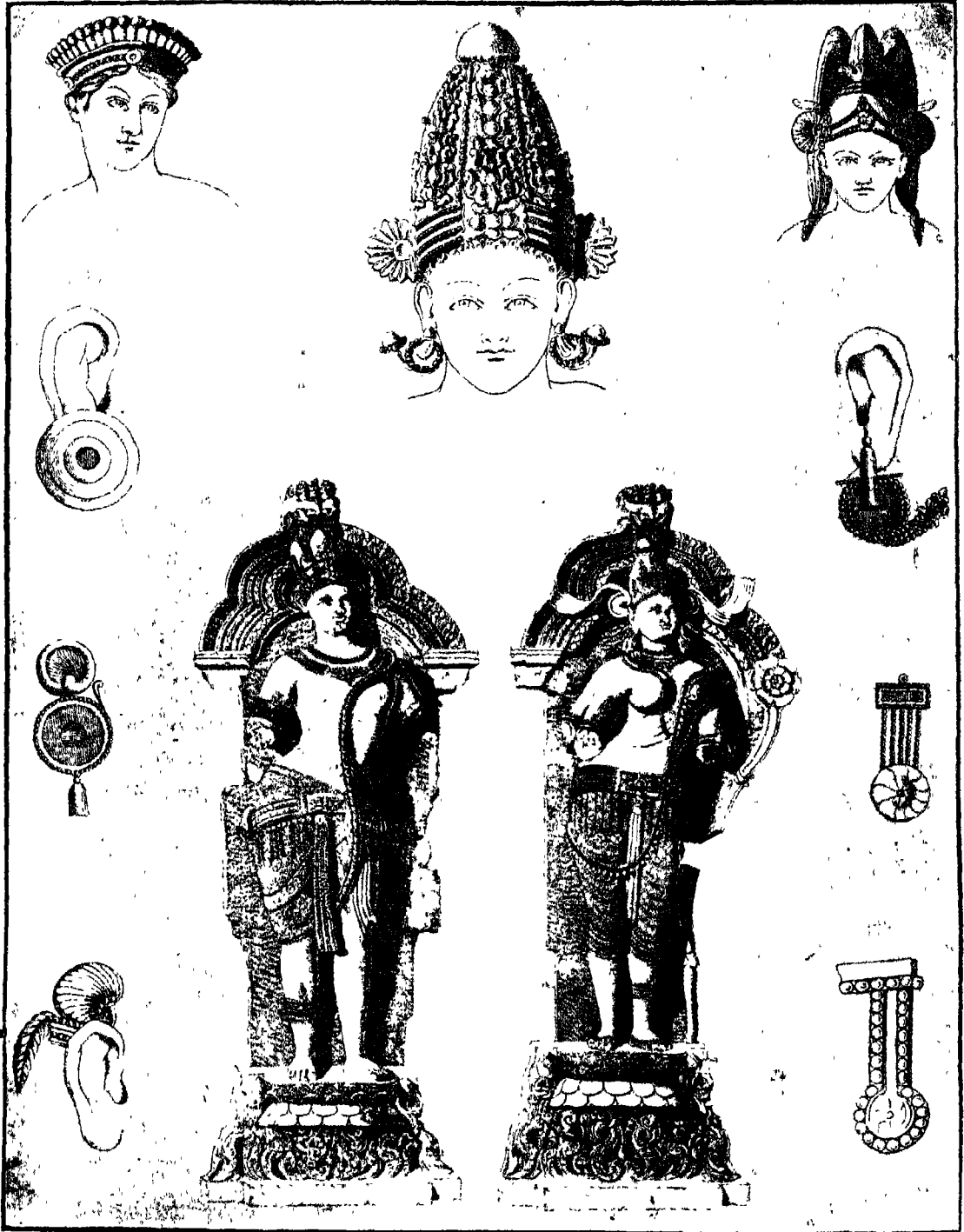
उड़ीसाके १२वीं शताब्दिके, शिर और कानके गहने। पुरुष और स्त्रियों—दोनों—की गहनोंकी सजावट। ये आभूषण भारतीय गहना-शिल्पके सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं।

चित्र मिलते हैं, जिनमें गहनोंके सम्बन्धमें बहुत-कुछ मालूम हो सकता है। इन ग्रन्थोंके चित्रोंसे मालूम होता है कि जहांगीरके शासनके प्रथम भाग तक भारतीय गहनोंपर विदेशी प्रभाव बहुत कम पड़ा था। रज्मनामा (महाभारतका फ़ारसी अनुवाद) के चित्रोंसे मालूम होता है कि ठेठ हिन्दू स्टाइलके हार, कंकन, बाजूबन्द आदि उस समय तक प्रचलित थे। राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) के विवाहके चित्रमें भी विदेशी गहनोंका अभाव ही दीख पड़ता है। जहांगीरके समयमें गहनोंपर विदेशी प्रभाव विशेषकर दृष्टिगोचर होने लगा था।

दिल्लीकी बनी हुई पहुंची।

इटलीकी बनी हुई पहुँची।

नाकके गहने भारतीय नहीं हैं। मालूम होता है कि वे यहूदियों और मुसलमानोंके यहाँसे भारतमें आये हैं। यहूदियों और 'मिडियानाइट' जातिमें उनका इतना प्रचार था कि पुरुष तक नाकमें गहना पहनते थे! इसका उल्लेख डि किन्सीकी 'हिब्रू महिलाका शृंगार' नामक पुस्तकमें है। फिर नाकके गहनेके लिए जो शब्द हमारे यहाँ प्रचलित हैं, वे अधिकांशमें फ़ारसी और अरबी शब्दोंसे उत्पन्न हैं।

'अमरकोष' नामक ग्रन्थमें प्रत्येक अंगके गहनोंका वर्णन है, परन्तु नाकके गहनोंका उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार 'अर्थशास्त्र' में शरीरके अन्य आभूषणोंमें नासिकाका नाम नहीं है। श्रीयुत एन० बी० दिवाटिया नामक सज्जनका कथन है कि संस्कृत-साहित्यमें कहीं भी नाकके भूषणका वर्णन नहीं मिलता। अजन्ताके चित्रों तथा भरहुत, साँची, अमरावती, एलोरा, बुद्धगया, मथुरा, सारनाथ, उदयगिरि कोनार्क आदि स्थानोंकी मूर्तियों और भास्कर्य शिल्पमें भी कहीं नाकका गहना नहीं दिखाई देता, यद्यपि अन्य अंगोंके गहने प्रचुरतासे मिलते हैं। 'आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ़ इंडिया' की पुस्तकों तथा अन्य पुरातत्त्ववेत्ताओंकी पुस्तकोंमें जिन मूर्तियोंके चित्र मिलते हैं, उनमें कहीं नाकके गहनोंका आभास भी नहीं है।

इसके अतिरिक्त, प्राचीन हिन्दू चित्रोंमें और यहाँ तक कि रज्मनामा और राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) के विवाह-सम्बन्धी चित्रोंमें भी—जो हिन्दू शिल्पियोंके बनाये हुए हैं—नाकका गहना नहीं है। जहांगीरके समयके बादके चित्रोंमें नाकके गहने दिखाई पड़ते हैं।
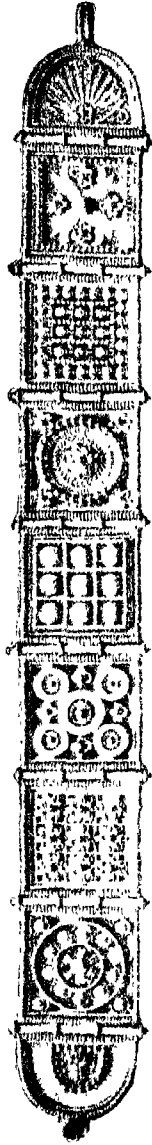
मिश्र, फिलिस्तीन, अरब और फ़ारस आदि देशोंमें नाकके गहने प्राचीन कालसे प्रचलित थे। प्रसिद्ध फ़ारसी चितेरे शापुरके बनाये हुए मुहम्मद तुग़लक़की राजसभाके चित्रमें औरतोंकी नाकमें गहना दिखाई पड़ता है।

१७वीं और १८वीं शताब्दिके गहनोंका कुछ वर्णन मानुचिकी 'Storia Do Mogor' में पाया जाता है। उसमें दक्षिण देशके कानोंके गहनोंके लिए केवल इतना कहा है कि कानोंके छेद बहुत बड़े होते हैं। उसमें नाकके गहनोंका ज़िक्र नहीं है। मानुचिने नाना प्रकारके हार, गुलूबन्द, करधनी आदिका वर्णन किया है।

इससे यह मालूम होता है कि नाकके आभूषण यहाँ मुसलमानों द्वारा प्रचलित हुए हैं।

ख़ैर, जो कुछ हो, यह बात निश्चय है कि सत्रहवीं शताब्दिमें हमारे देशमें मुग़ल तथा मुसलमानी गहनों और मुसलमानी डिज़ाइनोंका यथेष्ट प्रचार हो गया था। उस समय देशमें बहुतसे नितान्त विदेशी अलंकार घुस आये—जैसे बुलाक़, बेज़न्टाइन झुमके—और बहुतसे ऐसे अलकारोंका जन्म भी हुआ, जिनकी कल्पना मुसलमानी थी।

मुग़लोंकी राजधानी दिल्ली गहना-शिल्पका केन्द्र हो गई, और वहाँके शिल्पियोंने लाहौर और जयपुर जाकर उन स्थानोंको भी गहने, जवाहरात तथा मीनाकारीके कामका केन्द्र बना दिया।

दक्षिणमें मदरास, सिंहल और महाराष्ट्रमें पूना आदि कई स्थानोंके गहनोंमें हिन्दू-प्रभाव अधिक दिन तक वर्तमान रहा; कारण यह था कि इन स्थानोंमें हिन्दुओंका राज अधिक दिन तक रहा था। दक्षिणमें विजयनगर सबसे समृद्धिशाली राज था, मगर उसे मुसलमान विजेताओंने ऐसी बुरी तरह नष्ट किया कि उसकी शिल्प-कलाके चिह्न भी मिट गये।

अठारहवीं शताब्दिमें मुसलमानी राजके पतनसे देशमें ऐसी अराजकता फैली, जिसमें कलाकी नई वस्तुओंकी सृष्टि तो प्रायः पूरी ही सी हो गई, साथ ही जो-कुछ पुराना बचा था, वह भी विदेशी लुटेरोंके हाथ पड़कर यहाँसे प्रस्थान कर गया।
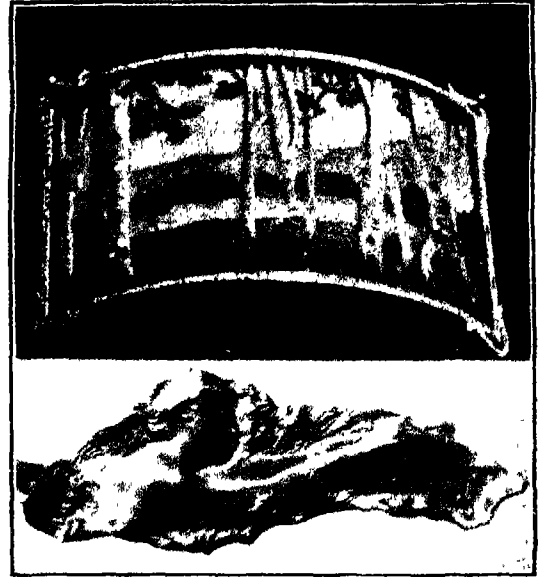
आधुनिक जर्मनीके गहने। ऊपर—मीनाकारी द्वारा चित्रित 'ब्रासलेट' नीचे—सोनेमें खुदी हुई रमणी मूर्तिके आकारका 'ब्रूच'

दिल्ली तथा अन्य प्रान्तीय राजधानियोंमें मुसलमान शासकोंके संचित रत्नाभूषण सुदूर अफ़ग़ानिस्तान और फ़ारस तक बिखर गये।

मुग़ल-साम्राज्यके नाशके बाद, छोटे छोटे राज्योंमें जो कुछ बची-खुची विभूति रह गई थी, उसे यूरोपियन बनियों और लुटेरोंने साफ़ कर दिया। उन्होंने देशकी कलाका दोहरा नाश किया—एक तो लूट पाट करके और दूसरे अपने विदेशी प्रभावके प्रचारसे। इस अन्तिम बातने तो बड़ा घातक धक्का पहुँचाया है। यूरोपियन शासनमें हमारे गहना-शिल्पकी सबसे अधिक अवनति हुई है।

आदिमें कोई विशुद्ध हिन्दू गहना-शिल्प था या नहीं, अथवा उसपर सीरिया या मोकका प्रभाव पड़ा या नहीं, और यदि पड़ा, तो कहाँ तक—आदि बातें ऐसी हैं, जिनपर कुछ कहना कठिन है। हाँ, हम यह कह सकते हैं कि अजन्ताके समयसे लेकर कोनार्क और भुवनेश्वरके समय तक या उससे भी अधिक काल—पन्द्रहवीं शताब्दि—तक इस
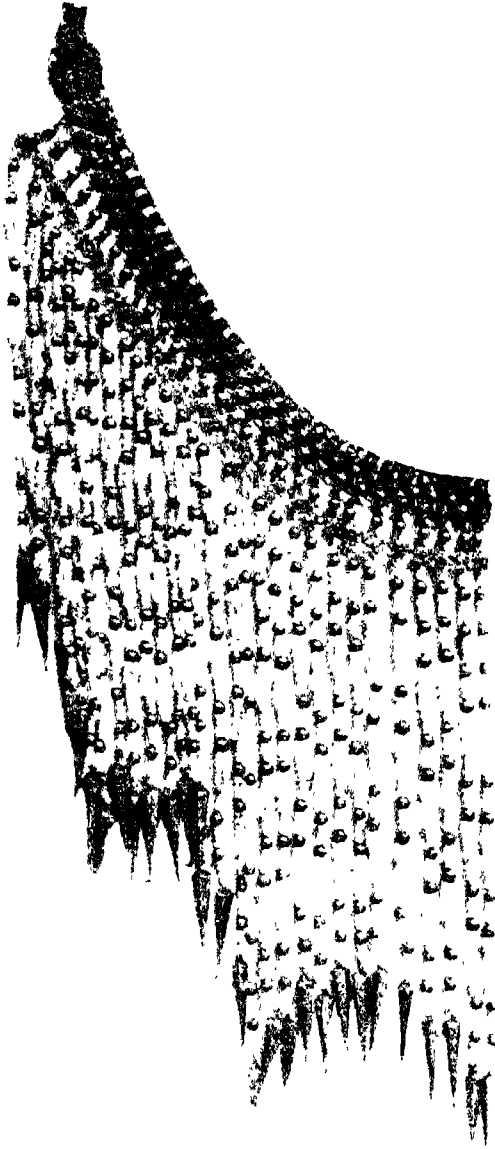
बर्माका चन्द्रहार। सोना और मोती। विशुद्ध हिन्दू गहनेका विदेशी संस्करण।

आधुनिक विलायती गहना और उसके पहननेकी पद्धति।

देशमें आभूषणोंकी एक प्रणाली प्रचलित थी, जिसकी कारीगरी, बनावट, गढ़न, परिकल्पना और शिल्प-कौशल आदि सभी बातें हमारे इसी देशके कारीगरोंकी उत्पन्न की हुई थीं।

मुग़ल-कालमें भी गहनोंकी कुछ उन्नति हुई, यद्यपि उनकी कला विशुद्ध हिन्दू न रह सकी, मगर शाहजहाँके बादसे उसकी फिर अवनति होने लगी और दोनों ही चली गई।

इस समय भारतमें जो गहने प्रचलित हैं, उनमें हिन्दू, मुसलमान, यूरोपियन आदि कलाओंकी निराली खिचड़ी है।

आजकल किसी नये फैशनके धनी परिवारकी स्त्रियोंके बालोंमें सोनेका कंघा (पुराने विलायती ढंगका बना हुआ) होता

बर्माका स्वर्णहार । विशुद्ध हिन्दू-गहनेका विदेशी संस्करण।

प्राचीन बौद्धयुगका हार

है । कानमें यहूदियोंकी बिजली या 'इयरिंग' (एंग्लो इंडियन) या 'टप' (डाप —एंग्लो इंडियन) या बुन्दे—मुसलमानी झुमके—होते हैं। नाकके जितने गहने हैं, वे सब मुसलमानी हैं। आजकल महिलाएँ गलेमें नेकलेस (पुराने विलायती, परत्यक्त ढंगकी बनी हुई), मोतियोंका या सोनेका गुलूबन्द (विलायती) या विलायती चेन पहनती हैं।

बाँहके ऊपरी भागका भुजबन्द हिन्दू-गहना है, परन्तु वह आजकल अकसर मुसलमानी ढंगका बनता है। ताग़ा, टाडिया और अनन्त भी हिन्दू गहने हैं, परन्तु आजकलके 'डायमन्ड कट' ने उनका भी सत्यानाश कर दिया है।
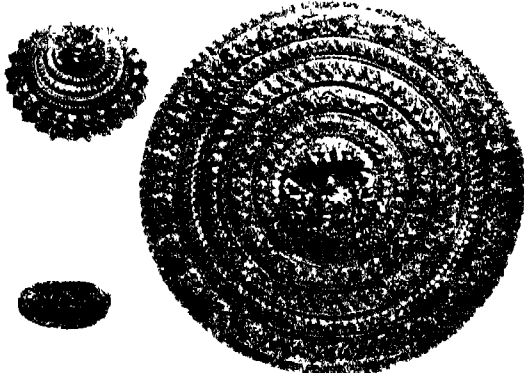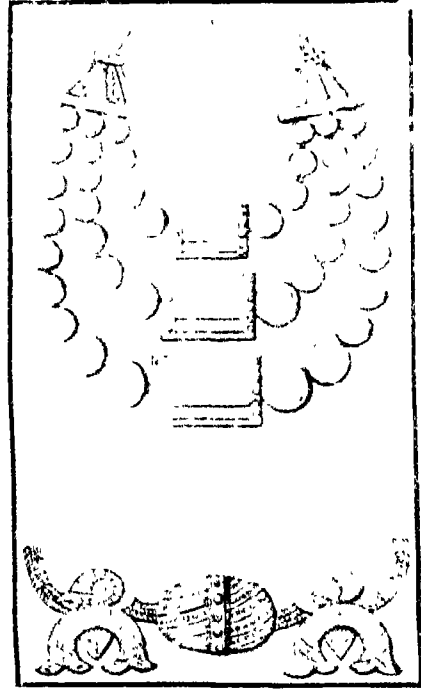
अंगूठी और शीश फूल । बम्बई

कलाईपर ब्रासलेट और डायमन्ड कटकी चूड़ियाँ (६० वर्ष पहलेके विलायती ढंगकी बनी हुई) और कड़ा होता है। कड़ा हिन्दू गहना है ; मगर नई गढ़नने उसे भी विशुद्ध नहीं रहने दिया।

अंगुलियोंमें विलायती 'पैटर्न' की अंगूठियाँ होती हैं।

नये फैशनकी रमणियोंकी कमर सूनी होती है अथवा उसमें धनाढ्यताका परिचय देनेवाली मोटी, भद्दी, बाबा आदमके समयकी कारीगरीवाली, मिश्रित जातीय करधनी होती है। कमरके हिन्दू-गहने बड़े सुन्दर हुआ करते थे।

पैरमें अब बहुत कम गहने पहने जाते हैं। पैरकी छागल बहुत पुराना हिन्दू-आभूषण है।

यदि जड़ाऊ गहना हुआ, तो उसका प्रत्येक नग यूरोपियन ढंगसे कटा हुआ होता है।

दिल्लीका जड़ाऊ झुमका। सोना, मोती और कोणहीन मणियोंका संयोजन

पेरिसके एकदम नये फैशनका गहना। मूल्यवान और कममूल्यके उपकरणोंका बना हुआ। (Fibule-onyx, aquamarine and brilliants)
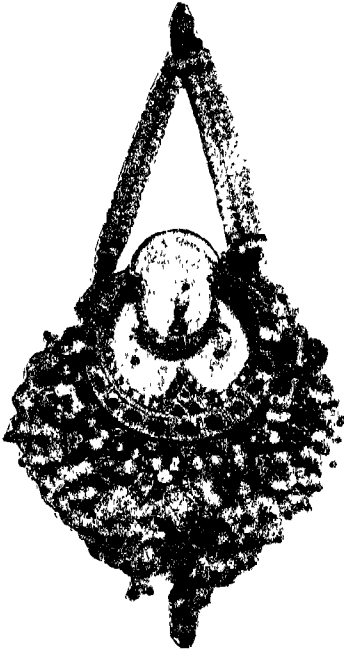
इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कपड़ोंके बनाव-कटावमें भारतीय पुरुषोंका फैशन जितना अधिक विदेशी है, गहनोंके गढ़ावमें भारतीय स्त्रियोंकी रुचि उससे कहीं बढ़कर विदेशी है।

इस प्रकार चौदहवीं शताब्दीसे बराबर भारतके आभूषण-शिल्पका ह्रास ही होता रहा। मुग़ल-शासनकालमें अरब, तातार, फारस आदिके गहने यहाँ प्रचलित हुए; यहाँके कारीगरोंने उन विदेशी गहनोंकी प्रणाली ग्रहण कर ली, परन्तु उन्होंने कभी उनके शिल्पकी मौलिकतापर अधिकार करनेकी चेष्टा नहीं की। वे केवल अन्ध-अनुकरण ही करते रहे, इसलिए उनके शिल्पमें उन्नति नहीं हो सकी। आजकल तो प्रत्येक बातमें यूरोपियन फैशनका बोल-बाला है। मगर उसमें भी हमारे शिल्पियोंको सफलता प्राप्त नहीं है; बात यह है कि एक तो विदेशी शिल्प हमारी प्रकृतिके विरुद्ध है दूसरे हमारे यहाँ शिल्पकी इतनी अवनति हो चुकी है कि मौलिकता तो दरकिनार, अब हमारे कारीगर ठीक-ठीक अनुकरण भी नहीं कर सकते।

इस अवनतिका बहुत बड़ा कारण यह है कि जन-साधारणमें रूप-रस-ज्ञानकी बहुत कमी हो गई है। आजकल लोग मूल्यपर अधिक ध्यान देते हैं, सौन्दर्यपर नहीं। बहुतेरे लोग समझते हैं कि हीरे-जवाहरातसे सौन्दर्यका कोई सम्बन्ध ही नहीं! इसीलिए जड़े हुए गहनोंमें अधिकांश भद्दे, बदसूरत और आँखमें गड़नेवाले होते हैं। पुराने हिन्दू गहनोंमें जो रत्नादि व्यवहृत होते थे, उनका व्यवहार सौन्दर्यकी दृष्टिसे होता था, और आजकल जो रत्नादि व्यवहृत होते हैं, उनका व्यवहार 'लोक-दिखावे के लिए होता है।

कला

श्रीयुत श्यामसुन्दर खत्री

अयि कला ! प्रकृति-दर्पण तू,
जननी तू सुन्दरताकी ।
तू कल्प-वल्लरी जगकी,
गरिमा, तू मनुष्यताकी ॥

जब प्रथम जगतमें सुखकी
तृष्णा मचली, इतराई ।
उसका दुलार करनेको
तू स्वर्ग-लोकसे आई ॥

ज्यों-ज्यों वह गई मचलती,
त्यों-त्यों तूने भी सादर,
दीं एक एक-से बढ़ कर,
नित नूतन भेंट मनोहर ॥

अक्षय भंडार न तेरा
हो सका अभी तक खाली ।
नित नव आविष्कारोंकी
तू सजा रही है डाली ॥

उस चतुर कुशल शिल्पीकी
रचना जो अखिल प्रकृति है ;
त्यों कला ! सुन्दरी, तू भी
निर्बल मनुष्यकी कृति है ॥

वे मूक भावनाएँ जो,
अन्तस्तल में सोती हैं ;
तेरा ही रूप ग्रहणकर,
जगकर मुखरित होती हैं ॥

मानव उरकी सब साधें,
तेरी छविमें अंकित हैं ।
आशाएँ, अभिलाषाएँ,
तुममें ही प्रतिबिम्बित हैं ॥

यद्यपि तू है अवलम्बित
कुछ तुच्छ उपादानोंपर ;
पर सुखकर, व्यापक, मोहक
शिव, सत्य और तू सुन्दर ॥

तू व्याप रही है जगमें,
अगणित रूपोंको धर कर ।
सब ओर दिखाई देता,
तेरा ही कान्त कलेवर ॥

जीवन—संचालन तक है
तेरे आश्रयपर निर्भर ।
सौन्दर्य-सृजन करता है
तेरा संस्पर्श मनोहर ॥

शुचि शिल्प चित्र हियहारी
संगीत काव्य-रस-प्याले ।
अगणित खेलोंमें तेरे
हैं ये कुछ खेल निराले ॥

होती अनुभूति मनुजको,
जो कुछ ज्ञानेन्द्रिय द्वारा ।
उसकी उत्तमतामें है
तेरा प्रत्यक्ष सहारा ॥

जो खोल रहस्य प्रकृतिके
हरता है विश्व-अन्धेरा ।
वह नव विज्ञान-विभाकर
अद्भुत-कर्मा शिशु तेरा ॥

माया तव महा-महिम है
करती अमृतत्व सुवर्षण ।
तेरी सीमाके भीतर
होता असीमका दर्शन ॥

यदि कला ! नहीं तू होती
रहती कल्पना अधूरी।
कैसे अपूर्ण जीवनकी
इच्छाएँ होतीं पूरी ?

होती न विश्वमें तेरी
यदि पूर्ण प्रतिष्ठित सत्ता।
देवोपम मनुष्यताकी
रह जाती कौन महत्ता ?

सम्बन्ध कलासे जिनका
वे सार्थक-जीवन नर हैं।
जो कला-विमुख, वे क्या हैं ?
जड़ हैं, पशु हैं, बर्बर हैं !

तुझको लखकर अन्तरसे,
उद्गार निकल यह आता—
यदि शक्तिमान नर होता,
तो क्या-क्या कर दिखलाता !

नर दास परिस्थितिका है
उसकी कितनी क्षमता है ?
प्रेरणा बिना उस प्रभुकी,
क्या वह कुछ कर सकता है ?

जो निखिल सृष्टिका स्वामी,
जड़-चेतनका निर्माता,
शिल्पीके घटमें बैठा,
तेरा भी वही विधाता ॥

बम्बई आर्ट स्कूलके
श्री 'कलाब्धि' की एक ड्राइंग

वर्तमान हिन्दी-पत्रोंमें चित्र

श्रीयुत राय कृष्णदास

'विशाल-भारत' के सम्पादककी आज्ञा है कि आजकलके हिन्दी-पत्रोंमें प्रकाशित होनेवाले चित्रोंके विषयमें मैं कुछ कहूँ, अतएव उसका पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ—

इस समय हिन्दीके जितने भी मासिक पत्र हैं, वे—एक-दोको छोड़कर—सभी सचित्र हैं ; किन्तु मेरी समझमें, कहीं अच्छा होता, यदि उनमें एकआधके सवा बाकी अचित्र ही होते। क्योंकि चित्र देना उनका एक रिवाज-मात्र हो उठा है। उन चित्रोंमें मैं किसी प्रकारकी सुरुचि, कला या भावाभिव्यक्ति नहीं पाता। इसका कारण यह नहीं हो सकता कि हमारे यहाँ उपयुक्त कलावन्त नहीं हैं। मैं तो यही कहूँगा कि हमारा सम्पादक-वर्ग लोकरुचिका निर्म्माता न बनकर अपने पत्रको लोकप्रिय बनानेके लिए उसका अनुगामी बना हुआ है।

राष्ट्रको जिस प्रकार अन्य शिक्षाकी आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार निगाहकी शिक्षाकी भी। और, ऐसी शिक्षा कमसे कम उस समय तक, जब तक कला-तत्त्वका अध्यापन विश्वविद्यालयोंमें जारी नहीं होता, सुरुचि-सम्पन्न सम्पादक ही दे सकते हैं। पत्रिकाएँ, सच पूछिये तो, विद्यालयोंसे बढ़कर शिक्षाका साधन हैं।

अतएव आवश्यकता है इसकी कि सम्पादक समुदाय अपने पत्रोंको चित्रित करना केवल एक प्रथा न समझे, बल्कि उसे अपने पत्रका एक जीवित अंग समझे—जो यदि अपना कार्य ठीक-ठीक न कर सके, तो सारा शरीर विकृत हो जाय। यदि व्याजस्तुति न समझी जाय, तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि 'विशाल-भारत' को वे इस विषयमें अपना आदर्श बनावें ; क्योंकि 'प्रवासी' और 'माडर्न-रिव्यू' से सम्बद्ध होनेके कारण उसे बड़ा लाभ यह है कि अच्छेसे अच्छे चित्रकारोंके चुने हुए चित्र उसमें निकलते रहते हैं।

शायद मुझपर यह आक्षेप किया जाय कि मैं ठाकुर-शैलीके उन चित्रोंका गीत गा रहा हूँ, जिसमें लम्बे-लम्बे डाँगर हाथ-पाँव और टेढ़े मेढ़े अंग-प्रत्यंग बनाना ही शिल्पी अपना कौशल समझते हैं ; किन्तु ऐसा विचार अयोग्य है। जो लोग ऐसा समझते हैं, वे उस कलाके तीसरे ही नहीं, चौथे, पाँचवें, बल्कि छठे दर्जेके उदाहरण लेकर उसपर विचार कर रहे हैं। किसी शैलीकी केवल रीति (टेकनीक) सीखकर ही कोई कलावन्त नहीं हो सकता। कलावन्त वही होता है, जिसके हृदय है। अतएव ठाकुर-शैलीके ऐसे सहृदय चित्रकारोंके काम लेकर विचार कीजिए, तो मानना पड़ेगा कि उसमें पूर्ण-मात्रामें कला है। इतना ही नहीं, इस हिन्दू संस्कृतिके पुनरुत्थान-युगमें वही कला ऐसी है, जो हमारे देशकी कलाका पद प्राप्त कर सकती है, और ऐसा हो भी रहा है—बंगाल, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, राजपूताना, गुजरात और मदरासके प्रधान प्रधान चित्र-विद्यालयोंके अध्यक्ष श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके शिष्य या प्रशिष्य ही हैं। केवल बम्बईके आर्ट-स्कूलके प्रधान उनके सम्प्रदायके नहीं हैं, किन्तु वे वहाँ जिस शैलीकी शिक्षा दे रहे हैं, उसमें बहुत कुछ विदेशीपन होनेपर भी उसका बीज वही है, जिसे ठाकुर महोदयने अपनी सुरुचिके अनुसार पल्लवित किया है। मेरा तात्पर्य अजन्ताके भित्ति-चित्रोंसे है। अंगोंका सौकुमार्य और भावभंगी दिखानेके लिए वहाँके अमर चित्रकारोंने जो मोड़ मुरक निर्धारित किये थे, अथवा नेत्रोंमें आध्यात्मिक या अन्य भाव व्यक्त करनेके लिए उन्होंने जिस विशेष रीतिसे अंकन किया था, उसे ठाकुर महोदयने समसामयिकता प्रदान

करके अपनी शैलीकी रचना की है। ऐसा करनेमें उन्होंने राजपूत और मुग़ल-क़लमोंकी कुछ विशेषताएँ, चीन-जापानकी रीति (टेकनीक) और व्यक्त करनेकी परिपाटी (मोड ऑफ् एक्सप्रेशन) अवश्य अपनाई है, किन्तु उक्त कलाकी आत्मा पूर्णतः भारतीय है। और अब तो उसकी रीति और व्यंजना-प्रणाली भी निजी हो गई है, और उसका काफ़ी विकास भी हो चुका है।

इस कला पर तरह-तरहके आक्षेप किये जाते हैं, ऊपर भी इसका ज़िक्र हो चुका है ; किन्तु जैसा मैं कह चुका हूँ, इसका एकमात्र कारण यही है कि आलोचक-समुदाय उसकी उत्तम कृतियाँ लेकर विचार नहीं करता। यदि ब्रज-भाषाकी कविताकी निरख-परख कोई सूर, बिहारी देव या पद्माकरके बदले इतर कवियोंकी रचना लेकर करना चाहे, तो उसका परिणाम क्या होगा ?

अतएव मैं इन पंक्तियों-द्वारा सम्पादकोंसे प्रार्थना करूँगा कि यदि वे इतर चित्रकारोंके झमटमें न पड़कर ठाकुर-शैलीके अच्छे चित्रकारों और विद्यार्थियोंके चित्र प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दें, तो उनकी पत्रिकाओंकी कोटि भी उच्च हो जाय और पाठकोंकी सुरुचि भी बनने लग जाय।

हर्षका विषय है कि लखनऊकी 'माधुरी' और 'सुधा' इस सम्बन्धमें कुछ-कुछ अग्रसर हो रही हैं।

साथ ही प्राचीन चित्रोंका प्रकाशन भी पत्रिकाओंका एक प्रधान आकर्षण हो सकता है, किन्तु आजकल प्राचीन चित्रोंके नामसे जो रद्दी-खुद्दी और बनावटी मसाला, हमारे पत्रोंमें प्रकाशित हो रहा है, उसका तो तात्पर्य यही है कि हमारी प्राचीन कला केवल हास्यास्पद हो जाय।

प्रकाशित चित्रोंका थोड़ा उपयोगी परिचय भी देना आवश्यक है, जिससे दर्शकोंको उनकी विशेषताएँ मालूम हो सकें। कितने ही पत्र प्रकाशित चित्रोंके विषयमें या तो कुछ लिखते ही नहीं, यदि लिखते भी हैं तो उसे एक पहेली-सी बना डालते हैं।

प्रार्थना

श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

प्राणोंकी वीणापर छेड़ो ऐसा एक महासंगीत,
लीन तुच्छ तानें जीवनकी हों जिसके व्यापक स्वरमें।

जिसमें मलिन प्रभा दीपोंकी लय हो जावे अपने-आप,
ज्योतिर्मय ! आलोक निरंजन भर दो ऐसा इस घरमें।

एक अमर सौन्दर्य बसा दो मेरे नयनोंमें, उरमें,
क्षणिक रूपके कण खो जावें जिसकी छविके सागरमें।

क्षुद्र कामनाएँ मैं अपनी जिसमें लय कर दूँ सारी,
ऐसा महानुराग जगा दो मंगलमय ! इस अन्तरमें।

संगमरमरकी मूर्ति

(कहानी)

बुड्ढेपर चोरीका मुकदमा था, और अदालतने उसे एक वर्षकी सजा दे दी। उसके विरुद्ध काफ़ी सबूत था, वह मकानके भीतर घुसा हुआ पकड़ा गया था; मगर फिर भी अदालतमें उसका व्यवहार तथा जिस परिस्थितिमें उसने जुर्म किया था—ये सब मुझे कुछ विचित्र-से जान पड़े। मुझे उसके अपराधी होनेका सहसा यकीन न हुआ। ऐसा मालूम हुआ, मानो उसके अपराधमें कुछ रहस्य है, इसलिए मैंने जेलके सुपरिन्टेन्डेन्टसे इजाज़त लेकर उससे भेंट की। पहले तो उसने यह कहकर कि उसे मुझसे कोई सरोकार नहीं है, मुझसे बात करनेसे इनकार कर दिया; परन्तु अन्तमें समझाने-बुझानेसे उसने अपने जीवनकी कथा बताई।

"आपका यह खयाल ठीक है।" उसने साँस भरकर कहा—"कि मैंने अच्छा ज़माना भी देखा है। आजकल मैं जिस तरह बे-घर-द्वारके, फटे हाल, दर-दर मारा फिरता हूँ और शराबखानेके दरवाज़ेपर रात-रात-भर पड़ा रहता हूँ, हमेशासे ऐसा नहीं था। मुझे अच्छी शिक्षा मिली थी—मैं एक इंजीनियर था। जवानीके दिनोंमें मेरे पास कुछ पैसा भी था, और मैं ऐश-आरामकी ज़िन्दगी बिताता था। रोज़ ही शामको नाच-रंग, दावतें और थियेटर हुआ करते थे तथा बोतलें ढलती थीं। मुझे उस ज़मानेकी अच्छी तरह याद है—छोटी छोटी बातें तक। मगर इस याददाश्तका सिलसिला एकाएक टूट जाता है। मेरी स्मृतिमें एक बड़ा भारी गड्ढा पड़ गया है! आह, इस गड्ढेको भरनेके लिए मैं अपने व्यर्थ जीवनका बाक़ी हिस्सा दे डालनेको तैयार हूँ। मैं केवल यह चाहता हूँ कि मुझे नलिनीके सम्बन्धकी सारी बातें याद आ जायँ।

"हाँ साहब, उसका नाम नलिनी था—नलिनी इसका मुझे पूरा निश्चय है। वह बाल-विधवा थी। उसका भाई रेलवेमें एक छोटा मुलाज़िम था। वे ग़रीब आदमी थे, परन्तु ओह, वह कैसी होशियार थी! वह अपनी होशियारीसे अपनी दरिद्रावस्थाको भी कैसा परिष्कृत, कैसा सुन्दर बनाये थी। वही घरका खाना बनाती थी, फिर भी उसके हाथ देखो तो मालूम:हो, जैसे संगमरमरके ढले हों। उसके कपड़े सादे और ग़रीबाऊ होते थे; मगर वह उनपर अपने हाथसे ऐसी दस्तकारी करती थी कि वे एक आश्चर्यजनक रूपसे जान पड़ते थे, उसके सम्पर्कमें आकर रोज़मर्राका यह संसार एक विचित्र ही ढंगका हो जाता था! स्वयं मैं भी उससे मिलकर कुछका-कुछ हो जाता था। उसके सामने मैं पहलेसे बहुत भला हो जाता था और जीवनकी समस्त क्षुद्रताओं और नीचताओंको ऐसे दूर कर देता था, जैसे कोई कपड़ेपर पड़ी हुई मेंहकी बूँदोंको फटकारकर अलग कर दे।

"वह मुझसे प्रेम करती थी, ईश्वर उसे इस पापके लिए क्षमा करे। उसके जीवनके चारों ओरकी परिस्थिति ऐसी ख़राब ऐसी नीरस, ऐसी कठोर थी कि वह बेचारी उससे ऊबकर मजबूरन मेरे प्रेममें पड़ गई। उस समय मैं नवयुवक था और मुझे कितनी ही कविताएँ कंठस्थ थीं। पहले-पहल मुझसे उससे कैसे भेंट हुई—यह बात अब मुझे बिलकुल ही याद नहीं आती। जब याद करनेकी कोशिश करता हूँ,तो हृदयके अन्धकारसे निकलकर पृथक्-पृथक् चित्र आँखोंके सामने खिंच जाते हैं। देखिए, यह याद आता है कि एकबार हम दोनों थियेटरको गये थे। अहा, वह कैसी प्रसन्न, कैसी आनन्दित थी! (वह जीवनमें बहुत-कम आनन्दित होती थी।) वह तमाशेका एक-एक शब्द पान कर रही थी और मेरी ओर देखकर मुसकरा रही थी।…… मुझे उसकी मुसकराहट याद है। उसके बाद हम दोनों किसी-न-किसी स्थानपर मिल जाया करते

थे। वह मेरे कंधेपर अपना सर झुकाकर दुख-भरी आवाज़में कहती थी—'मैं जानती हूँ कि तुम मुझे बहुत दिनों तक सुखी न कर सकोगे, परन्तु कोई हर्ज़ नहीं। इतनेसे ही ही मैं अपना जीवन सार्थक समझती हूँ। मैं इतने से ही सन्तुष्ट रहूँगी।' मुझे उसके यह शब्द अच्छी तरह याद हैं; परन्तु बादमें क्या हुआ, क्या नलिनीको सचमुच ही सन्तोष प्राप्त हुआ, मुझे मालूम नहीं!

"बेशक, मैंने ही उसे त्यागा! यह बात मुझे बिलकुल स्वाभाविक-सी जान पड़ती है। मेरे सभी साथी प्राय: ऐसा ही करते थे। वे किसी-न-किसी सधवा-विधवा स्त्रीस प्रेमका प्रपंच रचते, फिर उसे दूर फेंक देते थे। मैंने भी वही किया, जो और सब करते हैं। मेरे मनमें उस समय कभी भी यह बात उत्पन्न नहीं हुई कि मैं कुछ अनुचित काम कर रहा हूँ। किसीका रुपया चुराना, अपना कर्ज़ न अदा करना अथवा किसीकी चुगली करना—ये सब बातें बहुत खराब हैं; परन्तु किसी स्त्रीसे प्रेम करके उसे छोड़ देना, तो दुनियाका एक तरीका है। उस समय मेरे सामने एक उज्ज्वल भविष्य था, मैं किसीके प्रेमके बन्धनमें नहीं बँध सकता था। यद्यपि उसे त्यागना बहुत कष्टप्रद था, परन्तु मैंने उसपर विजय प्राप्त की। इस पीड़ाको काबूमें लानेका दृढ़-निश्चय करनेपर मुझे ऐसा मालूम होने लगा, मानो मैंने कोई बड़ा तप सिद्ध किया हो।

"बादमें मैंने सुना कि नलिनी अपने भाईके साथ दक्षिण चली गई, और थोड़े ही दिन बाद मर गई! उस समय उसकी स्मृति मुझे ऐसी कष्टप्रद मालूम होती थी कि मैं उसके सम्बन्धकी सभी खबरोंसे दूर रहता था। मैंने इस बातकी चेष्टा की कि मैं उसके सम्बन्धकी कोई बात भी न सुनूँ और उसका ध्यान भी मनमें न आने दूँ। मेरे पास उसकी कोई फोटो नहीं थी। मैंने उसकी सब चिट्ठियाँ उसे लौटा दी थीं। किन्हीं ऐसे व्यक्तियोंसे मेरी जान-पहचान भी नहीं थी, जो उसे भी जानते हों। इस प्रकार हृदयमें अंकित नलिनीकी मूर्ति धीरे धीरे लुप्त हो गई। आप यह सब समझते हैं? धीरे-धीरे मैं उसे भूल गया—एकदम भूल गया उसका चेहरा, उसका नाम और उसका समस्त प्रेम। ऐसा मालूम होने लगा, मानो मेरे जीवनमें उसका कभी अस्तित्व ही न था। आह, मनुष्यमें भूल जानेकी क्षमता भी कैसी लज्जाजनक बात है!

"बरसे बीत गईं। मैं यह नहीं कहना चाहता कि मैंने किस प्रकार अपना जीवन बनाया। नलिनीके बिना मैं केवल ऊपरी चीज़ों और धन-सम्पत्तिकी ही बातें सोचता था। एक समय तो ऐसा जान पड़ने लगा, मानो मुझे सांसारिक सफलता प्राप्त हो गई हो। मैंने ठेके लिए, मैं हजारों रुपया खर्च कर सकता था, देश-विदेश घूम सकता था। मैंने विवाह किया, मेरे बच्चे हुए; परन्तु अन्तमें सब विफल हुआ! मेरे ठेकोंमें बड़ा लम्बा घाटा लगा। मेरी स्त्री मर गई! मैं अकेला रह गया और मेरे ऊपर बच्चोंका भार आ पड़ा। मैंने उन्हें अपने रिश्तेदारोंके यहाँ भेज दिया और भगवान मेरे अपराधोंको क्षमा करे, अब मुझे यह भी पता नहीं है कि वे मर गये या ज़िन्दा हैं। आप यह अन्दाज़ आसानीसे लगा सकते हैं कि मैं शराब पीने और जुआ खेलने लगा हूँगा। मैंने एक एजेन्सी खोली, परन्तु वह भी असफल हुई, और मेरी अन्तिम कौड़ी और शक्ति उसमें समाप्त हो गई। मैंने जुएसे इस कमीको पूरा करना चाहा, फल यह हुआ कि जेल जाते-जाते बचा। मेरे मित्रगण मुझसे फिर गये और मेरा पतन आरम्भ हो गया।

"धीरे धीरे गिरते-गिरतेमें उस दशाको पहुँच गया, जहाँ आज आप मुझे देखते हैं। मैं भले आदमियोंके समाजसे निकलकर बड़े गहरे गड्ढेमें जा गिरा। मुझे भला कौन भलामानस अपने पास फटकने देता? मेरे कपड़े महामैले कुचैले रहते थे, और मैं हर वक्त शराबके नशेमें। पिछले कई सालसे मैं इधर-उधर कारखानोंमें मज़दूरी करता हूँ। मैं महीनों तक शराब नहीं पीता और अपना काम करता हूँ, परन्तु फिर जब शराबकी धुन सवार होती है तब फिर मैं चकलोंके बाज़ार और अवारागर्दोंके अड्डोंमें दिखाई देता हूँ। मैं

जिन लोगोंसे मिलता-जुलता हूँ, उनसे मैं आन्तरिक घृणा करता हूँ और सोचा करता हूँ कि एकाएक मेरा भाग्य बदल जाय और मैं एक बार फिरसे धनवान और भला आदमी हो जाऊँ। मैं आशा किया करता हूँ कि कदाचित् कोई धनी रिश्तेदार बहुत-सा रुपया छोड़कर मर जाय और मैं उसका उत्तराधिकारी हो जाऊँ, यद्यपि मेरा इस प्रकारका कोई रिश्तेदार नहीं है। कभी-कभी अपने साथियोंसे इसलिए भी घृणा करता हूँ कि उन लोगोंको इस प्रकारकी कोई आशा नहीं है !

"खैर, एक दिनमें जाड़े और भूखसे काँपता हुआ एक तरफ़ फिर रहा था। सामने एक धनीकी अट्टालिका और बाग था। मैं नहीं जानता कि क्यों मैं अचानक उस बाग़में चला गया। उसी समय एक घटना घटी। मकानके भीतरसे रसोइयेने आवाज़ देकर पूछा—'क्यों जी, तुम लुहार तो नहीं हो ?' मैंने जवाब दिया—'हाँ, मैं लुहार ही हूँ, कहो क्या काम है ?' उसे एक मेज़की दराज़का ताला ठीक कराना था। मैं एक खूब सजे हुए कमरेमें ले जाया गया। मेरे चारों ओर सोने-चाँदीका सामान और तसवीरें थीं। मैंने तालेकी मरम्मत शुरू की और उसे ठीक कर दिया। घरकी मालकिन एक वयस्क भद्र महिला थीं। उन्होंने मुझे मजदूरीमें एक रुपया दिया। मैं रुपया लेकर चलने ही को था कि इतनेमें सहसा मेरी दृष्टि एक छोटे-से स्तम्भपर पड़ी। उसपर एक संगमरमरकी मूर्ति स्थापित थी। मालूम नहीं क्यों, पहले तो मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मुझे बेहोशी आ रही हो। मैं उसकी ओर ताकने लगा, मुझे विश्वास हुआ कि वह मूर्ति नलिनीकी थी !

"जनाब मैं आपसे सच कहता हूँ कि मैं नलिनीको बिलकुल भूल गया था। उस क्षण खास तौरपर यह बात मेरी समझमें आई कि मैं दरअसल नलिनीको बिलकुल ही भूल गया था। एकाएक उसकी आकृति मेरी आँखोंके सामने तैरने लगी, मेरी आत्मामें गड़ा हुआ भावनाओं, स्वप्नों और विचारोंका एक समूचे संसारका संसार सहसा जाग्रत होकर सजीव हो उठा। मैं सारे शरीरसे काँपता हुआ उसे देखने लगा। मैंने कहा—'श्रीमती, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि यह मूर्ति किसकी है ?' 'ओह, यह मूर्ति' उस महिलाने जवाब दिया—'यह बड़ी क़ीमती चीज़ है, यह पाँच सौ वर्ष पुरानी, पन्द्रहवीं शताब्दीकी है।' उसने मुझसे मूर्तिकारका नाम भी बताया, परन्तु मैं उसे सुन नहीं सका। उसने बताया कि उस मूर्तिको उसके पति जयपुरसे लाये थे, और उसके सम्बन्धमें जयपुर-दरबारसे बहुत लिखा पढ़ी भी हुई थी। मैं मूर्तिकी ओर ताक रहा था, इसपर उस महिलाने कहा—'क्या, तुम्हें यह सुन्दर मालूम पड़ती है ? तुम्हारी भी कैसी निराली रुचि है ! देखते नहीं हो, उसके कान अपने स्थानपर नहीं हैं, नाक भी बेतुकी-सी है !.......' वह यह कहकर चली गई।

"मैं झपटकर बाहर निकला, मुझे ऐसा मालूम होता था, मानो मेरा दम घुट रहा था। नलिनी और उस मूर्तिमें समानता ही नहीं थी, बल्कि वह सचमुच नलिनी ही की मूर्ति थी। बिलकुल यही जान पड़ता था, मानो असली नलिनी संगमरमरकी हो गई है। ज़रा बताइये कि वह कौनसा जादू, कौनसी विद्या थी, जिससे पन्द्रहवीं शताब्दीके कारीगरने हू-बहू वही छोटे-छोटे, अपनी जगहसे कुछ हटे हुए कान, जिनसे मैं इतनी अच्छी तरह परिचित हूँ, बनाये थे ? वही छोटी-छोटी तिरछी-सी आँखें, वही विचित्र-सी नाक और चौड़ा-ढलुआँ माथा, जिससे संसारमें सबसे अधिक सुन्दर सबसे अधिक मोहिनी रमणीका मुख बनता है ! वह कौन-सा ऐसा रहस्य है, जिससे संसारमें दो रमणियाँ—एक पन्द्रहवीं शताब्दीमें और दूसरी बीसवीं शताब्दीमें—बिलकुल, हूबहू एक दूसरेके समान हों ! जिस रमणीकी आकृति उस मूर्तिकारने गढ़ी थी, वह रूपमें ही नहीं, बल्कि परिचय और आत्मामें भी बिलकुल नलिनीके समान थी, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है।

"बस, उसी दिनने मेरा सम्पूर्ण जीवन बदल दिया। उसी दिन मुझे अपनी समूची क्षुद्रता ज्ञात हुई मुझे मालूम

हर-पार्वती
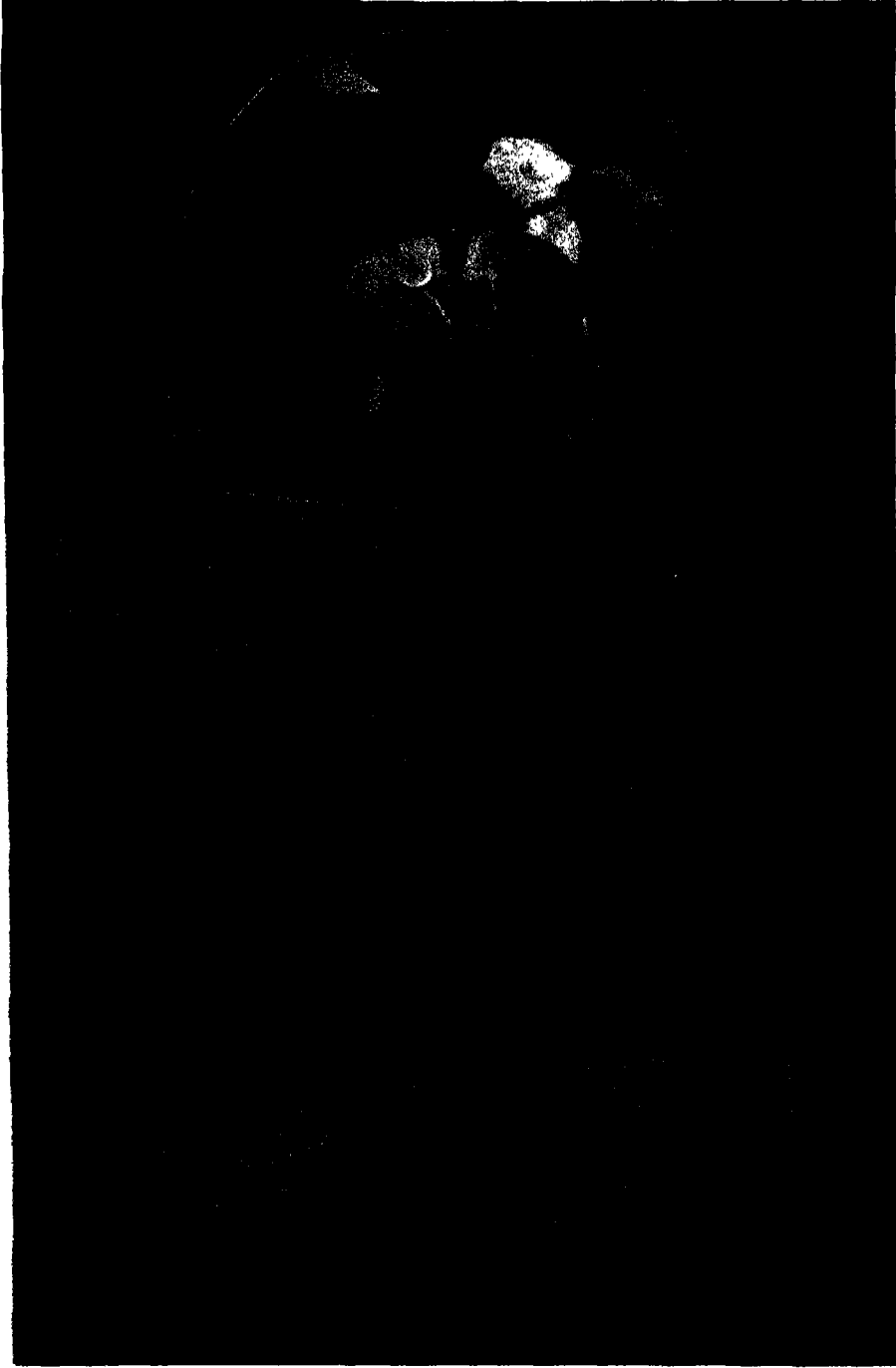
चित्रकार—श्री प्रमोदकुमार चटर्जी

हर-पार्वती

चित्रकार—श्री प्रमोदकुमार चटर्जी

काठ-खुदाईके चित्र

व्रजमोहन वर्मा

पिछली एक-डेढ़ शताब्दीमें संसारमें यूरोपका बोलबाला है। वही दुनियामें सबसे अधिक धनी और शक्तिशाली देश रहा है। धन-सम्पत्तिके साथ साथ उसका कला-शिल्प-भाडार भी खूब समृद्ध होता जा रहा है। वहाँ शिल्पके अन्य विभागोंकी भाँति काठ खुदाईकी चित्र प्रणाली भी एक बार पुनः जीवित हो उठी है। पिछले कुछ वर्षोंमें इस ढंगकी चित्रकलाकी काफी उन्नति हुई है। यूरोपमें यह कला पहले भी प्रचलित थी। सोलहवीं शताब्दीमें ड्यूरेर और हालबाइन नामक प्रसिद्ध शिल्पियोंने इसे चरम गौरव-स्थान तक पहुंचा दिया था, परन्तु उस समयके बाद ही एकाएक यह सृजन शिल्प (Creative Art) की श्रेणीसे गिर गई, और शिल्पके दरबारमें एक पिछली पंक्तिमें जा पड़ी। सौभाग्यकी बात है कि आजकल इसका पुनरुत्थान हुआ है। फ्रांसने इस ओर सबसे पहले कदम बढ़ाया, और अब संसारके सब देश उसका अनुकरण कर रहे हैं। डोमियर और डेरेन जैसे सुप्रसिद्ध शिल्पियोंने काठ-खुदाईके चित्रोंकी गणना सूक्ष्म कलाओंमें की है।

काठ-खुदाईके चित्रों तथा अन्य चित्रोंमें एक बड़ा भारी अन्तर है। और जितने चित्र हैं, वे पेन्सिल, कलम, तूलिका, ब्रश आदिके द्वारा तथा रंग और स्याहीकी सहायतासे, कागज, कपड़ा, रेशम, चमड़ा, लकड़ी, अबरक आदिपर चित्रित किये जाते हैं; परन्तु काठ खुदाईका तरीका इन सबसे भिन्न है। शिल्पी उपयुक्त साइज़ और कठोरताका एक लकड़ीका टुकड़ा लेकर उसपर पहले पेंसिल या सुईसे चित्रका डिज़ाइन बनाता है। फिर वह एक तेज़ चाकू या छेनीसे उस डिज़ाइनको काटता है। इस कटे हुए 'ब्लाक'पर स्याही लगाकर जब हम कागज़को छापते हैं, तब उसपर चित्र आ जाता है। यही चित्र काठ-खुदाईका चित्र कहलाता है। काठमें जितना भाग काट दिया जाता है, उतना भाग चित्रमें सफेद छपता है और बाकी काला। साधारण चित्रोंमें चित्रकार पेन्सिल या ब्रश आदिसे जितनी रेखाएं बनाता है, वे काली या अन्य किसी रंगकी होती हैं; परन्तु काठ खुदाईके चित्रोंकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें चित्रके आधारभूत अंश सफेद रेखाएँ हुआ करती हैं। पहले चित्रको देखनेसे यह बात आपको प्रत्यक्ष हो जायगी। अन्य ढङ्गोंमें सफेद ज़मीनपर मनुष्य या वस्तुके आकारकी रेखाएं काली हुआ करती है। ऐसी दशामें कुछ अंशोंमें डिज़ाइनकी स्पष्टता तथा प्रायः सम्पूर्ण अंशोंमें उसकी उज्ज्वलता नष्ट हो जाती है; परन्तु काठ खुदाईके चित्रोंमें यह बात नहीं होती। उसकी सफेद रेखाएं ही चित्रकारकी मुख्य आधार है। जिन काठ-खुदाईके चित्रोंमें यह विशेषता न दिखाई दे, उनके लिए यही समझना चाहिए कि उनके शिल्पीने गलती की। उनके शिल्पीको अपना अभिप्राय किसी दूसरे माध्यमसे प्रकट करना चाहिए था,

सुप्रसिद्ध फ्रेंच लेखक अनातोल फ्रांसकी एक पुस्तकके लिए [illegible] हुआ काठ-खुदाईका चित्र—चित्रकार : मारिया [illegible]

'हरिण'—चित्रकार, ग्लैगेनहाजन

क्योंकि उस दशामें वह काठ-खुदाईका चित्र न रहकर साधारण क़लमसे बने हुए चित्रकी नक़ल-मात्र रह जायगा।

सफ़ेद रेखाओंसे आरम्भ होकर काठ-खुदाईके चित्रोंमें सफ़ेद स्थान, काली रेखाएँ, सफ़ेद और काले बिन्दु तथा इन सबका मिश्रण इत्यादि भी रहने लगा। इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं है। भिन्न-भिन्न शिल्पी अपनी इच्छा और शिल्पके अनुसार इन बातोंको इस्तेमाल करते हैं।

चित्रकलाके सम्बन्धमें हम लोग बहुधा एक बड़ी-भारी ग़लती करते हैं। हममें से बहुतसे लोग यह समझते हैं कि चित्र हम लोगोंके वास्तविक जीवनकी ऐसी हूबहू नक़ल होनी चाहिए, जिसमें हम लोग भ्रममें पड़ जायँ; मगर असलमें कलाका यह अर्थ नहीं है। कला कोई ऐसी खिड़की नहीं है, जिसके द्वारा आप वास्तविक संसारका नज़ारा देख सकें। वह एक ऐसा मंच है, जिसपर अलंकारिक और

'आदम और हव्वाका स्वर्गसे पतन'—चित्रकार, ब्रूनो गोल्डश्मिट

सुकुमार डिज़ाइन स्थापित किये जा सकें। इस प्रकार चित्र एक अलंकारिक डिज़ाइन है, न कि वास्तविक जीवनकी भ्रमात्मक प्रतिलिपि। हाँ, यह अलंकारिक डिज़ाइन

है एक विशेष प्रकारका। चित्र किस प्रकारका होगा, यह उस माध्यमपर निर्भर करता है, जिसे शिल्पी व्यवहार करता है। तैल-चित्र, जल-चित्र,

'एक पोलिश किसान'—चित्रकार लाडिसला स्कोजिलस

ड्राइंग इत्यादि प्रत्येक प्रकारके चित्र एक दूसरेसे भिन्न होते हैं, और उनकी अपनी निजी विशेषता होती है। इसी प्रकार काठ-खुदाईके चित्रोंमें भी अपनी निजी विशेषता है। साधारण चित्रोंमें सबसे प्रधान वस्तु है रंग। मामूलीसे मामूली चित्रकार भी रंगोंके गुरुत्वपूर्ण चुनाव और मिश्रणसे अपने चित्रमें एक चमत्कारिक प्रभाव उत्पन्न कर देता है, परन्तु काठ-खुदाईके शिल्पियोंकी बात भिन्न है। उन्हें रंगोंको तो एकदमसे ही नमस्कार कर देना पड़ता है। उनके पास प्रकाश तथा रंगोंका प्रभाव उत्पन्न करनेके लिए केवल काली और सफेद रेखाएं होती हैं। इस प्रकार उनका काम साधारण चित्रकारोंके कामसे कठिन होता है, और उसके लिए विशेष दक्षताकी आवश्यकता होती है। उनका डिज़ाइन ऐसा होना चाहिए, जिसमें आकृतिकी ही प्रधानता हो, रंग एक गौण वस्तु हो।

'औपनिवेशिक साम्राज्यवाद'—चित्रकार, जीन केफाक्लिनस

'शान्ति-निकेतनकी तरुवीथि'—चित्रकार, श्री रामेन्द्र चक्रवर्ती

इससे उनके चित्रोंका सौन्दर्य ग्रहण करना कुछ कठिन हो जाता है, क्योंकि रंग एक ऐसी चीज़ है, जो केवल एक बार देखनेसे तत्काल ही अपना प्रभाव स्थापित कर लेती है; मगर रंग-हीनता सौन्दर्यको और भी अधिक सूक्ष्म और निगूढ़ कर देती है।

काठ-खुदाईके चित्रकारको एक और दिक्कतका सामना करना पड़ता है। उसे कागज़ और कैनवेसपर लचीले ब्रश या क़लमसे काम नहीं करना पड़ता। उसे कठोर काठपर तीक्ष्ण चाकूसे काम करना पड़ता है। लकड़ीकी कठोरता उसे उस स्वतन्त्रतासे वंचित कर देती है, जो अन्य साधारण चित्रकारोंको प्राप्त है।

काठ-खुदाई-चित्रोंके अधिकांश अच्छे चित्रकार अपने ही हाथसे काठ खोदते हैं। वे काठ ही पर चित्रका डिज़ाइन बनाते हैं। पहले अलग कागज़पर नहीं बनाते। अलग कागज़पर डिज़ाइन बनानेमें चित्र अच्छा नहीं बनता।
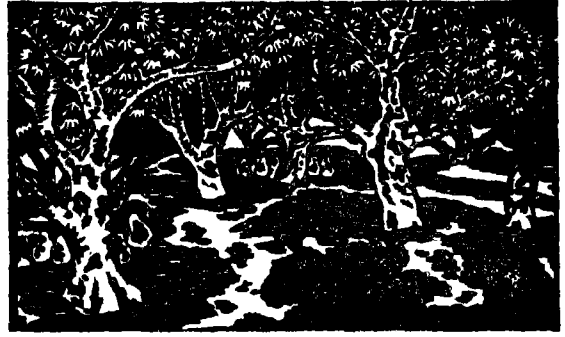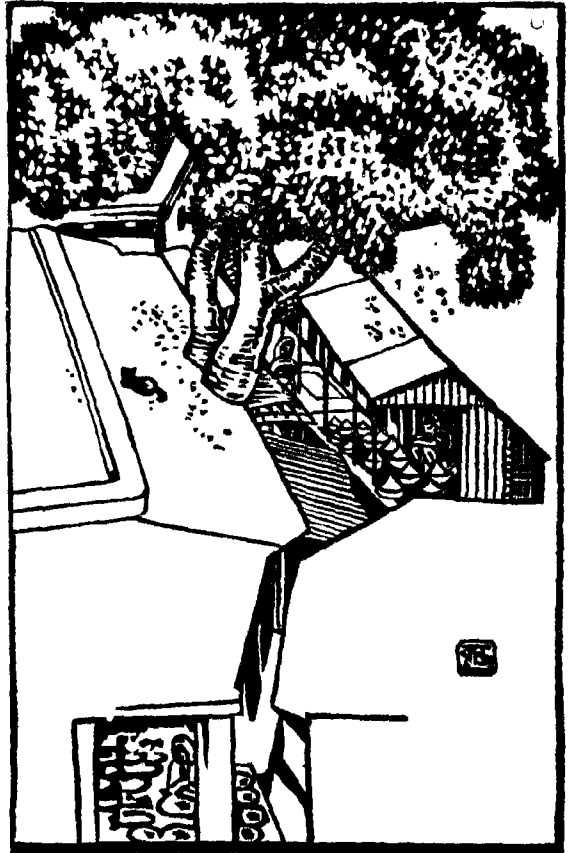
'पुराना लखनऊ'—चित्रकार, श्री रामेन्द्र चक्रवर्ती

'सन्थाल कुटीर'—चित्रकार, श्री रामेन्द्र चक्रवर्ती

'हरिण' शीर्षक चित्रको देखिये; उसमें छाया और प्रकाशका जो उज्ज्वल खेल दिखाया गया है, उसकी कल्पना काठ-खुदाईके रूप ही में हो सकती है, कागज़पर अंकित लकीरोंके रूपमें नहीं।

काठ-खुदाईके चित्र भी दो तरहके हो सकते हैं; एक तो मौलिक, दूसरे किसी पुराने चित्रकी नक़ल। आजकल

'कलकत्तेकी एक गली'—चित्रकार, श्री रामेन्द्र चक्रवर्ती
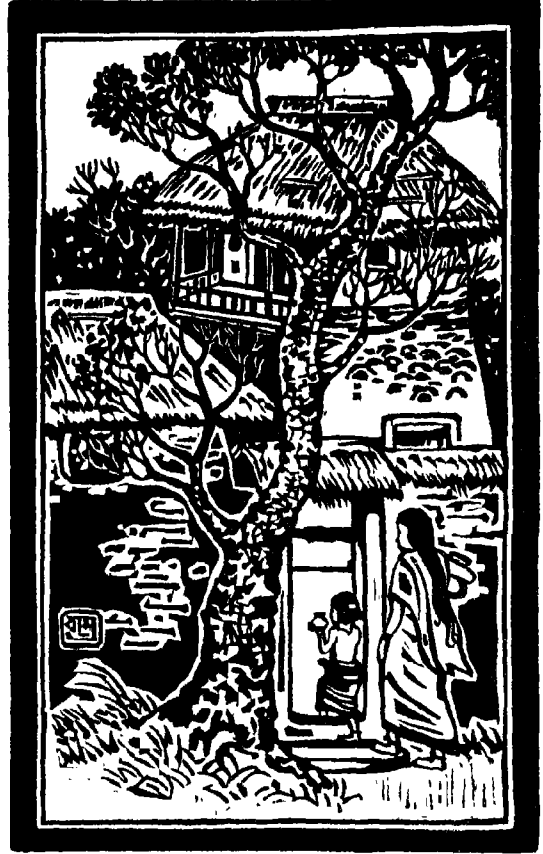
'ग्राम्य गृह'—चित्रकार, श्री रामेन्द्र चक्रवर्ती

काठ-खुदाईके जितने चित्र बनते हैं, वे सब प्राय: मौलिक हैं, परन्तु आदिमें वे मौलिक नहीं थे। यूरोपमें जब धार्मिकताका बहुत ज़ोर था, उस समय वहाँवाले ईसाकी माताका चित्र घरमें रखनेके लिए लालायित रहते थे। अमीर आदमी तो क़ीमती चित्रोंसे यह लालसा पूरी करते थे, परन्तु बेचारे ग़रीबोंके लिए शिल्पियोंने काठ-खुदाईके चित्र चलाने आरम्भ किये। यूरोपमें इस प्रकार इस कलाका आरम्भ हुआ। बादमें छापेके प्रचारके साथ साथ चित्र छापनेके लिए यही काठ-खुदाईका तरीक़ा ही काममें आने लगा, परन्तु कैमरेके आविष्कार तथा रासायनिक क्रियाओंके द्वारा तांबे और जस्तेके 'ब्लाक' बनानेकी प्रणाली निकलनेसे काठ-खुदाई द्वारा चित्रोंका छपना बन्द

न्यूयार्कका ब्रुकलियन पुल

देशमें मिला है। वह नौवीं शताब्दीका बताया जाता है, और सर ऑरेल स्टीन उसे तुन हुआंगसे लाये थे, लेकिन हमारे देशमें काठ खुदाईका काम बहुत अधिक प्राचीन है। मथुरापुरी, काशी इत्यादि तीर्थोंके रामनामी अंगौछे तथा मछलीपट्टम इत्यादि स्थानोंके छपे हुए वस्त्र खुदे हुए काठके टुकड़ोंसे ही छापे जाते हैं। इस छपाईमें विभिन्न रंगोंके मिश्रणमें भी भारतीयोंने कमाल किया है। आजकल भी फर्रुखाबाद, मुर्शिदाबाद आदि स्थानोंके छपे हुए वस्त्र संसारके लिए आश्चर्यकी वस्तु हैं, परन्तु खुदे हुए काठसे कागज़पर चित्र छापनेकी रीति इस देशमें पुरानी नहीं जान पड़ती। हाँ, आजकल भारतमें कलाके नवीन पुनरुत्थानमें—उसके अन्य अंशोंके साथ-साथ—काठ-खुदाईके चित्रोंकी ओर भी शिल्पियोंका ध्यान गया है। शान्ति-निकेतनके सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री नन्दलाल बोस तथा उनके शिष्योंने इस पद्धतिके भी चित्र बनाये हैं।

हो गया। परन्तु प्रसन्नताकी बात है कि आजकल यह शिल्प सस्ते चित्र छापनेके लिए नहीं, बल्कि कलापूर्ण भावनाओंको प्रकट करनेके लिए व्यवहृत होता है।

कहते हैं कि सबसे प्राचीन काठ-खुदाईका चित्र चीन

कृष्णानदीका धीवर

कलकत्ता-आर्ट-स्कूलके शिक्षक श्री रमेन्द्रनाथ चक्रवर्तीने, जो श्री नन्दलाल बोसके शिष्य हैं, इस विषयमें विशेष दक्षता प्राप्त की है। यहाँ उनके कुछ चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। उन्होंने काठ-खुदाईके चित्रोंमें हमारे भारतीय दृश्योंको अंकित करनेका प्रयत्न किया है। इस प्रयत्नमें उन्हें आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई है। इन चित्रोंमें शान्ति-निकेतनकी 'तरुवीथि' नामक चित्रमें आलोक और छायाका बड़ा प्रभावोत्पादक दृश्य है। 'सन्थाल-कुटीर'में एक सन्थाल-परिवारकी गृहस्थी जीती-जागती दिखाई देती है। 'ग्राम्यगृह'में बंगालके देहाती-जीवनकी पूरी छाप मौजूद है। कलकत्ते और पुराने लखनऊकी गलियोंके चित्रोंमें हम वहाँके दृश्य एक नई ही दृष्टिसे देख सकते हैं।

इस प्रकारके चित्रांकणमें चित्र-शोभा या अलंकारका जो मूल्य है, वह 'यमुना-तटके एक आश्रम' में प्रत्यक्ष हो जाता है।

यहाँपर जो यूरोपियन काठ-खुदाईके चित्र प्रकाशित किये गये हैं उनमें पहले चित्रमें यह प्रत्यक्ष है कि केवल पतली-पतली सफ़ेद रेखाओंमें ही कैसा भावपूर्ण चित्र बनाया जा सकता है। दूसरे चित्र 'हरिण'में प्रकाश और छायाका बड़ा अद्भुत चमत्कारिक मेल है। एक हरिण कहीं मांदमें शान्तिसे बैठा हुआ है। सहसा किसीके आनेकी आहट मिली और वह चौकन्ना हो, गर्दन उठाकर चकित भावसे मानो उस आहटको सुन रहा हो।

'यमुना-तटका एक आश्रम'—चित्रकार श्री रामेन्द्र चक्रवर्ती

तीसरा चित्र बाइबिलका एक दृश्य है। हज़रत आदम और हव्वा स्वर्गसे ढकेलकर पृथ्वीपर गिरा दिये गये हैं। हज़रत आदमके मुखपर स्वर्गसे निकाले जानेका अनुताप प्रत्यक्ष दिखाई देता है। स्वर्गसे गिरकर हज़रत हव्वा तो एकदम निश्चेष्ट हो गई हैं!

चौथा चित्र पोलैंडके एक किसानकी मुखाकृतिका है। चित्रकार स्वयं पोलिश जातिका है। चित्रमें मुखकी आकृतिसे किसानकी जातिगत विशेषताएँ प्रकट हो रही हैं। चित्रकी रेखाएँ चित्रकारकी कारीगरीकी दक्षता प्रकट करती हैं।

'औपनिवेशिक साम्राज्यवाद' एक व्यंग्यात्मक कार्टून है। यूरोपके पूँजीवादी राष्ट्र धर्म और सभ्यताकी दुहाई देते हुए उपनिवेश बसानेके लिए जाकर वहाँके अधिवासियोंका रक्त चूसकर किस प्रकार मोटे होते हैं, यह इस चित्रमें दिखाया गया है।

न्यूयार्कके 'ब्रुकलियन पुल' में चित्रकारने समुद्रका पानी अंकित करनेमें कमाल किया है। पानीमें उठनेवाली असंख्य लोल लहरियोंको उसने जिस खूबीसे प्रकट किया है, वह कलाकी दृष्टिसे निस्सन्देह बड़ी कारीगरीका काम है। पुलके दूसरी ओर न्यूयार्ककी गगनचुम्बी इमारतें दिखाई गई हैं।
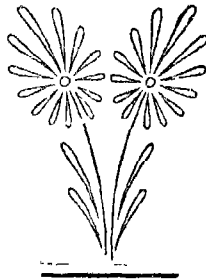
हाथी-दाँत पर शिल्पका काम

हाथी-दाँतकी कारीगरी संसारके प्राचीनतम शिल्पोंमें से है। पूर्व ऐतिहासिक युगकी जो वस्तुएँ संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें मिली हैं, उनमें बृहत्काय हाथियों (Mammoth) के दाँतकी बनी हुई वस्तुएँ भी हैं। उस युगमें शिल्प बहुत ही असंस्कृत दशामें था, क्योंकि उस समय न तो इसकी कहीं शिक्षा ही दी जाती थी, न सभ्यताका ही विकास हुआ था, और न तब तक मनुष्यके पास अच्छे औज़ार ही थे : फिर भी उस समयका हाथी-दाँतका काम आज कलके सभ्य युगमें भी सुन्दर ही कहा जायगा।

इसका मुख्य कारण यह है कि हाथी-दाँत शिल्पकलाके लिए अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है। उसे काटना, खोदना, छेदना आदि— शिल्पके सब काम—आसानीसे होते हैं, इसीलिए मनुष्योंके आदि पुरुष भी इसपर अपनी कारीगरी दिखलानेमें सफल हुए थे।

हाथी-दाँत स्वभावत: ही सुन्दर होता है, उसका स्पर्श बहुत चिकना और भला मालूम पड़ता है, इसीलिए शिल्प-सौन्दर्यके शौक़ीनोंके लिए वह इतना आदरणीय है।

हमारे देशमें हाथी-दाँतके शिल्पका इतिहास बड़ा प्राचीन है। रामायणमें जहाँपर भरतजीके श्री रामचन्द्रका पता लगानेको जानेका विवरण दिया है, वहाँ भरतके अनुचरोंमें हाथी-दाँत खोदनेवालोंका भी नाम है। महाभारतके हरिवंश नामक अंशमें हिरण्यकशिपुरके महलोंके विवरणमें हाथी दाँतकी बनी हुई खिड़कियोंका उल्लेख है। ये दोनों पुस्तकें ईसासे पूर्व सातवीं शताब्दीकी मानी जाती हैं। ईसासे पूर्व चौथी शताब्दीमें लिखे हुए अर्थशास्त्रमें हाथी-दाँतकी बनी हुई तलवारकी मूठ तथा अन्य वस्तुओंका उल्लेख है। इसके अलावा वात्स्यायनके काम-सूत्रमें हाथी-दाँतकी पुतलीका, ग्रीक ऐतिहासिक आरियन लिखित भारत-वर्णनमें हाथी-दाँतके भुजबन्दका, 'मृच्छकटिक' नाटकमें हाथी-दाँतके तोरणका तथा बृहत-संहितामें हाथी-दाँतसे सजे हुए पलंग इत्यादिका विवरण मिलता है, इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि हाथी-दाँतके शिल्पका भारतके प्राचीन शिल्पोंमें अन्यतम स्थान रहा है।

खेदकी बात है कि अब हाथी दाँतके कोई ऐसे पदार्थ नहीं मिलते, जिनकी प्राचीनता प्रमाणित हो सके। बात यह मालूम होती है कि हाथी-दाँत हमारे यहाँ पूजाका उपकरण नहीं बनाया गया, इसीलिए देवमन्दिरों आदिमें उसका स्थान न हो सका, और इसी कारणसे उसकी बनी हुई चीज़ोंकी रक्षाके लिए कोई विशेष प्रयत्न भी नहीं किया गया।

यद्यपि हाथी-दाँतकी प्राचीन वस्तुएँ नहीं मिलतीं मगर हाथी-दाँतके प्राचीन शिल्पियोंकी कारीगरीके नमूने हमें अब तक उपलब्ध हैं। सुप्रसिद्ध साँची स्तूपके दक्षिणकी ओरके तोरण अंशपर यह लिखा है कि यह अंश "विदिशा नगरके हाथी दाँतके शिल्पियों द्वारा खोदा गया और उत्सर्ग किया गया।" इस प्रकार हमें सांचीमें ईसासे पूर्व तीसरी शताब्दीके भारतीय गज-दन्त शिल्पियोंकी कारीगरीका उदाहरण मिलता है। ब्राह्मणावादमें जो हाथी-दाँतके शतरंजके मोहरे मिले हैं, वे ईस्वी-सन्‌की आठवीं शताब्दीके अनुमान किये जाते हैं। वे ही इस देशकी सबसे प्राचीन हाथी-दाँतकी वस्तु समझी जाती हैं।

आजकल भारतवर्षमें कई स्थानोंमें हाथी-दाँतका काम होता है ; मगर उनमें लंका, ट्रावनकोर, मैसूर, मदरास, उड़ीसा, बंगाल और दिल्लीका काम बढ़िया होता है।

डाक्टर कुमार स्वामीकी रायमें बौद्ध लंका इस विषयमें सबसे बढ़ी हुई है। वहाँ बुद्ध-मूर्तिसे लेकर दरवाज़ेकी सजावटकी चीज़ें तक हाथी-दाँतकी बनती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँका शिल्प भारतीय मूर्ति-निर्माण-विधाके स्टैन्डर्डसे बहुत उत्कृष्ट होता है ; मगर कारीगरीके लिहाज़से
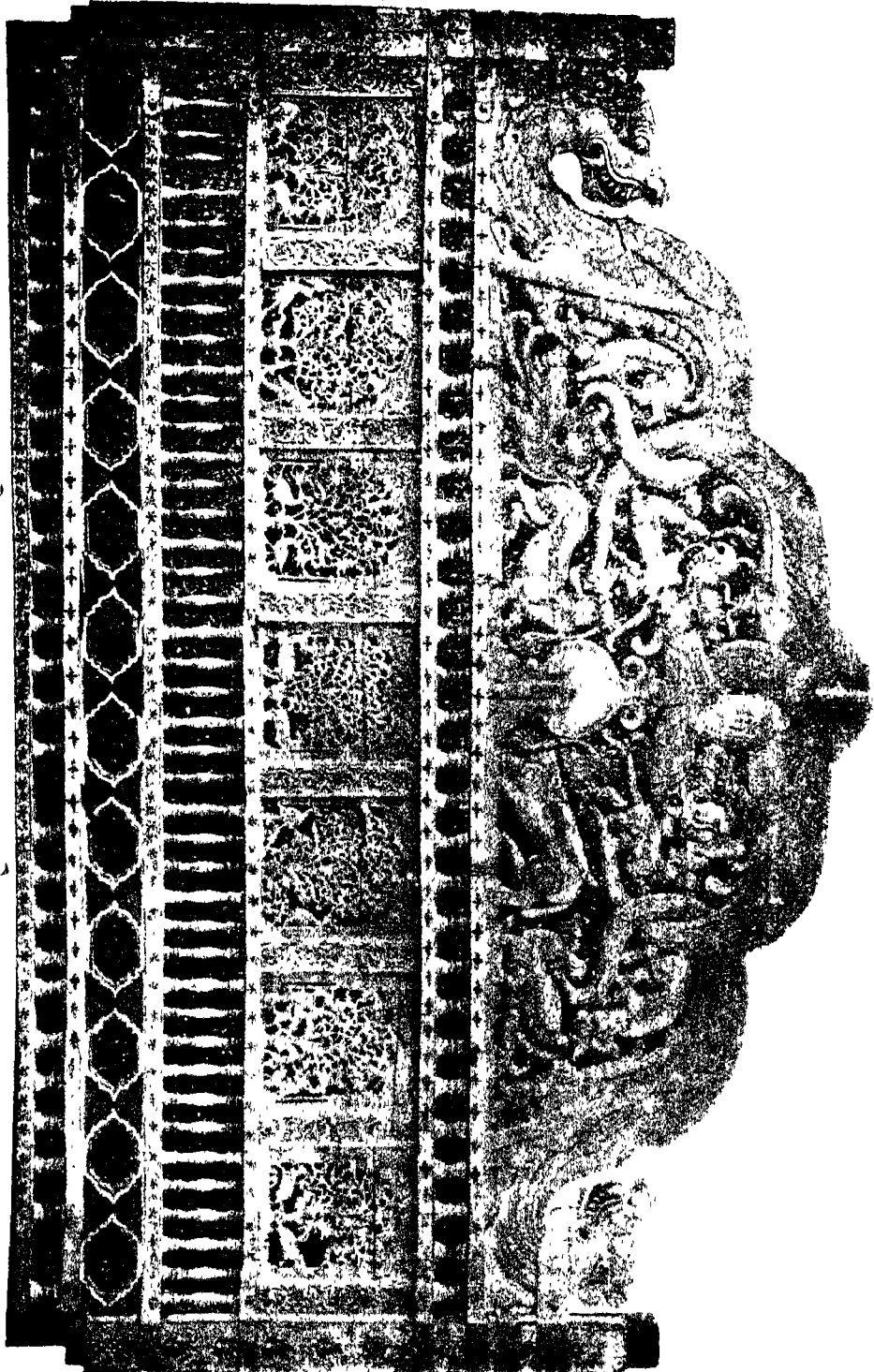
मैसूरकी प्राचीन हाथी-दाँतकी कारीगरीका नमूना
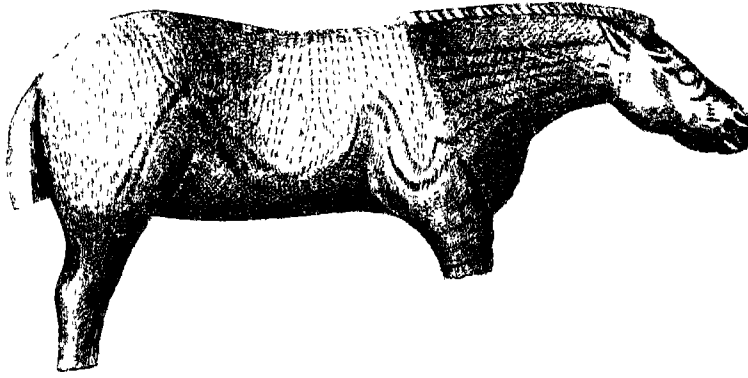
प्रस्तरयुगकी कारीगरी। मैमथ हाथी-दाँतका बना हुआ घोड़ा

दक्षिण-भारतके धनियों और सम्भ्रान्त परिवारोंके उत्साह देते रहनेके कारण वहाँके हाथी-दाँतका शिल्प अब तक जीवित है। उड़ीसाके शिल्पकी अवस्था विशेष अच्छी नहीं है, किन्तु बंगालके समान शोचनीय दशा वहाँकी भी नहीं है।

थोड़े दिनोंसे दिल्लीमें इस शिल्पने खूब उन्नति की है। विदेशी खरीदारोंकी पूँछसे वहाँके बहुतसे कारीगरोंकी रोज़ी चल रही है।

उड़ीसा, मैसूर और ट्रावनकोरका काम ही अधिक ऊँचा जँचता है। लंकाके हाथी-दाँतका काम पत्थरकी मूर्तियोंके अनुरूप होता है, परन्तु उड़ीसा, मैसूर और ट्रावनकोरके हाथी-दाँतका काम लकड़ीके काम और सोने चाँदीकी कारीगरीके कामके बीचका है, यही मेरी धारणा है।

सुना है कि मुर्शिदाबादके किसी नवाबने किसी अन्य प्रान्त (सम्भवत: पटना या दिल्ली)से हाथी-दाँतके शिल्पियोंको बुलाकर बंगालमें यह कारीगरी चलाई थी। मुर्शिदाबादके एक मूर्तिकारने उन कारीगरोंसे शिक्षा पाई थी। उस

सौ वर्ष पहले हाथी-दाँतकी कारीगरीमें बंगालका स्थान सबसे ऊँचा था, परन्तु पिछले पचास वर्षोंमें बंगालियोंके विदेशी वस्तुओंके प्रेमके कारण आज हाथी-दाँतका शिल्प बंगालसे प्राय: लुप्त-सा हो रहा है। सन् १८८३ में जयपुरकी प्रदर्शिनीमें मुर्शिदाबादके लालबिहारी नामक एक शिल्पीका
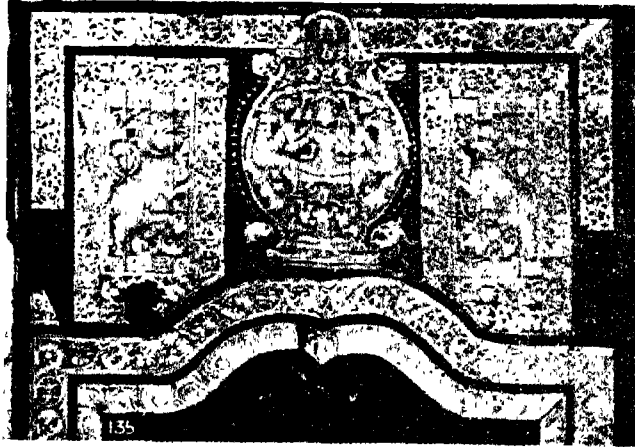
लंकाका हाथी-दांतका काम

काम सबसे उत्कृष्ट पाया गया था, और उसे पुरस्कार मिला था। इससे पहले भी इस देशकी तथा अन्य देशोंकी प्रदर्शिनियोंमें बंगालका हाथी-दाँतका काम 'बहुत उत्कृष्ट' कहकर प्रख्यात हो चुका है, परन्तु अब वे सब बातें नहीं रहीं।

मूर्तिकारका पुत्र तुलसी खादुम्बर मुर्शिदाबादमें इस शिल्पका प्राणदाता समझा जाता है। तुलसीके सम्बन्धमें यह रवायत सुनी जाती है कि वह नवाबके आदर-सत्कार तथा डर-धमकीकी उपेक्षा करके मुर्शिदाबादसे भाग गया था, और सत्रह वर्ष

उड़ीसाका प्राचीन हाथी दांतका शिल्प

तक काशी, गया, मथुरा, वृन्दावन आदि तीर्थोंकी यात्रा करता रहा। अपने साधारण औज़ारोंकी सहायता और अपनी कारीगरीकी बदौलत उसे अपने निर्वाहके लिए धन पैदा करना बड़ा आसान था। अन्तमें वह जयपुर गया। वहाँके राजाने उसकी कारीगरीपर मुग्ध होकर उसे बहुत कुछ इनाम दिया तथा उसकी बड़ी खातिर की। सत्रह वर्ष बाहर घूमकर तुलसी फिर मुर्शिदाबाद लौटा।

उस समय वहाँके पुराने नवाब मर चुके थे। नये नवाबने तुलसीकी कारीगरीका हाल सुन रखा था, अतः उसके मुर्शिदाबाद आते ही वह दरबारमें बुलाया गया। नये नवाबने उसे पुराने नवाबकी हाथी-दाँतकी मूर्ति बनानेका हुक्म दिया। तुलसीने पुराने नवाबकी ऐसी हूबहू मूर्ति बनाई, जिससे प्रसन्न
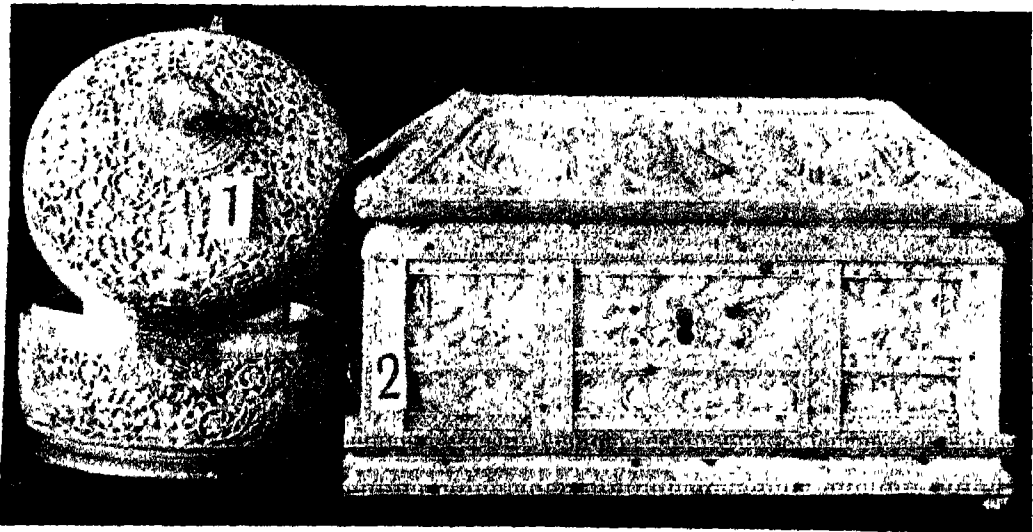
दक्षिण भारतका हाथी-दांतका काम
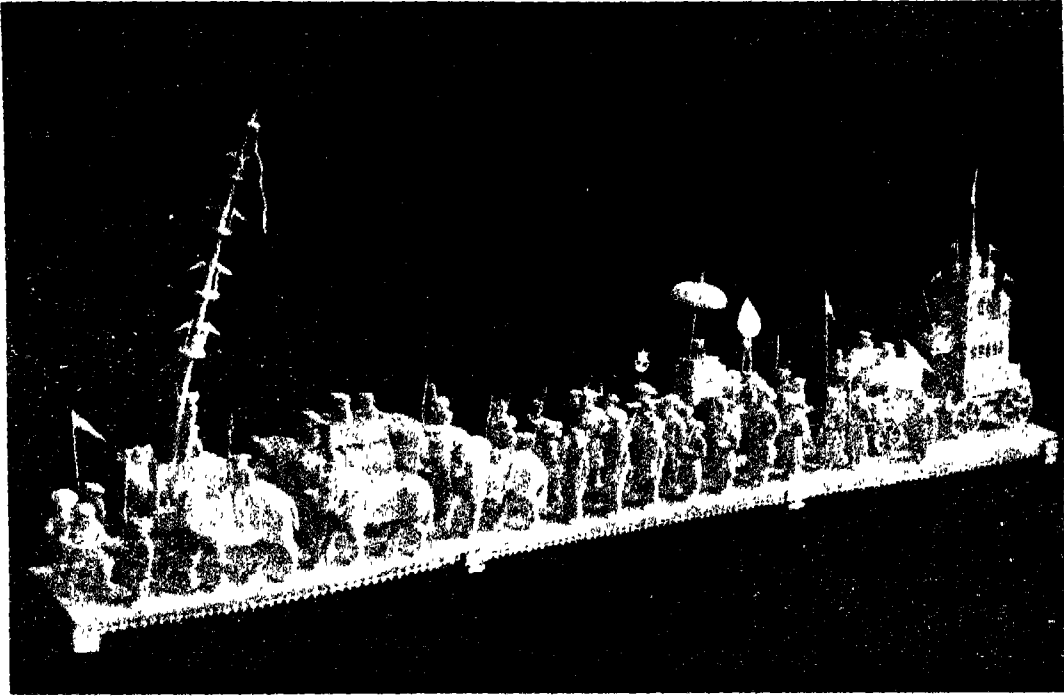
मुर्शिदाबादका हाथी-दाँतका काम। जगन्नाथजीकी रथयात्राका दृश्य

होकर नवाबने उसे पिछले सत्रह वर्षोंकी पूरी तनख्वाह दी!

बंगालमें हाथी-दाँतके कामकी विशेष अवनति हुई है, इसमें सन्देह नहीं। इसका मुख्य कारण ग्राहकोंका अभाव है। ग्राहकोंकी कमीसे शिल्पियोंकी कारीगरीका क्षेत्र बहुत संकुचित हो गया है। देवी-देवताओंकी मिट्टीकी असंस्कृत मूर्तियोंकी नक़ल, पुराने ढंगके कुछ आसान 'माडलों'का अनुकरण, साधारण खिलौने, चूड़ियाँ, अंगूठियाँ आदि—बस, इन्हीं चीज़ोंमें उनकी कारीगरी समाप्त हो जाती है। उनमें नये-नये नक्शे और नये-नये ढंगकी चीज़ें बनानेका उत्साह अथवा ज्ञान नहीं है। साथ ही उन्हें उत्साह मिलनेका भी कोई लक्षण नहीं दिखाई देता। यदि इसके लिए कोई प्रयत्न न किया जायगा, तो यह शिल्प यहाँसे बिलकुल ही उठ जायगा।

मुर्शिदाबादके शिल्पियोंकी यह विशेषता है कि वे जो कुछ बनाना चाहते हैं, उसे हाथी दाँतके एक ही टुकड़का बनानेकी चेष्टा करते हैं। वे खण्डोंको जोड़कर श्रम और व्यय बचानेके पक्षपाती नहीं हैं। इससे उनका काम मज़बूत होता है और उनकी कारीगरीका परिचय मिलता है, लेकिन साथ ही साथ उनका कार्यक्षेत्र भी संकुचित हो जाता है। फिर यदि चीज़के किसी एक अंशमें ज़रासा भी दोष आ गया, तो पूरी चीज़ सदोष हो जाती है। अन्य प्रान्तोंके शिल्पी खण्ड-खण्ड जोड़कर बड़ी चीज़ बनाते हैं, इसलिए यदि किसी एक खण्डमें कुछ दोष आ गया, तो वे उसकी जगह दूसरा दोष-रहित टुकड़ा जोड़ देते हैं।

यहाँके कारीगरोंका काम एकदम बँधे ढंगका होता है। पहले नापके अनुसार हाथी-दाँतका टुकड़ा काटकर उसपर पेंसिलसे नक्शा बनाते हैं। फिर रुखानीसे मोटा-मोटा काटकर उसे स्थूल आकृतिमें लाते हैं और रेतीसे घिसकर अथा
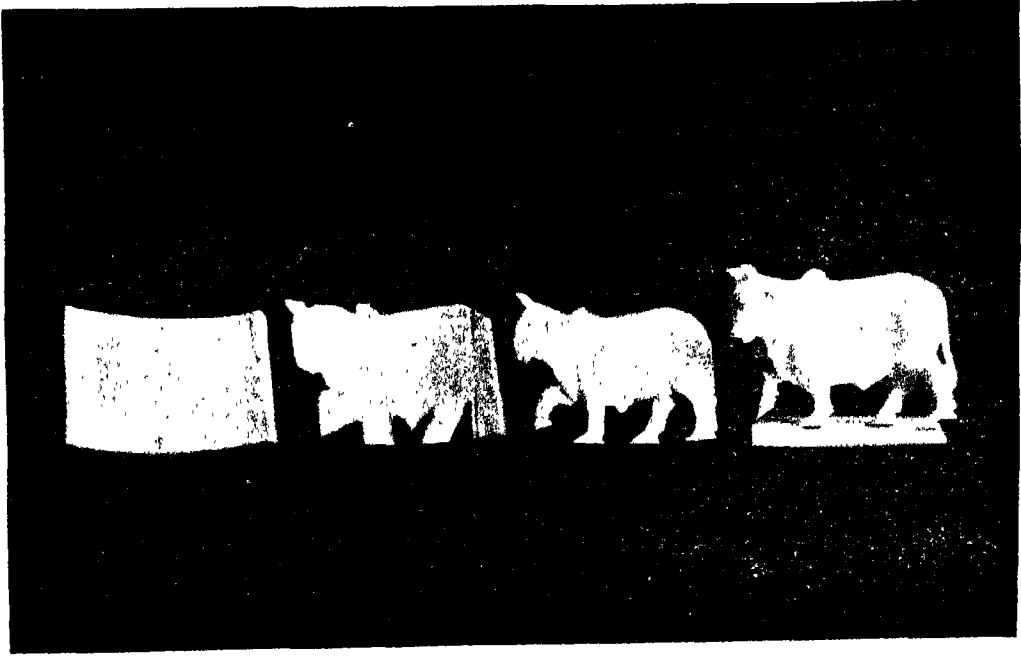
हाथी-दांतकी शिल्प-प्रणाली। १ दांतका टुकड़ा काटना २ स्थूलरूपसे डिजाइन बनाना ३ ठीक आकार देना ४ कारीगरी करनेके पश्चात् अन्तिम 'फिनिश'।

आकार बना लेते हैं। बादमें बर्मे और खोदनेवाली कलमकी सहायतासे उसे पूरा करते हैं। जब चीज़ ताज़ी ही होती है, उसी दशामें उसपर मछलीके छिलकों और खड़िया मिट्टीकी सहायतासे पालिश कर लेते हैं। यदि कोई खण्ड जोड़नेकी ज़रूरत हुई, तो औज़ारसे पतला-सा छेद करके हाथी दाँतकी कीलसे जोड़ देते हैं।

हाथी दाँतकी चीज़ें अपने स्वाभाविक रंगमें ही अधिक प्रचलित हैं; मगर कहीं-कहीं लाखकी सहायतासे उन्हें रँग भी देते हैं। बाजोंको सजानेमें या गहनोंमें इस रंगीन हाथी-दाँतका प्रयोग अधिक होता है। कभी-कभी अन्य पदार्थों—जैसे कंचकड़ों आदि—के साथ-साथ इसका व्यवहार होता है। विज़गापट्टम और तजोर इस प्रकारकी कारीगरीके लिए मशहूर हैं।

ट्रावनकोर और उड़ीसाका शिल्प अब भी प्राचीन भारतीय शिल्प-कलाके मार्गपर ही चला जा रहा है। मैसूर, लंका, बंगाल, दिल्ली आदिके शिल्पको विदेशी प्रभावने हड़प कर लिया है, इसलिए इन सब स्थानोंके शिल्पमें विशुद्ध भाव नहीं हैं।

मैसूरके प्राचीन शिल्पकी मौलिकता अब जाती रही है, और उसके स्थानमें आधुनिक 'रियालिस्टिक' परिकल्पना आ बैठी है। दिन-दिन पुराना अलंकार सौन्दर्य वास्तविकताकी ठोकरसे उड़ा जा रहा है।

राजपूतानेमें उदयपुर, बीकानेर, जयपुर आदि स्थानोंमें घरके दरवाज़ों आदिमें अब तक हाथी दाँतका काम प्रचलित है, परन्तु उसकी कारीगरी मुग़ल प्रणालीकी है। उदयपुरके बड़ीपोल प्रासादमें इस कारीगरीके उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं।

हाथी-दाँतकी चारपाईका वर्णन 'बृहत् संहिता'में मिलता

मुर्शिदाबादका बना हुआ हाथी-दाँतका हजरा

मुर्शिदाबादकी बनी हुई शोभायात्रा।
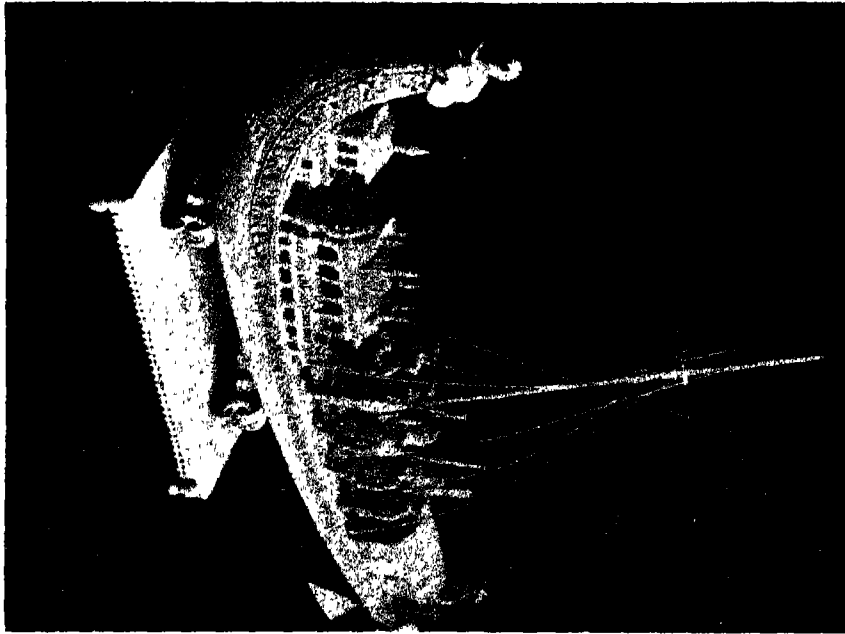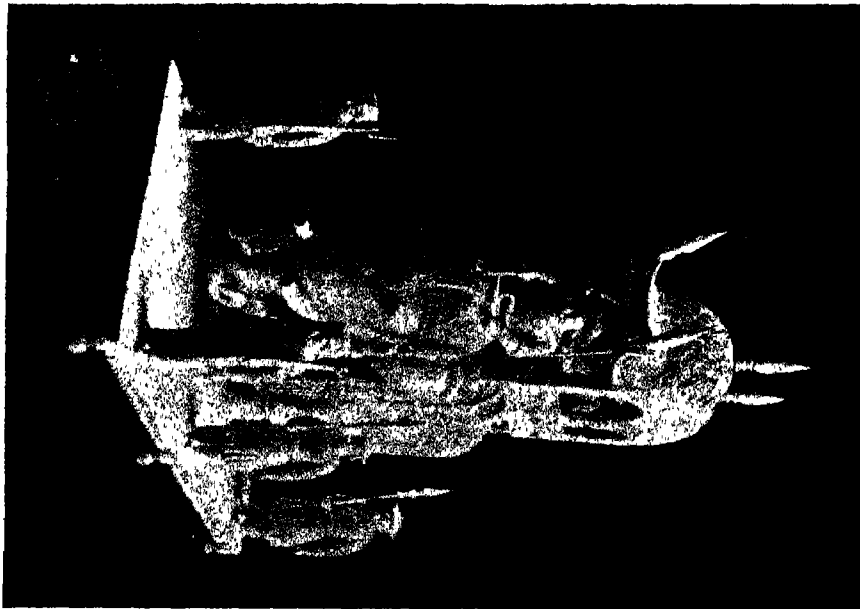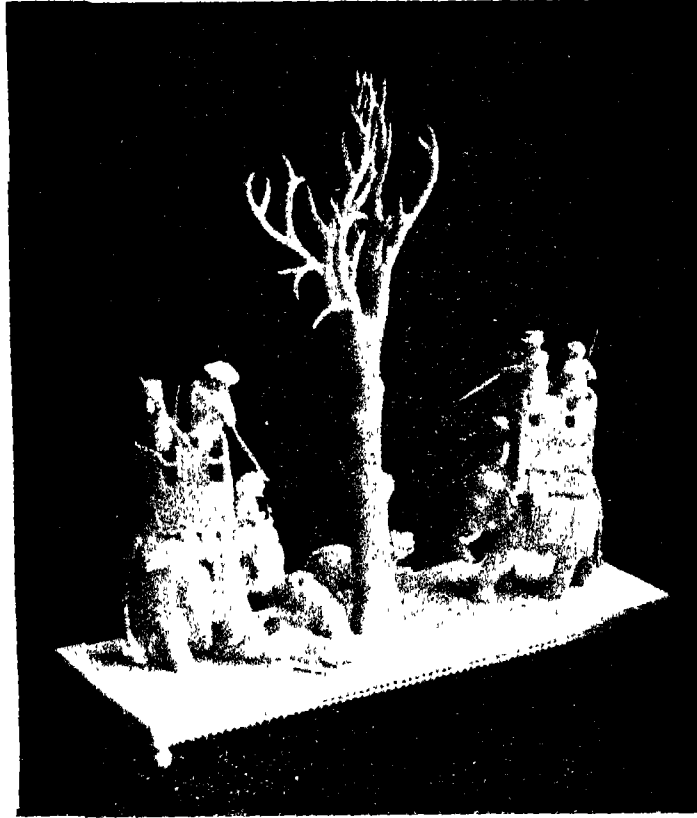
मुर्शिदाबादका शिल्प। शिकारका एक दृश्य

है, यह बात ऊपर कही जा चुकी है। काशी नरेशके पास हाथी-दाँतके फर्नीचरका एक सेट था। उसे लार्ड कर्ज़नने अपनी ख़र्चके द्वारा उड़ा लिया। वे उसे अपने साथ ले जाना चाहते थे; मगर उसे वे कुछ दिन गवर्मेन्ट-हाउसमें इस्तेमाल करते रहे थे, इसलिए वह सरकारी सम्पत्ति कहकर बेचारेसे चलते समय धरा लिया गया।

मुसलमानी समयके अनेक अस्त्र-शस्त्र इसी प्रकारके एक पदार्थ बने हुए मिलते हैं, जो मत्स्य-दन्त (Fish Ivory)के नामसे प्रसिद्ध है। इनमें से कुछ तो दरियाई घोड़ेके हैं, बाक़ी अधिकतर वृहत्काय हाथियों (Mammoth) के दाँतोंके हैं। ये पदार्थ इस देशमें कैसे पहुँचे, यह बात अब तक ज्ञात नहीं हुई। इन वृहत्काय हाथियोंके दाँत साइबेरियाके उत्तरी भागमें बहुतायतसे मिलते हैं; मगर चीनमें वे बहुत समयसे व्यवहृत होते रहे हैं। सम्भव है कि वे चीनसे यहाँ आये हों।

प्राचीन मिश्र, बाबुल, ग्रीस, रोम आदि प्राचीन राज्योंमें हाथी-दाँतका व्यवहार बहुत प्रचलित रहा है। अब भी चीन और जापानमें इसका शिल्प होता है। विशेषकर चीनकी हाथी-दाँतकी कारीगरी मशहूर है। चीनियोंका हाथी दाँतका गेंद तो संसारमें प्रसिद्ध है। वे हाथी-दाँतके एक टुकड़ेका गेंद बनाते हैं, और उस गेंदमें जाली काटकर उसके भीतर एक दूसरा गेंद बना देते हैं, और उस दूसरे गेंदमें भी जाली काटकर उसके भीतर एक तीसरा गेंद बना देते हैं। इस प्रकार बाहरसे बिना किसी प्रकारके जोड़के गेंदके भीतर दो-दो गेंद बन जाते हैं।
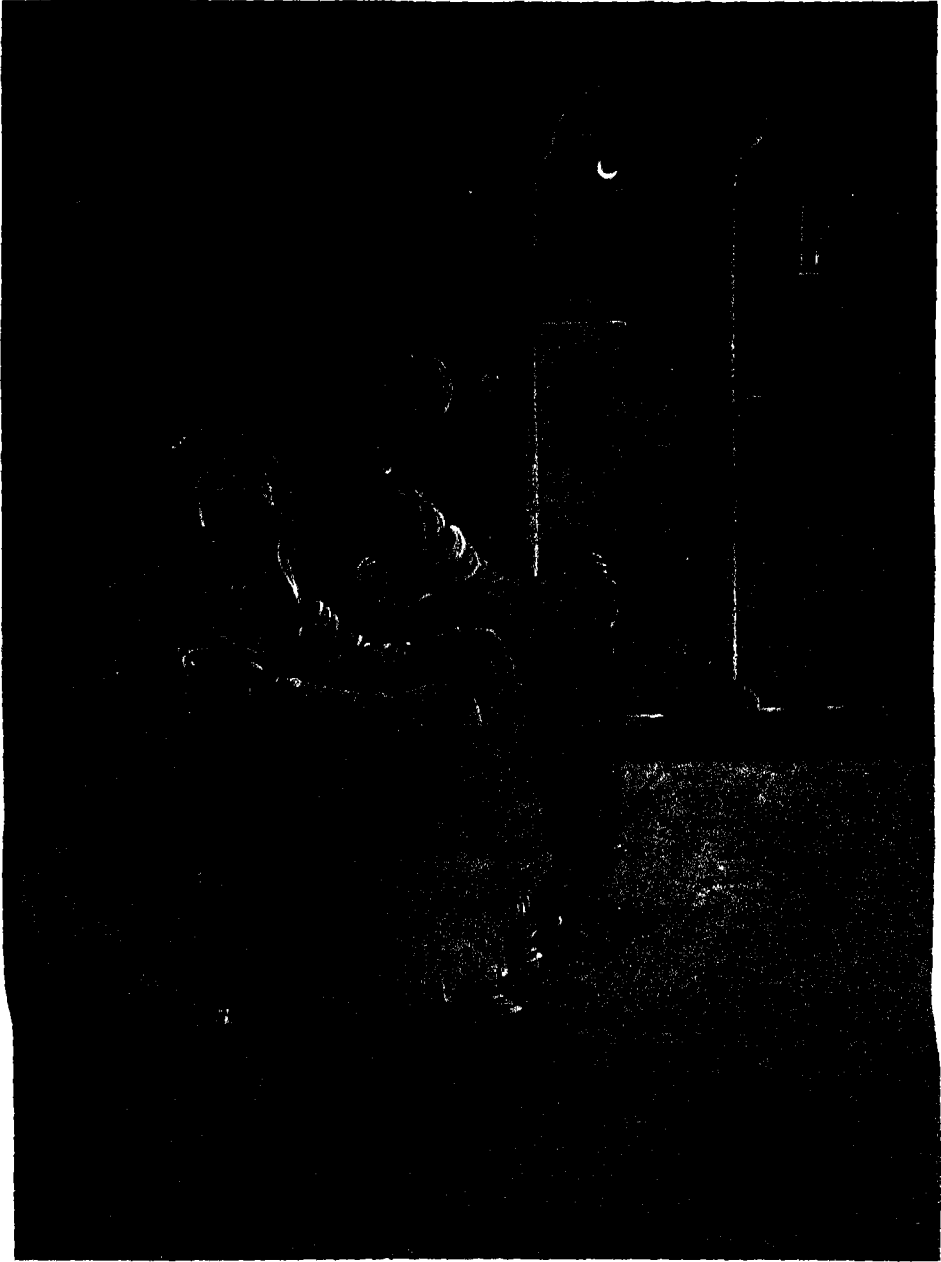
सरायमें

विशाल-भारत

चित्रकार—श्री समितकुमार हल्दार

लुकका काम

'एक कला-प्रेमी'

लुकका काम किसे कहते हैं? बनारसके बने हुए काठके खिलौने तथा बर्माकी बनी हुई काठकी डिब्बे-डिब्बियाँ, हममें से बहुतोंने देखी होंगी। ये सब चीज़ें काठके ऊपर रंगीन लाख (चपड़े) अथवा अन्य पदार्थोंका लेप करके चित्रित की जाती हैं। इस प्रकारकी कारीगरीको लुकका काम (Lacquer work) कहते हैं।

भिन्न-भिन्न देशोंमें इस प्रकारका काम भिन्न भिन्न तरीक़ोंसे होता है, परन्तु इन सबमें चीन और जापानका लुकका काम सबसे बढ़िया, सबसे सुन्दर तथा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। साथ ही उसके बनानेकी विधि भी अन्य देशोंकी अपेक्षा जटिल है।

बाज़-बाज़ लकड़ियोंके स्वाभाविक रंग बड़े सुन्दर होते हैं, परन्तु ये रंग एक बहुत ही परिमित सीमामें रहते हैं, उनमें अधिक विभिन्नता नहीं होती। इसलिए उनपर ऊपरसे कृत्रिम रंग चढ़ाया जाता है। परन्तु काठमें कई एक स्वाभाविक दोष ऐसे होते हैं, जिनके कारण उनपर साधारण उपायोंसे रंग चढ़ाकर चित्रकारी करना सम्भव नहीं। एक बड़ा भारी दोष तो यह है कि अधिकांश काठोंके सब अंश रंगको समान-रूपसे ग्रहण नहीं करते। दूसरे खाली काठ जल्द ही सड़ जाता है।

इन सब दोषोंको दूर करनेके लिए लोग काठपर भिन्न-भिन्न उपायोंके द्वारा लेपका एक आवरण चढ़ा देते हैं। इस आवरणसे काठ जल्दी सड़ता नहीं तथा उसपर उपयुक्त चीज़ोंकी सहायतासे नाना वर्णकी चित्रकारी की जा सकती है।

लुकके काममें व्यवहृत होनेवाली अनेकों चीज़ें हैं। हमारे देशमें लुकका काम मुख्यत: नाना रंगकी लाखसे होता है। चीन और जापानमें Rhus Vernicifera नामक एक वृक्षका गोंद या राल (Gum and Resin) काममें लाई जाती है। यूरोपियन कारीगर शराबकी स्पिरिटमें लाखको घोलकर तथा उसमें और चीज़ें मिलाकर उसे काममें लाते हैं।

चीन और जापानमें, लुकके काममें, जो-जो चीज़ें इस्तेमाल की जाती हैं, उनका व्यवहार बहुत कठिन है, परन्तु उनसे जो कारीगरी पैदा होती है, वह संसारमें सबसे बढ़िया होती है। हमारे यहाँ लुकके काममें केवल नाना रंगकी लाख ही व्यवहार की जाती है।

भारतीय लुककी चित्रकारी—सिन्धु-प्रदेश

जिस काठपर लुकका काम करना होता है, पहले उसपर रेगमाल कागज़ घिसकर अथवा उसे खरादपर चढ़ाकर एकदम चिकना कर लिया जाता है। फिर उपयुक्त रंगकी लाख उसपर बड़ी तेज़ीसे घिसी जाती है। घिसनेकी गर्मीसे लाख बहुत थोड़े परिमाणमें गलकर काठपर लेपकी भाँति चढ़ जाती है। इस प्रकार लाख चढ़ाकर ताड़ या खजूरकी डालके खण्डों-द्वारा उस लाखके लेपको घिसकर उसपर फिरसे पालिश की जाती है। फिर तेल लगाकर समूचे काठको मलते हैं। इसके बाद इसी उपायसे भिन्न-भिन्न रंगोंकी लाखका एकके ऊपर दूसरा 'कोट' (तह) चढ़ाया जाता है। धीरे-धीरे काठपर

जापानी लुककी चित्रकारी—प्रसिद्ध शिल्पी रिट्सुयोंका बनाया हुआ

इस प्रकारकी चार-पाँच या इससे भी अधिक तहें चढ़ाकर समूने काठको ढक दिया जाता है।

अब शिल्पी अपना खोदनेवाला औज़ार (रुखानी) लेकर उससे चित्रकारी करता है। वह पहले चित्रकारीका नक्शा बना लेता है। फिर उस नक्शेमें जिस अंशको वह जिस रंगमें रखना चाहता है, उस अंशकी ऊपरकी तहें खुरचकर वह भीतरसे इच्छित रंग प्रकट कर देता है। मान लीजिये, किसी चीज़पर पहली तह हरे रंगकी, दूसरी लाल तीसरी पीली, चौथी नीली और सबके ऊपर काली है। जिस अंशको कारीगर हरे रंगमें दिखाना चाहता है, उसपरसे वह क्रमशः काली, नीली, पीली और लाल तहोंको खुरच देगा। पीले रंगके लिए काली और नीली तह खुरचेगा। चित्रकी ज़मीन सबसे ऊपरके रंग—काली—की होगी। कभी-कभी 'ज़मीन' के लिए रंगीन रांगा (Tinfoil) या अबरकके टुकड़े वार्निशकी सहायतासे चढ़ाये जाते हैं। सब काम समाप्त हो जानेपर, ऊपरसे स्वच्छ वार्निशका 'कोट' देकर अन्तिम 'फिनिश' की जाती है।

किसी-किसी प्रान्तमें स्पिरिटमें रंगीन लाख घोलकर उसीसे लुकका काम किया जाता है। भारतमें इस प्रकारका लुकका काम सिन्ध, राजपूताना, पंजाब, काश्मीर (काश्मीरमें काग़ज़के 'पल्प'—Papier mache—से बनाई चीज़ोंपर बड़ा बढ़िया लुकका काम होता है); युक्तप्रदेशमें बनारस, बरेली; दक्षिणमें मदरास, कर्नूल, मैसूर, सावन्तवाड़ी आदि स्थानोंमें होता है।

यूरोपियन लुककी चित्रकारी—प्रसिद्ध अभिनेता डेविड गैरिककी अलमारीका एक पल्ला

बर्मामें काठपर लुकका काम बहुत प्रचलित है। वहाँपर तो गृहस्थीकी साधारण चीज़ों और धातुके बने बर्तनों तकपर

जापानी लुककी चित्रकारी फुजिवारा-युग (नौ वीं शताब्दीसे ग्यारह वीं शताब्दी तक)

लुकका काम दिखाई पड़ता है। वहाँ काठ, बाँस और बेतकी खपाचों-द्वारा बिने हुए समानपर भी लाख अथवा वार्निशके द्वारा लुकका काम होता है। बर्मामें इसका बहुत अधिक प्रचार होनेसे वहाँके कारीगरोंमें उत्साह अथवा खरीदारोंकी कमी नहीं है, इसलिए वहाँका लुकका काम सम्पूर्ण भारतके लुकके कामसे बढ़िया होता है। इस देशके कारीगरोंको यदि प्रोत्साहन दिया जाय, तो उनका काम कैसा होगा, इस बातके उदाहरण कुछ राजमहलोंके असबाबोंमें मिलते हैं।

इस देशके दो-एक स्थानोंमें अब भी शिल्पियोंके कई एक घर ऐसे हैं, जिनकी कारीगरी उपर्युक्त पद्धतिसे एकदम विभिन्न है। राजपूतानेके शाहपुरे नामक क़सबेमें शिल्पियोंके कई घर हैं (कुछ दिन पहले तक थे)। वे ऊँट और गैंडेकी खालकी बनी हुई ढालों और तलवार आदि शस्त्रोंके म्यानोंपर लुकका काम करते हैं। उन लोगोंकी कारीगरीका ढंग निराला है। रंगीन लाखसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं

भारतीय लुककी कारीगरी सिन्ध-प्रदेश

है। वे पेड़ोंसे निकली हुई राल या गोंदके समान अनेक चीज़ोंको नाना प्रकारके तेलोंमें मिश्रित करके कई प्रकारकी वार्निश तैयार करते हैं। इस वार्निशमें तरह-तरहके रंग मिलाकर वे रंग-बिरंगे लुकका काम करते हैं। चमड़ेकी चीज़ोंको अच्छी तरह घिसकर साफ करके उसपर लुक किया जाता है। लुक सूख जानेपर उसपर घिसाई और पालिश करके चमकदार बनाया जाता है। बादमें आवश्यकतानुसार एक या दो बार और भी विभिन्न रंगोंका लुक किया जाता है, और उन सबके सूख जानेपर अन्तमें ज़मीन तैयार की जाती है। फिर अनेक रंगोंकी अपेक्षाकृत गाढ़ी वार्निश और सोनेके पत्तर आदिसे उसपर चित्रकारी की जाती है। चित्रकारीके बाद उसपर क्रमसे नाना प्रकारके रंगों और नाना प्रकारकी छायाके पचीस-तीस लेप चढ़ाये जाते हैं। कभी-कभी कई लेप चढ़ाकर चित्रकारी की जाती है, और फिर लेप चढ़ाकर उसपर पुनः चित्रकारी की जाती है। इस प्रकार तह-पर-तह चढ़ाकर और थोड़ी-थोड़ी चित्रकारी करके काम समाप्त किया जाता।

मदरास-प्रान्तके गंजाम, कृष्णा और कर्नूल ज़िलोंके कुछ कारीगरोंकी प्रथा इससे भिन्न है। वे हरिणकी खालके टुकड़ोंको पानीमें भिगोकर तथा उन्हें उबाल-छानकर एक तरहका सरेस तैयार करते हैं। इस सरेसमें एक प्रकारकी सफेद पिसी हुई राल (Dammer) पानीके साथ मिलाकर एक लेई-सी तैयार करते हैं। इस लेईमें मिट्टीकी हाँडीकी टुकड़ियोंकी महीन चूर तथा घीग्वारका रस मिलाकर एक लेप बनाया जाता है। जिस चीज़पर चित्रकारी करनी होती है, उसे साफ करके कूँचीके द्वारा इसी लेपसे चित्रकारी की जाती है। इसमें चित्रकी रेखाएँ उभरी हुई होती हैं। चित्रकारीके बाद एक पोत सफेद 'तैल-रंग' का दिया जाता है। फिर सम्पूर्ण ज़मीनको चाँदीके पत्तरसे ढककर अंकित भाग तरह-तरहके तेल-रंगोंसे रंगे जाते हैं।

लुकके कामका एक पर्दा (Screen)

सिन्धके लुकके कामका एक पाया

यह तो कहा चुका है कि चीन-जापानका लुकका काम सबसे बढ़िया होता है। उन देशोंमें इस कामके लिए मुख्य चीज़ 'उरूसी' नामक वृक्षसे निकली हुई राल है। यह राल पेड़के सभी भागोंसे निकलती है, तथा उसे भिन्न-भिन्न प्रकारसे आँचमें चुरानेसे उसमें भिन्न-भिन्न गुण पैदा होते हैं। कसीस, सिरका आदि भिन्न-भिन्न चीज़ोंको इस रालमें मिलानेसे वह साफ होती है और उसमें भिन्न परिमाणमें तरलता और चमक आदि गुण पैदा होते हैं।

जापानी शिल्पी पहले काठकी चीज़को बनाकर तैयार कर लेते हैं। फिर उरूसीकी साफ की हुई वार्निशकी सहायतासे उस चीज़के धरातलपर ठस बुनावटका एक कपड़ा चढ़ाते हैं। फिर इसी वार्निशमें कुछ चीज़ें मिलाकर एक लेप-सा बनाते हैं और कपड़ेके ऊपर उस लेपके दो-तीन

अस्तर चढ़ाते हैं। इस अस्तरके सूखनेपर उसे शान-पत्थरसे घिसकर अच्छी तरह मांजते हैं।
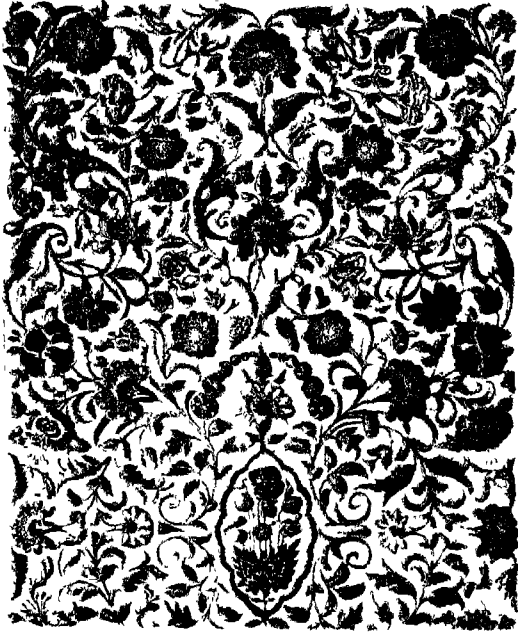
कर्नूलकी लुककी चित्रकारी

अब असली लुकका काम शुरू होता है। छोटे मुलायम बालोंकी (आदमीके बाल भी इस काममें आते हैं!) चपटी कूँचीसे शोधी हुई उरूसी वार्निशकी एकसी तह उस चीज़पर चढ़ाई जाती है। इसके बाद, गीली दशामें ही उस चीज़को एक गर्म और गीली अलमारी या बक्समें रखकर उसे सुखाते हैं।

उरूसी वार्निशकी एक विशेषता यह है कि वह गर्म, परन्तु नम हवामें बहुत अच्छी तरह सूखती है। फिर एक बार सूख जानेके बाद हवा, पानी या गर्मी—(१६० सेंटीग्रेड तककी!)—किसी चीज़से वह नष्ट नहीं होती। सूखनेपर लकड़ीके कोयलेके चूरेसे घिसकर उसकी मँजाई होती है। एक लेप चढ़ाने, उसके सूखने और मंजाई आदिमें पाँच दिन तक लगते हैं। इस प्रकार चित्र-हीन लुकके काममें तीससे लेकर सत्तर-अस्सी तक अस्तर चढ़ाये जाते हैं!

चीन और जापानमें चित्रकारी करनेके तरह तरहके तरीक़े प्रचलित हैं। प्रत्येक अस्तरमें भिन्न-भिन्न रंगके लेप चढ़ाकर, ऊपरसे तहें काटकर भारतकी भाँति भीतरके रंग प्रकाशित करना; काठकी सतहको खोदकर उसमें रंग भरना तथा ज़मीनको रुपहला, सुनहला बनाना या सीपी जड़कर सजाना, भिन्न रंगोंको मिलाकर—बहुत गाढ़ीसे लेकर बहुत पतली तक—उरूसी वार्निश तैयार करना और उससे उभरे हुए या साधारण चित्र बनाना; चित्रोंमें चमकती धातुके टुकड़े, खनिजपदार्थ, सीपी और घोंघे
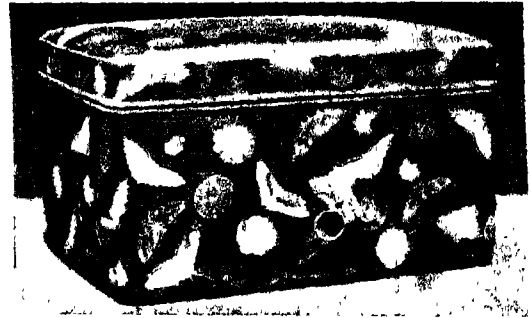
जापानी लुकका काम (बारहवीं शताब्दी)

आदि जड़ना—इस प्रकार नाना भाँतिकी कारीगरीके उदाहरण जापानमें पाये जाते हैं।

चीन देशमें लुककी कारीगरीकी अनेकों प्रथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें कोरोमंडल-प्रथा सबसे प्रसिद्ध है। इस प्रथाके अनुसार पहले काठको साफ करके उसपर सफेद मिट्टी और वार्निशके बने हुए एक लेपके अस्तरपर अस्तर चढ़ाये जाते हैं, फिर ऊपरसे एक काली वार्निशके कई पोत दिये जाते हैं, जिससे चीज़ काले रंगकी दिखाई पड़ने लगती है। चित्रकारीके लिए शिल्पी रूखानीसे ऊपरकी काली वार्निश खुरचकर नीचेका सफेद रंग निकालता है, फिर उसी खुले अंशपर नाना प्रकारके रंगोंसे चित्रकारी करके उसे समाप्त करता है। सौन्दर्यके हिसाबसे इस प्रकारका लुकका काम बड़े ऊँचे दरजेका होता है, परन्तु पायदारीमें वह जापानी शिल्पसे मीलों दूर है।

यूरोपमें चीनी और जपानी लुककी चीज़ोंका बहुत

दिनोंसे आदर है। वहाँवालोंने चीनी और जापानी प्रथाकी नक़ल भी आरम्भ की है; मगर चीनी और जापानी शिल्पियोंका धीरज, उनकी पुश्तहा-पुश्तकी जानकारी तथा उम्दा वार्निशके अनेकों गुप्त गुर उन्हें कहाँ नसीब? इसलिए यूरोपियनोंके लुकके काम केवल नक़ल-मात्र है, उनमें विशेष कारीगरी नहीं है। वे स्पिरिटमें नाना प्रकारके रंग, चपड़ा और राल आदि चीज़ें मिलाकर लेप तैयार करते हैं। काठको साफ करके पहले उसपर एक पोत चपड़ेकी वार्निशका करते हैं। फिर मोटे ब्रशसे जिलेटिन, सफेदा और पानीके मिश्रणसे बने हुए एक लेपका अस्तर चढ़ाया जाता है। इस अस्तरपर चपड़ेकी वार्निशका कोट देकर प्मिस पाउडरसे माँजते हैं। इसी प्रकार चार-पाँच तहें चढ़ाकर तेल-रंगों (Oil Colour) से साधारण तेल-चित्रोंकी भाँति उसपर चित्रकारी की जाती है। सूखनेपर उसके ऊपर तेल-वार्निशकी एक तह चढ़ा देने ही से यूरोपियन लुकका काम समाप्त हो जाता है।

लुककी चित्रकारी ललित कलाके प्रधान अंगोंमें नहीं है। उसकी गणना लघु-कला (Minor Art) में है; परन्तु चीनी और जापानी लुककी चित्रकारीमें शिल्पियोंकी सीधी दृढ़ रेखाएँ, रंगोंका मिश्रण और उनका असाधारण सामञ्जस्य, छाया-प्रभेदका ज्ञान उनके उज्ज्वल और निष्प्रभ तथा शीतल और उष्ण वर्ण (Warm and cold colours and tones) एवं परस्पर विरोधी (Contrasting) रंगोंकी स्वाभाविक विशिष्टता आदि देखकर यह प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि ललित कलाके दरबारमें उनका आसन काफ़ी ऊँचा है।

आह्वान

श्रीयुत मधुसूदनप्रसाद मिश्र

आओ, आओ, हृदय बीनकी
ओ मेरी मृदु पंचम तान!
शून्य दिशाओंमें, समीरमें,
भर दो फिरसे नूतन गान।

आओ, मेरे मानस-सरकी—
चपल, मृदुल, लघु शुचि हिलकोर!
तेरे ही सँग विकल विश्वमें
हो जाऊँ आनन्द-विभोर।

मेरी प्रतिभाकी नन्हीं-सी
अरी बालिके, ओ नादान!
अपनी तुतली-सी बोलीमें,
विश्व-हृदयका कर आह्वान।
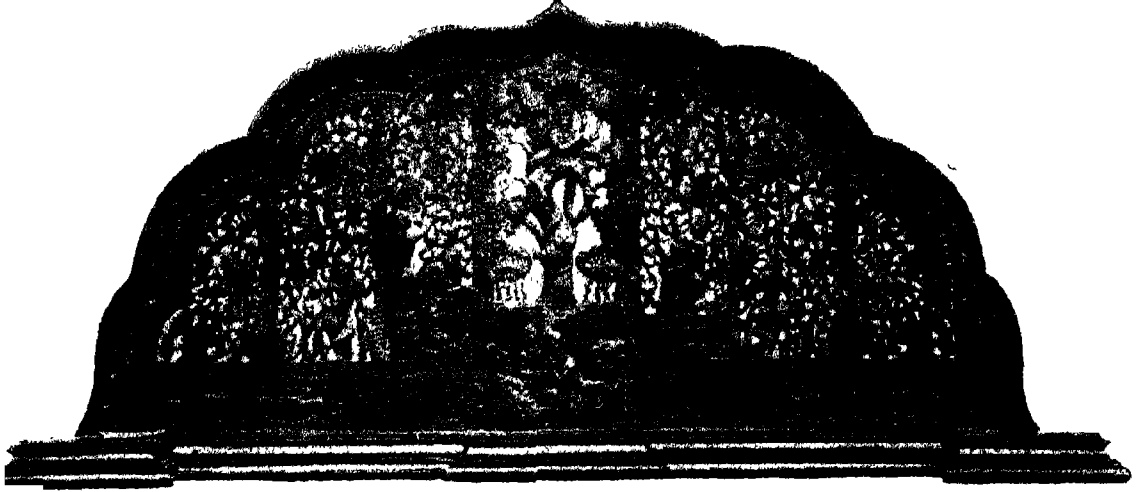
लकड़ीपर शिल्पका काम

सृष्टिके आदिसे मानव-जाति और लकड़ीका घनिष्ठ सम्बन्ध चला आता है। आदिम कालमें भी मनुष्य—जब एकदम असभ्य अवस्थामें थे, और जब मेज़, कुरसी, बक्स, तिपाई, पलंग आदिका नाम भी न जानते थे, उस समय भी—कमसे-कम आग बनानेमें और सहारे तथा रक्षाके लिए लाठी-डंडा लेनेमें लकड़ीका उपयोग करते रहे हैं। इस लौह-युगमें भी संसारके प्रत्येक देशमें, नहीं, प्रत्येक घरमें, किसी-न-किसी रूपमें लकड़ीका व्यवहार होता है। इस लेखमें हम केवल लकड़ीपर ललित शिल्पके कामका ही ज़िक्र करेंगे।

'पिंजड़'के कामका एक ब्रैकेट

वैसे तो सैकड़ों प्रकारकी लकड़ियाँ हमारे काममें आती हैं; मगर शिल्पके कामके लिए कुछ विशेष क़िस्मकी बढ़िया लकड़ियाँ ही व्यवहार की जाती हैं। शिल्पके लिए लकड़ी चुनते समय इस बातका विचार रखना पड़ता है कि लकड़ी रंगमें खूबसूरत, गठनमें सुडौल—गाँठ और रेशाहीन—और व्यवहारमें मज़बूत हो। शिल्पके लिए ऐसी लकड़ी चाहिए, जिसपर आसानीसे पालिश हो सके, जो छेद करने
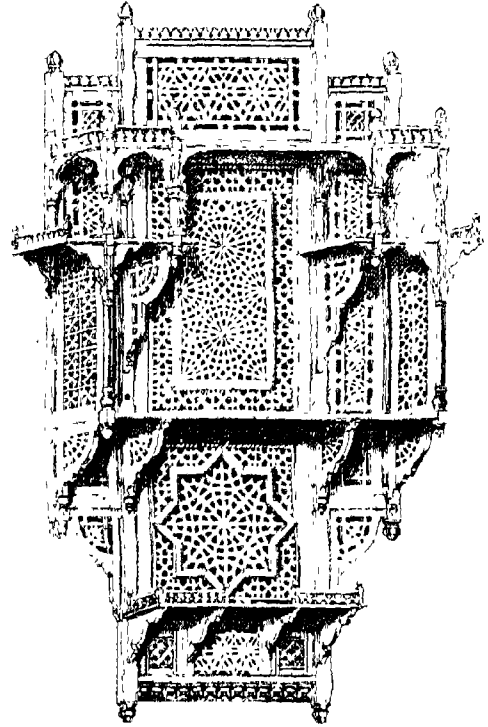
आबनूसपर हाथी-दाँतकी पच्चीकारीके कामकी मेज—देशी मुसलमानी डिज़ाइन

या कील ठोकनेमें फटे नहीं, जो बहुत कड़ी न हो (अर्थात जिसे काटना या जिसपर खुदाई करना बहुत मुश्किल न हो) और जिसमें आसानीसे घुन न लग सके।

भिन्न-भिन्न प्रकारकी चीज़ोंके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारकी लकड़ियाँ इस्तेमाल की जाती हैं। जैसे लचकदार चीज़ोंके लिए विलायती 'ऐश', 'विलो' या 'हिकोरी'; खेलके सामान (क्रिकेटके बैट) और छपाईके ब्लाक आदिके लिए बक्स-काठ (Box-wood) तथा सुगन्धिके लिए चन्दन और कर्पूरकी लकड़ियाँ व्यवहार की जाती हैं। हमारे देशमें प्राचीन कालसे बहुत प्रकारकी लकड़ियाँ काममें आती हैं। 'बृहत-संहिता'में निम्न-प्रकारके काठोंका वर्णन मिलता है—आसन (चिरौंजी), स्पन्दन, चन्दन, हरिद्र, सुरदारु (देवदार), तिन्दुकी (तेन्दू या आबनूस), शाल, काश्मर्य, अंजन, पद्मक (पदम), शाक (सागौन) और

ट्रावनकोरका चन्दनका बना हुआ बक्सका ढक्कन

शीशम। इस समय चन्दन, देवदारु, आबनूस, सागौन और शीशम अधिक प्रचलित हैं। इनमें से सागौन और शीशम ही देशमें सबसे अधिक काममें आते हैं। कारण यह है कि रोजमर्राकी चीज़ें बनानेके लिए ये दोनों उपयुक्त हैं और काफ़ी परिमाणमें मिलते हैं तथा इनपर काम करना आसान भी है।

आबनूस, चन्दन, शीशम अखरोट, आदि लकड़ियाँ मूल्यवान होती हैं, इसलिए जनसाधारण उनका व्यवहार नहीं कर सकते। हमारे देशमें और भी कितनी ही बढ़िया लकड़ियाँ होती हैं, जिनका उचित आदर होना चाहिए; परन्तु साधारण तौरपर लोग उनके गुण नहीं जानते हैं, इसलिए उनका यथेष्ट व्यवहार नहीं होता। इस प्रकारकी लकड़ियोंमें मदरासकी गम्भार (सेवँ), मध्यप्रदेश और दक्षिणकी मेरा (भेरु), सिरस और नैपालकी पानिसाज या सुंगलोच आदि हैं।

विलायती लकड़ियोंमें कुछ बहुत प्रसिद्ध लकड़ियाँ ये हैं—मेहगनी, ओक (सिन्दूर), भिन्न-भिन्न प्रकारका पाइन (चीड़), विलायती अखरोट इत्यादि। इनमें मेहगनी बहुत पसन्द की जाती है, इसलिए इस देशमें भी मेहगनीका नाम अपरिचित नहीं है। बहुतोंको यह नहीं मालूम है कि मेहगनी दो प्रकारकी होती है—हंडूरास मेहगनी (Honduras Mahogany) और स्पेनिश मेहगनी (Spanish Mahogany)। इनमें से पहले प्रकारकी मेहगनीका सिर्फ़ नाम-ही-नाम है, वह कोई मूल्यवान काठ नहीं है। हाँ, स्पेनिश मेहगनी निःसन्देह बड़ी सुन्दर और उम्दा लकड़ी है; मगर हमारे देशका बढ़िया शीतसार या शीशम उत्कृष्टतामें उससे कुछ बढ़कर ही निकलेगा, कम नहीं।

एक बात और भी मज़ेकी है। जब हमारा देशी शीशम जहाज़ोंपर लदकर विलायत जाता है और वहाँ
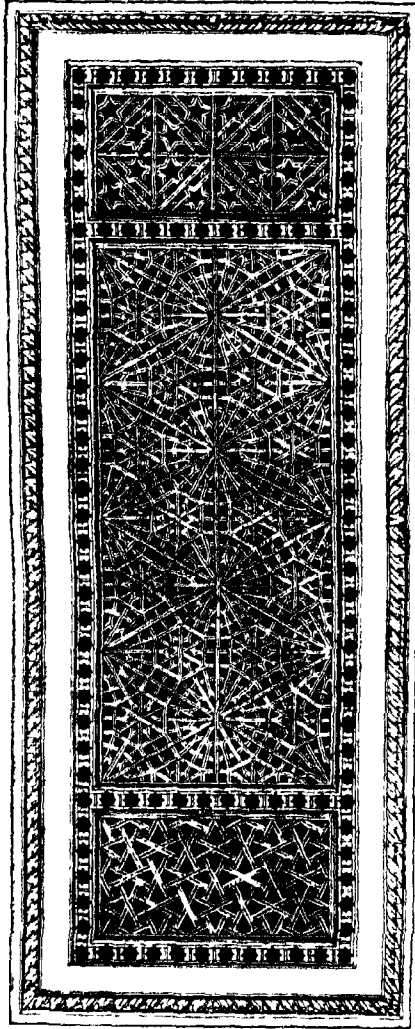
उत्तर-पश्चिम पंजाबका पिंजड़का काम। नक्काशीदार पर्दा

उसका सामान बनकर और 'रोज़उड' का नाम ग्रहण करके पुनः वापस आता है तब उसका स्थान मेहगनीके ऊपर हो जाता है!

जो भी हो, यह बात तो निश्चित है कि हमारे देशमें लकड़ीकी कारीगरीके लिए बढ़ियासे बढ़िया लकड़ियाँ मिलती हैं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि भारतवर्षमें ईंधनकी लकड़ीको छोड़कर, असबाब बनानेके काममें आनेवाली सोलह सौ प्रकारकी लकड़ियाँ मिलती हैं।

लकड़ीपर कारीगरी करनेके तीन मुख्य तरीके हैं—

(१) रंगना—स्वाभाविक और कृत्रिम।

(२) खुदाई करना—हथानीका काम।

(३) मिलाना, जोड़ना तथा बढ़ईगीरीके अन्य काम (Cabinet making)

चतुर शिल्पीगण काठकी किसी चीज़के चित्रकी कल्पना करके इन्हीं उपायों द्वारा उन्हें बनाते और सजाते हैं।

रंगना—रंगके लिए दो बातें होती हैं; एक तो लकड़ीके स्वाभाविक रंगोंकी योजना करके उन्हें रंगीन बनाना, और दूसरे ऊपरसे मन चाहा रंग चढ़ाना। इस देशमें भिन्न-भिन्न वर्णोंके अनेक काठ मिलते हैं, जिनका अपना स्वाभाविक पक्का रंग होता है। इन काठोंका सुविचारपूर्ण जोड़ मिलाकर चित्र-विचित्र रंगकी सुन्दर चीज़ें तैयार की जा सकती हैं। कुछ रंगोंके लिए ये लकड़ियाँ व्यवहारकी जाती हैं।

सफेद रंगके लिए—भेरा, गम्भार (सेवँ) और बुक

पीले रंगके लिए—हलद और कटहल।

लालरक्ताभ रंगके लिए—लाल चन्दन, अंडमान और बर्माका पाडौक तथा हिमालयका तुन।

काले रंगके लिए—आबनूस (तेंदू)

पीताभ गुलाबी रंगके लिए—सागौन, चम्पा, जामुन।

अखरोटके रंगके लिए—काश्मीरी अखरोट।

गहरे लाल रंगके लिए—शिशु, सीतसाल (कालाहव)

गहरे बैंगनी रंगके लिए—सीतसाल।

सफेद और काला मिश्रित तथा पीला और काला मिश्रित रंगोंके लिए—सिरस और अंडमानका जेब्रा आबनूस।

कृत्रिम उपायमें किसी भी लकड़ीपर कोई भी रंग किया जा सकता है, परन्तु यह रंग स्थायी नहीं होता। साथ ही इससे लकड़ीकी रेखाएँ और उसपर की हुई सूक्ष्म कारीगरी भी ढक जाती है, इसलिए अकसर कृत्रिम रंग हानिकारक ही होता है। भिन्न-भिन्न स्वाभाविक रंगकी लकड़ियोंकी बनी हुई चीज़की खूबसूरती स्थायी होती है, और उससे लकड़ीकी
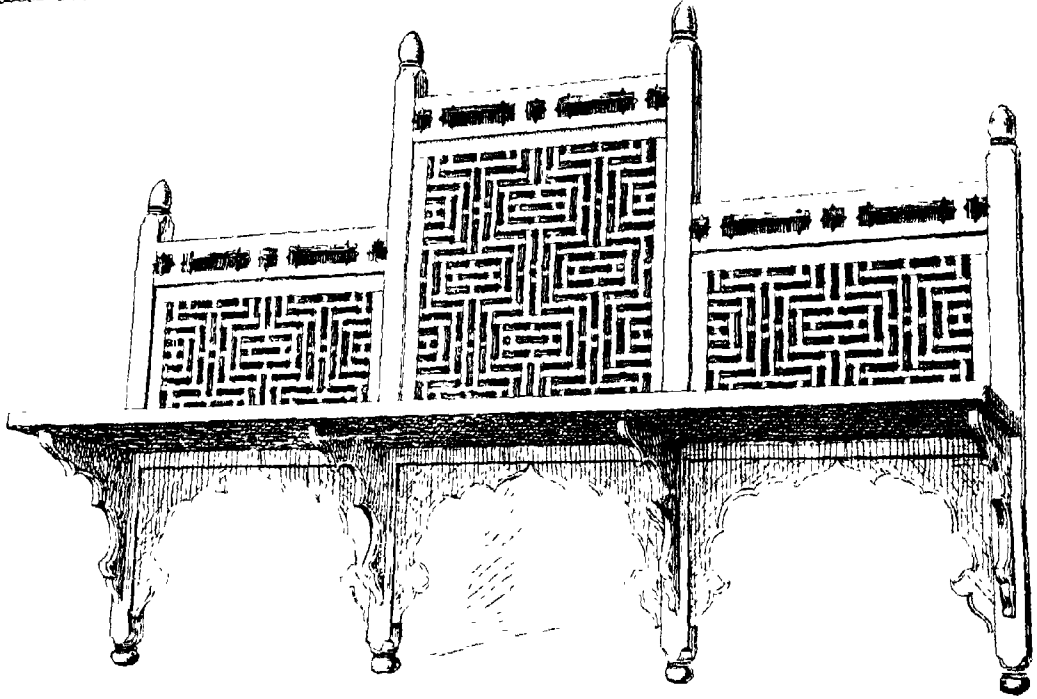
पंजाबका पिंजड़के कामका ब्रैकेट

शोरामें कमी नहीं आती, किन्तु इस प्रकार लकड़ियोंको मिलानेमें बड़ी सावधानीकी जरूरत है, इस बातका बड़ा खयाल रखना पड़ता है कि पक्की लकड़ीके साथ कहीं कच्ची लकड़ी (Unseasoned) न मिल जाय।

लकड़ीकी कारीगरीमें सबसे प्रधान चीज़ है खुदाईका काम। खुदाईके लिए जो औज़ार मुख्यतः काममें आता है, उसे रुखानी या बटाली कहते हैं। परकार, गुनिया, कांटा और बरमा—ये उसके मुख्य सहायक हैं। प्रत्येक प्रकारकी लकड़ीके सामानमें खुदाईका काम थोड़ा-बहुत अवश्य ही होता है, किन्तु रेशोंके अत्यन्त महीन और एकसे न होनेसे रुखानी सब तरफ एकसी नहीं चलती। साथ ही लकड़ी कड़ी न होनेसे महीन कारीगरीका काम रुखानीके धक्केसे ही टूट जाता है। रुखानीके कामके लिए इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि लकड़ी कहींसे फटी या गठीली न हो।

एक इंचके सोलहवें हिस्से लेकर, एक इंचकी चौड़ाईके फलवाली—सीधे और गोल दोनों प्रकारके फलवाली सत्तर-अस्सी रुखानियाँ और बरमे इस प्रकारके काममें व्यवहार किये जाते हैं। हमारे देशके कारीगर केवल बीस-पचीससे ही काम चला लेते हैं।

मामूली चूल काटनेसे लेकर बढ़िया जालीकी खुदाई तकका काम रुखानीसे होता है।

इस प्रकारकी कारीगरीके लिए शिल्पीके हाथका कौशल, उसकी परिकल्पना और सामंजस्यका ज्ञान—ये तीनों बहुत जरूरी हैं। जैसे किसी बड़े काठके टुकड़ेपर मोटा और गहरा काम जितना भला मालूम होगा, छोटे टुकड़ेपर उतना नहीं। फिर सूक्ष्म कारीगरीमें उचित भावसे विशेष सामंजस्य न रखनेसे वह परिमाणमें जितनी अधिक हो जाती है, उतनी ही छाबक-छोबकसी दिखाई देती है।
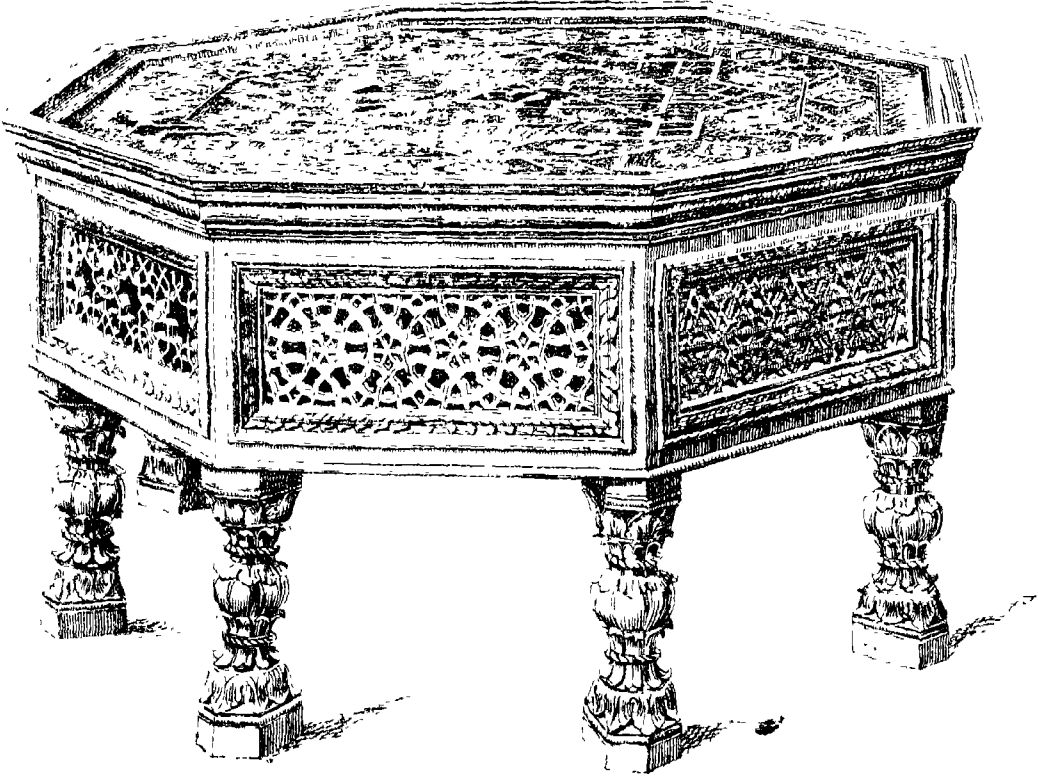
पंजाबकी एक मेज। खुदाईके साथ पिंजड़की जालीका काम, शीशमकी लकड़ीपर।

परिकल्पनामें रेखाओंको जहाँ तक सम्भव हो, दृढ़, स्थूल और सरल (Firm and even) रखना उचित है। टेढ़ी मेढ़ी रेखाओंका काम बन जानेपर यदि सुदृश्य न हुआ, तो आँखोंमें गड़ता है। हाँ, यदि ये वक्र रेखाएँ समान अन्तरपर सामंजस्यका विचार रखकर उचित भावसे डाली जाय, तो वे निःसन्देह दर्शनीय होती हैं।

प्रत्येक देशके शिल्पियोंका किसी विशेष प्रकारकी लकड़ीके ऊपर अधिक झुकाव होता है। इसका कारण यह है कि वे शिल्पीगण जिस लकड़ीपर काम करनेके अभ्यस्त होते हैं, उसे छोड़कर उससे कड़ी या नरम लकड़ीपर उन्हें रुखानीके दबावका अन्दाज़ नहीं मिलता, इसलिए प्रत्येक चोटमें उनसे भूल होनेकी सम्भावना रहती है।

इस देशमें काश्मीरी कारीगर अखरोटकी लकड़ी; पंजाब, संयुक्त-प्रदेश, बिहार, और बम्बईके कारीगर शीशम और दक्षिण—मदरास, मैसूर तथा ट्रावनकोरके शिल्पी चन्दनपर काम करना अधिक पसन्द करते हैं। बर्मामें आबनूस, थिटमिन इत्यादिका और लंकामें आबनूसका चलन अधिक है। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बाबू लोग अंग्रेज़ी प्रभावसे मेहगनी और सागौनके भक्त दिखाई पड़ते हैं।

विदेशोंमें ओक—विशेषकर विलायती ओक—का प्रचार अधिक है। उसके बाद अखरोट, मेहगनी, सिकामोर तथा सस्ते कामके लिए पीले चीड़का व्यवहार प्रचलित है।

खुदाईके काममें पालिश करना उचित नहीं है। इससे महीन काममें और रुखानीकी कारीगरीका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। प्रत्येक देशमें खुदाईके कामके विशेष नक्शे और खोदनेकी विशेष रीतियाँ प्रचलित हैं, जैसे पंजाब

मीतसाल पर खुदाईका काम। लकड़ीके पैंनी एक अंश। अहमदाबाद
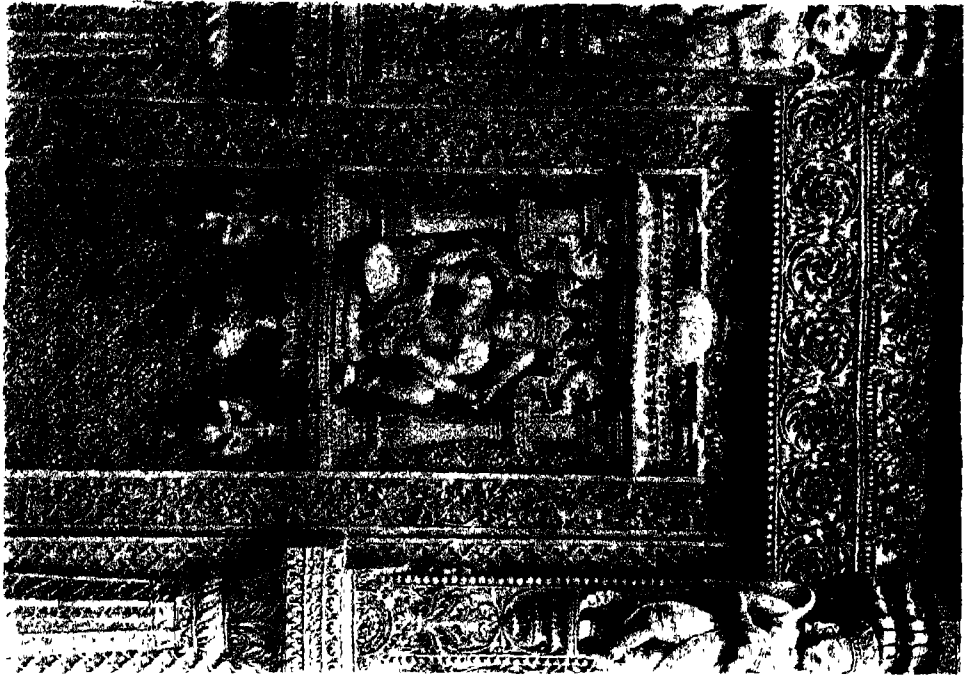
मीतसालकी खुदाई। अहमदाबाद

सीतसालपर खुदाईके कामका ब्रेकट। वक्र रेखाओंकी कारीगरी

ब्रह्मदेशकी खुदाईका काम। प्राचीन लकड़ीपर रामायणका दृश्य।
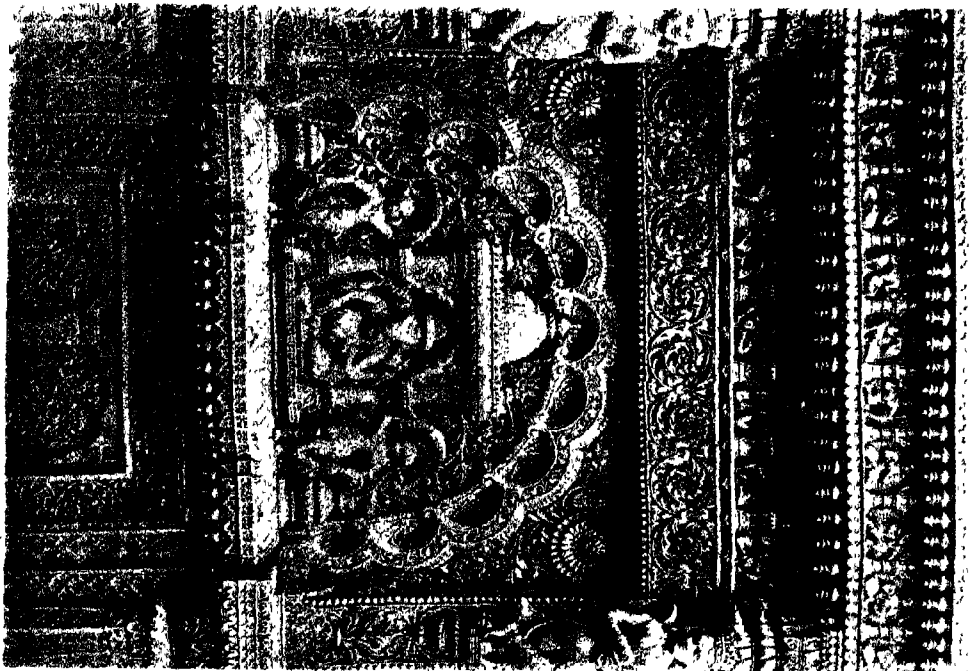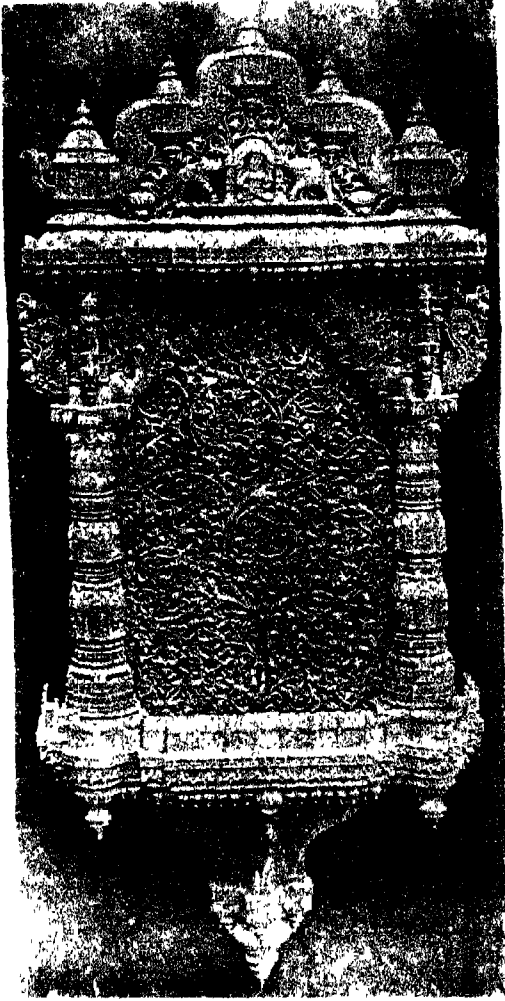
और पश्चिमोत्तर देशमें रेखागणितकी सीधी रेखाएँ डालकर खुदाईका काम किया जाता है, जो 'पिंजड़े' के कामके नामसे पुकारा जाता है। ये सब रीतियाँ प्रधानतः उनदेशोंकी पत्थरकी कारीगरीकी प्रथापर निर्भर करती हैं।

सबसे अन्तमें छिदाई और जुड़ाई करके सामान तैयार करनेका काम (साधारण बढ़ईका काम) है। जो चीज़ बनाना है, उसके नक्शेमें सरल रेखाओं और सम-धरातलकी
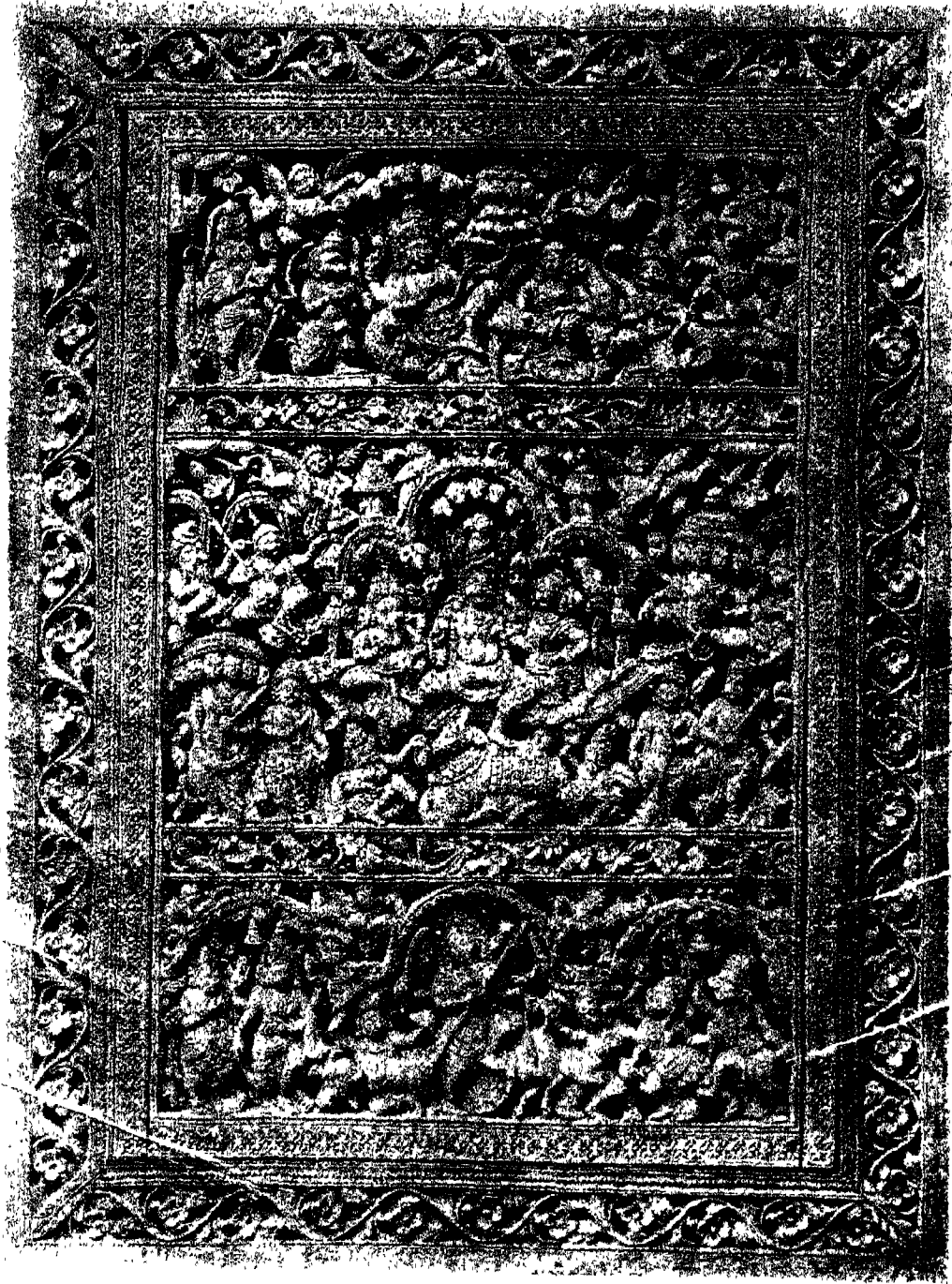
कनाराकी चन्दनकी खुदाईका काम

योजना जितनी अधिक होगी, उतनी ही वह चीज़ सुन्दर बनेगी। टेढ़ी रेखाओं और ढालू धरातलके नक्शोंमें अनुपात और सामंजस्यको ठीक रखना अत्यन्त कठिन काम है। विशेष निपुण शिल्पियों और दक्ष कारीगरोंको छोड़कर औरोंके लिए वह सम्भव नहीं है। आजकल यहाँ बहुतसी चीज़ोंको विलायतके 'चिपेनडेल' ढंगका बनानेकी कोशिश हो रही है। नतीजा यह है कि मकड़ीकी टाँगकी भाँति विचित्र दोगली चीज़ोंकी सृष्टि हो रही है।

प्राचीन कालमें हमारे यहाँ फर्निचरका अधिक व्यवहार नहीं था। पलंग, खाट, पीढ़े और चौकीके अतिरिक्त राज-सिंहासन ही लकड़ीके बनते थे; परन्तु इस प्रकारकी वस्तुओंके जो आकार और नक्शे हमें प्राचीन चित्रोंमें तथा मन्दिरों और गुफाओंमें अंकित पत्थरके शिल्पमें देखनेको मिलते हैं, उनमें सीधी सरल रेखाओंकी योजनाके साथ-साथ अलंकारके लिए टेढ़ी और वक्र रेखाओंका सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है।

काठकी चीज़ोंमें ख़ूबसूरतीके लिए खुदाईका काम करनेमें बड़े धैर्य और संयमकी ज़रूरत है। खुदाईके कामसे साधारण चीज़ें भी बहुत दामी हो जाती हैं, परन्तु बहुत अधिक काममें कभी-कभी सामान, बहुत अधिक गहना पहननेवाली रमणीकी भाँति, भद्दा लगने लगता है।

घरकी सजावटके सामान आदिमें 'रुचि' का विशेष मूल्य है। कुछ लोगोंका विचार है कि अधिक दामी चीज़ होनेमें ही वह ऊँची रुचिकी परिचायक हो जाती है, साथ ही कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अंग्रेज़ी दूकानसे चीज़ ख़रीदनेमें ही सुरुचिकी गारंटी क़रार दे देते हैं। आजकल इस देशमें जो साहबी फ़ैशनका सामान मिलता है, वह धोबीके कुत्तेकी भाँति न तो इस देशकी रुचि ही के अनुसार होता है, और न विलायत हीकी रुचिके अनुसार। विदेशोंमें घरकी सजावटमें बहुत-कुछ सामान व्यवहृत होता है; मगर उसमें एक दूसरेमें सामंजस्य और समता होती है। छोटीसी चीज़ भी सुरुचिपूर्ण और दर्शनीय होनेसे घरकी शोभा बढ़ा देती है। बहुत-सा असंगत असबाब भर देनेसे घरकी शोभा नहीं होती, वह केवल फर्निचरकी दूकान बन जाता है।

काठकी चीज़ोंपर लाखकी सहायतासे नाना प्रकारके रंगोंकी कारीगरीका काम किया जाता है, जिसे 'लुक' का काम (Lacquering) कहते हैं।

जापान, चीन, मंगोलिया आदि देशोंमें और हमारे देशमें इस प्रकारकी रंगाईका काम बहुत प्राचीन कालसे चला आता है। काठपर पहले किसी रंगकी 'ज़मीन' देकर फिर उसे भिन्न-भिन्न रंगोंसे चित्रित करते हैं। चित्रित कर चुकनेके बाद ऊपरसे स्वच्छ तेलकी पालिशका एक कोट चढ़ा देते हैं। इस देशमें इस प्रकारका चित्रण स्थायी नहीं होता और चित्रोंकी कल्पना भी विशेष सरल नहीं होती। हाँ, रंगोंके समावेशसे वह सुन्दर ज़रूर दिखाई देती है। बनारसके काठके खिलौने इस प्रकारके निकृष्ट उदाहरण हैं। खेद है कि देशमें आदर न मिलनेसे इस प्रकारके कारीगरोंकी संख्या भी दिन-दिन कम होती जा रही है।

इस प्रकारके रंगकी कलामें जापानने सबसे अधिक उन्नति की है। उसने इस प्रकारकी रंगाईका एक विशेष प्रकारसे विकास करके उसे चरम सीमा तक पहुँचा दिया है, यहाँ तक कि यूरोपियन भाषाओंमें जापानी ढंगके रंगके लिए 'जापान' शब्द ही क्रियारूपमें (To Japan) व्यवहृत होने लगा है।
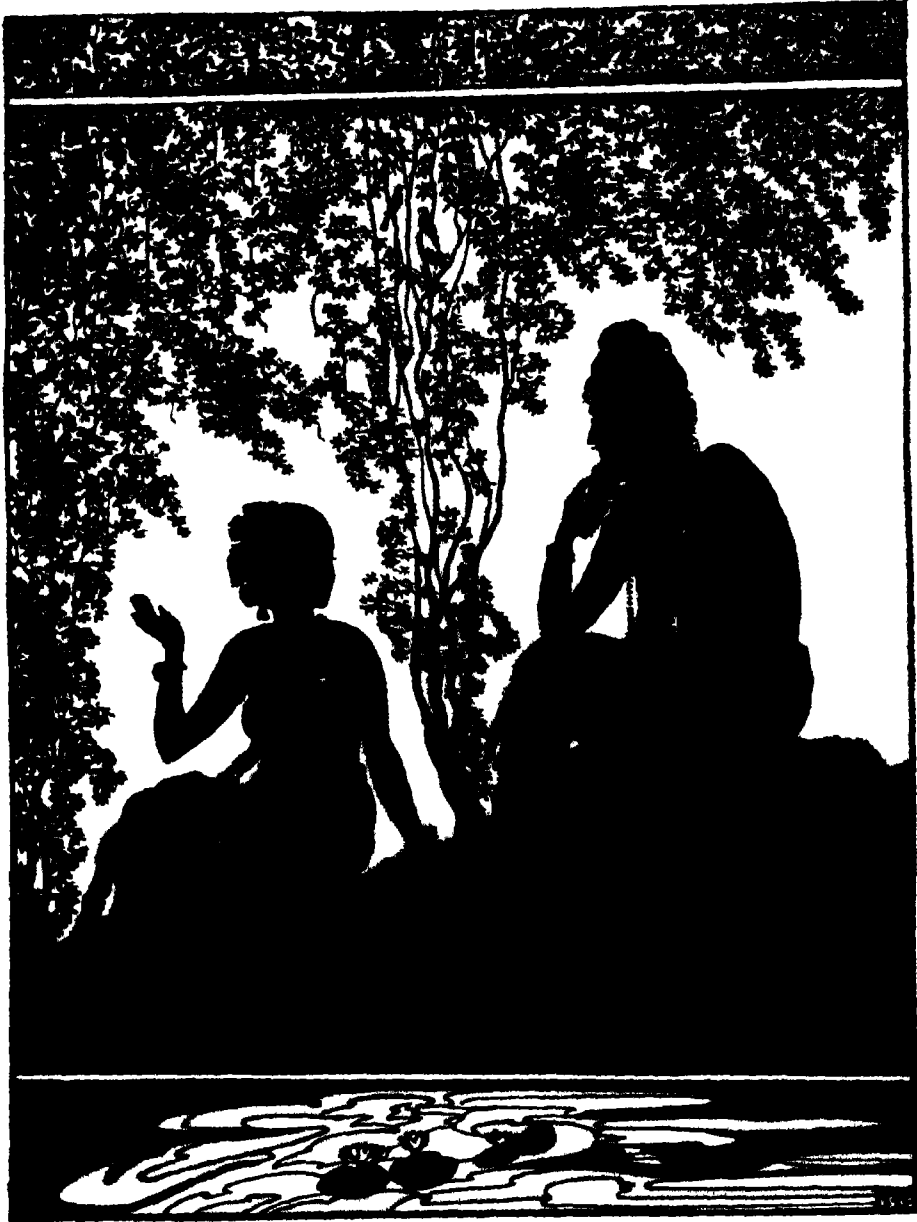
"विशाल-भारत"] पांडु और माद्री [चित्रकार : श्री कनु देसाई

इटेलियन चित्र-कलाकी रूपरेखा

ब्रजमोहन वर्मा

ईसाइयोंकी नज़रोंमें जो स्थान जेरूसलमका है, हिन्दुओंकी दृष्टिमें जो स्थान काशी या प्रयागका है; यूरोपके चित्रकारों और मूर्तिकारोंकी दृष्टिमें वही स्थान इटलीका है। इटली केवल यूरोपके ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पाश्चात्य संसारके कलाकारों और कला-प्रेमियोंका मक्का है। यूरोपके चित्रकारोंकी पढ़ाई और ज्ञान, कुछ दिनों पहले तक, तब तक अधूरा समझा जाता था, जब तक वे इटलीकी तीर्थ-यात्रा न कर आते थे। कुछ दिन पहले तक तमाम यूरोपियन आर्टिस्ट आर्ट-सम्बन्धी प्रत्येक बातमें इटलीका दम भरते थे, और इटेलियन चित्रकारोंके नामकी दुहाई देते थे। यद्यपि आजकल ज़माना बदल गया है, लोगोंकी पुरानी रूढ़ि-प्रियता बहुत कुछ दूर हो गई है, चित्रकार अब इटलीकी ओर मुँह करके क़सम नहीं खाते, फिर भी चित्र-कलाके इतिहासमें इटलीका स्थान सबसे ऊँचा है। आजकल इस नये युगमें इटलीके पुराने मास्टर चित्रकारोंकी बनाई हुई तसवीरोंके मुक़ाबलेकी तसवीर कम मिलेंगी। इटलीकी पुरानी कृतियाँ आज भी संसारमें अनुपम हैं।

कलाके क्षेत्रमें इटलीका इतना नाम क्यों है? शताब्दियोंसे इटेलियन चित्रों और मूर्तियोंका अध्ययन कला-सम्बन्धी सुरुचिकी सर्वोपरि सीढ़ी क्यों समझा जाता रहा है? क्या संसारके अन्य देशोंमें कला थी ही नहीं? यदि थी, तो महत्ताकी पगड़ी इटलीके सिरपर ही क्यों बाँधी जाती है? इन सब प्रश्नोंके उत्तर दो बातोंमें दिये जाते हैं। पहली बात तो यह है कि परिवर्तनशील समयके हाथोंसे आजकल संसारके जिन देशोंमें कला-सम्बन्धी निधियाँ बच रही हैं, उनमें इटलीका भंडार सबसे अधिक भरा-पूरा है। इटलीमें कलाकी जो विभूतियाँ विद्यमान हैं, वे न केवल परिमाणमें ही संसारमें सबसे अधिक हैं, बल्कि उत्कृष्टतामें भी सबसे ऊँचे दर्जेकी हैं। दूसरी बात यह है कि इटलीमें कलाका पूरा विकास हुआ। उसकी उन्नति

ईसाकी माता मेरी—चित्रकार, कोरेज्जो

एक ऐसे नियमित और वैज्ञानिक ढंगसे हुई कि उसकी प्रत्येक मंज़िल प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है, उसके क़दम-क़दमकी कैफियत दी जा सकती है।

कविताकी भाँति चित्रकारी भी एक ईश्वरीय देन है। चित्रकारोंके हाथमें स्वाभाविक कारीगरी और उनकी दृष्टिमें सौन्दर्य ग्रहण करनेकी जन्मजात शक्ति होती है। परन्तु इटलीमें जब लोगोंका ध्यान सुकुमार शिल्प (Fine Arts)की ओर आकर्षित हुआ तब उन्होंने चित्र-कला और मूर्ति-कलाके सिद्धान्तों और उनके अभ्यासको एक सजीव और उत्साहप्रद वाद-विवादका विषय बना दिया। संसारके अन्य देशोंमें मनुष्यके शरीरका ठीक ठीक चित्रण चित्रकारके हाथ और दृष्टिपर निर्भर करता है, परन्तु इटेलियनोंने मानव-शरीरकी नाप जोखमें ज्यामिति और गणितके सिद्धान्त लगाये, और

महाकवि दान्ते—रोमके सेन्टपीटर्स गिरजेकी दीवारपर रैफल द्वारा अंकित

फिर शरीर-विज्ञानके अनुसार मनुष्यके अंग-प्रत्यंगोंका अनुपात, लम्बाई चौड़ाई आदि निर्धारित की। इस प्रकार जो बात विशेष व्यक्तियोंकी जन्मजात स्वाभाविक प्रतिभापर निर्भर करती थी, उसने एक प्रत्यक्ष वैज्ञानिक रूप धारण कर लिया। इससे यह मालूम हो गया कि स्वाभाविक प्रतिभाके रहते हुए भी यह कला कुछ अंशोंमें अध्ययनसे भी प्राप्त की जा सकती है।

इटेलियन चित्रकारोंने चित्र-कलाके इन वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी दृढ़ नींवपर जब अपनी जन्मजात स्वाभाविक प्रतिभाकी करामात दिखाई, तब तो इटेलियन चित्रोंमें चार चाँद लग गये। इस वैज्ञानिक मार्गपर चलनेसे वहाँकी कला प्रत्येक पीढ़ीमें उत्तरोत्तर विकसित होती गई। प्रत्येक पीढ़ीने अपनेसे पूर्व पीढ़ीके छोड़े हुए सिद्धान्तों और शिल्प-विज्ञानमें कुछ-न-कुछ वृद्धि की, इसीलिए हमें इटेलियन चित्र-कलामें प्रत्येक पगपर यह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है कि

एक तरुणी—चित्रकार, लियोनार्डो

जोवना टोर्नाबुयानि, फ्लोरेन्सकी एक भद्र महिला
चित्रकार, गिरिलैन्डाइयो

यहाँ तक इतनी उन्नति हो चुकी थी और इतनी बाकी थी। इस प्रकार इटेलियन चित्र-कलाका अध्ययन करनेसे हमें कलाके समस्त अन्तर्गत सिद्धान्त ज्ञात हो जाते हैं।

ईसा मसीहकी नवीं-दसवीं शताब्दीसे लेकर सत्रहवीं शताब्दीके बीचका संसार बहुत ही अनुदार और संकुचित विचारोंसे परिपूर्ण रहा है। इस युगमें प्रायः संसारके अधिकांश देशोंमें धार्मिक कट्टरता, अनुदारता और असहिष्णुताका दौर-दौरा रहा, इसलिए इस कालमें मानव-जातिका कार्यक्षेत्र एक परिमित परिधिके ही भीतर रहा है।

इटेलियन पेंटिंगोंमें यह संकीर्णता प्रत्यक्ष-रूपसे दिखाई देती है। ईसाकी तेरहवीं शताब्दीसे लेकर सत्रहवीं शताब्दी तकके इटलीके अधिकांश चित्र, आजकलकी भाँति, चित्रकारोंकी स्वतंत्र कल्पनाकी उत्पत्ति नहीं हैं। वे कुछ धराऊ विषयोंको चित्रित करनेके लिए ही बनवाये गये हैं। इन विषयोंमें तत्कालीन धार्मिक बातोंकी ही प्रधानता है। इस समयके अधिकांश चित्र प्रभु ईसा मसीह, उनकी माता मेरी, अन्यान्य ईसाई सन्तों तथा धार्मिक इतिहासके कुछ अन्य दृश्योंके ही हैं। धार्मिक पुस्तकोंमें इन विषयोंका जो विवरण दिया है, बेचारा चित्रकार उसी विवरणके दायरेमें बन्द था, उसे वही बँधी गत बजानी पड़ती थी। उसमें उसे कल्पनाकी स्वतन्त्र उड़ानके लिए गुँजाइश न थी। फल यह होता था कि बेचारे छोटे चित्रकारोंको अपने पूर्ववर्ती चित्रकारोंकी कृतियोंको केवल दोहराकर ही सन्तोष करना पड़ता था। उनमें बड़े और प्रतिभाशाली व्यक्ति वे थे, जो उन पुराने और सैकड़ों बारके दोहराये हुए विषयोंमें भी कोई मौलिक नवीनता—जीवन-सम्बन्धी, आकार-सम्बन्धी अथवा डिज़ाइन या रंगकी नवीनता—उत्पन्न कर देते थे। साथ ही

गैलाटिया, एक ग्रीक कथानकका दृश्य—चित्रकार, रैफल

ईसा—चित्रकार, लियोनार्डो

यह नवीनता ऐसी होनी चाहिए थी, जो तत्कालीन कला-सम्बन्धी रुचिके एकदम प्रतिकूल भी न हो।

इस प्रकार इटेलियन चित्र-कलामें वे ही लोग या स्थान प्रधान माने जाते हैं, जिन्होंने इस प्रकारकी कोई मौलिक नवीनता—जो आगे भी उपयोगी सिद्ध हो और काम आ सके—उत्पन्न की है। जो लोग दूसरोंकी उत्पन्न की हुई नवीनताको ग्रहण करते थे, अथवा उस ग्रहण की हुई नवीनतामें और भी पालिश करके अपनी कृतियोंको नवीनता-उत्पादक कारीगरकी कृतिसे भी सुन्दर बनाते थे, उनका स्थान गौण ही है। वे अगली पंक्तिमें शुमार नहीं किये जाते। उदाहरणके लिए इटलीके मिलान और सीना नामक नगरोंकी चित्र-कला अधिकांशमें अनुकरणशील—दूसरोंकी नक़ल-मात्र—है, यद्यपि वहाँकी कृतियाँ बड़ी सुन्दर हैं। इसलिए इटेलियन चित्र-कलाके इतिहासमें उनका स्थान महत्वहीन है।

इटेलियन चित्र-कलाका महत्व समझनेमें हमें कई बड़ी-बड़ी दिक़्क़तोंका सामना करना पड़ता है। पहली बात तो यह है कि इटलीके अनेकों प्रसिद्ध-प्रसिद्ध और बड़े-बड़े चित्र इटली ही में सुरक्षित हैं। वे वहाँसे बाहर नहीं जा सकते, अतः उनको प्रत्यक्ष आँखोंसे देखे बिना हम लोगोंको उनकी पूरी कल्पना नहीं हो सकती। उनके बड़ेसे बड़े फोटो उतारनेपर भी उनमें असली चित्रकी बात नहीं आती, फिर रंगके न रहनेमें चित्रका अधिकांश चमत्कार ग़ायब हो जाता है। छोटा फोटो होनेसे उनकी समस्त सूक्ष्मताएँ नष्ट हो जाती हैं। इन फोटोंसे जो सादे ब्लाक साधारण काग़ज़पर छपते हैं, उनमें असली चित्रके सौन्दर्यका सौवाँ भाग भी मुश्किलसे रह जाता है। इस लेखके साथके चित्र देखते समय पाठकगण इस बातको ध्यानमें रखें।
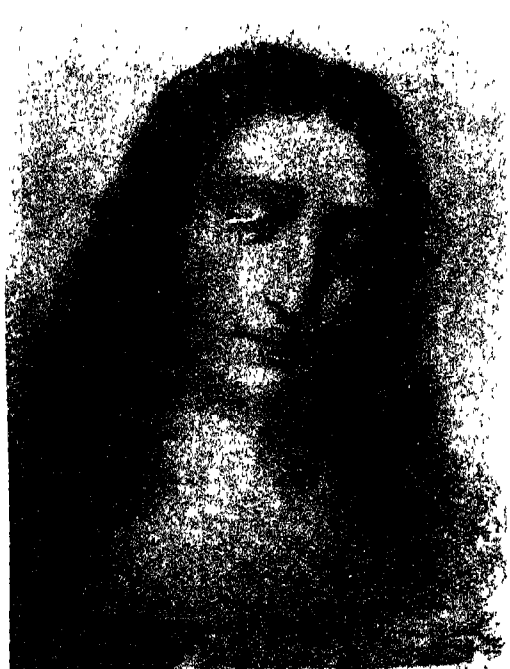
उन प्राचीन चित्रोंकी कला समझने और उनका सौन्दर्य निर्धारित करनेमें दूसरी बड़ी भारी अड़चन है हमारी दृष्टिकी। कैमेरेके आविष्कारने गत साठ वर्षोंमें चित्र-संसारमें एक

ऊर्बिनोके ड्यूक और डचज—चित्रकार, पियरो देला फ्रांचेस्को

कान्ति-सी कर दी है। आजकल हम लोगोंकी आँखें कैमरेसे ली हुई तसवीरों और सचित्र अखबारोंकी ऐसी आदी हो गई हैं कि हम एकाएक इन पुराने चित्रोंका सौन्दर्य नहीं समझ सकते। हमारी दृष्टिमें वे भद्देसे दिखाई देते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम इन चित्रोंको उन लोगोंकी दृष्टिसे देखें, जिनके लिए ये चित्र बनाये गये थे। यदि हम ऐसा कर सकें, तो हम इन चित्रोंकी असली कलाको समझ सकेंगे। साधारण संगीत न जाननेवाले व्यक्तिको किसी बड़े संगीतज्ञका पक्का उस्तादी गाना प्रायः बिलकुल नीरस-सा जान पड़ता है; परन्तु वह व्यक्ति जितना ही अधिक संगीत जानता जायगा, उसे उस पक्के गानेमें उतना ही अधिक आनन्द, उतना ही अधिक रस आता जायगा। ठीक यही बात चित्र कलाके सम्बन्धमें भी है।

एक बात यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि इस मध्य-युगमें इटली किसी एक राजाके अधीन नहीं रही। वह अनेकों छोटी-छोटी रियासतोंमें विभाजित रही, जिनमें अकसर लड़ाइयाँ होती रहती थीं, इसलिए इटेलियन चित्र-कलाका कोई एक केन्द्र नहीं रहा। प्रायः प्रत्येक रियासतमें चित्र-कलाका अपना स्वतन्त्र स्थान था। इन रियासतोंकी आपसकी दिन रातकी लड़ाइयोंके कारण भिन्न-भिन्न स्थानोंकी चित्र-कलामें प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी कम रहा। इसलिए एक ही कालके दो विभिन्न स्थानोंके चित्रोंमें अन्तर

ईसा और मरी

मिलानकी एक भद्र महिला—चित्रकार, अम्ब्रोजो डा प्रेडिस

पाया जाता है। अतः इटेलियन चित्र-कलाके विद्यार्थीको किसी भी चित्रका अध्ययन करते समय दो बातोंका ध्यान रखना चाहिए ; एक तो यह कि चित्र किस कालका है और दूसरे यह कि किस स्थानका है।

प्रायः प्रत्येक स्थानकी अथवा प्रत्येक जातिकी कलामें कुछ अपनी निजी विशेषता होती है। चित्र-कलामें इस प्रकारकी विशेषता रखनेवाली शैलीको अकसर 'स्कूल'के नामसे पुकारते हैं। उदाहरणार्थ आजकल बंगालमें कलाका जो पुनरुद्धार हो रहा है, वह आधुनिक *'बंगाल स्कूल'*के नामसे प्रसिद्ध है। अथवा यों समझिये कि भारतके पुराने चित्रोंमें दो प्रत्यक्ष शैलियाँ दिखाई देती हैं। एक तो वह जो ठेठ स्वदेशी है, जिसमें विदेशीपन नहीं है, और दूसरी वह जो पर्शियन कलाका अनुकरण है। पहलीको लोग 'राजपूत-स्कूल' और दूसरीको 'मुग़ल-स्कूल'के नामसे पुकारते हैं।

इस प्रकार इटेलियन चित्र-कलामें भी अनेकों 'स्कूल' हैं। प्रायः प्रत्येक रियासतमें एक या अधिक 'स्कूल' मौजूद हैं, इसलिए इटेलियन चित्र-कलाका अध्ययन और भी कठिन हो जाता है। हाँ, इतनी ग़नीमत है कि इन 'स्कूलों'का चरम उत्थान और उनकी प्रधानताका दौर-दौरा विभिन्न कालोंमें रहा है। इससे कुछ सहूलियत होती है।

इटेलियन चित्र-कलाके निम्न-लिखित प्रधान केन्द्र रहे हैं—फ्लोरेन्स, सीना, पडुआ, फेरारा, रोम, मिलान, पर्मा, वेनिस, बोलोगना, नेपल्स।

इन सब स्थानोंकी स्थानीय प्राकृतिक स्थितिने भी वहाँके चित्रोंमें कम प्रभाव नहीं डाला है। वेनिसके समुद्र और *फ्लोरेन्सके पास कराराकी संगमरमरकी खानोंने इन स्थानोंके* चित्रोंपर अपनी-अपनी विशेषताएँ उत्पन्न की हैं।

इटलीकी प्राचीन कलासे यह प्रकट होता है कि उसने यह विद्या ग्रीक लोगोंसे सीखी है। इटलीके जो प्राचीन *चित्र और मूर्तियाँ मिलती हैं उनमें ग्रीक स्टाइल* साफ़ जान

रैफल द्वारा अंकित फ्रेस्कोका एक अंश

पड़ती है। इटेलियन कलाकारोंने आदिमें ग्रीक प्रणालीपर चित्र बनाये, ग्रीकोंके अनेक देवताओंको ईसा और ईसाई सन्तोंका रूप दिया।

तेरहवीं शताब्दीमें इटलीमें धीरे-धीरे ईसाई धर्मकी शक्ति बढ़ी, पादरियोंका दौर-दौरा हुआ और जगह-जगहपर अनेकों नये-नये गिरजे बनने लगे। गिरजे बनानेवालोंने उनकी सजावटके लिए चित्रकारोंकी नियुक्ति की। इस प्रकार आदिमें गिरजे और पादरी लोग चित्रकारोंके मुख्य आश्रयदाता हुए। उस समयके कुछ चित्र तो संगमरमर और काँचके टुकड़ोंके चित्तीदार बने हैं। सीमेन्ट और चूनेमें संगमरमर या काँचके टुकड़ोंको मिलाकर उनसे मूर्तियाँ और चित्र बनाये गये हैं—जैसे, आजकल अकसर कमरोंके फर्श (Mosaic) बनते हैं। इटेलियनोंने यह कला बैजेन्टाइन (कुस्तुन्तुनियाँ) से सीखी थी।

दीवारोंको सजानेके लिए दूसरा ढंग यह था कि दीवारपर बहुत चिकना, परन्तु मज़बूत पलस्तर किया जाता था और पलस्तर सूखनेके पहले ही चित्रकार पानीमें घुले हुए रंगोंसे उसपर चित्र अंकित कर देता था। गीले पलस्तरमें रंग जज्ब हो जाता था, और वह सूखनेपर पक्का हो जाता था। इस प्रकारके चित्रोंमें यदि आप ऊपरी सतहको थोड़ासा खुरच भी डालें, तो भीतरसे रंग ज्यों-का-त्यों झलकता रहेगा, परन्तु इस कार्यके लिए चित्रकार बहुत दक्ष होना चाहिए, क्योंकि पलस्तर बहुत जल्द सूख जाता था। चित्रकारको पहलेसे ही नाप-जोखकर उतनी ही दूर पलस्तर कराना पड़ता था, जितनी दूरमें वह उसके सूखनेके पहले ही चित्र अंकित कर सके। इस प्रकारके बड़े-बड़े चित्र अनेक गिरजाघरोंकी दीवारोंपर

एक सिबिल, ग्रीक और रोमन गाथाओंकी एक तपस्विनी
चित्रकार, पेरुजिनो

रैफल-द्वारा अंकित फ्रेस्कोका एक अंश

चित्रोंकी आवश्यकता हुई, जो साइज़में छोटे हों तथा ज़रूरत पड़नेपर एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाये जा सकें। इसके लिए लकड़ीके तख्तोंपर एक प्रकारका प्लास्टर चढ़ाकर उसपर एक विशेष प्रकारके रंग (Tempra) से चित्र अंकित किये जाने लगे। यह रंग अंडेकी सफेदीके मिश्रणसे तय्यार होता था। यह रंग बहुत पतला होता था तथा शीघ्र ही सूख जाता था। कुछ दिन बाद, कोई कोई लकड़ीके तख्तेके स्थानमें कपड़ा व्यवहार करने लगे। यानी लकड़ीके चौखटेमें कपड़ा जड़कर उसपर प्लास्टर चढ़ाकर चित्र तैयार करते थे।

मौजूद हैं। यह तो हुई बड़े-बड़े दीवारके चित्रोंकी बात, जिन्हें अंग्रेज़ीमें फ्रेस्को (Fresco) कहते हैं।

पादरियों और गिरजोंका और भी अधिक प्रभाव बढ़नेपर भजनालयों (Oratories and Alters) के लिए ऐसे

सेन्ट जान दि बेपटिस्ट—चित्रकार, लियोनार्डो

पन्द्रहवीं शताब्दीके अन्त तक अंडेवाले रंगका ही व्यवहार बहुत रहा, परन्तु उसके बाद चित्रकारोंने चित्रोंमें अधिक स्थूलता देनेके अभिप्रायसे तेलमें घुले हुए रंग व्यवहार करने प्रारम्भ किये। पहले तो वे रंग केवल अंडेवाले रंगके ऊपर उसे गहरा करनेके लिए इस्तेमाल किये जाते थे। बादमें अंडेका रंग एकदम त्याग दिया गया और आदिसे अन्त तक पूरा चित्र तेलके रंगसे बनने लगा। इस रंगको काममें लानेसे तख्तोंपर प्लास्टर चढ़ानेकी ज़रूरत भी नहीं रह गई। साथ ही लोगोंने यह भी देखा कि बड़ी-बड़ी तसवीरोंके लिए लकड़ीके तख्तेकी जगह किरमिच इस्तेमाल करनेमें सस्ती भी पड़ती है। साथ ही उसका उठाना और भरना भी सुगम है। इस प्रकार धीरे-धीरे हमारे मौजूदा तैल चित्रोंका—आयेल पेंटिंगका विकास हुआ।

लकड़ीके तख्तोंपर बने हुए आरम्भिक चित्रोंमें प्रायः सभी भक्ति-उत्पादक धार्मिक दृश्योंके हैं। वे प्रार्थना-वेदी (Alter) को सुसज्जित करनेके उद्देश्य बनाये गये थे। वे

अधिकतर तो तख्तोंपर बने हुए हैं। बीचमें एक तख्तेपर 'मेडोना' (ईसाकी माता) का चित्र होता था और अगल-बगलके दो तख्तोंपर ईसाई सन्तोंके चित्र आदि रहते थे। अगल-बगलके तख्ते बीचवाले तख्तेसे चौड़ाईमें पतले होते थे, और अकसर कब्ज़ोंके सहारे उससे जुड़ रहते थे।

ईसाकी चौदहवीं शताब्दी तक इटेलियन चित्र-कला पुराने रूढ़ि-सकुचित मार्गपर चलती रही। चौदहवीं शताब्दीमें फ्लोरेन्स और सीनामें नवीन कलाकी ओर पहली चेष्टा आरम्भ हुई। फ्लोरेन्समें जोत्तो (Giotto) और सीनामें डूच्चो (Duccio) ने इटेलियन कलाको बैज़न्टाइन प्रथाके बन्धनसे मुक्त किया। जोत्तो तथा उसके गुरु चिमाब्यूये (Cimabue) ने वस्तुओंकी स्थूलता (Plasticity) की ओर विशेष ध्यान दिया। जोत्तोकी सबसे बड़ी बात यह है कि उसने इस नवीनताको निकाल करके भी आर्टको दोष-रहित बनाये रखा। संसारके सम्पूर्ण ठोस पदार्थोंमें तीन दिशाएँ—लम्बाई, चौड़ाई, मुटाई—होती हैं, परन्तु चित्रमें केवल दो दिशाएँ—लम्बाई और चौड़ाई—होती हैं। इसलिए चित्रकारोंके लिए सबसे बड़ा सवाल तीसरी दिशाका होता है। अकसर पुराने चित्रकार दो ही दिशाओंके चित्र बनाते थे। जोत्तो अपने चित्रोंमें स्थूलता—तीनों दिशाएँ—लाया।

ईसाकी चौदहवीं शताब्दीमें इटलीमें फ्लोरेन्स और सीनाके स्कूल अग्रणी रहे। फ्लोरेन्समें जोत्तोने और डूच्चोने कलाको मध्य-युगकी रूढ़ियोंके बन्धनसे मुक्त करनेका प्रथम प्रयास किया।

ईसा, मेरी और जोज़फ—माइकेल एंजिलो

पन्द्रहवीं शताब्दीमें फ्लोरेन्स ही सबका अगुआ हो गया। वहाँ मूर्तिकार डोनाटेलो तथा चित्रकार मसाच्चो (Masaccio) पोल्लाइवोलो (Pllaivolo) लियोनार्डो द विन्सी (Leonardo da Vinci) आदिने मानव-शरीरका वैज्ञानिक अध्ययन करके भावी चित्र कलाकी बुनियाद रखी।

इसी शताब्दीके अन्तिम भागमें उत्तरी इटलीके पडुआ और फेरारामें मानटेगना तथा अन्य कलाकारोंने वेनिस-अंचलके स्थानोंकी कलामें इसी प्रकारकी दृढ़ता प्रचलित की।

सोलहवीं शताब्दीके प्रथम पचीस वर्ष, पिछली शताब्दीमें जो नवीन ज्ञान प्राप्त किया गया था, उसका पूरा सदुपयोग करनेमें बिताये गये। यह समय इटेलियन कलाके महान अभ्युदयका समय था। इसी समय रोमका प्रभुत्व कुछ बढ़ा हुआ था। फ्लोरेन्सका सुप्रसिद्ध चित्रकार माइकेल एंजिलो इससे आकर्षित होकर रोम पहुँचा, और कुछ दिनोंके

नारीकी सृष्टि—चित्रकार, माइकेल एंजिलो

सोलहवीं शताब्दीके अन्तिम पचहत्तर वर्षोंमें रोम और वेनिसकी प्रतिभा धीरे-धीरे समाप्त हो गई। केवल वेनिसमें टीशियन तथा एक आध अन्य चित्रकारोंके कारण थोड़ी चमक बनी रही। अन्तमें बोलोगनाका सितारा चमका। वहाँवालोंने शारीरिक सम्पूर्णताके साथ-साथ वेनिसके प्रतापपूर्ण रंगोंका व्यवहार आरम्भ किया और बोलोगनाके सम्मिश्रित स्कूलकी नींव डाली। सम्मिश्रणवादियोंके बाद प्रकृतिवादियों (Naturalist) का नम्बर आया और धीरे धीरे कलाका केन्द्र रोमसे हटकर नेपल्स जा पहुँचा।

बाद अम्ब्रियाका सुप्रसिद्ध चितेरा रैफल भी उसका अनुगामी हुआ। इन दोनों महान कलाकारोंके कुछ वर्षोंके भीमकाय उद्योगसे रोमका कला-भाण्डार जगमगा उठा। आज कल रोममें चित्र कलाकी जो संसार प्रसिद्ध निधियाँ हैं, वे उन्हींके प्रयत्नका फल हैं। इसी समय लियोनार्डो द विन्ची मिलानकी ओर आकर्षित हुआ और वहाँकी कला भी चमक उठी, परन्तु रोमसे कम। फ्लोरेन्समें माइकेल एंजिलोके अतिरिक्त फ्रा बार्तोलोम्यो, एन्डिया डेल सार्टो और कोरिज्जियो सरीखे चित्रकार हुए। पारमाने कोरिज्जोको जन्म दिया, वेनिसमें ज्योर्जोनकी कल्पना और बेलिनीकी नज़ाकतके मिश्रणने टीशियनकी शिक्षामें सम्पूर्णता उत्पन्न की। टीशियन तैल-चित्रोंके शिल्पको अधिक पसन्द करता था।

सत्रहवीं शताब्दीमें नेपल्स ही कलाका मुख्य केन्द्र रहा। धीरे धीरे विभिन्न स्थानोंकी अपनी-अपनी निजी विशेषताओंका अन्तर भी कम होता गया। इस शताब्दीमें इटलीने कलामें कोई विशेष सृजनात्मक कार्य नहीं किया। वह केवल यूरोपके चित्रकारोंका गुरु बनकर उन्हें शिक्षा देने ही में सन्तुष्ट रही। इस शताब्दीके फ्रांस, नेदरलैंड, स्पेन आदिके सुप्रसिद्ध चित्रकारोंने इटली ही में शिक्षा पाई थी।

अठारहवीं शताब्दीमें वेनिस-स्कूलका पुनरुत्थान हुआ। भवनोंकी चित्रकारीमें वहाँके दो तीन चित्रकारोंने विशेष ख्याति प्राप्त की।

यही इटेलियन चित्र कलाकी संक्षिप्त रूप-रेखा है।
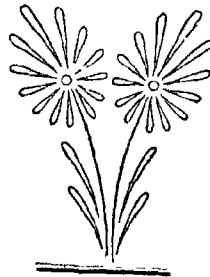
दिले-दर्द-आशना

श्रीयुत महाराजबहादुर बर्क़, बी० ए०, मुन्शी फ़ाज़िल

जिसे राहे-तलबमें खेल हो अपना मिटा देना,
हमेशा जिसकी ख़ू हो जलके भी बूए-वफ़ा देना।
जिसे आता हो जौरे-नारवा सहकर दुआ देना,
तबीयत जिसकी फ़ितरतमें हो रोतोंको हँसा देना।
मेरे पहलूमें या रब ! वह दिले-दर्द-आशना देना।

कमर-बस्ता रहे जो हरनफ़स इमदादे-बेकसपर,
हमेशा गोश बर-आवाज़ हो फ़रियादे बेकसपर।
जो अश्के-ख़ू बहाए ख़ातिरे नाशादे-बेकसपर,
तड़प उट्ठे जो दर्द-अंगेज़िए रूदादे-बेकसपर।
मेरे पहलूमें या रब ! वह दिले-दर्द-आशना देना।

जिसे गर्मे-तपिश रक्खे तड़पना बेक़रारोंका,
न देखा जाय जिससे हाले ज़ार आफ़तके मारोंका।
जिसे बेताब कर दे शोर-मातम सोगवारोंका,
जो अंगारों पे लोटे सुनके नाला दिलफ़िगारोंका।
मेरे पहलूमें या रब ! वह दिले-दर्द-आशना देना।

असर-अन्दाज़ हों जिसपर न ये जज़्बाते नफ़सानी,
जो मिस्ले-आईना हो पर-तवे वहदतसे नूरानी।
ख़यालो-ख़्वाबमें जिसको न हो फ़िक्रे तन-आसानी,
जो समझे दिल नवाज़ी मुद्दआए-जिस्मे इन्सानी।
मेरे पहलूमें या रब ! वह दिले-दर्द-आशना देना।

सदाए-नालए-ग़म पर जो हाथोंमें निकल जाए,
मददको ग़मज़दोंकी मरते-मरते भी सँभल जाए।
जो सोज़े-आहे-आतिश-बार बेकसमें पिघल जाए,
पराई आगमें जो सूरते परवाना जल जाए।
मेरे पहलूमें या रब ! वह दिले-दर्द-आशना देना।

जो हमदर्दी रखे हसरत-ज़दा मुहताज बन्दोंसे,
करे जो पुरसिशे सोज़े-निहानी दर्द मन्दोंसे।
न रक्खे काम जुज़ रस्मे वफ़ा दुनियाके धन्धोंसे,
असीराने-बलाको जो छुड़ाए ग़मके फंदोंसे।
मेरे पहलूमें या रब ! वह दिले-दर्द-आशना देना।

जो आँख नम पये-उफ़तादगाने-ख़ाक रखता हो,
गरां जानोंके मातममें गरेबां चाक रखता हो।
इशारोंसे समझ ले हाले-दिल इदराक रखता हो,
जिसे बेचैन दर्द-ख़ातिरे ग़मनाक रखता हो।
मेरे पहलूमें या रब ! वह दिले-दर्द-आशना देना।

दिले-दर्द-आशना=वेदना-प्रेमी हृदय। राहे-तलब=उद्देश-प्राप्ति या याचककी इच्छापूर्ति। ख़ू=आदत। बूए-वफ़ा=मित्रता-निर्वाहकी गन्ध। जौरे-नारवा=अनुचित अत्याचार। तबीयत=मनोहर। फ़ितरत=प्रकृति, स्वभाव। पहलू=पाँसू-उरस्थल। या रब=हे भगवन। कमरबस्ता=कटिबद्ध। हरनफ़स=प्रतिक्षण। इमदादे-बेकस=दीन-दुखियोंकी सहायता। गोश बर-आवाज़=सुननेके लिए कान लगाए हुए। फ़रियादे-बेकस=दीनकी पुकार। अश्के-ख़ू=ख़ूनके आँसू। ख़ातिरे-नाशाद=दुखी दिल। दर्द-अंगेज़िए रूदाद=दर्द पैदा करनेवाली हालत। गर्मे-तपिश=आँचमें गरम होना। हाले-ज़ार=बुरा हाल। बेताब=व्याकुल। शोर-मातम=शोकका कोलाहल। नाला=रोनेका शब्द। दिलफ़िगार=भग्नहृदय। असर अन्दाज़=प्रभाव डालनेवाले। जज़्बाते-नफ़सानी=विषय विकार। पर तवे वहदतसे नूरानी=एकात्मवादकी झलकसे प्रकाशित। ख़यालो-ख़्वाब=विचार और स्वप्न। फ़िक्रे-तन-आसानी=शारीरिक सुखकी चिन्ता। दिल नवाज़ी=हृदयकी रक्षा, किसीका दिल न दुखाना। मुद्दआए-जिस्मे-इन्सानी=मनुष्य शरीरका उद्देश। सदाए-नालए-ग़म=करुण क्रन्दन। ग़मज़दा=विपद्ग्रस्त। सोज़े आहे आतिशबार-बेकस=दुखियाकी आग उगलनेवाली आह। सूरते-परवाना=पतंगकी तरह। हसरतज़दा=असफलतापर पछतानेवाला। मुहताज=ज़रूरतमन्द, रंक। पुरसिश-सोज़े निहानी=भीतरके दर्दका हाल पूछना। जुज़-रस्मे वफ़ा=मित्रता निबाहने, प्रतिज्ञा पूरी करनेके अतिरिक्त। असीराने-बला=विपद्ग्रस्त क़ैदी। नम=गीली। पये-उफ़्तादगाने-ख़ाक=धूलमें लोटते दुखियोंके लिए। इदराक=ज्ञान, समझनेकी शक्ति। दर्द-ख़ातिरे ग़म-नाक=शोकग्रस्तोंके

जिसे उलझनमें डाले जुल्फ़े-जानांकी परेशानी,
बना दे नक़्शे-हैरत जिसको आईनेकी हैरानी।
गरेबां चाक कर दे जिसका गुलकी चाक-दामानी,
जो आतिश ज़ेर-पा हो देखकर शोलेकी उरयानी।
मेरे पहलूमें या रब! वह दिले-दर्द-आशना देना।

न लाए ताब जो मज़लूमके दिल-दोज़ नालोंकी,
शआरे-खास हो जिसका मदद आशुफ्ता-हालोंकी।
जिसे मद्दे-नज़र हो क़द्र दानी बेकमालोंकी,
करे सौ जानसे जो दस्तगीरी पायमालोंकी।
मेरे पहलूमें या रब! वह दिले-दर्द-आशना देना।

जो खिदमाते-खलायक़ अपना फ़र्ज़े-मनसबी समझे,
शरीके-दर्दो ग़म होना तरीक़े रास्ती समझे।
यतीमोंकी मदद करनेमें अपनी बेहतरी समझे,
जो बेकस परवरी पहला उसूले-ज़िन्दगी समझे।
मेरे पहलूमें या रब! वह दिले-दर्द-आशना देना।

जो चारा-साज़िए ज़ख़्मे-निहां बेमुद्दआ कर दे,
तसद्दुक़ बेकसोंपर अपनी जाने-मुब्तला कर दे।
जो कारे-ख़ैर करके नक़्शे दामाने-फ़ना कर दे,
जो नेकी करके भूले क़ता उम्मीदे वफ़ा कर दे।
मेरे पहलूमें या रब! वह दिले-दर्द आशना देना।

हृदयकी पीड़ा। जुल्फ़ेजानाकी परेशानी=मित्रके केशोंकी उलझन। नक़्शेहैरत=आश्चर्य-चकित, चित्र लिखित। गुलकी चाक दामानी जिसका गरेबाँ चाक कर दे=जो इतना संवेदनाशील हो कि (बसन्तमें) फूलोंकी पखड़ीको फटा हुआ—खिला हुआ देखकर अपने गलेका कपड़ा फाड़ डाले। मज़लूम अत्याचारपीड़ित। दिलदोज़नाले हृदयवेधी क्रंदन। शआरे-खास=खास आदत। आशुफ्ताहाल=व्याकुल। मद्देनज़र=अभिप्रेत, लक्ष्य। दस्तगीरी हाथ पकड़ना, सहायता देना। पायमाल=पददलित। ख़िदमातेख़लायक़ सर्वसाधारणकी सेवा। फ़र्ज़ेमन्सबी कर्तव्यपालन। तरीक़े-रास्ती=सन्मार्ग। यतीम अनाथ। बेकसपरवरी=दीनोंका पालन।

राजपूत चित्र-कला

डाक्टर ए० के० कुमारस्वामी, क्यूरेटर बोस्टन म्यूज़ियम

राजपूत-चित्र-कलाको ठीकसे समझनेके लिए यह आवश्यक है कि उसका वर्णन करनेके पहले पर्शियन और मुग़ल चित्रोंके सम्बन्धमें दो-चार शब्द कह दिये जायँ। एक बात तो यह है कि कुछ चित्रोंके लिए लोग 'इंडो-पर्शियन' (भारतीय पारसीय) शब्द व्यवहार करते हैं। अब यह शब्द निश्चय-पूर्वक केवल उन्हीं चित्रोंके लिए—वे चाहे जिस कालके हों, यद्यपि उनमें से अधिकांश प्राचीन कालके ही हैं—व्यवहृत होना चाहिए, जिनमें दरस्ल भारतीय और पर्शियन स्टाइलोंका सम्मिश्रण हो। इस प्रकारके चित्रोंके लिए एक और नाम भी इस्तेमाल किया जाता है, वह है 'प्राचीन मुग़ल-चित्र' अर्थात् वे चित्र जो मुग़लोंकी संरक्षकतामें जहाँगीरके शासनके प्रारम्भिक काल तक बनते रहे।

इन इंडो-पर्शियन चित्रोंमें प्रायः चार प्रकारके चित्र मिलते हैं—(१) पर्शियन प्रेम कथाओंके चित्रोंकी भारतीय नक़लें, ये नक़लें आमतौरसे असली चित्रोंकी अपेक्षा अवश्य ही निम्न श्रेणीकी हैं। (२) इसी स्टाइलके बने हुए चित्र जो हिन्दू-ग्रन्थोंके फारसी अनुवादकी पुस्तकों,—जैसे रामायण, योगवशिष्ठ, और कलैला-दमना, सोज़-ओ-गुदाज़ आदिको—चित्रित करनेके लिए बनाये गये हैं। इन चित्रोंमें बहुतेरे बड़े मनोरंजक हैं और उनमें बड़ी कारीगरी है; मगर इन

सबकी दृश्यावली (Landscape) बहुत अधिक कृत्रिम ही रहती हैं। (३) पर्शियनगाथाओंको--जैसे, लैला-मजनू--अंकित करनेवाले स्वतन्त्र चित्र। (४) भारतीय और पर्शियन प्रणाली मिश्रित व्यक्तियोंके चित्र।

यह मुग़ल-चित्रकलाकी प्रारम्भिक अवस्थाका दिग्दर्शन है। मुग़ल-चित्रकला सत्रहवीं शताब्दीकी चीज़ है। उससे पहले वह पूर्णरूपसे विकसित नहीं हो पाई थी, उसका विकास हो रहा था। सत्रहवीं शताब्दीके बादसे उसका ह्रास होने लगा। सत्रहवीं शताब्दीमें पर्शियन कलाके नाजुक अवयवोंपर मध्य-एशिया (मुग़ल) का उग्र प्रभाव बहुत दृष्टिगोचर होता है, इसलिए उस समय वास्तविक इंडो-पर्शियन चित्र अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हो गये थे। साथ-ही-साथ स्वदेशी भारतीय विशेषताएँ भी उत्तरोत्तर अपना अधिकार जमानेकी चेष्टा कर रही थीं। इस प्रकार कलाका विकास हुआ, और पुस्तकोंको चित्रित करनेवाली मामूली तसवीरोंसे बढ़कर विशेष व्यक्तियोंके चित्र बनानेकी कला उत्पन्न हुई। चित्रकारोंमें से अधिकांश हिन्दू थे, इसलिए उनकी कृतियोंमें उनका प्रभाव दिखाई देता है। व्यक्तियोंकी व्यक्तिगत विशेषताएँ अंकित करनेमें ही विदेशी प्रभाव विशेष-रूपसे दिखाई पड़ता है। जितने काल्पनिक और 'रोमांटिक' विषय हैं, वे शुद्ध स्वदेशी हैं, यह दूसरी बात है कि उनमें पोशाक या भवन आदि विदेशी ढंगके हों। अठारहवीं शताब्दीमें मुग़ल-चित्रकलाका शीघ्रतासे ह्रास होता रहा। उस समय उसके प्रधान पोषक और संरक्षक लखनऊके नवाब ही रह गये थे। उस समयकी कलाका सम्बन्ध केवल दरबार और रईसोंसे ही रह गया था, और इन दोनोंकी संस्कृतिके ह्रासके साथ-ही-साथ वह भी गायब होती गई। आजकल मुग़ल-कलाका केवल-मात्र अवशेष दिल्लीमें बननेवाली हाथी-दांतकी तसवीरोंमें रह गया है, परन्तु ये हाथी-दांतकी तसवीरें भी अब कलाकी वस्तु न रहकर व्यापारकी चीज़ हो गई हैं।

मुग़ल चित्र-कलाका एक उदाहरण

राजपूत-चित्रकलाका उपादान इससे कहीं अधिक भिन्न है। निस्सन्देह पर्शियन चित्रकला और हिन्दू चित्रकलाके बीचकी खाई काफी चौड़ी है। जैसा अबुलफज़लने कहा है—'हिन्दू-चित्रकला हमारी साधारण कल्पनासे कहीं ज्यादा बढ़ी हुई है।' उसमें विषयोंकी प्रचुरता और भावनाओंकी गहराई इतनी अधिक है, जो पर्शियन ग़ज़लोंकी भावुकता अथवा फारसके क्रूरतापूर्ण शिकारके दृश्योंके लिए एक दम विदेशी है। मुग़लोंके वैयक्तिक चरित्रोंका चित्रण भी शायद ही कभी हिन्दू-कलाकी गहराईको छू पाता हो। हिन्दू धर्मका आत्म-संयम त्याग, पवित्रता, अतिशयोक्ति, कोमलता और प्रचण्डता—सभी बातें उनकी चित्रकलामें प्रत्यक्ष हो जाती हैं। यह कला महाकाव्यके सदृश है, उसकी वृत्ति धार्मिक और टग आदर्शवादी है। उनमें सुन्दर व्यक्तिगत चित्र अपेक्षाकृत कम मिलते हैं। निस्सन्देह उनकी कला लोकप्रिय कला है, उसे अपनेपर विश्वास है, और इस बातका निश्चय है कि वह जिसके लिए बनाई गई है, उन्हें अपील करेगी। राजपूत-कलाकी सर्वोत्तम कृतियोंके काव्य और काल्पनिक कोमलताको अतिरंजित करना, अथवा उनके डिज़ाइन और बनावटकी अत्याधिक प्रशंसा करना बहुत मुश्किल है। दूसरी ओर पौराणिक चित्रोंके ढेर-के-ढेर भी मिलते हैं, जिनकी कला बहुत ही अपरिपक्व और रही है और जिनका मूल्य साम्प्रदायिक है। हिन्दुओंमें कला कितनी अधिक लोकप्रिय है, इसका प्रमाण इस बातसे मिल जायगा कि आज भी भारतके बाज़ार जर्मनीके बने हुए वार्निशके—नेत्रोंमें खटकनेवाले—हिन्दू चित्रोंसे पटे रहते हैं।

राजपूत-चित्रकलाकी उत्पत्ति अजन्ताकी दीवारोंपर बने हुए (Tempera) चित्रोंसे हुई है। अजन्ताकी चित्रकलाके बाद हिन्दू-चित्रकला एकाएक हमारी दृष्टिसे लुप्त हो जाती है। मध्य युगकी भारतीय चित्रकलाके चिह्न अब बहुत ही कम मिलते हैं; मगर यह बात निश्चित है कि भारतमें यह कला बराबर जारी रही। मैं मिसेज़ हेरिंघमकी इस बातसे सहमत हूँ कि अजन्ताके अन्तिम चित्रोंकी कला भी तब तक पूर्ण रूपसे विकसित नहीं हो पाई थी, उत्तरोत्तर उसका विकास हो रहा था। भारतीय चित्रकला शायद अजन्ता चित्रावलीके निर्माणके दो-एक शताब्दी बाद अपने पूर्ण विकासपर पहुँची होगी।

सोलहवीं शताब्दीकी चित्रकला अजन्ताकी हिन्दू कलासे उत्पन्न हुई है, इस कथनसे मेरा तात्पर्य यह है कि यद्यपि यह कला आश्चर्य-जनक सौन्दर्य-पूर्ण है, मगर फिर भी वह अपनेसे पूर्ववर्ती कृतियोंके धरातलसे नीचे गिरी हुई है।

हिन्दू और बौद्ध कलाका सम्पूर्ण विकासका दो हज़ार वर्षका है, जब कि मुग़ल-कलाके विकासका विस्तार मुश्किलसे दो शताब्दीका है। हिन्दू-कलामें जो परिवर्तन हुए वे बहुत ही धीरे धीरे हुए, इसलिए उसका काल निर्णय करना बहुत कठिन है। परन्तु मुग़ल कलाके स्टाइल ही इतनी शीघ्रतासे एकके बाद एक बदलते गये कि उनका समय निर्धारित करना बहुत आसान है। किसी राजपूत-चित्रका समय निर्णय करना कहीं अधिक मुश्किल है। सोलहवीं शताब्दीमें भी अकसर खराब चीज़ें बनी हैं, और उन्नीसवीं शताब्दीमें भी कुछ अच्छी चीज़ें उत्पन्न की गई हैं। सत्रहवीं शताब्दीमें एक स्थानपर राजपूत-चित्रकला और मुग़ल चित्रकला बहुत पास पहुँच गई थीं। बात यह थी, उस समयके मुग़ल-सम्राटों और दरबारोंकी संरक्षकतामें हिन्दू चित्रकारोंके चित्रित किये हुए बहुतसे चित्र एक प्रकारसे मुग़ल ढंगके हैं, यद्यपि उनके आधारभूत अवयव राजपूत शैलीके हैं। इस प्रकारके चित्रोंको शायद इंडो-मुग़ल नाम दिया जा सकता है।

राजपूत चित्रकला तथा मुग़ल और पर्शियन चित्रकलामें विभेद करनेवाली कौन कौनसी विशेषताएँ हैं, अब मैं उनका संक्षेपमें वर्णन करूँगा।

पहली चीज़ है चित्रका विषय। राजपूत-कलामें वैष्णव और शैव-गाथाओंके चित्रों और विशेषकर भगवान कृष्ण-सम्बन्धी चित्रोंकी बाहुल्यता है। बहुतसे चित्रोंमें महाभारतके दृश्य अथवा राम और सीताका वनवास या लंका-विजयीके दृश्य

अंकित किये गए हैं। कुछ विशुद्ध पौराणिक चित्र हैं, जो अकसर भद्दे और कुरूप हैं। राग-रागनियोंके चित्र विशुद्ध भारतीय कलाके उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त चित्रोंके विषयोंमें घरेलू चीजें, साधारण विषय, पशु, पक्षी, पेड़ और तीर्थ-स्थान आदि विशेषता-पूर्ण हैं।

दूसरी बात यह है कि राजपूत-चित्रमें चित्रकारका नाम नहीं रहता। प्रारम्भिक मुग़ल-चित्रोंमें चित्रकारका नाम रहता था, परवर्ती चित्रोंमें कम। राजपूत चित्रोंमें चित्रोंका विषय अथवा रंगोंके नाम आदि बात जो लिखी मिलती हैं, वे सब देवनागरी लिपि ही में मिलती हैं। राजपूत-शैलीके चित्र प्रायः समस्त उत्तर-भारतमें—राजपूताना, पंजाब और हिमालय-प्रदेश—में बनते थे; मगर मुग़ल चित्रकला केवल बड़े-बड़े शहरों—जैसे, आगरा, दिल्ली, लखनऊ, लाहौर आदि—तक ही परिमित थी।

एक राजपूत चित्रका उदाहरण

राजपूत-चित्रोंमें विदेशी प्रभाव बहुत-कम मिलता है, और जहां कहीं मिलता है, वहां वह पृथक ही दृष्टिगोचर होता है, जैसे किसी-किसी राजपूत-चित्रमें चीनी-कलाका प्रभाव साफ दिखाई पड़ता है। मिश्रित मुग़ल-कलामें विदेशी प्रभाव इस प्रकारसे घुले-मिले हैं कि वे अलग नहीं किये जा सकते। राजपूत-कलामें तेरहवीं शताब्दीकी गोथिक कलाके सदृश एकता है। उसमें पुराने बौद्ध अवयव मौजूद हैं, उदाहरणार्थ मृत्युके दृश्योंमें बौद्धोंके 'परिनिर्वाण' की छाया मिलती है। साथ ही पानी खींचनेके लिए कुंडली सदृश घुमावदार ढंग, पेड़, कमलसे भरे हुए सरोवरोंका निरन्तर प्रयोग, पुष्प, पशु-पक्षी आदिके प्रति कोमल भाव आदि बातें, बौद्ध कलाके अवशेष अंश हैं।

राजपूत-चित्रोंके दृश्यपट (Landscape) एकदम भारतीय हैं। उनमें राजपूतानाकी छोटी-छोटी पहाड़ियां अथवा तुषाराच्छादित हिमाचलके तुंग शृंग बराबर दिखाई पड़ते हैं। उनका व्यवहार लगातार प्रारम्भिक इटेलियन ढंगसे किया गया है। उनमें सारस, लवा, कमल-पुष्करिणी

और भारतीय वृक्ष बराबर अंकित किये गये हैं। जलको चित्रित करनेके लिए अकसर चांदी इस्तेमाल की गई है। पानीके लिए कुडली सदृश चिह्न और सरोवरों तथा पुष्करिणियोंके चौखूटे किनारे उनकी निजी विशेषताएँ हैं।

राजपूत-चित्रोंका पैमाना बड़ा होता है। दीवारोंपर चित्रित अथवा कागज़पर अंकित चित्रोंमें प्रायः क़द-आदम मूर्तियोंका अभाव नहीं है। मुग़ल-चित्रोंमें दीवारपर अंकित चित्र बहुत-कम हैं और कागज़पर बने हुए चित्र सदा छोटे साइज़के होते हैं।

यही राजपूत-चित्रोंकी विशेषताएँ हैं। यदि कभी भारतीय चित्र कलाका इतिहास लिखा जायगा, तो देशकी यही कला (राजपूत) ऐसी है, जो उस इतिहासका मुख्य आधार बनेगी। इस महान धार्मिक कलाके, जो इतनी कल्पनाशील और इतनी उद्दीप्त है, गुरुत्वकी तुलनामें फारसके मध्य-एशियाके तथा मुग़ल-दरबारके भारतीय चित्रकारोंकी जाज्वल्यमान कृतियोंको भी मूल घटनाका एक उपाख्यान मात्र ही कहना पड़ेगा।

परन्तु मुग़ल-चित्रोंने एक बात यह प्रकट कर दी कि प्राचीन परम्पराके आधारपर भी एक नवीन कलाकी सृष्टि करना सम्भव था। फल यह हुआ कि भिन्न-भिन्न प्रभावोंके सम्मिश्रणसे—यद्यपि यह सम्मिश्रण आसान काम नहीं था, फिर भी काम देने योग्य सम्मिश्रणसे—एक नवीन और महान कलाका जन्म हुआ, जिसके सर्वोत्तम उदाहरण जहांगीरके शासन कालके समयमें मिलते हैं। विभिन्न विदेशी प्रभावोंका सम्मिश्रण करके एक नई कलाके उत्पादनकी सम्भावनाको—जिसमें प्राचीन परम्पराके अवयवोंकी प्रबलता फिर भी बनी ही रहे—भारतकी चित्रकलाके भावी विकासके लिए आशाप्रद चिह्न समझना चाहिए, क्योंकि भारतीय चित्रकलाकी नवीन प्रगति इसी ओरको झुकी हुई मालूम होती है।

फुलझड़ियाँ

श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी

एक ज़माना था, हमने भी देखा था वह प्रात—
जब स्वातंत्र्य समीर खिलाती थी वैभव जलजात।
तब क्या था यह देश? कला ही का कोमल बाज़ार,
यहाँ कला की कीमत पर वे लुटते थे लाचार।
हुए दीन आधीन विभव है टूटी दीवारों में,
सोई आज कलाएँ अपनी स्मृति की झंकारों में।

चित्र

चित्र

सौजन्य — श्री ...
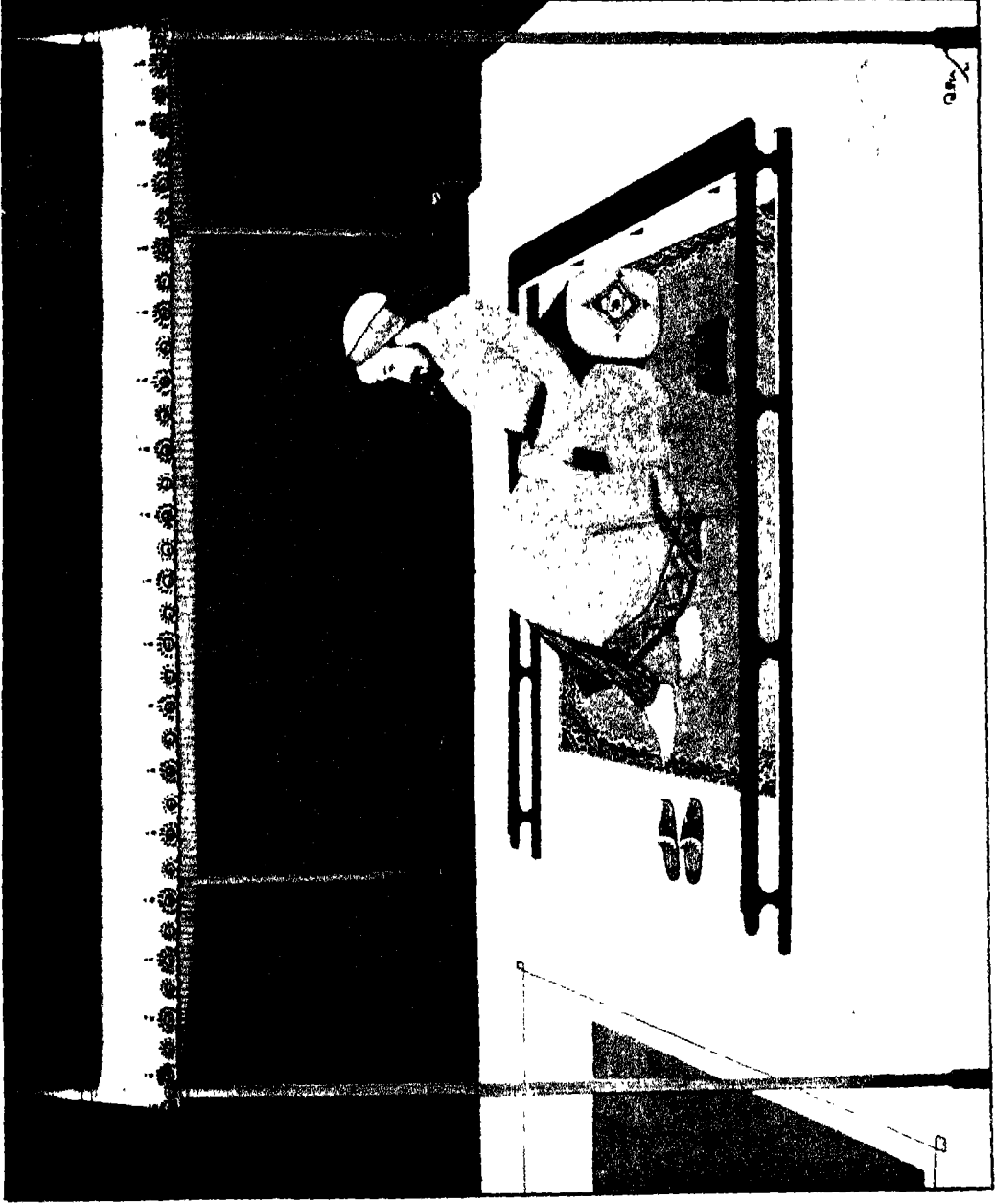
भारतीय कलाका संरक्षण

श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदी

कला—इस एक शब्दके साथ तीन शब्दोंकी प्रतिध्वनि हमारे हृदयमें गूँज उठती है—'सत्यं शिवं सुन्दरं'। ईश्वरकी इस चमत्कारमयी विशाल सृष्टिमें क्या सत्य है, क्या कल्याणकर है, क्या सुन्दर है—जब कोई सहृदय समीक्षक इस तथ्यको अधिक से अधिक सरस सुबोध रूपमें प्रदर्शित कर देता है, तब उसे एक सफल कलाकारका गौरव मिलता है। इसी तथ्यकी रूप-रेखा और शोभा-श्रीको चित्रकार अपनी तूलिकासे बहुरंगोंमें अंकित करता है; इसी तथ्यकी साकारताको मूर्तिकार उपलोंमें उत्कीर्ण करता है; इसी तथ्यकी मृदुल मधुरिमाको गायक और वादक अपने सुरीले स्वरोंमें भर देता हैं; इसी तथ्यके कितने ही रसोंको कवि कल्पनातीत भावोंमें प्रवाहित कर देता है। किसीमें सत्य है, किसीमें सौन्दर्य है, किसीमें शिव है; जिसमें तीनों हैं, वह तो विश्ववन्द्य कलाकार है। सत्यं शिवं सुन्दरं परमात्माके कौशल हैं, इन्हें व्यक्त करनेवाला परमात्माका प्रतिनिधि ही तो है। तब तो कलाकारका दायित्व गुरुतर और महत्वपूर्ण है।

मूर्तिकार, चित्रकार, गायक, वादक और कवि—ये तो आश्चर्यमय विश्वके उद्बोधक हैं ही, अन्य शिल्पी भी परमात्माके उसी उद्देश्य-साधनमें लगते हैं, जिसमें सत्यं शिवं सुन्दरं सम्मिलित है। इस प्रकार संसारमें कलाने अपने नाना रूप धारण किये हैं, उन्हें हम प्रतिदिन चारों तरफ देखते रहते हैं, उन्हींपर हमारा जीवन अवलम्बित है। याद रखिये, कला केवल देखने-सुननेकी वस्तु नहीं, वस्तुतः उसका व्यावहारिक उपयोग भी है, इसीलिए उसका सम्बन्ध जनसाधारणसे है। पूज्य महात्माजीने, २३ नवम्बर १९२४ में, प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री दिलीपकुमार रायसे कलाके सम्बन्धमें बातें करते हुए कहा था—

"कलाकार जब कलाको कल्याणकारी बनावेंगे और जनसाधारणके लिए सुलभकर देंगे, तभी उस कलाको जीवनमें स्थान मिलेगा। जब कला लोगोंकी न रहकर थोड़े लोगोंकी रह जाती है, तब मैं मानता हूँ कि उसका महत्त्व कम हो गया।"

इस दृष्टिसे, संसारमें कलाका जन्म सबसे पहले एक किसानके हृदयमें हुआ होगा, जिसने पृथ्वीके गर्भसे अन्न उत्पन्न करनेकी बात सोची होगी।

कुछ अधिक स्वतंत्र प्रकृतिके व्यक्ति 'कला' शब्दको ही कृत्रिम एवं अस्वाभाविक मानते हैं। मेरा भी कुछ-कुछ ऐसा ही विश्वास था, किन्तु महात्माजीके उपरोक्त कथन—"जब कला लोगोंकी न रहकर थोड़े लोगोंकी रह जाती है, तब मैं मानता हूँ कि उसका महत्त्व कम हो जाता है"—से 'कला' शब्दकी सार्थकता और निरर्थकताका बोध हो गया। विवेचना करते हुए हमारी अधिक मनस्विनी बुद्धि जब 'कला' शब्दको कृत्रिम कहने लगती है, उस समय हमारे सामने कलाके वैसे ही उदाहरण रहते हैं, जिनमें कला लोगोंकी न रहकर थोड़े लोगोंकी रह जाती है। जो कलाकार किसानकी तरह अपनी कलाका सार्वजनिक और व्यापक स्वरूप देता है, वही हमें कलाका सच्चा पाठ पढ़ाता है; उसमें कृत्रिमताका सन्देह रही नहीं सकता। हाँ, उसमें जीवनकी अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। उसका अभाव ही तो मरण है।

देश-कालके अनुसार कला भी अपने विभिन्न स्वरूपोंमें प्रकट होती है। अपनी भावना, शैली एवं आदर्शके अनुसार उसका पृथक्-पृथक् संगठन होता रहता है; किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि कलाके निर्माणमें भावना और आदर्श मुख्य हैं—इन्हींकी उत्कृष्टता या निकृष्टता, कलाके

ऊँच-नीचे जीवनकी विधात्री हैं। भावना और आदर्श कलाकारकी जातीय संस्कृतिकी सन्तानें हैं। संस्कृति देशिक वातावरणके अनुसार बनती-बिगड़ती है। देशके समाज एवं वायुमंडलका प्रभाव कलाकारके हृदयमें जैसी संस्कृतिका सृजन करता है, वैसी ही वह कलाकी मूर्त्ति अंकित करता है। यदि किसी देशकी संस्कृतिमें 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की झलक न हो और कोई कलाकार उसी संस्कृतिसे प्रेरित होकर कलाके निर्माणका प्रयत्न करे, तो उसकी कृतिकी चाहे जितनी प्रशंसा हो, किन्तु वह तो कला नहीं कृत्रिमता है। सत्यं शिवं सुन्दरं ही जीवनका आदर्श स्वरूप है, प्राणियोंकी स्वाभाविकता इसीमें है. इसके विपरीत कृत्रिमता।

स्वामि कार्तिक

लाल पत्थरका मूर्तिस्तम्भ

भारतीय कलापर विचार करनेके लिए हमें तो भारतीय संस्कृतिका ही मनन करना चाहिए। यदि उसमें अत्युत्कृष्टता दीख पड़े, तो हमारे कलाकारोंको उसीसे भावना और आदर्श ग्रहण करना चाहिए। अन्य देशोंकी संस्कृतिके अनुकरणसे भारतीय कलाको विजातीय आच्छादन देना उचित नहीं। यहाँ हम भारतीय संस्कृतिकी अन्य देशोंकी संस्कृतियोंसे तुलना नहीं किया चाहते, कारण, अपने प्रसंगसे बड़ी दूर चले जायँगे। किन्तु इतना तो सूर्यके प्रकाशकी तरह स्पष्ट है कि आज अन्य देशोंके लोगोंने अपनी जिस संस्कृतिके आधारपर

अपने आचार-विचार, रहन-सहन और समस्त जीवनको कार्यान्वित किया है, उससे वे धीरे-धीरे ऊब रहे हैं, और भारतीय जीवनकी सरलता, मधुरता और उपयोगिताको अपनानेमें सुख शान्तिका अनुभव कर रहे हैं।

संस्कृति-जनित आदर्श और भावना कलापर अपनी कैसी मुहर लगा देती है, इसे स्पष्ट करनेके लिए सुप्रसिद्ध कलाविद् राय कृष्णदासके कुछ विचार यहाँ उल्लेखनीय हैं। इसके द्वारा भारतीय और पाश्चात्य कलाका अन्तर भी बड़ी सरलतासे समझमें आ जाता है। वे कहते हैं—

"जिस प्रकार एक देशके दिन रात, नद-नदी, वन-पर्वत और ऋतुओंके दृश्य दूसरे देशसे भिन्न होते हैं, और जिस प्रकार उसकी भाषा तथा सभ्यताके स्रोतका प्रवाह अन्य देशोंसे भिन्न होता है, उसी प्रकार उसकी ललित कलाओंके आदर्श भी भिन्न होते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

"जब हम यहाँकी ललित कलाओंकी तुलना पश्चिमी ललित कलाओंसे करते हैं, तब हमें सबसे बड़ा अन्तर यह मिलता है कि इनका (भारतीय कलाओंका) उद्भव आध्यात्मिक सन्देश पहुँचानेको और उनका (पश्चिमी कलाओंका) आधिभौतिक खोजों और उन्नतियोंकी पराकाष्ठा दिखलानेको हुआ है। ये (भारतीय कलाएँ) वर्णनीय वस्तुकी अन्तरात्मा सामने ला खड़ी करती हैं, और वे (पश्चिमी कलाएँ) उसके भौतिक शरीरका फोटो! यदि एक शिल्पीके सरस हृदय-द्वारा और भी कोमल तथा स्निग्ध बनाई हुई जीवित स्मृति और कल्पनाकी मूर्ति है, तो दूसरी मस्तिष्क-रूपी कैमराके निश्चेष्ट लेन्स और प्लेटपरकी निष्पन्द प्रतिच्छाया!

"कुछ दिन हुए, यूरोपकी एक प्रसिद्ध चित्रशालासे किसी नामी चित्रकारका बनाया हुआ एक बहुत अच्छा चित्र, केवल इसलिए हटा दिया गया था कि उसमें इन्द्रधनुषके रंगोंका क्रम उलटा था। पर भारत इस बातकी परवा नहीं करता। वह कहता है कि बाह्य सृष्टिके नियमानुसार यदि धनुष उलटा हो गया तो क्या, शिल्पीके अन्तर्जगतमें तो वह उसी प्रकार उदित हुआ था। मेरे विचारमें, देशी और विदेशी कलाका भारी भेद इस छोटेसे उदाहरण-द्वारा अच्छी तरह समझमें आ जाता है। भारतीय आदर्श कल्पनाको स्वतन्त्रता और प्रधानता देता है और पश्चिमी उसे वैज्ञानिक परिपाटी—बाह्य प्रकृतिकी नक़ल-मात्र—की शृंखलामें जकड़ता है।"

"उन भावुकों (भारतीय कलाकारों) ने अपने पात्रोंकी कल्पना साधारण और रूक्ष सामग्रियोंसे नहीं, बल्कि दुर्लभ और स्निग्ध सामग्रियोंके संकलनसे की है। कला उनकी साधनाका मार्ग थी, वासनाकी तृप्तिका हेतु नहीं। इसीलिए उन्होंने दिव्य साधनोंके उपयोग-द्वारा पार्थिव वस्तुओंमें से दिव्यमूर्ति खड़ी की थी। उन सामग्रियोंमें यह विशेषता है कि वे बाह्य जगत्‌के साथ अन्तरात्माको भी अंकित करती हैं।"

भारतवर्षमें प्रथम-प्रथम चित्रण और तक्षण कलाको जब जन्म मिला, तब उसके मूलमें सुख-शान्तिमयी आध्यात्मिक प्रेरणा ही थी। कलाकारोंने सबसे पहले देवी-देवताओंके चित्र अंकित किये, मूर्तियोंकी सृष्टि की, मन्दिरोंकी दीवारें खड़ी कीं। इस प्रकार भक्तिरस पूर्ण आन्तरिक भावनाओंको बाहर प्रत्यक्ष किया।

उन चित्रों और मूर्तियोंमें आजकी तरह अंग-सौष्ठवताका निदर्शन नहीं था, बल्कि अन्तर्जगतमें विश्व-नियन्ताकी शक्तियोंने जैसा कल्याणमय स्वरूप धारण किया, वैसा ही उनका प्रकाशन हुआ। देवी-देवताओंकी विरूप आकृतियोंको देखकर सौन्दर्योपासक पूछ बैठते हैं—भला, इसमें कला कहाँ है? परन्तु उन्हें इसपर ज़रा गम्भीरतासे विचार करना चाहिए।

जो वस्तु एक बार देखनेमें ही रमणीय जान पड़े, उसमें वास्तविक सौन्दर्य है—ऐसा नियम नहीं। उसी प्रकार जो वस्तु एकआध बार देखनेमें विरूप जान पड़े, उसमें सौन्दर्यका अभाव कह देना भी युक्तिसंगत नहीं। वस्तुत: उनका सौन्दर्य इतना गम्भीर होता है कि उसे मनन करना पड़ता है। जर्मनीका विश्व-कवि गेटे कहता है—"जब मैं कोई कलामय रचना देखता हूँ, तो तत्क्षण ही मुझे उसमें कोई आनन्द नहीं

आता, क्योंकि वह मेरे लिए गूढ होती है। किन्तु यदि मुझे ऐसा भासता है कि इसमें कोई विशेषता होगी, तो मैं उस मर्म तक पहुँचनेकी कोशिश करता हूँ। ऐसे उद्योगमें मैं केवल उस वस्तुमें ही लोकोत्तर रमणीयता नहीं पाता, बल्कि अपनेमें भी उद्भावनाकी नई शक्तियाँ पाता हूं।"

अतएव ऐसी वस्तुओंका आनन्द लेनेके लिए हमें भी अपनी मनोवृत्ति उसके निर्माताकी मनोवृत्तिमें एकतान करनी पड़ती है। किसी अन्तर्हित मर्मको बहिर्मुख करनेमें उसका जो दृष्टिकोण रहता है, उसी दृष्टिकोणसे देखनेमें उसका आनन्द आ सकता है। क्योंकि कलाकार उसी भावसे ऐसी कृतियोंका निर्माण करता है, जिस भावसे वैज्ञानिक किसी पशु-पक्षी अथवा वनस्पति-वीरुधके अंग-प्रत्यंगका विश्लेषण करके उसके उस अदृश्य रहस्य और चमत्कारका अध्ययन करता है—जिसमें लीलामयका यह आनन्द-स्रोत ओतप्रोत हो रहा है। शरीर-विज्ञानका जिज्ञासु जिस समय किसी शवको चीर-फाड़ डालता है और उसके भीतरी रचना-कौशलको देख पाता है, तो उसे विश्व-बोध होता है। वह समय उसके लिए घृणाका नहीं, बल्कि उस आनन्दकी प्राप्तिका होता है, जिसे योगी योग-द्वारा खोजता है। दौड़ती हुई रेलको देखकर वह आनन्द नहीं मिल सकता, जो उसके भीतर प्रवेशकर उसके इंजिनके कल-पुर्जोंको समझनेमें, जिसके बलसे वह दौड़ती है।

फ़ारसके अमर कवि सादीने ऐसे ही अन्तर्द्रष्टाओंके लिए कहा है—

"बर्गे दरख़्ताने सब्ज़ दर नज़रे होशियार।
हर वरक़े दफ़्तरेस्त मारफ़ते किर्दगार॥"

अर्थात्—'ज्ञानीकी दृष्टिमें हरे-भरे पेड़ोंके पत्ते-पत्ते सृष्टिकर्ताका परिचय पानेके लिए दफ़्तरके दफ़्तर हैं।'

इस दृष्टिसे, भारतीय कलाकी विरूप मूर्तियोंमें अपार सौन्दर्य और अगाध भाव देखे जा सकते हैं। जब कोई कलाकार कालीकी मूर्ति निर्मित कर परमात्माकी संहारिणी शक्तिका निदर्शन कराता है, तब वह एक आध्यात्मिक संदेश देता है; विरूपताका प्रदर्शन नहीं करता। विष्णु या अन्य देवताओंकी चार या अधिक भुजा इस बातके निदर्शक हैं कि उनमें दो भुजावाले (मनुष्य) के अतिरिक्त भी शक्ति और सामर्थ्य है—और वह जिस प्रकारकी शक्ति और सामर्थ्य है, उन वस्तुओंसे प्रकट होती है, जो उन भुजाओंमें धारण की गई हैं। शंकरका तीसरा नयन आध्यात्मिक अथवा अन्तर्विलोचनका द्योतक है। सरस्वतीका वाहन हंस मोती चुँगता हुआ नीर-क्षीर-विवेक करता है, जो ज्ञानशक्तिके अनुकूल है। लक्ष्मीका वाहन उल्लू दिनको भी अन्धकारमें पड़ा सोता है,—यह ऐश्वर्य मदका कितना अच्छा निदर्शन है। इसी प्रकार अन्य देवताओंके वाहन भी भगवानकी उसी शक्तिके वहन करनेवाले प्राणियोंके लाक्षणिक रूप हैं। गणेश, देवताओंमें अग्रणी और बुद्धिके विधाता हैं, अतएव उनका मुंह हाथीका है, क्योंकि हाथीसे बुद्धिमान कोई पशु नहीं; साथ ही गण (प्राचीन भारतीय प्रजातंत्र) का अग्र चिह्न हाथी होता था, इन दोनोंके सामंजस्यसे गणपति गजवदन बनाये गये।

भक्त कलाकारोंकी आन्तरिक सूझका यह सूक्ष्म निदर्शन है। उन्होंने अपनी भावनाओंको ही शरीरका रूप दे दिया है—कितना सुन्दर, सत्य और कल्याणकर! आधुनिक कलाकार केवल अंग-विन्यास न कर, यदि इसी प्रकार भीतरकी भावाकृतियोंको साकार करें, तो उनकी कला-कुशलता सिद्ध हो। हमारा शरीर केवल शरीर नहीं है, बल्कि वह हमारे हर्ष-विषाद, हास-अश्रु, प्रेम-घृणा, घात प्रतिघात, आशा-निराशा, श्रद्धा-विश्वास, भाव-भक्ति तथा प्रसन्नता-विकलताके आवरणसे मढ़ा हुआ है। कलाकी आकृतियोंमें यही समष्टि-रूप दृष्टिगत होना चाहिए।

भारतीय कला उतनी ही प्राचीन और अग्रजन्मा है, जितनी कि उसकी संस्कृति। जब संसारके समस्त समाज और धर्म अज्ञानान्धकारमें पड़े हुए थे, उस कल्पनातीत कालमें सर्वप्रथम यहाँके आर्य महर्षियोंने ही तो तपस्याकी प्रखर ज्योतिसे ज्ञानालोक फैलाया था—जिसके जाज्वल्यमान

बादशाह औरंगजेब—मुग़लशैली

दुर्गापाठ—राजपूत कांगड़ा शैलीका चित्र

प्रकाशमें सम्पूर्ण विद्याएँ और कलाएँ विश्वमें उद्भासित हुई। इस सत्यको हमारे आदरणीय कवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्तने किस खूबीसे कहा है—

'है आज पश्चिममें प्रभा जो पूर्वसे ही है गई,
हरते अँधेरा यदि न हम, होती न खोज नई नई।
इस बातकी साक्षी प्रकृति भी है अभी तक सब कहीं,
होता प्रभाकर पूर्वसे ही उदित, पश्चिमसे नहीं।"

उस दिन (३ मार्च १६३०) 'भारत-कला-भवन' के उद्घाटनोत्सवपर भाषण देते हुए भारतीय कला-मर्मज्ञ श्री एन० सी० मेहता आई० सी० एस० ने कहा था—"यह तुलनाका ज़माना है। हमें तो पश्चिमी कलाका पूर्वीय कलासे मिलान करके निराशा हो गई थी कि हमारे यहाँ कला कहाँ है? परन्तु जब हमने अपनी कलाकी ओर ध्यान दिया, तो पाया कि अजन्ताके समय यूरोपमें कलाका नाम भी नहीं था, और न वहाँकी कला उस आध्यात्मिक सतह तक पहुँची ही थी। यूरोपमें कलाका सबसे पुराना नमूना तेरहवीं शताब्दिका है। जिस समय यूरोपमें कलाका उदय हुआ, उस समय भारतमें उसका मध्याह्न बीत चुका था। अजन्तामें तीनों प्रकारकी विभूतियाँ—फ्रेसको अर्थात भीति-चित्र, शिल्प और चित्रकारीका खजाना है।"

हमारी कला सिर्फ प्राचीनताकी ही दृष्टिसे उच्च नहीं है, बल्कि उसमें अत्युत्कृष्टता भी है। अजन्ताके अतिरिक्त—

"भूगर्भसे जब तब निकलतीं वस्तुएँ ऐसी यहाँ,
जो पूछ उठती हैं कि ऐसी थी हुई उन्नति कहाँ?
× × *
वह सिन्धु-सेतु बचा अभी तक, दक्षिणी मंदिर बचे,
कब और किसने, विश्वमें, यों शिल्प-चित्र कहाँ रचे?
× × ×
शत-शत गुहाएँ साथ ही गुंजार करके कह रहीं—
प्राचीन ही वा शिल्प इतना कौन है? कोई नहीं।"
—भारतभारती

यह कितने संताप तथा परितापकी बात है कि अपनी प्राचीन उत्कृष्ट कलाके संरक्षण एवं संवर्द्धनकी तरफ हमारा बिलकुल ध्यान ही नहीं है। दासताने हमें स्कूल और कालेजोंमें किताबी कीड़ा बना रखा है। कला-कौशलकी शिक्षासे हम वैसे ही वंचित कर रखे गये हैं, जैसे वर्णाभिमानी हिन्दू अछूतोंको देव दर्शनसे वंचित रखते हैं।

पिछले पचहत्तर-अस्सी वर्षोंके परतंत्र जीवनमें, जिस तरह हम लोगोंने अपना और बहुत-कुछ गँवा दिया है, उसी प्रकार हम अपनी सुरुचि भी खो बैठे हैं। फलतः, इस बीचमें हमारी कलाके ऐसे ऐसे दिव्य रत्न हाथसे निकल गये कि हमारा भव्य कोहनूर भी उनके सामने कोई चीज़ नहीं है। कहना न होगा कि कलाकी ये सब निधियाँ, हमारे उसी कोहनूरकी ही भाँति, समुद्रोंके पार जगमगा रही हैं।

इस लगभग सौ वर्षके अवकाशमें, हमारी कलाकी वस्तुएं इस वेगसे बाहर चली गईं कि अब जब कि अन्य जाग्रतिके साथ कला-कौशलके सम्बन्धमें भी देशकी आँखें खुल रही हैं—यहाँ पर कलाके प्रकाशमान् रत्नोंका अभाव-सा हो गया है। भारतीय कलाका अध्ययन और मनन, सच तो यह है, यूरोप और अमेरिकामें किया जा सकता है—भारतमें नहीं।

प्राचीन भारतीय कलाका इस तरह देशनिष्कासन हो जानेके कारण आज हम सघन अन्धकारमें भटक रहे हैं। हमारा आदर्श और हमारी भावना पथभ्रष्ट हो रही है। हमारा राष्ट्रीय कवि शोकक रता है—

"हा, जो कलायें थीं कभी अत्युच्च भावोद्धारिणी,
विपरीतता देखी कि अब वे हैं अधोगतिकारिणी।"

तो भी, यह रत्नगर्भा भारतीय वसुन्धरा कभी खाली नहीं हो सकती, और जब तक वह सुदिन नहीं आता कि हम अपने गँवाये हुए रत्नोंको पुनः वापस ला सकें, तब तकके लिए देशमें ही कलाकी इतनी बिखरी हुई सामग्रियाँ पड़ी हैं कि उनसे हम अपने अभावकी बहुत-कुछ पूर्तिकर सकते हैं, और आज भी हम अपने देशमें एक नहीं, कमसे कम आधे दर्जन ऐसे संग्रहालय तय्यार कर सकते हैं, जिनमें भारतीय कला बहुत-कुछ देखी और सीखी-समझी जा सकती है। आवश्यकता है केवल प्रयत्न की। किन्तु प्रयत्न करे तो कौन—हमारी रुचिका तो वह हाल है!

अस्तु। ऐसे ही एक प्रयत्नका फल काशीका प्रख्यात 'भारत-कला-भवन' है। यह संस्था सन् १९२० में पहिले-पहल 'भारत-कला-परिषद्' के नामसे, कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सभापतित्वमें स्थापित हुई। इसके संग्राहक एवं संस्थापक काशीके राय कृष्णदासजी हैं। 'प्रताप'के शब्दोंमें—"राय कृष्णदासजी स्वयं बड़े सुकुमार कलाकार हैं। कृष्णदासजीकी कला-समीक्षा न केवल हमारे युक्त प्रान्तके गौरवको प्रतिवर्द्धित करती है, वरन् वह भारतकी कला-विज्ञताको भी आभूषित किये है।"

एक सुसम्पन्न कुलमें उत्पन्न होकर वे कलाके चिन्तन, संरक्षण एवं धनके सदुपयोगमें अपनेको भूल गये, यदि इसी प्रकार अन्य श्रीमान् भी इस दिशाकी ओर तन, मन, धनसे दृष्टिपात कर अपनी सुरुचिका परिचय दें, तो धूलमें मिली हुई हमारी कलाकी रत्नावलियाँ बाहर आकर एक बार पुनः विद्युच्छटाकी तरह चमक उठें।

इस प्रकार हमारे देशमें जातीय कलाका एक सुन्दर संग्रहालय स्थापित हो गया। हाँ, संग्रह तो हो गया, किन्तु इसे सुसज्जित और सुरक्षित रखनेके लिए स्थानकी अड़चन थी। इसके लिए कोई नया प्रबन्ध सोचा जाने लगा। अतः अभी हालमें, यह संग्रहालय, नागरी-प्रचारिणी सभा काशीको सौंप दिया गया, और इसी समय इसका नाम 'भारत-कला भवन' रक्खा गया। सभाकी इमारतके विशाल ऊपरी खंडमें यह संग्रह सजा दिया गया है। किन्तु अब भी स्थानाभाव है। राय साहबने कलाकी जितनी वस्तुएँ इकट्ठी की हैं, वे सब अभी तक प्रदर्शित नहीं की जा सकी हैं। यह संग्रह बहुत विस्तृत और अपूर्व है, अतएव स्थानाभावकी पूर्तिके लिए एक लाखके लागतकी एक स्वतन्त्र इमारत बनवानेका निश्चय सभाने किया है। इस प्रयासमें, देशके श्रीमानोंको, आर्थिक सहायता पहुँचा कर, जातीय संस्कृति एवं कलाके संरक्षणका पुण्यलाभ करना चाहिए। यही नहीं, भारतीय कलाकी सुन्दर-सुन्दर प्राचीन वस्तुएँ भी खोज-खोज कर इस संग्रहालयको भेट की जानी चाहिए। भारतीय कलाके इतिहासमें ऐसे दाताओंके नाम स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेंगे।

नागरी-प्रचारिणी सभासे सम्बद्ध हो जानेपर, विगत

३ मार्च (१९३०) को, 'भारत-कला-भवन' का उद्घाटन हुआ। भारतीय कलाके प्रख्यात आलोचक एवं उसके एकमात्र सचित्र त्रैमासिक पत्र 'रूपम्' के जन्मदाता और सम्पादक, श्री अर्द्धेन्द्रकुमार गांगुली महोदयके हाथों यह शुभकार्य सम्पन्न हुआ।

इस मंगल अवसरपर संग्रहाध्यक्ष राय कृष्णदासने जो संक्षिप्त भाषण दिया था, उससे इस संस्थाके जीवन-चरितपर प्रकाश पड़ता है। आपने कहा—

"आज भगवानने जो मंगलमय समय उपस्थित किया है, उसका बीज मेरे हृदयमें आजसे बीस-बाईस वर्ष पहले उन्हींने अंकुरित किया था। उस समय ऐसी आकांक्षा हुई कि एक बहुत बड़ी जातीय चित्रशाला होनी चाहिए,—जिसमें अपने देशके पौराणिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक चित्रोंका संग्रह हो; किन्तु उस समय मेरी अभिरुचि तैल-चित्रोंकी ओर थी।

"सन १९१० में उस महामनाके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसने भारतीय कलामें एक नई जान डाल दी है—मेरा अभिप्राय स्वनामधन्य श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरसे है। पहली ही भेंटमें उन्होंने मुझे निश्चय करा दिया कि जिस प्रकार पूर्व और पश्चिमकी और बातोंमें अन्तर है, उसी प्रकार दोनोंकी कला भी भिन्न-भिन्न है, और यहाँके आदर्शोंके अनुकूल यहाँकी ही कला है। पश्चिमी कलाके सहारे हम लोग अपने भावोंकी अभिव्यक्ति ठीक-ठीक नहीं कर सकते। अस्तु, उसी समयसे मैं अपने यहांके चित्र संग्रह करनेमें प्रवृत्त हुआ और जातीय चित्रशाला बनानेका विचार भी बराबर करता रहा।

"सन १९१९ में यह विचार निश्चयके रूपमें परिणत हो गया, और सन १९२०की पहली जनवरीको आचार्य भगवानदासके निर्देश तथा श्री सीताराम साह और श्री शिवेन्द्रनाथ बसुकी सहकारितामें 'भारत-कला-परिषद्'की स्थापना कर दी गई, और उसके उद्देश्योंमें संगीत भी रखा गया। चित्रों तथा कलाकी अन्य वस्तुओंका संग्रह भी यथार्थ रूपमें उसी समयसे आरम्भ हुआ, जिसका फल आप लोग इस 'कला-भवन'के रूपमें देख रहे हैं।

"किन्तु इस संग्रहको कोई ठिकाना नहीं मिलता था। इस सम्बन्धमें पं० रामनारायण मिश्रकी सहायता, मित्रवर पं० केशवप्रसादजीका सत्परामर्श और बा० श्यामसुन्दरदासजीका उत्साह न प्राप्त होता, तो उद्घाटनका समय कब आता, नहीं कहा जा सकता।

"किन्तु अभी तक जो कुछ हुआ है, वह नहींके बराबर है।

"कला राष्ट्रके जीवनका एक मुख्य अंग है, क्योंकि उससे हमारे जीवनको रस, स्निग्धता, सहृदयता आदिका आहार मिलता है, अर्थात् वह आहार, जिससे सतोगुणका रक्षण और पोषण होता है। सो, अब आप लोग इस कार्य भारको अपने ऊपर उठाइए और इस कला-भवनको एक वास्तविक कलाका संग्रह बनाइए।······हमें आशा है कि इस महत् कार्यमें आप लोगोंका सहयोग अवश्य प्राप्त होगा, और आप लोग कार्यतः इसे सार्वदेशीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाकर इसके आजके प्राण-प्रतिष्ठा संस्कारको सिद्ध कर देंगे।"

इस कला-भवनका उद्देश्य केवल इतने ही से पूरा नहीं होता कि भारतीय कलाका एक विशाल संग्रहालय बन जाय, जिसका उपयोग एक अजायबघरके रूपमें हो। इसके दूसरा भारतीय संस्कृतिका मर्म समझना और जनतामें कलाका प्रेम तथा उसके लिए निगाह पैदा करना ही कलाभवनका प्रधान अभिप्राय है। इस उद्देश्यकी सफलताके लिए कला-विषयक प्रकाशन, व्याख्यान-प्रदर्शिनी और गोष्ठीका आयोजन भी इसके उद्देश्योंमें है। सचित्र मैजिक लालटेन-व्याख्यानोंके लिए लिखित व्याख्यान और तत्सम्बन्धी साहित्यका एक विशाल भण्डार भी यहाँ तैयार रहेगा।

स्थानका प्रबन्ध होते ही भारतीय कला-सम्बन्धी एक विस्तृत पुस्तकालय एवं संसारमें जहाँ कहीं भी भारतीय कलाकी वस्तुएँ हों, उन सबके फोटोग्राफका संग्रह भी इसकी योजनामें

है, और इसका श्रीगणेश भी हो गया है ; क्योंकि बिना इस प्रकारके संग्रहके अध्ययन-कार्य ठीक-ठीक नहीं हो सकता।

चित्रण और मूर्तिकलाका शिक्षणालय-स्थापन भी आगे चलकर इसका लक्ष्य है। इस शिक्षणालयका उद्देश्य केवल वर्तमान कला-शिक्षालयोंकी संख्याको बढ़ाना न होगा, बल्कि एक ऐसा शिक्षालय बनाना होगा, जो केवल 'कला-भवन'-जैसे संग्रहालयके प्रभाव ही में हो सकता है, अर्थात्—जहां विद्यार्थी भिन्न-भिन्न कालकी भारतीय कलाका मनन करके उसे आत्मसात् कर सकें।

देश विदेशमें जो भी भारतीय कला या संस्कृति-सम्बन्धी संस्थाएँ हैं, उनसे भी कला भवन सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। इस प्रकार कला-भवनका उद्देश्य विशाल है, जिसकी सिद्धि भगवानकी कृपापर ही अवलम्बित है।

चित्र और मूर्तियोंके सिवा, कला-भवनमें हिन्दी और फ़ारसीकी कई सचित्र पुस्तकें हैं, जो कलाकी दृष्टिसे बहुत उच्चकोटिकी हैं। बहुत महीन अक्षरोंमें लिखे हुए सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत (अठारह हज़ार श्लोक) की एक पोथी है, जो लपेटनेवाले खर्रेके रूपमें है। इसका व्यास केवल डेढ़ इंच है। इसके सिवा, सोने, चाँदी और तांबेके सिक्के, बादशाही समयकी लाहकी मोहरें, बुनावटी, जरदोज़ी और शाल इत्यादि वस्त्र तथा अन्य बहुत-सी कला-पूर्ण ऐतिहासिक सामग्री भी यहाँ देखी जा सकती हैं।

गत वर्ष जब महात्माजी युक्तप्रान्तमें दौरा करते हुए काशी पधारे थे, तब उनका शुभागमन 'भारत-कला-भवन' में भी हुआ था। वहाँसे वे बहुत ही सन्तुष्ट लौटे और उन्होंने ३-१०-२६ के 'यंग इन्डिया' में लिखा—

"......I had seen the commodious hall in which the Museum is to find an abiding place and I saw also the promising collection already installed there. The appeal of the Sabha should receive a generous response from all lovers of art." M. K. G.

अर्थात्—"......मैंने उस विशाल भवनको देखा, जिसमें संग्रहालय स्थायीरूपसे रहेगा। मैंने संग्रहालयमें रखी हुई वस्तुएँ भी देखी हैं, और वे दर्शनीय हैं। आशा है, सभाकी अपीलके उत्तरमें कला-प्रेमी जनताकी ओरसे सभाको समुचित और उदार आश्रय मिलेगा।"

—मो० क० गांधी

महात्माजीने जिस अपीलके सम्बन्धमें उक्त नोटमें आदेश किया है, उसे गत वर्ष सभाने निकालकर जनतासे कला-भवनकी प्रस्तावित इमारतके लिए धन और संग्रहालयके लिए मूर्ति, चित्र आदि सामग्री प्रदान करनेकी प्रार्थना की थी।

महात्माजीके उक्त आदेशका पालन करना राष्ट्रका कर्तव्य है।

चित्र-परिचय

स्वामि कार्तिक—यह गुप्त कालीन मूर्ति चुनारके धूसर पत्थरकी है। इसमें स्वामि कार्तिकका गाम्भीर्य, पौरुष, धैर्य्य और ब्रह्मचर्य्यका तेज बड़ी सफलतासे प्रदर्शित किया गया है।

पत्थरका मूर्तिस्तम्भ—यह मथुरा शैलीकी मूर्ति विक्रमसे एक शताब्दि आगे या पीछे की है। इसका मुख-मंडल शांत, विस्मित, नेत्र सुन्दर, अंग-प्रत्यंग सुडौल तथा खड़े होनेकी मुद्रा बड़ी सरल है। मूर्तिके सिरपर एक खोखला कटोरा है। डा० कुमारस्वामी इसे लक्ष्मीकी मूर्ति कहते हैं। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि यह देवमूर्ति नहीं है केवल एक अलंकारिक मूर्ति है जो किसी मंदिर या उद्यानमें शोभाके लिए खड़ी होगी। खोखले कटोरेमें चिड़ियोंके लिए पानी या चरणामृत भरा रहता होगा। यह भारतीय कलाका उत्कृष्ट उदाहरण है।

बादशाह औरंगज़ेब—यह मुग़ल शैलीके अनुसार अंकित किया हुआ बादशाह औरंगज़ेबका एक चित्र है।

दुर्गापाठ—यह राजपूत पहाड़ी (कांगड़ा) शैलीका एक चित्र है।
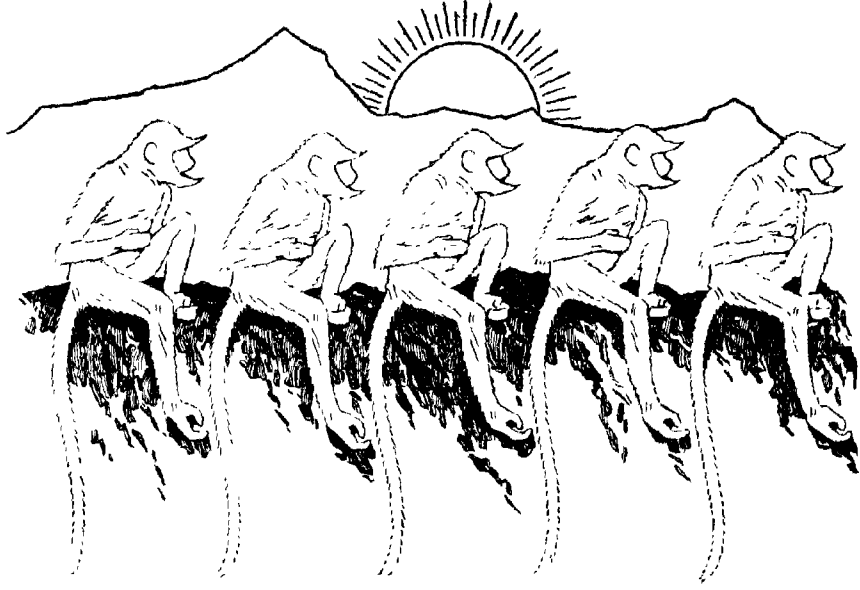
हनुमानजीका सपना

परशुराम-रचित

यतीन्द्रकुमार सेन-चित्रित

रामचन्द्र राज-सिंहासनपर अधिष्ठित होकर अप्रतिहत प्रभावसे राज्य-शासन और निज-सन्तानकी तरह प्रजा पालन करने लगे। कोशल-राज्य शान्ति और स्वास्थ्यका आलय बन गया; प्रजाके घर धन-धान्यसे भर गये; तस्कर, वंचक, पंडित और मूर्खगण अपनी वृत्ति नष्ट हो जानेसे देश छोड़कर भाग गये। देशमें कोई भी दु:खी या पीड़ित न रहा, धर्माधिकरणमें वादी-प्रतिवादी न रहे, कारागार जनशून्य हो गये। वैद्यगण रोगियोंके अभावमें भोगियोंकी परिचर्यामें नियुक्त हुए, विचारकगण परस्पर एक दूसरेके छिद्रान्वेषणमें रत हो कर उसीमें अवसर-विनोदन करने लगे।

हनुमानजी अब अयोध्यामें ही वास करते हैं। श्रीरामचन्द्रने उनके लिए एक सुरम्य कदली-काननमें सप्ततल काष्ठ-भवन निर्माण करा दिया है। महावीरजी वहाँ परम सुखसे अवस्थान करते हुए भक्त प्रजावर्गके समादरमें सर्वाङ्गीण परिपुष्टि अर्जन कर रहे हैं।

परन्तु कुछ ही महीनों बाद उनमें भावान्तर उपस्थित हुआ। अयोध्यावासियोंने उद्विग्न होकर देखा कि पवननन्दन दिन-पर-दिन कृश होते जाते हैं, उनकी क्रान्ति म्लान होती जाती है, अब उनमें वैसी स्फूर्ति नहीं रही। रामचन्द्रजीकी आज्ञासे राजवैद्यगण हनुमानकी चिकित्सा करने लगे,—पर्याप्त रूपसे अरिष्ट, मोदक, रसायनादिकी व्यवस्था की गई, परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। भिषकोंने हताश होकर कहा—"महावीरकी जो व्याधि है, वह आध्यात्मिक है, औषधिसे दूर नहीं हो सकती।" अतएव महर्षि वशिष्ठने हनुमानके मंगलके लिए विराट् यज्ञका आयोजन प्रारम्भ कर दिया।

इधर रानी सीताको बड़ी चिन्ता हुई, उन्होंने हनुमानको अन्त:पुरमें बुलवाकर पूछा—"वत्स, तुम्हें क्या हो गया है, साफ-साफ खोलकर कहो, मैं तुम्हारी माताके समान हूँ, कहनेमें संकोच मत करो।"

शब्द-भाष्य :—अप्रतिहत=बेरोकटोक। धर्माधिकरण=विचारालय, अदालत। अवसर-विनोदन=मनोरंजनमें फुरसतका समय बिताना। सप्ततल=सतमँजिला।

महावीर कुछ देर तो अपनी वाम ग्रीवा कंडुयन करते रहे, उसके बाद दक्षिण ग्रीवा कंडुयन करते हुए नतमस्तक होकर मृदुस्वरसे बोले—"मातः, मेरी गुप्त बात यदि आप सुनना ही चाहती हैं, तो मैं बिना बताये कैसे रह सकता हूँ। कुछ दिन पहले मैंने स्वप्नमें अपने पितृपुरुषोंको देखा है—वे सुमेरु पर्वतपर पंक्तिवार पैर लटकाये बैठे हुए हैं और विषण्ण मुखसे पेटपर हाथ फेर रहे हैं। वशिष्ठ-पुत्र वामदेवसे मैंने इस दुःस्वप्नका अर्थ पूछा, तो उन्होंने कहा—'हे महावीर, और कुछ नहीं, तुम्हारे पितृगण क्षुधित हुए हैं, तुम कदली दग्ध करके श्राद्ध करो, और ब्राह्मणोंको भूरि दक्षिणा दो।' मैंने वामदेवका उपदेश पालन किया, परन्तु उसके बाद फिर पितृगण मुझे स्वप्नमें दर्शन देने लगे। तब मुझे ज्ञान हुआ कि वे क्षणिक व्यवस्थासे तृप्त न होंगे। मेरी मृत्युके बाद उन्हें कौन पिंड देगा? लोग जिस उमरमें विवाह करके गार्हस्थ्य-धर्म पालन करते हैं, मैंने वह अवस्था सुग्रीवका अनुचर बनकर वानप्रस्थमें बिता दी। अब प्रभु श्री रामचन्द्रकी कृपासे सुग्रीवको अपना राज्य वापस मिल गया है, रावण नाशको प्राप्त हुआ है, मुझे भी अवसर मिला है। परन्तु मैं वार्द्धक्यके द्वारपर उपस्थित हूँ; अब यदि गृही होना चाहूँ, तो लोग मुझे धिक्कारेंगे। हाय, अब मेरा पितृ-ऋणसे कैसे उद्धार हो? हे देवि, यह दुश्चिन्ता अहोरात्र मुझे दहन कर रही है, निरन्तर मुझे पितरोंका म्लान मुख और शून्य उदर दिखाई दे रहा है: मेरी भूख, प्यास, निद्रा, शान्ति सब जाती रही।"—इतना कहकर हनुमान अश्रु मोचन करने लगे।

हनुमानके वचन सुनकर देवी जानकीने किंचित् हास्यके साथ कहा—"हे वीरश्रेष्ठ, इसके लिए चिन्ता क्या? तुम लोक-लज्जासे विचलित मत होओ, इसी क्षण विवाह करके पितरोंको निश्चिन्त करो। ऐसी तुम्हारी क्या उमर हो गई है? मेरे पूज्यपाद श्वशुर महोदय तुमसे भी अधिक उमरमें भरत-जननीको ब्याह लाये थे। अभी मैं अपनी सखियोंको बुलाये लाती हूँ, वे एकसे एक सुरूपा, सुशीला और सद्वंशकी हैं। तुम जिसे चाहो, पत्नीत्वमें वरण कर सकते हो। मैं निश्चयसे कहती हूँ—इस अयोध्यामें ऐसी कोई कन्या नहीं, जो तुम्हें पति-रूपमें पाकर अपनेको धन्य न माने। हे कपिप्रवर, तुम अपनी जातिके लिए रंचमात्र भी संकोच मत करो। मेरे अनुरोध करनेसे महर्षि वशिष्ठ उपनयन-संस्कार द्वारा तुम्हें क्षत्रिय बना देंगे। अथवा, यदि मानवीसे तुम्हारी अभिरुचि न हो, तो किष्किन्धा चले जाओ और वहाँसे एक परमासुन्दरी वानरीका पाणिग्रहण करके शीघ्र ही अयोध्या लौट आओ। फिर, तुम्हारी पत्नीका नाम चाहे कुछ भी क्यों न हो, मैं उसे हनुमती कहूँगी और इस राजपुरीकी वधुओंमें उसे सादर ग्रहण करूँगी।"

तब हनुमानने प्रसन्न होकर कहा—"हे जनकनन्दिनि, तुम्हारी जय हो! मैं कुलकी मर्यादाको नहीं तोड़ूँगा, वानरीके साथ ही विवाह करूँगा, और श्रीरामचन्द्रकी अनुमति लेकर आज ही किष्किन्धाकी यात्रा करूँगा।"

हनुमान नाना गिरि-पर्वत, नद-नदी और वनभूमि आदि अतिक्रम करते हुए दण्डकारण्यमें पहुँचे। अपराह्नका समय है, सूर्यास्त होनेमें अधिक विलम्ब नहीं। महावीर एक विशाल शाल्मली वृक्षकी शाखापर बैठकर विश्राम करने लगे, और चारों ओर देखने लगे—आस-पास कहीं रात्रि-वासके योग्य आश्रय है या नहीं। सहसा निकट ही एक सुबृहत् पर्णगृह दृष्टिगोचर हुआ। हनुमान वृक्षसे उतरकर उस गृहमें पहुँचे। भीतर जाकर देखा, तो—बहुत ही अच्छा सजा हुआ है। भूमिपर कोमल तृणराशिके ऊपर मसृण मृगचर्म बिछा हुआ है। एक कोनेमें ढेर-के-ढेर सुपक्व आम्र, पनस, रम्भा आदि फल, दूसरे कोनेमें चन्दनकाष्ठके मंचपर राजोचित वसन—उत्तरीय, उष्णीष आदि—तथा विविध प्रसाधन-द्रव्य और प्राचीरगात्रपर एक सुरम्य वीणा लटक रही

ग्रीवा=गरदन। कंडुयन=खुजाना। कदली=केला। भूरि=बहुत।

मसृण = चिकना। पनस = कठहर। रम्भा = केला। प्राचीरगात्र = दीवार। परिच्छद = पोशाक। उष्णीष = मुकुट।

है। हनुमानने पहले तो समस्त पदार्थोंको हाथमें उठा-उठाकर देखा, फिर हर्षित चित्तसे कहने लगे—"अहो, अवश्य ही स्वर्गस्थ पितरोंने स्नेहवश मेरे अर्थ ये उपहार-सामग्रियाँ भेजी हैं। उनकी प्रीतिके लिए मैं अभी यह परिच्छद धारण करूँगा, और रात्रिकालमें ये उपादेय भोज्यफल भक्षण करूँगा।"

यह कहकर हनुमान उन विचित्र वसन उत्तरीय आदिको पहन और मस्तकपर उष्णीष स्थापन करके अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए। उसके बाद शय्यापर उपवेशन करके विचारने लगे—'अभी तो सूर्यास्त भी नहीं हुआ, भोजनमें विलम्ब है, तब तक उस वीणाको बजा देखें।' महावीरने बड़ी सावधानीसे वीणा उतार तो ली; परन्तु बजानेकी तैयारियाँ करते ही सारे तार टूट गये। हनुमानने विरक्त होकर कहा—"यह क्षणभंगुर यन्त्र वीरोंके लिए अस्पृश्य है।"

अनन्तर वे मृगचर्मपर पड़ रहे और पड़े-पड़े भावी भार्याके विषयमें चिन्ता करने लगे।

कान्ता कैसी होनी चाहिए? तन्वी या स्थूला, पिंगलवर्णा अथवा रक्तकपिशप्रभा, धीरा या चपला, कलकंठी या कर्कशनादिनी? सोचते-सोचते सहसा उनके चित्तमें निर्व्वेद उपस्थित हुआ। हनुमान स्वगत (मन-ही मन) कहने लगे—'अहोवत, मैं यह कैसे घोर कर्मके लिए उद्यत हुआ हूँ। मैंने समुद्र लंघन किया है, लंका भस्म की है, गन्धमादन उत्पाटित किया है। सागर और आकाशमें, पर्वत और अरण्यमें—कहीं भी मुझसे कुछ छिपा नहीं है। मैं समरमें प्रवीण और

एक सुदर्शन युवा पुरुषका आविर्भाव हुआ

संकटमें धीर हूँ। देव-चरित्र, काक-चरित सब मेरे नखदर्पणमें है। परन्तु स्त्रीजातिका रहस्य मैं क्या जानता हूँ! इस अद्भुत प्राणीके न तो गुम्फ है न श्मश्रु, न बल है न साहस। फिर भी देखो, ये शिशुको स्तन्य पान कराती हैं, किन्तु हम लोगोंसे यह नहीं बनता! ये बिना कारण हँसती हैं, बिना कारण रोती हैं, तुच्छ मुक्ता प्रवाल आदि इन्हें प्रिय हैं, सन्तान-पालन और निरर्थक वस्तु-संग्रह ही इनका एकमात्र कार्य है। ईदृशी कोमलाङ्गी, मसृण-वदनी, पयस्विनी,

---

उपवेशन = बैठना। तन्वी = छरछरे बदनकी। स्थूला = मोटी। पिंगलवर्णा = हरे या कालेपनको लिये भूरे रंगकी। रक्तकपिशप्रभा = गुलाबी और पीलेपनको लिये भूरे रंगकी। कलकंठी = मृदुभाषिणी। कर्कशनादिनी = कटुभाषिणी। निर्व्वेद = अनुताप या वैराग्य।

गुम्फ = मूँछ। श्मश्रु = दाढ़ी। मसृण-वदनी = चिकने बदनवाली। पयस्विनी = दुग्धवती। ईदृशी = ऐसी।

शिशु-पालिनी भार्याके साथ मैं किस प्रकारका व्यवहार करूँगा ? यदि वह मेरा प्रिय कार्य करे, तो क्या मस्तकपर स्थापन कर उसका समादर करूँगा ? यदि आज्ञाकारी न हुई, तो क्या चपटाघातसे विगत-प्राण करूँगा ? वानर-धर्मशास्त्रमें ऐसे शासनका विधान है तो सही, परन्तु मानव-शास्त्र क्या कहता है ?

हनुमान इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे कि इतनेमें उस पर्णगृहके द्वारपर एक सुदर्शन युवा पुरुषका आविर्भाव हुआ। युवक बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित तथा शरासन और तूणीरसे सुसज्जित है—उसके एक हाथमें वाण-विद्ध दस तित्तिरपक्षी हैं और दूसरे हाथमें एक हालका तोड़ा हुआ बृहत् मधुचक्र। आगन्तुक हनुमानको देखते ही मारे क्रोधके पागल-सा हो गया, बोला—"रे वानराधम, तेरा इतना साहस कि तू मेरे राजवेशको अपहरण करके मेरी शय्यापर पड़ा है? ठहर जा, अभी तुझे यमालयको भेजता हूँ।"

हनुमानने कहा—"हे वीरपुंगव, तिष्ठ-तिष्ठ। हठकारिता मूर्खोंका लक्षण है, धीर व्यक्ति अग्र-पश्चात् विचार कर कार्य करते हैं। मैं रामदास हनुमान हूँ, लोग मुझे महावीर कहते हैं। इससे अधिक परिचय देना अनावश्यक है।"

तब आगन्तुकने सम्मानके साथ युक्त-कर ललाटपर रखकर कहा—"अहो, आज मेरा कैसा सौभाग्य है कि श्रीहनुमानके दर्शन प्राप्त हुए। हे महावीर, तुम मेरे अज्ञान-कृत अपराधको क्षमा करो। मैं तुम्बवेशका अधिपति हूँ, नाम चंचरीक। यहाँ—इस पर्णकुटीरमें तुम्हारे योग्य कोई सामग्री भी तो नहीं है, जो स्वागत करूँ। यदि किसी दिन मेरी राजपुरीमें पदार्पण करो, तभी मुझे सन्तोष होगा। हे अंजननन्दन, तुम इस रमणीय परिच्छद, उष्णीष आदिको खोल क्यों रहे हो, इनसे तुम साक्षात् कन्दर्पके समान दीख रहे हो। यह लो, मैं दर्पण दिखाता हूँ, एक बार अवलोकन करो। तुम अनुमति दो, तो मैं इन तित्तिरोंका मांस राँधे देता हूँ—बहुत ही स्वादिष्ट होगा। किन्तु तुम तो सम्भवत: निरामिष-भोजी होगे ? तो फिर उन आम्र पनस रम्भा आदिसे क्षुन्निवृत्ति करो। हे मारुति, तुम विमुख मत होओ, एक बार मुँह तो फाड़ो, मैं इस मधुचक्रका रस तुम्हारे मुँहमें निचोड़ दूं। तुम सम्भवत: संगीत-चर्चा कर रहे थे, इसीसे मेरी वीणाकी यह दशा हुई है। हे महावीर, तुमने शायद कार्मुक समझकर उसे टंकारा था ?"

हनुमानने कहा—"हे चंचरीक, तुम्हारी अभ्यर्थनासे मैं प्रसन्न हुआ हूँ। परन्तु तुम अधिक वाचालता मत करो, मेरी इस वज्रमुष्टिकी तरफ देखो, यह सहसा धावित हुआ करती है। इस परिच्छदसे मैं अशान्तिका अनुभव कर रहा हूँ, इसे तुम्हीं धारण करना। मेरे आहारके लिए चिन्ता मत करो, यथासमय वह हो जायगा। तुम्हारी वीणा किसी कामकी नहीं। उसके लिए दु:ख मत करो, मैं उसमें सनकी रज्जु लगा दूँगा। परन्तु एक बात तुमसे पूछता हूँ, इस निर्जन अरण्यमें कुटीर निर्माण करके रहनेका तुम्हारा उद्देश क्या है ? यदि तुम नरपति हो, तो तुम्हारे गज, अश्व अनुचर सेना आदि कहाँ है ? तुम्हारे रथका सारथि कहाँ है ? विदूषक भी तो नहीं दिखाई देता ?"

चंचरीकने कहा—"हे वानरर्षभ, मैं मानसिक दु:खसे एकाकी वनवास कर रहा हूँ, इस समय मैं ही अपना अंगरक्षक हूँ, मैं ही सारथि हूँ और मैं ही विदूषक। मेरी वार्ता अत्यन्त करुण है, श्रवण करो। मेरी महिषी परम रूपवती और अशेष गुणशालिनी हैं, परन्तु उन्हें ठीक पतिव्रता नहीं कह सकता। एक दिन मैं उनकी एक सुन्दरी सखीके साथ किंचित् रस-चर्चा कर रहा था, दुर्भाग्यवश उन्होंने वह देख लिया। इस तुच्छ कारणसे उन्होंने मुझसे वाक्यालाप बन्द कर दिया, और जाकर कोपागारमें वास करने लगीं! मैं भी उन्हें शिक्षा देनेके लिए इस अरण्यमें वास कर रहा

विगतप्राण = प्राण-रहित। शरासन = धनुष। तूणीर = तरकश। तित्तिर = तीतर। मधुचक्र = शहदका छत्ता। युक्त कर = जुड़े हुए हाथ। क्षुन्निवृत्ति = क्षुधा-निवृत्ति, पेट भरना। कार्मुक = धनुष। परिच्छद = पोशाक। वानरर्षभ = वानरोंमें श्रेष्ठ।

हूँ, और पशु-पक्षी मारकर विरह-यंत्रणा उपशम किया करता हूँ। हे पवननन्दन, अब मेरी दृढ़ धारणा हो गई है कि एक भार्या अशेष अनर्थोंका मूल है। शास्त्रोंने यथार्थ ही कहा है—थोड़ेमें सुख नहीं है, सुख है बहुतमें। सुना है, इस अरण्यमें महातपा लोमश मुनि वास करते हैं। नारी-जातिको वशमें रखनेका उपाय उन्हें सम्यक् प्रकार ज्ञात है, कारण उनके एक-सौ पत्नी हैं। मैंने निश्चय किया है कि उन्हें अपना गुरु बनाऊँगा। मैंने तो अपनी सारी वार्ता तुमसे कह दी, अब तुमसे सुनना चाहता हूँ, अयोध्या त्यागकर तुम यहाँ किस लिए आये हो? रामचन्द्रने क्या तुम्हारे पूर्वोपकारको भूलकर तुम्हारा अनादर किया है?"

हनुमानने कहा—"सावधान! तुम राम-निन्दा न करना। मैं किष्किन्धाको जा रहा हूँ, वहाँसे दार-परिग्रह करके वधूके साथ अयोध्याको लौटूँगा। तुम्हारे प्रति मेरी प्रीतिका संचार हो रहा है, अतएव मैं तुमसे मनकी वार्ता सब खोलकर ही कहता हूँ। हे चंचरीक, मैं स्त्री तत्त्वमें व्युत्पन्न नहीं, न उस जातिसे मेरा उतना परिचय ही है, केवल पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिए ही मैंने ऐसा दुरूह संकल्प किया है। तुम्हारी दाम्पत्य वार्ता सुनकर मेरा चित्त संशयमें व्याकुल हो रहा है।"

चंचरीकने कहा—"हे हनुमन्, भयका कोई कारण नहीं। जब कि तुमने गन्धमादन वहन किया है, तो भार्याका भार भी वहन कर सकते हो। मैं तुम्हें सम्पूर्ण तत्त्व सिखा दूँगा। सम्प्रति कुछ सारगर्भित उपदेश देता हूँ, श्रवण करो।—पुत्रके लिए भार्या धारण करना अत्यन्त सहज कार्य है; किन्तु यदि प्रेमके लिए भार्याका समागम चाहते हो, तो स्त्री-चरित्रमें विशेष अभिज्ञताकी आवश्यकता है। स्व-स्त्री सलज्जा हो और पर स्त्री निर्लज्जा—रसज्ञ यही चाहते हैं। तुम्हारे राम-राज्यकी व्यवस्थासे मैं परिचित नहीं हूँ, परन्तु संसारमें ऐसी शुभ-संगति कदाचित् ही देखनेमें आती है। अतएव—"

सम्यक् प्रकार = अच्छी तरह। दार-परिग्रह = विवाह।

हनुमानने कहा—"भो चंचरीक, तुम निवृत्त होओ। पहले तुम अपनी समस्याका समाधान करो, उसके बाद मुझे उपदेश देना। सन्ध्या उत्तीर्ण हो चुकी, अब तुम भोजनका आयोजन कर सकते हो। कुटीर-द्वार बन्द कर दो, वनभूमिकी शीत-वायु अब मुझे सहन नहीं होती।"

चंचरीकने अर्गल बन्द करके प्रदीप जलाया, और भोजनका उद्योग करने लगे। सहसा द्वारपर कराघात करके किसीने कहा—"भो गृहस्थ, अर्गल मोचन करो, मैं शीतार्त क्षुधार्त अतिथि हूँ।"

चंचरीकके द्वार उद्घाटन करनेपर एक शीर्णकाय तपस्वीने कुटीरमें प्रवेश किया। उनका मस्तक जटा-मंडित, श्मश्रु आजानु लम्बित और शरीर लोमोंसे समाकीर्ण है। चंचरीकने प्रणाम करके कहा—"हे तपोधन, आपको देखते ही मैं पहचान गया कि आप स्वनामधन्य लोमश ऋषि हैं। आपके दर्शन-लाभके लिए हम व्यग्र हो रहे थे, आप शायद योग-बलसे जानकर कृपावश स्वयं यहाँ उपस्थित हुए हैं। मैं तुम्बराज चंचरीक हूँ, और ये मेरे परम मित्र जगत्प्रसिद्ध महावीर हनुमान हैं। ये कपिप्रवर दार परिग्रहके लिए किष्किन्धाको जा रहे हैं, किन्तु सहसा इनका चित्त संशयसे व्याकुल हो उठा है। मेरी भी अवस्था सन्तोषजनक नहीं है। मेरे एक भार्या हैं तो सही, परन्तु मैं वैचित्र्यका प्यासा हूँ, अनेकोंका आस्वाद लेनेकी वासना मेरे अत्यन्त बढ़ उठी है। हे ऋषिश्रेष्ठ, सुना है कि दाम्पत्य-तत्त्वमें आपका इतना अधिक प्रवेश है—इतना अधिक ज्ञान है कि जिसकी सीमा नहीं। आपके लिए यह पक्षि-मांस-शूल्यपक्व किये देता हूँ, तब तक आप किंचित् सत्परामर्श दीजिये।"

अर्गल = हुड़का। मोचन = खोलना। शीतार्त क्षुधार्त = जाड़े और भूखसे पीड़ित। शीर्णकाय = दुबला-पतला। श्मश्रु आजानु-लम्बित = घुटनों तक लटकती हुई दाढ़ी। लोम = रोंगटे। शूल्यपक्व = सींकमें पिरोकर भूना हुआ।

इस बीचमें महर्षि लोमश एक सुवृहत् पनस उठाकर गोदमें रखकर उसके सुपक्व कोष दोनों हाथोंसे शीघ्रतासे मुँहमें डाल रहे थे। भोजन समाप्त करके बोले—"हे पवन-नन्दन, हे तुम्बराज, तुम लोग चिरजीवी होओ। अब मैं किंचित् स्वस्थता अनुभव कर रहा हूँ। अष्टाह काल मैं आहार-निद्रासे वंचित था, मैं गृह-च्युत हो गया हूँ, कौपीन-मात्र मेरी पूँजी है।"

शरासनमें झटिति ज्या रोपण करके चंचरीकने कहा—"प्रभो, किस दुराचारी राक्षसने आपका आश्रम लूटा है, बताइये? अनुमति दीजिये, मैं इसी क्षणमें उसे वध करूँगा। क्या आपकी समस्त पत्नियाँ ही अपहृता हुई हैं?—हे महावीर, उठो, फिर तुम्हें सागर-लंघन करना पड़ेगा। विभीषणको छोड़कर अच्छा काम नहीं किया।"

लोमशने कहा—"तुम लोग चंचल मत होओ, मेरा इतिहास श्रवण करो। पहले, इस दक्षिणापथमें द्वादश वर्ष-व्यापी दुर्भिक्ष पड़ा था, उसके प्रतिकारके लिए सौ नरपति मेरे शरणापन्न हुए। उनके राज्यके हितार्थ मैंने एक विराट् यज्ञका अनुष्ठान करके सुभिक्ष (सुकाल) का आविर्भाव कराया। कृतज्ञ नरपतियोंने दक्षिणा-स्वरूप अपनी सौ कन्याएँ मुझे सम्प्रदान कीं, और उनके भरण-पोषणके लिए यथोचित व्यवस्था भी कर दी। मैंने उन राज-नन्दिनियोंके वास करनेके लिए अपने तपोवनमें ही एक सौ गृह निर्माण करा दिये हैं।"

चंचरीकने पूछा—"हे मुनिवर, आपके तपोवनमें क्रोधागार तो होगा?"

लोमशने कहा—"प्रत्येक आगार ही क्रोधागार है। अभागिनियाँ निरन्तर कलह करती रहती हैं, उनके न तो गृह-कर्म हैं, न पति-सेवा, और न व्रत-पूजा ही,—कुछ भी नहीं है। मैंने प्रेमवश उनके 'प्रथमा' 'द्वितीया' इत्यादि क्रमसे 'नवनवतितमा' 'शततमा' पर्यन्त नाम रखे हैं, परन्तु वे परस्पर एक दूसरेको मूषिका, चर्मचटिका, पेचकी, छुछुंदरी इत्यादि निम्न-श्रेणीके नामोंसे सम्बोधित करती हैं, और मुझे भल्लुक कहती हैं। हे राजन्, तुम क्या भूमा (अनेक) का आस्वाद चाहते हो? तो मेरे आश्रममें गमन करो। चिरंजीव हनुमान भी वहाँ जाकर पत्नी-निर्वाचन कर सकते हैं, परन्तु मैं वहाँ नहीं जानेका। अब मुझे शान्ति चाहिए,—और अब तो मैं दूसरा एक विवाह करके, एक पत्नीका जो सुख है, उसीकी उपलब्धि करना चाहता हूँ।"

लोमश मुनिके वचन सुनकर हनुमान कुछ देर तो भौचक्के-से होकर उनके मुँहकी ओर देखते रहे, फिर प्रकृतिस्थ होकर बोले—"हे तपोधन, प्रणिपात करता हूँ; हे चंचरीक, तुम्हारी मनस्कामना परिपूर्ण हो। अब मैं विदा होता हूँ, सुग्रीवके निकट जाना है।"

चंचरीकने चंचलताके साथ कहा—"सो क्यों! इस गभीर रजनीमें अरण्य-पथसे कहाँ जाओगे? कम से कम प्रभात पर्यन्त तो यहीं वास करो।"

हनुमानने एक न सुनी।

किष्किन्धाके एक सुरम्य उपवनमें नल, नील, गय, गवाक्ष आदि मित्रोंके साथ बैठे हुए वानरराज सुग्रीव श्रीफल भक्षण कर रहे थे, इतनेमें हनुमान उनके समक्ष उपस्थित हुए।

सुग्रीवने गम्भीर होकर कहा—"महावीर, इधर कैसे चले आये? मैं अभी राजकार्यमें व्यस्त हूँ, अवसर नहीं है, अन्य समयमें मैं तुम्हारा वक्तव्य सुनूँगा।"

हनुमानने कहा—"हे वानराधिप, मैं एक विशेष प्रयोजनसे तुम्हारी सहायता प्राप्त करनेके लिए तुम्हारे निकट आया हूँ।"

सुग्रीवने कहा—"किष्किन्धामें तुम्हारी जो कुछ वन-सम्पत्ति थी, सबपर चिरंजीव अंगदने दखल जमा लिया। मेरा हाथ भी तंग है—अत्यन्त अभावमें दिन कट रहे हैं,

अष्टाह काल=आठ दिनसे। शरासन=धनुष। झटिति=शीघ्रतासे। ज्या=धनुषकी रस्सी। चर्मचटिका=मादा चमगादड़। पेचकी=मादा उल्लू।

भल्लुक=भालू। प्रणिपात=दंडवत।

इस समय मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता। अयोध्यासे क्यों चले आये? वहीं चले जाओ, जाकर रामचन्द्रसे अपनी प्रार्थना कहो, वे जरूर कुछ-न-कुछ व्यवस्था कर देंगे। राघव वैसे आदमी तो अच्छे हैं।"

हनुमानने कहा—"भो सुग्रीव, तुम कोई चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे राज्यका भाग नहीं चाहता, अर्थ भी नहीं चाहता, प्रभु रामचन्द्रकी कृपासे मुझे किसी बातकी कमी नहीं है। मैं तो विवाह करनेके लिए यहाँ आया हूँ। परन्तु इस अनभ्यस्त व्यापारमें मैं संशयमें पड़ गया हूँ, तुम मुझे परामर्श दो।"

तब सुग्रीवने प्रसन्न होकर कहा—"हे सुहृद्वर, तुम्हारा यह अत्यन्त साधु संकल्प है। तो फिर, अब तक तुम फिजूलकी बातें क्यों कर रहे थे? इस सुकोमल वृक्षशाखापर बैठ जाओ, किंचित् श्रीफलोदक पान करके स्निग्ध हो लो। हे भ्रातः, मैं सर्वदा तुम्हारी हित-कामना किया करता हूँ। बार-बार यही सोचता रहता हूँ कि—अहो, हमारे हनुमान अब तक संसारी नहीं हुए। तुम विवाहके लिए किंचिन्मात्र भी चिन्ता मत करो, यह तो अत्यन्त सहज कार्य है। मैं अष्टाधिक शत भार्याओंसे परिवेष्टित होकर परमानन्दसे काल यापन कर रहा हूँ। सम्प्रति तुम्हें एक पत्नी तो ग्रहण करनी ही चाहिए, पश्चात् क्रमशः संख्यावृद्धि करते रहना। मैं तो कहता हूँ—तुम अन्यत्र उद्यम न करके श्रीमती तारासे विवाह कर लो, मुझे अब उनसे प्रयोजन नहीं है। वे प्रवीणा हैं और पति-सेवामें परिपक्वा हैं। उन्हें प्राप्त करके तुम अवश्य ही सुखी होगे।"

हनुमानने कहा—'तुम तारा देवीका नामोच्चारण मत करो, वे मेरी पूज्या हैं।"

सुग्रीव कहने लगे—"अच्छा! अयोध्यामें रहकर तुम्हारी मति-गति बिगड़ गई है मालूम होता है। खैर, तुम और एक उद्यम कर सकते हो। इस किष्किन्धाके दक्षिण दिशामें किचट देश है। उसके अधिपति प्लवंगम अपुत्रक अवस्थामें बैकुंठधामको चले गये हैं, अब उनकी दुहिता चिलिम्पा राज्य-शासन कर रही है। यह बानरी अत्यन्त लावण्यवती विदुषी और चतुरा है। मैंने विवाहके प्रस्तावके साथ दूत भेजा था, परन्तु चिलिम्पाने लांगुल कर्तन करके बेचारेको विदा कर दिया। *नल, नील, गय, गवाक्ष ये लोग* भी प्रेम-निवेदन करनेके लिए एक-एक करके क्रमसे उसके पास गये थे, परन्तु सब छिन्नलांगुल होकर ही वापस आये। उस दुर्विनीता बानरीपर मेरा लोभ और क्रोध दोनों विद्यमान हैं, परन्तु मुझे अवसर नहीं है, नहीं तो मैं स्वयं ही अभियान करके उसे पकड़ लाता। अब यदि तुम उसे जाकर ले आओ, तो मेरा क्षोभ दूर हो सकता है, और तुम्हें भी पत्नीकी प्राप्ति हो सकती है।"

हनुमानजी कुछ देर तक सोचते रहे, फिर बोले—"तथास्तु। मैं अभी किचट देशको यात्रा करता हूँ।"

हनुमानजी किचट राज्यमें उपस्थित हुए। उनका विशाल शरीर देखकर प्रजागण भयसे मार्ग छोड़-छोड़कर अलग खड़े हो गये, और राजकुमारी चिलिम्पाको सवाद दिया—"हे राजनन्दिनी, अब कुशल नहीं, एक पर्वताकार वीर बानरने तुम्हारे राज्यपर आक्रमण किया है।"

चिलिम्पाने कहा—"कोई भय नहीं, ऐसे अनेक वीर देखे हैं। यहाँ बुला लाओ उसे।"

हनुमान एक मनोरम कुंजवनमें लाये गये। चिलिम्पा वहाँ सखियोंसे परिवृता होकर बैठी थीं, उनके कानोंमें रक्त प्रवाल, गलेमें स्फटिकमणि, हाथोंमें लीला-कदली थे।

हनुमान मुग्ध होकर विचारने लगे—'अहो, सुग्रीवने यथार्थ ही कहा है। यह तरुणी बानरी परमा सुन्दरी है, इसे

श्रीफलोदक=नारियलका पानी। स्निग्ध होना=मिजाज तर करना। संसारी=गृहस्थ।

लांगुल=पूँछ। कर्तन=काटना। छिन्नलांगुल=पूँछकटा। दुर्विनीता=अविनीता या अहंकारिणी। अभियान=समरयात्रा। लीला-कदली=लीला-कमलके अनुरूप प्रयोग—आर्षप्रयोग ही समझ लीजिये।

देखते ही मेरा चित्त चंचल हो उठा है, संशय दूर हो गया। इसे यदि प्राप्त न कर सका, तो मेरा जीवन ही वृथा है।'

ईषत्-हास्यसे कुन्ददन्त विकशित करके चिलिम्पाने कहा—"हे वीरवर, तुमने किस कारण बिना अनुमतिके मेरे राज्यमें प्रवेश किया? तुम कौन हो, कहाँसे आये हो, क्या चाहते हो,—सब प्रकट रूपसे कहो, मैं तुम्हें अभय देती हूँ।"

हनुमानने कहा—"हे प्लवंगम-नन्दिनि, मैं रामदास हनुमान हूँ, अयोध्यासे आया हूँ, तुम्हारे साथ पाणिग्रहण करके फिर अयोध्याको वापस जाना चाहता हूँ। मैं भी तुम्हें अभय देता हूँ, मनकी बात खोलकर कहो।"

हनुमानकी बात सुनकर सखियाँ सब खिलखिलाकर हँस पड़ीं। चिलिम्पाने कहा—"हे हनुमन्, तुम्हारी धृष्टता तो कम नहीं है। तुममें ऐसे क्या गुण हैं, जो मेरे पाणि-प्रार्थी होनेका साहस किया तुमने?"

हनुमानने कहा—"मैं उन रामचन्द्रका सेवक हूँ, जिन्होंने पितृ-सत्य पालन करनेके लिए वनवासको अंगीकार किया था, जिन्होंने रावणका सवंश विनाश किया है, जो दूर्वादल-से श्याम और पद्मपलाश-लोचन हैं, जो सर्वगुण-विभूषित और लोकोत्तर-चरित हैं।"

चिलिम्पाने कहा—"हे रामदास, तुम क्या रामचन्द्रका सम्बन्ध करने आये हो?"

हनुमानने जिह्वा दंशन करके कहा—"मेरे प्रभु एकदारनिष्ठ हैं। जनक तनया सीता उनकी भार्या हैं, जो मूर्तिमती कमला हैं, त्रिजगतमें जिनकी तुलना नहीं।—मैं अपने लिए ही तुम्हारे पास आया हूँ।"

चिलिम्पा—"तो अपनी ही बात कहो।"

हनुमान कहने लगे—"अपनी प्रशंसा आप करना धर्म-विरुद्ध है, किन्तु पंडितोंके मुँहसे सुना है, प्रियाके समक्ष आत्म-गौरव कथनमें दोष नहीं। अतएव कहता हूँ, सुनो। मैंने सागर लंघन किया है, गन्धमादन उत्पाटित किया है। भगवान भानुको कक्षपुटमें रुद्ध किया है—यह देखो अभी तक फलक मौजूद है। मैंने शतलक्ष राक्षस वध किये हैं, रावणके मस्तकपर चपेटाघात किया है, उनके रथका चूड़ा चर्वण किया है—यह देखो एक दाँत भी टूट गया है।"

चिलिम्पाने कहा—"हे महावीर, तुम्हारी वार्ता सुनकर मुझे परम प्रीति उत्पन्न हुई है। परन्तु स्त्री-जाति केवल वीरत्व नहीं चाहती। तुममें कान्तके गुण क्या-क्या हैं? तुम नृत्य-गीत जानते हो?"

हनुमानने कहा—"अयि चिलिम्पे, रावण-वधके बाद आनन्दसे अधीर होकर एक बार मैंने नृत्यगीतका उपक्रम किया था, परन्तु नल नील आदि वानरोंने मेरा उपहास किया, जिससे मैं रुक गया। तब सुमित्रानन्दनने मुझसे कहा—हे मारुति, तुम क्षुब्ध न होना। तुम जो कहोगे वही संगीत है, जो करोगे वही नृत्य है,—निम्न-श्रेणीके लोगोंमें समझनेकी शक्ति नहीं है।"

चिलिम्पाने अपने हाथके कदलीगुच्छको दंशन करते हुए लापर्वाहीके साथ कहा—"हे पवननन्दन, तुम प्रेमतत्त्वके सम्बन्धमें कहाँ तक जानते हो? तुम किस जातिके नायक हो? धीरोदात्त, या धीरोद्धत, या प्रशान्त, या ललित? तुम किस प्रकारसे मेरा मनोरंजन करोगे, किस भाँतिसे मेरा मान-भंजन करोगे? यदि मैं गजमुक्ताका हार चाहूँ, तो तुम कहाँसे प्राप्त करोगे? यदि क्रुद्ध होकर मैं आहार न करूँ, तो तुम क्या करोगे?"

हनुमान सोचने लगे—इस विदग्धा वानरीने अब तो मुझे संकटमें डाल दिया, इसके प्रश्नोंका क्या उत्तर दूँ? खैर, कुछ भी हो, इसके सामने मैं निरुत्तर न होऊँगा। बोले—"*हे सुन्दरि, तुम्हें देखकर मेरा चित्त चंचल हो उठा है, प्रेमतत्त्वके सम्बन्धमें यही मेरा प्रथम ज्ञान है।*

ईषत्—थोड़ा। ईषत् हास्य=मुसकराना। कुन्ददन्त=कुन्दपुष्प-से सफेद *या सफेद पत्थरकी तरह चमकते हुए दाँत। पाणि-प्रार्थी= विवाहके लिए उम्मेदवार। पद्मपलाशलोचन=कमलकी पखड़ियोंके* समान दीर्घ या विस्तृत नेत्रवाले।

कक्षपुटमें रुद्ध करना=बगलमें दाबना।

हंस-दूत

चित्रकार—श्री रामकिंकर दास
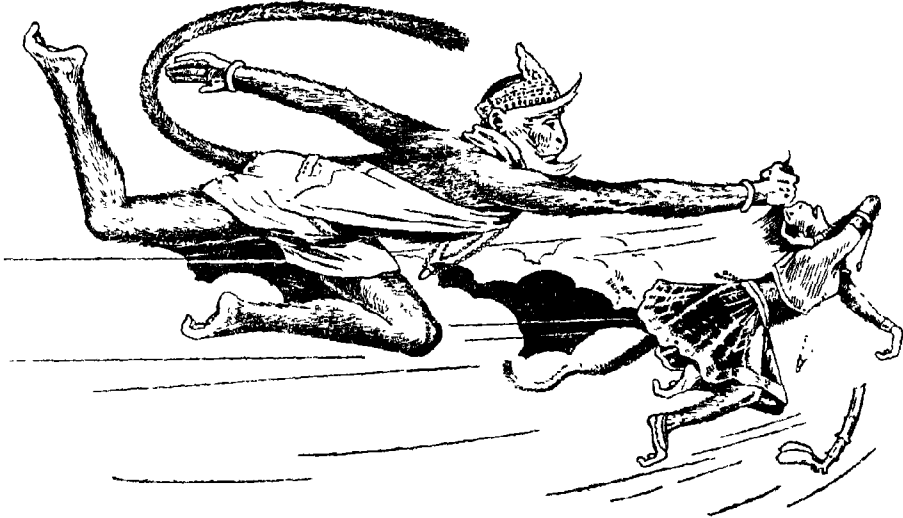
झंझा-वाहित मेघकी तरह हनुमानजी आकाश-मार्गसे धावित हो रहे हैं

तुम चिन्ता मत करो, तुम्बराज चंचरीक मुझे सब सिखा देंगे। यदि तुम मुक्ताहारकी कामना करोगी, तो जानकीके पाससे माँग लाऊँगा; यदि भोजन न करोगी, तो इन लौह-कठोर अँगुलियों द्वारा तुम्हें खिलाऊँगा। हे प्रिये, अब विलम्ब मत करो, मेरे साथ चली चलो। सीताजीने तुम्हारा नाम हनुमती रखा है, वे तुम्हें वरण करनेके लिए अयोध्यामें प्रतीक्षा कर रही होंगी।

चिलिम्पाने तब हनुमानकी ठोढ़ीपर तर्जनी-द्वारा मृदु-मृदु आघात करते हुए मधुर स्वरसे कहा—"अरे बर्बर, अरे अबोध, तुम प्रेमके बारेमें कुछ भी नहीं जानते। जाओ, किष्किन्धा जाकर सुग्रीवको मेरे पास भेज दो।"

हनुमानने आकुल होकर कहा—"अयि निष्ठुरे, मुझे आशा देकर निराश क्यों कर रही हो? मैं तुम्हें किसी भी प्रकार नहीं छोड़ूँगा।"—इतना कहकर उन्होंने चिलिम्पाको पकड़नेके लिए भुजाएँ प्रसारित कीं।

चिलिम्पाने करतालि देकर विकट हास्य किया। सहसा वनान्तरालसे निकलकर कालान्तक यमके समान दो महाकाय नरवानरोंने चुपके-से पीछेसे आकर हनुमानको असावधान अवस्थामें पाशमें बाँध लिया।

चिलिम्पाने कहा—"हे उद्ग्र उद्ग्र, इस मर्कटको बड़ा ही दर्प हो गया है, इसे द्वादश-अंगुलि परिमित छाँट दो।"

तब प्रत्युत्पन्नमति हनुमानने प्रभंजनका स्मरण किया। क्षणमात्रमें उनका शरीर हिमाद्रिके समान हो गया, पाश शत-छिन्न हो गया, नरवानरोंपर पदाघात करते ही वे सागरमें निपतित हुए। स्वर्ग मर्त्य पातालको प्रकम्पित करते हुए महावीरने 'ऊप' 'ऊप' रवसे तीन बार सिंहनाद किया, और उसके बाद चिलिम्पाके केश ग्रहण-पूर्वक 'जयराम' घोष करते हुए वे ऊर्ध्वदिशाको उछले और आकाश-मार्गसे चलते बने।

झंझा-वाहित मेघकी तरह हनुमानजी आकाश-मार्गसे धावित हो रहे हैं। आकाश-विहारी सिद्ध-गन्धर्व-विद्याधरगण कहने लगे—"हे पवनात्मज, इतने दिनों बाद तुम्हारी कौमार-दशा दूर हुई, आशीर्वाद करते हैं—तुम सुखी होओ।"

दिग्वधुएँ दौड़ी आईं, बोलीं—"हे अंजनानन्दन, क्षण भरके लिए अपनी गति रोको, हम नववधूका मुंह देखेंगी।"

हनुमानने हुंकार नाद किया, गगनचारिगण मारे भयके

भागकर मेघकी ओटमें जा छिपे, दिग्वधुएँ दिशा-विदिशाओंमें विलीन हो गईं।

चिलिम्पाने कातर कंठसे कहा—"हे महावीर, मेरे केश छोड़ दो, बड़ी पीड़ा हो रही है। बल्कि तुम मुझे पीठपर ले लो तो अच्छा हो, नहीं तो वक्षस्थलपर धारण कर लो।"

हनुमानने कहा—"चुप!"

चिलिम्पा कहने लगी—"हे प्राणवल्लभ, मैं बिलकुल तुम्हारी ही हूँ। हे अरसिक, तुम क्या परिहास भी नहीं समझते? मैं तो तुम्हारे सिवा और किसीको जानती ही नहीं।"

हनुमानने पुनरपि कहा—"चुप!"

नीचे किष्किन्धा दिखाई दे रही है। सुग्रीव कावेरी नदीमें अष्टाधिक शत पत्नियोंके साथ जल-केलि कर रहे हैं।

हनुमानने मुष्टि उन्मुक्त की। अव्यर्थ लक्ष्य ठहरा। वानरी घूमती-घूमती ठीक सुग्रीवके कंधेपर आकर पतित हुई।

भारमुक्त होकर हनुमान वेगसे धावित हुए—दण्डकारण्य, विन्ध्याटवी—प्रयाग—अन्तमें अयोध्या।

सीताजीने विस्मयके साथ कहा—"यह क्या वत्स पहलेसे संवाद क्यों नहीं दिया? मैं नगरी सुसज्जित कराती, बादित्र-भांड आदिका आयोजन कराती।—और हनुमती कहां है?"

हनुमानने नत-मस्तक हो कहा—"मातः, हनुमती नहीं मिली। मैं एक साधारण बानरीको हरण करके ला रहा था, सो उसे भी मार्गमें सुग्रीवको दान कर आया। हे देवि, विधाताने मेरे इस विशाल वक्षस्थलमें जो क्षुद्र हृदय दिया है, उसे परिपूर्ण करके तुम और श्रीरामचन्द्रजी वहां विराज रहे हो; दारा-पुत्रादिके लिए वहां स्थान ही नहीं है। मुझे तुम यही वर दो—मैं स्वयं अमर होकर चिरकाल तक पितरोंको पिण्डोदक प्रदान करता रहूँ।"

सीताजीने कहा—"वत्स, ऐसा ही हो।"

तब हनुमानजीने परितुष्ट होकर विशाल वक्षस्थल प्रसारित करके दोनों भुजाएँ ऊपरको उठाकर वज्रकी भांति निर्घोष करके कहा—"जय सीता-राम!"

—धन्यकुमार जैन

भारतीय शिल्प-विद्या

अध्यापक फणीन्द्रनाथ बसु, एम० ए०

यह समयका शुभलक्षण है कि आजकल हमारे भारतीय विद्वान भारतीय शिल्प शास्त्रके अध्ययनकी ओर अधिकाधिक ध्यान देने लगे हैं। डाक्टर विन्टरनिज़ने ठीक ही कहा है कि 'भारतीय साहित्यकी यह शाखा बहुत दिनोंसे उपेक्षित पड़ी है।' परन्तु आजकल भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके विद्वान शिल्प-शास्त्रके नये नये ग्रन्थोंकी खोज करने और इस विषयपर नवीन प्रकाश डालनेमें लगे हुए हैं। डाक्टर अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके नेतृत्वमें बंगालमें कलाका जो पुनर्जन्म हुआ है, उसने भी भारतीय-कलाके विस्तृत साहित्यके अध्ययनको प्रोत्साहन दिया है।

यहाँ तक कि कुछ वर्ष पहले तक यूरोपियन लेखक भारतमें शिल्प-विषयक ग्रन्थों तथा इस भारतीय कलाकी ओर प्राचीन भारतीय लेखकोंकी उदासीनताकी शिकायत करते थे। परन्तु हालमें महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री तथा अन्यान्य विद्वानोंके सम्पादकत्वमें शिल्प-शास्त्रके जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उससे उपरोक्त शिकायत निर्मूल सिद्ध हो जाता है। किसी समय भारतमें शिल्पके विषयपर विस्तृत साहित्य था। यह साहित्य 'वास्तु-शास्त्र' के अठारह परम्परागत लेखकों-द्वारा लिखा हुआ था। इन अगणित ग्रन्थोंमें न मालूम कितने कीड़े-मकड़ोंके उदरमें चले गये, कितनोंको उनके मूर्ख मालिकोंने नष्ट कर दिया और कितने ही विदेशी विजेताओंके सत्यानाशी दौरदौरेमें समाप्त हो गये। सौभाग्यसे उनमें से कुछ ग्रन्थ, भारतके सुदूर प्रान्तोंमें—जैसे, नेपाल, ट्रावनकोर, गुजरात, उड़ीसा आदिमें—अब तक सुरक्षित हैं। ट्रावनकोरमें महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीको शिल्प-शास्त्रपर अनेक हस्त-लिखित प्रतियाँ मिली हैं, जिनमें से उन्होंने (१) वास्तु-विद्या, (२) मयमतम्, (३) मनुष्यालय चन्द्रिका, (४) शिल्परत्नम् और (५) समरांगनसूत्रधारम् नामक ग्रन्थोंका सम्पादन करके उन्हें प्रकाशित किया है। उड़ीसाकी पुरानी पद्धतिके शिल्पकारोंके पास अब भी अनेकों हस्त लिखित ग्रन्थ हैं, जिन्हें वे अब तक मन्दिर या मूर्ति बनाते समय देखा करते हैं। वहाँकी हस्तलिपियोंमें (१) भुवनप्रदेश, (२) शिल्पसदाजय और (३) शिल्प-शास्त्रका उल्लेख किया जा सकता है। कुछ वर्ष पूर्व मुझे उड़िया अक्षरोंमें छपी हुई तथा उड़िया भाष्य-सहित शिल्प-शास्त्रकी एक प्रति देखनेको मिली थी। मैंने इस ग्रन्थके उड़िया पाठका सम्पादन करके 'पंजाब संस्कृत सीरीज़' में प्रकाशित किया है। नेपाल-दरबारका पुस्तकालय हस्त लिपियोंके संग्रहमें बहुत धनी है। वहाँ शिल्प-शास्त्रके कुछ हस्त-लिखित ऐसे ग्रन्थ भी मौजूद हैं, जिन्हें यह समझा जाता था कि वे बहुत दिन पूर्व नष्ट हो चुके हैं। नेपाल-दरबारने विश्व-भारतीको कुछ हस्त-लिपियाँ प्रदान की हैं। इनमें भी मुझे 'प्रतिमा-लक्षणम्' नामक एक शिल्प शास्त्रकी हस्तलिपि देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसे भी मैंने उपरोक्त सीरीज़में प्रकाशित किया है। गुजरातमें सुनते हैं कि 'अपराजित', 'गृह-वस्तुसार' तथा कुछ अन्य ग्रन्थ विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपनी 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' नामक पुस्तकमें शिल्प-शास्त्रपर निम्न-लिखित ग्रन्थोंका उल्लेख किया है—(१) 'वास्तुसौख्य', (२) 'अपराजित वास्तुशास्त्र', (३) 'प्रसादानुकीर्तन', (४) 'चक्रशास्त्र', (५) 'चित्रपट', (६) 'जलार्गल', (७) 'पश्चिमनुष्यालयलक्षण', (८) 'रथलक्षण', (९) 'विमान-विद्या', (१०) 'विमानलक्षण', (११) 'विश्वकर्मीय', (१२) 'कौतुकलक्षण', (१३) मूर्तिलक्षण' (१४) 'प्रतिमा-द्रव्यादिवचन', (१५) 'सकलाधिकार', (१६) 'सारस्वतीय

शिल्प शास्त्र', (१७) 'विश्वविद्याभरण', (१८) 'विश्वकर्म-प्रकाश' और (१९) 'विश्वकर्मीय शिल्प'।*

'शिल्प' शब्दका भी अपना निजी इतिहास है। वैदिक कालमें इसके अर्थ नृत्य, गीत और वाद्य होते थे, परन्तु समयके परिवर्तनसे इसके अर्थमें भी परिवर्तन हो गया है। आजकल नृत्य, गीत और वाद्यका शुमार कलामें होता है। रामायणमें शिल्प और कला दोनों शब्दोंका व्यवहार भिन्न-भिन्न अर्थोंमें मिलता है। यथा—

''नानाशिल्पकलाश्च भवेरपि परन्तप।''

(प्रथम खण्ड पृ० ३०१-५)

इस कालमें शिल्पी लोग सड़कें बनाने तथा यज्ञ-वेदी आदि रचनेका काम करते थे। शिल्पियों-द्वारा यज्ञ-वेदी पूरा करनेका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

''विन्यस्ता विधिवत् सर्वे शिल्पिभिः सुकृता दृढाः।''

(बालकाण्ड १४, २५)

शिल्पियोंको सड़क बनानेका आदेश इस प्रकार मिलता है—

''क्रियतां शिल्पिभिः पन्थाः समानि विषमाणि च।''

(अयोध्याकाण्ड ७९, १३)

इस प्रकार 'शिल्पियों'में अनेक कारीगरोंकी गणना होने लगी। 'वास्तु विद्या' में शिल्पियोंमें स्थपति (भवन-निर्माता), सूत्रग्राही (बढ़ई), तक्षक (मूर्तिकार) और मृतकर्मज्ञ (कुम्हार) का शुमार किया गया है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराणम्'में विश्वकर्माके नौ पुत्रोंको 'शिल्पकारिणः' नामसे पुकारा गया है। वे ये हैं—(१) मालाकार (माली), (२) कर्मकार (लुहार), (३) शंखकार (शंखका काम बनानेवाला) (४) कुविन्दक (जुलाहा या कोरी), (५) कुम्भकार (कुम्हार) (६) कांसकर (कसेरा), (७) सूत्रधार (बढ़ई), (८) चित्रकार और (९) स्वर्णकार। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहांपर शिल्प ऐसे विस्तृत अर्थमें प्रयुक्त होता है, जिसमें प्रायः सभी मुख्य कारीगर आ जाते हैं।

महाभारतमें एक सहस्र शिल्पोंका वर्णन है। इन शिल्पोंके जन्मदाता विश्वकर्मा बताये गये हैं, और कहा गया है कि इन शिल्पोंके द्वारा लोग अपनी आजीविका पैदा करते थे। अग्निपुराणमें भी यही वर्णन है। यथा—

''कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्द्धकिः।
मनुष्याश्चोप जीवन्ति शिल्पं वै भूषणादिकम्॥''

(अग्निपुराणम्, २८, ४०-४२)

कुछ विद्वानोंका कथन है कि शिल्प-शास्त्रके दस विभाग हैं—(१) कृषि-शास्त्र (२) जल-शास्त्र (३) खनि-शास्त्र, (४) नौका-शास्त्र, (५) रथ-शास्त्र, (६) विमान-शास्त्र, (७) वास्तु-शास्त्र (८) प्राकार-शास्त्र, (९) नगर-रचना-शास्त्र और (१०) यन्त्र-शास्त्र।

यहाँपर हम देखते हैं कि 'वास्तुशास्त्र' शिल्पशास्त्रका ही एक विभाग है। मत्स्यपुराणमें हमें 'वास्तुशास्त्र' पर लिखनेवाले लेखकोंके नाम मिलते हैं। वे अठारह हैं:—(१) भृगु (२) अत्रि (३) वशिष्ठ (४) विश्वकर्मा (५) मय (६) नारद (७) नग्नजित (८) विशालाक्ष (९) पुरन्दर (१०) ब्रह्मा (११) कुमार (१२) नन्दीश (१३) शौनक (१४) गर्ग (१५) वासुदेव (१६) अनिरुद्ध (१७) शुक्र और (१८) बृहस्पति।

इन लेखकोंमें 'विश्वकर्मा' सबसे प्रमुख व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं। भारतके समस्त शिल्प-साहित्यमें वे सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। वे स्वयं बड़े दक्ष शिल्पी थे, और उनका नाम पौराणिक साहित्यमें बारबार आया है। हमें एक बातका ध्यान रखना चाहिये कि शिल्प शास्त्रका लेखक विश्वकर्मा, लोकप्रचलित कथाओंके विश्वकर्मासे भिन्न है। 'ब्राह्मण' ग्रन्थोंमें विश्वकर्मा सृष्टि-उत्पादक प्रजापतिका नाम है। शायद इस सृष्टि-उत्पादक विश्वकर्माके कारण ही सांसारिक वस्तुओंके उत्पादकको भी विश्वकर्माका नाम मिला है। इस बातमें हमें कोई सन्देह नहीं है कि गुप्तकालके पूर्व विश्वकर्मा नामक एक शिल्पशास्त्रका लेखक हो चुका है। उसके शिल्पके सिद्धान्त बहुत लोकप्रिय रहे होंगे। इसीलिए भारतीय साहित्यमें उसकी अनेकों गाथाएँ

* 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' पृ० २३३

प्रचलित देख पड़ती हैं। आज दिन भी 'विश्वकर्मा पूजा' के दिन समस्त भारतीय कारीगर विश्वकर्माकी पूजा किया करते हैं।

पुराणोंसे ज्ञात होता है कि विश्वकर्मा 'प्रभास' का पुत्र था। वह प्रजापति तथा शिल्पी था। शिल्पीके रूपमें वह महलों, भवनों, उपवनों, मूर्तियों, आभूषणों, तालाबों, और कुओं आदिके बनानेमें दक्ष था।

'मानसार' नामक शिल्पके एक प्रसिद्ध ग्रन्थमें (जिसका सम्पादन डा० पी० के० आचार्य कर रहे हैं) लिखा है कि सृष्टि कर्ता ब्रह्माके चार मुखोंसे चार स्थपति उत्पन्न हुए। उनमेंसे पहला विश्वकर्मा था। वह देवताओंका शिल्पी माना जाता है। वह देवताओंके लिए प्रासाद बनानेपर नियुक्त दिखाई पड़ता है। भारतके 'नाट्य-शास्त्र'में हम देखते हैं कि ब्रह्मा विश्वकर्माको एक नाट्यशाला रचनेकी आज्ञा देते हैं यथा :—

"ततस्तु विश्वकर्माणमहं ब्रह्मा प्रयत्नतः।
कुरु लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म महामते ॥"

(नाट्यशास्त्रम् २, ४५)

इस देव-शिल्पीने बहुत ही अल्प समयमें एक बृहत् नाट्यगृह बनाकर खड़ा कर दिया, यथा :—

"ततोऽचिरेण कालेन विश्वकर्मा शुभं महत्।
सर्वलक्षणसम्पन्नं कृत्वा नाट्यगृहं तु सः ॥"

रामायणमें हम देखते हैं कि विश्वकर्माने राक्षसोंके लिए सुन्दर लंकापुरीकी रचना की थी। साथ ही उसने अगस्त्य, सूर्य और कुबेरके लिए प्रासादोंका निर्माण किया था। उसीने ब्रह्माके लिए देवरथ 'पुष्पक' को बनाया था। स्कन्दपुराणमें लिखा है कि उसने हिमालयके कहनेमे एक सभा भवन बनाया था। उसने केवल एक सुन्दर सभा-भवन ही नहीं बनाया बल्कि उसे घोड़ों, मयूरों और हरिणोंकी आकृतियोंसे सजा भी दिया। उसने वहां अनेक देवताओंकी मूर्तियाँ भी स्थापित की।

विश्वकर्मा केवल एक महान शिल्पी ही नहीं समझा जाता बल्कि शिल्प-शास्त्रका लेखक भी माना जाता है। अनेक शिल्प ग्रन्थ उसके लिखे बताये जाते हैं। वह 'विश्वकर्मप्रकाश' का रचयिता बताया जाता है। इस ग्रन्थके दो संस्करण-एक बनारस तथा एक बम्बईसे प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तकके अन्तमें विश्वकर्माको समस्त गुण सम्पन्न और सम्पूर्णशास्त्रोंका ज्ञाता, महात्मा बताया गया है। वह समस्त देवताओंका 'सूत्रधार' कहा गया है।' उसने मनुष्य और संसारके उपकारके लिए यह शिल्प-ग्रन्थ लिखा था। इसके अतिरिक्त 'विश्वकर्मीयम् शिल्पशास्त्रम्' नामक ग्रन्थकी हस्तलिपि मद्रासकी ओरियन्टल मेनुस्क्रिप्त लाइब्रेरीमें विद्यमान सुनी जाती है।

भारतीय सौन्दर्यका आदर्श

शिल्प शास्त्रसे हमें यह जाननेमें बहुत सहायता मिलती है कि भारतीय लोग सौन्दर्यको किस दृष्टिकोणसे देखते थे। हमारे आलोचकगण पाश्चात्य संसारके सौन्दर्यके स्टैन्डर्डसे भलीभाँति परिचित हैं, अतः वे बहुधा भारतीय कलाकी परख उसी पाश्चात्य स्टैन्डर्डसे किया करते हैं। वे उन विशेष परिस्थितियों और वातावरणको—जिनमें रहकर भारतीय कला फलीफूली है—ध्यानमें नहीं रखते। वे पूर्वीय मस्तिष्क और पूर्वीय विचार-धारापर—जो भारतीय कलाके विकासके उत्तरदायी है, जैसा कि अजन्ता तथा बाघकी गुफाओंकी चित्रकारी तथा भारतके अन्यान्य अनेकों मन्दिरों और मूर्तियोंसे प्रत्यक्ष है—ध्यान नहीं देते।

अतः भारतमें कलाके समालोचकोंमें यह एक फैशन-सा हो गया है कि वे भारतीय कलाके अन्तर्गत सिद्धान्तों और भावनाओंको समझनेकी चेष्टा किये बिना ही भारतीय कलाकी आलोचना करने लगते हैं। प्राचीन भारतीय कलाकारोंने मूर्तियां बनानेमें उनके आन्तरिक भाव और परिचिन्तनको प्रदर्शन करनेकी चेष्टा की है। इस चेष्टामें उन्होंने कहीं-कहीं भुजाओं अथवा अन्य अंगोंके अनुपातपर विशेष ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने मूर्तिकी मुखाकृति ही विशेष सुन्दर बनानेकी तथा उसमें योग और शान्तिका भाव दरसानेकी

विशेष चेष्टा की है। भारतीय कलाके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण गुप्तकालीन बुद्ध-मूर्तियोंमें मिलते हैं। बुद्धकी ये प्रतिमाएँ निस्सन्देह बड़ी ही सुन्दर हैं, और वे भगवान बुद्धकी शान्त-प्रकृति और ध्यान-मुद्राको एकदम प्रत्यक्ष कर देती हैं। जो कोई भी इन मूर्तियोंको देखता है, वह उनके सौन्दर्यसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उन्हें देखकर तो सहसा यही कहना पड़ता है—"शान्तं, शिवं, सुन्दरं"। जब कोई पूजार्थी इन मूर्तियोंकी ओर देखता है, तब उसके विचार इस संसारसे निकलकर आध्यात्मिक संसारमें जा पहुँचते हैं। इसीलिए आचार्य शुक्रने अपनी 'शुक्रनीति'में बिलकुल ठीक ही लिखा है—"प्रतिमाकी विशेषता यह होनी चाहिए कि वह योग और परिचिन्तनकी ओर अग्रसर होनेमें सहायता दे।" मूर्ति बनानेमें मूर्तिकारका उद्देश चर्म-चक्षुओंके लिए आनन्द उत्पन्न करना नहीं था, बल्कि पूजार्थीके हृदयमें योगके भाव उत्पन्न करना था, अतः मूर्तियाँ ध्यानावस्थित, शान्त स्वभावकी तथा शान्तं, शिवं, सुन्दरंके आदर्शवाली होनी चाहिए। शुक्रनीतिमें यह भी कहा है कि मूर्तियाँ बनानेवाला मनुष्य भी ध्यानशील प्रकृतिका होना चाहिए, अन्यथा उसे इस प्रकारकी मूर्तियाँ गढ़ना सम्भव नहीं।

आचार्य शुक्रने मूर्तियोंको तीन भागोंमें विभाजित किया है—(१) सात्विक, (२) राजसिक और (३) तामसिक। इनमें से सात्विक प्रतिमाएँ सर्वोत्कृष्ट हैं। वे कहते हैं—"सात्विक प्रतिमा वह है, जो योगमुद्रामें हो, उसकी पीठ सीधी होनी चाहिए, हाथ अभय-मुद्रामें हों और देवगण उसकी पूजा करते दिखाये गये हों।" इस प्रकारकी सात्विक प्रतिमाकी चार मुख्य विशेताएँ यह हैं—

१. योगमुद्रा—अर्थात् ध्यानावस्थित दशा हो और दृष्टि नाककी नोकपर स्थित हो।

२. स्वस्थ—सीधे बैठे हुए।

३. वराभय कर—हाथ पूजार्थियोंको वरदान और अभय प्रदान करते हुए दिखाये गये हों।

४. देवेन्द्र—देवता पूजा करते दिखाये गये हों।

सुन्दर प्रतिमा बनानेका दूसरा तरीका यह है कि प्रतिमाके अंग प्रत्यंगपर ध्यान देकर उसे 'सर्वलक्षण-सम्पन्न' बनाया जाय। इसके लिए शिल्पियोंको आदेश दिया गया है कि वे शिल्प-शास्त्रमें दी हुई नाप-तोल, अनुपात आदिका अनुगमन करें। 'प्रतिमा-मान-लक्षणम्' में लिखा है—

"अशास्त्रेण मुखं कृत्वा यजमानो विनश्यति ॥२०॥
सशास्त्रेण मुखं कृत्वा वर्द्धते सह बान्धवैः ॥२२ क॥"

अर्थात्—'यदि मुखाकृति शास्त्रके प्रतिकूल बनाई जायगी, तो यजमानका नाश हो जायगा और यदि वह शास्त्रके अनुकूल बनाई जायगी, तो यजमान बन्धु-बान्धवों-सहित फले-फूलेगा।'*

आचार्य शुक्र भी इसी प्रकार कहते हैं कि बताये हुए अनुपातके अनुसार अंग बनानेसे प्रतिमा सुन्दर बनती है और पुण्य देनेवाली होती है, अन्यथा वह धन-प्राणका नाश करनेवाली और नित्य-प्रति दुःख बढ़ानेवाली होती है।×

'प्रतिमा-मान-लक्षणम्'का लेखक यह भी कहता है कि सुन्दर प्रतिमा बनानेके लिए यह आवश्यक है कि उसमें अनेकों शुभ लक्षण हों; यथा—

"हस्तरेखां प्रवक्ष्यामि देवानां शुभलक्षणम् ॥५३॥
शंख पद्मं ध्वजं वज्रं चक्रं स्वस्तिक कुण्डलौ।
कलशं शशिनं छत्र श्रीवत्सांकुशमेवच ॥५४॥
त्रिशूलं यवमालाश्च कुर्वीत वसुधां तथा ॥५५क॥"

अर्थात्—"अब मैं देवताओंकी हस्तरेखाओंकी बात बताता हूँ, जो शुभलक्षण मानी जाती हैं। शंख, पद्म, ध्वज, वज्र, चक्र, स्वस्तिक, कुण्डल, कलश, चन्द्र, छत्र श्रीवत्स, अंकुर, त्रिशूल, जौकी माला और वसुधा।" *

हमें यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि कलाकार

---

* 'प्रतिमा-मान-लक्षणम्' (लाहौर) पृष्ठ ४-५

× 'शुक्रनीति'—चौथा अध्याय

* 'प्रतिमा-मान-लक्षणम्' पृ० २२-२३

(शिल्पी) और कविमें कोई बहुत अन्तर नहीं है। कलाकार भी सृजनकर्ता है। वह भी कविकी भाँति कोई चीज़ उत्पन्न करता है। उसे भी अपने उत्पादनमें आनन्द आता है। हमारी भारतीय परम्पराके अनुसार कवि रस पैदा करता है। हम कुछ और बढ़कर यह भी कह सकते हैं कि भारतीय शिल्पी भी रस उत्पन्न करते हैं। भारतीय साहित्यकी यह प्रसिद्ध कहावत प्रायः सभी जानते हैं कि—"वाक्यं रसात्मकं काव्य"। हम कह सकते है कि केवल 'काव्य ही रसात्मक' नहीं है, बल्कि शिल्पियोंकी कृति भी 'रसात्मक' है। प्राचीन भारतीय शिल्पियोंने अपने शिल्पके कार्योंमें भी 'रस' उत्पन्न किया है, कारण यह है कि वे जानते थे कि 'रस' स्वयं परमेश्वरका प्रकाश है, क्योंकि भारतीय शास्त्रोंमें कहा है—

"रसो वै सः।"

संस्कृत-साहित्यमें चित्र-कला

श्रीयुत 'चन्द्र'

साहित्य समाजका प्राण है। किसी देशके साहित्य-ग्रन्थ तत्कालीन देश और समाजकी परिस्थिति देखनेके लिए दर्पण स्वरूप हैं। किसी भी साहित्य ग्रन्थ द्वारा हम उस समयके मानव-समाजके आचार-विचार और भावोंका अनुमान कर सकते हैं। साहित्यका सम्बन्ध समाजसे है, अतएव समाजके भावों और विचारोंका प्रभाव साहित्यपर पड़े बिना रह नहीं सकता। मानव-विचार परिवर्तनशील हैं। उसका प्रवाह सर्वदा देश और समाजके प्रवाहमें मिलकर बहा करता है। यही कारण है कि लेखक द्वारा किसी व्यक्ति या समुदायको लक्ष्यमें रखकर रचे गये ग्रन्थोंमें भी मानव-समाजके भावों और विचारोंकी छाप दीखती है। कविवर रवीन्द्रनाथके शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि 'लेखकोंमें से किसीने किसी मित्रको, किसीने किसी सम्प्रदायको, किसीने किसी समाजको और किसीने सार्वकालिक मानवको अपनी बात सुनानी चाही है। जो सफल हुए हैं, उनकी रचनाओंमें विशेषरूपसे उस मित्र, समुदाय या विश्व-मानवका कुछ-न-कुछ परिचय पाया जाता है। इस प्रकार साहित्य केवल लेखकका ही नहीं, किन्तु उनका भी परिचय कराता है, जिनके लिए वह लिखा गया है।' प्राचीन भारतमें चित्र-कला विद्यमान थी, इस बा‌तका पक्का प्रमाण संस्कृत-साहित्यके ग्रन्थोंसे मिलता है। हम इन प्रमाणोंका कुछ वर्णन इस लेखमें करेंगे।

संस्कृत साहित्यमें 'कादम्बरी'का एक विशेष स्थान है। यह बाणभट्ट (और उसके पुत्र)की सातवीं सदीकी रचना है। इसको देखनेसे ज्ञात होता है कि उस समय राजपुत्रोंको राजनीति और अस्त्र-शस्त्र-ज्ञानकी शिक्षाके साथ-साथ चित्र-कलाका भी ज्ञान कराया जाता था। वे चित्र कर्ममें दक्ष होते थे, और यथावसर चित्र बनाकर अपना मनोविनोद किया करते थे। चित्र कला इतनी लोकप्रिय थी कि साधारण स्त्रियाँ और राजकुमारियाँ भी चित्र बना सकती थीं। बाणभट्टने वैशम्पायनको 'चित्रकर्मणि प्रवीणः' बताया है। एक स्थलपर अनेक विद्याओंके नाम उच्चारित करते हुए कविने चन्द्रापीड़के विषयमें 'चित्रकर्मणि परं कौशलमवाप' अर्थात् चित्र-विद्यामें अत्यन्त कुशल हो गया यह लिखा है। इसके अतिरिक्त 'चित्रकर्मणिकृतश्रमाभिः कृत्याभिः' और 'तस्याः त्वदाकारमयश्चित्रकलाभ्यासः' को देखकर कह सकते हैं कि स्त्री-वर्गमें भी चित्र-कलाका प्रचार था।

उत्तररामचरितमें बीस-बाईस चित्रोंका वर्णन है। उनमेंसे हम केवल दो-चारकी चर्चा करेंगे।

'उत्तररामचरित'के प्रायः सभी चित्र ऐसे हैं, जिनको देखकर दर्शकोंके मनमें नाना भाव तरंगे मारने लगते हैं। लक्ष्मणजी राम-सीताको चित्र परिचय कराते हुए परशुरामके चित्रकी तरफ़ निर्देश करते हैं—'अयञ्च भगवान्भार्गवः।' परशुरामका चित्र अवश्यमेव उनके समान ही भयोत्पादक चित्रित हुआ होगा, तभी तो भोली सीताके मुखसे अचानक निकल पड़ा—'कम्पितास्मि।' उनकी बिलकुल यही अवस्था हम 'शूर्पणखा'के चित्र-दर्शनके समय देखते हैं। इसी नाटकमें दो प्राकृतिक दृश्योंके चित्रोंका बड़ा सुन्दर वर्णन है, एक चित्रको लक्ष्य करके भवभूति लिखता है—

"एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु,
वैखानसाश्रमतरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमाः शमिनो भजन्ते,
नीवारमुष्टिपचनाः गृहिणोगृहाणि॥"

कितना सुन्दर प्राकृतिक दृश्य है! तपोवन बना हुआ है। एक तरफ़ पर्वत-प्रदेशसे विनिसृत सरिता बह रही है, किनारेपर वृक्षावली लहरा रही है। तापसाश्रम शान्त वानप्रस्थियोंसे सुशोभित हैं।

दूसरा प्राकृतिक दृश्य भी दर्शनीय है। देखिये—

"अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्य-परिणद्धगोदावरीमुखरकन्दरः सन्ततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरित-नीलिमा जनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणोनाम।"

यह 'प्रस्रवण-पर्वत' का प्राकृतिक-दृश्य-चित्र है। चित्रकारने एक शैल बनाया है। पर्वतमें गुफ़ा भी अंकित है। उसके समीप ही गोदावरी वृक्षोंके मध्यमें होकर बहती हुई चित्रित है। घने वृक्षोंसे आवृत होनेके कारण पर्वत-प्रान्त नीलवर्ण-सा भासित होता है। पर्वतपर जलद हैं, अतएव वह भी कुछ नीला-सा लग रहा है।

'मुद्राराक्षस' नामक ग्रन्थमें भी हम चित्र-कलाकी रूपरेखाका आभास पाते हैं। राक्षस एक स्थानपर चिन्ता करता है—

"चिन्तावेशसमाकुलेनमनसा रात्रिंदिवं जाग्रतः
सैवेयं मम चित्रकर्मरचना भित्तिं विना वर्तते।"

अर्थात् तैयार किया हुआ चित्र टाँगनेकी दीवारके बिना जिस प्रकार व्यर्थ होता है, उसी प्रकार मेरा अद्भुत पुरुषार्थ आश्रय बिना निष्फल है। इससे ज्ञात होता है कि उस कालमें चित्र कागज़पर या चित्र-फलक पर अलग बनाकर भीतपर टाँगनेकी परिपाटी थी।

कालिदासके कई नाटकोंमें चित्रकलाका वर्णन मिलता है। 'विक्रमोर्वशीय' नाटकमें जब पुरुरवा उर्वशीके वियोगसे विह्वल हो मन बहलानेका उपाय पूछता है, तब विदूषक दो उपाय बतलाता है—

"स्वप्नसमागमकारिणीं निद्रां सेवतांभवान्, अथवा तत्र भवत्या उर्वश्याः प्रतिकृतिं चित्रफलकेऽभिलिख्य आलोकयन्ना-त्मानं विनोदयतु।" अर्थात्—'या तो सोकर स्वप्नमें उर्वशीसे मिलिये या किसी चित्र-फलकपर उसका चित्र बनाकर उसको देखकर मन शान्त कीजिए'।

कालिदासका दूसरा नाटक 'मालविकाग्निमित्र' एक चित्रको लेकर ही आरम्भ होता है। अग्निमित्र चित्रशालामें मालविकाका चित्र देखकर ही उसके सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस नाटकमें और भी दो चित्रोंका वर्णन मिलता है। कालिदासके तीसरे नाटक 'शकुन्तला'में भी चित्रकलाका वर्णन है।

प्राचीन संस्कृत-साहित्य हमें दर्शाता है कि प्राचीन भारतमें चित्र-कला मृत अवस्थामें नहीं थी। समाजमें इसका सन्तोषजनक आदर और प्रचार था। लोग चित्र-विद्याको प्रसन्नतासे सीखते थे। चित्रकला बहुत विस्तृत रूपमें प्रचलित थी। प्रायः सभी सभ्य व्यक्ति—पुरुष तथा स्त्रियाँ, राजकुमार, राजकुमारियाँ, दरबारी, पार्षद आदि—चित्र-कलासे केवल अनुराग ही नहीं रखते थे, बल्कि स्वयं व्यावहारिक रूपसे इस कलाकी शिक्षा प्राप्त करते थे। राजाओं और धनियोंकी बड़ी-बड़ी चित्रशालाएँ थीं।

प्राचीन भारतकी चित्र-कलाका जीता-जागता उदाहरण अजन्ता और बाघकी गुफाओंमें मिलता है।

गुजरातमें कला-सम्बन्धी नवीन जाग्रति

श्रीयुत रचुभाई रावल

गुजरातमें प्रान्तीय जाग्रतिका सांस्कारिक पुनर्गठन कबसे प्रारम्भ हुआ, उसके समयका ठीक तौरसे पता लगाना कठिन है; परन्तु जब उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें नर्मदाशंकर तथा दलपतराम इन दो कवियोंने नूतन युगके अरुणोदयकी घोषणा की, तबसे जो जाग्रति-काल आरम्भ हुआ है, वह उत्तरोत्तर अधिक सजीव और फलदायी होता गया। शिक्षित जनताको 'गुजरात' की जीती-जागती जाग्रतिकी याद दिलानेका श्रेय यद्यपि स्वर्गीय रणजीतराम बाबाजीभाईको—जिन्होंने बीसवीं शताब्दीके प्रथम पन्द्रह वर्षमें यह महत्त्वपूर्ण कार्य किया—प्राप्त हुआ, तथापि समस्त जन-साधारणमें गुजरातीपनका सच्चा प्राण तो इन दस वर्षोंमें महात्मा गान्धीने ही प्रकट किया है। हाँ, इससे पहले भी, पिछली शताब्दीके अन्तिम भागमें, आत्म-जाग्रति करानेवाले किसी-न-किसी व्यक्तिने एक-एक करके इतिहास, धर्म, साहित्य, विज्ञान इत्यादि भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें भावी गुजरातके गौरव-मूर्ति-निर्माणके कार्यमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

कला-विषयक जागृति गुजरातमें अन्य जाग्रतियोंके मुकाबले देरमें हुई, और साधारणतः उसका उदय चित्र-कलासे हुआ। स्व० रणजीतराम गुजरातकी सर्वांगीन संस्कार-जाग्रतिके लिए बेचैन रहते थे। उन्होंने प्रान्तके कला-जीवनके मूल्यको समझकर उसके अवशेषोंकी रक्षा तथा सत्कार करनेकी और नूतन कलाओंका विकास करनेकी आवश्यकता समझी थी; परन्तु रसायन-शास्त्रमें जिस प्रकार प्रोफेसर गज्जर या वनस्पति-शास्त्रमें जैसे जयकृष्ण इन्द्रजीने अपने-अपने क्षेत्रोंके विकासके लिए आजीवन तपस्या की थी, उसी प्रकार गुजरात-प्रान्तकी कलाके पुनर्विधानके लिए जीवन देनेवाला तपस्वी अभी उत्पन्न होनेवाला था।

जाग्रतिकी चेतनामय बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भिक वर्षोंमें बम्बईकी कलाशालामें एक निर्धन युवक अध्ययन करता था। जबसे उसके बालक-हृदयमें चित्र-कलाकी ईश्वरदत्त शक्तिका ज्ञान जाग्रत हुआ, तभीसे उसने राजा रविवर्माकी तरह सुप्रसिद्ध चित्रकार बननेका सुख-स्वप्न देखा था। किशोरावस्था समाप्त होते-न-होते उसे पश्चिमके समर्थ कला-प्रणेताओंके जीवन तथा कृतियोंसे ऐसी प्रेरणा मिली, जिसने उसके युवक-हृदयको उस महत्त्वाकांक्षाके लिए इतना दृढ़-प्रतिज्ञ बना दिया कि वह अपने मध्यम स्थितिवाले कुटुम्बियोंकी चिन्ताकी परवाह न करके एक कष्टपूर्ण, तंग, अन्धकारमय और अनजान मार्गसे चल पड़ा। स्वतन्त्र कलाकारके आदर्शपर जीवन निर्वाह करना उस समय असम्भव था। तूलिका या ब्रशके भरोसे ज़िन्दगी गुज़ार करनेका स्वप्न देखना पागलपन-सा था। न किसीकी मदद थी और न किसीका सहयोग। प्रोत्साहन देनेवालोंका अभाव था। विरोध तथा निराशाकी अन्धकारमयी परिस्थितिमें यदि कोई पथ-प्रदर्शक था, तो एक टिमटिमाता हुआ भावनाका दीपक।

रातको किसी देशी व्यापारीकी गद्दीमें सोकर, दिन-भर अध्ययनके लिए कठिन परिश्रम करके और ज्यों-त्यों वक्त निकालकर, निर्वाहके लिए लोगोंकी तसवीरें बनाकर उसने बम्बईमें अपना विद्यार्थी-जीवन व्यतीत किया। इन पाँच वर्षोंके प्रति-क्षणमें उसने कला-देवीकी अदृष्ट मूर्तिकी अखंड उपासना की। जीवनके उषा-कालने जिस छायाकी कल्पना की थी, उसकी स्पष्ट रूप-रेखा अब बनती जा रही थी, और पश्चिमकी अध्ययन-पद्धति द्वारा निर्मित कला-मूर्तिमें पूर्वीय प्राण प्रतिष्ठित होता जा रहा था।

उस समय बम्बई-प्रान्तमें सरकारी कलाशालाकी स्थापना हुए चालीस वर्ष बीत गये थे, परन्तु तब तक उसमें से प्रतिभाकी कोई ऐसी चिनगारी न निकली थी, जिसने स्वकीय

गुजरातमें कला-सम्बन्धी जाग्रतिके अग्रणी नेता
श्री रविशंकर रावल

श्री कनु देसाई

दृष्टिसे कलाका स्वरूप दिया हो,—प्रान्तकी परम्परागत संस्कृतिकी आत्माको समझकर उसको पुनः जीवित करनेका प्रयत्न किया हो। महाराष्ट्रमें उस समय थोड़े चित्रकारोंके नाम लिए जाने लगे थे, परन्तु उनकी चित्र-कलामें पाश्चात्य पद्धतिका समावेश विशेषरूपसे था। गुजरातमें उसी तरहके शिक्षा-प्राप्त दो-एक चित्रकार, राजाओं तथा श्रीमंतोंके चित्र बनाकर संतोष कर लेते थे। कलाकी भावना तथा कलाकारके महत्त्वका किसीको ख़याल भी नहीं था, तब भला कलामें सार्वजनिक संस्कृति प्रकट करनेका स्वप्न ही किसको होता? सुसंस्कृत व्यक्ति भी प्रायः पाश्चात्य शिक्षाके कारण यूरोपीय चित्रकारोंकी कृतियोंको अपने घरमें रखते थे; और भारतीय कलामें उनकी दृष्टि रविवर्माके चित्रोंसे आगे न जा सकती थी। स्वर्गीय श्री पुरुषोत्तम विश्राम मावजी जैसे एकाध अपवादके सिवा, देशकी लोकोत्तर कलाके सच्चे प्राणको परखनेकी शक्ति तो किसीमें थी ही नहीं। श्रीमान् पुरुषोत्तम विश्राम मावजी विशुद्ध कला-प्रेममें लोगोंकी वृत्ति जगानेके लिए 'सुवर्णमाला'का प्रकाशन करने लगे। उसके लिए समस्त बम्बई-प्रान्तमें अग्र-गण्य तथा बम्बई-कलाशालामें उच्चपद-प्राप्त श्री धुरंधर जैसे चित्रकार भी श्रीमान् पुरुषोत्तमके प्राचीन कलाके विपुल संग्रहमें से कुछ भी प्रेरणा ग्रहण करनेमें असमर्थ हुए। 'स्वर्णमाला' पाश्चात्य समाचार-पत्रोंमें छपनेवाले कथन-चित्रों (Illustrations) के ढाँचेकी तरह नाटकीय हिन्दी-पात्रोंके चित्रोंसे सुसज्जित होकर प्रकाशित होती थी। इस प्रकार उस समय प्रान्तकी कला-दृष्टिके सामने अज्ञान, अशक्ति तथा उदासीनताका परदा पड़ा हुआ था।

ऐसे अन्धकारमय समयमें, बम्बईकी कलाशालामें अध्ययन करनेवाले उस युवक रविशंकर रावलकी प्रज्ञाने सर्व-प्रथम भविष्यका सच्चा मार्ग ढूँढ़ना आरंभ किया। यूरोपीय कलाके आदर्शोंके अनुसार, अंग्रेज प्रिन्सिपलों-द्वारा बाँधी हुई

श्री रविशंकर पंडित

श्री रसिकलाल परीख

रूढ़िपर चलनेवाली अपनी मातृसंस्था बम्बई—कलाशाला—में तो उसे सच्चा पूर्वीय कला-प्राण मिलनेवाला न था, परन्तु सौभाग्यसे उसी समय बंगालकी कलाशालाके प्रिन्सिपल मि० हैवेलने इस देशके स्थापत्य, शिल्प, चित्र-कला, इतिहास इत्यादिका अध्ययन कर भारतीय संस्कृतिकी सच्ची आत्माका ज्ञान प्राप्त किया; और अपने उस अध्ययनके फलस्वरूप, गम्भीर पथ-प्रदर्शक लेखों तथा पुस्तकों द्वारा उसके दर्शन जनसाधारणको कराये। मि० हैवेल, भगिनी निवेदिता और श्री आनन्दकुमार कुमार स्वामीके लेखोंमें तथा अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रबल नेतृत्वमें आरम्भ किये हुए कलाके पुनर्विधानके प्रयत्नमें युवक रावलको—जो अपनी प्रान्तीय संस्कृतिकी परम्पराके सूत्रोंको तलाश कर रहे थे—बहुत प्रेरणा मिली। उनकी उगती हुई प्रतिभाकी किरण अधिक निर्मल बन गई।

सन् १९१५ में सूरतकी साहित्य-परिषद्‌के साथ होनेवाली कला-प्रदर्शनीमें सर्वप्रथम उनकी कला प्रतिभा प्रकट हुई थी। उनका 'गुर्जरसुन्दरी' नामक सुवर्णपदक-प्राप्त चित्र 'गुजरात'के लाक्षणिक प्रतिनिधित्वकी धारणा कराता था। दिन-रात नूतन गुजरातके पुनर्विधानका चिंतन करनेवाले रणजीतरामको यह चित्र देखकर ऐसा बोध हुआ, मानो कलाके अन्धकारमय शून्य आकाशको प्रकाशित करनेके लिए अरुणोदय हुआ हो।

सन १९१६ के अप्रेलमें स्वर्गीय हाजी महम्मद अलारखिया शिवजीने सचित्र पत्रकार-कलाका प्रारम्भ करके बम्बईसे 'बीसवीं सदी' नामक मासिक पत्रिका निकाली। उसी पत्रिका-द्वारा श्री रावलकी कलाको प्रकाशित होनेका अवसर प्राप्त हुआ, और पाश्चात्य चित्रकारोंकी कृति, रविवर्माके चित्र तथा 'सुवर्णमाला'के दक्षिणी पोशाकके छाया-चित्र देखनेकी अभ्यस्त गुजराती जनताकी आँखोंमें कलाका नूतन प्रकाश पड़ा। गुजरात तथा काठियावाड़के असली निवासियोंकी लाक्षणिक मुखरेखा (ikons) तथा विविध स्वभाव दर्शक सफल पात्र-निर्माण, गुजरातकी मूर्तिको प्रत्यक्ष उपस्थित करनेवाले शहर-मुहल्ले ग्राम-बगीचे, खेत-खलिहान आदिके दृश्य तथा जिनमें गुजरातकी लोकोत्तर संस्कृतिका सच्चा प्राण बोलता हो, ऐसे भावालेखन—ये सब अनेक वर्षों बाद पहले-

पहल प्रकट हुए। गुजरातकी असली (Bonafide) चित्र-कलाका उदय हुआ। गुजरातकी कलामें रविशंकर रावलने सर्वप्रथम प्रान्तीय जाग्रतिकी ज्योति प्रकट की।

उनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। साथ-साथ भविष्यके अगमको भेदकर दूसरी ओर प्रकाश डालनेके लिए उनकी प्रज्ञा प्रयत्नशील थी। गुजरातका सच्चा कला-प्राण पाश्चात्य अनुकरण-द्वारा प्रकट न होगा, इस बातका उन्हें विश्वास था। जनताके हृदयके स्पन्दनका ठीक ठीक अनुभव करनेके लिए मूल नाड़ी उन्होंने पकड़ी। सदियोंसे साहित्य, इतिहास तथा जनपदमें प्रवाहित सांस्कारिक परंपराके सूत्र उन्होंने जोड़ने शुरू किये।

'बम्बे आर्ट सोसाइटी' नामकी बम्बईकी कला समितिकी ओरसे प्रति वर्ष होनेवाले कला-प्रदर्शनमें सारे प्रान्तके कलाकार भाग लेते हैं, और बम्बईके गवर्नर, श्रेष्ठ कलाकोविद तथा उच्चकोटिके सुसंस्कृत व्यक्ति उसके परीक्षक मंडलमें नियुक्त होते हैं। सन् १९१७के उस कला-प्रदर्शनका सुवर्ण-पदक श्री रविशंकर रावलको मिला था। इस घटनाका उल्लेख हमने यहाँ इसलिए किया है कि वह चित्र बिल्वमंगल, बम्बईकी प्रचलित परंपरासे निराला ठेठ भारतीय ढंगका था। यह पहला ही अवसर था, जब परीक्षा-समितिने इस प्रकारके चित्रको अपने उत्कृष्ट पदक द्वारा सम्मानित किया था। इस सम्मान-द्वारा मानो कला-समितिने यह स्वीकार कर लिया कि श्री रावल महोदय गुजराती कलाके पुनर्गठनके पथ-प्रदर्शक हैं। देशके संस्कारोंके प्राणको कलाके रूपमें प्रत्यक्ष करनेवाले रावल महोदयके सम्मानका सच्चा अर्थ यही था।

इतने ही महत्वकी दूसरी बात है स्वतन्त्र कलाकार बनकर जीवन बितानेका उनका निश्चय। कलाको जीवनकी सर्वव्यापी भावनाके तौरपर स्वीकारकर उसपर जीवन निर्भर करनेवालोंमें—कलासे ही जीवनका निर्वाह तथा जीवनकी प्रेरणा प्राप्त करनेवालोंमें—गुजरातके इस युगके इतिहासमें श्री रविशंकर रावल महोदय ही अग्रणी हैं। कलाके सत्य स्वरूपकी तथा जनताके जीवनमें उसके महत्वकी समझ या कल्पना तक भी जब सर्वसाधारणमें नहीं थी, ऐसे समयमें जीवनके सर्वस्वके रूपमें कलाको स्वीकार करनेका निश्चय करनेवालोंमें कितनी उत्कट कला-भक्ति तथा सांस्कारिक पुनर्गठनकी लगन होगी, यह समझना कठिन नहीं है।

कुमारावस्थाके अपने अमूल्य मनोरथको उन्होंने इस प्रकार जीवनमें परिणतकर भावी कार्यक्रम निश्चित किया तथा अहमदाबादको—गुजरातकी संस्कृतिके केन्द्रको—अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। उनका ध्येय अब एकांगी न रहकर अधिक विकसित होने लगा और उन्होंने जनसाधारणकी सर्वांगीन सांस्कृतिक पुनर्रचनाके विचार करने आरम्भ किये। प्राथमिक शालाओंके लिए उपयोगी 'ड्राइंग' के अभ्याससे लेकर समस्त प्रान्तके सार्वजनिक कला-संग्रह (National museum) तककी कला-प्रवृत्तिकी योजनाओंपर श्री रावलजीके निजी विचार हैं। यद्यपि इन विचारोंका शीघ्र ही कार्य-रूपमें परिणत होना तो असम्भव है, क्योंकि जनसाधारणके नेताओंमें नवीन मार्गकी खोज और उसपर चलनेकी लगन शायद ही कभी पाई जाती हो। इसके लिए प्रचार-द्वारा लोक-रुचिको जाग्रत करना पड़ता है और तदर्थ ऐसे समान-धर्मी नवयुवकोंको साथ लेना पड़ता है, जो इस कार्यमें सहायक हों। श्री रावल महोदयने यही कार्य प्रारम्भ किया। तीव्र कार्य-साधक दृष्टिसे उन्होंने देखा कि पुनर्निर्माणका कार्य तभी सफल हो सकता है, जब भावी जनता इसके लिए तैयार की जाय। इसी उद्देश्यसे वर्तमान प्रजामें कला और संस्कृतिका प्रचार तथा भावी-प्रजामें विकास करनेके लिए उन्होंने 'कुमार' नामक मासिक पत्रको जन्म दिया। यह सब कार्य आज आठ वर्षसे जिस स्थानसे हो रहा है, वह 'कुमार'-कार्यालय केवल एक मासिक पत्रका आफिस ही नहीं है, बल्कि तरुण कलाकारोंके लिए वह प्रेरणा-स्थान भी है, जहाँसे गुजरातके नवयुवक-समाजको कला तथा समाज-सेवाका सन्देश प्रति मास मिला करता है। इसके सिवा वहाँसे उत्तम प्रकारके कलात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशित होते हैं। जनताकी रस-वृत्तिको

श्री कृष्णलाल भट्ट

श्री सोमालाल शाह

जगाने और विविध कला-वृत्तिकी योजनाओंको जनताके सम्मुख लानेका प्रयत्न किया जाता है। वहाँ पारस्परिक सहयोग तथा कला-शिक्षणका भी प्रबन्ध है। श्री रावलकी कलाके स्वरूप-लक्षणोंकी विस्तृत विवेचना करनेके लिए यहाँ स्थान नहीं है। कल्पनाकारमें द्रष्टाकी प्रज्ञा तथा स्रष्टाकी प्रतिभा दोनों ही होती है। श्री रावलकी कलामें इस प्रज्ञाकी चमक तथा प्रतिभाकी ज्योति है। प्रमाणबद्ध चित्र-संयोजन, भाव-दर्शनका चातुर्य तथा व्यक्तित्व-पूर्ण सफल पात्र-निर्माण उनकी कलामें है। थोड़ी देरमें ही सामने बैठे हुए मनुष्यका ज्यों-का-त्यों चित्र खींच लेनेके कौशलमें भी वे गुजरातियोंमें अग्रणी हैं। श्री रावलजीके सन १९२६ में अजन्ताके कला-मण्डपोंकी यात्रा कर आनेके बाद आचार्य श्री कालेलकरने कहा था—''अब तो रावलजी उस प्रकारकी कलामें 'द्विज' हो आये हैं, और पाश्चात्य ढंगके रूढ़ि-बन्धनोंके बजाय, प्राच्य भावनाएँ उनकी कलाको अधिक अलंकृत करने लगी हैं।''
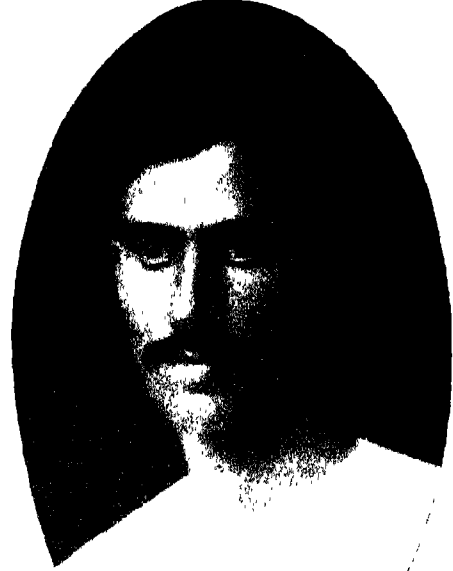
श्री रावलसे कुछ वर्ष छोटे उनके नाम-राशि तथा उन्हींकी तरह बाल्यावस्थासे ही आलेखनकी ईश्वरदत्त शक्ति-प्राप्त श्री रविशंकर पंडित आज गुजरातके कला-क्षेत्रमें उनके समकालीन कलाकार हैं। गुजरातकी कलाके इतिहासके प्रारम्भिक प्रकरणके निर्माणमें श्री रविशंकर भी अच्छा हाथ है। बाल्यावस्थासे ही रेखापर उनका अद्भुत अधिकार है, और प्राणी-चित्रण तथा दृश्य आलेखन (Lansdscape Painting) की उनकी उस समयकी खास शक्ति अब परिपक्वावस्थाको प्राप्त हो गई है। जीवनमें कभी किसी भी कलाशालामें व्यवस्थित अभ्यास न करनेपर भी अच्छे-अच्छे शिक्षित व्यक्तियोंको मात करनेवाली नैसर्गिक चित्रण-शक्ति उनमें पाई जाती है। छोटी गिलहरीसे लेकर बड़े शेर-हाथी तक सर्वप्रकारके प्राणी पक्षियोंके चित्र बनाना उनके लिए मानो बाएँ हाथका खेल है। प्रत्येक प्राणीके स्वभाव-दर्शन तथा लाक्षणिकताका हूबहू आलेखन जितनी होशियारीसे वह कर

सकते हैं, उतनी होशियारीसे शायद ही कोई आधुनिक भारतीय चित्रकार कर सकता हो।

श्री रविशंकर पंडितके अतिरिक्त रावलजीके दूसरे समकालीन कलाकार श्री कनु देसाई हैं। अभी उस दिन सन् १९२४ में जो रावलजीके शिष्य होकर आये थे, वह आज गुजरातके कला-प्रदेशमें उनके सहगामी हो गये हैं। यह असाधारण उन्नति ही उनकी प्रतिभाका प्रबल साक्षी है। छायाचित्रोंके (Silhoutte) विशिष्ट आलेखन करनेवालेके रूपमें आज गुजरातका सामान्य वर्ग श्री कनु देसाईसे भली भाँति परिचित हो चुका है। उनके आलेखनोंमें सौन्दर्य तथा कोमलता दोनों ही उपस्थित हैं। ऊँची उड़ान भरनेवाली कल्पना भी उनमें पाई जाती है। खूबी यह है कि उस उड़ानमें खयाली लक्ष्यहीनता या हवाईपन नहीं, किन्तु सुबद्ध विविधता तथा गम्भीर भव्यता है। श्री कनु देसाई बंगालके सुप्रसिद्ध कलाकार श्री नन्दलाल वसुके सहवासमें शिष्य बनकर रह आये हैं, तथा वहाँके भावना-रंगसे उन्होंने गुजरातकी कलाको रंगनेका प्रयत्न किया है।

बम्बई कलाशालामें से जिन प्रतिनिधि कलाकारोंको दिल्लीके राजसभा-भवनमें चित्रोंके आलेखनके लिए स्थान मिला है, उनमें से एक श्री जगन्नाथ अहिवासी गुजराती कलाकार हैं। उनकी प्रतिभा भी उच्चकोटिके कलाकारों जैसी है। तत्पश्चात् श्री सोमालाल शाहका नाम उल्लेख-योग्य है, जिन्होंने गुजरातके एक छोटेसे कस्बेमें स्वयं प्रेरित होकर चित्र खींचना प्रारम्भ किया था और फिर आगे चलकर बड़ोदामें श्री प्रमोदकुमार चट्टोपाध्यायके हाथसे कलाकी दीक्षा प्राप्त की थी। कलकत्तेकी प्राच्य कला-समितिकी शालामें अध्ययन करते समय बंगालकी कला-प्रदर्शिनीमें उनके चित्रोंकी प्रशंसा हुई थी, और श्री अवनीन्द्रनाथ जैसे कलाकारोंके वे प्रेमपात्र बने थे। उन्हींके साथ प्रमोद बाबूसे शिक्षण प्राप्त करनेवाले श्री कृष्णलाल भट्ट और श्री रावलसे कलाकी दीक्षा लेकर मदरासकी कलाशालामें श्री देवीप्रसादराय चौधरीके पास विशेष रूपसे शिक्षा प्राप्त करनेवाले श्री रसिकलाल परीख—

श्री रविशंकर पंडितके रेखांकनका नमूना

ये गुजरातकी कलाके क्षितिजपर उगते हुए तेजस्वी तारे हैं।

आज गुजरातमें एक भी ऐसा सचित्र मासिक या साप्ताहिक पत्र नहीं, जो श्री दुर्गाशंकर पंड्याके सामयिक कथन-चित्रों (Illustrations) से वंचित हो। श्री दुर्गाशंकर पंड्यामें आरम्भसे ही ऐसी नैसर्गिक प्रतिभाकी चमक है कि यदि वह

चाहें, तो थोड़े परिश्रमसे ही प्रथम पंक्तिमें आ सकते हैं। आज उनकी जो शक्ति केवल अल्पजीवी आलेखनोंमें लग रही है, वह यदि गम्भीर कृतियोंमें लगे, तो कहीं अधिक फलवती हो सकती है। श्री पण्ड्याजीकी तूलिकामें अत्यन्त प्रभुत्व है।

इस युगमें ज्ञान तथा संस्कृतिके प्रचारका मुख्य साधन पुस्तक तथा सामयिक पत्र ही हैं, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि कला-संस्कारके पुनर्विधानका आरम्भ चित्र कलासे ही हो, परन्तु जब प्रकाश तथा पानीकी बाढ़ आती है, तब वह कोने-कोनेमें पहुँच जाती है, उसी प्रकार नव युगके आन्दोलन भी जब सर्वसाधारणमें फैलते हैं, तब वे उसके प्रत्येक अंगको स्पर्श कर उसमें चेतना लाते हैं। गुजरातमें कला-विषयक जाग्रतिका उपर्युक्त आरम्भ होनेके साथ ही उसके दूसरे अंगोंमें भी पुनर्निर्माणका प्रभाव प्रतीत होने लगा है। प्रजाकी पोशाक तथा उत्सव, स्थापत्य, गृह-रचना तथा गृह-शोभा, नृत्य तथा नाट्यशाला, ग्रन्थ-प्रकाशन तथा प्रचार-साधन—सभी क्षेत्रोंमें अपनी परम्परागत संस्कृतिके असली प्रवाहको ढूँढ़कर नवविधानकी रचना होने लगी है, और साधन सम्पन्न श्रीमानोंने उसमें अच्छा भाग लिया है। यूरोपके अनुकरणमें खर्चीली तथा व्याकुल करनेवाली पोशाकके बोझको उतारकर देशके जलवायु तथा आर्थिक परिस्थितिके अनुरूप कमसे कम वस्त्रोंकी प्रणालीका सूत्रपात गान्धीजीने जनतामें किया है। अब उसमें सुसंस्कृत व्यक्ति पुराने आकार-प्रकारके छटामय रंग-वैचित्र्य बढ़ाकर उसे अधिक मनोहर बनाने लगे हैं। यूरोपीय पद्धतिके अन्ध-अनुकरणमें किसी भी आकारके या रूपरूप-रहित बेहूदे मकान बनानेकी पुरानी मनोवृत्तिके सामने योग्य स्थापत्यका विचार रखनेका आरम्भ आजसे दस वर्ष पहले श्री गजानन पाठकने किया था, और उस दिशामें स्थापत्यके अलावा गृह-रचना, खाट-खटोले, बरतन-भाँडे इत्यादि विषयोंपर जनताके विचारोंमें सांस्कृतिक सुधार करनेके लिए वे निरन्तर उद्योग करते रहे हैं। इतना ही नहीं, परन्तु गम्भीर प्रत्यक्ष कार्य करके

श्रीयुत पंडितके रेखांकनका दूसरा नमूना

दिखलानेके लिए वे स्वयं अहमदाबादमें आकर रहे हैं। बम्बईमें श्री चन्दूलाल सुथार और अहमदाबादमें श्री आत्माराम गुज्जर आज पाश्चात्य शिक्षा और पूर्वीय संस्कृतिके सम्मिश्रणसे भारतीय ढंगके सुन्दर मकान सजाते हैं। गुजरातके पास तो निजी और विशिष्ट व्यक्तित्ववाला स्थापत्य है, जो सौन्दर्य तथा कोमलतामें सम्पूर्ण भारतके लिए आदर्श बन सकता है, इस बातकी ओर गुजराती जनताका ध्यान आकृष्ट हो गया है। धनाढ्य और सुसंस्कृत समाजके घरोंका वातावरण अब भारतीय संस्कारोंके अनुरूप होने लगा है। ये घर अब यूरोपीय

पेंटिंग, और पाश्चात्य फरनीचर तथा फूलदानोंके बदले भारतीय पद्धतिके अनुकूल तथा रुचिपूर्ण भारतीय कारीगरीके सुन्दर आकारके बर्तन, परदे, तोरण, भारतीय कलाकारोंके चित्र इत्यादिसे सुसज्जित होने लगे हैं। शालाएँ तथा संस्थाएँ अपने नाट्य-प्रयोग तथा उत्सवके समय देश तथा कालके प्रतिबिम्ब डालनेवाले और लोकप्राणको जगानेवाले तत्त्व लानेका प्रयत्न करती हैं। गरबा (गीत), रास तथा नृत्यकी पुरानी प्रणालीको जनताने पुनर्जीवित कर दिया है। यहाँ तक कि पुस्तकोंके प्रकाशन तथा लग्न-पत्रिका, हस्तपत्र, प्रचार-पुस्तिका इत्यादिके मुद्रण जैसी छोटी बातों तकमें सांस्कृतिक पुनर्विधानके इन प्रयत्नोंने परिवर्तन उपस्थित कर दिया है।

संस्कृति प्रजाका प्राण है। कोई भी जाति जब दूसरी जातिको हड़प करना चाहती है, तब उसकी परम्परागत संस्कृतिको मिटानेका प्रयत्न करती है। भारतीय संस्कृतिपर ऐसे अनेक आक्रमण हुए हैं, परन्तु उसने आज तक तो ऐसे आक्रमणकारोंको ही अपनी संस्कृतिमें लीन कर लिया है। अंग्रेज़ोंने पहलेसे कहीं अधिक प्रबल आक्रमण किया। परन्तु जिसने जगतकी अनेक प्रजाओंके उदय और अस्त देखे हैं, उस भारतकी दृढ़मूल और कल्याणकारी पुरातन संस्कृतिका लोप होना सहज नहीं है। राखमें दबे हुए अंगारेकी तरह नवविधानकी फूँक लगते ही वह फिर प्रज्ज्वलित हो उठी है।

चेतनाकी वह फूँक आजसे तीस वर्ष पहले बंगालने लगाई, और अपनी प्रान्तीय जाग्रतिको जन्म दिया। उसके बाद मैसूर, मदरास, आन्ध्रदेश और उत्तर-हिन्दकी जाग्रतिके प्रयत्नोंके मुक़ाबले गुजरात मंद माना जाता था, पर आज उसकी चेतना और जाग्रति केवल राजनैतिक ही नहीं, परन्तु सब क्षेत्रोंमें ओजस्वी और बलवान बन गई है। गुजरातके छोटे-छोटे बच्चोंके हृदयसे आज यही ध्वनि निकल रही है—

"गुर्जरी नथी नथी कंगाल।"

भतीजीको सान्त्वना—श्री सोमालाल शाहका एक चि

विशेष रूपसे शिक्षा प्राप्त ...

अहल्या

चित्रकार—श्री भामालाल शाह

दुराशा

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दार्जिलिंग जाकर देखा कि बादल और वर्षासे घटाटोप अँधेरा छा रहा है। घरसे बाहर निकलनेकी इच्छा नहीं होती, और घरमें पड़े-पड़े तो और भी तबीयत ऊबती है।

होटलमें सवेरेका खाना खाकर पैरोंमें मोट बूट और सिरसे लेकर पैर तक बरसाती डाटकर हवाखोरीके लिए निकल पड़ा। रह-रहकर रिमझिम रिमझिम वर्षा हो रही है, और चारों ओर काले बादलोंके घटाटोपसे मालूम होता है, मानो विधाता हिमालय पर्वत-समेत सारे विश्व-चित्रको रबरसे घिस घिसकर मिटा डालनेकी कोशिश कर रहे हैं।

सुनसान कैलकैटा रोडपर अकेला टहलता हुआ मैं सोच रहा था—अवलम्बन-हीन मेघ-राज्यमें अब तो अच्छा नहीं लगता, शब्द-स्पर्श-रूपमयी विचित्रा धरणी माताको फिरसे पाँचो इन्द्रियों-द्वारा पाँच तरहसे जकड़कर पकड़नेके लिए जी आकुल हो उठा है।

इतनेमें पास ही कहीं रमणी-कंठकी सकरुण रोदन-गुंजनध्वनि सुनाई दी। रोग-शोकसे समाकुल इस पृथ्वीमें रोदनध्वनि कोई विचित्र बात नहीं है,—और कहीं, और किसी समय होता, तो मुह फेरकर देखता भी या नहीं, इस बातमें सन्देह है—पर इस असीम मेघ-राज्यके अन्दर वह रोदन सम्पूर्ण लुप्त जगतके एकमात्र रोदनकी भाँति मेरे कानोंमें आकर प्रवेश करने लगा, मेरे लिए वह तुच्छ सा नहीं मालूम हुआ।

उस शब्दका लक्ष्य करके मैं आगे बढ़ा। देखूँ तो, गेरुए कपड़े पहने एक स्त्री—उसके मस्तकपर सुनहले-रूखे बालोंकी जटा पर्वतकी चोटीका आकार धारण किये अपने आप ही आबद्ध थी—सड़कके किनारे एक छोटीसी शिलापर बैठी हुई मृदुस्वरसे रो रही है। यह ताजे शोकका विलाप नहीं है, बहुत दिनोंसे संचित नीरव श्रान्ति और विषाद आज मेघके अन्धकार और निर्जनताके भारसे चूर-चूर होकर उमड़ रहा है।

मैं मन-ही मन सोचने लगा—यह अच्छा रहा। यह तो ठीक मानों घर-गढ़न्त कहानीका प्रारम्भ हुआ! पर्वत-शिखरपर बैठी हुई सन्यासिनी रो रही है—यह भी कभी अपनी आँखोंसे देख सकूँगा, ऐसी आशा कभी भी नहीं थी।

इस स्त्रीकी जाति क्या है, कुछ अंदाज न लगा सका। मैंने सदय हिन्दी भाषामें पूछा—"कौन हो तुम? क्या हुआ है, रो क्यों रही हो?"

पहले तो उसने कुछ उत्तर ही नहीं दिया,—बादलोंके भीतरसे सजल दीप्त नेत्रोंसे उसने मुझे एक बार अच्छी तरह देख लिया।

मैंने फिर पूछा—"मुझसे डरिये नहीं, मैं शरीफ आदमी हूँ।"

सुनकर वह हँसने लगी और खास हिन्दुस्तानी भाषामें कहने लगी—"बहुत दिनोंसे डर-भयको मैं पास नहीं फटकने देती, लज्जा-शरमको भी धता बता चुकी हूँ। बाबूजी, एक ज़माना था, जब मैं जनानखानेमें रहती थी—जहां अपना सगा भाई भी बहनसे हुक्म लेकर भीतर आ सकता था—मगर आज दुनियामें मेरा परदा नहीं है।"

पहले तो ज़रा गुस्सा-सा आया; क्योंकि मेरा ठाट-बाट सब साहबाने ढंगका है, और यह अभागिन बिना दुविधाके मुझे बाबूजी सम्बोधन कर रही है! सोचा—यहींपर अपना उपन्यास खतम करके सिगरेटका धुआँ उड़ाता हुआ साहबी फैशनकी रेलगाड़ीकी तरह ज़ोरसे जल्दीसे मिजाजके साथ आगे चल दूँ। मगर भीतर जो एक कौतूहल था, उसीकी जय हुई। मैंने कुछ ऊँचा भाव धारण करके, गर्दन

टेढ़ी करके पूछा—"मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकता हूँ? तुम क्या चाहती हो?"

उसने स्थिर दृष्टिसे एक बार मेरे चेहरेकी ओर देखा, फिर थोड़ी देर बाद संक्षेपमें उत्तर दिया—"मैं बदायूँके नवाब गुलामक़ादिर खाँकी बेटी हूँ।"

बदायूँ किस मुल्कमें है और नवाब गुलामक़ादिर खाँ कौनसे नवाब हैं और उनकी बेटी किस दुःखसे संन्यासिनीके भेषमें दार्जिलिंगमें कैलकेटा-रोडके किनारे बैठकर रो सकती है—इस बारेमें मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं, और न मैं ऐसी बातोंपर विश्वास ही करता हूँ,—पर सोचा कि रंगमें भंग न डालूँगा, क्योंकि कहानीका सिलसिला ख़ूब जमता जा रहा है!

उनका परिचय सुनते ही मैंने उसी वक़्त लम्बा सलाम ठोंककर कहा—"नवाबज़ादी साहबा, बेअदबी माफ़ हो, मैं पहचान नहीं सका था।"

न पहचाननेके बहुतसे युक्ति-संगत कारण थे, उनमें मुख्य कारण यह था कि उनको मैंने पहले कभी देखा ही नहीं, और फिर ऐसा कुहरा छाया हुआ था कि अपने हाथ-पैरोंको पहचान लेना मुश्किल था।

बीबी साहबाने भी कुछ खयाल नहीं किया, बल्कि सन्तुष्ट कंठसे दाहने हाथसे एक पत्थरकी ओर इशारा करते हुए मुझे आज्ञा दी—"बैठिये।"

देखा कि इस रमणीमें आज्ञा देनेकी शक्ति है। कुहरेसे भीगे हुए सिवारसे आच्छन्न उस कठोर चट्टानपर बैठनेकी अनुमति पाकर मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मुझे कोई आशातीत सम्मान प्राप्त हुआ हो। बदाऊँके गुलाम क़ादिर खाँकी पुत्री ज़ेबउन्निसा या मेहरउन्निसा या जहाँनाराने मुझे दार्जिलिंगमें कैलकैटा-रोडके किनारे अपने ही पास समान पंक्तिके आसनपर बैठनेका अधिकार दिया है। होटलसे बरसाती पहनकर निकलते समय ऐसी सुमहती सम्भावना मेरे लिए स्वप्नमें भी अगोचर थी।

हिमालयके वक्षस्थलपर—एकान्तमें शिलाखंडपर बैठे हुए दो पथिक नर-नारीके रहस्य-आलापकी कहानी सहसा और हाल ही तैयार हुई गुनगुनी काव्य कथाके समान सुन पड़ेगी—पाठकोंके हृदयमें दूरसे आई हुई गिरि-कन्दराके झरनेकी झर-झर प्रतिध्वनि और कालिदास-रचित 'मेघदूत' 'कुमार-सम्भव' के विचित्र संगीत-ध्वनि जाग्रत होने लगेगी, फिर भी यह बात सबको माननी ही पड़ेगी कि बूट और बरसाती पहनकर कैलकैटा-रोडके किनारे कर्दमासनपर एक दीन-वेशिनी हिन्दुस्तानी रमणीके साथ एकत्र बैठकर अपने सम्पूर्ण आत्म-गौरवको अक्षुण्णभावसे अनुभव कर सकते हों, ऐसे नवीन बंगाली बहुत थोड़े ही हैं। परन्तु उस दिन घनघोर कुहरेसे चारों ओर अन्धकार छा रहा था, संसारके सामने संकोच करनेका कोई भी विषय कहीं भी नहीं था, उस अनन्त मेघराज्यमें सिर्फ़ बदाऊँके नवाब गुलाम क़ादिर खाँकी पुत्री और मैं—एक नव-विकसित बंगाली साहब—दोनों जने दो पाषाण-खंडोंपर विश्व-जगतके दो प्रलयावशेषकी तरह बाक़ी बचे थे। इस बेमेल सम्मिलनका परम परिहास सिर्फ़ हम ही दोनोंके भाग्यके गोचर था, और किसीके दृष्टिगोचर नहीं था।

मैंने कहा—"नवाबज़ादी साहबा, तुम्हारा ऐसा हाल किसने किया?"

बदाऊँकी नवाबज़ादीने दक़दीर ठोंककर कहा—"कौन यह सब कराता है, सो मैं क्या जानूँ! इतने बड़े पत्थरके ठोस हिमालयको मामूली कुहरेसे किसने छिपा रखा है?"

मैंने किसी तरहका दार्शनिक तर्क न उठाकर सब मान लिया, कहा—"ठीक है, क़िस्मतकी बात कौन जानता है! हम लोग तो कीड़े-मकोड़े हैं!"

तर्क छेड़ता, बीबी साहबाको मैं इतनी आसानीसे छुटकारा न देता; मगर मनके भावको मैं भाषामें बांध न सका। दरबान और नौकर-चाकरोंके संसर्गसे मुझे जो-कुछ थोड़ा-बहुत हिन्दी बोलनेका अभ्यास है, वह कैलकैटा-रोडके किनारे बैठकर बदाऊँकी या अन्य कहींकी नवाबज़ादीके साथ अदृष्टवाद

और स्वाधीन-इच्छावादके विषयमें सुस्पष्टरूपसे आलोचना करनेके लिए काफ़ी न था।

नवाबज़ादीने कहा—"मेरी ज़िन्दगीकी विचित्र कहानी आज ही खतम हुई है, अगर इजाज़त हो तो कहूँ।"

मैंने उतावलीके साथ कहा—"आप भी क्या कहती हैं! इजाज़त कैसी! अगर आप मेहरबानी करें, तो सुनकर अपने कानोंको सार्थक बनाऊं।"

कोई यह न समझे कि मैंने हूबहू यही शब्द कहे थे—हाँ, कहनेकी इच्छा थी, मगर सामर्थ्य नहीं। नवाबज़ादी जब बोल रही थीं, तो मुझे ऐसा मालूम होता था—मानो ओसमें धुले हुए चिकने-साँवले रंगके खेतकी सुनहली बालोंके ऊपरसे प्रभातका मन्द मधुर पवन हिलोरें ले रहा हो, बात-बातमें ऐसी ही सरल नम्रता, ऐसा ही सौन्दर्य और वाक्योंका ऐसा ही प्रवाह था। और मैं बहुत ही संक्षेपमें जंगलीकी तरह सीधा उत्तर दे रहा था। भाषामें वैसी सुसम्पूर्ण अविच्छिन्न सरल शिष्टताका ज्ञान मुझे कभी किसी ज़मानेमें था ही नहीं; नवाबज़ादीके साथ बात करते समय आज ही यही पहले-पहल मैं अपने आचरणकी दीनता पद-पदपर अनुभव करने लगा।

शाहज़ादीने कहा—"मेरे पिताके वंशमें दिल्लीके शाही खानदानका खून मौजूद था—उसीकी रक्षा करनेमें मेरा कहीं भी सम्बन्ध पक्का न हो सका, मेरे योग्य कोई वर ही नहीं मिला। मेरे साथ ब्याह करनेके इरादेसे लखनऊके नवाबने अपनी तरफसे पैग़ाम भी भेजा था—पिताजी टाल-मटोल करने लगे,—इतनेमें दाँतसे कारतूस काटनेके बारेमें सरकारी फ़ौजमें सरकारके खिलाफ एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ, और तोपोंके धुएँसे हिन्दुस्तान भरमें अँधेरा छा गया।"

स्त्री-कंठसे, खासकर नवाब-खानदानकी महिलाके मुँहसे कभी हिन्दुस्तानी भाषा नहीं सुनी थी—सुनकर स्पष्ट समझमें आ गया कि यह भाषा अमीरोंकी भाषा है—यह जिस ज़मानेकी भाषा है, वह ज़माना अब नहीं रहा। आज रेल्वे और टेलिग्राफसे, काम-काजकी भीड़से, आभिजात्य (वंश-मर्यादा) के लोपसे सब कुछ मानो छोटा कम और अलंकारहीन हो गया है। नवाबज़ादीकी सिर्फ भाषा सुनकर उस अंग्रेज़-रचित आधुनिक शैलनगरी दार्जिलिंगके घने कुहरेके जालमें भी मानो मेरी मानसिक आँखोंके सामने मुग़ल-सम्राटकी मानसपुरी माया-बलसे जाग उठी—सफेद संगमरमरसे बने हुए आसमान चूमनेवाले बड़े-बड़े महल, सड़कोंपर लम्बी पूँछवाले घोड़ोंकी पीठपर मसलंदका साज, हाथियोंकी पीठपर सुनहली झालरदार हौदे, नगरवासियोंके मस्तकपर विचित्र रंगकी पगड़ियाँ, ज़ासेबार और रेशमी तंज़ेबसे बने हुए जामे, पायजामे, कमरबंदमें लटकती हुई तलवार, ज़रीदार जूतोंके आगेकी टेढ़ी नोंक!—फुरसतका लम्बा समय, ढीली और नीची पोशाकें, हदसे ज्यादा शिष्टाचार—अदब-क़ायदे!

नवाबज़ादी कहने लगीं—"हम लोगोंका क़िला था जमनाके किनारे।—हमारी फ़ौजके सिपहसालार थे एक हिन्दू ब्राह्मण। उनका नाम था केशरलाल।"

रमणीने इस 'केशरलाल' शब्दपर अपने नारी-कंठका सारा संगीत मानो एकसाथ एक क्षणमें उड़ेल दिया। मैं हाथकी छड़ीको ज़मीनपर रखकर ज़रा हिल-हिलाकर सावधान होकर बैठ गया।

कहने लगीं—"केशरलाल कट्टर हिन्दू थे। मैं रोज़ खूब सवेरे उठकर अपने महलके झरोखेमेंसे देखती थी—केशरलाल जमनामें छाती-भर पानीमें घुसकर प्रदक्षिणा देते हुए हाथ जोड़कर उगते हुए सूरजके लिए जलकी अंजलि दिया करते थे। उसके बाद भींगे कपड़ेसे घाटपर बैठकर एकाग्र चित्तसे जप करते और साफ और मीठे कंठसे भैरों रागमें भजन गाते हुए घर लौटते।

मैं कहनेको मुसलमान लड़की थी, पर कभी भी मैंने अपने धर्मकी बात नहीं सुनी, और अपने धर्मकी उपासना-विधि भी मुझे नहीं मालूम थी; उन दिनों भोग-विलासने, मदिरा-पानने, स्वेच्छाचारने हमारे पुरुषोंमें धर्म-बन्धन

शिथिल कर दिया था,—और ज़नानखानेके रंगमहलोंमें भी धर्म ज़िन्दा न था।

विधाताने मेरे मनमें शायद स्वाभाविक धर्म-पिपासा दी थी। या और कोई गूढ़ कारण होगा, मैं कह नहीं सकती; परन्तु प्रतिदिन उस प्रशान्त प्रभातमें हाल ही उदित हुए सूर्यके अरुण प्रकाशमें निस्तरंग नील जमुनाकी सफ़ेद सीढ़ियोंपर केशरलालके भजन-पूजनके दृश्यसे हाल ही सोतेसे उठा हुआ मेरा हृदय एक अव्यक्त भक्तिकी मधुरतामें भर जाता था।

हमेशाके संयत शुद्धाचारमें ब्राह्मण केशरलालका गोरा छरहरा बदन धूम्र-हीन दीप-शिखाके समान दिखाई देता था; ब्राह्मणका वह पुण्य-माहात्म्य एक अपूर्व श्रद्धाके भारसे इस मुसलमान-तनयाके मूढ़ हृदयको विनम्र कर देता था।

मेरी एक हिन्दू बाँदी थी, वह रोज़ झुककर नमस्कार करके केशरलालकी पदधूलि ले आती थी—देखकर मुझे आनन्द भी होता था और ईर्षा भी। क्रिया-कर्म या पर्व-त्योहारके दिन वह बाँदी कभी-कभी ब्राह्मण-भोजन कराती और दक्षिणा दिया करती थी। मैं खुद ही अपनी तरफ़से उसे रुपये-पैसेसे मदद दिया करती, और कहती कि 'तू केशरलालको नौता नहीं देगी?' वह दाँतों तले जीभ दबाकर कहती—'केशरलाल महाराज किसीका भी अन्न या दान-दक्षिणा नहीं लेते।'

इस तरह प्रत्यक्ष या परोक्षमें केशरलालको किसी प्रकार अपनी भक्ति न दिखा सकनेके कारण मेरा चित्त मानो क्षुधातुर लोभी बना रहता था। मेरे पुरखोंमें से कोई किसी ब्राह्मण-कन्याको जबरन ब्याह लाये थे—मैं महलोंके एक कोनेमें बैठी हुई अपनी शिराओंमें उन्हींके पुनीत रक्त-प्रवाहका अनुभव करती और उसी रक्त-सूत्रसे केशरलालके साथ एकताके सम्बन्धकी कल्पना करके मैं कुछ-कुछ तृप्त हो लेती थी।

अपनी हिन्दू दासीसे मैं हिन्दू-धर्मके समस्त आचार-व्यवहार, देवी-देवताओंकी आश्चर्यजनक कहानियाँ, रामायण और महाभारतका सारा-का-सारा अपूर्व इतिहास शंका-समाधानोंके साथ अच्छी तरह सुनती,—सुनते-सुनते अपने उस अन्तःपुरके कोनेमें भी हिन्दू-संसारका एक अपूर्व दृश्य मेरे मनके सामने नाचने लगता था। मूर्ति प्रतिमूर्ति, शंख घंटाकी ध्वनि, सोनेके कलशसे सुशोभित देव-मन्दिर, धूप-गन्धका धूम, अगुरु-चन्दन मिश्रित पुष्पोंकी सुगन्ध, योगी-सन्यासियोंकी अलौकिक शक्ति, ब्राह्मणका लोकोत्तर माहात्म्य, मनुष्यके छद्मवेशमें देवताओंकी विचित्र लीला—ये सब मिलकर मेरे सामने एक अति प्राचीन अति-विस्तीर्ण अत्यन्त दूरके अस्वाभाविक मायालोककी सृष्टि कर देते, मेरा चित्त मानो घोंसला खोये-हुए छोटे पक्षीकी तरह संध्या-रूपी किसी बड़े भारी पुराने महलकी छोटी-छोटी कोठरियोंमें उड़ा-उड़ा फिरता था। हिन्दू संसार मेरे उस बालिका-हृदयके लिए बहुत ही दिलचस्प परियोंकी कहानीका भंडार-सा बन गया था।

इतनेमें सरकारके साथ फ़ौजकी लड़ाई छिड़ गई। हमारे छोटेसे बदाऊँके किलेमें भी विद्रोहकी चिनगारियाँ दिखाई देने लगीं।

केशरलालने कहा—'अब गो-भक्षक गोरोंको आर्यावर्तसे दूर करके भारतमें फिरसे एक बार हिन्दू-मुसलमानोंको राज-पदके लिए पाँसा फेंकना होगा।'

मेरे पिता गुलामक़ादिर खाँ बड़े सावधान और चतुर आदमी थे, उन्होंने अंग्रेज़ोंको एक खास रिश्तेदारके सम्बोधनसे सम्बोधित करके कहा कि 'ये सब-कुछ कर सकते हैं, हिन्दुस्तानके लोग उनसे उलझकर जीत नहीं सकते। मैं अनिश्चित आशापर अपने इस छोटेसे क़िलेको गँवा नहीं सकता—मैं कम्पनी-सरकारसे न लड़ूँगा।'

उस समय, जब कि हिन्दुस्तानके समस्त हिन्दू-मुसलमानोंका ख़ून खौल रहा था, तब मेरे पिताके इस बनियों-जैसी सावधानीपर हम सबका दिल उन्हें धिक्कारने लगा। मेरी बेगम-माताएँ तक चंचल हो उठीं।

इतनेमें केशरलालने अपनी सशस्त्र फ़ौजके साथ आकर

मेरे पितासे कहा—'नवाब साहब, अगर आप हमारी तरफ़ शामिल नहीं होते, तो कमसे कम जब तक लड़ाई चलती रहेगी, आपको नज़रबन्द रखा जाता है, और इस क़िलेके अधिकारका भार मैं लेता हूँ।'

पिताने कहा—'यह सब हंगामा कुछ भी न करना होगा, मैं तुम्हारी ही तरफ रहूँगा।'

केशरलालने कहा—'खजानेसे कुछ रुपये देने होंगे।'

पिताजीने विशेष कुछ नहीं दिया, कहा—'जब जैसी ज़रूरत होगी, मैं दूँगा।'

चोटीसे लेकर पैरकी उँगलियों तकके मेरे पहननेके जितने भी ज़ेवर थे, सब-के-सब मैंने एक कपड़ेमें बाँधकर अपनी हिन्दू दासीके ज़रिये केशरलालके पास भिजवा दिये। उन्होंने मेरी वह भेंट मंजूर कर ली। आनन्दसे मेरे आभूषण-हीन अंग प्रत्यंग पुलकित हो उठे—शरीर रोमांचित हो उठा।

केशरलाल जंग-लगी बंदूककी नली और पुरानी तलवार माँज-घिसकर साफ करवाने लगे,—इतनेमें अचानक एक दिन शामको ज़िलेके कमिश्नर साहब लाल पोशाकवाली गोरी पल्टनके साथ आसमानमें धूल उड़ाते हुए क़िलेमें आ धमके।

मेरे पिता नवाब गुलामक़ादिर ख़ाँने चुपकेसे उन्हें विद्रोहका समाचार भेज दिया था।

पर बदाऊँकी फ़ौजपर केशरलालका ऐसा असाधारण प्रभाव था कि वह उनके इशारेपर टूटी बंदूक और जंग-लगी तलवारोंसे लड़कर जान देनेको तैयार हो गई।

विश्वासघातक पिताका घर मुझे नरक-सा मालूम होने लगा। क्षोभसे, दुःखसे, लज्जासे, घृणासे मेरी छाती फटने लगी, फिर भी आँखोंसे एक बूंद पानी नहीं निकला। अपने डरपोक भाईकी पोशाक पहनकर भेष बदलकर मैं महलसे बाहर निकल पड़ी,—किसीको देखनेकी फुरसत ही नहीं थी।

उस समय धूल और बारूदका धुआँ, सैनिकोंका चीत्कार और बन्दूकोंकी आवाज़—सब थम चुकी थी, जल स्थल और आकाशमें मृत्युकी एक भीषण शान्ति छा रही थी। जमुनाके जलको रक्तरागसे रंग कर सूर्य अस्त हो चुके थे, सन्ध्याकाशमें शुक्लपक्षका परिपूर्ण प्राय चन्द्रमा दीख रहा था।

रण-क्षेत्र मृत्युके विकट दृश्यसे भरा था। और कोई समय होता, तो करुणासे मेरा कलेजा फटने लगता—पर उस दिन मानों सपनेसे उठकर मैं घूम-फिर रही थी—ढूँढ़ रही थी—कहाँ है केशरलाल,—एकमात्र उस लक्ष्यके सिवा और सब मुझे असत्य मालूम होता था।

ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आधी रातको चन्द्रमाकी चाँदनीमें मैंने देखा—रणक्षेत्रके पास ही जमुना-किनारे एक आमके बाग़में पेड़की छायाके नीचे केशरलाल और उनके भक्त सेवक देवकीनन्दनकी लाश पड़ी हुई है। समझ गई कि घातक रूपसे घायल होकर, या तो नौकर मालिकको या मालिक नौकरको रणभूमिसे इस निरापद स्थानपर ले आया है, और शान्तिके साथ दोनोंने मृत्युके हाथ अपनेको समर्पण कर दिया है।

पहले तो मैंने अपनी बहुत दिनोंकी भूखी भक्तिको चरितार्थ किया। केशरलालके पैरों-तले पड़कर घुटनों तक लटकते हुए अपने बालोंको खोलकर मैंने बारम्बार उससे उनके पैरोंकी धूल पोंछी—अपने गरम माथेपर उनके ठंढे चरण-कमल रखे।—उनका चुम्बन करते ही मेरी बहुत दिनोंसे रुकी हुई अश्रुधारा बह उठी।

इतनेमें केशरलालकी देह हिली—और सहसा उनके मुँहसे कराहनेकी दर्द-भरी आवाज़ सुनकर मैं उनके पैर छोड़कर चौंक पड़ी—सुना, मुँदी हुई आँखोंसे सूखे हुए कंठसे एक बार बोले—'पानी।'

मैं उसी क्षण अपना दुपट्टा जमुनामें डुबोकर भागती हुई आई। कपड़ा निचोड़कर केशरलालके खुले हुए ओठोंमें पानी देने लगी, और बाईं आँखको नष्ट करती हुई माथेपर जो गहरी चोट लगी थी, उस जगह अपने दुपट्टेका छोर फाड़कर पनपट्टी बाँध दी।

इस तरह कई बार जमुनासे पानी ला-लाकर उनके मुँहपर आँखोंपर निचोड़ती रही—धीरे धीरे होश आया। मैंने पूछा—'और पानी लाऊँ?'

केशरलालने कहा—'कौन हो तुम ?'

मुझसे रहा न गया—बोली—'यह दासी आपकी सेविका है। नवाब गुलामक़ादिर खाँकी लड़की हूँ मैं।'—सोचा था कि केशरलाल मरते-मरते अपने भक्तका अन्तिम परिचय साथ लेते जायँगे, इस सुखसे अब मुझे कोई वंचित नहीं कर सकता।

मेरा परिचय पाते ही केशरलाल सिंहकी तरह गरजकर बोले—'बेईमानकी लड़की, यवन! मरते समय यवनके हाथका पानी देकर तूने मेरा धर्म नष्ट कर दिया!'

यह कहकर मेरे माथेपर दाहने हाथसे बड़े ज़ोरसे एक तमाचा मारा—मैं बेहोश-सी हो गई—आँखोंके सामने अँधेरा दिखाई देने लगा।

तब मैं सोलह वर्षकी थी—पहले ही दिन महलसे बाहर निकली थी—तब तक बाहरके आकाशके लोभी सूर्यकी गरम किरणोंने मेरे सुकुमार कपोलोंकी सुर्खी और चेहरेकी लोन-छविको चुराया नहीं था। उस बाहरके संसारमें पैर रखते ही संसारसे—अपने संसारके देवतासे—यही मुझे पहला आशीर्वाद मिला।"

अब तक मैं बुझी हुई सिगरेट हाथमें लिये मोह-मुग्ध होकर चित्रमें अंकित मूर्तिकी तरह चुपचाप बैठा-बैठा कहानी सुन रहा था, कैसी भाषा सुन रहा था, कैसा संगीत सुन रहा था, मालूम नहीं,—मेरे मुँहमें ज़बान नहीं थी। इतनी देर बाद, फिर मुझसे रहा न गया—सहसा मुँहसे निकल पड़ा—"जानवर था।"

नवाबज़ादी कहने लगीं—"कौन जानवर था! जानवर क्या प्राण निकलते समय मुँहके सामने आई हुई पानीकी बूँदोंको छोड़ सकता है?"

मैंने लज्जित होकर कहा—"हाँ, बात तो ठीक है। देवता था।"

नवाबज़ादीने कहा—"कैसा देवता! देवता क्या भक्तकी एकाग्र चित्तसे की हुई सेवाको ठुकरा सकता है!"

मैंने कहा—"हाँ, बात तो ठीक है!"—कहकर चुप हो गया।

नवाब-नन्दिनी कहने लगीं—"पहले तो मेरे हृदयपर बहुत ही गहरी चोट पहुँची। ऐसा मालूम हुआ, मानो विश्व-ब्रह्मांड सहसा चकनाचूर होकर मेरे सिरपर आ पड़ा हो। क्षण-भरमें होशमें आकर कठोर, कठिन, निठुर, निर्विकार, पवित्र ब्राह्मणके पैरों तले दूरसे प्रणाम किया—मन-ही-मन कहा—'हे ब्राह्मण, तुम हीनोंकी सेवा, पराया अन्न, धनीका धन, युवतीका यौवन, रमणीका प्रेम—कुछ भी ग्रहण नहीं करते; तुम स्वतन्त्र हो, स्वाधीन हो, तुम एकाकी हो, निर्लिप्त हो, तुम बहुत दूर हो, तुम्हारे पास जाकर आत्मोत्सर्ग करनेका अधिकार भी मुझे नहीं है!

नवाबज़ादीको ज़मीनपर पड़कर साष्टांग प्रणाम करते देख केशरलालने क्या समझा, मैं नहीं कह सकती, परन्तु चेहरेपर आश्चर्य या और किसी प्रकारका भावान्तर नहीं प्रकट हुआ। शान्तभावसे एक बार मेरे मुँहकी ओर देखा—उसके बाद धीरे धीरे उठे। मैंने विह्वल होकर आश्रय देनेके लिए अपने हाथ पसारे—उन्होंने नीरवताके साथ उसे नामंजूर कर दिया, और बड़े कष्टसे जमुनाके घाट तक पहुँचे। वहाँ एक नाव बँधी थी। कोई पार जानेवाला भी न था, और न कोई पार करनेवाला ही था। उस नावपर चढ़कर केशरलालने रस्सी खोल दी—देखते-देखते नाव मँझ-धारमें पड़ गई और धीरे-धीरे अदृश्य हो गई। मेरी इच्छा होने लगी—अपने सम्पूर्ण हृदय-भारको, सम्पूर्ण यौवन-भारको, सम्पूर्ण अनादृत भक्ति-भारको लेकर उस अदृश्य नावकी ओर हाथ जोड़कर—उस निस्तब्ध निशीथमें, चन्द्रमाकी चाँदनीसे पुलकित उस निस्तरंग यमुनामें, असमयमें डंठलसे गिरी हुई पुष्प-मंजरीकी तरह—अपने इस व्यर्थ जीवनको विसर्जन कर दूँ।

परन्तु कर न सकी। आकाशके चन्द्रमाने, जमुना-पारकी घनी काली वन-रेखाने, कालिन्दीके निविड़ नील निष्कम्प जलने, दूरके आम्रवनके ऊपर चाँदनीसे जगमगाते हुए अपने उस क़िलेकी चोटीने—सभीने एक साथ नीरव गम्भीर एकतानसे मृत्युका गीत गाया—उस निशीथमें ग्रह-चन्द्र-ताराओंसे शोभित निस्तब्ध तीन भुवनने मुझे एकस्वरसे

मरनेके लिए कहा। केवल तरंग-हीन प्रशान्त यमुनाके स्रोतमें बहती हुई वही एक अदृश्य जीर्ण नाव—उस ज्योत्स्ना-रजनीके सौम्य सुन्दर शान्त अनन्त भुवनमोहन मृत्युके पसारे हुए आलिंगन-पाशसे छुड़ाकर—मुझे जीवनके मार्गपर खींच ले चली। मैं मोह-स्वप्नमें मरी-हुईकी तरह जमुनाके किनारे-किनारे कहीं लम्बी-लम्बी घास तो कहीं सूखी बालू, कहीं ऊबड़-खाबड़ ज़मीन तो कहीं फटे कगारे, कहीं घने जंगल तो कहीं सुनसान बीहड़को पार करती हुई चलने लगी।"

यहाँपर नवाबजादी चुप हो गई। मैं भी कुछ नहीं बोला।

बहुत देर बाद उन्होंने कहा—"इसके बाद—घटनावली बड़ी जटिल है। उसे किस तरह अलग-अलग करके साफ़-साफ़ कहूँ, मेरी कुछ समझमें नहीं आता। एक गहन वनके भीतरसे गई थी, ठीक किस रास्तेसे कब कहाँ गई थी, उसे क्या फिरसे ढूंढ़कर बता सकती हूँ!—कहांसे शुरू करूँ, कहां खतम करूँ, कितना छोड़ दूँ, कितना रखूँ, सारी कहानीको कैसे किस उपायसे ऐसा स्पष्ट प्रत्यक्ष बना डालूँ कि जिसमें ज़रा भी कहीं कुछ भी असाध्य असम्भव या अस्वाभाविक न मालूम हो।

परन्तु जीवनके इन्हीं कई दिनोंमें मैं समझ गई हूँ कि असाध्य असम्भव तो कुछ है ही नहीं। नवाब-घरानेकी महलोंमें बन्द रहनेवाली बालिकाके लिए बाहरका संसार अत्यन्त दुर्गम हो सकता है, पर वह काल्पनिक है,—एक बार यदि बाहर निकल पड़े, तो उसके लिए चलनेका मार्ग हो ही जाता है। वह मार्ग नवाबी मार्ग नहीं, पर मार्ग ज़रूर है, उस मार्गसे मनुष्य चिरकालसे चलता आ रहा है, वह मार्ग ऊबड़-खाबड़, विचित्र और सीमाहीन है, वह शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त है, वह सुख-दुःखसे, विघ्न-बाधाओंसे जटिल है, किन्तु वह है मार्ग ही।

इस साधारण मानवके मार्गपर अकेली नवाबज़ादीकी लम्बी भ्रमण-कहानी सुननेमें सुखदायक न होगी—और हो भी, तो उन बातोंके कहनेके लिये मुझमें ज़रा भी उत्साह नहीं। सौ बातकी एक बात यह है कि दुःख-कष्ट, आफ़त-बिपत, मान-अपमान—बहुत कुछ सहना पड़ा है, फिर भी जीवन असह्य नहीं हुआ। आतशबाज़ीकी तरह जितनी जली हूँ, उतनी ही प्रबल गतिसे घूमती रही हूँ। जब तक तेज़ीसे घूमी थी, तब तक 'जल रही हूँ' इस बातका ज्ञान न था—आज सहसा वह परम दुःखकी, वह चरम सुखकी दीप-शिखा हवाके एक ही झोंकेमें बुझ गई, और साथ ही मैं भी रास्तेके किनारे धूलपर जड़-पदार्थकी तरह गिर गई हूं—आज मेरी यात्रा खतम हो गई, मेरी कहानी भी यहींपर खतम है।"

इतना कहकर नवाबज़ादी चुप हो गई। मैंने मन ही मन सिर हिलाया—'ऊँ-हुंक्, यहाँ तो किसी तरह खतम हो ही नहीं सकती।' कुछ देर चुप रहकर मैंने टूटी-फूटी हिन्दीमें कहा—"बेअदबी माफ़ करें, अन्तिम दिनकी बात ज़रा खुलासा करके कहें तो मेरे मनकी घबराहट बहुत-कुछ कम हो सकती है।"

नवाबज़ादी हँसी। समझ गया कि मेरी टूटी फूटी हिन्दी काम कर गई। अगर मैं खास उर्दूमें बात कर सकता, तो मेरे सामने उनकी लज्जा दूर न होती; बल्कि मैं जो उनकी मातृभाषा बहुत ही कम जानता हूँ—यही हम दोनोंके बीच बहुत बड़ा परदा था—यही आबरू थी।

उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"केशरलालकी खबर मुझे लगभग हमेशा मिलती रहती, लेकिन किसी भी तरह उनसे मेरी भेंट न हो सकी। वे तात्या टोपीके दलमें मिलकर उस विद्रोह-विप्लवसे छाये हुए आकाशके नीचे अकस्मात् कभी पश्चिममें तो कभी नैर्ऋतमें तो कभी उत्तरमें, वज्रकी तरह क्षणमें टूट पड़ते और क्षणमें अदृश्य हो जाते थे।

मैं तब योगिन बनकर काशीके शिवानन्द स्वामीको पिता मानकर उनसे संस्कृत शास्त्रोंका अध्ययन कर रही थी। भारतवर्षके सब समाचार उनके चरणकमलोंमें आकर इकट्ठे होते थे—मैं परम भक्तिके साथ शास्त्र पढ़ती थी और शंकित चित्तसे हृदयविदारक आकुलताके साथ युद्धके समाचार लेती रहती थी।

धीरे-धीरे अंग्रेज़ सरकारने हिन्दुस्तानकी विद्रोहाग्निको पैरों-तले कुचलकर बुझा दिया। तब फिर केशरलालका सहसा समाचार मिलना बंद हो गया। भीषण प्रलय-प्रकाशकी लाल किरणोंके भीतर भारतके दूर-दूरान्तरसे जो वीर मूर्तियाँ क्षण-क्षणमें दिखाई देती थीं, वे सहसा अन्धकारमें लीन हो गईं।

अब मुझसे रहा नहीं गया। गुरुका आश्रय छोड़कर भैरवीके वेशमें फिर निकल पड़ी। अनेक मार्ग, तीर्थ, मठ और मन्दिरोंमें भ्रमण करती रही—कहीं भी केशरलालका पता नहीं चला। दो-एकके मुँहसे, जो उनका नाम जानते थे, सुना—'वे या तो युद्धमें या राजदंडमें मारे गये मालूम होते हैं।' मेरी अन्तरात्माने कहा—'कभी नहीं, केशरलालकी मृत्यु हो ही नहीं सकती। वह ब्राह्मण—वह दुःसह ज्वलदग्नि कभी बुझ नहीं सकती, मेरी आत्माहुति ग्रहण करनेके लिए अब भी वह किसी दुर्गम निर्जन यज्ञवेदीपर ऊर्ध्व-शिखा होकर जल रही होगी।'

हिन्दू-शास्त्रोंमें लिखा है—ज्ञानके द्वारा, तपस्याके द्वारा शूद्र ब्राह्मण हुए हैं। मुसलमान ब्राह्मण हो सकता है या नहीं, इस बातका कोई उल्लेख नहीं—इसका एकमात्र कारण है उस समय मुसलमान यहाँ थे नहीं। मैं जानती थी कि केशरलालके साथ मेरे मिलनमें बहुत विलम्ब है—कारण उससे पहले मुझे ब्राह्मण होना पड़ेगा। एक-एक करके तीस वर्ष बीत गये। मैं भीतरसे बाहरसे, आचारमें व्यवहारमें, मन-वचन-कायसे ब्राह्मण हो गई, मेरी उन ब्राह्मण पितामहीका रक्त निष्पाप तेजसे मेरे सर्वाङ्गमें प्रवाहित होने लगा; मैंने मन-ही-मन अपने उस यौवनारम्भके प्रथम ब्राह्मण—अपने उस यौवन-शेषके शेष ब्राह्मण—अपने त्रिभुवनके उस एकमात्र ब्राह्मणके चरणोंमें बिलकुल निःसंकोच होकर अपनेको चढ़ाकर एक अपूर्व दीप्ति प्राप्त की।

युद्ध-विद्रोहके समय केशरलालकी वीरताकी बातें मैंने बहुत सुनी हैं—परन्तु वे मेरे हृदयपर अंकित नहीं हुई हैं। मैंने जो उस दिन उस निःशब्द चाँदनी रातमें निस्तब्ध यमुनाके मध्य स्रोतमें एक छोटीसी नावपर अकेले केशरलालको बहते जाते देखा है, वही चित्र—वही चित्र मेरे हृदयमें अंकित है। मैं दिन-रात केवल यही देख रही थी कि वह ब्राह्मण निर्जन धीर स्रोतमें किसी अनिर्दिष्ट महारहस्यकी ओर रात-दिन जा ही रहा है—उसका न तो कोई साथी है, न कोई सेवक; किसीकी भी उसे कोई आवश्यकता नहीं है, वह निर्मल आत्म-निमग्न पुरुष अपनेमें आप ही सम्पूर्ण है; आकाशके ग्रह-चन्द्र-तारागण नीरव होकर उसे निरीक्षण कर रहे हैं।

इसी समय समाचार मिला कि केशरलाल राज-दंडसे निकलकर नेपालकी तरफ़ भाग गये हैं। मैं नेपाल पहुँची। वहाँ बहुत दिनों तक रही; मालूम हुआ—केशरलाल बहुत दिन हुए, नेपाल छोड़कर अन्यत्र कहीं चले गये हैं, उनका कुछ पता नहीं।

उसके बाद अनेक पहाड़ छान डाले—कहीं पता न चला। यह हिन्दुओंका देश नहीं है—भुटानी लपचा लोग म्लेच्छ हैं, इनके आहार-व्यवहार, आचार-विचार कुछ नहीं है—इनके देवता, इनकी पूजार्चनाकी विधि सब भिन्न हैं;—बहुत दिनोंकी साधनासे मैंने जो विशुद्ध शुचिता प्राप्त की है, मुझे भय होने लगा कि कहीं उसपर कोई लकीर न पड़ जाय—कोई धब्बा न लग जाय। मैं बड़ी कोशिशसे सब तरहके मलिन संस्पर्शोंसे अपनी रक्षा करती हुई चलने लगी। मैं जानती थी—मेरी नाव किनारे आ पहुँची है, मेरे जीवनका परम पुनीत चरम-तीर्थ नज़दीक ही है।

उसके बाद और क्या कहूँ! अन्तकी बात तो बहुत ही थोड़ी है। दिया जब बुझता है, तब एक फूँकसे ही बुझ जाता है—उस बातकी अब लम्बी-चौड़ी क्या व्याख्या करूँ!

अड़तीस वर्ष बाद इस दार्जिलिंगमें आकर मैंने आज सवेरे केशरलालको देखा है।"

वक्ताको यहीं चुप होते देख मैंने उत्सुकताके साथ पूछा—"क्या देखा?"

रेगिस्तान में शाम

चित्रकार श्री कनु देसाई
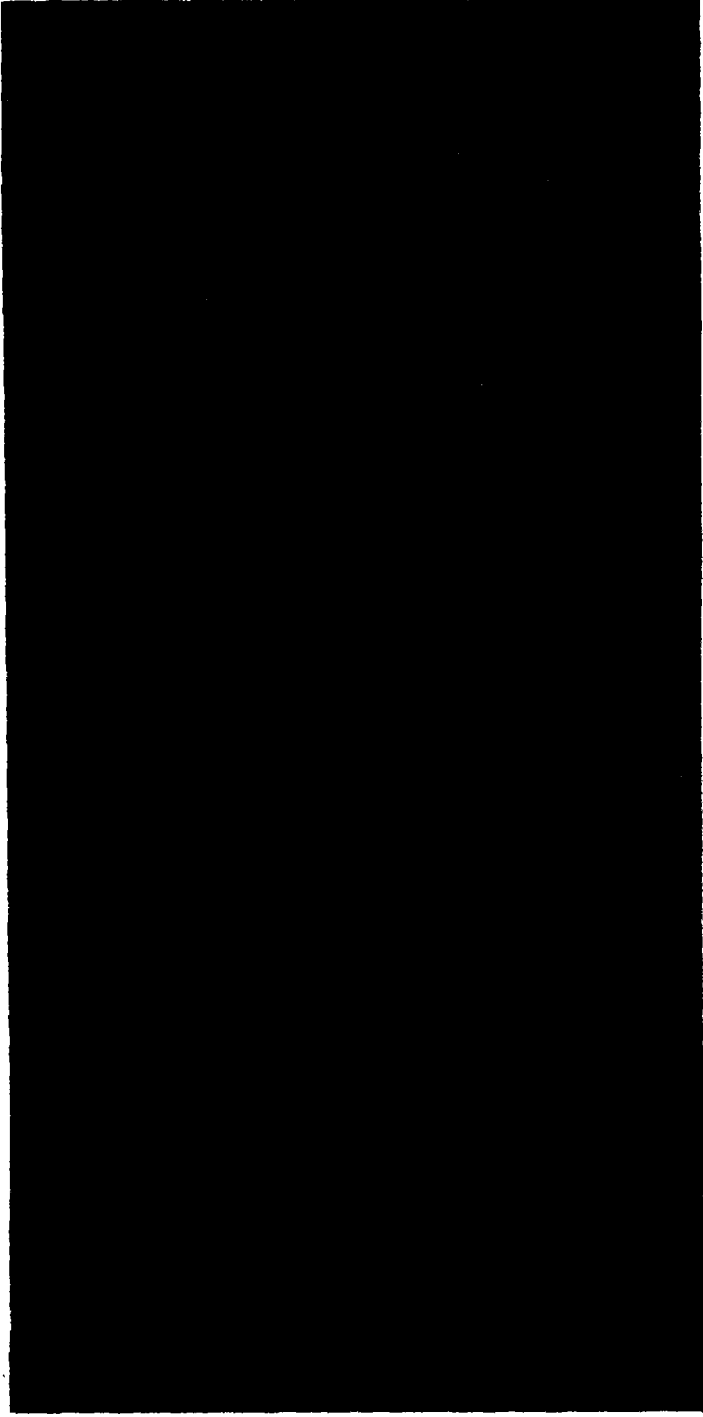
नवाब-नन्दिनीने कहा—"देखा, वृद्ध केशरलाल भूटानी बस्तीमें भूटानी स्त्री और उससे पैदा नाती-पोतोंके साथ मैले-कुचैले कपड़े पहने खेतीका काम कर रहे हैं।"

क़िस्सा खतम हुआ। मैंने सोचा—अब कोई सान्त्वनाकी बात कहनी चाहिए। कहा—"अड़तीस वर्ष लगातार जिसे दिन-रात प्राणोंके भयसे विजातीयोंके संसर्गमें रहना पड़ा है, वह किस तरह अपने आचार-विचारकी रक्षा कर सकता है?"

नवाबज़ादीने कहा—"मैं क्या यह समझती नहीं? परन्तु इतने दिनों तक मैं किस मोहको लेकर फिर रही थी! जिस ब्राह्मणत्वने मेरे किशोर-हृदयको हर लिया था, मैं क्या जानती थी कि वह अभ्यास है, आदत है वह संस्कार-मात्र है? मैं समझती थी—वह धर्म है, वह अनादि है, अनन्त है। ऐसा ही यदि न होता, तो सोलह वर्षकी उम्रमें पहले पहले पिताके घरसे निकलकर उस चाँदनी रातमें अपने नव विकसित, पुष्पित, भक्ति वेगसे कम्पित, तन-मन-प्राण दानके बदले उस ब्राह्मणके दाहने हाथसे मुझे जो दुःसह अपमान मिला था, उसे क्यों—गुरुके हाथकी दीक्षा समझकर चुपचाप अवनत मस्तकसे दूनी भक्तिसे—शिरोधार्य करती?—हाय ब्राह्मण, तुमने तो अपनी एक आदतके बदले दूसरी आदत अख्तियार कर ली, पर मैं अपने एक यौवन—एक जीवनके बदले दूसरा जीवन—दूसरा यौवन कहाँ पाऊँ?"

इतना कहकर वह स्त्री उठ खड़ी हुई, बोली—"नमस्कार बाबूजी!"

क्षण भर बाद ही, मानो अपनी ग़लतीको सुधार कर फिर बोली—"सलाम बाबू साहब!"

इस मुसलमानी अभिवादनके द्वारा मानो उसने उस मिले हुए सजीर्ण-शीर्ण ब्राह्मणत्वसे अन्तिम विदा ली। मेरे कुछ कहनेसे पहले ही वह हिमालयके उस भूरे रंगके कुहरेमें बादलकी तरह विलीन हो गई।

मैं कुछ देर तक आँखें मूँदकर समस्त घटनावलीको अपने मानस-पटपर चित्रित देखने लगा। यमुना तटके किलेके झरोखेके पास मसनदपर सुखसे बैठी हुई षोडशी नवाब-नन्दिनीको देखा, तीर्थ-मन्दिरमें सन्ध्या-आरतीके समय तपस्विनीकी भक्तिसे गद्गद एकाग्र मूर्ति देखी—उसके बाद इस दार्जिलिंगमें केलकैटा-रोडके किनारे एक प्रवीणा प्रौढ़ा रमणीके कुहरेसे ढकी हुई भग्न-हृदयके भारसे कातर नैराश्यकी मूर्ति भी देखी,—एक सुकुमार रमणी-देहमें ब्राह्मण मुसलमानके रक्त तरंगोंकी विपरीत संघर्ष जनित विचित्र व्याकुल संगीत-ध्वनि सुन्दर सुसम्पूर्ण उर्दू-भाषामें विगलित होकर मेरे मस्तिष्कके अन्दर स्पन्दित होने लगी।

आँख खोलकर देखा, तो, सहसा बादल दूर हो गये हैं, स्निग्ध सूर्य-किरणोंसे निर्मल आकाश आँखोंमें चकाचौंध ला रहा है। रिक्शागाड़ीमें अंग्रेज़ महिलाएँ और घोड़ेकी पीठपर अंग्रेज़ पुरुष सैर करने निकले हैं—बीच बीचमें दो-एक भारतीय गलेमें गुलूबन्द लपेटे हुए मेरी ओर सकौतुक कटाक्ष करते हुए चले जा रहे हैं।

मैं जल्दीसे उठ खड़ा हुआ—इस सूर्यालोकसे आलोकित खुले हुए संसार दृश्यमें बादलोंसे ढकी हुई वह कहानी मुझे सत्य नहीं मालूम हुई। मैं समझता हूँ—मैंने पर्वतके कुहरेके साथ अपनी सिगरेटका काफी धुआँ मिलाकर एक कल्पना-खंड रचा था—वह मुसलमान ब्राह्मण', वह विप्र वीर, यमुना तटका वह क़िला—कुछ भी सत्य नहीं है।

—धन्यकुमार जैन

इंडियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट

(पूर्वीय कलाकी भारतीय परिषद्)

श्रीयुत अर्द्धेन्द्रकुमार गंगुली

हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति ऐसी है, जिससे हमारे आधुनिक शिक्षालयों—स्कूलों और कालेजों—से ज्ञान विस्तारका एक बड़ा शक्तिशाली माध्यम ही गायब हो गया है। ज्ञान-विस्तारका यह माध्यम है ललित कला और सौन्दर्य-तत्त्वकी शिक्षा। मनुष्यके मानसिक भावोंसे ललित कलाका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। हमारी सौन्दर्य-ग्राहक शक्तिके—जो मानव-हृदयकी सबसे सुन्दर विशेषता है—विकासका अवसर न देना उस शक्तिको सदाके लिए पंगु बनाना है; क्योंकि बिना अभ्यास और विकासके सभी अंग निर्जीव हो जाते हैं। कहनेको तो हमारे कालेजोंमें 'आर्ट' की शिक्षा दी जाती है और प्रति वर्ष हजारों 'बैलचर आफ् आर्ट' (बी० ए०) और 'मास्टर आफ् आर्ट' (एम० ए०) उत्पन्न होते हैं, परन्तु इस 'आर्ट' की शिक्षासे 'फाइन आर्ट' (ललित कला) ऐसा गायब कर दिया गया है कि आजकल 'सौन्दर्य' के मधुर स्पर्शसे भी हमारी हृदतन्त्रीके तारोंमें झनकार नहीं पैदा होती। यहाँ तक कि हम लोग कलाकी सर्वोत्तम साकार कृतियोंको समझने और उनका सौन्दर्य प्रकट करनेके योग्य नहीं रह गये हैं। इतना ही नहीं, बल्कि हमारा दृष्टिकोण भी अनुचित, परन्तु स्थायी रूपसे उलटी ओर हो गया है। सौन्दर्यके मन्दिरमें जिस ज्ञानकी प्रतिमा स्थापित है, उसका फाटक हमारे लिए बन्द है।

यूरोप और अमेरिकामें शायद ही कोई ऐसी शिक्षण-संस्था हो, जिसमें ललित कलाके सम्पर्कमें आनेकी सुविधाएँ न हों। पाश्चात्य देशोंमें सब प्रकारके शिक्षा-सम्बन्धी विचारोंमें—केवल उच्च शिक्षा ही में नहीं, बल्कि प्रारम्भिक और सेकेन्डरी शिक्षामें भी—सौन्दर्य तत्त्वग्राहिणी वृत्तिके विकासको एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। आलेख्य शिल्प भी शिक्षाका एक अवयव माना जाता है। इसके लिए न केवल नीची श्रेणियोंमें प्रारम्भिक ड्राइंगकी ही समुचित शिक्षा दी जाती है, बल्कि एक नियमित प्रोग्रामके अनुसार कलाकी प्राचीन और अर्वाचीन उत्कृष्ट कृतियोंके साथ शिक्षार्थियोंका घनिष्ट सम्बन्ध भी स्थापित किया जाता है।

किस्मतकी यह विचित्र खूबी देखिये कि हमारे शिक्षा-मन्दिरोंमें 'कला' को लोग अब तक 'अछूत' समझते हैं। भारतमें लिखने-पढ़नेकी शिक्षाकी ओर जरूरतसे कहीं अधिक ध्यान दिया जाता है। फल यह है कि यहाँवाले लोग शिक्षाके उन समस्त उपायोंको, जो पुस्तकों या व्याख्यानोंसे सम्बन्ध नहीं रखते, हौआ-सा समझते हैं। उनकी समझमें ज्ञान प्राप्त करनेका एकमात्र माध्यम शब्दोंकी भाषा है। उनकी इस मानसिक वृत्तिने चित्रण और दृश्य कलाओंको विस्मृतिके गर्तमें डाल रखा है। हमारी ऐतिहासिक कलाओं और शिल्पोंका जो पतन हुआ है और आजकल हमारे औद्योगिक शिल्पोंकी जो बुरी दशा है, उसका बहुत बड़ा कारण हमारी रूप ग्राहिणी-शक्तिका ह्रास है। हममें सौन्दर्यकी रुचि जाती रही है। यह कमी हमें मालूम भी नहीं होती, और अकसर हम अपनी इस कमीको स्वीकार नहीं करते।

स्वदेशी आन्दोलनके जोरसे देशमें अनेकों चीजें बनने लगीं और देशके उद्योग-धन्धोंको बहुत-कुछ प्रोत्साहन मिला, परन्तु हमारी इन शुद्ध स्वदेशी चीजोंके शिल्पमें सुरुचि और सौन्दर्यका खेद-जनक अभाव है। हमारी रोजमर्राके व्यवहारकी वस्तुओं—जैसे, फर्निचर, कपड़ा, मिट्टीके

इंडियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्टमें शिक्षक और शिक्षार्थी कार्य कर रहे हैं।

या धातुके बर्तन आदि—में यदि सुरुचिका रंग और सौन्दर्यके पालिश हो, तो उनका मूल्य कुछ और ही हो जाता है। औद्योगिक वस्तुओंमें भी यदि डिज़ाइनकी कमी हुई और कलापूर्ण 'फिनिश' न हुई, तो वे प्रतियोगिताके बाज़ारमें कभी ठहर नहीं सकतीं। यूरोप, अमेरिका, जापान आदि देशोंमें, शिक्षाके समान, व्यापारमें भी कलाने महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर रखा है। 'औद्योगिक क्षेत्रमें कलाका उपयोग' वहाँ एक सर्वमान्य बात है। यूरोपके औद्योगिक विकासमें रस्किनका यह वाक्य कि 'कलाहीन उद्योग-धन्धे बर्बरता-मात्र हैं', आदर्शकी भाँति ग्रहण किया जाता है। वहाँवाले इस बातको अच्छी तरह जान गये हैं कि जिन चीज़ोंमें डिज़ाइनकी नवीनता होती है और जिनमें कलाकी खूबी पाई जाती है, वे अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारमें खूब बिकती हैं। बहुत वर्ष हुए, जब जापानकी अनेकों वस्तुओं—विशेषकर रोज़मर्राके इस्तेमालकी वस्तुओं—ने यूरोप और अमेरिकाके बाज़ारोंपर कब्ज़ा कर लिया था। उसका कारण यह था कि उनके डिज़ाइनमें नवीनता थी और उनमें जापानियोंकी अपनी विशेष जातीय सुरुचिकी गन्ध थी, इसीलिए जापानकी आर्ट-सम्बन्धी वस्तुओंका निर्यात बहुत बढ़ा चढ़ा है।

इसके विपरीत हमारे देशकी कलापूर्ण वस्तुओंके व्यापारकी दशा अत्यन्त शोचनीय है, और प्रति वर्ष वह और भी बिगड़ती ही जाती है। वेम्बली प्रदर्शिनीसे भी—जिसका इतना अधिक डंका पीटा जाता था—भारतीय वस्तुओंको यूरोपके बाज़ारमें कोई स्थान प्राप्त न हो सका। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु एक प्रत्यक्ष कारण आधुनिक भारतीय वस्तुओंमें डिज़ाइन और 'फिनिश' की कमी है। जब तक भारतीय उत्पादकगण अपने मालमें सौन्दर्य और सुरुचि उत्पन्न नहीं करेंगे और जब तक वे उनके डिज़ाइन बदलकर उनपर विशुद्ध भारतीय प्रतिभाकी छाप न लगावेंगे, तब तक उनके मालका यूरोपियन बाज़ारोंमें पैर जमाना बहुत मुश्किल है।

इसमें संदेह नहीं है कि कला-सम्बन्धी विकासमें नवीन भारतने कुछ सफलता अवश्य ही प्राप्त की है। इस समय यह सफलता चित्र-कलामें विशेषरूपसे दीख पड़ती है। श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके नेतृत्वमें भारतीय चित्र-शिल्पियोंने भारतीय कलाके विकासमें एक नवीन अध्याय आरम्भ किया है। उन्होंने भारतकी प्राचीन पद्धतिमें नवीन जाग्रति और नवीन जीवनका सचार किया है। इस नवीन आन्दोलनने, अनेक प्रतिभाशाली चित्र-कारोंके सहयोगसे, काफ़ी शक्ति प्राप्त कर ली है। इस नवीन कलाके पुजारियोंने भारतमें ही नहीं, बल्कि भारतके बाहर—पेरिस, लन्दन,

इंडियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्टमें महिला छात्राएँ अपना काम कर रही हैं।

बर्लिन, अमेरिका आदि स्थानोंमें भी अच्छी ख्याति पाई है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि कलाके क्षेत्रमें भी नवीन भारत संसारको अपना एक ऐसा सन्देश दे सकता है, जिसे कोई यूरोप या अमेरिकाकी कला-शालाओंकी प्रतिध्वनि नहीं कह सकता। यह कला पश्चिमी स्पर्शसे एकदम अलग है। उसमें अपनी निजी मौलिकता अपना निजी, परन्तु शक्तिशाली, व्यक्तित्व है। साहित्यके क्षेत्रमें कवीन्द्र रवीन्द्र यह सिद्ध कर दिया है कि भारतभूमि अभी बिल्कुल कंगाल नहीं हुई है, इसी प्रकार कला क्षेत्रमें चित्रकार अवनीन्द्रने भारतका गौरव रखा है।

भारतवर्षमें कलाकी शिक्षाके साधन बहुत कम हैं। कुछ सरकारी आर्ट-स्कूलोंको छोड़कर कलाकी शिक्षा देनेवाली संस्थाओंका प्रायः अभाव है। अन्य प्रान्तोंमें इस प्रकारकी गैर-सरकारी संस्थाएँ प्रायः नहींके बराबर हैं। हाँ, बंगालमें कुछ केन्द्र ऐसे जरूर हैं, जहाँ कलाकी शिक्षा मिल सके। इनमेंसे दो संस्थाएँ महत्वपूर्ण हैं—शान्ति-निकेतन विश्व-भारतीका कला-भवन और कलकत्तेकी इंडियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्टसे संलग्न स्कूल। सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्टका स्कूल सरकारी सहायता तथा कलकत्ता-कारपोरेशनकी उदारतापूर्ण ग्रान्टके सहारे चलता है। इस सोसाइटीकी वार्षिक प्रदर्शनी अब कलकत्तेके जीवनकी एक महत्वपूर्ण चीज़ हो गई है। प्रति वर्ष इस प्रदर्शिनीके अवसरपर भारतके प्रत्येक भागसे कला-प्रेमी सग्रह करनेवाले सज्जन आकर सोसाइटीकी कलाकी सराहना करते हैं। इस वर्ष भी गत दिसम्बर मासके अन्तिम सप्ताहमें यह प्रदर्शिनी हुई थी और उसमें अनेकों हृदय प्रफुल्लित करनेवाली नेत्ररंजक वस्तुएं प्रदर्शित की गई थीं।

लोगोंको इस बातका ज्ञान कम है कि इस सोसाइटीकी संरक्षकतामें सुनिश्चित 'स्टूडियो' है, और वह कलाकी शिक्षा प्रदान करनेके लिए एक स्कूल चलाती है। इस स्कूलका कार्य श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरकी देख-रेखमें अनेक ट्रेनिंग-प्राप्त, योग्य शिक्षक चलाया करते हैं। इस स्कूलमें भर्ती होनेके नियम और इसकी शिक्षा-पद्धति अन्य सरकारी संस्थाओंकी अपेक्षा बिलकुल भिन्न है। यहाँ क़ानून-क़ायदोंकी ऐसी मज़बूत दीवारें नहीं हैं, जिनसे शिक्षक और शिक्षार्थी स्वाधीनता-पूर्वक मिल जुल न सकें। यहाँ शिक्षक और विद्यार्थी साथ-साथ बैठते हैं और मज़ेसे मित्रतापूर्ण भावसे अपने-अपने ब्रश चलाते हैं। हमारे प्राचीन भारतवर्षमें भी शिक्षाकी यही प्रणाली थी। इस प्राचीन प्रणालीमें यह बड़ी सुविधा है कि इससे शिक्षक और शिक्षार्थियोंमें एक घनिष्ट, मित्रतापूर्ण सम्पर्क स्थापित हो जाता है। यहाँ शिक्षार्थियोंको इस बातका बहुत अवसर मिलता है कि वे अपने शिक्षकोंका व्यावहारिक शिल्प-विज्ञान अध्ययन कर सकें। किसी विशेष

चित्रके बनानेमें जब शिक्षक खुले क्लासमें सबके सामने व्यावहारिक प्रयोग और दृश्य-प्रदर्शन करता है और विद्यार्थी उसे ललचाई हुई दृष्टिसे देखते हैं, उस समय क्लासके वातावरणमें 'चित्रांकन' की एक छूत-सी फैल जाती है। विद्यार्थियोंके हृदयोंमें बड़े तीव्र कलापूर्ण भाव टक्कर मारने लगते हैं। यह बात केवल शिक्षकके ज़बानी व्याख्यानसे नहीं पैदा हो सकती। जिस समय प्रत्यक्ष रूपमें चित्रांकन होता है, जब चित्रके जन्मकी भिन्न-भिन्न सनसनीपूर्ण अवस्थाएँ आँखोंके सामनेसे गुज़रती हैं, उस समय चित्र-लेखनकी प्रतिभा और सृजनशील कल्पनाकी संकुचित कलियाँ अपने-आप विकसित होने लगती हैं। एक जलते हुए दीपकके स्पर्शसे दूसरा दीपक जल उठता है, ठीक यही दशा आर्टिस्टोंकी है। जिस समय चित्रकार चित्रांकनमें मग्न होता है, जिस समय उसकी प्रतिभा सर्वोज्ज्वल प्रकाश दिखलाती है, जिस समय उसकी उत्पादक प्रेरणाकी ज्योति जगमगाती है, जब वह चित्रोत्पादनके आनन्दमें विभोर होता है, उस समय उसके घनिष्ट सम्पर्कमें आनेवाले विद्यार्थियोंकी कल्पना शक्तिके द्वार उन्मुक्त हो जाते हैं, उसका सौन्दर्य ज्ञान प्रकाशित हो उठता है। ज़बानी शिक्षा देने, पुस्तकें पढ़ाने अथवा अन्य उपायोंसे यह बात कभी नहीं हो सकती।

इस शिक्षा-प्रणालीका परिणाम बहुत ही फलदायक सिद्ध हुआ है। यह सिद्ध हो चुका है कि इस प्रणालीका अनुसरण करनेसे विद्यार्थी कलाके आधारभूत सिद्धान्तों और उनके शिल्प-विज्ञान इस प्रकारसे ग्रहण कर लेते हैं, जिससे दो वर्षमें वे अपने सौन्दर्य-ज्ञानके स्वाभाविक विकासके साथ-साथ स्वयं अपना मार्ग निकाल सकें। उनकी शिक्षा नपे-तुले सिद्धान्तोंके घोखने या पूर्व-निश्चित कठोर 'सबक़ों' के मननका फल नहीं है, वह उनके अन्तरकी सुषुप्त शक्तियोंके स्वाभाविक विकासका परिणाम है। यह विकास चित्रांकनके वास्तविक प्रयोगोंके सम्पर्क, विभिन्न आकारोंके रूप ग्रहण करनेके ढंग और चित्रोत्पादनकी प्रत्येक अवस्थाके निरीक्षणसे प्राप्त होता है।

इस स्कूलके विद्यार्थियोंको अन्य स्कूलोंके समान समय-समयपर परीक्षाकी व्याधि नहीं सताती और न उनके साथ डिग्री या सार्टिफिकेट देनेकी दिखाऊ रस्म ही अदा की जाती है। किसी विद्यार्थीकी शिक्षा समाप्त हो गई या नहीं, इस बातका निर्णय स्वयं डाइरेक्टर करते हैं। कुछ विद्यार्थी केवल दो वर्षमें ही शिक्षा पूरी कर लेते हैं, किसीको तीन और किसीको चार वर्ष भी लग जाते हैं। इस बीचमें यदि विद्यार्थी किसी प्रकारकी उन्नति नहीं करता है, तो उसे स्कूलसे खारिज कर दिया जाता है, जिससे व्यर्थमें उसका समय नष्ट न हो। वह अन्य क्षेत्रोंमें स्वतन्त्रतासे अपनी क़िस्मत आज़माई कर सकता है।

हालमें स्कूलने एक 'महिला-विभाग' भी खोला है। उसमें महिलाओंके लिए विशेष सुविधाएँ और उनकी देख-रेखका समुचित प्रबन्ध है। इस नवीन प्रयोगका अपना निजी अर्थ-पूर्ण औचित्य है। हमारी पढ़ी-लिखी महिलाओंने साहित्य-क्षेत्रमें अपनी प्रतिभा सिद्ध कर दिखाई है। इधर हालमें राजनैतिक मैदानमें भी उन्होंने अपूर्व साहस, सहिष्णुता और शक्तिका परिचय दिया है। यह सभी मानते हैं कि हमारी मातृ-जातिमें अनन्त आध्यात्मिक शक्ति दबी पड़ी है, परन्तु अभाग्यवश सौन्दर्य तत्त्व और संस्कृतिके क्षेत्रमें हमारी महिलाओंकी शक्ति अब तक प्रकाशित नहीं हुई है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि हमारी शिक्षित भारतीय महिलाएँ कलाकी ओरसे प्रायः उदासीन हैं। दो-एक भारतीय महिलाओंकी चित्र-कलाने यह सिद्ध कर दिया है कि कलाके इस नवीन भवनको महिलाए और भी अधिक सुरम्य बना सकती हैं। हमारी भारतीय महिलाओंकी प्रतिभाको अभी रंग और आकारके रूपमें चमकना बाक़ी है। भारतीय देवियाँ निश्चय ही आधुनिक भारतकी कलाको एक नवीन सौन्दर्य जगतके स्वर्ण-कमलोंसे विभूषित करके उसमें एक अलौकिक दीप्ति उत्पन्न कर देंगी।

चित्रकार श्री सोमालाल शाह

श्रीयुत शंकरदेव विद्यालंकार

भाई श्री सोमालाल शाह गुजरातके उन उदीयमान तरुण चित्रकारोंमें से हैं, जिन्होंने थोड़े समयके अन्दर ही चित्रकारीके विषयमें विशेष निपुणता और ख्याति प्राप्त की है।

भाई सोमालाल शाहका जन्म गुजरात-प्रान्तके कपडवंज नामक एक कस्बेमें हुआ है। उनके पिता अनाज बेचनेका धन्धा करते हैं और जातिके वैश्य हैं। एक वणिक पिताके पुत्रके सिरपर कलाकी धुन सवार हुई देखकर लोग आश्चर्य करते हैं।

छुटपनमें ही सोमालाल भाईको रंग-बिरंगे चित्र बनानेका बहुत शौक़ है। बालपनमें ही वे अपने लिखनेकी नोटबुकके पृष्ठोंपर चित्र बनाकर रंग भरा करते थे। उनके छुटपनमें बनाये हुए चित्र आज भी उनके पास विद्यमान हैं। आज भी चित्र बनानेका उनका बचपनका वह स्वभाव क़ायम ही है। जब कभी खाली समय मिलता है, वे दो-चार चित्र बना डालते हैं।

चित्र कलाकी ओर उनकी विशेष रुचि देखकर उनके अभिभावकोंने उनको इस कार्यके लिए उत्साहित किया तथा चित्रकारीकी कुछ आवश्यक सामग्री भी जुटा दी। इसी समय गुजरातके प्रसिद्ध चित्रकार और गुजराती भाषाके कला विषयक प्रसिद्ध मासिक पत्र 'कुमार' के सम्पादक श्री रविशंकर रावलके साथ उनका परिचय हुआ। यह परिचय उनके कला-विषयक ज्ञानके लिए बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ। इसी समय सोमालाल भाई मैट्रिक्युलेशन परीक्षा पास करके अहमदाबादके गुजरात-कालेजमें दाखिल हो गये। कालेजमें भी इनको चित्र बनानेकी ही धुन रहती थी। परीक्षामें पहली रात्रिको भी उनको चित्र बनाते हुए देखकर इनके मित्र बहुत विस्मित होते थे। रात्रिके शान्त वातावरणमें कार्य करना उनको बहुत पसन्द है। रात्रिको बारीक रेखाओंके द्वारा चित्रांकन करनेमें ही उनकी आँखें कमज़ोर हो गई हैं।

प्रीवियमके बाद उन्होंने कालेजको छोड़ दिया और चित्र-कलाके लिए छात्रवृत्ति प्राप्त करके बम्बईके जे० जे० स्कूल आफ आर्टमें अध्ययन करना प्रारंभ किया। वहाँपर रहकर थोड़े समयमें ही उन्होंने विशेष उन्नति कर ली, और वहाँकी कला-शालाके प्रिन्सिपल श्री० सालोमनके प्रिय शिष्योंमें से हो गये। परन्तु सोमालाल भाईको इस कला-शालाका वातावरण जड़ और प्रेरणाशून्य प्रतीत हुआ। शालाके अन्दर रहते हुए तो वे वहाँकी पद्धतिके अनुसार ही काम करते थे, परन्तु घरपर आकर वे अपनी कल्पनाकी तरंगोंमें स्वतन्त्र विहार करते और चित्र बनाते थे। अपने इस निजी समयमें ही इन्होंने विशेष प्रयत्न करके तथा भारतके प्रख्यात कलाकारोंके चित्रोंसे प्रेरणा प्राप्त करके, अपनी कलाको विकसित किया। इन्हीं चित्रोंपर बम्बईकी नवम गुजराती साहित्य परिषद्की कला-प्रदर्शिनीकी ओरसे सोमालाल भाईको एक स्वर्णपदक प्राप्त हुआ था।

धीरे धीरे भारतीय कलाका अध्ययन करनेकी उनकी इच्छा बलवान् होती गई और उन्होंने शान्तिनिकेतन जानेका विचार किया। संयोगवश इसी समयमें प्रसिद्ध चित्रशिल्पी श्री प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय बड़ोदेके 'कला भवन' में चित्र-कलाके अध्यापक बनकर आये। सोमालाल भाई उन्हींके विद्यार्थी बन गये और चित्र-कलाकी शिक्षा प्राप्त करने लगे। इसी प्रकारके एक-दो और विद्यार्थियोंके मिल जानेसे प्रमोद बाबूको भी बहुत आनन्द हुआ, परन्तु दो सालके उपरान्त प्रमोद बाबू बड़ोदा छोड़कर बंगाल चले गये; इस कारण सोमालाल भाईको बड़ोदा छोड़ना पड़ा। कला-भवनको छोड़कर वे कलकत्तेकी प्राच्य कला-शाला

मीरा बाई] [चित्रकार, श्री सोमालाल शाह

(ओरियेन्टल स्कूल आफ आर्ट) में प्रविष्ट हो गये, और वहाँपर प्राच्य कलाके आचार्य श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री गगनेन्द्रनाथ ठाकुर तथा क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार आदिकी देख-रेखमें भारतीय कलाका अध्ययन करने लगे।

वहाँपर भी वे अपने अध्यापकोंके प्रेमपात्र बन गये थे। प्राच्य कला-शालाकी प्रदर्शनीमें सोमालाल भाईके कतिपय चित्र रखे गये थे, जिनकी अच्छी प्रशंसा हुई थी। सोमालालके चित्र 'नवचेतन', 'कुमार' आदि मासिक पत्रोंमें छपते रहते हैं, और उनकी बदौलत वे खूब मशहूर भी हुए हैं। संप्रति सोमालाल भाई भावनगर (कठियावाड़) के दक्षिणामूर्ति विद्यालयमें चित्र-कलाके अध्यापकका कार्य कर रहे हैं।

श्रीसोमालाल शाहका चित्र १२५ पृष्ठपर प्रकाशित है।

चित्र-शिल्पी हकीम मुहम्मद खां

श्रीयुत सुधीन्द्र वर्मा

बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें देशके आर्ट-स्कूलोंमें जो शिक्षा दी जाती थी, वह यूरोपियन चित्रण-कलाका अनुकरण-मात्र थी। उस समय भारतीय चित्रकार जो चित्र बनाते थे, वे अधिकतर प्राणहीन होते थे, अथवा उनकी भारतीय आकृतियोंमें विलायती आत्मा हुआ करती थी। चित्र-कलामें विशुद्ध भारतीय शैली उत्पादनका श्रेय कलकत्ता-आर्ट-स्कूलके प्रिन्सिपल हावेल और सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री० अवनीन्द्रनाथ ठाकुरको है। मि० हावेलके चले जानेपर श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर कुछ दिन तक आर्ट-स्कूलके प्रिन्सिपल रहे थे। उनके समयमें कलकत्ता-आर्ट-स्कूलसे उनकी जो शिष्य-मंडली निकली थी, उसमें कई एक ऐसे प्रतिभाशाली चित्रकार निकले, जिन्होंने न केवल भारतवर्ष ही में, बल्कि देश-देशान्तरोंमें ख्याति प्राप्त की। ठाकुर महोदयकी इस प्रतिभाशाली शिष्य-मंडलीमें लखनऊके प्रसिद्ध चित्रकार हकीम मुहम्मद खां भी हैं।

शिल्पी हकीम मुहम्मद खां

हकीम मुहम्मद खांकी अपनी निजी शैली सी है। वे एक प्रकारसे सम्मिश्रित स्कूल (Eclectic School) के हैं। उन्होंने अपनी कलामें यूरोपियन वायुमंडल 'कलर-इफेक्ट' तथा 'वाश' (Colour-Effect or Wash); मुगल प्रतिकृति और रेखा सौक्षम्य तथा हिन्दू-भाव-व्यंजना और चित्रणादर्शका बड़ा सफलता-पूर्वक समावेश किया है।

हाकिम मुहम्मद खां जातिके अफरीदी पठान हैं, उनके प्रपितामह काबुलसे भारत आये थे। उनके पिता स्वर्गीय लाल मुहम्मद खां लखनऊकी म्यूनिसिपैलिटीमें कसर्वेन्सी विभागके प्रधान थे। हकीम साहबको बचपन ही से चित्र बनानेका शौक था। बहुत छोटी अवस्थासे ही उनमें यह प्रतिभा दृष्टिगोचर होने लगी थी। वे अपने पिताके रजिस्टरोंपर घोड़े, गाय आदि बनाया करते थे। स्कूलमें भर्ती होनेपर वे मास्टरोंके चेहरे बनाने लगे। उन्होंने एन्ट्रेन्स तक शिक्षा प्राप्त की थी, परन्तु इम्तिहान पास नहीं

केवल स्मृतिसे चित्रित किया हुआ हकीम साहबके पिताका चित्र जिसपर लन्दन-प्रदर्शनीसे पारितोषिक मिला था।

किया। वे क्रिकेटके अच्छे खिलाड़ी थे। सन् १९०७ में वे क्रिकेट-मैच खेलनेके लिए कलकत्ते गये थे। वहाँ वे एक दिन अजायबघर देखने गये थे। अजायबघरके बगलमें आर्ट-स्कूल है। वे आर्ट-स्कूल देखनेके लिए घुस पड़े। उसे देखकर उनके हृदयमें चित्र-कलाकी सुप्त भावनाएँ सजग हो उठीं। उन्होंने उसी क्षण आर्ट-स्कूलमें भर्ती होनेका निश्चय कर लिया।

आर्ट-स्कूलमें वे आरम्भिक क्लासमें भर्ती किये गये, परन्तु वे चित्र-कलामें पहले ही से अभ्यस्त थे, अतः उन्होंने डा० ठाकुर महाशयसे कहकर 'लाइफ-क्लास' से नीचेकी सब छोटी-मोटी परीक्षाएँ एक साथ दे डालीं। छै घंटेके पर्चे दो घंटेमें कर डाले! उनकी इस आश्चर्यजनक प्रतिभासे स्कूलके हेड-मास्टर श्री हरिनारायण तथा ठाकुर महोदय बहुत प्रसन्न हुए। हकीम महाशयपर ठाकुर महोदयका उस समयका प्रेम अब तक वैसा ही है और आज भी वे अपने 'हाकीम' को देखकर गद्गद् हो जाते हैं।

लाइफ क्लासमें कुछ दिन रहकर वे डा० ठाकुरके 'एडवांस्ड डिज़ाइन क्लास' में भर्ती हुए। वहाँ स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ गंगुली, श्री नन्दलाल वसु, श्री एस० एन० गुप्त, श्री असितकुमार हाल्दार, श्री शैलेन्द्रनाथ दे—जैसे प्रसिद्ध चित्रकार आपके सहाध्यायी थे। मुस्लिम संस्कृतिके अंतिम गढ़ अवधकी राजधानी लखनऊमें विदग्धमति तथा फ़ारसी-उर्दूके मर्मज्ञ पिताके साथ रहकर हकीमने मुग़ल-कला, लखनऊ और दिल्लीकी मुसव्विरी तथा आगरेकी कारु-कुशलताके जो तराने सुने थे, उन्होंने बचपनसे ही उन्हें अपना लिया था। एक बार मुग़ल-कलाको पुनरुज्जीवित कर देनेकी उन्हें बड़ी प्रबल लालसा थी, अतएव डा० ठाकुरके इस क्लासमें पहुँचते ही उन्होंने अपनी इस इच्छाको कार्यरूपमें परिणत करना प्रारम्भ कर दिया। मुग़ल-कालीन इतिहासके दृश्योंके चित्रणसे ही उन्होंने अपने इस नये जीवनका प्रारम्भ किया। डा० ठाकुर जैसे गुणग्राही गुरुकी देखरेखमें उन्होंने इस ओर भी उन्नति की, अतएव शीघ्र ही सन् १९०८ के प्रारम्भमें सरकार तथा 'ओरियन्टल सोसाइटी आफ इण्डियन आर्ट्स' ने उन्हें अलग-अलग छात्रवृत्तियाँ देकर सम्मानित किया। यह छात्रवृत्तियाँ उन्हें सन् १९१५ तक बराबर मिलती रहीं।

इन सब आशाजनक प्रोत्साहनोंसे उत्साहित होकर उसी साल उन्होंने अपने पहले चित्र 'नादिरशाहका आक्रमण' की रचना की। इस चित्रके प्रदर्शित किये जाते ही भारतीय ललित कलाओंके पारखी स्तम्भित हो गये। क्रूरताके मूर्तिमय अवतार और तलवारकी तीखी नोकपर विश्वकी विभूतियोंको बलि देनेवाले नादिरशाहका इतना भावपूर्ण, इतना स्वाभाविक चित्र तथा मुग़ल-कलाके प्रसिद्ध चित्रकारोंकी कुशलताके इतने निकट पहुँचानेवाली तसवीर अपने सामने देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उन्हें ज्ञात हुआ कि दैत्य बनाये बिना भी क्रूर तथा क्रोधी मनुष्यका चित्रण किया जा सकता है। हकीमका यह चित्र बंगालियोंके लिए बड़े आश्चर्यकी वस्तु हो उठी। 'माडर्न रिव्यू' जैसे प्रतिष्ठित अंग्रेज़ी पत्रने तो उसे छापा ही, श्री अरविन्द बाबूके 'युगान्तर' तकने उसकी प्रतिलिपिसे अपना कलेवर अलंकृत किया। अरविन्द बाबूने चित्र प्रकाशित करके ही सन्तोष नहीं कर लिया, अपितु कई कालममें उसकी समालोचना भी की। उन्होंने प्रसिद्ध यूरोपियन चित्रकार राफेलके जगद्विख्यात चित्र 'Learning and Sword' के साथ नवयुवक हकीमके इस चित्रकी तुलना की, और उसकी बेहद तारीफ़ की। उनके कथनानुसार राफेलके उपर्युक्त चित्रसे हकीमका यह चित्र किसी बातमें कम न था। हकीमसे उन्होंने बड़ी-बड़ी आशाएँ प्रकट कीं, तथा भविष्यवाणी की कि वे किसी दिन भारतके एक बड़े तथा प्रसिद्ध चित्रकार होंगे। हकीमका यह चित्र मि० ब्लंटने खरीद लिया।

मुग़ल-शैलीके चित्रणमें इतनी सफलता लाभ कर लेनेके बाद हकीमने हिन्दू-संस्कृतिके चित्रणकी ओर भी ध्यान दिया। उनका दूसरा प्रसिद्ध चित्र था—'रुक्मिणी-पत्र-प्रेषण'। इसकी भी बड़ी तारीफ़ हुई और वह अनेक पत्रोंमें प्रकाशित किया गया।

इन दोनों चित्रोंके सफल-प्रदर्शनके बाद यूरोप तथा हिन्दुस्तानकी प्रत्येक प्रदर्शिनीमें हकीमके चित्रोंको निमन्त्रण दिया जाने लगा। प्रयागकी प्रसिद्ध प्रदर्शिनीमें तो उनके कई चित्रोंने बहुत ख्याति प्राप्त की—'शीतकाल', 'बीरबलकी पुत्री' तथा 'अकबर' के चित्र देख-देखकर लोग दंग रह जाते थे। श्रीयुत बद्रीनाथजी भट्टका तो यह कथन है कि उस सारे चित्र-संग्रहमें उन्होंने हकीमके 'शीतकाल'को ही एक प्रदर्शन-योग्य उत्तम चित्र समझा था। महाराज टिपराने हकीमके वे सब चित्र खरीद लिये। महाराज बर्दवानने भी हकीमके चित्रोंसे मुग्ध होकर उन्हें अपने महलके लिए चित्र बनानेका काम दिया। हज़ारों रुपयेकी तसवीरें हकीम साहबने महाराजा साहबके लिए बना डालीं जिनमें से 'ताजमहलका स्वप्न', 'हुमायूँका पलायन', 'सिकन्दरा-निर्माण', 'समन्दबुर्जमें जहाँगीर और नूरजहाँका जल-विहार दर्शन' आदि चित्र आज दिन भी भारतीय चित्र-कलाके तथा मुग़ल-शैलीके वर्तमान रूपान्तरके प्रसिद्ध उदाहरणोंमें गिने जाते हैं। इन मानव-चित्रोंके अतिरिक्त इसी समय हकीमने ईरानी कलाके आचार्य उस्ताद बिज़्ज़ादकी शैलीका अनुकरण करके नाचते हुए मोरका जो चित्र बनाया था, उसने महाराजा बर्दवानको एक बार ही मन्त्रमुग्ध कर डाला। अपने घरके पालतू मोरकी ऐसी सुन्दर 'लाइफ स्टडी' देखकर उन्होंने हकीमके चित्र-कौशलकी मुक्तकठंसे प्रशंसा की।

महाराजके इन निजी कामोंको करते हुए भी हकीम साहबने अपने स्वतन्त्र कार्यसे हाथ नहीं हटाया, वे बराबर उत्तम चित्रोंकी रचना करके प्रदर्शनोंमें सम्मिलित होते रहे। 'गुलाबकी कली' (Rose-bud) नामक उनकी प्रसिद्ध रचना इसी कालकी है। इस सुन्दर चित्रमें उन्होंने एक भारतीय ललनाके लोकोत्तर सौन्दर्य और गुलाबकी अधखिली कलीकी कवित्वमय तुलना की थी। यह तुलना ऐसी मनोमोहक तथा आकर्षक थी कि उसको देखते ही आर्ट-स्कूलके प्रिंसिपल मि० पर्सी ब्राउन जैसे कलामर्मज्ञ भी मोहित हो गये थे। मि० ब्राउनने उसे खरीद लिया था किन्तु जब यही रचना प्रदर्शनीमें रखी जाकर लें० गवर्नर बंगालको दिखाई गई; तो वे उससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मि० ब्राउनसे उसे स्वयं खरीद लिया।

'मुहम्मदशाह रंगीलेका दरबार' नामक ऐतिहासिक तसवीर भी हकीमने इसी वर्ष बनाकर तैयार की थी। उसमें उन्होंने दीवाने-खासमें हरमकी सुन्दरियोंसे घिरे हुए मुहम्मद शाह रंगीलेका दरबार चित्रितकर यह दिखलाया था कि किस प्रकार उस बेफ़िक्र मुग़ल सम्राट्ने नादिरशाहके युद्धके पैग़ाम को, उसके लानेवाले दूतके सामने ही बत्ती बनाकर, शराबके प्यालेमें यह कहकर डुबो दिया था कि 'ईं दफ्तरे-बेमानी, ग़र्के मयेनाब औला' (इस व्यर्थके पत्र-व्यवहारको मयकी सुराहीमें डुबो देना ही अच्छा है)। विलासी सम्राट्की लापरवाही चित्रकारने ऐसी सुन्दरतासे प्रदर्शित की थी कि उसे देखते ही दर्शक स्तम्भित हो जाते थे। इस तसवीरको बंगाल गवर्मेन्टके चीफ़ सेक्रेटरी सर जेम्स डनलप स्मिथने खरीद लिया।

रूपहले तथा काले, केवल दो रंगोंके संयोगसे उत्पन्न हुई हकीमकी प्रसिद्ध तसवीर 'सिकन्दर जन्म' ने खूब नाम कमाया। उसीके साथकी बनी हुई 'लैलामजनूं' की तसवीरने तो ग़ज़ब ही कर दिया। वह, मि० पर्सी ब्राउन द्वारा लन्दनकी प्रदर्शनीमें भेजी जाकर, इतनी प्रसिद्ध हुई कि अन्तमें उसे सरकारने लन्दनकी प्रसिद्ध चित्रशाला, ब्रिटिश गैलरी आफ़ आर्ट्सने स्थान देकर सम्मानित किया। आज भी वह वहाँ प्रदर्शित होकर इस प्रसिद्ध भारतीय चित्रकारकी कला-निपुणताकी घोषणा कर रही है।

इसके बाद तो हकीमके चित्रोंके लिए भारतवर्षके बड़े-बड़े लोगोंमें होड़-सी शुरू हो गई। चित्र पूरा होते ही लोग उसके पानेके लिए प्रयत्न करने लगते। 'बन्दी दारा' इसी कालमें चित्रित होकर महाराजा दीघापतिया द्वारा खरीदी गई। निराशा और मृत्युका जैसा भयावह साम्राज्य, विपत्तिका जैसा वायुमंडल इस चित्रमें हकीमने प्रदर्शित किया है, वैसा बहुत कम मुग़ल और प्राचीन हिन्दू चित्रकार कर सके हैं।

मरणोन्मुख दाराकी बेबसी, अकृतज्ञ प्रजाका क्रूर उपहास, बूढ़े हाथीका अनुकम्पनीय दैन्य तथा चित्रका कठोर आतपोत्तप्त दृश्य एकाएक हृदयपर प्रबल आघात करके करुणाके अन्तर्हित स्रोतका द्वार खोल देते हैं। हृदयका आवेग अश्रुधाराओंमें होकर बह निकलता है।

इसी समय हकीमने मौलाना रूमके मुसद्दसका पहला शेर चित्रित किया। उसे तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिंजने खरीदकर अपनी गुणग्राहकताका परिचय दिया।

हकीम साहबके गुरु डाक्टर टैगोरने भी समय समयपर हकीमकी कृतियोंको खरीदकर उनका उत्साह बढ़ाया।

सन् १९१५ तक हकीम आर्ट-स्कूलमें रहे। कोर्स समाप्त हो जानेपर भी उन्हें सरकार और सोसाइटीकी दी हुई छात्रवृत्ति मिलती रही। अतएव वे स्कूलमें रहकर ही चित्र-कलाकी बारीकियोंका अध्ययन करते रहे। इस अध्ययनका परिणाम यह हुआ कि हकीमने भारतीय चित्र-कलामें एक नई ही शैलीका आविर्भाव कर डाला। यह शैली उनकी अपनी है। मुग़ल-क़लमकी उसमें प्रधानता होते हुए भी वह नहीं है। इस लेखके प्रारम्भमें कही हुई विशेषताओंके कारण ही वह नवीन और लोकप्रिय हुई है।

हकीमकी इस शैलीका जन्म कुछ तो उनके अपने व्यक्तित्वमें ही हुआ, किन्तु उसके उद्भवका कुछ श्रेय उनके आर्ट-स्कूलके वायुमंडलको प्राप्त है। उस समय स्कूलमें नवजात बंगाली शैलीका ही साम्राज्य था। हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू गाथाएँ ही वहाँके विद्यार्थियोंकी प्रधान आलेख्य वस्तु थीं, अतः हकीमपर भी उनका प्रभाव पड़े बिना न रहा। हिन्दू दन्त-कथाओंकी ओर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हुई, और तबसे वे हिन्दू संस्कृतिके चित्रणमें बहुत कुछ दिलचस्पी लेने लगे। हिन्दी पत्रोंके सम्पर्कसे उनकी यह प्रवृत्ति और भी जोर पकड़ती गई। और अब वे रामायण और महाभारत तथा हिन्दू देवी-देवताओं और तत्सम्बन्धिनी गाथाओंके चित्रणमें इतने प्रवीण हो गये हैं कि बहुत कम हिन्दू चित्रकार उनका इस विषयमें मुक़ाबला कर सकते हैं। हकीमकी मुग़ल-क़लम की ओर स्वाभाविक अभिरुचिने भी स्कूलमें जाकर नवीन रूप धारण किया। डाक्टर ठाकुरके प्रोत्साहनसे हकीमने उस ओर भी अपना व्यक्तित्व प्रदर्शित किया। आधुनिक विचारोंके शिकंजेमें कसकर मुग़ल-क़लमकी रेखाएँ हकीमकी अपनी हो गईं। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ी ढंगके चित्र बनानेमें भी हकीमने आर्ट-स्कूलके अध्यापक मि० गंगुलीसे निजी तौरपर शिक्षा ग्रहण की। इस प्रकार एक ही जगह रहकर उन्होंने, हिन्दू, मुग़ल तथा पाश्चात्य शैलियोंका विभिन्न दृष्टिकोणोंसे अध्ययन किया। और उनके सुन्दरतम गुणोंके सम्मिश्रणसे एक नई ही चित्रण-शैलीका आविष्कार कर डाला। हिन्दू कथा-प्रसंगोंके पर्याप्त ज्ञान, आकृति-चित्रणके सौन्दर्य, रंगोंके सम्मिश्रण और भावोंकी अभिव्यक्तिके लोकोत्तर चित्रण-द्वारा उन्होंने उसपर अपनी छाप बैठा दी है। हार्दिक तृप्ति उनके चित्रोंकी विशेषता है। अंगोंकी बनावटमें अनुपातका ध्यान रखना उनका खास गुण है। डाक्टर ठाकुरने हकीमकी इस वैयक्तिक प्रवृत्तिको खूब पहचान लिया था, अतः उन्होंने उन्हें अपने निर्धारित मार्गपर चलने दिया। बंगाल-शैलीका अनुसरण करनेके लिए उन्होंने उन्हें मजबूर नहीं किया। यही कारण है कि ठाकुर महाशयके शिष्य होनेपर भी हकीमके चित्रोंमें बंगालीपनकी बू नहीं रहती। वे ठेठ भारतीय होते हैं—प्रान्तीय नहीं।

आर्ट-स्कूलकी शिक्षासे निवृत्त होनेके बाद हकीमका इरादा कलकत्ता रहनेका ही था, किन्तु भाईकी अचानक बीमारी और अन्ततः मृत्युने उन्हें लखनऊ रहनेके लिए मजबूर किया। एक साल तक शोकके कारण हकीमका कला-प्रेम धीमा पड़ गया और वे चित्र-कलाके क्षेत्रसे दूर से हट गये। इसके बाद चार या पाँच वर्ष तक अपने लखनऊ प्रसिद्ध चित्रकार G. W. Lorrie' के यहाँ काम किया। उसके बाद श्री दुलारेलाल भार्गव, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, श्रीयुत गणेशशंकर विद्यार्थी और राय कृष्णदासके आग्रह और अनुरोधसे उन्होंने 'माधुरी'के चित्र-कला-विभागमें कार्य करना स्वीकार कर लिया। तबसे वे अब तक प० दुलारेलालजीको गंगा पुस्तक-मालामें ही बराबर कार्य करते आ रहे हैं।

मायावती (हिमालय) का अद्वैताश्रम] [चित्रकार—श्री प्रमोदकुमार चटर्जी

शिल्पी श्री प्रमोदकुमार चटर्जी

श्री प्रमोदकुमार चटर्जी उन नवयुवक शिल्पियोंमें हैं, जिन्होंने बंगालमें भारतीय कलाके पुनरुत्थानके नवीन आन्दोलनके विरुद्ध आरम्भमें बगावत की थी।

उन्होंने कलकत्तेके सरकारी आर्ट-स्कूलमें शिक्षा प्राप्त करके आयल पेंटिंग तस्वीरें बनानी शुरू कीं और शीघ्र ही उसमें ऐसा कमाल हासिल किया कि वे अपने चित्रोंमें तस्वीर उतारनेवालेकी सूरत-शक्ल ही नहीं, बल्कि उसकी आन्तरिक विशेषताओं और चरित्रको भी प्रदर्शित करने लगे। उनकी निरीक्षण शक्ति बहुत तेज़ है।

कुछ दिन बाद कुछ घरेलू घटनाओंके कारण वे एकाएक हिमालय चले गये और वहाँ बहुत दिनोंतक सन्यासियोंकी तरह घूमते रहे। इस यात्रामें उन्होंने हिमालयके प्रायः समस्त धार्मिक स्थानोंकी यहाँ तक कि कैलाश, और मानसरोवरकी भी यात्रा की। रास्तेमें मन बहलावके लिए वे हिमालयके सुरम्य प्राकृतिक दृश्यों और वहाँके अधिवासियोंके चित्र बनाया करते थे। उनके हिमालयके चित्रोंमें से 'आल्मोड़ा', 'हिमालयका एक दृश्य' आदि चित्र सन् १९२९ के 'विशाल-भारत' में छप चुके हैं।

अपनी इस यात्रामें उन्होंने तिब्बती कलाका बहुत कुछ निरीक्षण किया। फल यह हुआ कि बादमें उनकी कलामें तिब्बती कलाका काफी प्रभाव पड़ा। कुछ दिन हिमालयमें घूमनेके बाद वे पुनः घर लौट आये और अपने काममें लग गये। अभी तक वे कलाकी नवीन शैलीके विरोधी थे; मगर अब वे इस नवीन शैलीकी प्रतिपोषक हो गये। अब उन्होंने नये ढगकी तसवीरें बनानी शुरू कीं। उनका बनाया हुआ 'चन्द्रशेखर' नामक चित्र भारतकी आधुनिक कलाका उत्कृष्ट उदाहरण है। यह चित्र आजकल मद्रासके व्लवेद्रस्की म्यूज़ियममें है। उन्होंने भारतकी फिलासफी, भारतकी पुरानी कथाएँ तथा ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तियोंको अपनी कल्पना और कलाके सहारे चित्र-पटपर उतारकर रख दिया है। उनके प्रधान चित्रोंमें धार्मिक और

हिमालयमें आसकोटके मार्गमें एक मन्दिर। चित्रकार—श्री प्रमोदकुमार चटर्जी

दार्शनिक प्रभाव विशेषरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। उनके चित्रोंको देखनेसे यह मालूम होता है कि भारतके

दर्शनशास्त्र और पौराणिक इतिहासके वे अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने अपने 'पुरुष और प्रकृति' नामक

हिमालयकी एक चढ़ाई जहां, अबरक मिश्रित पत्थर हैं

हिमालयका एक झरना

हिमालयके खेला नामक स्थानके मजदूर

चित्रमें समूची सांख्य फिलासफीको एक चित्रके रूपमें उपस्थित कर दिया है! भारतने जगतके महान् तत्त्वोंको सांकेतिक चिह्नों (Symbols) के रूपमें प्रकट किया है, अतः जो कोई भी भारतकी अन्तरात्माको जानना चाहता हो, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह भारतके इन सांकेतिक चिह्नोंको भलीभांति जाने। प्रमोद बाबूकी यही विशेषता है। उनके अधिकांश चित्र सांकेतिक या लाक्षणिक (Symbolic) हैं। प्रमोद बाबूके पास स्वास्थ्यकी कमी नहीं मालूम होती क्योंकि उनकी अंकित आकृतियोंके शरीर सुन्दर, सुडौल और गठीले होते हैं। उनके अनेकों चित्र—जैसे सम्राट् अशोक विदुर और कृष्ण, अनारकली, हलायुध इत्यादि—'विशाल-भारत'में प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रमोद बाबू चार वर्ष तक मछलीपट्टममें अन्ध्र जातीय कलाशालामें भी रहे हैं। वहां उन्होंने कई एक योग्य शिष्य बनाये थे। मछलीपट्टमके बाद वे बड़ोदा राज्यमें नौकर हो गये, और वहां कुछ दिन तक काम करते रहे। आजकल वे कलकत्तेमें नं० ११ देवेन सेन लेन पोस्ट० कसबामें रहते हैं। वे बड़े भावुक स्वभावके, सीधे-सरल आदमी हैं। साथ ही वे बड़े निर्भीक और स्पष्ट वक्ता भी हैं।

कार्टून या व्यंग्य-चित्र

श्रीयुत हरिपद राय

जिसे हम हास्य कहते हैं, वह इतनी स्वाभाविक चीज़ है कि इस सम्बन्धमें कोई विशेष खोज या गंभीर आलोचना भी हो सकती है, इस बातको सोचते ही हँसी रोकना कठिन हो जाता है। परन्तु मनुष्यकी सनकका अन्त नहीं। बस, सनक सवार होनी चाहिए। कुछ लोगोंकी तबीयत चली, और वे लगे गंभीरताके साथ इस विषयकी खोज और आलोचना करने। कुछ दिन पहले तक हम समझते थे कि हँसी मनुष्यकी निजी सम्पत्ति है, उसपर और किसीका अधिकार नहीं; मगर वे दिन अब नहीं रहे; अन्वेषकोंने पता लगाकर घोषणा कर दी कि कुत्ता, बिल्ली, बन्दर आदि कुछ मनुष्येतर प्राणी भी हँसा करते हैं। इस बातको सुनकर स्वाभिमानी मनुष्य-मात्रकी रही-सही हँसी सूख जानी चाहिए; मगर यहाँ तो—"बन्दर भी कहीं हँसते हैं"—यह सोचकर बहुतसे हँस पड़े!

पहले यह देखना चाहिए कि हँसीके साधारण उपदान (सामान) क्या हैं, यानी हँसी आती किस चीज़से है? यदि कोई ऐसी आकस्मिक घटना हो, जिससे मनको वेदनाहीन आश्चर्य हो, जिससे तबीयत फड़क उठे, तो उसमें हँसी आ सकती है। जैसे, मान लो, आकस्मात् कोई ऐसा मित्र सामने आ खड़ा हुआ, जिसके आनेकी कोई सम्भावना नहीं थी; या सहसा किसीने मिठाईकी रकेबी सामने रख दी। परन्तु यदि अचानक कोई महाजन रुपये माँगने आ खड़ा हो या सहसा कोई सामने बिल रख दे, तो शायद हँसी न आवेगी। अगर कोई हँसे, तो समझना चाहिए कि उस तकाज़े या बिलके पीछे कोई 'वेदनाहीन आश्चर्य' छिपा हुआ है।

वैज्ञानिकोंका यह स्वभाव है कि वे ऊपरी समतामें विषमता और ऊपरी विषमतामें समता दिखाया करते हैं। यहाँ भी वही बात है। हास्यकी आपात समतामें कारण-भेद दिखाकर इस विषयको अनेक श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है। परिचित मुख देखकर या मिठाई देखकर हँसी आना आदिम यानी निकृष्टतम हँसी है। क्योंकि दाँत निकलनेसे पहले बच्चे तथा कुत्ते बन्दर आदि मनुष्येतर पशु भी उपर्युक्त कारणसे हँसा करते हैं। विकृत हाव-भाव देखकर दाँतवाले बच्चों तथा बुद्धिमान बंदर और कुत्तोंको हँसी आती है। इस तरह सात-आठ दर्जे ऊपर चढ़नेसे सभ्य-संसारके पूरी उमरवाले आदमियोंकी हँसी तक पहुँचा जा सकता है।

अब यह देखना चाहिए कि सभ्य-संसारके पूर्णवयस्क मनुष्यकी हँसीके उपदान क्या हैं?—मगर इससे कोई यह न समझ ले कि सभ्य-संसारमें निम्नश्रेणीकी हँसी चलती ही नहीं; क्योंकि यदि रैमज़े मैकडोनल्डको गुदगुदाया जाय, तो वे हँसेंगे; सहसा कोई खानेकी चीज़ सामने रख दो, तो लार्ड किचनरके चेहरेपर भी हँसीकी झलक दिखाई देती थी, यहाँ तक कि अचानक किसी मित्रके आ धमकनेपर जनरल डायर भी मुसकरा देते थे,—ऐसा अनुमान किया जाय, तो कोई ग़लती नहीं होगी।

विकृत हाव-भाव या बार-बार एक ही बातका दुहराना हँसीका एक अंग है। दो-एक शताब्दि पहले तक विदूषक और भाँड़ आदिके द्वारा हास्य उत्पन्न करनेकी कोशिश की जाती थी; परन्तु अब बीसवीं सदीमें उनका चलना कठिन हो गया है। अभिनयमें उक्त चरित्रोंको अंग्रेज़ीमें fool कहा जाता था। अब उस शब्दका वैसा प्रयोग नहीं रहा, अब तो साधारणतः उसका प्रयोग तिरस्कारके अर्थमें होता है।

वर्तमान सभ्यता बुद्धि और युक्तिपर प्रतिष्ठित है। प्रत्यक्ष अनुभूतिको अलग रखकर कुछ भी नहीं हो सकता, और साथ ही प्रत्यक्ष अनुभूति ही पर्याप्त हो, सो बात भी नहीं। उसकी व्यंजना (Suggestiveness) से ही वांछित रस व्यक्त होता है। पहले नाट्य-कलामें फूट-फूटकर रोना ही रुलानेका मुख्य साधन था, इसी तरह हँसानेके लिए हँसकर या उछल-कूदकर हास्यरसकी आमदनी की जाती थी; मगर अब वह बात गई, अब तो व्यंजना ही रसका मुख्य आधार है, बिना उसके समझदार आदमीके दिलमें गुदगुदी पैदा नहीं होती।

इस युगमें जो चीज़ हास्यरसकी द्योतक समझी जाती है, ऊपरी दृष्टिसे उसमें हँसने-योग्य कुछ नहीं होता, किन्तु उसके भीतर कौशलसे ऐसे विषयकी स्पष्ट अवतारणा की जाती है, जो सहसा ऊपरी पर्देको हटाकर अभीष्ट विषयका, गुदगुदी पैदा करनेवाला, असर मनपर डालता है। उदाहरणार्थ प्रधान मन्त्री रैमजे मैकडानल्ड और महात्मा गांधी-सम्बन्धी प्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रको ही लीजिए—इसमें एक तरफ प्रधान मन्त्री हैं और दूसरी तरफ महात्माजी। दोनोंके हाथ पीछेसे बँधे हैं। दोनोंके बीच एक जंज़ीर दीख पड़ती है। ऊपरी दृष्टिसे यह चित्र हँसने लायक मसाला क्या देता है? किसी बालकको यह चित्र दिखाइये। उसने अगर दोनोंको पहचान लिया, तो वह बहुत खुश होगा। यह हँसी पहले दर्जेकी है, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है। बीचकी जंजीरको वह पहचान तो लेगा, इसमें सन्देह नहीं, पर इससे क्या? उस बालकके लिए प्रत्यक्ष दृश्य ही काफी है, आगे बढ़नेसे वह असमर्थ है। इसी चित्रको यदि किसी अशिक्षित आदमीके सामने रखा जाय, तो वह भी उतना ही समझेगा, जितना कि बालकने समझा है, उससे अधिक रस उसे नहीं मिल सकता। मगर एक शिक्षित और समझदार आदमी जब सोचता है कि—क़ैदी कौन है?—तो चित्रके पीछे जो समस्यामूलक व्यंजना (जिसे हम गूढ़ अर्थ कह सकते हैं) है, उसके फड़कानेवाले स्पर्शसे मन झूमने लगता है। व्यंजना जितनी ही व्यापक होती है, आनन्द उतना ही विस्तृत और स्थायी होता है।

क़ैदी कौन है? मैकडोनल्ड या महात्मा गांधी

साधारणतः जिनसे हमारा कोई ममत्व नहीं, ऐसे आदमीकी खिल्ली उड़ते (discomfiture) देखकर हम खूब हँसते हैं। मनोविज्ञानके जानकार इस हँसीको पूर्णवयस्ककी हँसी या (adult laughter) कहते हैं। व्यंग्य-चित्रका विषय भी मुख्यतः यही है, पर जीवनके प्रसार और व्यापकता या बाहुल्यताके साथ-साथ यह रस धारा अनेक वस्तुओं और अनेक विषयोंके भीतरसे प्रवाहित होकर समस्त जाति या समाजके जीवनको चेता देती है। अजन्ताके चित्रोंमें बीच-बीचमें कहीं-कहीं इस रसका आभास पाया जाता है। उदाहरणार्थ, फ़ारसके शराबीके नाचका उल्लेख किया जा सकता है। हम उस युगसे इतने दूर हैं कि उस चित्रके ऊपरी हास्यरसकी अवतारणाके पीछे किसी विषयकी व्यंजना है या नहीं हमें नहीं मालूम; परन्तु फिर भी कलाकी कुशलता हमारे मनको हरण करती है—उसे देखते ही हँसी आती है। आज हज़ारों वर्ष बाद हमारे जीवनमें अनेक वैचित्र्य और आघात होते रहनेपर भी जब हम अपने देशके व्यंग्य-चित्र-कलाकी

यह हालत देखते हैं, तो सचमुच बड़ा दुःख होता है। जब हम देखते हैं कि जिन्हें चित्र-सम्बन्धी कुछ भी ज्ञान नहीं है, वे भी व्यंग्य-चित्रकी सहायतासे हास्यरस दरसानेकी कोशिश कर रहे हैं, तो उनपर तरस आता है। शायद व्यंग्य-चित्र और खासकर Caricature (ऐसे कार्टून जिनमें नाक-कान आदि कोई अंग विकृत कर दिये जाते हैं) को देखकर वे समझते होंगे कि इसमें तो चित्र-सम्बन्धी ज्ञान न होनेपर भी काम चल सकता है ! पर वास्तवमें यह बात नहीं, यहाँपर वे ज़बरदस्त धोखा खाते हैं।

व्यंग्य-चित्र या अन्य किसी भी प्रकारके चित्रके विषयमें चर्चा करनेसे पहले इस बातका ध्यान रखना होगा कि मनका जो विशेष भाव है, वह रेखाओंमें प्रकट हुआ या नहीं। मनका भाव रेखाओं-द्वारा तभी व्यक्त किया जा सकता है ; जब रेखा खींचनेका कार्य दवा हुआ हो, अर्थात् कमसे कम रेखाओंमें अधिकसे अधिक रस लानेकी कोशिश की जाय। जब हम ऊपरी दृष्टिसे चित्रमें चित्रकारकी स्वच्छन्द रेखा-रचना (आसानीसे खींची गई रेखाओंकी सजावट) देखते हैं, तो मन बड़ी आसानीसे उसके भीतर प्रवेश करता है। यही कारण है कि उसमें हमें अधिकसे अधिक रस मिलता है। संगीतका दृष्टान्त देनेसे शायद यह बात जल्दी समझमें आ जायगी। संगीतके भीतरसे हम अपने मनका भाव श्रोताओंमें फैलाते हैं, परन्तु यदि गानेवालेको सुरका ज्ञान न हो, यदि पद-पदपर उसका ताल भंग हो जाय, तो उसके हृदयका भाव चाहे कितना ही गंभीर क्यों न हो, उसकी बात किसीके हृदय तक नहीं पहुँच सकती। पहले ताल-स्वरका ज्ञान चाहिए, इस बातपर ध्यान तो पीछे जायगा कि वह भजन गा रहा है या गज़ल चित्रके विषयमें भी यही बात है। पहले रेखा-ज्ञान, वस्तु-परिचय और वर्ण-बोध होना चाहिए, पीछे इस बातपर विचार होगा कि वह किस विषयका कैसा चित्र बना रहा है।

Caricature (विकृत चित्र) बड़ी कठिन चीज़ है, उसपर अधिकार प्राप्त करनेके लिए विशेष अध्ययनकी ज़रूरत है, क्योंकि सिर्फ रेखा ज्ञान ही उसके लिए काफी नहीं है। जब तक आलेख्य चित्र (portrait—मनुष्य आदिकी स्वाभाविक प्रतिमूर्ति अंकित करना) के विषयमें गहरा ज्ञान न हो जाय, तब तक Caricature (विकृत चित्र) बनानेको तैयार होना अपनी हँसी उड़वाना है। इसमें सन्देह नहीं कि मुख-विकृति एक तरहका हास्य है, परन्तु सभ्य-संसारमें उसका प्रचलन किसी ज़मानेमें नहीं था।

मेरी समझसे 'कार्टून' और 'केरीकेचर'के विषयमें मामूली तौरसे एक (Principle) आदर्श है, जिसे मैं यहाँ समझानेकी कोशिश करूँगा। संसारके अन्यान्य सभ्य देशोंके साथ तुलना करनेपर दोनोंके व्यंग्य-चित्रोंमें एक खास अन्तरपर हमारी दृष्टि पड़ती है, वह है विषय चुननेकी दीनता। हमारे देशमें चादर, चोटी, दाढ़ी, जूड़ा, कवि, डाक्टर आदि कुछ बँधे हुए विषय हैं, उनके बिना व्यंग्य-चित्र होते ही नहीं ! परन्तु और-और देशोंमें विषयके लिए कोई भी बाधा नहीं है। सभी अवस्थाओं, सभी बातों, सभी विषयोंपर व्यंग-चित्र बनाये जाते हैं। इस बारेमें बहुधा लोग यह आपत्ति करते हैं कि इसकी जड़में उनके जीवनकी व्यापकता मौजूद है ; हम बँधे कठघरेमें जीवन बिताते हैं, इसलिए हमारा हास्य भी बँधा हुआ होता है। दर-असल, क्या यह बात सच है ? बंधन तो सिर्फ हमारे जीवन यापनकी प्रणाली और सामाजिक विषयोंमें है, परन्तु इससे क्या ? क्या हमारा अर्थ और राष्ट्र आदि क्षेत्रोंमें संसारकी प्रत्येक जातिसे घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है ? और-और देशोंमें जीवनके जिन क्षेत्रोंसे इस सुरुचिपूर्ण हास्यरसकी उत्पत्ति हो रही है, उन क्षेत्रोंका क्या यहाँ अभाव है ? हरगिज़ नहीं। अभाव तो इस बातका है कि हममें फवारा बनानेकी शक्ति नहीं है।

कुछ दिन पहले तक लोगोंकी यह धारणा थी कि पानी जो कुछ है, पृथ्वीके ऊपर ही है, इसलिए जहाँ पानी है, वहाँकी ज़मीन उपजाऊ है और जहाँ पानी नहीं है, वह ऊसर है ; मगर अब यह बात नहीं रही। अब हमें मालूम हो

गया है कि ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ पानी न हो। बस फ़रक इतना है कि कहीं ऊपर है तो कहीं नीचे। यदि हमें पानी निकालना मालूम हो, तो हमें रेगिस्तानमें भी पानी मिल सकता है, और कोशिश करें, तो वहाँका ऊसरपन मिटाकर उसे, उपजाऊ बना सकते हैं।

कार्टूनिस्ट (व्यंग्य-चित्रकार) जानता है कि अत्यन्त गम्भीर विषयोंमें भी ज़रा-सी कोई त्रुटि हो जाय, तो वह चीज़ अत्यन्त हास्यकर हो जाती है।

कैरिकेचरका बनाना इसलिए और भी कठिन है कि उसमें साधारण चित्र (Portrait) के ज्ञानकी जितनी ज़रूरत है, उतनी ही प्रकृति और चरित्र-सम्बन्धी ज्ञानकी भी ज़रूरत है। प्रत्येक मनुष्यके नाक, मुँह आदि अंग होते हैं; मगर हमें एक मनुष्यके चेहरेसे दूसरेके मिलते-जुलते चेहरेकी नाककी अपेक्षा बेमेलकी सूरतोंका अधिक ज्ञान है। ज़रा-ज़रासी असामानतासे इस अनमेलकी सृष्टि हुई है। कैरिकेचर बनाते हुए यदि कहीं ठीक-ठीक आकार बन गया, तो वह साधारण चित्र (Portrait) हो जाता है, और अगर हम उस साधारण चित्र (Portrait) को नष्ट करते हैं, तो वह कैरिकेचर नहीं रह जाता। अगर तसवीर देखकर कोई उसे पहचान नहीं सका, तो वह कैरिकेचर नहीं कहा जा सकता। यहाँपर भी व्यंग्य चित्र (Cartoon) के नियमोंका पालन किया जाना चाहिए। हरएक आदमीने आकृति या प्रकृतिमें हास्यरसका मसाला संग्रह कर रखा है। उस ऊपरी गंभीरता और कठोर मनुष्यताकी आड़में एक ढके हुए हास्यकी धारा बह रही है। साधारण दृष्टिसे ही देखने-मात्रसे यह आँखोंके सामने आ जाता है। चित्रकारको चाहिए कि उसने जो देखा है, उसे दूसरोंको दिखावे। इसके लिए उसे निर्दोष आकृति और प्रकृतिके ज्ञानकी ज़रूरत है। जो मौजूद है, उसे होशियारीसे वहाँ ला देना चाहिए। इस प्रकार बनाये हुए चित्र सत्य होनेसे ही स्वाभाविक मालूम होते हैं, मगर इसमें एक बात और भी है, वह यह कि सभी आविष्कार किये हुए सत्यको स्वाभाविक समझकर हम ग़लती करें, तो सत्यका आविष्कार ही कठिन हो जाता है। सार्थक चित्र-मालमें ही देश-काल और मानव-समाजपर एक उचित अधिकार है।

व्यंग्य चित्रका दावा समयपर वैसा नहीं होनेपर भी जन समाजपर यथेष्ट है। इस व्यंग्य-चित्रने कितनी ही बार मानव-जीवनके कितने ही क्षेत्रोंपर अकस्मात् ज़ोरसे चाबुककी लगाकर उसके मोहको दूर कर दिया है। यह काम व्यंग्य चित्रसे ही हो सका है। युक्तिके द्वारा युक्तिको पराजित करनेके लिए कुतर्क और वितण्डावादकी उत्पत्ति हुई है, परन्तु यदि तर्कको सुरुचि-पूर्ण हास्यमें परिणत किया जाय, तभी वह वशमें आ सकता है। ऋग्वेदमें नमूची दानवकी एक कथा है। नमूचीने सभी देवताओंका नाश करके इन्द्रपर आक्रमण किया। इन्द्रने नमूचीपर वज्र गिराया। नमूचीने सिर झुकाकर वज्रका स्वागत किया—वज्रके टुकड़े-टुकड़े हो गये! इन्द्रने एक दिन समुद्रका फेन फेंका और उससे नमूचीका सिर चूर-चूर हो गया! तर्कके विषयमें भी ऐसा ही है। तर्कको तर्कसे हरानेकी कोशिश न कर यदि व्यंग्यसे काम लिया जाय, तो हमारी जीत हो सकती है।

समाजके सम्बन्धमें जो व्यंग्य-चित्रोंकी रचना करते हैं, उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि कुरुचिके द्वारा कुरुचिको नहीं दबाया जा सकता, अर्थात् किसी कुरुचिपूर्ण चित्रको देखकर मनुष्य लज्जित तो होता है, लेकिन वह उस दोषको छोड़ता नहीं है। जहाँ वह कुतर्कका आश्रय लेकर अपना समर्थन करता है, वहाँपर व्यंग्य-चित्रकारको यह बात दिखलानी चाहिए कि वह समाजको कौनसा हास्य देता आ रहा है? और वह कितना हास्यास्पद है। मनुष्य अपनी निन्दा सह सकता है, किन्तु अपनेको हँसीका पात्र बनाना पसन्द नहीं करता। यही कारण है कि तर्क या वाद-विवादकी अपेक्षा कार्टून या व्यंग्य-चित्रसे हमारे उद्देश्यकी अधिकाधिक पूर्ति हो जाती है।

एक बात और है, कार्टूनको केवल व्यंग्य-चित्र कहना, वर्तमान समयमें, उसका क्षेत्र संकीर्ण बनाना है, क्योंकि कार्टून अब सिर्फ हँसानेकी ही सामग्री नहीं रह गया है, बल्कि कितने ही स्थलोंपर वह करुणाका भी सचार करता है।

गत यूरोपीय महायुद्धके समय प्रत्येक देशको समाचारोंसे हम जितना पहचान सके हैं—कार्टूनोंकी सहायतासे उससे कहीं अधिक परिचय मिला है। कार्टून प्रत्येक जातिके हृदयकी खबर ला देता है। जब हम इसपर विचार करते हैं कि इस कलाने कितनी ही जातियोंकी कितनी ही छिपी हुई वेदनाएँ संसारके सामने लाकर जनसाधारणके हृदयमें करुणा भर दी है, तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है। युद्ध तो परस्पर जातियोंमें होता है, पर दर असल देखा जाय, तो उसमें स्वार्थ बहुत थोड़े आदमियोंका होता है; मगर कार्टून वहाँपर एक जातिके हृदयकी बात दूसरे जातिको बतलाता है। युद्धका अन्त चाहे जिसकी जय-पराजयमें हो, किन्तु उसकी यथार्थ जय पराजय सर्वसाधारणके विश्वासपर ही अवलम्बित है, और उसकी नियन्ता यह कार्टून-कला ही है।

अब तो कार्टून एक अन्तर्जातीय भाषा हो गई है, और उसका व्यवहार अपने वक्तव्यके एक विशेष उपायके रूपमें होता है। भाषा अपने देशको छोड़कर बहुत दूर अग्रसर नहीं हो सकती, लेकिन चित्रोंकी मूक भाषा देशकी भौगोलिक सीमाको पार करती हुई और-और देशोंके हृदय क्षेत्रपर भी अधिकार कर लेती है। यही कारण है कि हमारे देशमें, जब इतनी बड़ी शक्तिके आधारको—ऐसी पवित्र आनन्द रस-धाराको—अपने अन्तरकी दीनताके बाहन-रूपमें व्यवहृत होते देखते हैं, तब बड़ा दुःख होता है ! तब तो यह कहनेको दिल चाहता है कि समझदारों और प्रौढ़ोंकी हँसी (Adult loughter) हँसना सीखो। अभी हम, जिससे हँसने और हँसाने भी कोशिश करते है, वह व्यर्थ और अत्यन्त प्राथमिक है। वस्तुके अनुरूप आकृतिको देखकर जो हँसता है, वह तो दूधमुँह बच्चोंके समान है।

कार्टूनकी इतनी बड़ी शक्तिका हम उचित प्रयोग करना सीखेंगे।

कला-विद्या

श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर

संसारमें आज सर्वत्र ही मनुष्यके मन और उसकी अपनी-बनाई मशीनोंके बीच युद्ध छिड़ा दिखाई देता है। मनुष्यके नित्य काम आनेवाली चीज़ोंमें उसके मनके हस्ताक्षर अब कहीं भी दिखाई नहीं देते, सर्वत्र ही मशीनकी छाप है। इन मशीनोंकी सन्ततियोंमें अब कहीं भी रूप-भेद नहीं रहा। सुलभता और सुविधाके लोभसे मनुष्यने इसे मान लिया है—उसी प्रलोभनसे मनुष्यने अपने मनके कर्तृत्वको, अपनी रचना-शक्तिको ? ठुकराया है या अस्वीकार किया है।······परदेहजीवी (पराये शरीरसे जीनेवाले) पराश्रित (Parasite) जीव जैसे स्वाधीन उद्यम-शक्तिको खो देते हैं, कलापर आश्रित मनुष्य भी उसी तरह मनकी रुचि-स्वाधीनताको खो रहा है, वह अपने नित्य काम आनेवाली चीज़ोंपर अपने सौन्दर्य-बोधका प्रयोग करनेका स्वाभाविक उद्यमनिर्जीव आलसी होता जा रहा है।

यूरोपीय सभ्यताकी उस रुचि-स्वातंत्र्य नाशक सूखी

हवाने भारतीय शिल्प-कलाको लगभग नष्ट कर दिया है। अनेक युगोंके अभ्यासके नैपुण्य उन्नत होता है, एक बार नष्ट हो जानेपर फरमाईश करके, मूल्य देकर फिर उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता, मनुष्यकी उस दुर्लभ सामग्रीको हम लगभग खो चुके हैं।

कुछ भी हो, जिस व्यवहारकी क्षेत्रमें, मशीनोंके आगे, मनुष्यकी रुचिकी पराजय संसार-भरमें व्यापक रूपसे हो रही है, वहां भारत बच जायगा, ऐसी आशा नहीं की जा सकती। जहाँ खरीद-बिक्रीका बाज़ार है, वहाँ सौन्दर्य-लक्ष्मी बाणिज्य-लक्ष्मीके हाथमें रहती है, कल-पुर्जोंके हाथसे कलाका अपमान वर्तमान युगके ललाटपर लिखा है।

मनुष्य अपनी अन्तरतम इच्छाको प्रेमको, सिर्फ अपनी व्यवहारकी वस्तुओंमें ही प्रकट करता हो, सो नहीं; उसका संगीत, उसकी चित्र-कला इस प्रकाशका प्रधान बाहन है। इसीके द्वारा देश अपने अन्तरके आवेगको बाहरमें रूप देता है और उसे चिरन्तन बनाकर भविष्यके हाथमें सौंपता है।

मनुष्यकी बुद्धि-वृत्ति एक ऐसी चीज़ है, जिसका तारतम्य जाति-विशेषसे है, प्रकार-भेदसे नहीं। युक्तिका नियम सभी देशोंमें समान है, इसलिए बुद्धि-वृत्ति-जनित जो शिक्षा यूरोप संसारको दे रहा है, वह सर्वत्र एक-सी होगी ही।

परन्तु हृदय-वृत्ति द्वारा मनुष्य अपने व्यक्तित्वको प्रकट करता है। इस व्यक्तित्वमें विचित्रता रहेगी ही, और रहना ही अच्छा है। इसे नष्ट करना आत्म-हत्याके समान है। इस हृदय वृत्तिका प्रकाश कला-विद्याकी सहायतासे ही होता है। सभ्य और असभ्य सभी देशोंमें इन सब कला-विद्याओंसे देश-वासियोंकी सहानुभूति है—दर्द है। सिर्फ हमारे विद्या-दानकी व्यवस्थामें इस कला-विद्याके लिए कोई स्थान नहीं है। स्थान होना ही चाहिए। उसकी महान् आवश्यकता है—यह ज्ञान तक हमारे शिक्षित समुदायके मनसे दूर हो गया है।

इसका प्रधान कारण यह है कि हमारे देशकी विद्या अभाव (कमी) की अनुचरी है। अंग्रेजी सीखनेसे नौकरीकी मिल जायगी या राज-सम्मानका मौक़ा मिल सकता है, दरिद्रकी यह भावना हमारे देशकी विद्याको चला रही है।

अंग्रेज तो भाषा, भूगोल, इतिहास, गणित, विज्ञान—सब कुछ सीखते हैं, और उसके साथ-ही-साथ संगीत, चित्रकला तथा अन्यान्य सभी कलाएँ सीख लेते हैं। इन सब ललित कलाओंको सीखनेसे उनका पौरुष घट रहा है—इस बातका कोई सबूत नहीं। संगीतमें निपुण होनेसे जर्मन लोग अस्त्र चलानेमें आलसी हैं या विज्ञान-चर्चामें पिछड़े हुए हैं, यह कौन कह सकता है? वास्तवमें देखा जाय, तो आनन्द प्रकट होना ही जीवनी-शक्तिकी प्रबलता प्रकट होना है।

हमारे देशकी शिक्षामें यह जो दरिद्रता है, उसका लक्षण और फल हमारे शान्ति-निकेतनके बालकोंमें भी पाया जाता है। यहाँके विद्यालयमें संगीत और चित्र-विद्या सिखानेकी व्यवस्था अच्छी है। लड़कोंमें बहुतोंको गाने और तसवीर बनानेकी स्वाभाविक शक्ति होती है। जब तक वे नीचेकी कक्षाओंमें पढ़ते हैं, तब तक उन्हें गाने और चित्र बनानेकी शिक्षा देनेमें कठिनाई नहीं होती, इसमें तो वे आनन्द ही पाते हैं, परन्तु ऊँची कक्षाओंमें पहुँचते ही हमारे देशकी शिक्षाका लक्ष्य वे समझ जाते हैं, और तब उसके भीतरकी दीनता उनपर आक्रमण करती है।

इस तरह हमारे भद्र-सम्प्रदायके लोग बचपनसे ही कला-विद्याके संसर्गसे दूर रहते हैं। इससे देशकी कितनी बड़ी हानि हो रही है, इस बातको समझनेकी शक्ति तक वे खो बैठे हैं। कुछ समयसे यूरोपीय चित्र-कलाकी नक़ल करना छोड़कर हमारे देशके कुछ चित्रकार भारतीय चित्र-कलाका अनुसरण करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, यह सन्तोषकी बात है।

और ज़रा संगीतकी दुर्गतिपर तो विचार कीजिए। 'कन्सर्ट' के नामपर जो ऊधम मचाया जाता है, जिसे हम मुहल्ले-मुहल्लेमें संगीतका रूप देते हैं, उससे बढ़कर बर्बरता और क्या हो सकती है? भारतीय संगीतके प्राण इसमें तो

हैं ही नहीं, तिसपर भी इसे यदि यूरोपीय संगीतकी नकल मान लें, तो वह भी एक अत्यन्त अन्यायपूर्ण मानहानि (Libel) की बात होगी। हम जो ब्याह शादी तथा जुलूसोंमें बैन्डके साथ शहनाईका धक्का देकर संगीतकी महामारी फैला देनेको उत्सवका एक अंग समझते हैं, वह कया किसी भी तरह सम्भव हो सकता था, यदि संगीत-कलासे हमारी कुछ भी सहानुभूति होती?

देशकी जाग्रतिकी चर्चा हम हमेशा ही किया करते हैं। और समझते हैं कि वह जाग्रति केवल राजनीतिक आन्दोलन-सभाओंसे ही हो सकती है, अर्थात् केवल अभावोंके क्रन्दनसे, दरिद्रताकी प्रार्थनासे। हमारी नस-नसमें भरी हुई इस दरिद्रतासे हम भूल गये हैं कि जहाँ देशकी अपनी सम्पद बंदी पड़ी हुई है, वहीं देशका अपना गौरव भी पड़ा-पड़ा ऊँघ रहा है। यह सम्पद ज्यों-ज्यों उद्घाटित होकर हमारे सामने आती जायगी, त्यों-त्यों हमारा गौरव भी उतना ही जाग्रत होता जायगा। हमारा नवीन जाग्रतिका उत्सव विलायती बाजोंसे या हाड़-गोड़-टूटे हुए देशी संगीत नहीं हो सकता। भला, विचार तो कीजिए, हमें जो अपनी देशकी निर्वासित लक्ष्मीको पुनः आह्वान करते समय मन्दिरके द्वारपर आलेपन करना होगा, क्या उसका डिजाइन भी हम जर्मनीसे मँगायेंगे?

श्री नन्दलाल बोस और शान्तिनिकेतनका कला-मंदिर

श्रीयुत शंकरदेव विद्यालंकार

बंगालमें भारतीय कलाकी जो पुनः जाग्रति हुई है, उसका सबसे अधिक श्रेय श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरको है। ठाकुर महाशयके बाद बंगालके कलाविदोंमें सबसे पहला नाम शान्तिनिकेतनके कला-मंदिरके पुजारी श्री नन्दलाल वसुका आता है। वसु महाशय भारतके उन प्रतिभाशाली कलाकारोंमें से हैं, जिन्होंने अपनी तूलिकासे अपना तथा भारतका नाम उज्ज्वल किया है।

बालक नन्दलालका जन्म लगभग ५० वर्ष पहले मुँगेर ज़िलेमें हुआ था। उनके पिता एक ज़िमींदारके यहाँ कार्य-कर्ता थे। नन्दलालमें कलाकी ओर जन्म-जात प्रवृत्ति थी। बचपनमें वे दुर्गापूजाके अवसरपर दुर्गाकी मिट्टीकी मूर्ति और मुहर्रमके दिनोंमें ताज़िये बनाया करते थे। उनकी बचपनकी कलाकी यह पिपासा उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

मैट्रिककी परीक्षा पास करनेके बाद नन्दलाल कालेजमें भर्ती हुए, पर दो बार प्रयत्न करनेपर भी प्रीवियस न पास कर सके। इसपर उनके ससुरने उन्हें कामर्स कालेजमें भरती करा दिया। इस बीचमें श्री अवनीन्द्रनाथ टाकुरने प्रिंसिपल हेवेलके सहयोग तथा भगिनी निवेदीता और श्री कुमार स्वामीके प्रोत्साहनसे बंगालमें भारतीय कलाको पुनर्जीवित करनेका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया था। अनेकों छात्र उनकी कला-शालामें भरती होने लगे थे, और लोगोंने भारतीय कलाकी इस नवीन आत्माको समझना शुरू किया था।

नन्दलाल बाबूका मन कामर्स कालेजसे ऊब गया था। वे एक दिन ठाकुर महोदयकी कला-शालामें पहुँचे और दीक्षा ग्रहण करके उनके शिष्य बन गये। अब तक नन्दलाल छोटे-छोटे चित्र बनाया करते थे, परन्तु उन्हें पूर्वीय और पाश्चात्य कलाका भेद, भारतीय कलाकी विशेषता आदि बातोंका ज्ञान नहीं था। अब उनकी दृष्टि विकसित होने लगी और धीरे-धीरे सब कुछ समझने लगे। थोड़े ही दिनोंमें उनकी प्रतिभा फूट निकली। वे अवनीन्द्रनाथके प्रिय

शिष्योंमें हो गये। इसी समय लेडी हेरिंघम नामक महिलाने अजन्ताके चित्रोंकी नक़ल उतारनेके लिए चित्रकारोंकी एक टोली अजन्ताको भेजी। उसीमें ठाकुर महोदयने अपने व्ययसे नन्दलाल तथा श्री असित हलदारको भी भेजा। नन्दलालके अजन्तामें भारतीय कलाकी असली आत्माका अच्छी तरह मनन किया। उनपर अजन्ताका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। आर्य-कलाका सन्देश उनकी समझमें आ गया, उन्हें नई भावना प्राप्त हुई। इसी समय उन्होंने श्री जगदीशचन्द्र बसुके विज्ञान-मंदिरकी छतको अजन्ता शैलीपर चित्रित किया, जिससे उनकी बड़ी प्रशंसा हुई।

अजन्ताके चित्रोंकी नक़ल उतारनेमें नंदलालने बड़ी ख्याति पाई थी, इसलिए ग्वालियर राज्यने बाघ गुफाओंके चित्रोंकी नक़ल करनेका काम भी नन्द बाबूको सौंपा, जिसे उन्होंने बड़ी सुन्दरतासे पूरा किया। उन्होंने बाघके चित्रोंकी नक़लका एक सेट शान्तिनिकेतनकी कला-शालाके लिए भी तय्यार किया है, जिसका एक रेखांकन ३५ फीट लम्बा है!

श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और उनके कलाकारोंकी मडलीने जनतामें भारतीय कलाका सन्देश पहुँचानेके लिए बंगालके तत्कालीन गवर्नर लार्ड रोनैल्डशेके प्रोत्साहनसे 'इंडियन सोसाइटी आफ़ ओरियंटल आर्ट'को जन्म दिया। नन्द बाबू भी इसी कलाशालामें कलाकी उपासना करने लगे।

कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने शान्तिनिकेतनकी 'विश्व-भारती' में चित्र-कलाके लिए विशेष स्थान रखा था। वे इसके लिए श्री असित हलदार और श्री सुरेन्द्रनाथ कारको विलायत भी ले गये थे। इन दोनों कला-धरोंने शान्तिनिकेतनकी कला-शालाको बढ़ाना आरम्भ किया। कलाशालाके लिए पृथक भवन बनाया गया, जिसके लिए जामनगरके राजाने दस लाख रुपयेकी रक़म दी थी। रवि बाबूने इस मंदिरके पुजारीके पदके लिए नन्द बाबूको आमंत्रित किया।

इस समय नन्द बाबू ओरियन्टल आर्ट सोसाइटीमें तीन सौ मासिक वेतन पाते थे। उन्हीं दिनों उन्हें लखनऊ-आर्ट-स्कूलके अध्यक्ष-पदके लिए नौ सौ मासिक वेतनपर निमन्त्रण मिला था। शान्तिनिकेतन अधिक वेतन देनेमें असमर्थ था, परन्तु वहाँका वातावरण शान्त चित्तसे कलाकी उपासनाके लिए बहुत उपयुक्त था, अत: नन्द बाबूने नौ सौ और तीन सौ मासिकके पदत्याग कर दो सौ मासिकपर शान्तिनिकेतन जाना स्वीकार कर लिया! कवीन्द्रको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानोंसे कला-पूर्ण वस्तुएँ ला-लाकर कला-मन्दिरको भर दिया, और एक संग्रहालय भी आरम्भ कर दिया।

सन् १९२४ में नन्दलाल बाबूने कवीन्द्र रवीन्द्रके साथ चीन और जापानकी यात्रा की। इन दोनों देशों और भारतकी कलामें निकट सम्बन्ध है। नन्द बाबूने वहाँके कलाकारोंसे मिलकर और वहाँके कला-धामोंकी यात्रा करके उनका निरीक्षण किया।

अब तक नन्द बाबूके चार-पाँच सौ चित्र प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें लगभग सभी रंगीन हैं। इसके अतिरिक्त कई स्थानोंकी दीवारोंको भी उन्होंने चित्रित किया है।

चित्र सृजनका उनका प्रवाह अखंडित रूपसे बहता है। एक चित्र पूरा होनेपर शायद ही कभी उसे दुबारा देखते हों। उनकी तूलिकासे नित नई कल्पनाएँ, नये ढंग और नवीन मौलिकताएँ निकला करती हैं। उनके चित्र एकसे एक सुन्दर होते हैं, और कला-मर्मज्ञोंमें उनका बहुत आदर है। जापान-यात्रासे लौटकर उन्होंने रेशमपर चीनी नर्तकीका एक बड़ा चित्र बनाया था जो उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति माना जाता है।

नन्द बाबू अपने चित्र, जब जैसी धुन आती है, तब वैसी ही शैलीपर तैयार करते हैं। राजपूत, मुग़ल, जापानी, ईरानी, अजन्ता आदि शैलियोंमें उनके चित्र प्रकट हुआ करते हैं। नन्द बाबूमें चित्रण कला कूट कूटकर भरी हुई है। एक बार उन्होंने बाघकी गुफामें केवल मिट्टी घोलकर बिना तूलिकाके, केवल अंगुलियोंसे ही, एक चित्र अंकित कर दिया था। उसे देखकर मालूम होता है कि मोटी-मोटी

अंगुलियोंमें ऐसा सुन्दर चित्र बनानेवालेको अपनी अंगुलियोंपर कितना बड़ा क़ाबू होगा।

नन्द बाबूका कथन है कि हमारे प्राचीन चित्रकार देशी रंगोंसे जो चित्र बना गये हैं, उनकी-सी सफ़ाई और टिकाऊपन विदेशी रंगोंमें नहीं होता। वे इधर देशी वनस्पतियोंसे बने हुए रंगोंके प्रयोग कर रहे हैं।

शान्तिनिकेतनके जीवनके प्रत्येक अंगपर नन्द बाबूकी कलाका किसी न किसी रूपमें अवश्य प्रभाव पड़ता है। वे नाट्य और नृत्य-कलाके शौक़ीन हैं। आश्रमके उत्सवों, नाटकों—उनके पात्रों, रंगशाला आदिमें नन्द बाबूका हाथ रहता है। उनका दैनिक जीवन कलामय है। एक बार श्री विधुशेखर शास्त्रीने हँसीमें उनसे कहा—'हाज़िरीके रजिस्टरमें आपको उपस्थित-सूचक चिह्न बनानेके बजाय उसके खानेमें कोई चित्र बनाना चाहिए।'' नन्द बाबूने हँसकर उसे स्वीकार कर लिया और तबसे आज तक वे प्रति दिन हाज़िरीके खानेमें कोई-न-कोई नई चीज़ चित्रित कर देते हैं।

कला-मन्दिरमें नन्द बाबू विद्यार्थियोंके साथ हिल-मिलकर उन्हें शिक्षा देते हैं। उनकी प्रकृति बड़ी मधुर और सरल है। कला-मन्दिर दुमंज़िला है। उसके आगेके भागमें ग्रंथालय और पीछेके भागमें संग्रहालय है। उसका बरामदा अभिनयके समय रंगशालाका काम देता है। ऊपरकी मंज़िलमें क्लास लगता है। वहाँका वातावरण कलासे ओत-प्रोत है। दीवारोंपर प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारोंकी कृतियाँ खिड़कियोंके सामने दूर तक फैली हुई क्षितिज लता द्रुममयी भूमि और ताल तथा शाल वृक्षोंका झुरमुट और कमरेके कोनेमें बजता हुआ मधुर संगीत विद्यार्थियोंमें प्रेरणाका संचार किया करते हैं। नम्रता और सौजन्य नन्द बाबूके प्रधान गुण हैं। विद्यार्थियोंके प्रति उनका असीम प्रेम है, जो प्रत्येक विद्यार्थीको बोध होता है।

श्री नन्दलाल वसु कला-मन्दिरके योग्यतम पुजारी हैं। ऐसे कलाकारके लिए भारत भूमि अभिमान कर सकती है। *

* यह लेख श्रीकनु देसाईके एक लेखके आधारपर लिखा गया है।

भारतीय स्थापत्य-कला

भारतीय स्थापत्य-कलाका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस क्षेत्रमें भारतीय शिल्पियोंकी कल्पनाने बड़ी ऊँची उड़ान भरी है। प्राचीन स्थापत्य-कलामें हिन्दुओंकी अपनी निजी शैली-या शैलियाँ—थीं। यद्यपि कालके कठोर हाथोंसे प्राचीन भारतकी इस कलाके अधिकांश चिह्न अब मिट गये हैं, मगर फिर भी जो कुछ बचा है वह अपनी निजी विशेषता, अपना निजी व्यक्तित्व प्रकट करता है।

हिन्दू स्थापत्य शैली कुछ-कुछ—विशेषकर तोरण और खम्भोंमें—मिश्री स्थापत्य-शैलीसे मिलती-जुलती है। मगर मिश्री स्थापत्यकी मुख्य विशेषता—'पिरामिडों' का व्यवहार—हिन्दू शैलीमें नहीं दिखाई पड़ता। हिन्दू शैलीकी मुख्य बात यह है कि उसमें सीधी-खड़ी दीवारें होती हैं, जो ऊपरकी ओर झुककर और पतली होकर एक उच्च शिखरमें—जो स्वर्णमय होता है—जाकर समाप्त हो जाती हैं।

भारतीय बौद्धोंकी स्थापत्य-शैली आसानीसे पहचानी जा सकती है। बौद्ध स्टाइलके खम्भे बिलकुल हिन्दुओंकी तरह होते है, परन्तु उनके गात्रपर खुदाई हुआ करती है। दूसरे 'स्तूप' बौद्धकी अपनी निजी वस्तु है। तीसरी बौद्ध विशेषता यह है कि उनके स्तूपों या मन्दिरों और स्तम्भोंके चारों ओर पत्थरकी परिवेष्टनी या जंगला सा रहा करता था। साँची स्तूपके चारों ओर जो इस प्रकारकी परिवेष्टनी है वह बड़ी प्रसिद्ध है परन्तु बुधगयाकी परिवेष्टनी सबसे सुन्दर है
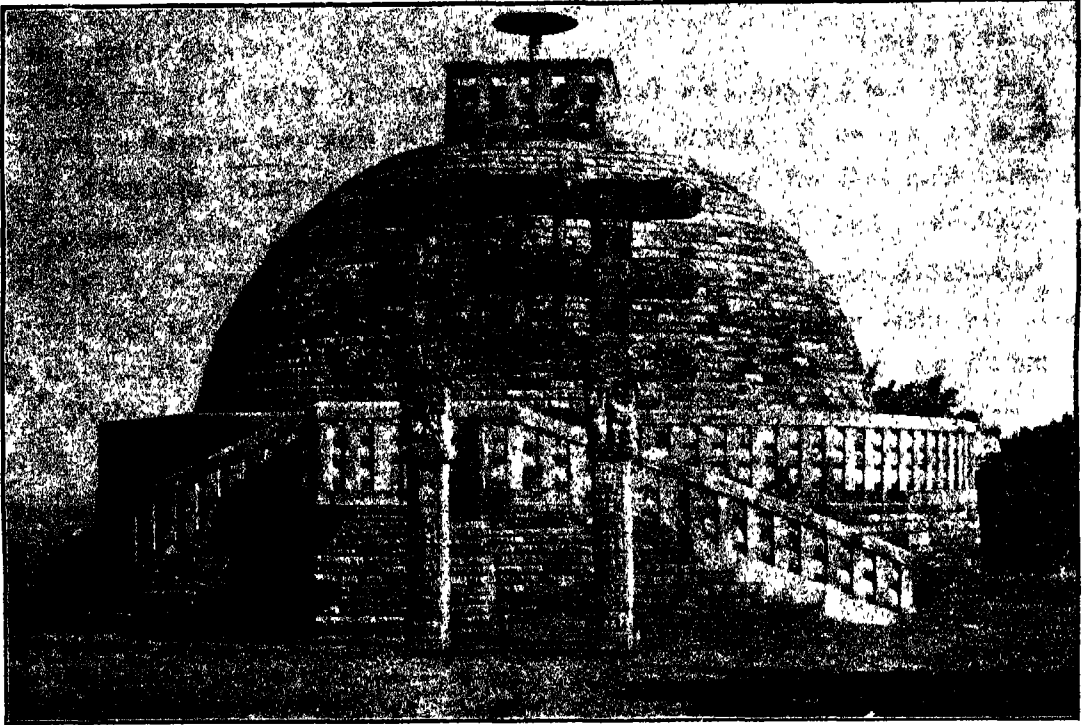
सांची स्तूप और उसकी परिवेष्टनी

बौद्धोंकी अन्तिम विशेषता है चैत्य या उपासना भवन (एक चैत्यका चित्र इस अंकके ६ पृष्ठपर प्रकाशित है)।

भारतके विभिन्न भागोंमें हिन्दू-स्थापत्यकी विभिन्न शैलियाँ विकसित हुई थीं। उदाहरणके लिए काश्मीरमें मार्तण्ड, अवन्तिपुर, पन्ड्रेथान आदिके भग्न मन्दिरोंसे यह प्रत्यक्ष मालूम होता है कि वहाँके शिल्पमें अपनी निजी मौलिकता थी, वह अपने ढंगपर पूर्णरूपसे विकसित हो चुका था। काश्मीर स्टाइलके खम्भे ग्रीककी डोरिक शैलीसे मिलते जुलते हैं। उनकी तिहरी मेहराबोंकी—जो प्राय: वहाँके सभी मन्दिरोंमें मिलती हैं—बनावट और परिकल्पना वहींकी स्थानीय है। काश्मीरी शैलीका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मार्तण्डके मन्दिरमें मिलता है, परन्तु वह अब प्राय: बिल्कुल टूटी-फूटी दशामें है।
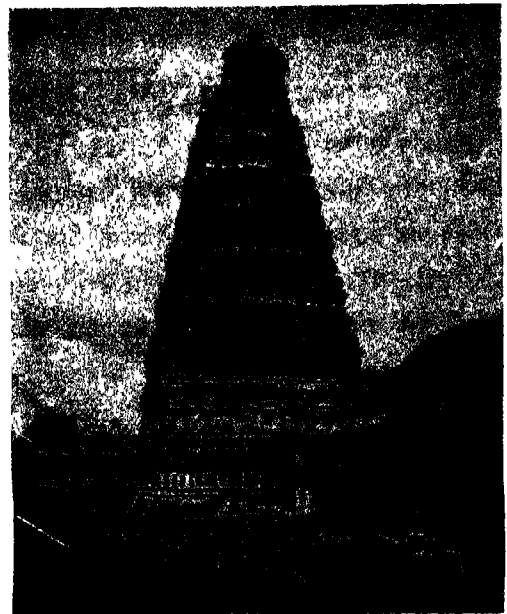
दक्षिण-भारतका एक मन्दिर

दक्षिण भारतकी स्थापत्य-शैली एकदम पृथक है, उसे हम द्रविड़-शैली कह सकते हैं। द्राविड़ मन्दिरोंके—वे चाहे

आगरेका ताजमहल

जिस स्थानके अथवा चाहे जिस कालके हों—तीन या चार मुख्य भाग होते हैं। पहला भाग है विमान। यही असली मन्दिर है। विमान आकारमें चौकोर होता है और वह एक या कई खंड (तल्ले) का हो सकता है। दूसरा भाग मण्डपम होता है। यह, जहाँ मूर्ति होती है उसके आगेका, प्रवेश मंडप या ड्योढ़ी होती है। तीसरी चीज़ है गोपुरम। यह महा वृहत्काय फाटक हैं, जो मन्दिरकी इमारतके चारों ओर हुआ करते हैं। गोपुरम द्रविड़-शिल्पकी सबसे विशेषता-पूर्ण चीज़ हैं। चौथी वस्तु है चावड़ी या खम्भोंकी पंक्तियोंवाले लम्बे हॉल। द्रविड़-स्थापत्यके सबसे उत्कृष्ट और पुराने उदाहरणोंमें चिदम्बरम् और रामेश्वरम्के मन्दिर हैं; मगर द्रविड़-शिल्पके महत्त्व और विशालकायत्वके लिए श्रीरंगम और मदुराके मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके बनानेका ढंग और उनका आकार-प्रकार इतना विशाल, इतना वृहत् होता है कि उसे देखकर दर्शक हक्का-बक्का-सा रह जाता है; परन्तु द्राविड़-शिल्पकी इस विशालताके साथ-साथ उसमें कुछ दोष भी है। उसके 'डिज़ाइन' बनानेवालोंको इस बातका स्पष्ट ध्यान नहीं मालूम होता कि उन्हें क्या बनाना है। हाँ उनमें विशालता और कारीगरीके बाहुल्यका बड़ा प्रेम दिखाई देता है। उनके शिल्पमें सुडौलपन कम है।

इसके विपरीत भुवनेश्वरके मन्दिरोंमें अथवा जगन्नाथ-पुरीके मन्दिरोंमें ऐसा सुडौलपन और ऐसी शान है, जो ग्रीक शैलीके सुडौलपन और मिश्री-स्टाइलकी शानसे टक्कर लेता है।

बुद्ध-गयाके मन्दिर और उसकी परिवेष्टनीको हम भारतवर्षकी सबसे प्राचीन इमारतोंमें कह सकते हैं। वे सम्राट अशोकके बनवाये हुए हैं। बुद्ध-गयाका मन्दिर भी अपनी सुडौल गठनमें अनोखा है।
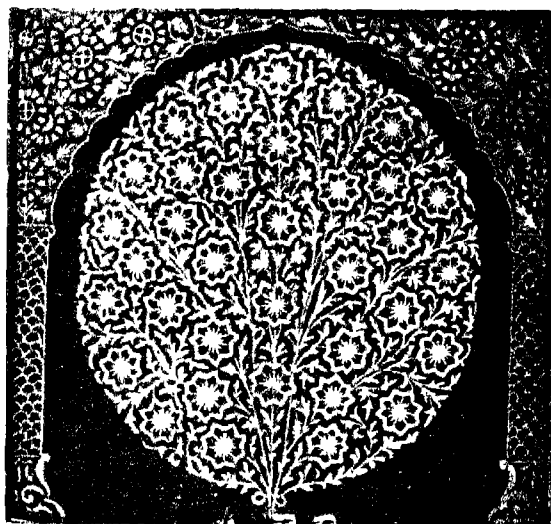
जालीके कामका सौन्दर्यपूर्ण उदाहरण

उत्तर-भारतके स्थापत्यमें मुसलमानों और विदेशियोंका काफ़ी प्रभाव पड़ा। मुसलमानोंने भी अनेकों सुन्दर-सुन्दर
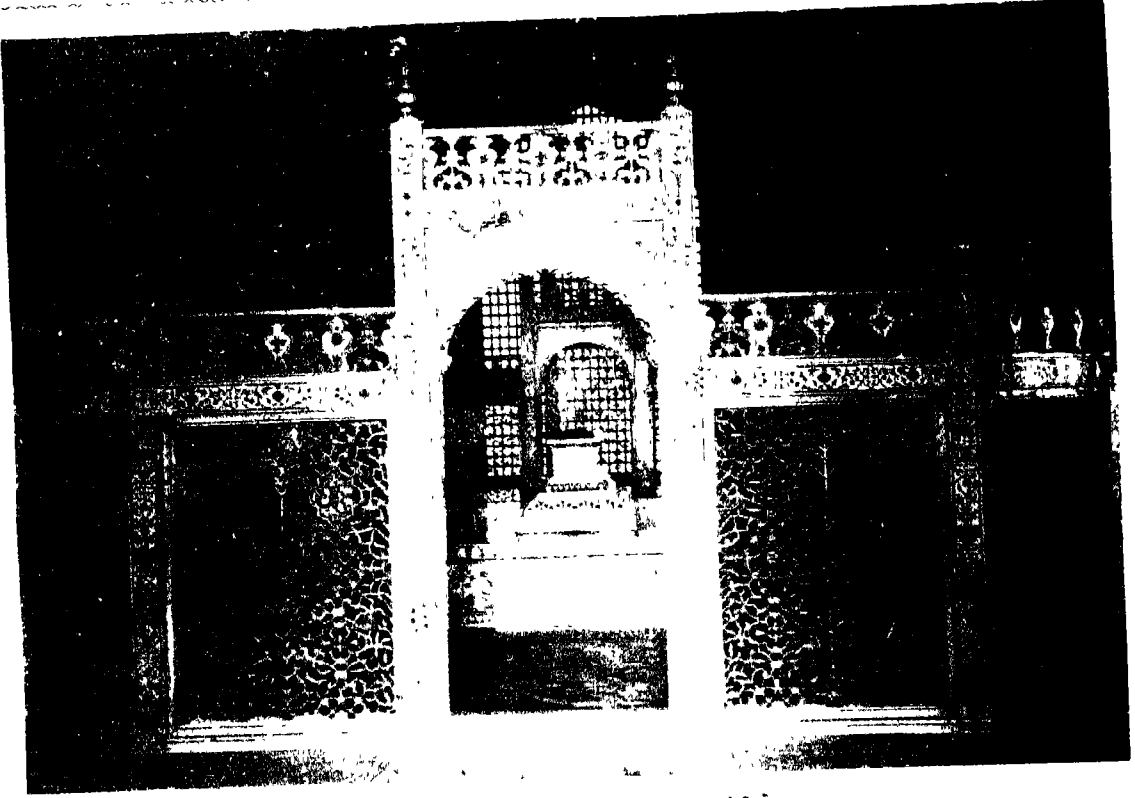
ताजमहलका भीतरी दृश्य। जालीका काम देखिये

इमारतें बनवाकर देशके स्थापत्य-भाडारकी काफ़ी वृद्धि की है। मुसलमान शैलीकी प्रधान विशेषता गुम्बदों, मीनारों और विशेष प्रकारकी मेहराबोंमें है।

इस शैलीका सर्वोत्कृष्ट विकास शाहजहाँके शासन-कालमें हुआ। शाहजहाँका बनवाया ताजमहल मुसलमानोंकी कारीगरीकी चरम उत्कृष्टताका अनुपम उदाहरण है। ताजके सम्बन्धमें कुछ कहना मूर्खता है, क्योंकि भारतवर्षके बच्चे तक उसके नाम और सौन्दर्यसे परिचित हैं। लाखों विदेशी भी ताजके सौन्दर्यसे ऐसे मुग्ध हो चुके हैं कि आज ताजकी गणना संसारके सप्ताश्चर्योंमें की जाती है। कोई ताजको 'संग-मरमरका स्वप्न' कहता है और कोई उसे 'संग-मरमरकी कविता' बताता है।
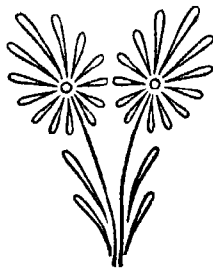
चित्र-संग्रह

कलकत्तेका एक कला-संग्रहालय

भारतवर्षमें कला-संग्रहालयोंकी बहुत बड़ी कमी है। यहाँके श्री-सम्पन्न सज्जनोंकी रुचि कलाकी ओर नहींके बराबर है। यूरोप और अमेरिकाके धनियोंने अतुल धन व्यय करके अपने निजी संग्रहालय स्थापित कर रखे हैं, परन्तु भारतमें इस प्रकारके संग्रहालय मुश्किलसे चार-छै होंगे। काशीमें श्री राय कृष्णदासके प्रयत्नसे जो सुन्दर 'कला-भवन' स्थापित हुआ है, उसका वृत्तान्त अन्यत्र प्रकाशित है।

कलकत्तेमें कलाके दो संग्रहालय और भी हैं; एक स्वर्गीय राजा राजेन्द्र मल्लिकका 'मार्बल पैलेस' और दूसरा रायबहादुर श्री पूरणचन्द्रजी नाहरका 'कुमारसिंह भवन'। इसके अतिरिक्त श्रीयुत अजित घोषके पास भी प्राचीन चित्रोंका बड़ा सुन्दर संग्रह हैं, परन्तु उनका संग्रह किसी ऐसे स्थानमें नहीं है जहां सर्वसाधारण उसका उपयोग कर सके। राजा राजेन्द्र मल्लिकके संग्रहालयमें मूर्तियां और चित्र प्रायः सभी यूरोपियन हैं। वहाँ पाश्चात्य कलाकी प्रधानता है, भारतीय कलाका कोई स्थान नहीं है। हाँ, पूरणचन्द्रजी नाहरका संग्रहालय अवश्य ही ठेठ भारतीय कलाका प्रतिनिधि है।

यह संग्रहालय कलकत्तेमें वेलिंगटन स्क्वयरके समीप नं० ४८ इंडियन मिरर स्ट्रीटमें स्थित है। संग्रहालयका अपना पृथक भवन है जिसके साथ एक जैन मन्दिर भी संलग्न है। संग्रहालयके भवनकी इमारतका नकशा, श्री ईश्वरीप्रसाद वर्माका बनाया हुआ है।

भवनमें भारतीय चित्रोंका एक सुन्दर संग्रह है, जिसमें राजपूत राजस्थानी, राजपूत-पहाड़ी, जैन, मुगल, फ़ारसी, आदि शैलियोंके और आधुनिक भारतीय कलाके प्रतिनिधि चित्र प्रदर्शित किये गये हैं। नाहरजीके संग्रहमें विशुद्ध राजपूत शैलीके रागिनी-चित्रोंका अच्छा संग्रह है। चित्रोंके अतिरिक्त हाथी दाँतकी कारीगरीकी चीज़ें और पुरानी मूर्तियोंका भी संग्रह है। परन्तु इस संग्रहका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है, प्राचीन सिक्के और हस्तलिपियाँ। इस संग्रहालयमें प्रायः पाँच हज़ार प्राचीन हस्तलिपियां सुरक्षित हैं। इन

कलाका संग्रहालय 'कुमारसिंह' भवन

हस्तलिपियोंमें जैन-धर्मसम्बन्धी अनेकों हस्तलिपियां बहुत प्राचीन तथा मूल्यवान है। हस्त-लिपियोंके अतिरिक्त इस भवनमें छपी हुई अंग्रेज़ी और हिन्दी पुस्तकोंका एक खासा पुस्तकालय भी है, जिसमें अनेकों दुष्प्राप्य ग्रन्थ संग्रहीत हैं। श्रीयुत नाहर महोदयका कला-प्रेम सराहनीय है। उन्होंने वर्षोंके परिश्रम और बहुत-अधिक धन-व्ययके बाद ऐसा सुन्दर संग्रहकर पाया है। नाहरजीकी इस सुन्दर सुरुचि-पूर्ण लगनसे कहीं अधिक मधुर चीज़ है उनकी विनम्रता और सरलता। वे बड़े-प्रेमसे दर्शकोंको अपना संग्रह दिखलाते हैं।

श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

क्या ही अच्छा हो यदि हमारे अन्यान्य श्री सम्पन्न सज्जनोंमें भी नाहरजी सरीखा कला और विद्या-प्रेम उत्पन्न हो। साथ ही हम नाहरजीसे यह प्रार्थना करेंगे कि वे प्रकाशन, प्रचार आदिके द्वारा अपने इस भवनमें संग्रहीत ज्ञान और कलाको सर्व साधारण तक पहुँचानेकी सुविधा दें।

भारतीय कलाका पुनरुत्थान

अंग्रेज़ी शासनने भारतमें चित्रकलाकी शिक्षा देनेके लिए प्राय: सभी प्रान्तीय राजधानियोंमें आर्ट-स्कूल खोल रखे हैं। इन आर्ट स्कूलोंके प्रधान शिक्षक प्राय: यूरोपियन हुआ

भारतीय ग्राममें ईसा मसीह। चित्रकार—श्री ए० डी० टामस

करते थे और वे अपने छात्रोंको यूरोपियन पद्धतिकी चित्र-कलाकी शिक्षा दिया करते थे। इन स्कूलोंके छात्रोंकी कलाको हम यूरोपियन कलाकी अस्पष्ट प्रतिध्वनि कह सकते हैं। इस कलाकी आत्मा विदेशी थी।

प्रत्येक देशमें अपनी निजी विशेषता होती है, अपना निजी व्यक्तित्व होता है। प्रत्येक देशकी अपनी पृथक् अन्तरात्मा होती है। जिस प्रकार किसी मुर्देको आप किसी अन्य व्यक्तिकी आत्मा देकर जीवित नहीं कर सकते उसी प्रकार कोई भी देश या समाज, किसी दूसरे देश या समाजकी अन्तरात्माको उधार लेकर ज़िन्दा नहीं रह सकता।

चित्र कलाके सम्बन्धमें उपरोक्त सत्यको सबसे पहले श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने समझा था। ठाकुर महाशय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रसिद्ध वंशके हैं। उन्होंने ही सबसे पहले यूरोपियन शैलीके, विरुद्ध ठेठ भारतीय ढंगपर चित्र अंकित करना आरम्भ किया। उसी समय सौभाग्यसे कलकत्तेके आर्ट-स्कूलमें श्रीयुत हावेल प्रिन्सिपल बनकर आये। वे पक्के आर्टिस्ट थे, उन्हें इस बातका बड़ा दु:ख था कि भारतीय कलामें भारतीयताका पता नहीं है। अचानक उन्हें श्री अवनीन्द्रनाथका पता लगा। उन्होंने ठाकुर महाशयकी कृतियोंको देखकर फ़ौरन ही यह समझ लिया कि यह ठेठ भारतीय कला है। बस, इन्हीं दोनों कलाकारोंके सहयोगसे भारतीय कलाका पुनरुत्थान हुआ।

श्रीयुत अवनीन्द्रनाथ ठाकुर हावेल साहबके जानेके बाद कुछ दिन तक कलकत्तेके आर्ट स्कूलमें प्रिंसिपल रहे थे। उनके समयमें जिन छात्रोंने उनसे शिक्षा पाई थी, उनमें से अनेक—जैसे श्री नन्दलाल वसु, श्री असितकुमार हल्दार, श्री हकीम मुहम्मद खां आदि—आजकल भारतके प्रसिद्ध चित्रकारोंमें हैं।

'भारतीय ग्राममें ईसा मसीह'

मिस्टर ए० डी० टामस एक ईसाई चित्रकार हैं। हाल ही में उन्होंने इटली जाकर वहाँकी 'एकेडेमी आफ फ्लोरेन्स' मे डिपलोमा प्राप्त किया है। 'भारतीय ग्राममें ईसा मसीह' नामक चित्र उन्हींका अंकित किया हुआ है। मूल चित्र रंगीन है। कलाकी दृष्टिसे यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि मि० टामस एक होनहार चित्रकार हैं। वे इसे अपना

'बन्दिनी माता'

'मास्टर पीस' समझते हैं। चित्रमें प्रभु ईसा मसीह एक छोटे लड़केको गोदमें लिए खड़े हैं, एक महिला भक्ति भावमें उन्हें कमल—भारतीयताका सुप्रसिद्ध लक्षण—अर्पण कर रही है। भोली भेड़ें भी उपस्थित हैं। चित्रकारने भारतीय आकृतियाँ ऐसी सुन्दरतासे खींची हैं, जिन्हें देखकर उनकी सराहना करनी पड़ती है।

—

'बन्दिनी माता'

इधर पश्चिमी सभ्यताके संसर्गसे भारतमें प्लास्टर आफ् पेरिस (एक प्रकारका चूनेके सदृश चूर्ण) की मूर्तियाँ अकसर बनने लगी हैं। 'बन्दिनी माता' भी इसी पदार्थकी बनी हुई एक मूर्ति है। इसके शिल्पी श्री पी० घोष हैं। मूर्तिमें बन्दिनी माता बैठी हुई दिखाई गई है। उसकी लज्जा

ढकनेके लिए पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं, उसके हाथ पीठकी ओर बंधे हुए हैं, और उसका मुख करुणा, विषाद और यातनाका जाज्वल्यमान चित्र है। मुखके करुणापूर्ण भावोंके चित्रणमें शिल्पीने कमाल किया है। निःसन्देह यह भास्कर शिल्पका एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्री रामेश्वरप्रसाद वर्मा

चित्र-शिल्पी श्री रामेश्वरप्रसाद वर्मा

हमारे हिन्दीके नवयुवक चित्रकारोंमें श्री रामेश्वरप्रसाद वर्मा बड़े प्रतिभाशाली हैं। चित्रकला उनकी पैतृक-सम्पत्ति है, क्योंकि वे प्रसिद्ध आर्टिस्ट श्री ईश्वरीप्रसाद वर्माके पुत्र हैं। रामेश्वरजी बचपन ही से चित्र बनाया करते थे। भारत और विदेशोंकी अनेकों चित्र-प्रदर्शिनियोंमें उनके चित्र पुरस्कृत हुए हैं।

लार्ड हार्डिञ्जके नई दिल्लीमें पहली बार प्रवेश करते समय उन्हें जो मानपत्र दिया गया था, वह वर्माजी ही का बनाया हुआ था। लार्ड रोनैल्डशे, डाक्टर कुमार स्वामी, महाराज वर्दवान, और पटनाके कला-मर्मज्ञ बैरिस्टर मि० मानुक आदिने उनके चित्रोंकी बड़ी प्रशंसा की है।

आजकल रामेश्वजी अपनी शिक्षा-विस्तारके लिए और अनुभव प्राप्त करनेके लिए विलायत गये हुए हैं।

शिकारी और उसका कुत्ता

यह मूर्ति स्वर्गीय फनीन्द्रनाथ बसुकी कृति है। बसु महाशय एक प्रतिभाशाली बंगाली भास्कर थे। वे सोलह वर्षकी आयुमें यहाँसे इटली गये थे, जहाँ उन्होंने कुछ दिन

शिकारी और उसका कुत्ता

भास्कर शिल्पकी शिक्षा ग्रहण की थी। इटलीके बाद उन्होंने स्काटलैंडके एडिनबरा नगरमें और पेरिसमें शिल्पकी शिक्षा

पाई थी। वे ऐसे प्रतिभाशाली थे कि प्राय: प्रत्येक स्थानमें उन्हें एक या अधिक छात्रवृत्ति प्राप्त हो जाती थी। वे स्काट

शिवाजी

लैंडमें बहुत दिन रहे थे और अपनी प्रतिभा और चेष्टासे उन्होंने स्काटिश एकडेमीसे ए० आर० एस० ए०की श्रेष्ठ उपाधि प्राप्त की थी। उनसे पहले यह उपाधि स्काटिश लोगोंको छोड़कर और किसीको नहीं मिली थी। स्काटिश चित्र एवं शिल्प-प्रदर्शिनीमें उनकी शिकारी नामक मूर्तिकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। महाराज गायकवाड़ने भी बसु महाशयसे अपने महलके लिए कुछ मूर्तियाँ बनवाई थीं। खेद है कि कुछ वर्ष हुए उनका देहान्त हो गया। उनकी 'शिकारी और कुत्ता' नामक मूर्तिका चित्र यहाँ प्रकाशित है। शिकारीका शरीर-गठन और कुत्तेके प्रति उसका प्रेम बड़ी खूबीसे दिखलाया गया है।

भास्कर माधवरावके भाईकी मूर्ति

भास्कर माधवरावकी कृतियां

माधवराव दक्षिण-भारतमें मैसूर नगरके रहनेवाले एक नवयुवक शिल्पी हैं। उन्होंने कुछ मूर्तियाँ बनाई हैं, जिन्हें देखकर इस बातकी पूरी आशा है कि भविष्यमें, यदि वे उन्नति करते गये, तो वे एक प्रतिभाशाली शिल्पी हो जायँगे। उनकी दो कृतियाँ यहाँ प्रकाशित की जाती हैं। एक कृति है महाराष्ट्र-केशरी महाराज शिवाजीकी मूर्ति, और दूसरी है उनके छोटे भाईकी मूर्ति। दोनों मूर्तियाँ बड़ी सुन्दरतासे बनाई गई हैं।

उनका देहान्त। ८।

सम्पादकीय विचार

हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें कला-प्रवृत्ति

यह बात हमें लज्जा-पूर्वक स्वीकार करनी पड़ेगी कि हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें कला-सम्बन्धी प्रवृत्तिका लगभग अभाव है। हम लोगोंकी रुचि परिष्कृत नहीं है। किसी बड़े आदमीके कमरेमें जाकर आप उनके चित्रोंको देखिये। भद्दी और भोंडी तसवीरें बेढंगे तौरपर टँगी हुई दीख पड़ेंगी। हमें अच्छी तरह याद है कि एक बार हम इन्दौरके एक राजाधीशके सुसज्जित कमरेको देखनेके लिए गये थे। वहाँ जाकर हमें कला-विहीन नग्न चित्र दीख पड़े! सच बात तो यह है कि हिन्दी-भाषा-भाषी धनाढ्य सम्कृतिकी दृष्टिसे अभी अन्य प्रान्तोंके धनाढ्योंकी अपेक्षा बहुत पीछे हैं। साधारण जनतामें भी कला-सम्बन्धी सुरुचिका प्रायः अभाव है। इसमें दोष किसका है? दोष है हमारी शिक्षा-पद्धतिका और हम शिक्षित कहलानेवालोंका। हमारा सम्पादक-समुदाय भी इस दोषसे मुक्त नहीं हो सकता, बल्कि यों कहना चाहिए कि हम लोग तो खास तौरसे अपराधी हैं। यदि हम लोगोंका यही अपराध होता कि हम कला-सम्बन्धी सुरुचिके प्रचारका उपाय नहीं करते, तो भी कोई बात थी। हम लोग तो भद्दे चित्र छाप-छापकर रुचिको और भी उल्टा बिगाड़ रहे हैं। एक तो हम लोगोंके पास प्रायः साधन नहीं हैं, और जिनके पास साधन हैं भी, उनमें इतना उत्साह और इतनी योग्यता नहीं कि वे जनताको कुछ सिखला सकें। दूसरेकी आलोचना करनेसे पहले हम स्वयं अपना ही दृष्टान्त देते हैं। भारतवर्षमें शायद ही कोई ऐसा पत्र हो, जिसके कार्यालयमें कला-सम्बन्धी इतने सुन्दर चित्र उपस्थित हों, जितने 'माडर्न रिव्यू' आफिसमें हैं। पिछले तीन वर्षोंमें हमने एक सौ तेरह रंगीन चित्र 'विशाल-भारत' में छापे हैं। यदि हम प्रत्येक चित्रका परिचय ठीक तरहसे दे सकते, उसकी खूबियाँ पाठकोंको बतला सकते, तो अब तक 'विशाल-भारत' के पाठकोंको कुछ-न-कुछ कला-विषयक ज्ञान हो गया होता, पर स्वयं इस विषयमें अनभिज्ञ होनेके कारण हम दूसरोंको क्या सिखा सकते थे? खैर, अपने पापका प्रायश्चित करनेका संकल्प हमने कर लिया है, और यह कला-अंक उसका प्रमाण है। भविष्यमें जो कुछ सेवा इस क्षेत्रमें हमसे बन पड़ेगी, उसे करनेके लिए हम भरपूर प्रयत्न करेंगे।

सम्पादक लोग यदि चाहें, तो साधारण जनताको इस विषयमें काफी सहायता दे सकते हैं। सबसे प्रथम कार्य जो हमें करना चाहिए, वह यह है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनोंके अवसरपर कला-विषयक तीन चार सचित्र व्याख्यान करानेका प्रबन्ध करें। इन अधिवेशनोंपर अनेक पत्रकार इकट्ठे होते हैं और उनको इस प्रकार थोड़ी-बहुत ट्रेनिंग मिल सकती है। यदि हम लोग और कुछ नहीं कर सकते, तो कला-हीन चित्रोंको न छापकर ही जनताका अहित करनेके अपराधसे बच सकते हैं। अभी उस दिन हमने एक मासिक पत्रमें एक स्त्रीका रंगीन चित्र देखा, जो बाल्टी लिए हुए अर्द्धनग्न अवस्थामें एक नलके पास बैठी थी। किस उद्देश्यसे बैठी थी, कुछ समझमें नहीं आया।

एक सप्ताह हुआ, जब हमें सुप्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ श्री अर्द्धेन्द्रकुमार गंगुली महोदयसे इस विषयपर दो घंटे तक बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। एक सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिकाका एक चित्र हमने उन्हें दिखलाया; उसे देखकर वे बोले—"Horrible (भयंकर)। आप इस प्रकारके चित्रोंके प्रकाशनका विरोध क्यों नहीं करते?" उसके बाद उन्होंने कहा—"ऐसा उपाय होना चाहिए, जिससे कलकत्तेके धनाढ्य हिन्दी-भाषा-भाषियोंके मनमें कला-सम्बन्धी अभिरुचि उत्पन्न हो। दूसरे देशोंके धनाढ्य कलाके संरक्षक बनकर बड़ा देशोपकार करते हैं, पर हमारे यहाँके धनाढ्य कलाके दुश्मन हैं!"

इस अंकमें पाठक श्रीयुत बचुभाई रावलके 'गुजरातमें कला-सम्बन्धी नवीन जाग्रति' सम्बन्धी लेखको पढ़ेंगे। उसे पढ़कर हमारे हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि वह शुभ दिन कब आवेगा, जब हिन्दी-भाषा-भाषी जनतामें भी इसी प्रकारकी जाग्रति उत्पन्न होती। इसमें सन्देह नहीं कि जब हिन्दी-भाषा-भाषी जाग्रत हो जायँगे, तो वे अन्य प्रान्तीय भाषा-भाषियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक काम कर दिखावेंगे। राजपूताना, बुन्देलखण्ड, मध्यभारत इत्यादिके जितने राजा-महाराजा हैं, उनमें ६० फी-सदी हिन्दी-भाषा भाषी हैं; और वैसे भी हिन्दी बोलनेवाले आदमियोंकी संख्या दस करोड़से ऊपर है।

सौभाग्यकी बात है कि कुछ धनी-मानी सज्जनोंका ध्यान इस ओर गया है। कितने ही वर्षोंसे श्री पूरण-चन्द्र नाहर, एम० ए०, कला-सम्बन्धी उपयोगी वस्तुओंका संग्रह कर रहे हैं, और उनका यह संग्रहालय वास्तवमें दर्शनीय है। हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए वह एक तीर्थ स्थान है। उधर काशीमें श्री राय कृष्णदासजीने दस वर्षसे जिस लगन और परिश्रमके साथ 'कला भवन'का निर्माण किया है और जितना रुपया इस महत्त्वपूर्ण कार्यमें लगाया है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। हम इसे अपना दुर्भाग्य मानते हैं कि हमने अभी तक इस संग्रहालयके दर्शन नहीं किये, यद्यपि काशी जानेका अवसर इस बीचमें हमें कई बार मिला। सुप्रसिद्ध कला-प्रेमी श्रीयुत एन० सी० मेहता, आई० सी० एस०.ने हमें आदेश दिया था कि कला-विषयक कार्यमें आप श्री राय कृष्णदासजीसे पूरी पूरी सहायता लीजिये, और श्रीयुत गंगुली महोदयने भी हमसे कहा—"उत्तर भारतमें श्री राय कृष्णदासजीको छोड़कर और मैं किसी ऐसे हिन्दी भाषा-भाषीको नहीं जानता, जो इस विषयमें आपकी सहायता कर सके। उनका इस विषयका प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है।"

हमारे लिए सचमुच यह लज्जाकी बात है कि हम अपने आदमियोंका मूल्य तब समझते हैं, जब दूसरे आदमी हमें समझावें! मि० मेहता गुजराती हैं और श्री गंगुली बंगाली। अपने अज्ञानका तर्क पेश करके इस जुर्मसे हम लोग बरी नहीं हो सकते। जनताकी सर्वाङ्गीन उन्नतिके लिए प्रयत्न करना सम्पादकका कर्तव्य है, और सर्वसाधारणमें कला सम्बन्धी अभिरुचि उन्नत करना भी इसके अन्तर्गत है; यह बात अब हमारी अक्लमें आने लगी है, पर जहाँ हम अपने अपराधको स्वीकार करते हैं, वहाँ हम यह भी कहेंगे कि जो लोग इस विषयके विशेषज्ञ हैं, उनका भी कुछ फर्ज़ है। नोन, तेल और लकड़ीकी चिन्तामें पड़े हुए और अनेक गोरख-धंधोंमें फँसे हुए पत्रकारोंके हृदयमें कलाभिरुचि उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन है, पर यह कठिन कार्य विशेषज्ञ महानुभावोंको करना ही पड़ेगा। पत्रकार जनताके शिक्षक हैं, और पहले इन शिक्षकोंको ही सबक सिखाना होगा।

प्रान्तीय भाषा-भाषी कलाभिज्ञोंसे भी हमें एक प्रार्थना करनी है: परोपकारकी दृष्टिसे ही आप लोगोंको हमारी मदद करनी चाहिए। जब तक हिन्दी-भाषा-भाषी इस विषयमें पिछड़े हुए हैं, तब तक भारतमें कला-सम्बन्धी पूर्ण जाग्रति होना असम्भव ही है। यदि हम लोगोंकी रुचि इस विषयमें असंस्कृत रही, तो फिर इसका परिणाम यह होगा कि आप लोगोंके यहाँ जो निकृष्ट कलाके उपासक हैं, वे हिन्दी-भाषा भाषियोंको ठगकर आपके किये-कराये कामको चौपट कर देंगे। आपके थर्ड-क्लास आर्टिस्ट और हमारे कला-विहीन धनाढ्य इन दोनोंका सहयोग सच्ची-कलाकी उन्नतिके लिए अत्यन्त विघातक सिद्ध होगा।

पर हमें अपनी मातृ-भाषाके बोलनेवालोंपर पूर्ण विश्वास है। हिन्दीवालोंके जागने भरकी देर है, फिर इनका मुकाबला शायद ही कोई कर सके। जितना विस्तृत क्षेत्र हम लोगोंके पास है, उतना भारतकी किसी अन्य भाषावालोंके पास नहीं। प्राचीन और अर्वाचीन कलामें हिन्दीवालोंने इस दिशामें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, और कोई कारण नहीं कि भविष्यमें वे फिर वैसा ही न कर सकें।

जब वसन्त आता है, तो उपवनके सभी वृक्ष नवीन रूप धारणकर अपनी-अपनी भेंट उसके सम्मुख रखते हैं। ऋतुराज

स्वराज्यके आगमनके उपलक्ष्यमें हमें भी प्रत्येक क्षेत्रमें—साहित्यिक, सामाजिक तथा कला-विषयक क्षेत्रोंमें—अपनी सुन्दरसे सुन्दर कृति लेकर उपस्थित होना चाहिए। 'विशाल-भारत' भी अपने तुच्छ पत्र-पुष्प-फल लेकर उपस्थित है। कला-अंकका यही उद्देश्य है।

—

'विशालभारत' का चतुर्थ वर्ष

इस अंकसे 'विशाल-भारत' को चतुर्थ वर्ष प्रारम्भ होता है। पिछले तीन वर्षोंमें इसने हिन्दी साहित्यकी जो अल्प सेवाकी है उसका वर्णन करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं। इन तीन वर्षोंमें 'विशाल-भारत'ने अपने पाठकोंकी सेवामें ५०२४ पृष्ठका रीडिंग मेटर, ११३ रंगीन चित्र और १४७५ सादे चित्र अर्पित किये हैं। इस प्रकार औसतमें 'विशाल-भारत' १६७५ पृष्ठका रीडिंग मेटर, ३८ रंगीन चित्र और ४९१ सादे चित्र प्रति वर्ष पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता रहा है।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि 'विशाल-भारत' में निकले हुए चित्र-कलाकी दृष्टिसे अत्युच्च कोटिके रहे हैं। यदि इन ११३ चित्रोंको संग्रह करके बारह-बारह चित्रोंका अलबम बनाया जाय तो इस प्रकारके नौ अलबम बनेंगे, जिनमेंसे प्रत्येक दो रुपयेसे कमका न बैठेगा। इस प्रकार अठारह रुपयेके तो केवल रंगीन चित्र ही 'विशाल-भारत'के ग्राहकोंकी सेवामें पहुँच चुके जब कि उनका तीन वर्षका मूल्य कुल जमा १८) ही होता है। प्रथम वर्षमें एकआध बार छोड़कर हमने रीडिंग मेटरके साथ विज्ञापन कभी नहीं दिया। अन्य मासिक पत्रों तथा पत्रिकाओंमें महिलाओंके चित्रोंके सामने ही घासलेटी विज्ञापन पढ़कर सचमुच आश्चर्य और खेद होता है। हमने सदा ही यह आदर्श अपने सम्मुख रखा है कि अपनी तुच्छ योग्यतानुसार सुन्दरसे सुन्दर रुचिपूर्ण मानसिक भोजन हम अपने ग्राहकोंकी सेवामें पहुँचाते रहें। इसमें हम कहाँ तक सफल हुए हैं इसका निर्णय 'विशाल-भारत' के पाठक ही कर सकते हैं।

विद्वत्ता, बहुज्ञता और अनुभव तथा योग्यतामें हम अपने सहयोगियोंका मुकाबला भले ही न कर सकें, पर जिस बातमें हम उनमें पीछे नहीं रहना चाहते वह है सेवा भाव। गुरू बननेके हम घोर विरोधी हैं और न हमें उपदेशक बनाना ही पसंद है। 'विशाल-भारत' को हम पाठकोंका सखा बनाना चाहते हैं जो अपने सत्संग द्वारा अप्रकाश्य रूपसे उनकी सेवा करे।

'विशाल भारत'ने कभी दलबन्दीसे काम नहीं किया और न वह किसी राजनैतिक अथवा साहित्यिक दलबन्दीमें पड़ना चाहता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि दलबन्दीमें पड़ना अपने व्यक्तित्वको खो देना है। 'विशाल-भारत'ने, बिना इस बातकी पर्वाह किये कि इससे अमुक दलवाले प्रसन्न होंगे अथवा अप्रसन्न, अपनी सम्मति प्रकट की है और वह बराबर ऐसा ही करता रहेगा। जिन सज्जनोंकी 'विशाल भारत' पर अत्यन्त कृपा है वे भी इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि किसी अनुचित कार्यमें वह उनका कभी साथ न देगा। जिनके प्रति हमारे हृदयमें अत्यन्त श्रद्धा है, उनकी भी साहित्यिक भूलोंका हमने खंडन ही किया है। पिछले तीन वर्षोंमें 'विशाल-भारत' से अनेक भूलें हुई हैं, पर जब-जब हमें उनका पता लगा है, हमने अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा-याचना की है।

ईश्वर-कृपासे 'विशाल-भारत' को अनेक विरोधी भी मिल गये हैं, जो मौक़े बेमौक़े उसका विरोध किया करते हैं। इससे 'विशाल-भारत' को कुछ आर्थिक हानि भी पहुँची है, पर ऐसे सज्जनोंको, जो हमारे सदुद्देश्यपर ही आशंका करते हैं, उत्तर न देना ही हम सर्वोत्तम उत्तर समझते हैं। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जो महानुभाव निराधार आक्षेप करते हैं, वे अपनी हानि अधिक करते हैं, हमारी कम। फिर भी हम अपने इन अमित्रोंके अत्यन्त कृतज्ञ हैं, क्योंकि उनके द्वारा हमें आत्म-निरीक्षणके अवसर निरन्तर मिलते रहते हैं।

—

चतुर्थ वर्षका कार्यक्रम

इस वर्षमें हम 'विशाल भारत' को और भी अधिक सचित्र बनानेका प्रयत्न करेंगे। कला विषयक उत्तमोत्तम लेख अब 'विशाल-भारत' में बराबर निकलते रहेंगे। लेखोंके चुनावमें तो हम पहलेसे ही सावधानीसे काम लेते रहे हैं, इस वर्ष हम और भी सतर्क रहेंगे। प्रारम्भसे ही हमारी यह नीति रही है कि थर्ड क्लास लेखोंको छापनेके बजाय अन्य भाषाओंके उच्चकोटिके लेखोंका अनुवाद पाठकोंके सम्मुख रखा जाय। फिर भी हमारा यह विश्वास है कि देश तथा विदेशके जितने प्रतिष्ठित लेखकोंने पिछले तीन वर्षोंमें विशेषत: 'विशाल-भारत'के लिए जितने लेख लिखे हैं, उतने हिन्दीके किसी अन्य मासिकपत्रके लिए शायद ही लिखे हों। इस वर्षमें हम इस प्रकारके विशेष लेखोंको प्राप्त करनेका अधिकाधिक प्रयत्न करेंगे।

अन्तमें हम केवल यही कहना चाहते हैं कि 'विशाल-भारत' पूर्ण उत्साहके साथ अपने चतुर्थ वर्षमें प्रवेश करता है। यह वर्ष 'भारत तथा 'विशाल-भारत' के लिए कल्याणकारी हो यही परमात्मासे प्रार्थना है।

क्षमा याचना

हमें इस बातका खेद है कि यह विशेषांक सन् १६३० में प्रकाशित न हो सका। इसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। प्रति वर्ष दो विशेषांक निकालनेका विचार हमने किया था और ऐसा विज्ञापन भी दे दिया गया था, पर गत वर्ष हम केवल एक ही विशेषांक (प्रवासी अंक) निकाल सके। इस वर्ष हम इस कमीको पूरी करनेका प्रयत्न करेंगे।

कृतज्ञता प्रकाश

इस विशेषांकके सम्पादनमें हमें अनेक महानुभावोंसे सहायता मिली है और उनके प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। सुप्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ श्रीयुत अर्द्धेन्दुकुमार गंगुली, विख्यात चित्रकार श्री प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय, गुजरातके होनहार आर्टिस्ट श्री कनु देसाई, गुजराती 'नवचेतन' के विद्वान सम्पादक श्री चांपशी विट्ठलदास उदेशी, मार्मिक कार्टूनिस्ट श्री हरिपद राय, तथा माडर्न रिव्यूके सुयोग्य सहकारी सम्पादक श्री नीरदचन्द्र चौधरी इत्यादिने अपने परामर्शोंसे हमें अनुगृहीत किया है। श्री रविशंकर रावल सम्पादक 'कुमार' को हम किन शब्दोंमें धन्यवाद दें? उनकी अमूल्य सहायताके बिना यह अंक अपूर्ण ही रहता। जिन लेखकों तथा कवियोंने अपनी रचनाओंसे इस अंकको अलंकृत किया है उनके हम ऋणी हैं। अधिक क्या लिखें?

—व्रजमोहन वर्मा

चित्र-परिचय

अजन्ताके कला मंडपमें पूजा

भारतीय चित्रकलाके इतिहासकी नींव अजन्ताकी गुफाओंमें है। अबसे डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व न जाने कितने बौद्ध-भिक्षु इन गुफाओंमें रहे होंगे। आजकल ये गुफाएँ निर्जन खाली पड़ी हैं। इस चित्रमें चित्रकार श्रीयुत ग्रिफिथने यह कल्पना करनेकी कोशिश की है कि जिस समय अजताकी गुफाएँ आबाद रही होंगी, उस समय वहाँ बौद्ध उपासक किस प्रकार उपासना करते रहे होंगे। चित्रमें अजन्ताकी दीवारों, चौखटों, छतों आदिमें जो चित्र-विचित्र कारीगरीका काम दिखाया गया है, उससे अजन्ताके वास्तविक कला-सौन्दर्यका अच्छा आभास मिलता है। मिस्टर ग्रिफिथ बम्बईके आर्ट-स्कूलके प्रिन्सिपल थे और उन्हें सरकारकी ओरसे अजन्ताके चित्रोंकी नक़ल करनेका काम सौंपा गया था, अतः उन्हें अजन्ताकी कलाका पूरा ज्ञान और अनुभव था। चित्रमें उपासकोंके चेहरोंसे श्रद्धा और भक्ति टपक रही है। एक उपासक पूजाका सामान लेकर भीतर घुस रहा है, दूसरा द्वारके बाहरसे ही दण्डवत कर रहा है और तीसरा वृद्ध घुटनेके बल बैठा हाथ जोड़ रहा है। गुफामें सूर्यका प्रकाश आ रहा है। चित्रकारने प्रकाश और छाया अंकित करनेमें भी कमाल किया है।

'विशाल-भारत' में जो चित्र प्रकाशित किया जाता है, उसमें दो चित्रकारोंकी प्रतिभा सम्मिलित है। मूल चित्र तो मिस्टर ग्रिफिथने बनाया था और उनके चित्रकी एक नक़ल गुजरातके प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत रविशंकर रावलने उतारी थी। 'विशाल-भारत' का चित्र इसी प्रतिलिपीका है। रावल महाशयने भी नक़ल करनेमें कमाल दिखाया है, क्योंकि चित्रको देखकर सहसा कोई यह नहीं कह सकेगा कि यह किसी चित्रकी नक़ल है। रावल महाशयका यह चित्र कई फीट लम्बा है।

—

जीवन-अश्रु

यह चित्र बंगालमें भारतीय-चित्र-कलाके पुनरुद्धारक श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरकी एक महान कल्पना है। एक युवती एक कमल-पत्रपर अपने आँसू संचित कर रही है। यह तो सभी जानते है कि कमल-पत्रपर पानीकी बूँदें कभी स्थिर नहीं रहतीं। अतः अश्रु भी कमल-पत्रपर पानीके कणोंकीभाँति अस्थिर हैं। युवतीके अश्रु उसके जीवनके सुख-दुख है, हर्ष-विषाद हैं। जिस प्रकार कमल पत्रपर पानीकी बूँदें स्थिर नहीं रहतीं, उसी प्रकार संसारके सुख-दुख भी कभी स्थिर नहीं रहते, उनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। चित्रकारने युवतीका रोदनमान मुख, और कमल-पत्रपर मोतियोंके समान पृथक् पृथक् अश्रु-बिन्दुओंको बड़ी सुन्दरतासे अंकित किया है।

—

एकतारा

यह चित्र शान्ति-निकेतनके कला-भवनके आचार्य श्री नन्दलाल बसुकी तूलिकाकी सृष्टि है। एक साधू एकान्तमें बैठा हुआ एकतारा बजाकर अपनी आत्माकी संगीत-पिपासाको शान्त कर रहा है। उसने पैरमें घुँघरू बाँध रखे हैं, जिनसे वह ताल देता जाता है। संगीतमें वह इतना अधिक मस्त है कि उसे दीन दुनियाँकी कोई खबर नहीं। एक हाथमें एकतारा है। दूसरे हाथकी चुटकी बजानेकी मुद्राने तो चित्रमें एक अलौकिक जीवन डाल दिया है। जब कोई अच्छा संगीतज्ञ गाना गाता है तो एक प्रकारका समाँ बँध जाता है। नन्दलाल बाबूने साधुकी एकाग्रता, उसके मुखपर संगीतमें तल्लीनताके भाव, हाथकी अनोखी मुद्रा, पैरसे ताल देना आदि बातें ऐसे उत्कृष्ट ढंगसे अंकित की हैं कि दर्शकोंको चित्र देखते ही संगीतका समा बंधा हुआ प्रत्यक्ष

नज़र आने लगता है ! उसे संगीतका Rhyth-ym लयका अनुभव होने लगता है। यह चित्र बसु महाशयकी उत्कृष्ट कृतियोंमें से है।

—

हर-पार्वती

यह चित्र श्री प्रमोदकुमार चटर्जीकी कृति है। प्रमोद बाबूका परिचय अन्यत्र प्रकाशित है। प्रमोद बाबूके चित्रोंमें उनकी निजी विशेषता और उनका पृथक व्यक्तित्व रहता है। चित्रोंकी रेखाएं दृढ़ होती हैं और उनकी अंकित मूर्तियोंके शरीर स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल और सुघड़ होते हैं। वे कुरूप और मरियल आकृति नहीं बनाते, इस चित्रमें भगवान शिव और भगवती पार्वती, एक दूसरेका आलिंगन किये हुए दिखाये गये हैं। हर-पार्वतीके मुखोंकी दीप्ति उनके चारों ओर खिंचे हुए आलोकमय घेरेसे प्रकट हो रही है। चित्र ऐसी सुन्दरतासे अंकित किया गया है कि उसे देखकर दर्शकोंके मनमें श्रद्धा और पवित्रताके भाव ही उत्पन्न होते हैं। चित्रके अधोभागको अस्पष्ट बनाकर चित्रकारने चित्रमें एक विचित्र प्रभाव उत्पन्न कर दिया है।

—

सरायमें

यह चित्र लखनऊ आर्ट-स्कूलके प्रिन्सिपल श्रीयुत असित हल्दारकी कृति है। सरायका तरीक़ा मुसलमानी देशोंमें प्रचलित था। दिन भर यात्रा करके दो थके-माँदे व्यक्ति—पुरुष और स्त्री--सन्ध्या-समय एक सरायमें पहुँचते हैं। वे थकावटके मारे इतने चूर हैं कि सरायमें बैठते ही ऊँघने लगते हैं! उनके चेहरोंसे थकावट और यात्राके चिह्न फूटे पड़ते हैं। उनका यत्किंचित् असबाब उनके आगे रखा हुआ है। सरायके बाहर द्वितीयाका क्षीण चन्द्रमा आकाशमें निकला हुआ है। चन्द्रमाकी कुछ रुपहली किरणें सरायके भीतर प्रवेश कर यात्रियोंके कपड़ोंपर पड़ रही हैं। चित्रकारने यात्रियोंके कपड़ोंपरकी सिकुड़नोंपर इन रजत रश्मियोंको बड़ी सुन्दरतासे दिखाया है। सरायका आकार और उसके बाहर दूरपर दिखाई देनेवाली इमारतें सब मुसलमानी ढंगकी हैं। चित्रकार अपने भाव प्रकट करनेमें पूर्णरूपसे सफल हुआ है।

—

पांडु और माद्री

केवल काले रंगके--अथवा अन्य किसी एक ही रंगके—रेखाहीन धब्बे डालकर उन धब्बोंसे किसी व्यक्ति या वस्तुकी आकृति अंकित करना एक विशेष प्रकारकी चित्र-कला है। इस चित्रकारीको अंग्रेज़ीमें 'सिलहुट' (Silhoutte) कहते हैं। साधारण चित्रोंमें रेखाओंके द्वारा अथवा रंगों और प्रकाशको आवश्यकतानुसार हलका-गहरा करके चित्रकार अपनी आकृतियोंके भाव, सौन्दर्य, उम्र आदि बातें दिखलाया करते हैं, परन्तु 'सिलहुट' या छाया चित्रमें रेखाओं, रंगों अथवा प्रकाशकी कमी-ज़्यादतीको कोई स्थान नहीं होता। उसमें चित्रकारको केवल एक काले धब्बेसे ही सब बातें प्रकट करनी पड़ती हैं।

गुजरातके नवयुवक, परन्तु प्रतिभाशाली चित्रकार श्री कनु देसाईने 'सिलहुट' बनानेकी कलामें अच्छी दक्षता प्राप्त की है। पांडु और माद्रीका चित्र श्री देसाईका ही बनाया हुआ 'सिलहुट' है। वनवासी राजा पांडु और उनकी महिषी माद्री—नकुल-सहदेवकी माता—दोनों वनमें एक वृक्षके नीचे बैठे हुए हैं। माद्रीका शरीर केवल एक काला धब्बा-मात्र है; मगर चित्रकारने इस काले धब्बेमें इतना सौन्दर्य, इतनी कोमलता, इतनी सुकुमारता भर दी है, जो देखते ही बनती है। इस चित्रके सम्बन्धमें प्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ श्री एन० सी० मेहता, आई० सी० एस०,ने लिखा है—"पांडु और माद्रीके चित्रमें आकृतियोंकी मुद्रा और भावभंगी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। माद्रीकी आकृतिके समान सुकुमार और मनोमोहक रमणी-मूर्ति और क्या हो सकती है? कमनीय माद्रीके साथ वनका जीवन भी बहुत सहज और आनन्दप्रद मालूम होता होगा; परन्तु हाय! वह जीवन आरम्भ होते ही समाप्त

हो गया ! बेचारे श्राप-ग्रस्त राजाको केवल एक क्षणके प्रेम—एक क्षणके स्वर्गीय आनन्द—के मूल्यमें अपना जीवन देना पड़ा। राजाकी उदास, गम्भीरता-पूर्ण और श्राप-ज्ञानके भारसे दबी हुई मूर्ति तथा माद्रीके सुकुमार पुष्पित स्त्रीत्वने चित्रमें एक विचित्र विरोधाभास पैदा कर दिया है।''

चित्रमें पेड़ और उनपर बैठी हुई चिड़ियोंने चित्रके सौन्दर्यमें एक जान-सी डाल दी है।

—

चिन्तन

पुराने समयका कोई सम्भ्रान्त मुसलमान अमीर मसनद-तकिया लगाये हुए आरामसे बैठा कोई छोटीसी पुस्तक पढ़ रहा था। एकाएक पुस्तकमें उसने कोई ऐसी बात पढ़ी, जिसने उसका चिन्ता-स्रोत किसी दूसरी ओर प्रवाहित कर दिया, और वह पुस्तकको नीची करके गम्भीर विचारोंमें मग्न हो गया। चित्र-शिल्पी श्रीयुत वीरेश्वर सेनने यही बात अपने 'चिन्तन' नामक चित्रमें अंकित की है। सम्भ्रान्त व्यक्तिकी वेश-भूषा मुग़ल-कालीन अमीरोंकी है। उसके मुखपर गम्भीरताके भाव हैं। वह चिन्तामें ऐसा विभोर है, मानो वह अपने आसपासके संसारसे बिलकुल बेखबर है। उसकी शून्य-दृष्टिसे ऐसा मालूम होता है, मानो वह अपने मानस-नेत्रोंसे किसी बहुत दूरकी अज्ञात वस्तुको देख रहा है। चित्रमें आँखें यद्यपि छोटी हैं, मगर वह ऐसे ढंगसे अंकित की गई हैं, जिनसे उस व्यक्तिकी ध्यान-मग्न-अवस्था प्रत्यक्ष हो जाती है। मसनद, तकिये और चन्दोवेमें यद्यपि बेल-बूटे बहुत थोड़े ही अंकित किये गये हैं, परन्तु वे ऐसे सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं, जिनसे इन चीज़ोंका सौन्दर्य बहुत बढ़ जाता है। चित्रमें रंगोंका समावेश भी बहुत अच्छा है।

—

हंस-दूत

नल और दमयन्तीकी सुन्दर प्रेम-कहानी सभी भारतीयोंको ज्ञात है। यहाँ तक कि हमारे भारतीय मुसलमान भाई भी नलो-दमनके क़िस्सेको भली भाँति जानते हैं। दमयन्ती राजा नलसे प्रेम करती थी। उसने अपने स्वयम्बरके पहले अपने इस प्रेमका सन्देश एक राज-हँसके द्वारा राजा नलके पास भेजा था। हंस दूत नामक चित्रमें चित्रकार श्री रामकिंकरदासने यही दृश्य अंकित किया है। दमयन्ती बैठी हुई हंसपर प्यारसे हाथ फेर रही है। उसके पीछे उसकी एक परिचारिका है। हंसपर दुलार जतलानेके लिये उसने अपने गलेका हार हंसके गलेपर और अपना वस्त्र हंसकी पीठपर डाल रखा है। ऐसा मालूम होता है कि हंससे बात करते-करते उसे सहसा नलका स्मरण हो आया है और वह शून्य दृष्टिसे उन्हींके ध्यानमें विभोर हो गई है। दमयन्तीकी आकृतिमें चित्रकारने एक विशेष सुकुमारता उत्पन्नकी है। उसके चेहरेपर एक अनोखा लावण्य है। बिखरी हुई अलक राशि और उनमें खोंसा हुआ कमल एक अनुपम छटा दिखला रहा है। वेष-भूषा और अलंकार आदि भी विशेषता पूर्ण है, परन्तु सबसे सुन्दर वस्तु है हंसका चित्रण। श्रीराम किंकर दासकी यह कृति बड़ी सुन्दर हुई है।

—

अहल्या

अहल्या गौतम ऋषिकी स्त्री थीं, और अपने पतिके श्रापसे पत्थरकी हो गई थीं। भगवान रामचन्द्रने विश्वामित्रके साथ, उनके यज्ञकी रक्षा करनेके लिए जाते समय, उन्हें श्रापसे मुक्त किया था। अहल्याका यह चित्र श्री सोमालाल शाहका अंकित किया हुआ है। चित्रित आकृतिका सौन्दर्य, भोलापन और चेहरेका निखार स्वतः प्रकट है।

—

रेगिस्तानमें शाम

यह चित्र भी श्री कनु देशाईकी उत्कृष्ट कृति है। दो ऊँटोंपर सवार यात्री रेगिस्तानमें जा रहे हैं। जाते-जाते उन्हें शाम हो गई। शामके धुँधले प्रकाशमें उनकी अस्पष्ट आकृतियाँ दिखाई दे रही हैं। उनके ऊँटोंके देखनेसे यह मालूम होता है कि वे मंज़िलपर पहुँचनेके लिए व्यग्र हैं। सायंकालका धुँधला प्रकाश बड़ी सुन्दरतासे अंकित किया गया है। चित्रमें ऐसी वास्तविकता है कि देखनेवालेको स्वयं रेगिस्तानकी रेतका अनुभव होने लगता है।

सैनिकका स्वप्न

जो मनुष्य जिस चीज़का काम करता है, वह अकसर उसमें इतना विभोर हो जाता है कि उसे उस कामके सिवा संसारमें अन्य बातोंका पता ही नहीं रहता। उसे स्वप्नमें भी वही बातें सूझती हैं। इसी बातको चित्रकारने 'सैनिकका स्वप्न' में बड़ी सुन्दरतासे अंकित किया है। प्राणोंको हथेलीपर रखकर घूमनेवाले, युद्ध व्यवसायी सैनिकोंको स्वप्नमें क्या दिखाई देगा, यही चित्रकारकी कल्पनाका विषय है। लड़ाईका मैदान है, रातका समय है, मीलों तक सैनिक पड़े सो रहे हैं। उनकी संगीनें सैनिक-ढंगपर उनके पास खड़ी की गई हैं। कुछ दूर एक स्थानपर आग जल रही है। दाहनी ओर कुछ फ़ौजी झोले पड़े हैं, किसी सिपाहीका एक पालतू कुत्ता भी अपने मालिककी बग़लमें पड़ा हुआ है। उधर स्वप्न-लोकमें सैनिकगण विजय-यात्राके दृश्य देख रहे हैं! वे देखते हैं कि वे किसी शत्रु-भूमिमें झंडे उड़ाते हुए विजयोल्लासमें मस्त होकर प्रवेश कर रहे हैं। सैनिकोंके इस सुख-स्वप्नको चित्रकारने चित्रके ऊपरी भागमें—आकाशमें—बड़ी अच्छी तरह अंकित किया है। चूँकि यह विजय-यात्रा स्वप्न-राज्यकी कल्पना है, इसीलिए वह आकाशमें अस्पष्ट रूपसे चित्रित की गई है। यह चित्र एक प्रसिद्ध फ्रेंच चित्रकार एडवर्ड देताइ (Edourad Detaille) की रचना है।

—

अस्त्र-साधना

जिस प्रकार भारतवर्षमें मुग़ल-शासन-कालमें मनसबदारीकी प्रथा प्रचलित थी, उसी तरह मध्य-कालीन यूरोपमें युद्ध-व्यवसायी पुरुषोंकी एक सम्भ्रान्त श्रेणी थी, जो 'नाइटहुड' के नामसे प्रसिद्ध है। नाइट लोग अपनी वीरताके लिए प्रसिद्ध थे। नाइट लोगोंकी पोशाक, उनका व्यवहार और अदब-क़ायदोंके पृथक् नियम बने हुए थे। नाइट बननेके पूर्व लोगोंको 'नाइटहुड'की दीक्षा लेनी पड़ती थी। दीक्षासे पहली रातको दीक्षार्थीको एकान्तमें रातभर जगकर प्रार्थना करनी पड़ती थी। अस्त्र-साधना नामक चित्रमें यही बात अंकित की गई है। एक वीर नवयुवक नाइट बननेका इच्छुक है। वह एकान्तमें प्रार्थनालय (आल्टर) के सामने घुटने टेककर बैठा हुआ प्रार्थना कर रहा है। उसके अस्त्र, शिर-त्राण इत्यादि उसके सामने रखे हुए हैं। उसके हाथमें उसकी तलवार है। युवक शक्ल सूरतसे साहसी, दृढ़-स्वभाव, बलिष्ठ और वीर मालूम होता है, जीवनके अज्ञात क्षेत्रमें, पदार्पण करते समय और युद्ध-व्यवसायकी दीक्षा लेते समय मनमें कैसे विचार उत्पन्न होते होंगे, इसका आभास चित्रके मुखसे मिलता है। यह चित्र एक फ्रेंच चित्रकार जीन पेटि (Jean Petit) की कृति है।

—

'विशाल-भारत' का कवर-पेज

चित्र-कलामें एक वस्तु होती है, जिसे आलंकारिक कला (Decorative Art) कहते हैं। आलंकारिक कलाका उद्देश्य सजावटके द्वारा किसी वस्तुकी सौन्दर्य वृद्धि करना है। 'विशाल-भारत'के कवर-पृष्ठपर जो चित्र प्रकाशित किया जाता है, वह आलंकारिक कलाका एक उत्तम उदाहरण है। चित्रमें एक सुन्दरी युवती मनोहर कटि-भंगीसे खड़ी हुई चुटकी बजाकर अपने पालतू मयूरको पुचकार रही है। मयूर भी अपनी सौन्दर्यशालिनी मालकिनकी लाड़-भरी पुचकारपर मस्त होकर नाच उठा है! पीछे एक स्थानपर एक देवीकी प्रतिमा स्थापित है। रमणीका सुन्दर मुखड़ा, उसकी मनोहर अंग-भंगी, मयूरका मस्तीभरा नाच और सजावटका काम आदि सब बातें बड़ी ख़ूबीसे अंकित की गई हैं। यह चित्र बंगालके दो प्रतिभाशाली चित्रकारोंकी तूलिकासे निकला है। रमणीकी आकृति आदि श्री यतीन्द्रनाथ सेनकी अंकित की हुई है और पिछले भागकी सजावट और सुन्दर कारुकार्य श्री प्रमोदकुमार चटर्जीकी तूलिकाकी कल्पना है।

EDITED, PRINTED & PUBLISHED BY BENARSI DAS CHATURVEDI, AT THE PRAVASI PRESS.
120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.

"विशाल-भारत"

शिल्पी—श्री नन्दलाल बसु

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ४ भाग ७ } फरवरी १९३० ; फागुन १९८७ { अङ्क २ पूर्णाङ्क ३८

स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू

ब्रजमोहन वर्मा

गत ६ फरवरीको, दिनके ११ बजे, लखनऊके कालाकांकर-हाउससे एक शव निकला। शवको कंधेपर उठाये हुए एक ओर संसारका सर्वश्रेष्ठ पुरुष गांधी था, दूसरी ओर भारतका राष्ट्रपति—जवाहरलाल नेहरू—और पीछेकी ओर दो प्रसिद्ध डाक्टर। बाहर हज़ारों स्त्री-पुरुष-बच्चे हिन्दू मुसलमान, ईसाई, सिख जैन, पारसी सभी चुपचाप आँखमें आँसू भरे टकटकी लगाये खड़े देख रहे थे। ऐसा सन्नाटा छाया था कि सुई गिरनेकी भी आवाज़ सुनाई देती थी। जब लाश बाहर निकली, तो लोगोंके धैर्यका बाँध टूट गया। करुण-क्रन्दनका एक ऐसा हाहाकार उठा, जो काश्मीरसे कन्या-कुमारी तक गूँज उठा! भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक शोकका समुद्र उमड़ पड़ा।

यह लाश स्वतन्त्रताके महान् सेनानीकी थी, यह मुल्ककी आज़ादीके दीवानेका जनाज़ा था, यह राष्ट्रके उस भीष्मका शरीर था, जिसने अपने जीवनकी अन्तिम श्वास तक देश और जातिकी लड़ाई लड़नेमें खर्च की थी, यह उस पुरुष-सिंहका पार्थिव देह थी, जिसे उसके जीवनमें कोई भी शक्ति वशमें नहीं कर सकी थी। स्वतन्त्रताके पुजारी और स्वराज्य-संग्रामके सेनापतिके कफनके लिए देशके झंडेसे बढ़कर क्या हो सकता है? इसीलिए पंडित मोतीलाल नेहरूका शव स्वतन्त्र भारतवर्षके एक बड़े तिरंगे झंडेमें लपटा हुआ था।

लाश मोटरपर रखकर प्रयाग ले जाई गई। लखनऊसे लेकर प्रयाग तक सड़ककी दोनों ओर भारतकी मूक जनता अपने महान नेताको श्रद्धाकी अन्तिम पुष्पांजलि देनेके लिए खड़ी थी।

अबसे पन्द्रह वर्ष पहले प्रयागका 'आनन्द-भवन' आनन्दका निकेतन विलासिताका केन्द्र और वैभवका क्रीड़ाक्षेत्र

पं० मोतीलाल नेहरू

था ; परन्तु आजकल वही 'आनन्द-भवन' राजनैतिक ऋषियोंकी तपोभूमि है, देशके स्वतंत्रता-संग्रामके सेनापतिका शिविर है और सार्वजनिक शक्तिका केन्द्र है।

६ फरवरीको 'आनन्द-भवन'में मृत्युकी भयानक गम्भीरता छाई हुई थी। सहस्रों स्त्री-पुरुष 'आनन्द-भवन'के स्वर्गीय स्वामीके दर्शनके लिए एकत्रित थे। तीसरे पहर एक मोटर आई, जिससे तीन धूलि-धूसरित रोती हुई मूर्तियाँ निकलीं। वे थीं कुमारी इन्दु, कुमारी कृष्णा नेहरू और श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित। थोड़ी देर बाद फूलोंसे ढका हुआ पंडितजीका शव भी आ पहुँचा। शामको ६ बजे भारतीय कांग्रेसके हेड क्वार्टरसे पंडितजीका पार्थिव शरीर महाप्रस्थानके लिए निकाला गया।

इस समय स्वतंत्रताका संग्राम उग्ररूपसे चल रहा है। हम ऐसे स्थानपर पहुँच चुके हैं जहाँसे हमें विजय अपने सामने दीख पड़ रही है। देशका भाग्य तराजूके पलड़ेमें रखा हुआ, राजनैतिक स्थित बड़ी नाजुक और संकटापूर्ण हो

प्रयागमें नई-नई वकालत शुरू करनेवाले नवयुवक मोतीलाल नेहरू

प्रयागके सबसे बड़े वकील और फैशनेबुल सोसाइटीके नेता पंडित मोतीलाल नेहरू (१९०५), जब उनकी कमीज़ें धुलनेके लिए पेरिस जाती थीं।

रही है। देशको इस वक्त आवश्यकता है महान बुद्धिमत्तापूर्ण नेताओंकी जो उसे ठीक रास्तेपर चला सकें। देशमें इस प्रकारका मेधावी नेता अगर कोई था, तो वे पं० मोतीलाल थे। देशको उनकी इस समय जितनी ज़रूरत है उतनी कभी नहीं थी। ऐसी ज़रूरतके वक्त 'आनन्द-भवन' से उनका शव निकलते देखकर बरबस यही कहना पड़ता है—

"जनाज़ा हिन्दका दरसे तेरे निकलता है,
सुहाग क़ौमका तेरी चितामें जलता है!"

× × × ×

पंडित मोतीलाल नेहरूका जीवन एक प्रतिभापूर्ण जीवन है। उसमें जितनी बातें मिलती हैं, वे चरम सीमाकी। एक ओर चरम सीमाका ऐश्वर्य वैभव और भोग-विलास है, तो दूसरी ओर चरम-सीमाका त्याग और तप। इस समय देशमें पंडितजीके समान शक्तिशाली व्यक्तित्ववाला कोई भी पुरुष नहीं है। उनमें लोगोंके पेशवा बननेकी अद्भुत शक्ति थी। उनका व्यवहार ऐसा शिष्ट और अच्छा था, जिससे वे किसी भी समाजमें बड़ी आसानीसे लोकप्रिय हो जाते थे। नौकरशाहीके घोर विरोधी होते हुए भी सरकारी अफसरोंकी प्राइवेट दावतों तथा अन्य सामाजिक अवसरोंपर वे उनसे ऐसी अच्छी तरह मिल-जुल सकते थे, जिससे उन लोगोंको किसी प्रकारकी असुविधा बोध नहीं होती थी। उनमें ऐसी अदम्य शक्ति थी, जिसे देखकर सैकड़ों युवकोंको लज्जित हो जाना पड़ता था। वे ऐसे व्यक्ति थे, जिनके शत्रु भी उनका शत्रु होनेमें अपना सम्मान समझते थे।

एक जर्मन लेखक सी० जेड० क्लोज़ेलने 'बर्लिनर टेजब्लैट' नामक पत्रमें लिखा था:—

"जब पंडित मोतीलाल नेहरू अपना सोनेका चश्मा उतार कर अपने सिरसे खद्दरकी गांधी टोपी उतारते हैं तब वे प्राचीन कालके रोमनोंसे बहुत अधिक मिलते जुलते मालूम

'फ्रिमेसन' की पोशाकमें प० मोतीलाल नेहरू (१८९६)

पंडित मोतीलाल नेहरूका परिवार (१९०८)
बैठे हुए—श्रीमती ब्रजलाल, युवक जवाहरलाल, श्रीयुत ब्रजलाल और यूरोपियन नर्स

पड़ते हैं। वे हाथके कते और हाथके बुने भारतीय खद्दरका लम्बा कपड़ा इस ढंगसे पहनते हैं मानो वह चोग़ा हो। मोतीलाल नेहरू जब अपना सुडौल गढ़ा हुआ दाहना हाथ सलामके लिए ऊपरको उठाते हैं तब ऐसा मालूम पड़ता है मानो वे मुसोलिनीको इस बातका सबक़ सिखा सकते हैं कि ठीक ढगसे रोमन-सलाम कैसे करना चाहिये। इसके पूर्व कि आप यह जान सकें कि मोतीलाल नेहरू किस ढंगके आदमी हैं, वे अपनी उपस्थिति और व्यवहारसे आपका हृदय हर लेते हैं।" मोतीलालजी ऐसी ही शान-बानके आदमी थे।

पंडितजी काश्मीरके एक सारस्वत ब्राह्मण-कुलके रत्न थे। उनका जन्म सन् १८६१ में हुआ था। उनके पिता दिल्लीके कोतवाल थे; मगर पंडितजीके जन्मके तीन मास पूर्व ही उनका देहान्त हो गया था। अतः उनके लालन-पालनका भार उनके बड़े भाई पंडित नन्दलाल नेहरूपर पड़ा।

बालक मोतीलालकी आरम्भिक शिक्षा तत्कालीन प्रचलित प्रथाके अनुसार मुसलमानी मकतबमें हुई थी। बारह वर्षकी अवस्थामें उन्हें अरबी-फारसीका अच्छा ज्ञान हो गया था। बादमें वे कानपुर-गवर्नमेंट हाई स्कूलमें भर्ती हुए, और वहींसे उन्होंने प्रथम श्रेणीमें एन्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की। कालेजकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए वे प्रयागके म्योर सेन्ट्रल कालेजमें दाखिल हुए। वहाँ स्वर्गीय डा० सर सुन्दरलाल और महामना पंडित मदनमोहन मालवीय उनके सहपाठी छात्रोंमें थे। मोतीलालजी बी० ए०की परीक्षामें सम्मिलित न हो सके। उन्होंने उसी समय अपनी भावी जीविकाके लिए वकालतका पेशा निर्धारित किया, और केवल तीन मासके अल्प समयमें क़ानूनका अध्ययन करके उन्होंने उसमें

लन्दनमें पिता और पुत्र (१६०८)

इतनी दक्षता प्राप्त कर ली कि हाई कोर्टकी वकालतकी परीक्षामें वे सर्वप्रथम हुए !

सन् १८८३ में युवक मोतीलालने कानपुरमें वकालत करना आरम्भ किया। केवल तीन वर्षमें ही उन्होंने अपनी प्रतिभासे वहाँके वकीलोंमें उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। उस समय वहाँके वकीलोंके अग्रणी स्वर्गीय पं० पृथ्वीनाथ थे। वे नवयुवक मोतीलालकी प्रतिभा और उच्चाकांक्षाओंसे बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने इनको यह सलाह दी कि वे प्रयाग जाकर हाई कोर्टमें वकालत करें, क्योंकि कानपुरमें छोटी अदालत होनेके कारण वहाँका कार्यक्षेत्र बहुत परिमित था और उसमें मोतीलालजीकी पूरी प्रतिभाका विकास होना सम्भव न था। मोतीलालजीको यह बात पसन्द आई और

दिल्ली-दरबारमें (१९११) पं० मोतीलाल नेहरू

वकील पिता और बैरिस्टर पुत्र (१९१०)

उन्होंने प्रयाग जाकर ९ नं० एलगिन रोडमें अपना डेरा जमाकर हाई कोर्टमें वकालत प्रारम्भ की। पाँच-छै वर्षमें ही उन्होंने हाई कोर्टके वकीलोंमें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। उस समयसे लेकर असहयोगके ज़मानेमें वकालत छोड़ने तक मोतीलालजी उत्तर-भारतके सबसे अच्छे वकीलोंमें गिने जाते थे।

उस समय देशमें 'साहबीपन' की धूम थी। लोग साहब बननेमें बड़ा फख़ समझते थे। कांग्रेसके प्रारम्भिक नेता भी एकदम अंग्रेज़ी ठाठ-बाटसे रहते थे। कोई-कोई तो अपनी गर्भिणी पत्नियोंको केवल इसीलिए विलायत भेजा करते थे, जिससे उनके बच्चे विलायतमें उत्पन्न हों! पण्डित मोतीलाल भी ज़मानेके इसी रंगमें रंग गये। वे अपनी प्रतिभाके बलपर लाखों रुपये उपार्जित करते और उन्हें ठाट-बाट, ऐश्वर्य-विभव और विलासितापूर्ण जीवनमें बड़ी दरियादिलीसे खर्च करते थे। उनका मकान 'आनन्द-भवन' सब प्रकारके सांसारिक भोग-विलासके साज-सामानोंसे भरा-पूरा सचमुचमें आनन्द-भवन था। वे संयुक्त-प्रान्तकी फैशनेबुल सोसाइटीके नेता थे। उनके बच्चोंके खिलानेके लिए यूरोपियन नर्स नौकर थीं। उनकी कमीज़ें धुलनेके लिए पेरिस जाया करती थीं, परन्तु उस चरम विलासिताके वातावरणमें भी मोतीलालजीकी 'स्पिरिट' सदा स्वतंत्र रही, उसमें कभी दासताकी कालिमा नहीं आने पाई! उन्होंने सरकारी ओहदों अथवा उपाधियोंकी कभी तिलमात्र भी परवाह नहीं की।

संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाके सदस्य पं० मोतीलाल नेहरू (१९१३)

उस समय यदि वे चाहते, तो हाई कोर्टका जज हो जाना और 'सर'का खिताब पा जाना, उनके लिए बड़ी आसान बात थी ; मगर उनकी स्वतंत्र आत्माने ऐसी बातोंको कभी गवारा नहीं किया।

पंडितजी बहुत दिनोंसे राजनैतिक कार्योंसे दिलचस्पी रखते थे, परन्तु अन्य वकील राजनीतिज्ञोंकी अपेक्षा उन्हें राजनैतिक क्षेत्रका पेशवा होनेमें कुछ देर लगी। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि मोतीलालजी कभी किसी विषयपर जल्द राय क़ायम नहीं करते थे। किसी भी बातका निर्णय करनेमें उन्हें समय लगा करता था, क्योंकि वे उस बातके प्रत्येक सम्भव और असम्भव पहलूपर अच्छी तरह विचारकर उसकी तह तक पहुँचकर ही अपना विचार निर्धारित करते थे ; परन्तु जब वे एक बार किसी बातको अच्छी तरह सोच-समझकर उसपर अपनी राय क़ायम कर लेते थे, तब उन्हें उससे डिगाना असम्भव था। रोज़मर्राका यह साधारण स्वभाव उनके राजनैतिक जीवनपर लागू होता है। उनमें राष्ट्रीयताकी उग्र भावना देरमें उत्पन्न हुई ; मगर जब

पंडित मोतीलाल नेहरू १९१४ में

एक बार वह भावना उत्पन्न हो गई, तब उन्होंने उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। उनके हृदयमें जो राष्ट्रीयता उदय हुई वह ऐसी दृढ़, ऐसी शक्तिशाली थी, जिसे संसारकी कोई भी शक्ति विचलित नहीं कर सकती थी और जिसके लिए उन्होंने अपने जीवनकी अन्तिम साँस तक, एक बहादुर सिपाहीकी भाँति, युद्ध किया।

सन् १९०७ की सूरत-कांग्रेसके अवसरपर जब स्वागताध्यक्षने स्वर्गीय रासबिहारी घोषको सभापति बनानेका प्रस्ताव उपस्थित किया, तब नेहरूजीने उस प्रस्तावका समर्थन किया था। कांग्रेसका इतिहास जाननेवाले सभी लोग जानते हैं कि सूरत-कांग्रेसका झगड़ा ही एक प्रकारसे भारतकी सच्ची राष्ट्रीयताका जनक कहा जा सकता है। उसी कांग्रेसमें उग्र राष्ट्रीय विचारवाले—जैसे, लोकमान्य तिलकका दल और श्री अरविन्द घोषके साथी-संगी—कांग्रेससे अलग हो गये थे, परन्तु उस समय मोतीलालजी उस उग्र दलके विरोधी

१९१९ में असहयोगसे पहले नेहरू परिवार
खड़े हुए—पं० जवाहरलाल पं० मोतीलाल, डा० किशनलाल। बैठी हुई—स्वरूपकुमारी, श्रीमती कमला नेहरू, श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू और श्रीमती किशनलाल

दलमें थे। सन् १९०७ में वे संयुक्तप्रान्तकी प्रथम राजनैतिक कानफरेन्सके सभापति चुने गये थे। उसके दो वर्ष बाद उन्होंने संयुक्तप्रान्तकी व्यवस्थापिका-सभामें प्रवेश किया। इलाहाबादकी 'न्यूज़-पेपर्स लिमिटेड' कम्पनीके पहले सभापति भी पंडित मोतीलालजी ही थे। इसी कम्पनीसे प्रयागके सुप्रसिद्ध पत्र 'लीडर' का प्रकाशन होता है।

सन् १९१५-१६ के होमरूल-आन्दोलनमें भी उन्होंने गहरा भाग लिया। इसी आन्दोलनमें उनकी उस संगठन-शक्तिका पूर्वाभास मिला, जिसका परिचय बादमें उन्होंने स्वराज्य पार्टीके संगठनमें दिया। इस अवसर प० जवाहरलाल नेहरूने, होमरूल-आन्दोलनमें भाग लेकर, अपने सार्वजनिक जीवनमें क़दम रखा।

मांटेगू-चेम्सफोर्ड-रिफार्मके बाद जब कांग्रेसने उसे असन्तोष-जनक बताया, तो कांग्रेसके बहुतसे पुराने नेताओंने, जो आजकल लिबरल या माडरेट कहलाते हैं, कांग्रेससे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। बस, इसी समयसे मोतीलालजीका अपने पुराने साथियोंसे साथ छूट गया। अब वे कांग्रेस-अनुयायी और पक्के राष्ट्रवादी बन गये ; मगर उनकी राष्ट्रीयतामें इस बातकी विशेषता थी कि वे प्रत्येक बातको व्यावहारिक दृष्टिसे देखते थे।

सन् १९१९ की घटनाओंने भारतमें ऐसी क्रान्ति कर दी, जिसका नरम-दलवालों और भारतकी मित्रताका दम भरनेवाले विलायतियोंको अनुमान ही नहीं था। कांग्रेसका उद्देश, उसका आदर्श और उसकी कार्य-प्रणाली आदि सभी बातोंका काया-पलट हो गया। रौलेट ऐक्टका आविर्भाव, कांग्रेसमें महात्माजीका उदय, जालियानवाला बाग़ आदि घटनाएँ समाचारपत्रोंके पाठकोंको भलीभाँति विदित हैं। इन सब बातोंने भारतीय राष्ट्रीयताका दृष्टिकोण ही बदल दिया। इस समय पं० मोतीलालजीने पंजाबके 'मज़लूमों'को सहायता पहुँचानेमें बड़ा भारी भाग लिया। उस समय उन्होंने जो मुस्तैदी, उदारता और

असहयोगके पहले पं० मोतीलाल—पक्के 'साहब' के वेशमें

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्रामके वीर योद्धा
त्यागमूर्ति मोतीलाल नेहरू (१६२१)

त्याग दिखलाया था, उसे आज भी पंजाबवाले कृतज्ञतासे स्मरण करते हैं। अमृतसरकी कांग्रेसके सभापतिके आसनको भी उन्होंने सुशोभित किया था। इसी अवसरपर पं० मोतीलाल नेहरू और महात्मा गान्धीमें वह घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ जिसका सुफल भारतकी राष्ट्रीयताके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे लिखा जायगा।

सन् १६२० में असहयोग-आन्दोलन शुरू हुआ। पं० मोतीलालजी उसमें निःसंकोच-भावसे सपरिवार कूद पड़े। हज़ार रुपये प्रतिदिन कमानेवाले वकीलने राष्ट्रीयताके आगे वकालतको ठुकरा दिया! आनन्द-भवन धीरे-धीरे त्याग-भवनमें परिणत होने लगा। बहुमूल्य विलायती रेशमी और सूती वस्त्र तथा अन्य साज-सामान अग्निकी पतितपावनी लपटोंके भेंट हो गये। पेरिसके धुले बहुमूल्य कपड़े पहननेवालेका शरीर हाथके बुने खद्दरसे विभूषित होकर एक अलौकिक छटा दिखलाने लगा। विलासिताकी गोदमें पले हुए वृद्ध मोतीलालजी तपस्वीका कठोर जीवन बितानेवाले त्यागवीर मोतीलाल नेहरू हो गये। संसार असहयोग-आन्दोलनको चाहे भारतीयोंके दृष्टिसे देखे या अंग्रेज़ोंकी दृष्टिसे, उसे अच्छा कहे या बुरा, उसे उच्च राजनीतिज्ञता क़रार दे या मूर्खतापूर्ण पागलपन मगर किसी भी दृष्टिसे देखनेसे मोतीलाल नेहरूके महान् त्यागका महत्त्व नहीं घट सकता। नेहरू और देशबन्धु दास सरीखे व्यक्तियोंके त्यागने भारतकी राष्ट्रीयताको जो नैतिक शक्ति प्रदान की है, उसका प्रभाव कम नहीं कहा जा सकता।

असहयोग-आन्दोलनके सम्बन्धमें मोतीलालजीको युक्त-प्रदेशके अन्यान्य नेताओंके साथ सज़ा हो गई। आनन्द-भवनके विलासी स्वामीने देशके लिए भारतीय जेलकी रोटियाँ खुशीसे खाईं। चौरीचौरा कांडके बाद महात्मा गांधीने असहयोगके लिए सहसा 'हाल्ट' की आज्ञा दे दी। देश-भरमें आन्दोलन रुक गया। महात्माजी पकड़े गये और उन्हें लम्बी सज़ा दी गई।
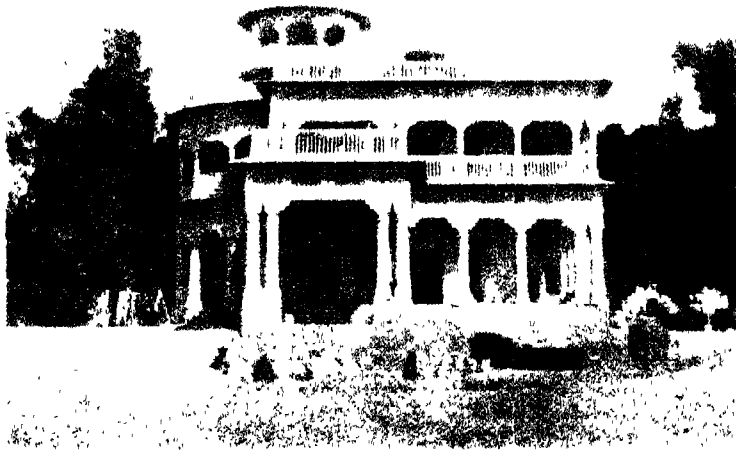
नवीन आनन्द-भवन,—नेहरू परिवारका वर्तमान निवास

गया-कांग्रेसके पहले देशकी तत्कालीन परिस्थितिपर विचार करनेके लिए एक कमेटी बनाई गई थी। कमेटीने जाँच करके जो रिपोर्ट दी, वह सर्वसम्मत नहीं थी। परिणाम-स्वरूप गया-कांग्रेसमें कांग्रेसवालोंमें आपसमें गहरा मत-भेद हो गया। देशबन्धु चित्तरंजन दासने इस बातपर ज़ोर दिया कि कौन्सिलों, अदालतों और स्कूलोंका बायकाट उठा लिया जाय। गया-कांग्रेसने दास महोदयके विरुद्ध राय दी। फल यह हुआ कि श्रीयुत दास और पंडित मोतीलाल नेहरूने मिलकर एक नवीन संगठनको जन्म दिया जो स्वराज्य-पार्टीके नामसे प्रसिद्ध है। उस समयके बादसे गत सात वर्षोंका भारतवर्षका इतिहास वस्तुतः स्वराज्य-पार्टीका ही इतिहास है। स्वराज्य-पार्टीने देशमें और संसारमें जो प्रभाव डाला है, उसकी महत्ता कम नहीं कही जा सकती। एक प्रकारसे स्वराज-पार्टीकी कार्रवाइयोंका ही यह फल था कि गत लाहौर-कांग्रेसने पूर्ण-स्वाधीनताकी माँग उपस्थित की। देशबन्धु दासकी मृत्युके पश्चात पंडित मोतीलाल नेहरू ही स्वराज-दलके प्रमुख नेता हुए। नेहरूजीने दलको सुसंगठित बनानेमें जिस योग्यता और संगठन शक्तिका परिचय दिया, उसे देखकर उनके विरोधियोंको भी उनका लोहा मानना पड़ा। कौंसिलों और विशेषकर एसेम्बलीमें स्वराज-दलवालोंके आतंकके मारे सरकारी पक्षके सदस्योंकी नींद-भूख हराम थी। जिस दिनसे पंडित मोतीलालने एसेम्बलीमें राष्ट्रीय माँगका प्रस्ताव पेश किया था, उस दिनसे लेकर एसेम्बली छोड़नेके दिन तक एसेम्बलीमें उन्हींकी तूती बोलती रही। गोलमेज़-कान्फ्रेन्सका विचार भी प० मोतीलाल नेहरू ही के मस्तिष्ककी उपज है। काश कि ब्रिटिश सरकारने उस समय पंडित नेहरूकी बात मान ली होती, तो आज यह दुर्दिन देखने नसीब न होते।

मोतीलालजीका एसेम्बलीमें जानेका उद्देश्य केवल छोटी-मोटी सुविधाएँ प्राप्त करना ही नहीं था, बल्कि उनका लक्ष स्वराज प्राप्त करना था। सन् १९२५ में उन्होंने सुप्रसिद्ध 'राष्ट्रीय माँगें' एसेम्बलीके सामने उपस्थित कीं, और उन्हें दो बार सन् १९२५ और सन् १९२६ में पास करवाया। नौकरशाहीके पिट्ठू कहा करते थे कि जब तक हिन्दू-मुसलमानोंका समझौता न होगा, तब तक स्वराज नहीं हो सकता। इसके उत्तरमें नेहरूजीने सर्वदल सम्मेलनका संगठन

राष्ट्रपति श्री जवाहरलाल नेहरूकी माता (सरूपरानी नेहरू, १९२९)

करके सम्पूर्ण भारतवर्षके लिए राष्ट्रीय विधानकी योजना की, जो 'नेहरू रिपोर्ट' के नामसे सुप्रसिद्ध है।

सन् १९२८ के अन्तमें कलकत्ता-कांग्रेसके अध्यक्षका आसन मोतीलालजीने ही सुशोभित किया था। इसी कांग्रेसमें भारतने ब्रिटेनको इस बातका चैलेंज दिया था कि यदि ब्रिटेन एक वर्षके अन्दर भारतवर्षको पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज न दे देगा, तो कांग्रेस पूर्ण-स्वतन्त्रताकी घोषणा करके उसके लिए संग्राम छेड़ देगी। यह प्राय: सभी जानते हैं कि सरकारने औपनिवेशिक स्वराज देनेकी बात नहीं मानी, और फलत: लाहौर-कांग्रेसने पूर्ण-स्वतन्त्रताकी घोषणा करके सत्याग्रह-संग्राम छेड़ दिया।

गत वर्ष ११ अप्रेलको पंडित मोतीलाल नेहरूने अपना आनन्द-भवन देशको समर्पित कर दिया। आनन्द-भवनका नया नाम 'स्वराज्य-भवन' रखा गया। आजकल वही
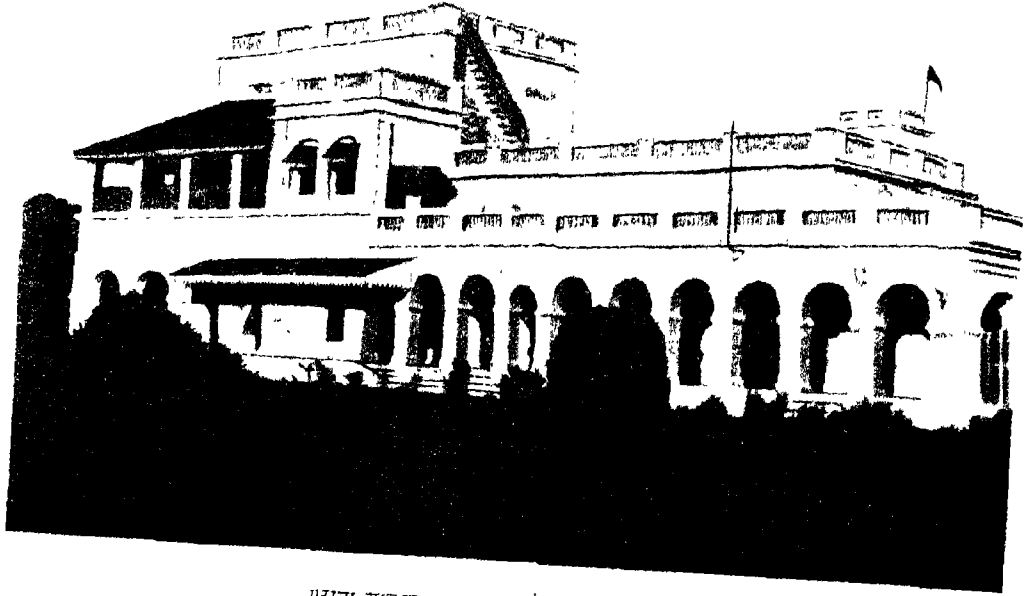
पुराना आनन्द-भवन अथवा वर्तमान स्वराज्य-भवन
जो आजकल अखिलभारतीय नेशनल कांग्रेसका हेड क्वार्टर है

भारतकी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेसका हेड क्वार्टर है। १४ अप्रेल सन् १९३० को राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरूको ६ मासके कारावासका दंड मिला। १८ अप्रेलको भारतवर्षके डिक्टेटर महात्मा गांधीने मोतीलालजीको कांग्रेसका अस्थायी सभापति मनोनीत किया। ३० जूनको सरकारने कांग्रेसकी वर्किंग-कमेटीको ग़ैरकानूनी क़रार देकर उसके सभापति पंडित मोतीलाल नेहरूको गिरफ्तार करके ६ मासकी सज़ा दी। जेलमें मि० जयकर और सर सप्रूने कांग्रेस-नेताओं और सरकारमें समझौता करानेकी चेष्टा की; मगर कुछ फल न निकला। पंडित मोतीलालजीका स्वास्थ्य पहले ही से ख़राब था। वे आबहवा बदलनेके लिए यूरोप जानेका विचार कर रहे थे। इधर उनके ऊपर कांग्रेसके कामका भार रहा और उसपरसे जेलकी तकलीफ़। वृद्ध शरीर एकदम जर्जरित हो गया। जब सरकारने देखा कि पंडितजीको जेलमें रखनेसे उनकी जान जोखिममें है, तब मजबूर होकर उन्हें ८ सितम्बरको छोड़ दिया।

मगर चारों ओर दमनका दौर-दौरा चल रहा था। पंडितजीके पुत्र, पुत्रवधू और जामाता जेलमें थे, अतः आन्दोलनसे अलग निश्चिन्त होकर रहना उनके लिए असम्भव था। वे उस बीमारीकी दशामें भी आन्दोलनके सम्पर्कमें

पण्डित मोतीलाल नेहरूका अन्तिम बीमारीके समय दक्षिणेश्वरके बगीचेमें लिया हुआ चित्र।

पण्डित मोतीलाल नेहरू, १६२८

बने रहे। बीमारी और भी गहरी होती गई, और अन्तमें गत ६ फरवरीको भारतीय स्वतन्त्रताका सच्चा नायक भारतको शोकमें डुबाकर चल बसा!

× × × ×

पंडित मोतीलालने राष्ट्रके लिए बहुत कुछ दिया है। उन्होंने अपने शारीरिक सुख-चैन, अपना अमूल्य समय, अपनी अलौकिक मेधावी शक्तियाँ, अपना धन, अपना मकान और अपना परिवार तक देशके अर्पण कर दिया; मगर देशके लिए उनका सबसे महान् दान—जैसा आज तक संसारके शायद ही किसी महान् पुरुषने किया हो—है पंडित जवाहरलाल नेहरू।

पिंजरेका तोता

(बिहार जेलमें एक शहीदकी मृत्युपर)

मरुथल पार, वीर, विश्वंभर की विभूति में लीन हुआ।
पथिक देखता रहा, अहा! वह विहँग-बाल उड्डीन हुआ।
बिना खिले कलिका के मुरझाने का ढंग नवीन हुआ।
माँ! क्या कहूँ? तुम्हारा तोता पिंजरे में स्वाधीन हुआ।

—रामधारी सिंह 'दिनकर'
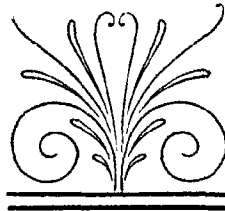
हिन्दीका प्रथम समाचारपत्र

श्री ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी

हिन्दीका सबसे प्रथम समाचारपत्र कौनसा था, इस विषयमें जहाँ तक ज्ञात है, विशेष अन्वेषण नहीं हुआ है। भारतमित्रके सुप्रसिद्ध सम्पादक स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तने हिन्दी और उर्दू समाचारपत्रोंके इतिहासके सम्बन्धमें कुछ लेख लिखे थे। श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद बाजपेयीने सं० १९६९ में, गुप्तजीकी मृत्युके बाद, उनके कुछ लेखोंका संग्रह करके 'गुप्त निबन्धावली' के नामसे प्रकाशित किया है। इस 'निबन्धावली' के ५३ पृष्ठपर हिन्दीके प्रथम अखबारके सम्बन्धमें लिखा है—

"दस साल हुए काशी-निवासी बाबू श्रीराधाकृष्ण दासने हिन्दी अखबारोंके विषयमें एक छोटीसी पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने दिखाया है कि हिन्दीमें सबसे पहले राजा शिवप्रसादकी सहायतासे सन् १८४५ ईस्वीमें 'बनारस अखबार' निकला। उक्त पत्र लीथोमें रद्दी-से कागजपर छपता था। एक महाराष्ट्रीय सज्जन गोविन्द रघुनाथ थत्ते उसके सम्पादक थे। उसका मोटो यह था।

"सुबनारस अखबार यह, शिवप्रसाद आधार।
बुध-विवेक जन निपुनको, चित हित बारम्बार॥
गिरजापति-नगरी जहाँ, गग अमल जलधार।
नेत शुभाशुभ मुकुरको, लखो विचार विचार॥"

इससे ज्ञात होता है कि हिन्दी-भाषा-भाषियोंको भी अपने आदि समाचारपत्रोंके इतिहासका पता नहीं है। सन् १८४५ में लीथोसे छपे हुए 'बनारस अखबार' के प्रकाशित होनेके बहुत पहले कलकत्तेसे एकसे अधिक हिन्दी-समाचारपत्र सुन्दर टाइपके अक्षरोंमें छपकर प्रकाशित हो चुके हैं, इस बातके अनेक प्रमाण मौजूद हैं।

सन् १८२३ में अप्रिल मासमें ब्रिटिश सरकारने ब्रिटिश भारतमें प्रेस-सम्बन्धी पहला कानून जारी किया। इस कानूनके अनुसार किसी समाचारपत्रको निकालनेके पहले उसके सत्त्वाधिकारी और प्रकाशकको भारत-सरकारसे समाचारपत्र निकालनेका 'लाइसन्स' लेना पड़ता था। बिना 'लाइसन्स' के कोई पत्र निकालनेका उपाय नहीं था।

कलकत्तेमें कोलूटोला नामक मुहल्लेके ३७ नं० आमड़ातला गलीसे श्री जुगलकिशोर शुक्लने सन् १८२६ में 'उदन्त मार्तण्ड' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकालनेका आयोजन किया, और इसके लिए भारत-सरकारसे लाइसन्स प्राप्त करनेकी दरख्वास्त दी। १६ फरवरी १८२६ को सरकारने उनकी दरख्वास्त मञ्जूर करके उन्हें अखबार निकालनेका लाइसन्स दिया।*

श्री जुगलकिशोर शुक्ल कानपुरके रहनेवाले थे। इस बातका भी पता लगता है कि कलकत्तेकी सदर दीवानी अदालतमें उन्होंने कुछ दिन तक वकालत भी की थी। सरकारसे 'उदन्त मार्तण्ड'के प्रकाशित करनेकी अनुमति प्राप्त कर शुक्लजीने एक 'अनुष्ठान-पत्र' (Prospectus) प्रकाशित किया था। इस 'अनुष्ठान पत्र'के सम्बन्धमें तत्कालीन बंगला संवादपत्र 'समाचार-चन्द्रिका' में निम्न-लिखित खबर प्रकाशित हुई थी।

"नागरीका नवीन संवादपत्र"

"अभी हालमें पश्चिमीय लोगोंमें गुणका प्रचार और ज्ञानका संचार करनेके लिए—जिसकी अब तक उक्त देशके लोगोंमें चर्चा-मात्र भी नहीं थी—अन्तर्वेद देशान्तर्गत कान्हपुर ग्राम-निवासी स्वदेश-जन-सुखाभिलाषी कान्यकुब्ज जातीय श्रीयुत जुगलकिशोर शुक्लने, जाड्यता-रूपी तिमिरसे आच्छादित हिन्दुस्थानी लोगोंके विद्यारूपी मणिपर प्रकाश डालने और 'उदन्त-मार्तण्ड' के उदयसे गुण और ज्ञानका उदय करनेके अभिप्रायसे श्रीश्रीयुत गवर्नर-जनरलकी कौन्सिल-

* Home Department Proceedings, 16 Feby. 1826, No. 57-59.

सभासे इस विषयकी विवरण-पत्रिका उपस्थित करके अनुमति प्राप्त की है। श्रीश्रीयुतकी अनुमति प्राप्त करके पूर्वोक्त गुरुके द्वारा देवनागर अक्षरों और हिन्दी-भाषामें एक अनुष्ठान पत्र इस नगरमें हिन्दुस्थान और नेपाल प्रभृति देशोंके सज्जन महाजनों एवं इंलैडीय महाशयोंके बीच प्रचारित हुआ और हो रहा है। इस 'उदन्त-मार्तण्ड' का मूल्य दो रुपया मासिक स्थिर हुआ है। जिन-जिन महाशयोंको इस समाचारपत्रको लेना वांछित हो, वे मुक़ाम आमड़ातल्ला गलीके ३७ नं० के मकानमें आदमी भेजनेसे जान जायँगे।" *

सन् १८२६ की ३० मईको 'उदन्त-मार्तण्ड' नागरी अक्षरोंमें मुद्रित होकर पहले-पहल प्रकाशित हुआ। यह प्रति मगलवारको निकलता था। इसका मासिक मूल्य दो रुपया था। 'उदन्त-मार्तण्ड' के आविर्भावपर उस समयके एक बंगला संवादपत्रमें जो लिखा गया था, उस अंशको 'समाचार-दर्पण' के सम्पादकने अपने १७ जूनके अंकमें '*बंगला समाचारपत्रोंसे लिया हुआ*' शीर्षक विभागमें प्रकाशित किया था। वह अंश यह है—

"नागरीका समाचारपत्र।—हालमें इस कलकत्ता नगरसे 'उदन्त मार्तण्ड' नामक एक नागरीका नूतन समाचारपत्र प्रकाशित हुआ है, इससे हमारे आह्लादकी सीमा नहीं है। क्योंकि समाचारपत्र द्वारा सम्पत्ति-सम्बन्धीय और नाना दिशाओंके देशोंके राज-सम्पर्कीय वृत्तान्त प्रकाशित हुआ करते हैं, जिनके जाननेसे अवश्य ही उपकार होता है। यूरोपके देशोंमें प्राय: दो सौ वर्षोंसे अधिक समयसे समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं, उनके द्वारा सामान्य समाचार और नाना विषयोंके दोष-गुण आदिके सम्बन्धमें प्रेरित पत्रोंके उत्तर-प्रत्युत्तरके प्रकाशित होनेसे अनेक विषयोंका निर्यास और संशोधन हुआ है। अंगरेज़ी प्रभृति समाचारपत्रोंके दृष्टान्तपर इस देशमें पहले बंगला भाषाके समाचारपत्र प्रकाशित हुए, बादमें फारसी भाषाके हुए एवं बीचमें कुछ दिन हुए उर्दू भाषाका समाचारपत्र प्रकाशित हुआ। किन्तु बंगला भाषाको छोड़कर अन्य किसी भाषाके संवादपत्रोंमें प्रेरित-पत्र प्रकाशित नहीं होते। जो हो, इस समय नागरी भाषामें एक ही समाचारपत्र होनेसे काशी प्रभृति स्थानोंके लोग, जो अंगरेज़ी प्रभृति भाषासे अज्ञान होनेके कारण किम्बदन्तियोंमें विश्वास करके प्रगल्भता-पूर्वक समय बिताते हैं, यदि इसे नई रीति कहकर तुच्छ न समझें और आलस्य त्याग-पूर्वक इसे ग्रहण करके पाठ करें तो उनके लिए ऐसा फलोदय होगा जिसे वे धीरे-धीरे जान सकेंगे।"

सन् १८२७, १४ अप्रिलके 'समाचार-दर्पण'में लिखा है—

"यह सुनते हैं कि 'उदन्त मार्तण्ड' नामक हिन्दुस्थानी समाचारपत्रके प्रकाशकने अपने पत्र द्वारा चन्द्रिकाकारका तिरस्कार किया था, उसपर चन्द्रिकाकारने मार्तण्ड प्रकाशकके नाम नालिश की है।"

पर्याप्त ग्राहकोंकी कमीके कारण 'उदन्त मार्तण्ड' अधिक दिन तक न चल सका। ४ दिसम्बर सन् १८२७को उसकी अन्तिम संख्या प्रकाशित हुई। उसमें सम्पादकने लिखा था—

"आज दिवस लौं उग चुक्यो मार्तण्ड उदन्त।
अस्ताचलको जात है दिनकर दिन अब अन्त॥"

मार्तण्डके इस असमय अस्त हो जानेपर श्रीरामपुरके बंगला 'समाचार-दर्पण' ने अपने १५ दिसम्बर सन् १८२७ अंकमें दु:ख प्रकट करते हुए लिखा था—

"उदन्तमार्तण्ड।—हमें मालूम हुआ कि यह अत्युत्तम समाचारपत्र ग्राहकोंके अभावसे कालको प्राप्त हो गया।"

'उदन्त मार्तण्ड'की सम्पूर्ण फाइल, केवल दूसरी संख्याको छोड़कर, मुझे राजा राधाकान्त देवकी लाइब्रेरीमें मिली है।

'उदन्त मार्तण्ड'के अस्ताचल गमनके दो वर्ष बाद हिन्दी-भाषाका दूसरा समाचारपत्र प्रकाशित हुआ था। इसका नाम था 'बंगदूत'। राजा राममोहन राय इस पत्रके अन्यतम सत्वाधिकारी थे। सन् १८२६ की ६ मईको इसकी प्रथम संख्या प्रकाशित हुई थी।

यदि सम्भव हुआ तो 'विशाल-भारत' की किसी अगली संख्यामें 'उदन्त मार्तण्ड' के कुछ उद्धरण प्रकाशित करनेकी चेष्टा करूँगा।

* यह समाचार श्रीरामपुरके मिशनरी लोगोंके 'समाचार-दर्पण' नामक पत्रमें भी ११ मार्च सन् १८२६ को उद्धृत हुआ था।

विश्वविद्यालयोंकी शिक्षाका आदर्श

प्रोफेसर एस० राधाकृष्णन, एम-ए, डी-लिट्

विश्व-विद्यालयकी डिग्री प्राप्त करके ग्रेजुएट बन जाना जीवनके मार्गमें एक मील इंगित करनेवाला पत्थर है ; बीचकी एक मंज़िल है, वह यह नहीं प्रकट करता कि शिक्षाका पथ समाप्त हो गया। वास्तवमें ग्रेजुएट बनना तो एक नवीन यात्राका—जिस यात्रामें तुम्हारी यूनिवर्सिटी-शिक्षाकी योग्यताकी तथा तुम्हारी मानसिक और नैतिक दृढ़ताकी परीक्षा होगी—श्रीगणेश है। तुम्हारे सामने अब नये अनुभव, नई समस्याएँ तथा नई परिस्थितियाँ उपस्थित होंगी, जिनके हल करनेके लिए तुम्हें अपने उन सम्पूर्ण गुणोंको काममें लाना पड़ेगा, जिन गुणोंके प्रोत्साहन और विकासके लिए यह यूनिवर्सिटी काम करती है। अब यह बात कहनेके लिए किसी अवतार या पैग़म्बरकी ज़रूरत नहीं है कि थोड़े ही समयमें भारतवर्ष एक स्वतन्त्र 'डोमिनियन' (राज्य) की श्रेणीमें पहुँच जायगा। भविष्य आप लोगोंके हाथमें बहुत बड़ी शक्ति और बहुत बड़ा उत्तरदायित्व देनेवाला है। नवीन भारतवर्षके निर्माणमें हमारा शिक्षित समाज जो ऐतिहासिक भाग लेगा, उसकी महत्ता किसी प्रकार भी न्यून नहीं कही जा सकती। नेता वही व्यक्ति हो सकता है, जिसे यह मालुम है कि वह कहाँ जायगा ; जो उस अन्तर्दृष्टि और अनुभूतियोंको, जिन्होंने हमारी सभ्यताको इतना स्थायी बनाया है, अच्छी तरह समझ सके। साथ ही जो उस अन्तर्दृष्टि और अनुभूतिको जीवनके प्रत्येक पहलूमें लागू कर सके। यदि नेताकी यह परिभाषा ठीक है, तो केवल यूनिवर्सिटियाँ ही ऐसी संस्थाएँ हैं, जो मनुष्योंको नेतृत्वकी शिक्षा दे सकती हैं। यूनिवर्सिटियाँ केवल उच्च शिक्षा या कुछ विशेष पेशोंकी शिक्षा देनेवाली संस्थाएँ नहीं हैं, वे उनसे कहीं बढ़कर हैं। उनका कर्तव्य है हमारी नई पौधको शिक्षा देना, उनका चरित्र गठन करना—अर्थात् एक नये ढंगके मेधावी नेता उत्पन्न करना।

मस्तिष्कका कार्य

यदि तुम्हारी शिक्षासे तुम्हारे मस्तिष्कमें अविचल और गम्भीर विचार करनेकी इच्छा विकसित नहीं हुई है, अथवा यदि तुम्हारी शिक्षाने तुम्हें वह ताक़त नहीं दी है, जिससे तुम जन-समूहके अनुचित भाव तथा अशिक्षित आदमियोंके अनियन्त्रित जोशका मुक़ाबला कर सको, तो यह प्रत्यक्ष है कि तुम्हारी शिक्षा निष्फल गई। एक शिक्षित पुरुष सत्यका अनुसरण करनेके लिए सदा तत्पर रहेगा, चाहे वह उसे कहीं ले जाय, केवल इसीलिए कि अन्य सब ऐसा कर रहे हैं, वह किसी कामके करनेको बाध्य होनेसे इनकार कर देगा। वह जानता है कि ज्ञानमें शक्ति है, सत्य ही सदा स्वतन्त्रताकी ओर ले जा सकता है। नवीन भारतवर्षके निर्माणमें लिए हमें गम्भीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए और विज्ञतापूर्वक अपनी कार्य-पद्धति निर्धारित करनी चाहिए। किसी वस्तुकी सृष्टि हम तभी कर सकते हैं, जब हममें दृढ़ विश्वास हो, पुनर्जीवनकी शक्ति हो और नवीन कल्पना-शक्ति हो। प्रोफेसर ह्वाइटहेड कहते हैं—"बड़े-बड़े गिरजाघर या महल बनानेकी कल्पना पहले हमारे दिमाग़में आती है, पीछे कहीं कारीगर लोग पत्थर रखते हैं। यही बात टूटनेके विषयमें भी कही जा सकती है। पहले हमारे मस्तिष्क उनके तोड़नेकी कल्पना कर लेते हैं, जल और वायुके प्रकोपसे घिसते और टूटते वे पीछे हैं।" संसारकी प्रत्येक महान् कृति इतिहासका वास्तविक तथ्य होनेके पूर्व हमारी आत्माकी एक कल्पना हुआ करती है। यदि यह सत्य है कि हमारे जीवनमें वास्तविक तथ्योंकी प्रबलता है, तो यह बात भी उतनी ही सत्य है कि स्वयं इन तथ्योंको भी मस्तिष्ककी शक्ति माननी पड़ती है। विचार ही इस संसारका शासन करते हैं। वे सदा अन्य शक्तियोंपर विजयी होंगे।

वे प्रबल धारणाएँ, जो हमारे समाजका पुनर्गठन करेंगी,

हमें विश्वविद्यालयोंके विद्वानों और चिन्ताशील व्यक्तियोंसे ही मिलेंगी।

दृढ़ और गम्भीर चिन्तनकी आवश्यकता

दृढ़ और गम्भीर चिन्तनकी जितनी अधिक आवश्यकता आजकल है, उतनी पहले कभी नहीं थी। हम देखते हैं कि हमारे चारों ओर एक उत्तप्त और दुर्दान्त जीवनका स्रोत बह रहा है। हमें एक ऐसी परिस्थितिका सामना करना पड़ रहा है, जो अनेकों विभिन्न आन्दोलनोंके कारण उत्पन्न हुई है। यूरोपियन राष्ट्रोंको पिछली कई शताब्दियोंमें इन्हीं आन्दोलनोंमें होकर गुज़रना पड़ा है। यूरोपकी भिन्न-भिन्न जातियोंको बौद्धिक नव विधान (Intellectual renaissance), औद्योगिक क्रान्ति, स्वतन्त्रता और जनसत्तावादके लिए राजनैतिक संघर्ष तथा धार्मिक सुधार आदि प्रश्नोंका सामना एक-एक करके और भिन्न-भिन्न समयोंपर करना पड़ा है, परन्तु भारतवर्षको आज इन समस्त प्रश्नोंका सामना एक साथ ही करना पड़ रहा है। इसके सिवा एक बात और भी है, वह यह कि भारतके विस्तृत क्षेत्रफल और महान जनसंख्याके कारण इनमें से प्रत्येक प्रश्न यूरोपियन जातियोंके प्रश्नोंकी अपेक्षा अनेकों गुना बड़ा हुआ है। इस समय जब हमारे जीवनकी प्रत्येक दिशामें, चाहे वह राजनैतिक हो या औद्योगिक, सामाजिक हो या सांस्कृतिक, हर तरफ महान् परिवर्तन हो रहे हैं, हम देखते हैं कि देशमें असंयत और गड़बड़ विचारशैली बहुत अधिक फैली हुई है। ऐसा मालूम होता है कि हमारा देश किसी अज्ञात दिशामें बढ़ा चला जा रहा है।

यहाँ आनेवाला कोई भी आकस्मिक यात्री यहाँकी दशा देखकर यही समझेगा कि भारतवासी राजनैतिक मामलोंमें जितनी दिलचस्पी रखते हैं, उतनी किसी और बातमें नहीं। वे गूढ़ प्रश्न, जिनमें हम लोग युगोंसे लीन रहे हैं, इस समय प्रायः भुला दिये गये हैं। इस समय आम तौरसे इस बातकी प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है कि सांस्कृतिक बातोंको घृणाकी दृष्टिसे देखकर, सुविस्तृत भूतकालकी अपेक्षा जीवनको अधिक कर्कश और उद्धत बनाया जाय। मैं इस बातसे इनकार नहीं करता कि हमारे देशवासियोंकी—अन्य बातोंकी अपेक्षा—राजनीतिमें इतनी अधिक लगनके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। आज जीवनकी नितान्त आवश्यकताओंके पूरा करनेका संघर्ष इतना विकराल हो गया है, जितना पहले कभी नहीं था। बर्नर्ड शाका कथन है कि पराधीन जाति उस मनुष्यके समान है, जो औंधे फोड़ेसे पीड़ित हो। ऐसा मनुष्य कोई और बात सोच ही नहीं सकता। वह हर वक्त अपने फोड़े ही की बात सोचा करता है। वह प्रत्येक नीम-हकीमकी बात सुननेको तय्यार रहता है, जो उसका फोड़ा अच्छा करनेका बहाना करता है। हमारी राजनैतिक अशान्तिके लिए पाश्चात्य शिक्षा ही मुख्यतया ज़िम्मेदार है। यह पाश्चात्य शिक्षा ही विस्फोटक शक्ति है, वही सामाजिक डायनामाइट है। प्राचीन ग्रीसके नगर-राज्यों (City States) की परम्परागत कथाओंने ही हम लोगोंके हृदयोंमें स्वतंत्र नागरिकताके प्रति तथा अधिक न्याययुक्त सामाजिक-विधानके प्रति यह उग्र प्रेम उत्पन्न किया है। हम लोगोंने यह सीखा है कि शासितोंकी रज़ामन्दीके बिना जो शासन किया जाता है, वह शासन गुलामीका ही दूसरा नाम है। शासनका उद्देश सुव्यवस्था और दक्षताकी अपेक्षा शिक्षा-प्रचार कहीं अधिक है उसका उद्देश है सर्वसाधारणको 'ट्रेनिंग' देना और स्वायत्त शासनके अवसर प्रदान करना। हमारी मांसपेशियाँ यदि काममें न लाई जायँ, तो बेकार हो जाती हैं; रगें और शिराएँ यदि फैलाई न जायँ, तो अकड़ जायँगी। इसी प्रकार यदि हमें स्वायत्त शासनके अभ्यासके अवसर न मिलें, तो हमारी स्वायत्त शासनकी आन्तरिक शक्ति कुंठित हो जायगी। उत्साही नवयुवक जब किसी नये आदर्शके लिए प्रबल चेष्टा करते हैं, तब वे प्रत्येक प्रकारके विलम्बपर खीझ उठते हैं—विक्षुब्ध हो उठते हैं। आजकल हमारे देशमें जो अशान्ति फैली हुई है, वह अंग्रेज़ोंके लिए श्रेयकी बात है, कलंककी नहीं। यह बात भी हमने पश्चिमसे ही सीखी है कि सफलता प्राप्त करनेके लिए उचित-अनुचित सभी प्रकारके उपाय काममें

लाये जा सकते हैं, और यदि हम देशकी सेवा करते हैं, तो हमारी नैतिक बुराइयाँ—बदचलनी—भी माफ हो जानी चाहिए। राजनैतिक सदाचारका यह दृष्टिकोण, इस परम्परागत सिद्धान्तके बिलकुल अनुकूल नहीं है कि क्रूरता एक ऐसा अपराध है, जिसके लिए किसी प्रकारकी क्षमा नहीं हो सकती। राष्ट्रीयताके यह अर्थ हैं कि हमें अपनी शक्ति-भर वह सब कुछ करना चाहिए, जिससे हमारी आत्मा, हमारा सम्मान, हमारी न्यायनिष्ठा और हमारा व्यक्तित्व सुरक्षित रहे तथा जिससे सांसारिक समस्याओंका सामना करनेका हमारा अपना व्यक्तिगत ढंग क़ायम रहे। हम स्वतन्त्रता इसलिए चाहते हैं, जिससे हम स्वयं अपनेको सुरक्षित रख सकें तथा जिससे हम संसारकी उन्नतिके लिए अपना पृथक—स्वतंत्र—अंश प्रदान कर सकें। यदि हम अपना निजी व्यक्तित्व खो दें, तो हम ऐसा नहीं कर सकते। हमें अपने लिए कोई अंग्रेज़ी या रूसी आत्मा बनानेकी चेष्टा न करनी चाहिए, हमें केवल उनसे वे ही बातें निकाल लेनी चाहिए, जो हमारी 'स्पिरिट' (भावना) को समृद्धिशाली बना सकें। हम केवल उन्हीं चीज़ोंसे फ़ायदा उठा सकते हैं, जिन्हें हम बदलकर अपनी चीज़ोंके रूपमें ढाल सकें।

जो कुछ भी हो, परन्तु यह बात सत्य है कि इस प्रश्नपर असंयत और विश्रृंखल चिन्तन बहुत पाया जाता है। हमारे अनेकों नेताओंके मस्तिष्कमें अंग्रेज़ी शासनके विरोधके साथ-साथ अंग्रेज़ी संस्थाओंके प्रेमका विचित्र मिश्रण दीख पड़ता है। वे इस बातके लिए बहुत चिन्तित हैं कि वे देशको पश्चिमी सभ्यताके रंगमें इतना अधिक रंग दें, जिससे वह यूरोपकी हूबहू नक़ल या प्रतिबिम्ब बन जाय।

यहाँ तक कि हमारे जो देशवासी पश्चिमी संस्थाओंकी आलोचना करने बैठते हैं, तो वे भी पाश्चात्य चिन्ताशील व्यक्तियों—जैसे कार्लमार्क्स, टाल्सटाय, रोमाँ रोलाँ बरट्रैन्ड रसल आदिकी प्रेरणासे ही ऐसा करते हैं। कुछ भावोंमें हम लोग उग्ररूपसे पश्चिमी विचारोंके हैं और कुछ भावोंमें उग्ररूपसे भारतीय विचारोंके। हम लोग परिवर्तन कालके जीव हैं। हमारे ऊपर अनिश्चयताका बोझ लदा हुआ है, और हमारे दिमाग़ोंमें विश्रृंखलता भरी हुई है, पर लोगोंकी आत्मामें जो मूक संघर्ष चल रहा है, वह राजनैतिक अखाड़ेके प्रकाश्य संघर्षसे कहीं अधिक महत्त्व और अर्थपूर्ण है। आधार-भूत विषयोंपर मौलिक चिन्तनको सुसंगठित करके उसपर नियंत्रण करना—यह काम विश्वविद्यालयोंका है, परन्तु अभाग्यवश यहाँके विश्वविद्यालय स्वयं अकर्मण्यता और उदासीनताके शिकार बने हुए हैं।

समाज और संस्कृति

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रकी परिस्थिति भी इससे कुछ भिन्न नहीं है। ऐसा मालुम होता है कि हम लोग आत्म-गौरव और आत्म-ग्लानिकी दो चरम सीमाओंके बीचमें इधरसे उधर, उधरसे इधर झूल रहे हैं। साथ ही हम लोग गर्दन फेर-फेरकर पीछेकी ओर यह भी देखते जा रहे हैं कि दूसरे लोग क्या कर रहे हैं। हम इस बातके लिए बहुत दुखी और चिन्तित हैं कि कहीं औरोंकी दृष्टिमें हम हास्यास्पद तो नहीं बन रहे हैं। हम अपने राष्ट्र—अपने समाज—के बहते हुए फोड़ोंके कारण बहुत लज्जित हैं; परन्तु इस बातके लिए हम एकदम हतबुद्धि हो रहे हैं कि इन फोड़ोंको दूर कैसे किया जाय।

ऐसे अवसरोंपर परम्पराका आवरण लज्जाकी रक्षा किया करता है, परन्तु हमारा वह आवरण इस समय फटा चिथा चिथे-चत्ती हो रहा है। क्रान्तिकारियोंका कोरा तर्कवाद सम्पूर्ण भूतकालको उड़ा देना चाहता है, साथ ही उन्नति-विरोधी (reactionary) व्यक्तियोंकी कोरी ऐतिहासिक रूढ़िप्रियता (historicism) समस्त वर्तमानको उड़ा देना चाहती है। हमारी आन्तरिक एकता नष्ट हो गई है। हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक शक्तियोंकी एकाग्रता भंग हो गई है। यदि विश्वविद्यालयकी शिक्षा इस एकाग्रताको पुन: स्थापित नहीं कर सकती, यदि वह प्राचीन और नवीनका संयोजन नहीं कर सकती, तो उस शिक्षासे हमें लाभ ही क्या हो सकता है?

जीवनका नियम

अतीतके सुन्दर दिनोंके स्वप्न देखना आसान है, परन्तु यदि हम इन्हीं परम्परागत रूढ़ विचारोंको एकत्रित करके और उन्हींका भवन बनाकर उसमें सन्तोषसे रहें, तो इसे हमारे अध:पतनका निश्चित चिह्न समझना चाहिए। जीवनके प्रवाहमें भूतकाल वर्तमान कालका स्थान नहीं ले सकता। उन्नति मौलिकता तथा साहसिक कार्योंसे प्रकट होती है, और अवनति दूसरोंकी नकल या बँधे ढर्रेपर चलनेसे। अतीतका ज्ञान चाहे कितना ही सर्वांगपूर्ण क्यों न हो, फिर भी वह जिस वेष-भूषामें सुसज्जित किया गया था, वह वेश-भूषा अन्तिम नहीं है। इस बातकी आवश्यकता है कि उस वेश-भूषाको दूर करके उस ज्ञानको नवीन वेश भूषासे सुसज्जित किया जाय। हमें जीवनकी अन्तरात्मा—सजीवता—'स्पिरिट' को पुन: प्राप्त करके उसे नवीन कर्मोंके रूपमें परिणत करना चाहिए। किसी जातिकी अन्तरात्मा—सजीवता—इस बातसे प्रकट नहीं होती कि भूतकालमें वह क्या थी, और न इसीसे प्रकट होती है कि इस समय वह क्या है। जब हम किसी जातिके इतिहासका निरीक्षण करते हैं, तब हम उसमें बहुत गहराईपर नींवके सदृश कोई चीज़ पाते हैं। यह चीज़ सदा बदलती रहती है, सदा नया आकार धारण करती है, यद्यपि वह कभी पूर्ण विकास तक नहीं पहुँचती। किसी भी जातिकी अन्तरात्मा इसी उन्नतिशील आदर्शके रूपमें, इसी क्रियाशील सिद्धान्तके रूपमें ही बताई जा सकती है। यह क्रियाशील सिद्धान्त उस जातिके इतिहासकी किसी एक सीढ़ीमें प्रत्यक्ष रूपसे दृष्टिगोचर न होगा, परन्तु यदि हम उस इतिहासकी एक मंज़िलके बाद दूसरी मंज़िलका और इसी प्रकार कई मंज़िलोंका अध्ययन करें, तो वह प्रत्यक्ष रूपसे दिखाई पड़ने लगेगा। जीवनका रहस्य विकासके नियममें है। मनुष्य तथा निखिल-विश्वकी अन्तरात्माकी वास्तविकता और सत्यकी खोजपर—जहाँ कहीं भी वह मिले—भारतवर्षमें सबसे अधिक ज़ोर दिया गया है। भारतवर्ष सदा ही जीवनके विकासकी ओर आगे बढ़ता रहा है। केवल अन्तरात्माकी पुन: प्राप्तिसे ही यह सब उलझे हुए अनावश्यक बन्धन ढीले पड़ जायँगे। यह घास-फूस, लकड़ी और ठूँठ—जो हमें उत्तराधिकारमें मिले हैं—जला डालने होंगे, जिससे चिरस्थायी वस्तुएँ बच रहें।

हमारी परम्परागत रूढ़ियोंमें कौन-कौनसी वस्तुएँ चिरस्थायी हैं और कौन-कौनसी क्षणभंगुर, इस बातकी पहचान केवल वे शिक्षित-समुदाय ही कर सकते हैं, जिनके हृदयोंमें अपने अतीतके लिए सम्मान और वर्तमानके लिए विश्वास है। हमें अपनी कालेजकी पढ़ाईके समय अपने चारों ओर जो संसार है, उसका ज्ञान हो जाना चाहिए। हमें अपने कालेज-कालमें अपने चारों ओरके जगतके जीवनकी प्रगति तथा मस्तिष्ककी उन्नतिका ऐसा ज्ञान हो जाना चाहिए, जिससे हम प्रकृति और जीवनके प्रत्येक अंशमें उस अन्तरात्माका दर्शन कर सकें; जिसमें प्रत्येक मानव—नीचे-से-नीचे व्यक्तिसे लेकर ऊँचे-से ऊँचा महापुरुष तक—चलता फिरता और रहता है। यदि हमें अपने कालेजके दिनोंमें यह ज्ञान प्राप्त न हो सका, तो हमारी शिक्षा निष्फल है। शिक्षाका केवल यह ध्येय नहीं है कि वह मनुष्यके मस्तिष्कको नवीन ज्ञानसे भर दे, बल्कि उसका ध्येय यह भी है कि वह मनुष्यको अपनी पूरी आध्यात्मिक ऊँचाई तक पहुँचनेमें मदद दे। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो मनुष्योंको आध्यात्मिक बातोंके महत्त्वको पहचाननेमें मदद दे, जो उनकी आँखें केवल ऐहिक विषयोंकी ओरसे घुमाकर चिर-सनातन विषयोंकी ओर कर दे, और जो उन्हें इस योग्य बनावे जिससे वे केवल लौकिक उपयोगिताके ध्येयमें ही व्यस्त न रहकर परमतत्त्वोंका अनुसरण करें। जब हमें इस सच्चे ढंगकी शिक्षा मिलेगी, तो हम अपने संकीर्ण पंथों तथा शुष्क लकड़ीकी तरह न नवनेवाले विचारोंके लिए—जो हमारे पारस्परिक सामाजिक सम्बन्धोंमें भी बाधक होते हैं—शर्मिन्दा होने लगेंगे। विभिन्न व्यक्तियोंमें तथा जातियोंमें पारस्परिक सहयोग शिक्षाकी असली पहचान है।

विश्वविद्यालय और राष्ट्रीयता

प्लैटोके कथनानुसार राज्य नागरिकका विराट् रूप है। यदि हम एक अनुत्तरदायी शासनमें रहते हैं, तो इसमें हमारे दुर्भाग्यकी अपेक्षा हमारा कसूर ही अधिक है। जिस शासनमें हम रहते हैं, यदि हम उसका अन्तिम विश्लेषण करके देखें, तो उसे हम अपना ही प्रतिबिम्ब पायेंगे। यूनानके एक सुप्रसिद्ध वक्ताने कहा है—"आदमियोंसे शहर बनता है, दीवारों और मकानोंसे नहीं।" किसी राष्ट्रके निर्माणमें देशके प्राकृतिक भूगोलका उतना हाथ नहीं रहा करता, जितना बुद्धि-सम्पन्न समाजका। यदि हम राष्ट्रीयताके विचारोंको विस्तृत करना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि हममें समान विचार-शक्ति बढ़ाई जाय, एक ही सी बातोंमें अनुराग रखनेवाले समुदाय उत्पन्न किये जायँ। विश्वविद्यालय ऐसी संस्थाएँ हैं, जो—यदि उन्हें स्वतन्त्रता-पूर्ण वातावरणमें कार्य करने दिया जाय तो—सम्मिलित अनुराग उत्पन्न कर सकती हैं। एक ओर तो सरकारी आदेश हैं और दूसरी ओर जनताके आन्दोलन, इन दोनों चट्टानोंके बीचमें होकर विश्वविद्यालयोंको बिना रुकावटके अपनी नौका खेना बड़ा दुस्तर कार्य है। संसार-भरमें इस बातकी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है कि राजनैतिक सम्मतियोंको कठोर तथा अटल मतका रूप दे दिया जाय। रूसमें समष्टिवाद धर्म हो रहा है और व्यक्तिवाद अधार्मिक पाखंड माना जा रहा है। जब शासन-तन्त्र गिरजाघरोंके समान कठोरता ग्रहण कर लेता है, तब *विश्वविद्यालयका यह प्रथम कर्तव्य है कि वह स्वयं शासन-तन्त्रके प्रोपेगैन्डा (प्रचार) से हमारी रक्षा करे।* जिस देशमें विश्वविद्यालय शासन-तन्त्रके प्रदान किये हुए धनसे चलता है, वहाँ उसे इस बातकी विशेष सावधानी रखनी चाहिए कि वह तमाम धार्मिक और राजनैतिक दलबन्दियोंसे ऊपर रहे।

अतिरिक्त शिक्षाका विभाग

विश्वविद्यालयोंको चाहिए कि वे सम्पूर्ण वर्तमान पौधपर अपना प्रभाव डालें। उन्हें उन साम्प्रदायिक आन्दोलनोंका

प्रोफेसर एस० राधाकृष्णन

जो हमारी उन्नतिमें बाधक हैं, सामना करना चाहिए। उन्हें उन विद्यार्थियोंकी शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओंको पूरा करना चाहिए, जो साधारण विद्यार्थियोंकी भाँति विश्वविद्यालयोंके भवनमें बैठकर शिक्षा अर्जन नहीं कर सकते। विश्वविद्यालयोंको एक अतिरिक्त शिक्षाका विभाग संगठित करना चाहिए। यह विभाग उपयुक्त केन्द्रोंमें भिन्न-भिन्न विषयोंपर व्याख्यान अथवा संक्षिप्त शिक्षणका प्रबन्ध करे और विशेष विषयोंके अध्ययनके लिए उपाधि प्रदान करे। देशके सामने दो बड़े खतरे हैं ; एक तो यह कि कहीं उद्योग-धंन्धोंमें रुपया लगानेवाले पूँजीपतियोंका एकाधिपत्य न हो जावे, और दूसरा यह कि जनता कहीं फिर प्राचीन रूढ़ियोंके दलदलमें न फँस जावे। इन दोनों खतरोंके निवारणका उपाय यही है कि शिक्षा प्रचारकी एक व्यापक स्कीम तय्यार की जावे और वह कार्यरूपमें परिणत की जाय।

रिसर्च (अन्वेषण)

यद्यपि भारतीय विश्वविद्यालय वे केवल ज्ञानके प्रसारके विचारसे ही स्थापित किये गये थे, परन्तु अब वह समय आ

गया है, जब उन्हें यह बात ज्ञात हो जानी चाहिए कि ज्ञानके प्रसारके समान वर्तमान ज्ञानकी उन्नति करना भी विश्वविद्यालयका एक आवश्यक कार्य है। यदि किसी विश्वविद्यालयका कार्य केवल क्लास रूममें शिक्षा देकर समाप्त हो जाता है, तो वह अपने आदर्शसे नीचे गिरा हुआ है। केवल ज्ञानकी वृद्धिके लिए ही ज्ञानका अनुसरण करना तथा खोज और आविष्कारोंकी उन्नति करना किसी भी विश्वविद्यालयके लिए श्रेयके विषय हैं। यदि हमारा ध्येय इन विषयोंकी ओर नहीं है, तो हम संसारके महान् विश्वविद्यालयोंमें बराबरीका स्थान ग्रहण करनेमें असफल होंगे। हमारा उद्देश्य केवल अपनी परीक्षाओंका 'स्टैन्डर्ड' ऊँचा रखना ही न होना चाहिए, बल्कि हमें अपने अध्यापकोंको पांडित्य सम्बन्धी नवीन खोजोंमें लगे रहनेके लिए सहायता भी करनी चाहिए। जहाँपर अध्यापकोंको सप्ताहमें पन्द्रह घंटे व्याख्यान देना पड़ता है, वहाँ उन्हें इतनी फुर्सत या स्वतन्त्रता नहीं मिलती कि वे अध्ययन जारी रख सकें। हमारे देशके महान शिक्षा-प्रचारकोंमें सर आशुतोष मुकर्जी ही सबसे अग्रगण्य थे, जिन्होंने पहले पहल मौलिक अन्वेषण और 'रिसर्च' की महत्ताको स्वीकार किया। उन्होंने कलकत्ता-विश्वविद्यालयके पोस्ट-ग्रेजुएट-विभागमें कार्य करनेवालोंको जो सुविधाएँ प्रदान की थीं, उनकी सार्थकता पहली बार सर सी० वी० रमनके नोबुल-पुरस्कार प्राप्त करनेसे सिद्ध होती है।

संस्कृति और ज्ञानार्जन

संस्कृति केवल ज्ञानार्जन-मात्र नहीं है। संस्कृति है भले बुरेकी पहचान, जीवनका समझना। उदार शिक्षाका ध्येय है बुद्धि-सम्बन्धी गुणोंके साथ-साथ नैतिक गुणोंका उत्पादन; विनम्र स्वभावके साथ साथ विवेकयुक्त दृष्टिकोण पैदा करना। जीवन-यापनकी कलामें सुसंस्कृत पुरुषमें एक प्रकारका सौष्ठव, एक प्रकारकी परिमार्जित सुरुचि, और एक प्रकारकी विभिन्नता होती है, जो उसे उद्देश्यहीन संघर्षकी निष्फल व्यर्थतासे मुक्त करती है। संस्कृति केवल बुद्धिकी एक विशेष भावभंगी अथवा शिष्टाचारका नियम-मात्र ही नहीं है, बल्कि संस्कृति जीवन विषयक एक ऐसे दृष्टिकोणको कहते हैं, जिसके अनुसार मनुष्यतासे सम्बन्ध रखनेवाली कोई भी वस्तु विजातीय, साधारण और गन्दी नहीं। जो शिक्षा हमारे नवयुवकोंमें उनके चारों ओर फैले हुए दुःख और दरिद्रताके प्रति, जीवनकी साधारण कठोरताके प्रति तथा अन्धकारमें डूबे हुए मूक मानवोंके पीड़ित शरीर और पतित आत्माके प्रति उदासीनता उत्पन्न करती है, वह शिक्षा निश्चय ही व्यर्थ है। यदि हम मानव-जातिको नहीं समझते, यदि हम उन लोगोंसे जिन्हें संसार नीच और पतित हुआ कहकर उपेक्षा करता है, मानवताका सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते, तो हम लोग सुसंस्कृत नहीं हैं। सबसे अधिक चरित्र-भ्रष्ट पुरुषको भी किसी-न-किसी बातमें आश्चर्यजनक अनुराग होता है, सबसे बड़े मुजरिमको भी इस बातका कटु ज्ञान होता है कि उसके अंगूठेका चिह्न एक विशेष प्रकारका है—उसका भी एक पृथक व्यक्तित्व है। संसारका महान् साहित्य पढ़कर हमें ऐसी लज्जा होती है कि हम अपने सन्तोष—सन्तोषजनित अकर्मण्यता—को त्याग देते हैं। संसारका महान् साहित्य हमें बतलाता है कि मनुष्यकी आत्मामें पीड़ा और कष्ट सहन करनेकी कैसी महान् क्षमता है। हमें दुःख झेलने पड़ें, हम असफल हों, लोग हमें भूल जायँ, परन्तु इतना सब होते हुए भी यदि हम क्षुद्र, नीच और अशिष्ट बननेसे इनकार कर दें, तो यह समझना चाहिए कि हम पूर्णरूपसे सफल हुए। यदि जीवनकी सार्थकता किसी बातसे सिद्ध होती है, तो वह है सज्जनता—शराफ़त—और बड़प्पन। मनुष्यकी निगाह हमारी त्रुटियोंकी ओर होती है, परन्तु परमेश्वर हमारे सत्प्रयत्नोंको देखता है।

समझ और सद्भावकी कमी

आजकल हमारे देशमें समझ और सद्भावकी बहुत कमी दिखाई पड़ती है। चाहे अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियोंमें देखिये, अथवा हिन्दू और मुसलमानोंमें देखिये, सब कहीं वही दिखाई पड़ती है। यदि हम एक दूसरेको समझनेकी

कोशिश भी करते हैं, तो हम सहसा एक ऐसे स्थानपर पहुँच जाते हैं, जहाँ हमें यह प्रत्यक्ष मालूम होने लगता है कि इससे आगे हम एक दूसरेका मतलब समझनेमें असमर्थ हैं। यह दिक्कत किन्हीं उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों या कला-सम्बन्धी बातोंके विषयमें नहीं होती, यह व्यावहारिक मामलों और राजनैतिक अभिप्रायोंके सम्बन्धकी होती है। मानव-सम्बन्धों और अभिप्रायोंको समझनेका कोई वैज्ञानिक उपाय, जो विश्वविद्यालयमें सिखाया जा सके, नहीं है। यह तो आत्माका संक्रामक प्रभाव है, जिसका न तो विश्लेषण हो सकता है और न प्रदर्शन। फिर भी वह ऐसी चीज़ नहीं है, जो एक दूसरेमें संचारित न हो सके। यह बात तो बहुत-कुछ शिक्षकोंपर और उनके जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोणपर—जो उनकी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यतासे एकदम भिन्न है—निर्भर करती है। विश्वविद्यालयोंकी चहारदीवारीके भीतर विभिन्न स्वभावों और मतोंके व्यक्तियोंको एक साथ, एक ही आदर्शका अनुसरण करनेका जो अलौकिक अनुभव प्राप्त होता है, उसके परिणामका महत्त्व बहुत विस्तृत है। वहाँपर जो हम मित्रताके अनेकों सुखप्रद सम्बन्ध जोड़ते हैं, वहाँ हम विभिन्न व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आते हैं, वे केवल एक सुखद स्मृतिके रूपमें ही नहीं समाप्त हो जाते, वे हमारे जीवनके अन्तिम क्षण तक हमारे साथ बने रहते हैं। यह तो हमारे हाथकी बात है कि हम एक-दूसरेसे यह प्रतिज्ञा कर लें कि हम लोगोंमें जब कोई ग़लतफ़हमी या झगड़ा पैदा होगा, तब हम उन व्यक्तियोंमें से होंगे जो लोगोंको धैर्य और सहिष्णुतासे काम लेनेकी सम्मति देंगे। हम उन्हें यह बतायेंगे कि ईमानदारी, समझौते और एक दूसरेकी बातें सुननेसे सब प्रकारके मतभेद हल हो जाते हैं।

आत्माकी शक्ति

मैथ्यू आरनाल्डने माधुर्य और प्रकाशको संस्कृतिका चिह्न बताया है। हम इन दोनों बातोंमें एक तीसरी बात शक्ति भी जोड़ सकते हैं। स्वभावकी मधुरता, विवेकपूर्ण दृष्टिकोण, आत्माका बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता और साहस—ये सब सुसंस्कृत मस्तिष्कके गुण हैं। यह कथा प्रसिद्ध है कि प्रेतगण तब तक नहीं बोलते, जब तक वे रक्त न पी लें। इसी प्रकार हमारे सुन्दर स्वप्न तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक वे हमारे हृदयके रक्तसे परिपुष्ट न हों। कोई भी महान् कार्य तपके द्वारा तथा आत्माकी आन्तरिक यन्त्रणाके द्वारा ही सम्पूर्ण हो सकता है। उपनिषद् कहता है कि परमात्मा तपकी शक्तिसे ही विराट् सम्भावनाओंको यथार्थ कर देता है—

"स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदं सर्वम् सृजत्।"

(तैत्तरीय उपनिषद्, २-६)

"उसने तपस्या की। उसने तपस्या कर सब सृष्टि की।" *

संसारमें सबसे अच्छे कार्य वे ही सम्पन्न करते हैं, जो सांसारिक वैभवोंका परित्याग करके आकांक्षाओंकी पीड़ाका भार वहन किया करते हैं। प्राचीन भारतके ऋषि लोग भयको जानते ही न थे, उन्हें डर ही न था। बुद्ध कष्ट भोगने और आत्माकी शान्ति प्राप्त करनेके लिए अपने राज-महलोंको छोड़कर चले गये थे। ईसा मसीह शोक-सन्तापकी मूर्ति थे। जिसने चरम सीमाका कष्ट नहीं सहा है, वह वास्तविकताकी नींव तक नहीं पहुँच सकता। कष्ट सहन करनेके विषयमें हम पुरुष लोग तो नौसिखिये हैं, इस विषयमें हमारी महिलाएँ बहुत दक्ष हैं। प्राचीन भारतके पुनर्जन्ममें उनका भाग बहुत काफ़ी होगा।

उपसंहार

मैं कष्ट-सहन और शक्तिके ऊपर विशेष ज़ोर देना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे सन्देह है कि हम लोगोंमें एक नये

---

* महात्मा तुलसीदासजीने भी इसी बातको पार्वतीजीके मुखसे कैसे सरल शब्दोंमें कहलाया है—

"तप-बल रचइ प्रपंच विधाता। तप-बल विष्णु सकल-जग-त्राता।
तप-बल शम्भु करहिं संहारा। तप-बल शेष धरइ महि-भारा।
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहु जाइ तपु अस जिय जानी।"

—अनुवादक

ढंगकी सांसारिकता आ गई है। हम लोग सांसारिक सुखोंसे लाड़ प्यार करनेमें व्यस्त दिखाई देते हैं। हम लोग अपनी समस्त मेधावी शक्तियोंको केवल एक उद्देश्यकी पूर्तिके लिए निष्ठुरतासे लगा रहे हैं, और वह उद्देश्य है सांसारिक और आर्थिक सफलता। हम लोग उच्च वेतनकी प्राप्तिके लिए अपने प्राण दे डालनेके लिए तत्पर हैं, परन्तु उच्च आदर्शोंके लिए नहीं। हमें अपनी सांसारिक और आर्थिक उन्नतिके लिए इतना प्रेम है, जो प्राय: अन्ध-विश्वासकी सीमापर पहुँच गया है। इस परिवर्तन कालमें हमारे जीवनमें एक नये ढंगकी सरलता, एक नये प्रकारकी तपश्चर्याकी आवश्यकता है। मेरे नवयुवक मित्रो! इस समय देशका नेतृत्व—विचारोंमें ही नहीं, व्यावहारिक रूपमें भी—आपके हाथोंमें जा रहा है, अत: आपको ही इस सरलता और इस तपश्चर्याकी सबसे अधिक ज़रूरत है। हमारे पास धन, शक्ति अथवा गौरवके चमकते हुए पारितोषिक नहीं हैं, जो हम आपको दे सकें, हमारे पास केवल कठिनाइयाँ, संघर्ष और कष्ट हैं। ईश्वर करे कि आपके विश्वविद्यालयके आदर्श आपको इस योग्य बनावें कि आप इन बातोंका साहस और सजीवनतासे सामना कर सकें तथा आप निराशा और हृदयहीनतासे बच सकें।*

* लाहोर विश्वविद्यालयके उपाधि वितरणके अवसरपर दी हुई वक्तृताका अंश।
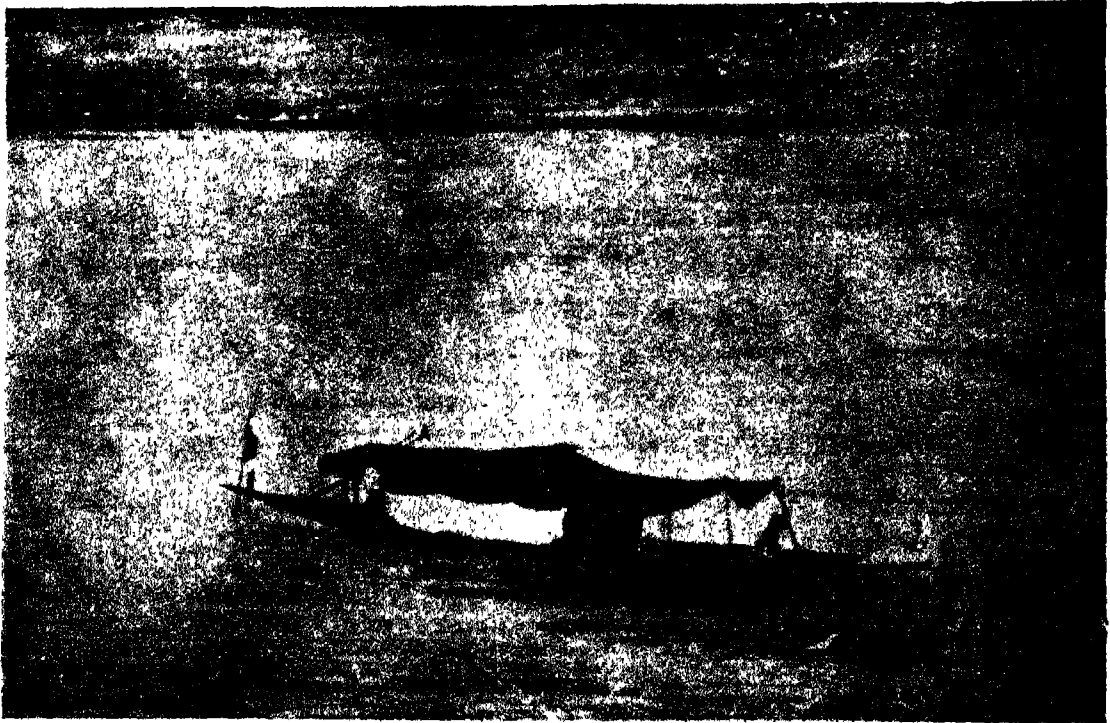
मि० ब्रेल्सफोर्डके साथ

श्री श्रीराम शर्मा, बी० ए०

ब्रिटिश सरकार प्रभावशाली समाचारपत्रोंसे जितनी डरती है, उतनी भयंकर तोपोंसे नहीं ; क्योंकि समाचार-पत्रोंकी मार अधिक कारगर होती है। गत महायुद्धमें अंग्रेज़ोंको विजय-श्री अधिकांशमें समाचारपत्रोंके आन्दोलनसे ही मिली। 'जर्मनीमें हताहत अंग्रेज़ी सैनिकोंको पेलकर चर्बी निकाली जाती है'—इस झूठे तथा घृणित समाचारने जर्मन-मर्यादाको मिट्टीमें मिला दिया। समाचार पत्रोंके आन्दोलनसे ही अमेरिकाने जर्मनीके विरुद्ध ताल ठोंका। लन्दनकी 'डाउनिंग स्ट्रीट' के बूढ़े वशिष्ट 'टाइम्स' और 'हेरल्ड' हैं। बाल्डविन और मैकडानल्ड तो उनके अनुचर हैं। वहाँ स्टीड (Stead), स्काट (Scott) और ब्रेल्सफोर्ड (Brailsford) जैसे पत्रकारोंकी बातका बड़ा वज़न होता है। ब्रिटिश जनताकी कुंजी उनके हाथमें है। वे जिधर चाहें, उसे उधर घुमा सकते हैं। ऐसी अवस्थामें श्रीयुत एच० एन० ब्रेल्सफोर्डका निम्नांकित पत्र पाकर मुझे बड़ा क्षोभ हुआ—

ग्रेन्ड होटल, बम्बई

प्रियवर, २८-११-३०

मेरे पास एक मिनटका भी अवकाश नहीं है। मुझे दुःख है कि मैं समय न निकाल सकूँगा। दिल्लीमें मिलो।

तुम्हारा—

एच० एन० ब्रेल्सफोर्ड

× × ×

मेडिन्स होटल दिल्लीमें ४॥ बजे सायंकालको मैं बरामदेमें टहल रहा था, और सोच रहा था कि वायसरायके लंचसे ब्रेल्सफोर्ड कहीं किसी और स्थानको न चले जावें, पर थोड़ी देरमें एक मोटर आ खड़ी हुई और ब्रेल्सफोर्ड साहब उसमें से निकले। अभिवादन और शिष्टाचारके उपरान्त वार्तालाप होने लगा, और मैंने कहा—

"When you have seen the cream of Indian peasantry in Guzerat, will you not have a look at the stinking filth of the peasantry of Northern India."

अर्थात्—"आपने भारतीय किसानोंकी श्रेष्ठताको गुजरातमें देख ही लिया है, तो क्या आप उत्तरी भारतके किसानोंकी अधोगतिको न देखेंगे?" यह सुनकर श्रीयुत ब्रेल्सफोर्ड तिलमिला-से गये। फिर ग्रामीण जीवन और राजनीतिपर बातें होने लगीं। मैंने कहा—"जो शासन ८० प्रति सैकड़ा जनसंख्याका कुछ खयाल नहीं करता, वह कभी टिकाऊ नहीं हो सकता ; जो सुधारक स्वयं ग्रामीण बनकर काम नहीं करना चाहते, वे गाँवोंका सुधार नहीं कर सकते। ग्राम्य जीवन-सुधार रूपी क़िलेके निर्माणके लिए कार्यकर्ताओंको गारे और चूनेका काम करना होगा, मूर्ख कहलाना होगा।" इन बातोंका ब्रेल्सफोर्डपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने गाँवमें जानेके लिए केवल प्रोग्राम ही नहीं बनाया, वरन् वहाँ ठहरने और कई गाँवोंको देखनेका भी विचार दृढ़ कर लिया।

सायंकालको उनका दिल्लीमें व्याख्यान था। ब्रेल्सफोर्डके सम्बन्धसे मुझे बैठनेको अच्छा स्थान मिला। भाषण हुआ और फिर प्रश्नोत्तरकी झड़ी लगी। श्रीयुत ब्रेल्सफोर्ड इंग्लैण्डके स्वतन्त्र मज़दूर-दलके एक प्रभावशाली सदस्य हैं। 'न्यू लीडर' के चार वर्ष तक सम्पादक भी रह चुके हैं। उससे पहले तर्कशास्त्रके प्रोफेसर भी थे। वे फ्रेंच और जर्मन-भाषाके पंडित हैं। फ्रांस, जर्मनी और अमेरिकाके प्रभावशाली पत्रोंको वे अपनी भारतीय यात्राके अनुभव लिख रहे हैं, और उसपर वर्तमान प्रधान मंत्री मैकडानल्डके वे मित्र भी हैं।

ऐसी अवस्थामें प्रश्नोंकी प्रगतिका अनुमान किया जा सकता है, पर वाक्‌पटु मि० ब्रेल्सफोर्डने उन सबोंको, अनेकों प्रश्नोंकी बौछार होनेपर भी, ऐसे उत्तर दिये, जैसे कोई कुशल पटेबाज़ बीसियों लाठियोंके वारको उतारकर अपनी चोट करता है। उन्होंने कहा—"मैं भारतवर्षमें दो कान और दो आँखें लेकर आया हूँ, पर मुँह मेरा बन्द है। मैंने जो कुछ देखा है, उसपर मैं अपने देशवासियोंमें व्याख्यान दूँगा। लार्ड इरविनकी नेकनीयतीपर मेरा विश्वास है, पर आप लोग अपनी लड़ाई लड़िये। जो अत्याचार भारतवर्षमें हो रहे हैं, उनसे मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मेरे देशवासी इन बातोंका विश्वास नहीं करेंगे, पर मैं उन्हें विश्वास कराऊँगा और अपने ढंगसे विश्वास कराऊँगा।"

सभा समाप्त हुई। ब्रेल्सफोर्डको निमंत्रणोंके फंदोंमें फँसानेके लिए अनेक सज्जनोंने प्रयत्न किये, पर उन्होंने सबसे क्षमा चाही, और कहा—"मुझे दुःख है कि मैं कुछ भी समय नहीं दे सकता।" बड़े-बड़े लोग निराश होकर लौट गये और मेरा आतिथ्य स्वीकार किया गया।

सबसे बड़ी कठिनाई जो मुझे उनके आतिथ्यमें उठानी पड़ी, वह थी शौचादि-सम्बन्धी। बिना खाये आदमी दो-एक दिन रह सकता है, पर शौचादिपर तो कृत्रिम अधिकार भी नहीं चलता। गाँववालोंकी क्या है? पर ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान मंत्रीके मित्रके लिए तो कुछ करना था। बड़ी कठिनाई थी। एक महानुभावके यहाँसे सब कुछ आ सकता था। पहले यही निश्चय भी हो चुका था, पर उनके ऊपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा। उनके भतीजेका देहावसान हो गया! इसलिए मेरे छोटे भाई और बड़े भाई साहबने कमोडका प्रबन्ध एक मित्रसे तीस चालीस मीलकी दूरीसे कराया। खेतमें अपनी झोंपड़ीके पास दो तम्बू लगा दिये गये।

भोजनकी हमें चिन्ता न थी। केला, सन्तरा और सेब शहरसे ले आये। खीर, पूरी, हलवा, रोटी, शाक और लौकीका रायता खिलाया। रूखा-सूखा जो बना, सो खिलाया, और मि० ब्रेल्सफोर्डको समझा दिया कि किसानोंका यह साधारण भोजन नहीं। खीर, पूरी गाँववालोंके लिए खास चीज़ हैं, और वे तीज-त्योहारोंपर ही लोगोंको कठिनाईसे मिलती हैं।

× × ×

११ नवम्बरको मोटरसे हम लोग लगभग एक-दो बजे मक्खनपुर पहुँचे। चूँकि मुझे डाक लेनी थी, इसलिए हम लोग सीधे स्कूल पहुँचे। स्कूल-अध्यापक ही पोस्ट-मास्टर हैं। स्कूलमें दो अध्यापक और लगभग साठ विद्यार्थी हैं। उनमें दस-बारह अछूतोंके लड़के थे। मि० ब्रेल्सफोर्डने लड़कोंकी योग्यता जाँचनेके लिए बड़े ही अच्छे प्रश्न किये। स्कूलमें चौथी कक्षा तक पढ़ाई होती है। प्रश्न तीन-चार श्रेणीवालोंसे किये गये।

ब्रे०—"तुममें से कितने प्रति दिन दूध पीते हैं?"

पन्द्रह-बीस लड़कोंमें से चार-पाँचने हाथ उठाया।

प्रश्न—"इनमें से गायका दूध कितने पीते हैं?"

उ०—"केवल एक।"

प्र०—"आजकल विलायतमें जाड़ा ज्यादा होगा या गर्मी?"

उत्तरमें कईएकने कहा कि शीत अधिक होगा और कईने कहा गर्मी।

प्र०—"पढ़कर क्या करोगे?"

उ०—(एकको छोड़कर) "नौकरी।"

प्र०—(नौकरीके लिए हाथ न उठानेवालेसे, और वही लड़का गायका दूध पीता है)—"तुम क्या करोगे?"

उ०—"दफ़ा चार पास करनेके बाद दुकान।"

ब्रेल्फोर्डने मुझसे कहा कि मैं उस लड़केको समझा दूँ कि वह आगे पढ़े। गायका दूध बुद्धि-वर्द्धक होता है, इसलिए लड़का तेज़ है।

प्र०—"स्कूलकी किताबोंको छोड़कर और कौनसी किताबें तुम्हारे पास हैं?" केवल दो लड़कोंके पास घरपर पुस्तकें थीं, और वे थीं 'सत्यार्थप्रकाश'।

प्र०—"तुम इतने मैले क्यों हो? अपने आप कपड़े क्यों नहीं धो डालते?"

लड़के चुप हो रहे।

प्र०—"तुम क्या-क्या खेल खेलते हो?"

उ०—"कुछ नहीं।"

मैं—(लड़कोंसे) "घरपर कबड्डी भी नहीं खेलते?"

लड़के—"नहीं।"

मैं—"तुम लोग कितना दौड़ लोगे?"

उ०—"मालूम नहीं।"

मैं—"जब मैं इसी स्कूलमें सन् १९०६ में पढ़ता था, तो दो मील दौड़ लेता था। रोज़ गेंद-तड़ी खेलता था और कबड्डी, कूद-फाँद और लबा (हुलक डंडा) भी हो जाया करता था।"

लड़के सुनकर सहम गये। मैं अपने देशके कोमल बच्चोंके गिरते स्वास्थ्यको देखकर दुखी हुआ। फिर मि० ब्रेल्सफोर्डने अध्यापकोंसे प्रश्न किये।

प्र०—"आप लोगोंके लिए सबसे निकट पुस्तकालय कहाँ है?"

उ०—"शिकोहाबादमें जो यहाँसे छै मील है।"

प्र०—"आप लोगोंके घर कितनी पुस्तकें हैं। दो-एकका नाम लो। किस विषयकी पुस्तक अधिक पसन्द हैं? क्या यहाँ कोई पुस्तक है?"

एक अध्यापकने उत्तर दिया—"वेतन तो बहुत कम मिलता है। पुस्तकें कहाँसे लें?" मेवाड़का इतिहास दिखाकर, जिसके पन्ने फटे हुए थे, उसने कहा—"यह किताब मेरे पास है।"

प्र०—"वेतन नियमसे मिलता है?"

उ०—"नहीं मिलता।"

अनेक प्रश्न करनेके बाद नक़शा देखा, और माथेपर हाथ रखकर ब्रेल्सफोर्डने कहा—"भगवान् ही रक्षा करे! ऐसे नक़शोंसे कोई क्या पढ़ा सकता है और क्या पढ़ सकता है?" बिछानेको टाटके चिथड़े थे। डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड और म्यूनिसिपल बोर्डके चुनावके लिए हज़ारों फूँकेंगे, डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड और शिक्षा-विभागके चेयरमैन अल्प वेतनभोगी दीन अध्यापकों तकको वोट-भिक्षाके लिए भेजेंगे, पर देशके बच्चोंके लिए कोई विशेष कार्य न करेंगे।

स्कूलसे चलते समय ब्रेल्सफोर्डने अध्यापकों और बच्चोंसे कहा—'मुझे आशा है कि आपके बच्चोंको आपसे अच्छी शिक्षा मिलेगी।" फिर उन्होंने मुझसे कहा—"इंग्लैण्डमें हम यहाँसे छै-सात गुना अधिक व्यय करते हैं, और शिक्षा अनिवार्य तथा नि:शुल्क है।

× × ×

ढाई बजेके लगभग हम लोग गाँव पहुँच गये। सबसे पहले मैंने ब्रेल्सफोर्डको शौचादि-सम्बन्धी प्रबन्ध दिखाया। वह काम-चलाऊ तो था ही। फिर उनको चाय पिलाई। उसमें न दूध था और न मीठा। केवल चायकी पत्तियोंका क्वाथ था। भीड़-भाड़ कुछ न थी। मैं न तो कांग्रेसका सदस्य हूँ और न लिबरल-दलका। मैं तो उस पंथका अनुयायी हूँ, जो अपना यह सिद्धान्त मानते हैं कि 'मूर्खदेवो भव।' इसलिए मेरी पर्णकुटीरपर कोई भीड़ न थी, और न मैंने किसीसे कहा ही था कि मि० ब्रेल्सफोर्ड गाँवमें आ रहे हैं। अकसर मैं बाहर रहता हूँ। एक वर्षके भीतर गाँवमें जमकर ग्राम-संगठनका कार्य करूँगा। अब तक गाँववालोंके लिए जो होता आया है, वह तो केवल—

"रज़ोल्यूशनकी शोरिश है, मगर उसका असर गायब।
सदा प्लेटोंकी सुनता हूँ, मगर खाना नहीं आता॥"

पहले तो मि० ब्रेल्सफोर्डने एक घटे तक मुझसे जिरह-सी की, और गाँव तथा खेती-सम्बन्धी ऐसे-ऐसे प्रश्न किये, मानो वे ग्रामीण समस्याका बीस वर्षसे अध्ययन कर रहे हों। उन्होंने संयुक्त प्रान्तके वर्तमान लगान-क़ानून (The Agra Tenancy Act) को खूब समझा। पुराने क़ानूनको भी समझा। दोनोंपर तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया गया। मौरूसी काश्तकार (Tenants with Occupancy rights), जन्ममियादी जोत (Life Tenant) और इज़ाफ़ा

लगान, पहले क़ानूनके शिकमी जोत, ज़मींदारोंके स्वत्व और किसानोंकी कठिनाइयोंपर वार्तालाप हुआ। मेरे बड़े भाई क़ानूनके कीड़े हैं। फिर Tenancy Act को तो वे इतना समझते हैं कि बहुतसे पुराने वकील तक न समझते होंगे। अपने ज़मींदारोंकी कृपासे हम लोग अपने एक खेतसे इसलिए बेदखल कर दिये गये थे कि हमने एक फूँसकी झोंपड़ी—उसी झोंपड़ीपर मि० ब्रेल्सफोर्ड ठहरे थे—बना ली थी! यही एक किसानका अपराध था और दूसरा था शिक्षा और सच्ची अकड़! मुक़दमा चला और हाईकोर्ट तक गया। हम जीत गये। हज़ारोंपर पानी फिर गया। राज़ीनामेकी कोशिश की, भले आदमियोंको बीचमें डाला, पर ईश्वरदत्त अधिकार-प्राप्त ज़मींदार टससे मस न हुआ। उसका आधा रुपया दीन-दुखियोंको औषधि बाँटनेमें काम आता, तो कितना पुण्य होता। मि० ब्रेल्सफोर्डने ग्रामीण मनोविज्ञान और उनकी कठिनाइयोंको समझनेके लिए मुक़दमेकी बातें भी सुनीं। उनसे यह भी कहा गया कि सब ज़मींदार ऐसे नहीं होते और न सब किसान ही इतने शिक्षित हैं। बहोरनपुरके ज़मींदार पं० लालबहादुर तिवारी भी वहाँ थे। ज़मींदार-पक्षकी बातें उनसे पूछी गईं। स्वयं मैंने भी छोटे-छोटे ज़मींदारोंकी कठिनाइयोंको समझाया।

उसके उपरान्त मि० ब्रेल्सफोर्ड गाँव देखने गये। घूरों और कूड़ोंके ढेरोंमेंसे होकर भीतर गाँवमें पहुँचे। घरोंके भीतर ले जाकर रहन-सहन तथा फूटे-टूटे घर दिखाये। उन्होंने भंगी और चमारोंके घरोंको भी देखा। गाँवकी ग़रीबी-रूपी राक्षसी मानो मुँह बाए खाने दौड़ रही थी! स्त्रियों और बच्चोंके फटे-पुराने वस्त्र, उनके मलीन मुख, चिन्तित आँखें, आत्म-विश्वास और आत्माभिमान-रहित चालसे उनकी अधोगति टपक रही थी। एक चमारके घरमें छै आदमी थे और ओढ़नेके लिए दो कपड़े! चमारका बच्चा बीमार पड़ गया। हम लोगोंने दवा दी। धैर्य बँधाया। कुछ कपड़ा दिया। बच्चा बच गया, पर ऐसे रोगी कितने नहीं होते? सरकारी अस्पताल छै मील है। पिछले पचीस वर्षोंसे सरकारकी ओरसे कोई डाक्टर नहीं आया। इस वर्ष हम लोगोंने चार सौ रोगियोंको अच्छा किया। भाग्य अथवा दुर्भाग्यसे एक मोतीझला (Typhoid) का रोगी मि० ब्रेल्सफोर्डके सामने आ गया। छै वर्षका बच्चा था। ओठ सूखे हुए, ज्वरके प्रकोपसे नथुने तेज़ीसे चल रहे थे। पित्त भी बिगड़ा मालूम होता था। लड़केका पिता बच्चेको एक फटे कपड़ेमें लपेटे गोदमें लिए बैठा था। "खानेको इसको दूधके अतिरिक्त और कुछ न देना" इस आदेशको सुनकर पिताके गर्दन झुका ली, और कहा—"पण्डितजी, खानेको तो अन्न ही नहीं, दूध तो सपनेऊमें ना।" बच्चेकी ओर देखा, तो मेरी आँखें डबडबा आईं, मानो उस अस्थिपिंजरमें छिपी पवित्र आत्माने मुझे दुत्कारा हो। भाई साहबने दवा दी और वह चला गया। मि० ब्रेल्सफोर्डने कहा—"Wonder, how you People are surviving." अर्थात्—'मुझे आश्चर्य है कि तुम लोग जीवित कैसे हो!' मैंने कहा—"Mr. Brailsford, Swarajya may or may not be a birthright of a man; but milk must be a birthright of every child." (स्वराज्य प्रत्येक व्यक्तिका जन्म सिद्ध अधिकार हो अथवा न हो, पर दूध तो प्रत्येक बच्चेका जन्म-सिद्ध अधिकार होना चाहिए।) ब्राल्सफोर्डने कहा—"You are right Mr. Sharma." (आप ठीक कहते हैं मि० शर्मा)। पर मि० शर्मा और मि० ब्रेल्सफोर्डकी कोरी बातोंसे क्या लाभ?

तब हम लोग ज़िला मैनपुरीके वर्तमान एम० एल० सी० चौधरी धीरी सिंहके गाँवको गये। यहाँपर यह लिखना अनुचित न होगा कि मेरा चौधरी धीरी सिंह तथा उनके प्रतिद्वन्द्वी पं० खड्गजीत मिश्रसे राग-द्वेष कुछ भी नहीं। दोनोंमें से मैं एकको भी नहीं जानता। मेरा नाम तो वोटरोंकी सूचीमें भी नहीं। किशनपुर जैसे हज़ारों गाँव हैं, और धीरी सिंह और मिश्रजी जैसे अनेक ज़मींदार।

सायंकालका समय था। सूर्य डूब रहा था। किशनपुरमें

पहुँचकर हम लोग एक नीमके पेड़के नीचे चबूतरेपर बैठे। लोग ओढ़ना ओढ़े, फटी मिरज़ई पहने और कोई-कोई हाथमें चिलम लिये हुए चबूतरे और नीमके चारों ओर बैठे। हम लोगोंके लिए चारपाइयाँ डाल दी गई और कोई तीन घंटे तक वार्तालाप होता रहा। गाँवकी जन-संख्या, बैल और गाय-भैंसोंकी संख्या मालूम करनेके बाद ब्रेल्सफोर्डने अनेकों प्रश्न पूछे। उनमें से मुख्य ये हैं।

प्र०—"क्या गाँवमें कोई पढ़ा हुआ है ?"

उ०—"कोई नहीं।"

प्र०—"कोई लड़का स्कूल पढ़ने जाता है ?"

उ०—"कोई नहीं।"

प्र०—"गाँवमें कितने आदमी ऐसे हैं, जो ऋणसे मुक्त हैं ?"

उ०—"कोई नहीं।"

प्र०—"अधिकसे अधिक कितना ऋण देना है ?"

उ०—"डेढ़-डेढ़ हज़ार तो कईको देना है।"

प्र०—"ऋण कहाँसे लाते हो और किस हिसाबसे ?"

उ०—"मक्खनपुरके बनियोंसे और इकन्नी और दुअन्नीकी ब्याजपर, यानी ३७½ और ७५ प्रति सैकड़ेके दरसे।"

प्र०—"क्या यह बात ठीक है ? मुझे विश्वास नहीं होता।"

उ०—"बिलकुल ठीक। आप बनियोंके कागज़ चलकर देख लें।"

प्र०—"क्या तुम इस ऋणको चुका सकोगे ?"

उ०—"तीन पीढ़ी तक नहीं।"

प्र०—"बनिया तुम्हारी कुर्की करावेगा ?

उ०—"मरना है, सो किसी तरह मरें।"

प्र०—"सिंचाईके लिए कुआँ कौन खोदता है ?"

उ०—"हम।"

प्र०—"और ज़मींदार ?"

उ०—"उन्हें तो अपनी मालगुज़ारीसे मतलब।"

प्र०—"ज़मींदार गाँवमें आता है ?"

उ०—"बस, लगान वसूल करने।"

प्र०—"गाँवमें आकर खाना कहाँसे खाता है ?"

उ०—"अपना दूध, दही और घी तो हमें मुफ़्तमें देना पड़ता है, और कारिंदा तो हमारी जान ही खा जाता है।"

प्र०—"इस वर्षका लगान बढ़ गया ?"

उ०—"नहीं।"

प्र०—"क्यों नहीं।"

उ०—"अन्न इतना सस्ता है कि हम घर-घूरा भी बेचें, तब भी नहीं दे सकते। एक हलपर पचास मन भी तो नहीं होता। एक किसान चालीस-पचास बीघा खेती करता है, पर उसमें होता ही क्या है।—'लुगाई लरिका सिब लगे रहत एं नौऊ पेट ना भरतु'।"

प्र०—"तुमने वोट किसको दिये ?"

उ०—"अपने ज़मींदारको।"

प्र०—"क्या वह कांग्रेसके आदमी हैं ?"

उ०—"हमसे तो उन्होंने यही कहा। मोटरपर झंडा भी लगाये फिरते थे।"

प्र०—"कांग्रेसवाले तो कौंसिलमें गये ही नहीं।"

उ०—"सो हमको नहीं मालूम।"

प्र०—"यदि तुम्हें मालूम हो जाता कि कांग्रेसके नामपर वे वोट माँग रहे हैं और कांग्रेसके वह आदमी नहीं, तो क्या तुम उन्हें वोट देते ?"

उ०—"हमें तो देना पड़ता।"

प्र०—"क्यों ?"

उ०—"हमसे ज़बरदस्ती दिलवा लेते। जब लगान तारीखको नहीं दे पाते, तो तंग किये जाते हैं।"

प्र०—"क्या तुमको लगान देनेकी रसीद मिलती है ?"

उ०—"कभी नहीं।"

मुझसे वार्तालाप करके ब्रेल्सफोर्डको मालूम हुआ कि ज़मींदार पटवारीके यहाँ सियाहा कराता है, पर वह चाहे तो फ़सलका सियाहा बिना-भरा रखता है, और कोई किसान ज़रा भी चीं-चपड़ करे, तो उसपर बाकी लगानका दावा और बेदखली लग सकती है।

प्र०—(मुझसे) "जब पटवारीके सियाहा होता है तब कोई हानि नहीं, यदि रसीद नहीं मिलती।"

मैं—"हर्ज क्यों नहीं ? बेदखलीका भूत और ज़मींदारका दबाव किसानपर बना रहता है। ऐसी अवस्थामें यदि कोई किसान ज़मींदारकी मर्ज़ीके खिलाफ़ वोट दे, तो उसका सर्वनाश ही समझना चाहिए।"

ब्रेल्स०—"ठीक है।"

प्र०—(गाँववालोंसे) "आज तुमने क्या खाया है ?"

उ०—"रोटी।"

प्र०—"क्या एक रोटी ला दोगे ?"

उ०—(हँसते हुए) "अच्छी बात है।"

एक लड़का भागकर घरसे बाजरेकी रोटी ले आया और ब्रेल्सफोर्डने उसका टुकड़ा खाया।

प्र०—"तुम लोग कौनसे फल खाते हो ?"

उ०—"फ़सलपर आम चख लेते हैं और निबौली खाते हैं।"

प्र०—"क्या तुमने कभी केला खाया है ?"

उ०—"अरे साहब, केलाका पत्ता सत्यनारायणकी कथाके समय ठाकुरजीके पास रख देते हैं।"

प्र०—"जब खेती करनेसे प्रत्येक साल टोटा ही पड़ता है, तो फिर खेती करते क्यों हो ?"

उ०—"और फिर क्या करें ? मज़दूरी मिलती कहाँ है ? मज़दूरी करनेवाले तो हमसे अच्छे हैं। हममें और मज़दूरोंमें एक भेद है। हमें कर्ज़ जल्दी मिल जाता है। बनिया जानता है कि किसानके पास हल-बैल तो है। मज़दूरको कर्ज़ सहजमें नहीं मिलता, पर मज़दूर हमसे सुखी हैं।"

हम लोग चलनेके लिए उठनेवाले ही थे कि एक आदमी आकर खड़ा हुआ और अपना फटा कुर्ता दिखाया। उसके पास उस कुर्ते और लँगोटेके अतिरिक्त और कुछ न था। ई० आई० रेलपर वह मज़दूरी करता है। १२ घंटेकी ठेकेकी मज़दूरीसे छः आना कमाता है, उसीसे अपने पाँच प्राणियोंके कुटुम्बका निर्वाह करता है, ब्याज भी देता है और आये दिन गृहस्थीकी रस्म पूरी करता है। ब्रेल्सफोर्डके आगमनके चार दिन बाद उसका बड़ा लड़का मर गया! औषधिके लिए पास पैसे ही न थे, जो दवा कराता!

रात हो गई थी। हम लोग चलने लगे। गाँव-भरमें कोई लालटेन न थी। मैंने अपने गाँवसे लालटेन मँगाई और हम लोग लौट आये। मि० ब्रेल्सफोर्डने भोजन किया और रातके १२ बजे तक बातें होती रहीं। उन्होंने मेरी ग्राम-सुधार-योजनाको ध्यान-पूर्वक सुना और उसे खूब पसन्द किया।

× × ×

अगले दिन कई और गाँवोंका निरीक्षण किया और इंदमई गाँवमें इस बातका हिसाब लगाया कि किसानकी दशा मज़दूरसे क्योंकर बुरी है। वहाँपर बरगदके पेड़के नीचे हम लोग बैठे हुए थे। पं० लालबहादुर तिवारी ज़मींदार और इंदमई ज़मींदारका कारिन्दा भी उपस्थित था। गाँवमें कम-से-कम लगान दस रुपया प्रति-सैकड़ा है, और वैसे तो लगान पन्द्रह और तीस रुपया तक है। खेतीका खर्च तीन मुख्यमदों—मज़दूरी, लगान और बीजपर तेईस रुपया है और ४३ रुपया तक बढ़ जाता है। इसमें बैल, खाद और औज़ार तथा किसानोंके तीन वार्षिक ठलुआ महीनोंका कुछ हिसाब ही नहीं रखा गया। एक एकड़में पैदावार होती है ६ से १० मन तक, जिसका मूल्य हुआ १४ रुपयासे २३ रुपया तक। स्वयं मि० ब्रेल्सफोर्डके शब्दोंमें, यदि किसान लगान देता है, तो वह भूखों मरता है, और यदि उसे जीवित रहना है तो उसकी बेदखली होनी चाहिए, या ऋणदाताकी सहायताका आश्रय लेना चाहिए। ज़मींदारकी उदारतापर वह भरोसा नहीं कर सकता। ज़मींदार भी ऋणी है, और उसीके शब्दोंमें—"भूखा सिंह गायको पछाड़ता है।"

अकस्मात् हम लोगोंकी भेंट मक्खनपुरके बनियेसे हुई, जो एक कोलीको वसूलयाबीके लिए भला-बुरा कह रहा था। उससे भी खूब बातें हुईं। बनियेने कहा कि तीन वर्षसे दुर्भिक्ष पड़ रहा है, और जो रुपया दिया जाता है, वह वसूल

नहीं होता। किसानके पास कुछ है ही नहीं। वह क्या करे। और बनिया ही क्या करे।

प्र०—"तुम्हें कभी पुलिस भी सताती है ?"

उ०—"हाँ, सताती है।"

प्र०—"क्या तुमने कभी पुलिस-अत्याचारकी शिकायत की है ? जब तक तुम शिकायत न करोगे, तब तक सरकारको क्या पड़ी है कि पुलिसके विरुद्ध कुछ कार्यवाही करे ?"

उ०—"शिकायत करनेसे और भी आफ़त आती है। सरकार हमारी शिकायत सुनती कब है ?"

प्र०—"पर तुमने कभी शिकायत की ?"

उ०—"आप किसीसे पूछ लें, 'प्रताप'के मानहानिवाले मुक़दमामें दारोग़ाके विरुद्ध हाई कोर्टने मुक़दमा चलानेकी आज्ञा दी, पर आज तक मुक़दमा चलता ही है।"

हम लोग दोपहरको गाँव लौट आये और भोजन किया। भोजन करने और विदाके समय तक खूब बातें होती रहीं। मि० ब्रेल्सफोर्डने कहा—"मैंने यहाँ जो अनुभव प्राप्त किये हैं, उनको मैं कभी नहीं भूल सकता।" उस स्वराज्य और स्वतन्त्रताका कुछ मूल्य नहीं, जो किसानोंकी अधोगतिको दूर नहीं कर सकता। भारतवर्षके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेकी योग्यताकी असली कसौटी होगी, ग्राम-समस्याके केन्द्रीय प्रश्नका सामना करना।"

मेरा निजी विचार है कि ग्राम-संगठन एक ऐसी समस्या है, जो बिना राजनैतिक पचड़ेके प्रारम्भ की जा सकती है और स्वराज्यकी नींव उसीपर रखी जा सकती है। इस समय इन प्रश्नोंपर विचार किया जाना चाहिए कि गाँवोंमें (१) दवा-दारूका प्रबन्ध कैसे किया जावे ? (२) बढ़ती हुई ग़रीबीकी बाढ़को कैसे रोका जावे और (३) गाय, बैल, भैंसकी नस्ल कैसे सुधारी जावे, जिससे गाँववालोंको दूध घी खानेको मिले, और अन्नकी उपज कैसे बढ़े।

गाँवोंकी स्थिति इतनी भयंकर है, और भोजन तो गाँववालोंका इतना ख़राब है कि उनके बच्चे शारीरिक और मानसिक कमज़ोरीके कारण प्रकृति-प्रदत्त गुणोंको ग्रहण करने-योग्य नहीं रहे हैं। मनुष्यत्वका ह्रास हो रहा है। राजनीतिज्ञ राजनीतिकी लड़ाई लड़ें, पर दूसरे आदमियोंको दरिद्र, राक्षस और मानवी ह्रासको दूर करनेका उद्योग करना चाहिए।

संभ्रम

[१]

कहाँ चढ़ाऊँ फूल !
कहाँ चढ़ाऊँ फूल, किसे क्या
गरज पड़ी जो
इस सौरभ-विहीनको लेकर
कर दे भारी भूल ! कहाँ....

[२]

कहाँ चढ़ाऊँ फूल, कहा क्या
यौवन-पदमें ?
वह विलास-कुसुमोंकी शय्या
यह बन लेगा धूल ! कहाँ....

[३]

कहाँ चढ़ाऊँ फूल, बता दे
दृष्टि-कोणसे
रख जाऊँ क्या इस निशीथमें
अश्रु-नदीके कूल ! कहाँ...

[४]

कहाँ चढ़ाऊँ फूल, लगा दूँ
उसी शाखामें
इसका आश्रय एक वही क्या
स्नेह-लताका मूल ?
कहाँ चढ़ाऊँ फूल !

—'सव्यसाची'

छुट्टी

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सब लड़कोंके सरदार फटिक चक्रवर्तीके दिमागमें एक नया खेल सूझा। नदीके किनारे एक बड़ा भारी साखूका लट्ठा मस्तूलके रूपमें रूपान्तरित होनेकी प्रतीक्षामें पड़ा था; निश्चय हुआ कि उसे सब मिलकर लुढ़का ले जायँगे।

जिस आदमीका लट्ठा है, जरूरतके वक्त उसे कितना आश्चर्य होगा, कितना गुस्सा आयेगा और कितनी अड़चन होगी, इस बातका मन-ही-मन अनुमान करके लड़कोंने इस प्रस्तावका पूरी तरहसे अनुमोदन किया।

कमर बाँधकर सब-कोई जब तबियतके साथ काममें जुटनेको तैयार हो गये, तब फटिकका छोटा भाई माखनलाल गम्भीरतासे उस लट्ठेपर जमकर बैठ गया; लड़के उसकी ऐसी उदार उदासीनताको देखकर कुछ खिन्न-से हो गये।

एकने आकर डरते-डरते उसे थोड़ा-बहुत धकेला भी, परन्तु उससे वह रचमात्र भी विचलित नहीं हुआ; वह अकाल-तत्त्वज्ञानी मानव सब तरहकी क्रीड़ाओंकी असारताके विषयमें नीरवताके साथ विचार करने लगा।

फटिकने आकर बड़े रोबके साथ उछलकर कहा—"देख, मार खायगा! नहीं तो उठ अभी!"

इसपर उसने ज़रा और भी हिल डुलकर अपने आसनको खूब मज़बूत बना लिया।

ऐसी दशामें सर्वसाधारणके सामने अपने राज-सम्मानकी रक्षाके लिए फटिकका कर्तव्य था कि वह कहना न माननेवाले अपने भाईकी कनपटीपर शीघ्र ही कसके एक तमाचा जड़ देता, लेकिन हिम्मत न पड़ी। किन्तु अब उसने ऐसा भाव धारण किया कि मानो वह चाहे तो अभी उसे अच्छी तरह दुरुस्त कर सकता है, पर करता नहीं; क्योंकि पहलेसे अबकी उसके दिमागमें और भी एक अच्छा खेल सूझा है, उसमें इससे भी ज्यादा मज़ा है। उसने प्रस्ताव किया कि माखन-समेत उस लट्ठेको लुढ़काया जाय।

माखनने सोचा, इसमें उसका गौरव है; परन्तु और-और पार्थिव गौरवोंकी तरह इसमें आनुसंगिक विपत्तिकी भी सम्भावना है, यह बात उसके या और किसीके भी ध्यानमें नहीं आई।

लड़कोंने कमर बाँधकर लुढ़काना शुरू किया—'मारो ठेला हेइओ, शाबास जुआन हेइओ।' लट्ठा एक चक्कर घूम भी न पाया कि इतनेमें माखन अपने गाम्भीर्य, गौरव और तत्त्वज्ञान-समेत ज़मीनपर जा रहा।

खेलके प्रारम्भमें ही ऐसा आशातीत फल पाकर और-और लड़के बड़े खुश हो उठे, परन्तु फटिक कुछ घबरा-सा गया। माखन उसी दम ज़मीनसे उठकर फटिकपर टूट पड़ा और बिलकुल अन्धेकी तरह दोनों हाथोंसे मारने चिपट गया। उसकी नाकपर—गालपर जहाँ पाया नोंच खाया और फिर रोते-रोते घरकी तरफ़ चल दिया,—खेल खतम हो गया।

फटिकने थोड़ीसी कांस उखाड़ ली और उसे हाथमें लिये हुए वह एक अध-डूबी नावकी मुड़गारीपर जा बैठा—चुपचाप बैठा-बैठा कांसकी जड़ चबाने लगा।

इतनेमें एक परदेसी नाव आकर घाटसे लगी। उसपर से एक अधेड़ आदमी, जिसकी मूँछें काली और बाल सफ़ेद थे, उतरा। उसने लड़केसे पूछा—"चक्रवर्तियोंका मकान किधर है, लल्लू?"

लड़केने कांस चबाते हुए कहा—"वो, वहाँ है!" परन्तु किधरके लिए उसने इशारा किया, किसीकी ताक़त नहीं कि समझ ले।

उस भले आदमीने फिर पूछा—"कहाँ?"

उसने कहा—"नहीं मालूम!"—कहकर पहलेकी तरह

वह फिर उस घाससे रस ग्रहण करनेमें प्रवृत्त हो गया। तब वह भला आदमी दूसरे किसीकी सहायतासे चक्रवर्तियोंके घरकी तलाशमें चल दिया।

कुछ देर बाद बाघा बागदी नौकरने आकर कहा—"फटिक भइया, माजी बुला रही हैं।"

फटिकने कहा—"नहीं जाता, जा।"

बाघा उसे ज़बरदस्ती गोदमें लटकाकर ले चला, फटिक मारे गुस्सेके हाथ-पैर फकने लगा।

फटिकको देखते ही उसकी माने लाल-तातो होकर कहा—"फिर तैंने माखनको मारा!"

फटिकने कहा—"नहीं, मैंने नहीं मारा।"

"फिर झूठ बोला!"

"कभी नहीं मारा!—माखनसे पूछो न।"

माखनसे पूछा गया, तो उसने अपनी पहलेकी शिकायतका समर्थन करते हुए कहा—"हाँ, मारा है।"

अब फटिकसे रहा न गया। जल्दीसे लपककर माखनके गालपर कसकर एक तमाचा जड़ दिया, बोला—"फिर झूठ बोला!"

माने माखनका पक्ष लेकर फटिकको ज़ोरसे झकझोर डाला और ऊपरसे कसकर तीन थप्पड़ जमा दिये। फटिकने माको ढकेल दिया।

माने चिल्लाकर कहा—"एँ, तू हमपर हाथ उठाता है!"

इतनेमें वह आदमी भी आ पहुँचा, जिसने नावसे उतरकर फटिकसे चक्रवर्तियोंके मकानका पता पूछा था; घरमें घुसते ही उसने पूछा—"क्या हो रहा है तुम लोगोंमें!"

फटिककी माने आश्चर्य और आनन्दमें आकर कहा—"अरे, ये तो भइया आ गये! तुम कब आये भइया!" कहकर ज़मीनसे सिर लगाकर प्रणाम किया।*

बहुत दिन हुए, भइया पछाँहकी तरफ नौकरीपर गये थे। इस बीचमें फटिककी माके दो लड़के हुए और वे बढ़ चले हैं; उसके पतिका देहान्त हो गया है, परन्तु तबसे एकबार भी भइया उससे मिले नहीं हैं। आज बहुत दिन पीछे अपने देश लौटकर विश्वम्भर-बाबू अपनी बहनसे मिलने आये हैं।

कुछ दिन खूब हँसी-खुशीमें कटे। अन्तमें विदा होनेके दो-एक दिन पहले विश्वम्भर-बाबूने बहनसे लड़कोंकी पढ़ाई-लिखाई और मानसिक उन्नतिके बारेमें पूछताछ की। उत्तरमें सुना कि फटिक बड़ा ढीट, बड़ा उजड्ड हो गया है, पढ़नेमें उसका ज़रा भी मन नहीं लगता, और माखन शान्त है, सुशील है, पढ़ने-लिखनेमें भी वह तेज़ है।

बहनने कहा—"फटिकके मारे मेरी तो नाकमें दम आ गई है।"

सुनकर विश्वम्भरने प्रस्ताव किया—फटिकको कलकत्ते ले जाकर अपने पास रखकर पढ़ायगे। विधवा इस प्रस्ताव पर सहज ही राज़ी हो गई।

फटिकसे पूछा—"क्यों रे फटिक, मामाके साथ कलकत्ते जायगा?"

फटिकने उछलकर उत्तर दिया—"हाँ, जाऊँगा।"

यद्यपि फटिकको भेजनेमें उसकी माको कोई आपत्ति न थी,—क्योंकि उनको हमेशा यह आशंका बनी रहती थी कि किसी दिन वह माखनको नदीमें न ढकल दे, या सिर ही फोड़ दे, या कोई और ही कौतुक कर बैठे, इसका कोई ठीक थोड़े ही है,—किन्तु फिर भी कलकत्ते जानेके लिए उसका ऐसा आग्रह देखकर वे ज़रा उदास हो गई।

"कब जाओगे मामा?"—करते-करते फटिकने मामाके नाकों दम कर दिया; मारे खुशीके उसे रातको नींद तक न आई।

कलकत्तेमें, ननसाल पहुँचकर पहले तो माईके साथ बातचीत हुई। माई इस अनावश्यक परिवार-वृद्धिसे मन ही मन खूब सन्तुष्ट हुई थीं या नहीं, यह नहीं कह सकते। वे अपने तीन लड़कोंको लेकर अपने नियमके अनुसार गिरस्ती चला रही थीं, उसके बीचमें सहसा एक तेरह वर्षके अपरिचित

* बंगालमें भाई वगैरह बहनको प्रणाम नहीं करते, बहन ही विनय करती हैं।

अशिक्षित गई-गाँवके लड़केको छोड़ देना, एक विप्लव उपस्थित कर देना है! विश्वम्भरकी इतनी उमर हो चुकी, पर ज़रा भी अगर शऊर हो!

खासकर तेरह-चौदह वर्षके लड़केके समान संसारमें दूसरी कोई बला ही नहीं। न उसकी कुछ शोभा है और न वह किसी काममें आवे। स्नेह भी नहीं उमड़ता, और न उसके संग सुखकी विशेष चाह ही होती है। उसके मुँहसे आधी-आधी तोतली बोली भी इतरानेमें शामिल है, और साफ़-साफ़ पक्की बात कहे तो वह बड़े-बूढ़ेकी-सी जान पड़ती है। मतलब यह कि उसका बोलना ही प्रगल्भता है। सहसा कपड़े-लत्तोंके मापका कुछ खयाल न करके इस तरह भद्दी तौरसे उसका बढ़ते जाना, लोगोंकी निगाहमें एक बेहूदी हिमाक़त-सी मालूम होती है। उसके बचपनका लालित्य और कंठकी मधुरता चली जाती है, इसके लिए लोग उसे ही मन-ही-मन अपराधी समझते हैं। शैशव और यौवनके बहुतसे दोष माफ़ किये जा सकते हैं, किन्तु इस समयकी कोई स्वाभाविक अनिवार्य त्रुटि भी असह्य मालूम होती है।

वह भी सर्वदा मन-ही-मन इस बातको महसूस करता रहता है कि दुनियामें कहीं भी वह ठीक-ठीक जँचता नहीं, इसीलिए अपने अस्तित्वपर वह सर्वदा लज्जित और क्षमाप्रार्थी सा बना रहता है। किन्तु इसी उमरमें ही मनमें स्नेहके लिए सीमासे कुछ अधिक व्याकुलता पैदा हो जाती है। इस समय यदि वह किसी सहृदय व्यक्तिसे स्नेह या बन्धुत्व पा जाय, तो उसका वह खरीदा हुआ गुलाम-सा बन जाता है। परन्तु उससे स्नेह करनेमें किसीकी हिम्मत नहीं पड़ती, क्योंकि फिर उसे सब कोई 'सिरपर चढ़ाना' समझते हैं। इसलिए उसका चेहरा और मनका भाव लगभग प्रभु-हीन राहके कुत्ते सरीखा हो जाता है।

अतएव, ऐसी दशामें माके घरके सिवा दूसरा कोई स्थान बालकके लिए नरकसे कम नहीं है। चारों तरफ़की स्नेह-शून्य विरागता उसे पद-पदमें काँटेकी तरह चुभती है। इस उमरमें साधारणतः नारी-जाति किसी एक श्रेष्ठ स्वर्गलोककी दुर्लभ वस्तु मालूम पड़ती है, और इसलिए उनके द्वारा अनादर होना अत्यन्त दुःसह मालूम होता है।

माँईकी स्नेह-हीन आखोंमें वह एक अशुभ ग्रहकी तरह खटकता रहता है, यही बात फटिकको सबसे ज्यादा अखरती थी। माँई अगर उससे कभी किसी कामके लिए कहतीं, तो वह मारे खुशीके फूला न समाता, और उसी आनन्दमें ज़रूरतसे ज्यादा काम कर डालता; अन्तमें माँई उसके उत्साहका दमन करके कहतीं—"बस, बहुत हो गया, बहुत हो गया! उसे अब रहने दो! अब तुम जाकर अपने काममें मन लगाओ! जाओ ज़रा पढ़ो-लिखो!"—तब उसे अपनी मानसिक उन्नतिके प्रति माँईका इतना अधिक लक्ष्य रखना ही अत्यन्त निष्ठुर अन्याय मालूम होता।

घरके अंदर ऐसा अनादर और उसपर बाहर ऐसा कोई स्थान नसीब नहीं जहां जाकर ज़रा दो घड़ी मन बहला ले—भर-पेट ऊधम मचा ले! दीवालोंके अंदर क़ैद रहनेके कारण उसे बराबर अपने उसी गांवकी याद आने लगी।

वह खुला हुआ मैदान जहां दिन-भर पतंग उड़ा करती थीं, वह नदीका किनारा जहाँ "सिया-राम अजुध्या बुला लो मुझे" की तान छिड़ा करती थी, और जब मनमें आया तब पानीमें कूदकर तैरनेकी छूट-पट्टी थी, वे सब साथके खिलाड़ी लड़के, वह ऊधम, वह आज़ादी और सबसे बढ़कर वह अत्याचार-अन्याय करनेवाली मा दिन-रात उसके परवश मनको अपनी ओर खींचने लगी।

उस लज्जित शंकित शीर्ण दीर्घ असुन्दर बालकके अन्तःकरणमें जानवरों-जैसा एक तरहका नासमझ प्रेम—सिर्फ पास जानेकी अन्ध-इच्छा, सिर्फ एक बिन-देखी चीज़के लिए अव्यक्त व्याकुलता, गोधूलिके समय मातृहीन बछड़ेकी तरहका केवल एक आन्तरिक 'मा-मा' का क्रन्दन—बारबार उमड़ने लगा।

स्कूल-भरमें इससे बढ़कर मूर्ख और पढ़नेसे जी-चुरानेवाला दूसरा कोई लड़का ही न था। कोई बात पूछनेपर वह

ऊपरको मुँह बाये खड़ा रहता। मास्टर जब मारना शुरू करते, तो बोझसे लदे हुए गधेकी तरह चुपचाप सब सह लेता। लड़कोंकी जब खेलनेकी छुट्टी होती, तब वह जंगलेके पास खड़ा-खड़ा दूरके मकानोंकी छत देखा करता। जब उस दोपहरकी घाममें किसी छतपर दो-एक लड़की-लड़का खेलके बहाने क्षण-भरके लिए दिखाई देते, तब उसका चित्त अधीर हो उठता।

एक दिन मन-ही-मन बहुत प्रतिज्ञा करके, बड़ी हिम्मत बाँधकर, उसने मामासे पूछा था—"मामा, माके पास कब जाऊँगा ?"

मामाने कहा था—"स्कूलकी छुट्टी होने दो।"

कार्तिकके महीनेमें दुर्गा-पूजाकी छुट्टी होगी, उसको अभी बहुत दिन हैं।

एक दिन फटिकने अपनी स्कूलकी किताब खो डाली। एक तो वैसे ही पाठ याद नहीं होता था, उसपर खो गई किताब, बेचारा बिलकुल लाचार हो गया। मास्टरने उसे प्रतिदिन मारना-पीटना और अपमान करना शुरू कर दिया। स्कूलमें उसकी ऐसी दशा हो गई कि उसके ममेरे भाई भी उसके साथ सम्बन्ध स्वीकार करनेमें शर्मिन्दा होते थे। फटिकको किसी भी तरह अपमानित होते देखते, तो वे और-और लड़कोंसे भी—मानो ज़बरदस्ती—ज्यादा आनन्द प्रकट करते थे।

जब बहुत ही असह्य हो उठा, तब फटिक अपनी माँईके पास जाकर बड़े-भारी अपराधीकी तरह खड़ा होकर बोला—"किताब खो गई है।"

माँईने अपने ओठोंके दोनों किनारोंपर क्रोधकी रेखा अंकित करके कहा—"अच्छा किया, मैं तुम्हारे लिए महीनेमें पाँच पाँच बार किताब नहीं खरीदवा सकती !"

फटिक चुपचाप वहाँसे लौट आया। वह पराया पैसा बरबाद कर रहा है, इस बातका खयाल करके उसे अपनी मापर बड़ा-भारी गुमान हुआ और क्रोध भी आया, अपनी ही हीनता और दीनताने उसे ज़मीनसे मिला दिया।

स्कूलसे लौटनेपर उसी रातको उसके सिरमें दर्द होने लगा, और भीतरसे जी घबराने लगा। समझ गया कि उसे बुखार चढ़ रहा है। यह भी समझ गया कि अगर वह बीमार पड़ गया, तो उसकी माँईके लिए वह बिलकुल ही फिज़ूलकी आफ़त और बन जायगा। माँईके लिए उसकी यह बीमारी वैसी एक अकारण और अनावश्यक 'जी-जलावा' स्वरूप धारण करेगी, फटिक इस बातको अच्छी तरह जान रहा था। बीमारीकी हालतमें यह अकर्मण्य, अद्भुत, बुद्धिहीन बालक संसारमें अपनी माके सिवा और भी किसीके द्वारा सेवा पा सकता है—ऐसी दुराशा करनेमें उसे लज्जा मालूम होने लगी।

दूसरे दिन सवेरे फटिकका कहीं पता नहीं ! चारों तरफ़ पड़ोसियोंके घर छान डाले, पर कहीं भी न दिखाई दिया।

उस दिन, रात ही से सावन-भादोंकी-सी मूसलाधार वर्षा हो रही थी, इसीलिए उसके ढूँढ़नेमें लोगोंको फिज़ूलमें बहुत भीगना पड़ा। अन्तमें जब कहीं भी पता न लगा, तब विश्वम्भर बाबूने थानेमें खबर दी।

दिन भर इसी तरह बीता, शामको जाकर कहीं एक गाड़ी विश्वम्भर बाबूके दरवाज़ेसे आकर लगी। उस समय भी वर्षा ज्यों-की-त्यों जारी थी, सड़कपर घुटनों पानी जम गया था।

दो-सिपाहियोंने पकड़कर फटिकको गाड़ीसे उतारा और विश्वम्भर बाबूके पास पहुँचाया। उसका सिरसे लेकर पैर तक सब पानीसे भीग रहा था, तमाम देहमें कीच थुपी हुई थी, मुँह और आँखें लाल हो रही थीं, थरथर काँप रहा था। विश्वम्भर बाबू लगभग गोदमें उठाकर उसे भीतर ले गये।

माँई उसे देखते ही बोल उठीं—"क्यों फिज़ूलमें पराये लड़केको लेकर जान आफ़तमें डाल रहे हो। भेज क्यों नहीं देते उसे, घर जाकर रहेगा अपना।"

वास्तवमें बात यह थी कि तमाम दिन मारे फिकरके

उन्होंने कुछ खाया-पीया भी न था, और अपने लड़कोंपर भी नाहकमें गुस्सा होकर चिल्ल पुकार की थी।

फटिकने रोते हुए कहा—"मैं तो अम्माके पास जा रहा था, मुझे पकड़ लाये हैं।"

बालकको बड़े ज़ोरका बुखार चढ़ा। सारी रात बायमें ऊटपटाँग बकता रहा। विश्वम्भर बाबू डाक्टर ले आये।

फटिकने एक बार अपनी लाल-लाल आँखें खोलकर ऊपर छतकी ओर हतबुद्धिकी तरह देखते हुए कहा—"मामा, मेरी छुट्टी हो गई क्या ?"

विश्वम्भर बाबू रूमालसे आँसू पोंछते हुए स्नेहके साथ फटिकके बुखारसे जलते-हुए कमज़ोर हाथको अपनी गोदमें रखकर उसके पास आकर बैठ गये।

फटिक फिर बड़बड़ाने लगा, बोला—"अम्मा, मुझे मारो मत, अम्मा। सच्ची अम्मा, मैंने कुछ नहीं किया।"

दूसरे दिन, ज़रा दिन चढ़नेपर कुछ देरके लिए फटिकको होश आ गया, और न जाने किसको देखनेकी आशासे वह घरके चारों तरफ़ आँखे फाड़-फाड़कर देखने लगा। अन्तमें निराश होकर फिर वह चुपचाप दीवारकी तरफ़ मुँह करके करवट लेकर सो गया।

विश्वम्भर बाबूने उसके मनकी बात ताड़ ली और उसके कानोंके पास मुँह ले जाकर धीरेसे कोमल स्वरमें कहा—"फटिक बेटा, तेरी अम्माको बुलवाया है, अच्छा।"

उसके बाद, दूसरा दिन भी गुज़र गया। डाक्टरने चिन्तित और उदास मुँहसे कहा—"हालत तो बहुत ही खराब है।"

विश्वम्भर बाबू टिमटिमाते हुए दियाको उजेलेमें रोग शय्यापर बैठे हुए प्रत्येक क्षणमें फटिककी माके लिए प्रतीक्षा करने लगे।

फटिक जहाज़के खलासियोंकी तरह उन्हींकी रागमें कहने लगा—"एक बाँव मिला नहीं। दो बाँव मि—ला-आ-आ नहीं।" कलकत्ते आते समय कुछ दूर तक वह स्टीमरमें आया था, स्टीमरके खलासी लोग पानीमें रस्सी डालकर गानेके स्वरमें पानी मापते थे; फटिक बाईमें पड़ा-पड़ा उन्हीं लोगोंके अनुकरणपर करुण स्वरसे पानी माप रहा है, और जिस अपार समुद्रमें वह यात्रा कर रहा है, उसमें रस्सी डालकर भी बेचारा कहीं भी उसकी थाह नहीं पा रहा।

इसी समय फटिककी माने आँधीकी तरह घरके भीतर प्रवेश किया, और ऊँचे स्वरमें रो-रोकर शोक करने लगी। विश्वम्भरने बड़ी मुश्किलसे बहनके शोकोच्छ्वासको रोका, बेचारी शय्यापर पछाड़ खाकर गिर पड़ी, रो रोकर पुकारने लगी—"बेटा रे, अरे मेरे फटिक रे, मेरे सुआ रे!"

फटिकने मानो बड़ी आसानीसे उसका उत्तर देते हुए कहा—"एँ!"

माने फिर पुकारा—"ओ रे फटिक, बेटा रे!"

फटिकने धीरे-धीरे करवट लेकर किसीकी ओर लक्ष्य न करके धीमे स्वरसे कहा—"अम्मा, अब मेरी छुट्टी हो गई अम्मा, अब मैं घर जाता हूँ।"

—धन्यकुमार जैन

वसन्तोत्सव कैसे मनाया जाय ?

बनारसीदास चतुर्वेदी

[वसन्त-पंचमी बीतनेके बाद इस लेखका छपना सम्भवतः कुछ लोगोंको अप्रासंगिक जँचे, पर इसमें प्रस्तावित कार्यक्रमपर विचार करनेसे पाठकोंको इसकी सामयिकता ज्ञात हो जायगी। कलकत्तेमें होनेवाले साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनमें हम इस आशयका प्रस्ताव लाना चाहते हैं कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन वसन्तोत्सवको सांस्कृतिक सप्ताहोंके रूपमें मनावे, यदि इस प्रश्नपर अच्छी तरह आन्दोलन हो, तो कभी आगे चलकर यह वसन्तोत्सव उचित रीतिसे मनाया जा सकता है। —लेखक]

जब किसी जातिमें क्रियात्मक कल्पना-शक्ति (Creative imagination) का अभाव हो जाता है, तो वह अपने प्राचीन गौरवका गान करने और पुराने रीति-रिवाजोंकी निर्जीव नक़ल करनेमें ही अपने जीवनको सार्थक समझने लगती है। बाह्य आडम्बरोंकी रक्षाको वह अधिक आवश्यक समझती है और आन्तरिक भावनाको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखती है। यदि इस कथनके लिए दृष्टान्त चाहिए, तो हमारे उत्सवोंको देख लीजिये। इन उत्सवोंके मनानेकी विधिके भद्देपनको देखकर यही प्रतीत होता है कि हम लोग सचमुच 'साहित्य-संगीत-कला-विहीन' हो गये हैं। हम लोगोंमें कुछ-न-कुछ श्रद्धा अवश्य है, पर हम उसे उचित-रूपसे प्रकट नहीं कर सकते। देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें वसन्तोत्सव मनाये जाते हैं, और थोड़ा-बहुत पैसा भी खर्च किया जाता है। यदि इसे ढंगके साथ मनाया जाय, तो संस्कृतिकी दृष्टिसे यह उत्सव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन सकता है। आवश्यकता इस बातकी है कि इस उत्सवके मनानेकी विधिमें साहित्य संगीत और कलाका यथोचित समावेश किया जाय। इसी उद्देश्यसे यहाँ एक कार्यक्रम उपस्थित किया जाता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि वसन्तोत्सव नगरके कोलाहलसे दूर किसी उपवनमें मनाया जाय। नाना प्रकारके ऊधमोंके बीच शहरकी धुआँधार गन्दी गलियोंमें वसन्तोत्सव मनाना वसन्तका मज़ाक उड़ाना और अपनेको हास्यास्पद बनाना है। यदि वसन्त मनाना है, तो किसी उपवनमें चलिये, जहा आम्रमंजरी आपको निमन्त्रण दे रही है, वृक्षोंकी नवीन कोंपल नवजीवनका सन्देश सुना रही है और सुन्दर सुगन्धित पुष्प आपके हृदयको प्रफुल्लित करनेकी बाट जोह रहे हैं। अभी उस दिन हम एक जापानी पत्र (ओसाका असाही) का अंग्रेज़ी विशेषांक देख रहे थे। उसमें जापानियोंके प्राकृतिक सौन्दर्य प्रेमका वृत्तान्त पढ़कर आश्चर्य हुआ। सुनिये, जापानी लोग वसन्तमें क्या करते हैं—"The viewing of cherry blossoms in spring makes an annual event in the life of Japanese. The first cherry viewing party ever recorded was in the third year of Konin (812), when the emperor Saga reigned. Afterwards it became popular with all classes of people. Now-a-days the appreciation and protection of cherry blossoms is in large measure due to the work of Cherry Tree Society, first sponsored by Marquis Yorimichi Tokugawa in 1912. The members of this society are engaged in the study of the cherry from the scientific and literary points of view and publish the results of their study in an organ called 'The Cherry'. As is widely known, the cherry tree and its blossoms have very often furnished the inspiration for literature and the fine arts in this country."

अर्थात्—'जब चेरी-पुष्पोंके खिलनेका समय आता है; तो वसन्तऋतुमें उन्हें देखनेके लिए महस्रों ही आदमी जाया करते हैं। यह वसन्त-यात्रा जापानी जीवनकी एक उल्लेख योग्य वार्षिक घटना हुआ करती है। जहाँ तक इतिहाससे पता चलता है, पहले पहल सन् ८१२ में सम्राट् सगके राज्यमें इस यात्राका प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद इस प्रकारकी

यात्राएँ सम्पूर्ण जनतामें लोकप्रिय हो गई। सन् १९१२ में मार्क्विस योरीमीची तोकूगावाके प्रोत्साहनसे जापानमें एक 'चेरी तरु समिति' (Cherry Tree Society)की स्थापना हुई थी। इस समितिके सदस्य वैज्ञानिक तथा साहित्यिक दृष्टिसे चेरी-वृक्ष तथा चेरी-पुष्पका अध्ययन करते हैं और अपने अध्ययनके परिणाम 'चेरी' नामक पत्रमें प्रकाशित करते हैं। यह बात प्रसिद्ध ही है कि चेरी वृक्ष तथा चेरी-पुष्पोंसे जापानके साहित्य और ललित कलाओंको बहुत कुछ प्रेरणा मिली है।"

क्या ही अच्छा हो, यदि हम लोग भी अपने नवयुवकोंके हृदयमें इसी प्रकारका सौन्दर्य प्रेम उत्पन्न करें।

वसन्तोत्सवका कार्यक्रम

वसन्तोत्सवके कार्यक्रमको हम कई विभागमें बाँट सकते हैं—

(१) वसन्त-पञ्चमीके दिन किसी उपवनमें कवि-सम्मेलन, संगीत तथा खेल कूद इत्यादि द्वारा मनोरंजन।

(२) साहित्यिक यात्रा—किसी प्राचीन साहित्य-सेवीकी जन्मभूमि अथवा अन्य किसी विशेष स्थानकी यात्रा।

(३) अधिकारी विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न विषयोंपर व्याख्यान—उदाहरणार्थ, कला, संगीत, इतिहास इत्यादिके विषयमें भाषण।

वसन्तोत्सवको हम लोग इतना उपयोगी और मनोरंजक बना सकते हैं कि इसके द्वारा हिन्दी-भाषा-भाषी जनताकी रुचिका बहुत-कुछ विकास हो सकता है। यदि इस कार्यको संगठित रूपसे किया जाय, तो सम्पूर्ण हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंमें अद्भुत जाग्रति उत्पन्न हो सकती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी अखिल भारतीय संस्था यदि चाहे, तो वसन्त व्याख्यान-मालाको अत्यन्त उपयोगी बना सकती है। भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हिन्दीके धुरंधर विद्वानोंके भाषणोंका प्रबन्ध कराना असम्भव कार्य न होगा। इतिहासके विषयको ही लीजिए। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन चाहे, तो वह पूज्य प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्री काशीप्रसाद जायसवाल, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, डाक्टर ईश्वरी प्रसाद, डाक्टर बेनीप्रसाद इत्यादिके भाषणोंका प्रबन्ध आगरा, प्रयाग, काशी, पटना, कलकत्ता इत्यादि स्थानोंमें करा सकता है। इसी प्रकार कला-विषयक भाषण भी श्री मुकुन्दीलाल बेरिस्टर, श्री राय कृष्णदास, श्री पूरणचन्द नाहर तथा श्री अर्द्धेन्दुकुमार गांगुली इत्यादि द्वारा कराये जा सकते हैं। प्राचीन कालके विशाल भारत (Greater India) अर्थात यव-द्वीप, सुमात्रा, कम्बोज, मलय-द्वीप इत्यादिकी संस्कृतिके विषयमें डाक्टर कालीदास नाग तथा डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जीके भाषणोंसे हिन्दी-जनताका बहुत-कुछ मनोरंजन तथा ज्ञानवर्द्धन हो सकता है। बंगला, गुजराती, मराठी, तैमिल, तेलेगू, कनाड़ी इत्यादि भाषाओंके साहित्यके विषयमें भी भाषण दिलाना लाभदायक होगा। जब हमारी भाषाको राष्ट्र-भाषाका पद मिल रहा है, तो हमारा कर्तव्य है कि अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें जो कुछ अच्छा है, उसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करें और अपनी सेवाओं द्वारा उनकी भी वृद्धिमें सहायक हों। हमने सुना है कि वसन्त-व्याख्यान-मालाका प्रबन्ध महाराष्ट्रमें कितने ही वर्षोंसे किया जाता है। उसे ग्रहणकर हम और भी व्यापक रूप दे सकते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्रके शान्ति-निकेतनमें वर्षोत्सव, शरदोत्सव और वसन्तोत्सव मनाये जाते हैं। क्यों न हम लोग एक बार चलकर इन उत्सवोंको देखें, और उनमें जो कुछ अच्छा हो, उसे ग्रहण करनेका प्रयत्न करें?

अमेरिकामें साधारण जनताके लाभार्थ चाटाकुआ शिक्षा-पद्धति प्रचलित है। वह पत्र-व्यवहार द्वारा, स्थान-स्थानपर ग्रीष्म-विद्यालय खोलकर तथा भ्रमणशील समितियोंके द्वारा अमेरिकामें शिक्षा-प्रचार करती है। प्रसंगवश हम उसकी भ्रमणशील समितियोंका संक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ देना उचित समझते हैं।

जनतामें शिक्षा-प्रचारके अतिरिक्त चाटाकुआ-सप्ताहकी प्रथा भी बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। सबसे प्रथम वर्षके दस दिनों तक होनेवाले सम्मेलनकी प्रथाको

अधिक उपयोगी और अधिक लाभप्रद बनानेके लिए इस संस्थाके संचालकोंने चाटाकुआ भ्रमणशील समितियों (Chatauqua circuits) की स्थापना की। इस समय ऐसी समितियोंकी संख्या ८७०० तक पहुँच गई है। यह समितियाँ संयुक्त-राष्ट्र अमेरिकाके भिन्न-भिन्न शहरोंमें खोली गई हैं। इन समितियोंने जनतामें शिक्षा फैलानेमें बहुत बड़ा भाग लिया है। प्रत्येक समिति वर्षमें आसपासके छः शहरोंमें एक ही तारीखमें चाटाकुआ-सप्ताहका समारोह करती हैं। इस समारोहके लिए प्रत्येक नगरमें एक विशाल मंडप बनाया जाता है, जिसे बहुत अच्छी तरह सुसज्जित किया जाता है। प्रति दिनकी कार्रवाई विशेष मनोरंजक और शिक्षाप्रद बनाई जाती है। सवेरे कई विषयोंपर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान कराये जाते हैं। दोपहरके बाद संगीत और वाद्यादि तथा रातको नाटक, प्रहसन, भिन्न-भिन्न खेल अथवा बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों और प्रसिद्ध पुरुषोंके विविध विषयोंपर उपयोगी भाषण होते हैं। एक वक्ता एक शहरमें पहले दिन भाषण देकर दूसरे शहरमें चला जाता है, और वहाँ भाषण देकर तीसरे दिन तीसरे शहरमें चला जाता है। इस तरह कुछ कार्यकर्ता ही छः शहरोंमें सप्ताह-समारोह मनानेके लिए काफी होते हैं।

वसन्तमें यशीगो पर्वतपर चेरीके फूल

चाटाकुआमें व्याख्यान देनेके लिए अपने अपने विषयके प्रामाणिक विद्वानों, योग्य वक्ताओं और उत्तम प्रचारकोंको निमन्त्रित किया जाता है। केवल अमेरिकाके ही नहीं यूरोपके विद्वान भी वहां व्याख्यान देनेके लिए बुलाये जाते हैं। बड़े-बड़े विद्वान यहाँ व्याख्यान देनेमें अपना सम्मान समझते हैं। केवल उत्तम वक्ता और योग्य विद्वान ही नहीं, उत्तम नाटक और अभिनय, प्रहसन आदिमें अत्यन्त प्रवीण पुरुषोंको भी निमन्त्रित किया जाता है। वहां एक पुरुष एक सत्र (सेशन) में ऐसे अच्छे से-अच्छे अभिनय, गान और भिन्न-भिन्न वाद्य सुन सकता है, जिनकी उसने पहले कभी कल्पना भी न की होगी। सुप्रसिद्ध पहलवान आकर वहाँ लोगोंको विविध प्रकारके व्यायाम आदि भी सिखाते हैं।

यह एक ऐसी संस्था है—ऐसा शिक्षण-क्रम है—जिससे जनताकी बौद्धिक और नैतिक उन्नति की जा सकती है। प्रसिद्ध अमेरिकन रूज़वल्टने इस अपूर्व शिक्षण-पद्धतिके लिए कहा था कि अमेरिकामें सबसे अधिक अमेरिकन चीज़ यही है। यह एक व्यावहारिक (प्रेक्टीकल) पद्धति है। शिक्षा-जगतमें इसने क्रान्ति कर दी है। आज अमेरिका ही नहीं, यूरोपमें भी इस पद्धतिका पर्याप्त अनुकरण हुआ है।"

यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय, तो हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें ऐसे विद्वान मौजूद हैं, जिनके कारण हम प्रान्तीय भाषा भाषियोंके सम्मुख अपना मस्तक ऊँचा कर सकते हैं। बस, कमी हमारे यहाँ है तो यही कि शिक्षा और संस्कृतिके लिहाज़से औसतन हिन्दीवाले अन्य भाषा-भाषियोंसे पीछे हैं। इस कमीको दूर करनेके लिए ही उपर्युक्त कार्यक्रम रखा गया है। वाद-विवादके बाद इसमें बहुत-कुछ घटा-बढ़ी हो सकती है। सम्मेलनके आगामी अधिवेशनमें यह कार्यक्रम हिन्दी-जनताके सम्मुख रखा जायगा, और हमें पूर्ण

विश्वास है कि सम्मेलन इसे स्वीकार कर लेगा, पर हमें उसकी स्वीकृति या अस्वीकृतिकी विशेष चिन्ता नहीं है, क्योंकि हम धैर्य-पूर्वक प्रतीक्षा कर सकते हैं और जब तक यह कार्यक्रम सम्मेलन-द्वारा स्वीकृत होकर कार्य-रूपमें परिणत न होने लगे, तब तक निरन्तर आन्दोलन करते रहेंगे। नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी, मध्यभारत हिन्दी साहित्य-समिति इन्दौर, नागरी-प्रचारिणी-सभा आगरा इत्यादि संस्थाएँ इस दिशामें बहुत-कुछ कार्य कर सकती हैं। यदि सम्मेलन इस कार्यको न भी अपनावे, तब भी ना० प्र० सभा काशी इत्यादिको इसे अवश्य अपनाना चाहिए।* हमारा दृढ़ विश्वास है कि जो संस्था इसको अपनावेगी, वह जनताका हित करनेके साथ-साथ अपना प्रभाव भी व्यापक बना सकेगी।

सन् १९३४ में वसन्तोत्सव कैसे मनाया जायगा, इसके स्वप्न हम अभीसे देख रहे हैं। वसन्त-पंचमी आनेवाली है। सम्मेलनने अपनी सम्बद्ध संस्थाओंको आदेश दे दिया है कि वसन्तोत्सव एक निश्चित कार्यक्रमके अनुसार मनाया जाय। आगरेकी नागरी-प्रचारिणी-सभाने सूरदासके निवास-स्थान रुनकुना (रुक्मिणी-क्षेत्र) तथा स्वर्गीय सत्यनारायणके निवास-स्थान धाँधूपुराकी यात्राओंका निश्चय कर लिया है। साप्ताहिक व्याख्यानोंका प्रबन्ध हो गया है! श्री मयाशंकर याज्ञिक व्रजभाषाके प्राचीन कवियोंके विषयमें अपने अन्वेषणका वृत्तान्त सुनावेंगे। लल्लू लालजी, राजा लक्ष्मणसिंह, श्रीधर पाठक, सत्यनारायण, कविवर नज़ीर इत्यादिके विषयमें निबन्धोंका पाठ होगा। कवि-सम्मेलन तथा मुशायरेका भी प्रबन्ध किया गया है। उधर व्रज मंडलवाले भला कब किसीसे पीछे रह सकते हैं। वर्तमान कालमें व्रजभाषाके सर्वश्रेष्ठ कवि जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' को उन्होंने अपने अधिवेशनका सभापति निर्वाचित किया है। अष्टछापके कवियोंके विषयमें निबन्धोंका पाठ हो रहा है। श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित नन्ददास ग्रन्थावलीकी एक हज़ार प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गईं। कविवर रत्नाकरजीके आग्रहसे पं० पद्मसिंहको भी बिहारीलालके विषयमें अपना निबन्ध पढ़ना पड़ा। इसके बाद कविवर सोमनाथके विषयमें याज्ञिक बन्धुओंके निबन्धका पाठ हुआ। प्राचीन व्रजभाषा-साहित्यके प्रकाशनके विषयमें एक व्यावहारिक स्कीम बनाई गई।

* दरअसल जिस उत्तम ढंगसे सभा इस कार्यक्रमको पूरा कर सकती है, हिन्दीकी कोई दूसरी संस्था शायद ही कर सके।

श्री कालिदासजी कपूर लखनऊसे अपने विद्यार्थियोंको लेकर मलूकदासके जन्मस्थानकी यात्राके लिए निकल पड़े हैं। गोरखपुरके साहित्य-सेवियोंने तो श्री हनुमानप्रसाद पोद्दारके प्रबन्धमें भगवान बुद्धके जन्मस्थान, निर्वाणस्थान तथा कबीरके जन्मस्थानकी यात्राओंका प्रबन्ध कर लिया है। मध्यभारत हिन्दी-साहित्यके उत्साही मंत्री रा० ब० डा० सरजूप्रसादने इस साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यमें अपनी सारी शक्ति लगा दी है। श्री कृष्णबलदेव वर्मा भला बुन्देलखण्डको क्यों पिछड़ने देते! श्री राय कृष्णदासके उत्साहसे तथा कला-भवनके कारण नागरी-प्रचारिणी-सभाका कार्यक्रम सबसे अधिक मनोरंजक रहा और कलकत्तेवालोंने तो कमाल कर दिया। शान्ति-निकेतनकी यात्रा की गई। महाबोधि सोसाइटीके सुरम्य भवनमें प्रति सप्ताह व्याख्यानोंका प्रबन्ध किया गया। कला, साहित्य, इतिहास इत्यादि विषयोंपर सचित्र व्याख्यान हुए। भिन्न भिन्न पत्रोंने अपने विशेषांक निकाले, 'विशाल-भारत' का कला-अंक बड़ी सजधजके साथ प्रकाशित हुआ। देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें इसी प्रकार बड़ी शानके साथ वसन्तोत्सव मनाये गये और उनके वृत्तान्त समाचारपत्रोंमें छपे। लोग कहने लगे कि भाई, वसन्तोत्सव तो अबकी बार मनाया गया है।

सम्भव है कि हमारे निराशावादी आलोचकगण कहें कि इस प्रकारके व्यर्थ-स्वप्न देखनेसे क्या लाभ? अभीसे १९३५ की वसन्त-चर्चा क्यों चला रहे हो? हमारा उनसे यही नम्र निवेदन है कि यदि हमारे यहाँ दो-चार कल्पनाशील और परिश्रमी कार्यकर्ता हों और वे हिन्दी-भाषा-भाषी जनताकी सांस्कृतिक जाग्रतिको अपने जीवनका ध्येय बना लें, तो बजाय सन् १९३४के सन् १९३२में ही उपर्युक्त स्वप्नका अधिकांश सत्य सिद्ध हो सकता है।

कलकत्तेमें भागीरथीके निकट एक उपवनके बीचमें बैठे हुए यह दिवा स्वप्न देख रहा हूँ। वसन्तऋतु आ गई है। नाना प्रकारके पुष्प खिले हुए हैं। आम बौरा गये हैं, कोयल-कीर गान कर रहे हैं। शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन चल रही है। प्रकृतिमें नव-जीवनका संचार हो गया है! ऐसे शुभ अवसरपर निराशावादी आलोचकोंकी एक बात नहीं सुननी चाहिए। यदि आज नहीं, तो फिर कभी यह मधुर स्वप्न सत्य हो जायगा, क्योंकि—

"कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।"

मक्खन

श्री पारसनाथ सिंह, बी-ए.

अगर मुझे मक्खनसे प्रेम है और मैं घीसे दूर रहता हूँ तो किसीको यह कहनेका क्या अधिकार है कि मैं अपनी सभ्यतासे विमुख हो रहा हूँ?

मुझे मक्खन भाता है, मैं मक्खन खाता हूँ। मेरे समालोचक अगर घीपर मरते हैं, तो मरें। मैं मक्खन खाकर ज़िन्दा रहूँगा।

लोकमान्य तिलकने इस सम्बन्धमें कुछ कहा था। अगर मैं भूलता नहीं तो उनका कहना था कि स्वराज्य—अर्थात अपनी रुचिके अनुसार खाना-पीना—हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं कभी किसीके खान-पानकी आलोचना नहीं करता। महात्माजी इतने हेर-फेर करते रहते हैं, पर इस विषयमें मैं अपने मुह न छोटी बात करता हूं न बड़ी। मुझे अधिकार ही क्या है? टंडनजी प्रयोग करते-करते इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि अगर विज्ञान गोबरको गुड़ नहीं बना देता तो वह सफल नहीं कहा जा सकता। उन्हें निमन्त्रण देनेसे पहले गुड़का प्रबन्ध कर लेना चाहिए। पंडित पद्मसिंहजी शर्माके सम्बन्धमें कुछ लिखना और चायकी चर्चा न करना असम्भव-सा हो रहा है। मैं इनमें से किसीकी राहपर चलनेका साहस नहीं कर सकता। सच पूछिए, तो मुझे बकरीके दूध (महात्माजीने अब इसका भी परित्याग कर दिया है) या गुड़ या चायसे विशेष प्रेम भी नहीं, पर मैं इनमें से किसीको अपनी समालोचनाका विषय नहीं बनाता। बालिग हो जानेपर प्रत्येक मनुष्य यह अधिकार पा जाता है कि वह दाम देकर या उपजाकर जिस पदार्थसे चाहे अपनी उदर-पूर्ति करे। जो इस विषयमें नुकताचीनी करते हैं—विशेषकर जिन्हें मेरे मक्खनमें पाश्चात्य सभ्यता नज़र आती है—वे सभ्य-संसारके नागरिक कहाने योग्य नहीं हैं।

मक्खन खाकर मैं औचित्यपर आघात कर रहा हूँ, मैं ऐसा नहीं समझता। देखिये, सारा संसार—भारतवर्षको छोड़ दीजिए—मक्खन खा रहा है। शेक्सपियर, शेली, विक्टर ह्यूगो, मेज़िनी, विल्सन, लेनिन सभी मक्खन खानेवाले थे। चीन और जापान, अरब और अफ्रिकामें भी मक्खनका ही प्रचार है। घी खानेवालोंकी गिनती तो अंगुलियोंपर की जा सकती है। हम कह सकते हैं कि घीमें राष्ट्रीयता अथवा संकीर्णता है और मक्खनमें अन्तर्राष्ट्रीयता अथवा उदारता। अगर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कभी चरितार्थ हो सकता है, तो मक्खनके ही ज़रिये।

मालूम नहीं इस विषयमें हमारे कविवर रवीन्द्रनाथका क्या विचार है। उन्होंने कहीं लिखा है कि 'अगर तेरी पुकार या आवाज़ सुनकर कोई नहीं आता, तो तू अकेला ही चलता रह'। पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी जैसे मित्रोंको उनकी यह पंक्ति बहुत प्यारी है। पर कुछ लोग इसका यह अर्थ करते हैं कि अगर भारतवर्षको छोड़ और कोई देश घी नहीं पीता, तो यह अपनी राह हरगिज़ न छोड़े। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। रवि बाबू ऐसी संकीर्णतासे भरा हुआ आदेश या उपदेश देंगे, यह मेरी समझमें नहीं आता। वह स्वयं भारतीय होते हुए भी सार्वभौमिक हो रहे हैं। कवियोंमें अन्तर्राष्ट्रीयताकी ऐसी उपासना आज तक किसीने नहीं की। मुझे विश्वास नहीं होता कि वह घीकी जड़को मज़बूत करनेवाली कोई बात कहेंगे, पर इसके अनुसन्धानकी आवश्यकता है। इतने लोग बोलपुर जाते रहते हैं; क्या कोई सज्जन इस विषयपर प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे? प्रश्न यही है कि विश्व-भारतीकी दृष्टिसे रवि बाबू घीका प्रचार चाहते हैं या मक्खनका? सरलसे सरल शब्दोंमें इसका उत्तर मिलना चाहिए। रविबाबूकी भाषा इधर बड़ी जटिल हो गई है।

रवि बाबूके बाद अपने देशके कवियोंमें शायद इक़बालका नम्बर है। वह भी अन्तर्राष्ट्रीयताके भक्त हैं, यद्यपि उनकी अन्तर्राष्ट्रीयता इस्लाम तक परिमित है। अभी हालमें कट्टर मुसलमानोंकी किसी सभामें उन्होंने डंकेकी चोट कहा था कि हम तो इसलामके बन्दे हैं, काबा हमारा केन्द्र है, फिर हम उस तंग गलीमें कब पैर धर सकते हैं, जिसका नाम राष्ट्रीयता है? इन्हीं इक़बाल साहबने किसी समय अपने एक दोस्तको लिखा था—

"यूनान औ रोम मिस्र मक्खनके सब हैं हामी,
खिचड़ी पकाता घीमें एक हिन्दोस्तां हमारा!"

बात बहुत ठीक है। घीमें हिन्दुस्तानकी खिचड़ी पकती है, और सो भी देहरादूनके चावलकी। जहाँ अन्तर्राष्ट्रीयतापर इतना ज़ोर दिया जा रहा है, जहाँ कविताकी सरिताका एकमात्र लक्ष्य अनन्त हो रहा है, वहाँ घीका यह बोलबाला कब तक रहेगा?

मैं यह स्वीकार नहीं करता कि सभ्यताकी दृष्टिसे मक्खन विदेशी है। हाँ, यदि आर्य विदेशी हैं, तो मक्खन भी विदेशी है। यहाँकी आदिम जातियाँ सम्भवतः घीका ही व्यवहार करती थीं। मक्खन आर्योंके साथ यहाँ आया। उसमें नवीनता थी, शायद इसीलिए उसका नाम नवनीत पड़ा। जो विशुद्ध आर्य होनेका अभिमान रखते थे, वे बराबर मक्खनका ही व्यवहार करते थे। श्रीकृष्णचन्द्रजीका उदाहरण लीजिए। उन्हें चोरी तक करनी पड़ती थी, पर उन्होंने अपने पूर्वजोंके खान-पानका परित्याग नहीं किया। माखनचोर कहाकर भी मक्खन खाते रहे। क्या श्रीकृष्णने भूलकर भी कभी घी ग्रहण किया था? मैं उनका अनुयायी हूँ, मुझे उनका अभिमान है, अगर वह चुराकर मक्खन खाते थे, तो मैं खरीदकर मक्खन खानेमें किसी प्रकारका अनौचित्य या अनाचार नहीं देखता।

इतिहासज्ञोंको पता लगाना चाहिए कि इस देशमें घीका पुनरुद्धार कब और कैसे हुआ। मेरा अपना ख़याल है कि जब इस देशमें किसी समय अनार्योंकी प्रधानता हो चली और वैदिक धर्म कर्म नीचे दब गये, तब घीने भी सिर उठाया और धीरे-धीरे सबपर अपना आधिपत्य जमा लिया। चार्वाक नामक कोई अनार्य नेता था, उसने अपने दर्शनशास्त्रमें घी पीनेपर बड़ा ज़ोर दिया। यहाँ तक कह दिया कि अगर पैसेका अभाव हो, तो लोग ऋण करके भी घी पीते रहें। आर्योंकी सभ्यता और संस्कृतिका लोप करनेके लिए ही उसने घीके गड़े मुर्देको उखाड़ा था। उस समय तक लोग गाढ़े पसीनेकी कमाईसे घरमें मक्खन लाते थे। जिनके पास पैसा न होता, वे मक्खनके रसास्वादनसे वंचित रह जाते। ऋण करना पाप समझा जाता था, ऋण करके घी पीना महापाप। पर चार्वाकने घोषणा कर दी कि ऋण करके घी पीना मनुष्यका कर्तव्य है, उसका धर्म है। तभीसे इस देशमें कर्ज़दारोंकी और घी पीनेवालोंकी संख्या बेहद बढ़ चली। जिनके पास पूँजी थी या जिन्हें दूसरोंकी पूँजी कर्ज़के तौरपर मिल सकती थी, सबके सब चार्वाककी उक्तिको चरितार्थ करने लगे। आज इस देशमें घीकी लोकप्रियता ऐसी है कि चर्बी जैसी चीज़ भी उसका नाम लेकर उसीके समान आदर पा जाती है। विशेषज्ञोंका कहना है कि भारतवर्षपर कर्ज़का बोझ बढ़ता ही जा रहा है। इधर कुछ वर्षोंसे विदेशी घीकी भी अच्छी आमदनी हो रही है। चार्वाकका आदेश ही यही था कि ऋण करके भी घी पीते रहो।

कुछ भी हो, सभ्यताको इस प्रसंगमें घसीटनेकी कोई आवश्यकता नहीं। पूरबकी सभ्यता कहीं बाक़ी रह गई है, मुझे इस विषयमें बहुत सन्देह है। जो महाशय मेरे मक्खनपर आपत्ति करते हैं, उनकी सभ्यता कहाँकी है? पाश्चात्य सभ्यताकी निन्दामें उन्होंने अखबारोंके कालम काले किये हैं और डबल क्राउन सोलह-पेजीका भी व्यवहार किया है, उनका एक साधारण पत्र भी आता है तो उसमें मुझे सात समुद्र पारकी ही सभ्यता मिलती है। बराबर मुझे 'प्रिय महोदय' बताकर अपनेको 'भवदीय' बताते हैं, और

मेरी ओरसे जो उत्तर मिलता है, उसके लिए मुझे 'धन्यवाद' देते हैं। परमात्मा उनका भला करे, पर अगर उनका खयाल है कि उनकी सभ्यता यहाँकी है तो वे भूलते हैं।

[हम विद्वान् लेखकके कथनसे पूर्णतः सहमत हैं। निस्सन्देह घीने हमारे देशकी काफी हानि की है। घीने ही हम लोगोंको हृदयहीन बना दिया है, तभी हम लोग कहा करते हैं—"भैंसको मर जाने दो, घीकी चुपड़ी खाने दो।" इसी घीने हमारे कला-सम्बन्धी सुरुचिका मटियामेट कर दिया है। हम कुरूप, कुढंगा, सौन्दर्य-रहित और कलाहीन वस्तुको देखकर भी यह कहकर टाल देते हैं—"उँह, घीका लड्डू टेढ़ा भला!" आगे बड़े सीधे-सादे, सच्चे और ईमानदार होते थे। इस घीने ही उन्हें कुटिलता सिखाई, और इसीसे वे इस नीतिका अवलम्बन करने लगे—"सीधी अँगुरी घी जम्यो क्योंहूँ निकसत नाहि।" आजकल सारा समाज ऊँच-नीचके भेद-भावसे ग्रस्त है, और समताकी दुहाई दे रहा है। इस घीने हमारे ऊँच-नीचके भेदभावको और भी बढ़ाया है। यह तो सभी जानते हैं कि चना कितना उपयोगी और पुष्टिकारक अन्न है, मगर इस कमबख्त घीने उसे नीचा बना दिया है, और लोग कहने लगे—"कभी घी घना, कभी एक मुट्ठी चना"—मानो चना कोई हेय पदार्थ हो! यह बात सभी जानते हैं—"नीम न मीठो होय, सींचे गुड़-घीसे।" यदि किसीने नीममें मक्खन चुपड़कर एक्सपेरीमेन्ट किया होता, तो शायद उसे इस परिणामपर न पहुँचना पड़ता। घी खा खाकर हम लोग ऐसे हो गये हैं कि हममें से जो कोई घीका विरोधी होता है, हम उसकी ओर इशारा करके कहते हैं—"इन्हें घी नहीं पचता!" और इस प्रकार गाली देकर अपने कुसंस्कृतिका परिचय देते हैं। एक बात और है—घी खानेसे आदमीकी बुद्धि उलटी हो जाती है। यह घी खानेका परिणाम ही था कि प्राचीन कालके तर्काचार्यको यह बुद्धिमत्ता-पूर्ण तर्क सूझा था—जिसका उन्होंने व्यावहारिक प्रयोग करके भी देखा था—'घृताधारम् पात्रम् कि पात्राधारम् घृतम् ?'

हमारी तो इच्छा है, यदि लेखक महोदय एक 'घासलेट प्रचारिणी सभा' स्थापित करें और कलकत्तेमें होनेवाले सम्मेलन तथा परिषद्में इस विषयका एक प्रस्ताव उपस्थित करें। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ब्रजभाषाके वृद्ध कवि श्री नवनीतलालजी चतुर्वेदी तथा खड़ीबोलीके सुकवि श्री माखनलालजी चतुर्वेदी इस प्रस्तावका हार्दिक समर्थन करेंगे।

—सम्पादक]

बीसवीं शताब्दीमें परलोकवाद

श्री अवध उपाध्याय

बीसवीं शताब्दीके परलोकवादके अध्ययनके पहले उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम कुछ वर्षोंका संक्षिप्त परिचय आवश्यक जान पड़ता है। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें इटलीकी प्रसिद्ध स्त्री माध्यम यूसेपियाकी कलई खुल गई थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह बीसवीं शताब्दीमें भी कुछ लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकती रही, परन्तु संसारके अधिक लोग उसे धोखेबाज़ समझने लगे थे, और उसमें बिलकुल विश्वास नहीं करते थे। इटलीको छोड़कर दूसरे देशोंमें तो उसका कुछ भी महत्व नहीं रह गया था। अमेरिकामें तो जो लोग भूलकर उसमें विश्वास करते थे, वे मूर्ख समझे जाते थे, अतएव कोई आदमी उसमें विश्वास करनेका साहस नहीं कर सकता था। इसमें सन्देह नहीं कि यूसेपियाकी धोखेबाज़ी सब तरहसे सिद्ध हो चुकी थी, उसके सिद्धान्तोंकी धज्जियाँ उड़ाई जा चुकी थीं और वह स्वयं भी पहलेकी तरह नहीं रह गई थी, तथापि संसारके कुछ वैज्ञानिक लोग अब भी यूसेपियाके पक्षमें विश्वास करते थे। लोम्ब्रोसो, मारसेली, ब्रैया, माक्सवेल, ओफेरियो, लाज फ्लेमेरियन, मेयर्स, और बैरेट आदि वैज्ञानिक लोग अब भी

उसकी प्रशंसामें लिखा करते थे। जनताने समझा कि जब ऐसे-ऐसे संसारके धुरन्धर वैज्ञानिक यूसेपियामें और परलोकवादमें विश्वास करते हैं, तो अवश्य ही इसमें सचाई है। इसका फल यह हुआ कि फिर एक बार संसारमें परलोकवादका प्रचार होने लगा, और सब लोग फिर माध्यमोंको पूजने लगे। यूसेपियाके परलोकवादके रंगमञ्चपर आनेके पहले जनताका परलोकवादमें विश्वास उठता जाता था, परन्तु उसके आनेके बाद गोस्वामीजीकी निम्न-लिखित उक्ति चरितार्थ हो गई—

"सूखत धान परा जनु पानी।"

पाश्चात्य देशमें इस समय कुछ ऐसे माध्यम भी मौजूद थे, जिन्होंने पहले माध्यमका काम किया था, परन्तु कलई खुल जानेके कारण माध्यमका काम करना छोड़ दिया था। जब इन लोगोंने देखा कि यूसेपिया लगभग सारे संसारको मूड़ रही है, तब उन्होंने भी फिरसे माध्यमका काम करना प्रारंभ कर दिया, और सीधी जनताको अपने जालमें फँसा लिया। परलोकवादियोंका जोश इस समय इतना बढ़ गया था कि ये उन मनुष्योंको भी परलोकवादियोंमें गिनने लगे, जिन्होंने परलोकवादके सिद्धान्तोंकी जाँच की थी और उसे सब तरहसे भ्रमात्मक सिद्ध कर दिया था। एक स्त्रीने अपनेको गायेनबर्ग-माध्यमके नामसे प्रसिद्ध किया। पहले यह माध्यम थी, परन्तु उसकी कलई खुल गई थी, अतएव उसने माध्यमका काम करना छोड़ दिया था। फिर यूसेपियाके उदाहरणसे वह साहस ग्रहण कर माध्यमका काम करने तथा जनताकी आँखोंमें धूल झोंकने लगी। यह हस चली गई, और इसने सेंट पीटर्सबर्गमें अकसाकोफ़से भेंट की। अकसाकोफ़ एक बड़ा आदमी था। वह गायेनबर्ग-माध्यमसे प्रसन्न हो गया। इसने उसकी 'शैडो लैंड' (Shadow land) नामक पुस्तककी भूमिका लिख दी, जिससे गायेनबर्ग-माध्यमका बड़ा नाम हुआ, और जनताको धोखा देनेका उसे अच्छा अवसर मिल गया। वास्तवमें वह स्त्री बहुत मक्कार थी। अभी तक माध्यमोंने इस बातके सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था कि मृतकोंकी आत्माएँ फिरसे शरीर धारण कर सकती हैं, और हम लोगोंके प्रयत्नसे यह सर्वदा हो सकता है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि इस कार्यमें किसी भी माध्यमको कभी भी सफलता नहीं हुई थी, और उनकी धोखेबाज़ी खुल गई थी। उस स्त्रीने अपने मनमें सोचा कि मृतकोंकी आत्माओंके शरीरके साथ दिखलानेका प्रयत्न तो बहुतोंने किया है, अतएव इसमें कुछ भी मज़ा नहीं है। इसलिए अब ऐसा कुछ काम कर डालना चाहिए, जो आज तक किसी माध्यमने न किया हो। इसने यह कहना प्रारंभ किया कि जिस प्रकार मृत-पुरुषोंकी आत्माएँ शरीर धारण कर लेती हैं, उसी प्रकार जीवित मनुष्योंके शरीर भी लुप्त हो सकते हैं। एक दिन उसने इसी विषयपर सियाँस करना प्रारंभ किया। उस सियाँसमें कई आदमी बैठे हुए थे। उसने सबसे पहले ही कह दिया कि मैं बिलकुल तो गायब अभी नहीं हो सकती, परन्तु मेरे शरीरका कुछ अंश गायब हो सकता है। सब लोग अँधेरेमें बैठे हुए थे, क्योंकि ऐसे सियाँस धूर्त माध्यम अँधेरेमें ही किया करते हैं। उसने थोड़ी देरके बाद सब लोगोंसे कहा कि आप लोग अपने हाथोंकी सहायतासे मेरे पैरोंका पता लगाइए। उन लोगोंने बहुत टटोला, परन्तु उसके पैर वहाँ नहीं थे। फिर सब लोगोंने उसके मस्तकको स्पर्श किया, वह वहाँ साक्षात् मौजूद था। अब सब लोगोंके आश्चर्यकी सीमा ही नहीं रही। यह सब हो ही रहा था, इसी बीच तब वह स्त्री (माध्यम) सब लोगोंसे बातचीत करती जाती थी और चाय पीती चली जाती थी, जिससे सब लोगोंको विश्वास हो जाय कि वह बिलकुल आत्मा नहीं हो गई है। इसके बाद उसने कहा कि अब मेरे नीचेका धड़ भी गायब हो गया। सब लोगोंने टटोला, उसके नीचेका धड़ भी वास्तवमें नहीं था। अब सब लोगोंने गायेनबर्ग माध्यममें बहुत ही विश्वास करना आरम्भ कर दिया। आखिरकार एक इंजिनियरने उसकी धूर्तताको पकड़ लिया। वास्तवमें जिस कुर्सीपर वह बैठती थी,

वह ठोस लकड़ीकी नहीं बनी हुई थी। पीछेकी ओर केवल दो पतली लकड़ियाँ लगी हुई थीं और उनसे बीचमें काफ़ी जगह छुटी रहती थी। अँधेरेमें वह उसी छेदकी सहायतासे दूसरी ओर निकल जाती थी, और अपने शरीरके अधिक भागको दूसरी ओर छिपा लेती थी। इस प्रकार वह सब लोगोंको प्राय: धोखा देती थी, परन्तु अन्तमें वह भी पकड़ी गई और उसकी भी दुर्गति हुई।

इसी समय पेरिसमें भी माध्यमोंकी बाढ़-सी आ गई थी और वहाँपर अमेरिकासे कई माध्यमें आई थीं। उन सबोंमें विलियमकी स्त्री सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वह सन् १८९४ में पेरिसमें अमेरिकासे आई और बड़े-बड़े लोगोंपर हाथ साफ़ किया, परन्तु वह बहुत शीघ्र पकड़ी गई। वह अपने वस्त्रोंके भीतर कई प्रकारके यंत्र ले आती थी और उनकी सहायतासे गुड़ियोंको नचाया करती थी। जब पेरिसमें उसका सब भेद खुल गया, तब यह फिर अमेरिका चली गई। अमेरिकामें उसे कुछ भी हानि नहीं हुई, और वह फिर वहाँके लोगोंको मूड़ने लगी। कहना न होगा कि अमेरिकामें वह पेरिसवालोंकी खूब निन्दा किया करती और उन्हें जंगली भी कहा करती थी!

लगभग इसी समय मिस फेयर लैम्ब नामक माध्यमकी धोखेबाज़ी प्रकट हो गई। पहले वह इंग्लैंडमें पकड़ी गई। जब उसने देखा कि इंग्लैंडमें दाल नहीं गलेगी, तो आस्ट्रेलिया चली गई और वहाँके लोगोंको ठगने लगी। यह मृतकोंको शरीरके साथ बुलानेका प्रयत्न करती थी, और उनके बजाय स्वयं भूतोंकी आत्मा बन बैठती थी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जो माध्यम मृतकोंकी आत्माको शरीरके साथ बुलानेका बहाना करते हैं, वे अपने सियाँसोंको अँधेरेमें ही दिखलाया करते हैं, और जो लोग इन धूर्तोंके सब हथकंडोंको नहीं जानते, वे इन पाखंडोंमें विश्वास करने लग जाते हैं। वे इतनी बातका भी विचार नहीं करते कि यदि मृतकोंकी आत्मा अँधेरेमें आ सकती है, तो वह उजेलेमें भी अवश्य ही आ सकती है। *क्या अमर आत्मा प्रकाशमें आनेसे डरेगी?* यदि इस संसारमें कोई ऐसी शक्ति है, जो आत्माको बुला सकती है, तो वह अँधेरे और उजेले दोनोंमें ही बुला सकती है। दोनों दशाओंमें केवल इतना ही अन्तर पड़ता है कि अँधेरेमें माध्यमोंको धोखा देनेका अवसर मिल जाता है और उजेलेमें उन्हें धोखा देना तथा पबलिककी आँखोंमें धूल झोंकना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव भी हो जाता है। मिस फेयर लैम्ब नामक माध्यमके सम्बन्धकी निम्न लिखित घटनासे यह बात सिद्ध हो जायगी। मिस साहब भूतोंको शरीरके साथ प्राय: बुला लिया करती थीं। परलोकवादियों तथा दूसरे पक्षके लोगोंमें एक बार इसी सम्बन्धमें बड़ा भारी झगड़ा उठ खड़ा हुआ। परलोकवादी कहते थे कि मिस फेयर लैम्ब वास्तवमें मृत-आत्माओंको सशरीर बुला लेती हैं। दूसरे पक्षके लोग कहते थे कि वह धोखेबाज़ है, मृत-आत्मा सशरीर नहीं आ सकती, और यदि यह भी सम्भव हो, तो मिस फेयर लैम्ब उन्हें बुला नहीं सकतीं। इसी बातकी जाँच करनेके लिए एक दिन सियाँस हुआ। अँधेरेमें सब लोग बैठे थे। मिस फेयर लैम्बने कहा कि अब आत्मा सशरीर कमरेके भीतर आ गई है। वास्तवमें उस समय कोई चीज़ अँधेरेमें घूमने लगी। हेनरी नामक एक व्यक्तिने उस भूतको पकड़ लिया और प्रकाश करनेके लिए प्रार्थना करने लगा। परलोकवादी भी अब डर गये, और उन लोगोंकी भी समझमें बात आ गई, परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा बचानी चाही। उन्होंने उसे पकड़कर ले भागना चाहा, परन्तु ठीक इसी समय प्रकाश आ गया। सब लोगोंने देखा कि हेनरीने स्वयं मिस फेयर लैम्बको पकड़ा है। इस बातसे परलोकवादी बहुत दु:खी हो गये। इसके बाद मिस फेयर लैम्बकी बड़ी बदनामी हुई, और फिर वह अच्छी तरहसे सियाँस नहीं कर सकी।

बीसवीं शताब्दीके ठीक प्रारंभमें जर्मनीमें भी कई माध्यम प्रसिद्ध हुए, परन्तु सबोंकी कलई अन्तमें खुल गई, और उनमेंसे कुछको तो जेलकी हवा भी खानी पड़ी। उनमें से अआराथे नामक माध्यमकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। उसे राजकुमारी

करातका बहुत चाहती थी और उसे बहुत मानने लग गई थी। राजकुमारी उसे सच्ची समझती थी। राजकुमारीके प्रभावके कारण जर्मनीके धनी लोगोंमें उसका बहुत नाम हो गया। वह भी मृत-आत्माओंको सशरीर बुलानेका बहाना करती थी। फूल तथा मिठाइयोंको आकाशसे पैदा कर देना, उसके बाएँ हाथका खेल हो गया था। एक बार एक आदमी उसकी जाँच करनेके लिए एक ऐसे स्थानपर बैठ गया, जो अच्छी तरहसे सियाँसमें अप्पारार्थको देख सके। उसने स्पष्ट-रूपसे देखा कि अप्पाराथेने अपने शरीरके किसी भागसे नारंगियोंको निकाला। इसके बाद उसने कमीजके नीचेसे भी कुछ वस्तुओंको निकाला। आखिरकार उसकी भी कलई खुल गई और उसपर मुकदमा चला। वह सन् १६०२में अठारह महीनेके लिए क़ैद कर ली गई।

सन् १८६५ से १६०५ तक पाश्चात्य देशमें परलोकवादकी एक प्रकारसे अच्छी उन्नति हुई। इसमें संदेह नहीं कि इस बीचमें भी बहुतसे माध्यम पकड़े गये, परन्तु साधारणतः परलोकवादमें कुछ अधिक लोग विश्वास करने लगे, और माध्यमोंकी संख्या भी बहुत बढ़ गई। इस समय ऐसे माध्यमोंकी संख्या बहुत कम थी, जो भूतोंको साक्षात और सशरीर प्रकट करनेका दावा करते थे, परन्तु इस समय इंग्लैंडवाले इस बातको मानते थे कि कम-से-कम इंग्लैंडमें एक माध्यम ऐसा है, जो आत्माओंको सशरीर बुला सकता है, वह सच्चा है और वह क्रैडक है, परन्तु सन् १६०६ में उसकी कलई खुल गई, उसपर मुकदमा चला और १५० रुपया जुर्माना हुआ।

अमेरिकामें भी परलोकवादकी अवस्था बहुत बुरी थी। सिर्फ एक आदमीने सैकड़ों माध्यमोंकी कलई खोल दी और उन्हें बेइज्ज़त कर डाला। लगभग सन् १६०८ में अमेरिकामें 'Revelations of a Spirit Medium' नामक एक पुस्तक छपी। इस पुस्तकमें माध्यमोंके सब हथकंडोंका वर्णन किया गया था। इस पुस्तकके पढ़ लेनेके बाद सब लोगोंने माध्यमोंको पकड़ना प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद अमेरिकाके परलोकवादी उस पुस्तकके लेखकसे बहुत बिगड़े। उन्होंने इस पुस्तककी सब प्राप्त प्रतियोंको खरीद लिया और उन्हें जला दिया।

इसके बाद सन् १६०८ में ही सेन फ्रेंसिसकोके मिलर नामक माध्यमका पर्दा फाश हुआ। उसकी सब लोगोंने बड़ी दुर्गति की, परन्तु उसपर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया।

सन् १६०६ में बर्लिनमें एक प्रसिद्ध माध्यमकी कलई खुल गई। उसने बहुत ही शीघ्र बहुत नाम पैदा कर लिया था और जनताको ठगना प्रारम्भ किया था। कई वर्षों तक वह सबको धोखा देती रही, परन्तु अन्तमें वह पकड़ी गई। उसके पास भी एक बड़ी भारी कापी मिली, जिसमें उसने ऐसे बहुत आदमियोंके नाम पते तथा उनके सम्बन्धमें दूसरी बातें भी लिखी थीं, जो सियाँसोंमें प्रायः आया करते थे। उसी पुस्तककी सहायतासे वह बहुत बातें बताया करती थी। इसके अतिरिक्त, वह प्रायः आकाशसे फूल भी पैदा कर दिया करती थी। अन्तमें पता चल गया कि जिन फूलोंको वह एक दूरके मालीसे खरीदा करती थी, उन्हींको सियाँसोंमें सबके सामने निकला करती थी। उसके ऊपर भी अभियोग चलाया गया, परन्तु कई कारणोंसे वह बच गई। जब वह कचहरीसे बाहर निकली, तो परलोक-वादियोंने उसका खूब स्वागत किया।

आस्ट्रेलियाके माध्यम बेलीका नाम दूर-दूर तक फैल गया था, और सब लोग उसकी प्रशंसा करने लगे थे। वास्तवमें उस समय वह सारे संसारमें प्रसिद्ध हो गया था। वह भारतीय रेशम, विचित्र पक्षी तथा फूल बड़ी सुगमतासे पैदा कर दिया करता था। फ्रांसके रिचेल नामक एक धनी आदमीने उसे अपने यहाँ निमन्त्रित किया और उसे बहुत रुपया तथा दोनों ओरका किराया देनेका वादा किया। बेली फ्रांस गया। वहाँवालोंने उसे अच्छी तरहसे जाँच करनेका विचार किया। पहले तो बेलीको बड़ी सफलता मिली, परन्तु जब फ्रांसवालोंने अच्छी तरहसे जाँच करना प्रारम्भ किया और अपने वस्त्रोंको भी उसे पहनाना प्रारम्भ

कर दिया, तबसे बेलीकी सब चालाकी भूल गई, और उसे बहुत कम सफलता मिली। एक दिन वह केवल दो चिड़ियोंको निकाल सका, और कहा कि ये चिड़ियाँ इस देशकी नहीं, विदेशकी हैं; परन्तु यार लोग उसके पीछे बहुत दिनोंसे लगे हुए थे। उन लोगोंने फ्रांसके उस आदमीको भी पेश कर दिया, जिससे बेलीने उन चिड़ियोंको खरीदा था। लोगोंका विचार है कि बेली इन चिड़ियोंको अपने गुप्त स्थानोंमें भी छुपा लिया करता था। वह इस काममें बड़ा कुशल था। इसके बाद बेली अपने देशको लौट गया, परन्तु रिचेलने उसे लौटनेका खर्च बड़े दुःखके साथ दिया। रिचेलने कई और माध्यमोंका पर्दा फ़ाश किया।

सन् १६१० में इटलीमें लूसिया सोरदी नामक एक स्त्रीने माध्यमके काममें बड़ी सफलता प्राप्त की। उसने यूसैपियासे भी अधिक विचित्र कामोंको करना प्रारम्भ कर दिया। उसने मेज़को सिर्फ पृथ्वीसे ऊपर ही नहीं उठाना प्रारम्भ किया, बरन् वह (मेज़) कमरेके बाहर भी स्वयं उठकर चली जाती थी। वह रस्सीसे जकड़कर बाँध दी जाती थी, तब भी उसके काम आश्चर्यजनक होते थे। इटलीमें सन् १६१० से १६१४ तक और भी बहुतसी माध्यम स्त्रियाँ हुईं, परन्तु सबकी कलई अन्तमें खुल ही गई।

सन १६१४ में यूरोपीय महासभाका प्रारम्भ हो गया। लड़ाईके प्रथम तीन वर्ष तक तो परलोकवादकी पाश्चात्य देशोंमें बहुत कम चर्चा हुई और एक प्रकारसे परलोकवादकी अवनति भी अवश्य हुई। यह मनुष्य-स्वभाव है कि जब किसी मनुष्यका कोई प्यारा मर जाता है, तो वह उसके सम्बन्धमें बहुत सोचा करता है। यूरोपीय महाभारतमें बहुत आदमी मारे गये। इस कारण यूरोपके सब लोगोंका विश्वास हिल गया और वे अपने सम्बन्धियोंकी मृत-आत्माओंके देखने तथा उनसे वार्तालाप करनेके लिए उत्सुक रहने लगे। इसी समय इंग्लैंडमें दो आदमियोंने परलोकवादके सम्बन्धमें बड़े जोशसे काम करना प्रारम्भ कर दिया। उन दोनों आदमियोंके कारण यूरोपमें परलोकवादको प्रोत्साहन मिला। इसका प्रधान कारण यह था कि वे दोनों आदमी बड़े नामी थे। उनमेंसे एकका नाम सर ओलिवर लाज और दूसरेका नाम सर आर्थर कोनैनडायल था। उन दोनोंके पुत्र मर गये थे। इस कारण इन लोगोंपर परलोकवादका बड़ा प्रभाव पड़ा। सर ओलिवर लाज इंग्लैन्डके एक बड़े भारी वैज्ञानिक हैं। विज्ञान-जगत्में उनका अच्छा नाम है। उन्होंने 'Raymond' नामक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तकसे कुछ लोगोंके हृदयमें परलोकवादमें विश्वास उत्पन्न हो गया। इस पुस्तकमें उसके मृत-पुत्रकी आत्माकी कही हुई बातें लिखी गई हैं। पुस्तक वास्तवमें बड़ी रोचक है। उनके मरे हुए पुत्रकी आत्माने उस पुस्तकमें परलोकका बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। उसने लिखा है कि परलोकमें खेती होती है, फूल हैं, कुत्ते और बिल्लियाँ हैं, घर, कपड़े और कुएँ हैं। इतना ही नहीं, परलोकमें शराब और सिगार भी हैं। परलोकका क्या ही अच्छा वर्णन है! इस पुस्तकमें यह तो लिखा है कि परलोकमें शराब है, परन्तु यह नहीं लिखा कि सब लोगोंको विवश होकर शराब पीनी पड़ती है या नहीं। यदि सभीको ज़बरदस्ती शराब पीनी पड़ती होगी, तो ऐसे स्थानमें कम-से-कम सब हिन्दू जाना पसन्द नहीं करेंगे। सर ओलिवर लाज वास्तवमें एक बड़े भारी वैज्ञानिक हैं। उन्होंने इस पुस्तकमें एक स्थानपर यह भी लिख दिया है कि मैं इस पुस्तकको प्रकाशित कर रहा हूँ, परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि पुस्तककी सब बातोंको सच मानता हूँ। परन्तु परलोकवादियोंने उस पुस्तककी सब बातोंमें विश्वास कर लिया। उनका ऐसा करना स्वाभाविक ही था, क्योंकि साधारण परलोकवादी तो वैज्ञानिक थे ही नहीं। साधारण लोगोंने सोचा कि जब सर ओलिवर लाज इन सब बातोंको लिख रहे हैं, तो अवश्य ही इनमें सचाई होगी।

इस पुस्तकसे परलोकवादियोंको कई प्रकारका प्रोत्साहन मिला। इस तरहकी और कई पुस्तकें लिखी गईं, जिनका जनतामें बहुत प्रचार हुआ और उनसे बहुत लोगोंकी

हजामत बनाई गई। जनताको ठगनेके लिए ऐसी पुस्तकें वास्तवमें कामकी होती हैं। बड़े खेदकी बात है कि हिन्दीमें भी बी० डी० ऋषिने एक ऐसी ही पुस्तक लिखी है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि जनताको बहकानेमें यह पुस्तक खूब सफल होगी।

पहले लिखा जा चुका है कि दो व्यक्तियोंके कारण परलोक-वादमें एक प्रकारसे जीवन आ गया। उनमें एकका (सर ओलिवर लाजक) ऊपर वर्णन हो चुका है। दूसरेका नाम सर आर्थर कोनैनडायल है। वे भी जगत्प्रसिद्ध आदमी थे। वे वैज्ञानिक नहीं थे। वे एक उपन्यास-लेखक थे। उनके बनाये हुए उपन्यास आज संसार भरमें प्रसिद्ध हैं। उनमें 'शरलाक होम्स' नामक पुस्तककी उपन्यास-जगत्में बड़ी प्रतिष्ठा है। वास्तवमें वह है भी अमूल्य पुस्तक। कहा जाता है कि उन्होंने एक-एक पंक्तिके लिए प्रकाशकोंसे एक-एक गिन्नी ली थी। इस प्रकार वे बहुत धनी हो गये थे। जब उनका पुत्र मर गया, तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे अपने प्यारे पुत्रकी बातें सुननेके लिए व्याकुल हो गये। माध्यमोंने सोचा कि उन्हें मूड़नेका यह अच्छा अवसर है। बड़ी सुगमतासे सर आर्थर कोनैनडायल उनके जालमें फँस गये। इतना ही नहीं, वे स्वयं परलोकवादी भी हो गये, और उन्होंने अपना नाम परलोकवादियोंमें लिखवा लिया। सर आर्थरने बड़े जोशसे परलोकवादियोंके लिए काम करना प्रारम्भ कर दिया। वे न वैज्ञानिक थे, न दार्शनिक। अतएव उन्होंने परलोकवादके सिद्धान्तके रहस्योंके समझनेका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। अभी तक उनकी कल्पना मनगढ़न्त बातोंके देशमें ही विचर रही थी। अब उन्होंने उसी कल्पनासे ठोस जगत्में भी सहायता लेना प्रारम्भ कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उनका विचार पवित्र था, उनका परलोकवादमें विश्वास दृढ़ था और उनका उद्देश्य महान् था। उन्होंने बड़े जोशके साथ परलोकवादका संसार-भरमें प्रचार करनेका दृढ़संकल्प किया था। वे परलोकवादके सिद्धान्तको एक बड़ी-भारी वस्तु समझते थे, और चाहते थे कि इस पवित्र सिद्धान्तका प्रचार घर घर हो जाय। परलोकवादके प्रचारके लिए उन्होंने अपनी सम्पत्तिको पानीकी तरह लुटा दिया था। आजकल भारतमें जितने परलोकवादी हैं, उनमें बी० डी० ऋषि कदाचित् सबसे अधिक प्रधान हैं। स्वयं ऋषिजीको भी उन्होंने आर्थिक सहायता की थी। वे तो इंग्लैंडके रहनेवाले थे, उन्हें इस देशके परलोकवादीकी सहायता करनेकी क्या आवश्यकता थी, परन्तु परलोकवादमें उनका प्रेम सच्चा था, अतएव उन्होंने ऐसा किया था।

सर आर्थर कोनैनडायलने कई प्रकारसे परलोकवादके फैलानेका भगीरथ प्रयत्न किया था। इन्होंने अब उपन्यास लिखना छोड़ दिया था और अपना सब समय परलोकवादके सम्बन्धमें ही लगाते थे। वे दूर दूर जाकर व्याख्यान भी देते थे, और यदि कोई आदमी परलोकवादके विरुद्ध कुछ कहता था, तो वहाँ वे कई दिन तक व्याख्यान दिया करते थे।

सर आर्थर कोनैनडायलने कल्पनाके आधारपर एक सुन्दर जगतकी कल्पना कर ली, और उसे परलोक समझना तथा दूसरे लोगोंको समझाना प्रारम्भ कर दिया। जिस प्रकार वे उपन्यासके प्लॉटोंकी सृष्टि किया करते थे, उसी प्रकार उन्होंने परलोककी भी कल्पना कर ली। इस कल्पनामें उन्होंने ईथरसे काफ़ी सहायता ली। ईथरके सम्बन्धमें भी उन्होंने वही ग़लती की, जिसकी सर आर्थर जैसे उपन्यास-लेखकसे आशा थी। उन्होंने समझा कि उस काल्पनिक परलोकमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं होगा। जनता भी इस सब्ज़बाग़को देखकर उनकी ओर कुछ आकर्षित हुई और परलोकवादका उसमें अच्छा प्रचार हुआ। इस काल्पनिक जगत्के सम्बन्धमें अनेक पुस्तकें भी लिखी गईं, और उनमें से कुछ तो स्वयं सर आर्थर कोनैनडायलने लिखी थीं। कहा जाता है कि उस समय सर आर्थरकी धमनियोंमें एक प्रकारका ऐसा धार्मिक जोश आ गया था, जिसकी

समानता बहुत कम लोग कर सकते थे। गाँवोंमें उनका व्याख्यान सुननेके लिए हज़ारों आदमी आ जाया करते थे। इस प्रकारका जोश सन् १६२० तक जारी रहा, परन्तु ठोस जगतके सामने काल्पनिक संसार कब तक ठहर सकता था। यह संसार बहुत दिनोंसे बना है। इसके सामने मनुष्यका बनाया हुआ संसार अधिक दिन तक नहीं चल सकता।

सन १६२०में परलोकवादके सिद्धान्तकी जड़ फिर हिलने लगी और समाचारपत्रोंने परलोकवादके विरुद्ध खूब आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय सर आर्थर कोनैनडायलको किसी एक माध्यमके बारेमें सन्देह उत्पन्न हुआ, और उन्होंने दो तीन प्रसिद्ध-प्रसिद्ध माध्यमोंकी जाँच की। इसका फल बड़ा निराशाजनक हुआ। अब सर आर्थरकी आँख खुलीं और उन्हें पता चला कि जिस कल्पना-जगतमें वे आज तक विचर रहे थे, वह बिलकुल खोखला था। इसी समय जनताकी भी आँखें खुलीं, और सब लोगोंने माध्यमोंकी जाँच करना प्रारम्भ कर दिया। भला, बालूकी दीवार कब तक खड़ी रह सकती थी; एकके बाद दूसरे माध्यमोंकी कलई खुलने लगी और उनके विरुद्ध एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इसी समय सर आर्थरने भी माध्यमोंकी खूब जाँच की, परन्तु उन्हें सच्चा नहीं पाया। इसी अवसरपर कई प्रश्न उठ खड़े हुए और विरोधियोंने कई बातें पूछीं, जिनका परलोकवादी तथा माध्यम कोई उत्तर नहीं दे सके। इसी समय अमेरिकाके मिस्टर जोजेफरिनने संसार-भरके माध्यमोंको ललकारा। जोजेफ़रिनने परलोकवादके सम्बन्धमें बहुत समय लगाया था और सैकड़ों माध्यमोंकी कलई खोल दी थी। उन्होंने यह सूचना निकाली कि यदि संसार-भरके सब माध्यम मिलकर परलोकवाद-सम्बन्धी कोई एक भी दृश्य या घटना कर दिखावें, तो मैं उन्हें १५ हज़ार रु० पुरस्कार-स्वरूप दूँगा। उन्होंने यह भी लिखा कि आज तक संसारमें माध्यमोंने सबको खूब धोखा दिया है। वे सबके सब झूठे हैं। मिस्टर जोजेफ़रिनके कथनसे परलोकवादियों और माध्यमोंमें बड़ा शोर मचा; सबोंने खूब उछल-कूद मचाई, पर कोई माध्यम भी जाँचके लिए तैयार नहीं हुआ। इससे सर आर्थर कोनैनडायलका रहा-सहा जोश भी ठंढा पड़ गया, और उन्होंने अपने मनमें समझ लिया कि ये सब माध्यम धोखेबाज़ हैं। सर आर्थरको वास्तवमें बड़ा रंज हुआ, क्योंकि उन्होंने माध्यमोंको पहले सच्चे समझ रखा था। अब उन्होंने परलोकवादकी संस्थासे अपना सम्बन्ध तोड़नेका विचार किया। इसपर भी परलोकवाद संसारमें बड़ा हलचल मचा, क्योंकि सर आर्थर उसके संसार-भरमें सबसे अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। तब सर आर्थरने उन सब सभाओंके सुधारनेका प्रयत्न किया, क्योंकि वे एक सच्चे आदमी थे, परन्तु परलोकवादी अपने नियमोंमें सुधार नहीं करना चाहते थे। यदि वे सुधार करते, तो माध्यम लोग जनताको कैसे मूड़ते? और जब माध्यम लोग जनताकी हजामत ही नहीं बना सकते, तो परलोकवादीसे लाभ ही क्या होता! इन सब कारणोंसे तंग आकर और परलोकवाद सम्बन्धी सभाओंमें सुधारको असंभव जानकर सर आर्थर कोनैनडायलने त्यागपत्र दे दिया, और उन सब सभाओंसे कोई सम्बंध नहीं रखा। उनके त्यागपत्र दे देनेके कारणसे परलोकवादियोंकी इधर बहुत अवनति हो रही है, तथापि कुछ लोग अभी उन्हींके नामपर जनताको धोखा दे ही रहे हैं।

मेरी जीवन-कथाके कुछ पृष्ठ

आचार्य रामदेवजी

महाशय कृष्णजी

सन् १८६६में हम गुरुकुल-दलके कुछ नवयुवकोंने कालेजपार्टीकी 'यंग मैन्स आर्यसमाज' के मुक़ाबिलेमें 'आर्यकुमार सभा' की स्थापना की। मेरी आयु उस समय सिर्फ़ सोलह वर्षकी ही थी, फिर भी सार्वजनिक कार्यकर्ता होनेका शौक़ मुझपर बेतरह सवार था। इस आर्यकुमार सभाका मन्त्री भी मुझे ही चुना गया था। इसके साथ ही मैं अंग्रेज़ीके मासिक पत्र 'आर्य पत्रिका' का उपसम्पादक भी था। प्रसिद्ध होनेकी धुनमें मैं सदैव, सभी स्थानोंपर अपने नामके साथ 'मन्त्री आर्यकुमार सभा' लिखा करता था। मेरे पास यह भारी उत्तरदायित्व-पूर्ण पद है, यह बात मुझे कभी भूल नहीं सकती थी। अपने नामके जो पत्र-व्यवहार और नोट लेनेके पत्र मैंने छपवाये, उनपर भी मेरा यह 'ख़िताब' अंकित था।

मेरे हाथमें एक अख़बार था, इसलिए मुझे अपनेको प्रसिद्ध करनेका काफ़ी अवसर मिलता था। आर्य-पत्रिकामें मैं स्वयं अपने व्याख्यानोंका संक्षिप्त विवरण दे दिया करता था। आर्यसमाजके प्रचारके लिए मैं उन दिनों भी व्याख्यानोंके दौरेपर निकला करता था। मेरी इन प्रचार-यात्राओंके समाचार आर्य-पत्रिकामें वायसरायके सामाजिक प्रोग्रामोंकी तरह प्रकाशित हुआ करते थे। मुझे आज यह तो स्मरण नहीं कि उन दिनों आर्य-पत्रिकाके पाठकोंकी संख्या कितनी थी, परन्तु इतना अवश्य स्मरण है कि पत्रिकामें अपने सम्बन्धकी इतनी बातें छपी देखकर मुझे असीम प्रसन्नता होती थी। सार्वजनिक कार्यकर्ताके रूपमें ख्याति प्राप्त करनेकी जहाँ मुझे इतनी धुन थी, वहाँ आर्यसमाजके प्रचारकी अभिलाषा भी बहुत प्रबल थी, और आर्यसमाजके मन्तव्योंपर मेरा अटल और अगाध विश्वास था।

मेरी उम्र छोटी थी, उसपर भी मैं ख़ूब धड़ल्लेसे व्याख्यान देता था, इस कारण लोग मेरी काफ़ी तारीफ़ करते थे, परन्तु जहाँ मेरे व्याख्यानोंकी तारीफ़ न होती, वहाँ मैं स्वयं अपने ही मुखसे अपनी तारीफ़ करता और अपने व्याख्यानोंकी ख़ूबियाँ लोगोंको समझाता था। मेरी उम्रके लड़केके मुँहसे शुद्ध और धारावाहिक अंग्रेज़ीका प्रवाह सुनकर लोग जो तारीफ़ करते थे, उसने मेरे दिमाग़को बिगाड़नेमें और अधिक मदद पहुँचाई। कोई मेरा मुक़ाबला आर्यसमाजके सबसे बड़े विद्वान् पं० गुरुदत्त विद्यार्थीसे करता और कोई किसी अन्य महारथीसे। मेरी स्मरणशक्ति उन दिनों असाधारण रूपसे तीक्ष्ण थी। मैं जो पुस्तक पढ़ता, वह मुझे याद हो जाती, और उसके आधारपर मैं एक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दे देता। मेरे व्याख्यानका सम्पूर्ण मसाला यद्यपि एक ही पुस्तकके आधारपर ही आश्रित होता था, तथापि साधारण जनता मुझे असाधारण विद्वान् मानने लगती थी।

मेरी इस मनोवृत्तिके कारण मुझे अपनी भविष्यकी उन्नतिके लिए उन दिनों प्रशंसापूर्ण उत्तेजनाकी उतनी आवश्यकता नहीं थी जितनी मुझे अपना वास्तविक रूप समझानेके लिए ठंडा करनेवाले प्रभावोंको ज़रूरत थी। मुझे एक ऐसे गीले कपड़ेकी ज़रूरत थी जो मेरे गरम दिमाग़को शीतलता पहुँचाये। सम्भवत: ईश्वरको यह स्वीकार था कि मेरा उस छोटी उम्रका उग्र आत्माभिमान मेरी सम्पूर्ण शक्तियोंको कुचल न दे और अपने भविष्यके जीवनमें मैं आर्यसमाज तथा देशकी कुछ सेवा कर सकूँ, इसलिए अचानक मुझे अपने दिमाग़को ठंडक पहुँचानेवाला एक गीला कम्बल उपलब्ध हो गया।

(२)

ख्यूड़ाके नमककी पहाड़ियोंके निकट हरनपुर नामका एक गाँव है। इस गाँवके रेलवे-स्टेशनपर मेरे एक मौसेरे भाई ट्रेन-क्लार्कका काम करते थे। मेरे मामा भी इसी स्थानपर रहते थे। इस कारण अपने कालेजकी लम्बी छुट्टियोंमें मैं हरनपुर जाकर रहा। इस गाँवके निकट ही कटासराज नामका पंजाबके हिन्दुओंका एक प्रसिद्ध तीर्थ है। मैं ख्यूड़ाकी नमककी खान देखकर कटासराजमें गया। वहाँ जाकर मैंने आर्य सिद्धान्तोंपर एक व्याख्यान दिया और तीर्थके मुख्य महन्तसे शास्त्रार्थ भी किया। उस शास्त्रार्थकी जो हलकी स्मृति आज भी मुझे बनी हुई है, उसके द्वारा यही स्मरण आता है कि उस शास्त्रार्थमें मेरी विजय हुई। सम्भवत: महन्त महोदय संस्कृतके तो उच्च विद्वान् थे, परन्तु तर्क करना उन्हें बिलकुल न आता था। वे संस्कृतके प्रमाण तो जानते थे परन्तु प्रमाणोंके समन्वयका ज्ञान उन्हें बिलकुल नहीं था। दूसरी ओर मुझे सत्यार्थप्रकाशके सभी प्रमाण कंठाग्र थे, उन प्रमाणोंकी मैंने महन्तजीपर बौछार कर दी और वे मेरी बातोंका कुछ भी उत्तर न दे सके।

कटासराजमें अपनी इस विजयको देखकर मुझपर आत्माभिमानका नशा और भी गहरा हो गया। इसी नशेकी-सी दशामें मैं लाहौरके लिए रवाना हुआ। बीचमें वज़ीराबाद नामका पंजाबका एक प्रसिद्ध नगर पड़ता है। मैंने सोचा कि इस नगरमें भी एक व्याख्यान दे लूँ। मैं वज़ीराबादमें उतर पड़ा।

रेलसे उतरकर मैं सीधा आर्यसमाज-मन्दिरमें पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही मैंने समाजके चपरासीको बुलाकर कहा—"अभी-अभी समाजके मन्त्रीके घर जाओ और उनसे कहो कि आर्यकुमार सभा लाहौरके मन्त्री आये हैं, उनके व्याख्यानका प्रबन्ध कीजिये।"

चपरासीने एक बार मेरी शकलको देखा, मेरे कदको देखा; वह भाँप गया—यह तो लड़का है! फिर उसने मेरे बात करनेके ढंगको देखा, मेरी शान और साहसको देखा। वह मेरे रोबमें आ गया और वह मन्त्रीको बुला लाया।

आर्य-पत्रिका द्वारा मैंने अपने नामकी प्रसिद्धि इतनी अवश्य कर रखी थी कि आर्यसमाजोंके अधिकारी मेरा नाम ज़रूर जानते थे। मन्त्री महोदयने मेरे व्याख्यानका नोटिस दे दिया। कुछ जनता भी एकत्र हो गई। मैंने व्याख्यान दिया। मेरी उम्र इतनी छोटी थी कि जनताको मेरे मुँहसे वैसा व्याख्यान सुनकर पर्याप्त सन्तोष हुआ। खासकर मुझे तो अपने व्याख्यानसे बहुत अधिक सन्तोष हुआ।

व्याख्यानके बाद मेरी ही उम्रका एक पतला-सा इकहरे बदनका गौरवर्ण लड़का मेरे पास आया। उस लड़केकी आँखोंमें एक विशेष प्रकारकी तीक्ष्णता—जो सूक्ष्म विश्लेषण करनेकी शक्तिकी परिचायक होती है—थी, जिसे मैं उस समय, अपने आत्माभिमानके मदमें नहीं देख पाया। इस लड़केने मुझे अपने घरपर भोजन करनेके लिए निमन्त्रित किया।

मैंने उससे पूछा—"आपका नाम क्या है?"

उसने कहा—"राधाकृष्ण।"

मुझे स्मरण आया कि मेरे साप्ताहिक पत्रके एक लेखक महोदय वज़ीराबादके ही निवासी हैं और अपने लेखोंपर अपना नाम आर० के० वज़ीराबादी लिखा करते हैं। मुझे सन्देह हुआ कि वह महाशय कहीं वे ही तो नहीं हैं, मैंने पूछा—"क्या आप ही आर० के० वज़ीराबादी हैं?"

उन्होंने अपनी स्वीकृति ज़ाहिर की। इसपर मैंने उनसे हाथ मिलाये, और कहा कि जिस आर्य-पत्रिकामें आपके लेख प्रकाशित होते हैं, उसका उपसम्पादक मैं ही हूँ।

ठीक समयपर राधाकृष्णजी आकर मुझे भोजनके लिए अपने घर ले गये। उनकी माताने बड़े प्रेमसे मुझे भोजन कराया। खानेका सभी सामान बहुत स्वादिष्ट और नाना प्रकारका था। एक विचारकका कथन है कि स्वादिष्ट भोजन करनेके बाद मनुष्यमें आशावादिता बढ़ जाती है। वह अपनेको कुछ अधिक उदारतासे देखता है।

उस समय मेरी भी यही दशा थी कि राधाकृष्णजीने—जो आजकल महाशय कृष्णके नामसे प्रसिद्ध हैं, मुझसे बातचीत शुरू की। इस वार्तालापके प्रारम्भ ही में वे मेरे व्याख्यानकी कड़ी आलोचना करनेपर उतर आये। उसके सम्बन्धमें उन्होंने मुझपर अनेक गम्भीर प्रश्नोंकी बौछार कर दी। मज़ा यह कि यह सब काम इस खूबीके साथ किया कि उसमें मेरी तारीफ भी बनी रहे। उन्होंने एक ओर मेरी मानसिक योग्यता तथा गम्भीर पाठकी खूब प्रशंसा कर दी और दूसरी ओर मेरे व्याख्यान देनेके ढंग और शब्द-विन्यासके सम्बन्धमें उन्होंने खूब खरी-खरी बातें सुनाईं। मुझे यह अनुभव होने लगा, मानो मैं अपने बड़प्पनके कल्पित सिंहासनसे नीचे गिर रहा हूँ। मेरा नशा कम होने लगा। मुझे यह अनुभव होने लगा कि मैं भी कोई पूर्ण व्यक्ति नहीं हूँ। साथ-ही-साथ मुझे यह भी स्पष्टरूपमें दिखाई दिया कि यह जो लड़का मुझे भोजनके लिए अपने घर बुलाकर मेरे व्याख्यानकी कड़ी आलोचना कर रहा है, ईश्वरसे किसी चीज़का स्याह पहलू देखनेकी अद्भुत शक्ति लेकर आया है। इससे किसी चीज़की कोई त्रुटि छिपी नहीं रहती।

मनोवैज्ञानिकोंका मत है कि मानसिक जगत्में प्रतिकूलताका सिद्धान्त भी बड़ी प्रमुखतासे अपना कार्य कर रहा है। अर्थात् दो प्रतिकूल और पूरक स्वभाववालोंमें परस्पर मित्र हो जानेका अधिक अवसर रहता है। मानसिक आकर्षणका यही नियम है। एक वाचाल चुप रहनेवाले एक अच्छे श्रोताको अपना मित्र बनाता है। एक तेज़ स्वभाववालेको किसी शान्तस्वभाव व्यक्तिकी चाह रहती है। यह नियम यद्यपि सर्वव्यापी नहीं है, तथापि इसमें सचाई भी अवश्य है। शायद यही कारण है कि महाशय कृष्णकी उस समयकी कड़ी आलोचनाने मुझे उनसे दूर करनेके बजाय उनके और अधिक निकट लाकर खड़ा कर दिया। उसी दिनसे मेरा उनसे प्रेम और मित्रताका सम्बन्ध हो गया। हम दोनोंका यह प्रेम इस तरहका था कि समय तथा परिस्थितियोंके भेदसे इसी प्रेमको लेखक 'प्रथम दृष्टिका प्रेम' कहते हैं।

महाशय कृष्णसे मेरा स्वभाव न तब मिलता था, और न आज—बत्तीस वर्ष बीत जानेके बाद भी। हम दोनोंमें परस्पर स्वभावका एक ऐसा विरोध मौजूद है, जिसे हमारी यह दीर्घकालीन मित्रता भी, दूर करना तो एक ओर रहा, कम तक नहीं कर सकी। मैं स्वभाव ही से आशावादी हूँ, और प्रत्येक वस्तुके चमकीले पहलूपर मेरी निगाह सबसे पहले जाती है। मैं अपनी प्रकृतिसे ही मनुष्यपर विश्वास करनेको लाचार हूँ। कोई व्यक्ति अपने सम्बन्धमें जो कुछ कहता है, मैं उसे सच मान लेता हूँ, और उसे अपनेको मेरी दृष्टिमें वैसा ही सिद्ध होनेका पूरा अवसर देता हूँ। यद्यपि मुझे यह विश्वास है कि मुझमें किसीके चरित्र-विश्लेषण करनेकी शक्ति भी है और मैं किसी व्यक्तिकी गहराई काफी आसानीसे अनुमान कर सकता हूँ, तथापि अपने स्वभावके अनुसार मैं प्रत्येक व्यक्तिको उसके ऊपरी मूल्यपर लेता हूँ और उसके दोषोंको जानकर भी मैं क्रियामें उसके गुणोंकी ओर ही अधिक ध्यान देता हूँ। मेरे हृदय और मस्तिष्कमें एक तरहसे निरन्तर युद्ध चला करता है। मेरा मस्तिष्क बता देता है कि अमुक व्यक्तिका व्यवहार कृत्रिम है, अत: तुम्हें उससे सावधान रहना चाहिए, परन्तु मेरा हृदय मेरे मस्तिष्कको इस आधारपर फटकार बताकर कि उसके विश्लेषणमें भ्रान्ति होनेकी सम्भावना भी तो हो सकती है, उसे विश्वास करनेको बाधित कर देता है। मेरा हृदय मस्तिष्कको आश्वासन देता है कि मनुष्य अनन्त शक्तियोंका भंडार है, उसमें असुर है तो क्या हुआ, वह देवताकी निवास-भूमि भी तो है। कौन कह सकता है कि अमुक मनुष्यके लिए अमुक बात सर्वथा असम्भव है? कौन जानता है कि मेरे संसर्ग ही से शायद उस व्यक्तिके हृदयमें देवोंका ही विजय हो जाय, और मैं उसके विकासमें सहायक होनेकी पुण्यभागी बनूँ। बस, इसी भावुकता-भरी दलीलोंके आधारपर हृदय

मस्तिष्कपर प्राय: सदैव विजय प्राप्त कर लेता है, परन्तु जब व्यावहारिक जगतमें सौमें से साठ उदाहरणोंमें मेरे मस्तिष्कका विश्लेषण ही सत्य सिद्ध होता है, तो मेरे हृदयको बड़ी ठेस पहुँचती है और मैं उस व्यक्तिसे अपना नाता तोड़ लेता हूँ, यद्यपि अनेक उदाहरणोंमें यह सिद्ध हुआ है कि उसके वास्तविक या नकली पश्चात्तापपर भी मैं उसे दूसरा अवसर देनेको सदैव उद्यत रहा हूँ। मेरी यह मनोवृत्ति केवल भाषणों, लेखों और सामाजिक जीवनमें ही नहीं रही, अपने व्यक्तिगत व्यवहारमें भी सदैव मेरा यही हाल रहा है।

परन्तु मेरे परम मित्र महाशय कृष्णका स्वभाव इससे भिन्न है। उनका मस्तिष्क किसी व्यक्तिके गुण और दोष दोनोंकी परख कर सकता है, परन्तु उनकी मानसिक दृष्टि और हृदय दोषोंकी ओर ही अधिक जाते हैं। किसी मनुष्यके गुणों तथा चमकीले पहलूको खूब अच्छी तरह साक्षात् करके भी उससे बातचीत करते हुए वे उसके स्याह पहलुओंको ही उसके सामने रक्खेंगे, और कभी-कभी तो उसके दोषोंकी उसके मुँहपर ही कड़ी आलोचना करेंगे। दूसरी ओर यदि वे किसी अन्य महानुभावको उस व्यक्तिके दोष दिखाते हुए पकड़ेंगे, तो उस समय वह उसके चमकीले पहलुओं और गुणोंकी तरफदारी करके उस महानुभावकी रायको ग़लत साबित करेंगे और उल्टे उन्हींके दोषोंको उन्हें समझाने लगेंगे! इस दोनोंकी इस मनोवृत्तिका परिणाम यह हुआ है कि बादमें व्यावहारिक जगतमें किसी व्यक्तिके दोषोंका प्रत्यक्ष होना उन्हें उतना धक्का नहीं पहुँचाता, जितना मुझे। इस मनोवृत्तिका दूसरा परिणाम यह हुआ है कि वे किसी दोष-युक्त मनुष्यसे मित्रता करते हुए मेरी तरह घबराते नहीं हैं। वे किसी मनुष्यके गुणोंको देखकर उसकी ओर आकर्षित होते हैं और उससे परिचय बढ़ाते हैं, परन्तु इस मित्रताका यह असर नहीं होता कि वे उसके दोषोंपर से अपनी दृष्टि उठा लें। वह उन दोषोंको मन और वाणीका प्राय: विषय बनाते रहे हैं, और अधिकांश उदाहरणोंमें तो उस मनुष्यके मुँहपर ही उसके दोषोंका बखान करते रहे हैं। यही कारण है कि यदि कभी उस मनुष्यके दोष कार्यरूपमें कोई बड़ा अनर्थ भी उत्पन्न करते हैं, तो महाशय कृष्णका प्रेम उस मनुष्यके प्रति अपने पूर्व ज्ञान और सावधानताके कारण कम नहीं होने पाता।

इस अंशमें महाशय कृष्ण एक अजीब पहेली हैं। उनकी सहिष्णुताका आधार उनकी स्वाभाविक असहिष्णुतापर आश्रित है। दूसरी ओर मेरी बादकी असहिष्णुताका आधार मेरी स्वाभाविक सहिष्णुतामें सन्निहित है।

महाशय कृष्णके चरित्रका यह पहलू एक और रूपमें भी लोगोंके सामने आता है, जिसके कारण लोगोंमें उनके सम्बन्धमें बहुतसा भ्रमज्ञान फैल जाता है, और साधारण मनुष्य बहुत बार उन्हें समझनेमें भूल कर जाते हैं। वे अपनी निजू बात-चीतमें अपने प्रिय जनों या प्रिय संस्थाओंकी कड़ी आलोचना ही करते हैं और उनके स्याह पहलू ही दिखाते हैं, यद्यपि व्याख्यानों तथा लेखोंमें सदैव उस मनुष्यके गुणों तथा संस्थाके चमकीले पहलुओंको ही जनताके सामने रखते हैं। उनके इस स्वाभावके कारण बहुतसे लोग उन्हें समझनेमें भूल कर जाते हैं, और अनेक महानुभाव तो उन्हें अव्यवस्थित चित्तका कहने लगते हैं। बहुत लोगोंको मैंने यह कहते सुना है कि महाशय कृष्णजी भी एक अजीब आदमी हैं, कभी तो वे कमर कसकर किसीके दोष ढूँढ़ने लगते हैं और कभी खोद-खोदकर उसीके गुण निकालते हैं। महाशय कृष्णके स्वभावका परिणाम यह है कि आम जनता, जो उनके लेख पढ़ती और भाषण सुनती है, उनपर लट्टू है। जो लोग उनसे कम परिचित होते हैं, वे उनपर नाराज़ हो जाते हैं, परन्तु वे लोग जो उनके अभिन्न मित्र हैं और उनके स्वभावको भली प्रकार जानते हैं, उन्हें यह देखनेका अनेक बार अवसर मिलता है कि उनके निजी दोषोंको उन्हींके मुँहपर कहते रहनेपर भी कभी व्यावहारिक रूपमें महाशय कृष्णने अपनी व्यक्तिगत मित्रताको उनके दोनोंसे प्रभावित नहीं होने दिया और अपने

विशुद्ध प्रेमको कितनी अच्छी तरह निभाया है। इसी कारण उनके मित्र उनपर जान देनेका तैयार रहते हैं। जो लोग उन्हें निकटसे नहीं पहचानते वे उन्हे अभिमानी और छिद्रान्वेषी समझते हैं। परिणाम यह हुआ है कि जहाँ महाशय कृष्णके मित्रोंकी संख्या बहुत अधिक है, वहाँ उनके शत्रु भी कम नहीं हैं। मुझे ज्ञात है कि महाशय कृष्णके सम्बन्धमें आलोचकोंकी धारणाएँ भ्रमपूर्ण हैं, तथापि मुझे यह तो स्वीकार ही करना पड़ेगा कि इसका उत्तरदायित्व भी स्वयं महाशयजीपर ही है।

(३)

अपने किसी पिछले संस्मरणमें यह वर्णन कर चुका हूँ कि आर्यसमाजमें दो दल किस तरह बन गये। कालान्तरमें स्वयं गुरुकुल-दलमें भी अनेक मतभेद खड़े हो गये। इन झगड़ोंका मुख्य कारण गुरुकुल-विश्वविद्यालयके सम्बन्धका मतभेद ही था। गुरुकुलके संस्थापक महात्मा मुन्शीराम चाहते थे कि गुरुकुल हरद्वारके निकट खोला जावे, और लाला रलाराम और राय ठाकुरदत्त इसके विरोधमें थे और चाहते थे कि गुरुकुलकी स्थापना पंजाबमें की जाय, साथ ही वे गुरुकुलका सम्बन्ध सरकारी विश्वविद्यालयोंसे करना चाहते थे। महात्मा मुन्शीरामका कथन था कि गुरुकुल तो सरकारी शिक्षा-पद्धतिके प्रतिवाद रूपमें ही खोला जा रहा है। आर्य-प्रतिनिधि सभाने निश्चय किया कि तीस हज़ार रुपया एकत्र हो जानेके बाद ही गुरुकुलकी स्थापना की जायगी। इसपर महात्मा मुंशीराम अपनी सारी शक्तिके साथ धन जमा करनेमें लग गये।

यह बात आजसे तीस वर्ष पुरानी है। उन दिनों तीस हज़ार रुपया एकत्र करना आसान बात नहीं थी। किन-किन तकलीफ़ोंको सहकर महात्मा मुंशीरामने एक बिलकुल नई बातके लिए लोगोंसे धन जमा किया, यह लिखना यहाँ अप्रासंगिक होगा। महात्माजीने तीस हज़ार रुपया एकत्र तो कर लिया, परन्तु इस तरह अपने परिवारकी ज़रा भी चिन्ता न करनेका परिणाम यह हुआ कि उनपर बहुतसा कर्ज़का बोझ लद गया। इसपर राय ठाकुरदत्तने उन्हें सलाह दी कि वे कुछ समय तक सार्वजनिक जीवनसे पृथक् होकर अपनी व्यक्तिगत आर्थिक दशाको सुधार लें। महात्मा मुंशीराम इस बातके लिए तैयार हो गये और अपने निजी काममें लग गये। इसी बीचमें राय ठाकुरदत्तने महात्मा मुंशीरामकी सार्वजनिक जीवनसे इस अनुपस्थितिका अनुचित लाभ उठाकर आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाबमें गुरुकुलकी पूर्व योजनाके सम्बन्धमें अपनी नीतिके कुछ परिवर्तन प्रस्तावित कर दिये। महात्मा मुन्शीरामको भी इस बातकी सूचना दे दी गई। महात्माजी अपने सम्पूर्ण कार्योंको बीच ही में छोड़कर आर्य-प्रतिनिधि सभाके अधिवेशनमें जा उपस्थित हुए। महात्मा मुन्शीरामका व्यक्तित्व उन दिनों भी गुरुकुलमें सबसे अधिक प्रभावशाली था। आर्य जनताके वे ही नेता थे, इस कारण राय साहबकी एक भी बात स्वीकार न हुई। वे इस बातसे महात्माजीसे नाराज़ हो गये और उनका विरोध करने लगे। राय ठाकुरदत्तके बड़े भाई राय पैड़ाराम तथा गुजरांवालाके लाला रलाराम भी उनके साथ थे। कुछ अन्य महानुभाव भी पार्टीमें सम्मिलित हो गये, और यह पार्टी महात्मा मुन्शीरामका विरोध करने लगी।

महात्मा मुन्शीराम आर्यसमाजके सर्वश्रेष्ठ नेता थे। गुरुकुल कांगड़ीके मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य भी वही थे, इसलिए आर्यसमाजके युवक-दलने निर्णय किया कि इस दूसरे दलके आक्षेपोंसे महात्मा मुन्शीरामकी रक्षा करनी चाहिए। महाशय कृष्ण इस दलके नेता थे, और मैं भी इस दलमें सम्मिलित था। इस कार्यके लिए महाशय कृष्णने उर्दूमें एक साप्ताहिक पत्र लाहौरसे निकालनेका निश्चय किया। तदनुसार सन् १९०४ में उन्होंने 'प्रकाश' नामका एक पत्र प्रकाशित करना शुरू किया। महाशयजीकी उस दिनों न समाजमें कोई विशेष स्थिति थी, न उनके पास धन ही था और न कोई अच्छा आश्रय ही। सिर्फ उन्हें अपनी क़लमपर विश्वास था, और इसी विश्वासके भरोसे

उन्होंने 'प्रकाश' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। आरम्भमें अपने कुछ मित्रोंसे पचीस-पचीस रुपया सहायता लेकर कृष्णजीने यह साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। न उनके पास कोई लेखक था, न प्रूफरीडर और न चपरासी। वे स्वयं तथा उनके अनन्य मित्र, जिन्हें महाशयजी अपने भाईसे भी बढ़कर मानते हैं, पण्डित विश्वम्भरनाथजी ही अखबारका सम्पूर्ण कार्य करते थे। नवयुवकोंके इस प्रयत्नको लोग दुस्साहस-मात्र समझते थे; मगर महाशय कृष्णके दुश्मन इस बातको ननुनच स्वीकार करते हैं कि उनकी लेखनीमें ओज है और भाषामें बल है। महाशयजीकी इसी शक्तिका परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाजमें शीघ्र ही 'प्रकाश' की एक विशेष स्थिति बन गई, और प्रकाशकी बदौलत महाशय कृष्ण आर्यसमाजके भावी नेताओंमें गिने जाने लगे। आर्यजनता उनकी आर्यसमाजके प्रति सेवाओंकी क़दर करने लगी।

महाशय कृष्णके इस पत्रने न केवल महात्मा मुन्शीरामपर किये जानेवाले आक्षेपोंका ही उत्तर दिया, बल्कि आर्यसमाजकी भी अनथक और गम्भीर सेवा की। जब कभी आर्यसमाजपर कोई विपत्ति आई, उन्होंने प्रकाश द्वारा भारी आन्दोलन किया। पंजाब-सरकारने जब लाला लाजपतरायको देश-निर्वासनका दंड दिया, तब महाशय कृष्णने 'प्रकाश' में 'यह तुम्हारी परीक्षाका समय है' शीर्षक एक लेखमाला सरकारके इस कार्यके विरोधमें लिखी। इस लेखमालाके कारण अफ़वाह उड़ी थी कि महाशयजीपर भी सरकारकी ओरसे अभियोग चलाया जायगा, परन्तु इससे महाशय कृष्ण ज़रा भी भयभीत न हुए थे। आर्यसमाजके लिए वे बड़ी प्रसन्नतासे जेल जानेको तैयार थे।

आज महाशय कृष्ण पंजाबके सर्वश्रेष्ठ पत्र-सम्पादक हैं, और उनका 'प्रकाश' आर्यसमाजका सबसे अधिक सर्वप्रिय साप्ताहिक है। इस पत्रकी लिपि तो उर्दू है, परन्तु भाषा हिन्दी होती है। महाशय कृष्णने महात्मा मुन्शीरामकी नीतिका अनुसरण करते हुए पंजाबमें उर्दूकी शैलीको ही परिवर्तित करके उसे हिन्दीमय बना दिया है। उनकी उर्दूमें अरबी-फ़ारसी शब्दोंका प्राधान्य न होकर संस्कृतके शब्दोंकी ही बहुतायत रहती है।

(४)

सन् १९०९ में पटियाला-सरकारने आर्यसामाजी होने-मात्रको नाजायज़ करार दे दिया, और वारबर्टन साहबकी मेहरबानीसे आर्य सज्जनोंपर राजद्रोहका अभियोग चला दिया गया। पटियाला-सरकारने सम्पूर्ण आर्य सदस्योंको हवालातमें डाल दिया। राय साहब ज्वालाप्रसादसे लेकर, जो आजकल संयुक्त-प्रान्तके नहर-विभागके प्रथम भारतीय चीफ इंजिनीयर हैं, साधारण आर्य सदस्यों तक, सभीको हवालातकी हवा खानी पड़ी! पटियालाकी पुलिसने उन दिनों ऐसे-ऐसे कारनामे किये, जो भारतीय पुलिसकी अन्धेर-पन्थीके इतिहासमें सदैव महत्त्व प्राप्त किये रहेंगे। एक आर्य-सदस्यके अभियोगमें बड़े ज़ोरोंसे यह दलील पेश की गई कि उसके घरसे दो 'सत्यार्थप्रकाश' बरामद हुए हैं, अतः वह येरमामूली राजद्रोही है! एक और सज्जनका भतीजा पटियाला-कालेजमें बी० ए० में पढ़ता था। उसके पाससे एक 'पोलिटिकल इकोनोमी' की किताबपर 'पोलिटिकल' शब्द देखकर पुलिस उसे सन्देहकी गवाहीके तौरसे बरामद कर ले गई।

इस अवसरपर पटियालेके आर्य पुरुषोंने बड़ी वीरताका परिचय दिया। आर्य-जगत्में इस घटनासे बड़ी सनसनी फैल गई। महात्मा मुन्शीरामजी बहुत दिनोंसे वकालत छोड़ चुके थे, इस अभियोगके लिए उन्होंने अपने वकालत-नामेको पुनः स्वीकार करवाया। वह और मैं गुरुकुल कांगड़ीसे पटियाला पहुँचे। हम दोनोंने इस केसका चार्ज सम्हाल दिया। मैंने इस अवसरपर भारी आन्दोलन-युद्ध शुरू किया। उन दिनों भारतवर्षका शायद ही कोई ऐसा प्रमुख अखबार बचा होगा, जिसमें मेरे लेख प्रकाशित न हुए हों। लाहौरसे उस समय 'पंजाबी' नामका एक अंग्रेज़ीका पत्र

छपता था, उसने इस कार्यमें हमें बहुत सहायता पहुँचाई। भारतवर्षके सभी नेताओंने इस अभियोगमें आर्यसमाजका साथ दिया। उस वर्ष कांग्रेसके सभापति बंगालके उन दिनोंके नेताओंके बादशाह श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे। उन्होंने लाहौरमें घोषणा की कि इस अभियोगमें सारा देश आर्यसमाजके साथ है।

महाशय कृष्णने अपने पत्र-द्वारा इस मामलेमें आर्य-समाजकी बहुत बड़ी सेवा की। इस सम्मिलित आन्दोलनसे रियासतके अधिकारियोंको आर्यसमाजकी महान शक्तिका परिचय मिला। इस घटनासे 'प्रकाश' केवल महात्मा मुन्शीरामपर किये जानेवाले आक्षेपोंका उत्तर देनेवाला पत्र ही न रहा, बल्कि आर्यसमाजका एक महारथी समझा जाने लगा। क्रमश: 'प्रकाश' की स्थिति उन्नत होती गई और साथ ही महाशय कृष्णकी महत्ता भी बढ़ती गई।

केवल क़लमके ज़ोरसे, वह भी एक साप्ताहिक पत्रका सम्पादक रहकर, बहुत कम लोगोंने यह स्थिति प्राप्त की होगी, जो महाशय कृष्णने 'प्रकाश' द्वारा पंजाबमें प्राप्त की है। 'प्रकाश' द्वारा पर्याप्त ख्याति प्राप्त करके महाशय कृष्णने व्याख्यान देने भी शुरू किये, यद्यपि उन दिनों महाशयजी आजकी तरह एक सफल व्याख्यानदाता न बने थे।

(५)

मैं कह चुका हूँ कि महाशय कृष्ण एक आदर्श मित्र हैं। उर्दूमें 'कबीला-पर्वर' एक शब्द है, जिसका अर्थ है--- परिवारको पालनेवाला। यदि मेरे कथनको ठीक अर्थमें लिया जाय, तो मैं कहूँगा कि महाशय कृष्ण 'मित्र-पर्वर' हैं। वास्तवमें महाशय कृष्णमें किसीको बिदका देने या आकर्षित कर लेनेकी दोनों प्रतिकूल शक्तियाँ बहुत अधिक मात्रामें हैं। जो उनसे कम परिचित होते हैं, वे उनसे भड़क उठते हैं; परन्तु जिनका सम्बन्ध कुछ घनिष्ठ हो जाता है, वे सदाके लिए महाशय कृष्णसे बँध-से जाते हैं। अपनी इसी शक्तिके कारण महाशय कृष्ण बहुत शीघ्र एक भारी और प्रभावशाली मित्र-मंडलीके केन्द्र बन गये, और इस सौरमंडलके चारों ओर ग्रह-उपग्रहोंकी सृष्टि होने लगी। यह मित्र मंडली आज पंजाबके आर्यसमाजके जीवनमें बहुत अधिक महत्त्व धारण किये हुए है। इस मंडलीके कुछ महानुभाव निम्न-लिखित हैं---प० विश्वम्भरनाथजी, जो उन दिनों गुरुदासपुरमें वकील थे और फिर पाँच वर्ष तक गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांगड़ीके गवर्नर रहे और आजकल आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाबके उपप्रधान हैं; मैं, डा० सत्यपाल, जो आजकल पंजाबके प्रमुख राजनीतिक नेता हैं; डा० कुलभूषण, जो आजकल श्रीनगर (काश्मीर) के हेल्थ-आफिसर हैं; बाबू पिण्डीराम, जो आजकल गुरुदासपुर आर्यसमाजके प्रधान हैं; लाला अनन्तराम, जो जम्मूके प्रमुख कार्यकर्ता हैं और सेठ चिरंजीवलाल, जो पसरूर (स्यालकोट) में वकील हैं। ये सब महानुभाव जब कभी लाहौर आते, तो महाशय कृष्णजीके मकानपर ही ठहरते थे। भोजन भी वहीं होता था। अनेक बार परिवार-सहित यह मित्र-मंडली लाहौरमें महाशय कृष्णके मकानपर जमा होती थी। महाशयजीकी रसोईके चूल्हे सदा गरम रहते थे। यही कारण था कि एक समय किसी मनचलेने महाशयजीका नाम 'लंगरी लीडर' रख छोड़ा था।

गुरुकुल कांगड़ीके वार्षिकोत्सवपर यह मित्र-मंडल एक ही तम्बूमें ठहरा करता था। उस तम्बूपर एक साइन बोर्ड लगा दिया जाता था, जिसपर बड़े-बड़े स्पष्ट अक्षरोंमें लिखा होता था---'प्रकाश-सृष्टि'। कुछ बरसोंके बाद यह प्रकाश सृष्टि गुरुकुलमें मेरे घरपर रहने लगी। इस प्रकाश सृष्टिका नाम जनतामें 'प्रकाश-पार्टी' प्रसिद्ध हो गया।

पंजाबके आर्यसामाजिक जगत्में प्रकाश पार्टीका नाम सर्वविदित है। एक समय ऐसा आया, जब पंडित विश्वम्भरनाथजी आर्य-प्रतिनिधि सभाके प्रधान निर्वाचित हुए, और महाशय कृष्ण मंत्री और मैं गुरुकुल कांगड़ीका आचार्य। तब लोगोंमें कहा जाने लगा कि आर्यसमाजकी बागडोर अब पूरी तरह प्रकाश-पार्टीके हाथोंमें आ गई है।

अर्ध नारीश्वर

[शिल्पी श्री चैतन्यदेव चट्टोपाध्याय

है। डा० चिरंजीव भारद्वाज मेरे घनिष्ट मित्र थे, वे भी प्रकाश-पार्टीके सदस्य समझे जाने लगे। लाहोरके पुराने कार्यकर्ता श्रीयुत रोशनलाल बार-ऐट-ला को हम लोगोंके साथ देखकर कभी किसी महाशयने ताना दिया कि अब तो आप भी प्रकाश पार्टीमें शामिल हो गये हैं। रोशनलालजीने जवाब दिया,—"प्रकाश-पार्टीमें न जाऊँ तो क्या अन्धकार-पार्टीमें जाकर मिलूं ?"

कुछ समय बाद राय ठाकुरदत्त और लाला रलाराम सम्पूर्ण आर्यसमाजको ही प्रकाश-पार्टी कहने लगे। प्रकाश-पार्टीमें इन महानुभावोंका सदैव मतभेद बना रहा।

इस प्रकरणमें मुझे प्रकाश-पार्टीके सम्बन्धका एक रहस्य अवश्य खोलना चाहिए। साधारणतया किसी सिद्धान्तके आधारपर ही किसी दलकी रचना की जाती है, और सिद्धान्तोंमें भेद होनेके कारण ही विभिन्न विरोधी-दलोंकी उत्पत्ति होती है, मगर प्रकाश-पार्टीका एक सबसे बड़ा विचित्रता-पूर्ण रहस्य यह है कि उस दलका निर्माण सिद्धान्तों या प्रोग्रामोंकी एकताके आधारपर नहीं हुआ। यह तय है कि प्रकाश-पार्टीके सभी सदस्य गुरुकुल-दलके हैं, परन्तु उनमें सर्वप्रथम केवल इतनी ही बात थी कि वे महात्मा मुन्शीरामके भक्त थे, यद्यपि इस बातका सम्बन्ध किसी सिद्धान्तसे नहीं है, और पीछे जाकर तो यह बात भी नहीं रही। प्रकाश-पार्टीमें महात्मा मुन्शीरामके प्रति जो भक्ति थी, उसमें दर्जे बन गये।

आर्यसमाजके कार्यक्रमके सम्बन्धमें तो प्रकाश-पार्टीमें सदैव ही मतभेद बना रहता है। वर्तमान समयमें इस पार्टीके तीन मुख्य कार्यकर्ता माने जाते हैं पं० विश्वम्भरनाथजी, महाशय कृष्ण और मैं। हम तीनोंमें ही कार्यक्रमके सम्बन्धमें सदैव मतभेद बना रहा है, और आज भी मतभेद बना हुआ है। यह मतभेद निजी बातचीतमें ही समाप्त नहीं होता। निजी बातचीतकी सीमाको अतिक्रम करके यह मतभेद प्रतिनिधि-सभाकी अन्तरंग-सभा और साधारण सभामें भी पहुँचता है, और कभी-कभी तो समाचार-पत्रोंके स्तम्भों और व्याख्यान-वेदियोंपर भी इसकी गूँज सुनाई देने लगती है। प्रतिनिधि-सभामें यदि दस विषय विचारार्थ उपस्थित होंगे, तो उनमेंसे सात विषयोंके सम्बन्धमें हम तीनोंमें अवश्य ही मतभेद होगा।

यही कारण है कि प्रकाश-पार्टी, लोगोंकी रायमें, एक समझमें न आनेवाली पहेली है। कोई-कोई समालोचक इसे 'मिलवाँ कुश्ती' भी कहते हैं, इसी ढंगके दूसरे लोगोंने इसका नाम 'सुनारोंकी लड़ाई' रख छोड़ा है। परन्तु जो लोग इतने अनुदार नहीं, वे भी इस तथ्यपर बहुत अधिक आश्चर्य-चकित हैं कि सामाजिक मामलोंमें इतना मतभेद रहनेपर भी प्रकाश-पार्टीके सदस्योंकी मैत्रीमें अन्तर क्यों नहीं आता। इस मनोवैज्ञानिक पहेलीका एकमात्र उत्तर यही है कि प्रकाश-पार्टीके लोग परस्पर मित्र होनेसे एक दूसरेके हार्दिक भावोंको भली प्रकार जानते हैं, और विचारोंमें भेद होनेपर भी वे एक दूसरेके सम्बन्धमें ग़लतफ़हमीमें नहीं पड़ते।

प्रकाश-पार्टीकी इस विचित्र आश्चर्यजनक मिताईमें भी एक अपवाद आ उपस्थित हुआ था। प्रकाश-पार्टीके प्रमुख व्यक्ति भी अपने निजी और सामाजिक जीवनको जुदा-जुदा नहीं रख सके। किसी सार्वजनिक बातके सम्बन्धमें प्रकाश-पार्टीके दो नेताओंमें एक समय भारी मतभेद उठ खड़ा हुआ, और उसका प्रभाव उनके व्यक्तिगत सम्बन्धों तक भी पहुँच गया। वे दोनों महाशय कृष्णके अभिन्नहृदय मित्र थे। महाशय कृष्णको इस घटनासे एक बड़ी समस्याका सामना करना पड़ा। अन्तमें उन्होंने बड़ी उत्तमतासे अपने दोनों मित्रोंमें सुलह करा दी, और इस तरह प्रकाश-पार्टीको बिखर जानेसे बचा लिया।

(६)

सन् १६१६ में महात्मा गांधीने पहली बार सत्याग्रह-संग्रामका प्रारम्भ किया। उससे पूर्व महाशय कृष्ण कभी राजनीतिक क्षेत्रमें नहीं गये थे। महाशय कृष्ण तो क्या, गुरुकुल-दलकी ही, उससे पूर्व, कभी कांग्रेससे सहानुभूति न हुई।

गुरुकुल-दलके सर्वश्रेष्ठ नेता स्वामी श्रद्धानन्द, जो पीछे जाकर कांग्रेसके भी सर्वश्रेष्ठ नेताओंमें गिने जाने लगे, सन् १९१९ के पूर्व अनेक बार कांग्रेसका विरोध तक करते रहे थे। उन दिनों आर्यसमाजका कालेज-दल अवश्य ही कांग्रेसका हामी होनेका दम भरता था। वास्तवमें बात यह थी कि उन दिनों तक कांग्रेसने व्यक्तिगत चरित्र तथा सामाजिक सुधारकी ओर ज़रा भी ध्यान न दिया था। अपने देशवासियोंको अछूत समझकर उनकी छायासे भी दूर भागनेवाले महानुभाव कांग्रेसके मंचपरसे अंग्रेज़ोंको समझाते थे कि वे उन्हें अछूत न समझें। कांग्रेसके अनेक मुख्य नेता भी पूरी तरह यूरोपियन ढंगसे रहनेमें ही अपनी शान समझते थे। उस समय तक कांग्रेसमें भारतीयता नहीं थी, और न तब तक सामाजिक सुधारकी आवश्यकता ही कांग्रेसने अनुभव की थी। ऐसे महानुभाव भी कांग्रेसके नेताओंमें सम्मिलित थे, जिन्होंने व्यवस्थापिका-सभामें 'सहवास-वय-क़ानून' का विरोध किया था और अपनी कन्याओंका विवाह दस-दस वर्षकी उम्रमें कर दिया था।

दूसरी ओर गुरुकुल-दलका अपने आचार्य स्वामी दयानन्दके अनुसार ही यह दृढ़ मत था कि सामाजिक सुधार हुए बिना तथा स्त्रियों और अछूतोंको समानाधिकार दिये बिना भारतवर्षमें एक राष्ट्रीयताकी भावनाका विकास ही असम्भव है। राष्ट्रीय स्वाधीनता राष्ट्रीय चरित्रको उन्नत किये बिना नहीं प्राप्त हो सकती। पूना-कांग्रेसके अवसरपर कांग्रेसने अपना पंडाल सोशल कानफरेन्सको देनेके इन्कार कर दिया था। आर्यसमाजके गुरुकुल-दलने कांग्रेसके इस कार्यका भारी प्रतिवाद किया था।

परन्तु महात्मा गांधीने जिस दिनसे कांग्रेसकी बागडोर अपने हाथमें ली, उस दिनसे कांग्रेसका जीवन ही बदल गया। सामाजिक सुधारोंके कार्यको कांग्रेसने अपने कार्यक्रमका मुख्य अंग बना लिया। अछूतोद्धार और मद्य-निषेध आदि कार्य कांग्रेसके कार्यक्रममें सम्मिलित कर लिए गये। अंग्रेज़ीका स्थान राष्ट्र-भाषा हिन्दीको मिल गया। महात्मा गांधीका गुरुकुलसे पुराना और घनिष्ठ सम्बन्ध था। जब वे दक्षिण-अफ्रिकामें थे, तब गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंने कठोर शारीरिक श्रम करके उसकी मज़दूरीका धन उनके पास भेजा था। महात्माजी दक्षिण-अफ्रिकासे वापस आकर गुरुकुल भी आये थे, और उनके फीनिक्स-आश्रमके विद्यार्थी तो बहुत दिनों तक गुरुकुलमें ही रहे थे। महात्मा गांधीका स्वामी श्रद्धानन्द और मेरे साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध भी था। इन्हीं कारणोंसे जब कांग्रेसकी बागडोर महात्मा गांधीने अपने हाथमें ली, तब गुरुकुल-दलने भी कांग्रेसके प्रति अपनी नीतिमें परिवर्तन कर लिया।

परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल-दलके सर्वश्रेष्ठ नेता स्वामी श्रद्धानन्द कांग्रेसके प्रमुख नेताओंमें गिने जाने लगे। सन १९१९ की अमृतसर कांग्रेसके स्वागताध्यक्ष भी वे ही निर्वाचित हुए। दूसरी ओर महाशय कृष्णने राष्ट्रकी सेवा करनेके लिए लाहौर ही से 'प्रताप' नामक एक उर्दू दैनिक निकालना शुरू किया।

महाशय कृष्णकी क़लममें ऐसा जादू है, जिसका प्रभाव यह हुआ कि शीघ्र ही 'प्रताप'की उर्दू-पत्रोंमें वह स्थिति हो गई जो वर्षोंसे चले आ रहे पत्रोंकी नहीं थी।

उन्हीं दिनों घटना-चक्रसे पंजाबके अनेक नगरोंपर मार्शल-ला लगा दिया गया, और इसी लामें महाशय कृष्ण गिरफ्तार कर लिए गये। महाशयजीको मार्शल-कोर्टने डेढ़ वर्षकी सज़ा सुनाई। 'प्रताप'को बन्द कर देना पड़ा; मगर दो मास बाद ही महाशयजी छोड़ दिये गये, और उसके कई महीनोंके बाद दैनिक 'प्रताप' पुन: जारी कर दिया गया।

आज सचमुच महाशय कृष्ण इस बातका दावा कर सकते हैं कि पंजाबके सार्वजनिक जीवनके निर्माणमें उनका बहुत बड़ा भाग है। 'प्रताप' आज पंजाबके सर्वश्रेष्ठ दैनिकोंमें है। इस पत्रके सम्पादनपर भी महाशयजीकी मनोवृत्तिका पूरा प्रभाव पड़ा है। यह पत्र कांग्रेसका नहीं है, और अकसर कांग्रेसके नेताओंकी कड़ी आलोचना भी करता है। इसपर

भी महाशय कृष्ण जब क़लम उठाकर प्रतापके लिए कुछ लिखने बैठते हैं, तो उनका हृदय चुपचाप पूरी तरहसे कांग्रेस-वादी बन जाता है।

महाशय कृष्ण भारतीय सभ्यताके कट्टर भक्त हैं, और उनका विश्वास है कि हजारों दुर्बलताओंके रहते भी भारतीय सभ्यताकी थाती हिन्दू-जाति ही सम्हाले हुए है। इस कारण वह वास्तविक हिन्दू-हितोंकी रक्षाके लिए सर्वथा उद्यत रहते हैं। इसपर भी वे विदेशी राज्यको मुसलिम समस्यासे अधिक हानिकर समझनेके कारण कट्टर राष्ट्रवादी भी हैं।

महाशय कृष्ण ऐसे व्यक्ति हैं, जो अन्य राष्ट्रीय नेताओंसे सर्वथा पृथक् रहते हुए भी उनके अभिन्न-हृदय मित्र और सहायककी तरह सिद्ध होते हैं। समय आनेपर वे किसी कार्यकर्ताकी, चाहे वह उनका कितना ही विरोधी क्यों न रहा हो, सहायता करनेसे नहीं कतराते। इसपर भी मज़ा यह है कि उन्हें सभी लोगोंसे सदैव शिकायत बनी रहती है, यद्यपि उनकी यह तीखी शिक़ायत न किसीके प्रति उनके सहयोगको कम करती है, न उन्हें अनुत्साहित करती है और न जनताको ही निराश करती है।

'हिन्दू'

श्री विष्णुदत्त शुक्ल

वारेन हेस्टिंग्सके ज़मानेमें पहले-पहल भारतवर्षमें समाचारपत्रोंके प्रकाशनकी चर्चा चली थी। तबसे लेकर आज तक इस विषयकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। वारेन हेस्टिंग्सका ज़माना अठारहवीं शताब्दीका अन्तिम भाग था। उस अवसरपर सबसे पहले बंगालसे हिकी महाशयका 'बंगाल-गज़ट' नामक पत्र प्रकाशित हुआ था। हिकी महाशयका पत्र यद्यपि वारेन हेस्टिंग्सके प्रतिद्वन्द्वी मि० फ्रांसिसका पक्ष लेनेके कारण सरकारकी आलोचनाका करता था, तथापि भारतीय विचारोंका सर्वथा प्रवर्तक न था। मद्रासके कुछ देशभक्त महानुभाव इस अभावका अनुभव कर रहे थे, अतः उन लोगोंने माननीय श्री लक्ष्मीनारासू चेटियरकी अध्यक्षतामें एक संघ स्थापित किया, जिसका नाम 'नेटिव ऐसोसियेशन' पड़ा। नेटिव एसोसियेशनने भारतीय विचार-धाराका स्पष्ट प्रदर्शन करनेके अभिप्रायसे 'क्रिसेन्ट' नामक एक पत्र प्रकाशित किया, परन्तु जनताकी आवश्यक सहायताके अभावमें वह पत्र अधिक दिन न चल सका और अकालमें ही काल-कवलित हो गया। 'क्रिसेन्ट' भारतीयों द्वारा संचालित और सम्पादित पहला ही पत्र था। उसके बन्द होनेसे स्वदेशाभिमानी अन्यान्य महानुभावोंको कुछ खेद हुआ। राजा सर टी० माधवरावने अपने कुछ साथियोंकी सहायतासे 'नेटिव पब्लिक ओपिनियन' नामक पत्र निकला, परन्तु यह पत्र भी अधिक दिनों तक स्वतंत्र रूपसे न चल सका। जब श्री ए० रामचन्द्र ऐय्यर महाशयने 'मद्रासी' नामक अपना पत्र निकाला, तब उपरोक्त पत्र भी उसीके साथ सम्मिलित कर दिया गया। आगे चलकर कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं कि 'मद्रासी' भी बन्द हो गया।

अब लार्ड लिटनका शासन-काल आ गया था। लार्ड लिटन अपनी करतूतोंके कारण सारे देशमें बदनाम हो रहे थे। प्रत्येक संस्था और समितिमें उनके नये-नये क़ानूनोंकी आलोचना-प्रत्यालोचना होती थी, परन्तु ऐसा कोई साधन न था, जिसके द्वारा सर्वसाधारण तक आलोचनाका यह विषय पहुँचाया जा सकता। मद्रासमें उस समय एक संस्था ऐसी

थी, जिसमें कालेजसे निकले हुए कुछ उत्साही युवक काम करते थे। इस संस्थाका नाम 'ट्रिप्लीकेन लिटरेरी सोसाइटी' था, और उसमें कार्य करनेवाले प्रधान छै व्यक्ति थे— श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐय्यर, श्री० एम० वीर राघवा चेटियर, श्री टी० टी० रंगाचारियर, श्री पी० वी० रंगाचारियर, श्री केशवराव पन्त और श्री एन० सुब्बाराव। इन लोगोंने एक समाचारपत्र निकालनेका संकल्प किया, किन्तु 'ट्रिप्लीकेन लिटरेरी सोसाइटी' धनवान संस्था न थी। उसके प्रधान कार्यकर्ता उक्त छै सज्जन कालेजसे नये-नये निकले थे, इसलिए उनके पास भी धनके नाते कुछ न था। उन सज्जनोंमें से प्रथम दो तो शिक्षक हो गये, तीन लोगोंने वकालत पढ़नी शुरू की। मतलब यह कि कोई ऐसी अवस्थामें न था, जो धनका भार उठा सकता। ऐसी अवस्थामें साप्ताहिक पत्रसे अधिक कोई पत्र निकालनेका साहस ही कैसे हो सकता था? उन लोगोंने साप्ताहिक पत्रके रूपमें २० सितम्बर सन् १८७८ को 'हिन्दू' का प्रथम अंक जनताके सामने उपस्थित किया। श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐयर उसके सम्पादक और श्री एम० वीर राघवा चाटियर उसके प्रबन्धक हुए। अन्य सहयोगी दूसरी प्रकारकी सहायताएँ दिया करते थे। इसके अतिरिक्त सलाह-परामर्श और लेख आदिकी मूल्यवान सहायताएँ 'हिन्दू' के संचालकोंको सर्जन मेजर निकलसन और श्री ए० रामचन्द्र ऐय्यर द्वारा प्रारम्भिक अवस्थामें बराबर मिलती रहीं।

धीरे-धीरे परिस्थितियोंमें परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। जिन छै उत्साही नवयुवकोंने पत्रकी नींव डाली थी, उनमें से उपरोक्त सम्पादक और प्रबन्धकको छोड़कर प्राय: सब किसी न किसी कारणसे अलग हो गये; परन्तु जो महानुभाव रहे, वे पूर्ण उत्साहके साथ कार्यमें संलग्न रहे। जनताके हितकी बातोंमें बराबर उसका साथ देते रहना 'हिन्दू'-संचालकोंका सबसे प्रधान कर्तव्य था। इस बीचमें कुछ राजनैतिक परिवर्तन भी हुए। लार्ड लिटनके बाद शासनकी बागडोर लार्ड रिपनके हाथ आई, जिन्होंने बड़ी उदारता-पूर्वक कई अहितकर क़ानूनोंको रद्द कर दिया। इसके बाद ग्रांड डफके शासन-कालमें फिर स्वेच्छाचार प्रारम्भ हुआ। लार्ड लिटनके स्वेच्छाचारने जनतामें जाग्रतिका बीज बो दिया था। रिपन महोदयकी उदार नीतिके कारण राजनीतिक शिक्षाका अवसर प्राप्त हो चुका था। इसके बाद ग्रांड डफकी स्वेच्छाचारिता असह्य थी। फलत: जनतामें असन्तोष फैला और कुछ क़ानूनोंके विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। 'हिन्दू' के कुशाग्र-बुद्धि संचालकोंने इस अवसरका उपयोग किया। सम्पादक श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐय्यरने प्रान्त-भरका भ्रमण कर लोगोंको आन्दोलनका महत्त्व समझाया, और उनके पत्रने जनताकी प्रत्येक माँगको आवश्यक प्रदर्शन और प्रभावके साथ पेश करनेका काम किया। इन कामोंसे 'हिन्दू' और भी लोकप्रिय हो गया। आन्दोलन बढ़ता रहा, और उसके साथ-साथ 'हिन्दू' की लोकप्रियता भी बढ़ती गई। लोग रोज़ 'हिन्दू' देखना चाहते थे। पत्रकी ऐसी माँग देखकर संचालकोंने पत्रको हफ्तेमें तीन बार निकालना प्रारम्भ किया। यह बात अक्टूबर सन् १८८३ की है।

अभी तक 'हिन्दू' का अपना प्रेस न था। वह दूसरे-दूसरे प्रेसोंमें छपता था। हफ्तामें तीन बार प्रकाशित होनेके कारण अब दूसरे प्रेसोंमें छपनेमें असुविधा होने लगी, अत: उसके संचालकोंने अपने अनुग्राहकोंकी सहायतासे अपना निजी प्रेस कर लिया। इस प्रेसका नाम नेशनल प्रेस रखा गया। ३ दिसम्बर १८८३ को 'हिन्दू'का पहला अंक अपने प्रेससे प्रकाशित हुआ। प्रेसकी सुविधा हो जानेसे और कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जानेके कारण, जिसमें वर्तमान राजनीतिक समस्याओंपर अधिक गम्भीरता-पूर्वक तथा अधिक विस्तारके साथ विचार करनेकी आवश्यकता थी, नेशनल प्रेससे एक मासिक पत्र 'दि पीपुल्स मैगेज़िन' भी निकलने लगा।

इस प्रकार दिन-प्रतिदिन 'हिन्दू'की उन्नति ही होती गई। इसी बीचमें कांग्रेसका जन्म हुआ। 'हिन्दू'-कार्यालय कांग्रेसके कार्यकर्ताओंकी सभाएँ करनेके लिए सदैव खुला रहता था। मदरासके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कार्यकर्ता प्राय: 'हिन्दू'-कार्यालयमें ही अपनी सभाएँ किया करते थे। इससे 'हिन्दू'की

ख्याति इतनी बढ़ी कि बड़े-बड़े विदेशी यात्री भी, जो संयोगवश मदरास आते, 'हिन्दू'-कार्यालयका निरीक्षण अवश्य करते। उन दिनों मदरासकी राजनीतिके नेता सर सुब्रह्मण्य ऐय्यर थे, और उनका 'हिन्दू' के प्रति बड़ा अनुराग था। 'हिन्दू' के लिए अपना नेशनल प्रेस स्थापित करवा देनेमें सर सुब्रह्मण्यका बड़ा ज़बरदस्त हाथ था। आपके ऐसे ही सहायकोंके कारण नेशनल प्रेस और 'हिन्दू'-कार्यालय इतना अधिक लोकप्रिय हो रहा था।

'हिन्दू' की लोकप्रियताको आगे बढ़नेका एक और अवसर उस समय मिला, जब सन् १८८७ में मदरासमें पहले-पहल कांग्रेसका आयोजन किया गया। 'हिन्दू'-कार्यालय द्वारा सैकड़ों पर्चे और पत्र प्रकाशित होते, जिनमें कांग्रेस-सम्बन्धी अनेकों प्रकारकी सूचनाएँ और विज्ञप्तियाँ छपतीं। कांग्रेसके साथ-साथ जनताके राजनीतिक विचारोंमें काफी उन्नति हुई। राजनीतिक समस्याओंपर विभिन्न नेताओंके विचार जानने तथा अनेक प्रकारके समाचार जाननेके लिए लोगोंमें बड़ी उत्सुकता उत्पन्न हो गई। 'हिन्दू' हफ्तेमें केवल तीन बार निकलता था। इससे जनताकी उत्सुकता तृप्त न होती थी, अत: यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि पत्र दैनिक कर दिया जाय। बस, वैसा ही किया गया। १ अप्रैल सन् १८८९ से 'हिन्दू' दैनिक कर दिया गया। दैनिक होनेसे उसे जनताकी सेवाका अवसर तो अधिक मिला, परन्तु आर्थिक संकट बहुत बढ़ गया। बीच-बीचमें कई बार कर्ज़ ले-लेकर तथा अपने ग्राहकों और अनुग्राहकोंको सताकर खर्चका भार सँभाला गया। फिर भी संकटसे कभी छुटकारा न मिला। 'हिन्दू'के सफल सम्पादक श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐय्यर यह अवस्था अधिक दिन तक न सम्हाल सके। उन्होंने श्री वीर राघवाचारियरसे अपना साझा अलग कर देनेका प्रस्ताव किया। वीर राघवाचारियर और श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐय्यर विद्यार्थी-जीवनसे साथी थे। लगभग चौथाई सदी तक दोनों सज्जनोंने एक साथ रहकर काम किया था। दैवयोगसे इन्हीं घनिष्ठ मित्रोंका सम्बन्ध-विच्छेद हुआ। २८ सितम्बर १८९८को श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐय्यर 'हिन्दू'से अलग हो गई। उनके स्थानपर उस तत्कालीन सहायक सम्पादकने सम्पादनका भार लिया और योग्यता-पूर्वक उसे वहन किया। इस प्रकार सम्पादनका काम तो चलता रहा, पर आर्थिक स्थितिके सुधारका कोई ढंग न दिखाई दिया। अन्तमें श्री वीर राघवाचारियर महाशयने 'हिन्दू'को लिमिटेड कम्पनी बनाना निश्चित किया। शेयर बिकने लगे, आधेके क़रीब बिक भी गये, परन्तु सरकारकी इस नीतिके कारण कि सरकारी कर्मचारी शेयर न खरीद सकेंगे, बाक़ीके शेयर न बिक सके। परिणाम यह हुआ कि 'हिन्दू' ज्यों-का त्यों बना रहा।

सन् १९०३ में 'हिन्दू'ने अपनी सिलवर ज्युबिली मनाई। सिलवर ज्युबिलीका मनाया जाना—इस बातका स्पष्ट प्रमाण था कि 'हिन्दू' लोकप्रिय है, परन्तु उसकी आर्थिक अवस्था ज्योंकी त्यों बनी रही। श्री वीर राघवाचारियरने 'हिन्दू'को लिमिटेड कम्पनी बनानेका जो प्रयास किया था वह विफल हो चुका था। उसके बाद उन्होंने कुछ लोगोंसे अलग-अलग मिलकर धन-संग्रह करनेकी चेष्टा की, परन्तु उसमें भी उन्हें सफलता न मिली। अन्तमें उन्होंने श्री कस्तूरी रंगा ऐय्यरसे बातचीत की। श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यर मदरासके प्रसिद्ध वकील थे। उन्होंने अपने कुछ अन्य मित्रोंके साथ मिलकर 'हिन्दू' को खरीद लेना निश्चित किया। ३१ मार्च १९०५ को यह सौदा हो गया। दूसरे दिनसे ही ऐय्यर महाशयने पत्रका अधिकार अपने हाथमें लिया। श्री वीर राघवाचारियर अब भी प्रबन्धकका काम करते रहे, परन्तु यह साथ तीन महीनेसे अधिक नहीं चल सका। इसी बीचमें श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यरके उन मित्रोंने भी सम्बन्ध विच्छेद कर लिया, जिनके साथ मिलकर उन्होंने 'हिन्दू'का सौदा किया था। श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यर थोड़ी देर तो चिंतितसे हुए, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने दृढ़ता-पूर्वक अकेले ही काम चलाना निश्चित किया। इसी अवसरपर श्री ए० रंगा स्वामी ऐय्ंगरने वकालत छोड़कर 'हिन्दू' में सहायक सम्पादकी कर ली। दोनों सज्जनोंने बड़े उत्साहके साथ मिलकर कार्य चलाया। सौदेके प्रथम वर्षमें हिसाब

लगानेपर श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यरको 'हिन्दू'से १५०) का लाभ हुआ। श्री ऐय्यरको प्रोत्साहित करनेके लिए इतना काफ़ी था।

सन् १६०५ में बंग-भंगका आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलनके साथ स्वदेशी-प्रचार, विदेशी-बहिष्कार आदिका अन्दोलन भी चला और राजनीतिक क्षेत्रमें एक नवीन जाग्रतिकी लहर आई। उधर सरकारने भी दमन प्रारम्भ किया। बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब आदिमें बड़े बड़े नेताओंपर वार हुए। लाला लाजपतराय जैसे नेताको देश-निकालेकी सजा मिली। देशके राजनीतिक क्षेत्रमें इस दमनकी घोर निन्दा हुई। 'हिन्दू'ने भी इस अवसरपर जनताके स्वरसे स्वर मिलाकर सरकारकी इस उग्र नीतिकी खूब निन्दा की। आन्दोलन और दमन सुरसा हनुमानकी भाँति बढ़ता ही गया। अन्तमें नौबत यहाँ तक आई कि तिनेवली और तूतीकोरिनमें सरकारने गोली चलाई। 'हिन्दू'ने इसके लिए सरकारी अधिकारियोंकी तीव्र निन्दा की। सरकारको यह सह्य न हुआ। 'हिन्दू' पर मामला चलानेकी चर्चा हुई, पर न जाने क्यों वह चलाया नहीं गया।

इसके बाद 'मिन्टो-मारले-रिफार्म' का समय आया। 'हिन्दू' ने दमनकी निन्दा करते हुए भी इस रिफार्मका स्वागत किया। 'हिन्दू' ने आँखें बंद करके कभी किसी दल-विशेषकी नीतिका समर्थन नहीं किया। उसकी इस नीतिके कारण भारतीय और यूरोपियन—दोनों जातियोंकी सहानुभूति उसे प्राप्त रही। इससे उसे विज्ञापन आदि प्राप्त होनेमें भी सुविधा रही।

थोड़े दिन बाद यूरोपियन महासमरका समय आया। उस समय देशमें अनेक प्रकारकी अफवाहें फैल रही थीं। जनताको कोई बात ठीक-ठीक मालूम ही नहीं होती थी। 'हिन्दू'ने इस अवसरपर बड़े उत्तरदायित्वका काम किया। युद्धकी यथासम्भव सच्ची खबरें प्रकाशित करना, जनताके कर्तव्याकर्तव्यका उपदेश देना आदि काम उसने ऐसी योग्यतासे किये कि जनता और सरकार दोनोंने उसे पसंद किया। एक ओर तो उसने लड़ाईके सिद्धान्तोंमें मित्र राष्ट्रोंके पक्षका समर्थन किया, दूसरी ओर युद्धकी आवश्यकताका बहाना लेकर भारतमें प्रेस-ऐक्ट और राजद्रोह आदिके क़ानूनों द्वारा जो दमन-चक्र चला, उसकी तीव्र निन्दा की। इसी बीचमें श्रीमती एनी बेसेन्टके नेतृत्वमें होम-रूलका आन्दोलन चला, और 'हिन्दू'ने मुक्तकंठसे इस आन्दोलनका समर्थन किया। सरकारको यह बात नागवार खातिर हुई। उसकी ओरसे श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यर महाशयको कई बार चेतावनी दी गई; मगर ऐय्यर महाशयने उस चेतावनीकी कोई परवाह न कर अपना क्रम जारी रखा।

सन् १६१७ में सरकारकी शासन-सुधार-सम्बन्धी नई घोषणा हुई। इस अवसरपर और इसके बाद भी 'हिन्दू'ने कांग्रेसके विचारोंका प्रचार करनेके लिए अपने लेखों द्वारा खूब उद्योग किया। उसके लेखोंका सरकारपर यह प्रभाव पड़ा कि जिस समय मि० मान्टेगू और लार्ड चेम्सफोर्ड शासन-योजनाकी तैयारी कर रहे थे, उस समय अन्यान्य लोगोंके साथ 'हिन्दू' के सम्पादक श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यरको भी अपने विचार प्रकट करनेके लिए बुलाया था। फिर सन् १६१८ में जब यूरोपियन रण-स्थलके कुछ दृश्य देखनेके लिए सरकारने भारतवर्षके कुछ पत्रकारोंको भेजा, तब उन निमंत्रित सज्जनोंमें 'हिन्दू'के सम्पादक महाशय भी थे और उन्होंने तबीयत खराब रहनेपर भी विदेश-यात्रा स्वीकार की थी। वहाँ जाकर उन्होंने ऐसा कोई अवसर हाथसे नहीं जाने दिया, जिसमें उन्हें सार्वजनिक सभाओं या संस्थाओंमें जाकर भारतवर्षकी परिस्थिति समझानेकी सुविधा मिली हो।

लड़ाईके बाद भारतीय राजनीतिक परिस्थितिमें बड़ा परिवर्तन हुआ। रौलेट-ऐक्ट, सत्याग्रह-संग्राम, पंजाब-हत्याकांड, असहयोग इत्यादि अनेक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। 'हिन्दू' ने इन सब बातोंमें पूरे बलके साथ कांग्रेसका साथ दिया। फिर असहयोगके बाद जब कांग्रेसके अन्दर ही दो दल हो गये—एक कौंसिल जानेका पक्षपाती बना, दूसरा उसका विरोधी—तब 'हिन्दू' ने अपनी पुरानी

नीतिके अनुसार दोनोंके विचारों और समाचारोंको अपने स्तम्भोंमें स्थान दिया। 'हिन्दू'की यह नीति आज तक बराबर चली आ रही है। कांग्रेसका समर्थक तो वह रहता ही है, परन्तु साथ-ही-साथ राष्ट्रहितके अन्यान्य कार्यक्रमोंपर भी वह उदारता-पूर्वक विचार करता है। इन सब बातोंसे उसकी लोकप्रियता बराबर बढ़ती जाती है।

'हिन्दू'का प्रकाशन जिस प्रेसमें और जिस सामानके साथ होता था, वह उसकी ग्राहक-संख्याकी वृद्धिके कारण थोड़े ही दिनोंमें अपर्याप्त मालूम पड़ने लगा, इसलिए नये साजो-सामानकी व्यवस्था हुई। पत्रके व्यवस्थापक श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यरका स्वास्थ्य खराब हो चला था, इसलिए वे इस नयी व्यवस्थाके जुटानेमें कोई विशेष कार्य नहीं कर सके, परन्तु उनके लड़कों—श्री के० श्रीनिवासन और श्री के० गोपालन तथा पत्रके सहकारी श्री एस० रंगास्वामीने 'लिनो-नया प्रबन्ध किया। प्रेसकी इमारत बढ़ाई गई, सब टाइप'का प्रबन्ध किया गया और बहुत शीघ्र छापनेवाली रोटरी मशीन लगाई गई। मशीनरीके इस प्रबन्धके साथ-साथ पाठ्य-विषयमें भी उन्नति की गई। खेल-कूद, व्यापार-वाणिज्य, अर्थ-शास्त्र आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले समाचारों तथा गल्पों और शिक्षा-सम्बन्धी लेखों आदिका विशेष प्रबन्ध किया गया। पत्रकी इस उन्नतिके साथ-साथ उसके चतुर संचालकोंने अपने कर्मचारियोंकी उपेक्षा नहीं की। उन्होंने इसी अवसरपर कर्मचारियोंके वेतन आदिमें भी तरक्की की, और बड़ी उदारताके साथ प्रोविडेन्ट-फण्डका प्रबन्ध किया। ये व्यवस्थाएँ लगभग सन् १९२१ के अन्तमें हुई थीं। उसके बादसे कर्मचारी-मंडल तथा अन्यान्य सहयोगियोंके सहयोगसे पत्र उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। इस समय तो उसके पास बिलकुल नये ढंगकी रोटरी मशीन आ गई है, जो एक घंटेमें तीस हज़ार प्रतियाँ छाप सकती है।

सन् १९२३ के दिसम्बर महीनेमें 'हिन्दू' के सफल संचालक श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यरकी मृत्यु हो गई। उनके बाद पत्रके संचालनका भार श्री एस० रंगास्वामीके हाथमें आया। श्री रंगा स्वामीने 'हिन्दू'की पुरानी नीति क़ायम रखी। स्वराज्य-पार्टी और अपरिवर्तनवादी-पार्टीके ज़मानेमें उन्होंने 'हिन्दू' द्वारा दोनों दलोंको मिलानेके लिए बड़ा प्रयत्न किया। परन्तु उनका स्वास्थ्य अधिक दिन तक उनका साथ न दे सका। अन्तमें सन् १९२६ में उनकी मृत्यु हो गई। इस दुर्घटनाके बाद कुछ दिन तो श्री कस्तूरीरंगा ऐय्यरके सुपुत्र श्री श्रीनिवासन पत्रका सम्पादन करते रहे, परन्तु अन्तमें जब उनका स्वास्थ्य भी खराब हो चला, तब श्री ए० रंगास्वामी ऐयंगर महाशय यह भार लिया और आजकल वे बड़ी योग्यताके साथ पत्रका सम्पादन कर रहे हैं।

भारतवर्षमें भारतीयों द्वारा संचालित और सम्पादित पत्रोंमें हिन्दूका स्थान सबसे ऊँचा है। उसका सम्पादन, उसका प्रबन्ध, उसका व्यवहार—सब अच्छे-से-अच्छा है। अच्छे-अच्छे विद्वानोंसे आवश्यक विषयोंपर लेख लिखाकर, विदेशोंसे आये हुए प्रसिद्ध-प्रसिद्ध यात्रियोंसे मिलकर, उनके अनुभवोंका विवरण प्राप्तकर, विभिन्न स्थानों और अवसरोंपर अपने अलग संवाददाता भेजकर 'हिन्दू' अपने पाठकोंके लिए वह मसाला देता है, जिसकी बराबरी करनेवाला इस समय भारतवर्षमें कोई पत्र नहीं है। 'हिन्दू'को अपने कर्मचारियों, पाठकों, विरोधियों और साथियों—सबकी सहानुभूतिका वह सौभाग्य प्राप्त है, जो बहुत-कम पत्रोंका प्राप्त होता है। ईश्वर करे, वह सदैव इसी प्रकार फलता-फूलता रहे।

पथिक

[गत अक्टूबर १९३० के 'विशाल-भारत' में हमने कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी एक उत्कृष्ट कविता प्रकाशित करके हिन्दी कवियोंसे यह प्रार्थना की थी कि वे उस कविताका हिन्दी कवितामें अनुवाद करें। इस सम्बन्धमें हमारे पास अब तक तीन रचनाएँ आई हैं, जिनमें कुँवर श्री नरेन्द्र सिंहकी रचना हमें सबसे उत्तम जान पड़ी, और वह यहां प्रकाशित की जाती है। श्री नरेन्द्रजी बंगला नहीं जानते, फिर भी उन्होंने जो अनुवाद किया है, उसके लिए वे बधाईके पात्र हैं। —सम्पादक]

बंगला

यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे,
तबे एकला चल रे
एकला चल एकला चल एकला चल रे
यदि केउ कथा न कय—
(ओरे ओरे ओ अभागा !)
यदि सबाई थाके मुख फिराये
सबाई करे भय
तबे परान खुले
ओ तुई मुख फूटे तोर मनेर कथा
एकला बल रे
यदि सबाई फिरे जाय।
(ओरे ओरे ओ अभागा !)
यदि गहन पथे जाबार काले
केउ फिरे ना चाय
(ओरे ओरे ओ अभागा !)
तबे पथेर काँटा
ओ तुई रक्त माखा चरन तले
एकला दल रे
यदि आलो न धरे
(ओरे ओरे ओ अभागा !)
यदि झड़ बादले आँधार राते
दुयार देय घरे
तबे वज्रानले
आपन बुकेर पाँजर ज्वालिये निये
एकला ज्वल रे
यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे
तबे एकला चल रे
एकला चल एकला चल एकला चल रे

—'श्री रवीन्द्र'

हिन्दी

श्रवण कर तेरी (सत्य) पुकार,
[जागरित हों न किसीके प्राण,
उपेक्षा पर कर तू न विचार,]
अकेला ही कर (पथिक) प्रयाण।
करे नहिं कोई यदि दो बात,
सभय रह दे तव ओर न ध्यान
अभागे अरे अरे हा हन्त !
सुना तू निजको उरके गान।
मिलाकर हृत्त्रीणाकी तान।
गहन पथमें एकाकी छोड़,
न देखें मुड़ यदि तेरी ओर,
अभागे अरे अरे हा हन्त।
रक्त-रंजित चरनोंके ज़ोर,
स्वयं पथ-कण्टक कुचल (कठोर)।
अँधेरी निशिमें रखे न दीप,
झड़ीमें खोले कोई न घर,
अभागे अरे अरे हा हन्त !
वज्र ज्वालामें उर-पंजर—
जला, एकाकी ही जल-मर।
श्रवण कर तेरी सत्य पुकार,
जागरित हों न किसीके प्राण,
उपेक्षा पर कर तू न विचार,
अकेला ही कर पथिक प्रयाण।

—श्री नरेन्द्र 'प्राणेश'

सामाजिक पवित्रताके लिए रचनात्मक कार्य

एक अंग्रेज महिलाका प्रशंसनीय उद्योग

बनारसीदास चतुर्वेदी

दो बातोंसे मैं बहुत डरता हूँ; एक तो भोजनके लिए निमन्त्रण और दूसरे सार्वजनिक सभाओंमें उपस्थिति। निमन्त्रणोंमें जो भोजन प्राय: मिलता है, वह मुझे पचता नहीं, और सार्वजनिक सभाओंमें जो मानसिक भोजन मिलता है, वह मुझे रुचता नहीं। इन दोनोंको (निमन्त्रण और मीटिंगको) आकस्मिक वज्रपात मानता हूँ, इसीलिए जब 'बंगाल सोशल सर्विस लीग'के एक कार्यकर्ताने फोनपर कहा, "आज शामको पाँच बजे मिस शेफर्ड नामक एक अंग्रेज़ महिला सामाजिक पवित्रताके कार्यके विषयमें भाषण देंगी, ज़रूर आइये", मैंने यही कह दिया कि प्रयत्न करूँगा, वचन नहीं दे सकता। लीगका आफिस हमारे कार्यालयसे दूर नहीं है, इसलिए ५॥ बजे मैं इस अभिप्रायसे उधरसे निकला कि चलो अनुपस्थितिके लिए क्षमा याचना कर लूँगा और अपना एक निजी काम भी करता आऊँगा। वहाँ जाकर देखा तो सभाका कार्य प्रारम्भ ही नहीं हुआ था! सभापति महोदय थे नदारद! कुल-जमा तीस श्रोता थे, जिनमें एक अंग्रेज़ लड़की भी थी। बिना सभापतिके ही कार्रवाई प्रारम्भ हुई! सभापतिकी यह अनुपस्थिति हम लोगोंके लिए लज्जाजनक थी, पर मिस शेफर्ड निराश नहीं हुईं। वे क़रीब पौन घंटे तक बोलीं। उनकी भाषण शैलीसे प्रकट होता था कि उनके जीवनका एक उद्देश्य है, और वे इस बातकी पर्वाह नहीं करतीं कि श्रोता चार हैं या चार सौ। यदि तीसके बजाय तीन ही श्रोता होते, तब भी वे उसी उत्साहसे बोलतीं। विषय था बड़ा गम्भीर—'सामाजिक दुराचारोंको रोकनेके लिए समाज-सेवकोंको क्या करना चाहिए'।

वक्ताने बड़ी योग्यतापूर्वक अपने विषयका प्रतिपादन किया, और चूँकि ये बातें उनके हृदयसे निकलीं थीं, इसलिए वे श्रोताओंके हृदयमें प्रवेश कर गईं। सभा विसर्जित होनेके पूर्व वक्ताको धन्यवाद देनेकी प्रथाका पालन करना आवश्यक था। यह मुझे करना पड़ा। धन्यवाद देते हुए मैंने यही कहा कि हमारे पत्रमें जो कुछ सेवा इस विषयमें आप ले सकती हैं अवश्य लें।

इस भाषणके बाद कई बार मिस शेफर्डसे मिलनेका अवसर मुझे मिला है, और जितनी बार मैं उनसे मिला हूँ, अपने उद्देश्यके प्रति उनकी लगन और तदर्थ उनके परिश्रमको देखकर आश्चर्य चकित हुए बिना नहीं रहा। सुन लीजिए, मिस शेफर्ड कौन हैं और उनका कार्य क्या है। मिस शेफर्ड एक समाज-सेविका हैं, और उनका कार्य है सामाजिक पवित्रताके सिद्धान्तोंका प्रचार। विलायतमें एक संस्था है, जिसका नाम है 'Association for Moral and Social Hygiene' (नैतिक तथा सामाजिक आरोग्य वर्द्धिनी समिति)। इसकी स्थापना स्वर्गीय जोसेफाइन बटलरने की थी। इस समितिने तीन वर्षके लिए लगभग अठारह हज़ार रुपये अलग रखकर मिस शेफर्डको अपने प्रतिनिधिके रूपमें यहाँ भेजा है। एक विलायती संस्थाकी यह आर्थिक तथा नैतिक सहायता, जो बिना किसी स्वार्थके हमारे देशको दी गई है, वास्तवमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, और उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है मिस शेफर्ड जैसी सुशिक्षित कार्यकर्त्रीका आगमन।

मिस शेफर्डने समाज-सेवाका जो कार्य उठाया है, उसके लिए उन्होंने काफ़ी ट्रेनिंग पाई है। महायुद्धके पूर्व मिस शेफर्ड लन्दनके पश्चिमी भागमें क्षयरोगसे पीड़ितोंकी सेवा किया करती थीं। जब महायुद्ध प्रारम्भ हुआ, तो

परिचारिकाओंकी आवश्यकता हुई। मिस शेफर्डको काम मिला इन परिचारिकाओंके नियन्त्रणका। ग्यारह हज़ार परिचारिकाएँ काम करती थीं। उनके ऊपर एक अफसर थीं, जो मेट्रन-इन-चीफ कहलाती थीं। मिस शेफर्ड इन्हींके अधीन काम करती थीं। सैकड़ों परिचारिकाओंका नियन्त्रण करना कोई आसान काम नहीं था, पर मिस शेफर्डने यह काम बड़ी ख़ूबीके साथ किया। युद्ध समाप्त होनेपर यह प्रश्न उठा कि इन ग्यारह हज़ार परिचारिकाओंको क्या काम दिलाया जाय। फिर मिस शेफर्डकी सेवाओंकी आवश्यकता हुई, और सन १९१८ से १९२० तक आपने 'रचनात्मक विभाग' (Ministry of Reconstruction) के अधीन कार्य किया और उन परिचारिकाओंको काम दिलवाती रहीं। सन् १९२० के बाद उन्होंने एक विशेष प्रकारकी ट्रेनिंग पाई। दुराचारोंकी जाँच कैसे की जाय, पतित स्त्रियोंको कैसे बचाया जाय, घृणित परिस्थितिसे बच्चोंका उद्धार किस प्रकार किया जाय, संरक्षण-गृहोंका संचालन किस तरह किया जाय इत्यादि विषयोंकी व्यावहारिक शिक्षा आपको जोसेफाइन बटलर मेमोरियल हाउसकी अधीनतामें मिली। मैनचेस्टर ज़िलेमें आपने सोलह संस्थाओंके संचालनका अनुभव प्राप्त किया, जिनमें एक बालकोंके लिए थी, तीन माताओं तथा बच्चोंके लिए थीं, बच्चोंके लिए दो विशेष पाठशालाएँ थीं, दो ट्रेनिंग स्कूल थे और आठ संरक्षण-गृह।

मई सन १९२८ में हिन्दू और मुसलिम सामाजिक कार्यकर्ताओंके अनुरोधपर कलकत्तेके लार्ड विशप तथा रेवरेन्ड हर्बर्ट एन्डरसनने विलायतकी सुप्रसिद्ध संस्था 'नैतिक तथा सामाजिक आरोग्य बर्द्धिनी समिति' के संचालकोंको लिखा कि आप किसी महिला कार्यकर्ताको हमारे यहाँ भेजिये। तदनुसार मिस शेफर्ड २३ नवम्बरको भारतमें पधारीं और तबसे अभी तक यहीं काम कर रही हैं। विलायतमें आपकी ७० वर्षकी वृद्धा माता और एक बहन हैं। कलकत्तेमें आनेके बाद जो कार्य आपने किया, उसका भी कुछ वृत्तान्त सुन लीजिये।

कलकत्ते जैसे महानगरमें जहाँ अनेक जातियोंकी कमसे कम चालीस हज़ार वेश्याएँ रहती हैं, जहाँ उनके भिन्न-भिन्न मुहल्ले हैं और जहाँ उनकी भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं, यह कार्य करना कुछ आसान नहीं। इसके लिए उन्हें यूरोपियन, इंडियन, जापानी, एंग्लो-इंडियन और चीनी दुराचार-गृहोंकी जाँच करनी पड़ी।

तदन्तर मिस शेफर्डने सन् १९२१ की मनुष्य-गणनाकी रिपोर्टका अध्ययन प्रारम्भ किया, और जो बातें इस विषयसे सम्बन्ध रखती हैं, उन्हें इकट्ठा किया। भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें जो क़ानून इस विषयमें प्रचलित हैं, उनका उन्होंने तुलनात्मक दृष्टिसे अध्ययन किया है और उसके परिणाम लिख डाले हैं।

दुराचारोंके कारण जो बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, उनका निवारण कैसे किया जाय और बच्चोंको उनके दुष्परिणामोंसे कैसे बचाया जाय, इस विषयमें भी मिस शेफर्डने काफ़ी मनन किया है। इन दुष्परिणामोंकी गम्भीरताकी कल्पना आप इस बातसे कर सकते हैं कि कलकत्ता और उसकी बस्तियोंमें हिन्दू वेश्याएँ ३३६७४, मुसलिम वेश्याएँ ५१३७ और अन्य मतोंकी ३४६ हैं। कलकत्ता-कारपोरेशनके डाक्टरी विभागकी रिपोर्टके अनुसार जितने छोटे-छोटे बच्चोंकी मृत्यु कलकत्तेमें होती है, उनमें ७५ फी-सदीका कारण सिफिलिस (गर्मी) है। भारतके किसी भी नगरमें इतने बच्चे नहीं मरते, जितने कलकत्तेमें मरते हैं। मिस शेफर्ड इस सिलसिलेमें कारपोरेशनके डाक्टरसे कई बार मिल चुकी हैं। दुराचारोंके दूर करने और सामाजिक पवित्रताके स्थापनार्थ मिस शेफर्डने कलकत्तेकी समितिके छै विभाग बनाये हैं—

(१) अर्थ-विभाग

(२) शिक्षा और प्रचार-विभाग—

इस विभागका काम है उत्साही कार्यकर्ताओंको इस विषयके अध्ययन करनेकी सुविधा प्रदान करना, छोटे-छोटे पामफ्लेट तय्यार करना और उनका अनुवाद भिन्न-भिन्न भाषाओंमें कराना। स्कूलोंमें स्वच्छता तथा आरोग्यताके

विषयमें जो पढ़ाई होती है, उसकी जाँच करना, और यदि आवश्यक हो तो उपयुक्त पुस्तक तय्यार करना।

(३) सामाजिक जाँच-विभाग—जनता अपना मनोरंजन कैसे करती है, इसकी जाँच करना। फिल्म नाच-घर

मिस शेफर्ड

(Dancing Hall) इत्यादि की जाँच। विज्ञापनोंकी जाँच। नवयुवकोंको समाज-सेवाके अवसर किन-किन संस्थाओंमें मिल सकते हैं उनकी सूचना देना।

(४) क़ानून विभाग—इसका काम है (क) दुराचारोंको दूर करनेके लिए नवीन क़ानून बनवाना। (ख) जहाँ कानून बन रहे हैं, वहाँ देखरेख करना।

(५) दुराचार-गृहोंकी जाँच करना।

(६) जिन लड़कियोंको दुराचार गृहोंसे बचाया जाय, उनके भावी कार्यके लिए प्रबन्ध करना।

इन विभागोंकी सूचीसे ही पता लग सकता है कि मिस शेफर्डने शिक्षा-सम्बन्धी और रचनात्मक कार्यको ही अधिक महत्त्व दिया है। इन विभागोंमें चार विभाग अपना काम थोड़ा-बहुत कर रहे हैं, पर सबसे अधिक परिश्रम करना पड़ता है मिस शेफर्डको। कभी वे कारपोरेशनके डाक्टरसे भेंट करती हैं तो कभी शिक्षा-विभागके किसी अधिकारीसे, और कभी

स्वर्गीय जोसेफाइन बटलर

चन्दा इकट्ठा करनेके लिए भी उन्हें जाना पड़ता है। इसी कार्यके लिए मिस शेफर्ड मदरास, बंगलोर, सीलोन, शिमला तथा लाहौरकी यात्रा कर चुकी हैं। इन भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उन्हें भाषण भी देने पड़े हैं। लार्ड इरविन तथा अन्य उच्च पदस्थ अधिकारियोंसे भी आपने इस विषयमें बातचीत की थी। आपका उद्देश्य है 'All India Immoral Traffic Act' नामक क़ानून बनवाना, जिसके द्वारा दुराचार-गृहोंके स्वामी, दुराचारोंको फैलानेवाले दलाल और कुट्टिनियाँ दंडित की जा सकें।

पर इस प्रश्नका सम्बन्ध केवल कलकत्तेसे ही नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण भारतसे है, इसलिए भिन्न-भिन्न स्थानोंकी सदाचार-प्रचारिणी-सभाओंने Vigilance Associations एक अखिल भारतीय संस्थाकी स्थापना की है, जिसका नाम All India Vigilance Association। सर फीरोज़ सेठना इसके प्रधान हैं, डाक्टर मिसेज़ मुथालक्ष्मी रेड्डी उप-प्रधान मि. एच. डबल्यू ब्रायन्ट मंत्री तथा कोषाध्यक्ष और मिस

शेफर्ड इसकी संयुक्त मंत्री हैं। कलकत्तेके निकट पानिहाटीमें उनकी देख-रेखमें एक संरक्षण गृह भी चल रहा है। इसका प्रारम्भ तीन लड़कियोंसे हुआ था। अब इसमें ७५ लड़कियाँ हैं। इसके लिए श्री एच० के मुकर्जी नामक एक स्थानीय कार्यकर्ता प्रशंसनीय उद्योग कर रहे हैं।

जो कार्य मिस शेफर्ड और उनके भारतीय तथा अंग्रेज़ साथी कर रहे हैं, वह बड़ी जिम्मेदारीका है, और उसके लिए अनुभवी कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है। स्वाधीनता-संग्राममें विजय प्राप्त करनेके बाद हमें जो रचनात्मक कार्य करना होगा, वह एकांगी न होकर सर्वांगीन होगा। भिन्न-भिन्न प्रकारके सामाजिक कार्य हमें अपने हाथमें लेने होंगे। स्त्री-जातिपर जो अत्याचार हो रहे हैं, जिस प्रकार उनकी आत्मा पुरुषोंकी कामुकताकी शिकार हो रही है और जिन परिस्थितियोंमें अबोध बच्चोंके जीवनका नाश हो रहा है, उन्हें दूर करना होगा। लोकमतको जाग्रत कर इन पापोंके प्रति जनताके हृदयमें वह क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित करनी होगी, जिसमें इस प्रकारके दुराचार भस्म हो जायँ।

इस प्रश्नकी महान् भयंकरता और गम्भीर कठिनतासे कोई इनकार नहीं कर सकता। जब हम दुराचार-प्रचारिणी शक्तियोंकी प्रबलताको देखते हैं तो डर-सा मालूम होने लगता है। बड़े-बड़े नगरोंका अप्राकृतिक जीवन, घासलेटी नाटकों तथा कामोद्दीपक सिनेमोंका दिन दूना रात-चौगुना प्रचार, पूँजीपतियों, मिल-स्वामियों और मकान-मालिकोंकी अर्थ-शोषक नीति, स्त्रियोंकी असहाय दशा तथा सामाजिक मामलोंमें लोकमतकी निर्बलता, सरकार तथा जनताकी निन्दनीय उपेक्षा—इन सब बातोंको देखकर हृदयमें निराशाका संचार होने लगता है और यह कार्य माउन्ट ऐवरेस्ट (गौरीशंकर) की चढ़ाईके समान कठिन प्रतीत होता है। पर जिनके हृदयमें लगन है और जिनका ईश्वरपर दृढ़ विश्वास है, वे फलकी चिन्ता न कर अपना काम किये जाते हैं। सच्चे समाज-सेवकोंकी कसौटी है निराशाजनक परिस्थितिमें काम करना, और मिस शेफर्ड इस कसौटीपर खरी उतरती हैं।

इंग्लैंड अब तक भारतको शासक भेजता रहा है, सेवक नहीं। इसी कारणसे अंग्रेज़ों तथा भारतीयोंके बीचकी खाई और भी गहरी होती गई है, पर अब ज़माना बदल रहा है। दुःखियोंके दुःख निवारणार्थ निस्स्वार्थ-भावसे सहयोग करनेसे ही दोनों जातियोंका स्थायी मेल हो सकता है। इस दृष्टिसे विलायतकी नैतिक और सामाजिक आरोग्य-वर्द्धिनी समिति (Association for Moral and Social Hygiene) का अठारह हज़ार रुपये खर्च करना और अपना एक प्रतिनिधि भारत भेजना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकारके कार्योंमें जातीय सहयोगका वह बीज छिपा हुआ है, जो आगे चलकर एक महान वृक्षका रूप धारण करेगा और जिसकी पवित्र छाया केवल भारत तथा विलायतके ही नहीं, बल्कि समस्त संसारके आर्त और संतप्त प्राणियोंके लिए सुखद और कल्याणकारी होगी।

बच्चोंकी माँग

मिस शेफर्ड

समस्त राष्ट्रोंके स्त्री-पुरुष इस बातको स्वीकार करते हैं कि मानव-जातिके पास देनेके लिए जो कुछ भी सबसे अच्छी वस्तु है, उसपर बच्चोंका हक है। जातीय, राष्ट्रीय और साम्प्रदायिक सब प्रकारके विचारोंके ऊपर हम सब उपर्युक्त बातको अपना कर्तव्य मानते हुए घोषणा करते हैं—

(१) बच्चोंको वे सब साधन—शारीरिक और आध्यात्मिक—अवश्य ही दिये जाने चाहिए, जो उनके साधारण (नार्मल) विकासके लिए आवश्यक हैं।

(२) जो भूखा है, उसे भोजन मिलना चाहिए; जो बच्चा पिछड़ा हुआ है, उसे सहायता मिलनी चाहिए; कर्तव्य-भ्रष्ट बच्चोंका पुनः सुधार करना चाहिए और अनाथ तथा गृहहीन भूले-भटके बच्चोंको आश्रय और सहायता मिलनी चाहिए।

(३) मुसीबत या बड़ी दुर्घटनाओंके अवसरोंपर सबसे पहले बच्चोंको सहायता मिलनी चाहिए।

(४) बच्चोंको इस योग्य बना देना चाहिए, जिससे वे अपनी जीविका उपार्जन कर सकें। साथ ही सब प्रकारके दोहन और शोषणसे उनकी रक्षा करनी चाहिए।

(५) बच्चोंका पालन-पोषण इस बातको ध्यानमें रखकर होना चाहिए कि उनकी शक्तियाँ अपने सहयोगी मनुष्योंकी सेवामें काम आ सकें।

बच्चोंका चैलेंज

जिस किसी भी विदेशीने भारतवर्षके पिछले कुछ महीनोंकी घटनाओंको सहानुभूति-पूर्ण हृदयसे देखा होगा—जैसा मैं देख रही हूँ—और उन्हें सचमुच समझनेकी चेष्टा की होगी, वह एक बातसे प्रभावित हुए बिना न रहा होगा, वह बात है— बच्चोंका चैलेंज।

मुझे ऐसा मालूम होता है, मानो कोमल शरीर, काली आँखों और उत्सुक मुखवाले अनेकों छोटे-छोटे बच्चे खड़े हुए वयस्क पुरुषोंसे यह प्रश्न कर रहे हैं—"आप लोगोंने हमारा क्या प्रबन्ध करनेका निश्चय किया है?"

क्या यह प्रश्न सत्य नहीं है? वयस्क व्यक्तियोंकी प्रत्येक समस्या अन्तमें बच्चोंपर ही जाकर पड़ती है। उदाहरणके लिए कलकत्तेके समान बड़े शहरोंमें भिखमंगोंकी समस्याको ही ले लीजिये। मद्रासमें भिखमंगे बालकोंकी संख्या कलकत्तेसे भी अधिक थी, और थोड़े दिन पहले तक उनके लिए कलकत्तेकी अपेक्षा, क़ानूनी रक्षाके साधन भी बहुत कम थे। ये छोटे-छोटे बच्चे, जन्मके समय अथवा उसके कुछ दिन बाद ही, जान-बूझकर पंगु बना दिये जाते हैं, ताकि जीवन-भर घसिट-घसिटकर और भीख माँग-माँगकर अपने बड़ोंका खर्च चलाया करें। क्या उनका इस प्रकार पंगु बना दिया जाना उचित है?

अथवा दूसरी समस्या—शिक्षाकी समस्या—को लीजिए। बंगालमें १३५ नगर और क़सबे तथा ८६५२५ गाँव हैं, जिनकी जन-संख्या क्रमशः ३२,११,३०४ और ४,४४,३१,१५८ है। इस जन-संख्यामें केवल ३६,००,००० आदमी और लड़के देशी भाषामें साक्षर हैं और ७,३३,००० पुरुष और बालक अंग्रेज़ीमें साक्षर हैं। लड़कियों और स्त्रियोंमें केवल ४७,००० को वर्नाकूलरका और ४५,००० को अंग्रेज़ीका ज्ञान है। केवल बंगाल-प्रान्तमें ही २,००,००,००० पुरुष और २,२०,००,००० स्त्रियाँ बिलकुल निरक्षर हैं। भारतवर्षके गार्हस्थ्य जीवनमें लड़के-लड़कियों—दोनों—की आरम्भिक शिक्षा और उसके बादके जीवनपर महिलाओंका

बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है, अतः महिलाओंकी शिक्षाके इस विभिन्न अनुपातका हानिकर प्रभाव क्या बच्चोंके मानसिक विकासपर नहीं पड़ता ? बंगालमें स्त्रियोंकी अपेक्षा २२,४०,००० पुरुष अधिक शिक्षित हैं।

उपरोक्त कथनमें एक क्षणके लिए भी यह न समझना चाहिए कि मैं केवल साक्षरताको ही शिक्षा समझती हूँ, या उसे सबसे अच्छी शिक्षा मानती हूँ। शिक्षा वह है जो मनुष्यको अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान करावे और उन शक्तियोंकी ट्रेनिंग दे। मनुष्यकी इन गुप्त शक्तियोंको वे ही 'ट्रेन' कर सकते हैं, जिन्हें स्वयं सत्यका ज्ञान हो। यह सत्य और ज्ञान अंशतः पुस्तकोंसे प्राप्त हो सकता है। यदि भारतवर्षका भविष्य बच्चोंके हाथमें है—मनुष्यताकी दृष्टिसे—तो हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि हम उन्हें ऐसी शिक्षा दें, जिससे वे न केवल भारतकी, बल्कि संसारकी सेवामें अपना भाग ले सकें और काम आ सकें।

सामाजिक आचारकी समस्या

बच्चे हमें केवल इन्हीं बातोंका चैलेंज नहीं देते कि हम उन्हें शारीरिक स्वास्थ्यप्रद और हितकारी मानसिक शिक्षा दें, बल्कि वे इस बातके लिए भी चैलेंज देते हैं कि हम उनके लिए एक ऐसे आध्यात्मिक उत्तराधिकारका बन्दोबस्त करें जो निम्न-लिखित तीन सिद्धान्तोंपर स्थित हो—

१. मानव-आत्माके सम्मानमें दृढ़ विश्वास और मानव मात्रको समान श्रेणीका समझना।

२. इस बातका ज्ञान कि अन्याय और क्रूरता किसी भी स्थायी समाजकी आधार नहीं बन सकती।

३. जब तक कोई व्यक्ति नियमानुसार विचारके बाद दोषी न ठहराया जाय, तब तक उसके स्वतन्त्रताके अधिकारको सम्मानकी दृष्टिसे देखना।

ये सिद्धान्त न्याय, मनुष्यता और भावोंके आधारभूत सिद्धान्त हैं। सामाजिक सदाचारकी नींव इन्हीं सिद्धान्तोंपर है, परन्तु हमें प्रतिदिन अपने चारों ओर जो पतित दृश्य दिखाई देते हैं, क्या उनसे इन नियमोंका उल्लंघन नहीं होता?

भारतके भयंकर सामाजिक दूषणोंका मूल कारण क्या है? इसके मूलमें अनेक कारण हैं, परन्तु मुख्यतः अपनी कुरीतियों, स्वार्थपरता और जात-पाँतके भेद-भावकी आड़में हम लोग ऐसे वेदना-हीन हो गये हैं कि हम इन विषयोंपर विचार ही नहीं करते। इस वक्त हमारे विचारोंमें क्रान्तिकी आवश्यकता है।

'स्टेट्समैन'में एक पत्र छपा था, जिससे मालूम होता है कि केवल कलकत्ते शहरमें ही पुरुषोंकी दुष्प्रवृत्तिको सन्तुष्ट करनेके लिए ४५००० स्त्रियाँ और बच्चे पृथक् मुहल्लोंमें रहकर घृणित जीवन व्यतीत करते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि इस विषयमें हम लोगोंको न्यायवान होना चाहिए। मनुष्योंकी काम-वासना स्वाभाविक और अनिवार्य है। उनकी वासनाको पूरी करनेवाली पतित बहनें एक प्रकारसे अपनी सम्माननीय बहनोंकी रक्षिका हैं। ये पतित स्त्रियाँ ही हमारे सामाजिक स्वास्थ्यको ठीक रखती हैं।

अच्छा, अब ज़रा इस प्रश्नपर, व्यक्तिगत भावोंको छोड़कर विचार कीजिए। राष्ट्रकी भावी सन्तान हम लोगोंसे न्याय, श्रद्धा, स्वतन्त्रता और स्वास्थ्य पानेकी अधिकारिणी है, इस बातको ध्यानमें रखते हुए, ज़रा विचार कीजिए कि—(१) पापाचारमें पुरुष और स्त्री दोनोंका बराबर अपराध है, अतः क्या यह उचित है कि इस अपराधके एक साझीदारको समाजसे पृथक् करके, अछूतके समान बनाकर सज़ा दी जाय, जब कि अपराधका दूसरा भागी मज़ेमें, इज्ज़तके साथ, स्वतन्त्रता-पूर्वक घूमता है!

(२) क्या यह उचित है कि जो चीज़ पैसेके मूल्यसे परे है, उसे पैसेके बदले बेचा जाय?

(३) क्या यह स्वतन्त्रताके सिद्धान्तोंके अनुकूल है कि छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ पतित मकानोंमें रहें, उन्हें किसी प्रकारकी शिक्षा और मनोरंजन प्राप्त न हो और बादमें उन्हें विवाहका भी अवसर न मिले?

(४) क्या ये बातें स्वास्थ्यप्रद हैं? संयमको छोड़कर और

किसी भी प्रकारकी सावधानीसे सामाजिक स्वास्थ्यकी रक्षा नहीं हो सकती। कलकत्ते शहरमें पैदा होनेवाले प्रत्येक एक हज़ार बालकोंमें तीन सौ छब्बीस बच्चे एक वर्षकी उम्रके पहले ही मर जाते हैं। लड़कियोंकी शुमार ही नहीं! स्वास्थ्य-विभागकी रिपोर्टोंसे मालूम होता है कि बच्चोंकी इतनी अधिक मृत्यु-संख्या दुर्घटनाओं और महामारियोंसे नहीं होती, बल्कि अधिकांशमें इसके कारण हैं सामाजिक बीमारियाँ, बहुत लोगोंका एक साथ रहना और अज्ञान।

पापाचारके मकानोंका (Tolerated house of vice) समर्थन करनेवाले व्यक्तियोंमें कुछका खयाल है कि संयम स्वास्थ्यके लिए हानिकर है, मगर जिस किसी भी चिन्ताशील व्यक्तिको आधुनिक विज्ञानका कुछ भी ज्ञान होगा, उसे इस बातका फौरन यकीन हो जायगा कि शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, जीव-विज्ञान आदिमें कहीं भी इस बातका रत्ती-भर भी प्रमाण नहीं है कि विवाहके पूर्व सयमसे रहना किसी भी प्रकार शारीरिक, मानसिक और जातीय स्वास्थ्यके लिए हानिकर है। कोई भी व्यक्ति अपने अनुभवसे ही इस बातको देख सकता है।

इसके विपरीत इस प्रकारका संयम स्वास्थ्यके लिए अत्यधिक लाभदायक है। यह संयम ही उस कौटुम्बिक और जातीय जीवनकी नींव है, जो प्रत्येक राष्ट्रके लिए रीढ़के समान होती है।

अच्छा, अब इस दलीलको लीजिए कि ये पृथक् मुहल्ले भलेमानसोंकी पवित्रताकी रक्षा करते हैं।

यह कथन दो कारणोंसे ग़लत है। पहली बात तो यह है कि मनुष्योंको इन मुहल्लोंकी ओर बड़ा प्रलोभन होता है। अनेकों आदमी, जो अन्यथा ठीक रास्तेपर चलते, इन्हीं मुहल्लोंके कारण पतित हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि शराब इस पापाचरणकी सदा सहचरी हुआ करती है, और इन पृथक् मुहल्लोंमें वह हर समय अधिक दामोंपर मिला करती है। फल यह होता है कि अन्तमें 'सम्माननीय' बहनोंकी रक्षा नहीं होती, बल्कि बहुधा वे अपने पतियोंके हाथकी शिकार बन जाती हैं। पृथक् पतित मुहल्लोंका रखना पहलेसे ही इस बातको मान लेना है कि मनुष्योंमें आत्म-संयम होता ही नहीं। मैं समझती हूँ कि यह धारणा ग़लत है। जहाँ ये पृथक् मुहल्ले नहीं होते, वहाँ लोगोंके सदाचारका 'स्टैन्डर्ड' कहीं अधिक ऊँचा होता है और वहाँ स्त्रियोंका अधिक सम्मान होता है। क्यों? केवल इसलिए कि वहाँ यह स्थायी प्रलोभन नहीं हुआ करता।

लेकिन क्या इन समस्याओंके हल करनेके लिए कुछ नहीं किया गया? इसके लिए कुछ थोड़ा-बहुत उद्योग किया गया है।

भिखमंगोंकी समस्या—इस विषयपर एक समिति विचार कर रही है, और जैसे ही राजनैतिक परिस्थिति सुविधाजनक होगी, वैसे ही इस विषयमें आगे क़दम बढ़ाया जायगा।

शिक्षाकी समस्या—साधारण प्रारम्भिक शिक्षा देना हम लोगोंकी शक्तिके बाहर है, मगर जहाँ कहीं हमारा सम्बन्ध होता है, हम इस बातपर ज़ोर देते हैं कि लड़कियोंकी शिक्षापर भी उतना ही ध्यान देना चाहिए, जितना लड़कोंकी शिक्षापर।

सामाजिक आचार सम्बन्धी समस्या—सन् १६२३में कलकत्तेमें पापाचार-निवारक और बच्चों-सम्बन्धी क़ानून बन चुके हैं। इन क़ानूनोंकी कुछ दफ़ाओंका उद्देश इस भयंकर शोषणसे बच्चोंकी रक्षा करना है, परन्तु इन क़ानूनोंके पूर्णरूपसे लागू होनेके लिए यह आवश्यक है कि उनके प्रति साधारण जनताकी सहानुभूति और सम्मति हो।

इस क़ानूनमें संशोधनकी भी ज़रूरत है। जो मालिक मकान जान-बूझकर अपने मकानोंको पापाचार-सम्बन्धी कामोंके लिए भाड़ा दें, उन्हें सज़ा मिलनी चाहिये। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों प्रकारके कुटनोंको सज़ा मिलनी चाहिए। 'जलपानी' गैरक़ानूनी करार दी जायँ और शारदा-ऐक्ट लागू किया जाना चाहिए।'

नये एडीशनल प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट श्री बी० के० मुकर्जीने, जिन्हें विस्तृत अनुभव है, उस दिन कहा था—"मैं ऐसे व्यक्तियोंको चाहता हूँ, जो कर्तव्य-भ्रष्ट बालकोंके लिए बड़े भाई बनकर उनकी रक्षा कर सकें।"

जब हम विकासकी लम्बी प्रणाली, परिस्थितियोंकी प्रक्रिया और पुश्तैनी प्रवृत्तियोंको देखते हैं, तब हम जीवोत्पादनके कार्यकी पवित्रता और मर्यादासे स्तम्भित रह जाते हैं। जीवधारी प्राणियोंकी श्रेणियोंमें जैसे-जैसे हम ऊपर उठते जायँ, वैसे-वैसे यह पवित्रता और मर्यादा और अधिक होनी चाहिए।

सबसे पहले जड़ पदार्थ (पत्थर, मिट्टी आदि) है, फिर सदा आकार परिवर्तन करनेवाले अति सूक्ष्म जीवकण। उसके बाद पेड़-पत्तोंका चेतनाहीन जीवन आता है, जिसमें फलने-फूलनेकी आश्चर्यजनक क्रियाएँ दीख पड़ती हैं और तत्पश्चात् जानवरों, मछलियों और चिड़ियोंका चेतनामय जीवन।

मनुष्य जड़ नहीं है, अचेतन नहीं है। उसमें चेतना है, जानवरोंकी तरह स्वाभाविक ज्ञान है, और मेधाशक्ति है। इतना ही नहीं, मनुष्यमें आत्म-चेतना है, उसमें आत्म-परिचालन और उत्पादन-शक्ति भी है, क्योंकि वह आध्यात्मिक प्राणी है। उसमें यह योग्यता है कि वह स्वयं इस बातका निर्णय कर सके कि वह अपने शरीरसे क्या काम लेगा, अपनी स्वाभाविक बुद्धिको किस ओर चलावेगा तथा सत और असत्में वह किसे अपनावेगा।

हम देखते हैं कि मनुष्यने प्रकृतिके नियमोंका पालन करके प्रकृतिपर विजय प्राप्त कर ली है, उसे पालतू बना लिया है। उसने प्रकृतिपर अधिकार करके उसे अपनी सेवाके योग्य बनाया है। क्या हम अब इस बातकी आशा नहीं कर सकते कि अब इस पीढ़ीमें मनुष्य स्वयं अपनेको संयमित बनानेकी चेष्टा करेगा? वह दृढ़ आत्म-नियंत्रणसे अपने ऊपर पड़नेवाले कष्टोंसे और उस पवित्र प्रेमके अनुसरणसे जो सच्ची स्वतन्त्रताका मूल है, अपनेको संयमित उन्नत बना सकता है। हमारे बच्चे जीवनकी स्वतन्त्रता माँग रहे हैं; आइये, हम उन्हें सच्ची स्वतन्त्रता—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता—प्रदान करें।
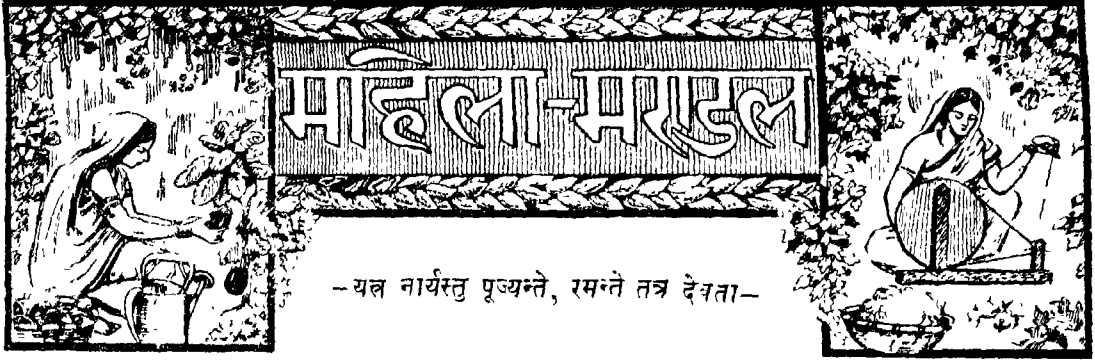
अखिल एशियाई महिला-कानफरेन्स

पिछली दो-तीन शताब्दियोंसे यूरोपवालोंने एशियाके देशोंको अपना क्रीड़ाक्षेत्र बना रखा है। वे उसके विभिन्न देशोंको राजनैतिक गुलामीके बन्धनमें बाँधकर सब प्रकारका दोहन-शोषण कर रहे हैं, परन्तु इस बीसवीं शताब्दिमें सदियोंका सोया हुआ एशिया भी जागता हुआ जान पड़ता है। इस शताब्दिके आरम्भमें जापानने रूसको पछाड़कर संसारके राष्ट्रोंमें सम्माननीय स्थान प्राप्त किया है। फिर चीनमें जाग्रति हुई, पर्शिया भी स्वतन्त्र हो चुका है, तुर्कीका कायापलट संसारको चकित कर रहा है, भारतवर्ष भी अपने बन्धन तोड़नेके लिए फड़फड़ा रहा है, स्याम और इंडोचीन भी कुनमुना रहे हैं। एशियावालोंको अब यह बात प्रत्यक्ष जान पड़ने लगी है कि उसके भाग्यका सूत्र उसके अपने हाथमें है। उसे यूरोपसे किसी प्रकारकी आशा न रखकर स्वयं अपने पैरों खड़ा होना पड़ेगा। एशियाके भिन्न देशोंको आपसमें मिलकर चलनेसे ही एशिया-भरका कल्याण है।

प्रसन्नताकी बात है कि एशियावाले अब इन बातोंको कार्यमें भी परिणत करने लगे हैं। इस वर्ष भारतवर्षमें दो एशियाई कानफरेन्स हुई; एक तो बनारसमें 'अखिल एशियाई शिक्षा-कानफरेन्स' हुई, और दूसरी लाहोरमें 'अखिल एशियाई महिला-कानफरेन्स'। इन कानफरेन्सोंमें एशियाके विभिन्न देशोंके प्रतिनिधि आये थे। यहाँ अखिल एशियाई महिला-कानफरेन्सके दो चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।

—

लाहोरमें अखिल एशिया महिला-कानफरेन्सकी सदस्याएँ

महिला-सभाका साधारण दृश्य

कुमारी उमा बोस कलकत्ता विश्वविद्यालयके १९३० के बी० एस-सी०की परीक्षामें सबसे प्रथम हुईं। साथ ही वे प्रयोगात्मक मनोविज्ञानमें भी प्रथम श्रेणीके सम्मान-सहित उत्तीर्ण हुईं। विज्ञानमें ऐसी अद्भुत विशेषतासे पास होनेवाली ये प्रथम महिला ग्रेजुएट हैं। इन्होंने 'मन्मथनाथ भट्टाचार्य-स्वर्ण-पदक' और 'शान्तमणिरजन पदक' प्राप्त किये हैं, और पोस्ट ग्रेजुएट छात्रवृत्ति तथा प्रयोगात्मक मनोविज्ञानके लिए भी एक विशेष छात्रवृत्ति मिली है।

कुमारी उमा बोस

राष्ट्रीय संग्रामका एक सुफल

अंग्रेज़ीमें कहावत है एक—अकसर बुराईमें भी भलाई उत्पन्न हो जाती है। आजकल देशमें राष्ट्रीय संघर्ष चल रहा है, वह न तो कांग्रेसवालोंको ही प्रिय है और न सरकारको ही। दोनों ही अपनी-अपनी दृष्टिसे मजबूर होकर लड़ रहे हैं; मगर इस संघर्षका एक सुफल यह हुआ कि हमारी महिलाओंमें परदेकी कुप्रथा बहुत हद तक अपने ही आप दूर हो गई। भारतकी सैकड़ों देवियोंने अपने परदेको तिलांजली देकर राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लिया, जो इससे पहले कभी घरसे बाहर न निकली थीं। बम्बईमें पर्दा पहले ही से न था, अत: इस आन्दोलनमें सबसे ज्यादा भाग वहींकी स्त्रियोंने लिया है। यहाँ आन्दोलनमें सज़ा पानेवाली कुछ रमणियोंके चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।

श्रीमती सुमति त्रिवेदी

श्रीमती जयश्री रायजी

कुमारी पेरिन कैप्टन, जो बम्बई-युद्ध-समितिकी नेत्री थीं

श्रीमती शान्ताबेन पटेल

श्रीमती लीलावती मुन्शी
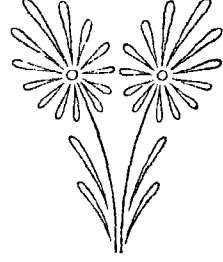
श्रीमती उर्मिला मेहता

श्रीमती विजयलक्ष्मी अय्यर
ये बम्बई कांग्रेस-बुलेटिनकी सम्पादिका थीं

श्रीमती रामी बेन कामदार

श्रीमती सोफ़िया सोमजी

श्रीमती कमला बेन सोनावाला

श्रीमती हुमा मेहता

श्रीमती लीला सैयद

श्रीमती लक्ष्मीबेन सुराज बल्लभदास

श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले

श्रीयुक्ता अमृत कुँवर

श्रीमती त्रिशूला देवी

बाई तरफके ऊपरका चित्र—

श्रीमती नीरबाला दीक्षित

बाई तरफके नीचेका चित्र—

श्रीमती गंगाबेन पटेल

क्षयरोगकी उत्पत्ति

डा० शंकरलाल गुप्त, एम. बी., बी. एस.

'विशाल-भारत'के पिछले कई अंकोंमें क्षयरोगपर जो लेख प्रकाशित हो चुके हैं, उनसे यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि क्षय एक संक्रामक रोग है, जो क्षय-कीटाणुओंके शरीरमें प्रवेश करनेसे होता है। जिस प्रकार बिना बीज बोये कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती, उसी प्रकार क्षय-कीटाणुओंके अभावमें क्षयरोग नहीं हो सकता। परन्तु साथ ही जिस प्रकार बीज बोनेपर फसलका तैयार होना अवश्यम्भावी नहीं है, उसी प्रकार यह भी अनिवार्य नहीं कि कीटाणुओंके शरीरमें प्रवेश करनेपर रोग हो ही जाय। क्षयरोगके कीटाणु-विज्ञानके गत पचास वर्षके अनुशीलनसे यह ज्ञात हुआ है कि क्षय-संक्रामित मनुष्योंमेंसे केवल बहुत थोड़ेको ही रोग होता है। अधिकांश लोग बिना किसी हानिके संक्रमणको सह लेते हैं। शरीर और वातावरण सम्बन्धी कारण (Constitutional and Environmental causes) क्षयरोगके कीटाणु-विज्ञान (Bacteriology) से संक्रमण-सम्बन्धी प्रश्न तो बहुत कुछ हल हो गये हैं, परन्तु रोग-सम्बन्धी सब प्रश्न अभी तक हल नहीं हो सके। डा० थ्योबोल्ड स्मिथका यह कथन सर्वथा सत्य है कि किसी रोगके कीणुओंका पता लगा लेना, उस रोगकी समस्याके हल करनेमें पहली सीढ़ी है—उस रोगसम्बन्धी अनेक प्रश्नोंमें से केवल एक प्रश्नका उत्तर है। इसलिए कुछ वर्षोंसे क्षयोत्पत्ति सम्बन्धी प्रश्नोंपर प्रकाश डालनेके लिए लोगोंका ध्यान कीटाणु-विज्ञानको छोड़कर रोग-सम्बन्धी अन्य बातोंकी ओर आकृष्ट हुआ है। इस रहस्यपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की जा रही है कि क्या कारण है कि जिन लोगोंको क्षय-संक्रमण होता है, उनमेंसे कुछको तो रोग हो जाता है और कुछ निरोग बने रहते हैं; क्षयी परिवारों तथा क्षयी माता-पिताकी संतानमेंसे किसीको रोग होता है और किसीको नहीं; साथ ही जिनको रोग होता है, उनमेंसे किसीको उग्र व्यापी रोग, किसीको उग्र फुफ्फुस प्रदाह, किसीको फुफ्फुसका पुरातन प्रदाह और किसीको निष्फल (Abortive) क्षय होता है। क्या कारण है कि रोग किसीके फेफड़ोंमें होता है, तो किसीके उदरमें; किसीकी हड्डी या संधिमें होता है तो किसीकी लसिका-ग्रन्थियों तथा अन्य स्थानोंमें? यह समझनेकी चेष्टा की जा रही है कि क्या कारण है जो संक्रामित मनुष्योंमेंसे केवल कुछमें रोगके लक्षण प्रकट होते हैं, परन्तु अधिकांशमें लक्षण प्रकट नहीं होते, यद्यपि उनके शरीरमें कीटाणु-कृत क्षत (Tuberculous lesions) हो जाते हैं, और वे होकर अच्छे भी हो जाते हैं।

कीटाणुवादके पक्षपाती क्षयोत्पत्ति-सम्बन्धी उपरोक्त प्रश्नोंके अनेक उत्तर देते हैं, परन्तु उनमेंसे कोई भी सन्तोषप्रद नहीं है। किसी-किसीका मत है कि रोगके विभिन्न रूप-भेदोंका कारण कीटाणुओंका जाति-भेद और उनके विषैलेपनका अन्तर होता है, परन्तु यह बात ठीक नहीं है; क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि युवावस्थाके लगभग सभी प्रकारके क्षय मानव-क्षय-कीटाणुओंसे होते हैं। यह भी लोग मानने लगे हैं कि विभिन्न प्रकारके क्षय रोगोंके कीटाणुओंको अलग-अलग करके उनके विषैलेपनके अन्तरके सम्बन्धमें जो जांच हुई हैं, उनसे इस प्रश्नपर कोई अधिक प्रकाश नहीं पड़ता; क्योंकि गिनीपिग, बन्दर आदि पशुओंमें कृत्रिम संक्रमणसे जो रोग उत्पन्न किया जाता है, वह सदा उग्र रूपका होता है, चाहे उस कृत्रिम संक्रमणमें किसी भी प्रकारके क्षयरोग कीटाणुओंका प्रयोग किया गया हो। इसके विपरीत मनुष्योंमें जो स्वतः संक्रमण होकर रोग होता है, वह बहुधा उससे भिन्न, पुरातन रूपका रोग होता है।

चूँकि कीटाणु-विज्ञान क्षयरोगके उत्पत्ति-सम्बन्धी सब प्रश्नोंके हल करनेमें असमर्थ है, इसलिए अब कुछ दिनोंसे,

कीटाणुओंको छोड़कर, रोग-सम्बन्धी अन्य कारणोंपर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। ऐसे अनेक कारण ज्ञात हुए हैं, जिनका क्षयरोगके विकास (Evolution of disease) पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इन सब कारणोंको दो मुख्य वर्गोंमें विभाजित किया जा सकता है—(१) आन्तरिक कारण—अर्थात् वे कारण, जो शरीरके अन्दर होते हैं; (२) वाह्य कारण—अर्थात् वे कारण, जो बाहरसे शरीरपर अपना प्रभाव डालते हैं।

आन्तरिक कारणके भी दो मुख्य भेद होते हैं—(१) पैतृक (Hereditary), जिनको मनुष्य अपने पूर्वजोंसे प्राप्त करता है; (२) उपार्जित, जिनमें से कुछ तो शरीरके साथ उत्पन्न होते हैं और कुछ जन्मके बाद उपार्जित होते हैं।

क्षयरोगके कारणोंका एक बोधक वृक्ष नीचे दिया जाता है :—
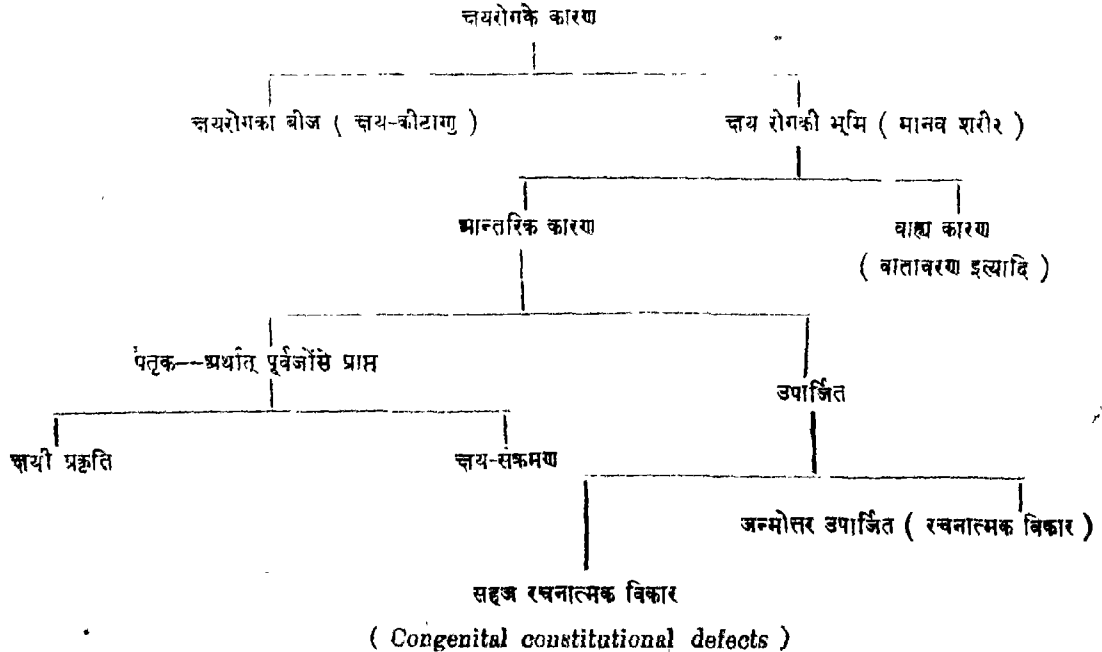
क्षयोत्पत्तिके निज कारण

क्षयोत्पादनमें पैतृकताका प्रभाव—क्षयरोगके पैतृक माननेमें दो बातें सम्भव हो सकती हैं। एक यह कि क्षयरोग या पैतृक संक्रमण अर्थात् गर्भाधानके समय क्षय-कीटाणु माता-पितासे गर्भमें पहुँच जाते हैं, और उस संक्रामित गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसमें क्षय उत्पन्न कर देते हैं। दूसरा यह कि एक विशेष प्रकारकी क्षयी प्रकृति (Tuberculous diathesis) होती है, जिसके कारण मनुष्य आसानीसे क्षयरोगका शिकार बन जाता है और यह प्रकृति माता-पितासे सन्तानको प्राप्त होती है। इस क्षयी प्रकृतिके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) क्षय-ग्रहणशीलता अर्थात् रोगकी ओर झुकाव और (२) प्रतिरोध-शक्तिकी कमी।

इस विषयमें किसी निर्णयपर पहुँचनेके लिए तीन प्रकारकी साक्षी विचारणीय हैं—(१) पैतृकताके प्रभाव-सम्बन्धी आँकड़े, (२) जीव शास्त्रके मतानुसार प्राप्त-प्रमाण और (३) रुग्नात्मक (Clinical) प्राप्त-प्रमाण।

क्षयरोगके कारणोंका बोधक वृक्ष

आँकड़ोंका अध्ययन (Statistical Study)—कई शताब्दियोंसे यह देखा जा रहा है कि अनेक परिवारोंमें क्षयरोग पीढ़ी दर-पीढ़ी होता चला जाता है, और क्षयरोगियोंके अनेक पूर्वजों तथा निकट-सम्बन्धियोंमें भी रोगका होना पाया जाता है। इस बातके आँकड़े चिकित्सा-साहित्यमें भरे पड़े हैं, परन्तु सावधानीसे उनकी छान-बीन करनेपर यह प्रकट होता है कि क्षयरोग या क्षयी प्रकृतिका परम्परागत होना या न होना, सिद्ध करनेमें उनका कोई भी मूल्य नहीं है।

इन क्षयी परिवारोंमें रोगियोंके सन्निकट सम्पर्कके कारण अन्य परिवारोंकी अपेक्षा संक्रमण होनेकी अधिक सम्भावना होती है, जिससे भ्रम उत्पन्न हो सकता है। इसके अतिरिक्त जब हम यह देखते हैं कि क्षयरोग विश्वव्यापी है और प्रत्येक सात या आठ मृत्युओंमेंसे कम-से-कम एक इसके कारण होती है, तो क्षयरोगका लगभग हरएक परिवारमें पाया जाना स्वाभाविक है, और अधिकांश रोगियोंके सम्बन्धियोंमें से यदि कोई-न-कोई क्षय-रोगी हो, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसके अलावा एक बात यह और है कि क्षयरोगमें पैतृकताके प्रभाव-सम्बन्धी उपलब्ध आँकड़े केवल रोगियोंके कथनोंसे संकलित किये गये हैं, इसलिए उनको बिलकुल निर्भ्रान्त नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि जब रोगी अपना हाल ठीक-ठीक नहीं बता सकते, तो यह कैसे आशा की जा सकती है कि वे अपने पूर्वजोंके रोगका हाल ठीक-ठीक बता सकेंगे।

क्षयरोगका क्षयीप्रकृति (Tuberculous Diathesis) के पैतृक होनेमें आँकड़ोंका प्रमाण तभी सन्तोष-जनक माना जा सकता है, जब कि बहुतसे रोगियोंका ध्यान-पूर्वक, लगातार कई पीढ़ियों तक इस बातका लेखा रखा जाय कि क्षयी माता-पिताओंके कितने बच्चे क्षयरोगसे मरते हैं, और वह भी उस दशामें, जब कि जन्म लेते ही उनको अपने क्षयी माता-पिताओंसे पृथक् कर दिया जाय, ताकि उनके घनिष्ठ सम्पर्कसे संक्रमण होनेकी अन्य परिवारोंकी अपेक्षा अधिक सम्भावना न रहे। इस प्रकारके आँकड़े अभी तक उपलब्ध नहीं हैं। इसके प्रतिकूल बहुतसे अनाथालयोंमें इस बातके आँकड़े मिलते हैं कि क्षयी माता-पिताओंके बच्चोंको अपेक्षाकृत अधिक क्षय भी नहीं होता, परन्तु क्षय-रोगको पैतृक न माननेके लिए ये आँकड़े प्रमाण नहीं माने जा सकते ; क्योंकि इन संस्थाओंमें चौदह वर्षसे कम आयुवाले बच्चे रखे जाते हैं, और इस आयुमें क्षयरोग बहुत कम होता है।

अनेक लोगोंने इस बातके आँकड़े प्रकाशित किये हैं कि प्रति शत २५ से ५६ तक क्षय-रोगियोंके सम्बन्धियोंमें क्षयरोगका होना पाया जाता है। परन्तु उपरोक्त कारणोंसे उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता। यह संख्या बहुत कुछ अन्वेषकोंके अपने सिद्धान्तके पुष्ट करनेकी प्रबल इच्छापर निर्भर होती है। इनके प्रतिकूल डा० बर्कहार्टने अपनी खोज द्वारा यह पता लगाया है कि क्षय-रहित मनुष्योंके पूर्वजोंमें भी उतना ही क्षय मिलता है, जितना कि क्षयी मनुष्योंके पूर्वजोंमें।

अब तक आँकड़ोंके सम्बन्धमें जितने आक्षेप (ऐतराज़) प्रकाशित हुए हैं, हालमें उन सबको दूर करनेकी डा० रेमन्ड पर्लने कोशिश की है। उन्होंने सोचा कि यदि क्षयोत्पादनमें पैतृकताका कोई प्रभाव होता है, तो क्षयरहित मनुष्योंके सम्बन्धियोंकी अपेक्षा क्षयी मनुष्योंके सम्बन्धियोंमें क्षय-पीड़ितोंकी संख्या अधिक मिलनी चाहिए। इस प्रकार उन्होंने ५७ परिवारोंकी, जिनकी जन-संख्या लगभग पाँच हज़ारके थी, जाँच की। उनमेंसे ३८ परिवार क्षयी और १९ क्षय-रहित थे। इस खोजसे यह विदित हुआ कि क्षयी मनुष्योंके सम्बन्धियोंमें प्रतिशत १७ और क्षय-रहित मनुष्योंके सम्बन्धियोंमें केवल १०२ प्रतिशत क्षयी थे। अर्थात् क्षय-रहित परिवारोंकी अपेक्षा क्षयी परिवारोंमें क्षय-पीड़ितोंकी संख्या छः गुनी थी। परन्तु उनको अपनी इस चेष्टामें सफलता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि बादको अधिक सावधानीसे जाँच करनेपर उनको स्वयं यह मानना पड़ा कि क्षयी परिवारोंमें क्षय-रोगियोंके घनिष्ठ सम्पर्कका प्रभाव रोगकी अधिकतापर अवश्य था।

अतएव यह स्पष्ट है कि आँकड़ोंसे क्षयरोग या क्षयी प्रकृतिका पैतृक होना या न होना प्रमाणित नहीं होता। इसके अतिरिक्त आपत्तिजनक एक बात यह और है कि यदि यह मान भी लिया जाय कि क्षय-रोगियोंकी सन्तानमेंसे प्रतिशत ५० को प्रतिरोध-शक्तिकी पैतृक न्यूनताके कारण क्षयरोग हो जाता है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि संसारकी जन-संख्याकी वृद्धिपर विचार करते हुए क्षयरोगकी मृत्यु-संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि होनी चाहिए। परन्तु वास्तवमें बात बिलकुल उल्टी है। दूसरी ओर इस शंकाके समाधानमें क्षयरोगके पैतृक होनेके पक्षके सबसे बड़े आग्रहकर्ता कार्ल पियर्सनका यह कहना है कि जिस प्रकार हम यह नहीं कह सकते कि ऐनक लगाना पैतृक होता है, उसी प्रकार हम यह भी नहीं मानते कि क्षयरोग पैतृक है। हम केवल इतना ही मानते हैं कि कुछ शरीरोंकी रचनामें अधिक और कुछमें कम प्रतिरोध-शक्ति होती है। दूसरे शब्दोंमें यह भी कह सकते हैं कि कुछ शरीरोंकी रचनामें क्षय प्रवणशीलता (Predisposition) अधिक और कुछमें कम होती हैं। बात एक ही है, चाहे हम क्षयी प्रकृतिको प्रतिरोध-शक्ति मानें अथवा प्रवणशीलता मानें, क्योंकि दोनों ही रोग-क्षमताके अंग हैं। जिस समुदायमें क्षयरोग बहुत दिनोंसे होता चला आता है, उसमें प्राकृतिक छाँट (Natural Selection) द्वारा कम शक्तिवाले छँटकर रोग-क्षमता (Immunity) की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। क्योंकि अधिक शक्तिवाले शेष रह जाते हैं, और इसलिए शक्तिकी अधिकताका ही परम्परा द्वारा अवतरण होता जाता है। इसके विपरीत जिस समुदायमें क्षयरोग पहलेसे प्रविष्ट नहीं हुआ है उसमें प्राकृतिक छाँट न होनेसे रोग-क्षमतामें वृद्धि नहीं होती। क्षयरोगके प्रसार विज्ञान (Epedemiology) के अनुशीलनसे भी कार्ल पियर्सनके उपरोक्त मतका समर्थन होता है।

जीव-शास्त्रकी दृष्टिसे क्षयी परम्परा

क्षयरोगका उत्तरोत्तर कई पीढ़ियों तक लगातार होना— इस बातका निश्चयात्मक प्रमाण नहीं हो सकता कि क्षयरोग या क्षयी प्रकृति पितृगत होती है। कोयलेकी खानमें काम करनेवालोंके फेफड़ोंमें कोयलेके परमाणु जमा होनेसे एक प्रकारका रोग—जिसको फुफ्फुसांगार (Anthracosis) कहते हैं—हो जाता है, और उनकी सन्तानमें भी कई पीढ़ी तक, जब तक वे उसी व्यवसायको करते रहते हैं, यह रोग होता चला जाता है। केवल कई पीढ़ी तक लगातार होनेके कारण इस विकारको कोई पैतृक नहीं कह सकता। इसी प्रकार जिन क्षयकारक सामाजिक आर्थिक तथा अन्य प्रकारके वातावरणोंमें रहनेसे माता-पिताको क्षयरोग हो जाता है, उन्हीं वातावरणोंमें रहनेसे उनकी सन्तानको भी क्षय हो सकता है, और बहुधा ऐसा ही होता है। इसको सामाजिक परम्परा कह सकते हैं, परन्तु यह जीव-शास्त्रके अनुसार सच्ची पैतृकता नहीं कही जा सकती। जीव-शास्त्रके मतानुसार सच्ची पैतृकतामें तो जननतत्त्व (Germ-Plasm) अर्थात् माता-पिताके जनन-सेलों (Cells) के अन्तर्गत गुणोंका अथवा उनके भौतिक आधारका गर्भाधानके समय गर्भमें अवतरण होना चाहिए। गर्भ रहनेके पश्चात यदि उसमें कोई विकार हो जाय, तो वह पैतृक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गार्भिक संक्रमण या विकारका पैतृकतासे कोई सम्बन्ध नहीं होता।

गर्भमें क्षय-संक्रमण

उपर्युक्त दृष्टिसे क्षयी पैतृकतापर विचार करनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि गर्भमें क्षय-संक्रमण हो सकता है या नहीं, और यदि हो सकता है तो कैसे और कब होता है और उसका पैतृकतासे क्या सम्बन्ध होता है?

गर्भका केवल चार प्रकारसे संक्रामित होना सम्भव है—

(१) गर्भ रहनेसे पूर्व मातासे डिम्ब (Ovum) में संक्रमण हो सकता है।

(२) गर्भ रहनेके समय जब डिम्बसे शुक्राणु (Spermatozoa) का समागम होता है तो शुक्राणुके साथ क्षय कीटाणु भी डिम्बमें प्रवेश कर सकते हैं।

(३) गर्भ रहनेके पश्चात् जरायु (Placenta) द्वारा क्षय-कीटाणु गर्भमें पहुँच सकते हैं।

(४) माताके रक्तके अन्तर्गत क्षय-कीटाणुओंसे गर्भमें संक्रमण हो सकता है ।

इनमेंसे पहले दो प्रकारका संक्रमण यदि हो सकता हो, तो पैतृक कहा जा सकता है, परन्तु तीसरे और चौथे प्रकारका संक्रमण वास्तवमें पैतृक नहीं कहा जा सकता ।

गर्भमें संक्रमण होनेकी सम्भावना

डा० फ्रीडमैनके अन्वेषणोंसे यह विदित होता है कि गर्भावस्थामें क्षय-कीटाणुओंसे संक्रमण होना असम्भव नहीं है। इस खोजसे बामगार्टनके इस सिद्धान्तका समर्थन होता है कि क्षय-कीटाणु गर्भमें पहुँचकर वर्षों तक सुप्त अवस्थामें पड़े रह सकते हैं और भविष्यमें जब कभी शरीरकी प्रतिरोध-शक्ति कम हो जाती है तो जाग्रत होकर रोग उत्पन्न कर देते हैं। क्षयरोगका इस प्रकार उत्पन्न होना वास्तविक पैतृकता नहीं है, यह मातासे गर्भका संक्रामित होना है ।

बामगार्टनका यह सिद्धान्त क्षयी पक्षियोंपर किये हुए प्रयोगोंपर आश्रित था। यह भलीभाँति ज्ञात हो गया है कि क्षयी मुर्गियोंकी सन्तानको उस दशामें भी क्षय हो जाता है जब कि अंडा देनेके बाद तुरन्त उनको हटाकर सम्पर्क द्वारा संक्रमण होनेकी सम्भावना दूर कर दी जाती है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि यदि अंडेकी सफेदीको बेधकर उसमें कीटाणु प्रविष्ट कर दिये जायँ, तब भी अंडेका विकास होता रहता है, परन्तु सेनेके बाद बच्चेको क्षय हो जाता है। डिम्बान्तरिक संक्रमण (Intra-ovular) पशुओंमें भी देखा जाता है । इससे विदित होता है कि गर्भ रहनेके बाद डिम्बके संक्रमणसे गर्भ नष्ट नहीं होता। गर्भ बढ़ता रहता है और उससे जीवित सन्तान उत्पन्न होती है, परन्तु जन्म लेनेके बाद तुरन्त उसको क्षय हो जाता है । मनुष्योंमें भी ऐसे उदाहरण मिले हैं, जहाँ नवजात शिशुओंके फेफड़ोंमें कहीं-कहीं खटिक संचय-रूपी परिवर्तन (Calcified areas) पाये गये हैं, जिनसे यह विदित होता है कि शिशुओंको गर्भावस्थामें कभी-कभी क्षय होकर अच्छा हो जाता है ।

शुक्र-जनित संक्रमण—अभी तक इस बातका पता नहीं चला है कि उपर्युक्त उदाहरणोंमें क्षय-कीटाणु गर्भ तक किस प्रकार पहुँचे। कुछ लोगोंका कहना है कि यह सम्भव है कि वीर्य संक्रामित हो और शुक्राणुओंके साथ-साथ कीटाणु भी गर्भ तक पहुँच गये हों। स्पेनो, पोर्टर और फ्रीडमैनको ऐसे रोगियोंके जिनको या तो उग्रव्यापी (Acute miliary) क्षय था या जिनकी जननेन्द्रियोंमें क्षय था, खोज करनेपर कीटाणु मिले हैं। यह स्मरण रखने-योग्य है कि जननेन्द्रियोंके क्षयवाले पुरुष कभी-कभी स्त्री-प्रसंग करते हैं और उनसे गर्भ भी रह जाता है। ऐलब्रेश्ट केवेनिश तथा अन्य लोगोंने क्षयी साँड़ोंसे खरगोशिनी और गिनीपिगनियोंमें संक्रमण उत्पन्न करनेमें सफलता प्राप्त की है। फ्रीडमैनने खरगोशिनियोंकी योनिमें गर्भाधानके बाद तुरन्त क्षय-कीटाणुओंकी पिचकारी लगाकर देखा था कि सात दिनके बाद गर्भमें क्षय-कीटाणु मिलते हैं, यद्यपि खरगोशिनियाँ स्वयं क्षय-रहित बनी रहती हैं। ऐसी खरगोशिनियोंके नवजात शिशुओंके अनेक अवयवोंमें क्षय-कीटाणु मिले थे। इन खोजोंसे यह परिणाम निकाला जाने लगा कि क्षयी पिताके वीर्यसे गर्भमें संक्रमण हो सकता है ।

परन्तु यह बात इतनी सरल नहीं है। वीर्यमें क्षय-कीटाणु तभी मिलते हैं जब कि जननेन्द्रियोंमें रोग हो। युक्तिपूर्वक विचार करनेसे इस बातमें सन्देह होता है कि उपरोक्त कथन इस बातका कहाँ तक पर्याप्त प्रमाण माना जा सकता है कि शुक्रकण या डिम्ब क्षय-कीटाणुओंसे संक्रामित हो सकते हैं। मनुष्योंके डिम्ब या शुक्रकणोंके आकारकी सूक्ष्मतापर विचार करते हुए यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि उनमें क्षय-कीटाणु प्रवेश कर सकें। अभी तक किसीको शुक्रकण या डिम्बमें अनुवीक्षणयंत्रसे परीक्षा करनेपर कीटाणु नहीं मिले हैं। वीर्यमें कभी-कभी क्षय-कीटाणुओंका पाया जाना—इस बातका प्रमाण नहीं हो सकता कि उनसे गर्भमें संक्रमण हो सकता है। यह देखनेमें आता है कि ऐसे क्षयी मनुष्योंकी सन्तान, जिनको जननेन्द्रियोंका रोग होता है, प्रायः

उतनी ही हृष्ट-पुष्ट होती है जितनी कि स्वस्थ मनुष्योंकी। अभी तक कोई उदाहरण ऐसा देखनेमें नहीं आया है कि जननेन्द्रियोंके क्षयसे पीड़ित पिताकी सन्तान क्षयी उत्पन्न हुई हो, यद्यपि यह तो देखनेमें आता है कि ऐसे मनुष्यके साथ सहवास करनेसे स्त्रीको जननेन्द्रियका क्षय हो गया है। यदि यह मान लिया जाय कि क्षय-कीटाणु शुक्रकणोंके सहारे पहुँचकर डिम्बको संक्रामित कर सकते हैं, तब भी ऐसा बहुत कम होता होगा। स्मरण रखना चाहिए कि एक बार वीर्यपात होनेमें लगभग दो करोड़ शुक्रकण स्खलित होते हैं, जिनमेंसे केवल एक ही गर्भाधान करता है। इस बातकी कितनी कम सम्भावना है कि दो करोड़में से वही शुक्राणु, जिसमें क्षय-कीटाणु हो, गर्भाधान करे। इसलिए क्षयरोगकी पैतृकता-सम्बन्धी विवेचनामें शुक्र-जनित संक्रमणका विचार करना निरर्थक प्रतीत होता है।

उपरोक्त बातोंसे स्पष्ट है कि गर्भ रहनेसे पूर्व माता या पितासे डिम्बके संक्रामित होनेकी इतनी कम सम्भावना है, जो कि 'नहीं' के बराबर है। दूसरे शब्दोंमें इसका यही अर्थ होता है कि क्षयरोग या संक्रमणके पैतृक माननेके पक्षमें अभी तक कोई निश्चयात्मक प्रमाण नहीं ज्ञात हुए हैं।

गर्भाधानके पश्चात् संक्रमण

गर्भावस्थामें बहुतसे रोग बच्चोंको हो जाते हैं। चेचक उपदंश और कोढ़ इसके उत्तम उदाहरण हैं। यह भलीभाँति ज्ञात हो चुका है कि जरायुमें क्षय-कीटाणु रह सकते हैं। अनेक अन्वेषकोंको खोज करनेपर क्षयी स्त्रियोंकी जरायुमें क्षय-कीटाणु मिले हैं। डा० शमोर्ल और गीपको २० क्षयी गर्भवती स्त्रियोंमेंसे ६ की जरायुमें क्षय-कीटाणु मिले थे। डा० शमोर्लका अनुमान है कि लगभग आधी क्षयी स्त्रियोंकी जरायुमें क्षय-कीटाणु रहते हैं। उनका कहना है कि गर्भकालमें किसी समय और रोगकी हर अवस्थामें कीटाणु जरायुमें पहुँच सकते हैं, परन्तु संवृद्ध और उग्रव्यापी रोगमें ऐसा अधिक होता है। जन्मके समय भी जरायु द्वारा मातासे बच्चेको संक्रमण हो सकता है, जब कि गर्भाशयके कठोर आकुञ्चनोंसे जरायु किसी निर्बल स्थानपर आहत हो जाय। क्षय-कीटाणुओंका सीधा गर्भमें पहुँच जाना सम्भव तो है, क्योंकि माताके रक्तसे नाभिक शिरा (Umbilical Vein) में होते हुए कीटाणु गर्भमें पहुँच सकते हैं, परन्तु इसकी सम्भावना बहुत कम होती है। गर्भावस्थामें संक्रमण होनेसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह बहुधा मरी हुई होती है, और यदि जीवित भी उत्पन्न हो, तो कुछ सप्ताहसे अधिक जीवित नहीं रहती।

उपरोक्त कथनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि गर्भका संक्रामित होना सम्भव तो अवश्य है, परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। डा० लवनस्टीनके मतानुसार जरायुके क्षयके केवल तीस उदाहरण चिकित्सा-साहित्यमें पाये जाते हैं।

सहज क्षय (Cangenital Tuberculosis)—गर्भाशयके अन्दर क्षय संक्रमणकी विरलता तो सहज क्षयकी कमीसे भी विदित होती है। पशुओंमें तो सहज क्षय कुछ होता भी है, परन्तु मनुष्यमें तो बहुत ही कम होता है। सहज क्षयके सम्बन्धमें अब तक जितनी रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं, वे सभी वास्तविक सहज क्षयके उदाहरण नहीं हैं। सबसे पहले निश्चयात्मक सहज क्षयकी रिपोर्ट डा० शमोर्ल और बर्च हर्शफेल्डने की थी। गर्भके सप्तम मासमें उग्रव्यापी क्षयसे माताकी मृत्यु हो गई थी। जरायु देखनेमें तो स्वस्थ प्रतीत होती थी, परन्तु अनुवीक्षणयंत्रसे परीक्षा करनेपर उसमें क्षयज विकार मिले थे और नाभिक शिराके रक्तमें क्षय-कीटाणु भी पाये गये थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मृत्युसे कुछ समय पूर्व मातासे गर्भमें संक्रमण हो गया था। इसी भाँति अन्य अन्वेषकोंने भी सहज क्षयके कई एक उदाहरण प्रकाशित किये हैं। डा० मर्था वूलस्टीनने एक ऐसे ही रोगीका वर्णन किया है। बच्चेके जन्मके छै दिन पश्चात् माकी मृत्यु हो गई थी, और उन्नीस दिन बाद बच्चा भी मर गया था—परीक्षा करनेपर जरायुमें संवृद्ध क्षयके चिह्न और नवजात शिशुमें उग्रव्यापी क्षयके चिह्न मिले थे।

इस प्रसंगमें एक बात स्मरण रखने योग्य यह है कि जरायुमें क्षय होनेपर बच्चेमें क्षयरोगका होना अनिवार्य नहीं है। इस बातकी अनेक रिपोर्टें मौजूद हैं कि जरायुमें क्षय होनेपर भी बच्चे स्वस्थ उत्पन्न होते हैं और भलीभाँति बढ़ते रहते हैं। सहज क्षयके जितने उदाहरणोंका उल्लेख ऊपर किया गया है, उनमें से विवेचक बहुत थोड़ोंको वास्तविक सहज क्षयका उदाहरण मानते हैं, और शेषमें अधिकांशमें इस बातकी साक्षी पाई जाती है कि उनमें वस्तुतः गर्भावस्थामें संक्रमण नहीं हुआ था। पेहू और चेलियरका विश्वास है कि इन सहज क्षयके उदाहरणोंमें गर्भावस्थाके अन्तमें, जब कि गर्भमें जरायु द्वारा माताके रक्तका संचालन होने लगता है, संक्रमण होता है। रोगकी चरमावस्थामें जब क्षय-कीटाणु माताके रक्तमें फैल जाते हैं तो उनमेंसे कुछ गर्भमें भी पहुँच जाते हैं, इसलिए ये पैतृकताके उदाहरण नहीं माने जा सकते।

अस्तु, यह स्पष्ट है कि सिद्धान्त-रूपमें जरायु मार्ग द्वारा क्षयरोगका अवतरण होना सम्भव है, परन्तु उपलब्ध साक्षीसे यह प्रकट है कि मनुष्योंमें ऐसा बहुत कम होता है। जन्मके बाद होनेवाले असंख्य संक्रमणोंका विचार करते हुए सहज-क्षयके इनेगिने उदाहरण समुद्रमें एक बूँदके समान प्रतीत होते हैं। जब कभी सहज क्षय होता भी है, तो ऐसी माताओंसे होता है जिनका रोग या तो चरमावस्थामें है या उनकी जननेन्द्रियोंमें है। ऐसी स्त्रियोंके सन्तान बहुत कम होती है। इस सम्बन्धमें यह बतलाना उचित प्रतीत होता है कि क्षयी माताओंके ऐसे अनेक बच्चोंकी परीक्षा की गई है जो मरे हुए उत्पन्न हुए हैं; परन्तु उनमें से किसीमें भी क्षय संक्रमणके चिह्न नहीं पाये गये।

मनुष्योंकी अपेक्षा पशुओंमें सहज-क्षय कुछ अधिक होता है। उनमें भी, जैसा कि अमेरिकाके डा० हार्लो ब्रुक्सने सिद्ध किया है, बहुत कम बच्चोंको क्षय होता है, यदि जन्म लेते ही उनको अपनी क्षयी माताओंसे पृथक् कर दिया जाय।

क्षयी पैतृकताके सम्बन्धमें रुग्नात्मक (Clinical) अनुभव

अनेक लोगोंने कईएक ऐसी रोगी-चिकित्सासे उपलब्ध घटनाएँ देखी हैं, जो क्षयरोग या क्षयी प्रकृतिको पैतृक न माननेपर समझमें नहीं आतीं। श्रीमर और उनके अनेक अनुगामियोंने इस बातका पता लगाया है कि बहुतसे परिवारोंमें माता-पिता और उनकी सन्तानमें एक ही आयुमें क्षयरोग होता है। पायरीने पता लगाया है कि कई परिवारोंमें बच्चे सोलह वर्षकी आयु प्राप्त करनेसे पूर्व क्षयरोगसे मर जाते हैं। उपरोक्त अनुभवोंके समर्थनमें कई और उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु फिर भी यह प्रतीत होता है कि अभी तक उनकी उतनी पर्याप्त संख्याका संकलन नहीं हुआ है, जिससे उनका महत्त्व निस्सन्देह सिद्ध हो सके। क्षयरोगका पारिवारिक होना, जैसे पैतृकताके प्रभावसे हो सकता है, वैसे ही रोगियोंके सन्निकट सम्पर्क (Close contact) के कारण संक्रमणकी अधिक सम्भावनासे भी हो सकता है।

श्रीमरका विचार है कि शरीरके कुछ स्थानोंमें प्रतिरोध-शक्ति कम होती है और ये न्यून शक्तिवाले स्थान पैतृक होते हैं। टरबन, बाल्डविन मोलर और कुथी इत्यादि विशेषज्ञोंने इस मतका समर्थन किया है। यह प्रायः देखा गया है कि जब माता-पिता और उनकी सन्तानमें फेफड़ोंका क्षय होता है, तो बहुधा दोनोंमें एक ही ओरका होता है। क्षयरोगकी यह पारिवारिक अनुरूपता लगभग ७५ प्रति शत रोगियोंमें पाई जाती है। मोलरका कहना है कि जब एक बच्चेमें अस्थि-क्षय (Bone-Tuberculosis) होता है, तो उसके भाई बहनोंमें भी जब रोग होता है, तो वह प्रायः अस्थि-क्षय ही होता है। उपरोक्त बातोंसे यह परिणाम निकलता है कि शरीरके कुछ अवयवोंमें प्रतिरोध-शक्ति कम होती है, जो पैतृक होती है। मेरी सम्मतिमें अभी तक इस प्रश्नपर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया है।

(शेष आगामी अंकमें)

अमेरिकाकी सार्वजनिक शिक्षा

श्री जोन डगडेल, बी० ए०

अमेरिकन कालेजोंपर एक सरसरी नज़र डालते ही किसी भी दर्शककी दृष्टि एक खास चीज़पर जा अटकेगी। वह न कालेजोंकी शानदार इमारतोंसे सम्बन्ध रखती है, न उनके धन-वैभवसे; वह है उनकी तादाद। ब्रिटेनसे अमेरिकाकी जनसंख्या तिगुनीसे अधिक नहीं है, पर उसके कालेजोंकी संख्या सौ-गुनी है! होना तो यह चाहिए कि अमेरिका जैसे नव-निर्मित देशके आगे सदियों बूढ़े ब्रिटेनके शिक्षालय ज़्यादा होते। आखिर इस अधिकताका कारण क्या है? इसका उत्तर अमेरिकाके उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिमें निहित है। कई लोगोंकी रायमें कालेज राष्ट्रकी विचार-धाराके उद्गम हैं, पर यह सत्य भी अटल है कि बीसवीं सदीमें राष्ट्रके उद्योग-धन्धे कालेजका निर्माण करते हैं। यूरोपवासियोंका विचार है कि बहुत बड़े परिमाणमें वस्तुओंका उत्पादन, विक्रय-नैपुण्य और सौभाग्य—इन तीन बातोंने अमेरिकनोंको सबसे अधिक वैभवशाली बना दिया है। इंग्लैंड सिर्फ़ आक्सफोर्ड और केम्ब्रिजपर गर्व कर सकता है, पर इस समय अमेरिकामें ४८ सरकारी और सैकड़ों प्राईवेट कालेज हैं। हाँ, इस बातको अमेरिकाके सभी प्रोफेसर स्वीकार करते हैं कि उनकी शिक्षा-प्रणाली उतनी उच्च नहीं है, जितनी आक्सफोर्ड और केम्ब्रिजकी। फिर भी यह बात न भूलनी चाहिए कि स्वयं इंग्लैंड भी आक्सफोर्डकी ऊँची कसौटीपर खरा नहीं उतर सकता। जनसाधारणको ऐसी उच्च शिक्षा-प्रणालीसे कोई लगाव हो ही नहीं सकता, और अमेरिकाने यह निश्चय कर लिया है कि जनसाधारणको शिक्षित किया जाय; बल्कि यह कहना चाहिए कि वहाँ स्वयं जनसाधारणने ही अपने आपको शिक्षित करनेका इरादा कर लिया है। इसी सार्वजनिक शिक्षा-आन्दोलनके फल-स्वरूप अमेरिकाके कालेजोंका जन्म हुआ है।

एक विद्वान्के कथनानुसार अमेरिकाके कालेजोंमें विद्यार्थी तीन अभिप्रायोंसे प्रेरित होकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। किसी बड़े कारखानेमें अच्छी जगह प्राप्त करनेके लिए यूनिवर्सिटीकी शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है। इस कारण वहाँ कालेज जानेवालोंकी तादाद बहुत है। उन्हें साहित्य अथवा विज्ञानके ज्ञानसे कोई सरोकार नहीं है। कारोबारमें सफलता प्राप्त करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य होता है। इसके विपरीत ब्रिटेनके वाणिज्य-जगतमें कालेजकी डिग्रियोंकी कोई क़दर नहीं है। वहाँ व्यावहारिक अनुभवके बलपर ही कोई अपना सिक्का जमा पाता है। जब अमेरिकाके व्यापार-संसारमें प्रवेशके लिए यूनिवर्सिटी-डिग्रीका टिकट अपरिहार्य हो गया, तो वहाँके कारबारियोंने विश्वविद्यालयोंको सहायता देना आरम्भ किया। इसका नतीजा यह हुआ कि वहाँकी शिक्षा कारबारके ढाँचेमें ढलकर रह गई। वहाँ 'शिक्षित'का मतलब अब 'व्यापारिक जीवनके उपयुक्त' है; यही नहीं, अब तो कालेजोंमें हिसाब-किताब, क्रय-विक्रय और विज्ञापनबाज़ीकी शिक्षा बड़े धड़ल्लेसे दी जाने लगी है। अच्छे-से-अच्छे साहित्यिक विद्यार्थीको अब कोई प्रवाह ही नहीं। विश्वविद्यालयोंमें तो अब नया 'व्यापारिक शिक्षाक्रम' भी प्रचलित हो गया है। इन सब बातोंके कारण उनमें पढ़नेवालोंकी तादाद बढ़ गई है।

जो कुछ भी हो, यह 'शिक्षण-क्रान्ति' फ़ायदेसे खाली नहीं है। जो लोग स्कूलसे निकलकर कालेजमें कभी जाना ही नहीं चाहते थे, वे भी अब व्यापारी बननेकी आशासे विश्वविद्यालयमें पढ़ने लगे हैं। अशिक्षित रहनेकी अपेक्षा क्रय-विक्रय और बही-खातेकी शिक्षा ही ग़नीमत है। कुछ आदमियोंके उच्चशिक्षा-प्राप्त होनेकी अपेक्षा बहुतोंका मामूली पढ़ा-लिखा होना कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

उक्त विद्वानने दूसरे प्रकारके विद्यार्थियोंका नाम रखा है 'किंडरगार्टन विद्यार्थी'। वे सिर्फ़ गुलछर्रे उड़ाने और खेल-कूदके लिए कालेज जाते हैं। उनके मां-बाप आराम करनेके लिए अपनी थैलियोंका मुँह उनके लिए खोल देते हैं। शिक्षाके प्रति वे सर्वथा उदासीन होते हैं। सैर-सपाटेके लिए ही वे कालेजोंमें पड़े रहते हैं।

अमेरिकामें विद्यार्थियोंकी एक और भी श्रेणी है, जिनकी ज्ञान-तृष्णा कभी कुछ भी दिखाई नहीं देती। वे खुद नहीं जानते कि वे क्या सीखना चाहते हैं। उनकी शिक्षा-पद्धतिका सबसे निकृष्ट रूप उन पुस्तिकाओंमें मिलता है, जिनमें उन्हें बताया जाता है कि किस प्रकार वे छै महीनेके अन्दर सुसंस्कृत हो सकते हैं और योग्यता-पूर्वक बातचीत करना सीख सकते हैं, तो भी इसमें सन्देह नहीं है कि संसारमें अमेरिका ही एक ऐसा देश है, जो अपनी प्रजाको विश्वविद्यालयकी शिक्षा देनेका प्रयत्न कर रहा है।

थोड़े-बहुत ऐसे आदमी भी मिलेंगे, जो सच्ची ज्ञान-पिपासासे प्रेरित होकर शिक्षा प्राप्त करते हैं। कुछ किताबोंको रटकर या प्रोफेसरकी मददसे इम्तिहान पास करके वे अपने कर्तव्यकी इतिश्री नहीं समझ लेते, बल्कि वे अपनी आँखोंसे देखते हैं और अपने दिमाग़से ग़ौर करते हैं। ऐसे लोग राष्ट्रके प्राण और नेता होते हैं। अमेरिकाकी संस्कृति और सभ्यताकी बागडोर उन्हींके हाथमें है, लेकिन इस बातका डर है कि कहीं 'कारबारी बवंडर' इन ज्ञान-पिपासुओंको उड़ा न ले जाय।

चाहे आधुनिक अमेरिकाकी 'कालेज-प्रणाली'के महत्त्वपर हमें भरोसा हो या न हो, पर 'शिक्षक-पद्धति'के उपयोगपर तो सन्देह किया ही नहीं जा सकता। कालेजोंमें तो यही होता है कि प्रोफेसर साहब क्लासमें खड़े होकर धुँआधार लेक्चर फटकार देते हैं और विद्यार्थी बिना पूछ-ताछ किये आँख मूँदकर उसे लिखते जाते हैं, पर 'शिक्षक-पद्धति' (Tutorial system) में विद्यार्थियोंको हमेशा अध्यापकोंके साथ रहने और विचारोंका आदान-प्रदान करनेका मौक़ा मिलता है। जिस मनुष्यको जीवनके अनुभवोंके साथ काफ़ी किताबी ज्ञान हो, उसके संसर्गमें रहकर एक नातजुर्बेकार नौजवानको कितना फ़ायदा पहुँच सकता है! इस पद्धतिसे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि विद्यार्थियोंको स्वयं सोचने-समझनेका अभ्यास पड़ जाता है। इस पद्धतिके प्रचलनके अर्थ यह हैं कि अमेरिका सार्वजनिक शिक्षाके उच्चतम शिखरपर पहुँच चुका है, यानी अब वह व्यक्तित्व-निर्माण करने जा रहा है। इसके विपरीत, आक्सफोर्डने अपनी गोदमें अनेकों धुरन्धर पंडितोंको जगह दी, पर वह सार्वजनिक शिक्षाकी ओर अब तक क़दम नहीं बढ़ा सका।

बात तो यह है कि कोई भी शिक्षा-प्रणाली किसी देशकी जनताको दार्शनिक नहीं बना सकती। आक्सफोर्डकी सर्वश्रेष्ठ शिक्षा-प्रणाली कई सदियोंसे चली आ रही है, तो भी वहाँ हर साल ऐसे हज़ारों विद्यार्थी मिलेंगे, जो न अपनी आँखोंसे देखते हैं, न अपने कानोंसे सुनते हैं।

इन सब बातोंका सार यह है कि अमेरिकाकी कालेज-प्रणालीने सबसे पहले जनसाधारणको यूनिवर्सिटी-शिक्षा देनेका प्रयत्न किया। अन्य देशोंकी कालेज-पद्धतिसे उसकी तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि उसका रास्ता बिलकुल जुदा है; मगर इस कोशिशमें उसने 'विशिष्ट शिक्षा' का कोई ध्यान नहीं रखा। अमेरिकाकी यूनिवर्सिटीकी तुलना आक्सफोर्डसे नहीं, बल्कि किसी जन-शिक्षालयसे की जा सकती है, जहाँ किसी होशियार लड़केको भी बेवकूफ़ साथियोंकी हाँ-में-हाँ मिलानेके लिए लाचार होना पड़ता है। स्कूलके समान वहाँ भी 'ज्ञान'के बदले 'जानकारी'से प्यास बुझानी पड़ती है, और इसका सबब यही है कि सार्वजनिक शिक्षाकी मँझधारमें 'विशिष्ट शिक्षा' की नाव डूब गई है; मगर आज प्रतिक्रियाकी एक लहर उठती दिखाई पड़ रही है। योग्य व्यक्ति-विशेषके सिरपर फिरसे जनसाधारणकी सरदारीका सेहरा बँधने वाला है। जिस उच्च भावनासे प्रेरित होकर अमेरिका अपनी प्रत्येक सन्तानको शिक्षा देनेके लिए तुला हुआ है, उसीका नाम लेकर आज वह हरएक पढ़े-लिखे आदमीमें 'व्यक्तित्व' का भाव उत्पन्न करनेके लिए तैयार हो गया है, लेकिन यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता; क्योंकि जनसाधारणका अधिकांश खुद अपने लिए सोचने समझनेके लिए तैयार नहीं हो सकता। व्यक्तिवादकी सफलताके लिए अमेरिकाको उन लोगोंको आज़ाद कर देना चाहिए, जो अपने हिताहितको समझ सकते हैं। यदि अमेरिका 'व्यक्तित्व'को निर्मूल किये बिना जनसाधारणको शिक्षित बना सका, तो वह एक ऐसा महान् कार्य करेगा जिसकी कल्पना भी आज तक यूरोपने नहीं की है।

साहित्य-सेवी और साहित्य-चर्चा

[यह विभाग, उल्लेख-योग्य तथा पठनीय पुस्तकोंका सरसरी निगाहसे संक्षिप्त वर्णन करनेके लिए खोला गया है। साथ ही इसमें साहित्यिकों तथा उनकी रचनाओंके विषयमें भी कुछ बातें रहा करेंगी। यह कहना अनावश्यक है कि 'समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार' विभागसे यह बिलकुल भिन्न है, और पाठक इसमें गम्भीर आलोचना पढ़नेकी आशा न करें। इसका एकमात्र उद्देश्य लेखकों और साहित्य सेवियोंकी कृतियों तथा उनके सम्बन्धकी अन्याय बातोंकी चलती हुई चर्चा करना है —सम्पादक]

स्वतंत्र पत्रकारका प्रयोग

मैं क्यों फेल हुआ ?

कोई हिन्दी-साहित्य-सेवी पत्रोंमें लेख लिखकर जीविका निर्वाह कर सकता है या नहीं ? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसपर विचार करनेकी आवश्यकता है। हिन्दीमें पत्र पत्रिकाओंकी संख्या बढ़ती जाती है, और आगामी पन्द्रह-बीस वर्षके भीतर उनकी संख्या कम-से-कम दुगुनी हो जायगी और ग्राहक-संख्या तो आजसे चार-पाँच गुनी होनेकी सम्भावना है। इस समय भी हिन्दीमें अनेक पत्र ऐसे हैं, जो अपना खर्च स्वयं चला रहे हैं, और कुछ तो मुनाफेमें भी चल रहे हैं। लेखकोंके पास प्रति मास दो-चार चिट्ठियाँ ऐसी आती ही रहती हैं कि अमुक पत्रके लिए लेख भेजनेकी कृपा कीजिये। जिन लेखकोंके पास घरकी ज़मीन-जायदाद है या जिनके यहाँ जीविकाके कुछ अन्य साधन हैं, वे भले ही बिना पैसे लिये लेख भेज सकें, पर गरीब लेखकोंसे यह आशा करना कि वे बराबर हमारे यहाँ मुफ्तमें ही लेख भेजते रहेंगे, उनपर ज़ुल्म करना है।

पत्रकारोंका पेशा कितना खतरनाक है, यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं। आप दस वर्षसे किसी पत्रमें काम कर रहे हैं, अचानक किसी दिन मालिकसे झगड़ा हो गया, बस, आपकी नौकरी छूट गई; अब आप हवा खाइये। ऐसी दशामें बेचारा पत्रकार क्या करे ? 'अस्य दग्धोदरस्यार्थे' उसे कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। उस समय लेख लिखकर जीविका उपार्जन करनेकी बात उसे सूझ सकती है। वह खयाल कर सकता है कि जब तक कोई दूसरी नौकरी न मिले, तब तक किसी प्रकार यही काम करना चाहिए ; पर क्या कोई हिन्दी-लेखक लेख लिखकर जीविका चला सकता है ? विलायतमें भी, जहाँ पत्रोंकी और पत्रकार-कलाकी इतनी उन्नत अवस्था है, स्वतंत्र पत्रकारोंका जीवन संकटमय ही रहता है, तो फिर हिन्दुस्तानमें, और सो भी हिन्दी-पत्रोंके भरोसे, स्वतंत्र पत्रकार बननेका प्रयोग करना--अत्यन्त खतरनाक है। हिन्दीके किन-किन लेखकोंने यह प्रयोग किया और कहाँ तक सफलता पाई, इसका मुझे पता नहीं। मैंने भी इस प्रयोगको करनेकी मूर्खता अथवा धृष्टता की थी, और उसमें मैं असफल हुआ। क्यों असफल हुआ, यह आगे चलकर बताऊँगा।

जीविका-निर्वाहके स्टेन्डर्ड जुदे जुदे हैं। किसीकी गुज़र पचीस-तीस रुपये मासिकमें हो सकती है और कोई सौ सवासौमें भी गुज़र नहीं कर सकता। कटु अनुभवके बाद मेरा यह निश्चित मत है कि किसी गृहस्थ आदमीको, जिसे सात-आठ प्राणियोंकी उदर-पूर्तिकी चिन्ता हो, हिन्दी पत्रोंकी वर्तमान स्थितिमें यह प्रयोग हर्गिज़ न करना चाहिए। फी-सदी चार-पाँच आदमियोंको इसमें भले ही सफलता मिल जाय, पर ९५ फी-सदीको निरपराध भोले बच्चोंका कष्ट देखना पड़ेगा, सती-साध्वी पत्नीको रुलाना होगा और वृद्ध माता-पिताको चिन्ताग्रस्त बनाना होगा।

आश्रमके १३०) मासिक निश्चित वेतन और बिना किरायेके घरको छोड़कर महात्माजीके मना करनेपर भी, मैंने यह निश्चय किया कि मैं लेख लिखकर काम चलाऊँगा। अपनी लेखनीपर अभिमान था, और यह भी जानता था कि इतने सम्पादकोंसे जान-पहचान है, किसी-न-किसी तरह

गुज़र हो ही जायगी। बड़े उत्साहके साथ कार्य प्रारम्भ कर दिया। आकांक्षा थी कि स्वतंत्र पत्रकार (Free lance journalist) बनूँगा। व्यर्थ अहंकार कहिए या मूर्खता, अनुभवी आदमियोंसे मैंने पूँछा भी नहीं कि इसमें सफलता मिल भी सकती है या नहीं। इस प्रयोगके बीचमें एक बार इलाहाबादमें श्रीमती सरोजिनी नायडूके दर्शन हुए। पूछा—"आजकल आप क्या कर रहे हैं?"

मैंने जवाब दिया—"Free lance journalism"

ध्यानपूर्वक मेरी ओर देखकर उन्होंने कहा—"यह तो भूखों मरनेकी तय्यारी है। स्वाधीन देशोंमें भी, जहाँ प्रेस इतने उन्नत हैं, स्वतंत्र पत्रकारका जीवन खतरेसे खाली नहीं। कोई दूसरा काम तलाश करो।"

इसी बीचमें एक बार मेरे दक्षिण-अफ्रिका जानेके विषयमें 'सर्वेन्ट आफ इंडिया'के सम्पादक मि० वझेने महात्माजीको लिखा। महात्माजीको मेरे प्रयोगका हाल मालूम था। उन्होंने अपने पत्रमें और बातोंके साथ एक वाक्य यह भी लिखा था—

"Benarsi Das has unnecessarily impoverished himself" 'बनारसीदासने निरर्थक ही अपनेको निर्धन बना लिया है।'

श्री गणेशशंकर विद्यार्थीने अपनी बातको और भी ज़ोरदार शब्दोंमें कहा—"आत्म-त्याग और आत्म-घात दो अलग-अलग चीज़ें हैं।" पर हितोपदेशके उस जीवकी तरह 'यस्य स्वयं प्रज्ञा नास्ति मित्रोक्तं न करोति यः' मैं प्रयोग करता ही गया। परिणाम जो होना था, वही हुआ। बेतरह फेल हुआ, लेकिन इस असफलतासे कुछ लाभ भी हुए, और वही मैं अपने सहयोगियोंके लाभार्थ यहाँ लिख देता हूँ।

सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मुझे अपनी लेखनीपर जो अभिमान था, वह सदाके लिए जाता रहा। कवीन्द्र रवीन्द्रने अपनी 'गीतांजलि'के प्रथम गीतमें परमात्मासे प्रार्थना की है—

"आमार माथा नत करे दाउ हे
तोमार चरन धूलोर तले
सकल अहंकार हे आमार
डुबाउ चोखेर जले"

सारा अहंकार नेत्र-जलमें धुल गया।

जिन पत्रों और महानुभावोंसे इस प्रयोगमें मुझे सहायता मिली, उनका उल्लेख न करना कृतघ्नताकी बात होगी। 'माधुरी' 'चाँद' और 'सरस्वती'ने मुझे दो रुपये प्रति पृष्ठ देनेके लिए कहा। 'आज'ने २) प्रति कालम देनेका वचन दिया। श्री गणेशशंकर विद्यार्थीने प्रति पृष्ठ ५) देनेके लिए कहा। श्री रामजीलालजी शर्माने १॥) प्रति पृष्ठ देनेकी प्रतिज्ञा की। 'अभ्युदय' सम्पादक श्री कृष्णकान्तजी मालवीयने तथा 'श्रीकृष्ण-सन्देश' सम्पादक श्री लक्ष्मणनारायण गर्देने भी आश्वासन दिया कि लेखोंपर पुरस्कार मिला करेगा। श्री रामदेव चोखानीने लिखा कि 'भारत-मित्र'में लिखिये, पुरस्कार बराबर भेजा जायगा। अंग्रेज़ीके कई पत्रोंने भी, जिनमें 'लीडर' और 'इंडियन डेली मेल' मुख्य हैं, पुरस्कार देनेकी बात कही। 'लीडर'ने ६) प्रति कालम और 'डेली मेल'ने ५) प्रति कालमका वचन दिया। इस सिलसिलेमें यह कह देना भी आवश्यक है कि सन् १६१२से सन् १६२५ तक, जब तक कि मुझे जीविकाके लिए चिन्ता नहीं थी, मैंने सैकड़ों ही लेख हिन्दी तथा अंग्रेज़ी पत्रोंको बिना पुरस्कार लिये ही भेजे थे। पहले-पहल पुरस्कार जो मुझे बिना माँगे ही प्राप्त हुआ था, वह श्री शिवनारायण मिश्र द्वारा 'प्रभा'के एक लेखके लिए भेजा गया था।

सबसे बड़ी कठिनाई जो मेरे सामने आई, वह यह थी कि रोज़-रोज़ आखिर क्या लिखा जाय? बम्बई, कलकत्ता, प्रयाग इत्यादि किसी बड़े नगरमें, जहाँ अच्छे-अच्छे पुस्तकालय और वाचनालय हैं, लेखकोंके लिए मसाला मिलना आसान है, पर साधारण नगरोंमें यह कठिनाई पहाड़पर चढ़ाई जैसी प्रतीत होती है। प्रवासी भारतीयोंके विषयमें मेरे पास बहुत कुछ मसाला था, और इस विषयपर मैंने अनेक लेख लिखे भी, पर आखिर एक ही राग कहाँ तक अलापता? नतीजा यह हुआ कि महीनेमें ज्यों-त्यों करके चालीस रुपयेसे अधिकके लेख न लिख सका।

दूसरी कठिनाई थी संकोचकी—जिन लोगोंकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती, उनमें सम्भवतः अपनेको छोटा

समझनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। वे समझने लगते हैं कि हमारे आसपासके आदमी हमें हिकारतकी निगाहसे देखते हैं, और इसमें शक नहीं कि कितने ही दुनियवी आदमी योग्यता अथवा अयोग्यताकी तौल उसकी आर्थिक दशासे करते हैं। 'यदि वे सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' तक ही रहें, तब भी ग़नीमत है, पर वे तो 'दारिद्र्यदोषो गुणराशि नाशी' समझते हुए बेचारे निर्धन आदमीको और भी पतित समझने लगते हैं। सामाजिक मामलोंमें भी ग़रीब आदमीकी आफ़त ही है। इस प्रकार एक ऐसा वायुमंडल तैयार हो जाता है, जिसमें स्वाभिमानकी साँस लेना कठिन प्रतीत होता है। संकोचकी प्रवृत्ति और भी बढ़ जाती है।

मैं जानता था कि 'प्रताप' कुछ मुनाफ़ेमें नहीं चल रहा, 'प्रताप'वाले लष्टम-पष्टम अपना काम चला रहे हैं, इसलिए 'प्रताप' के पुरस्कारको मैंने आर्थिक सहायता ही समझा और 'अभ्युदय' तो सरासर घाटेमें चल रहा था, इसलिए उसका पुरस्कार देना मैं श्री कृष्णकान्तजीकी उदारता ही समझता रहा। इन पत्रोंसे मनी-आर्डर आनेपर कुछ थोड़ी सी आत्म-ग्लानि अवश्य होती थी। इसीलिए 'प्रताप'में चार-पाँच महीनेसे अधिक न लिख सका और 'अभ्युदय'के लिए तीन-चार लेख ही लिखे। अब मैं समझता हूँ कि इस प्रकारका संकोच अनुचित है। जो पत्र मुनाफ़ेसे चल रहे हैं या अपना खर्च स्वयं चला लेते हैं, उनसे पुरस्कार लेनेमें तो किसी तरहका संकोच न होना चाहिए; पर जो घाटेमें चल रहे हैं, उनसे भी लेनेमें संकोच क्यों किया जाय? आगे चलकर वे मुनाफ़ेसे चलेंगे, तब उस मुनाफ़ेसे ग़रीब लेखकोंको, जिन्होंने पिछले वर्षोंमें बिना पैसा लिये लेख लिखे हैं, कुछ दे तो न देंगे। दर-असल स्वतंत्र पत्रकारका पेशा एक व्यापारी जैसा है। कोई आटा बेचता है, कोई लकड़ी बेचता है, कोई कपड़ा बेचता है और हम लोग लेख बेचते हैं!—"आहारे व्यवहारे च त्यक्त लज्जा सुखी भवेत्" वाली कहावत बिलकुल ठीक है, और बेचारा स्वतंत्र पत्रकार तो 'सुखी' होनेका लक्ष्य सामने नहीं रखता, वह तो किसी प्रकार उदरपूर्ति करना चाहता है।

तीसरी कठिनाई थी समयपर पुरस्कार मिलनेकी—सिर्फ़ लेख छपनेसे ही तो काम नहीं चल सकता था। 'इंडिया खुद-बुद' करनेके लिए रुपयोंकी आवश्यकता है, और हिन्दी-पत्रोंके कार्यालयोंमें यह वस्तु बहुमतसे नहीं पाई जाती। समयपर पुरस्कार न आनेके कारण मैं सम्पादकोंको मन-ही-मन बहुत कोसा करता था—पत्रोंमें डाँट बतानेके कुसंस्कारको मैंने तब भी आश्रय नहीं दिया—पर अब यह बात मेरी समझमें आ गई है कि दोष वास्तवमें सम्पादकका बहुत कम होता है, पत्र-स्वामीकी आर्थिक स्थिति ही इसके लिए विशेषतः उत्तरदायी है। घाटेमें चलनेवाले पत्रोंका हिसाब भी आगेको चलता है। हज़ार कोशिश करनेपर भी वक्तपर लेखकोंके लिए पुरस्कारका पैसा नहीं निकल पाता। इसपर लेखकों द्वारा सम्पादकपर जो डाँट पड़ती है, उसका भी अनुभव अब मुझे हो गया है। कोई नालिश करनेकी धमकी देता है, तो कोई दूसरे पत्रोंमें लेख छपाकर ही अपने हृदयको सन्तुष्ट करता है। एक सज्जनने पुरस्कार मिलनेके बाद भी अपनी उदारताका परिचय किसी पत्रमें लेख लिखकर दिया था। भुक्तभोगी होनेके कारण उस झुँझलाहटको मैं खूब जानता हूँ, जो समयपर पारश्रमिक न मिलनेसे होती है; पर जो आदमी स्वतंत्र पत्रकार बनना चाहता है, उसके मनमें असीम धैर्य होना चाहिए। क्रुद्ध होकर हम लोग अपनी ही हानि अधिक करेंगे।

पंजाबके एक पत्रने, जिसका मैं नाम नहीं लेना चाहता और न उससे बदला ही लेनेकी इच्छा है, मुझे बहुत तंग किया। बीसियों चिट्ठी भेजनेपर भी लेखोंके लिए पुरस्कार न मिला न मिला।

चौथी कठिनाई यह है कि जिस आदमीको दैनिक भोजनकी चिन्ता हो, उसकी कार्यकारिणी शक्ति कम हो

जाती है। रचनाका कार्य निश्चिन्ततामें हो सकता है। चिन्ताग्रस्त होनेपर भी जो आदमी सात-आठ घंटे परिश्रम कर सके, वह वास्तवमें धन्य है। पहले मैं यह खयाल किया करता था कि जब मैं अपने चौबीस घंटोंका मालिक हो जाऊँगा, तब बहुत काम कर सकूँगा; पर अनुभव यह हुआ कि पहलेसे भी कम काम कर सका। फिर भी मैं पूर्ण स्वाधीनताका पक्षपाती हूँ, वह इसलिए कि जब तक आदमी ठोकरें नहीं खाता, तब तक उसकी अक्ल ठिकाने नहीं आती और न उसे अपनी त्रुटियाँ ही ज्ञात होती हैं।

इस प्रयोगसे मुझे अपनी स्वभावगत त्रुटियाँ अच्छी तरह मालूम हो गईं। बहुत बातचीत, बहुत मिलनसारी और मेल-जोल स्वतन्त्र पत्रकारके मार्गमें बाधक हो सकते हैं। पत्रकारको अन्य आदमी अपने मनोरंजनका साधन बनानेकी फिक्रमें रहते हैं। कोई-कोई कहते हैं—"इन्हें क्या फिक्र है? एक कालम लिख दिया, तीन-चार रुपये कमा लिये!" दस-पन्द्रह रुपये जेबमें डालकर कचहरीसे लौटनेवाले वकील, गँवारोंको ठगनेवाले बजाज लालाजी या दूसरोंकी बीमारीका स्वागत करनेवाले डाक्टर साहब अपनी फुरसतके वक्तमें जब किसी पत्रकारसे पूँछते हैं—"हाँ, भई, तुम्हें तो अखबारी दुनियाके सब हाल मालूम हैं, बताओ फलाँ मामला कैसे है," तो धैर्य धारण करना कठिन हो जाता है। यदि कोई आदमी स्वतंत्र पत्रकार बननेका प्रयोग करना चाहता है, तो उसे कहीं एकान्तमें सात-आठ घंटे परिश्रम करना ही पड़ेगा, और उस समय गप्प लड़ानेकी दुष्प्रवृत्ति दूर कर देनी होगी।

स्वतंत्र विचारोंके स्वतंत्र पत्रकारके मार्गमें पुलिसवाले भी काँटे बिछाते हैं। छोटे-छोटे नगरोंमें तो उनके अत्याचारोंका क्या ठिकाना है! पुलिसके सिपाहियोंने मेरे आसपासके आदमियोंसे पूँछना शुरू किया कि चौबेजीकी आमदनीका जरिया क्या है? एक-दो नहीं, कई आदमियोंसे यही सवाल किया। उन लोगोंने हमसे ज़िक्र किया। मनमें तो आया कि कह दूँ कि मास्कोके लेनिनकी सरकारने तीन लाख 'रुबिल' भेज दिये हैं, उन्हींसे गुजर चलती है, पर सोच-समझकर यह बात, जो सत्यसे बहुत दूर थी, नहीं कही। पुलिसके अशिक्षित सिपाही और असंस्कृत दारोगेको कैसे समझाता कि स्वतंत्र पत्रकारत्व का प्रयोग कर रहा हूँ। साधारण जनताके लिए एक उत्तर मैंने सोच रखा था, जिसमें सत्यका बहुत कुछ अंश अवश्य था। जब कोई पूँछता—"कहिये, आजकल स्थायी आमदनी क्या है?" मैं यही जवाब देता—"आप देखते ही हैं, पुलिन्देके पुलिन्दे अखबार आते हैं। बस, इनकी रद्दी बेचकर गुज़र करता हूँ।" बात वास्तवमें ठीक थी। स्थायी आमदनी यही थी। रद्दी चार-पांच रुपये महीनेकी बिक जाती थी। उन दिनों यह एक अच्छी रकम थी और अब भी उपेक्षणीय नहीं है।

अपने उन दो-ढाई वर्षोंके प्रयोगमें केवल कटु अनुभव ही हुए हों, सो बात नहीं, अनेक मधुर अनुभव भी हुए। 'माधुरी' 'लीडर' और 'आज'से पुरस्कार लेनेमें मुझे संकोच नहीं हुआ, क्योंकि इन पत्रोंके स्वामी धनवान हैं। पुरस्कारोंका ज़िक्र करते हुए श्री दुलारेलाल भार्गवका नाम न लेना घोर कृतघ्नताकी बात होगी। 'माधुरी'के लेखकोंको पुरस्कार देकर उन्होंने हिन्दी-मासिकपत्रोंमें इस प्रथाको अच्छी प्रेरणा दी, यद्यपि उनके पूर्व 'सरस्वती' भी खास-खास लेखोंपर पुरस्कार दिया करती थी। पर जिन पत्रोंने मुझे जीविका निर्वाह करनेमें ही नहीं, बल्कि जीवित रहनेमें भरपूर मदद दी, वे थे 'लीडर' और 'आज'। 'लीडर'के कालम मेरे लिए बराबर खुले हुए थे।

यद्यपि मैं अपने प्रयोगमें सफल नहीं हो सका। शायद पारिवारिक परिस्थिति या मेरी निजी स्वभावगत त्रुटियाँ ही इस असफलताके लिए जिम्मेवार थीं, पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि दूसरे पत्रकार निराश हो जायँ। इस प्रकारके प्रयोग बराबर जारी रहने चाहिए। पत्रोंके स्वामियोंको 'दद्दा'का पाठ पढ़ाना चाहिए। उन्हें बतला देना चाहिए कि गरीब पत्रकारोंसे मुफ्तमें लेख लिखाकर जो पत्र-स्वामी धनवान बनना चाहते हैं, वे बालूपर दीवाल बना रहे हैं।

प्रत्येक सम्पादकका कर्तव्य है कि वह अपने पत्रके

स्वामीसे यह अनुरोध करे कि एक निश्चित रक़म, चाहे वह साठ-सत्तर रुपये मासिक ही हो, लेखकोंसे लेख लिखानेके लिए रखे। आज जो सम्पादक हैं, कल वे दैव-दुर्विपाकसे घर बैठ सकते हैं और तब यह प्रथा उनके लिए भी लाभदायक होगी। जो पत्रकार आपद्ग्रस्त बन्धुओंकी सहायता नहीं कर सकते, उनको हम सफल पत्रकार कैसे कह सकते हैं?

जो लेखक स्वतंत्र पत्रकार बननेका प्रयोग करना चाहें अथवा परिस्थितियोंके कारण जिन्हें थोड़े कालके ही लिए यह काम करना पड़े, उनकी सेवामें दो-चार बातें निवेदन करके अपने इस लेखको समाप्त करूँगा।

(१) आवश्यक यात्राओंके लिए तथा देश-विदेशके पत्रोंके खरीदनेके लिए कुछ रुपया अवश्य अलग रख लेना ठीक होगा।

(२) अधिकसे अधिक पत्रकारोंसे मेल-मुलाहिज़ा रखना अत्यन्त आवश्यक है।

(३) स्वतन्त्र पत्रकारके लिए असीम धैर्यकी अनिवार्य आवश्यकता है। यदि लेख अस्वीकृत हो जाय अथवा पुरस्कार देरमें आवे, तो क्रुद्ध हो जाना हानिकारक है। बेचारे सम्पादकोंको डाँट बताना तो अनुचित ही नहीं, कुछ अन्याययुक्त भी है।

(४) स्वतन्त्र पत्रकार बनना भी एक प्रकारका व्यापार है। इसमें विशेष सहानुभूतिकी आशा करना ठीक नहीं। अगर आपका माल अच्छा है और बिक्रीकी कला आप जानते हैं, तो आप अपने लेखोंसे जीविका चला सकते हैं, अन्यथा नहीं।

(५) यह आशा करना कि हमारे लेख किसी पत्रमें प्रति सप्ताह या प्रति मास अवश्य छप जायँगे, अनुचित है। किसी भी सम्पादकके लिए ऐसा वचन देना अत्यन्त कठिन है।

अन्तमें मुझे इतना ही कहना है कि समझदार आदमी मूर्खोंके अनुभवसे लाभ उठाते हैं। जिन त्रुटियोंके कारण मैं फेल हुआ, उनसे दूर रहना ही ठीक होगा।

अभी तो नहीं, पर पचीस-तीस वर्ष बाद ऐसा ज़माना हिन्दी-पत्रकारोंके लिए आ जायगा, जब कि स्वतन्त्र पत्रकार सफलता-पूर्वक अपनी जीविका निर्वाह कर सकेंगे। हाँ, यदि हिन्दीमें कोई लार्ड नार्थक्लिफ हो जायँ, तो दूसरी बात है। अच्छी पूँजी लगाकर एक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र निकालनेवाला एक कल्पनाशील आदमी ही स्वतन्त्र पत्रकारोंके स्टेटस (स्थिति) को साल दो सालमें काफी बढ़ा सकता है। वह तुरंत ही ऐसे आदमियोंका मान-भंजन कर सकता है, जो इस बातपर अभिमान करते हैं कि हमने तो किसी लेखकको आज तक लेखकी लिखाई दी नहीं। फिर प्रतियोगिताके कारण उन्हें भी मजबूर होकर स्वतंत्र पत्रकारोंकी खुशामद करनी पड़ेगी।

अपने प्रयोगकी असफलतापर मुझे विशेष पश्चात्ताप नहीं, जो है उसका कारण नहीं बतलाऊँगा। सहृदय पाठक अनुमान कर सकते हैं। महात्माजीने ८ मई सन् १९२४के 'यंग-इंडिया' में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वाक्य लिखा था—

"We must dare to act according to our honest convictions even though there may be danger of our making terrible mistakes. Swarajya is a way of government by tests, trials and mistakes. It is a thousand times better that we are undone through our mistakes than that we avoid them through the perpetual guidance of a man be he ever so wise."

अर्थात्—"हमें अपने सच्चे विश्वासके अनुसार कार्य करनेका साहस करना चाहिए, चाहे उसमें भयंकर भूलोंके होनेका खतरा क्यों न हो। स्वराज्य एक ऐसी शासन-व्यवस्था है, जो परीक्षाओं, प्रयोगों और भूलोंपर स्थित है। हम किसी अन्य व्यक्तिका—वह चाहे कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो—चिरस्थायी सहारा लेकर भूलोंको बचाते रहें, इससे यह हज़ार गुना बेहतर है कि हम अपनी भूलोंके द्वारा असफल हों।"

आत्म-विज्ञापनके लिए नहीं, बल्कि अपने पत्रकार भाइयोंके लाभके लिए अपने प्रयोगकी इतनी विस्तृत चर्चा मैंने कर दी है। यदि दूसरे सज्जन भी इस विषयके अपने अनुभव लिखेंगे, तो उन्हें सहर्ष इन कालमोंमें स्थान दूँगा।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'प्रबन्ध-मंजरी'—आकार मझोला। मूल लेखक, प० हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य; सम्पादक, साहित्याचार्य प० पद्मसिंह शर्मा। प्रकाशक, पं० काशीनाथ शर्मा, काव्यतीर्थ, काव्यकुटीर-कार्यालय, ग्राम नायक-नगला, पोस्ट आफ़िस चाँदपुर (बिजनौर, यू० पी०)। पृष्ठ-संख्या ४४+२०८। मूल्य १।।) । प्रकाशकसे प्राप्य।

संस्कृत-भाषाके विरोधियोंका कहना है कि इस मृत-भाषाके पढ़नेसे क्या लाभ? देशकी आर्थिक तथा व्यवसायिक उन्नतिके मार्गमें इस पुरानी भाषाके द्वारा व्यर्थ रोड़े अटकाना कहाँकी बुद्धिमानी है? इस प्रकारके 'मुहेरोंके' वदनको नहीं, किन्तु 'वदनविवर' बन्द करनेवाली 'प्रबन्धमजरी' देववाणीके उपासकोंके सम्मुख प्रस्तुत है। इस पुस्तकमें स्वर्गीय पं० हृषीकेश भट्टाचार्यके ग्यारह निबन्धों तथा मंगलाचरणका संग्रह है। भट्टाचार्यजीका जीवन-चरित, जो इस पुस्तकमें सम्मिलित है, इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जिसे किसी बातकी लगन हो, वह किस प्रकार अपने उद्देश्यकी पूर्ति कर सकता है। चारों ओर विघ्नोंकी भरमारसे बिलकुल न घबराकर भट्टाचार्य महोदयने अनेक कष्टोंका सामना करते हुए भारतवर्षमें सबसे पहला संस्कृतका 'विद्योदय' नामक मासिकपत्र चलाया। भट्टाचार्यजीकी भाषाकी तो कहना ही क्या है! नवीन विचारसरणि, नये-नये शब्दोंका आविष्कार तथा नये भावोंकी अभिव्यक्ति और वह भी गठीली तथा ओजस्विनी भाषामें, यदि कहीं देखना हो तो देखिए इस पुस्तकमें। भट्टाचार्यजीने अन्योक्तियोंके द्वारा मानव-समाजकी अनेक त्रुटियाँ पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर डाली हैं—स्वार्थपरायणता, धनलोलुपता दम्भ तथा अभिमानकी धज्जियाँ बखेर दी हैं। सामयिक नीति-रीतिपर बहुमूल्य विचारोंकी भरमार है। खेद है कि भट्टाचार्यजीको इस पुस्तकको परिपूर्ण-रूपमें न देख पाये।

पुस्तकका सम्पादन भी साहित्य-महारथी, आलोचक-शिरोमणि, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा संस्कृतके अनन्य विद्वान् पं० पद्मसिंह शर्माके कर-कमलों द्वारा हुआ है। यदि भट्टाचार्यकी वाणी बाणभट्टसे टक्कर लेती है तो सम्पादक महोदयकी भी उससे कम नहीं! ऐसा सुन्दर, प्रसन्न तथा गुथा हुआ वाक्यविन्यास पढ़ते ही बनता है। प्रबन्ध-परिचायक गुण-दोष-निरूपण पं० हरिदत्त शर्मा तथा काशीनाथ शर्माके द्वारा किया गया है। इस समालोचनात्मक वक्तव्यसे पुस्तकका गौरव और भी बढ़ गया है। पुस्तकके अन्तमें दी हुई भारतवर्षके उद्भट विद्वानोंकी सम्मतियाँ ही पुस्तककी सार्थकता तथा उपयोगिताके विषयमें पर्याप्त हैं, हमारा कथन तो पुनरुक्ति-मात्र है। 'मुद्रण-पिशाच' (Printer's Devil) की करतूतें इस ग्रन्थमें हैं अवश्य, परन्तु हमें आश्चर्य उनकी छोटी संख्यापर है। न मालूम भारतवर्षमें वह समय कब आवेगा, जब यह 'शिष्टपरम्पराचार-प्राप्त' 'शुद्धि-पत्र' पुस्तकोंमें दृष्टिगोचर होना बन्द हो जाय। हम इस सर्वथा उपादेय तथा बहुमूल्य ग्रन्थको महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्माके कथनानुसार विश्वविद्यालयोंके कर्णधारोंके सम्मुख उपस्थित करते हैं और आशा करते हैं कि वे पाठ्यक्रममें इसका संनिवेश कर संस्कृत-साहित्यको उन्नति प्रदान करेंगे।

—हरदत्त शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०

* * *

'नेहरू-स्मृति'—प्रकाशक हिन्दी-साहित्य-मन्दिर, १६५।१, हरीसन रोड कलकत्ता, मूल्य ।।) । छपाई-सफ़ाई, अत्युत्तम, सुन्दर रेशमी फीतेसे बंधा हुआ।

यह भारतके अन्यतम नेता स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरूकी स्मृतिमें उनके तथा उनके सुप्रसिद्ध परिवारके व्यक्तियोंके सुन्दर चित्रोंका सुरम्य अलबम है। अलबममें नेहरूजीकी प्राय: सभी अवस्थाओंके सुन्दर चित्र हैं। समूचा अलबम 'आर्ट पेपर' पर सुन्दर सीपिया रंगमें छपा है। मोतीलालजी, जवाहरलालजी तथा उनके परिवारके अनेकों चित्रोंके अतिरिक्त संसारके सर्वश्रेष्ठ पुरुष महात्मा गांधी तथा स्वर्गीय देशबन्धु दासके चित्र भी अलबममें दिये गये हैं, जिससे उसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। स्वर्गीय मोतीलालजीकी स्मृतिमें पास रखने और बन्धु-बान्धवोंको उपहारमें देनेके लिए यह बड़ी सुन्दर वस्तु है!

शिवाजीकी स्वाधीन राज-स्थापना

सर यदुनाथ सरकार

मुग़लोंके हाथसे क़िला छुड़ाना

औरंगजेबके दरबारसे भागनेके तीन वर्ष बाद (सन् १६६७-१६६९), तक शिवाजी चुपचाप रहे। परन्तु सन् १६७० के जनवरी महीनेके शुरूमें ही उन्होंने फिर लड़ाई छेड़ दी। दक्षिणके मुग़ल अफसर लड़ाईके लिए बिलकुल ही तैयार न थे। शिवाजीने चारों ओर बड़े वेगसे आनन-फाननमें चढ़ाईकर ऐसी गड़बड़ मचाई, जिससे वे एकदम घबरा गये। उनकी मातहतीमें कितने ही गाँव लूट लिये गये। पुरन्दरकी सन्धिमें बादशाहको जो सत्ताईस क़िले मिले थे, उनमेंसे बहुतसे बादशाहके हाथसे निकल गये। मुग़ल अफसरोंमेंसे बहुतेरे तो अपने-अपने क़िलों या थानोंमें लड़कर काम आ गये और जो बाक़ी बचे, वे हताश हो स्थान छोड़कर भाग गये।

इनमें से कोंडाना जीतनेकी कहानी आज भी महाराष्ट्र देशके लोग कहा करते हैं। शिवाजीने अपने बड़े मोटे मावले सेनापति और लंगोटिया यार मालसरेको इस क़िलेके ऊपर चढ़ाई करनेको भेजा। ४ फरवरी (माघ कृष्ण नवमी) को तीन सौ चुने-चुने मावले सिपाहियोंको लेकर तानाजी अँधेरी रातमें रस्सीकी सीढ़ी लगाकर उत्तर-पश्चिमकी ओरसे पहाड़पर चढ़ गये। वहाँके जंगली कोली-जातिके लोगोंने उनको गुप्त राह दिखा दी। क़िलेमें पहुँचकर बादशाही पहरेदारोंको मारकर वे लोग भीतर घुसे। उदयभान और उनके राजपूत-सिपाही क़िलेकी रखवाली करते थे। 'दुश्मन आया है'--यह हल्ला सुनते ही वे उस तरफ आगे बढ़े, लेकिन जाड़ेकी रातमें अफीमखोर राजपूत-सिपाही जल्दी बिछौना नहीं छोड़ सके। इसी बीच मराठोंने क़िलेके एक हिस्सेपर अच्छी तरह कब्ज़ा कर लिया। जैसे ही राजपूत सैनिकगण उनके सामने पहुँचे, वैसे ही मराठे 'हर हर महादेव' कहते हुए उनके ऊपर टूट पड़े। उदयभानने तानाजीको अकेले द्वन्द्व युद्धके लिए ललकारा। तानाजीने ललकार स्वीकार कर ली। दोनों वीर तलवारें लेकर एक दूसरेपर पिल पड़े, और दोनों ही एक दूसरेकी तलवारसे मारे गये; लेकिन तानाजीके भाई सूर्याजी सामने आकर बोला—"सैनिको! भाई मर गये, लेकिन कुछ डर नहीं है। हम तुम्हारे नेता होंगे।" दूसरी ओर राजपूत सैनिकगण नेताके मर जानेसे कुछ देरके लिए घबरा-से गये। उसी वक्त मराठोंने उनके ऊपर हल्ला बोल दिया। इसी बीचमें क़िलेका दरवाज़ा खोल देनेसे मराठे सिपाही सुगम रास्तेसे क़िलेमें घुस आये। अन्तमें इस लड़ाईमें बारह सौ राजपूत खेत रहे। बहुतसे पहाड़के ऊपरसे भागते हुए नीचे गिर पड़े और मर गये।

विजयी मराठोंने क़िलेके भीतर अस्तबलमें घासके ढेरमें आग लगा दी। पाँच कोसके फासलेपर राजगढ़के क़िलेसे उस उजेलेको देखकर शिवाजी समझ गये कि उनकी जीत हुई। दूसरे दिन जब क़िला जीतने और तानाजीके मरनेका समाचार मिला, तब वे दु:खके साथ बोले—"क़िला तो मिल गया, पर सिंह खो गया।" उन्होंने कोंडानेका नाम बदलकर 'सिंहगढ़' रखा और तानाजीके परिवारको बहुत कुछ इनाम दिया।

इस प्रकार कोंडाना, पुरन्दर, कल्याण-भिवंडी और माहुली वग़ैरह बहुतसे क़िले शिवाजीके हाथ लगे। मुग़ल सेनापतियोंमें केवल दाऊद खाँ कुरेशीने लड़ाई छेड़कर कुछ रोकनेकी कोशिश की, लेकिन वह अकेला किस-किस तरफ सम्हालता?

दक्षिणमें मुग़लोंका घरेलू झगड़ा

औरंगज़ेबने शिवाजीकी नई चढ़ाईकी बात सुनते ही और भी बहुतसी सेना और कई सेनापति महाराष्ट्रको रवाना

किये, लेकिन उससे भी कुछ फायदा न हुआ। आपसके घरेलू झगड़ोंके कारण उनकी सब चेष्टाएँ विफल हुई। दक्षिणके सूबेदार राजकुमार मुअज्ज़म थे और उनके प्रियपात्र थे यशवन्तसिंह। इन दोनोंके साथ दक्षिणके सबसे बड़े मुग़ल वीर और सेनापति दिलेर खांकी जानी दुश्मनी थी। उसके ऊपर, चुग़लखोरोंने बादशाहसे चुग़ली खाई कि राजकुमार खुद मुख़तार होनेकी कोशिशमें हैं। एक दल दूसरे दलकी शिकायत बादशाहसे करता था। दिलेरको डर हुआ कि अगर सूबेदारके साथ भेंट करने जाय, तो राजकुमार उसे क़ैद कर सकता है! अन्तमें एक दिन (अगस्त, १६७०) गहरी वर्षाके बीच महाराष्ट्र देश छोड़ दिलेरखां जान लेकर उत्तर भारतकी ओर भागा। मुअज्ज़म और यशवन्तने फौज लेकर ताप्ती नदी तक उसका पीछा किया। साथ ही ऐसे नमकहराम अफसरको दबानेके लिए शिवाजीसे भी मदद माँगी।

इसका फल यह हुआ कि चारों ओर शिवाजीका जय-जयकार सुनाई देने लगा। कहीं भी उनको बाधा देनेवाला कोई न था। अंगरेजी कोठीके साहबने लिखा—"शिवाजी पहले चोरकी तरह चुपचाप जल्दी-जल्दी चलते थे। अब तो उनकी वह अवस्था नहीं है। अब वे एक शक्तिशाली फौज ले तीन हज़ार लड़ाकोंके साथ देश जीतते हुए आगे बढ़ रहे हैं। शाहज़ादेके इतने नज़दीक रहते हुए भी वे उसकी कुछ परवाह नहीं करते।"

शिवाजीका दूसरी बार सूरत लूटना

सन् १६७० की तीसरी अक्टूबरको शिवाजीने फिर सूरत बन्दर लूटा। एक महीने पहले ही से चारों ओर यह बात सुनाई पड़ती थी कि वे कल्याण शहरमें बहुतसे घुड़सवार इकट्ठा कर रहे हैं और पहले सूरत ही पर चढ़ाई करेंगे। अंग्रेज़ लोगोंको इस लूटके बारेमें यहाँ तक निश्चय था कि उन्होंने पहले ही से अपनी सूरतकी कोठीका सब रुपया-पैसा, माल-असबाब और यहाँ तक कि काम चलानेवाली सभाके सदस्यों तकको सुहायली भेज दिया था। सूरतके मुग़ल हाकिम इतने आलसी और अन्धे थे कि इतने बड़े धनी शहरकी रक्षाके लिए उन्होंने सिर्फ टूटरूटे तीन सौ आदमियोंकी फौज रख छोड़ी थी!

तीसरी अक्टूबरके सवेरे शिवाजी पन्द्रह हज़ार सेनाके साथ सूरतमें घुसे। उसके पहले दिन और रातको तमाम हिन्दुस्तानी वणिक और सरकारी अफसर (!) शहर छोड़कर भाग गये थे। सन् १६६४ की पहली लूटके बाद बादशाहके हुक्मसे सूरतके चारों ओर ईंटकी एक दीवार खड़ी की गई थी, लेकिन वह इतनी मामूली थी कि शिवाजीके पन्द्रह हज़ार सैनिकोंके सामने इने-गिने तीन सौ मुग़ल चौकीदार उसकी आड़में खड़े नहीं हो सके, और वे क़िलेके भीतर भाग गये।

दो दिन तक मराठोंने यह सूना शहर लूटा। डच-कोठीमें खबर भेजी—"अगर तुम लोग चुपचाप रहोगे, तो तुम लोगोंका कुछ नुक़सान न होगा।" उन लोगोंने वैसा ही किया। फ्रेंच कोठीके साहबोंने क़ीमती चीज़ भेंट देकर मराठोंको खुश किया। सुहायलीसे आये हुए पचास जहाज़ी गोरोंने, जो प्रसिद्ध स्ट्रेन्सथाम मास्टरकी मातहतीमें थे, अंग्रेज़ी कोठीकी रक्षा की। मराठोंका एक दल उसे लूटने गया था, परन्तु अंग्रेज़ोंकी अचूक बन्दूकोंकी गोलियोंने उस दलके इतने आदमियोंका शिकार किया कि फिर उस तरफ आगे बढ़नेकी किसीकी हिम्मत न पड़ी। पारसी और तुर्की बनियोंके क़िलोंकी तरह 'नई सराय' भी बच गई।

फ्रेंच कोठीके सामने 'तातार सराय'में काशगरके निकाले हुए राजा अब्दुल्ला खां मक्कासे कुछ दिन पहले लौटकर ठहरे हुए आराम करते थे। नज़दीकके कुछ पेड़ोंकी आड़से मराठे पहले दिन इस सरायके ऊपर गोली छोड़ने लगे। इससे सरायके भीतर बैठना नामुमकिन हो गया। फल यह हुआ कि सरायके लोग रातको ही भीतरसे निकलकर भाग गये। मराठोंने राजाकी धन-सम्पत्ति, औरंगज़ेबका दिया हुआ सोनेका पलंग और बहुतसी क़ीमती भेंटकी चीज़ें लूट लीं।

अब मराठोंने बेरोक-टोक बड़े-बड़े मकान लूटकर, सूरतसे ६६ लाख रुपयोंका मालमत्ता ले, पाँचवीं अक्टूबरके दोपहरको

शहर छोड़ दिया। लूटके बाद उन लोगोंने बहुतसी जगहोंमें आग भी लगा दी थी, जिससे क़रीब क़रीब आधा शहर जलकर खाक़ हो गया। पहले दिनके धावेमें अंग्रेज़ोंकी गोलीसे बहुतसे मराठे सैनिक मारे गये थे, इसलिए शिवाजीके सिपाही बदला लेनेके लिए तीसरे दिन अंग्रेज़ी कोठीके सामने आकर "कोठी जला देंगे" कहकर चिल्लाने लगे; लेकिन उनके नेताओंको मालूम था कि फिर आक्रमण करनेसे और भी लोग मारे जायँगे। अन्तमें मराठों और अंग्रेज़ोंके बीच एक समझौता-सा हुआ। दो अंग्रेज़ बनियोंने शहरके बाहर शिवाजीके शिविरमें जाकर लाल बनात, तलवारें और अस्त्र उपहारमें दिये। शिवाजी उन लोगोंसे अच्छी तरह पेश आये, और उनका हाथ पकड़कर बोले—"अंग्रेज़ हमारे दोस्त हैं, हम इन लोगोंको किसी तरहकी हानि न पहुँचावेंगे।"

सूरतकी दुर्दशा

सूरत छोड़ते समय शिवाजीने शहरके हाकिम और खास-खास व्यापारियोंके नाम इस मज़मूनकी एक चिट्ठी भेजी कि अगर वे उनको हरसाल बारह लाख रुपये कर न देंगे तो वे अगले वर्ष शहरके बाक़ी मकान भी जलाकर खाक़ कर डालेंगे।

मराठोंके शहरसे बाहर निकलते ही शहरके ग़रीब, जो भागे नहीं थे, सबके सब मकानोंमें घुस पड़े और जो कुछ बाक़ी था, सब लूटने लगे। अंग्रेज़ी कोठीके जहाज़ी गोरोंने भी इस लूट-पाटमें भाग लिया!

तीन दिन तक जिस समय सूरतमें लूट हो रही थी, उस समय पाँच छै कोस पच्छिम सुहायली बन्दरमें अंग्रेज़ोंके गोदाम और कोठीमें सूरत कोठीके साहब लोग, सूरत नगरके शाह-बन्दर (जहाज़ी मालके दारोगा), मुख्य क़ाज़ी और बड़े-बड़े हिन्दू, मुसलमान तथा आरमेनियन व्यापारियोंने पनाह ली। वहाँ भी मराठोंके आनेका दो एक दिन तक हल्ला उड़ा था, जिससे सब लोग बहुत डरे और घबरा गये; परन्तु अंग्रेज़ोंने नदीके किनारे आठ तोपें लगाकर बन्दर बचानेका बहुत बढ़िया बन्दोबस्त किया था और सौभाग्यवश कोई आपद भी न आई।

इस प्रकार इने-गिने विदेशी दूकानदारोंने तो मराठोंको तुच्छ समझकर अपना बल दिखाया और 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' के हाकिम और फौज डरके मारे भाग गई! यह दृश्य देख देशके लोग चकरा गये। सूरतके सबसे बड़े महाजन हाजी सैयद बेगके लड़केने सुहायलीमें शरण मिलनेपर कहा था—"हम बाल-बच्चोंके साथ बम्बई चले जायँगे, अब बादशाही राजमें न रहेंगे।"

एक कहावत है—बाघ जिसको घायलकरके छोड़ देता है, वह आदमी यदि बादमें बच भी जाय, तो मुर्देके समान हो जाता है। शिवाजीकी दो-दो बार लूटके बाद सूरतकी भी वही हालत हुई। शिवाजी इधर आ रहे हैं, मराठी सेना सूरतसे पचास कोस दक्षिणकी ओर कोली-देशमें घुस गई है, ऐसी अफवाह आये दिन सूरत पहुँचने लगीं। लोग शहर छोड़ छोड़कर भागने लगे। देखते-देखते वह बड़ा बन्दर रेतीले मैदानकी तरह सुनसान, जन-विहीन हो गया। अंग्रेज़ और दूसरे यूरोपियन व्यापारी अपनी-अपनी कोठी खाली कर रुपये और असबाब जल्दी जल्दी सुहायली भेजने लगे।

हर साल ऐसा ही होने लगा। इसका नतीजा यह हुआ कि भारतके सबसे बड़े बन्दरका व्यापार और वैभवका लोप हो गया।

डिंडोरीकी लड़ाई

५वीं अक्टूबरको सूरत छोड़कर शिवाजीने दक्षिण-पूर्व बगलाना प्रदेशमें प्रवेश किया और मूलके क़िलेके नीचेके सब गाँव लूटने लगे। इसी बीचमें शाहज़ादा मुअज़्ज़म दिलेर खांका पीछा करते हुए बुर्हानपुरके पास तक जा पहुँचा। वहांसे उसे बादशाहके हुकमसे औरंगाबाद लौटना पड़ा। औरंगाबादका लौटनेपर उसे दूसरी बार सूरतकी लूटका पता लगा। उसने उसी दम दाऊद खांको मराठोंके विरुद्ध भेजा। दाऊद खांने चन्दौर क़िलेके पास पहुँचकर सुना कि

वहाँसे पाँच कोस पश्चिमकी ओर, लम्बे पहाड़के बीच, एक छोटे रास्तेसे शिवाजी बगलानासे उतरकर उत्तर-महाराष्ट्र (नासिक ज़िलेमें) घुसेंगे। आधी रातको मुग़लोंके चरोंने पक्की खबर दी कि शिवाजी इस घाटीको पारकर आधी फौजके साथ नासिककी ओर बढ़ रहे हैं, और उनको बाक़ी आधी फौज असबाब और पृष्ठ-रक्षाके लिए इसी पहाड़की घाटीमें खड़ी है।

दाऊद खां उसी समय आगे बढ़े। वह कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीका दिन था। तीसरे पहर रातको चाँद डूबा। अँधेरेमें मुग़ल फौज पहाड़ पारकर इधर उधर छितरा गई। उसके अग्रभागके नेता थे प्रसिद्ध बहादुर पठान इखलास खां मियाना। सवेरा होते ही (१७ अक्टूबरको) उन्होंने एक छोटे पहाड़के ऊपरसे देखा कि नीचेकी भूमिमें मराठा सैनिक लड़ाईके लिए तैयार, उनकी ओर मुँह फेरे खड़े हैं। मुग़ल सिपाही ऊँटोंसे उतरकर हथियार उतारकर साज-सामान ठीक करने लगे, लेकिन इखलास खांको यह देर बिलकुल अच्छी न लगी। वे थोड़ेसे आदमियोंको साथ ले शत्रुओंपर जा टूटे, परन्तु मराठे आठ हज़ार थे। फिर उनके बड़े-बड़े नेता प्रतापराव (सेनापति), आनन्दराव इत्यादि भी मौजूद थे। इखलास खां शीघ्र ही घायल हो घोड़ेसे गिर पड़े। कुछ देर बाद दाऊद खां भी आ पहुँचे और साथ ही बहुतसे सैनिक भी आ पहुँचे।

सवेरेसे लेकर छै-सात घंटे तक बड़े ज़ोरकी मार-काट होती रही। मराठे योद्धा मुग़लोंके चारों ओर घोड़े दौड़ा इस प्रकार घूमने लगे, मानो उसके सब रास्ते ही रोक देंगे। दाऊद खांके दलके बहुतसे सैनिक मारे गये और बहुतसे घायल हुए, लेकिन बुन्देला राजपूतोंकी बन्दूकोंके डरके मारे मराठे नज़दीक नहीं आये। अन्तमें दाऊद खांने खुद रणभूमिमें आकर तोपोंके बलसे शत्रुओंको भगाकर अपने पक्षके घायलोंको बचाया।

दोपहरके समय दोनों ओरके सैनिकगण थक गये और लड़ाई बन्दकर भोजन करने चले गये। सन्ध्याको पहले ही मराठे फिर चढ़ाई कर बैठे। मराठे थे आठ हज़ार और दाऊद खांके साथ थे केवल दो हज़ार आदमी। फिर भी तोपोंके ज़ोरसे शाही दलकी रक्षा हुई। रातको मराठी सेना कोंकणकी ओर चली गई। अब तक मराठोंका काम समाप्त हो गया था, एक दिन एक रात मुग़लोंको वहाँ रोककर उन्होंने सूरत और बगलानाकी लूटकी चीज़ें मज़ेमें अपने देश पहुँचा दीं।

डिन्डोरीकी लड़ाईका फल यह हुआ कि एक महीनेसे भी अधिक तक मुग़ल कुछ न कर-धर सके। दाऊद खां घायल लोगोंको लेकर नासिक, औरंगाबाद और अहमदनगरमें जाकर आराम करने लगे, लेकिन इस साल (सन् १६७०) के अन्तमें उन्हें फिर उसी जगह आना पड़ा।

बरार और बगलानाकी पहली लूट

सूरतकी लूटके बाद मराठे डेढ़ महीने तक चुपचाप रहे, लेकिन सन् १६७० के दिसम्बरके शुरूमें शिवाजी फिर फौजके साथ बाहर निकले। रास्तेमें चन्दौरगिरिकी चोटियोंमें अहिवन्त और कई एक ऊँचे पहाड़ी क़िले जीतकर वे बगलाना होते हुए तेज़ीसे खानदेश प्रदेशमें जा घुसे, और उसकी राजधानी बुर्हानपुर शहरके बाहरके सब गाँव लूट लिये। फिर शीघ्र ही पूर्वकी ओर घूमकर बरारके उपजाऊ और धनी प्रदेशपर चढ़ाई कर दी। आज तक मराठे इतनी दूर कभी नहीं आये थे, इसीलिए बरारका कोई भी व्यक्ति इस आकस्मिक विपत्तिके लिए तैयार नहीं था। शिवाजीने बिना रोक-टोक मनमाने ढंगपर करिंजा नामके बड़े धनी शहरसे एक करोड़ रुपयेकी धन-सम्पत्ति, गहने और क़ीमती कपड़े वसूल किये। लूटका माल चार हज़ार बैलों और गधोंपर लादा गया, और शहरके प्रायः सभी धनिकोंको रुपये वसूल करनेके लिए* क़ैदकर शिवाजी बरारके दूसरे शहरोंको लूटनेके लिए चले गये। वहाँ भी उन्होंने खूब धन

* परन्तु करिंजाके सबसे धनी महाजन नहीं पकड़े गये। वे औरतका वेश धरकर साफ भाग गये। उनको मालूम था कि जिस जगह शिवाजी खुद हाज़िर हैं, वहाँ कोई मराठा औरतके ऊपर हाथ छोड़नेकी हिम्मत नहीं करेगा।

लूटा। अन्तमें सब जगहके लोगोंने मारे डरके शिवाजीको लिखा कि हम लोग प्रति वर्ष आपको चौथ (शाही मालगुजारीका चौथा हिस्सा) दिया करेंगे।

मुगल जैसी चाहिए वैसी बाधा नहीं दे सके। बरारके बादशाही सूबेदार आलसी और धीरे-धीरे नवाबी चालसे चलनेवाले थे। दूसरी ओर खानदेशके सूबेदार और कुमार मुअज्ज़मके बीच ऐसी अनबन थी कि दोनोंमें मुठभेड़ होने तककी सम्भावना थी।

शिवाजी जब स्वयं बरार गये, उस समय उनकी मराठी फौजका एक दल पेशवा मोरो त्र्यम्बकके अधीन पश्चिम-खानदेश लूट रहा था। बरारसे शिवाजी लौटकर फिर बगलाना आये, उस समय उस दलने उनके साथ मिलकर सालके नामी क़िलेको (५ जनवरी १६७१) जीता और मूलके, घोड़प इत्यादि दूसरे बड़े पहाड़ी क़िलोंको घेर लिया। बहुतसे गाँवोंको लूटा और अन्नका आना-जाना रोक दिया। नतीजा यह हुआ कि इस प्रान्तमें मुगल घबरा उठे। उन लोगोंमें न तो अपनी रक्षा करनेका बल ही था और न कोई बड़ा नेता ही।

शिवाजी और बुन्देला छत्रसालसे भेंट

सन् १६७० के अन्तमें जिस समय यह लड़ाई जारी थी, उसी समय सुप्रसिद्ध बुन्देला वीर, राजा चम्पतरायके पुत्र, छत्रसाल शिवाजीसे भेंट करने आये। छत्रसालने बादमें पन्नाका राज और छत्रपुरका शहर स्थापित किया था। छत्रसाल बहुत दिन तक राज करके सन् १७३१ में मरे, परन्तु इस समय सन् १६७० में वे केवल धन-वैभवहीन नौजवान ही थे और दक्षिणमें मुगल फौजमें कम वेतनके एक मनसबदार थे। इस नौकरीसे ऊबकर छत्रसाल एक दिन शिकारके बहाने अपनी स्त्रीके साथ मुगल खेमोंसे निकल पड़े और विकट रास्तेसे महाराष्ट्र पहुँचकर शिवाजीके अधीन बादशाहके विरुद्ध लड़नेके लिए सेनापतिका पद चाहा, परन्तु शिवाजी दक्षिणियोंको छोड़ भारतके किसी अन्य प्रान्तके लोगोंका विश्वास नहीं करते थे और न ऊँचा पद ही देते थे। उन्होंने छत्रसालको यह कहकर विदा किया—"वीरवर! जाओ, अपना देश अधिकार कर वहाँ राज्य स्थापन करो और शत्रुओंको जीतो। तुमको वहीं जाकर युद्ध करना अच्छा है, क्योंकि तुम्हारे कुलके नामपर बहुतसे लोग तुमको मदद देंगे। अगर मुगल तुमपर धावा करेंगे, तो हम इधरसे उनके ऊपर टूट पड़ेंगे, और इस तरह दो शत्रुओंके बीच पड़नेसे वे सहज ही में परास्त होंगे।" छत्रसाल खिन्न हो लौट आये। *

शिवाजीका बगलानापर अधिकार करना

सन् १६७० में, सालभर तक शिवाजीका विलक्षण तेज, उनकी अनोखी तेज़ी, उनका विभिन्न दिशाओंको जीतना और सुदूर-स्थित प्रदेशका लूटना आदि देखकर बादशाह औरंगज़ेब बड़े फेरमें पड़े। पहले तो उन्होंने महावत खांको दक्षिणका मुख्य सेनापति नियुक्त किया और उनके साथ दाऊद खांको रख दिया। साथ ही महावतके जाति-भाई राजा अमरसिंह चन्दावतको बहुतसी राजपूत फौज, रुपया-पैसा और रसद देकर महाराष्ट्र भेजा।

महावत खां १० जनवरी सन् १६७१ को औरंगाबाद पहुँचकर कुछ दिन बाद चान्दौर ज़िलेमें गये। बस, इसी बीच उनमें और उनके मददगार दाऊद खांमें लड़ाई हो गई। तीन महीने तक मुगल यहाँ कुछ भी कर-धर न सके। यद्यपि शिवाजी घोड़प-क़िलेके धावेमें विफल हुए थे (दिसम्बरके अन्तमें), परन्तु दूसरे ही महीने उन्होंने सालके क़िलेको जीत लिया। मार्च मासके शुरूमें दाऊद खांने मराठोंके हाथसे अहिवन्तगढ़ छीन लिया। उसकी इस बड़ाईसे महावत खां डाहसे पागल हो गये। उसके बाद फिर लड़ाई नहीं हुई। मुख्य सेनापति फौजके साथ नासिक और उसके बाद पारनेर शहरमें छै महीने तक आराम करते और तवायफ़का नाच देखते रहे!

---

* उन्होंने पीछे क्या किया, उसका विवरण हमारी 'History of Aurangzib', Vol. 5 ch 61 में और Irvines Later Mughals II ch. 9 में है।

यह सब समाचार सुनकर बादशाहने क्रुद्ध हो, सन् १६७१ के अक्टूबर महीनेमें बहादुर खां और दिलेर खांको गुजरातसे महाराष्ट्र भेजा। ये दोनों नामी सेनापति सालके क़िलेको रोकनेके लिए इखलास खां मियाना, राजा अमरसिंह चन्द्रावत और दूसरे कर्मचारियोंको भेजकर, खुद अहमदनगरसे होते हुए पूना ज़िलेपर आक्रमण करने चले। दिलेर खांने पूनापर कब्ज़ा करके, नौ वर्षसे कम उम्रवाले बालकोंको छोड़कर और सब लोगोंकी हत्या करवाई, लेकिन इसके एक ही महीने बाद मुग़लोंने जबर्दस्त हार खाई। बगलानामें मुग़लोंका जो दल सालके क़िलेको घेरे हुए था, उसपर सन् १६७२ की जनवरीके अन्तमें प्रधान सेनापति प्रतापराव, दूसरे सेनापति आनन्दराव और पेशवा मोरे त्र्यम्बकने अनगिनत फौज ले अकस्मात आक्रमण किया। मुग़लोंका दल जी-जानसे लड़ा, पर संख्यामें कम होनेसे कुछ न कर सका। राजा अमरसिंह, अन्य बहुतसे सेनापति और हज़ारों मामूली सिपाही मारे गये। साथ ही अमरसिंहके पुत्र मुहकम सिंह, इखलास खां और तीस प्रधान कर्मचारी मर और क़ैद हुए। उनकी सारी जायदाद और तोपें मराठोंके हाथ आईं।

उसके बाद ही पेशवाने मूलका क़िला जीता। इससे सारे बगलाना-प्रदेशमें मराठोंका निष्कंटक आधिपत्य हो गया। बगलाना सूरतके रास्तेमें है। चारों ओर शिवाजीके नामका आतंक छा गया, सब डरके मारे काँपने लगे। दोनों मुग़ल सेनापति (बहादुर और दिलेर खां) लड़ाईमें हारकर शर्मके मारे सिर नीचा किये हुए अपनी सीमा अहमदनगरको लौट आये। पूना और नासिकके ज़िले (मराठोंके देश) मुग़लोंसे खाली हो गये।

इधर मार्च महीनेमें सत्नामी विद्रोह और अप्रेलके महीनेमें खैबर घाटीके पठानोंके साथ लड़ाई छिड़ जानेसे औरंगज़ेब इतना व्यस्त हो गया कि कुछ दिन तक उसे दक्षिणके लिए रुपये और फौज भेजना बिलकुल असम्भव हो गया। जून महीने (सन १६७२ ई०) में शाहज़ादा मुअज्ज़मकी जगहपर बहादुर खां दक्षिणका हाकिम नियुक्त हुआ। राजकुमार और महावत खां दोनों उत्तर-भारतमें बुला लिये गये।

कोली-देशपर अधिकार

शिवाजीके नामकी जय-जयकार अब चारों ओर सुनाई पड़ती थी। सूरतसे दक्षिण बम्बईकी तरफ आनेमें जो पहाड़ और जंगली देश पड़ता है, उसमें कोली नामक एक लुटेरोंकी जाति रहती है। उस समय यहाँ दो छोटे-छोटे राज थे—धरमपुर (राजधानी रामनगर, वर्तमान नाम 'नगर', सूरतसे ६० मील दक्षिणमें है) और जौहर (राम नगरसे ४० मील दक्षिणमें है)। इस रामनगरके ठीक पूर्वकी ओर सह्याद्रि पर्वत पार होनेपर नासिक ज़िला या उत्तर-महाराष्ट्र पड़ता है। सन् १६७२ की पाँचवीं जूनको पेशवा मोरो त्र्यम्बकने जौहरपर अधिकार कर लिया। वहाँके राजा विक्रमशाह मुग़ल राजमें भाग गये। इसके कुछ दिन बाद रामनगरपर भी कब्ज़ा किया गया। वहाँके राजा सोमसिंहने पोर्चुगीज शहर डेमनमें आश्रय लिया।

मराठोंका अड्डा नज़दीक जमनेके कारण सूरत शहर डरसे काँपने लगा। रामनगरसे पेशवाने सूरतके हाकिम और मुख्य महाजनोंके नाम लगातार तीन पत्र भेजकर उनसे चार लाख रुपया कर चाहा, और यह धमकी दी कि इतना रुपया न देनेसे वे सूरतपर कब्ज़ा कर लेंगे। आखिरी चिट्ठीमें शिवाजीकी ओरसे यह लिखा था—"हम यह तीसरी और आखिरी बार तुम लोगोंसे कहते हैं कि सूरत प्रान्तकी मालगुज़ारीका चौथाई हिस्सा यानी चौथ हमारे पास भेजो। तुम्हारे बादशाहने हमें अपने देश और अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए भारी फ़ौज रखनेको मजबूर किया है, इसलिए शाही रैयत ही इस फौजका खर्चा देगी। यदि ये रुपये जल्दी न भेज सको, तो हमारे लिए एक बड़ा मकान तय्यार कर रखो; क्योंकि हम वहाँ जाकर रहेंगे और सूरतकी मालगुजारी तथा वहाँ आने जानेवाली चीज़ोंकी चुंगी वसूल करेंगे। इस बातमें हमें बाधा दे सकनेवाला तुम लोगोंमें कोई भी आदमी नहीं है।"

इस चिट्ठीके मिलनेके बाद सूरतमें सलाहके लिए एक सभा बैठी। शहरके बाशिन्दे और आसपासके गाँवोंके मुखियोंपर तीन लाख रुपये चन्दा वसूल करनेका भार पड़ा, पर बहुत विचारके बाद लोगोंने कुछ भी न दिया, क्योंकि वे भलीभाँति जानते थे कि शहरका मुग़ल हाकिम ये रुपये खा जायगा, मराठोंको शान्त करनेके लिए कुछ भी न देगा।

उसके बाद जितनी बार मराठोंके इस ओर आनेका समाचार मिलता, सूरतके लोग भागनेका रास्ता ढूँढ़ते फिरते थे। यह कांड अनेक वर्षों तक चलता रहा।

सन् १६७२ के जुलाई महीनेमें पेशवाने नासिक ज़िलेमें घुसकर लूटना आरम्भ कर दिया। वहाँके दो मुग़ल थानेदार हारकर भाग गये। अक्टूबर और नवम्बरमें मराठे घुड़सवार तेज़ीसे बरार और तेलिंगनामें घुसकर रामगिर ज़िलेको लूटने लगे। मुग़ल-सेनापति बहादुर खां किसी तरह भी उन्हें न पकड़ सका। मराठे शीघ्र ही अपने देशको लौट आये, लेकिन मुग़लोंने दूर तक पीछा करके उनके हाथसे बहुतसे लूटे हुए घोड़े और महाजनोंका माल छीन लिया। औरंगाबादके पास एक छोटीसी लड़ाईमें मराठे हार गये। इसी कारण उनकी इस बारकी बरारपर चढ़ाई क़रीब-क़रीब बिलकुल ही विफल हुई।

बीजापुरके साथ शिवाजीका संधि-भंग करना

दूसरी साल (सन् १६७३ में) महाराष्ट्रमें कोई लड़ाई अथवा विशेष हानि-लाभ नहीं हुआ। सूबेदार बहादुर खां भीमानदीके किनारे पेड़गाँवमें डालकर घाटके रास्तेपर पहरा देने लगा।

इसी साल शिवाजीने अपना जन्मस्थान शिवनेर-क़िला ले लेनेकी चेष्टा की। औरंगज़ेबने इस क़िलेको अब्दुल अज़ीज खां नामक एक ब्राह्मण मुसलमानके ज़िम्मे रखा था। वह जैसा विश्वासी था, वैसा ही चालाक और चतुर भी था। शिवाजीने उसको 'पहाड़के समान रुपयेका स्तूप' घूसमें देना चाहा। उसने भी उसे स्वीकार करनेका बहाना करके एक रातको क़िला छोड़ देनेका वादा किया। उस रातको शिवाजीकी सात हज़ार फ़ौज क़िलेके पास पहुँची, परन्तु अब्दुल खांने इसी बीचमें बहादुर खांको चुपचाप खबर कर दी। मराठे अपने-आप ही फन्देमें फँस गये। उनमेंसे बहुतेरे मरे, अनेकों जख़मी हुए और बाक़ी सब हताश हो लौट गये।

परन्तु दूसरी ओर शिवाजीके लिए एक बड़े सुयोगका मार्ग खुल गया। २४वीं नवम्बर (सन १६७२) को बीजापुरके राजा अली आदिलशाह द्वितीय मर गये, और उनकी जगह एक चार वर्षका बालक सिकन्दर राजा हुआ। उसका अभिभावक कौन बने, इस बातपर बीजापुरके बड़े-बड़े रईसोंके बीच एक भारी झगड़ा उठ खड़ा हुआ। सारे राज्यमें विद्रोहके लक्षण दिखाई पड़ने लगे। बीजापुरके नये वज़ीर खवासखांके साथ शिवाजीने अब पहलेका सा सद्भाव न रखकर उसके राजमें भी उपद्रव करना शुरू कर दिया।

पनहालेकी विजय

सन १६७३ की ६ठीं मार्च (कृष्णपक्षकी त्रयोदशी) की रातको शिवाजीके सेनापति कोंडाजी फर्ज़न्द साठ चुने-चुने मावले सिपाही लेकर चुपचाप पनहाला-क़िलेके ऊपर चढ़ गये। उनके सिपाहियोंने हाथ पकड़-पकड़कर एक दूसरेको प्राय: खड़े पहाड़के ऊपर खींच लिया। चोटीपर पहुँच कर वे चार दलोंमें विभक्त हो चारों ओरसे ढोल पीटकर क़िलेके बीचमें होकर दौड़े। कृष्णपक्षकी गहरी अँधेरी रातके गहरे सन्नाटेमें, बाहरकी समतल भूमिसे नहीं, बल्कि क़िलेके भीतर ठीक बीचसे यह आकस्मिक आक्रमण देखकर, क़िलेके रखवालोंके होश-हवास ग़ायब हो गये। लोग चारों ओर दौड़ने और भागने लगे। कोंडाजीने खुद क़िलेके मालिकको तलवारसे काट डाला। खजांची नागोजी पंडित इस शोरगुलको सुन अपने घरसे बाहर निकले, और एक पहरेवालेसे पूछा—"मामला क्या है ?" वह बोला—"अरे महाराज ! क्या आप नहीं जानते मराठोंने क़िला ले लिया और क़िलेके मालिक यहीं मरे पड़े हैं ?" अब तो नागोजी सब कुछ

छोड़-छाड़कर जल्दीसे भागे। कहीं पकड़ लिये जाते, तो उनको मारकर रुपये वसूल किये जाते।

अब नीचेसे सैकड़ों मराठे सिपाही क़िलेमें घुसे। धीरे-धीरे सवेरा हुआ। क़िला बिलकुल शिवाजीके हाथमें आ गया।* मराठोंने बीजापुरके कर्मचारियोंको पीट-पीटकर उनकी निजी और सरकारी गुप्त धन-सम्पत्तिका पता लगाकर सबपर कब्ज़ा कर लिया। विजयकी ख़बर पाते ही शिवाजीने शीघ्र ही स्वयं आकर क़िलेको देखा, वहाँ एक महीना ठहरकर दीवारें मज़बूत कीं तथा और भी तोपें मँगवाकर पनहालेको अपना अजेय आश्रय-स्थान बनाया। कुछ दिनके बाद पारली और सताराके क़िले भी उनके हाथ लगे।

उमराणीकी लड़ाई

इतने क़िले हाथसे निकल जानेके कारण बीजापुरकी राज-सभामें बड़ी खलबली मची। नये वज़ीर ख़वासख़ाकी बेख़बरीसे यह सब हानि हुई है, यह कहकर सभी कोई उन्हींको दोष देने लगे। बहलोल खाँ पनहाला-उद्धारके लिए भेजा गया, और तीन बड़े सेनापतियोंको दूर-दूरके प्रदेशोंसे अपनी-अपनी फौजके साथ आकर बहलोलकी सहायता करनेका हुक्म भेजा गया।

किन्तु सहायता पहुँचानेके पहले ही शिवाजी बहलोलके ऊपर जा टूटे। शिवाजीके प्रधान सेनापति प्रतापरावने पन्द्रह हज़ार घुड़सवारोंके साथ चुपचाप दो रात बड़ी तेज़ीसे चलकर, उमराणी नामके गाँवमें पहुँचकर (बीजापुर शहरसे १८ कोसकी दूरीपर, पश्चिममें) बहलोलकी फौजको एकाएक चारों ओरसे घेर लिया। यहाँ तक कि उनके पानी लानेवाले एकमात्र रास्तेको भी (१५ अप्रेलको) बन्द कर दिया। दूसरे दिन सवेरे मराठे दलके दल समुद्रकी लहरोंकी तरह बार-बार बीजापुरी फौजके ऊपर टूटने लगे। सारे दिन लड़ाई चलती रही। बहुतसे मरे, बहुतसे घायल हुए। बहलोलकी अफ़ग़ान फौजने जी-जानसे लड़कर अपनी जगहकी रक्षा की। अन्तमें शाम हो गई। दोनों पक्ष थककर अपने-अपने खेमेमें गये, लेकिन बीजापुरियोंको प्यास बुझानेके लिए एक बूँद भी पानी न मिला।

फिर बहलोलने चुपचाप प्रतापरावको बहुत रुपये घूँस भेजकर कहला भेजा—"हमें भाग जानेके लिए एक रास्ता छोड़ दो। तुम लोग हमारे खेमेंकी सब चीज़ें ले लेना।" वैसा ही किया गया।

बहलोल रातों-रात दुश्मनके मोर्चोंके बीचकी एक खुली जगहसे कूचकर बीजापुर लौट गया। बहलोलके छुटकारेकी बात सुनकर शिवाजी क्रोधित होकर प्रतापरावके ऊपर बहुत बिगड़े।

उसके बाद कुछ महीनों तक कनाड़ा-प्रदेशमें लड़ाई चलती रही, परन्तु किसी तरफ़ भी कोई बड़ी बात न हुई। शिवाजी बेरोक-टोक चारों ओर लूट-मार करने लगे। १० अक्टूबर, विजयादशमीके दिन शिवाजी स्वयं कनाड़ापर चढ़ाई करनेके लिए रवाना हुए, लेकिन दो महीनेके बाद ही बीजापुरियोंने उन्हें वहाँसे लौटनेको मजबूर किया। इस बार उनको कुछ लाभ न हुआ।

सेनापति प्रतापरावकी मृत्यु

उस हारके अपमानको मिटानेके लिए सन् १६७४ के जनवरी महीनेमें शिवाजीने प्रतापरावको बुलाकर कहा—"देखो, बहलोल हमारे राजमें बार-बार आता है। तुम फौज लेकर जाओ और इस बार उसे सदाके लिए हरा आओ। नहीं तो फिर कभी हमें अपना मुँह न दिखाना।"

स्वामीकी ऐसी कड़ी बातसे बिगड़कर प्रतापराव बहलोलकी खोजमें निकले, और कोलापुरके ४५ मील दक्खिनमें घाटप्रभा नदीसे कुछ दूर नेसरी गाँवमें उसे जा पकड़ा। बीजापुरी फौजको देखते ही प्रतापरावने हाथने-बायेंका कुछ भी विचार

* 'जेधे शकावली' में लिखा है कि शिवाजीने घूँस देकर क़िलेके एक ओरके पहरेदारोंको मिलाकर पनहाला दख़ल किया था। हमें भी यह बात सत्य मालूम होती है, क्योंकि ऐसे अजेय क़िलेकी रक्षाके लिए वैसा कुछ प्रयत्न नहीं हुआ। —लेखक

न किया और सरपट घोड़ा दौड़ाकर उसपर टूट पड़े। सिर्फ छै अनुचर उनके साथ थे, बाक़ी फौज इस पागलपनको देख पीछे ही रह गई, लेकिन प्रतापरावकी दृष्टि पीछेकी ओर नहीं थी, उन्हें बात सुननेकी भी फ़ुर्सत नहीं थी। उनके सामने दो पहाड़ोंके बीचसे गया हुआ एक छोटासा रास्ता था। उस ओर बहलोलके आदमी खड़े थे। उस रास्तेमें प्रतापराव घुस गये और दुश्मनोंसे घिरकर अपने छै साथियोंके साथ शीघ्र ही मारे गये। अब तो बीजापुरी फौज जीतके उल्लासमें मराठोंके ऊपर टूट पड़ी और उनमेंसे बहुतोंको मार गिराया, और (२४ फरवरी, १६७४ को) खूनकी नदी बह चली।

और कई लड़ाइयाँ

आनन्दरावने छत्रभंग मराठी फ़ौजको साहस देकर फिर इकट्ठा किया। शिवाजीने उन्हें सेनापति नियुक्त कर लिख भेजा—"दुश्मनको न हरा सको, तो जीते मत लौटना।" आनन्दराव अपने घुड़सवारोंको लेकर बीजापुर राजके भीतर घुस गये। दिलेर खां और बहलोल खां दोनोंने मिलकर उनका रास्ता रोका, पर आनन्द राव प्रतिदिन ४५ मीलके हिसाबसे इतनी तेज़ीसे चले कि दोनों ही खां हार मानकर रास्तेसे हट गये।

उसके बाद आनन्दराव दक्षिणकी ओर घूमकर कनाड़ामें घुसे। सांप गौंव शहरके बाज़ारकी लूटसे (२३ मार्चको) साढ़े सात लाख रुपये उनके हाथ लगे। वहाँसे दस कोसकी दूरीपर बंकापुर शहरके पास उन्होंने बहलोल खां और खिजिर खांके अधीन बीजापुरी फौजके एक दलको हरा दिया। इस जीतमें उन्होंने पाँच सौ घोड़े, दो हाथी और दुश्मनकी और बहुतसी धन सम्पत्ति छीन ली, परन्तु बहलोल फ़ौरन लौटकर बड़ी तेज़ीसे उनके ऊपर टूट पड़ा। मराठे एक हज़ार घोड़े और लूटके मालमेंसे कुछ चीज़ें छोड़कर, हलके होकर लूटको बाक़ी चीज़ें ले, सही-सलामत अपने देशको लौट आये।

आठवीं अप्रेलको शिवाजीने चिपलून शहरमें इन विजयी फ़ौजोंका मुआयना किया और उन्हें बहुत-कुछ इनाममें दिया, और हंसाजी मोहितको—'हम्बीर राव' की उपाधि दे प्रतापरावकी जगह सबसे बड़े सेनापतिके पदपर नियुक्त कर दिया।

सन् १६७३ के दिसम्बरसे लेकर अगले वर्षके मार्च महीने तक कोंकण और दूसरी जगहोंमें लड़ाई बहुत धीरे-धीरे चलती रही। दोनों ही तरफकी फ़ौजोंने थककर और ऊबकर काममें काफ़ी जी नहीं लगाया। उनके नेताओंने भी युद्ध करके झगड़ा निपटानेके बजाय लूट-खसोटमें ही अधिक आमदनी देखकर उसीमें मन दिया। इस साल जाड़ेमें बहुत वर्षा होनेसे महाराष्ट्रमें महामारी फैल गई, जिससे बहुतसे घोड़े और आदमी मर गये।

उधर बादशाह औरंगज़ेबने ७ अप्रेल (१६७४) को दिल्लीसे रवाना हो, उत्तर-पश्चिममें अफगान-सरहदके लिए कूच किया, क्योंकि खैबर घाटीकी पहाड़ी अफरीदी जातिने वहाँ घोर विद्रोह मचा रखा था। दिलेर खां भी दक्षिणसे बुलाये गये। दक्षिणमें बहादुर खां अकेले रह गया। उसके पास फ़ौज भी इतनी थोड़ी थी कि उसे लेकर कुछ करना असम्भव था। इसी मौक़ेपर शिवाजीने बड़ी धूमधामसे अपने राज्याभिषेकका काम पूरा किया।

चित्र-संग्रह

पं० धुरेन्द्र शास्त्री

पं० धुरेन्द्र शास्त्री न्यायभूषण आर्यसमाजके उन उदार युवक विद्वानोंमें हैं जो सतत धर्म देश और समाजकी सेवामें संलग्न रहते हैं। आपने देववाणी संस्कृतका अध्ययन कर सारा जीवन लोक सेवाके लिए अर्पण कर दिया है। आप अविवाहित हैं। यद्यपि आपका जन्म संयुक्तप्रान्तके मथुरा ज़िलेमें हुआ है, परन्तु आपका कार्यक्षेत्र बिहार प्रान्त है।

पं० धुरेन्द्र शास्त्री

बिहारमें उच्चकोटिके विद्वानों तक आर्य सिद्धान्तोंका पहुँचा देना आपका ही काम है। बिहारमें आपकी बड़ी प्रतिष्ठा है। आपने अपने उपदेश-द्वारा कई नरेशोंको 'बौद्ध धर्मानुयायी' बनाया है। देशमें स्वराज्य-संग्राम छिड़ते ही आप राजनैतिक कार्यक्षेत्रमें कूद पड़े और इस समय हज़ारीबाग़ जेलमें बन्द हैं। छै मासकी क़ैद काटकर आप फरवरीके अन्तमें छूटेंगे। पं० धुरेन्द्र शास्त्रीकी वाणी और लेखनीमें बड़ा प्रभाव है। सबसे अधिक आकर्षक आपका चरित्र-बल है।

—

सत्तर देशोंके काठसे बनी टेबिल

मिश्र-वासियोंकी नारी-स्वास्थ्यशालामें सत्तर देशोंके काठको इकट्ठा कर सात वर्षके परिश्रमसे यह टेबिल तैयार हुई है।

सत्तर देशोंके काठसे बनी मेज़

इसके बनानेवालेका नाम जार्ज हेन्ड्रे है। वे गत युद्धमें अंगहीन होकर देश लौटे थे। यह टेबिल प्रदर्शनके लिए बोस्टन भेजी जा रही है।
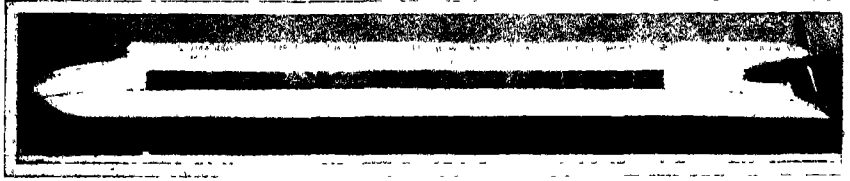
'जेपलिन' रेलगाड़ी

पंखेके द्वारा चलनेवाली रेलगाड़ी

हाल ही में जर्मनीमें एक नई सवारीके आविष्कारका समाचार आया है। सवारी व्यावहारिक परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुकी है। यह ऐरोप्लेनकी भाँति पंखों-द्वारा चलती है। ज़मीनपर ऐरोप्लेनके संग मुक़ाबला करनेके लिए यह तैयार की गई है।

परीक्षाके समय यह घंटेमें ११४ मील चली थी। इस गाड़ीके आविष्कर्ताका नाम फ्रांट्ज़ क्रुकनबर्ग है। गाड़ीमें पाँच कमरे हैं—उसमें चालीस यात्रियोंके बैठनेका स्थान है। देखनेमें गाड़ी 'जेपलिन'की भाँति एक सफ़ेद रंगके बड़े सिगारकी तरह है। इसके प्रोपेलर अर्थात् पंखे पीछेकी ओर लगे हैं। चार सौ अश्व शक्ति (हॉर्स पावर) का एक पेट्रोल इंजिन इसको घुमाता है। उसके घुमाते ही गाड़ी चलने लगती है। गाड़ीको पटरीपर रखनेके लिए पंखेका मुँह कुछ ऊपरकी ओर उठा देनेकी ज़रूरत होती है। ऐसा न करें तो ऐरोप्लेनकी भाँति वह भी उड़नेकी कोशिश करने लगे।

—

ऊपर—पंखे द्वारा चलनेवाली रेलगाड़ीके सामनेका दृश्य मध्य—प्रोपेलर और पीछेका दृश्य। नीचे—पार्श्वका दृश्य। बीचके दरवाजेसे यात्री चढ़ते उतरते हैं।
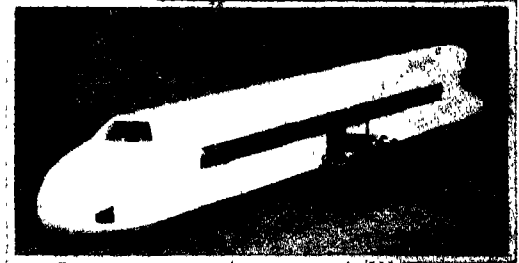
गोलन्दाजकी श्रवणेन्द्रिय

युद्ध-कार्यमें हवाई जहाज़ोंकी क्षमता दिन-पर-दिन इतनी बढ़ती चली जा रही है कि उनके खतरेसे बचनेकी समस्या सभी देशोंके लिए एक बड़ा ज़बर्दस्त प्रश्न कही जाने लगी है। आर्टिलरीका एक खास विभाग हवाई-जहाज़से आत्म-रक्षा करनेके काममें लगा है। उसका नाम 'Anti Air Craft' विभाग है। बहुत दूर रहनेपर भी ऐरोप्लेनकी आवाज़ मालूम करनेके लिए फ्रांसमें एक यंत्र—जैसा कि आगेके चित्रमें प्रदर्शित है—

बीस मीलकी दूरीसे हवाई जहाजकी गति-विधिका पता लगानेवाला यंत्र

आविष्कृत हुआ है। इस यंत्रके सम्बन्धमें कोई विस्तृत खबर नहीं दी गई है। इतना अवश्य पता लगा है कि बीस मीलकी दूरीसे ऐरोप्लेनकी आवाज़ इस कलके द्वारा सुनी जा सकती है। इस प्रकारकी कलें अवश्य ही इससे पहले भी तैयार हो चुकी हैं, लेकिन इस यंत्रकी विचित्र रचनाने सबको विशेष-रूपसे आकृष्ट किया है।

—

ऐन्ड्रेकी ध्रुवयात्रा

सन् १८६७ में स्वीडेनके पर्यटक सालोमन अगष्ट ऐन्ड्रेने बेलून-द्वारा उत्तरमेरुकी यात्रा की थी, किन्तु वे वापस नहीं लौटे। किस तरह उनकी मृत्यु हुई, यह अब तक मालूम नहीं, लेकिन पिछले वर्ष उत्तरमेरुके निकट उनकी देह और चीज़-वस्तका पता चला है। इन चीज़ोंके संग उनका कोडक केमरा भी मिला है। उसके फ़िल्ममें ऐन्ड्रेके

बेलून ध्वस होनेके बाद ऐन्ड्रूके कैम्पका दृश्य (जुलाई १८९७)

ऐन्ड्रूके बेलूनका ध्वंसावशेष

ऐन्ड्रूके साथी ऐन्ड्रू द्वारा मारे हुए एक भालूके पास खड़े हैं

अन्तिम दिनोंकी बहुतसी तसवीरें निकली हैं। उनको ही इतने दिन पश्चात् 'डेवलप' कर बेलून ध्वंस होनेके बाद ऐन्ड्रू तथा उनके साथी किस अवस्थामें थे, यह समझा जा सकता है।

वीयनामें नया छाया-नाट्य

छाया-नाट्य या पुतलियोंका नाच पूर्वीय और पश्चिमीय दोनों ही देशोंमें बहुत प्राचीनकालसे आमोद-प्रमोदके लिए प्रचलित है। इंग्लैण्डके रास्तों और चौराहोंपर आज तक कभी-कभी 'पंच और जुडी'का नाच दिखाई पड़ता है। हमारे देशमें बीस वर्ष पहले तक इस ढंगके पुतलीके नाच प्राय: ही देखे जाते थे, परन्तु अब उनका चलन कम हो गया है, यद्यपि वे अब तक बिलकुल ही लुप्त नहीं हुए हैं।

लेकिन इन पुतलियोंके नाचके सौन्दर्य और कारीगरीमें वर्तमान युगमें जो नये ढंगके परिवर्तन करनेकी चेष्टा की जा रही है, उसके साथ कोई तुलना नहीं हो सकती। पुतलियोंके इस नये ढंगके नाचका प्रवर्तक एक वीयना-निवासी शिल्पी है। उसका नाम रिचर्ड टेशनर है।

शापग्रस्त राजकन्या अजदहेकी बन्दिनी

उसने पुतलियोंके पुराने नाचके ढंगको एक नये ढंगसे रचकर—नई तरहकी पुतलियाँ बनाकर—इस प्राचीन मनोरंजनको कलाकी दृष्टिसे सार्थक बनानेकी चेष्टा की है और उसे इस विषयमें सफलता भी मिली है। इस संक्षिप्त लेखके साथ जो चित्र प्रकाशित किये जाते हैं, वे इसके प्रमाण हैं।

रिचर्ड टेशनर चित्रकार है, भास्कर है और कारीगर है।

चीनी मंडारिन अजदहेको क़ानून और धर्मका उपदेश देता है

जापानी समुराईका अजदहेसे युद्ध
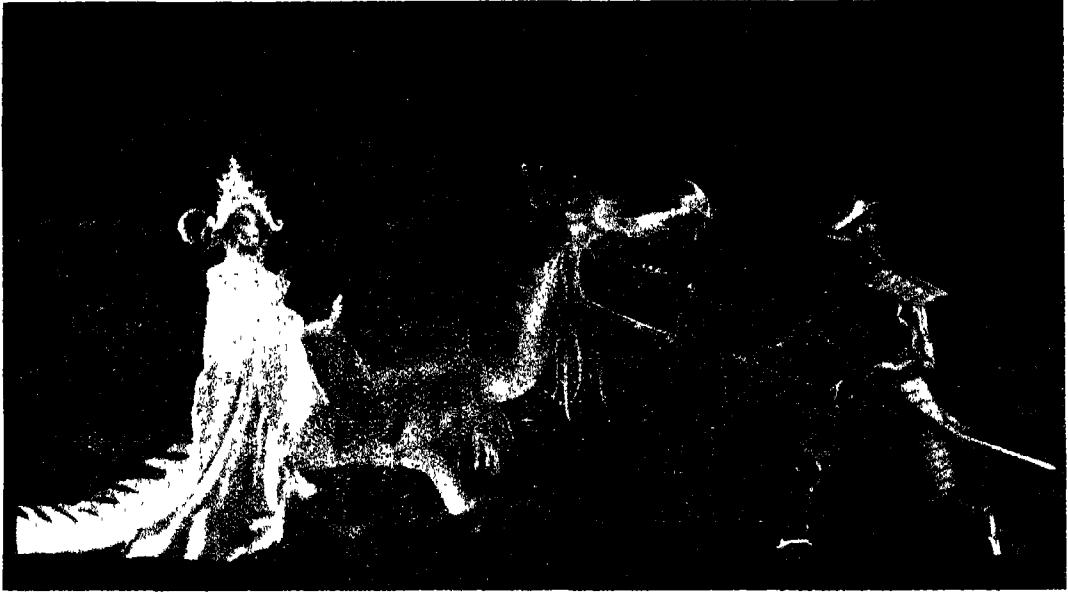
वह अपने ही हाथसे दीवार मढ़नेका कागज़, क़ालीन इत्यादि बना सकता है, इसीलिए उसकी बनी हुई पुतलियोंका शिल्प-कौशल अत्यन्त सुन्दर है।

टेशनरकी पुतलियाँ पुराने ज़मानेकी पुतलियोंकी तरह तारके सहारे ऊपरसे नीचे नहीं उतरती हैं। उनके सचालनकी पद्धति एकदम स्वतंत्र है। अनेक काठके टुकड़ोंको जोड़ तोड़कर

बुद्ध भगवान द्वारा अजदहेकी पराजय और राजकन्याकी मुक्ति

बालक ईसाको गड़रियोंका अभिनन्दन

उसके अंग प्रत्यंगको चलनशक्ति प्रदान की जाती है, इसलिए उनकी गति-विधिमें और भी कुछ गम्भीरता और धीरता आ जाती है। वे बिना रीढ़की पुतलियोंके नाचकी तरह चलती-फिरती नहीं मालूम पड़तीं।

'मागी' (प्राचीन पारसी याजक) की पूजा

मेरी, जोजफ और ईसा

एक अँधेरे कमरेमें बैठकर आकाशके तारोंकी भाँति यह नाच देखा जाता है। एक सुदूर आलोकित जगत्में पुतलियां प्रकट होती हैं। काठ और मोमकी पुतलियाँ क्षण-भरके लिए चेतनामय होकर एक मायाजाल-सा रच देती हैं।

भगवान बुद्धके जीवनकी एक कल्पित कथाको लेकर टेशनरने एक अति सुन्दर छाया-नाट्यकी रचना की है। प्रथम दृश्यमें एक अभिशप्त राजकन्या एक अज़दहेके भोज्यके लिए बन्दिनी है। इस विकटाकार अज़दहेके अंग-प्रत्यगमें हरकत होती है, यहां तक कि नथुने भी काँपते हैं! दूसरे दृश्यमें एक चीनी मंडारिन उपस्थित होकर राजकन्याकी मुक्तिके लिए अज़दहेके सामने क़ानून और धर्मका एक प्रबन्ध पढ़ती है, पर अज़दहा उससे मस नहीं होता। वह मंडारिनको हँसी-खेलमें दो-चार हाथ मारकर शान्त कर देता है। फिर एक जापानी योद्धा--समुराई--अस्त्र द्वारा राजकन्याकी मुक्तिके लिए आता है, मगर वह भी अज़दहेके उदरमें चला जाता है। अन्तमें भगवान बुद्धकी आध्यात्मिक शक्तिसे राजकन्याकी मुक्ति होती है। बुद्ध पहले छायाकी भाँति प्रकट होते हैं और फिर पूर्ण आलोकमय हो जाते हैं।

टेशनरका एक और नाट्य ईसाकी जन्म-कहानीके सम्बन्धमें है। उसके भी चित्र यहां प्रकाशित हैं।

चिट्ठी-पत्री

'कुछ अपने सम्बन्धमें' की सफाई

नवम्बरके 'विशाल-भारत' में भाई परमानन्दके सम्बन्धमें मेरे संस्मरण प्रकाशित हुए थे। ये संस्मरण मैं किस उद्देश्यसे लिख रहा हूँ, इसे 'विशाल-भारत'के पाठक भली प्रकार जानते होंगे। 'विशाल-भारत'में मेरे इस तरहके आत्म-सस्मरण करीब एक वर्षसे प्रकाशित हो रहे हैं। मुझे इस बातका हार्दिक खेद है कि मेरे उन संस्मरणोंको भाई परमानन्द उस भावमें नहीं ले सके, जिसमें वे लिखे गये थे, और इसी कारण इन सस्मरणोंका एक लम्बा-सा जवाब उन्होंने 'विशाल-भारत' के दिसम्बरके अंकमें प्रकाशित करवाया है। मेरी अपनी रायमें तो किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें आत्म-सस्मरण लिखनेका यही अभिप्राय है कि लेखककी रायमें वह व्यक्ति विशेष महत्त्वपूर्ण है। परन्तु भाईजीने अपने इस जवाबमें लिखा है कि "मैं नहीं समझता कि महाशयजीको कोई अधिकार था कि अपने जीवन-सम्बन्धी संस्मरण लिखते हुए मुझे उसका विषय बनाकर इस पत्रिकाके आठ-दस पृष्ठ उसके अर्पण करते।···यह उनकी अनधिकार चेष्टा है।" इस वाक्यमें 'महाशयजी' से मेरा अभिप्राय है। यदि भाईजी मुझसे यह पूछना ही चाहते हैं कि मेरा उनके सबंधमें संस्मरण लिखनेका क्या अधिकार था, तो मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ कि मैं भाई परमानन्दको एक सार्वजनिक कार्यकर्ता समझता हूँ, और इसी कारण मैंने उनके सम्बन्धमें आत्म-संस्मरण लिखनेका साहस किया है। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि यदि भाईजी सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं, तो उनके बारेमें सभीको अपनी राय बताने और उसे प्रकाशित करनेका अधिकार है। यदि वे इससे दुखित होते हैं, तो उनके इस दुःखसे मुझे सहानुभूति तो हो सकती है, परन्तु जब तक वे सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं, तब तक, मेरी रायमें वह किसीको शिष्ट भाषामें अपने सम्बन्धमें राय ज़ाहिर करनेसे रोक नहीं सकते।

मुझे विश्वास है कि भाईजीका लेख पढ़कर 'विशाल-भारत'के पाठक मेरे उद्देश्यके सम्बन्धमें ग़लतफ़हमीमें न पड़ेंगे। यदि सचमुच मेरे दिलमें भाईजीके लिए कोई मैल होता, तो मैं उन संस्मरणोंमें यह वाक्य कभी न लिख सकता—"निर्दोष होते हुए भी इस तरह मृत्युका आलिंगन करनेको तैयार रहना सचमुच महात्माओं और वीरोंका ही काम है। भाई परमानन्दका वह चित्र स्मरण आते ही हृदयमें उनके प्रति अगाध श्रद्धाके भाव आ जाते हैं। आज भाईजीको हिन्दू-हितोंका इस क़दर पक्षपाती देखकर जब उनके शत्रु उनपर यह अभियोग लगाते हैं कि भाईजी सरकारसे डर गये हैं, तब मेरी छातीपर साँप लोट जाता है। भाई परमान्द और सब-कुछ हो सकता है, परन्तु कायर नहीं है। जो महान वीर मृत्युका प्रत्यक्ष दर्शन कर चुका है और उस दशामें भी प्रसन्नचित्त और स्थितप्रज्ञ ही बना रहा है, उसे विचार-भेदके कारण, कायर कहना मूर्खता नहीं तो क्या है।"

उसके बाद—"भाईजीके विचार चाहे कैसे भी क्यों न हों, परन्तु मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि उनके समान उज्ज्वल चरित्रके लोग भारतवर्ष ही क्या ससारमें कम देखनेमें आते हैं। भाईजी यद्यपि मेरे मित्र हैं, तथापि मैं इस बातको स्वीकार करता हूँ कि उनके चरित्रकी थाह मैं अभी तक नहीं पा सका।"

परन्तु किसीके सम्बन्धमें आत्म-संस्मरण लिखनेका यह अभिप्राय तो कदापि नहीं होता कि उस व्यक्तिकी सिर्फ़ मुक्तकंठसे प्रशंसा ही की जावे। किसी दूसरेके सम्बन्धमें आत्म-संस्मरण लिखनेका मतलब ही यही है कि "मैं उस महानुभावको इस रूपमें देखता हूँ।" इसी सिद्धान्तको मानकर मैंने भाईजीके विषयमें अपनेसे सम्बन्धित वे घटनाएँ भी लिखी थीं, जिन्हें उनके चरित्रकी आलोचना कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ, मैंने किसी घटनाकी टिप्पणी करते हुए लिखा था—"भाईजीमें शुरू ही से धैर्यकी कमी तथा

मतभेदको सहन न कर सकनेका दोष विद्यमान था, यह दोष निरन्तर कष्ट सहन तथा आत्म-सम्मानपर अनेक भारी चोटें पहुँचते रहनेके कारण और भी अधिक बढ़ गया था।" 'विशाल-भारत'के पाठक देखेंगे कि मेरे लिखे हुए आत्म-संस्मरणोंका जवाब देते हुए भी भाईजीने अपने सम्बन्धमें की गई उपर्युक्त आलोचनाको ही सत्य सिद्ध किया है।

'आत्म-संस्मरणों' का बड़ी 'तेज़ीके साथ' जवाब देना स्वयं अपनेमें एक बिलकुल हास्यास्पद बात है, परन्तु यह हास्यास्पद घटना घटित हो गई है, इसलिए मैं भी उसके सम्बन्धमें यह छोटा-सा नोट लिखनेको बाधित हुआ हूँ। भाईजी तो क्रोधमें आकर यहाँ तक लिख गये हैं—"महाशय रामदेवने मुझपर यह दोषारोपण किया है कि अब मैं टोडियोंसे मिल गया हूँ। अगर ऐसा कहनेवाले महाशय रामदेव न होते, तो मैं यह स्पष्ट कह देता कि जो लोग अपनेसे मतभेद रखनेवालोंको टोडी-जैसा अपशब्द कहते हैं, उनकी स्थिति लफंगोंसे अच्छी नहीं कही जा सकती।"

पाठकोंका ध्यान मैं इस सम्बन्धमें लिखे अपने वाक्योंकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। मैंने लिखा था—"भाईजी पहले भावुक हैं, फिर और कुछ। हिन्दुओंपर किये गये मुस्लिम अत्याचारोंके प्रभावसे वे कट्टर हिन्दू-सभावादी बन गये। उनके इस मानसिक परिवर्तनमें सरकारका भय ज़रा भी नहीं था। दुर्भाग्यसे भाईजीको इस नये क्षेत्रमें जो साथी मिले, वे प्राय: टोडी ही थे। भाईजीके इन सहयोगियोंको देखकर बहुतसे लोग सचमुच यही समझने लगे कि भाईजी सरकारसे डरकर सहयोग-नीतिके पक्षपाती हो गये हैं, परन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम है कि भाईजीके सम्बन्धमें यह बात बिलकुल असत्य और निर्मूल है।"— मेरे इन्हीं वाक्योंमें से भाईजीको लफंगेपनकी बू आई है!

इसी सिलसिलेमें भाईजी स्वयं ही पंजाबके मृत या जीवित हिन्दू-संगठनके प्रसिद्ध कार्यकर्ताओंके नाम भी लपेट लाये हैं। मैंने अपने संस्मरणोंमें किसी महानुभावका भी नाम नहीं लिया था। यह तो मैंने लिखा ही नहीं था कि भाईजीके सभी साथी टोडी हैं, परन्तु व्यर्थमें ही भाईजी अनेक महानुभावोंपर काले छींटे उड़ा गये हैं। भाईजीने लिखा है—"सर गंगाराम सरकारके खुशामदी थे।" "यद्यपि हिन्दू महासभाके सभापतित्वके लिए प्रान्तोंका बहुमत मेरे लिए था, तथापि मालवीयजी और लाला लाजपत रायने प्रान्तोंको अपनी ओरसे विशेष तार देकर राजा नरेन्द्रनाथके लिए बहुमत जमा कर लिया और पहली घोषणाके पाँच-छै दिनों बाद दूसरी घोषणा प्रकाशित कर दी गई।" इसी प्रसंगमें भाईजीने राजा नरेन्द्रनाथपर भी कीच उछाला है। मेरी रायमें इस तरह पाँच-छै लोगोंका नाम पेश करके सफ़ाई देनेकी प्रथा कुछ विभिन्न-सी है।

यदि भाई परमानन्द मेरे द्वारा लिखी घटनाओंमें से किसी एक या एकसे अधिक घटनाओंको असत्य सिद्ध करते, तब भी एक बात थी; मगर मज़ा यह है कि वे किसी भी घटनाको असत्य सिद्ध नहीं कर सके; प्रत्यक्ष या परोक्षरूपमें उनकी सत्यता स्वीकार करते चले गये हैं। इसपर भी उन्होंने मेरे उद्देश्योंपर हमला किया है। मैं इस बातको भाईजीके और अपने दोनोंके अभाग्यके सिवा और क्या कहूँ।

मैं भाईजीसे इस बातके लिए क्षमा चाहता हूँ कि मैंने उन्हें इस योग्य समझा कि उनके सम्बन्धमें भी संस्मरण लिखे जा सकते हैं, परन्तु मुझे शोक इस बातका है कि भाईजीका यह लेख पढ़कर भी मैं स्वयं उन्हें संस्मरण लिखनेके अयोग्य नहीं समझता। इसलिए मेरी इन क्षमा-प्रार्थनाको भी एक तरहसे प्रथाके रूपमें ही लेना चाहिए। यदि भाईजी मेरा लेख पढ़कर मुझपर तीव्र शब्दोंकी बौछार न करते और मेरे भावोंपर आक्षेप न करते, तो मुझे इस बातकी आश्चर्यपूर्ण प्रसन्नता होती कि इन महानुभावके सम्बन्धमें मेरा विश्लेषण अशुद्ध था। तब मुझे यह स्वीकार करना पड़ता कि वे अपनी आलोचना सह सकते हैं। वह तो न हो सका, परन्तु अब मुझे इस बातका हर्ष है कि मेरी चरित्र-विश्लेषणकी योग्यताका प्रमाणपत्र अपने इस लेख द्वारा उन्होंने मुझे स्वयं ही दे दिया है। इसके लिए भाईजीको अनेकानेक धन्यवाद।

अपने लेखके अन्तमें भाई परमानन्दने बिना प्रसंगके ही जात-पाँत तोड़क मंडलकी एक घटनाका वर्णन कर दिया है। इस घटनाको लिखकर भाईजीने यह सिद्ध करना चाहा है कि मेरे दिलमें भाईजीके लिए तभीसे द्वेषका भाव विद्यमान है और यह संस्मरण लिखकर मैंने उनसे उसी क्रोधका बदला लिया है। मैं भाईजीको एक मित्रके नातेसे यह सलाह देना चाहता हूँ कि इस तरह बिना आधारके खुले आम किसीके भावोंपर आक्षेप करना वह नितान्त नई चीज़ समझकर छोड़ दें। भावोंपर आक्षेप करना आसान तो बहुत है, परन्तु इसका परिणाम किसी दृष्टिसे अच्छा नहीं कहा जा सकता। जब भाईजी जात-पाँत-तोड़कका प्रसंग छेड़ ही बैठे हैं, तब इस सम्बन्धमें एक

बातका ज़िक्र कर देना कुछ अनुचित न होगा। भाईजीने क़रीब आठ बरसोंसे लाहौरमें जात-पाँत तोड़क-मंडलकी स्थापना कर रखी हैं। वे स्वयं इस मंडलके प्रधान हैं। इस पदपर रहते हुए उन्होंने सिर्फ एक ही विवाह कराया है। यह उनकी पुत्रीका विवाह था। इसमें भी वे जन्मगत जात-पाँतको नहीं तोड़ सके। मुझे मालूम है कि वे कौनसे दुर्निवार्य कारण थे, जिनसे भाईजी स्वयं अपनी कन्याके विवाहमें जातिकी प्रथा नहीं तोड़ सके। तथापि कुछ महानुभाव इस घटनाको लेकर भाईजीके हार्दिक भावोंपर ही आक्षेप करने लग जाते हैं। ठीक इसी तरह भाईजीको स्मरण रखना चाहिए कि किसी बातसे रुष्ट होकर भी भावोंपर आक्षेप करना कदापि उचित नहीं है।

—रामदेव (आचार्य)

—

भूल संशोधन

अक्टूबर सन् १९३० के 'विशाल-भारत' में मेरी कविता 'कोलोनका कारनवाल मेला' शीर्षक छपी है। उसमें भयंकर भूलें न जाने कैसे छप गई हैं। पाठक महाशय कृपाकर उन्हें सुधारकर पढ़ें। मैं संशोधन नीचे देता हूँ—

१. अशुद्ध—यही सोच अपरेलमें।

शुद्ध--यही सोच अपरेल तौ।

२. 'भयी प्रबल'वाले कुंडलियाके आखिरी शुद्ध चरण ये हैं—

कहे देत कविदास, घटी एक घटना नयी।

कहूँ तात क्या बात, अहो! वाम विधाना भयी॥

मैंने ऐसा ही पाठ लिखकर भेजा था, वह कैसे गपड़-चौथ हो गया, सो ईश्वर जाने।

३. अशुद्ध—नीक है जो नहिं आये।

शुद्ध—नीक भयो नहीं आये।

४. उसी पृष्ठपर सोरठेमें—

अशुद्ध—मोह न मन्दिर मिल सके!

शुद्ध—मोहन-मन्दिर मिल सके!

५. अगले पृष्ठ ४५८ पर—

अशुद्ध—मारचका दिन तीन, मुझे त्योहार बना विष॥

शुद्ध—मारचका दिन तीन, मुझे बना त्योहार विष॥

बना त्योहार के पहले आनेसे उसमें संगीतका मज़ा है।

६. उस कुंडलियाके आगे ललित छन्दमें मैंने लिखा था—''बड़े दिनोंके बाद चले यह कारनवाली माया।''

अर्थात्—After Christmas (क्रिसमसके बाद) यह मेला शुरू होने लगता है। 'विशाल-भारत' के चतुर संशोधकने उसे कर दिया—

''बहुत दिनोंके बाद चले यह कारनवाली माया।''

देखा आपने संशोधन! यदि ऐसा ही सुधार हिन्दीवाले पुराने कवियोंकी कृतियोंमें करते होंगे, तो कैसे अनर्थ होते होंगे।

७. आगे उसी पृष्ठपर सरसी छन्द है। मैंने लिखकर भेजा था—

''नाच घरोंमें लगे नाचने, प्रभा, बाला, विनोद।''

अर्थात्—नाचघरोंमें तीन प्रकारके नाच होने लगे—प्रभा (बिजली) महारानी, युवतियों और हास्य महाराजके। उसका संशोधन करके अशुद्ध कर दिया—

''नाचघरोंमें लगे नाचने, चपला युवति-विनोद।''

कविताके तौरपर शुद्ध है, पर मेरा भाव यह नहीं था।

८. आगे पृष्ठ ४६१ पर बरवा छन्दमें—

अशुद्ध—पक्षी, बालक, तिरिया, मीत अजान।

शुद्ध—पक्षी, बालक, तिरिया, मीन अजान।

यह 'न' का 'त' प्रेसकी भूल है।

९. पृष्ठ ४६२ पर दूसरे शिखरिणीमें—

अशुद्ध—भरा देखा मैं, शुद्ध—भरा देखा मैंने,

१०. उसी पृष्ठके तीसरे शिखरिणीमें—

अशुद्ध—युवा घूमें ऐसे, शुद्ध--युवा घूमें जैसे,

अशुद्ध—भुजधर बना, शुद्ध—भुजधर बना,

११. उसी पृष्ठपर दूसरे वंशस्थ छन्दमें—

अशुद्ध—प्रवेश कीन्हा महाराज हालमें।

शुद्ध—प्रवेश कीन्हा जब शाह हालमें।

मैंने लिखा था--'महाराज' पर उससे यह बेहतर है।

१२. पृष्ठ ४६२ पर प्रथम मन्दाक्रान्ता छन्दमें चौथा चरण तीसरे चरणके स्थानपर और तीसरा चौथेकी जगहपर पढ़ा जाय।

१३. एक भारी भ्रमात्मक भूल आखिरके कुंडलियामें हो गई है, पाठक उसके लिए क्षमा करें। लिखा गया है—

''ईसाकी उन्नीसवीं, सदी तीसवाँ साल।''

इसमें ग़लतफ़हमीकी बड़ी गुंजाइश है, इसलिए चाहिए यह—''ईसाके उन्नीस सौ और तीसवाँ साल।''

इससे भविष्यमें कोई वितण्डावाद खड़ा नहीं हो सकता। आशा है, मेरे प्रेमी पाठक इन ग़लतियोंको शोधकर अपने अंक सुधार लेंगे।

—सत्यदेव परिव्राजक
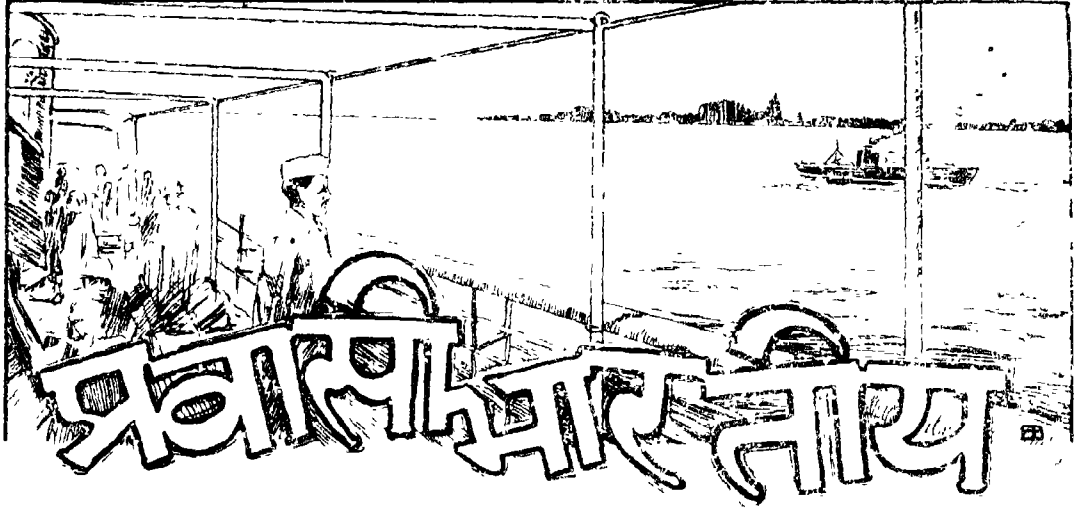
दक्षिण-अफ्रिकन भारतीयोंकी वापसी

श्री सी० एफ० ऐण्ड्रूज़ने केपटाउनसे तार दिया है—

"दक्षिण-अफ्रिकाकी भारतीय कांग्रेस केपटाउनके समझौतेके अनुसार भारतमें लौटे हुए दक्षिण-अफ्रिकन भारतीयोंकी वर्तमान अवस्थाके सम्बन्धमें सावधानीसे जाँच कर रही है। उसे पता लगा है कि गत चार वर्षोंमें ७५०० भारतीय दक्षिण-अफ्रिकासे भारतवर्षको वापस आये। इस समय, यह जाननेके लिए कि भारत लौटनेवालोंके साथ कैसा व्यवहार होता है, दक्षिण अफ्रिकाकी भारतीय कांग्रेस और भारत-सरकारके बीच पत्र व्यवहार हो रहा है। गत वर्ष अफ्रिकासे वापस आनेवालोंकी संख्या एक हजार थी। अब प्रति वर्ष लौटनेवालोंकी सख्या घटती जा रही है।"

हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि अंतमें दक्षिण-अफ्रिकाकी भारतीय कांग्रेस यह बात समझ गई कि भारत लौटनेवाले दक्षिण-अफ्रिकन भारतीयोंकी अवस्थाके सम्बन्धमें सावधानीसे जाँच करनेकी आवश्यकता है। 'हिन्दू-हेरल्ड'से हमें यह भी मालूम हुआ है कि कांग्रेसने बम्बईके इम्पीरियल सिटिज़नशिप एसोसियेशनसे लौटे हुए भारतीयोंकी दशाकी जाँच करनेको कहा है। क्या उक्त एसोसियेशन सचमुचमें तत्परतासे जाँच करेगी? हमें तो इस बातमें काफी सन्देह है।

स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू और प्रवासी भारतीय

'लीडर'के एक संवाददाताने 'लीडर'में पंडित मोतीलाल नेहरूका एक पत्र उद्धृत किया है, जो उन्होंने भारत-सरकारको पूर्वीय अफ्रिकाके भारतीयोंके सम्बन्धमें लिखा था। इस पत्रसे यह बात बिलकुल स्पष्ट मालूम होती है कि पंडितजी अपने प्रवासी भाइयोंके सम्बन्धमें कितने चिन्तित रहते थे। इस सम्बन्धमें मैं भी एक घटनाका वर्णन कर सकता हूँ। सन् १९२५ में मैंने लेजिस्लेटिव एसेम्बली और कौन्सिल-आफ-स्टेटके कुछ सदस्योंसे एक प्रवासी-कमेटी बनानेकी प्रार्थना की थी, जो विदेशोंसे सही-सही समाचार प्राप्त करके उनके आधारपर कौन्सिल और ऐसेम्बलीमें प्रश्न कर सके तथा जो विभिन्न उपनिवेशोंमें बसे हुए प्रवासी भाइयोंके लिए विशेषकर प्रयत्नशील हो। त्यागमूर्ति पंडित मोतीलालजीसे मुझे बहुत उत्साहप्रद उत्तर मिला, जो यहाँ उद्धृत है—

आनन्द-भवन
प्रयाग, २३-११-२५

'प्रिय बनारसीदास चतुर्वेदी,

मुझे आपका १७ नवम्बरका पत्र मिला। आपका प्रवासी-कमेटी बनानेका विचार बड़ा सुन्दर है और उसके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। कमेटी बनानेके लिए सबसे उपयुक्त समय वह है, जब एसेम्बलीकी बैठक हो रही हो। उस समय इस बातपर मेम्बरोंसे व्यक्तिगत रूपसे बातचीत की जा सकती है, अतः मैं आपको यह सलाह दूँगा कि आप जनवरीके अन्तमें या फरवरीके प्रारम्भमें दिल्ली आवें और उस समय इस बारेमें विभिन्न दलोंके सदस्योंसे मिलें। आपको इस बातका विश्वास दिलानेकी आवश्यकता नहीं कि मैं स्वयं आपका पूरा समर्थन करूँगा।

आपका—
मोतीलाल नेहरू"

अभाग्यवश मैं दिल्ली न जा सका और इसीलिए कमेटी भी बन नहीं सकी; मगर मैं त्यागमूर्ति पं० मोतीलालजीके इस उत्साहप्रद उत्तरको कभी नहीं भूल सकता।

—

प्रवासी भारतीय और भारतका स्वतन्त्रता-संग्राम

गत कुछ माससे जो औपनिवेशिक समाचारपत्र आ रहे हैं वे भारतके स्वाधीनता संग्रामके समाचारोंसे भरे हैं। उनसे यह बात बिलकुल साफ मालूम होती है कि विदेशोंमें रहनेवाले हमारे स्वदेशी भाई अपनी मातृभूमिके आन्दोलनमें कितना अधिक अनुराग रखते हैं। हमारे प्रवासी बन्धु जहाँ तक सम्भव होता है, रुपये पैसेसे भी देशकी सहायता करते हैं। मोम्बासाके एक संवाददाताने मुझे लिखा है कि पूर्वीय अफ्रिकाके भारतीयोंने स्वराज्य आन्दोलनकी सहायताके लिए सहस्रों रुपये भेजे हैं। हमारे फिजी-प्रवासी ग़रीब भाइयोंने प्रयागमें कांग्रेस-आफिसको लगभग ३५०) भेजे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि अन्य उपनिवेशोंमें रहनेवाले भारतीय भी पूर्वीय अफ्रिका और फिजीके भारतीयोंका अनुकरण करनेको चिन्तित हैं। इस सम्बन्धमें मैं उन्हें एक बात बता देना चाहता हूँ। जब कभी वे कुछ भेजना चाहें, तो वे उसे सीधा 'जनरल सेक्रटरी, इंडियन नेशनल कांग्रेस, स्वराज्य भवन, इलाहाबाद' के पतेसे भेजें। किसी व्यक्ति-विशेषके पतेसे न भेजें। फिजीसे श्रीयुत सी० चतुरसिंहने मुझे लिखा है कि उन्होंने २७ पौंड १० शिलिंगकी रक़म कांग्रेसको देनेके लिए अमुक 'सर' के पास भेजी है। यह रक़म कांग्रेसको पहुँच गई होगी, मगर इस प्रकार किसी व्यक्तिके नाम भेजनेसे मुफ्तमें देरी होती है और बेकार लिखा पढ़ी करनी पड़ती है।

—

ट्रिनीडाडमें हिन्दी-प्रचार

कुछ समय हुआ, जब हमने वेस्ट-इंडीज़के स्कूलोंमें हिन्दीकी शिक्षा देनेकी व्यवस्थाकी आवश्यकताके सम्बन्धमें

कुमारी सरयूदेवी

लिखा था। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इस लाभदायक कार्यमें कुछ व्यक्तिगत प्रयत्न किये जा रहे हैं। ट्रिनीडाडकी कुमारी सरयू देवीने इस काममें

अपने समयका कुछ भाग लगाना शुरू किया है और इसमें उन्हें अपने ट्रिनीडाड प्रवासी भाइयोंसे सब प्रकारकी सहायता और प्रोत्साहन मिलना चाहिए। क्या ही अच्छा हो, यदि ट्रिनीडाडका कोई सेन्ट्रल इंडियन ऐसोसियेशन इस कार्यको अपने हाथमें लेकर सुसगठित ढंगसे चलाये ; मगर निकट भविष्यमें ऐसा होनेकी आशा कम दिखाई देती है। ऐसी दशामें जहाँ कहीं भी सम्भव हो, हमें व्यक्तिगत कार्यकर्ताओंकी सहायता करनी चाहिए।

—

विदेशोंमें इंडियन एसोसियेशन

विदेशोंमें रहनेवाले हमारे भाई अब तक प्रचारका मूल्य नहीं समझ सके हैं। हम औपनिवेशिक भारतीयोंके किसी ऐसे संगठनको नहीं जानते, जो इस कार्यके महत्वको अच्छी तरह समझता हो। मुझे उपनिवेशोंसे जो चिट्ठियाँ मिलती हैं, वे विभिन्न व्यक्तियोंकी लिखी होती हैं। उनमें मुश्किलसे दो-तीन प्रति सैकड़ा चिट्ठियाँ इंडियन एसोसियेशनोंकी होती होंगी। मैं इन एसोसियेशनोंकी, मुझे चिट्ठी न लिखनेके लिए, शिकायत नहीं करता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं उनके लिए कितनी थोड़ी सेवा कर सकता हूँ; मगर ये ऐसोसियेशन कमसे कम 'लीडर' और 'हिन्दू' सरीखे पत्रों और इंडियन नेशनल कांग्रेसके हेड आफिसको तो नियमित-रूपसे अपनी खबरें भेज सकते हैं। यद्यपि कांग्रेस इस समय स्वराज्य-संग्राममें व्यस्त है, फिर भी वह बहुत कुछ कर सकती है। अपने औपनिवेशिक मित्रोंको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है कि कांग्रेस देशकी प्रमुख संस्था है, अत: उसकी बातका भारतमें सबसे अधिक महत्व है।

—

विशाल भारतका निर्माण

मि० पीटर रहमानने जार्जटाउन, ब्रिटिश-गायनाके 'फारवर्ड-गायना' नामक पत्रमें एक लेख लिखा है, उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश यह है—

"औपनिवेशक भारतीयोंको पाश्चात्य सभ्यता और पाश्चात्य प्रभावोंके संसर्गमें आनेके कारण जो अपूर्व अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनसे वे मातृभूमिकी कितनी सहायता नहीं कर सकते! क्या भारतवर्षका सबसे महान् संत और नेता (गान्धीजी) क्या पूर्वीय और पश्चिमी दोनों सभ्यताओंकी सम्मिलित उपज नहीं है? इन प्रभावोंने, जो गत एक शताब्दीसे कार्य कर रहे हैं—एक नई पौध उत्पन्न कर दी है, जिसके जीवनका दृष्टिकोण बहुत विस्तृत है और जिसके आदर्श नवीन हैं। जैसा दीवान बहादुर केशव पिल्लेने कहा था—'इस उपनिवेशमें भारतीयोंकी एक नई जातिका जन्म हो रहा है, जो जात-पातके आत्मघाती बन्धनों और अनुचित सामाजिक और धार्मिक कुरीतियोंसे मुक्त है, इस उपनिवेशके जीवनको समृद्धिशाली बना रही है और अन्य जातियोंका सम्मान प्राप्त कर रही है।'

"इस प्रकार विशाल भारतके निर्माणका काम अज्ञात रूपसे हो रहा है। वह उसी क्षणसे हो रहा है, जिस क्षण हमारे पूर्वपुरुषोंने इस देशकी भूमिपर क़दम रखा था। विशाल भारतके निर्माणकी यह क्रिया भविष्यमें भी जारी रहेगी, परन्तु यदि हम चाहते हैं कि यह क्रिया भारत और उसकी प्रवासी सन्तानों दोनोंके लिए लाभदायक हो, तो हमें बुद्धिमत्तापूर्ण नेतृत्व और पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकता है।··· विशाल भारतके निर्माणकी समस्याको हल करनेमें हम लोग अवश्य ही कुछ सहायता पहुँचा सकते हैं। अत: आइये हम आपसमें मिलकर इस बातपर तथा इसके समस्त पहलुओं और सूक्ष्म विवरणों पर विचार करें— सचमुच रचनात्मक कार्य करनेकी इच्छासे बातचीत करें।"

यदि धृष्टता न समझी जाय, तो मैं लेखक महोदयकी सेवामें यह निवेदन करूँगा कि हम लोग मीटिंगों, एंसोसियेशनों और संगठनोंकी अपेक्षा व्यक्तिगत-रूपसे अधिक कार्य कर सकते हैं।

—

नया ज़माना

श्रीयुत ब्रजमोहन दत्तात्रेय 'कैफ़ी', बी० ए०

पैदा हुए हैं दुश्मने-ईमां नये-नये,
हिन्दू नये-नये हैं मुसल्मां नये-नये।

वेदों पे ताज़े-ताज़े चढ़ाते हैं हाशिये,
गढ़ते हैं लोग मानिए-कुरआं नये-नये।

इन्सां तो क्या ख़ुदाके भी सिजदेसे आर है,
हैं चौदवीं सदीके ये शैतां नये-नये।

कौसरके अब खयालमें कुछ भी मज़ा नहीं,
चश्मे निकाले ख़ुल्दमें रिज़वां नये-नये।

सालूस, बदमी और जन्नी हैं उनके नाम,
बँधते हैं अहले-दिल पे ये बोहतां नये-नये।

मग़रिबके फ़ैलसूफ़ोंके कुरबान जाइये,
बन्दर बनाये सूरते-इन्सां नये-नये।

घर अपना एक दिलमें भी तुमसे न बन सका,
हाँ क्या हुआ बनाये जो ऐवां नये-नये।

हो इत्तफ़ाक़ शेख़ो-बिरहमनमें किस तरह,
पैदा हैं इख़्तलाफ़के सामां नये-नये।

थल बेड़ा नूहकी भी न किश्तीका लग सके,
कलजुगमें उठ रहे हैं ये तूफ़ां नये-नये।

चोला बदल ले कायापलट हो के कैसे गुल,
गाती है राग बुलबुले-बुस्तां नये-नये।

जो ख़ाल था वो बढ़के मसा हो रहा है अब,
लाती है रंग ज़ुल्फ़े-परेशां नये-नये।

नुक़तासियासी हक़्क़का तरक़्क़ीका क़ुत्ब है,
लोगोंको ख़ूब होते हैं वजदां नये-नये।

सौदा है सरमें आँखोंमें छाई है ख़ीरगी,
हम देखते हैं ख़्वाबे-परेशां नये-नये।

सादिक़ नहीं है इश्क़ न उल्फ़त है बेग़रज़,
दावे नहीं ये आपको शायां नये-नये।

सौदाई है कोई तो कोई सतजुगी नक़्क़ाद,
इस घरमें घुसके बैठे हैं मेहमां नये-नये।

जितने पढ़े निफ़ाक़ो-हसद उस क़दर बढ़े,
तालीमके ये हम पे हैं अहसां नये-नये।

उनकी तरफ़ किसीकी तवज्जो ज़रा नहीं,
खुलते हैं जो तरक़्क़ीके मैदां नये-नये।

ख़ाले सियहसे छीनते हुस्ने सबीह है,
बुत सीखे दिल फ़रेबीके उनवां नये नये।

चक्कर कहाँ ये जाके ठहरता है देखिये,
लाती है रंग गरदिशे दौरां नये-नये।

बरगश्ता है जो ज़ुल्फ़ तो है पुरशिकन जबीं,
उश्शाक़की है जानको ख़िल्जां नये-नये।

कोशिश ये हो रही है कि नामर्द उन्हें बनायं,
पैदा हुए हैं हामिये निस्वां नये-नये।

गानेमें लड़के, लड़कियाँ वरज़िशमें बर्क़ हैं,
तालीमके हैं कारे-नुमायां नये नये।

ईमान=ईश्वरपर विश्वास, आस्तिक भाव। हाशिए=व्याख्या। ईन्सां तो क्या०=शैतानने आदमको ही सिजदा (दण्डवत) करनेसे इनकार किया था, इस सदीके शैतान ईश्वरको भी सिजदा नहीं करते। कौसर=बहिश्तकी एक नहर। ख़ुल्द=बहिश्त, स्वर्ग। रिज़वां=बहिश्तका दरबान। सालूस=दम्भी, वाचाल। अहलेदिल=सहृदय। बोहतां=इलज़ाम। फ़ैलसूफ़=फिलासफर। ऐवां=महल। ख़ाल=तिल।

नुक़तासियासी हक़=राजनीतिक अधिकारका बिन्दु ही उन्नतिका ध्रुवलक्ष्य है। वजदां=भावावेश। ख़ीरगी=अँधेरा। सादिक़=सच्चा। उल्फ़त=प्रेम। शायां=उचित।

जितने पढ़े०=जितनी शिक्षा फैली, उतना ही ईर्ष्या-द्वेष बढ़ा। हामिये-निसवां=स्त्रियोंके हितैषी। गानेमें०=लड़के गाना सीख रहे हैं; लड़कियाँ०=व्यायाम-विद्या।

ज़ोर आज़माइयोंके हैं मुजरे स्टेजपर,
रुस्तम नये-नये हैं नरेमां नये-नये ।

इनके निकालने की भी तदबीर कीजिए,
दिलमें जो पाल रक्खे हैं अरमां नये-नये ।

अहले ज़बांका सर्द है बाज़ार इन दिनों,
शायर नये-नये हैं सखुनदां नये-नये ।

ठहरा है हुस्ने मिल्लतो क़ौम अब ज़बानपर,
तहज़ीबके ये फैले हैं इरकां नये-नये ।

याराने रफ़्ताकी कहें अब किससे दास्तां,
दुनिया नई है और हैं इन्सां नये-नये ।

'कैफ़ी' बहुत न बज़्मे सखुनमें तू बढ़के बोल,
नक़्क़ाद बनके बैठे हैं सहबा नये नये ।

नरेमां=रुस्तमका दादा ।

नक़्क़ाद=समालोचक । सहबा=अरबका एक महाकवि ।

चित्र-परिचय

युधिष्ठिरका पासेका खेल

यह चित्र शान्तिनिकेतनके कला-भवनके प्रसिद्ध चित्रकार श्री नन्दलाल वसुकी सफल कृति है।

महाभारतकी कथा जाननेवाले सभी व्यक्ति जानते हैं कि पाण्डवोंके ऐश्वर्य-वैभवसे जलकर दुर्योधनने अपने मामा शकुनिके साथ षड्यन्त्र रचा था। युधिष्ठिरमें पासा खेलनेका बुरा व्यसन था। कौरवोंने उन्हें जुआ खेलनेके लिए निमंत्रित किया। शकुनि बड़ा धूर्त और जालिया था, उसने ऐसे जाली पाँसे बनाये, जिससे हर दाँवमें उसीकी जीत हो! युधिष्ठिरने खेलमें हारना शुरू किया, और रुपया-पैसा, धन-दौलत राज-पाट हारते-हारते अन्तमें अपनी सम्राज्ञी द्रौपदीको भी हार गये।

चित्रकारने इसी पासोंके खेलको चित्रित किया है। युधिष्ठिर और शकुनि बैठे पासा खेल रहे हैं। सभी चित्रोंको हम मोटे हिसाबसे दो भागोंमें विभाजित कर सकते हैं; एक वस्तु-प्रधान चित्र और दूसरा भाव-प्रधान चित्र। मान लीजिए कि हिमालयकी एक प्राकृतिक छटाका चित्र किसी एक चित्रकारने अंकित किया है। उस चित्रमें वह मूलस्थानके वास्तविक दृश्यके साथ जितनी अधिक समता उत्पन्न कर सकेगा, वह उतना ही अधिक सफल चित्रकार कहा जायगा। निर्जीव पदार्थ अथवा जानवर आदिके चित्रोंमें भी चित्रकी सफलता मूलवस्तुके अधिकाधिक सादृश्यपर निर्भर होती है। यह चित्र वस्तु-प्रथम चित्र कहे जा सकते हैं। मनुष्योंकी मामूली तसवीरें भी इसी श्रेणीकी हैं, परन्तु सफल चित्रकार उन (Portraits) चित्रोंमें भी व्यक्तियोंकी अन्तरात्मा—उनके चरित्रकी छाप लगा देते हैं।

दूसरे प्रकारके चित्र भाव-प्रधान चित्र हैं। उनका अंकन चित्र-कलाकी पराकाष्ठा है। उनके अंकित करनेमें चित्रकारका एकमात्र लक्ष्य कुछ विशेष भावोंको चित्रपटपर उतारकर रख देना होता है। ऐसे चित्रोंमें मूर्तियोंकी सूरत-शक्ल, पहनाव और अंग-भंगी, पृष्ठ-भाग (Back ground) अग्रभाग (Fore ground) आदि अंकित करनेमें चित्रकार केवल इसी बातको ध्यानमें रखता है कि वे सब चीज़ें अलग-अलग और सामूहिक रूपसे चित्रके मुख्य लक्ष्य—उसके केन्द्रीय भावको—ही महत्त्व देने और उनपर ज़ोर डालनेमें सहायक हो सकें। फिर उनमें वास्तविकता हो या न हो, क्योंकि ऐसे चित्रोंमें वास्तविकताकी ओर अधिक ध्यान देनेसे चित्रका भाव गौण हो जाता है और विवरण Detail पर अधिक ध्यान जाता है। यदि ये सब चीज़ें चित्रके मुख्य भावकी विशेषता देनेमें सहायक नहीं होतीं, तो समझ लीजिए कि चित्र असफल रहा। भाव-प्रधान चित्रोंमें इस प्रकारके तर्क कि युधिष्ठिर नीला उत्तरीय पहनते थे या पीला, उनके कान छिदे थे या नहीं, वे मूँछ-दाढ़ी रखते थे या नहीं, दुर्योधन हीरेकी अंगूठी पहनते थे या नीलमकी, गांधारी अपने नेत्रोंमें सफेद पट्टी बाँधती थीं या काली, बिलकुल बेकार हैं। उसमें तो केवल यही देखना चाहिए कि चित्रकारके वांछित भाव अंकनमें प्रत्यक्ष हो सके हैं या नहीं।

भारतकी चित्रण-कलाका सबसे प्राचीन उदाहरण अजन्तामें मिलता है। वही हमारे देशकी प्राचीनतम शैली है, इसलिए चित्रकारने इस चित्रको अजन्ता शिल्पकौशल (Technique) पर अंकित किया है। अत: उसके शिल्प-कौशलमें किसी प्रकारके मीन-मेख करनेकी जगह नहीं है। चित्रकारने चित्रको प्राय: दो भागोंमें विभक्त कर दिया है। एक भागमें युधिष्ठिर और शकुनि बैठे हैं। सामने चौपड़ बिछी है। युधिष्ठिरने अभी-अभी पासा फेंका है। चित्रपर निगाह डालते ही दर्शककी दृष्टि सर्वप्रथम

तीनों पासोंपर जाती है। इस प्रकार चित्रमें पासोंके खेलकी एक प्रकारकी प्रत्यक्षता दृष्टिगोचर होती है। युधिष्ठिरके मुख और हाथोंसे असहाय अवस्थाके ऐसे भाव टपक रहे हैं, जिनसे उनपर करुणा आती है।

शकुनिकी मूर्त्ति अंकित करनेमें चित्रकारने कमाल किया है। यदि कोई धूर्तता और छलको मूर्तिमान मनुष्यके रूपमें देखना चाहता है, तो शकुनिकी इस मूर्तिको देखे। कोई विदेशी भी, जो महाभारतके इतिहाससे बिलकुल अपरिचित हो, शकुनिकी मूर्तिको देखकर छल-कपटका अवतार ही कहेगा। वह कैसी गृद्धदृष्टिसे पासोंको देख रहा है! साथ ही मन ही मन पुलकित हो रहा है। युधिष्ठिरकी असहाय अवस्था और प्रसन्नहृदय शकुनिकी धूर्तताका Contrast देखने योग्य है।

इन दोनों मूर्तियोंके अग्रभागमें चित्रकार कईएक डिब्बे रख दिये हैं। ये डिब्बे धन-सामग्रीके परिचायक हैं। चित्रकारको पासोंपर दर्शकका विशेष ध्यान दिलाना अभीष्ट था, अत: उसने अग्रभागमें कोई मूर्ति नहीं बिठाई। मगर उसे यों ही छोड़ देनेसे चित्र कुछ खाली-खालीसा मालूम पड़ता, इसलिए उसने ये डब्बे और सन्दूकची— जो धन-सामग्रीके परिचायक हैं—अंकित करके इस दोषको भी मिटा दिया।

चित्रके दाहने भागमें चारों पांडव—भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव—युधिष्ठिरके इस नाशकारी खेलके परिणामको सोचकर चिन्ताकुल लज्जासे सिर नीचा किये बैठे हैं। अर्जुनका गांडीव और खरतीक्ष्ण बाण उनके पास निश्चेष्ट पड़े हैं। भीम अपने गदेपर हाथ रखे हुए निश्चल हैं। कौरवोंके आगे उन्हें नीचा देखना पड़ रहा है, इस विचारसे नकुलका सिर ऊपर नहीं उठता। अबकी पासेमें किसकी जीत होती है, यह जाननेके लिए सहदेव पीड़ा-भरे व्यग्र नेत्रोंसे चौपड़की ओर ताक रहे हैं। पार्श्व-भागमें दुर्योधन प्रसन्नतासे बैठे अपने भागकी करामात देख रहे हैं। एक ओर गांधारी आदि रमणियाँ दिखाई पड़ती हैं।

मूल चित्र काठके तख्तेपर अंकित है। निस्सन्देह नन्दलाल बाबूकी यह एक उत्कृष्ट कृति कही जा सकती है।

—

अर्ध-नारीश्वर

हिन्दुओंके धार्मिक विचारोंके अनुसार संसारकी सृष्टि पुरुष और प्रकृतिसे होती है। वैदिक ऋषियोंने पुरुष और प्रकृतिके सम्मिलित रूपके प्रतीक स्वरूप अर्ध-नारीश्वरकी मूर्तिकी कल्पना की थी—अर्थात् उन्होंने पुरुष और स्त्रीके एक सम्मिलित रूपकी रचना की थी। पौराणिक कालमें भगवान शिव और भगवती शक्तिके सम्मिलित स्वरूपकी कल्पना अर्ध-नारीश्वरकी मूर्तिमें की गई। कलकत्तेके अजायबघरके पुरातत्व-विभागमें अर्ध-नारीश्वरकी कई मूर्तियाँ सग्रहीत हैं। काशीके कुछ मन्दिरोंमें भी अर्ध-नारीश्वरकी प्रतिमाएँ हैं।

इस अंकमें 'अर्ध-नारीश्वर' नामक एक चित्र प्रकाशित किया जाता है। इस चित्रके शिल्पी एक नवयुवक चित्रकार श्री चैतन्यदेव चट्टोपाध्याय हैं। चित्रमें अंकित मूर्तिका आधा अंग वामांग स्त्रीका है और आधा दक्षिणांग पुरुषका है। मूर्तिका परिधान भी इसीके अनुसार आधा स्त्रियोचित और आधा पुरुषोचित है। एक हाथमें है त्रिशूल और दूसरेमें कमल।

इस चित्रकी सबसे बड़ी विशेषता है इसकी वर्ण-व्यवस्था या 'कलर-एफेक्ट'। चित्रकारने मूर्तिके पीछे अलंकारिक रंगीन ज़मीन देकर चित्रमें एक निरालापन उत्पन्न कर दिया है। पृष्ठ-भाग (Back ground) इस तरहकी है कि उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो ऊपरसे किसीने एक विचित्र-विचित्र तरल रंगोंका पात्र ढुलका दिया हो, और उसी बहती हुई तरलतामेंसे अर्ध-नारीश्वरकी मूर्ति निकल पड़ी हो।

—ब्रजमोहन वर्मा

सम्पादकीय विचार

पत्रकारोंका अन्तर्जातीय संगठन

समस्त संसारमें पत्रकारोंकी संख्या बराबर बढ़ती जा रही है। शिक्षाकी ज्यों ज्यों उन्नति होती जायगी, त्यों-त्यों इस संख्यामें और भी वृद्धि होती रहेगी। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि उनकी आर्थिक और सामाजिक अवस्थाको उन्नत और स्थायी बनानेके लिए उनका संगठन हो। हमारे यहाँ तो अभी पत्रकारोंकी संख्या बहुत ही कम है, इसलिए हम चाहे इस बातका अनुभव न करते हों—हमारे बड़े-बड़े पत्रकारोंका शायद यह अनुभव ही नहीं है, यद्यपि बेचारे छुट-भाइयोंको इसका अनुभव बड़ी तीव्रतासे हो रहा है—परन्तु जिन देशोंमें उनकी संख्या अधिक है, वहाँपर उन्हें संगठनकी कमीका अच्छा अनुभव हो गया है, और इसी अनुभवके आधारपर वहाँ पत्रकारोंका संगठन भी हो गया है, और रोज नये पैमानेपर और नये ढंगसे यह संगठन जारी है। यह संगठन अपने व्यवसायकी उन्नतिके विचारसे उतना नहीं हो रहा है, जितना कि वह पत्रकारोंकी आर्थिक उन्नति करने और समाजमें उनकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेके लिए। पत्रकारोंका संगठन इस समय कल-कारखाने आदिमें काम करनेवाले अन्य पेशेवाले कर्मचारियोंकी भाँति मज़दूर-संघके सिद्धान्तोंके अनुसार हो रहा है। यद्यपि प्रारम्भमें पत्रकार संघोंकी स्थापना आदर्शवादपर अपने व्यवसायकी उन्नति करनेके लिए हुई थी, तथापि ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों वे प्रतिदिन सामने आनेवाले आर्थिक संकटोंके निवारण करने और आत्म-रक्षाके लिए अधिक चिन्तित देखे जाते हैं। इस कार्यमें उनको खूब सफलता भी मिल रही है। हालमें तो उन्होंने ऐसे काम किये हैं कि जिन्हें देखकर मज़दूर-संघवाले भी अवाक् रह जाते हैं।

आजसे कोई बीस-पचीस वर्ष पहले जिस समय समस्त संसारमें समाचारपत्रोंकी विशेष उन्नति हो रही थी, पत्रकारोंके लिए एक नवीन युग आ उपस्थित हुआ था। समाचारपत्रोंका प्रभाव बढ़ रहा था। पत्रकारोंकी संख्या भी काफ़ी थी, परन्तु उनमें उस समय तक कोई संगठन न था। अतः समाचारपत्रोंके संचालक उनके साथ मनमाना व्यवहार करते थे। उनके पास ऐसा कोई साधन न था, जिससे वे सब मिलकर अपनी स्थितिकी रक्षा कर सकते। अत: उन्हें अपनी बिखरी हुई शक्तियोंको संगठित करनेकी बात सूझी। धीरे-धीरे उनका संगठन प्रारम्भ हुआ, और उन्होंने अपनी स्थिति सुधारनेके लिए प्रयत्न आरम्भ किया। इसी बीच यूरोपियन महायुद्ध आरम्भ हुआ। पत्रकार वैसे ही आर्थिक संकटमें थे। लड़ाईके कारण उनका संकट और भी उग्र हो उठा। अब तो संगठन और भी अधिक आवश्यक हो गया। नतीजा यह हुआ कि जिन देशोंमें उस समय तक कोई संगठन न था, वहाँ भी उसका सूत्रपात हुआ, यद्यपि आरम्भका हेतु केवल पारस्परिक सद्भाव स्थापित करना मात्र था। जहाँ संगठन था, वहाँ मज़दूर-संघके उपायोंसे काम लेना शुरू हो गया और जहाँ पहले ही से मज़दूर-संघके उपायोंसे काम लिया जा रहा था, वहाँ व्यावसायिक स्थितिकी नींव डाल दी गई।

पत्रकार-कलाके व्यवसायकी जो उन्नति हुई, वह सर्वत्र एक प्रकारसे ही नहीं हुई। इसलिए सब देशोंके संगठनोंमें परस्पर थोड़ी-बहुत विषमता मिलती है। अनेक देशोंमें अब तक पुरानी रीति बरती जाती है, कई देशोंमें सुधार हो रहा है और कईमें सुधार हो चुका है, तथा नवीन उपायोंसे बराबर काम लिया जा रहा है। विभिन्न देशोंके विभिन्न संगठनोंका रूप भी अपना-अपना अलग है। कई संस्थाएँ केवल सद्भाव स्थापित करनेके विचारसे ही खुली हैं। उन्होंने अपने सदस्योंमें न केवल शुद्ध पत्रकारोंको ही लिया

है, वरन् लेखकों, मैनेजरों और प्रेस-मालिकोंको भी शामिल किया है। कभी तो ऐसे लोग भी शामिल कर लिए जाते हैं, जिनका प्रेसके कामसे कोई नियमित सम्बन्ध भी नहीं होता, जैसे चित्रकार आदि। कुछ संस्थाएँ पारस्परिक सहयोगके विचारसे स्थापित हुई हैं। उनमें सब प्रकारके पत्रकार सम्मिलित हैं। परन्तु आजकल अधिकांश संस्थाएँ इतनी संकुचित हैं कि उनमें विशुद्ध पत्रकारोंके अलावा प्रकाशकों और मैनेजरों तकको स्थान नहीं मिलता। व्यवस्थाके सम्बन्धमें कुछ पत्रकार-संघ इतने आगे बढ़े हुए हैं कि उनके यहाँ सूचना, प्रचार और क़ानून आदि भिन्न-भिन्न विभाग खोल दिये गये हैं और अपना पत्र निकालकर इस व्यवसायके सिद्धान्तोंपर विचार किया जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि आजकल पत्रकार-संघोंका काम मज़दूर-संघोंके सिद्धान्तोंके आधारपर होता है, इसलिए यह प्रश्न बराबर उठा करता है कि अन्यान्य दिशाओंमें काम करनेवाले मज़दूर-संघोंके साथ पत्रकार-संघका क्या सम्बन्ध होना चाहिए। इसपर भिन्न-भिन्न मत हैं। कहीं तो पत्रकार-संघ बिलकुल अलग रहते हैं, कहीं वे केवल दिमाग़ी काम करनेवाले लोगोंके संघसे सम्बन्ध स्थापित करते हैं और कहीं-कहीं शारीरिक परिश्रम करनेवाले मज़दूरोंके संघोंसे भी सम्बद्ध हो जाते हैं। जहाँ लोग इस बातका समर्थन करते हैं कि उन्हें अलग रहना चाहिए, या कम-से-कम दिमाग़ी कामवाले लोगोंके संघोंमें सम्मिलित होना चाहिए, वहां पत्रकारोंके व्यवसायकी दिमाग़ी दिशाको ही सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है और जहां लोग सबसे मिलकर काम करनेके पक्षमें होते हैं, वहां उनका विचार यह होता है कि पत्रकार, सब विशेषताएँ होते हुए भी, हैं तो आखिर मज़दूर ही। व्यावसायिक उन्नतिके आन्दोलनमें केवल दिमाग़ी काम करनेवालोंकी अपेक्षा मज़दूर लोगोंका सहयोग और भी अधिक प्रभावशाली हो सकता है। इसलिए वे अच्छे-अच्छे मजदूर-संघोंके साथ कुछ दबकर भी सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। ऐसे लोगोंका कहना है कि जिस प्रकार आपसमें एक दूसरेसे सहयोग प्राप्त करना हितकर है, उसी प्रकार अन्य पेशेवाले मज़दूरोंसे भी सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। बात यह है कि अन्यान्य प्रकारके मज़दूर-संघोंका बल इस समय बहुत बढ़ा-चढ़ा है, और उनसे मिलकर काम करनेसे उनके उस बलका फल अनायास ही मिल सकता है। इसीलिए उनसे सम्बन्ध स्थापित करनेकी ओर झुकाव है।

इस ओर और भी नये-नये उद्योग हो रहे हैं। विभिन्न देशोंके पत्रकार-संघोंको मिलाकर सर्वराष्ट्रीय पत्रकार-संघकी स्थापना भी हो चुकी है। यह संस्था सार्वराष्ट्रीय मज़दूर-संघके सहयोगसे खूब काम कर रही है और अब इसकी प्रतिष्ठा राष्ट्र-संघ तकमें हो गई है। संगठन कार्यके अभी और भी बढ़नेकी सम्भावना है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि जिस प्रकार समाचार पत्र राष्ट्रोंकी प्रभावशाली शक्ति बन गये हैं, उसी प्रकार पत्रकार-संघ भी शक्तिशाली बन जायँ।

—

सन्धि

महात्मा गांधी तथा लार्ड इर्विनके बीच जो सन्धि हुई है, उसकी शर्तें समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो गईं। राजनैतिक दृष्टिसे शर्तें कहाँ तक उचित हैं और उनके द्वारा कांग्रेसकी माँगोंकी पूर्ति कितने अंशोंमें हो सकती है, यह प्रश्न ऐसे हैं, जिनका उत्तर राजनीतिज्ञ ही दे सकते हैं, और सो भी वे राजनीतिज्ञ, जो सन्धि-चर्चाके भीतरी मामलोंको अच्छी तरह जानते हों। इस प्रकारके समझौतोंमें शर्तोंकी अपेक्षा वह भावना ही, जिससे प्रेरित होकर उभय-पक्ष सन्धि करते हैं, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। इसी दृष्टिसे हम इस सन्धिका स्वागत करते हैं। महात्मा गांधीने पत्रकारोंके सम्मुख भाषण करते हुए कहा है—

"मैं यह बात कह देना चाहता हूँ कि इस प्रकारका समझौता वायसरायके अटूट परिश्रम तथा निरन्तर नम्रतापूर्ण

व्यवहारके बिना असम्भव था। मैं यह भी जानता हूँ कि बिना जाने मुझसे ऐसी बातें हो गई होंगी, जिनसे वायसराय महोदय चिढ़ सकते थे। मेरी बातोंसे उनके धैर्यकी कठिन परीक्षा भी हुई होगी, पर मुझे ऐसा एक भी मौका याद नहीं आता, जब कि वायसराय चिढ़ गये हों अथवा उन्होंने अधैर्य प्रकट किया हो। इस अत्यन्त नाजुक सन्धि-चर्चाके दिनोंमें वायसरायने बड़ी स्पष्टवादितासे काम लिया, और मेरा यह विश्वास है कि वे समझौतेके लिए प्रारम्भसे ही दृढ़-प्रतिज्ञ थे। मैं यह बात भी स्वीकार करूँगा कि सन्धि-चर्चा करते समय मेरा हृदय आशंका तथा भयसे परिपूर्ण था। मेरे हृदयमें अविश्वास भी था, पर वायसरायने प्रारम्भ ही में मुझे आश्वासन देकर मेरी आशंकाओंको दूर कर दिया और मुझे निश्चिन्त बना दिया। शक्तिशाली परमात्माको धन्यवाद है कि जिसकी कृपासे यह समझौता हुआ, और देश उन कष्टोंसे बच गया—चाहे अभी थोड़े दिनोंके लिए ही सही, वैसे मैं आशा तो यही करता हूँ कि भविष्यके लिए भी—जो सन्धि-चर्चाके विफल होनेपर हमारे देशको सहन करने पड़ते और वे कष्ट वर्तमान कष्टोंसे सौगुने होते।"

"इस प्रकारके समझौतेमें यह कहना कि अमुक दल विजयी हुआ, न तो सम्भव ही है और न उचित ही। यदि किसीकी विजय हुई है, तो मैं तो यही कहूँगा कि दोनों दलोंकी। विजयके लिए तो कांग्रेसने दावा भी नहीं किया था।"

ये उदारतापूर्ण शब्द इस बातके प्रबल प्रमाण हैं कि गांधीजी वास्तवमें 'स्थिर धी' महात्मा हैं। साल-भर पहले ३ मार्च सन् १९३० को जब महात्माजीने अपना अन्तिम पत्र लार्ड इर्विनको भेजा था, उस समय यह कौन कह सकता था कि एक वर्षमें शक्तिशाली साम्राज्यके अभिमानी अधिकारी इतना झुकनेके लिए तैयार हो जायँगे? ३ मार्च १९३० को अन्तिम पत्र भेजा गया, और ठीक एक साल बाद यानी ३ मार्च १९३१ को ही सन्धि-पत्रपर महात्मा गांधी तथा लार्ड इर्विनके बीच समझौता हो गया! इस गांधी-इर्विन समझौतेको देखकर आजसे सतरह वर्ष पहलेके गांधी-स्मट्स समझौतेकी याद आ जाती है। उस वक्त भी महात्माजीने अपनी विजयके अवसरपर अत्यन्त धैर्य तथा नम्रतासे काम लिया था। इस अवसरपर उक्त घटनाके विवरणको उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। मि० सी० एफ० ऐण्ड्रूजने, जो उस समय महात्माजीके साथ थे, लिखा था—

"हम लोगोंको नित्यप्रति गवर्मेन्ट-हाउसपर जाना पड़ता था। धीरे-धीरे रोज़ कुछ समय निकालकर बातचीत करते-करते आखिरकार जनरल स्मट्सके साथ समझौता होने लगा। प्रत्येक बातपर अच्छी तरह विचार किया गया। जब हम लोग इस प्रकार झगड़े सुलझानेमें लगे हुए थे, महात्मा गांधीके पास तार आया कि आपकी धर्मपत्नी अत्यन्त बीमार हैं। इसलिए वे चिन्तित थे। फिर मि० पोलकने खबर भेजी—'आपकी स्त्री अन्त समयमें आपके दर्शन करना चाहती हैं।' महात्मा गांधीने उस समय कहा था—'मुझे यहाँपर यह आवश्यक काम है, मैं नहीं जा सकता।' जब मैंने यह तार पढ़ा, तो मैं महात्मा गांधीसे बिना कहे ही सीधे जनरल स्मट्सके पास चला गया और उन्हें यह खबर सुना दी।

"यह समाचार सुनकर जनरल स्मट्सका हृदय द्रवित हो गया, और उन्होंने सब काम छोड़कर पहले गांधीजीके साथ समझौता करनेका काम हाथमें ले लिया। अन्तमें अन्य सब बातें तो निश्चित हो गई थीं, लेकिन एक कठिनाई रह गई थी। जनरल स्मट्स इस समझौतेमें एक वाक्य रखना चाहते थे, और महात्मा गांधी उस वाक्यके विरुद्ध थे। इसी बातपर मामला अटक गया था। महात्माजी कहते थे कि अगर यह वाक्य रहा, तो समझौता नहीं हो सकता और सत्याग्रह-संग्राम फिर जारी करना पड़ेगा। मेरी समझमें यह बात नहीं आई थी कि इस एक वाक्यपर इतना झगड़ा क्यों होना चाहिए। महात्माजीने मुझसे कहा—'तुम हमारी दृष्टिसे इस प्रश्नपर विचार करो', लेकिन फिर भी मैं उनकी बात नहीं समझ सका। हम लोग रातके एक बजे तक बातचीत करते रहे। फिर मैंने महात्माजीसे कहा—'अगर जनरल स्मट्सके उपर्युक्त वाक्यके स्थानमें मेरा यह वाक्य रख दिया जाय, तो क्या आप उसे स्वीकार कर लेंगे?' तब मैंने अपना वाक्य उन्हें सुनाया। सोनेके पहले सोच-विचारकर गांधीजीने कहा—'अगर जनरल स्मट्स अपने वाक्यके स्थानमें तुम्हारे इस वाक्यको रख दें, तो मुझे कोई इनकार न होगा। उनके यह स्वीकार कर लेनेसे सारा मामला तय हो जायगा।' सवेरेके समय गांधीजीसे बिना

कहे ही मैं सीधे जनरल स्मट्सके पास गया। आठ बजेके समय उनसे मुलाक़ात हुई। उस समय वे बिलकुल अकेले ही थे। मैंने उनसे निवेदन किया कि अब इस मामलेका तय हो जाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि गांधीजीकी स्त्री मरणासन्न हैं। जनरल स्मट्सने कहा—'मैं भी यही चाहता हूँ कि यह झगड़ा समाप्त हो जाय।' फिर मैंने समझौतेका काग़ज़ पढ़ा और कहा—'अगर आपके उस वाक्यके स्थानमें ये वाक्य लिख दिया जाय, तो क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?' जनरल स्मट्सने उस वाक्यको दो-तीन बार पढ़ा, और फिर कई मिनट तक उसपर विचार किया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—'मुझे अपने वाक्यको बदलकर इस वाक्यके रखनेमें कोई इनकार नहीं है। मेरे निकट इन दोनों वाक्योंमें कोई अन्तर नहीं है।' फिर मैंने कहा—'तो आप कृपाकर अपने वाक्यको काटकर यह वाक्य लिख दीजिए, और उसके नीचे अपने हस्ताक्षर कर दीजिए।' जनरल स्मट्सने तुरन्त ही अपने वाक्यको काटकर मेरा वाक्य लिख दिया और उसके नीचे हस्ताक्षर कर दिये। अत्यन्त प्रफुल्ल-चित्त होकर मैं उस काग़ज़को महात्मा गांधीके पास ले आया। महात्माजीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि अब झगड़ा तय हो गया और सत्याग्रह-संग्रामके चलानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। महात्माजीने उस समझौतेपर अपने हस्ताक्षर कर दिये, और मैं उसे लेकर जनरल स्मट्सको दे आया। वह दिन और वह प्रात:कालका समय मुझे जीवन-भर नहीं भूल सकता। यद्यपि महात्माजीको बड़ी भारी विजय प्राप्त हुई थी, लेकिन वे बिलकुल शान्त थे और उनका आत्म-संयम आश्चर्यजनक था।

"उस महान् संग्राममें महात्मा गांधी बिलकुल स्थिर-चित्त थे। वे कभी उत्तेजित नहीं होते थे। जब कभी मैं महात्मा गांधीके कार्योंपर विचार करता था, तो मुझे *श्रीमद्भगवद्गीताके 'निष्कामकर्म' की याद आ जाती थी।* जिस तरह श्रीकृष्णने महाभारतके युद्धमें अर्जुनके चंचल हृदयको स्थिर कर दिया था, उसी प्रकार महात्माजी प्रवासी भारतीयोंके महान् शक्तिका बड़ी स्थिरताके साथ संचालन कर रहे थे। उस महान् युद्धके बीचमें, जो उनके चारों ओर हो रहा था, वे बराबर प्रसन्न-चित्त रहते थे। उनको अस्थिर-चित्त हमने कभी नहीं देखा। इस विषयपर मैं मि० पियर्सनके साथ प्राय: बातचीत किया करता था। हम लोग आपसमें कहा करते थे कि सचमुच महात्मा गांधी गीताके 'निष्काम कर्म' का उदाहरण संसारके सामने उपस्थित कर रहे हैं।"

यद्यपि सन्धि हो गई है, पर अभी बहुत-कुछ कार्य करनेके लिए पड़ा हुआ है और तब तक इसे क्षणिक सन्धि ही कहना चाहिए। स्थायी सन्धि तो तब होगी, जब भारतके शासन-विधानका प्रश्न दोनों दलों-द्वारा स्वीकृत हो जायगा। यद्यपि स्वतंत्रताका यह अंतिम संग्राम नहीं है—मातृभूमिकी पूर्ण-स्वाधीनताके लिए भारतीयोंको अभी एक बार संग्राम और भी करना पड़ेगा, फिर भी देशकी जो आध्यात्मिक विजय हुई है, उसका महत्त्व कम नहीं है। संसारके इतिहासमें यह पहला ही दृष्टान्त है, जब कि अहिंसात्मक उपायोंके सामने महानसे महान् पाशविक शक्तियोंको इतना झुकना पड़ा है।

यदि शान्तिपूर्वक अन्तिम समझौता हो गया, जिसकी कि आशा है, तो संसारकी राजनीतिपर भी इसका ज़बरदस्त प्रभाव पड़ेगा। हिंसात्मक युद्धोंसे संसार तंग आ चुका है, और दुनियाके बड़े-बड़े विचारक पारस्परिक झगड़ोंको मिटानेके लिए ऐसे उपायोंकी तलाशमें हैं, जो रक्तपातसे रहित तथा शान्तिपूर्ण हों। महात्माजीने अहिंसात्मक असहयोगकी शक्तिको प्रत्यक्ष दिखलाकर वास्तवमें संसारकी एक महान आवश्यकताकी पूर्ति की है। समय आयेगा, जब संसारके इतिहासमें इस संग्रामका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायेगा, जब जगतके विचारक इस बातको स्वीकार करेंगे कि इस संग्रामने मानव-जीवनके इतिहासमें एक नवीन युगका प्रारम्भ किया। आजसे २१ वर्ष पहले रशियन ऋषि टाल्सटायने महात्मा गांधीको लिखा था—

"*And so your activity in the Transvaal,* as it seems to us at the end of this world, is the most essential work, the most important *of all* work now being done in the world, and in which not *only* the nations of the Christian, but of all the world, *will unavoid-ably take part.*"

अर्थात्—'इसलिए ट्रान्सवालमें आपका आन्दोलन, जैसा

कि हम दुनियाके इस ओरपर रहनेवालोंको प्रतीत होता है, अत्यन्त आवश्यक कार्य है, संसार-भरके कार्योंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस कार्यमें केवल ईसाई जातियाँ ही नहीं, बल्कि संसारकी सारी जातियाँ अवश्यमेव सम्मिलित होंगी।' वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है, और तभी हम कहेंगे—"महात्मा गांधीजीकी जय, भारत माताकी जय।"

—

हिन्दू-मुसलिम एकता

काशीमें हिन्दू-मुसलमानोंमें जो झगड़ा हुआ और जिस प्रकार बीसियों निरपराध मनुष्योंके प्राण गये तथा पचासों बेकसूर आदमी घायल हुए, उससे एक बार फिर यह प्रश्न जनताके सम्मुख आता है कि आखिर इस साम्प्रदायिक कलहका कभी अन्त भी होगा। इस प्रश्नके ठीक ढंगसे हल होनेपर ही साधारण जनताका सुख और आनन्द निर्भर है; यही क्यों, बल्कि जीवन निर्भर है। एक बार बड़े हार्दिक दु:खके साथ व्यवस्थापक सभामें किसी सदस्यने कहा था—"इन झगड़ोंकी वजहसे न हम लोग आनन्द-पूर्वक अपने उत्सव मना सकते हैं और न अपने धर्म शान्तिपूर्वक। इनसे हमारी दैनिक जीवनका मज़ा ही मिट्टी हो गया है।" बात वास्तवमें ठीक है। न साधारण कोटिके हिन्दूको इस बातकी चिन्ता है कि कौन्सिलमें उसके सौ सदस्य जाते हैं कि एक सौ एक, और न मामूली दर्जेका मुसलमान इस बातकी पर्वाह करता है कि मुसलमान मेम्बरोंकी तादाद तीससे तेतीस हो जानेसे हमारी क़ौम एक साथ सातवें आसमानपर पहुँच जायगी। ये सब झगड़े कुछ इने-गिने लीडरोंके हैं, जिन्हें कौन्सिलमें जाना है और जिनकी मनोवृत्ति साम्प्रदायिकतासे दूषित हो गई है। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे अब वह समय आ गया है, जब इस प्रश्नपर एक बार अच्छी तरह डटकर विचार होना चाहिए कि इस मनोवृत्तिको कैसे दूर किया जाय।

इस प्रश्नपर विचार करते हुए कई आधारभूत मूल बातोंको ध्यानमें रखना चाहिए।

पहली बात तो यह है कि जिस प्रकार कामोपभोगसे काम शान्त नहीं होता, उत्तरोत्तर बढ़ता ही है, उसी प्रकार साम्प्रदायिकता उसके साथ समझौता करनेसे दूर नहीं हो सकती। कटु अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जब-जब साम्प्रदायिक माँगोंको स्वीकार कर ऐसे राजनैतिक समझौते हुए हैं, जिनमें भारतीयताको तिलांजलि देकर—'हिन्दूपन' और 'मुसलिमपन'को प्रधानता दी गई है, तब-तब भयंकर परिणाम हुए हैं।

इस आशापर साम्प्रदायिक मताधिकार (वोट) को स्वीकार करना कि आगे चलकर यह दोष अपने आप दूर हो जायगा, अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ है। भारतके नवीन शासन विधानमें साम्प्रदायिक सिद्धान्तोंको किसी भी रूपमें स्वीकार न करना ही उत्तम होगा। इस विषयमें हमारे ईसाई भाइयोंने जो उच्च आदर्श हमारे सम्मुख रखा है, वह अनुकरणीय है। ईसाई लोगोंने बराबर (Communal vote) साम्प्रदायिक मताधिकारका विरोध किया है। उनके बड़े-बड़े नेता प्रारम्भसे ही सम्मिलित चुनावके पक्षमें रहे हैं। भारतके भावी राजनैतिक भवनकी नींव भी सम्मिलित चुनावके आधारपर ही रखनी चाहिए। यदि ऐसा न किया गया, तो यह भवन दस वर्ष भी खड़ा नहीं रह सकता।

दूसरी बात यह है—और वास्तवमें उसे प्रथम स्थान देना उचित होगा—कि राजनैतिक एकताकी नींव सांस्कृतिक आधारपर रखनी चाहिए। हिन्दू लोग मुसलिम संस्कृति और मुसलिम लोग हिन्दू संस्कृतिको किस प्रकार अच्छी तरह समझ सकें यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बजाय इसके कि हम लोग एक दूसरेकी बुराइयोंको देखते रहें, हमें एक दूसरेके गुणोंकी ओर दृष्टि डालनी चाहिए। अभी तक इस दिशामें बहुत कम प्रयत्न किया गया है। उदाहरण सुन लीजिए। कुछ महीनों पहले 'विशाल-भारत' में हमने हज़रत मुहम्मदके जीवनके विषयमें उदार दृष्टिसे लिखा हुआ एक लेख छापा था। उसे मध्यप्रदेशके एक हिन्दू नेताने, जो जेलमें थे, पढ़ा। वह लेख उन्हें बहुत पसन्द आया और उन्होंने हमें लिखा कि

हिन्दीमें लिखा हुआ हज़रत मुहम्मदका कोई जीवन-चरित हो, तो कृपया वी० पी० द्वारा हमारे पास जेलमें भिजवा दीजिए। बाज़ारमें तलाश करनेपर हमें हज़रत मुहम्मदका एक भी जीवन-चरित नहीं मिला! 'रंगीला रसूल' की विषैली पुस्तक तो हम भेजनेसे रहे!

एक और बात सुन लीजिए, हिन्दीके एक प्रतिभाशाली सुकविसे हमने कुछ वर्ष पहले प्रार्थना की थी कि आप प्रभु ईसाके विषयमें एक काव्य लीखिये। पिछली बार जब वे कलकत्ते पधारे तो फिर हमने अपनी प्रार्थनाको दुहराया। उन्होंने कहा—"हमारे लिए आप ईसाका एक अच्छा जीवन-चरित मँगा दीजिए।" अंग्रेज़ी वे पढ़े नहीं और हिन्दीमें ईसाका कोई अच्छा जीवन-चरित नहीं! ज़रा सोचनेकी बात है कि जब हमारे यहाँ सैकड़ों ही पुस्तक प्रति वर्ष निकलती हों, वहाँ हम हज़रत मुहम्मद या प्रभु ईसाका एक भी अच्छा जीवन-चरित नहीं निकाल सके!

तीसरी बात यह है कि इस आशापर बैठे रहना कि राजनैतिक नेताओंके समझौता कर लेनेसे यह प्रश्न हल हो जायगा, महामूर्खता होगी। जो लोग सांस्कृतिक एकता (Cultural Unity) में विश्वास रखते हों, उन्हें यह कार्य अपनी शक्तिके अनुसार प्रारम्भ कर देना चाहिए।

इस विषयमें हिन्दू उर्दू-पत्रोंके संचालक तथा सम्पादक बहुत कुछ काम कर सकते हैं। हमें निरन्तर ऐसा लेख छापते रहना चाहिए, जो एकताकी ओर ले जानेवाले हों। छिद्रान्वेषणकी नीतिको छोड़कर गुण ग्रहण करनेकी नीतिका आश्रय लेना चाहिए।

नवीन संस्थाओंके स्थापित करनेके हम विरोधी हैं, क्योंकि संस्थाएँ कार्यको आगे बढ़ानेके बजाय उसमें बाधक होती हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि कुछ लोग इस कार्यको अपने जीवनका उद्देश्य बना लें, और अपने दस-पाँच दो-चार मित्रोंको साथ लेकर बराबर इसी प्रयत्नमें लगे रहें। ऐसे महानुभावोंकी सेवा करनेके लिए 'विशाल-भारत' सर्वदा उद्यत है। 'विशाल-भारत' के प्रथम अंकमें अपने उद्देश्योंका वर्णन करते हुए हमने लिखा था—

"भारतमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई इत्यादि भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुयायी रहते हैं। सम्भवतः परमात्माने भारतको ही इस विभिन्नतामें एकताका आदर्श उपस्थित करनेके लिए चुना है। आखिर हम सबको मिलकर एक दूसरेकी संस्कृतिका सम्मान करते हुए इसी देशमें रहना है। साम्प्रदायिकता (Communalism) अथवा जातीय विद्वेष (Racial feeling) को बढ़ाना 'विशाल-भारत' के प्रति ऐसा भयंकर पाप है, जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। 'विशाल-भारत' इस बातको सदा अपने सम्मुख रखेगा।"

इस बातको सदा हमने बराबर अपने ध्यानमें रखा है, और भविष्यमें भी ऐसा ही करेंगे।

अन्तमें 'विशाल-भारत' के पाठकोंसे भी हमारी एक प्रार्थना है। यह तो हम माने लेते हैं कि 'विशाल-भारत'के पाठकोंमें अधिकांश साम्प्रदायिकताके विरोधी ही होंगे, पर इतनेसे तो काम नहीं चल सकता। हम उनकी क्रियात्मक सहानुभूति चाहते हैं। उदाहरणार्थ हम निम्न-लिखित लेखोंको पामफ्लेटके रूपमें छपाना चाहते हैं—

(१) हज़रत मुहम्मदका जीवन-चरित—
लेखक, श्री मंगलसरूप शर्मा

(२) हिन्दीके मुसलमान कवि—
लेखक, सैयद अमीरअली 'मीर'

(३) भारतीय संस्कृतिके लिए मुसलमानोंने क्या किया?—
लेखक, सर यदुनाथ सरकार

इन छोटी-छोटी पामफ्लेटोंकी दो-दो हज़ार प्रतियाँ छपानेमें कुल-जमा सौ सवा सौसे अधिक खर्च न होंगे। यदि ये छप जायँ, तो इनके बाद इसी प्रकारकी अन्य बीसियों पामफ्लेट छपाई जा सकती हैं। सांस्कृतिक एकताके लिए जो बड़े-बड़े कार्य होंगे, वे तो हमारे पूज्य और महान् नेता करेंगे, पर छोटे-छोटे कार्य करके हमें भी अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। हमें दृढ़ विश्वास है कि 'विशाल-भारत' के पाठक इस कार्यमें हमारी सहायता करेंगे।

—

लार्ड विलिंगडनकी प्रतिज्ञा

भारतके नवीन वायसराय लार्ड विलिंगडनने लन्दनमें दिये हुए अपने एक भाषणमें कई मार्केकी बातें कही हैं। उनमेंसे दो ये हैं :—

"मैं इस बातके लिए प्रयत्न करूँगा कि सब आदमियोंको समान अवसर मिले।"

"मैं इस सिद्धान्तका प्रचार करूँगा कि आदमीका वर्ण या रंग कोई महत्त्वकी चीज़ नहीं है; चरित्र ही महत्वपूर्ण है।"

अपने एक अन्य भाषणमें उन्होंने यह भी कहा है— "कुछ लोगोंमें अपनेको छोटा समझनेकी भावना होती है और कुछमें अपनेको दूसरोंसे बड़ा समझनेकी। इन दोनों दुर्गुणों (Inferiority Complex) और Superiority Complex को दूर करनेका मैं प्रयत्न करूँगा।"

यदि लार्ड विलिंगडन अपने देशबन्धुओंके हृदयमें से जातीय विद्वेषकी भावनाओंको दूर कर सकें, तो लड़ाई झगड़ेका आधा कारण जाता रहे। गोरे लोग अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझकर काली जातियोंको नफरतकी निगाहसे देखते हैं, और यही लड़ाईकी जड़ है। यह वर्ण-विद्वेष गोरोंमें ही पाया जाता हो, सो बात नहीं, हम लोगोंमें भी काफ़ी मात्रामें पाया जाता है। अछूत जातियोंके प्रति हमारा जो निन्दनीय व्यवहार रहा है, वह वर्ण-विद्वेष नहीं तो और क्या है? अंग्रेज़ीमें इसे Colour prejudice कहते हैं और यह बात आश्चर्य की है कि वर्णका अर्थ भी Colour होता है। अपनी वर्ण-व्यवस्थाके विकृत रूपके कारण भारतीयोंको जो-जो कष्ट उठाने पड़े हैं, उन्हें हम लोग ख़ूब जानते हैं। हर्षकी बात है कि गोरे लोगोंकी समझमें भी यह बात अब धीरे-धीरे आने लगी है कि यह वर्ण-विद्वेष उनको ले डूबेगा। सन् १९२४ में पूर्व अफ्रिका जाते समय भारत-सरकारके एक उच्च पदाधिकारीसे मिलनेका अवसर हमें प्राप्त हुआ था। बातचीतमें उन्होंने कहा—"पूर्वी आर्योंने भारतमें शूद्रों तथा पंचमोंके साथ दुर्व्यवहार किया, और उसीके परिणाम-स्वरूप वे आज गुलामीके बन्धनमें पड़े हुए हैं। हम अंग्रेज़ लोग भी आर्य जातिके हैं, और अब हम पश्चिमी आर्य भी वर्ण-विद्वेषके शिकार बन गये हैं। उपनिवेशोंमें गोरे लोगोंका काले आदमियोंके साथ जो व्यवहार है, वह इसी कारणसे है। भारतीयोंने अपने कर्मोंका फल भोगा है और यही हम अंग्रेज़ोंको भी भोगना पड़ेगा। यही कर्मका सिद्धान्त है।"

समझदार अंग्रेज़ इस बातको अच्छी तरह जान गये हैं कि उनका हित इसीमें है कि वे काले आदमियोंके साथ अच्छा व्यवहार करें। पिछले पचीस वर्षोंमें एशियामें जो जाग्रति हुई है, उसका भी ज़बरदस्त नैतिक प्रभाव पड़ा है। लार्ड विलिंगडनके भाषणोंसे प्रतीत होता है कि वे इस प्रश्नके महत्त्वको समझ गये हैं। आशा है कि वे अपनी प्रतिज्ञाका पालन करेंगे।

—

महात्माजीकी मनोवृत्ति

महात्माजी हृदयसे सदा सहयोगमें विश्वास करते रहे हैं, यद्यपि उन्हें समय-समयपर परिस्थितियोंसे प्रेरित होकर असहयोगका झंडा खड़ा करना पड़ा है। कितने ही लेखों और व्याख्यानोंमें उन्होंने कहा है—"मैं सहयोगके लिए तड़पता रहता हूँ।" हाँ, यह बात ज़रूर है कि महात्माजी समानताके आधारपर ही सहयोग चाहते हैं। महात्माजीके जीवन-चरितको पढ़ जाइये। ब्रिटिश साम्राज्य और अंग्रेज़ोंकी मित्रताके लिए जितना प्रयत्न उन्होंने किया है, उतना शायद ही किसी दूसरे भारतीय नेताने किया होगा। ज़ूलू-युद्धमें तथा बोअर-युद्धमें भी उन्होंने अपनी ज़िन्दगीको खतरेमें डालते हुए अंग्रेज़ोंका ही साथ दिया था, और पिछले महायुद्धमें उन्होंने रंगरूट भर्ती करानेके लिए जो परिश्रम किया था, उसे सब जानते ही हैं।

मि० ऐण्डूज़ प्रभृति कितने ही अंग्रेज़ उनके घनिष्ठ मित्र हैं। अभी दिल्लीमें उन्होंने पत्रकारोंसे जो बातचीत की है और उनके प्रश्नोंके जो उत्तर दिये हैं, उनसे महात्माजीकी यह प्रवृत्ति अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। उनकी 'पूर्ण स्वराज्य' की व्याख्या सुन लीजिये—

"Purna Swarajya did not exclude association with any nation much less with England. It can only mean association for mutual benefit and at will. It is quite compatible with India remaining within the Empire but our partnership with England must be upon terms of absolute equality."

अर्थात्—'पूर्ण स्वराज्यके मानी यह थोड़े ही हैं कि किसी दूसरी जातिसे सम्बन्ध न रखा जाय, या यों कहिये कि इंग्लैण्डसे कोई ताल्लुक़ न रहे। पूर्ण स्वराज्यका अर्थ यही है कि पारस्परिक लाभके लिए अपने इच्छानुसार सहयोग करना। साम्राज्यके भीतर रहते हुए भी भारत पूर्ण स्वराज्य भोग सकता है, पर इंग्लैंडसे जो हमारा सहयोग होगा, वह पूर्ण समानताकी शर्तोंपर ही हो सकता है।'

जब महात्माजीसे पूछा गया—"क्या पूर्ण स्वाधीनताका अर्थ इंग्लैंडसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं है?" तो उन्होंने उत्तर दिया—"हाँ, साधारण जनता तो इसका यही अर्थ करती है, क्योंकि साधारण जनता इस बातपर विश्वास ही नहीं करती कि कभी इंग्लैंड सच्चे हृदयसे भारतीयोंके साथ समानताका व्यवहार करनेके लिए राज़ी हो जायगा। कितने ही मेरे साथी यह भी यक़ीन करते हैं कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ हर्गिज़ इस बातको मंज़ूर नहीं कर सकते कि हिन्दुस्तानको पूरी समानता दे दी जाय। चाहे वे लोग मुझे स्वप्नदर्शी भले ही कहें, पर मेरी सम्मति इन दोनोंसे भिन्न है। मुझे वह दिन दिखाई पड़ रहा है, जब कि विलायतकी डाउनिंग स्ट्रीट (लन्दनका वह स्थान जहाँ उपनिवेश-विभाग स्थित है) के बजाय दिल्ली ही तीस करोड़ भारतीयोंका केन्द्र होगी, और हम सब लोग समान अधिकार भोगेंगे। मेरा ख़याल है कि ब्रिटिश जनता व्यावहारिक है, वह स्वतंत्रताकी प्रेमी है, और जो स्वतंत्रताके प्रेमी हैं, उन्हें दूसरोंको स्वतंत्रता देनेमें क्या आपत्ति हो सकती है?"

महात्माजीका उपरोक्त कथन उनकी सहयोग-पूर्ण मनोवृत्तिको भली भाँति प्रकट करता है। अवश्य ही इससे पूर्ण स्वाधीनताके उपासकोंके हृदयको धक्का लगेगा, और वे महात्माजीके इस वकीली अर्थसे सहमत न होंगे, पर दर असल बात यह है कि महात्माजी मनुष्य पहले हैं, राजनीतिज्ञ पीछे। जो लोग यह ख़याल करते हैं कि महात्माजी केवल भारतके ही हैं और भारतका ही हित उनके सम्मुख रहता है, वे ज़बरदस्त भूल करते हैं। वे इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि संसारके आध्यात्मिक हितके लिए भारत तथा इंग्लैंडका पूर्ण समानताके आधारपर किया हुआ सहयोग अत्यन्त आवश्यक है, और इसीलिए वे इंग्लैंडसे सम्बन्ध-विच्छेदके विरुद्ध हैं।

महात्माजी जब किसी कामको उठाते हैं, तो वे फिर उसमें अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। अब उन्होंने सहयोग और 'साम्राज्यके भीतर पूर्ण समानता' के सवालको उठाया है। उनके भाषणोंमें अब आप इसी बातपर अधिक ज़ोर पावेंगे। अंग्रेज़ अधिकारियोंको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि हिन्दुस्तानमें यदि उनका कोई सबसे बड़ा मित्र है, तो वे महात्मा गान्धीजी ही हैं। वह समय शीघ्र ही आनेवाला है, जब कि श्री जवाहरलालजी आदि नेताओंको, जो इंग्लैण्डसे सम्बन्ध-विच्छेदके पक्षमें हैं, महात्माजीकी इस नीतिका घोर विरोध करना पड़ेगा। महात्माजीके जीवनमें ऐसे अवसर कितनी ही बार आये हैं, जब उनकी लोकप्रियता बहुत घट गई है, पर उन्होंने इस बातकी कभी पर्वाह नहीं की। इस समय वे अत्यन्त लोकप्रिय हैं, पर यदि वे 'साम्राज्यके भीतर पूर्ण समानता' पर ज़ोर देते रहे, तो अवश्य ही उनकी लोकप्रियतामें बहुत अन्तर पड़ जायगा। एक बात और भी है, 'भावके भूखे समलिया' की तरह महात्माजी भी भावके भूखे हैं। समझौता करते समय वे बहुत कमपर भी राज़ी हो सकते हैं, यदि वह सहृदयता-पूर्वक दिया जाय। राजनीतिक दृष्टिवाले लोग उनकी इस मनोवृत्तिको ख़तरनाक समझ सकते हैं।

महात्माजी अपने अहिंसा और असहयोगके सिद्धान्तोंका प्रचार सम्पूर्ण संसारमें चाहते हैं, और यदि उनके दिलमें यह विश्वास हो जाय कि ब्रिटिश जनताका सहयोग इन सिद्धान्तोंके प्रचारमें सहायक हो सकता है, जैसा कि सम्भवतः उनका

विश्वास है, तो वे ब्रिटिश साम्राज्यके भीतर रहनेके प्रश्नपर अधिक ज़ोर देंगे। दर असल महात्माजी संसारके दुखियोंके दुख दूर करना चाहते हैं, राज्य, शासन-प्रणाली, शासन-विधान इत्यादि उनके लिए गौण प्रश्न हैं। महात्माजीमें डबल व्यक्तित्व पाया जाता है, एक तो महात्माका और दूसरा राजनीतिज्ञका। कभी उनका प्रथम व्यक्तित्व प्रबल रूपसे जनताके सम्मुख आता है तो कभी दूसरा, और इसी कारण लोग उनको समझनेमें भूल करते हैं, पर राजनीति उनके लिए साधन-मात्र है। नित्य-प्रति प्रात:कालके समय प्रार्थना करते हुए महात्माजी कहते हैं :—

"नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽ पुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्तानां प्राणिनां आर्तिनाशनम्॥"

दु:खतप्त प्राणियोंके दु:ख दूर करना ही उनके जीवनका उद्देश्य है। महात्माजीकी राजनैतिक कार्रवाइयोंपर विचार करते हुए यदि हम उनकी इस मनोवृत्तिको ध्यानमें रखें, तो बहुतसी उलझनें सुलझ सकती हैं।

—

स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू

अब जब कि दूसरी बार राउण्ड-टेबिल कानफ्रेंन्स होने जा रही है, स्वर्गीय पं० मोतीलालजी नेहरूका स्मरण हो आना स्वाभाविक है। पिछली बार जब कांग्रेसने इस परिषदमें भाग लेना अस्वीकार कर दिया था, तब सुप्रसिद्ध ब्रिटिश नेता लायड जार्जने कहा था कि यदि पं० मोतीलालजी इस कानफरेन्समें आवें, तो उनसे और सर जान साइमनसे आपसमें खूब पट सकेगी, क्योंकि दोनों ही वकील हैं और हमपेशा होनेके कारण एक दूसरेको अच्छी तरह समझ सकेंगे। यद्यपि कांग्रेसमें स्वार्थत्यागी नेताओंका अभाव नहीं है, पर उच्च कोटिकी वह मानसिक शक्ति, वह तीक्ष्ण बुद्धि भला कहाँ मिल सकती है ?

त्यागमूर्ति पं० मोतीलालजीके विषयमें अन्यत्र एक लेख प्रकाशित है, अतएव विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं। उनसे दो-तीन बार बातचीत करनेका सुअवसर मुझे भी मिला था। प्रवासी-भारतीयोंका काम करनेके लिए कांग्रेससे जो सहायता उन्होंने मुझे दिलाई थी, उसके लिए मैं उनका सदा कृतज्ञ रहूँगा।

—

बिना पुजारीका मन्दिर

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको देखकर और उसकी भीतरी बातोंको सुनकर हम इस खेदजनक परिणामपर पहुँचते हैं कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन बिना पुजारीका मन्दिर है। जिस भाषाके बोलनेवाले तेरह करोड़ हों और समझनेवाले बीस करोड़, उसकी सर्वश्रेष्ठ संस्थाको एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला, जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति और अपना समय उसीके लिए अर्पित कर दे, यह हमारे लिए घोर लज्जाका विषय है। सम्मेलनकी वर्तमान स्थितिके विषयमें विस्तारपूर्वक लिखना इस समय ठीक न होगा, क्योंकि इसका परिणाम स्वयं सम्मेलनके लिए ही अहितकर हो सकता है। सम्मेलनके कलकत्तेवाले अधिवेशनको सफल बनाना हमारा प्रथम कर्तव्य है, इस कारण हम ऐसी कोई भी बात नहीं छापना चाहते, जिससे लोगोंकी श्रद्धा सम्मेलनपर से जाती रहे, पर साथ-ही-साथ हमारा यह भी कर्तव्य है कि सर्वसाधारणका ध्यान उस गम्भीर परिस्थितिकी ओर आकर्षित करें, जिसमें सम्मेलन आ पड़ा है।

कुछ दिनों पहले समाचारपत्रोंमें सम्मेलनकी ओरसे सहायताके लिए अपील निकली थी, जिसमें कहा गया था कि सम्मेलन अपने कार्यकर्ताओंको वेतन भी देनेमें असमर्थ है। ऐसी स्थिति क्यों हो गई ? पिछले वाद-विवादोंको हम नहीं उठाना चाहते, क्योंकि गड़े मुर्दोंको उखाड़नेसे दलबन्दीकी दुर्गन्ध ही फैलेगी, फिर भी हम यह चाहते हैं कि सम्मेलनकी ओरसे एक अधिकार-युक्त बयान जनताके सम्मुख उपस्थित किया जाय। सौभाग्यसे अब राजनीतिक वायुमंडलमें शान्ति हो गई है। इस अवसरपर श्री पुरुषोत्तमदास टंडन तथा प्रयागके अन्य हिन्दी-प्रेमी कार्यकर्ताओंको अपनी

सारी शक्ति सम्मेलनके उद्धार-कार्यमें लगा देनी चाहिए। सम्मेलनके प्रधान श्री गणेशशंकर विद्यार्थी इस अंकके छपने तक जेलसे छूट चुके होंगे। हम जानते हैं कि 'प्रताप' को ठीक ढंगसे निकालनेमें अभी उनके समयका बहुतसा भाग बीतेगा, फिर भी सम्मेलनके प्रति उनकी कुछ जिम्मेवारी है। हमारी समझमें यदि श्री गणेशशकर विद्यार्थी, श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री सुन्दरलालजी, प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना, श्री कालिदास कपूर, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी इत्यादि नौ सदस्योंकी एक कमेटी बैठकर इस बातकी जाँच करे कि सम्मेलनकी आर्थिक दशा इतनी खराब कैसे हो गई और आगे वह कैसे सुधर सकती है, तो बहुत लाभ होगा। कमेटीके सदस्य ये सज्जन ही हों, ऐसा हमारा आग्रह नहीं है, इनमें घटा-बढ़ी की जा सकती है।

जिन मदोंमें सम्मेलनकी आमदनी बढ़ सकती है, उनकी भरपूर जाँच होनी चाहिए। उदाहरणार्थ सम्मेलनके पुस्तक-प्रकाशन-विभागको ही लीजिये। हम यह जानना चाहते हैं कि सम्मेलनके पास इस समय कितने रुपयेकी लागत और मूल्यकी किताबें मौजूद हैं और उनके विज्ञापन तथा बिक्रीके लिए सम्मेलनने क्या कार्रवाई की है। सम्मेलन द्वारा जो परीक्षाएँ कितने ही वर्षोंसे ली जाती रही हैं, उनसे पुस्तक-प्रकाशकों तथा पुस्तक-बिक्रेताओंको काफ़ी लाभ हुआ है। इस आर्थिक संकटके समय उन लोगोंसे यह प्रार्थना करना कि वे बिना कमीशन लिये सम्मेलनकी पुस्तकोंकी बिक्रीका प्रबन्ध करें, कोई अनुचित बात न होगी। जिन महानुभावोंका सम्मेलनके मंत्रिमंडलसे सम्बन्ध रहा है अथवा अब भी है वे तो इस अवसरपर सम्मेलनकी सहायता करनेसे इनकार करेंगे ही नहीं, अन्य प्रकाशक तथा विक्रेता भी सम्मेलनकी सहायता हर्षपूर्वक करनेको उद्यत हो जायँगे।

उदाहरणके लिए इन सज्जनोंसे प्रार्थना करना अनुचित न होगा।

श्री कृष्णकान्त मालवीय प्रधान मंत्री,—पुस्तक-प्रकाशक और पुस्तक विक्रेता।

हिन्दी-साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग—सुना है कि इसमें श्री व्रजराजजी (वर्तमान प्रधान मंत्री) श्री पुरुषोत्तमदास टंडन (भूतपूर्व प्रधान) और श्री जमनालालजी बजाज (भूतपूर्व प्रचार-मंत्री) का मुख्य हाथ है।

श्री रामनरेश त्रिपाठी—हिन्दी-मंदिर। आप पहले प्रचार-मंत्री रह चुके हैं।

श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी (भूतपूर्व साहित्य-मंत्री)—पुस्तक-प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता।

हिन्दी-प्रेस, प्रयाग—यह स्वर्गीय पं० रामजीलालजी शर्माका है, जिन्होंने वर्षों तक सम्मेलनके लिए कठिन परिश्रम किया था।

अध्यापक रामरत्नजी, फाइन आर्ट प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा—पुस्तक-प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता (भूतपूर्व परीक्षा-मंत्री)।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी—पुस्तक-प्रकाशक और पुस्तक-विक्रेता (भूतपूर्व सहायक मंत्री)।

इनके सिवा अन्य कई नाम लिये जा सकते हैं। ये सभी सज्जन देशभक्त हिन्दी-प्रेमी हैं, और इनमेंसे कोई भी ऐसा नहीं, जो सम्मेलनके इस संकटके समयमें उसकी सहायता करनेके लिए उद्यत न हो जाय। इस समय हालत यह है कि सम्मेलनके परीक्षा-विभागके सिवा अन्य विभागोंका काम बन्द-सा हो गया है। अन्य विभागोंके पास इतना पैसा भी नहीं है कि वे चपरासी भी रख सकें और न सम्मेलनके पास अपनी मुख-पत्रिका छपानेके लिए कुछ साधन हैं। सम्मेलन-जैसी अखिल भारतीय साहित्यिक संस्थाके पास अपना प्रेस भी नहीं है।

यदि समाचारपत्रोंके संचालकोंसे यह प्रार्थना की जावे कि वे लागतकी दरपर सम्मेलनकी पुस्तकोंका विज्ञापन छाप दें, तो उनमें से अधिकांश इसे स्वीकार कर लेंगे। आजसे दो साल पहले हमने यह प्रस्ताव सम्मेलनके मन्त्रीके सम्मुख रखा था और स्वयं 'विशाल-भारत'में बिना मूल्य विज्ञापन भी छाप दिया था। इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है सम्मेलनके लिए दो-तीन ऐसे आदमियोंके जुटानेका, जो अपना सम्पूर्ण

समय उसीके लिए लगा दें। हम हिन्दीवाले चाहे जितनी शेखी बघारते रहें, पर सच्ची बात तो यह है कि हम लोगोंमें आदर्शवादिताकी बड़ी कमी है। महात्मा गान्धीने एक बार शिकायत की थी कि उन्हे गुजरातमें राष्ट्रभाषा-प्रचारके लिए ऐसे आदमी नहीं मिलते, जो निर्वाह-मात्रका वेतन लेकर इस काममें जी-जानसे जुट जायँ। अध्यापक, वकील, पुस्तक-विक्रेता या प्रेस-संचालक अपने समयका सर्वोत्तम भाग तो अपने पेशेके लिए ही लगा सकते हैं, और जिनके पास दो-दो तीन-तीन काम हैं, वे तो सम्मेलनको और भी कम समय दे सकते हैं। हम उनकी सहायताकी उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि हमें छोटी-से-छोटी सहायताका भी स्वागत करना चाहिए, फिर भी हमारे यहाँ दो-तीन आदमी तो ऐसे होने चाहिए, जो अपना सारा समय सम्मेलनके लिए ही लगाते रहें।

इन्हीं प्रश्नोंपर विचार करनेके लिए हमने उपर्युक्त कमेटीका प्रस्ताव किया है। इस समय सबसे बड़ी कमी जो हमें दीख पड़ रही है, वह यह है कि सम्मेलनके पीछे कोई व्यक्तित्व नहीं। हमारी मातृभाषा और भारतकी राष्ट्रभाषाके इस मन्दिरमें कोई पुजारी नहीं!

—

पत्रकारोंका कर्तव्य

भारतीय पत्रोंके इतिहासमें अब नवीन युगका प्रारम्भ होता है। प्रेस-आर्डिनेन्स वापस ले लिया और निकट भविष्यमें उसके जारी होनेकी कोई आशंका नहीं है। अब नये-नये पत्रोंका जन्म होगा और उनमें पारस्परिक प्रतियोगिता भी बढ़ेगी। इस प्रतियोगिताका प्रभाव पत्रकारोंकी स्थितिपर पड़ेगा। इस अवसरसे हम लोगोंको पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। अभी तक हम हिन्दी-पत्रकार न तो अपना कोई संगठन कर सके हैं और न अपनी स्थिति सुधारनेके लिए कोई उपाय सोच सके हैं। अब हमें क्या करना चाहिए?

यदि हमारी निजी सम्मति कोई पूछे, तो हम यही कहेंगे कि संस्थाओं द्वारा कार्य करनेकी पद्धतिमें हमारा विश्वास नहीं रहा। उत्तमतर तो यह होगा कि पाँच-सात पत्रकार मिलकर पहले वर्तमान परिस्थितिपर विचार करें और फिर भिन्न-भिन्न पत्र-सम्पादकों तथा पत्र-संचालकोंसे विचार-परिवर्तन कर अपनी कार्य-पद्धति निश्चित करें। इसके बाद हम लोग पत्रकारोंकी संस्थाओंसे भी सहयोग प्राप्त कर सकते हैं, पर यदि हम संस्थाओंके भरोसे बैठे रहे, तो कुछ भी काम न कर सकेंगे। उदाहरणार्थ, पुरस्कारके प्रश्नको ही लीजिये। हमारे यहाँ कितने ही पत्र ऐसे हैं, जिनके संचालक पत्रकारोंको अल्प वेतनपर नौकर रखकर खूब रुपया कमाते हैं, और इस बातपर अभिमान करते हैं कि हमने तो लेखकोंको कभी पुरस्कार नहीं दिया! छुट्टी इत्यादिके नियमोंका भी अभी कोई निश्चय नहीं हुआ! हमारे एक पत्रकार मित्रका कथन है कि जो पत्र अपने पैरों खड़े हो गये हैं अथवा मुनाफेमें चल रहे हैं, उनके संचालक पत्रकार-संगठनके प्रश्नको अत्यन्त उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते रहे हैं। यदि यह बात ठीक है, तो वास्तवमें निन्दनीय है। यदि यही क्रम जारी रहा, तो हिन्दी-पत्रकारोंके दो दल हो जायँगे--एक तो साधन-सम्पन्न पत्रकार और दूसरे निर्धन पत्रकार।

पत्रकारोंकी दशा सुधारनेके लिए यदि कोई अवसर सर्वोत्तम हो सकता है, तो वह यही है। हम आशा करते हैं कि श्री अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी, श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे, श्री कृष्णकान्त मालवीय, श्री माखनलाल चतुर्वेदी आदि सज्जन इस विषयपर अपने विचार प्रकट करेंगे।

—

वसन्त-व्याख्यानमाला

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थायी समितिके पिछले अधिवेशनमें हमने निम्न-लिखित प्रस्ताव उपस्थित किया था :—

"यह सम्मेलन हिन्दी-भाषाभाषी जनतासे प्रार्थना करता है कि वह आगामी वर्षसे वसन्तऋतुमें वसन्त व्याख्यान-मालाका प्रबन्ध करे, और साहित्य, संगीत तथा कला इत्यादिकी

उन्नतिके लिए इस ऋतुके दो महीनोंका उपयोग सांस्कृतिक सप्ताहोंके रूपमें करे।

"यह सम्मेलन स्थायी समितिसे अनुरोध करता है कि वह वसन्त-व्याख्यान-मालाके लिए उपयुक्त कार्यक्रम तैयार करे और सम्मेलनकी सम्बद्ध संस्थाओं तथा अन्य सभा-समाजोंकी सहायतासे उसे कार्यरूपमें परिणत करे।"

सम्मेलनकी स्थायी समितिने इस प्रस्तावको स्वीकृत कर लिया और उसकी प्रारम्भिक आयोजनाका भार इन पंक्तियोंके लेखकपर डाल दिया। इस विषयमें जो मेरे विचार हैं, उन्हें मैंने अन्यत्र अपने लेख 'वसन्तोत्सव कैसे मनाया जाय' में लिख दिया है। हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओंके विद्वानोंसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। जो सम्मतियाँ आयेंगी, उन्हें अगले अंकमें प्रकट करूँगा। 'विशाल-भारत' के प्रेमी ग्राहक तथा पाठकोंसे विनम्र प्रार्थना है कि वे परामर्श इत्यादि द्वारा इस कार्यमें सहायता दें।

—

हिन्दीका प्रथम समाचारपत्र

अब तक हम लोग यही समझे हुए थे कि हिन्दीका प्रथम समाचारपत्र 'बनारस अखबार' था, जो सन् १८४५ में काशीसे प्रकाशित हुआ था। बाबू राधाकृष्णदास तथा बाबू बालमुकुन्द गुप्तने अपने इतिहासोंमें इसी पत्रको हिन्दीका प्रथम समाचारपत्र बतलाया था, पर अब 'माडर्न-रिव्यू' के सहकारी सम्पादक श्री ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जीने अन्वेषण करके सन् १८२६ में प्रकाशित एक हिन्दी-पत्रका पता लगाया है।

श्री बनर्जी महोदयका एक लेख अन्यत्र प्रकाशित है। उसकी ओर हम पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। हर्षकी बात है कि 'उदन्त मार्तण्ड' की पुरानी फाइल अब भी विद्यमान है। इस अन्वेषणसे हिन्दी समाचारपत्रोंके इतिहासमें एक नई बात मालूम हुई है। 'उदन्त मार्तण्ड'के बाद 'बनारस अखबार' तक बीचमें किसी हिन्दीके पत्रका पता नहीं लगता। हाँ, 'बंगाल हेराल्ड' ज़रूर चार भाषाओंमें निकलता था। सन् १८२६ में हिन्दी पत्रका सूत्रपात हो जानेके बादसे सन् १८४५ तक बीचमें कोई अखबार न निकला हो, यह बात समझमें कम आती है। हमारी धारणा है कि यदि और भी अनुसन्धान किया जाय, तो बीचके किसी अखबारका पता लग सकता है। क्या कोई महानुभाव इस ओर ध्यान देनेकी कृपा करेंगे? श्री ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जीके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हिन्दीके प्रथम समाचारपत्रका पता लगाकर हम सबको अनुगृहीत किया है।

—

देशी राज्योंका प्रश्न

भारतीय शासन-विधानके निर्माणमें एक अत्यन्त कठिन प्रश्न यह है कि देशी-राज्योंको अखिल भारतीय संघमें किस प्रकार सम्मिलित किया जाय। देशी राज्योंमें एकतन्त्र शासन-प्रणाली प्रचलित है और राजाकी इच्छा ही वहाँ सर्वोपरि क़ानून मानी जाती है। यद्यपि दो-चार राज्य शासन-सुधारके कार्यमें काफ़ी अग्रसर हो चुके हैं, पर अधिकांश अभी तक चौदहवीं शताब्दीमें रह रहे हैं। महाराज अलवर और महाराज बीकानेर भले ही विलायतमें लम्बी-लम्बी स्पीचें झाड़ दें, पर वे इस बातके लिए हर्गिज़ राज़ी न होंगे कि एक निष्पक्ष कमीशन उनकी प्रजाकी शिकायतोंकी जाँच करे। अनेक देशी राज्योंमें बेगारकी निन्दनीय प्रथा अब भी प्रचलित है। इस सिलसिलेमें दस वर्ष पहलेकी एक घटना हमें याद आती है। बेगार-प्रथाके विषयमें अनुसन्धान करनेके लिए दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूजने राजपूतानेके राज्योंमें दौरा करनेका निश्चय किया था। वे बीकानेर जानेवाले थे। पहले तो बीकानेर महाराजने इस बातपर हर्ष प्रकट किया और मि० ऐण्ड्रूजको पत्र लिखा कि राज्य उनका स्वागत करनेके लिए उद्यत है, पर पीछे महाराजा साहबके प्राइवेट सेक्रेटरीने लिख भेजा कि आप बीकानेर न पधारें! वह पत्र हमने अपनी आँखोंसे देखा था। आज बीकानेर महाराजकी प्रशंसाके पुल बाँधे जा रहे हैं, और बम्बईके एक पत्रमें तो किसी महानुभावने एक लेख भी लिख मारा है कि महाराज

गंगासिंहजी भारतके वायसराय बनाये जायँ। देशी-विदेशी पत्रोंमें इन राजा-महाराजाओंकी कीर्ति प्राय: छपा करती है, विलायतमें तो उन्होंने हजारों रुपये खर्च करके खासा प्रचार कार्य कराया था, इसलिए यह तो हम मान लेते हैं कि इन लोगोंने प्रचार-कार्य (propaganda) के महत्त्वको अवश्य समझ लिया है, पर कोरमकोर प्रचार-कार्य खोखली चीज़को ठोस नहीं बना सकता। कभी-कभी पत्रोंमें छपाया जाता है कि अमुक राज्यमें जबसे महाराजा साहबने शासन करना प्रारम्भ किया है, स्कूलोंकी संख्या तिगुनी हो गई है। पाठक चकित होकर कहते हैं 'तिगुनी' ! पर यह कोई नहीं पूछता कि पहले कितने स्कूल थे और अब कितने हो गये। पता लगानेपर मालूम होता है कि बारह पाठशालाओंकी जगह अब छत्तीस पाठशालाएँ हो गई हैं !

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि अपनी आयका कौनसा भाग ये देशी राज्य अपनी प्रजाकी शिक्षामें व्यय करते हैं। 'सर्वेंवट-आव-इंडिया'के सम्पादक श्री एस० जी० वझे महोदयने किसी देशी राज्यके विषयमें एक लेख लिखा था और उसमें शिक्षा-सम्बन्धी आँकड़े दिये थे। उन्हें पढ़कर उस राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाले एक अंग्रेज़ने उन्हें लिखा—' हम लोग अभी तक यह बात नहीं जानते थे कि हम इतने असभ्य राज्यमें निवास कर रहे हैं !"

देशी राज्योंका शासन कैसा है, इसका हाल हम भाड़ेके टट्टुओं द्वारा लिखित लेखों और पुस्तकोंसे नहीं लगा सकते। इसके लिए हमें उन देशी राज्योंकी प्रजाके सुख-दु:खकी जाँच करनी होगी। दुर्भाग्यसे हमारे यहाँ ऐसे अनेक लेखक उत्पन्न हो गये हैं, जो स्वार्थवश सरासर कालेको सफ़ेद सिद्ध करनेमें नहीं लजाते और उनके दूषित हृदय और कलुषित लेखनीसे निकले हुए लेख भोली जनताको धोखेमें डाल देते हैं। सुनते हैं कि भगवान रामचन्द्रजीने इसी प्रकार धोखेमें पड़कर एक बगुलाके विषयमें लक्ष्मणसे कहा था—

"पश्य लक्ष्मण पम्पायां बक: परमधार्मिक:
शनै: शनै: पदं धत्ते जीवानां वधशंकया ॥"

अर्थात्—'देखो लक्ष्मण, पम्पापुरमें बगुला कितना धार्मिक है। वह इतनी सावधानीसे पैर रखता है कि कहीं कोई जीव-जन्तु कुचल न जाय।' अकस्मात् वहाँ कोई भुक्तभोगी मेंढक भी बैठा हुआ था। उसने कहा—

"सहवासि विजानाति सहवासि विचेष्टितम्।
बकं किं वर्ण्यते राम: ये नाहं निष्कुलीकृत: ॥"

अर्थात्—'किसीके असली स्वभावको उसके साथी-संगी ही भलीभाँति जान सकते हैं। हे राम! आप इस बगलेकी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं, इसने तो मेरा सारा कुटुम्ब खा डाला ?'

आवश्यकता इस बातकी है कि देशी राज्य प्रजा-परिषद् शीघ्र ही एक कमीशन नियुक्त करे, जिसका काम हो देशी राज्योंकी शिक्षा-सम्बन्धी दशाकी जाँच करना। आचार्य गिड्वानी, जो बीकानेर-महाराजके प्राइवेट-सेक्रेटरी रह चुके हैं; श्री सम्पूर्णानन्दजी, जो वहाँ कई वर्ष तक हेड मास्टर रहे थे, इत्यादि, सज्जन इस कमीशनके सदस्य बनाये जायँ। इस कमीशनसे देशी-राज्योंकी प्रजाका तो हित होगा ही, साथ ही हमें भी पता लग जायगा कि हमारे इन नवीन शासकोंके घरकी भीतरी हालत क्या है।

पिछली राउण्ड टेबिल कानफरेन्समें देशी राज्योंकी प्रजाके हितोंकी जैसी उपेक्षा की गई थी, उसका वृत्तान्त मि. एस० जी० वझेने, जो लिबरल-प्रतिनिधि-मंडलके मंत्री थे, पत्रोंमें प्रकाशित कराया है। बात दर असल यह है कि दूसरोंके भरोसे बैठे रहनेसे काम नहीं चल सकता। उन नेताओंसे, जो घोरसे घोर अत्याचारी महाराजकी वकालत करनेमें भी नहीं हिचकिचाते, यह कैसे आशा की जा सकती है कि वे देशी राज्योंकी प्रजाके हितोंकी रक्षा करेंगे ? देशी राज्योंके कार्यकर्ताओंसे—श्री विजयसिंह पथिक, श्री रामनारायण चौधरी, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री रघुनाथप्रसाद पारसाई इत्यादिसे हमारी प्रार्थना है कि वे इस अवसरको हाथसे न जाने दें। यदि इस अवसरपर वे चूक गये, तो उन्हें सदाके लिए पछताना पड़ेगा।

—

स्वागतम्

हमारे जो पत्रकार भाई जेलसे छूटकर आये हैं अथवा शीघ्र ही आवेंगे, उनका हम हार्दिक स्वागत करते हैं। श्रीयुत सुन्दरलाल, श्री कृष्णकान्त मालवीय, श्री लक्ष्मीधरजी वाजपेयी, आयुर्वेद पंचानन श्री जगन्नाथ प्रसादजी, श्री वेंकटेशनारायण तिवारी, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, श्री पथिकजी, श्री सम्पूर्णानन्द, श्री कृष्णदत्त पालीवाल, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री आगरकरजी, श्री भवानीदयाल संन्यासी, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री रामनारायण चौधरी, श्री बालकृष्ण शर्मा, श्री पीरमुहम्मद मूनिस, श्री सत्यदेव विद्यालंकार, श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, श्री रामशंकर त्रिपाठी, श्री महेन्द्रजी, श्री पद्मकान्तजी तथा अन्य समस्त बन्धुओंने, जिनके नाम हमें इस समय याद नहीं आ रहे, देशके लिए तप करके हिन्दी-पत्रकारोंके गौरवको बहुत-कुछ बढ़ाया है। हमारा अनुमान है कि जेलमें जानेवाले हिन्दी-पत्रकारोंकी संख्या अनुपातकी दृष्टिसे अन्य भाषाओंके पत्रकारोंकी अपेक्षा अधिक ही रही होगी। इन लोगोंकी तपस्याका हिन्दी-जनतापर ज़बरदस्त प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि लाखों ही हिन्दी-भाषा भाषी इनके भावोंसे प्रभावित हुए हैं और होंगे। अपने त्याग तथा कष्ट सहनसे इन भाइयोंने हम सब पत्र कारोंका—उनका भी, जिन्हें उनके पथके अनुकरण करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ—मस्तक ऊँचा किया है, और इसलिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

'सरस्वती'का नववर्षांक

अन्य वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी सहयोगिनी 'सरस्वती'का जनवरीका अंक एक विशेषांकके रूपमें प्रकाशित हुआ है। इस अंकसे 'सरस्वती'ने अपने बत्तीसवें वर्षमें पदार्पण किया है। हम सहयोगिनीका हृदयसे स्वागत करते हैं। इंडियन प्रेस अपनी छपाई-सफाईके लिए हिन्दी-संसारमें प्रसिद्ध है, अत: छपाई-सफाई और गेटअप आदिके विचारसे 'सरस्वती' की सुन्दरताके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं।

इस अंकमें चार रंगीन चित्र और एक सौके लगभग सादे चित्र हैं। सादे चित्रोंमें श्री ठाकुर सिंहके आठ चित्र और श्री असित हल्दारके चार चित्र भी हैं, जो पृथक् काग़ज़पर एक रंगमें छपे हैं। श्री ठाकुर सिंह बड़े अच्छे पेंटर हैं, उनके चित्रोंमें वास्तविकता बहुत अधिक रहती है। वे रंगोंके चमत्कारपूर्ण मिश्रणमें बड़े दक्ष हैं। उन्होंने भारतके विभिन्न स्थानोंके जो दृश्य अंकित किये हैं, वे निश्चय ही बड़े सुन्दर हैं। 'सरस्वती'में उनके जो चित्र छपे हैं, वे एक ही रंगमें छपे हैं, अत: उनका वर्ण चमत्कार उपलब्ध नहीं है। फिर भी काश्मीरी झील और सूर्यास्तके चित्र बड़े मनोहर हैं।

श्री असित हल्दार नई बंगाली शैलीके सुप्रसिद्ध आर्टिस्ट हैं। उनके चित्रोंका क्या कहना है। 'सरस्वती'के इस अंकमें उनके 'संगीत-शिक्षा' और 'रासलीला' नामक चित्र बड़े सुन्दर हैं। हल्दार महाशयका लिखा हुआ 'भारतीय कला और कारीगरीका पुनरुज्जीवन' नामक लेख भी पढ़ने योग्य है।

इस अंककी पृष्ठ संख्या २०० है। यह अनेक मनोरंजक लेखों, कहानियों और कविताओंसे विभूषित है। कई लेख सचित्र हैं। हम आशा करते हैं कि हिन्दी-प्रेमी अधिकाधिक संख्यामें 'सरस्वती'के ग्राहक बनकर उसके संचालकोंके प्रति अपना कर्तव्य पालन करेंगे। हिन्दी-भाषा भाषी जनता इंडियन प्रेसकी ऋणी है, और इस दृष्टिसे भी हमें 'सरस्वती'का पूर्ण सम्मान करना चाहिए।

'अग्रवाल'

'अग्रवाल' अग्रवाल-महासभाका मुखपत्र है। इसका प्रथम अक हमारे सामने है। इस अंकमें व्यापार, अर्थशास्त्र और अग्रवाल-समाजसे सम्बन्ध रखनेवाले कई बड़े सुन्दर और विद्वत्तापूर्ण लेख तथा कविताएँ हैं। जातीय पत्र होनेपर भी इसमें साहित्यिक दृष्टिसे कई बड़े मनोरंजक और शिक्षाप्रद लेख हैं। सम्पादकीय विचारोंमें सम्पादक महाशयने बड़ी ख़ूबीके साथ अनेक आवश्यक विषयोंपर छोटे-छोटे पैराग्राफ लिखकर बड़े रोचक ढगसे विचार किया है। इसमें एक तिरंगा तथा कई इकरंगे चित्र हैं। लेखों और कविताओंके इस सुन्दर और रोचक चुनावके लिए सम्पादक मोतीलाल लाठ महाशय बधाईके पात्र हैं। पत्रकी छपाई, काग़ज़ आदि भी उत्तम हैं। अग्रवाल-समाजको इसे अवश्य अपनाना चाहिए।

पता—१६०, हरिसन रोड, कलकत्ता। वार्षिक मू०४), पृष्ठ-सं० ८०।

EDITED, PRINTED & PUBLISHED BY BENARSI DAS CHATURVEDI, AT THE PRAVASI PRESS.
120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.

विमना
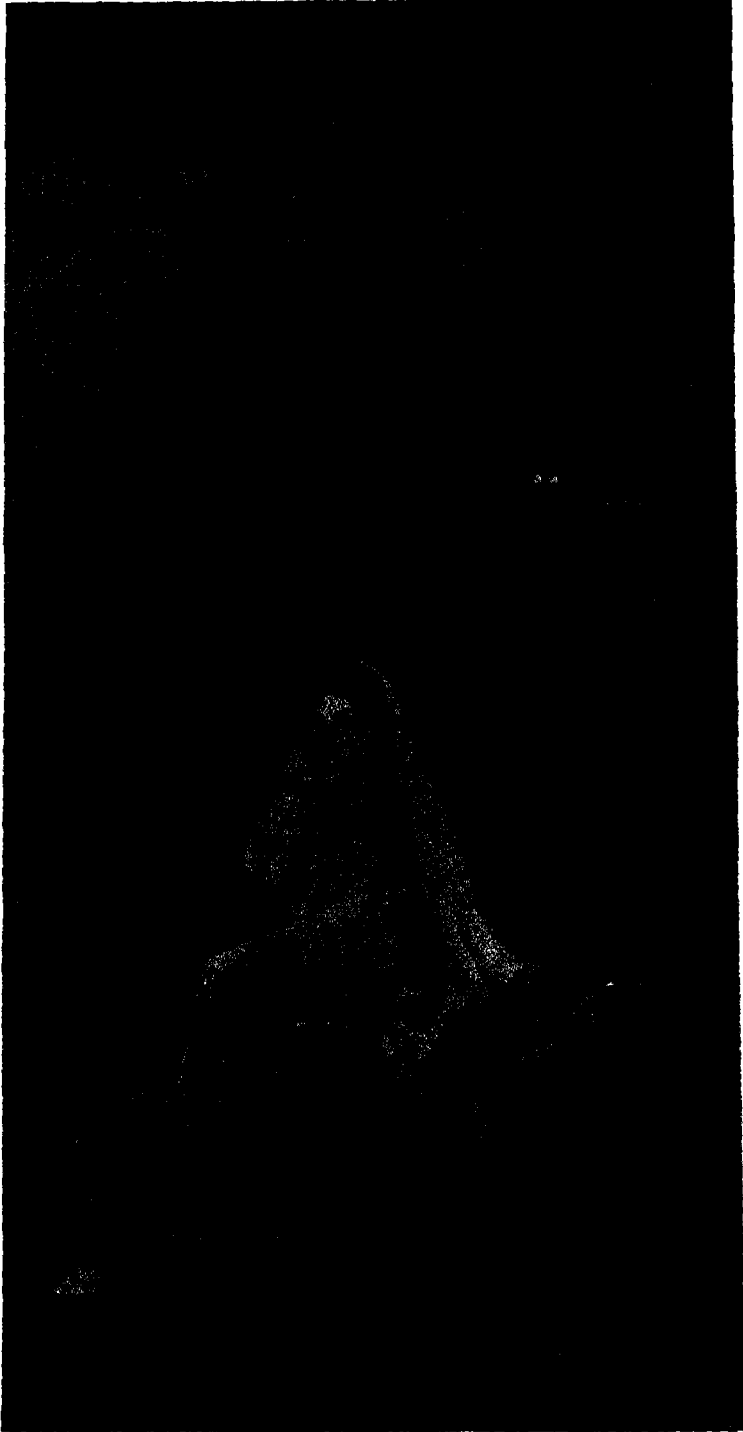
"विशाल-भारत"]　　　　[चित्रकार— श्री किरणपद राय

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ४ भाग ७ | मार्च १९३०; चैत १९८७ | अङ्क ३ पूर्णाङ्क ३९

आर्य नवयुवकोंसे

बनारसीदास चतुर्वेदी

आर्यसमाजकी वर्तमान स्थिति और भावी कार्यक्रमके विषयमें लिखनेका विचार बहुत दिनोंसे था, पर कई कारणोंसे कार्यरूपमें परिणत नहीं हो सका था। अभी उस दिन एक महाशयसे, जो पहले कट्टर आर्यसमाजी थे, बातचीत हुई, तो उन्होंने कहा—"आर्यसमाजके विषयमें खूब समझ-सोचकर लिखना नहीं तो कहीं आपके पत्रके विरुद्ध भी फतवा न निकाल दिया जाय कि कोई आर्यसमाजी 'विशाल-भारत' का ग्राहक न बने!" मैंने यही कहा—"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आर्यसमाज सदुद्देश्यसे भी लिखी गई आलोचनाको बर्दाश्त कर सकता है, क्योंकि उसमें शक्ति है।" मेरे मित्र इस बातसे सहमत नहीं हुए! मैंने कहा—"इस प्रश्नका फ़ैसला तो लेखके छपनेपर ही हो सकता है। इस डरसे कि हमारी लोकप्रियतामें बाधा पड़ेगी अथवा अमुक समुदाय नाराज़ हो जायगा, अपने विचारोंको प्रकट न करना भी तो एक प्रकारकी कायरता है। खतरनाक होनेपर भी यह प्रयोग करना ही चाहिए।" अतएव आर्यसमाजके हितको दृष्टिमें रखते हुए ही निम्न-लिखित बातें जनताके सम्मुख उपस्थित की जाती हैं।

प्रत्येक मनुष्य जाति तथा संस्था और समुदायकी उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि कभी-कभी वह एकान्तमें बैठकर आत्म-निरीक्षण करे। इस प्रश्नपर विचार करे कि समयकी परिवर्तित गतिको दृष्टिमें रखकर मुझे अपनी कार्य-पद्धतिमें कुछ रद्दोबदल करना चाहिए या नहीं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि "जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै" की नीतिका अनुसरण किया जावे। आदर्श तथा लक्ष्यको तो सर्वदा सम्मुख ही रखना चाहिए। चतुराई केवल इस बातमें है कि किस अवसरपर अपने कार्यक्रमके किस भागपर अधिक ज़ोर दिया जाय। प्राचीन भारतीय संस्कृतिका उद्धार आर्यसमाजका

लक्ष्य है, इसे न भूलते हुए भी वह अपनी कार्य-पद्धतिमें परिवर्तन कर सकता है।

परिवर्तनका अभाव

कोई भी न्यायप्रिय तथा विचारशील व्यक्ति इस बातसे इनकार नहीं कर सकता कि आजसे दस वर्ष पहले जहाँ आर्य-समाज खड़ा था, वहाँ तक अब उदार हिन्दू लोग पहुँच चुके हैं, इसलिए आर्यसमाजके प्रोग्राममें अब किसीको नवीनता नज़र नहीं आती। लीडरका काम है कि वह आगे बढ़े, नेतृत्व करे! आर्यसमाजको भी अपनी कार्य-पद्धतिमें कुछ परिवर्तन करना चाहिए, कुछ नवीनता लानी चाहिए।

साहसकी कमी

सबसे बड़ी कमी आर्यसमाजमें यह आ गई है कि उसमें adventure का प्रायः अभाव हो गया है। साहसपूर्वक नये कार्योंको प्रारम्भ करनेकी प्रवृत्ति जाती रही है। वे भी पुरानी लकीरके फकीर बन गये हैं। आर्यसमाजका जब तक घोर विरोध होता रहा, तब तक उसके नेताओंमें चरित्रबल बढ़ता रहा, पर ज्योंही आर्यसमाजकी लोकप्रियता बढ़ी त्योंही उसके नेताओंमें आलस्य आ गया और वे सरल और निष्कंटक पथके अनुयायी बनने लगे। सरकारसे लोहा लेनेके बजाय अपने गुरुकुलकी नींव प्रान्तीय गवर्नरके हाथसे रखवानेमें गौरव समझना आर्यसमाजकी इसी मनोवृत्तिका सूचक था।

निर्बल नेता

आर्यसमाजकी बागडोर पिछले वर्षोंमें ऐसे आदमियोंके हाथोंमें रही है, जो प्रायः सरकारी प्रभावमें रहे हैं और जिनके कारण आर्यसमाजको नैतिक निर्बलताका शिकार होना पड़ा है। आर्य पुरुषोंमें नगरकीर्तन सम्बन्धी सत्याग्रहके लिए जोश पैदा होता है, तो ये नेता उसे ठंडा कर देते हैं, क्योंकि इस प्रकारके आन्दोलनोंका नेतृत्व ग्रहण करना उनके बूतेका काम नहीं है। जिनकी मनोवृत्तिको वकालत, वकालत, सरकारी नौकरी या उपाधि-व्याधिने कुचल रखा हो, वे भला क्या सत्याग्रह-संग्रामका संचालन कर सकते हैं?

नास्तिकता

आर्यसमाजी नेताओं तथा उपदेशकोंमें खतरेमें पड़नेकी प्रवृत्ति जाती रही है। समाजके एक अधिकारी उपदेशक महोदयसे फिजी जानेके विषयमें बातचीत हुई। आप बोले— "जा तो हम सकते हैं, पर इस शर्तपर कि हमारे पास यहाँसे फिजी जाने और फिजीसे भारतको लौटनेका किराया अभी प्रारम्भमें ही जमा कर दिया जाय।" इन महाशयपर किसी प्रकारकी गार्हस्थिक जिम्मेवारी नहीं थी, पर इन्हें इस बातका भय था कि कहीं फिजीवाले हमें घर लौटनेका किराया न दें! इसकी तुलना कीजिये बौद्ध प्रचारकोंसे, जो सहस्रों कठिनाइयोंको सहन करते हुए चीन, जापान, अफ़ग़ानिस्तान इत्यादि सुदूर देशोंको गये थे। कुमारजीव यहाँसे चीन जाते हैं और संसारकी सबसे कठिन भाषा चीनी ज़बानको सीखकर उसमें संस्कृतके एक सौ महान ग्रन्थोंका अनुवाद करते हैं। आज भी चीनमें कुमारजीवकी लेखनशैली सर्वोत्तम समझी जाती है। न जाने कितने बौद्ध प्रचारकोंने बर्फसे ढके स्थानोंको पार करते हुए अपने प्राण गँवाये होंगे। उसीका परिणाम यह हुआ कि आज संसारमें जितने बौद्धधर्मके अनुयायी हैं, उतने शायद ईसाई मतको छोड़कर किसीके भी नहीं हैं। दरअसल बात तो यह है कि आर्यसमाजी प्रचारकोंके हृदयमें नास्तिकता घर करती जा रही है। जो अपने ऊपर विश्वास नहीं कर सकता और जिसके हृदयमें परमात्मापर श्रद्धा नहीं, वह नास्तिक नहीं तो कौन है! कहनेको तो ये लोग कहा करते हैं—

> "दुनियामें चारों वेदोंका 'परचार' करेंगे,
> जो कुछ कहा ऋषीने उसे सरपे धरेंगे।"

पर इनके किये-कराये कुछ होता नहीं। अपने धर्मका प्रचार करनेके लिए ईसाई-प्रचारक जो तप और त्याग किया करते हैं, उसका शतांश भी आर्यसमाजी प्रचारक नहीं करते। इसी सिलसिलेमें हमें शताब्दी-उत्सवकी एक घटना याद आती है। प्रवासी भाइयोंमें शिक्षा और भारतीय संस्कृतिका प्रचार करनेके लिए एक प्रस्ताव हम रखना चाहते थे।

देश-देशान्तरोंमें वैदिक धर्मके प्रचारार्थ आर्यसमाजकी ओरसे अर्थ-संग्रहके लिए अपील भी होनेवाली थी। स्व० केशवदेव शास्त्रीने, जो उस समय कार्यक्रमके चार्जमें थे, हमसे कहा—"यदि आप लोग उपनिवेशोंकी ओरसे दस-पन्द्रह हज़ार रुपयेका वायदा कर सकें, तो हम आपको इस प्रस्तावके रखनेकी इजाज़त दे सकते हैं।" उस समय भाई देवीदयालजी, (संन्यासी भवानीदयालजीके अनुज) मैं और पंडित तोतारामजी बड़े चक्करमें पड़े। हम लोग बड़ी दूरसे इसी प्रस्तावको रखनेके लिए मथुरा गये थे और वहां शास्त्री महोदयने यह अड़ंगा लगा दिया! आखिरकार महात्मा मुन्शीरामके पास जाकर सारी बातें कहीं, तब उन्होंने उपनिवेशोंमें शिक्षा और संस्कृति प्रचार-सम्बन्धी प्रस्तावको शताब्दीके प्लेटफार्म पर से रखनेकी आज्ञा दिलवाई। और आप जानते हैं कि देश-देशान्तरोंमें प्रचारके लिए क्या किया गया? जो ५५ हज़ार रुपये चन्देमें एकत्रित हुए उनकी ब्याजसे, जो शायद ४०० रुपया मासिक होता था, 'दुनियामें चारों वेदोंका परचार' करनेकी स्कीम बनाई गई! 'ब्याज' से कार्य करनेका अर्थ यही था कि आर्यसमाजके नेताओंको इस बातका विश्वास नहीं था कि फिर रुपया जमा हो सकेगा या नहीं! यदि फुटकर संस्थाओंके आदमी जाकर उपनिवेशोंसे दस-बीस हज़ार रुपये ले आते हैं, तो क्या 'आर्य-सार्वदेशिक सभा' के प्रतिष्ठित उपदेशकोंके लिए ऐसा करना असम्भव था? पर किसीमें आत्म-विश्वास या आस्तिकता तो हो।

परिमित दृष्टि

कुछ वर्ष पहले आगरेमें हमें Australasian Methodist Mission के सेक्रेटरी रेवरेण्ड जे० डब्ल्यू० बर्टनके साथ बातचीत करनेका मौका मिला था। आस्ट्रेलिया तथा एशियामें जहां-जहां मेथोडिस्ट मिशन हैं, वहांके कार्योंका निरीक्षण-कार्य आपके अधिकारमें था। पांच वर्षोंमें आप पांच देशोंके चक्कर लगाते हैं। एक वर्ष उत्तरी आस्ट्रेलिया जाते हैं, तो दूसरी साल फिजीको। तीसरे वर्ष भारतकी यात्रा करते हैं तो चौथे वर्ष प्रशान्त महासागरके पापुआ द्वीपके मिशन-कार्यका निरीक्षण करते हैं और फिर पांचवें वर्ष इंग्लैण्डकी यात्रा करते हैं। पचपन वर्षके बर्टन साहबमें अपने धर्मके प्रति जो उत्साह और जो लगन दीख पड़ी, उसका दशांश भी आर्यसमाजके बड़ेसे बड़े नेताओंमें नहीं दीख पड़ती। यदि आर्यसमाजका कोई प्रतिष्ठित नेता यह निश्चय कर ले कि एक वर्ष फिजी जाऊँगा, तो दूसरे वर्ष मारीशस, तीसरी वर्ष पूर्व अफ्रिका, चौथी वर्ष ट्रिनीडाड तथा ब्रिटिश-गायना और पांचवें वर्ष दक्षिण-अफ्रिका, तो क्या उसके लिए किरायेकी कमी हो सकती है? पर इन लोगोंकी Mental horizon (मानसिक क्षितिज) तो बिलकुल परिमित है, इसलिए इतने दूरकी उन्हें सूझ ही कैसे सकती है? कुछ दिनों पहले आर्य-सार्वदेशिक सभाके मुखपत्र 'सार्वदेशिक' में एक स्कीम छपा करती थी। 'रामदास टर्की-निधि' यदि रामदास नामक कोई आदमी टर्कीमें वैदिक धर्मके प्रचारार्थ पांच हज़ार रुपये दे दे (ठीक-ठीक रक़म हमें याद नहीं रही), तो उसके नामपर 'रामदास-टर्की-निधि' क़ायम कर दी जायगी। पचास हज़ारकी ब्याजसे देश-देशान्तरोंमें प्रचार करनेवालोंका रामदास या ओम् प्रकाशके भरोसे बैठे रहना हितोपदेशके सोम शर्माके पिताके समान बुद्धिमानीका कार्य है।

निरर्थक उत्सव

पर देशान्तरोंकी ओर तो आर्यसमाजके नेताओंका ध्यान तब जा सकता है, जब कि देशके घरेलू झगड़ों और व्यर्थकी कार्रवाइयोंसे उन्हें फुरसत मिले। यदि आप आर्य-सामाजियोंकी मनोवृत्तिको देखना चाहते हों, तो जाकर उनके जल्सोंको देख लीजिये, जिनमें समय और धनका व्यर्थ ही अपव्यय किया जाता है। आर्यसमाजका चन्देका धन अधिकतर भाड़े, हंडे तथा भजनीकोंके पेटमें जाता है। वेद-प्रचारका तो केवल नाम ही भर है। अगर किसी वेदज्ञ पंडितको पांच रुपये मिलते हैं तो भोंगा भजनीकको पचास। उत्सव और नगर-कीर्तन तमाशे बन गये हैं।

यहांपर हमें एक बात याद आती है, जो हमने कहीं सुनी थी, पर जिसकी सत्यताकी गारन्टी हम नहीं कर सकते। कहा जाता है कि दक्षिण-अफ्रिकासे लौटनेके थोड़े दिनों बाद महात्मा गांधी भूलसे किसी आर्यसमाजके जलसेमें जा फँसे। इन उत्सवोंका उन्हें कुछ अनुभव नहीं था। छै घंटे तक दनादन व्याख्यान होते रहे। जब कार्रवाई समाप्त हुई, तो किसीने उनसे पूछा—"कहिये, आपकी क्या राय है?" महात्माजीने कहा—"मेरी समझमें जितने आदमी यहां इकट्ठे हुए हैं, यदि वे सब मिलकर इतनी देर तक सड़क कूटते, तो समयका उत्तमतर उपयोग होता।" यह बात इतनी मनोरंजक है कि यदि सत्य न हो, तो भी सत्य होनी चाहिए।

त्रुटियोंकी भरमार

आर्यसमाजके विषयमें अनेक कार्यकर्ताओंसे बातचीत करनेका अवसर हमें मिला है और उन्होंने जो त्रुटियां हमें बतलाई हैं, उन्हें हम बिना किसी क्रमके यहां लिखे देते हैं। यहांपर हम यह भी कह देना चाहते हैं कि ये त्रुटियां किसी बुरे उद्देश्यसे अथवा छिद्रान्वेषणकी स्पिरटमें नहीं बतलाई गईं। ये कार्यकर्ता लोग आर्यसमाजके परम शुभ-चिन्तक हैं और हर प्रकारसे उसकी उन्नति चाहते हैं।

इक्कीस त्रुटियां

१—किसी धर्मके लिए श्रद्धा और तर्क दोनोंकी आवश्यकता होती है। अधिक श्रद्धासे अन्ध-विश्वास और अधिक तार्किकतासे नास्तिकताका जन्म होता है। तर्कका स्थान मस्तिष्क है और श्रद्धाका हृदय। इसका मतलब यह हुआ कि जिसे अच्छी तरह सोच-विचार लो, उसपर ईमान लाओ और अमल करो। स्वामी दयानन्दने अपने उपदेशमें श्रद्धा और तर्कका समन्वय किया था। परन्तु अब आर्यसमाजमें तर्क तो बढ़ रहा है और श्रद्धा 'पोपलीला'का रूप धारण करती आ रही है। समाजसे भावुकता और सहृदयताके नष्ट हो जानेका यही कारण है।

२—आर्यसमाजमें पूँजीपतियोंका अधिक मान है। दरिद्र सदाचारीकी बिलकुल क़द्र नहीं की जाती। पूँजीपति कैसे ही बुरे आचार-विचारका क्यों न हो, उसे सर्वगुण-सम्पन्न मान लिया जाता है।

३—आर्यसमाजका नेतृत्व प्राय: उन हाथोंमें है, जो धर्मके तत्व समझनेसे कोसों दूर हैं।

४—आर्यसमाजमें धर्मका मर्म समझनेवाले भी कुछ विद्वान् साधु-संन्यासी और उपदेशक मौजूद हैं, परन्तु वे समाजोंके आश्रित हैं, संस्थाओंके अधीन हैं। उनपर अधिकार लिप्सा या यश:कामनाका भूत सदैव सवार रहता है। कुछ बेचारे तो आर्यसमाजसे रोज़ी कमाने या रोटी खानेके कारण सत्य-सत्य बात नहीं कह सकते। इस विषयमें 'नि:स्वार्थ' कहे जानेवाले आर्य-संन्यासियोंकी मानसिक दासता अत्यन्त सोचनीय है। उपदेशक लोग उन्हीं बातोंको कहते हैं, सम्पादक लोग उन बातोंको लिखते हैं, जिनसे उनके आक़ा लोग खुश रहते हैं। समाजका संहार हो तो हो, पर आक़ा लोगोंकी खुशी बनी रहे। जिस समुदायमें सच्चे समालोचक, निष्पक्ष लेखक और निर्भय उपदेशक नहीं होते, उसका पतन अवश्यम्भावी है।

५—समाजमें चन्देका चमत्कार है। अधिकसे अधिक चन्दा देनेवाला ही सदाचारका स्तम्भ समझा जाता है, चाहे वह कितना ही पापी क्यों न हो; फिर उसके विरुद्ध सच्ची बात कहना भी अपराध और दलबन्दीका कारण है।

६—समाजोंमें संस्थाएँ खुलती जाती हैं। इन्हें धार्मिक दूकान कहा जाय, तो अनुचित न होगा। उत्तरोत्तर बढ़ती हुई पार्टीबन्दीका मुख्य कारण यह संस्थावाद और पदोंके लिए मर मिटना है। निर्वाचनोंके लिए महीनों पहलेसे 'कनवेसिङ्ग' होना समाजके मौतकी निशानी है। संस्था खोलनेका कारण कितने ही 'महाशयों'का स्वार्थपूर्ण स्वभाव भी हो सकता है।

७—कन्या-विक्रयके विरुद्ध आर्यसमाज बड़ा ज़ोर लगाता है, परन्तु स्वयं विधवाश्रमोंसे ब्याही जानेवाली विधवाओंके

बदलेमें दानके नामपर सैकड़ों रुपये वसूल कर लेना अनुचित नहीं समझता।

८—आर्यसमाजमें वेतन लेकर काम करनेवालोंकी क़द्र नहीं होती। ये वैतनिक लोग जब तक पार्टीबन्दीके अंग बनकर अपना पक्ष सुदृढ़ न कर लें, तब तक उनका अस्तित्व सदैव खतरेमें बना रहता है। खासकर संयुक्तप्रान्तमें यह मर्ज़ बुरी तरह बढ़ रहा है। निर्वाहार्थ लेकर अपना पूरा समय देकर काम करनेवालेकी अपेक्षा कुछ न लेकर कुछ न करनेवाला नाममात्रका उपाधिधारी अधिकारी उत्तम समझा जाता है। आर्यसमाजमें सीधे-सादे सात्विक वृत्तिके लोगोंकी क़द्र नहीं। कूटनीतिज्ञका आदर होता है। कहनेको तो आर्यसमाज जाति-पांति नहीं मानता, परन्तु जाति तो अलग रहे, कोई उपजाति तोड़नेके लिए भी तैयार नहीं है! बड़े-बड़े भयंकर जाति-पांति तोड़क ऐसे बताये जा सकते हैं, जो क्रियात्मक रूपसे अपने बाप-दादोंके रूढ़िवादसे एक इंच-भर भी इधर-उधर नहीं होना चाहते। हां, इस जाति-पांति तोड़क आन्दोलनने कुछ वर्णविशेषके विरुद्ध लोगोंके दिलोंमें तास्सुब ज़रूर भर दिया है। एक जातिके लोग दूसरेसे बाहरी नहीं तो अन्दरूनी prejudice अवश्य रखते हैं। पहले तो अन्दरूनी और बाहरी दोनों तरहका पक्षपात था।

९—आर्यसमाजमें सुधारकों (Reformers) की कमी नहीं, परन्तु भक्तोंका (Saints) अभाव है। सुधारक तो एक डाकू भी बन सकता है, परन्तु सन्त बनना सबका काम नहीं। सन्त बननेके लिए हृदयकी विशालता और आचारकी उच्चताकी आवश्यकता है।

१०—गुरुकुल-प्रणालीके विषयमें इतना कहना पर्याप्त होगा कि गुरुकुल-विश्वविद्यालयके स्नातक (Graduates) मैट्रिक्यूलेशनकी परीक्षामें बैठते हुए लज्जित नहीं होते। गुरुकुलमें पढ़कर निकलनेवालोंमें उसके प्रति श्रद्धा नहीं होती। गुरुकुलके संचालक तथा अधिकारी अपने बालकोंको उसमें नहीं पढ़ाते! इससे अधिक उसकी निष्फलताका प्रमाण और क्या मिलेगा? गुरुकुलोंमें फ़ीस भी ली जाती है, बारहो मास चन्दा भी मांगा जाता है और तो भी उनका पूरा नहीं पड़ता। इसका भी कुछ कारण होना चाहिए। स्वामीजीने सादगीसे गुरुकुल-शिक्षा बताई थी, परन्तु गुरुकुलोंमें जितना ध्यान और धन भवन-निर्माणमें दिया जाता है, उतना ब्रह्मचारियोंको योग्य बनानेमें नहीं।

१२—आर्यसमाजमें स्वाध्यायकी प्रवृत्ति बिलकुल नहीं है, है भी तो Light literature की। इसीलिए अच्छा साहित्य पैदा नहीं होता। अच्छे साहित्यमर्मज्ञोंकी समाज क़दर भी नहीं करता। उसकी रायमें एक भोंगा भजनीक और एक गायनाचार्य अथवा तुक्कड़ और महाकवि सब समान हैं। जो सभाको रिझानेकी योग्यता रखता हो, वही श्रेष्ठ उपदेशक, संगीत-कलाविद् तथा साहित्य महारथी समझा जाता है।

१३—कहा जाता है कि आर्यसमजने गुरुडमका गढ़ गिरा दिया, परन्तु यह बात ग़लत है। केवल उसने गुरुडमका नाम बदल दिया और वह Leaderdom हो गया है। अभी कुछ दिन पूर्व जो स्वेच्छापूर्ण अधिकार गुरुओंको प्राप्त थे, वही लीडरोंको हैं। उनकी शानमें कुछ कहना गुनाहे-अज़ीम समझा जाता है। आर्य-पुरुषोंमें सत्याग्रहके लिए जोश पैदा होता है, तो ये नेता उसे ठण्डा कर देते हैं, क्योंकि कहीं इन्हें मैदानमें न जाना पड़े। इन नेताओंकी नीति 'गोली तीस क़दम बन्दा बीस क़दम' रहती है। अवश्य ही सब लीडरोंके सम्बन्धमें यह General remark नहीं हो सकता, कुछ Exception अपवाद भी हैं।

१४—विचार-स्वातन्त्र्यको समाजमें स्थान नहीं है। जिस प्रकार मुसलमानोंकी शरियत और हिन्दुओंका ईमान ठेस लगते ही टूट जाता है, उसी प्रकार स्वतन्त्र विचार आर्योंकी 'सिद्धान्त-हत्या' कर देता है। आर्यसमाजी लकीरके फ़कीर बने रहना चाहते हैं। वे न स्वतन्त्रता-पूर्वक किसी बातको सोचते हैं, न सोचने देते हैं। 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' का दौर-दौरा है। जो उनके माननीय ग्रन्थोंमें लिखा है, उससे बाल बराबर भी इधर-उधर नहीं होना चाहते,

परिस्थिति भलेही कितनी बदल जाय। Reasoning का सम्बन्ध दूसरों तकके लिए ही है, अपने लिए नहीं। अपनी समालोचना सुननेकी भी समाजमें शक्ति नहीं है।

१५—आर्यसमाजमें कीर्तिकामना पराकाष्ठाको पहुँच गई है। चार आने देकर अपना चन्दा चन्द्रमाकी तरह चमकाना चाहते हैं, जब कि सनातन धर्ममें एक साधारण दानी हज़ारों रुपयेकी धर्मशाला बनवाकर भी किसीको अपना नाम-धाम तक मालूम नहीं होने देता।

१६—दूसरे सम्प्रदायोंकी तरह आर्यसमाजमें भी गेरुआ कपड़ेवालोंकी तादाद धड़ाधड़ बढ़ रही है। ये लोग गृहस्थकी गाढ़ी कमाईका धन खूब खाते और आनन्दसे रहते हैं। साल-भरमें जब-तब कभी व्याख्यान झाड़ दिया और बस। इन लोगोंको अपने सुखका खयाल और शरीरकी चिन्ता बेचारे गृहस्थोंसे अधिक रहती है। शरीर-वर्द्धन ही इनका मुख्य उद्देश्य है। कुछ संन्यासी अच्छे भी हैं। इन रंगीले लोगोंकी बाढ़ कम होनी चाहिए।

१७—कितने ही ऐसे लोगोंकी कथा कही जा सकती है, जिन्होंने जन्म-भर बड़ी लगनसे समाज-सेवा की, परन्तु अन्तमें उनके साथ कृतघ्नताका परिचय दिया गया। ऐसी हालतमें लोगोंकी हिम्मत नहीं होती कि वे काम करनेके लिए मैदानमें बढ़ें।

१८—वैदिक संस्कारोंका नाममात्र ही शेष है। संस्कारोंकी Spirit पर ध्यान नहीं दिया जाता। केवल हवन कर देने और संस्थाओंको चन्दा दे देनेका नाम ही 'वैदिकता' या 'पूर्णवैदिकता' है। कन्या भले ही बारह वर्षकी हो और वर अठारह वर्षका, जो वैदिक आदर्शके विरुद्ध है, परन्तु फिर भी वह वैदिक है!

यज्ञोपवीतका Farce ढोंग किया जाता है, न कोई गुरुकुलमें पढ़ता है और न वेद पाठ करता है, फिर भी संस्कार 'पूर्णवैदिक'! यह अजीब हालत है।

१९—आर्यसमाजियोंके पुत्र आर्यसमाजी बहुधा नहीं होते, इसका कारण यही है कि वे अपने पितामें आर्यसमाजकी सच्ची निष्ठा नहीं पाते। जो लोग स्वयं अपने पुत्रोंको आर्य नहीं बना सकते, वे संसारको कैसे वैदिक झंडेके नीचे ला सकेंगे, यह एक समस्या है।

२०—आर्यसमाजमें संस्थागत दलबन्दी जातिगत दलबन्दी, पदाधिकारी गत दलबन्दी और प्रान्तीय भावगत दलबन्दी आदिका बाज़ार सदैव गरम है। इसकी दशा उस नारंगीके समान है, जो बाहरसे तो एक दिखाई देती है, परन्तु अन्दर उसकी अनेक शाखाएँ गुप्त रहती हैं।

२१—अनधिकारियोंका मान और अधिकारियोंकी उपेक्षा देखकर समाजके अनेक शुभचिन्तक उससे उदासीन हो बैठे, और उन्होंने अपना दूसरा कार्यक्षेत्र बना लिया।

मानसिक अजीर्ण

जिस समुदायके शरीरमें इतनी छोटी-मोटी बीमारियोंने घर कर लिया हो, उसके स्वास्थ्यका क्या ठिकाना हो सकता है? सच बात तो यह है कि आर्यसमाजके संचालकोंने इतने आवश्यक और अनावश्यक कार्य अपने सिरपर ले रखे हैं कि उन्हें स्पष्टतापूर्वक सोचने (Clear thinking) का समय ही नहीं मिलता। अंटसंट बेहद खा लेनेपर आदमीकी जो दशा होती है, वही इन लोगोंकी हुई है। भला, मानसिक अजीर्णमें कोई साफ़ तौरपर सोच सकता है?

कुछ प्रस्ताव

हमारे समालोचक यह कह सकते हैं कि इन खण्डनात्मक बातोंके साथ तुम कुछ रचनात्मक प्रस्ताव भी रख सकते हो या यों ही बकते हो? उनके सन्तोषके लिए अपनी क्षुद्र बुद्धिके अनुसार यहाँ हम कुछ प्रस्ताव रखते हैं।

नेताओंका विचार-परिवर्तन

सबसे पहला कार्य जो आर्यसमाजके नेताओंको करना चाहिए, वह यह है कि वे आपसमें मिलकर आर्यसमाजके वर्तमान कार्य और भावी नीतिपर विचार करें। जलसों तथा उत्सवोंके समय यह कार्य असम्भव है। कहीं एकान्तमें

दस-पंद्रह दिनों तक आर्यनेताओंका पारस्परिक विचार-परिवर्तन होना चाहिए। उस समय कितने ही प्रश्न उपस्थित किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ प्रचार-पद्धतिको ही लीजिये।

ग्राम-संगठन

ग्राम संगठनका कार्य इस समय समाज-सेवाकी दृष्टिसे तथा राजनैतिक दृष्टिसे भी अत्यन्त आवश्यक है। आर्य-समाजको यह कार्य अपने हाथमें लेना चाहिए। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि 'यंगमैन क्रिश्चियन ऐसोसियेशन (Y. M. C. A) के दूरदर्शी अधिकारियोंने इस कार्यको आजसे सत्रह-अठारह वर्ष पहले उठाया था, और उन्होंने बहुत-कुछ सफलता भी इस विषयमें प्राप्त की है।

भारतवर्ष ग्रामोंमें रहता है—८० फी-सदी आदमी ग्रामीण हैं—अतएव जो लोग अपने धर्म तथा सिद्धान्तोंका प्रचार भारत-भरमें चाहते हैं, उन्हें ग्राम-संगठनका कार्य अपने हाथमें उठा लेना चाहिए। यह एक स्वयं सिद्ध बात है, जिसके लिए प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं। क्या ही अच्छा हो, यदि आर्य-नेता उन स्थानोंका भ्रमण करें, जहाँ 'यंगमैन क्रिश्चियन ऐसोसियेशन'ने अपने ग्राम-संगठन-सम्बन्धी कार्य खोल रखे हैं। यदि उन लोगोंके पास कोई अच्छी चीज़ है, तो उसे ग्रहण करनेमें क्या बुराई है? यदि आपको आर्यसमाजकी निष्क्रियता और 'यंगमैन क्रिश्चियन ऐसोसियेशन'की कर्मशीलताके जीते-जागते दृष्टान्त देखने हों, तो कलकत्तेमें देखिये। आर्यसमाजका काम न कुछके बराबर हो रहा है। इतना बड़ा भवन व्यर्थ ही खड़ा हुआ है, न उसके पीछे कुछ व्यक्तित्व है और उसमें न कोई कल्पनाशील कार्यकर्ता। उधर वाइ० एम० सी० ए० का काम बड़े धड़ल्लेसे हो रहा है, पर यदि आप इतनी दूर कलकत्ते न आना चाहें, तो आगरेमें दयालबाग़का कार्य ही देख लें। यदि आर्यसमाज भी औद्योगिक कार्योंको प्रारम्भ कर दे, तो वह बहुत कुछ हित कर सकता है।

संख्याका मोह

सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि आर्यसमाजको संख्याका मोह सर्वथा छोड़ देना चाहिए। आर्यसमाजके रजिस्टरमें दो सौ निकम्मे मेम्बरोंका नाम लिखे होनेके बनिस्बत यह कहीं अच्छा है कि समाजमें इने-गिने आदमी हों, जो अपने चरित्र-बलसे अधिकसे अधिक जनतापर आर्यसामाजिक प्रभाव डाल सकें। चतुर ईसाई लोग अब ईसाइयतके प्रभावको बपतिस्मा देकर संख्या बढ़ानेकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व देते हैं।

निरन्तर सेवा कार्य

भारतवर्षकी वर्तमान परिस्थितिमें वही समाज और वही संस्था आदरका पात्र बन सकती है, जो दीन समाजकी सेवा करे। बीमारियोंसे मरनेवाले किसानको दवाई देनेवाले वैद्यकी जितनी आवश्यकता है, उतनी ईश्वरको निराकार सिद्ध करनेवाले उपदेशककी नहीं। जब उसे वस्त्रविहीन घरकी देवीका तन ढाँकनेके लिए आठ गज़ खादीकी ज़रूरत हो, उस समय "ओ३म् शन्नो देवी रभिष्टय:' का मन्त्र उसके अभीष्टको सिद्ध नहीं कर सकता।

साम्प्रदायिक कलहका अन्त

साम्प्रदायिक कलहके फैलानेमें आर्यसमाजके कुछ बेसमझ आदमियोंका काफ़ी हाथ रहा है, इसलिए आर्य-समाजके समझदार नेताओंका कर्तव्य है कि वे साम्प्रदायिक झगड़ोंको दूर करनेका भरपूर प्रयत्न करें। अब समय आ गया है कि जब दूसरोंके धर्मोंका मज़ाक उड़ानेवाले उपदेशकों तथा भजनीकोंका टिकट कटा दिया जाय। खण्डनात्मक नीतिका ज़माना कभी था—जब प्राचीन हिन्दू संस्कृतिके नष्ट होनेकी आशंका थी—पर अब वह समय नहीं रहा। जो हिन्दू-समाज संसारके सबसे शक्तिशाली साम्राज्यसे टक्कर ले सकता है, उसे भय किस बात है?

सांस्कृतिक मेल

यदि भारतवर्षमें सभी धर्मों और मतोंके अनुयायियोंको

शान्तिपूर्वक रहना है, तो सांस्कृतिक मेलके महत्त्वको समझना होगा--चाहे वह मुसलिम हो या आर्यसमाजी, सनातनी हो या ईसाई। जो अवश्यम्भावी सांस्कृतिक मेलके लिए प्रयत्न करेगा, वही अन्तमें सबसे अधिक शक्तिशाली बनेगा, और जो इस प्रबल धाराको रोकनेका निन्दनीय प्रयत्न करेगा, वह अपनी हस्तीको खो बैठेगा।

आशाकी झलक

सरकारी भारसे दबे हुए नेताओंसे, साम्प्रदायिक चश्मा लगाये हुए उपदेशकों तथा भोंगा भजनीकोंसे और परिमित दृष्टिवाले पत्रकारोंसे हमें कुछ भी आशा नहीं है। इनके दिन तो गिने गिनाये हैं। आशाकी झलक दीख पड़ती है, उन आर्य नवयुवकोंके हृदयमें, जो अपने स्वतंत्र विचार रखते हैं और जिन्होंने वर्तमान संग्राममें दिल खोलकर भाग लिया है। उन्हींको हम आर्यसमाजके भावी नेता मानते हैं और उन्हींकी सेवामें यह निवेदन किया गया है। आशा है कि वे हमारे सद्भावपर आशंका न करेंगे और इसे उसी भावनासे ग्रहण करेंगे, जिस भावनासे प्रेरित होकर यह प्रार्थना उनसे की गई है।

मधुकण

तुझको पा अविलम्ब भूल जाता हूँ सारे दुखको ;
जीवनकी कामना निहारूँ अपलक तेरे मुखको।
तेरे मुखको देख हृदय पुलकित होता है इतना,
शशिको देख न कभी सिन्धु लहरा सकता है जितना !

* * * *

फैल रही है अखिल लोकमें भुवन मोहिनी माया,
प्रिय, वह तेरे इस अनंग-तनकी है केवल छाया !
हे अनन्त सौन्दर्य सुधाकर, हे चिर-सत्य, भुवनमें,
तुझको पाकर और शेष क्या रह जाता जीवनमें ?

—सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए०

एक चीनी कलाकार और उसकी कृतियाँ

ब्रजमोहन वर्मा

हालमें एशियाई शिक्षा-कानफरेन्सका बनारसमें जो अधिवेशन हुआ था, उसमें एशियाके विभिन्न देशोंसे प्रतिनिधि आये थे। इन प्रतिनिधियोंमें चीन देशके एक महान प्रतिभाशाली व्यक्ति मि० जान फू काउ भी थे। काउ महाशयके सदृश विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति संसारमें कम मिलेंगे। वे कवि हैं, लेखक हैं, चित्रकार हैं, क्रान्तिकारी देशभक्त हैं, दृढ़ सैनिक हैं और चतुर सेनानी हैं! काउ महाशयकी प्रतिभामें विरोधी बातोंका विचित्र सम्मिश्रण दिखाई देता है। एक ओर कविकी कमनीय वाणी है, तो दूसरी ओर क्रान्तिकी प्रचण्ड ज्वाला! इधर चित्रकारकी सुकुमार कल्पना है और उधर सैनिकका कठोर कर्तव्य! जिस मनुष्यको लेखिनी, तूलिका और तलवारपर एक-सा अधिकार हो, वह निश्चय ही विचित्र कहा जायगा; परन्तु कवि काउ, राजनीतिज्ञ काउ, चित्रकार काउ और सेनापति काउमें—चीनके बाहर—चित्रकार काउ ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इसके दो कारण हैं; एक तो उनकी चित्र-कलाकी प्रतिभा उनकी अन्य बातोंकी प्रतिभासे अधिक बढ़ी-चढ़ी है। दूसरे उनकी कविता चीनी भाषामें होती है। साथ ही उनकी राजनीतिज्ञता और सैन्य संचालन आदिका सम्बन्ध केवल चीनकी घरेलू राजनीतिसे है, इसलिए बाह्य-संसार चित्रकार काउसे ही अधिक परिचित है।

काउ महाशयका जन्म चीनके क्वांग-टांग प्रदेशमें हुआ था। उन्होंने चीनके प्रसिद्ध चितेरे चू लिनसे चित्र-कलाकी शिक्षा पाई थी। युवक काउका मन टांग और मिंग राजवंशोंके चित्रोंकी ओर आकर्षित हुआ, और उसने कुछ दिनों तक इन चित्रोंका अध्ययन भी किया; परन्तु काउकी प्रतिभा चीनी चित्र-कलाकी पुरानी परम्पराके छोटे घेरेमें बन्द रहनेवाली नहीं थी। उन्होंने एक नये मार्गका अवलम्बन किया और शीघ्र ही अपने गुरुसे कहीं आगे निकल गये। उन्होंने अपने चित्रोंमें चीनी चित्र-कलाकी विशेषताओंके प्रभावको अक्षुण्ण रखते हुए भी उनमें एक नवीनता उत्पन्न करके अपने व्यक्तित्वकी छाप लगा दी।

श्री जान फू काउ

फिर उन्होंने यूरोपियन कलाकी ओर दृष्टि फेरी, और फ्रेंच शैलीके शिल्पपर खासा अधिकार प्राप्त किया। उन्होंने फ्रेंच चित्र-कला मोशियो बाली सरीखे विख्यात कलाकारकी अधीनतामें रहकर सीखी थी।

ऊपर कहा जा चुका है कि महाशय जान फू काउ केवल चित्रकार ही नहीं, बल्कि कवि और लेखक भी हैं। उनकी कविताओंमें 'मेढकीका गाम' नामक रचना विशेष

महत्त्वपूर्ण है और चीनमें अकसर पढ़ी जाती है। उनकी किताबोंमें 'चित्रांकन करनेकी विधि' और 'मेरे चित्रोंका पाठ' आदिसे उनकी चित्र कलाका पूरा परिचय मिलता है।

चीनी प्रजातन्त्रके पिता और वर्तमान चीनके जन्मदाता स्वर्गीय डाक्टर सन-यात-सेनसे चित्रकार काउकी बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। वे काउमें अगाध विश्वास रखते थे। डा० सेनके साथ काउने भाग्यचक्रके अनेकों उलट-फेर देखे हैं। जब सन-यात-सेनने जापानमें पहली चीनी क्रान्तिकारी सोसाइटी स्थापित की थी, तब उसके सभापतिका पद मि० काउको ही दिया गया था। बादमें वे कैन्टनके चीनी क्रान्तिकारी एसोसियेशनके सभापति भी चुने गये। यू-चंगके युद्धमें काउ महाशयने तूलिका फेंककर तलवार ग्रहण की, और सेनाका संचालन कर विजय प्राप्त की। सैनिक परिस्थितिकी दृष्टिसे यह विजय ही क्रान्तिकारियोंके लिए सबसे प्रथम सुविधाजनक विजय थी। शान्ति स्थापित हो जानेके बाद कैन्टनके अधिकारियोंने काउको क्वांग-टांग प्रान्तका—जहाँ उनका जन्म हुआ था—गवर्नर बनाना चाहा, परन्तु उन्होंने इससे इनकार कर दिया और अपनी शक्तियोंको रचनात्मक कार्योंमें लगाया। उन्होंने नौकरी छूटे हुए सैनिकोंको काम दिलानेमें सहायता दी और मज़दूरों तथा श्रमिकोंके बच्चोंके लिए स्कूल खोले। चीनकी शिक्षा-प्रणालीमें जो हेर-फेर हुए हैं, जिनसे वह अन्य सभ्य देशोंकी बराबरी करने योग्य हुई है, उनमें काउ महाशयका बहुत बड़ा हाथ है। उनके समस्त जीवनकी सबसे बड़ी आकांक्षा यही रही है कि चीन—जो पिछड़ी हुई दशामें था—उन्नति करके संसारके अन्य राष्ट्रोंमें सम्मानका स्थान प्राप्त करे।

जब चीनमें कुछ और शान्ति हुई, तो मिस्टर काउने पुनः अपनी तूलिका और रंग सम्हाले। उन्होंने चीनी चित्रकारोंकी सुविधाके लिए एक प्रिंटिंग प्रेस खोला और कई सचित्र पत्र—'जैसे 'पिंगमेन'—और 'चैंग-शैंग', आदि—भी निकाले। उन्होंने एक 'स्टूडियो' भी खोला है, जिसमें चीनी चित्रकार बिना रोक-टोकके आकर प्रेरणा ग्रहण कर सकें और उनसे सम्मति और सहायता प्राप्त कर सकें।

काउ महाशयने अपने चित्रोंसे संसारमें ख्याति प्राप्त की है। उन्हें इटली और पनामाकी प्रदर्शिनियोंमें स्वर्णपदक मिले थे। बेल्जियमकी प्रदर्शिनीमें जो विशेष पुरस्कार घोषित किया गया था, उसे प्राप्त करनेका दुर्लभ सम्मान भी काउ ही को प्राप्त हुआ था। काउ महाशयका स्वभाव बहुत सरल है। वे कभी पैसेके लिए चित्र नहीं बनाते। एक बार एक मंचू राजकुमारने उनसे कोई चित्र बनवाना चाहा परन्तु उन्होंने इनकार कर दिया; क्योंकि एक तो वे पैसा लेकर अपनी कला नहीं बेचते, दूसरे उनके राजनैतिक विचार मंचू-वंशके विरोधी थे।

काउ महाशय अपने साथ भारतवर्षमें अपने बहुतसे चित्र भी लाये हैं, जिन्हें उन्होंने बनारस, कलकत्ता और बम्बईमें प्रदर्शनी करके दिखलाया था। बनारसमें शिक्षा-कानफरेन्सके धूम-धड़के और यूनिवर्सिटीके अपरिपक्व वातावरणमें उनके चित्रोंकी उतनी क़द्र नहीं हुई, जितनी होनी चाहिए थी। हाँ, कलकत्तेकी ओरियन्टल सोसाइटीके भवनमें उनके चित्रोंकी प्रदर्शिनीको बड़ी सफलता मिली। इस प्रदर्शिनीका उद्घाटन बंगालके सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने किया था। कलकत्तेमें कलाकी प्रदर्शिनियाँ प्रायः हुआ करती हैं, परन्तु ऐसे कलापूर्ण चित्रोंका संग्रह शायद ही कभी देखनेमें आया हो।

इस स्थानपर काउ महाशयके चित्रोंका कुछ वर्णन अनुपयुक्त न होगा। कलकत्तेमें उन्होंने जो चित्र प्रदर्शित किये थे, उनमें कुछ तो प्राचीन चित्र थे, पर अधिकांश श्रीयुत काउकी ही कृतियाँ थीं। चीन और जापानमें—विशेषकर जापानमें—घरोंकी सजावटके लिए चित्र टाँगनेकी एक विशेष परिपाटी है। उनके यहाँ प्रत्येक कमरेमें चित्र टाँगनेका एक पृथक स्थान नियत होता है। हमारे यहाँ तो शीशेमें मढ़ाकर जो तस्वीर टाँग दी, वह दस-बीस वर्ष तक ज्यों-की-त्यों टँगी रहती है,

"बाघ"

परन्तु उनके यहाँ यह बात नहीं है। उनका कथन है कि एक ही तसवीरको अधिक दिन तक निरन्तर देखनेसे उसकी नवीनता जाती रहती है, उसका सौन्दर्य और आकर्षण बासी पड़ जाता है। प्रति दिन देखते-देखते हम अपने अच्छेसे अच्छे चित्रोंका अस्तित्व तक भूल जाते हैं। इसलिए जापानी लोग—यद्यपि उनके पास दस-पन्द्रह चित्र होते

हैं—कमरेमें केवल एक ही चित्र टाँगते हैं। दस-पन्द्रह दिनके बाद वे उस चित्रको उतारकर, हिफ़ाज़तसे लपेटकर, खास इसीके लिए बने हुए बाँसके चोंगोंमें बन्द करके रख देते हैं, और उसकी जगह दूसरा चित्र निकालकर टाँग देते हैं। इस प्रकार बराबर बदलते रहनेसे उनकी दृष्टिमें उनके चित्रोंका सौन्दर्य बासी नहीं होता। हर दसवें-पन्द्रहवें दिन उन्हें नवीन चित्रके सौन्दर्यका आनन्द प्राप्त हुआ करता है। इस पद्धतिके कारण चीन और जापानके चित्र अकसर लपेटनेवाले—Roll Picture—चित्र हुआ करते हैं। काउ महाशयके चित्र भी लपेटनेवाले चित्र थे। वे या तो रेशमपर बने थे अथवा रेशमपर चिपके हुए थे। इस रेशमके सिरेपर लपेटनेके लिए लकड़ी और सींगके ख़ूबसूरत कारीगरीवाले गोल मुट्ठे लगे हुए थे। आकारमें अधिकांश चित्र तीन फ़ीटसे पाँच फ़ीट तक लम्बे तथा डेढ़ फ़ीटसे तीन फ़ीट तक चौड़े थे।

काउ महाशयके चित्रोंमें सबसे पहली बात—जिसपर दर्शकोंका ध्यान जाता था—थी चित्रोंका विषय। कोई लेखक, कवि या चित्रकार जब कोई रचना करने बैठता है, तो उसके सम्मुख जो सबसे बड़ी समस्या आ खड़ी होती है वह है रचनाका विषय। वह किस चीज़को अपनी कृतिका विषय बनावे? किस बातके द्वारा अपनी कलाको प्रकट करे? परन्तु 'मास्टर' कलाकारको अपनी रचनाके लिए विषय—सबजेक्ट—खोजनेकी आवश्यकता नहीं होती। संसारकी कोई भी बात, कोई भी वस्तु उसकी रचनाका विषय हो सकती है। साधारणसे साधारण बातको भी वह अपनी प्रतिभासे अलौकिक सौन्दर्यशाली रूप दे सकता है। नोबुल पुरस्कारके विजेता, विख्यात साहित्यिक महारथी मारिस मेटरलिंककी मशहूर रचनाएँ हैं 'कुत्ता' और 'मधुमक्खी'। काउ महाशयके चित्रोंमें भी यही बात है। उन्होंने साधारणसे साधारण चीज़ोंके चित्रोंमें अपनी प्रतिभा दरसाई है। उनके चित्रोंके विषय बन्दर, चूहे, मक्खी, मकड़ी, गिद्ध, पुराना मन्दिर, झरना, लोमड़ी, नाव, बाघ, कौवे आदि हैं। हमारे जीवनकी इन नित्यप्रतिकी वस्तुओंको भी अंकित करनेमें उन्होंने कलाकी पराकाष्ठा दिखा दी है। हम लोगोंके हृदयमें प्रत्येक चीज़के लिए जो एक आन्तरिक अनुभूति होती है, उसे चित्र-पटपर अंकित कर देना और इस प्रकार अंकित कर देना जो दर्शकोंकी सहानुभूतिको बरबस अपनी ओर खींच ले, कलाकी उत्कृष्टता है; परन्तु इसमें भी एक बात है। कुछ विषय ऐसे हैं, जिनके सम्बन्धमें हमारे हृदयमें पहले ही से अनेक विचार जमे हुए होते हैं। चालाक कलाकार थोड़ासा आघात देकर हमारे उन भावोंको जाग्रत कर देते हैं। उदाहरणके लिए हम हिन्दुओंके मनमें भगवान कृष्णके प्रति बचपनसे ही विशेष श्रद्धाके भाव जमे रहते हैं। फल यह होता है कि अनेकों ऐरे ग़ैरे चित्रकार किसी भी ऊटपटाँग आकृतिके सिरमें मोर-पंख खोंसकर, उसके होठोंसे लकड़ीका एक टुकड़ा चिपकाकर भगवान कृष्णका चित्र अंकित कर देते हैं। गीताके उपदेष्टा और भगवानके अवतार योगिराज श्रीकृष्णकी आन्तरिक विशेषताएँ उस चित्रसे प्रकट होती हैं या नहीं, इससे कोई मतलब नहीं। यहाँ तो मोर मुकुट और वंशीके वाह्य चिह्नों—Symbols—को देखते ही हमारे हृदयमें कृष्ण भगवानके प्रति जमी हुई चिरश्रद्धाके भाव उमड़ आते हैं और हम भक्ति-भावसे गद्गद् हो, उस चित्रकी प्रशंसा करने लगते हैं। उस समय हम यह भी देखनेके लिए नहीं रुकते कि चित्रमें जो वंशी अंकित की गई है, वह वास्तवमें वंशी ही है कि ठोस लकड़ीकी एक डंडी! इसे हम सस्ती भावुकताका अनुचित रोज़गार (Exploitation of Cheap sentimentality) कह सकते हैं, इसीलिए आज दिन भी भारतके बाज़ारोंमें जर्मनी और आस्ट्रियाकी छपी हुई ऐसी लाखों तसवीरोंकी खपत है, जिनमें गोरी वेश्याओंके चित्रोंकी वेष-भूषामें थोड़ासा हेर-फेर करके उन्हें भारतीय देवताओंका रूप दे दिया गया है! परन्तु जिन चीज़ोंके लिए हमारे हृदयोंमें पहलेसे किसी प्रकारकी श्रद्धा या घृणा, अच्छे या बुरे भाव नहीं हैं, उनके प्रति हमारी सहानुभूतिको जाग्रत कर देना निस्सन्देह कलाकी बात है। उदाहरणके लिए 'चूहे'को ले लीजिए। चूहेके प्रति हमारे

"क्रोधसे पागल"

"मछलीका मोह"

मनमें पहलेसे कोई विशेष बात जमी हुई नहीं है, परन्तु चूहेका इस प्रकारका चित्र अंकित करना, जिससे उसके प्रति हमारी समस्त मानव सहानुभूति उमड़ पड़े, बड़ी दक्षताका काम है। काउ महाशयमें यह दक्षता पूर्ण मात्रामें विद्यमान है। उनके पांच चित्रोंके सादे 'ब्लाक' यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं।

चीनी चित्र-कला बहुत उन्नत कला है। उसके चित्रकार जिस किसी चीज़को अंकित करते हैं, उसकी मुख्य विशेषताको प्रकट करनेका विशेष ध्यान रखते हैं। या यों कहिये कि वे प्रत्येक वस्तुको उसकी एक प्रधान विशेषताके लिए ही अंकित करते हैं। जैसे यदि वे किसी झरनेका चित्र अंकित करेंगे, तो उसकी तीव्रता और वेगके लिए, अथवा यदि पहाड़की तसवीर बनायेंगे, तो उसकी उच्चताके लिए। यही कलाकी विशेषता है। कैमरेमें वह बात नहीं आती। कैमरेसे आप पहाड़का ऐसा चित्र ले सकते हैं, जिसमें ऊँचाईका नाम भी न हो अथवा झरनेकी फोटो ऐसे कोणसे ली जा सकती है, जिसमें पानीका वेग ही न देख पड़े।

महाशय काउके अंकित किये हुए 'बाघ'के दो चित्र

यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं। रंगोंकी अनुपस्थिति तथा आकारमें कमी हो जानेके कारण इन चित्रोंमें मूल चित्रोंके सौन्दर्यका पचासवाँ भाग भी मुश्किलसे दिखाई पड़ता है। 'बाघ' शब्द कहनेसे ही हमारे मनमें बाघकी हिंस्र प्रवृत्ति, उसका भयावना स्वरूप, उसका क्रोधी स्वभाव, उसका महान बल और साहस तथा उसकी शाही आन बान आदि बातें उदय हो आती हैं। 'बाघ'का जो चित्र इन सब बातोंको एकदम प्रत्यक्ष नहीं कर देता, वह व्यर्थ है। 'बाघ'का चित्रांकन केवल इन्हीं बातोंको प्रकट करनेके लिए ही होना चाहिए। नहीं तो कैमरेसे हम बाघकी ऐसी भी तसवीर खींच सकते हैं, जिसमें वह केवल एक निरीह कुत्तेके समान ही दिखाई दे।

'बाघ'के पहले चित्रको देखिये। उसे देखते ही आपको 'बाघ'के हिंस्र स्वभावका अनुभव होने लगेगा। बाघ एक चट्टानपर खड़ा होकर किसी वस्तुको देखकर दहाड़ रहा है। उसके खड़े होनेका ढंग, गर्दन घुमाकर देखनेकी मुद्रा, गुस्सेसे खड़ी हुई दुम, विकराल दाँत, खालकी धारियाँ आदि बातें ऐसी ख़ूबीसे अंकित की गई हैं, जो देखते ही बनती हैं। मूल चित्र बाघके स्वाभाविक रंगोंमें चित्रित किया गया है। चित्रमें अंकित चट्टान—जिसपर बाघ खड़ा है—कलाकी दृष्टिसे अपना विशेष महत्व रखती है। चित्रकारको बाघको कहीं न कहीं खड़ा ही करना था; मगर चट्टान पर—ऊँचाई पर—खड़ा करनेसे चित्रमें एक विशेष बल आ गया है। दूसरे चट्टानसे बाघके आकार आदिका अनुमान अपने ही आप हो जाता है। यदि चित्रकार उसे किसी वन-बीहड़में खड़ा करता, तो पेड़-पत्तोंका व्यर्थ आडम्बर बढ़ जाता, जिससे केन्द्रीय वस्तुकी विशेषतामें निर्बलता आ जाती। चट्टानमें दरारें दिखाकर एक कलापूर्ण सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया गया है।

'बाघ'का दूसरा चित्र सफ़ेद और काले रंगमें है। इसमें 'बाघ'के हिंस्र भावके साथ-साथ उसका क्रोधी स्वभाव बड़ी उत्तमतासे अंकित है। उसे देखते ही यह भासित होता है कि वह क्रोधसे पागल हो रहा है। अंग्रेज़ीका एक कथन है 'Beauty requires no explaination' (सौन्दर्यको समझानेकी आवश्यकता नहीं, वह स्वयं ही प्रकट रहता है)। बाघके इस चित्रपर यह कथन अक्षरशः लागू है। बाघके क्रोधका विकराल सौन्दर्य स्वयं ही प्रत्यक्ष है।

कौवोंका चित्र भी बड़ा सुन्दर है। एक कौवा एक बाँसपर बैठा हुआ कोई फल खा रहा है। ऊपर एक दूसरे बाँसपर एक और कौवा उस फलपर नज़र लगाये बैठा है। तीसरा कौवा इस ऊपरवाले कौवेकी नीयत बद देखकर ऊपरकी ओर चोंच उठाये उसे ललकार रहा है और बाएँ कोनेपर बैठे हुए चौथे महाशय चुपकेसे गर्दन बढ़ाकर इस बातकी फ़िराक़में हैं कि यदि औरोंकी निगाह चूके तो वे भी फलमें एक चोंच मार लें! कौवोंकी ये सब चेष्टाएँ ऐसी ख़ूबीसे और ऐसी प्रत्यक्ष रीतिसे अंकित की गई हैं कि पहली निगाह डालते ही सब बातें प्रकाशकी भाँति स्पष्ट हो जाती हैं। यहाँ जो चित्र प्रकाशित किया गया है, वह साइज़में छोटा हो जानेसे इतना साफ़ नहीं मालूम पड़ता; मूल चित्र एकदम स्पष्ट है। बाँस बनाकर चित्रकारने कौवोंके बैठनेके लिए उपयुक्त स्थान ही नहीं बना दिया, बल्कि कौवोंके आकारका अनुपात भी प्रत्यक्ष कर दिया। बाँसमें घासका एक पूला भी बँधा हुआ है, जो देहातका स्मरण दिलाता है।

'मछलीका मोह' नामक चित्रमें यह दिखलाया गया है कि जलके ऊपर लटकती हुई किसी लतासे पानीमें एक श्वेत पुष्प झर पड़ा है। बेचारी मछली कोई खानेकी चीज़ समझकर उसे गपकनेके लिए लपक रही है। मूल चित्रमें रंगोंके खेलसे बड़ा मनोहर सौन्दर्य है। मछली इस प्रकार अंकित है, जिससे उसकी व्यग्रता और वेग साफ़-साफ़ प्रकट हो रहे हैं। ऊपर लटकती हुई फूलोंसे लदी लता बड़ी सुन्दरतासे दिखाई गई है। चित्रकारने पानीका किनारा—जहाँ लता या पेड़ लगा हुआ है—नहीं दिखलाया और उसे दिखलानेकी आवश्यकता ही नहीं है। काउ महाशयकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जानते हैं कि चित्रको कहाँ ख़तम

करना चाहिए। अधिकांश कलाकार—चित्र शिल्पी और साहित्य शिल्पी दोनों ही—अपनी कृतिमें नितान्त आवश्यकतासे कहीं अधिक रखकर overdo करके उसे बिगाड़ देते हैं।

"कौवे"

"मस्तूल और कुहरा"

काउ महाशय इस दोषसे बरी हैं। वे अपनी कृतिमें जितनी बातें नितान्त आवश्यक हैं, उन्हें छोड़कर उनसे एक बिन्दु भी अधिक नहीं बनाते। थोड़ेमें बहुत प्रकट करना साहित्य और चित्रकारी दोनों ही में बड़ा कलापूर्ण काम है। उसे महान दक्षता-प्राप्त उस्ताद ही कर सकते हैं। इसीलिए काउ महाशयके चित्रोंमें एक प्रकारका गठीलापन है। यदि

उनके चित्रमेंसे आप किसी भी छोटीसे छोटी चीज़को हटा दें—या छिपा लें—तो समूचा चित्र ही अधूरा हो जायगा !

यहाँ उनका 'मस्तूल और कुहरा' नामक एक और चित्र भी प्रकाशित किया जाता है। प्रातःकालका समय है। नदीमें कुहरा पड़ रहा है। जलमें पड़ी हुई नावें कुहरेमे बिलकुल ही अस्पष्टसी हैं। हाँ, उनके ऊँचे मस्तूल धुँधले-धुँधलेसे दीख पड़ते हैं। नदीके दूसरी ओर सुदूर तटपर एक अस्पष्टसी इमारत दिखाई पड़ती है। चित्रके ऊर्ध्वभागके खाली स्थानकी शून्यता मिटानेके लिए—अर्थात् चित्रको 'बैलेन्स' करनेके लिए—चीनी अक्षरोंमें कुछ इबारत लिख दी गई है।

मिस्टर काउके चित्रोंमें एक बात जो मुझे प्रत्यक्ष मालूम होती थी, वह थी उनकी तूलिकाकी दृढ़ता। उनका उस्तादी हाथ ऐसी दृढ़तासे चलता हुआ मालूम पड़ता है, जिसमें किसी प्रकारका डर, किसी प्रकारकी हिचकिचाहट, किसी तरहकी अनिश्चयता नहीं। उनका संसारका अध्ययन बहुत बढ़ा चढ़ा और कल्पनाकी उड़ान बहुत ऊँची है। उनके चित्रोंको देखकर ऐसा मालूम होता है कि जिस समय वे किसी चीज़का चित्र अंकित करनेके लिए सादा कागज़—पट—अपने सामने रखते हैं, उस समय उनके मानस-नेत्रोंको उस सादे पटपर उस वस्तुका चित्र अंकित दिखाई देता है। वे केवल तूलिकाके दो-चार दृढ़ उस्तादी हाथ फेरकर ही उसे रूपमय बना देते हैं।

भारतवर्षमें ऐसे महान चित्रकार दो ही एक होंगे। ईश्वर करे, हमारी इस पुण्यभूमिमें भी काउके समान प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न हों।

भूल

श्री पारसनाथ सिंह, बी-ए०, बी-एल०

भूल किससे नहीं होती ? मुझसे भी होती है, पर बात यह है कि मेरी अन्तरात्मा भूलको भूल स्वीकार करना नहीं चाहती। मेरी उससे इस विषयमें कई बार कहा-सुनी हो चुकी है। मैंने उसका ध्यान कई पुरानी उक्तियोंकी ओर आकृष्ट, और कभी-कभी आकर्षित, किया। कहा कि भूलना-भटकना मनुष्यका स्वभाव है और उसकी भूलोंको भूल जाना या उसे क्षमा प्रदान कर देना ईश्वरका। फिर क्यों न मैं अपनी प्रत्येक भूलको भूल मान लूँ और लोक-परलोक दोनोंमें भला बना रहूँ ? मेरी अन्तरात्मापर इसका कुछ भी असर न पड़ा। उसने बार-बार यही जवाब दिया कि भोलेभाले! जिस समाजमें तुम्हें रहना है, ज़रा उसका भी ध्यान रखो। खुदा माफ़ कर देता है, पर खुदाके बन्दे माफ़ नहीं करते। इसलिए चतुरका काम यही है कि इस लोकमें तो अपनी एक भी भूल न माने और उस लोकमें—अपने अच्छे-बुरे कर्म्मोंके विषयमें निश्चिन्त होनेके लिए—यह कह दे कि 'मुझसे संसारमें भूल ही भूल हुई है; पर परमात्मन्! आप अपने स्वभावको देखिये, मेरी भूलको नहीं।' जब अन्तरात्मा ही ऐसा हठ करती है, तब मैं अपनी भूलोंके सम्बन्धमें दूसरी मनोवृत्तिका परिचय कैसे दूँ ?

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो सारा दोष मेरे ही मत्थे मढ़ते हैं। उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि मैं भूल स्वीकार करनेके लिए तैयार रहता हूँ, पर मेरी अन्तरात्मा इसका विरोध करती है। उनका कहना है कि बात उलटी ही होगी। अर्थात् अन्तरात्मा तो कहती होगी कि जब भूल हुई है, तब उसे मान लो, पर तुम स्वयं उसके मतको ठुकरा देते होगे। उन भलेमानसोंके विश्वासको मैं कैसे बदलूँ ? मैं यही कह सकता हूँ कि वे मेरी अन्तरात्माको पूरी तरह पहचानते ही नहीं। पर्दानशीन होनेके कारण वह उनकी आँखोंसे ओझल रहती है, इसलिए उनकी कल्पनाने उसका ऐसा चित्र अंकित कर लिया है, जो सत्यसे कोसों दूर है। मेरी अन्तरात्मामें कितनी दुष्टता, कितना दुराग्रह, कितना द्वेष है, उसकी उन्हें क्या खबर ? दूरका ढोल सुहावना, यह कहावत जानते हुए भी वे अपने विश्वासकी सत्यतामें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं देखते। मेरी अन्तरात्मा उनसे इतनी दूर है कि वैज्ञानिक करामातोंके इस ज़मानेमें भी कोई उसकी परछाईं तक नहीं देख सकता। हमारे कुछ भाई कभी-न-कभी चन्द्रलोकमें पहुँच जायँगे, मंगलग्रह तक हमारी दौड़-धूप होने लगेगी, पर मेरी अन्तरात्माके रंगरूप—रूपरेखा—का कोई कभी आभास भी पा जाय, यह संभव नहीं। एक तो उसकी परिस्थिति ऐसी ठहरी कि मेरे सिवा उसे कोई देख नहीं सकता, फिर उसपर तुर्रा यह कि हिन्दी-भाषाभाषी उसे स्त्रीलिंग मान बैठे हैं। सबकी सहानुभूति उसीके साथ है। मैं अपने सम्बन्धमें—किसीसे न्यायकी आशा नहीं करता, पर असलियत यह है कि इन भाइयोंकी जैसी धारणा है, मेरी अन्तरात्मा वैसी दूधकी धुली हुई नहीं है।

हाँ, तो मैं भूलोंकी बात कर रहा था। चाहे किसीकी प्रेरणासे हो, चाहे मेरी अपनी इच्छासे, बात यह है कि मैं अपनी भूल कभी स्वीकार नहीं करता। आप छिद्रान्वेषण करते फिरते हैं तो कीजिये, समालोचकोंकी सूचीमें नाम लिखाना चाहते हैं तो लिखाइये, मैं आपको स्पष्टरूपसे कह देना चाहता हूँ कि मैं अपना रास्ता नहीं छोड़ सकता। आप मेरी भूलोंपर प्रकाश डालकर मुझसे यह नहीं कहला सकते कि 'मुझे खेद है, मुझसे ऐसी भूलें हो गईं। जिन सज्जनने उन्हें बतानेकी कृपा की है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। आशा करता हूँ कि जिस समय परमेश्वरके सामने मेरी

भूलोंका विचार होने लगेगा, उस समय वे क्षमा प्रदानका विरोध न करेंगे।' नहीं, मैं उन इने-गिने व्यक्तियोंमें नहीं हूँ, जो भूल करनेके बाद उसे डंकेकी चोट कहते फिरते हैं। मुझे एक भी अवसर ऐसा याद नहीं आता कि जब मैंने, हिमालय-जैसी भूलकी तो बात ही क्या, कंकर-जैसी भूलको भी भूल मान लिया हो। आपको शायद सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं महात्माजीके सत्यके प्रयोगोंसे अच्छी तरह परिचित हूँ, और किसी समय उनके ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद भी करनेवाला था।

भूल मनुष्य मात्रसे होती है। मुझसे भी भूलें हुई हैं और भद्दी भूलें हुई हैं। मुझे स्मरण है, जब मैं एक दैनिक पत्रके लिए अग्रलेख लिखा करता था, तब एक बार भारत-सरकारके बजटकी आलोचना करनी पड़ी थी। मैंने उस विषयपर कई लेख लिखे थे, और प्रत्येक लेखमें लाखको करोड़ मान लिया था। पाठकोंमेंसे किसीने इस ओर ध्यान नहीं दिया, पर एक ईर्ष्यालु सहयोगीसे नुक़्ताचीनी किये बिना न रहा गया। मैंने अपनी सफाई इन शब्दोंमें दी—"इधर कुछ लेखोंपर प्रेसके भूतोंकी ऐसी हुई है कि लाखसे सन्तुष्ट न होकर वे करोड़ तक पहुँच गये हैं। पाठकोंको उनकी करतूतपर ज़रूर हँसी आई होगी। हमारे सहयोगीका हृदय कलुषित न होता तो वह भी समझता कि यह प्रेसके भूतोंकी लीला थी, लेखककी भूल या भ्रान्ति नहीं।" ऐसे सभी लेखकोंको प्रेसके भूतोंका भारी भरोसा रहता है। इन भूतोंमें चाहे जितनी भयंकरता हो, इनमें एक बहुत सुन्दर गुण है। वह यह कि जब हम इनका नाम लेकर दोषसे बचना चाहते हैं, तब वे हमारी बातका खंडन कर सारा गुड़ गोबर नहीं कर देते। प्रेसके भूत अगर राग-द्वेषसे रहित न होते, तो सम्पादकों और उप-सम्पादकोंके लिए यह संसार-सागर और भी दुस्तर हो जाता। जिन प्रेसके भूतोंसे हम मसि-जीवियोंका इतना उपकार होता है, उनकी स्तुतिके लिए हमें ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिए, और उनसे प्रार्थना यह करनी चाहिए कि वे ऐसे ही परोपकारी बने रहें। जैसा कि पत्र सम्पादक अपने नये लेखकोंसे निवेदन करना नहीं भूलते—"आशा है, आपकी ऐसी ही कृपा बनी रहेगी।"

समाजमें रहनेवालेको समाजके आचार-व्यवहारको बराबर अपने मानसिक नेत्रोंके सामने रखना चाहिए। अगर नवयुवकोंके लिये अपनेको छायावादी बताना फ़ेशन-सा हो रहा है, तो उनके बीच किसीको भूलकर भी पन्तजीसे पहलेके कविका नाम न लेना चाहिए। मैंने एक बार सूर और तुलसीका नाम ही नहीं लिया, बल्कि भूलसे यह कह दिया कि आजकलके कवि उनकी तुलनामें कुछ नहीं हैं—

"सूर सूर तुलसी शशी उडुगन केशवदास।
अबके कवि खद्योतसम, जहँ तहँ करहिं प्रकास॥"

इसपर कुछ लोग बेतरह बौखला उठे। ऐसे ही उत्तेजना-पूर्ण वायुमंडलमें किसी समय सुरेन्द्रनाथ बनर्जीपर जूता फेंका गया था। मुझपर 'पल्लव' की प्रति फेंकी गई। दोहेके तीसरे चरणमें मुझसे भद्दी भूल हो गई थी, पर उस समय तो भूल स्वीकार करनेमें भी माफ़ी न मिलती। इसी अवसरपर मुझे यह शिक्षा मिली कि भूल भद्दी होनेके साथ भयंकर भी हो सकती है। मेरे छायावादी भाईने क्रोधमें आकर मुझपर जो कुछ फेंका वह 'पल्लव' था। मैं इसे अपना भाग्य समझता हूँ, पर कल्पना कीजिए कि वह पल्लव न होकर लकड़ीका कुन्दा होता, तब मेरी क्या दशा होती?

यहां मुझे याद आता है कि प्राचीन अथवा अर्वाचीन कवियोंकी पंक्तियोंको दोहराते समय मुझसे प्रायः भूल हो जाती है। यह बात खासकर प्राचीन रचनाओंके सम्बन्धमें है। सुधाकरजीका वह दोहा जिसपर उन्हें भारतेन्दुजीसे १००) इनाम मिला था, मैंने एक बार इस प्रकार पढ़ दिया—

"राजघाटपर बँधत पुल, जहँ कुलीनकी ढेरि।
आज गये कल देखके, आजहिं लौटे फेरि॥"

पीछे एक मित्रने बताया कि शुद्ध पाठ 'कुलियन' है, क्योंकि 'कुलीन' लोगोंकी भीड़ ऐसे स्थानपर कैसे लग सकती थी?

उसी दिन मुझे यह अनुभव हुआ कि पाठभेदका प्रधान कारण मनुष्यकी भूल है। प्राचीन काव्यमें ऐसी भूलोंके लिए गुंजाइश ज्यादा है, इसीलिए वहाँ इतने पाठभेद मिलते हैं। मेरी ज़बान खड़ी बोलीके साँचेमें ढली है, उससे प्राय: ऐसे ही शब्द निकलते हैं, जैसे द्विवेदीजीके गद्य या गुप्तजीके पद्यमें पाये जाते हैं। ब्रजभाषा तो राजा लक्ष्मणसिंह, सत्यनारायण कविरत्न या वियोगी हरिकी भाषा हो सकती है, पर मेरी भाषा नहीं। उसके शब्दोंको दोहराते समय मुझे क्षण-भरके लिए भी आत्म-विश्वास नहीं होता कि मैं शुद्ध बोल रहा हूँ। फिर ब्रजभाषा अकेली नहीं है। वह अपने साथ अवधी, बुन्देलखंडी, बैसवाड़ी, न जाने कितनी सहेलियोंको लिये फिरती हैं। मैं एक शब्दको अवधी समझता हू और उसका अर्थ 'आम' करता हूँ, आप उसीको भरतपुरकी टक-सालका शब्द बताकर उसका अर्थ 'इमली' करते हैं। भोजपुरी और डिंगलकी तो मैं बात ही नहीं करता। एक तो भूलना मनुष्यका स्वभाव ठहरा दूसरे प्राचीन हिन्दीमें ऐसा गड़बड़झाला है। किसी प्राचीन पंक्तिको कहीं उद्धृत करना एक आफ़त मोल लेना है।

आगरेके आसपास खड़ी बोली या ब्रजभाषा बोली जाती है, यह मैं नहीं कह सकता। इतना निश्चित है कि अवधी नहीं बोली जाती। शायद आपको मालूम होगा कि पंडित रामेश्वर भट्ट—आगरा निवासी—ने 'विनयपत्रिका'की एक टीका लिखी है। उसमें एक जगह "रोटी लूगा नीके राखैं, आगेहूकी वेद भाखैं"—का अर्थ करते हुए आपने 'रोटी लूगा' का अर्थ किया है 'रोटी लूँगा'। इसपर पंडित रामचन्द्र शुक्लने कहीं कहा है कि—

"इस पदमें 'रोटी लूगा' का अर्थ 'अन्न-वस्त्र' स्पष्ट है, पर श्रीयुत भट्टजीने अर्थ किया है 'रोटी लूँगा'। पूरबी शब्द 'लूगा' का अर्थ न जाननेपर भी यदि भट्टजीने 'लेना' क्रियाके 'लूँगा' रूपपर ही विचार कर लिया होता तो इस प्रकारका अर्थ करनेके श्रमसे बच जाते। 'लेना' क्रियाका 'लूँगा' रूप न ब्रजभाषामें ही होता है, न अवधीमें।"

आगरा-निवासी कभी-कभी बनारसी हिन्दीपर हँसते हैं। उन्हें याद रखना चाहिए कि बनारसवाले भी बदला ले सकते हैं। हिन्दीमें एक बात बड़ी मज़ेदार है। जो चाहे, जिसकी हिन्दीपर हँस सकता है—कोई बैसवाड़ीका नाम लेकर, कोई छत्तीसगढ़ीकी दुहाई देकर। यह अधिकार केवल बिहारियोंको नहीं है। हिन्दीमें यह सर्वसम्मत सिद्धान्त-सा है कि बिहारी हिन्दीपर सभी हँस सकते हैं, पर बिहारवाले अपने प्रान्तसे बाहरकी हिन्दीपर हँसनेका अधिकार नहीं पा सकते!

पर मैं देखता हूँ कि प्राचीनकी तरह अर्वाचीन कविताओंमें भी भूलकी गुँजाइश बढ़ती जा रही है। मैं कह चुका हूँ कि द्विवेदीजी और गुप्तजीके शब्दोंको मैं बेखटके दोहरा सकता हूँ; पर गुप्तजी अपना रास्ता छोड़ रहे हैं, मैं उनकी भाषा कब तक बोल सकता हूँ। इतने दिनों तक वे शुद्ध सर्वसम्मत हिन्दीकी चौड़ी सड़कपर चलते रहे, पर अब वे भी उन गलियोंसे प्रेम करने लगे हैं, जो झाँसीमें या उसके आसपासके गाँवोंमें पायी जाती हैं। जिसे विश्वास न हो, वह उनका 'गुरुकुल' काव्य या उसकी भूमिका पढ़ देखे। बुन्देलखंडीको एक बहुत अच्छे और बड़े सहायक मिल गये, पर मुझ जैसोंके लिए प्रचलित गद्य-पद्यमें परीक्षोत्तीर्ण होना और भी कठिन हो गया।

गुप्तजीने अपने इसी काव्यमें एक जगह लिखा है—

"रपट पड़ेकी हरगंगामें
मिट सकता है क्या उपहास,'

इसका अर्थ बताते हुए आपने स्वयं कहा है:—"रपट पड़ेकी हरगंगा' एक कहावत है, जो इस ओर प्रसंगानुसार कही जाती है। मालूम नहीं, और कहीं इसका प्रचार है या नहीं।" कमसे कम मेरे प्रान्तमें नहीं है। पर मैंने इस पंक्तिको यह दिखानेके लिए उद्धृत किया है कि मुझसे ऐसे शब्दोंको दोहराते समय कभी-कभी बड़ी ही भद्दी भूल हो जाती है। अभी हालमें एक साहित्यिक सभामें बोलते हुए मैंने इसे यों कहा—

कपट भरेकी हरगंगामें
मिट सकता है क्या उपहास?

ऐसी भूलें वास्तवमें अक्षम्य हैं, और इनके कारण होनेवाला उपहास अमिट है।

क्षयरोगकी उत्पत्ति

डा० शंकरलाल गुप्त, एम० बी०, बी० एस०

(ख) उपार्जित अंग निर्माण सम्बन्धी कारण

जैसा पहले कहा जा चुका है कि क्षयरोगके उपार्जित रचना-सम्बन्धी कारण दो प्रकारके होते हैं—

(१) सहज, अर्थात वह कारण जो शरीरके साथ उत्पन्न होते हैं।

(२) जन्मके बाद उपार्जित अर्थात् वह कारण जो जन्म लेनेके बाद उत्पन्न होते हैं।

सहज रचनात्मक कारण

प्रथम सन्तानमें स्वाभाविक कमी—सहज रचनात्मक कारणोंमें से एक यह भी है कि किसी परिवारमें ज्येष्ठ सन्तानको क्षय सबसे अधिक होता है और उसके बाद जन्म लेनेवाली सन्तानमें यह रोग क्रमशः उत्तरोत्तर कम होता जाता है। यह सभी जानते हैं कि अधिकांश वंशोंमें—विशेषकर राजघरानोंमें ज्येष्ठ सन्तानके कुछ विशेष अधिकार होते हैं, परन्तु जन्म विज्ञानवेत्ताओंके सम्पादित आँकड़ोंसे यह विदित होता है कि अनुज सन्तानकी अपेक्षा ज्येष्ठ सन्तानमें प्रायशक्ति निर्बल होती है। पहली सन्तान तौलमें कम होती है और बहुधा मरी हुई उत्पन्न होती है। नवविवाहिता स्त्रियोंमें गर्भपात अधिक होता है और जो जीवित सन्तान उत्पन्न होती है, उसमें से अधिकांशकी प्रथम वर्षमें ही मृत्यु हो जाती है। कार्ल पियर्सन तथा अन्य लोगोंने अपने सम्पादित आँकड़ोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि शारीरिक दुर्बलता मानसिक दुर्बलता, अपस्मार (मृगी) और विशेषकर क्षयरोग प्रथम सन्तानमें अनुज सन्तानोंकी अपेक्षा कहीं अधिक होता है।

पियर्सनने यह दिखलाया है कि क्षयरोगकी उत्पत्तिमें जन्मक्रमका कोई प्रभाव न होनेकी दशामें, जहाँ प्रथम सन्तानमें क्षयरोगियोंकी औसत संख्या हिसाबसे ६१ होनी चाहिए थी, वहाँ प्रत्यक्षमें वह ११३ मिलती है, और द्वितीय जन्मामें हिसाबसे जहाँ ६४ होनी चाहिए, वहाँ ६६. मिलती है। कोपनहेगन शहरमें हेन्सनने ३६२२ रोगियोंकी खोजसे यह पता लगाया है कि हिसाबसे प्रथम संन्तानमें क्षय-पीड़ितोंकी जितनी सख्या चाहिए थी, प्रत्यक्षमें उससे ३८६ अधिक मिलती है।

संवर्तन क्रियाके दोष (Errors of Metabolism) कुछ लोगोंका कहना है कि जिस मनुष्यके शरीरकी भौतिक तथा रासायनिक क्रियाओंका क्रम ठीक रहता है, उन्हें क्षय रोग कम होता है, परन्तु जिन लोगोंकी संवर्तन क्रिया (Metabolism) में कोई दोष होता है, उनको क्षय रोग अधिक होता है। इस विषयमें अभी तक बहुत कम खोज हुई है, इसलिए निश्चित-रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि संवर्तन क्रियाके किन-किन दोषोंका क्षयरोगके प्रादुर्भावपर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है। कुछ लोगोंका कहना है कि क्षयरोगियोंके मूत्रमें रोग होनेसे पूर्व खटिक (Calcium) अधिक पाया जाता है, या दूसरे शब्दोंमें यह कहना चाहिए कि इन लोगोंके शरीरमें खटिककी मात्रा व्यर्थ व्यय होनेसे कम हो जाती है। कुछ लोगोंने क्षयरोगियोंके रक्तमें भी खटिककी मात्राका अनुमान लगाया है। उनके मतानुसार स्वस्थ मनुष्योंकी अपेक्षा क्षयरोगियोंके रक्तमें खटिककी मात्रा कम होती है।

फ्रान्स देशके रोबिन, बिने इत्यादि अनेक विशेषज्ञोंने इस बातका पता लगाया है कि क्षयरोग होनेसे पूर्वावस्थामें रोगीके मूत्रमें खनिज-पदार्थ अधिक निकलते हैं, और फलस्वरूप रक्त, अस्थि और फेफड़ोंमें इन पदार्थोंकी कमी हो जाती है। गोबेने यह पता लगाया है कि क्षयरोगियोंकी सन्तानमें स्वस्थ मनुष्योंकी सन्तानकी अपेक्षा खटिक और

भग्न धातुका व्यय अधिक होता है। डा० रोबिनका मत है कि खटिक तथा अन्य खनिज पदार्थोंकी कमी-सम्बन्धी संवर्तनक्रियाके दोषोंका क्षयरोगकी उत्पत्तिपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। क्षयरोगके उत्पन्न होनेके लिए केवल क्षय-संक्रमण ही पर्याप्त नहीं होता। जब संवर्तनक्रियाके विकारोंसे शरीर-रूपी भूमि निर्बल हो जाती है, तभी क्षयरोग उत्पन्न होता है। रोगकी तीव्रता खनिज पदार्थोंकी कमीके अनुसार होती है। रोबिनका मत है कि यदि रोग उत्पन्न होनेसे पहले इस कमीका पता लगा लिया जाय और उसी समय उसको पूरा कर दिया जाय, तो क्षयरोगसे रक्षा हो सकती है।

क्षयरोगकी संवर्तनक्रिया-सम्बन्धी उपरोक्त खोजोंका अन्य अन्वेषकोंने अभी तक समर्थन नहीं किया है। अभी तक इस विषयमें यथेष्ट जाँच-पड़ताल नहीं हुई है, इसलिए इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ कहना अनुपयुक्त प्रतीत होता है।

प्रणाली-विहीन ग्रन्थियोंके दोष—प्रणाली-विहीन ग्रन्थियोंके विकारोंके सम्बन्धमें जो हालमें अनुशीलन हुआ है, उससे यह ज्ञात हुआ है कि इन ग्रन्थियोंके विकार क्षयरोगियोंमें बहुधा पाये जाते हैं; परन्तु अभी तक क्षयरोगका उनसे कोई कारण-रूपी सम्बन्ध निश्चित नहीं हुआ है। क्षयरोगके व्यापक प्रसारका विचार करते हुए कुछ रोगियोंमें प्रणाली-विहीन ग्रन्थि-विकारोंका पाया जाना स्वाभाविक प्रतीत होता है, परन्तु फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थि-विकारोंका क्षयरोगके विकासपर हितकर और कुछका अहितकर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि प्रणाली-विहीन ग्रन्थि और क्षयरोग-सम्बन्धी प्रश्नकी अधिक खोज नहीं हुई है, तथापि इस सम्बन्धमें कुछ बातें ज्ञात हुई हैं, जिनसे इस विषयमें कुछ जानकारी मिलती है।

चुल्लिका-ग्रन्थि (Thyroid gland)—यह देखा गया है कि जिन लोगोंमें चुल्लिका-ग्रन्थिका रस अधिक बनता है, उन लोगोंमें क्षयरोग कम होता है, और जब होता भी है तो हल्का होता है। मोरिनने इस बातका पता लगाया था कि चुल्लिका-ग्रन्थिसे पीड़ित परिवारोंमें जिन लोगोंकी चुल्लिका-ग्रन्थि बढ़ी हुई थी, उनमें क्षयरोग नहीं होता था, और दूसरी ओर १४८ रोगियोंमें जिनकी चुल्लिका-ग्रन्थि क्षीण (atrophied) हो गई थी, उनमें से ७५ प्रतिशतको क्षयरोग हो गया था। डा० सेजोके मतानुसार क्षयरोगसे पीड़ित होनेवाले लोगोंमें चुल्लिका-ग्रन्थिका अपचय साधारणतया पाया जाता है।

उपवृक्क-ग्रन्थियाँ (Suprarenal glands)—इन ग्रन्थियोंका क्षयरोगसे और भी अधिक घनिष्ट सम्बन्ध होता है। क्षयरोगमें रक्त-भारकी कमी, मांस-पेशियोंकी क्षीणता, तथा दुर्बलता और त्वचाकी श्यामता इत्यादि लक्षणोंसे उपवृक्कोंका विकार सूचित होता है। डा० सेजोका भी यही मत है कि उपवृक्कोंका विकार होनेपर क्षयरोग अधिक होता है।

जनन-ग्रन्थियाँ—जनन-ग्रन्थियोंका भी क्षयरोगसे घनिष्ट सम्बन्ध होता है। यह देखा गया है कि विषयकी कमीका क्षयरोगमें बड़ा हितकर प्रभाव पड़ता है। हिजड़ोंमें क्षयरोग बहुत कम पाया जाता है। आख्ता (बधिया) (Castrated) किये हुए गिनीपिग आदि पशुओंमें क्षयरोग बहुत कम होता है। स्त्रियोंमें मासिक धर्म बन्द हो जानेके बाद क्षयरोग बहुत कम होता है और जो होता भी है तो बहुत हल्का और वह बहुत शीघ्र अच्छा हो जाता है। इसके विपरीत युवावस्थामें जब विषयेच्छा अधिक होती है, तो क्षयरोग अधिक होता है और बड़े तीव्र रूपका होता है। इन बातोंसे क्षयरोगके होनेमें ब्रह्मचर्यके अभावका प्रभाव स्पष्टत: प्रकट होता है।

फेफड़ोंमें क्षयरोगकी अधिकता—मनुष्योंमें जितना भी क्षय होता है, उसका ६० प्रतिशत केवल फेफड़ोंमें होता है। पशुओंपर प्रयोग करनेसे भी यही ज्ञात हुआ है कि अन्य इन्द्रियोंकी अपेक्षा फेफड़ोंमें क्षयरोग कहीं अधिक होता है। चाहे त्वचा, उदरकला या शिरामें पिचकारी लगाकर और चाहे श्वास या भोजनके साथ किसी भी प्रकारसे क्षय-कीटाणुओंको शरीरमें प्रविष्ट कर संक्रमण उत्पन्न किया जाय,

तो शीघ्र या देरमें फेफड़ोंमें रोग अवश्य हो ही जाता है और कहीं हो या न हो। फेफड़ोंमें क्षय अधिक होनेके कारण अभी ठीक-ठीक ज्ञात नहीं हैं। इस सम्बन्धमें कुछ प्रचलित मत नीचे दिये जाते हैं।

कुछ लोगोंका विश्वास है कि फेफड़ोंमें अधिक क्षय इसलिए होता है कि वहाँके लसिका-संस्थानके विन्यासमें त्रुटि होती है। संक्रमणके रोकनेका सर्वोत्कृष्ट दुर्ग लसिका-संस्थान होता है। चूँकि फेफड़ोंमें लसिका-संचालन ठीक-ठीक नहीं होता, इसलिए क्षय अधिक होता है।

कुछ लोगोंका विचार है कि फेफड़ोंमें अधिक क्षय इसलिए होता है कि वहाँके रक्त-संचालनकी विधि उल्टी होती है। इस सम्बन्धमें यह कहना उपयुक्त होगा कि फेफड़ोंको अन्य अंगोंकी अपेक्षा शुद्ध धामनिक रक्त (Pure arterial blood) कम मिलता है।

कुछ लोगोंका मत है कि फेफड़ोंमें रक्तकी शुद्धि होती है, इसलिए उसमें कीटाणु आदि जितने दूषित पदार्थ होते हैं, वे सब फेफड़ोंमें रुक जाते हैं।

फुप्फुस-शिखरमें अधिक क्षय होनेके कारण—सम्पूर्ण फेफड़ेमें समान क्षय-ग्रहणशील प्रवृति नहीं होती। अन्य भागोंकी अपेक्षा शिखरमें क्षय सबसे अधिक होता है।

फुप्फुस-शिखरमें अधिक क्षय होनेके कारणके सम्बन्धमें कई एक मत हैं। कुछ लोगोंका विचार है कि फेफड़ेके ऊपरी भागमें गति बहुत कम होती है और फलतः वायुका हेर-फेर भी उतना ही कम होता है, इसलिए क्षय-कीटाणुओंको, जो श्वास-वायु या लसिकाके साथ उस स्थानमें पहुँचते हैं, वहाँ टिकनेका अधिक अवसर मिलता है।

परन्तु इस सिद्धान्तसे इस प्रश्नपर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। श्वास-वायुके अन्तर्गत धूलिके कणोंके फेफड़ोंमें संचित होनेसे एक प्रकारका फुप्फुस रोग हो जाता है। इस रोगको अंग्रेजीमें न्युमोकोनियोसिस (Pneumoconiosis) कहते हैं। यदि उपरोक्त सिद्धान्त ठीक है, तो इस रोगमें भी धूलिके कण फेफड़ोंके ऊपरी भागमें अधिक जमा होने चाहिए, परन्तु प्रत्यक्षमें यह देखा गया है कि इस रोगमें फेफड़ोंका ऊपरी भाग तो साफ होता है और निम्न भागमें धूलि-कणोंका संग्रह होता है।

कुछ लोगोंका विचार है कि शिखरमें क्षय अधिक इसलिए होता है कि उस भागमें रक्त और लसिकाका संचालन ठीक-ठीक नहीं होता। डा० कोबका कथन है कि फुप्फुस-शिखरमें लसिका-ग्रन्थि कम होती है, इसलिए वहाँपर क्षय अधिक होता है।

फ्रूण्डका वक्षके अर्द्ध द्वारकी संकीर्णताका सिद्धान्त—फ्रूण्डका मत है कि पहली पसलीके छोटे होनेसे और पहली उपपर्शुकाके अस्थि-रूप होनेसे वक्षका ऊपरी द्वार छोटा हो जाता है, इसलिए फुप्फुस-शिखरपर उसका दबाव पड़ने लगता है, जिसके कारण उस भागके रक्त और लसिका-संचालनमें बाधा पड़ती है। इसलिए श्वास-वायु या रक्तके साथ जो बाहरी अहितकर पदार्थ आ जाते हैं, वे वहींपर टिक जाते हैं।

फेफड़ेके शिखरसे कुछ नीचे शमोर्लको एक परिखा (Groove) मिली थी। यह परिखा नवजात शिशुओंमें अधिकतर पाई जाती है। स्वस्थ वक्षवाले मनुष्योंमें किशोरावस्थामें यह परिखा मिट जाती है। जिन लोगोंमें यह बनी रहती है, उनमें से अधिकांशमें उस स्थानपर क्षयाघात हो जाते हैं।

बैकमीस्टरने अपने अन्वेषण द्वारा इन बातोंका समर्थन किया है। नई आयुके खरगोशोंको लेकर उनमें प्रथम पर्शुकाके समतल स्थानपर उन्होंने एक तारका घेरा बनाकर कस दिया, जिससे वक्षका ऊपरी द्वार संकीर्ण हो गया। इससे फुप्फुस शिखर भी दब गया और उसमें तारके नीचे एक परिखा पड़ गई, जो शमोर्लके क्षयरोगियोंकी परिखाके अनुरूप थी। इन पशुओंमें संक्रमण करनेपर उस स्थानपर क्षयरोग उत्पन्न हो गया; परन्तु अन्य पशुओंमें, जिनमें यह तार नहीं बाँधा गया था, अब व्यापक क्षय हो गया, परिमित क्षय नहीं हुआ।

जहाँ कुछ लोगोंने फयडकी इस खोजका समर्थन किया है, वहाँ अनेक लोगोंको सावधानीसे जाँच करनेपर भी वक्षके ऊपरी द्वारकी संकीर्णता अधिक नहीं मिली। २३८ रोगियोंमें से वेनकेन बेकको ८१·७५ % में कोई विकार नहीं मिला और केवल १७·२ % में यह विकार मिला था।

अंग-निर्माणमें न्यूनता (Constitutional inferiority)—कुछ लोगोंका विचार है कि क्षय-ग्रहणशीलता शरीरके किसी अवयव-विशेषमें नहीं होती, बल्कि व्यापक होती है। सब मनुष्योंके शरीरकी गठन एक-सी नहीं होती। किसीका शरीर हृष्टपुष्ट और गठन दृढ़ होती है और किसीका शरीर निर्बल होता है और गठन दृढ़ नहीं होती। प्राचीन कालसे यह देखा गया है कि निर्बल शरीर-रचनावाले प्राणियोंको क्षयरोग अधिक होता है। निर्बल गातवाले मनुष्योंके निम्न-लिखित साधारण लक्षण होते हैं। ग्रीवा लम्बी, छाती लम्बी, चपटी और संकीर्ण, अंसफलक (पुट्ठे) पंखोंकी तरह उभड़े हुए, कंधे सामनेकी ओर झुके हुए, हँसली और दूसरी पसली उभड़ी, मांसपेशी निर्बल तथा पेट बड़ा होता है।

जिनका चेहरा कान्तिहीन और पीला होता है और जिनकी त्वचापर रूखापन होता है, ऐसे मनुष्यको भी क्षयरोग अधिक होता है।

अनेक विशेषज्ञोंने यह भी लिखा है कि जिन लोगोंको क्षयरोग अधिक होनेवाला होता है, प्रायः अंग-विकार होते हैं। भिन्न भिन्न विशेषज्ञोंने ऐसे नाना प्रकारके अंग-विकारोंका उल्लेख किया है, जिनका क्षयरोगसे विशेष सम्बन्ध कहा जाता है। परन्तु इस बातका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि अंग-विकारोंका क्षयरोगसे कोई विशेष सम्बन्ध होता है, क्योंकि क्षय-जैसे विश्वव्यापी रोगमें कुछ रोगियोंमें अंग-विकारका पाया जाना स्वाभाविक है। अंग-विकारोंका क्षय-रोगका सम्बन्ध तभी माना जा सकता है, जब यह सिद्ध कर दिया जाय कि क्षय-रहित मनुष्योंकी अपेक्षा क्षयी मनुष्योंमें अंग-विकारकी संख्या अधिक मिलती है, किन्तु अभी तक इस बातका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

स्वयं उपार्जित कारण

यह सब लोग जानते हैं कि जो भूमि ऊसर होती है, उसमें बीज बोनेसे कोई पैदावार नहीं होती; परन्तु बढ़ी भूमिके यदि टुकड़े कर लिये जायँ, तो वह उपजाऊ हो जाती है। इसी प्रकार जब मनुष्यका शरीर हृष्ट पुष्ट होता है, तो उसमें कीटाणु प्रवेश होनेपर भी क्षयरोग नहीं होता; परन्तु जब उस मनुष्यको कोई रोग हो जाता है, तो उसका शरीर निर्बल हो जाता है और उस समय उसको भी क्षय हो जाता है। शरीरको क्षय-ग्रहण करनेके योग्य बनानेमें सब रोगोंका एकसा प्रभाव नहीं होता। निम्न-लिखित रोगोंका क्षयोत्पत्तिसे विशेष सम्बन्ध माना जाता है।

श्वास-मार्गके रोग—इस सम्बन्धमें श्वास-मार्गके रोगोंका नाम सदैव लिया जाता है। यह देखनेमें भी आता है कि फेफड़ोंके पुरातन रोगोंके स्थानपर क्षयरोग कभी-कभी प्रकट हो जाता है। इसके दो कारण हो सकते हैं—(१) सम्भव है कि इन रोगोंके होनेसे फेफड़ोंके पुराने सुप्त क्षयाघात पुनरुद्दीपित हो जाते हैं। (२) इन रोगोंके कारण रोगीके निर्बल हो जानेसे क्षयोत्पादनमें सहायता मिलती है। परन्तु इस बातकी यथेष्ट साक्षी उपलब्ध है कि इन रोगोंका क्षयोत्पादनपर केवल कोई प्रभाव ही नहीं होता, बल्कि इनसे क्षयरोगके प्रति कुछ रोगक्षमता भी उत्पन्न हो जाती है। फुप्फुस-प्रदाह (Pneumonia) के बाद भी क्षयरोग बहुत कम होते देखा गया है।

पार्श्वकलाका प्रदाह (Pleurisy)—फेफड़ोंके रोगोंकी अपेक्षा पार्श्वकलाके प्रदाहका क्षयरोगसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इस प्रदाहके बाद क्षयरोगका प्रायः प्रादुर्भाव होता है। वास्तवमें पार्श्वकलाके प्रदाहको क्षयरोगका प्रवणशील (Predisposing) कारण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस कलाका प्राथमिक प्रदाह तो यथार्थमें क्षयरोगका ही एक रूप होता है। हृदयका वृक्क इत्यादिके रोगमें पार्श्वकलाका जो लक्षण-रूपी गौण प्रदाह होता है, उसका क्षयरोगसे कोई सम्बन्ध नहीं होता।

सर्दी लग जाना—क्रमात्मक अनुभवसे यह विदित होता है कि सर्दी लग जानेके बाद प्राय: क्षयरोग आरम्भ हो जाता है। यह स्वयं प्रकट है कि केवल सर्दीसे क्षयरोग नहीं हो सकता; परन्तु जब इसका ध्यान आता है कि लगभग हरएक मनुष्यके शरीरमें क्षय-कीटाणु विद्यमान होते हैं, तो यह समझमें आ जाता है कि सम्भव है, सर्दी लगनेसे कीटाणुओंके अनुकूल अवस्था हो जाती हो, जिससे वे पुन: जाग्रत हो जाते हैं। अधिकांश क्षयरोगी, जिनमें रोग पार्श्वकलाके प्रदाहके रूपमें आरम्भ होता है, यह स्पष्ट कहते हैं कि सर्दी लगनेसे पूर्व वे बिलकुल अच्छे थे। इसलिए सर्दी लगनेसे क्षयरोगका आरम्भ होना तो निश्चित है, परन्तु अभी तक यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं हुआ है कि सर्दी लगनेसे शरीरमें क्या-क्या परिवर्तन हो जाते हैं, जिनके कारण क्षय आरम्भ हो जाता है।

इस सम्बन्धमें यह बात स्मरण रखने योग्य है कि जब सर्दी लगनेसे क्षयका आरम्भ होता है, तो प्रतिश्याय (जुकाम) के लक्षण उत्पन्न नहीं होते। केवल उपक्रान्त क्षयके खाँसी हरारत इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं।

पुरातन कास रोग—बहुत लोगोंका और कुछ वैद्योंका यह विचार है कि जुकाम, पुरानी खाँसी और श्वास-रोगकी उपेक्षा करनेसे क्षयरोग हो जाता है, परन्तु उनका यह विचार ग़लत है। क्रमात्मक अनुभवसे यह ज्ञात हुआ है कि यह रोग क्षयरोगका प्रवणशील कारण नहीं है। यह अवश्य है कि कुछ लोगोंको बहुत दिनों तक खाँसी आनेके बाद क्षयके अस्तित्वका पता चलता है, परन्तु यथार्थमें उन लोगोंको आरम्भसे ही क्षय था और वही उनकी खाँसीका कारण था, परन्तु उसकी उस समय ठीक-ठीक जाँच नहीं हुई थी।

अन्य संक्रामक रोग—प्राय: यह देखा गया है कि खसरा (measles), कुकरखाँसी इत्यादि संक्रामक रोगोंके बाद क्षयरोग हो जाता है। इन रोगोंसे शरीर निर्बल होनेपर शरीरके अन्तर्गत क्षय-कीटाणु उत्तेजित हो जाते हैं। इस निर्बलताकी दशामें नया संक्रमण भी अधिक सुगमतासे हो जाता है।

सन् १९१७-१८में अमेरिकाकी सेनामें ५९४५ सिपाहियोंको खसरा निकला था, उनमें से २'९१ प्रतिशतको क्षयरोग हो गया था। इन रोगोंके क्षयरोगके प्रवणशील कारण होनेका एक और भी प्रमाण है। जैसा कि 'विशाल-भारत' के पिछले अंकोंमें कहा जा चुका है कि क्षय-संक्रमणसे मनुष्योंमें एक विशेष प्रकारकी अति चेतन्यता और रोगकी क्षमताका प्रादुर्भाव हो जाता है, जिसकी ट्युबर्क्युलिनकी पिचकारी लगानेपर एक विशेष प्रतिक्रिया उत्पन्न होनेसे पहचान होती है। यह देखा गया है कि खसरा रोगमें इस प्रतिक्रियाका अभाव हो जाता है। इससे विदित होता है कि शरीरकी प्रतिरोधशक्ति कम हो गई है।

इनफ्लुएंज़ा—बहुत दिनोंसे यह देखा गया है कि जब यह रोग महामारीके रूपमें आता है, तो क्षयरोगकी मृत्यु-संख्या बढ़ जाती है। इससे विदित होता है कि क्षयरोगके होनेमें इस रोगसे कुछ सहायता मिलती है।

मोतीझरा (मियादी बुखार)—यह ज्वर भी क्षयरोगका एक प्रमुख प्रवणशील कारण माना गया है, क्योंकि बहुतसे क्षयरोगियोंका इस ज्वरसे पीड़ित होना पाया जाता है। डा० चार्ल्स वुडरफ इस विषयका गहन अनुशीलन करनेके बाद इस परिणामपर पहुँचे थे कि मंथ ज्वरका क्षयरोगके प्रवणशील कारणोंमें प्रमुख स्थान होता है!

पुरातन रोग—मधुमेह (Diabtees) और वृक्क पुरातन प्रदाह (Chronic nephritis) से पीड़ित रोगियोंको भी क्षयरोग अधिक होता है। रिकेट्स एक अस्थि-रोग होता है, जो प्राय: बचपनमें होता है और जिसमें बच्चोंकी हड्डी टेढ़ी हो जाती है। इस रोगसे पीड़ित लोगोंको भी क्षयरोग बहुत होता है।

म्यूनिसिपैलिटीमें साम्यवाद

श्रीमती किटी शिवाराव

भूतपूर्व आस्ट्रियन राज्यकी राजधानी वीयनाने इस बातका सफल उदाहरण संसारके सामने रख दिया है कि नगरके प्रबन्धमें साम्यवादके सिद्धान्त कैसे लागू किये जा सकते हैं। वीयनाकी म्यूनिसिपल कौंसिलमें कुल एक सौ बीस सदस्य हैं, जिनमें इस समय अठहत्तर सदस्य साम्यवादी हैं। इस सदस्योंका अपना एक निश्चित कार्यक्रम है। यहाँ यह बतला देना उचित होगा कि साम्यवाद (सोशलिज्म) समिष्टवाद (कम्यूनिज्म) से एकदम भिन्न है। इन दोनों सिद्धान्तोंका अन्तर जितना मध्य यूरोपियन देशोंमें देखनेमें आता है, उतना संसारके और स्थानोंमें नहीं दिखाई देता।
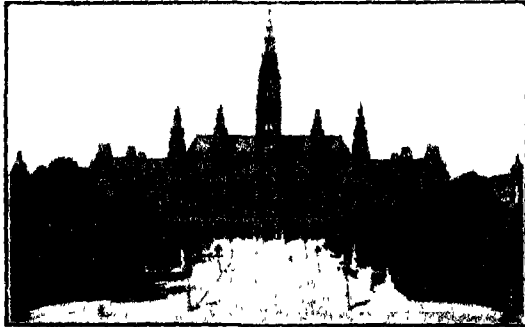
वीयना म्यूनिसिपैलिटीकी इमारत

संसारके इस भागमें साम्यवादने कितनी उन्नति की है, यह इस बातसे प्रत्यक्ष हो जाता है कि गत यूरोपियन महायुद्धसे पहले इसी वीयना म्यूनिसिपैलिटीमें १६५ सदस्योंमें केवल ८ सदस्य साम्यवादी थे, और अब १२० में ७८ हैं! उस समय उसके कर्मचारी किसी ट्रेड-यूनियनमें सम्मिलित नहीं हो सकते थे। ट्रेड-यूनियनके सदस्य होनेसे वे नौकरीसे बरखास्त कर दिये जा सकते थे। युद्धके बाद जब साम्यवादी सदस्योंके हाथमें म्यूनिसिपैलिटीका शासन आया, तो उन्हें एक बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा। म्यूनिसिपैलिटीके खजानेमें उस समय चूहे डंड पेलते थे, इसलिए पहले उन्हें धन एकत्रित करनेकी चेष्टा करनी पड़ी। इसके लिए उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि धनी आदमियोंपर उनके धनके अनुपातमें भारी टैक्स लगाया
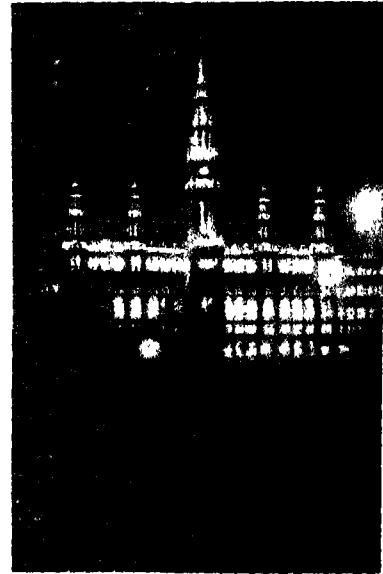
प्रजातन्त्र दिवसके उपलक्षमें म्यूनिसिपैलिटीकी इमारतमें रोशनी

जाय। ऐश-आरामकी तमाम चीजों—जैसे तमाशे और दावत, होटलोंमें भोजन करना, मोटर, घोड़े, कुत्ते आदि—पर टैक्स लगाया गया। इसके अलावा जो आदमी दोसे अधिक नौकर रखता है, उससे एक 'नौकर-टैक्स' भी वसूल किया जाता है।

तमाशोंमें केवल पब्लिक खेल-तमाशे ही नहीं हैं, बल्कि प्राइवेट लोगोंके घरोंके नाच और जल्से भी शामिल हैं। म्यूनिसिपैलिटीके शिक्षा-विभाग तथा स्वास्थ्य-

म्यूनिसिपैलिटीके एक मुहल्लेके शिशु मंगल-केन्द्रका आफिस
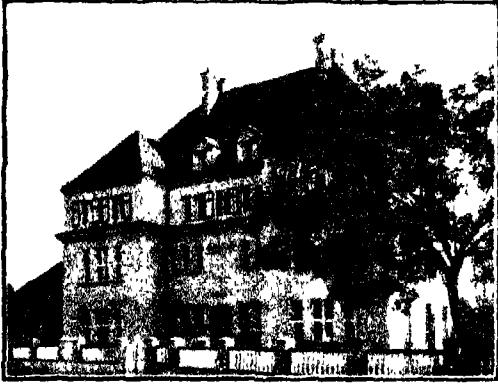
विभागोंमें सहायता देनेके लिए उन समस्त लोगोंसे जिनके, यहाँ अनेक कर्मचारी रहा करते हैं, 'वेलफेयर टैक्स' नामक एक विशेष टैक्स लिया जाता है। केवल इसी टैक्ससे
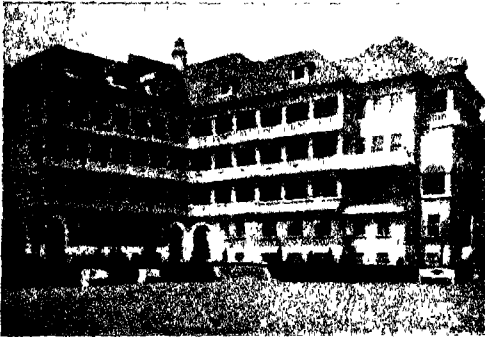
वीयनामें बच्चोंका स्वागत-भवन

म्यूनिसिपलिटीके खज़ानेमें कोई बीस लाख पौंड (प्रायः तीन करोड़ रुपयेके लगभग) आता है। घरोंपर जो टैक्स था, उसकी भी वृद्धि की गई। यह वृद्धि ग़रीब और मध्य श्रेणीके लोगोंपर दो प्रति-सैकड़ा हुई और धनिकोंपर छत्तीस प्रति-सैकड़ा। धनियोंके लिए कमरोंकी संख्या भी निश्चित कर दी गई है। वे लोग अधिकसे अधिक उतने कमरे व्यवहार कर सकते हैं। उनके मकानमें यदि अतिरिक्त कमरे होंगे, तो वे म्यूनिसिपैलिटीके हुक्मसे किरायेपर दे दिये जाते हैं।
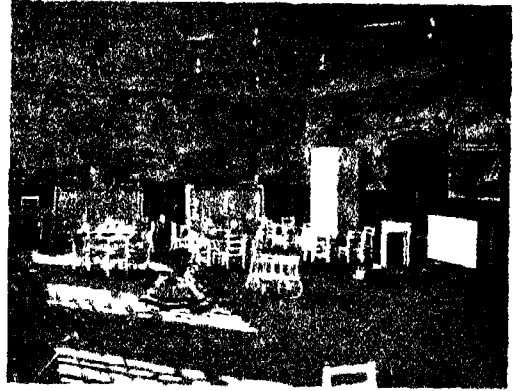
वीयनाकी म्यूनिसिपलिटीके 'शिशु-गृह' का एक भाग

भारतवर्षमें म्युनिसिपल शासनकी कार्रवाइयोंका क्षेत्र बहुत संकुचित है, इसलिए यहाँकी म्युनिसिपलिटियोंको बहुतसी ऐसी चीज़ोंका नियन्त्रण अपने हाथमें लेना, जो
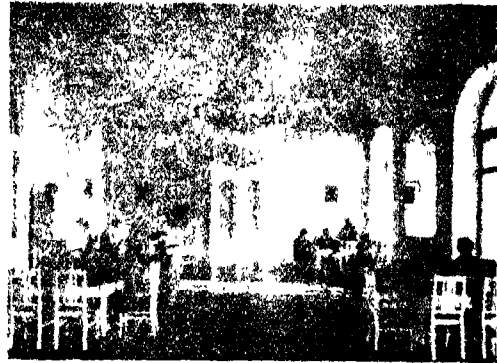
एक पुराने राजप्रासादमें बालकोंका भवन

साधारणतः प्राइवेट उद्योग-धन्धोंमें शुमार की जाती हैं, बड़ा मुश्किल और कष्ट-साध्य काम समझा जाता है। वीयनामें, पाश्चात्य देशोंकी अन्य म्यूनिसिपैलिटियोंके समान, बिजली, गैस, पानीके पम्प, ट्रामवे आदिका प्रबन्ध म्यूनिसिपैलिटीके हाथमें है। वीयनाकी म्यूनिसिपैलिटीके हाथमें बीमेका भी बड़ा भारी कारबार है। सब मिलाकर कोई साठ व्यापारी कारबारोंमें म्यूनिसिपैलिटीका प्रधान अधिकार है। यह बतलाना व्यर्थ है कि इन सबका लाभ

लड़के रसायन सीख रहे हैं

बच्चोंको व्यायाम और जमनास्टिक सिखानेका भवन

म्यूनिसिपैलिटीके खज़ानेकी वृद्धि करता है। म्यूनिसिपैलिटी मज़दूरोंकी आवश्यकताओंका विशेष ध्यान रखती है। उदाहरणके लिए उसने उनके लिए ट्रामकी खास रियायत कर रखी है।

म्यूनिसिपैलिटीके अधिकारमें २०,००० कर्मचारी और ६,००० शिक्षक हैं। म्यूनिसिपैलिटीमें ४८ घंटेका सप्ताह

प्राइमरी स्कूलके बालकोंको दांत साफ रखनेकी शिक्षा

वीयनाका उपवन भवन नं० ११

काममें लाया जाता है। कर्मचारियोंको ट्रेड-यूनियन बनानेकी केवल आज्ञा ही नहीं है, बल्कि इन ट्रेड-यूनियनोंके पदाधिकारी अपनी नौकरियोंकी दशाको बनाने-बिगाड़नेमें बड़ा प्रभाव रखते हैं। एक ही कामके लिए पुरुष और स्त्रियोंको बराबर वेतन मिलता है। भारतवर्षमें उच्च अफसरों और हाथसे मेहनत-मजदूरी करनेवालोंके वेतनोंमें जो महान अन्तर है, वह वहाँ नहीं है। दर असल वीयनामें दिमागी काम करनेवालोंकी अपेक्षा हाथसे मजदूरी करनेवालोंको अधिक वेतन मिलना कोई विचित्र बात नहीं है। म्यूनिसिपैलिटीके नौकरोंको बुढ़ापेमें पेन्शन मिलनेकी भी एक बड़ी उदार स्कीम चलाई गई है। पेन्शन साधारण वेतनकी तीन-चौथाईसे लेकर ९/१० तक मिलती है।

वीयना नगरके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें बहुत ध्यान देता है। उसे ऐसा करना बहुत ज़रूरी था, क्योंकि लड़ाईके बाद जब

वीयनाका म्यूनिसिपल भवन नं० १६

भी मिल सकती है। वीयनामें उत्पन्न होनेवाले बच्चोंमें आधेके लगभग म्यूनिसिपलिटीके मातृ-मन्दिरोंमें उत्पन्न होते हैं। फिर बच्चा उत्पन्न होनेके बाद प्रत्येक माताको बच्चेके लिए आवश्यक कपड़ोंका एक सेट मिलता है। म्यूनिसिपैलिटीने ही स्वास्थ्य निरीक्षकों, डाक्टरों और नर्सोंका एक बड़ा भारी जाल-सा बिछा रखा है। स्कूलके विद्यार्थियोंकी डाक्टरी परीक्षाका बड़ा अच्छा इन्तजाम है, और वह बड़ी विधिपूर्वक की जाती है। अनाथों और छोटे बच्चोंके पालनके लिए शालाएं बनी हैं। वीयनामें इस प्रकारके
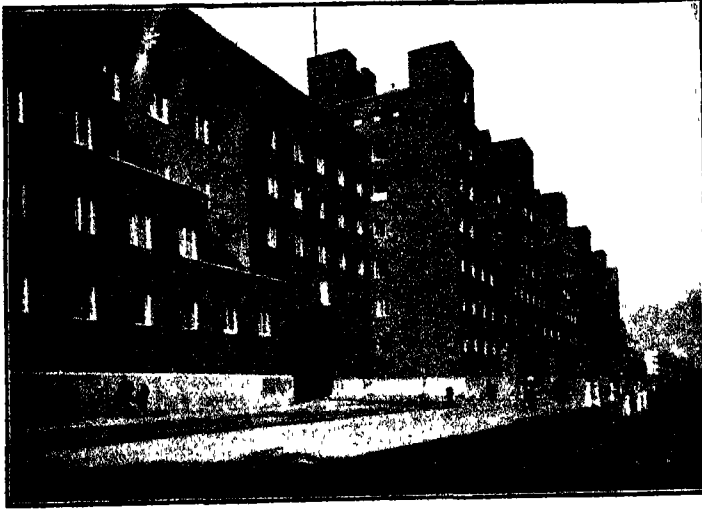
साम्यवादियोंके हाथमें म्यूनिसिपैलिटी आई, उस समय युद्धके पहलेकी अपेक्षा साधारण मृत्यु-संख्या ६० प्रति सैकड़ा बढ़ी हुई थी और बच्चोंकी मृत्यु-संख्या १०० प्रति सैकड़ेसे भी अधिक थी! आजकल वीयनामें प्रत्येक गर्भिणी माताको डाक्टरी मदद मिलती है। यह सहायता बच्चा उत्पन्न होनेके पहले ही से आरम्भ हो जाती है। म्यूनिसिपैलिटीका यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक गर्भिणी माताको राज्यसे सहायता पानेका सबसे पहला अधिकार है; क्योंकि वह देशके भावी नागरिकोंकी जन्मदात्री है। बच्चा उत्पन्न होनेके पहलेसे ही गर्भिणी माताएं डाक्टरोंकी देख-रेखमें रखी जाती हैं, उनकी बराबर परीक्षा होती रहती है, और इस बातका ध्यान रखा जाता है कि सन्तान उत्पन्न होते समय सब प्रकारके रोगोंसे बची रहें। इसके अलावा बच्चा उत्पन्न होनेके बाद माताको चार सप्ताह तक ६ शिलिंग प्रति-सप्ताह आर्थिक सहायता

१२५ शिशु-गृह हैं, जिनमें सन् १९२८ में ११,९७५ बच्चे रहते थे। स्कूलके पन्द्रह हज़ार बालकोंको दोपहरका भोजन मुफ्त दिया जाता है, जिसके लिए ६० भोजनालय बने हुए हैं। गरीब बालकोंको गर्मीकी छुट्टियाँ बाहर आनन्दसे काटनेके लिए भी प्रबन्ध किया गया है। सन् १९२८ में २६,४९५
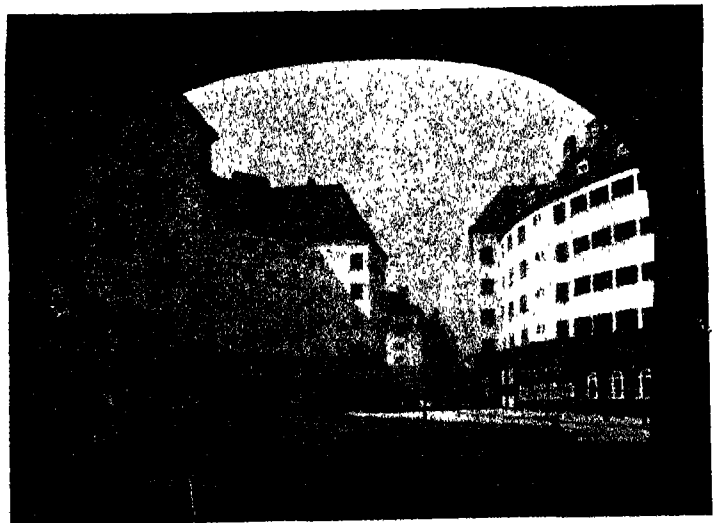
वीयनाका म्यूनिसिपल भवन नं० १२

वीयनाके उपकूलका उपवन-भवन नं० २१

समस्याका हल करना है। मौजूदा प्रोग्रामके अनुसार वह सन १९३२ तक ६०,००० नये वासस्थान बना देगी। इनके लिए जो किराया लिया जाता है, वह युद्धके पूर्वके किरायेका आठवाँ हिस्सा-मात्र है। घर द्वार-हीन निराश्रय व्यक्तियोंके लिए म्यूनिसिपैलिटीने अलग इमारतें बना रखी हैं, जिनमें इस प्रकारके लोगोंको, कुछ निश्चित काम कर देनेके बाद, भोजन और रहनेका स्थान मुफ्त मिलता है। इसी प्रकार नौकरी छुटे हुए बेकार नौकरोंके रहनेके लिए भी दो भवन बने हैं।

बालक बालिकाओंमें म्यूनिसिपैलिटीके खर्चपर अपनी गर्मीकी छुट्टियाँ आनन्दसे बिताई थीं। इसके अलावा बच्चोंके स्वास्थ्य और आमोद-प्रमोदके लिए म्यूनिसिपैलिटीने ३१ खेल-कूदके मैदान और १८ नि:शुल्क हम्मामखाने भी बना रखे हैं। प्रौढ़ोंकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिए भी विशेष ध्यान दिया जाता है। दाँतके इलाजके लिए ग्यारह दवाखाने खोल रखे गये हैं और आँखोंके इलाजके लिए नेत्र-चिकित्सालय बनाया जा रहा है। वीयनामें तपेदिकका ज़ोर अधिक था, इसलिए उसे रोकनेके लिए बहुतसे उपाय किये जा रहे हैं। वीयना-म्यूनिसिपैलिटी केवल जनताके स्वास्थ्यपर तीन करोड़ रुपयेसे अधिक व्यय करती है। यह व्यय युद्धके पूर्व शासनसे तीन गुना अधिक है।

शिक्षाके ऊपर भी वह इतना ही व्यय करती है। यह युद्धके पूर्वके खर्चेका दुगना है। यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि म्यूनिसिपैलिटीने तीस व्यापारिक स्कूल खोल रखे हैं। इसके साथ नवसिखियोंको काम सिखानेके लिए स्कूल अलग हैं, मगर साम्यवादियोंका सबसे बड़ा काम मकानोंकी

वीयनाके उपकूलके उपवनका एक दृश्य

यहाँ सड़कोंकी सफाईका विस्तृत वृत्तान्त बताना सम्भव नहीं। इस कामके लिए सात मशीनें हैं। प्रत्येक मशीन सत्तर आदमियोंका काम करती है, और वे शहरकी ४८ मील सड़कोंकी सफाई कर देती हैं। जो लोग अपना शव जलाना पसन्द करते हैं, उनके लिए म्यूनिसिपैलिटीने एक श्मशान भी बनवा रखा है। म्यूनिसिपैलिटीके अपने भोजनालय, साग-तरकारीके बगीचे, धोबीकी दुकानें आदि हैं।

भारतके प्राणाचार्य

कविराज रत्नाकर

यों तो भारतके उदीयमान विद्वत्समाजने भारतीय जर्जरित साहित्यको संजीवन रसायनके दो-चार घूँट पिला तो अवश्य दिये हैं, परन्तु फिर भी अभी तक उसके कलेवरके अनेक भाग ऐसे हैं, जिनपर उसका कुछ प्रभाव विदित ही नहीं होता। और हो भी कैसे, सहस्रों वर्षोंकी व्याधिको इने-गिने इन ५० वर्षोंकी चिकित्साका प्रभाव छूमन्तर तो कर ही नहीं सकता, रसायन-प्रयोगको भी अवधिकी प्रतीक्षा करनी ही पड़ती है।

प्राय: इतिहास भारतीय साहित्यकी प्रधान दुर्बलता है। उसपर हमारी अवहेलनाओंकी इतनी धूल जम गई है कि भारतकी देदीप्यमान प्राचीन सभ्यता और संस्कृतिकी किरणें आज ध्यानसे देखनेपर भी मुश्किलसे अनुमित होती हैं। अनेक विज्ञ महारथियोंके साथ-साथ भारतके प्राणाचार्य भी उसी धूलिके नीचे दबे पड़े हैं। अनेक आचार्य ढूँढ़ निकाले गये, परन्तु बेचारे प्राणाचार्योंपर किसीकी नज़र अब तक न पड़ी। क्या हम यह कहें कि या तो हमें प्राणोंसे प्यार ही नहीं है या हमारी प्राण-शक्ति ही हममें से जाती रही है? यदि हमें प्राणोंसे सच्चा प्यार होता, तो क्या प्राणाचार्योंकी खोजमें हम दीवाने न हो जाते? हम वह इतिहास खोज ही निकालते, जिसमें हमारे प्राणाचार्य पौरस्त्य आयुर्वेदका आविष्कार कर रहे हैं; पर मैं तो जानता हूँ कि इस ओर हमने अभी तक थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया। मैं यह कहकर आयुर्वेद-सम्मेलनकी मूल्यवान् सेवाओंको भुलाना नहीं चाहता; परन्तु यह अवश्य है कि इस साधनाके लिए जिस भगीरथ प्रयत्नकी अपेक्षा थी, वह अभी तक हम नहीं कर सके हैं। यदि मेरे कथनमें सत्यता होती, तो संस्कृत-साहित्यके इतिहासकार महामति मैकडानल (Mackdonell) को यह कभी न लिखना पड़ता—"History is the one weak spot in Indian literature" और हम आज भी इस बातसे इकार नहीं कर सकते।

बचे खुचे भारतीय साहित्यमें ऋग्वेद ही एक ऐसी पुस्तक है, जिसकी प्राचीनताके सामने विश्वके समस्त साहित्योंने सिर झुकाया है। ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें तो भारतके लिए ऋग्वेद बड़े महत्वकी चीज़ है। उसने भारतके प्राचीन इतिहास-निर्माणमें एक बड़ी सहायता ही नहीं दी, किन्तु ऋग्वेद प्राचीन इतिहासका सर्वस्व है। ऋग्वेदके कालके विषयमें ऐतिहासिकोंका यद्यपि एक मत नहीं है, तथापि विश्वके समस्त साहित्यकी तुलनामें ऋग्वेदके प्राचीनतम होनेमें किसीको आपत्ति नहीं है। ऋग्वेदके अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध है कि ईसासे हजारों वर्ष पूर्व जब भी ऋग्वेदका आविर्भाव हुआ होगा, उस समय भारतके प्राणाचार्योंका आविष्कार सर्वसाधारणमें प्रचलित हो चुका था। तत्कालीन बड़े-बड़े प्राणाचार्य समाजके स्वास्थ्य और प्राण-शक्तिका परिपालन दत्तचित्त हो किया करते थे। वैद्य, औषधि, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदिका ऋग्वेदमें अनेक स्थलोंपर वर्णन है; परन्तु उस समयके प्राणाचार्योंका नाम निर्देशपूर्वक परिगणित कर सकना तो आज असम्भव है।

वर्तमान समयमें उपलब्ध आयुर्वेदिक साहित्य द्वारा भारतके प्राणाचार्योंका आद्योपान्त ठीक-ठीक कालक्रमानुसार इतिहास नहीं बताया जा सकता। हाँ, यह अवश्य है कि उनकी प्राचीनता, अर्वाचीनता तथा यथाशक्ति काल-विभागका स्थिरीकरण किया जा सकता है। प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें प्राणाचार्योंका जो इतिहास है, वह देव श्रेणीका है। उसमें मानवीय प्राणाचार्य नहीं बिठाये जा सकते। चरकके अनुसार उसका क्रम यह है—

> "ब्रह्मणाहि यथा प्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापति:।
> जग्राहनिखिलेनादावश्विनौतु पुनस्ततः॥

अश्विभ्यां भगवान् शक्रः प्रतिपेदे ह केवलम् ।
ऋषि प्रोक्तोभरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत् ॥"
(सूत्रस्थान अ० १।४-५)

आयगुरु प्राणाचार्य ब्रह्मा हुए। उन्होंने दक्ष प्रजापतिको आयुर्वेदका आमूल चूल उपदेश दिया। दक्षने ज्योंका त्यों वह उपदेश अश्विनीकुमारोंको दे डाला। अश्विनी कुमारोंसे वह ब्राह्म धरोहर भगवान इन्द्र ले आये और इन्द्र भगवानसे ऋषि भारद्वाज। इसके बाद वह धरोहर स्वर्गसे ज़मीनपर उतरी, और—

"ऋषयश्च भरद्वाजाज्जगृहुस्तं प्रजाहितम् ।
दीर्घमायुश्चिकीर्षन्तो वेदं वर्धनमायुषः ॥
अथ मैत्री परः पुण्यमायुर्वेदं पुनर्वसुः ।
शिष्येभ्योदत्तवान्षड्भ्यः सर्वभूतानुकम्पया ॥
बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं बिना ।
तन्त्रस्य कर्ता प्रथममग्निवेशो यतोऽभवत् ॥"
(सू० अ० १।२६,२६,३१)

भरद्वाज ऋषिसे अनेक ऋषि-मुनियोंने दीर्घजीवी होनेकी इच्छासे उस प्राणिश्रेयस्करी थातीको जा बटाया। उन्हीं ऋषियोंमें स्वनामधन्य पुनर्वसु भगवानने अपने छै शिष्योंको वह प्रसाद बाँटा। उन शिष्योंमें अग्निवेशकी बुद्धि सबसे तेज़ थी, उन्होंने 'अग्निवेशसंहिता' लिख डाली। इस प्रकार वह स्वर्गीय ब्राह्म धरोहर स्वर्गसे प्राणाचार्य-परम्परा द्वारा पृथ्वीपर चली आई। यहींसे मानव-सृष्टिके प्राणाचार्योंका इतिहास प्रारम्भ होता है।

वर्तमान समयमें उपलब्ध आयुर्वेदिक साहित्य द्वारा भारतके प्राणाचार्योंका ठीक-ठीक समय और जीवनी लिखना प्रायः असम्भव-सा ही है। पहले किसी आचार्यने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया, और यदि कुछ लिखा भी तो इतना अपर्याप्त कि उससे भारतीय प्राणाचार्योंके इतिवृत्त-निर्माणमें कोई बड़ी सहायता नहीं मिल सकती। हाँ, भारतके तथा अन्यान्य देशोंके उपलब्ध साहित्यमें विभिन्न ग्रन्थों द्वारा यह सुनिश्चित है कि सबसे प्रथम प्राणाचार्योंका आविर्भाव भारतमें ही हुआ था। चिकित्सा-शास्त्रका महत्त्वपूर्ण मर्म उन्होंने ही विश्वको सिखाया। भारतीय प्राणाचार्योंके मकतबमें बैठनेका सबसे प्रथम सौभाग्य यूनानियोंको मिला था।

अब तक उपलब्ध आयुर्वेदिक साहित्यमें सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ 'चरकसंहिता' है। 'चरकसंहिता'के वास्तविक कर्ता तो महर्षि अग्निवेश हैं। कालान्तरमें जब 'अग्निवेशसंहिता' की बहुत दुरवस्था हो गई, तो महर्षि चरकने उसका प्रतिसंस्कार किया और संहिताको अपने ही नामसे प्रसिद्ध किया। उसी समयसे पूर्वोक्त 'अग्निवेशसंहिता'को 'चरकसंहिता' नाम दिया गया। 'चरकसंहिता'के प्रत्येक अध्यायके अन्तमें लिखे हुए अध्यायान्त शब्दोंसे यही बात सूचित होती है—'इत्यग्निवेशकृते चरकप्रतिसंस्कृते तन्त्रे'—इत्यादि।

अनेक हिन्दुओंका कहना है कि चरक महर्षि शेषके अवतार थे। उन्होंने एक बार मानव-देह धारणकर भूलोकका भ्रमण किया था। यहाँ आकर देखा, तो रोगोंसे पीड़ित जन-समुदायमें त्राहि-त्राहि मची हुई थी। उनका दिल दयासे पसीज उठा, और वे जनताकी रोग-निवृत्तिके लिए प्रयत्नशील हुए। विचरण करते हुए शेषजी इस प्रकार एक प्राणाचार्य बन गये, अतएव उनका नाम भी 'चरक' हो गया। चरक महर्षिके सम्बन्धमें अनेक विवादास्पद उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। बहुतोंका कथन है कि 'योग-दर्शन' और 'महाभाष्य' के कर्ता महर्षि पतंजलि और 'चरकसंहिता' के उन्नायक महर्षि चरक एक ही व्यक्ति थे। चरक चतुरानन चक्रपाणि महाराज इस सिद्धान्तके प्रमुख प्रतिपादकोंमें से एक हैं। उन्होंने अपनी टीकाके प्रारम्भमें ही लिखा है—

"पातञ्जल, महाभाष्य, चरकप्रतिसंस्कृतैः ।
मनोवाक्कायदोषाणां, हर्त्रेऽहि पतये नमः ।"

यह एक विश्वास है, परन्तु इतिहासकी कसौटीपर भी वह ठीक और खरा उतर जायगा, इसमें सन्देह है।

प्रायः भारतके किसी प्राणाचार्यका निर्विवाद काल-निर्णय इतिहास अब तक नहीं कर सका है। अनेक ऐतिहासिकोंके

अनुसार 'चरकसंहिता' का काल ईसासे दो हज़ार वर्ष पूर्व है, परन्तु इसके प्रतिकूल काल-निर्णयमें भी अनेक प्रबल युक्तियाँ दी जा सकती हैं। हमने प्राय: आगे भी प्राणाचार्योंका जो समय लिखा है, वह बहुमत ही कहा जा सकता है, निर्विवाद सिद्धान्त नहीं।

भारतीय प्राणाचार्योंमें दूसरा स्थान सुश्रुतका है। इनके गुरु थे काशिराज दिवोदास, जिनका दूसरा नाम महर्षि धन्वन्तरि है। महर्षि धन्वन्तरिके अनेक शिष्य और थे; परन्तु उनमें प्रमुख सुश्रुत ही थे। उन्होंने अपने नामसे ही 'सुश्रुत संहिता' का निर्माण किया। शल्य-चिकित्सा आपका मुख्य विषय था। 'भावप्रकाश' कर्ता पं० भावमिश्रने एक स्थानपर लिखा है कि महर्षि सुश्रुत महर्षि विश्वामित्रके पुत्र थे। उनके जीवन-वृत्तान्तके सम्बन्धमें प्राय: कोई विशेष वर्णन नहीं मिलता। प्रोफेसर मैकडोनलके अनुसार महर्षि सुश्रुतका समय चार सौ ईस्वीसे पहले ही है, जो इतिहासका बौद्ध युग कहा जा सकता है।

बौद्ध युगमें आयुर्वेदके लिए बहुत कार्य हुआ, इसीलिए अनेक ऐतिहासिकोंने इसे 'आयुर्वेदीय युग' कहा है। यद्यपि इस समय आयुर्वेदके वनस्पतियोंसे सम्बन्धित विभागमें अच्छी उन्नति हुई, परन्तु रासायनिक विभाग अछूतासा ही बना रहा। लोगोंका मत है कि वाग्भटका जन्म भी इसी युगमें हुआ था। बहुतोंका तो यह भी मत है कि वाग्भट स्वयं बौद्ध थे, जैसा उनके 'अष्टांग-हृदय' के मंगलात्मक श्लोकोंसे पता लगा है। परन्तु कुछ एक विद्वानोंका कथन है कि जहाँ वाग्भटके अनेक ग्रन्थोंमें बौद्ध सिद्धान्त झलकते हैं, वहाँ उनके लिखे गणेशस्तवनका आभास भी मिलता है। एक जगह तो उन्होंने यहाँ तक लिखा है—"न चैत्यं गच्छेत्।" इससे तो उन्होंने बौद्धोंसे साफ अपना असहयोग दिखा दिया, क्योंकि 'चैत्य' बौद्धोंके पूजा मन्दिरका नाम है। हम तो यह समझते हैं कि वाग्भट बौद्ध तो न थे, पर बौद्ध सिद्धान्तोंसे प्रभावित अवश्य हुए होंगे। वाग्भटके लिखे अनेक ग्रन्थ आज भी हमें उपलब्ध हैं। उनके लेखकी खास विशेषता यह है कि जो कुछ वह कहते हैं, वह संक्षेपमें और विशदरूपसे। यह विशेषता 'अष्टांग-हृदय में कूट-कूटकर भरी है। उनके उपलब्ध ग्रन्थ 'अष्टांग-हृदय', 'अष्टांग-संग्रह', 'कविकल्पतरु' और रसरत्न-समुच्चय हैं। 'अष्टांग-संग्रह-संहिता' में वाग्भटने अपने जन्मादिके बारेमें कुछ स्वयं लिखा है—

"भिषग्वरो वाग्भट इत्यभून्मेपितामहोनामधरोऽस्मियस्य।
सुतोऽभवत्तस्य च सिंहगुप्तस्तस्याप्यहं सिन्धुषु जातजन्मा।"

वाग्भटके पितामहका नाम भी वाग्भट ही था और पिताका नाम सिंहगुप्त। उनका जन्म सिन्धमें हुआ था।

कुछ लोगोंका कथन है कि वाग्भट और सुश्रुत एक ही व्यक्ति थे। सम्भव है, हों, परन्तु वाग्भट और सुश्रुत संहिताकी लेखनशैलीका भेद तो यह नहीं कहता। वह सुश्रुत और वाग्भटको अलग-अलग ही रखना चाहता है। इसके अतिरिक्त कुछ लोग अत्रि (जो एक पुराने प्राणाचार्य थे), सुश्रुत और वाग्भटको एक ही विभूति कहना चाहते हैं—

'अत्रि: कृतयुगे चैव, द्वापरे सुश्रुतो मत:।
कलौ वाग्भट नामाच......।"

अर्थात्—एक ही माया सतयुगमें अत्रि, द्वापरमें सुश्रुत और कलियुगमें वाग्भटका रूप लेकर अवतरित हुई है। भगवान जाने, हुई होगी। हम तो यह जानते हैं कि तीनोंके काल, कृति और व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न हैं। ऐतिहासिकोंके अनुसार चरक तक पहला और ईसाके ५०० वर्ष पूर्वसे ६०० वर्ष बाद तक यह दूसरा आयुर्वेदीय युग समाप्त होता है।

इसके अनन्तर आयुर्वेदमें दूसरे प्रकारका युग प्रारम्भ होता है। यह काल ६०० से १४०० वर्ष विक्रमीय तक है। इस युगका नाम 'तान्त्रिक युग' रखा जाता है। रासायनिक अभ्युत्थानके लिए यह युग उल्लेखनीय है। कहते हैं कि इसी तान्त्रिक सम्प्रदायके लोगोंने मिलकर अथर्ववेदकी रचना की थी। वही तन्त्र-वेद आज भी अथर्वके नामसे उपलब्ध होता है। हम समझते हैं कि श्रीमद्भगवद्गोविन्दपादाचार्य कृत 'रसहृदय-तन्त्र', ज्ञानचन्द्र कृत 'रसकौमुदी', शिवराम योगीन्द्र-विरचित 'पारदयोगशास्त्र' आदि अनेकों ग्रन्थ इसी

युगमें अवतरित प्राणाचार्योंकी धरोहर हैं। इसी युगमें बने 'रुद्रयामल' नामक ग्रन्थमें आयुर्वेदके रासायनिक विषयका 'रसायनी विद्या' कहकर अच्छा वर्णन किया गया है। कहते हैं कि यह तान्त्रिक सम्प्रदाय पीछे वाममार्गमें परिणित हुआ।

धातुओं तथा अनेक क्षार आदिका वर्णन सुश्रुत तथा उससे भी पहले बनी 'चरकसंहिता'में विद्यमान है, परन्तु वहाँके वर्णनसे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय रसायनी विद्याका प्रचुर प्रचार न था। विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दिके लगभग इस विद्याका जितना प्राबल्य हुआ, उतना कभी न हुआ था।

अन्य विद्वानोंके होते हुए भी 'रसायनी विद्या' के सबसे उद्भट पंडित नागार्जुन हुए। उनका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दिके लगभग है। ऐतिहासिकोंने लिखा है कि वे ब्राह्मण थे, पीछे बौद्ध हो गये। उन्होंने ही तिर्यक्पातन-यन्त्र (भभका) का आविष्कार किया था। उसीके अनुसार ही ऊर्ध्व और अधःपातन यन्त्रोंका भी प्रचार हुआ। उन्होंने धातुमारण आदिकी अनेक विधियोंका भी नवीन आविष्कार किया था। उनका नाम आयुर्वेदमें अपनी विशेषताके लिए अमर रहेगा।

नागार्जुनके पश्चात् वृन्दका समय आता है। वृन्दने अपना चिकित्सा-ग्रन्थ 'माधव-निदान' के अनुसार लिखा था, इससे यह स्पष्ट है कि वे माधवके पश्चात् हुए। इतिहासकारोंके अनुसार माधव या माधवाचार्य सुप्रसिद्ध वेद-भाष्यकार सायणाचार्यके भाई थे। वे विजयनगरके महाराजके यहाँ अमात्य पदपर कार्य करते थे। उनका समय अबसे प्रायः नौ सौ वर्ष पूर्व है। अतएव वृन्दका समय अनुमानतः अबसे सात या आठ सौ वर्ष पूर्व होगा। बहुतोंके मतसे माधवको अबसे एक हजार वर्ष हो चुके हैं। उनके अनुसार वृन्दका समय आठ या नौ सौ वर्ष पूर्व कहना चाहिए। वृन्दके लिखित ग्रन्थका नाम 'सिद्धयोग' है। ताम्रपर्पटी, रसपर्पटी, लौहमत्स्य एवं अनेकों अंजन आदि अद्वितीय प्रयोगोंके लिए उनका नाम और काम सदा स्मरणीय रहेगा।

वृन्दके अनन्तर विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिमें महामना [illegible] आविर्भाव हुआ। [illegible] 'चक्रदत्त' नामक सुप्रसिद्ध चिकित्सा-ग्रन्थ लिखा। उनका दूसरा कार्य 'चरक-संहिता'की टीका है। यद्यपि चक्रपाणिसे पूर्व अनेक पंडितोंने चरकपर टीकाएँ लिखी थीं, जो अब सुलभ नहीं हैं; परन्तु प्राप्य टीकाओंमें भी श्रीमच्चक्रपाणिकी 'आयुर्वेद-दीपिका' टीकासे बढ़कर दूसरी टीका नहीं निकली। इससे पहले हुई चरककी अनेक टीकाओंका वर्णन स्वयं चक्रपाणिने चरकके सिद्धिस्थानमें किया है—

''भट्टार हरिश्चन्द्रेण चतसत्सन्नमयुक्तयः'''व्याहृताः।''

(चरक, सिद्धि० अ० १०, ८०-८४)

''बहूनिचात्रव्याख्यानानि टीकाकृतामंगिरि सैन्धव-जेज्जटेश्वरसेनादीनां सन्ति।'' (चरक, सिद्धि० अ० १०, २०)

इससे स्पष्ट है कि भट्टार हरिश्चन्द्र, अंगिरि, सैन्धव, जेज्जट, ईश्वरसेन आदि प्राणाचार्य चक्रपाणिसे प्राचीन आचार्य हैं, जिन्होंने भारतीय आयुर्वेदके लिए चरक आदि आकर ग्रन्थोंपर टीका आदि लिखकर वर्णनातीत कार्य किया होगा, परन्तु हमारे दुर्भाग्यसे वह आज उपलब्ध नहीं होता। हाँ, ईसाकी लगभग द्वितीय शताब्दिमें एक प्रकाण्ड आचार्य श्री दृढ़बलाचार्य और हुए हैं। उन्होंने अपने समयमें 'चरक-संहिता'की दुर्दशा देखकर एक बार फिर उसका प्रति-संस्कार किया था। खैर, जो हो, चरक-चतुरानन श्रीमच्चक्र-पाणिने चरकपर आजकल प्राप्त हो सकने योग्य अद्वितीय टीका लिखी। किसी नयनपाल नामक राजाके यहाँ आप लब्धप्रतिष्ठ राजवैद्य थे। किसी-किसी ऐतिहासिकने चक्रपाणिका समय ईसाकी दसवीं शताब्दि माना है।

बहुतसे और भी प्राणाचार्योंका वर्णन करना शेष रह जाता है। 'शारंगधरसंहिता' के कर्ता शारंगधर, 'रस-गंगाधर'के कर्ता गंगाधर, 'भावप्रकाश'के कर्ता भावमिश्र, 'अनंगरंग' के कर्ता कल्याणमल्ल, 'चक्रदत्तकी तात्पर्य चन्द्रिका' नामक टीकाके लेखक शिवदाससेन, 'रसेन्द्रसार-संग्रह' के कर्ता गोपालकृष्ण भट्ट, 'कन्दर्प चूड़ामणि' के कर्ता वीरभद्र आदि अनेकों प्राणाचार्य हैं, जो इतिहासके अभावसे आज [illegible] परन्तु फिर भी [illegible]

और उदासीन ही बैठे हैं ! आयुर्वेदके प्राचीनतम कालमें दो प्राणाचार्योंका उल्लेख करना और शेष है ; प्रथम रावण और द्वितीय सुषेण। रावणने नाड़ी-विज्ञानके सम्बन्धमें 'नाड़ी-परीक्षा' जैसा अपने ढंगका अद्वितीय ग्रन्थ लिखा है, परन्तु रावणके सम्बन्धमें अनेक ऐतिहासिक आपत्तियाँ हैं। अनेकों महानुभावोंका कथन है कि 'नाड़ी-परीक्षा' के कर्ता रामके प्रतिद्वन्द्वी रावणको ही मानना चाहिए, परन्तु दूसरोंके मतसे उस रावणके अतिरिक्त कोई और ही रावण 'नाड़ी-परीक्षा' का कर्ता है। सुषेण वैद्यने 'आयुर्वेद-सुषेणसंहिता' नामक बड़ा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। परन्तु दोनोंका समय-निर्णय कर सकना हमारे वृद्ध इतिहासके जीर्ण-शीर्ण कलेवरकी बिसातके बाहर है। हाँ, बहुत ही नवीन ग्रन्थोंमें श्रीकृष्णराम-कृत 'सिद्ध भेषजमणिमाला' को नहीं भुलाया जा सकता। वे जयपुर-महाराजके यहाँ राजवैद्य थे। उनकी लेखन-शैली सरस, सरल और रोचक है।

अपने प्राणाचार्यों द्वारा भारतके किये गये उपकारोंसे विश्व कभी उऋण नहीं हो सकता। अनेक विद्वानोंका मत है कि भारतीय आयुर्वेदपर ग्रीक लोगोंने पर्याप्त प्रभाव डाला, परन्तु सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक आर० सी० दत्त (R. C. Dutta) के अनुसार ग्रीक लोग खुद इस बातका दावा नहीं करते। मैक्डोनलने भी साफ लिखा है कि हम इस विषयमें कोई निश्चित सम्मति नहीं दे सकते—

"The question as to whether Indian Medical Science in its earlier period was affected by that of the Greeks cannot yet be answered with certainty."

(History of Sanskit Lit., page 426)

हाँ, भारतीय आयुर्वेदका विश्व-व्यापी उपकार तो आज भी अपने-आपको पुष्ट करनेके लिए अनेकों प्रभाव रखता है। ईसाकी आठवीं सदीमें भारतने अरबको आयुर्वेदकी शिक्षा दी थी। इसी युगमें अरबी भाषामें चरक और सुश्रुतका अनुवाद किया गया। इसी प्रकार अनेक पुस्तकें बग़दादके ख़लीफ़ा लोगोंने अनुवाद कराई थीं। इन सब अध्ययनोंमें अरबोंके लिए 'रसायनी विद्या' एक अपूर्व चीज़ थी, जो उन्हें भारतसे ही मिली। मैक्डोनलने लिखा है—

"On the other hand, the effect of Hindu Medical Science upon the Arabs after about 900 A. D. was considerable, for the Khalipha of Bagdad caused several books on the subject to be translated. The work of Charak and Shushrut were rendered into Arabic at the close of the eighth century and are quoted as authorities by the celebrated Arabic Physician Al Razi, who died in 932 A. D. Arabic medicine in its turn became the chief authority, down to the seventeenth century of European Physicians."

(History of Sanskrit Lit., page 427)

आयुर्वेदिक ज्ञान भारतसे अरबको मिला और अरबोंसे यूरोपियनोंको। यहाँ तक कि ईसाकी सत्रहवीं शताब्दि तक यूरोपके पास केवल अरबसे उधार लिए हुए भारतीय चिकित्सा-ज्ञानके सिवा और कुछ न था। यूरोपमें अठारहवीं शताब्दिसे विज्ञानके विकासके साथ-साथ चिकित्सा-विधिका भी विकास होना प्रारम्भ हुआ, और भारतमें पराधीनताकी विषम व्याधिने आयुर्वेदको दिन प्रतिदिन क्षीण करना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि भारतका सारा गौरव एक साथ अस्त-सा हो गया। दूसरे देश गौरवके गिरिपर बहुत ऊँचे चढ़ गये और हम देखते ही रहे !

सिकन्दरने भारतीय वैद्योंको ले जाकर ही यूनानमें स्वतंत्र चिकित्साका शासन जमा दिया। दूसरी ओर हिपोक्रेट्स् (Hippocrates) ने हमारे आयुर्वेदके सहारे ही एलोपैथीका झंडा खड़ा कर दिया। बहुत दिन नहीं हुए, बग़दादने भारतसे ही चिकित्साका पाण्डित्य प्राप्त किया। कलकी ही बात है, जर्मनमें डा० हेनिमेनने आपके सहयोगसे ही होमियोपैथीका बोलबाला कर दिया, पर अफ़सोस ! हमारा बना-बनाया आयुर्वेदका मीनार भूमिसात् हो चला ! क्या सचमुच हममें इतना भी पौरुष नहीं रहा ? आयुर्वेदने अनेकों रसायन खिलाकर हमारा कितनी ही बार कायाकल्प किया है, पर आज समय आनेपर एक बार भी हमसे उसका कायाकल्प न हो सका ! फिर क्या अब हमारा कुछ कर्तव्य नहीं रहा ? क्या हमें अपने प्राणाचार्योंसे उऋण नहीं होना है ? क्या आज भी हमें अपने आयुर्वेदको नहीं उठाना चाहिए ? यदि हाँ, तो—

"आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।"

भगवान बुद्धके अन्तिम कालका दर्शन

श्रीयुत गंगाचरण

संसारके साहित्यमें महापरिनिर्वाण-सूत्रका स्थान बहुत ऊँचा है, क्योंकि उस सूत्रमें भगवान् शाक्य मुनिके अन्तिम समयकी घटनाका वर्णन और अन्तिम वाक्य लिखे हैं; मगर दुर्भाग्यवश आज हम लोग बौद्ध साहित्यको बिलकुल भूल गये हैं। महापरिनिर्वाण-सूत्र एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है। कंठस्थ करनेके विचारसे उसमें एक-एक बातको कई बार दोहराया गया है और भक्तोंने बहुत-कुछ क्षेपक भी उसमें मिला दिये हैं। मैं इस स्थानपर इस सूत्रका थोड़ा-सा सार आपकी भेंट करता हूँ।

भगवान वर्षाऋतुके चातुर्मास किसी स्थानपर व्यतीत कर रहे थे। वहीं वे बहुत बीमार पड़ गये। उनके पेटमें बड़ी पीड़ा होने लगी, जिसके कारण उन्हें बिलकुल कल न पड़ती थी; मगर बुद्ध भगवानने उन सब कष्टोंको बड़ी शान्तिसे झेला। उन्होंने यह विचार किया कि संघको अन्तिम शिक्षा दें और यही सोचकर वहाँसे वे विदा हुए।

भगवानका स्वास्थ्य अच्छा हो गया और वे एक दिन विहारके बाहर एक स्थानपर जा बैठे। उनका प्रिय शिष्य आनन्द भी उन्हें प्रणामकर वहीं जा बैठा, और कहा—"भगवन्, मैंने देखा कि आपका स्वास्थ्य कैसा अच्छा था और मैंने यह भी देखा कि आपके शरीरको कितना कष्ट उठाना पड़ा। आपको बीमार देखकर मैं लताके समान दुर्बल हो गया। मेरी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। मेरा सारा शरीर शिथिल पड़ गया; मगर मेरे दिलको एक इसी बातका भरोसा था कि भगवान संघको अन्तिम शिक्षा दिये बिना अन्तर्द्धान न होंगे।"

भगवान बोले—"आनन्द, क्या संघ मुझसे ऐसी आशा रखता है? मैंने सत्यकी शिक्षा देनेमें कोई भेद बाकी नहीं रखा। अन्य गुरुओंकी तरह मैंने कोई बात छिपा नहीं रखी है। यदि किसीके चित्तमें ऐसी इच्छा हो कि मैं संघका गुरु रहूँ या यह विचार हो कि संघ मेरे ही ऊपर निर्भर है, तो उसको इस बातकी आवश्यकता है कि संघके लिए नियम गढ़े। मेरे चित्तमें कोई ऐसी इच्छा नहीं और न ऐसा विचार ही कभी मेरे हृदयमें आया, फिर मुझसे कहने-सुननेकी क्या आवश्यकता है? अब मैं वृद्ध हो गया और मेरे दिन पूरे हो चले। इस जीवनकी समाप्तिका समय आ पहुँचा। अब मैं अस्सी वर्षका हो चला, और जैसे एक टूटी-फूटी गाड़ी बहुत बाँध-जोड़के बाद ही चल सकती है, वैसे ही यह शरीर अब बहुत बाँध-जोड़के बाद ही चल सकता है। अब तो जब मैं चित्तकी वृत्तिको अन्तर्गत कर लेता हूँ, तभी यह शरीर सुखसे रहता है, इसलिए तुम सब खुद अपनी रोशनी बनो, तुम खुद अपना सहारा बनो और किसी बाहरी वस्तुका सहारा न ढूँढ़ो। सत्को रोशनी देती हुई ज्योतिके समान अपने साथ रखो। सत् ही के सहारे रहो। अपने सिवा किसीका सहारा न खोजो। इस अवस्थाकी प्राप्ति और स्थितिके लिए यह आवश्यक है कि हरएक समय और हरएक अवस्थामें सत्को जाननेके लिए तैयार रहो।"

आनन्दने रोकर कहा—"भगवन्, संसारके उपकारके लिए, उसपर कृपादृष्टि रखते हुए, देवताओं और मनुष्योंका हित विचारते हुए, इस कल्पभर तो आप अन्तर्द्धान न होइये।"

भगवानने कहा—"आनन्द, क्या मैंने तुमको यह शिक्षा नहीं दी कि हमको हरएक ऐसी वस्तु, जिससे हमको प्यार होता है, त्यागनी पड़ती है। जब हरएक वस्तुका, जो उत्पन्न होती है, नष्ट होना आवश्यक है, तो यह कैसे हो सकता है कि कोई वस्तु नष्ट न हो? ऐसा

होना असम्भव है। अब यह शरीर त्याग दिया गया, तथागत अब जल्द ही अन्तर्द्धान हो जायँगे।"

वहाँसे भगवान आनन्दके साथ महावनकी ओर चले। वहाँ उन्होंने भिक्षुओंको एकत्रित करके यह उपदेश दिया—"भाइयो, जिस सत् धर्मकी मैंने तुमको शिक्षा दी, उसको अच्छी तरह समझकर ग्रहण करना और उसकी ध्यान लगाकर शिक्षा देना, जिससे यह सत् धर्म बहुत दिनों तक प्रचलित रहे और संसारका भला हो। संसारकी सभी वस्तुओंका अन्त होता है। अपने मोक्षका इन्तज़ाम करो, क्योंकि मैं शीघ्र ही शरीरको त्याग कर रहा हूँ।"

इस प्रकार आगे बढ़ते हुए भगवान भोगनगर पहुँचे, और वहाँ भिक्षुओंको शिक्षा दी कि अगर मेरे अन्तर्द्धान होनेके बाद कोई भाई कहे कि मैंने तथागतके मुखसे यह वाक्य सुना है, यही सत् और यही धर्म है तथा यही भगवानकी शिक्षा है, तो ऐसे वचनकी प्रशंसा या निन्दा न करते हुए मेरे दूसरे वचनोंके सामने रखकर तोलना। अगर वह वचन मेरे दूसरे वचनोंसे मिले तो उसको ग्रहण करना, अन्यथा उसे ग्रहण न करना। यही परीक्षा उन वचनोंकी भी करना, जो किसी भाई या भाइयोंने किसी दूसरे भाईसे मेरे वचनके नामपर सुने हों।"

भोगनगरसे चलकर भगवान पावा पहुँचे। वहाँ जब चुन्द नामक एक लुहारको मालूम हुआ कि भगवान पावामें हैं, तो उसने भगवानसे अपने यहाँ भोजन पानेकी प्रार्थना की। चुन्दने भगवानके भोजनमें भात, पिष्टक (पूआ) और खुम्बीका साग परोसा। जब भगवानने उस सागको खाया, तो चुन्दसे कहा कि बाक़ी सागको ज़मीनमें गाड़ दो, क्योंकि उसे न तो कोई देवता और न कोई मनुष्य ही पचा सकता है।

भोजन कर चुकनेके बाद भगवानके शरीरमें फिर कष्ट होने लगा, मगर भगवान उसको सहन करते हुए आनन्दके साथ कुशी नगरकी ओर चल दिये। जब चलते-चलते थक गये, तो रास्ता छोड़कर एक वृक्षके पास जाकर आनन्दसे बोले कि वृक्षके नीचे ओढ़नेको बिछा दो, मैं थक गया हूँ, मुझे आराम करनेकी आवश्यकता है। भगवान उस स्थानपर बैठकर बोले—"आनन्द, मेरे लिए थोड़ासा पानी लाओ, मैं प्यासा हूँ, पानी पिऊँगा।" आनन्दने कहा—"भगवन्, अभी पाँचों गाड़ियाँ नदी पार कर चुकी हैं, जिसके कारण पानी गदला और गन्दा हो गया है। कुकुत्था नदी कुछ दूर नहीं है, उसका जल पवित्र, मीठा और ठंडा है, वहीं चलकर भगवान हाथ मुँह धोयें और पानी पियें।" मगर भगवान प्यासे थे, उन्होंने फिर आनन्दसे पानी लानेको कहा। आनन्द कमंडल हाथमें लेकर पानीके लिए निकले, तो देखा कि नदीका पानी स्वच्छ है। भगवानकी यह महिमा देखकर कि गन्दा पानी भी पवित्र हो गया, आनन्द उनके गुण गाने लगे।

पानी पीकर भगवान आगे बढ़े और भिक्षुओं-सहित कुकुत्था नदीके किनारे पहुँचे। वहाँ स्नान करके पानी पिया और फिर आमके बाग़में जाकर आनन्दसे कहा कि कपड़ेको चौहा करके बिछा दो, क्योंकि मैं थका हुआ हूँ, कुछ देर आराम करूँगा। भगवान वहीं पैरपर पैर रखकर दाहनी करवट लेट गये और चित्तमें वहाँसे उठनेकी कल्पना की।

भगवानने आनन्दको अपने पास बुलाकर कहा—"आनन्द, ऐसा सम्भव है कि कोई चुन्दसे कहे कि चुन्द, यह बुरा हुआ कि तुम्हारे यहाँ भोजन करके भगवानने शरीरको त्यागा, तो तुम उससे यह कहकर उसके चित्तसे पश्चाताप दूर करना कि यह अच्छा हुआ। चुन्द, तुम्हारा भाग्य बड़ा प्रबल है कि भगवानने अपना अन्तिम भोजन तुम्हारे यहाँ किया। उससे कहना कि मैंने स्वयं तथागतके मुखसे सुना है—स्वयं भगवानने मुझे बताया है कि सब भोजनोंमें दो भोजनोंका दरजा बहुत ऊँचा है और उनके देनेवालोंको बहुत ही फल मिलेगा। एक तो वह भोजन, जिसे खाकर भगवानको *बोधि प्राप्त हुई और दूसरा वह भोजन, जिसे खाकर उन्हें परिनिर्वाण प्राप्त हुआ।"*

भगवान वहाँसे उठे और आनन्दसे बोले कि इस जगहको छोड़कर शालके वनमें चलें, जो बरनावती नदीके उस

पार है। भिक्षुओंके साथ भगवान वहाँ पहुँचे और आनन्दसे कहा कि इन दो शाल-वृक्षोंके बीचमें उत्तरकी ओर सिरहाना करके चौकी बिछा दो। आनन्दने वैसा ही किया। भगवान पैरपर पैर रखकर, दाहनी करवट वहीं लेट गये।

उस समय शालके वे दोनों वृक्ष फूलोंसे लदे हुए थे और भगवानके शरीरपर उनके फूल झर रहे थे। आकाशसे फूल और चन्दनकी वर्षा हो रही थी। सारे आकाश मंडलमें गानेकी आवाज़ गूँज रही थी। सब लोग उन अद्भुत गीतोंकी चर्चा करने लगे। इसपर भगवानने आनन्दसे कहा—"तथागत इन बातोंमें अपनी बड़ाई नहीं समझता, बल्कि जब कोई भाई या उपासक धर्मानुकूल चलकर अपना जीवन शुद्ध बनाता है, तब उस मनुष्यके जीवनसे सचमुच मेरी इज्ज़त होती है। अत: आनन्द, अपने सब नियमोंको पूरा करो, धर्मानुकूल चलो और उसीकी शिक्षा दो।" आनन्दके नेत्रोंमें आंसू छलछला आये, उन्होंने रोककर कहा—"भगवन्, आपका क्रियाकर्म किस रीतिसे करें?" इसपर भगवानने कहा—"मेरे शरीरकी चिन्ता छोड़कर अपने मोक्षकी चिन्ता करो।" यह सुनकर आनन्द वहाँसे चले गये और विहारके दरवाज़ेका सहारा लेकर रोने लगे। वे आहें भरकर यही कहते थे कि हम अभी श्रोता ही हैं और बहुत मार्ग ते करना बाक़ी है। उसपर गुरुदेव, जो इतने कृपालु हैं, अन्तर्द्धान हो रहे हैं।

आनन्दको न देखकर भगवानने पूछा कि आनन्द कहाँ है? किसीने कहा कि भगवान वे दरवाज़े पर खड़े रो रहे हैं। भगवानने कहा कि जाकर आनन्दको बुला लाओ। उससे कहो कि भगवान तुमको बुलाते हैं। इसपर आनन्द आकर भगवानके चरणोंके निकट बैठ गये।

भगवानने आनन्दसे कहा—"आनन्द, बहुत रोये, अब चुप हो जाओ। आनन्द, क्या मैंने तुमको नहीं बताया है कि हमें अपनी सबसे प्रिय वस्तुसे जुदा होना पड़ता है। आनन्द, यह कैसे मुमकिन है कि जो वस्तु पैदा हुई है, वह नष्ट न हो। आनन्द, बहुत कालसे तुम अपने प्रेमके कारण मेरे निकट हो। तुम्हारा प्रेम ऐसा है, जिसमें कभी कमी नहीं हुई, जिसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तुम्हारे प्रेमका अनुमान करना असम्भव है। आनन्द, तुमने मेरी बड़ी सेवा की है, जिस सेवामें कमी कमी नहीं हुई। तुम्हारी सेवाका अनुमान करना असम्भव है। आनन्द, दिल तोड़कर कोशिश करो। काम, अविद्या और मायाको त्यागकर बहुत जल्द पवित्र हो जाओ।"

आनन्दने विचार किया कि मल्ल जातिके लोगोंको खबर करनी चाहिए, अत: कुशी नगर जाकर उन्होंने कहा—"ग्रामवासियो, तुम्हारे शालके वनमें भगवान विश्राम कर रहे हैं, और आज ही रात्रिकी अन्तिम घड़ीमें अन्तर्द्धान हो जायँगे।" यह सुनकर ग्रामवासियों और उनके परिवारोंको बड़ा शोक हुआ। कुछ दु:खके मारे रो पड़े, कुछ अपने बाल नोचने लगे, कुछ धरतीपर लोटने लगे और कुछ व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। सबको इसी बातका शोक था कि भगवान बहुत शीघ्र अन्तर्द्धान हो जायँगे। सब लोग आनन्दके साथ हो लिये। आनन्दने देखा कि लोग बहुत हैं और समय कम है, इसलिये उन्होंने हर एक परिवारको अलग-अलग खड़ा करके उनका परिचय कराया। उस समय कुशी नगरमें सुभद्र नामक एक मनुष्य रहता था, जो भगवानका उपासक न था। उसके मनमें अनेकों शंकाएँ बाक़ी थीं। उसने विचार किया कि सन्त लोग कहते हैं कि तथागत कभी-कभी ही दर्शन देते हैं और आज उनका अन्तिम समय है। भगवान अवश्य ही मेरी शंकाएँ दूर कर देंगे। सुभद्रने आनन्दसे भगवानसे मिलनेकी प्रार्थना की, परन्तु आनन्दने यह कहकर टाल दिया कि,—"सुभद्र बहुत समय हो गया, तथागत थके हुए हैं, उनको न सताओ।"

मगर भगवानने सुभद्रकी प्रार्थना सुन ली और आनन्दसे कहा कि सुभद्रको आने दो, क्योंकि वह सत्का निर्णय करनेके लिए आ रहा है। सुभद्र नमस्कार कर भगवानके चरणोंमें बैठ गया, और बोला—"भगवन् सभी साधु-सन्त कहते हैं कि उनका मार्ग सच्चा है, इसका निर्णय कैसे हो?" भगवानने उत्तर दिया—"सुभद्र, समय थोड़ा है, मैं तुम्हें तत्त्वकी बात बताता हूँ। जिस धर्ममें अष्टांगमार्ग नहीं है, उसमें सन्तोंका होना असम्भव है और जिस धर्ममें अष्टांगमार्ग है, उसमें सन्त मिलेंगे। इस धर्ममें अष्टांग मार्ग मौजूद है और इस धर्ममें तुमको सन्त मिलेंगे।" सुभद्रको विश्वास हुआ और उसने बुद्धधर्म और संघकी शरण ली। भगवानने उसे भिक्षु बना लिया। आनन्दने कहा—"सुभद्र, धन्य भाग्य है तुम्हारा, तुम धन्य हो, जो तुम भगवानके अन्तिम समयमें भिक्षु बने।"

दान-प्रतिदान

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बड़ी बहू जो बातें सुना गई हैं, उनकी धार भी खूब पैनी थी और ज़हर भी। जिस अभागिनीके लिए उनका प्रयोग किया गया था, उसकी चित्त-पुतली बिलकुल जल-भुनकर लोटने लगी!

वे बातें खासकर उसके पतिको लक्ष्य करके कही गई थीं—और पति राधामुकुन्द उस समय रातका भोजन समाप्त करके पास ही बैठे-बैठे ताम्बूलके साथ ताम्रकूटका धूम्र मिलाकर खाना पचानेमें लगे हुए थे। बड़ी बहूकी इन तीखी बातोंने उनके कानोंमें प्रवेश करके उनकी परिपाक-क्रियामें विशेष कोई बाधा पहुँचाई हो, सो भी नहीं। अविचलित गम्भीरताके साथ ताम्रकूटको समाप्त करके वे रोज़के अभ्यासानुसार यथासमय सोने चले गये।

परन्तु ऐसी असाधारण परिपाक-शक्तिकी आशा सबसे नहीं की जा सकती। रासमणिने आज शयन-गृहमें आकर पतिके साथ ऐसा व्यवहार किया कि इससे पहले कभी उसने ऐसा करनेका साहस नहीं किया था। और दिन तो शान्तभावसे पलंगपर आकर चुपचाप पतिकी पदसेवामें लग जाती थी, आज एकदम ज़ोरसे कंकण झनकारकर पतिकी तरफ़ पीठ करके बिछौनेके एक किनारे जा सोई और क्रन्दनके आवेगसे शय्या तकको कँपाने लगी।

राधामुकुन्दने इस बातपर कुछ ध्यान न दिया और बगलके लम्बे तकियेसे लिपटकर सोनेकी कोशिश करने लगे। किन्तु उनकी इस उदासीनतासे स्त्रीका अधैर्य उत्तरोत्तर बढ़ते देख अन्तमें उन्होंने मृदु-गम्भीर स्वरमें कहा—"एक खास कामके लिए मुझे खूब सवेरे ही उठना है, अब सोना ज़रूरी है।"

पतिके कंठस्वरसे रासमणिका रोना अब भीतर न रह सका, क्षण-भरमें बाहर फूट निकला।

राधामुकुन्दने पूछा—"क्या हो गया?"

रासमणिने भर्राये हुए स्वरसे उफनते हुए कहा—"सुना थोड़े ही है?"

"सुना तो है। लेकिन बहूने एक भी बात झूठी नहीं कही है। मैं क्या भाई साहबके अन्नसे नहीं पल रहा हूँ? तुम्हारे ये कपड़े-लत्ते-ज़ेवर, ये सब क्या मैंने अपने बापके पैसेसे खरीदे हैं? जो खाने-पहरनेको देता है, वह अगर दो-एक कड़ी बात भी कह दे, तो उसे भी खाने-पहरनेमें शामिल समझ लेना चाहिए।"

"ऐसे खाने-पहरनेसे अटकी क्या है?"

"जीना तो होगा ही।"

"मर जाऊँ तो अच्छा।"

"जब तक नहीं मरतीं, तब तक ज़रा सोनेकी कोशिश करो, आराम मालूम होगा।"

कहकर राधामुकुन्द उपदेश और दृष्टान्तमें सामंजस्य दिखानेमें प्रवृत्त हुए।

राधामुकुन्द और शशिभूषण सहोदर भाई नहीं हैं, बहुत निकट-सम्बन्ध भी नहीं है; बल्कि 'गांवका-रिश्ता' कहा जाय तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु प्रेम-बन्धन सहोदर भाईसे भी किसी प्रकार कम नहीं। बड़ी बहू व्रजसुन्दरीको यह ज़रा असह्य मालूम होता। विशेषत: शशिभूषण कोई चीज़ देने-करनेके बारेमें छोटी बहूकी अपेक्षा अपनी स्त्रीके प्रति अधिक पक्षपात नहीं करते। बल्कि जिस चीज़का जोड़ा न मिलता, उसे अपनी स्त्रीको वंचित रखकर छोटी बहूको ही दे देते। इसके सिवा अकसर इस बातका भी परिचय मिलता रहता है कि बहुधा वे स्त्रीके अनुरोधकी अपेक्षा राधामुकुन्दके परामर्शपर ही अधिक निर्भर रहते हैं। शशिभूषण आदमी बिलकुल ढीलेढाले स्वभावके हैं, इसीसे घरका तमाम काम और

ज़मींदारीका सारा भार राधामुकुन्दपर ही निर्भर था। बड़ी बहूको सर्वदा ही यह सन्देह रहता कि राधामुकुन्द भीतर ही भीतर उसके पतिको दगा देनेकी तैयारियाँ कर रहा है,—जितना ही इस बातका कोई प्रमाण नहीं मिलता, उतना ही राधामुकुन्दपर उनका विद्वेष बढ़ता ही जाता। सोचतीं—प्रमाणोंने भी अन्याय करके उनके विरुद्ध पक्ष लिया है, इसलिए वे प्रमाणोंपर ही गुस्सा होकर उनके प्रति अत्यन्त अवज्ञा प्रकट करती हुई अपने सन्देहको घरमें बैठकर दूना दृढ़ करती रहतीं। उनकी यह बड़े जतनसे पोषित मानसिक अग्नि आग्नेयगिरिके अग्न्युत्पातकी तरह भूमिकम्पके साथ अकसर कभी-कभी उष्णभाषामें फूट निकलती है।

रातको राधामुकुन्दकी नींदमें बाधा आई थी या नहीं, कह नहीं सकते,—किन्तु दूसरे दिन सवेरे उठकर वे उदास मुँहसे शशिभूषणके पास जा खड़े हुए। शशिभूषणने बड़ी घबराहटके साथ पूछा—"राधे, तुम्हें आज ऐसा क्यों देख रहा हूँ? तबीयत खराब है क्या?"

राधामुकुन्दने मृदुस्वरसे धीरे-धीरे कहा—"भइया, अब तो मेरा यहाँ रहना नहीं हो सकता।" यह कहकर कल शामको बड़ी बहूने जो उनपर आक्रमण किया था, सत्तेपमें और शान्तभावसे उसका सारा हाल कह सुनाया।

शशिभूषणने हँसते हुए कहा—"बस, इतनी ही बात है! यह तो कोई नई बात नहीं है। ये तो पराये घरकी लड़की ठहरीं, मौका पाते ही दो बात कहेंगी ही, इससे क्या घरके आदमियोंको छोड़ जाना चाहिए! बातें तो मुझे भी कभी-कभी सुननी पड़ती हैं, इससे क्या मैं गिरस्ती छोड़ दूँ?"

राधेने कहा—"औरतोंकी बातें क्या मैं नहीं सह सकता, तो फिर पुरुष होकर जनमा ही क्यों था! सिर्फ डरता हूँ, तुम्हारे जीवनमें अशान्ति न घुस पड़े।"

शशिभूषणने कहा—"तुम्हारे चले जानेपर मुझे कौनसी शान्ति मिल जायगी?"

अब और ज्यादा बातचीत न हुई। राधामुकुन्द एक गहरी साँस लेकर वहाँसे चले गये, उनके हृदयका भार ज्योंका त्यों बना रहा।

इधर बड़ी बहूका कोप क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। हज़ारों बहनोंसे जब-तब वे राधेको बुरी-भली सुनाती ही रहतीं, क्षण-क्षणमें छूटनेवाले उनके वाक्यबाणोंने रासमणिकी अन्तरात्माको एक प्रकारसे शर-शय्यापर सुला दिया है। राधे यद्यपि चुपचाप पड़े-पड़े तमाकू पीते रहते हैं और स्त्रीको क्रन्दनोन्मुखी देखते ही आँखें मीचकर खुर्राटे लेना शुरू कर देते हैं, किन्तु फिर भी मुँहका भाव देखनेसे मालूम होता है कि उन्हें भी यह सब असह्य मालूम होने लगा है।

परन्तु शशिभूषणके साथ उनका सम्बन्ध तो कुछ आजका नहीं है—दोनों भाई जब सवेरे ही उठकर बासी भात खाकर एक साथ पाठशाला जाते थे, दोनों भाई जब एक साथ सलाह करके पंडितजीको धोखा देकर पाठशालासे भागकर किसानोंके लड़कोंके साथ मिलकर तरह-तरहके खेल खेलते थे, एक बिस्तरपर सोते और अँधेरेमें मौसीके मुँहसे कहानी सुनते, घरवालोंसे छिपाकर रातको दूसरे गाँवमें जात्रा (बिना स्टेजका नाटक) देखने जाते थे और सवेरे ही पकड़े जानेपर अपराध और दंडको दोनों समान भाग कर लेते थे, तब कहाँ थी व्रजसुन्दरी और कहाँ रासमणि! जीवनके इतने दिनोंको क्या एक ही दिनमें विच्छिन्न किया जा सकता है? परन्तु ऐसे सन्देहका आभास मात्र भी कि यह बन्धन स्वार्थपरताका है, यह गाढ़ी प्रीति परान्न-प्रत्याशाका सुचतुर छद्मवेश है,—उन्हें विषतुल्य मालूम होता था; इसलिए और कुछ दिन इसी तरह चलते रहनेसे क्या होता, कह नहीं सकते। परन्तु इसी बीचमें एक भारी घटना हो गई।

जिस समयकी बात कही जा रही है, उन दिनों निर्दिष्ट तारीखको सूर्यास्तके पहले गवर्मेन्टकी मालगुज़ारी न चुकनेपर ज़मींदारकी जायदाद नीलामपर चढ़ा दी जाती थी।

एक दिन समाचार आया कि शशिभूषणकी एकमात्र

ज़मींदारी—परगना एनातसाही—मालगुज़ारी न चुकनेकी वजहसे नीलाम हो गई।

राधामुकुन्दने अपने स्वाभाविक मृदु-प्रशान्त-भावसे कहा—"मेरा ही दोष है।"

शशिभूषणने कहा—"तुम्हारा क्या दोष! तुमने तो रुपये भेज ही दिये थे, रास्तेमें डकैतोंने लूट लिया तो तुम क्या कर सकते थे?"

दोष किसका है, अभी इस बातके निर्णयसे कोई लाभ नहीं, अब तो गिरस्ती चलानी होगी। शशिभूषणका स्वभाव और शिक्षा ऐसी न थी कि वे सहसा किसी काम-धन्धेमें पड़ जाते। वे तो मानो घाटकी पक्की सीढ़ियोंपरसे फिसलकर पल-भरमें गहरे पानीमें जा डूबे।

पहले तो वे स्त्रीका ज़ेवर गिरवी रखनेको तैयार हुए। राधामुकुन्दने रुपयोंकी एक थैली उनके सामने पटककर उन्हें रोक दिया। उन्होंने पहलेसे ही अपनी स्त्रीका ज़ेवर गहने रखकर रुपयोंका इन्तज़ाम कर लिया था।

गृहस्थीमें यह एक महान् परिवर्तन दिखाई दिया कि सम्पत्कालमें गृहिणीने जिन्हें दूर करनेकी हज़ार कोशिशें की थीं, विपत्कालमें उन्हें व्याकुल-भावसे जकड़ लिया। अब उन्हें यह समझनेमें देर न लगी कि इस समय दोनों भाइयोंमें से किसके ऊपर अधिक निर्भर रहा जा सकता है। पहले कभी उनका राधामुकुन्दसे तिलमात्र भी द्वेषभाव था, इस बातका अब नामो-निशान तक नहीं दिखाई देता।

राधामुकुन्द पहलेसे ही स्वाधीन जीविका उपार्जनके लिए तैयार थे। पासके शहरमें उन्होंने मुख्तारी करना शुरू कर दिया। उन दिनों मुख्तारीके काममें आमदनीके रास्ते आजकलकी अपेक्षा बहुत ज़्यादे थे। तीक्ष्णबुद्धि सावधान राधामुकुन्दने पहले ही से अपनी धाक जमा ली। क्रमशः उन्होंने ज़िले भरके बड़े-बड़े ज़मींदारोंका काम हाथमें लेना शुरू कर दिया।

अब रासमणिकी अवस्था पहलेसे ठीक उलटी है। अब रासमणिके पतिकी कमाईसे ही व्रजसुन्दरी और शशिभूषण प्रतिपालित होते हैं—इस बातपर उसने कभी साफ़-साफ़ घमंड दिखलाया है या नहीं, मालूम नहीं; किन्तु किसी दिन शायद आभास व्यवहार और इशारेसे, उसने ऐसा भाव व्यक्त किया था—परन्तु वह केवल एक ही दिनके लिए—उसके दूसरे ही दिनसे वह मानो और भी नम्र हो गई। कारण, बात उसके पतिके कानों तक पहुँच चुकी थी। उस रातको राधामुकुन्दने किन किन युक्तियोंका प्रयोग किया था, ठीक नहीं कह सकते; दूसरे दिनसे उसके मुँहमें ज़बान तक न रही, बड़ी-बहूकी वह दासी सी बनकर रहने लगी। सुनते हैं, राधामुकुन्दने उसी दिन स्त्रीको मायके भेजनेकी तैयारी कर ली थी, और एक हफ्ते तक उसका मुँह नहीं देखा था। अन्तमें व्रजसुन्दरीने देवरको समझा-बुझाकर बड़ी कोशिशसे दम्पतिमें मेल कराया था, और कहा था—"छोटी-बहू तो कल आई है; खबर है—मैं कितने दिनोंसे तुम्हारे घरमें हूँ! तुममें हममें जो हमेशाका प्रेमका नाता है, उसका क्या तुमने यही मूल्य समझा है? अभी तो लड़की ही है, उसे माफ कर दो।"

राधामुकुन्द घरू खर्चके लिए सब रुपये व्रजसुन्दरीको लाकर देते। रासमणि अपने लिए आवश्यक खर्च नियमानुसार अथवा माँगकर व्रजसुन्दरीके पाससे पाती। घरमें बड़ी बहूकी हालत पहलेसे अच्छी ही है, बुरी नहीं; कारण, पहले शशिभूषण स्नेहके कारण तथा और भी बहुतसी बातें सोचकर रासमणिका ही अधिक पक्षपात करते थे।

शशिभूषणके मुँहपर यद्यपि उनके सहज प्रफुल्ल हँसीकी कमी नहीं थी, किन्तु फिर भी गुप्त बीमारीसे वे दिनों-दिन कमज़ोर हुए जा रहे थे। और किसीका इस बातपर लक्ष्य नहीं गया था, भइयाकी यह हालत देखकर सिर्फ राधेकी ही आँखोंमें नींद नहीं थी। अकसर गहरी रातको जब रासमणिकी आँख खुलती, तो वह देखती कि उसके पति गहरी साँस ले-लेकर अशान्तभावसे करवटें बदल रहे हैं।

राधामुकुन्द अकसर शशिभूषणको आकर तसल्ली देते—"तुम कोई फ़िकर मत करो, भइया। तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति मैं फिरसे तुम्हें वापस ला दूँगा—जैसे बने वैसे ज़रूर ला दूँगा। अब ज़्यादा देर भी नहीं है।"

वास्तवमें ज्यादा दिनकी देर भी नहीं हुई। शशिभूषणकी जायदाद जिस आदमीने नीलाममें खरीदी थी, वह था व्यवसायी—ज़मींदारीके कामसे बिलकुल अनभिज्ञ। सम्मानकी आशासे खरीदी थी, परन्तु उलटी घरसे मालगुज़ारी देनी पड़ती थी—एक पाईका मुनाफ़ा नहीं था। राधामुकुन्द वर्षमें दो बार अपने लठैतोंको साथ ले जाकर लूट-खसोट मचाकर लगान वसूल कर लाते थे। प्रजा भी उनके वशमें थी। अपेक्षाकृत हीनजातीय यानी बनिया होनेसे नये ज़मींदारसे वह भीतरी घृणा रखती थी, और इसी कारण राधामुकुन्दकी सलाह और सहायता पाकर वह उनके विरुद्ध चलने लगी।

बहुत दिनों तक मामला-मुक़दमा चलता रहा, परन्तु कोई नतीजा न निकला। आखिर मख मारकर बेचारा इस झंझटसे बरी होनेके लिए उत्सुक हो उठा। बहुत थोड़ी क़ीमत देकर राधामुकुन्दने अपनी पहलेकी सम्पत्ति फिरसे खरीद ली।

लिखनेमें जितना थोड़ा समय मालूम होता है, असलमें उतना थोड़ा नहीं है। इस बीचमें दस वर्ष गुज़र गये। दस वर्ष पहले शशिभूषण यौवनके उस ओर प्रौढ़ावस्थाके प्रारम्भ भागमें थे, किन्तु इन आठ-दस वर्षोंमें वे मानो भीतर रुके हुए मानसिक उत्तापके वाष्पयानमें चढ़कर बड़े वेगसे बिलकुल वार्द्धक्यके बीचमें आ पहुँचे हैं। पैतृक सम्पत्ति जब लौट आई, तब न जानें क्यों, उससे उन्हें खुशी नहीं हुई। बहुत दिनोंसे काममें न आनेके कारण हृदयवीणाकी खूटियाँ शायद ढीली हो गई हैं, अब हज़ार बार खींचकर बाँधनेपर भी वे तार ढीले पड़ जाते हैं—पहलेका-सा वह स्वर अब किसी भी तरह नहीं निकलता।

गाँवके लोगोंने बड़ा-भारी आनन्द प्रकट किया। सभीने इस बातपर ज़ोर दिया कि शशिभूषण इस खुशीमें एक ज्योनार कर डालें। शशिभूषणने राधामुकुन्दसे पूछा—"क्यों, तुम्हारी क्या राय है?

राधामुकुन्दने कहा—"ज़रूर, ज़रूर! ऐसे शुभ अवसर पर ज़रूर आनन्द मनाना चाहिए।"

गाँवमें बहुत दिनोंसे कोई भोज नहीं हुआ था। गाँवके छोटे-बड़े सभी लोग भोजनमें शामिल हुए और आनन्दसे खा-पीकर घर लौटे। ब्राह्मण दक्षिणा पाकर और ग़रीब-दुःखी पैसा और कपड़ा पाकर आशीर्वाद देते हुए विदा हुए।

शीतके प्रारम्भमें गाँवकी आब-हवा वैसे ही अच्छी नहीं थी, उसपर पड़ी लगातार चार रोज़ तक ज्योनारके कामकी कड़ी महनत, और खाना-पीना भी बक़ायदा नहीं हुआ; शशिभूषण इसे झेल न सके—पाँचवें रोज़ एकदम खटियापर पड़ रहे। अन्यान्य दुरूह उपसर्गोंके साथ कम्पन-ज्वर भी चढ़ आया। वैद्यने सिर हिलाते हुए कहा—"बड़ी कठिन बीमारी है।"

रातके तीसरे पहर रोगीके घरसे सबको बाहर निकालकर राधामुकुन्दने कहा—"भइया, तुम्हारे पीछे जायदादका हिस्सा किसे कितना दिया जाय—बता जाओ।"

शशिभूषणने कहा—"भइया, मेरा है ही क्या, जो किसीको दे जाऊँ?"

राधामुकुन्दने कहा—"सब-कुछ तुम्हारा ही है!"

शशिभूषणने उत्तर दिया—"किसी समय मेरा था, अब मेरा नहीं है।"

राधामुकुन्द कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। बैठे बैठे खटियाके एक कोनेका चद्दरा दोनों हाथसे ठीक करने लगे। शशिभूषणकी श्वासक्रिया कष्टसाध्य हो उठी।

राधामुकुन्दने खटियाके पाँयतेकी ओर बैठकर रोगीके पैर पकड़कर कहा—"भइया, मैंने जो महापातकका काम किया है, सो तुमसे कहता हूँ, अब फिर समय नहीं मिलेगा।"

शशिभूषणने कोई जवाब नहीं दिया—राधामुकुन्द कहते चले गये—वही स्वाभाविक शान्तभाव था, धीरे-धीरे बोल रहे थे, सिर्फ बीच-बीचमें एक-एक गहरी साँस

लेने लगे।—"भइया, मुझमें अच्छी तरह कहनेकी शक्ति नहीं है। मनका यथार्थ जो भाव है, उसे अन्तर्यामी जानते हैं, और पृथ्वीपर यदि कोई जान सकता है, तो शायद तुम ही! बचपनसे तुममें हममें कोई अन्दरूनी भेद नहीं था, था तो सिर्फ बाहरी। सिर्फ एक भेद था, तुम धनी थे और मैं ग़रीब। जब देखा कि उस ज़रासी बातपर तुममें हममें भेद पड़नेकी सम्भावना क्रमशः बढ़ती ही जा रही है, तब मैंने ही उस भेदको नष्ट कर दिया। मैंने ही मालगुज़ारीके रुपये लुटवाकर तुम्हारी जायदाद नीलाम करा दी थी।"

शशिभूषणने रत्तमात्र भी विस्मयका भाव प्रकट नहीं किया, ज़रा मुसकराकर मुलायम स्वरसे रुँधे हुए गलेसे बोले—"भइया, अच्छा ही किया था! लेकिन जिस उद्देशसे किया था, वह क्या सिद्ध हुआ? अपने पास तुम रख सके? —दयामय परमात्मा!"

उनके प्रशान्त मृदु हास्यपर दोनों आँखोंसे आँसूकी बूँद ढलक पड़ीं।

राधामुकुन्दने उनके पैरों तले सिर रखकर कहा—"भइया, मुझे माफ कर दिया?"

शशिभूषणने पास बुलाकर उनका हाथ थामकर कहा—"तो सुनो। यह बात मैं पहले ही से जानता था। तुमने जिनके साथ षड्यन्त्र किया था, उन्हींने मुझसे यह बात कही थी। मैंने तभीसे तुम्हें माफ कर दिया है।"

राधामुकुन्द दोनों हथेलियोंसे अपने लज्जित मुँहको ढककर रोने लगे।

कुछ देर बाद बोले—"भइया, अगर माफ ही कर चुके हो, तो अपनी सम्पत्ति भी तुम ले लो। गुस्सा होकर वापस मत करो।"

शशिभूषण उत्तर न दे सके—तब तक उनकी ज़बान बन्द हो चुकी थी—राधामुकुन्दके मुँहकी ओर अनिमेष दृष्टिसे देखते हुए उन्होंने अपना दाहना हाथ उठाया। उसका क्या अर्थ था, कह नहीं सकते। शायद राधामुकुन्द समझ गये होंगे।

—धन्यकुमार जैन

बटोही जाग

श्रीयुत ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'

(राग केदारा)

(१)

बटोही जाग जाग अब जाग!
ऊषा मंद-मृदुल मुसकाती,
नवल सुनहला पथ दिखलाती,
थपकी देती अनिल सुरभिमय—
नीरव, नयनों पर मँडलाती।
गूँज रहा शत-शत कंठोंसे—
अमर जागरण-राग॥ बटोही०—

(२)

द्रुत-गति काल-चक्रने फेरा,
किया,—अरुणामय विमल-बसेरा,
हुआ,—लुप्त भय-श्रम जीवन-तम,
कर्मयोग का स्वर्ण-सवेरा,
स्पन्दित प्राण जूझते दोनों
त्याग और अनुराग।
बटोही जाग—

जगानेवाले झकोले

मुन्शी सूर्यनारायण साहब 'मेहर' देहलवी

दो दिनके सब मकीं हैं, दो दिनके सब मकां हैं,
दो दिनकी शादमानी, दो दिनके शादमां हैं।
ऐ मेरे दोस्तदारो! दुनिया गुज़श्तनी है,
गुज़रां जहाने-फ़ानी, गुज़रां जहानियाँ हैं।
जो नख्ल इस चमनमें, फूला-फला था इक दिन,
पत्ते न इसमें बाक़ी, बाक़ी न टहनियाँ हैं।
देखे बसे हुए घर, हमने खण्डहर हज़ारों,
घरवाले चल बसे हैं, खाली पड़े मकां हैं।
कोई यहाँ न ठहरा, कोई यहाँ न ठहरे,
दो दिनकी मेहमानी, दो दिनके मेहमां हैं।

जो मुल्कके थे मालिक, राहे-ज़फ़रके सालिक,
दावे जिन्हें बड़े थे, सब खाकमें निहाँ हैं।
शाहे-ज़माना दारा, शाहे-जहां सिकन्दर,
सब खाक हो गये हैं, बाक़ी न उस्तख्वां हैं।
तूदा है खाकका अब, असफ़न्दयारका तन,
और खाक ही के तूदे, रुस्तमसे पहलवां हैं।
वह भीम और अर्जुन, वह कर्ण और भीषम,
जो सूर-बीर जोधा, थे आज वह कहाँ हैं?
दो दिन है ज़िन्दगानी, दो दिन है हुक्मरानी,
दो दिनकी कामरानी, दो दिनके कामरां हैं।

ऐ साहिबाने-दौलत, ऐ साहिबाने-सरवत,
तुमको खयाल है हम, दुनियामें शादमां हैं।
ऐ मालो-जाहवालो, ऊँची निगाहवालो,
तुम यह समझ रहे हो, हम अहले-इज़्ज़ोशां हैं।
ऐ मानबानवालो, बाग़ो-मकानवालो,
तुमको गुमान यह है, हम साहिबे-मकां हैं।
दौलत पे फ़ख़्र क्या है, सामां पे नाज़ क्या है,
सब ख़्वाबके-से नक़्शे, बेवहमो-बेगुमां हैं।
बहुतेरे मालवाले, हैं मेरे देखेभाले,
निकले हैं जब दिवाले, मोहताज बहरेनां हैं।
थी जिनके पास दौलत, थी जिनके जाहोहश्मत,
वह खाक हो गये हैं, बेनामो बेनिशां हैं।
दावे थे लाख जिनको, प्यारी थी साख जिनको,
उन लखपती अमीरोंकी कोठियाँ कहाँ हैं?
जो माल भेजते थे, हरसाल भेजते थे,
आज उनके क़ाफ़लोंके, मिलते नहीं निशां हैं।
है ख़्वाब ज़िन्दगानी, झूठी है यह कहानी,
दो दिनकी कारवानी, दो दिनके कारवां हैं।

ऐ अहले-इल्मो-हिकमत, तुमको है उज्बोनख़वत,
हम इल्मके हैं माहिर, हिकमतके नुक़्तादां हैं।

मकीं=मकानवाले। शादमानी=खुशी। गुज़श्तनी=छूटनेवाली, नष्ट होनेवाली। गुज़रां=जानेवाली। जहाने-फ़ानी=नश्वर संसार। जहानियाँ=संसारी लोग। नख्ल=पेड़। राहे-ज़फ़रके सालिक=विजय-मार्गके पथिक, विजयी। निहां=छिपे हुए। शाहे-ज़माना, शाहेजहां=संसारके मालिक, सम्राट्। उस्तख्वां=हड्डियाँ। तूदा=ढेर। असफ़न्दयार=ईरानका एक प्रसिद्ध शासक। कामरानी=कृतार्थता, सफलता। कामरां=सफल, कृतार्थ।

साहिबाने दौलत, साहिबाने-सरवत=धनाढ्य, सम्पत्तिशाली। शादमां=प्रसन्न, सुखी। जाह=सम्पत्ति, ऐश्वर्य। अहले-इज़्ज़ोशां—प्रतिष्ठावाले। साहिबे-मकां=मकानके स्वामी। फ़ख़, नाज़=अभिमान, गर्व। बेवहम, बेगुमां=निःसन्देह। मोहताज बहरेनां=रोटियोंके लिए मोहताज, रंक। जाहोहश्मत=ऐश्वर्य। कारवां=क़ाफ़ला। अहले-इल्मो-हिकमत=विद्वान्, फ़िलासफ़र। उज्बोनख़वत=अभिमान, गर्व। माहिर=जाननेवाला।

हिकमतमें क्या धरा है, बस खारोखस भरा है,
यह जहलका है सौदा, क्या आप तरज़बां हैं।
ज़िन्दा किताब दिल है, बाक़ी कुतुब हैं मुर्दा,
तुम क्या चबा रहे हो, बोसीदा उस्तख्वां हैं।
बहसों पै क्यों हो माइल, बहसें हैं ग़ैरहासिल,
मानी तुम्हारे झूठे, झूठे ही सब बयां हैं।
ग़लबा हरीफ़पर गर, तुमको हुआ मुयस्सर,
क्या बात इसमें निकली, हैरान हम यहाँ हैं।
ग़लबा अजलपै पाना, मुश्किल है सबने माना,
जो इसपै पायें ग़लबा, बस वो ही राज़दां हैं।
काम आयगी न हिकमत, जब आया वक्त रहलत,
दावे हरइकके झूठे, साबित हुए यहाँ हैं।
दुनियाए-दूँ है फ़ानी, दो दिन है ज़िन्दगानी,
दो दिनकी नुक्तादानी, दो दिनके नुक्तादां हैं।

ऐ नौजवान क्यों है, तू मस्ते-नौजवानी,
चश्मे-अजलमें यकसां, सब पीर और जवां हैं।
बूढ़ा बचा न बच्चा, पक्का बचा न कच्चा,
असमारे-बाग़े दुनिया, पसखुरदए-ख़िज़ां हैं।
सेहतका नाज़ तेरा, ताक़तका फ़ख़्र तेरा,
सब ख्वाबके हैं नक्शे, औहाम बेगुमां है।

हिकमतके नुक्तादां—तत्त्वज्ञ। खारोखस=घास-फूँस। जहलका सौदा=अज्ञानका व्यापार, पागलपन। तरज़बान, फसीह=अच्छा कहनेवाले, मधुरभाषी, कवि। कुतुब=किताबें। बोसीदा उस्तख्वाँ=गली सड़ी हड्डियाँ। माइल=झुके हुए, तत्पर। ग़ैरहासिल=व्यर्थ। ग़लबा=विजय। हरीफ़=प्रतिपक्षी। मयस्सर=प्राप्त। अजल=मौत। राज़दां=तत्त्वज्ञानी। रहलत=कूच। दुनियाए-दूँ=तुच्छ संसार। फ़ानी=नश्वर। चश्मे-अजल=मौतकी निगाहमें। असमारे-बाग़े-दुनिया=संसार-उद्यानके फूल। पसखुरदए-ख़िज़ां=ख़िज़ाके खाये हुए, जूठन। सेहत=स्वास्थ्य। औहाम=वहम, भ्रम।

ज़ोरे-शबाबमें है, पीरीका ज़ोफ़ मुज़मिर,
जो आज हैं उमंगें, कल हसरतें यहाँ हैं।
जब आई मर्गे मबरम्, देखेंगे हम भी दमखम,
गर इसपै पाये ग़लबा, तो हम भी मदहख्वां हैं।
यह रंग और रोग़न, रानाइयां ये तेरी,
सुन ऐ जवाने राना, कुछ दिनकी मेहमां हैं।
अव्वल यहाँ फ़ना है आख़िर यहाँ फ़ना है,
जो ख़ाकसे बने है, वह ख़ाक बेगुमां हैं।
दो दिन है शादमानी, दो दिन है ज़िन्दगानी,
दो दिनकी है जवानी, दो दिनके नौजवां हैं।

दुनिया है इक समन्दर, साहिल न जिसमें बन्दर,
तूफ़ां हैं आते-रहते और चलती आँधियाँ हैं।
हरदम है यां तमव्वज, हरदम है यां तसादुम,
लाले पड़े हैं जांके, अहबाब नौहाख्वां हैं।
किश्ती है जिस्मेइन्सां, जिसमें न साज़ो-सामां,
बोसीदा सारे तख्ते, बोसीदा बादबां है।
हर वक्त है मुसीबत, हरदम दमे-हलाकत,
झोंका अजलका आया, और आदमी कहाँ हैं ?
कर नेक कुछ कमाई, कर दिलसे कुछ भलाई,
जिस वक्त मौत आई, फिर तू न हम यहाँ हैं।
दुनिया है 'मेहर' फ़ानी, क्या इसमें ज़िन्दगानी,
दो दिनकी मेहमानी, दो दिनके मेहमां हैं।

ज़ोरे-शबाब=जवानीकी ताक़त। पीरीका ज़ोफ़ मुज़मिर=बुढ़ापेकी निर्बलता छिपी हुई है। हसरतें=पछतावा। मर्गे-मबरम=प्रबल मृत्यु, वह मौत जो न टल सके। मदहख्वां=प्रशंसक। रानाइयां=सजाव-सिंगार। जवाने-राना=विलासी युवक। साहिल=किनारा, तट। तमव्वज=लहरें उठना, तरंगोंका संघर्ष। तसादुम=आपसमें टकराना। अहबाब नौहख्वां हैं=इष्ट-मित्र रो-पीट रहे हैं। किश्ती=नौका। जिस्मे-इन्सां=मनुष्य-शरीर। बोसीदा=गले-सड़े। बादबां=नावका पाल। दमे-हलाकत=विनाशका समय। मेहर=सूर्य, कविका उपनाम।

'माँझी मामा'

(कहानी)

आमवेलसे पाँच मील दूर एक ग्रामीण गिरजेमें मेरे पिता पादरी हैं। उसी गिरजेके सहनसे लगे हुए मकानमें मैं पैदा हुई थी। सबसे पहली बात जो मुझे इस समय भी याद है, वह यह कि मेरे पिता मेरी माकी क़ब्रके सरहाने गड़े हुए पत्थरपर खुदे हुए अक्षरोंसे मुझे अक्षर पहिचनवाते थे। मैं अकसर अपने पिताकी अध्ययनशालाके दरवाज़ेको खटखटाती थी। मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो मेरे कानोंमें पिताके ये शब्द अब भी सुनाई पड़ते हों—''दरवाज़ेपर कौन है? नन्हीं बेटी तू क्या चाहती है? जा माके पास खेल। उन्हींके पास सुन्दर अक्षरोंको पढ़।'' दिन-भरमें कई बार मेरे पिता अपने पोथी-पत्रा समेट कर रख देते थे और मुझे माके पास ले जाते थे। वे मेरी नन्हीं उँगली अक्षरोंपर रख-रखकर मुझसे मिलाकर अक्षर बँचवाते थे। इस प्रकार मेरी माकी क़ब्रपर गड़ी हुई शिला मेरी पहली पोथी हुई, जिससे मैंने हिज्जे करना और पढ़ना सीखा।

एक दिन मैं गिरजाघरके आँगनकी सीढ़ीपर बैठी हुई 'एलिजाबेथविलियर्स'—अपनी माका नाम बुदबुदा रही थी। उसी समय उधरसे एक भलेमानस निकले। उन्होंने मुझे स्पष्टरूपसे उन शब्दोंको दुहराते हुए सुना। वे ठहर गये, और उन्होंने उच्चस्वरसे कहा—'एलिजाबेथ विलियर्स', मानो मैंने कोई बड़ा काम कर डाला है। वे भलेमानस मेरे मामा जेम्स थे। वे नौ सेना-विभागमें लेफ्टिनेन्ट थे। वे मेरे माता-पिताके विवाहके कुछ ही सप्ताह बाद इंग्लैण्डसे किसी सुदूर स्थानको चले गये थे। अब बहुत दिनोंपर लम्बी समुद्रयात्राके बाद अपनी बहन—मेरी मा—से मिलने आये थे। माकी बीमारीका कोई भी समाचार उन तक न पहुँचा था, यद्यपि उन्हें मरे हुए एक सालसे ऊपर हो गया था।

जैसे ही मेरे मामाने मुझे आगनकी सीढ़ियोंपर बैठे देखा और माका नाम उच्चारण करते सुना, वैसे ही वे मुझे घूर घूरकर देखने लगे। मन-ही-मन उन्होंने मेरे मुखड़ेको अपनी बहनकी शक्ल-सूरतसे मिलान किया और सोचा कि हो न हो, यह मेरी भानजी ही है। मैं अपनी धुनमें मस्त थी, मुझे उनकी ओर देखनेकी फ़ुर्सत ही कहां थी। मैं तो उसी तरह माका नाम रटती चली जाती थी।

' नन्हीं बच्ची इतना बढ़िया उच्चारण करना तुम्हें किसने सिखाया?'' मेरे मामाने पूछा।''

''माने।'' मैंने जवाब दिया। क्योंकि उस समय मेरी यही धारणा थी कि क़ब्रकी शिलाके शब्द मेरी 'मा'के एक अंग हैं, और उन्होंने मुझे उच्चारण करना सिखाया है।

"तुम्हारी मां कौन है?" मेरे मामाने फिर पूछा।

''एलिजाबेथ विलियर्स।'' मैंने जवाबमें कहा।

उसी समय उन्होंने मुझसे कहा—''तू मेरी भांजी है, चल तेरे ही साथ मैं माके पास चलूँगा।''

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और घरकी ओर ले चले। वे अपने मनमें इस बातसे बड़े प्रसन्न थे कि उन्होंने अपनी भानजीको पहचान लिया। वे मन-ही-मन यह विचारने लगे कि उनकी बहन जब यह देखेगी कि उसकी नन्हीं बेटी बहुत दिनोंके बिछुड़े माझी मामाको ढूँढ़ लाई है, तो प्रसन्नतासे आश्चर्य-चकित हो जायगी।

मैं उन्हें माके पास ले जानेके लिए राज़ी हो गई, पर माके पास पहुँचनेके रास्तेको लेकर मुझमें उनमें कुछ झगड़ा हो गया। मामा उस सड़कसे होकर चलनेको कहते थे, जो घरको गई थी; परन्तु मैं उन्हें गिरजाघरके श्मशानकी ओर चलनेको कहती थी। मैंने ज़ोर देकर कहा कि माके पास जानेका यही अकेला रास्ता है। वे मासे मिलनेके

लिए अधीर हो रहे थे, अत: वे अपनी छोटी भानजीसे अधिक बकवाद करना नहीं चाहते थे। उन्होंने मुझे आँगनकी सीढ़ियोंपर से उठा लिया और मेरे बग़ीचेके फाटककी ओर चले।—"नहीं, मैं इस रास्तेसे नहीं जाऊँगी," कहते हुए मैंने उनका हाथ छोड़ दिया और फिर कहा—"आप रास्ता नहीं जानते, मैं आपको ले चलती हूँ।"—यह कहकर मैं ख़ूब तेज़ीके साथ लम्बी-लम्बी घासोंपर फुदकती हुई चली। छोटी-छोटी भटकटैया और नीची क़ब्रोंको फाँदती हुई मैं आगे बढ़ रही थी। मेरे मामाने कहा—"मेरी नन्हीं भानजी भी कैसी ज़िद्दिन है! अरी बेटी, तेरे जन्मके पहले ही से मैं तेरी माका घर जानता हूँ।" अन्तमें मैं अपनी माकी क़ब्रपर ठहर गई। "मा यह है,"—कहकर मैंने क़ब्रके शिलालेखकी ओर उँगलीसे संकेत किया। मेरी आवाज़में उस समय बड़ा उल्लास था, क्योंकि मैंने सिद्ध कर दिखाया कि मैं ही ठीक रास्ता जानती थी। मैंने इस विचारसे अपने मामाकी ओर देखा कि अब वे निश्चय ही अपनी भूल स्वीकार करेंगे, लेकिन यह क्या! उनका चेहरा बिलकुल ही उतर गया। मैं उन्हें देखकर उस समय इस क़दर डर गई कि बादमें क्या हुआ, मुझे ठीक-ठीक याद नहीं। मुझे स्मरण है कि मैंने उनके कोटका दामन पकड़कर कहा—"महाशयजी, महाशयजी! यह क्या?" और उन्हें वहाँसे हटानेकी कोशिश की। मेरी समझमें न आया कि मैं क्या करूँ, मेरा दिमाग़ चक्कर खाने लगा। मैंने सोचा कि माके पास लाकर उन्हें फूट-फूटकर रुलाया, यह मैंने अच्छा नहीं किया; मगर बात क्या है, मैं तब तक न समझ सकी थी। मेरे लिए तो वह क़ब्र बड़े आनन्दकी चीज़ थी। घरपर तो मेरे पिता अकसर मेरी बकवादसे ऊब उठते थे और मुझे अपने पाससे हटा देते थे; मगर यहाँ उनपर मेरा पूरा अधिकार था। यहाँ मैं जो चाहती वह कहती थी और जैसे चाहती, वैसे खेलती थी। माके पास आनेमें हम लोग बड़े प्रसन्न और ख़ुश रहते थे। मेरे पिता मुझसे कहते थे कि यहाँपर मा शांत-भावसे सोई हुई हैं। वे यह भी कहते थे कि हम और तुम एक दिन इसी तरह माकी बग़लमें क़ब्रमें सोवेंगे। जब मैं सोनेके लिए जाती और अपना नन्हासा सिर तकियेपर रखकर लेटती, तो मुझे मालूम पड़ता था कि मैं अपने पिताके साथ माकी बग़लमें सो रही हूँ। मेरे बालपनके सुख-स्वप्न मुझे माकी क़ब्रमें खींच ले जाते थे, जहाँ मुझे अतुल शांति मिलती थी। माके रूपकी मैंने कभी कल्पना ही नहीं की थी। मैं तो शिलालेखको ही मा समझती थी और उसकी बग़लमें मुलायम घासपर अपने पिताकी बाँहपर सिर रखकर सोनेकी कल्पना करती थी।

मेरे मामा कितनी देर तक शोक-सिन्धुमें डूबते और उतराते रहे, यह मुझे ख़बर नहीं; पर मैं तो उतनी ही देरमें ऊब उठी। अन्तमें उन्होंने मुझे गोदीमें उठा लिया, और इतने ज़ोरसे दबाया कि मैं रो उठी। रोती हुई मैं पिताके पास दौड़ी। और उनसे जाकर कहा कि कोई मनुष्य माकी क़ब्रके सुन्दर अक्षर देख-देखकर रो रहा है।

निःसन्देह मामा और पिताजीकी भेंट उस समय बड़ी ही मर्मस्पर्शी थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि जीवनमें सबसे पहली बार मैंने अपने पिताजीको रोते देखा। मैं उस समय बहुत ही दुखी थी। मारे दुखके बेचैन हो रही थी। मैं रसोईघरमें घुस गई और अपनी नौकरानी सूसनसे कहा—"सूसन, पिताजी रो रहे हैं।" सूसनने मुझे अपने ही पास रोक रखना चाहा, जिसमें मामा और पिताजीकी परस्पर बातचीतमें विघ्न न डाल सकूँ; परन्तु मैं तो झट भागकर बैठकख़ानेके दरवाज़ेपर जा पहुँची और दबे पाँवों भीतर घुसी। मामा और पिताजी बातचीत कर रहे थे। मैं पिताजीके घुटनोंके बीच घुसकर खड़ी हो गई। मामाने चाहा कि वह मुझे अपनी गोदीमें बिठा लें, पर मैंने उनकी तरफ़से मुँह फेर लिया और पिताजीसे और भी चिमट गई। मुझे मामाके ऊपर बड़ा ग़ुस्सा था, क्योंकि उन्होंने मेरे पिताजीको रुलाया था।

उस दिन मुझे यह पहली बार अनुभव हुआ कि माकी मृत्यु भी भयंकर दुःख है, क्योंकि मैंने अपने पिताको माकी लम्बी बीमारी और मृत्युकी दुखद कहानी कहते सुना। उन्होंने यह भी कहा कि मेरी माकी मृत्युसे उन्हें कितनी पीड़ा हुई। मामाने कहा कि इतनी छोटी बच्चीको लेकर रहना बड़े दुःखकी बात है, परन्तु पिताजीने उत्तर दिया—"मैं केवल इसी लड़कीके सहारे ही जी रहा हूं, नहीं तो मारे दुःखके अब तक तो कभीका मर गया होता।" मुझसे मेरे पिताको क्या सान्त्वना मिलती थी, यह सोचकर मैं आश्चर्य करने लगी, पर मैंने सोचा कि पिताजी मारे स्नेहके मेरी बड़ाई कर रहे हैं, नहीं तो मैं उनको किस प्रकार शांति और सुख दे सकती थी, इसकी मुझे कोई कल्पना ही न थी। मुझे स्वप्नमें भी यह खयाल न था कि पिताजी भी कभी दुःखित हुए हैं। उनके दुःख और कष्टकी बात मेरे लिए एकदम नई थी। उनकी वार्तामें सदा मिठास, कोमलता और दया भरी रहती थी। मैंने न तो कभी उन्हें रोते ही देखा था और न कभी उस प्रकारके रंजका कोई चिह्न ही प्रकट करते, जिस प्रकार मैं अपनी नन्हीं तकलीफ़ोंको प्रकट किया करती थी। उस समय मुझमें वास्तविक बात समझनेकी शक्ति न थी, पर उस दिनसे मेरे मनमें अपनी स्वर्गीय माकी बात बैठ गई, और मैं बराबर उनकी दुखभरी कहानीकी बात सोचने लगी।

दूसरे दिन मैं रोज़मर्राकी आदतके अनुसार पिताजीकी अध्ययनशालाके द्वारपर गई कि पिताजीको लेकर माके पास जाऊँ, परन्तु मैं द्वारपर पहुँचकर चिहुँक उठी, और मेरी हिम्मत न पड़ी कि दरवाज़ा खटखटाऊँ। मैं बड़े असमंजसमें पड़ गई। कभी तो रसोईघरकी ओर जाती, कभी अध्ययनशालाकी ओर लौट आती, पर यह निश्चित न कर सकी कि मुझे क्या करना चाहिए। इतने ही में बरामदेमें मामा मिल गये, और उन्होंने पूछा—"बेट्सी, (यही मेरा नाम है) बग़ीचेमें टहलने चलेगी?" मैंने इनकार कर दिया, क्योंकि यह मेरी मनचाही बात न थी। मुझे तो केवल माकी क़ब्रपर बैठकर पिताजीसे बातें करना आनन्दमय मालूम पड़ता था। मामाने बहुतेरी चेष्टा की कि वे मुझे अपने साथ फुलवारीमें ले जायँ, पर फिर भी मैं "ना, ना" कहती हुई रोकर रसोईघरमें भाग आई। मामा भी मेरा पीछा करते हुए रसोईघरमें आ पहुँचे। सूसनने कहा—"न जाने आज बेट्सीको क्या हो गया है कि रोनी-सी सूरत लिये घूम रही है, किसी बातमें इसका मन ही नहीं लगता।" "हाँ," मामाने कहा—"मैं तो समझता हूँ कि जीजा इसे इकलौती समझकर बिगाड़े डालते हैं।" मामाके इस वाक्यसे मेरे क्रोधका पारा चढ़ गया, क्योंकि मैं अभी तक यह न भूल सकी थी कि इन्हीं नये मामाके आगमनसे सर्वप्रथम मेरे घरमें दुःखका श्रीगणेश हुआ है। मैं बड़े ज़ोरसे चीख उठी यहाँ तक कि मेरी आवाज़ सुनकर पिताजी भी अध्ययनशालासे बाहर निकल आये, और पूछने लगे—"बेट्सीको क्या हुआ?" रसोईघरमें आकर उन्होंने मामाको अध्ययनशालामें भेज दिया और कहा—"मैं ही अपनी अनमनी बेटीको मना सकूँगा।" जब मामा रसोईघरके बाहर हुए, तो मैंने भी रोना बन्द किया। मेरे पिताने न तो मेरे चिड़चिड़ेपनके लिए डाँटा और न मेरे रोनेका कारण ही पूछा, किन्तु वे शीघ्र ही मुझे लेकर माकी क़ब्रके पास जा बैठे। उस दिन न उन्होंने मुझे कोई सबक़ दिया और न हरी घासके भीतर सोई हुई माकी ही कोई चर्चा की। मैं भी क़ब्रके ऊपरसे ज़मीनपर कूदी-फाँदी नहीं, कोई क़िस्सा-कहानी भी न हुई। मैं अपने पिताजीके घुटनोंपर बैठी उन्हींके चेहरेकी ओर निहार रही थी, और मन-ही-मन सोचती थी कि न जाने वे आज इतने उदास क्यों दीखते हैं। रोते-रोते और सिसकियाँ भरते-भरते मैं थक गई थी, इसलिए पिताके दुःखका कारण सोचते-सोचते मुझे नींद आ गई और मैं खर्राटे भरने लगी।

मामाको सूसनसे यह मालूम हो गया कि मेरे पिता और मैं बराबर क़ब्रपर जाया करती हैं। उसने उनसे यह भी कहा—"जब तक मालिक मालकिनकी क़ब्रपर बेट्सीको पढ़ाने

ले जायँगे, तब तक उन्हें मालकिनके शोकसे छुटकारा न मिलेगा। सम्भव है इससे उन्हें क्षणिक शांति मिलती हो पर मेरी समझसे तो इससे उनका घाव कभी न भरेगा।'' माकी क़ब्रको देखकर मामाके कलेजेमें ऐसा गहरा धक्का लगा कि सूमनका अक्षर-अक्षर उनकी समझमें आ गया, और उन्होंने सोचा कि यदि बेट्सीके पठन-पाठनका वे कोई दूसरा क्रम ढूँढ़ निकालें, तो सम्भवत: पिताजीका उनकी बहनकी क़ब्रपर जानेका बहाना जाता रहे। यह युक्ति उनके दिमाग़में आते ही वे पासके एक बाज़ारसे कुछ पुस्तकें मोल लानेके लिए चल दिये।

मैंने अपने मामा और सूसनकी बातचीत सुनी। मुझे अपने आनन्दमें उनका हस्तक्षेप न रुचा। मैंने देखा कि उन्होंने सरपर हैट रखा, हाथमें छड़ी ली और बाहर निकल गये। मैं मन-ही-मन मनाने लगी कि ईश्वर करे वे फिर उसी समुद्रके पार चले जायँ जहाँसे वे—सूसन कहती है—आये हैं। 'समुद्रका पार' कहाँ था, यह मैं नहीं कह सकती थी, मगर यह मैं समझ गई थी कि वह कहीं बहुत दूर होगा। मैं गिरजेके आँगनकी सीढ़ीपर बैठ गई और कहने लगी—''अच्छा हो, अब मामा न आवें, ईश्वर करे वे समुद्रपारसे न लौटें।'' मैं यह बहुत धीरे-धीरे कह रही थी और मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे मैं क्रोधसे बदमिज़ाज हो रही हूँ। मैं सीढ़ीपर बैठी रही। यहां तक कि मामा क़सबेसे अपनी चीज़ें मोल लेकर आ गये। मैंने देखा कि वे बग़लमें एक पुलिन्दा दबाये लम्बे-लम्बे डग धरते हुए चले आ रहे हैं। उन्हें फिर देखकर मुझे बड़ा दुख हुआ, मेरी भौंहें तन गईं और मैंने मुहँ लटका लिया। उन्होंने अपना पुलिन्दा खोला और कहा—''बेट्सी मैं तेरे लिए बड़ी सुन्दर किताब लाया हूँ।'' मैंने उनकी ओरसे मुँह फिराकर कहा—''मुझे किताब न चाहिए;'' मगर मैं आंख बचाकर अपनेको किताब देखनेसे न रोक सकी। पुलिन्दा खोलनेकी जल्दीमें उन्होंने सब किताबें ज़मीनपर छितरा दीं, इसलिए मुझे इधर-उधर सुनहरे चमकते हुए कवर-पृष्ठ और उड़ते हुए पन्नोंकी सुन्दर तसवीरें देख पड़ने लगीं। अहा वे कैसी सुन्दर थीं। मेरा तमाम क्रोध काफ़ूर हो गया और मैंने मामाका मुँह चूम लिया, इसी प्रकार जब मेरे पिता मेरे मनकी कोई बात करते थे, तब मैं कृतज्ञतारूपसे उनका मुँह चूम लिया करती थी।

मामा किताबें क्या मोल लाये, अपने लिए एक बला मोल लाये। उन्होंने मुझे इतनी अच्छी तरह हिज्जे करते सुना था, अत: वे समझते थे कि किताब हाथमें देनेसे ही मैं पढ़ने लगूँगी। मैं माकी क़ब्रकी शिलाके अक्षर पढ़नेकी आदी थी, परन्तु इन नई किताबोंके अक्षर इतने छोटे थे कि वे मेरे लिए ग्रीक अक्षरोंकी तरह दुर्बोध थे। मैं उन्हें बिलकुल न पढ़ सकती थी; मगर मेरे मांझो मामा इससे ज़रा भी हताश नहीं हुए। यद्यपि उन्होंने कभी शिक्षकका खेल नहीं खेला था, फिर भी उन्होंने अथक परिश्रम और धैर्यके साथ मुझे उन छोटे अक्षरोंको पढ़ना सिखाया।

अब कभी उन्हें यह समझ पड़ता कि मेरा और पिताका मन माकी क़ब्रकी ओर जानेका है, तभी वे किसी सैर सपाटेका प्रस्ताव कर देते। यदि मेरे पिता आपत्ति करते कि वह स्थान बहुत दूर है, बेट्सी चल न सकेगी, तो वे फ़ौरन मुझे उठाकर अपने कंधेपर बिठा लेते और कहते—''कोई हर्ज नहीं है, बेटसी सवारीपर चलेगी।'' इस प्रकार उनके कंधेपर बैठकर मैंने अनेकों मीलोंकी यात्रा की है।

एक बात और थी। जब कभी हम लोग इन सैर सपाटोंके लिए जाते, तो मामा सूसनसे चुपकेसे कहकर कुछ भोजनका सामान बनवाना कभी न भूलते थे। यद्यपि वे रोज़ ही ऐसा करते थे, फिर भी हम लोग घूमते-फिरते किसी छायादार वृक्षके नीचे बैठते और मामा एकाएक जेबमें हाथ डालकर भोजनकी चीज़ें निकालकर बाँटने लगते, तो मेरे पिताको बड़ा अचम्भा होता था। तब मैं उनके दूसरे जेबमें झांककर देखती थी कि वे अँगूरी शराबकी बोतल तथा मेरे लिए पानीकी छोटी शीशी भी लाये हैं या नहीं। यदि वे दैवयोगसे पानी लाना भूल जाते थे, तब वे इस बातकी बड़ी हँसी करते थे कि अब तो बेट्सीको भी शराब

प्रकाश और छाया

[चित्रकार—श्री एम० के० भर
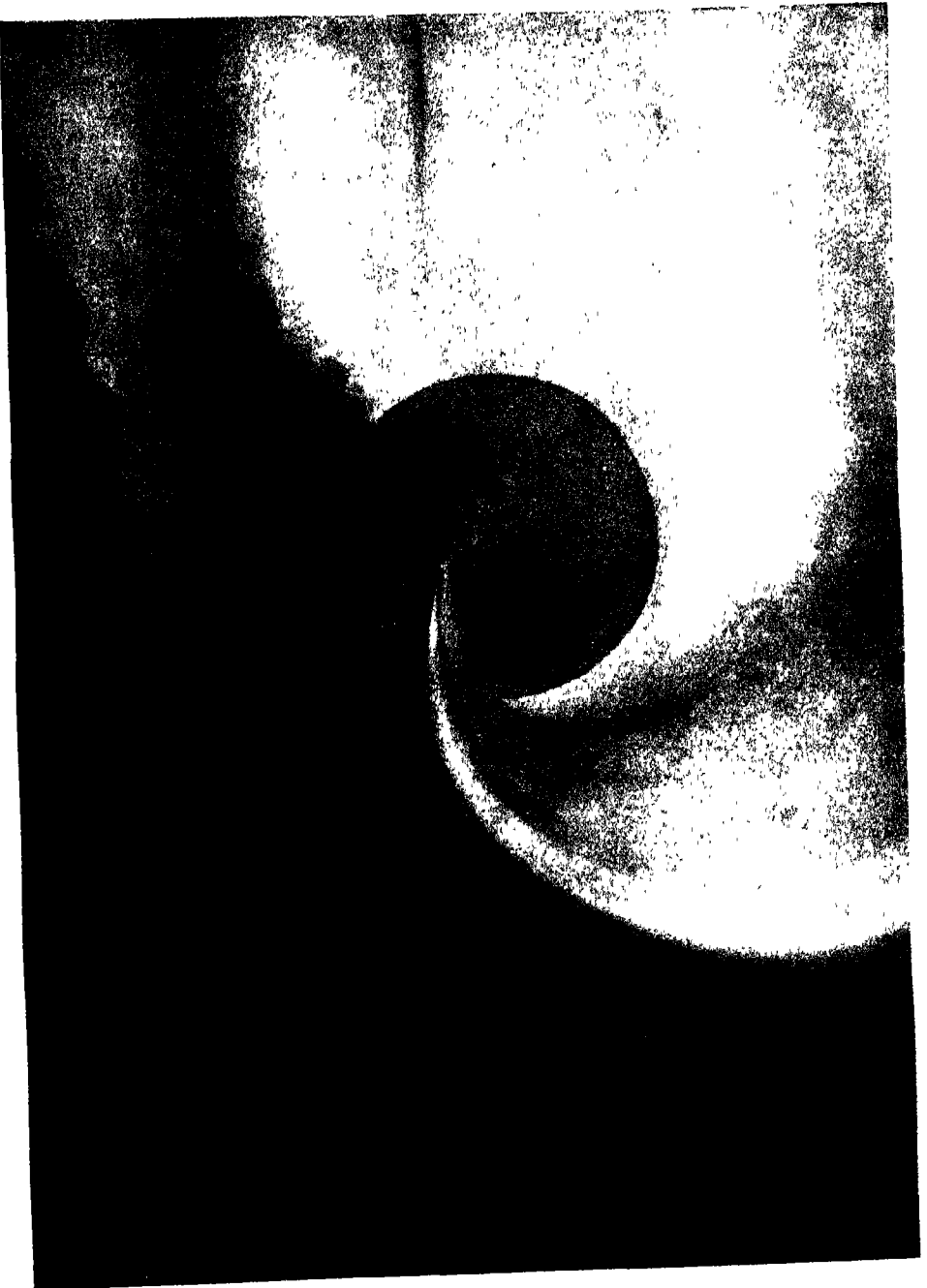
पीती पड़ेगी। ये सब तो लड़कपनकी बातें हैं। अपनी इस मूर्खतापूर्ण कथा कहनेके बजाय यदि मुझे मामाकी समुद्र-यात्राओंके किस्से—जिन्हें वे दोपहरको पेड़के नीचे बैठकर भोजन करते समय सुनाया करते थे—याद होते तो कैसा अच्छा होता।

मेरे मामा मेरे घर बहुत दिन ठहरे रहे। उनका आगमन मेरे जीवनकी ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना है कि उनकी बातें सुनते-सुनते आप थक जायँगे, लेकिन उनके चले जानेके बाद मेरी कथा बड़ी जल्दी समाप्त हो जायगी। गर्मीके महीने बीत गये, किन्तु बहुत जल्द नहीं; क्योंकि सैर-सपाटों और मामाके साहसपूर्ण कार्योंकी सुन्दर कहानियोंके कारण वे मुझे वर्षोंके समान जान पड़े। मुझे उस वर्षके जाड़ेका आगमन याद है। मामाने मुझे एक मोटा जाड़ेका कोट खरीद दिया था। जिस समय पहली बार मैंने उस कोटको पहना था, उस समय मैं गर्वके मारे फूली न समाती थी। आह! वे दिन भी कैसे सुखदायी थे!

जाड़ेके दिनोंमें हम लोग बहुत कम बाहर जाते थे, और जो जाते भी थे तो दूर नहीं। अब मेरी पुस्तकें ही मेरे मनोरंजनकी मुख्य सामग्री थीं। हाँ, अकसर पढ़ना छोड़कर मैं मामाके साथ खेल किया करती थी; मगर वे खेल सदा लड़ाईमें ही समाप्त होते थे, क्योंकि मामा बड़ी बुरी तरह खेलते थे। परन्तु इससे पहलेसे ही मैं मामाको बड़ा प्यार करने लगी थी। मामाकी उपस्थितिमें मैंने जो उन्नति की, वह निःसन्देह बहुत बड़ी थी। अब मैं अच्छी तरह पढ़ लेती थी। पिताजी और मामाकी बातचीत सुनते रहनेके कारण अब मुझे कुछ-कुछ समझ भी आ गई। इसीसे मेरे पिता मामासे कहा करते—"जेम्स, तुमने मेरी नन्हीं बेटीको मेरे मनबहलावके योग्य छोटी सी महिला बना दिया।"

मेरे पिता अक्सर अपना धार्मिक व्याख्यान लिखने, किसी बीमारको देखने अथवा अपने गरीब पड़ोसियोंको सलाह-मशविरा देनेके लिए जाते थे, और मैं और मामा अकेले रह जाते थे। उस समय हम दोनों बड़ी देर तक बातें किया करते थे। मामा मुझे बताया करते थे कि मुझे अपने पिताको सुखी बनानेके लिए क्या कोशिश करनी चाहिए, मामाके चले जानेके बाद मुझे अपनी उन्नतिके लिए कौन-कौनसे प्रयत्न करने चाहिए। अब मेरी समझमें आया कि मामा मुझे और पिताको माकी कब्रके पास जानेसे रोकनेके लिए क्यों इतनी कोशिश करते थे। मैं अब भी छिपकर माकी कब्रपर जाया करती थी, परन्तु अब वहाँ जानेपर मेरे मनमें एक प्रकारका भय, एक प्रकारकी भक्तिके भाव उदय हुए बिना न रहते थे। मामा बताया करते थे कि मेरी माता कैसी सुशील महिला थीं। अब मैं अपने मनमें सचमुच माकी मूर्तिकी कल्पना करने लगी। इससे पहले मेरी कल्पनामें 'मा' शब्द एक ऐसा आदर्श मात्र था, जिसका वास्तविक जीवनसे कोई सम्बन्ध न हो। मामा मुझे बताते थे कि ज़मींदारके घरकी महिलाएँ भी—जो गिरजेमें प्रार्थनाके समय सबसे आगे बैठती थीं—उतनी कान्तिमयी नहीं हैं जैसी मेरी मा थी। सबसे भली स्त्री भी उतनी भली नहीं है, जैसी मेरी प्यारी मा थी। यदि मा जीवित होती, तो मुझे मामासे, जो अपनेको गँवार माँझी कहा करते थे, ज्ञानकी छोटी-मोटी बातें या सूसनसे सीना-पिरोना न सीखना पड़ता, बल्कि मेरी मा ही मुझे स्त्रियोचित व्यवहार और बातें सिखाती। वही मेरे लिए ऐसी पुस्तकें चुनती, जो मेरी शिक्षाके उपयुक्त होतीं, क्योंकि मामा इस सम्बन्धमें कुछ भी न जानते थे।

यदि जीवनमें मैं कभी यह जान सकूँगी कि स्त्री-चरित्रमें सबसे सुन्दर और सबसे उपयुक्त क्या है, तो उसका श्रेय मेरे गँवार और असंस्कृत मामाकी शिक्षाको है। उन्होंने मुझे यह बतला-बतलाकर कि मेरी मा मुझे क्या-क्या शिक्षा देती, मुझे कैसा बनाती, यह सिखा दिया कि मुझे कैसा होना चाहिए। मेरे मामाके आनेके थोड़े ही दिन बाद ज़मींदारके घरकी महिलाओंसे मेरा परिचय कराया गया। उस समय मैं न तो ज़रा भी झिझकी और

न शरमाकर सिर ही नीचा किया—जैसा अन्य देहाती लड़कियाँ किया करती हैं, और यदि मेरे मामा न आये होते, तो मैं भी करती—बल्कि सरलता और विनयके साथ मीठे स्पष्ट स्वरमें बातें करती रही। मेरे मामाने मुझे बताया था कि मेरी माता भी इसी प्रकार व्यवहार करती थी। शरमाकर सिर नीचा करनेके बजाय मैं उन लोगोंकी ओर देखती रही। उस समय मैंने विचार किया कि कोई भद्र महिला भी कैसी भली लगती है। मैंने अपने मनमें कल्पना की कि मेरी मा भी कैसी भली लगती होगी, क्योंकि वह इन महिलाओंसे कहीं अधिक कान्तिमयी थी। उन स्त्रियोंने मेरे पितासे मेरी तारीफ की, और कहा कि उन्होंने मुझे व्यवहार-बर्तावकी बड़ी अच्छी शिक्षा दी है। उस समय मैंने अपने मनमें कहा कि जब तक मैं भली लड़की बनी रहूँ, पिताजीको मेरे व्यवहार-बर्तावकी परवाह नहीं है। यह तो मामाने सिखाया है कि मैं माकी तरह कैसे बर्ताव किया करूँ। अब मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकती कि मामा गँवार या असंस्कृत थे, क्योंकि उनकी शिक्षा मुझे ऐसी प्रभावशाली जान पड़ी कि मैं उसे कभी न भूलूँगी, उनकी बताई बातें मुझे जीवन भर काम देंगी। वे जितने शब्द—जैसे लज्जा, नम्रता, शील, प्रेम, विनय आदि—काममें लाते थे, उनके अर्थ मुझे बताते थे और गिरजेकी प्रार्थनामें आनेवाली महिलाओं और उनकी पुत्रियोंके उदाहरण देकर समझाया करते थे। मेरे पिताके सुन्दर उपदेशोंसे आकर्षित होकर ज़मींदार वंशकी महिलाओंके सिवा पास-पड़ोसके और भी अन्य परिवारोंकी महिलाएँ आया करती थीं।

जब मामाने हमारे घरसे विदा ली, तब वसन्तका आगमन हो रहा होगा, क्योंकि उस समय गुलाबकी झाड़ियोंमें फूल आने लगे थे और बागके पेड़ोंमें नई पत्तियाँ निकलने लगी थीं। जब वे चले गये और पेड़ोंके झुरमुटके बीचसे मैंने उन्हें आँखोंसे ओझल होते हुए देखा, उस समय दु:खके मारे मेरा कलेजा फटने लगा, मैं फूट-फूटकर रोने लगी। पिता उन्हें पहुँचानेके लिए बाज़ार तक गये थे, जहाँसे वे गाड़ीपर सवार होकर लन्दन चले गये। सूसनने मुझे सान्त्वना देनेकी चेष्टा की, परन्तु वह मुझे भली न लगी। मैंने सोचा कि चलकर आँगनकी उस सीढ़ीपर बैठूँ, जहाँ मैंने पहले-पहल मामाको देखा था और उसी दिनका स्मरण करूँ। मगर जैसे ही मैं वहाँ जाकर बैठी, वैसे ही मुझे याद पड़ा कि उस दिन मैंने उन्हें मूर्खतासे माकी क़ब्रपर ले जाकर कैसा डरा दिया। फिर मुझे स्मरण हुआ कि जब मामा किताबें लेने गये थे, तब इसी सीढ़ीपर बैठकर मैं कैसी दुष्टतासे मन-ही-मन मनाती थी कि मामा लौटकर न आवें। मामाके साथ मैं जितनी बार लड़ी थी, उस समय वे सब बातें मेरे मनमें उदय हो आईं। यह सोचकर कि अब मैं मामाके साथ न खेल सकूँगी, दु:खके मारे मेरा हृदय विदीर्ण होने लगा। मैं भागकर घरके भीतर सूसनके पास चली गई और उसकी सान्त्वनासे ही मनको धीरज देने लगी।

कई दिन बाद सन्ध्याको मैं पिताजीके साथ अंगीठीके पास बैठी थी। अँधेरा हो चला था, पर लैम्प अभी तक नहीं जला था। मैंने पिताजीसे अपने मनकी सब बातें कहीं। मैंने उन्हें अपनी दुष्टताकी बातें बताईं और कहा कि मामासे कितनी बार लड़ी हूँ, "इसका अब मुझे बड़ा खेद है।

पिताजी मुसकराये और उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर कहा—"बेटी, आओ मैं तुम्हें सब बातें बताऊँ। जिन्हें हम प्यार करते हैं, वे जब हमसे बिछुड़ते हैं, तब हम सबके मनमें ऐसे ही भाव आते हैं। जब हमारे मित्र और स्नेही हमारे पास होते हैं, उस समय हम उनके संगके सुखमें मगन रहते हैं, हमें अपने सुख और आनन्दका ध्यान नहीं रहता और न हम अपने दैनिक कार्योंका पूरा-पूरा विचार ही रखते हैं। उस समय हम स्वतन्त्रतासे, उनके साथ अपने हर्ष-विषाद बँटाया करते हैं, और यदि कोई छोटी-मोटी तकरार भी हो जाती है तो वह—जब हम प्रसन्नचित्त होते हैं तब—हमारे स्नेहको और भी

गाढ़ा कर देती है। परन्तु जब हमारे स्नेहपात्र हमसे सदाके लिए बिछुड़ते हैं, तब वही झगड़े हमें अपने दोषके समान दिखाई देते हैं। तुम्हारी माँसे और मुझसे कभी झगड़ा नहीं हुआ, फिर भी उनके चिर-वियोगके आरम्भिक दिनोंमें मेरे मनमें न मालूम कितनी ही बातें आती थीं कि मैंने उन्हें और भी सुखी क्यों न बनाया। बेटी, यही हाल तुम्हारा है। तुमने अपने मामाके लिए, जो कुछ एक लड़की कर सकती है, किया। तुम्हारे मामा भी तुम्हें बहुत ज्यादा प्यार करते हैं। लड़ाई-झगड़ेकी छोटी छोटी बातोंको, जो इस समय तुम्हारे हृदयमें खटक रही हैं, तुम्हारे मामा बड़े आनन्दसे स्मरण करते हैं। जब मैं उन्हें पहुँचाने गया था, उन्होंने रास्तेमें मुझसे कहा कि जब वे पहले-पहल आये, तो उन्हें तुम्हारा मन अपने हाथमें लेनेमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा। अब जब वे दूर विदेशमें होंगे, इन सब बातोंको प्रसन्नतासे स्मरण करेंगे। तुम्हारा खेद निर्मूल है, इसे दूर करो। हाँ, आगेसे यह सीख लो कि जहाँ तक सम्भव हो, अपने स्नेहियोंसे नम्रता और दयाका व्यवहार करो। जब वे तुमसे बिछुड़ जायँगे, तब तुम यही विचार करोगी कि तुमने उनके साथ काफ़ी नम्रताका व्यवहार नहीं किया। जिस प्रकारके भाव तुमने अभी कहे हैं, वैसे भाव प्राय: सभी मनुष्योंके हुआ करते हैं। जब मैं न रहूँगा तो तुम्हारे मनमें ऐसे ही भाव आयँगे, और जब तुम न रहोगी तो तुम्हारे बच्चोंके हृदयमें भी यही भाव उत्पन्न होंगे। लेकिन बेटमी, तुम्हारे मामा फिर लौट आयँगे। अच्छा, अब यह बताओ कि तुम्हारे मामा जो पढ़ा हुआ तोता लायँगे, उसे रखनेके लिए पिंजड़ा कहाँ मिलेगा। ज़रा सूसनसे कह दो कि लैम्प और चाय दे जाय। उससे पूछो कि उसके बढ़िया केक बन गये या नहीं।"

अनुवादक—अम्बिकाप्रसाद मिश्र

अमरवाणी

महात्मा गांधी

अपनेमें जो नहीं है, उसे बताते रहनेमें अहंकार है ममता है।

दंड शिक्षकके अज्ञानका सूचक है।

पुराना है इसलिए पवित्र है, इस धारणामें जितना दोष है, उतना ही दोष पुराना अतएव दूषित माननेमें है।

जनताका दोष बतानेके बदले यदि हम अपनी कार्य-दक्षताकी त्रुटि देख लें, तो प्रगति सत्वर हो।

दूसरोंसे हम अपने साथ जैसे बर्तावकी इच्छा रखते हैं, वैसा ही बर्ताव हमें दूसरोंके साथ करना चाहिए।

सत्याग्रहका अर्थ यदि सत्यके लिए तपस्या नहीं, तो और क्या है?

मर्यादा और नम्रता-पूर्वक सहे जानेवाले मूक दु:खोंकी प्रतिध्वनि जितने प्रभावशाली ढंगसे सुनाई पड़ती है, वैसी और किसीकी नहीं सुनाई पड़ती।

हर तरहकी बुराई बुराईपर ही टिक सकती है।

सत्याग्रहमें पाखंडको स्थान ही नहीं।

—काशीनाथ त्रिवेदी

नवयुवकोंके लिए आठ सिद्धान्त*

हमें ऐसे सिद्धान्तोंका प्रतिपादन और प्रचार करना है, जो मनुष्यको सजीव और कर्मनिष्ठ बना दें और मानव-जीवनको मनोहर और सुखमय। उदाहरणार्थ--(१) हमको अपनी जातिके नवयुवकोंके दृष्टिकोण और उनके जीवनकी फिलासफीको बदलना है। उनको यह बतलाना है कि यह संसार मिथ्या नहीं है। यह हमारा कार्यक्षेत्र है। मानव-समुदायका हित-चिन्तन करते हुए सुख और समृद्धिके साथ जीवन व्यतीत करना हमारा ध्येय है। मिस्टर बर्ट्रेंड रसल और उनकी धर्मपत्नीके शब्दोंमें—"The right to be happy is ours," और "The conquest of happiness in our bean ideal"—प्रारब्ध और भाग्य उद्योगके चेरे हैं, और जो कुछ दोष हममें अथवा हमारे समाजमें विद्यमान हैं, उनका उत्तरदायित्व हमारे ऊपर है।

(२) हमको बुद्धिवाद तथा व्यक्तिगत-स्वातंत्र्य (Rationalism and Individual liberty) का प्रचार करना है। पुराने शास्त्रोंकी दुहाई निरर्थक है। उनका उपयुक्त स्थान है कुतुबखानेकी अलमारीमें या किसी पुरातत्त्वखोजी की मेजपर, व्यावहारिक मनुष्यकी बगलमें नहीं। हमारे देशके विख्यात पंडित प्रोफेसर राधाकृष्णनने अभी उस दिन कहा था कि यदि आज भी हम मनुस्मृतिको अपनी जीवन समस्याओंको हल करनेके लिए ढूँढ़ते हैं, तब तो यही अच्छा होता कि मनु महाराज संसारमें उत्पन्न ही नहीं हुए होते। कहनेका अभिप्राय यह है कि मनुष्यकी बुद्धि उन्नतिशील है। ईश्वरीय ज्ञान किसी पुस्तकमें नहीं है, बल्कि उसका आभास न्यूनाधिक मात्रामें प्रत्येक मनुष्यकी बुद्धिमें विद्यमान है। प्रत्येक मनुष्यका अधिकार है और उसका धर्म है कि वह अपने हित और अहितकी समस्यापर स्वयं सोचे और बिना किसी दूसरेके समान स्वत्वको क्षति पहुँचाये हुए अपने निर्धारित मार्गका अनुसरण करे। समुदाय और समूहका कर्तव्य है कि वह ऐसी अनुकूल परिस्थिति उपस्थित करे, जो व्यक्तिकी बुद्धिकी वृद्धिके लिए उपकारी हो और उसके अभीष्टके लिए सहायक हो। व्यक्तिके विकासके लिए समाजका होना आवश्यक है, और समाजकी जड़ व्यक्तिगत चरित्र (Individual character) की सुदृढ़ताके साथ गुथी हुई है। व्यक्ति और समाज एक दूसरेके ऊपर निर्भर हैं, उनका पारस्परिक सम्बन्ध है। हमारी सामाजिक समस्या समाजके एकीकरण (Integration) की है, प्रभुत्वकी नहीं। धार्मिक तथा सामाजिक उन्नतिका भवन बुद्धिवाद और व्यक्तिगत स्वतंत्रताकी नींवपर खड़ा किया जा सकता है। प्रो० हैडोके शब्दोंमें—"Morality implies freedom and deliberation, and progress implies conscious initiation."

(३) हमको समानता, भ्रातृभाव और मानव-धर्म (Equality, fraternity and humanity) के सिद्धान्तका प्रचार करना है। समानतासे मेरा मतलब सर्वांशमें समानता (Absolute Equality) से नहीं है, क्योंकि वह तो निरी असंगत और अन्यायकी बात है और जड़ताका चिह्न है। समानतासे मेरा मतलब अपेक्षाकी समानता (Proportionate equality) अथवा समान अवसर (Equality

* चतुर्वेदी-युवक-संघके सभापति अध्यापक विद्याधर चतुर्वेदी, एम० ए०, के भाषणका एक अंश।

of opportunity से है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, एक जातिका हो या दूसरीका, चाहे एक सम्प्रदायका हो या दूसरेका, उसकी योग्यता कर्मण्यता और उपयोगिताके अनुसार बराबर अधिकार मिलने चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य-मनुष्य बराबर हैं और उनके पारस्परिक व्यवहारमें स्नेह और सहृदयताका समावेश होना चाहिए।

(४) हमें स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताकी घोषणा करनी है। पुरुषोंको कोई अधिकार नहीं कि वह स्त्रीके ऊपर प्रभुत्व भोगें और उसे सर्वथा दासत्वमें रखें। स्त्रीके वही अधिकार हैं, जो किसी भी मानव-व्यक्तिके हैं। बस, बुद्धि और विवेककी कसौटी होनी चाहिए, और वह पुरुषके लिए भी उतनी ही खरी है जितनी स्त्रीके लिए। विवाहके साथ स्त्रीका व्यक्तित्व नष्ट नहीं हो जाता और उसके आचार-विचारका नियन्त्रण उसके पतिकी स्वेच्छासे नहीं होना चाहिए, बल्कि उस मानवधर्मके अनुसार होना चाहिए, जो उसपर और उसके पतिपर बराबर लागू है। विवाहमें उसकी सम्मतिकी उतनी ही ज़रूरत है, जितनी पुरुषकी। पतिकी उच्छृंखलता और अनाचारसे आतप्त होकर उसको परित्याग करनेका स्त्रीको उतना ही अधिकार है, जितना समान स्थितिमें पतिको है। इसी प्रकार विधवाको पुनर्विवाह करनेका उतना ही अधिकार है, जितना विधुरको है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि शिक्षा प्राप्त करनेका, यथोचित व्यवसाय अवलम्बन करनेका अथवा समाज-सेवा करनेका स्त्रीको उतना ही अधिकार है, जितना पुरुषको है।

(५) हमको इस सिद्धान्तका प्रचार करना है कि समाजका—जनसमुदायका कर्तव्य है कि निराश्रय बालकोंकी, समर्थ-अपाहिजों, रोगियों और गरीबोंकी यथोचित रीतिसे देख-रेख करे। वह समाजकी सम्पत्ति है, और उसकी उपयुक्त देख-रेख न करनेसे समाजको क्षति पहुँचती है और मानवधर्मका तिरस्कार होता है।

(६) हमको प्राकृतिक धर्म (Natural religion) का सुन्दर रहस्य समझाना है। अर्थात् प्राणीमात्रका और प्रकृति-मात्रका जीवन, जब तक कि मानव-जीवनको उससे कोई आशंका नहीं है, सुरक्षित है। हाँ, मानव जीवनके उपकारके लिए तथा सृष्टिके उपकारके लिए जीव और प्रकृतिका यथोचित उपयोग किया जा सकता है। जैसे बैल, गाय और घोड़ेसे काम लेना; कन्द और फल फूलका भोग करना और विज्ञानकी वृद्धिके लिए जीव और प्रकृतिकी हिंसा करना।

(७) अपने पूर्वजोंके लिए मानव-जातिके पुरखोंके लिए, मानव-जातिके भूतकालीन इतिहासके लिए यथोचित आदर और सम्मानका अंकुर हमें अपने नवयुवकोंके हृदयमें जमाना है। इंग्लैण्डके प्रसिद्ध दार्शनिक कारलाइलका कथन है—

'That respect for antiquity, the past of mankind and the heroes of the nations is the main-spring of individual character and youthful actions and goes a great way towards *inculcating patriotism.*"

(८) अन्तमें अपने नवयुवकोंको हमें यह बतलाना है कि परमात्मा किसी विशेष स्थानपर निवास नहीं करता। स्वर्ग किसी विशेष भूमण्डलका नाम नहीं है। प्रत्येक व्यक्तिमें न्यूनाधिक मात्रामें परमात्माका आभास है, और मानवसमुदायकी सेवा ही उसकी सबसे बड़ी उपासना और तपस्या है।

यह आठ सिद्धान्त जो मेरी समझमें आये हैं, मैंने आपकी सेवामें रखे हैं, और मेरी धारणा है कि मानव-सुखका तथा जातिके उत्थानका रहस्य इनमें भरा हुआ है। इन सिद्धान्तोंका प्रचार—इस औषधिका सेवन—हमारी जातिके, हमारे राष्ट्रके—सर्वप्रधान रोग मध्यकालीन संस्कृति और लकीरकी फकीरी (Medievalism Cum Conservatism) की जड़को काट देगा, और हमारे नवयुवकोंमें एक वह अग्नि फूँकेगा, वह जाग्रति और चैतन्यता उत्पन्न करेगा, जिससे हमारा समाज भी उस भावी पुनरुत्थान (Coming Renaissance) के लिए, उस नई सभ्यता और संस्कृतिको ग्रहण करनेके लिए तय्यार हो जायगी, जो हमारे देशकी, बल्कि संसारकी भावी सभ्यता होगी, जिसमें प्राच्य और पाश्चात्य दोनों ही संस्कृतियोंका मथन और सम्मिश्रण होगा। हर्षकी बात है कि इस सभ्यताका प्रादुर्भाव हमारे देशके नवयुवकोंके हृदयमें हो चला है।

कम्बोज देश

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

प्राचीन भारतका कम्बोज देश ठीक कहाँ था, उसका यदि पता लग सके, तो न केवल भारतवर्षके बल्कि अफ़ग़ानिस्तान, मध्य एशिया और ईरानके इतिहासकी भी बहुतसी गुत्थियाँ सुलझ सकें। पुरातत्त्वके आधुनिक पंडितोंने उसे खोज निकालनेके अनेक प्रयत्न किये हैं, किन्तु उन प्रयत्नोंके होते हुए भी अभी तक उसका ठीक पता न मिला था। हालमें अपनी पुस्तक 'भारतीय इतिहासकी रूपरेखा' का भूमिका-खंड लिखते हुए मुझे भारतवर्षकी स्वाभाविक सीमाओं और स्वाभाविक प्रान्तोंकी विवेचना करनी पड़ी, और उस सिलसिलेमें भारतीय सीमान्तको टटोलते-टटोलते असल कम्बोज देश मेरे हाथ लग गया! उस खोजका परिणाम मैंने 'रूपरेखा' के लिए तो लिखा ही, पटनामें जो छठा भारतीय प्राच्य विद्या-सम्मेलन पिछले दिसम्बरमें हुआ, उसमें भी लिख भेजा[1]। किन्तु 'रूपरेखा' के छपनेमें समय लगेगा और पटना सम्मेलनका वृत्तान्त छपते-छपाते भी शायद दो वर्ष बीत जायँ, इसलिए उन परिणामोंको इस लेख-द्वारा पहले-पहल 'विशाल-भारत' में प्रकाशित करनेको भेज रहा हूँ। कम्बोज देशकी ठीक शिनाख़्तसे जहाँ डेढ़ सौ वर्षसे चली आई एक समस्या हल हो गई है, वहाँ उसके द्वारा मुझे प्राचीन भारतके उत्तरी सीमान्तके अन्य अनेक देशोंको भी—जिनका 'रघुवंश'में रघुके दिग्विजय-प्रकरणमें, 'राजतरंगिणी'के ललितादित्यके दिग्विजयमें या महाभारतमें अर्जुनके उत्तर-दिग्विजयमें उल्लेख है—पहचाननेमें सफलता मिली है। उस सिलसिलेमें जो सबसे क़ीमती चीज़ हाथ लगी है, वह है उस आर्यजातिका असल अर्य नाम, जिसने संसारको कनिष्क-जैसा आदमी भेंट किया था और जिसे हम अब तक उसके नामके चीनी रूप 'युची' या 'युइची' से जानते थे। वह नाम और उस नामके पाये जानेका वृत्तान्त भी पटना सम्मेलनके उक्त लेखमें दिया जा चुका है, और उसे भी पहले-पहल 'विशाल-भारत' द्वारा ही प्रकट किया जायगा। भारतीय इतिहासकी अन्य कई पहेलियाँ भी कम्बोजकी शिनाख़्तसे सुलझ गई हैं।

फ्रेंच विद्वान फूशेने इस बातकी ओर ध्यान दिलाया था कि नेपाली अनश्रुति[2]के अनुसार कम्बोज देश तिब्बतमें था,[3] इसीलिए बहुतसी पुस्तकोंमें कम्बोजका अर्थ पच्छिमी तिब्बत किया हुआ मिलता है। किन्तु बहुत दिन पहले डा० ग्रियर्सन यह दिखला चुके हैं कि कम्बोज कोई ऐसा देश था जिसकी भाषा ईरानी परिवारकी थी,[4] इसीलिए अब कम्बोजका अर्थ प्रायः पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान किया जाता है।

किन्तु पूर्वी अफ़ग़ानिस्तानमें कहाँ? उसका कौनसा हिस्सा? क्या काबुल नदी और हिन्दूकुशके बीचका प्रदेश काफ़िरिस्तान? किन्तु वह तो प्राचीन कपिश देश है, जिसे चीनी लेखक किपिन् लिखते थे। तब जलालाबादके उत्तर

---

(१) 'रघुज लाइन आफ कौन्केस्ट एलौंग इंडियाज नार्दर्न बोर्डर' (*भारतके उत्तरी सीमान्तपर रघुकी विजय-यात्रा*) शीर्षकसे। *उस लेखका सार मैं अपने 'भारतीय इतिहासका भौगोलिक आधार' के* दूसरे संस्करणमें दे रहा हूँ।

(२) अनुश्रुति=tradition. इस अर्थका पुराना शब्द श्रुति या श्रुत है, पर अब वह धार्मिक श्रुतिके अर्थमें परिमित रह गया है। 'अनु-श्रु' धातुका प्रयोग भी इस अर्थमें पुराना है, जैसे 'इत्येवमनुशुश्रुम', उसीसे भाववाची 'अनुश्रुति' शब्द मैंने गढ़ लिया है।

(३) आइकोनोग्राफी बूधीक, पृ० १३४, वि० स्मिथकी अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, चतुर्थ सं०, पृ० १९३ पर निर्देश।

(४) जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९११, पृ० ८०२।

आधुनिक लग़मान ? किन्तु वह भी प्राचीन लम्पाक है, न कि कम्बोज। तब निंग्रहार (जलालाबाद-प्रदेश), पर वह पुराना नगर हार है। तब क्या अफ़रीदी-तीरासे लेकर कोह घाटी तकका पठार प्रदेश ? लेकिन वह भी प्राचीन पक्थ देश है, और पक्थ और कम्बोजको पर्यायवाची माननेके लिए कोई प्रमाण नहीं है। तब वखां ? किन्तु वखां तो ठेठ अफ़ग़ानिस्तानमें नहीं है। इस प्रकार पूर्वी अफ़ग़ानिस्तानके एक-एक कोनेको जब हम टटोलते हैं, तो कम्बोज देश मृगमरीचिकाकी तरह आगे-आगे भागता जाता है।

डा० हेमचन्द्र राय-चौधरीने अपनी तसल्लीसे इस विवादका अन्त समझ लिया है। उनका कहना है कि कम्बोज कश्मीरके दक्खिन उपत्यकाका प्रदेश था, जिसे आजकलकी राजौरी रियासत सूचित करती है [५]। उनका यह फ़ैसला महाभारतके एक अस्पष्ट प्रतीककी धुँधली व्याख्यापर निर्भर है, जो इस प्रकार है—

"कर्ण राजपुरं गत्वा कम्भोजा निर्जितास्त्वया।"

—महाभारत ८, ४, ५, ६।

डा० राय-चौधरीके मतमें इस श्लोकसे यह सूचित होता है कि राजपुर कम्बोजकी राजधानी थी, और वह राजपुर आधुनिक राजौरी ही है। ईसवी सन्‌से छै सात शताब्दी पहले सोलह महाजनपदोंमें जो एक कम्बोज महाजनपद था, वह डा० राय-चौधरीके मतसे वही था। खेद है कि डा० देवदत्त डा० भण्डारकरने भी इस निकम्मी शिनाख्तको स्वीकार कर लिया है। फ़ारिसके सम्राट् दारयवहु (दारा 'डेरियस') [७] ने जिन भारतीय प्रदेशोंको जीता था, उनमें 'कम्बुजिय' भी था। अशोकके साम्राज्यमें भी कम्बोज शामिल था। डा० भण्डारकरका कहना है कि दारयवहु और अशोकके अभिलेखों [८] का कम्बोज वही है। [९]

दिम्भर, राजौरी और पुंचका इलाका अर्थात् पीर पंजाल शृंखलाके दक्खिन झेलम और चिनाबके बीचका उपत्यकाका प्रदेश आजकल छिभाल कहलाता है, और प्राचीन इतिहास और वाङ्मयमें सदा अभिसार कहलाता रहा है। जिस महाभारतके आधारपर डा० राय-चौधरीने छिभालको कम्बोज बनाया है, उसीमें अर्जुनके दिग्विजयमें अभिसारीका नाम कम्बोजसे अलग है, और वह 'उरगा'से, जो स्पष्टत: 'उरशा' का अपपाठ है, ठीक पहले है। [१०] उरशा हज़ारा ज़िलेका—सिन्ध और झेलमके बीचके पहाड़ी इलाकेका—पुराना नाम है, और उसकी सीमा सदा अभिसारसे लगती थी। उक्त दोनों विद्वानोंने मुफ़्तमें ही यह मान लिया है कि आधुनिक हज़ारा ज़िला भी कम्बोजमें शामिल था। डा० राय-चौधरीके विचारमें उसकी पच्छिमी सीमा काफ़िरिस्तान तक पहुँचती थी। साथ ही उन्होंने इस बातके प्रमाण दिये हैं कि महाजनपद-युगमें गान्धार महाजनपद (आधुनिक रावलपिंडी, पेशावर-प्रदेश)में काश्मीर भी सम्मिलित था। [११] ये दोनों बातें एक दूसरेसे असंगत हैं, यह बात उन्हें नहीं सूझी। जिस देशको उन्होंने कम्बोज मान लिया है, वह काश्मीर और गान्धारके ठीक बीच पड़ता है, और जब कम्बोज एक स्वतन्त्र महाजनपद था, तब गान्धार-राज्य उसे दखल किये बिना काश्मीरको कैसे ले सकता था ?

दारयवहुके पीछे और अशोकसे पहले पंजाबपर सिकन्दरने चढ़ाई की। सिकन्दरके साथियोंने आधुनिक छिभालका नाम तब अभिसार ही लिखा है। उसका नाम पहले-पीछे

---

(५) पॉलिटिकल हिस्ट्री आफ एन्श्येण्ट इंडिया, पृ० ६४-६५

(६) महाभारतके सब प्रतीक और निर्देश कुम्भकोणक-संस्करणके अनुसार दिये गये हैं।

(७) 'दारयवहुष्' में 'ष्' प्रथमाके एक वचनका सूचक है, न कि नामका अंश। दारा उसीका नवीन फ़ारसी तथा डेरियस उसके यूनानी रूपका अंग्रेजी रूपान्तर है।

(८) खुदे हुए लेखोंको बहुतसे हिन्दी-लेखक शिलालेख कहते हैं, पर वे सदा शिलाओंपर ही तो नहीं खुदे होते, ताम्बे लोहे आदिपर भी खुदे रहते हैं।

(९) 'अशोक' पृ० ३१

(१०) सभापर्व, अध्याय २८

(११) पोलि० हि०, पृ० ६३

कम्बोज रहा हो और बीचमें अभिसार हो गया हो, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है। फिर समूचे भारतीय इतिहास और वाङ्मयमें कम्बोज एक सीमान्तका देश प्रतीत होता है, किन्तु इन विद्वानोंने उसे न केवल सिन्धके, प्रत्युत झेलमके भी पूर्व तथा काश्मीरके दक्खिन डाल दिया है। 'रघुवंश' में कालिदासने रघुकी सेनाको कम्बोज जीतनेके बाद हिमालयपर चढ़ाया और फिर किनार-विजयके बाद नीचे उतारा है।[१२] यदि राजौरीकी तरफ़से वह हिमालयपर चढ़ी होती, तो बजाय भारतवर्षके चीनी तुर्किस्तानमें जा उतरती! काश्मीरके पड़ोसके किसी देशकी शिनाख्त करते समय वैसे विख्यात विद्वानोंको कम से कम कल्हणकी साक्षी सुने बिना तो फ़ैसला न देना चाहिए था। वह साक्षी क्या है? ललितादित्यके दिग्विजयमें कल्हणने कम्बोजको काश्मीरके उत्तर रखा है,[१३] जब कि डा० राय-चौधरी और भण्डारकर उसे काश्मीरके दक्खिन बतलाते हैं! फिर राजौरी जीतनेकी ललितादित्यको ज़रूरत भी न थी, क्योंकि वह कम से कम उसके दादाके समयसे उसके पूर्वजोंके अधीन थी।

कल्हणने ललितादित्यके विजयोंका जो वर्णन किया है, उसमें गप्प और कल्पना बहुत मिली हुई है; किन्तु जब वह अपने पड़ोसके देशोंका वर्णन करता है, उसकी बात विश्वसनीय होती है, यह मानी हुई बात है।[१४] इसीलिए मैंने कल्हणकी राहनुमाईमें पहले पहल सन् १९२८ में कम्बोज देशको ढूँढ़नेका प्रयत्न किया था। अन्तमें अब उसीके आदेशपर चलते हुए मुझे सफलता हुई है।

कल्हणके वर्णनमें ललितादित्यके उत्तर-दिग्विजयके जनपदों, जातियों, स्थानों और राजाओंके नाम इस क्रमसे हैं—कम्बोज, तुखार, राजा मुम्मुनि, भौट्ट, दरद, प्राग्ज्योतिषपुर, बालुकाम्बुधि, स्त्री राज्य और उत्तर कुरु। इनमें से उत्तर कुरु एक आधा कल्पित-आधा-वास्तविक देश था, और वह थियान शान पर्वतके निकट चीनी तुर्किस्तानके उत्तर छोरपर था, यह जाना जा चुका है।[१५] मुम्मुनि सिन्ध-घाटीके किसी तुर्क राजाका नाम है, ऐसा अन्दाज़ डा० स्टाइनने किया है। बाक़ी स्थानोंमें से कम्बोज और स्त्री राज्य[१६] ये दोनों ही सर्वथा अनिश्चित थे। कम्बोज

(१२) रघुवंश ४, ७१-८०

(१३) राजतरंगिणी ४, १६३-१६५

(१४) देखिये डा० स्टाइनकी 'राजतरंगिणी' के अनुवादकी भूमिका, पृ० ६०

(१५) देखिए प्रो० एस० कृष्ण स्वामी ऐयंगरका लेख 'दि हन प्रोब्लेम इन इंडियन हिस्टरी', 'इंडियन ऍटिक्वेरी १९१९', पृ० आदि।

(१६) कम्बोजकी शिनाख्त तो इस लेखमें की ही जा रही है। स्त्री राज्य भी कल्पित नहीं एक वास्तविक देश था। कल्हणने उसी प्रकरणमें श्लोक १८५ में उसके विषयमें एक घटना लिखी है, जिससे उसकी वास्तविक सत्ता जान पड़ती है। किन्तु उसकी वास्तविकताका निश्चयात्मक प्रमाण वात्सायनके कामसूत्रसे मिलता है। कामसूत्र २-५-२७, २-६-४३ और ५-६-३७ में स्त्री राज्यकी जिन प्रथाओंका उल्लेख है, वे उस देशमें बार-बार आने-जाने और उसके जीवनकी बारीकीसे देखभाल किये बिना जानी न जा सकती थीं। मेरे विद्वान मित्र भिक्षु राहुल सांकृत्यायन त्रिपिटकाचार्यने, जो तिब्बती-भाषा और वाङ्मयके अच्छे पंडित हैं, अठारह महीने तिब्बतमें दूसरी बार घूमकर और रहकर पिछली साल लौटे हैं, मुझे वहांके रवाजोंका जो पता दिया है, उससे मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि स्त्रीराज्य कोई तिब्बती प्रदेश था। कामसूत्र २-६-४३ में जिस प्रथाका उल्लेख है, वह तिब्बतियोंका एक साधारण संवेशन प्रकार है। जिस जातिमें बहुपतिक (Polyandrous) *विवाह प्रचलित हो और उसके साथ वह नियन्त्रण (एक समयमें एक) जो कहते हैं कि पाण्डवोंने रखा था, न रखा जाता हो, तथा साथ ही जहांके लोग सोनेके कपड़े अलग* रखनेकी फ़िजूलखर्ची या ऐयाशी न जानते हों, वहां कामसूत्र २-६-४३ वाली प्रथाको संवेशनका स्वाभाविक तरीका कहना ही चाहिए। भिक्षु राहुलके कथनानुसार उनकी साधारण रीति यही है कि एक बोरेकी तरह तीन तरफ़से सिये हुए 'चुटकु' में समूचा बहुपतिक परिवार एक साथ सो जाता है। तिब्बती चुटकु

इस सूचीमें तुखारसे ठीक पहले है। तुखार या तुखार देश अरब लेखकोंका तुखारिस्तान है, जिसका मुख्य भाग आधुनिक बदख्शां है। इस प्रकार कम्बोज लोग काश्मीरके उत्तर तथा बदख्शासे लगा हुआ कोई प्रदेश होना चाहिए। काश्मीरके पड़ोसके देशोंमें एक चितराल ही है, जिसका प्राचीन नाम मालूम नहीं था,[१७] वह काश्मीरके उत्तर पच्छिममें है और काश्मीरसे बदख्शांको प्रधान रास्ता उसके दोरा घाटसे होकर ही है। इसलिए सन् १९२८ में 'रूपरेखा' के लिए मैंने उसीको कम्बोज देश मान लिया था। हम यह देखते हैं कि आजकलके भाषाओं और बोलियोंके क्षेत्र प्राय: प्राचीन जनपदोंको सूचित करते हैं। नमूनेके लिए मनुस्मृति २-१९ में 'कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चाला: शूरसेनका:' को मिलाकर ब्रह्मर्षि देश कहा है, वह बुन्देलखण्डके सिवा समूचा पछाँही हिन्दीका क्षेत्र है। उसमेंसे भी कुरुक्षेत्र आजकलका बांगरू बोलीका क्षेत्र है, मत्स्य मेवाती-अहीरवाटीका, उत्तर पंचाल खड़ी बोलीका, दक्खिन पंचाल कनौजीका और शूरसेन ब्रजभाषाका। इसी प्रकार चितरालकी शिनाख्त कम्बोजसे करनेका अर्थ यह होता है कि चितराल प्रदेशकी बोली खोवारका पूरा क्षेत्र कम्बोज है।

इस शिनाख्तके विषयमें मेरे मनमें शुरूसे एक सन्देह रहा। वह यह कि खोवार एक 'दरद' जातीय भाषा है, वहांके निवासी खो लोग भी एक दरद जाति हैं। वास्तवमें खोवार बोली मुख्य दरद भाषामें गल्चा रंगत पड़नेसे बनी है, और खो लोगोंकी नसोंमें भी गल्चा-खूनका कुछ मिश्रण है; किन्तु वह रंगत और वह मिश्रण नया है। पुराने ज़मानेमें खो और दरदोंका कुछ भी भेद न था, इसलिए यदि हम खोको कम्बोज कहें, तो उसका यह अर्थ होगा कि कम्बोज दरदोंकी ही एक शाखा थे, किन्तु वैसा कहनेके लिए एक तो कोई प्रमाण नहीं है, दूसरे कल्हणके उक्त परिगणनमें दरदोंका नाम कम्बोजोंसे स्पष्ट ही अलग है।

हालमें जब मैं भारतवर्षके स्वाभाविक प्रान्तोंकी विवेचनाके सिलसिलेमें अफ़ग़ानिस्तानकी भूमि और जनताके अध्ययनमें लगा था, मुझे यह जाननेकी उत्सुकता हुई कि गल्चा बोलियोंका अफ़ग़ानिस्तानकी भाषा पश्तो या पख्तोसे क्या सम्बन्ध है, और एकाएक यह सूझ पड़ा कि कहीं गल्चा-भाषी लोग ही तो कम्बोज नहीं हैं? गल्चा बोलियोंका मुख्य क्षेत्र पामीर हैं। उनकी पूर्वी सीमा उत्तर दक्खिन-मुख सनीकोल पर्वत-शृंखला है। चीनी बौद्धयात्रियोंने सनीकोल-शृंखलाका जो नाम लिखा है, वह संस्कृत 'कबन्ध' का रूपान्तर जान पड़ता है। सनीकोलके पूर्व अंचलसे यारकन्द नदी बहती है, जिसे चीनी लोग उसके संस्कृत नाम सीताके अनुसार अब तक सी-तो कहते हैं। पामीरका अर्थ किया जाता है पाए-मीर, पहाड़ोंके चरण; वे सनीकोलके दोनों तरफकी लम्बी पहाड़ोंसे दूनें[१८] हैं, जो चक्करदार रास्तोंमें

कुमाऊंके थुलमाकी तरहका किन्तु कनौर-कुल्लूके गुदया (संस्कृत 'कुतप') से कुछ घटिया मुलायम बालोंवाला कम्बल होता है। बहुपतिक समाजमें अमीर स्त्रियोंको ही पति मिल सकते हैं, इसलिए कामसूत्र ३-६-४३ में जो यह लिखा है कि अमीर स्त्रियां वैसा करती थीं, सो बहुत ही संगत है। ग़रीब स्त्रियोंके लिए तब २-५-२७ वाला उपाय—'अपद्रव्यों' का प्रयोग—ही स्वभावत: बचता है, वह पहली प्रथाकी सहज प्रतिक्रिया है। ५-६-३७ वाली प्रथा भी मेरे विचारमें एक बहुपतिक समाजकी सूचना देती है।

१७. अब मैं उसे प्राचीन कारस्कर देश कहता हूँ। चितराल नदी, शहर और प्रदेशका दूसरा नाम काष्कार भी है। बोधायन धर्मसूत्रमें जिन देशोंमें जानेसे मध्यप्रदेशके ब्राह्मणोंको प्रायश्चित्त करनेकी ज़रूरत लिखी है, उनमें कारस्करका नाम भी है। उत्तर-पच्छिम सीमान्तके एक देशपर वह बात सुगमतासे घट सकती है। कारस्करका पहला र् सुको मूर्धन्य बनानेका कारण हो सकता है।

(१८) अंग्रेजी 'वेली'का ठेठ हिन्दी अनुवाद 'दून' है, जो देहरादूनके नाममें और उस इलाकेमें अब तक बर्ता जाता है। वह संस्कृत 'द्रोणी' से बना है, और द्रोणी शब्दका उस अर्थमें प्रयोग पुराणोंके भौगोलिक वर्णनोंमें सदा होता है। देखिये मार्कण्डेय पु० ५५, १४; वायु पु० प्रथम खण्ड, ३६,३३,३७, १-३,३८,१

उसके पूरब पच्छिम और उत्तरको गई हैं। तागदुम्बाश पामीर और मरिम्रोङ पामीरके सिवा बाकी सब सनीकोलके पच्छिम ही हैं। पामीर-ए-वरवां, छोटा पामीर, बड़ा पामीर, अलीचूर पामीर, धुन्द पामीर, सरेज़ पामीर, रंगचुल पामीर, खरगोश पामीर ये पच्छिमकी दूनोंमें एक दूसरेके क्रमश: उत्तरमें हैं। आमू दरियाकी अनेक धाराएँ उन पच्छिमी पामीरोंमें फैली हुई हैं। आमूके प्राचीन संस्कृत नाम वन्धुसे आब-ए-वरवांकी दूनका नाम अब तक पामीर-ए-वरवां है तथा वही नाम आपूकी एक धारा वक्षके नामसे आज तक मौजूद है। रंगकुल झील ही प्राचीन बौद्ध यात्रियोंका नागहद है। ज़ोर-ए-कुल (विक्टोरिया) झीलकी दून बड़ा पामीर है, और आपूकी एक धारा अक्लू या मुर्गाबकी दून—जिसमें मुर्गाबी या पामीर्स्की नामका रूसका फौजी थाना है—सरेज़ पामीर कहलाती है। आमूकी मुख्य धारा आब-ए-पंजा पूरबसे पच्छिम जानेके बाद जहां एकाएक उत्तर मुड़कर सौ मील तक उत्तर बही है, उसका वह दक्खिन-उत्तर प्रवाह पामीरकी पच्छिमी सीमा माना जाता है। आमूके उस मोड़के पच्छिम बदख्शां है। इस प्रकार जहां चितरालसे तुखार देशका केवल एक-कोना छूता है, वहां पामीर या गल्चा खेलकी पच्छिमी और तुखार-देशकी पूरबी सीमा लगातार एक है, और पामीर काश्मीरके ठीक उत्तर भी है। इस प्रकार गल्चा खेल ही प्राचीन कम्बोज देश प्रतीत होता है।

रघुके दिग्विजयमें कालिदासने वंक्षु-तटके हूणोंके ठीक बाद कम्बोजोंका उल्लेख किया है। वंक्षु-तटपर हूणोंका देश वही था, जिसे पारसी लोग हैतल तथा अरब खुत्तल कहते थे; वह आमूकी दो धाराओंके, जिन्हें अरब लोग वख़ाब और अक्साब कहते थे और जो आजकलकी वख़ और अक्सू हैं, बीचका दोआब था।[१९] उसकी दक्खिनी और गल्चा-क्षेत्रकी उत्तरी सीमा एक ही है। इस प्रकार गल्चा क्षेत्रको कम्बोज मानकर हम ललितादित्य और रघु दोनोंके दिग्विजयोंकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं।

(१९) दे. पो. कृष्णस्वामी ऐयंगरका पूर्वोक्त लेख।

महाभारतमें अर्जुनके उत्तरदिग्विजयमें बाल्हीक या बलख देशके बाद दरदों और काम्भोजोंका इकट्ठा ज़िक्र है।[२०] उस वर्णनकी विशेष व्याख्या हम दूसरे युची-विषयक लेखमें करेंगे, और उससे प्रकट होगा कि अर्जुनका रास्ता बामियांसे हिन्दू-कुशके उत्तर बलखके पश्चिम तक और फिर लगातार उत्तर पूर्व था। इस प्रकार उस वर्णनसे कम्बोज देश बलखके उत्तरपूर्व और दरद देशके साथ लगा हुआ सिद्ध होता है। ये दोनों बातें गल्चा खेलपर ठीक घटती हैं, किन्तु महाभारतमें दूसरे अनेक स्थानोंपर कम्बोजों और बाल्हीकोंका नाम एक द्वन्द्वमें आया है।[२१] बदख्शां और पामीरमें एक ही ताजिक जातिके लोग रहते हैं। डा० ग्रियर्सनका कहना है कि बदख्शांमें भी आजसे तीन-चार सौ वर्ष पहले तक,—जब बदख्शां लोगोंने फ़ारसी अपना ली—एक गल्चा बोली ही थी।[२२] भौगोलिक दृष्टिसे भी बदख्शांका विशेषकर पूर्वी भाग—जो कोकचा और आमूके बीच है—बनावटमें बिलकुल पामीरका-सा है। जर्मन विद्वान मार्क्वार्टने सिद्ध किया है कि अरब और तुर्क लोग जिस जातिको तुखार कहते हैं, वह वही है जिसे चीनी लेखक ताहिया कहते हैं। तुखार या ताहिया लोग आमूके काँठेमें दूसरी शताब्दी ई० पू० में आये हैं। इस प्रकार तुखारिस्तान उससे पहले तुखारिस्तान न कहला सकता था, और तब उसका कुछ और नाम होगा। इन सब बातोंसे यह परिणाम निकलता है कि पामीरके साथ-साथ बदख्शां भी पहले कम्बोज महाजनपदमें सम्मिलित था और उसकी सीमा बाल्हीक तक पहुँचती थी। महाभारत और रघुवंशमें कम्बोजका यही अर्थ है। तुखारोंके प्रवेशसे समूचा कम्बोज तुखार देश कहलाने लगा। वही 'युची' साम्राज्यका पहला केन्द्र था। उसमें पामीर और बोलोर भी सम्मिलित थे। बादमें उस साम्राज्यकी सीमाएँ ज्यों-ज्यों

(२०) सभापर्व, अध्याय २८, २२-२३

(२१) जैसे भीष्मपर्व ७४, १७; भीष्मपर्व कलकत्ता सं० का श्लोक ३२९३; द्रोणपर्व, कल० सं० श्लोक ४८१८

(२२) लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इंडिया, जि० १०, पृ. ४२७

सिकुड़ती गई, तुखार शब्दका अर्थ भी त्यों-त्यों सिकुड़ता गया। अन्तमें वह केवल बदख्शांके लिए रह गया। उसका बाक़ी अंश अपने पुराने नाम कम्बोजसे फिर पुकारा जाने लगा और उसका भी उसी प्रकार परिमित अर्थ रह गया। इस प्रकार 'राजतरंगिणी'के वर्णनमें तुखार और कम्बोज दो पड़ोसी देश बन गये।

अर्जुनके उत्तर-दिग्विजयमें एक परमकाम्भोज नामकी जातिका भी उल्लेख है।[२३] पामीरके उत्तर-पश्चिम और बदख्शांके उत्तर-पूर्व छोरपर, ज़रूशां नदीके स्रोतपर, उसकी धाराके साथ-साथ समरकंद तक फैली हुई पहाड़ोंकी शृंखलामें, ताजिकोंकी एक और बस्ती है, जो यग्नोबी नामकी एक ग़ल्चा बोली बोलती है।[२४] उसका देश मुख्य ग़ल्चा-क्षेत्रसे एक तरफ़ एक अन्तरीपकी तरह बढ़ा हुआ है। मेरा कहना है कि वही परम काम्भोज थे।

इस प्रकार ग़ल्चा भाषाओंका क्षेत्र पूरी तरहसे कम्बोज देशको सूचित करता है। इस बातका निश्चय हो जानेपर मुझे यह देखनेकी उत्सुकता हुई कि यास्क मुनिने आजसे कमसे कम अढ़ाई हज़ार वर्ष पहले जो यह लिखा है कि—

"शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते"[२५]

क्या उस बातका कोई चिह्न आज भी ग़ल्चा बोलियोंमें मौजूद है? मुझे बड़ा ही आनन्द और अचरज हुआ, जब मैंने देखा कि ग़ल्चा बोलियोंमें अब भी गतिके अर्थमें 'शवति' धातु बर्ती जाता है। डा० ग्रियर्सनके दिये हुए थोड़ेसे नमूनोंमें ही शिग्नी बोलीमें 'सुत' का अर्थ है 'गया' (४९८);[२६] सरीकोलीमें सेत=जाना (४७३); सुइत=गया (४७४) और सौमन=जाऊँगा (४७६); ज़ेबकी संग्लीची या इश्काशिमीमें शुद=गया (५००); मुंजानी या मूंगीमें शिआ=जाना (५११); युइंगामें शुई=गया (५२४)। केवल बखीके नमूनोंमें शवति धातु नहीं है। ग़ल्चा-प्रदेशके प्राचीन कम्बोज होनेमें क्या अब कुछ भी सन्देह बाक़ी रह सकता है?

कम्बोज शब्दका ठीक अर्थ बहुत ज़माने तक भूला न गया था, सो इस प्रसिद्ध फ़ारसी स्फुट कवितासे प्रकट होता है—

"अगर क़हतुर् रिजाल् उफ्तद्
ज़े ऑकस् ऊंक्स कमगीरी—
यके अफ़ग़ाँ, दोयम् कम्बोह
सोयम् बदज़ात कश्मीरी!
ज़े अफ़ग़ां हीला मी आयद,
ज़े कम्बोह कीना मी आयद,
ज़े कश्मीरी नमी आयद,
बजुज़ अन्दोहो दिलगीरी!"[२७]

फ़ारसी कविने अपने पड़ोसी पहाड़ियोंके विषयमें जो भाव प्रकट किये हैं, उनसे सहमत हुए बिना भी यह कहा जा सकता है कि उसने उन पहाड़ी जातियोंका उल्लेख एक भौगोलिक क्रमसे किया है।

डा० राय-चौधरी वाले महाभारतके प्रतीकपर अब हम विचार कर सकते हैं। उसका या तो यह अर्थ है कि कम्बोज देशका रास्ता राजौरी होकर जाता था, या उसमें 'राजपुर' राजगृह अपपाठ है। बलखकी राजधानीका नाम भी राजगृह था, यह हम ह्वान-च्वाङके यात्रा-विवरणसे जानते हैं।[२८] नेपाली अनुश्रुति कम्बोजको तिब्बतमें क्यों रखती है, यह भी अब स्पष्ट हो गया, क्योंकि नेपालकी तरफ़से देखनेवालेको पामीर तिब्बतका बढ़ाव ही दीखता है।

---

(२३) सभापर्व २८, २४

(२४) लिंग्विस्टिक स० इं० १०, पृ. ४५५ तथा रूसी भाषामें १९१४ में प्रकाशित एशियाई रूसकी पेटलससे बोमैन-कृत 'दि न्यू वर्ल्ड प्रोब्लेम्स इन पोलिटिकल ज्यौग्रफ़ी' (लंदन ज्योर्ज और हैरप १९२२) में पृ. ४७६ पर उद्धृत रूसी तुर्किस्तानकी जातियोंका नक़शा।

(२५) निरुक्त १, २, २

(२६) कोष्ठोंके अन्दर सब संख्याएँ 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इंडिया' भाग १० के पृष्ठोंकी हैं।

(२७) इस पद्यके लिए मैं बनारसके पं० रामकुमार चौबे एम० ए०, एल० टी० का अनुगृहीत हूँ।

(२८) वैटर्स जि० १, पृ० १०८

कम्बोज देशकी इस पहचानसे प्राचीन भारतके कई और देशों और जातियोंकी किस प्रकार पहचान हो सकी है और भारतीय इतिहासकी कई समस्याएँ किस प्रकार हल हो गई हैं, इसे हम दूसरे दो लेखोंमें दिखलायँगे। यहाँ हम उसका महत्त्वसूचक केवल दो दृष्टान्त देते हैं।

प्रसिद्ध रूसी विद्वान तोमासचेकके अनुसार मुँजानी यल्दा बोली ज़ेंद अवस्ताकी भाषाके निकटतम रूपको प्रकट करती है। मुंजानका इलाक़ा अब प्राचीन भारतके कम्बोज देशमें निकल आया! उसकी भौगोलिक स्थिति आज बदल नहीं गई, वह भारतवर्षके नज़दीक है, इसे हम पहले भी जानते थे; किन्तु उसके कम्बोज देशका अंग सिद्ध हो जानेसे अब यह निश्चय हो गया कि उसका भारतवर्षसे सचेष्ट और जीवित सम्पर्क था, क्योंकि उन उपनिषदोंके समयसे भारतवासियोंका आना-जाना वहाँ था और वहाँ भी वैदिक विद्वान होते थे, क्योंकि वंशब्राह्मणमें कम्बोज औपमन्यव नामके एक आचार्यका नाम मिलता है। भगवान ज़रथुस्त्रकी वाणी इस प्रकार एक ऐसे समय और ऐसे देशमें प्रकट हुई हो, जिसपर भारतवर्षका पूरा प्रभाव था, सो ख़ूब सम्भव है।

अशोकके साम्राज्यमें भी कम्बोज सम्मिलित था। इस प्रकार जहाँ पहले मौर्य-साम्राज्यकी उत्तरी सीमा हेरातसे हिन्दूकुशके साथ-साथ मानी जाती थी, और उसके आगे हिमालयके अन्दर वह कितनी दूर थी, इसकी अनेक मीमांसाएँ होती थीं, वहाँ अब वह एकदम हिमालयकी गर्भ-शृंखला, हिन्दूकुश और कारकोरमको लाँघकर रंगकुल झील तक जा पहुँची। इतना ही नहीं, भारतवर्ष और खोतनकी अनुश्रुतिके अनुसार खोतन भी अशोकके साम्राज्यका अंग था। पहले उस अनुश्रुतिपर विश्वास नहीं किया जाता था, किन्तु अब उसके सच होनेमें कुछ भी असम्भावना नहीं रही; क्योंकि खोतन कम्बोजकी पूर्वी सीमा सीता नदीसे चार-पाँच रोज़की राहपर है। अशोकके तेरहवें प्रधान शिलाभिलेखमें उसके 'विजित' में नाभक और नाभपंक्ति देशोंका नाम है। डा० हुल्शने ब्रह्मपुराणके एक प्रतीककी ओर ध्यान दिलाया है,[२९] जिसके अनुसार नाभिकपुर उत्तर-कुरुमें था। उत्तर-कुरु शकों और हूणोंके सीमान्तपर थियान शान पर्वतके तले माना जाता था, यह कह चुके हैं। क्या यह सम्भव नहीं कि नाभक देश अशोकका खोतनवाला उपनिवेश ही हो?

---

२९. अशोककी धर्मलिपियाँ, पृ० xxxix

——:१:——

इस्लामिक संस्कृति-अंककी आवश्यकता

श्री अख्तर हुसेन रायपुरी

गांधी-इर्विन समझौतेके बाद एक बार फिर चारों ओरसे 'हिन्दू-मुस्लिम मिलाप' की ध्वनि उठ रही है। महात्माजी और अन्य सभी राष्ट्रवादी नेता इस जटिल समस्याके समाधानके लिए जी-जानसे प्रयत्न कर रहे हैं। मैं आपको जिस समय यह पत्र लिख रहा हूँ, पंजाबके प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता मौलाना अताउल्लाशाह बुखारी दिल्लीके हिन्दू-मुस्लिम सम्मेलनमें उपस्थित होनेके लिए यहाँ अपना बोरिया-बँधना ठीक कर रहे हैं, जहाँ सांप्रदायिक उलझनको सुलझानेकी कोशिश होगी।

जो कुछ भी हो, यह निपटारा राजनीतिक होगा। हृदय-परिवर्तनसे इससे कोई वास्ता नहीं। मुसलमान अपने ३३-३३३......अधिकारोंके लिए लड़ेंगे, हिन्दू इसमें काट-छांट करेंगे। चाहे अभी यह लेन-देन निबट जाय, पर गुलाबो शिताबोका यह झगड़ा कभी खतम न होगा। राजनीतिमें हर पल परिवर्तन होता है, अतएव राजनीतिक समझौतोंमें भी हेरफेर होना ज़रूरी है। इस बातकी क्या गारंटी है कि दस वर्ष बाद ऐसी परिस्थिति उत्पन्न न हो जायगी, जो दोनों जातियोंमें वैसा ही झगड़ा उत्पन्न कर दे, जैसा लखनऊ पैक्टको रद्द करनेके लिए आज उठ खड़ा हुआ है? क्या मुश्किल है कि अपने विदेशी शासकोंके मनोभाव तो हम बदलना चाहते हैं, पर स्वयं 'हृदये तु हलाहलम्' के ज्वलन्त प्रमाण बने हुए हैं!

हमने कभी यह भी सोचा है कि राजा टोडरमल और महाराज मानसिंहके हाथमें जब अकबरने खज़ानेकी कुंजी और फ़ौजकी नकेल दे दी थी, तो मुसलमान अल्लाह तौबा मचानेके बदले क्यों खुश थे, और आज कलकत्ता-कारपोरेशनमें एक मुसलमान एल्डरमैन न होनेके कारण चौधरियोंका ज्वार क्यों आ जाता है? दोनों जातियोंकी मनोवृत्ति विषाक्त है; एकको अफ़ग़ानी हौआ लगा है तो दूसरेपर महासभाका जिन सवार है। इस परस्पर अविश्वासके निदान और उपचारके लिए हमने क्या प्रयत्न किया है?

बात यह है; 'विचित्र जीवन' 'विश्वासघात' और 'रंगीला रसूल' जैसी किताबोंको पढ़कर, मियाँ लल्लू और किसी हकीम सड़ककी बातोंको सुनकर इस्लाम, मुहम्मद और मुसलमानोंके विषयमें हिन्दुओंमें निराधार और अज्ञानतापूर्ण धारणाएँ फैल गई हैं। यही हाल मुसलमानोंका है। 'बुतशिकन', 'कुफ्रतोड़' इत्यादि ऐसी ही निन्दनीय पुस्तकोंपर उन्होंने अपनी जानकारीका पुल बाँधा है। स्कूल और कालेजोंकी शिक्षाने इसपर और भी सान चढ़ाया है, जो लार्ड मेकालेका वास्तविक उद्देश्य था। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेकी संस्कृतिको समझते ही नहीं। सारे झगड़ेका मूल कारण यही है, और हम इसे ही मिटानेकी कोई कोशिश नहीं करते! यदि सौ वर्ष पहलेका वह ज़माना आ जावे, जब मस्जिदके मदरसोंमें हिन्दू बच्चे शिक्षा प्राप्त करते थे, मुसलमान दशहरेके मेले निकालते और होलीमें फाग खेलते थे; एक मौलूद पढ़ता था तो दूसरा कीर्तन करता था, एक आँखें बिछाता था तो दूसरा दिल बिछाता था, तब न इन काग़ज़ी समझौतोंकी ज़रूरत पड़े, न ऐसी परिहासजनक (वह परिहास जो खूनके आँसू रुलाता है) तू तू मैं मैं हो।

'विशाल-भारत' सांस्कृतिक एकताके उद्देश्यको लेकर निकला है, और अन्य हिन्दी पत्रोंको उसने शायद सबसे पहली बार यह मार्ग दिखाया है। आज जब राजनीतिक एकताके पीछे सब दौड़े जा रहे हैं, क्या ही अच्छा हो, जो वह सांस्कृतिक एकताका शंखनाद करे। इसके लिए उसका एक ऐसा विशेषाङ्क निकालना ज़रूरी है, जो हिन्दी-भाषा भाषी जनताकी दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट कर सके। जो हिन्दुओंको

बताये कि इस्लाम सचमुचमें क्या है, मुसलमानोंने हिन्दुस्तानमें क्या किया। दोनों जातियोंको पवित्र प्रेमसूत्रमें गूँथनेकी कैसी-कैसी कोशिशें हुईं और अब क्या-क्या होना चाहिए। यह अंक सामयिक होगा और हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इस पुण्यकार्यमें बुद्धिवादी मुसलमान और उदार हिन्दू विद्वान आपको सहयोग प्रदान करेंगे। डा० भगवानदास, पंडित सुन्दरलालजी वर्मा, प्रोफेसर टी० एल० वस्वानी, सर प्रफुल्लचन्द्र राय आदि हिन्दू नेता भी ज़रूर हमारा साथ देंगे। इस्लामपर हिन्दीमें अच्छी किताबोंका शोचनीय अभाव है। यह विशेषांक कुछ अंशोंमें इस कमीकी पूर्त्ति करेगा। मेरी समझमें उसे तीन विभागोंमें बाँटना ठीक होगा—(१) इस्लाम क्या है? (२) भारतमें मुसलमानोंने क्या किया? (३) सांस्कृतिक एकता। प्रयत्न करनेपर कई ऐसे लेखक मिल सकते हैं, जो इन तीनों विषयोंको बड़ी अच्छी तरह प्रतिपादित करें। आशा है कि आप इन बातोंपर गौर करेंगे, और अगर आपको यह स्कीम पसन्द आई, तो हर बुद्धिवादी मुसलमानके पूर्ण सहयोगका मैं विश्वास दिला सकता हूँ।"

लेखक महोदयकी योजनासे हम पूर्णतया सहमत हैं, और हमारा विश्वास है कि 'विशाल-भारत' के पाठक भी इसे पसन्द करेंगे। यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों मतोंके विद्वान लेखकोंका सहयोग हमें मिल सके, तो बड़ी खुशीके साथ यह विशेषांक निकालनेके लिए उद्यत हो सकते हैं। अभी हम इन सज्जनोंसे पत्र-व्यवहार कर रहे हैं, और उनके सन्तोषजनक उत्तर न आने तक हम किसी प्रकारका वचन देना ठीक नहीं समझते। —संपादक

× × ×

हिन्दू मुसलमान

[प्रसिद्ध कहानी लेखक श्रीयुत सुदर्शनने लाहोरसे 'चन्दन' नामक उर्दू मासिकपत्र निकाला है। इसका एक प्रमुख उद्देश्य हिन्दू मुसलमानोंकी सांस्कृतिक एकता है। *हाल ही में उसमें 'हिन्दू-मुसलमान' शीर्षक उर्दू कविता प्रकाशित हुई थी, जो हमें बहुत पसन्द आई। —सम्पादक*]

(१)

हिन्दू मुसलमान हैं भाई भाई।
तफ़रीक़[1] कैसी, कैसी लड़ाई!
हिन्दू हो कोई, या हो मुसल्माँ।
इज़्ज़तके क़ाबिल है बस वह इन्साँ।
नेकी हो जिसकी कारे नुमायाँ।[2]
औरोंकी मुश्किल हो जिससे आसान।
जिसका अमल हो और जिसका ईमान—
"हर एकसे नेकी, सबसे भलाई।"
हिन्दू मुसलमान हैं भाई भाई॥

(२)

हिन्दू मुसलमान दोनों बराबर।
दोनोंका ख़ालिक़[3] वह ज़ाते बरतर[4]।
दोनों उसीकी करते हैं पूजा।
एक ही दर पर करते हैं सिजदा।
मस्जिद उसीकी मन्दिर उसीका।
दोनों जगह वह है जलवाफ़रमा[5]।
हिन्दूने 'ईश्वर' उसको पुकारा।
बोला मुसलमान "अल्लाहो अकबर।"
हिन्दू मुसलमान दोनों बराबर॥

(३)

हिन्दू मुसलमान क़ौमें पुरानी।
दोनों की दोनों हिन्दोस्तानी।
दोनोंका मसकन[6] हिंदोस्ताँ है।
वह बुलबुलें हैं यह गुलसिताँ[7] है।
एक सरज़मीं है, एक आस्माँ है।
दोनोंका एक जा सूदो ज़ियाँ[8] है।
नाइत्तफ़ाक़ी आज़ारे जाँ[9] है।
मिल जुलके रहना है कामरानी[10]।
हिन्दू मुसलमान क़ौमें पुरानी।

---

१ फूट, २ उज्ज्वल, ३ सृजनहार, ४ महाप्रभु, ५ प्रकाशवान, ६ घर, ७ फुलवन, ८ मरना-जीना, ९ जानलेवा, १० चैन।

शिवाजीका राज्याभिषेक

सर यदुनाथ सरकार

अभिषेककी आवश्यकता

शिवाजीने बहुतसे देश जीते और प्रचुर धन इकट्ठा किया, परन्तु उन्होंने अब तक अपनेको छत्रपति यानी स्वाधीन राजा घोषित नहीं किया था। इससे उन्हें बहुत कुछ असुविधा और नुकसान हो रहा था। एक तो अन्य राजा उनको बीजापुरके आश्रित एक जमींदार अथवा जागीरदार-मात्र ही समझते थे और बीजापुरके हाकिमोंकी निगाहमें वे विद्रोही प्रजा-मात्र थे। दूसरे, अन्य मराठे जमींदार-भोंसलोंको अपनेसे किसी अशमें भी बड़ा मानना स्वीकार नहीं करते थे, बल्कि उनमें से बहुतसे पुराने घर (जैसे मोरे, यादव, निम्बलकर इत्यादि) शाहजी और शिवाजीको ऐरागैरा अकुलीन कहकर अवहेलना किया करते थे। शिवाजीकी प्रजा भी बड़ी कठिनाईमें पड़ गई थी, क्योंकि जब तक शिवाजी स्वाधीन राजा न कहलावेंगे, तब तक प्रजा अपने पुराने राजाकी प्रजा होनेके कारण नियमानुसार शिवाजीके हुक्म माननेको बाध्य न थी। इसी प्रकार शिवाजीका भूमिदान और सनद आदि भी नियमानुसार प्रमाण न मानी जाती थी।

उन्हीं कारणोंसे शिवाजीने अपना अभिषेक कर 'छत्रपति'की उपाधि ग्रहण की और दुनियाको यह घोषित कर दिया कि वे एक स्वाधीन राजा हैं, उनके अधीन प्रजा उनको ही मानेगी और किसी दूसरे मालिकके अधिकारको स्वीकार न करेगी। इसके सिवा महाराष्ट्रके अनेकों उत्साही देशभक्त अपने देशमें स्वाधीन हिन्दू-राज—'हिन्दवी स्वराज'—स्थापन करनेके लिए बड़े उत्सुक थे। उस समय केवल शिवाजी ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जो इस जातीय इच्छाको पूरा कर सकते थे।

अभिषेकका प्रबन्ध

परन्तु शास्त्रके अनुसार क्षत्रियको छोड़ दूसरी जातिका कोई आदमी राजा नहीं हो सकता था, और उन दिनों समाजमें भोंसले वंशको लोग शूद्र मानते थे। तब शिवाजीके मुन्शी बालाजी आवजी (जो मराठा-जातिके सबसे बड़े पंडित थे) काशीवासी विश्वेश्वर भट्टको (जो गागा भट्टके नामसे पुकारे जाते थे) बहुतसा रुपया देकर अपने हाथमें किया। भट्ट महाशयने शिवाजीको क्षत्रिय सिद्ध कर दिया। शिवाजीके आदिपुरुष सूर्यवंशीय क्षत्रिय चित्तौरके महाराणाके पुत्र थे, यह बात स्वीकार कर उन्होंने एक कागज भी लिख दिया और शिवाजीके अभिषेकका प्रधान पुरोहित होना भी स्वीकार कर लिया। गागा भट्ट दिग्विजयी पंडित थे। वे "चारों वेद, षट्शास्त्र और योगाभ्यासके ज्ञाता, ज्योतिषी, मन्त्रोंके ज्ञाता, सब विद्याओंके पारदर्शी और कलियुगके ब्रह्मदेव थे।" (सभासद बखर) उनके साथ वाद-विवाद कर सकनेवाला महाराष्ट्रमें उस समय कोई ब्राह्मण न था, इसीलिए शास्त्रार्थमें हार जानेके डरसे और मोटी दक्षिणाके लोभसे सबोंने शिवाजीको क्षत्रिय मान लिया।

उसके बाद कई महीने तक बहुत धूमधाम और व्ययके साथ अभिषेकका प्रबन्ध होता रहा। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पंडितगण निमन्त्रित किये गये। उस समय यद्यपि रास्ते बड़े अरक्षित थे और एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना-आना बड़ा कठिन और कष्टसाध्य होता था, फिर भी ग्यारह हजार ब्राह्मण—जो अपने स्त्री-पुत्र सहित पचास हजारके लगभग थे—रायगढ़के क़िलेमें आ उपस्थित हुए, और चार महीने तक राजाके खर्चसे मिठाई और पकवान उड़ाते रहे।

अभिषेककी प्रारम्भिक आवश्यक बातें आरम्भ हुईं। पहले शिवाजीने अपने गुरु समर्थ स्वामी रामदास और अपनी माता जीजाबाईको प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लिया।

शिवाजी और शातकर्णीको तुलना

आज जीजाबाईके आनन्दकी सीमा नहीं है। यौवनके अन्तसे पतिकी उपेक्षा सहन करते हुए उन्होंने योगिनीकी भाँति सुदीर्घ पचास वर्ष काटे हैं, परन्तु आजीवन मातृभक्तिसे वे अपने सब कष्ट भूल गईं। उनके पुत्रके पवित्र चरित्र, दया, चतुरता और अजेय वीरत्वकी ख्यातिसे संसार गूँज रहा है। आज उनके बेटेने स्वदेशवासियोंको पराधीनताके बन्धनसे छुड़ाया है। उसने हिन्दू नर-नारियोंकी अत्याचारसे रक्षा की है और सब ओर धर्म और न्यायका राज्य स्थापित किया है। ऐसे महान यशस्वी राजाकी माता कहलाकर वे देशपूज्या हुई हैं। पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व इसी महाराष्ट्र देशकी और एक राजमाता--आन्ध्रराज श्री शातकर्णीकी माता गोतमी—की भाषामें वे भी अपने विजयी, धार्मिक पुत्रका गुण गानकर मानो करती हैं—"मैं महाराणी गोतमी बालश्री राजराजश्री शातकर्णीकी माता। मेरे पुत्रकी माताकी सेवा बाधा-रहित है। नगरवासियोंके सुख-दुःखमें उसकी पूरी सहानुभूति रहती है। वह शक, यवन, पह्लवोंका नाश करनेवाला है। उसने ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंकी सम्पत्ति बढ़ाई है। उसने खखरात-वंशको खतम कर दिया है, चारों वर्णोंके सम्मिश्रणको रोका है और अनेक बार लड़ाईमें शत्रुओंको जीता है, वह सज्जनोंका आश्रय, लक्ष्मीका पात्र और दक्षिणपथका राजा है।'''*

ऐसा मालूम होता है कि जीजाबाईको उनके जीवनकी यह पूर्ण-सफलता तथा यह चरम आनन्द दिखानेके लिए ही भगवानने इतने दिन बचा रखा था, क्योंकि शिवाजीके अभिषेकके केवल बारह दिनके बाद ही, अस्सी वर्षकी उम्रमें उनका देहान्त हुआ।

तीर्थ-यात्रा और प्रायश्चित्त

उसके बाद शिवाजी तीर्थ-यात्राको निकले और चिपलून-तीर्थमें जाकर परशुरामकी पूजा की तथा प्रतापगढ़में अपनी इष्टदेवी भवानीको सवा मन सोनेका एक छत्र चढ़ाकर उसकी उपासना की। २१वीं मईको रायगढ़ लौटे और बहुत दिनों तक वहीं देव-देवीकी पूजामें मग्न रहे।

उनके पुरखे क्षत्रियोंका आचरण त्यागकर पतित (शूद्र) हो गये थे, इसलिए शिवाजीने २८वीं मईको प्रायश्चित्त किया और गागाभट्टने उन्हें जनेऊ पहनाकर क्षत्रिय बनाया। उस समय शिवाजीने कहा—"हम द्विज हुए हैं और सब द्विजोंको वेदका अधिकार है, इसलिए हमारे क्रियाकाण्डमें भी वैदिक मंत्र पढ़ना होगा।" यह सुनकर उस जगह जो ब्राह्मण इकट्ठे थे, विद्रोही हो उठे और कहने लगे—"कलियुगमें क्षत्रिय-जाति लुप्त हो गई है, अब ब्राह्मणोंको छोड़कर दूसरा कोई द्विज नहीं है।" उन लोगोंने रुपये लालचसे भोंसले-वंशको क्षत्रिय स्वीकार किया था, अन्यथा शिवाजीका अभिषेक भी न होने पाता और न ब्राह्मणोंको इतने लाख रुपये दक्षिणा और इतना दान आदि ही मिलता। अब उनकी पहलेवाली सम्मतिका उचित फल देखकर वे बिगड़ गये। खुद गागाभट्ट भी डर गये और किसी प्रकार इधर-उधर कर-कराके जल्दीसे गोलमाल मिटा दिया। अभिषेकमें वैदिक मंत्र नहीं पढ़े गये, परन्तु शिवाजीने विवाहके समय (३०वीं में) उन्हीं मंत्रोंका व्यवहार किया।

इस व्रत, प्रायश्चित्त और उपनयनके समय बड़ा उत्सव हुआ और खूब रुपये दान हुए; गागा भट्टको "मुख्य अध्वर्यु' होनेसे पैंतीस हजार रुपये मिले। दूसरे साधारण ब्राह्मणोंके बीच पचासी हजार रुपये बाँटे गये।

दूसरे दिन शिवाजीने अपने ज्ञात और अज्ञात पाप मोचनके लिए तुलादान किया। अर्थात् सोना-चाँदी-ताँबा इत्यादि सात धातु, [illegible] सुन्दर वस्त्र, कपूर, नमक,

* "महादेव्या गोतमी बालश्रीमातुः राजराजस्य—श्रीशातकर्णेः गोतमीपुत्रस्य——अविपन्नमातृशुश्रूषाकस्य——पौरजननिर्विशेषसमसुख-दुःखस्य——शकयवनपल्हवनिसूदनस्य——द्विजावरकुटुम्बविवर्धनस्य—खखरातवंशनिरवशेषकारस्य-विनिवर्तितचतुर्वर्णसंकरस्य अनेकसमराव-जीतशत्रुसंघस्य—सत्पुरुषाणाम् आश्रमस्य—श्रिया अधिष्ठानस्य—दक्षिणपथेश्वरस्य''....." (Epigraphica Indica, VIII. 60, नासिक-गुहाकी शिलालिपिका संस्कृत अनुवाद)

मसाला, घी, चीनी, फल और खानेकी चीज़ें इत्यादि बहुतसे पदार्थ उनके शरीरके बराबर (दो मनसे कुछ कम) वजन करके नक़द पाँच लाख रुपयेके साथ ब्राह्मणोंको दान दिये गये। इसके सिवा उनके देश लूटनेमें जो गो ब्राह्मण, स्त्री और बालक मारे गये थे, उस पापके प्रायश्चित्त स्वरूप शिवाजीने आठ हज़ार रुपये ब्राह्मणोंको दान किये।

अभिषेकके पहले दिन शिवाजी संयमसे रहे। गंगाजलसे स्नानकर गागा भट्टको पचीस हज़ार और दूसरे बड़े-बड़े ब्राह्मणोंको पाँच-पाँच सौ रुपये दान दिये।

शिवाजीका अभिषेक-स्नान

जेठ महीनेकी शुक्र त्रयोदशी (६ जून, सन् १६७४) अभिषेककी शुभ तिथि थी। बहुत तड़के उठकर पहले शिवाजीने स्नान किया, फिर उन्होंने कुलदेव और कुलदेवी महादेव और भवानीकी पूजा की और कुलगुरु बालम भट्ट, पुरोहित गागा भट्ट तथा अन्यान्य बड़े-बड़े पंडितों और साधुजनोंको प्रणाम करके आशीर्वाद लिया और उन्हें वस्त्रालंकार दान किया।

उसके बाद शिवाजी पवित्र श्वेत वस्त्र पहनकर माला, चन्दन और सोनेके गहने धारण कर अभिषेक-स्नानके लिए नियत किये हुए स्थानपर गये। वहाँ जा कर दो फीट लम्बी, दो फीट चौड़ी और दो फीट ऊँची सोनेकी चौकीपर बैठे। उनकी बग़लमें रानी सोमराबाई बैठीं। सहधर्मिणी होनेसे रानीका आँचल शिवाजीके दुपट्टेके साथ बाँध दिया गया था। कुछ दूर पीछेकी ओर युवराज शम्भूजी बैठे। आठों कोनोंमें सोनेके आठ घड़े और आठ छोटे बर्तनोंमें गंगाजल तथा गंगा प्रभृति सात बड़ी नदियोंका और दूसरे प्रसिद्ध नद-नदी-समुद्र और तीर्थोंका जल लाकर रखा गया था। प्रत्येक घड़ेके पास अष्ट प्रधानोंमें से एक एक आदमी खड़ा था। उन लोगोंने ठीक मुहूर्तमें यह जल शिवाजी, रानी और राजकुमारके सिरपर छोड़ दिया। श्लोकोंके पाठ तथा मंगलवाद्योंकी ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। सोलह सधवा ब्राह्मणियोंने सुन्दर कपड़े पहनकर, सोनेकी थालियोंमें पंचप्रदीप ले उनके मस्तकके चारों ओर फिराकर मंगल आरती उतारी।

उसके बाद शिवाजीने गीले वस्त्र उतार दिये और राजाके योग्य ज़रीके कामदार लाल कपड़े और मणिमुक्ता-जड़ित बहुतसे सुन्दर गहने पहन लिये, गलेमें फूलोंकी माला और सिरपर असंख्य मोतियोंकी झालरदार पगड़ी रख ली और अपनी ढाल, तलवार, तीर और धनुषका 'अस्त्र-पूजन' किया। इस उपलक्षमें भी उन्होंने ब्राह्मणोंको नमस्कार करके दान-दक्षिणा दी।

सिंहासन-गृहकी सजावट

अन्तमें उन्होंने सिंहासन-गृहमें प्रवेश किया। इस गृहकी सजावटमें बहुत ज़्यादा धन-रत्न खर्च किये गये थे। छतके नीचे ज़रीका चंदोवा टाँगा गया था, जिसमें मोतियोंकी लड़ियाँ झूलती थीं। ज़मीनपर मखमलका फर्श बिछा हुआ था। बीचमें बहुत मेहनतसे तयार किया हुआ निपुण कारीगरीके कामसे शोभित 'अमूल्य नवरत्नोंसे खचित' एक बड़ा-भारी सोनेका सिंहासन था। सिंहासनके नीचेका भाग सोनेसे मढ़ा हुआ था। आठों कोनोंमें सोनेके पत्तर मढ़े हुए मणि-जड़ित आठ खम्भे थे। इन आठ खम्भोंके सिरेपर चमकीली ज़रीका चँदोवा टँगा था, जिसमें जगह-जगहपर मोतीके गुच्छे, हीरे और पद्मराग इत्यादि झूलते थे। राजाके बैठनेकी गद्दी बाघके चमड़ेके ऊपर मखमलसे ढकी हुई थी। गद्दीके पीछे राजछत्र था।

सिंहासनके दोनों ओर अनेक प्रकारके राजचिह्न सोनेके नुकीले भालोंके ऊपरसे झूलते थे, जैसे—दाहनी तरफ दो बड़ी मछलियोंका सिर, (मुग़लोंका माही मरातिब), बाईं ओर घोड़ेकी पूँछका चँवर (तुर्कोंका राजचिह्न) और भारी मानदण्ड (यह न्याय-विचारका चिह्न, प्राचीन पारसी या पर्शिया राज्यसे लाया गया था)। बाहर राजद्वारका अग्रभाग दोनों पार्श्वोंमें पत्तोंसे मुँह ढके हुए जलके घड़ोंसे सजाया हुआ था। उसके बाद दो हाथीके बच्चे और

दो सुन्दर घोड़े थे, जिनका साज और लगाम सोने और जवाहरातसे जड़ी थी।

शिवाजीका सिंहासनपर बैठना और छत्र धारण करना

निर्दिष्ट मुहूर्तमें शिवाजी अपने मान्यजनोंको प्रणामकर सिंहासनकी सीढ़ीसे चढ़कर गद्दीपर जा बैठे। उसी क्षण रत्न-जड़ित स्वर्ण-कमलके फूलों और दूसरे सोने-चाँदीके फूलोंके गुच्छेके गुच्छे भर-भरकर सभासदोंके बीच लुटाये गये। फिर सोलह सधवा ब्राह्मणियोंने सुन्दर वस्त्र पहनकर, सोनेकी थालियोंमें पचप्रदीप जलाकर, शिवाजीके चारों ओर घुमाकर अमंगल दूर किया। इकट्ठे हुए ब्राह्मणोंने ऊँचे स्वरसे श्लोक पढ़कर राजाको आशीर्वाद दिया, शिवाजीने सिर झुकाकर उसका जवाब दिया। जनसाधारण आसमान फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगे—"जय, शिवराजकी जय! शिव छत्रपतिकी जय!" जितने बाजे थे, सब एक साथ बज उठे। महाराष्ट्र देशके सब किलोंसे ठीक उसी मुहूर्तमें तोपोंकी सलामियाँ दगने लगीं। देश-भरमें सबको यह मालूम हो गया कि आज उन्हें अपना राजा मिला है।

पहले अध्वर्यु गगा भट्ट, फिर अष्टप्रधान और उनके पीछे अन्य ब्राह्मणोंने आगे बढ़कर राजाको आशीर्वाद दिया। शिवाजीके सिरके ऊपर राजछत्र रखा गया। उन्होंने सबको बेशुमार दौलत दी। "दान पद्धतिके अनुसार सोलह महादान इत्यादि सब दान किये।" सिंहासनके आठों कोनोंमें अष्टप्रधान यानी मंत्रीगण खड़े थे। उनकी पदवीकी फारसी भाषा बदलकर संस्कृत नाम दिये गये; जैसे, पेशवाके बदले 'मुख्य प्रधान'। शिवाजीकी पदवी हुई 'छत्रपति'। उस दिनसे 'राज्याभिषेक-शक' नामका एक संवत् शुरू हुआ। यही संवत् पीछे सब मराठी सरकारी कागज-पत्रोंमें व्यवहार किया जाने लगा।

सिंहासनसे कुछ नीचे तीन आसनोंपर युवराज शम्भुजी, गागाभट्ट और पेशवा मोरेश्वर त्र्यम्बक पिंगले बैठे। बाकी मन्त्री लोग दो कतारमें सिंहासनके दोनों पार्श्वोंमें खड़े रहे। उनके पीछे कायस्थ 'लेखक' नीलप्रभु (पारसनिस) और बालाजी आवजी (चिटनिस) को स्थान मिला। दूसरे दरबारी लोग इसी क्रमसे दूर-दूर खड़े थे।

इन सब कामोंमें आठ बज गये। तब निराजी रावजी (शिवाजीके जज) अंग्रेज़-दूत हेनरी अक्सिन्डनको सिंहासनके सामने ले गये। दूतने सिर झुकाया और उनके दुभाषी नारायण शेनवीने अंग्रेज़ कम्पनीकी भेंट की हुई एक हीरेकी अँगूठी शिवाजीको दिखाई। राजाने उन सबोंको और भी नज़दीक बुलाया और खिलअत पहनाकर बिदा किया।

रायगढ़में जुलूस

सब काम समाप्त होनेके बाद हाथीपर सवार हो शिवाजी अपने दल-बल सहित रायगढ़के रास्ते जुलूस निकालकर चले। आगे दो हाथियोंके ऊपर दो राज-पताकाएँ यानी 'जरी पताका' (जरीका) और 'भगवा झंडा' (रामदास स्वामीके गेरुआ वस्त्रका टुकड़ा था)। नगर-निवासियोंने अपने घर और रास्ते सजा रखे थे। सभी घरोंमें सधवाओंने प्रदीप घुमा-घुमाकर राजाकी आरती उतारी, लावा और दूबसे परछन की। उसके बाद रायगढ़ पहाड़के सब मंदिरोंमें जाकर प्रत्येक मंदिरमें पूजा, दान, ध्यान कर अन्तमें शिवाजी घर लौटे। इतनेमें दोपहरका समय हो गया।

अभिषेकका खर्चा

दूसरे दिन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेका और भिखमंगोंकी बिदाईका काम शुरू हुआ। इसके खतम होनेमें बारह दिन लगे, और इस बीचमें हरएकको राजाके यहाँसे सीधा मिलता रहा। मामूली ब्राह्मणोंकी दक्षिणा तीनसे लेकर पाँच रुपये तक थी। ब्राह्मणी और लड़कोंकी दक्षिणा दो और एक रुपये थी। इस दानमें साढ़े-सात लाख रुपये खर्च हुए।

अभिषेकके दो दिन बाद वर्षा शुरू हुई और दस-ग्यारह दिन तक मूसलाधार पानी बरसता ही रहा। निमन्त्रित आदमियोंको बिदा लेकर लौटनेका रास्ता ही न मिला। १८वीं जूनको पूर्ण सुख सम्पत्तिके बीच वृद्धा जीजाबाईका देहान्त हुआ। उनकी पचीस लाख होणकी सम्पत्ति शिवाजीको

मिली। यह अशौच खतम होनेपर शिवाजी दूसरी बार सिंहासनपर बैठे।

कृष्णाजी अनन्त सभासदने कुछ बढ़ाकर कहा है कि अभिषेकके समय सात करोड़ दस लाख रुपये खर्च हुए थे।* परन्तु सब मिलाकर अगर पचास लाख रुपये रखे जायँ, तो सच हो सकता है।

फिर लड़ाई छिड़ गई

अभिषेककी धूम-धाममें शिवाजीका राजकोष खाली हो गया। इसीलिए उनको फिर लूटके लिए बाहर निकलना पड़ा। इसके ठीक एक महीने बाद जुलाईके बीचोबीच यह अफ़वाह फैली कि मराठे घुड़सवारोंका एक दल एक गाँव लूटनेवाला है। ऐसी अफ़वाह सुनकर मुग़ल सूबेदार बहादुर खा पेडगाँवमें अपना खेमा छोड़कर फ़ौजके साथ पचास मील दूर उसको रोकने गये। उसी मौक़ेपर सात हज़ार मराठोंके एक अन्य दलने दूसरे रास्तेसे आकर पेडगाँवके अरक्षित मुग़ल शिविरपर अचानक हमला कर दिया। वहाँ बिना किसी रोक-टोकके एक करोड़ रुपये और दो सौ अच्छे अच्छे बादशाही घोड़े लूटकर शिविरमें आग लगा चलता बना। जाड़ेके दिनोंमें मराठे लोग कुछ महीनों तक कोली देश, औरंगाबाद, बगलाना और खानदेश लूटते फिरे। सन १६७५ की जनवरीके अन्तमें उन्होंने कोलापुरसे साढ़े सात हज़ार रुपये वसूल किये, परन्तु फरवरीके बीचोबीच मुग़ल कल्याण शहरको जलाकर चल दिये।

मुग़ल, बीजापुरी और शिवाजी

सन् १६७५ के मार्चसे मई तीन महीने तक शिवाजीने फिर मुग़ल-बादशाहके अधीन होनेकी इच्छाके बहाने सन्धि करनेका विचार प्रकट कर सूबेदार बहादुर खांको चकमेमें रखा। इसी बीचमें कोलापुरपर (मार्चमें) तथा फोन्डके प्रसिद्ध क़िलेपर (जुलाईमें) अधिकार कर लिया। इस प्रकार अपना मतलब सिद्ध हो जानेपर शिवाजीने बहादुर खांके दूतको बेइज़्ज़त करके भगा दिया।

क्रोध और लज्जासे व्यथित होकर बहादुर खां शिवाजीको दबानेके लिए बीजापुरके वज़ीर खवास खांसे मिल गये, परन्तु ११वीं नवम्बरको बीजापुरके अफ़ग़ान दलने खवास खांको क़ैद कर लिया और राज-काजका अख्तियार उनके हाथसे छीन लिया। बेचारे बहादुर खांकी मन्शा पूरी न हो सकी।

सन् १६७६ के शुरू ही में शिवाजी बहुत बीमार पड़े। सतारामें तीन महीने दवा करनेपर मार्चके अन्तमें वे अच्छे हुए।

इधर खवास खांके पतनके बाद ही से बीजापुरमें अफ़ग़ान और दक्षिणी उमराओंके बीच बड़ा-भारी घरेलू झगड़ा शुरू हो गया। बहादुर खां बीजापुरके नये वज़ीर अफ़ग़ान-नेता बहलोल खांके ऊपर (३१ मई, १६७६ को) चढ़ाई करनेके लिए रवाना हुए। बहलोलने झट शिवाजीसे सन्धि कर ली। उसकी शर्तें ये थीं कि बीजापुर-सरकार शिवाजीको हर साल नक़द तीन लाख रुपये और एक लाख होण (यानी पाँच लाख रुपये) कर देगी, उनके जीते हुए देशोंपर उनका अधिकार मानेगी, और अगर मुग़ल चढ़ाई करें, तो शिवाजी अपनी फ़ौजसे आदिलशाही राजकी रक्षा करेंगे; परन्तु बीजापुरके घरेलू झगड़ों और नये परिवर्तनोंके बीच यह सन्धि बहुत दिन नहीं चली। इससे शिवाजीकी कोई हानि नहीं हुई। वे दूसरी ओर एक बहुत धनी देश पूर्व-कर्णाटक अर्थात मद्रास प्रान्तको जीतने चल दिये।

---

* सभासद कहते हैं, सिंहासनमें बत्तीस मन सोना (दाम चौदह लाख रुपये), चुने-चुने हीरे और मणि-माणिक्य लगे थे, अष्ट-प्रधानोंमें से हरएकको एक लाख होण (अर्थात् पांच लाख रुपये) नगद और हाथी, घोड़े, कपड़, गहने इनाममें मिले थे; गागाभट्टको 'अपरिमित द्रव्य' दिया गया था, इत्यादि।

'नटराज'

श्री शारदाप्रसाद

प्राचीन ऋषियों और मुनियोंके उन्नतम विचारोंको समझना साधारण बुद्धिका काम न था। परन्तु भारतीय शिल्पियोंने अद्भुत भावमयी मूर्तियों-द्वारा उन गम्भीर विचारोंको साकार बनाकर उन्हें सर्वसाधारणको उपलब्ध कर दिया। ऐसी ही एक परम भावमयी मूर्ति शिवाजीकी नटराज मूर्ति है।

कुछ समय पहले तक पाश्चात्य कलाविद् भारतीय कलाको बर्बर निकृष्ट आदि कहा करते थे, परन्तु जब यह मूर्ति उनके दृष्टिगत हुई, तब तो उनकी आँखें खुल गईं, और यह कह गया कि जिस कलामें ऐसी चमत्कार-पूर्ण मूर्तिका निर्माण सम्भव है, वह अवश्य ही अति उच्चकोटिकी है। शीघ्र ही यूरोपियन विद्वानोंने समझ लिया कि पाश्चात्य दृष्टिकोणसे देखनेसे उन्हें भारतीय कलाका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, अत: वे भारतीय कलाके अन्तर्गत भावोंके समझनेकी चेष्टा करने लगे। अब तो विदेशोंमें भारतीय कलाके अनेक मर्मज्ञ हैं और इसका उचित मान भी है।

भारतीय कलाका इस समय जो पुनरुत्थान हो रहा है, उसका बहुत बड़ा श्रेय नटराजकी मूर्तिको है। केवल कलाविदोंने ही नहीं, अनेकों नामी पाश्चात्य शिल्पियोंने भी इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है।

नौवीं तथा दसवीं शताब्दीकी दाक्षिणात्य धातु-मूर्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। अनेक बातोंमें वे अन्य प्रान्तों तथा समयोंकी मूर्तियोंसे मिलती-जुलती हैं, फिर भी उनकी कलामें कुछ ऐसी विशेषता है, जो उन्हें एक विशेष श्रेणीकी सिद्ध कर देती है। दक्षिणमें धातु-मूर्ति निर्माण बहुत पहले आरम्भ हुआ था और नौवीं शताब्दी तक इस कलाका पूर्ण विकास हो चुका था। इसी समय वहाँ शैव मतकी लहर उठी और सुप्रसिद्ध चोल राजाओंके समयमें प्रस्तर-मूर्तियोंके साथ-साथ बहुतसी धातु-मूर्तियां भी निर्मित हुई। इन्हीं मूर्तियोंके कुछ भावोंका वर्णन इस लेखमें किया जायगा।

शिवाजी नटराज हैं सब नटोंके राजा, सब नृत्यकारोंमें श्रेष्ठ। विश्व उनका नृत्यस्थल है और वह अनेक प्रकारसे नाचते हैं। वे स्वयं ही नर्त्तक हैं और स्वयं ही दर्शक। जब वे अपना डमरू बजाते हैं, सभी तमाशा देखने आते हैं, जब अपने गुणोंको समेट लेते हैं, वे अपने आनन्दमें अकेले ही मग्न हो जाते है।

शिवजीके कुल कितने प्रकारके नृत्य विदित हैं, यह तो कहना कठिन है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक नृत्यका एक ही कारण है—रहस्यमय आदि शक्तिका विकास।

शिव नृत्यका विचार चाहे जिस प्रकार प्रारम्भ हुआ हो, समय पाकर वह परमात्माके कर्तृत्वका संसार-भरके धर्मों तथा कलामें सबसे श्रेष्ठ स्पष्ट करनेवाला हो गया।

शिव नृत्योंमें तीन विशेष प्रसिद्ध हैं—

(१) हिमालयका सान्ध्य नृत्य।

(२) हिमालयका तांडव नृत्य।

(३) चिदम्बरम्का नदान्त नृत्य।

एक, तीनों लोकोंकी माताको रत्न-जड़ित सिंहासनपर बिठलाकर, कैलाश शिखरपर शूलपाणि नृत्य करते हैं। सब देवगण उनके पास एकत्रित हो जाते हैं। सरस्वती वीणा बजाती हैं, इन्द्र वंशी बजाते हैं, ब्रह्मा मजीरेसे ताल देते हैं, लक्ष्मी गाना शुरू करती हैं और विष्णु ढोल बजाते हैं। अन्य सब देव घेरकर खड़े हो जाते हैं। सन्ध्या समय गन्धर्व, यक्ष, पतग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, अमर, अप्सरायें—तीनों लोकोंके समस्त निवासी इस देव नृत्यको देखनेके लिए एकत्रित हो जाते हैं।

दूसरा नृत्य ताण्डव है। यह भगवानके तामसिक वृत्तिका नृत्य है। यह नृत्य वे भैरव या वीरभद्र रूपसे करते हैं। इसका स्थान श्मशानभूमि है। शिवजीके दस हाथ हैं, वे देवीके साथ विकट नृत्य करते हैं, साथमें
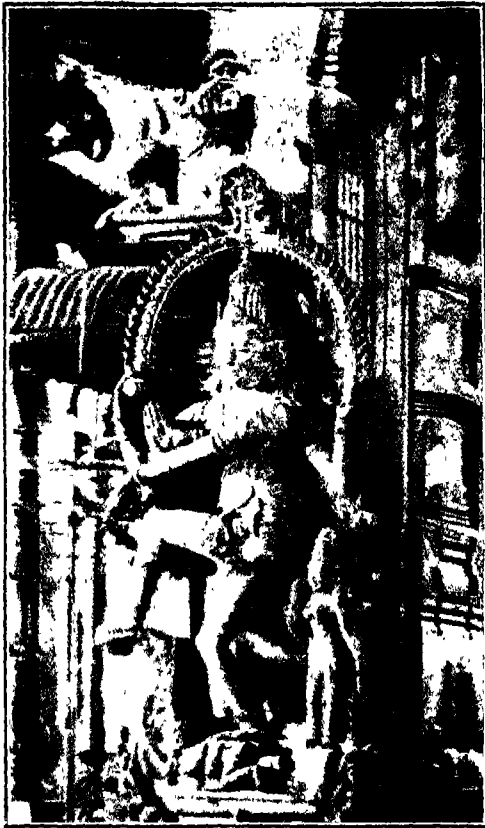
मदूराके वृहत् मन्दिरमें नटराजकी मूर्ति
सिरके चारों ओर पीतलका घेरा-प्रभा-है

भूतोंकी सेना भी नाचती है। इस नृत्यकी मूर्तियाँ इलोरा, एलिफेन्टा और भुवनेश्वर आदिके प्राचीन शिल्पोंमें पाई जाती हैं। शैव और शाक्त ग्रन्थोंमें शिव और देवीके ताण्डव नृत्योंका विशद वर्णन है और इनके भावोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। शिवाजीकी तामसिक शक्ति कालीकी विकराल नृत्य-मूर्तियां जगह-जगहपर स्थापित हैं और इनके उपासक भी बहुत हैं; परन्तु इन सबके भावोंको जाननेवालोंकी संख्या तो आज भारतमें कोरी ही जान पड़ती है।

तृतीय नृत्य नटराजका नदान्त नृत्य है। इसका वर्णन दाक्षिणात्य ग्रन्थोंमें है। भगवान्ने तारगमके वनमें देवों तथा ऋषियोंको परास्त किया और विश्वके मध्य चिदम्बरम् या तिलाईके सुवर्ण सभा-मण्डपमें नृत्य किया। इसका कथानक इस प्रकार है।

तारगम् वनमें अनेकों मीमांसक ऋषिगण रहते थे। सुन्दर स्त्री-वेषधारी विष्णु और प्रतिशेषनको साथ ले शिवजी वहां पधारे। पहले तो उन्होंने ऋषियोंमें आपसमें ही विवाद उत्पन्न कर दिया, और वे वाद-विवाद करने लगे। परन्तु शीघ्र ही उनका क्रोध शिवजीकी ओर अग्रसर हुआ और उन्होंने मन्त्र-द्वारा उनका नाश करना चाहा। हवन कुंडसे एक भयानक व्याघ्र निकला और शिवजीकी ओर दौड़ा। भगवानने उसे पकड़ कर अपनी छिगुलीसे उसका चर्म उधेड़ दिया और उसे ऐसे पहन लिया मानो रेशमी वस्त्र हो। यह देखकर भी ऋषिगण हताश नहीं हुए, उन्होंने पुन: आहुति दी। इस बार एक बड़ा सर्प उत्पन्न हुआ। उसे भगवानने पकड़कर मालाके सदृश पहिन लिया और नृत्य करने लगे। इतनेमें एक दुष्ट बवना राक्षस मुयलक उनकी ओर दौड़ा। भगवानने अपने पैरके अंगूठेसे दाबकर उसकी पीठ तोड़ डाली और वह पृथ्वीपर तड़पने लगा। इस प्रकार अपने शत्रुओंका संहार करके शिवजीने पुन: अपना नृत्य आरम्भ किया। अब ऋषियोंने भगवानको पहचाना और देवताओं तथा ऋषियोंने इस नृत्यको देखा।

तब प्रतिशेषनने शिवजीका पूजन किया और वरदान मांगा कि यह भावमय नृत्य एकबार फिर देखनेको मिले। शिवजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा कि वे विश्वके मध्य स्थित पवित्र तिलाईमें पुन: नृत्य करेंगे। इसी नृत्यके भावको दिखलानेके लिये दाक्षिणात्य शिल्पियोंने नटराजकी मूर्ति निर्मित की है। अब मूर्तिका संक्षिप्त वर्णन सुनिये।

नटराज नृत्य कर रहे हैं। उनके चार हाथ हैं,

नटराजकी एक आभाहीन मूर्ति

रत्न-जटित जटायें हैं, ऊपर जूरा बंधा है, नीचे बाल नृत्यके वेगके कारण वायुमें उड़ रहे हैं। जूरेमें सर्प लिपटा हुआ है और गंगाजी विराजमान हैं। जूरेके ऊपर द्वितीयाका चन्द्रमा है और सबसे ऊपर माला है। दाहिने कानमें मर्दाना कुण्डल है और बाएँमें जनाना। गलेमें हार, बांहोंमें भुजबन्द, कमरमें रत्न-जटित करधनी, पैरमें छागल

और हाथ-पैरकी अंगुलियोंमें छल्ला, अंगूठी आदि धारण किये हुए हैं। कपड़ेके नाम एक चुस्त जाँघिया है। शरीरपर यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं। एक दाहिने हाथमें डमरू है और दूसरा अभय मुद्रामें है। एक बाएँ हाथमें अग्नि है और दूसरा राक्षस मूयलक अथवा अपने पैरको इंगित कर रहा है। मूयलकके हाथमें सर्प है। भगवानका एक पैर उसकी पीठपर तथा दूसरा उठा हुआ है। कमलकी चौकीका सिंहासन है। भगवानके चारों ओर तिरवासी अर्थात् आभा है, जिसपर अग्निशिखाओंकी ओर है। अग्नि तथा डमरू धारण करनेवाले हाथ इस आभाको छू जाते हैं। यह मूर्तियाँ छोटी-बड़ी सभी आकारकी मिलती हैं, परन्तु चार फुटसे बड़ी तो कदाचित् अब तक नहीं मिली है।

मूर्तियाँ इतनी भावपूर्ण हैं कि यदि प्राचीन ग्रन्थोंमें इनका वर्णन न होता, तो भी इनका भाव समझमें आ जाता। सौभाग्यवश प्राचीन ग्रन्थोंमें इनका विशद वर्णन है, जिसके अध्ययनसे मूर्तिके साधारण भाव ही नहीं, बल्कि अंग-प्रत्यंगके भावोंका सविस्तार ज्ञान हो जाता है। मूर्तिके अनेक अंग और आयुध तो ऐसे हैं, जो साधारणतया शिवजीकी सभी मूर्तियोंमें पाये जाते हैं और जिनका नृत्यसे कोई विशेष सम्बन्ध भी नहीं है, जैसे योगियों ऐसी गठीली जटाएं, मस्तकपर गंगा, नागसे दोनों कानोंके कुण्डलोंमें भेद और चार भुजाएं। योगिराजके हाथमें डमरू भी सदा रहता है, परन्तु नृत्य-मूर्तिमें उसका विशेष स्थान है।

"भगवान नटराज हैं, ईंधनमें लुप्त अग्निके सदृश विचारों और पदार्थोंको अपने नृत्यसे नचा देते हैं।" वास्तवमें उनके नृत्यसे उनके पंचकृत्य—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—के भाव प्रकट होते हैं। अलग-अलग विचार किया जाय, तो क्रमशः यह कृत्य ब्रह्मा (सृष्टि उत्पन्न करना, विकास, अवलोकन), विष्णु (स्थिति-रक्षा-धारण), रुद्र (संहार-विनाश-विकाश) महेश्वर (तिरोभाव छिपाना, रूप धरना, मायावित करना तथा शान्ति देना) और सदाशिव (अनुग्रह—मोक्ष, दया) के हैं। यह विश्व कर्म ही नृत्यका केन्द्रीय भाव है।

डमरूसे सृष्टि उत्पन्न होती है, प्रथम मुद्रावाले हाथसे स्थिति होती है और अग्निसे संहार ऊपरको उठा हुआ पैर मोक्ष देता है और चौथा हाथ चरणकी ओर इंगित करता है कि आत्माकी शरण यहीं है। भूमिपर स्थित चरणमें ही आक्रान्त आत्माकी शरण है और ऊपर उठा हुआ चरण अंतिम आनन्दका दाता है।

त्रिदेवमें शिवजी संहारकर्ता हैं और संहार वे सदा अग्नि द्वारा ही करते हैं। सम्भवतः इसी कारण इस मूर्तिमें उनकी आभाको अग्नि शिखामय बनाया जाता है।

शिवका स्वरूप सभी जगह है, उनकी शक्ति सभी जगह फैली हुई है। परन्तु स्थान चिदम्बरम है और हर जगह वे नृत्य करते हैं। उनका पंचांग नृत्य उनके पंचकृत्यसे विदित होता है। वे जल, अग्नि, वायु और आकाशमें नृत्य करते हैं और इस नृत्यको वही देख सकता है, जो माया तथा महामायासे परे है। भगवान शिवका नृत्य अनादि है और उससे उत्पन्न आनन्द ही उनकी शक्ति उसका स्वरूप है। उचित समयपर इस शक्तिका स्वरूप उत्पन्न होता है और दोनोंका सम्मिलन ही नृत्य है। आकाश उनका शरीर है और उसमें स्थित काला बादल मूयलक। आठों दिशाएँ उनकी आठ भुजाएँ हैं और तीन आभाएँ उनके तीनों नेत्र हैं। इस प्रकार वे हमारे सामने और हमारे शरीरमें भी नृत्य करते हैं। यही नटराजका नृत्य है और इसका पूर्ण तात्पर्य तभी समझमें आता है, जब यह भास हो जाय कि वह हमारे हृदय और आत्मामें होता रहता है।

शिव संहारकर्ता हैं और उन्हें श्मशान प्रिय है, परन्तु वे किसका नाश करते हैं—कल्पान्तमें त्रिलोकका। केवल यही नहीं, प्रत्येक आत्माको बंधनमें डालनेवाली मायाका भी। उनका प्रिय श्मशान भौतिक शरीर अन्त करनेवाला भौतिक श्मशान नहीं है, वरन् उनके उन भक्तोंके शून्य हृदय हैं, जिनकी माया और अहंकारका नाश हो चुका है।

सर्वोपरि ज्ञानका नृत्य हमारी आत्मामें माया, कर्मसूत्र, और अविद्याका नाश करने तथा आनन्द देनेके लिए होता

है। जिसने इस नृत्यको देख लिया, वह जन्म-मरणसे मुक्त हो गया। यह संसार भगवानकी लीला है।

वैज्ञानिकोंको विज्ञानका रहस्य भी इस नृत्यमें सन्निहित मिलेगा। उनका परमाणुवाद (Atomic theory) अणुके बीच परमाणुओंका सदा नृत्य करना मानता है। इस नृत्यके गतिके परिवर्तनसे ही अणुके रूपका परिवर्तन होता है। जिस समय एक अणुका नाश होता है, उसी समय उसके परमाणु स्वयं ही अथवा अन्य परमाणुओंसे मिलकर नवीन अणु उत्पन्न कर देते हैं। उत्पत्ति और संहार एक साथ ही घटित होता है। शिवजीके नृत्यमें भी तो डमरू द्वारा उत्पत्ति तथा अग्निसे संहारका एक ही समय होता जाना जाता है।

विद्युत भी तो शिवका ही प्रहरण है। शिवने जिस अग्निसे मदनका दहन और त्रिपुरको भस्म किया था, वह वैद्युतिक शक्तिका ही तो लीला विकास था।

'शिवाय नमः' इस पंचाक्षर मन्त्रमें नृत्यका सारा भेद सन्निहित है। इस मंत्रके ध्यानसे आत्मा शिवमय हो जाती है। पंचाक्षर ही तो नृत्य है और ओ३मकार उसकी आभा है। नृत्यके बिना आभा नहीं और आभा-रहित नृत्य सम्भव नहीं है। 'ओ३म नमः शिवाय' ही नृत्यका पूर्ण स्वरूप है। संसार चक्र एक ओर चल रहा है और ज्ञान-नृत्य दूसरी ओर हो रहा है। ज्ञान-नृत्यके मध्यमें ही ध्यान लगाना श्रेयस्कर है। आभा प्रकृति-रूप है और उसके मध्यमें नर्तक शिव ही परम पुरुष हैं। पंचाक्षर मंत्रमें पुरुष शिव और प्रकृति नमःके बीचमें आत्मा-रूप है।

वे शिल्पी धन्य हैं, जिन्होंने इस अनुपम मूर्तिकी रचना की, जिसके द्वारा मनुष्यके हृदयमें इन चमत्कारपूर्ण विचारोंकी उत्पत्ति होती है। आज विज्ञानकी चरम उन्नति हुई है, परन्तु फिर भी प्रत्येक कार्यके कारण-स्वरूप जिस शक्तिका अस्तित्व विज्ञानको भी स्वीकार करना पड़ता है, उसकी साकार मूर्ति नटराजकी मूर्तिसे उत्तम बनाना किसी प्रकार सम्भव नहीं। धन्य है वह देश, जिसने ऐसे वातावरणकी वृद्धि की, जिसमें ऐसे उच्च विचारोंकी उत्पत्ति हुई तथा इस प्रकार उनका स्पष्टीकरण हुआ। केवल एक नटराजकी मूर्ति ही संसारके कलाविदोंमें भारतका मस्तक ऊँचा करनेके लिए काफी है। खेद तो इस बातका है कि स्वयं भारतीय ही अपनी कला तथा उसके भावोंको भूले हुए हैं। जब तक हमें यह ज्ञान प्राप्त न होगा, हमारी कलाकी उन्नति न होगी। भगवान शंकरके अनुग्रहसे हमें यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है, इसलिए,

नमामि सततं भक्त्या ज्ञानदं वरदं शिवम्।
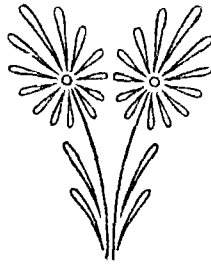
भारतीय कलाके उत्कृष्ट उदाहरण

श्रीयुत अर्द्धेन्द्रकुमार गंगुली

लाहौरकी पाँचवीं ओरियन्टल कानफरेन्सके कला-विभागमें वक्तृता देते हुए मैंने इस विषयपर विशेष ज़ोर डालनेकी चेष्टा की थी कि हमारी शिक्षाके पाठ्यक्रममें ऐसी व्यवस्था होना बहुत आवश्यक है, जिसमें हमारे विद्यार्थियोंको पुराने और नये कलाकारोंकी कृतियोंको देखनेके अवसर प्राप्त हों, और उनमें उन कृतियोंके सौन्दर्यको ग्रहण करने और समझनेकी शक्ति विकसित हो सके। हम देखते हैं कि हमारे विद्यार्थियोंके लिए इस प्रकारके सर्वांगपूर्ण पाठ्यक्रम निर्धारित हैं, जिनकी सहायतामें वे कविता, नाटक और गद्य-साहित्यकी सर्वोत्तम कृतियोंका अध्ययन और मनन करके उनको समझनेके योग्य हो जाते हैं. यद्यपि इस बातकी कोई प्रत्यक्ष चेष्टा नहीं की जाती कि वे उस शिक्षासे कवि, नाटककार या उपन्यासकार बन सकें। ठीक इसी प्रकार हमारे पाठ्यक्रममें इस बातकी व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे विद्यार्थियोंको कलाकी सर्वोत्कृष्ट कृतियोंके सौन्दर्य समझनेका शिक्षित ज्ञान प्राप्त हो सके। हमारी आधुनिक शिक्षाने एक ओर तो हमें भारतके प्राचीन सांस्कृतिक जीवन, उसके आदर्श, स्टैण्डर्ड और आकार-प्रकारसे पृथक् कर दिया है, दूसरी ओर उसने हमारे वर्तमान दृष्टिकोण और भारतीय कलाके बीच—जिसमें भारतीय संस्कृतिके सर्वोत्कृष्ट अंश विद्यमान हैं—एक चौड़ी खाई बना दी है। इस प्रकार धीरे-धीरे आधुनिक भारतीयोंकी दृष्टि भारतीय कलाकी ओरसे फिर गई। उससे जनसाधारणका सम्पर्क और सहानुभूति जाती रही। लोग समझने लगे कि भारतीय कला एक ऐसी चीज़ है, जिसे एक कोनेमें डालकर उसकी अवहेलना और उपेक्षा की जा सकती है। साहित्यिक क्षेत्रमें अक्सर साहित्यकी उत्कृष्ट कृतियों—अंग्रेज़ी तथा भारतीय दोनों—के सम्पर्कमें आनेसे हमारे कालेजके विद्यार्थियोंमें विभिन्न युगोंकी साहित्य-प्रणालियों और प्रगतियोंको आलोचनात्मक दृष्टिसे देखने और उनका मूल्य निर्धारित करनेकी पर्याप्त शक्ति और प्रवृत्ति जाग्रत हो उठी है; मगर रूपमय कलाके क्षेत्रकी दशा इससे बिल्कुल भिन्न है।

हमारे औसत दर्जेके पढ़े-लिखे लोग दृश्य कला—चित्र-कला, मूर्ति-कला और स्थापत्य-कला—का मूल्य समझनेमें बिलकुल ही अक्षम हैं। उनकी दृष्टि और आलोचनाकी प्रवृत्तिको, किसी कलापूर्ण चीज़को देखकर उसके सौन्दर्यके गुण-दोष पहचाननेकी शिक्षा प्राप्त करनेका अवसर ही नहीं मिलता। कारण यह है कि वे कलाके 'मास्टर पीसेज़'—सर्वोत्कृष्ट कृतियों—के सम्पर्कमें ही नहीं आते, क्योंकि हमारे भारतीय कालेजोंमें कला एक निषिद्ध वस्तु हो रही है। हमारे साधारण पढ़े-लिखे भारतीयोंके लिए बौद्ध मूर्ति-कला हिन्दू मूर्ति-कला अथवा राजपूत-चित्र-प्रणालीकी ख़ूबियोंको समझनेका मार्ग उसी प्रकार बन्द है, जैसे ग्रीक और रोमन संस्कारोंमें बुरी तरह जकड़े हुए यूरोपियनोंके लिए; मगर विदेशियोंकी पढ़ाई लिखाईमें 'आर्ट' की शिक्षा भी सम्मिलित होती है, अतः वे सौन्दर्य-तत्त्वकी शिक्षामें मँजे हुए होते हैं। इसलिए वे हमारी भारतीय कलाको समझनेकी कुंजी ढूँढ़ निकालते हैं; मगर हमारे कालेजोंके नवयुवकोंके लिए भारतीय चित्र और मूर्तियोंकी विशिष्ट प्रणाली और उनका प्रवाह सदा ही दुर्गम जान पड़ता है। भारतीय कलाका घनिष्ट परिचय प्राप्त करने और समय समयपर भारतीय कलाके विभिन्न पहलुओंके सम्पर्कमें आनेसे ही हम लोग अपनी अमूल्य पैतृक निधियोंका असली महत्त्व समझने योग्य होंगे। 'विशाल-भारत'के सम्पादकके सौजन्यसे मैं प्रतिमास 'विशाल-भारत' के पाठकोंके सामने भारतीय चित्र-कला और भास्कर्य-कार्यका एक-एक चुना हुआ उदाहरण उसके संक्षिप्त

वर्णन सहित उपस्थित करूँगा। आशा है कि इससे हमारे हिन्दी पाठकोंमें भारतीय कलाके प्रति--जिसकी अब तक हम लोग उपेक्षा ही करते रहे हैं—अनुराग उत्पन्न होगा। इस सम्बन्धमें मि० ई० बी० हेवेलका कथन ध्यान देने योग्य है—

'यहाँ तक कि यदि मेकालेकी भाँति विचार रखनेवाले यूरोपियन सब प्रकारकी भारतीय कलाको निस्सार समझें, तब भी भारतीयोंके लिए वह एक अमूल्य वरदान ही रहेगी। भारतीय कला भारतीयोंको एक ऐसी वस्तु प्रदान करती है, जो यूरोपियन कला उन्हें कभी नहीं दे सकती। वर्तमान पौधके भारतीय मेकालेकी संकीर्ण और अदूरदर्शी नीतिसे अपने इस बहुमूल्य पैतृक अधिकारका उपभोग नहीं कर सके, परन्तु अब उनका कर्तव्य है कि वे इस बातको देखें कि उनकी सन्तान इस अधिकारसे वञ्चित न रहने पाये।"

माता और पुत्र

(अजन्ताकी सत्रहवीं गुफाकी दीवारपर अंकित चित्र)

अजन्ताके गुफा-मन्दिरों और मठोंकी विस्तृत दीवारोंपर बौद्ध भारतके भिक्षु-कलाकार एक सुन्दर चित्रावली अंकित करके छोड़ गये हैं। चित्रकारोंकी गम्भीर धार्मिकता, उनकी परिकल्पना—डिज़ाइन—की महानता और सामंजस्य, उनकी तूलिकाकी अभिव्यापक रेखाएँ और सबसे ऊपर उनके प्रशान्त गम्भीर दृश्योंके कारण ये चित्र संसारके किसी भी देशकी चित्र-कलाके सर्वोत्कृष्ट उदाहरणोंकी बराबरी कर सकते हैं! इटेलियन चित्र कलाकी सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ यूरोपियन संस्कृतिकी एक अनिवार्य अंश हो गई हैं। हमारी एशियाई संस्कृतिके पुनरुत्थानमें अजन्ताके चित्रोंको भी वही स्थान मिलना चाहिए। इङ्गलैंडके स्कूलोंके अधिकांश बालक 'द विन्सी की अंकित की हुई 'मेडोना आफ् दी रॉक्स' (पहाड़पर ईसाकी माता) अथवा 'बटिचेली'की चित्रित 'मेडोना आफ् दी पामेग्रनेट' के चित्रोंसे परिचित मिलेंगे; मगर हमारे स्कूलोंके कितने शिक्षक और कालेजोंके कितने प्रोफेसर अजन्ताकी सत्रहवीं गुफाकी दीवारपर अंकित बौद्ध माताके चमत्कारपूर्ण चित्रसे परिचित हैं? इन बौद्ध याजक कलाकारोंके चित्र देखकर हम लोग एक नवीन आध्यात्मिक स्वप्न-लोकमें आ पहुँचते हैं। इन कलाकारोंने मानव-जीवनके आनन्दों, कामनाओं और कष्टोंका गहरा परिचय प्राप्तकर उन्हें ऐसी रूपमयी भाषामें प्रकट किया है, जिसमें शारीरिक और आध्यात्मिक—दोनों प्रकारके—सौन्दर्योंका बड़ा सुन्दर सामञ्जस्य है। 'माता और पुत्र' का यह चित्र भगवान बुद्धके जीवनकी एक घटनाको अंकित करता है। भगवान बुद्ध सन्यासी होनेके बाद एक बार कपिलवस्तु गये थे। जिसने कपिलवस्तुको राजकुमारके वेशमें त्यागा था, वही अब वहाँ भिक्षुकके रूपमें उपस्थित हुआ! भगवान बुद्ध हाथमें भिक्षापात्र लिए हुए द्वार द्वार भिक्षाटनकर रहे थे कि अचानक उनकी स्त्री यशोधरा और उनके पुत्र राहुलसे उनकी भेंट हो गई! इस चित्रमें उस आकस्मिक भेंटके समय यशोधरा और उसके पुत्रकी आकृति अंकित है। राहुलकी माताके ऊपर उठे हुए मुख-मण्डलपर ऐसी गम्भीर कोमलता और ऐसी यन्त्रणापूर्ण करुणा है, जो इटलीकी 'मेडोना' के अनेक चित्रोंसे आसानीसे टक्कर ले सकती है। उसके नेत्रोंसे—जिनमें प्रायः आँसू छलकसे रहे हैं--एक प्रकारका अनुनय और भर्त्सना प्रकट हो रही है। यशोधराके नेत्र एक त्यक्ता पत्नीके शून्य-हृदयके लिए अनुनय कर रहे हैं, साथ ही वे एक राजकुमारको उसके भिक्षा-पात्र और संन्यासी-वेशपर भर्त्सना देते हुए जान पड़ते हैं। यहाँपर यशोधरा बौद्ध कलाकी 'शोकातुरा माता' की मूर्तिके रूपमें अंकित की गई है। यदि हम चित्रकी धार्मिक

माता और पुत्र

(अजन्ताकी १७वीं गुफाकी दीवारपर अंकित चित्र)

और भावुक 'अपील'को छोड़ भी दें, तो भी जो कुछ बच रहता है, वह सौन्दर्यतत्त्व और दृश्य गुणोंसे दर्शकोंके हृदयमें अनिर्वचनीय आनन्द उत्पन्न करनेके लिए काफ़ी है। माताके ऊपर उठे हुए मुखकी वक्र रेखाएँ बहुत ही कोमल और सौन्दर्यपूर्ण हैं। चित्रकारने पुत्रके चेहरेको भी ऊपरकी ओर उसी कोणपर उठा हुआ दिखाकर जो चतुरतापूर्ण पुनरुक्ति की है, उससे डिज़ाइनमें एक विशेष बल आ जाता है। माता अपने पुत्रपर प्यारसे हाथ रखे खड़ी है। भुजा और हाथकी मृदु वक्र रेखाएँ बड़ी सुन्दरतासे ऊपरसे नीचेको उतरकर पुत्रकी आकृतिमें ग़ायब हो जाती हैं, और इस प्रकार दोनों आकृतियोंमें बड़ी आनन्दपूर्ण एकता स्थापित हो जाती है। वास्तवमें दोनों आकृतियोंके उद्देश, उनकी भावभंगी और मुद्रामें एक ऐसा आन्तरिक मधुर सामंजस्य है, मानो किसी चतुर संगीतज्ञने बाजेके विभिन्न तारोंमें एक ही सुर, एक ही लय उत्पन्न कर दी हो। चित्रकारने प्रकाश और छाया अथवा गठन पद्धति (मॉडलिंग) का सहारा लिए बिना केवल भावुक, परन्तु सुनिश्चित रेखाओंके माध्यमसे ही सारी कथा कह सुनाई है। चित्र-प्रदर्शनकी इस कृतिसे यह मालूम होता है कि भारतीय कलाकार इटेलियन कलाकारोंके कई शताब्दी पूर्व ही कलाको कितनी अच्छी तरह समझ गये थे।

बौद्ध तारकी ताम्र-मूर्ति

(नेपालशैली बारहवीं शताब्दी

बौद्धधर्मकी महायान-शाखाने भारतीय कलाके भास्कर-भांडारमें अनेकों सुन्दर मूर्तियाँ अर्पित की हैं। इन मूर्तियोंकी कल्पना गम्भीर, आकृतियाँ भावमयी तथा मुद्रा और भाव-भंगी बहुत ही विभिन्नता पूर्ण है। यहाँपर बौद्ध तारकी जिस मूर्तिका चित्र प्रकाशित किया जाता है, उसकी कल्पनामें एक स्निग्ध सुषमा है साथ ही मूर्तिमें एक प्रकारकी एकाग्रता तथा दृढ़ता है। यौवनपूर्ण शरीर भावपूर्ण अवांग मुद्रामें एक ओरको झुका हुआ है। भुज युगलका कोमल रेखान्यास दो सुघड़ हाथोंमें आकर समाप्त हो जाता है। इन हाथोंमें से एक अभय मुद्रामें है, दूसरा लोल मुद्रामें। ये हाथ नितम्बपर अवलम्बित हैं, जिनसे समूचे शरीरके खड़े होनेकी मुद्राके प्रभावमें विशेष बल आ जाता है। मूर्तिके स्थित शील भाव सिरमें जाकर समाप्त होते हैं। सिरकी कल्पना ध्यानमग्न और गम्भीर एकाग्रतापूर्ण अवस्थामें की गई है। बौद्धधर्ममें तारा मुक्तिदात्री और संसारके कष्ट तथा पीड़ाओंको हरनेवाली मानी जाती है। अतः इस मूर्तिमें उसके इस महान उत्तरदायित्वको उसके गम्भीर भावों और स्थित-शील क्रियामें प्रकट किया गया है। चेहरेकी भाव व्यंजनामें निश्चेष्ट चिन्ताके भाव नहीं हैं, बल्कि उसमें सन्तप्त संसारके कष्टोंके लिए—जिन्हें ताराने अपनाया है—क्रियाशील सहानुभूति और उन कष्टोंके दूर करनेकी प्रबल चिन्ता प्रकट हो रही है। इन गम्भीर चिन्ताशील भावोंके बीचमें मूर्तिके अधरोंपर मधुर मुस्कानकी जो रेखा खेल रही है, उसने उस गम्भीरताको बहुत कुछ हलका कर दिया है। ऐसा मालूम होता है, मानो तारापर संसारकी यन्त्रणाके भारके जो बादल लदे हुए हैं, उनमें सहसा बिजली चमक गई हो! ताराके वस्त्र इस प्रकार बनाये गये हैं तथा मूर्तिशिल्पकी समस्त सूक्ष्मताएँ और कारीगरीकी विशेषताएँ इस प्रकार दिखाई गई हैं, जिनसे मूर्तिके खड़े होनेके ढंग और चिन्तायुक्त भावोंको विशेष महत्त्व मिलता है। मूर्ति कमलासनपर स्थित है। उसका बोझ बाएँ पैरपर रखकर समूची मूर्तिके भारका छन्द (बैलेन्स) एकसा रखनेकी कोमल कल्पना की गई है। हाथों तथा वस्त्रोंकी उतरती हुई रेखाएँ भार-साम्यके इस विचारको और भी सुदृढ़ करती हैं। विशेषकर भार-साम्यके लिए ही उत्तरीय

वस्त्रका सुन्दर लहँ बाएँ हाथसे उतरकर कमलासनपर अवलंबित की गई हैं। इसके विरुद्ध केवल त्रिचूड़ मुकटके तीन चूड़ ही विपरीत दिशामें ऊपरको उठे हुए हैं, परन्तु सिरके चारों ओरका गोलाकार शिरस चक्र उनके भारका मार्जन कर देता है। कानका निम्नभाग कुछ लम्बा है, जिससे उनके कुण्डल आकर कन्धेसे लग गये हैं। इन कुण्डलोंकी गोलाईके समीपसे ही बाहुओंके भुजबन्दोंके टिकड़े आरम्भ हो जाते हैं। फिर ये भुजबन्द नीचेकी ओर उतरकर हाथोंकी रेखाओंमें मिल जाते हैं और हाथके आगे यह उतार उत्तरीयके द्वारा कमलासन पर जा पहुँचता है। इसलिए कि इन उतरनेवाली रेखाओंके सामञ्जस्यमें अन्तर न पड़े, समस्त आड़ी रेखाएं बहुत ही मृदु भावसे—केवल इंगित करने मात्रके लिए—बनाई गई हैं। इसीलिए गलेका आभूषण (उपग्रीवा) और कटिबन्ध प्रायः अदृश्यसे हैं। ऊपरसे उतरता हुआ लहरदार ज़रीका काम मृदु तरल रेखाओंके द्वारा ऐसी चातुरीसे दिखाया गया है, जो भगवान अवलोकितेश्वरकी पत्नी, महा करुणा ताराकी तरल सहानुभूति और करुणाका परिचायक है। इस भारतीय मूर्तिकी कल्पना ऐसी दृढ़ता और एकाग्रतासे की गई है, जो बड़े ऊँचे दर्जेके आध्यात्मिक सौन्दर्यका परिचय देती है, इटलीके 'देवदूत' अथवा ग्रीसकी वीनसकी मूर्तियाँ इससे बिलकुल विपरीत हैं, क्योंकि उनमें शरीर ही शरीर होता है, आन्तरिक सौन्दर्यका पता नहीं रहता।

तारा

(नेपालकी १२ वीं शताब्दिकी बनी हुई मूर्ति)

चयन

राम और रहीम

(१)

तुम राम कहो, वह रहीम कहें, दोनोंकी गरज अल्लाहसे है।
तुम दीन कहो, वह धर्म कहें, मंशा तो उसीकी राहसे है।
तुम इश्क़ कहो, वह प्रेम कहें, मतलब तो उसीकी चाहसे है।
वह जोगी हो, तुम सालिक हो, मक़सूद दिले आगाहसे है।
क्यों लड़ता है मूरख बन्दे! यह तेरी खामख़याली है।
है पेड़की जड़ तो एक वही, हर मज़हब एक-एक डाली है॥

(२)

बनवाओ शिवाला या मसजिद, है ईंट वही, चूना है वही।
मेमार वही, मज़दूर वही, मिट्टी है वही, गारा है वही।
तकबीरका जो कुछ मतलब है, ना.कूसका भी मंशा है वही।
तुम जिनको नमाज़ कहते हो, हिन्दूके लिए पूजा है वही।
फिर लड़नेसे क्या हासिल है? ज़ीफ़हम हो तुम नादान नहीं।
जो भाई प दौड़ें गुर्राकर, वह हो सकते इनसान नहीं॥

(३)

क्या क़त्ल वो ग़ारत ख़ूँरेज़ी—तारीफ़, यही ईमानकी है?
क्या आपसमें लड़कर मरना—तालीम यही .क़ुरआनकी है?
इन्साफ़ करो, तफ़सीर यही क्या वेदोंके फ़रमानकी है?
क्या सचमुच यह ख़ूँख़ारी ही आला ख़सलत इनसानकी है?
तुम ऐसे बुरे आमाल पै अपने कुछ तो .ख़ुदासे शर्म करो!
पत्थर जो बना रक्खा है 'सईद' इस दिलको ज़रा तो नर्म करो॥

—'सईद' (आजसे)

सालिक=योगी। मक़सूद=मतलब। आगाह=ज्ञानवान्। खामख़याली=नासमझी। मेमार=राजगीर। तकबीर=नमाज़के पहले अल्लाहो अकबर कहना। ना.कूस=शंख। ज़ीफ़हम=समझदार। ख़ूँरेज़ी=ख़ून बहाना। तफ़सीर=अर्थ, व्याख्या। फ़रमान=आज्ञा। आला=अस्त्र। ख़सलत=स्वभाव। आमाल=कर्म।

पं० बिलवासी मिश्र और कवि 'चच्चा'

[श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा]

'क'ने 'ख'से कहा और 'ख'ने 'ग'से कहा—कहते कहते शहरके सभी साहित्यिकोंमें बात फैल गई कि अमुक क्लबमें आज शामको कवि 'चच्चा' की जीवनीपर पं० बिलवासी मिश्रका भाषण होगा।

छै बजे भाषण आरम्भ होनेवाला था, पर पाँच ही बजेसे आगन्तुकोंका ताँता बँध गया। साढ़े पाँच तक क्लबका कमरा ठसाठस भर गया। कहीं तिल रखनेकी जगह न रह गई। स्थानाभावके कारण सम्पादक प्रवर पं० शूलपाणि त्रिपाठी अलमारीपर चढ़कर बैठ रहे। प्रसिद्ध समालोचक पं० ज्ञानचक्षु शर्माको कुछ देर तक बाहर ही खड़े रहना पड़ा। अन्तमें लाला घासीरामने अपनी जगह खाली करके उन्हें वहाँपर स्थापित किया। इससे पं० ज्ञानचक्षु बहुत प्रसन्न हुए और लाला घासीरामको भी निश्चय हो गया कि अब उनकी नई पुस्तक 'बुद्धि-बवंडर' की समालोचना बड़े मार्केकी निकलेगी।

ज्यों ज्यों छै:का समय निकट आने लगा, त्यों-त्यों उपस्थित समुदायकी उत्सुकता बढ़ने लगी। उत्सुकता बढ़कर आतुरतामें परिणत हुई, और अब आतुरता भी बढ़कर हुल्लड़शाहीका रूप धारण करना चाहती थी कि पं० बिलवासी मिश्र बोलनेके लिए खड़े हुए।

क्या ग़ज़बका व्यक्तित्व है! उन्हें देखते ही सारी मंडली शान्त और सजग हो गई। यहाँ तक कि लाला मल्लूमलने पेन्सिल चबाना बन्द कर दिया। मैं भी उस सत्ताईस रुपयेके बिलकी चिन्ता भूल गया जिसे मुझे सबेरे ही चुकाना था और जिसे चुकानेके लिए मेरे पास सत्ताईस पैसे भी न थे।

एक बार बिलवासीजीने अपने चारों ओर देखा, मानो हम लोगोंके बुद्धि-बलको कूत रहे हों। इसके बाद पानकी गिलौरियोंको बराबरके हिस्सोंमें दोनों गालोंमें दबाते हुए बोले—"सज्जनो! जिस प्रकार मनुष्य पृथ्वीके गर्भसे हीरा

और सोना प्राप्त करके अपनी धनराशिको बढ़ाता है, उसी प्रकार वह गवेषणाके गर्भसे तत्त्वरत्नोंको प्राप्त करके अपने ज्ञानके भंडारको भी बढ़ाता है। गवेषणा ही इतिहास, साहित्य और विज्ञान आदिकी जान है। कभी कभी इसके द्वारा ऐसे रहस्योंका उद्घाटन होता है कि सुननेवाले दाँतों उँगली दबाते हैं। उदाहरणके लिये हमारे मित्र लाला मल्लूमलने वर्षोंके अन्वेषणके बाद यह प्रमाणित किया है कि अकबरके समयके प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन अन्य गवैयोंकी तरह कुलंजन नहीं फाँकते थे, बल्कि जौनतान खाया करते थे।

"इसी प्रकार साहित्य-क्षेत्रमें जब मैं गवेषणाकी धुनमें मस्त होकर चरने और विचरने लगा, तब मुझे पता चला कि हिन्दीमें 'चच्चा' उपनामके एक अच्छे कवि हो गये हैं। उन्हींका कुछ परिचय मैं आज आपको देना चाहता हूँ।

"यद्यपि मैंने बड़े परिश्रम और खोजसे उनकी कुछ रचनाओंका संकलन किया है और उनके जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाओंपर प्रकाश डाला है, पर इनके नामका परिचय पानेका श्रेय मुझे नहीं, बल्कि दैवी संयोगको है। उसका क़िस्सा इस प्रकार है।

"शायद आपको याद होगा कि सन् १९२७ के मार्चके महीनेमें—फाल्गुनमें—संयुक्तप्रान्तके कुछ भागोंमें घोर वृष्टि हुई थी और लाखों किसान तबाह हो गये थे। रबीकी फ़सल बिलकुल तैयार थी, अधिकांशत: खलिहानोंमें कटकर आ गई थी—और वहीं सड़कर बर्बाद हो गई।

"उन्हीं दिनोंकी बात है कि मैं रेलमें कहीं जा रहा था। किसी स्टेशनपर एक सज्जन गाड़ीमें चढ़े और मेरी ही सीटपर आ बैठे। पानी बरसते देख उन्होंने कहा—"यह बेवक़्तकी सहनाई तो नहीं अच्छी लग रही है।"

"मैंने उत्तर दिया—'जी हाँ, और क्या! भला फागुनमें मेहका क्या काम था। मैं अगर बसन्त ऋतुमें मलार गाऊँ तो मुझे लोग बेवकूफ़ कहेंगे, पर परमात्मा बसन्तऋतुमें पानी बरसा रहा है, तो उसे कोई कुछ नहीं कहता।'

'कई ज़िलोंमें तो हाहाकार मच गया है।'

'पूरी बर्बादीका सामना है।'

'देखिये, एक कविने इस सम्बन्धमें कितनी टाँकि तौल बात कही है :—

'पाप सराप त्रिताप सबै मिलि
होत महा हित हानि सियानी।
दीन दुखी दुनिया दुखदान
'चच्चा' कवि देखि सकै न बखानी।
एवं न एक अनेक कहाँ लों
कहौं करुनाकी कलेस-कहानी।
पै सबते बिकराल बड़े यहि
फागुन मेह प्रमेह जवानी।'

"कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस सवैयाको सुनकर मैं लोट-पोट हो गया। इसके पहले मैंने कवि 'चच्चा' का कभी नाम भी नहीं सुना था, पर उसी दिनसे मैं उनके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लग गया। रेलवाले सज्जन मुझे उनके बारेमें केवल इतना बता सके कि वे काशीके बाहर किसी गाँवमें रहते थे, काशी ही में मरे और उन्हें मरे अभी अधिक दिन नहीं हुए।

"केवल इतने आधारपर मैंने काम करना शुरू किया। यह सब मैं आप लोगोंको कहाँ तक बताऊँ कि मुझे किन-किन तकलीफ़ोंका सामना करना पड़ा, कहाँ-कहाँकी खाक छाननी पड़ी, किस-किसकी सिफ़ारिश करनी पड़ी। मिश्रबन्धुओंने बहुत पूछनेपर बतलाया कि यदि 'विनोद' में कवि 'चच्चा' का नाम नहीं है, तो फिर वे कैसे कवि हो सकते हैं? याज्ञिकबन्धुओंने कहा कि पहले तो चच्चा नामधारी किसी कविका होना ही असम्भव है और यदि इस नामका कोई कवि रहा भी हो, तो उसकी कविता पढ़नेके हम विरोधी हैं।

"इन उत्तरोंसे मैं निराश नहीं हुआ हूँ। मेरा अनुसन्धान बराबर जारी है। उनकी विस्तृत जीवनी और उनका बृहत् काव्य संग्रह फिर कभी प्रकाशित होगा। इस समय आप लोग थोड़े ही से सन्तोष कर लीजिये।

"खोज करनेपर इसके अनेक प्रमाण मिले हैं कि कवि चच्चा अधिकतर काशीमें ही निवास करते थे—सम्भव है यहीं उनका जन्मस्थान रहा हो—पर आश्चर्य है कि उनकी रचनाओंमें इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। केवल एक स्थानपर उन्होंने इतना कहा है—

'जाहिर जहानमें उजागिर जुगराफियामें,
फरद हजारनमें काशी सहर है।'

"अधिक खेद मुझे इस बातका है कि उनके असली नामका पता मैं लाख कोशिश करनेपर भी न लगा सका। उनका नाम कुछ तो अवश्य ही रहा होगा। कीटाणुओं तकके नाम होते हैं, वे तो मनुष्य थे। बिना नामकी

संसारमें केवल एक उँगली है, पर उसका भ नाम अनामिका है। 'चचा' तो केवल उनका उपनाम था, पर उनके पिता इस नामसे उन्हें कदापि न पुकारते होंगे—इसका मुझे पूरा विश्वास है। इसलिए चचाके अतिरिक्त उनका कोई-न-कोई नाम अवश्य रहा होगा। शायद भविष्यमें इस विषयपर कोई कुछ प्रकाश डाल सके।

"कवि चचा ब्राह्मण थे। काव्य-रचना इनका दिल-बहलाव था, पर व्यवसाय था पुरोहिती। पुरोहितीके सिलसिलेमें उनके पेटका रक़बा बहुत बढ़ गया था, और वे भोजन अत्यधिक करने लगे थे। किम्बदन्ती है कि वृद्धावस्थामें वे किसी यजमानके यहाँ भोजन करने गये। वह खिलाते खिलाते थक गया, पर उनका पेट न भरा। तब उसने रुक-रुककर परसना शुरू किया। उसे हाथ ढीला करते देख उन्हें बुरा लगा, और उन्होंने कहा—

'पेट पुरातन पाटत हौं
कछु झोंकत हौं नहिं अन्ध कुँवा में।
जेड भले जगदीस मनाइ
करौं बकसीस असीस दुवा में।
बूढ़ भयौ बल थाकि गयो
कछु खात रहे जजमान युवा में।
पूरे पचत्तर मालपुवा
अरु सेर सवा हलुवा बलुवा में॥'

"पुरोहिताईका पेशा करते हुए भी यह बात नहीं थी कि देशका दर्द उनके दिलमें न रहा हो। देशकी दशापर वे बराबर विचार करते रहते थे। उनकी रचनाओंमें इसकी झलक यथेष्ट रूपसे मिलती है।

"हम भारतवासियोंकी एक साधारण प्रवृत्ति है कि अपने वर्तमानकी ओर तो हम ध्यान नहीं देते, वरन् भूतकालीन गौरवका ही स्वप्न देखा करते हैं। कवि 'चचा' ने देखिये इसकी कैसी मीठी चुटकी ली है—

'वीर रहे बलवान रहे,
वर बुद्धि रही बहु युद्ध सम्हारे।
पूरन पुंज प्रताप रहे,
सदग्रन्थ रचे शुभ पंथ सँवारे॥
धाक रही धरती तल पै,
नरपुंगव थे पुरुषारथ धारे।
बापके बापके बापके बापके
बापके बापके बाप हमारे॥'

"उन सामाजिक कुरीतियोंकी भी उन्होंने बड़ी कड़ी आलोचना की है, जिनकी ओर हमारा समाज विदेशी शासनके प्रभावसे अन्धा होकर अग्रसर हो रहा है। खासकर स्त्रियोंकी पाश्चात्य ढंगकी स्वतन्त्रता देखके वे कट्टर विरोधी थे। एक जगह उन्होंने कहा है—

'पिल्ला लीन्हे गोदमें, मोटर भई सवार।
अली भली घूमन चलीं, किये समाज-सुधार॥
किये समाज-सुधार हवा योरपकी लागी।
शुद्ध विदेशी चाल-ढालसों मति अनुरागी॥
मियाँ मनावैं सोग करैं अब तोबा तिल्ला।
पूत धायके गोद, खेलावैं बीबी पिल्ला॥'

"जान पड़ता है कि कुछ दिन बीतनेपर उन्हें पुरोहिताईके धन्धेसे विरक्ति-सी होने लगी थी। मित्रोंने भी कहा कि आप इतने अच्छे कवि होते हुए क्या इस पुरोहिताईके झमेलेमें पड़े हुए हैं, किसी राज दरबारमें चले जाइये, वहाँ आपका आदर होगा। यह बात उन्हें पसन्द आ गई और वे किसी बड़े आदमीका आश्रय ग्रहण करनेके लिए घरसे निकल पड़े। संयोगसे एक राजा साहबसे भेंट हो गई। राजा साहब महामूर्ख थे, पर उन्होंने सोचा कि मेरे यहाँ हर तरहके लोग हैं—नौकर हैं, हिजड़े भी हैं, कथक भी हैं, भाट भी हैं, कव्वाल भी हैं—चलो एक कवि भी रख लूँ। कवि चच्चा पुरोहिताईसे इतने आजिज़ आ गये थे कि उन्होंने आगा पीछा न सोचा उनके यहाँ रह गये।

"कुछ ही महीने बीते थे कि राजा साहबके यहाँ एक बहुत बड़े मेहमान आये। राजा साहबने उनकी बहुत खातिर की। ताशका, मदारीका, इन्द्रजालका खेल हुआ, नाच हुआ, मुजरा हुआ, लावनी हुई, कजली हुई और अन्तमें कवि चच्चाकी भी पुकार हुई। ये जल-भुनकर खाक हो गये। कविता न हुई एक खेल-तमाशेकी चीज़ हुई! मानो कविता कोई बदरिया थी और कवि चच्चा उसके नचानेवाले समझे गये!

"राजा साहबने कहा—'कविजी! आप भी कुछ कढ़ाइये।'

"इस 'कढ़ाइये' के शब्दने तो जलेपर नमक छिड़क दिया। कढ़ाइये! क्या खूब!! मानो लोहर कढ़ाना था। कवि चच्चाके क्रोधका ठिकाना न रहा। बोले—'कढ़ाता हूँ सुनिये—

'दौरि परैं टुकड़हे सबै जब बाजै टुक्कड़।
रहैं पियक्कड़ घेरि जहाँ पै हेरैं चुक्कड़॥
जुटैं हजारन यार मिलैं जो संगी फुक्कड़।
जहँ गाँठ गरमाय तहँ गुन गावैं तुक्कड़॥'

"इस तुकबन्दीका आशय इतना स्पष्ट था कि राजा साहब भी समझ गये। उस वक्त तो बात वहींपर खतम हो गई, पर मेहमानके चले जानेपर कवि चच्चाको भी राजा साहबने रास्ता बताया। ऐसे ढीठ आदमीको कौन नौकर रखेगा!

× × ×

"कवि चचा बड़े बेलौस और आत्माभिमानी पुरुष थे। स्वयं कविताके अच्छे पारखी तो थे ही, कवियोंका आदर भी करते थे। मानव-समाजमें कवियोंके स्थानको बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते थे, कमसे कम नीचेकी पंक्तियोंसे यही सिद्ध होता है—

'बिनु गोड़ेकी खाट, बिना कोड़ेका घोड़ा।
बिनु लोढ़ेकी भंग, जंगमें साहस थोड़ा॥
बिनु जोड़ेकी रैन, मुसाफ़िरके पग फोड़ा।
बिनु तोड़ेका धनी, भातमें निकसे रोड़ा॥
'चचा' कहैं कविजन सुनौ, सभ्य सभा बिनु आपके।
ये सब निश्चय जानिये, कारन हैं सन्तापके॥'

"दोष-रहित संसारमें केवल एक परमात्मा है। जब बिना शरीरका कामदेव देवता होते हुए भी अवगुणोंकी खान बना रहा, तब भौतिक शरीरवाले संसारी जीव कैसे अवगुणहीन हो सकते हैं? कवि चचामें जहाँ अनेक गुण थे, वहाँ एक दोष भी था। वे विजयाके परम भक्त थे। विजयाको भगवानकी विभूति समझते थे। सबको सब कुछ हो, पर उन्हें विजया हो, चाहे और कुछ न हो। कहते हैं—

'गैया गिरहस्थको, रुपैया रोजगारिनको,
केवटको नैया और मैया होय बच्चाको।
तिरियाको दया होय, दया-मया सबै होय,
पित्रनको गया होय, विजया हो 'चचा'को।'

"उनकी समझमें भगवान शंकर भी विजयाके बनायेसे ही बने हैं—

'कालकूट करिके कंठस्थ नीलकंठ भयो,
देखि जरत जग बिषज्वाला विषम सों।
जहैको समानता तिहारी जे कोपि कियो,
भसम खसम-रतिको असम चसम सों।
पदके प्रताप तेरे तरे बहुतेरे नाथ,
पातकी पतित हैं अपावन जे हम सों।
सोचत 'चचा'के आजु चीन्हि परयो सांचो भेद,
सारी प्रभुताई यह विजयाके दम सों॥'

"हिन्दू-मुसलिम सम्बन्धके विषयमें कवि चचाके विचार बहुत उदार नहीं थे, पर साम्य अवश्य थे; यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि ऐसे विचारवाले भारतीय राष्ट्रकी उन्नतिके पथमें अक्सर रोड़े अटकाते हैं। वे जातीयताके पुजारी थे। पता नहीं, मुसलमानोंको वे म्लेच्छ पुकारते थे या नहीं; पर खुद काफ़िर पुकारे जानेके वे बड़े खिलाफ़ थे। मुसलमानोंके सम्बन्धमें उनके विचार कुछ इस प्रकारके थे—

'दूध फटे पै मिलै तो मिलै,
पर चित्त फटे बिलगात हैं आखिर।
लाख उपाय करौ न मिलै,
जल तेल सुभाव सबै जग जाहिर।
मन्दिर के पट मूँद धरौ,
बट पीपर काट धरौ केहि खातिर।
संख निसंक बजावहु क्यों नहिं
काफ़िर हैं हम मेल कहाँ फिर।'

"पैंसठ वर्षकी अवस्थामें संवत् १६८० या ८१ के पितृपक्षमें कवि चचाकी मृत्यु काशीमें ही हुई। शामके वक्त एक सकरी गलीसे होकर वे गुज़र रहे थे। पीछेसे म्यूनिसपैलिटीका कूड़ा ढोनेवाला एक भैंसा दौड़ता हुआ आया। वे आगेकी ओर भागे तो सामने एक साँड़ खड़ा था, जिसने उन्हें सींगपर उठाकर पटक दिया। लोगोंने डोलीमें डालकर उन्हें घर पहुँचाया, जहाँ घंटे डेढ़ घंटे-बाद उनका शरीर छूटा! मरनेके पहले कुछ मित्रोंके पूछनेपर उन्होंने अपनी दुर्घटनाका हाल इस प्रकार कहा—

'कालको कराल गाल घाले जग जीव जेते,
तरुनीको पीब लेत पूत लेत रांड़के।
मीच है नगीच परी जानै हरि कौन घरी,
प्रान जू पयान करै देह-गेह छांड़के।
पंचम सों याचना छमाकी निज भेद कहौं,
कविताके आड़ कियो काम सदा भांड़के।
भैंसा चढ़ि आये यम स्वयं निमन्त्रण ले,
'चचा' तब संग चले सींग गड़े सांड़के।'

''सज्जनो ! मैं आप लोगोंका काफ़ी समय ले चुका। यदि मैं कविके जीवनकी सब रोचक घटनाओंका दिग्दर्शन मात्र कराने लगूँ या उनकी उन रचनाओंको ही सुनाने लगूँ जो अभी तक प्राप्त हो सकी हैं, तो सवेरा हो जाय ; लेकिन कविता नौटंकी नहीं है कि भले आदमी सारी रात जागकर इसका मज़ा लें।

''कवि चच्चाके सम्बन्धमें एक बात आप लोगोंको अवश्य खटक रही होगी। उनके ऐसे सुयोग्य कविके बारेमें जिसे मरे भी अभी अधिक दिन नहीं हुए, अनेक ज्ञातव्य बातोंका काफ़ी पूछताछ करनेपर भी ठीक पता न चलना बड़े आश्चर्यका विषय है ; पर ग़ौर करनेपर कारण स्पष्ट हो जाता है। कवि चच्चा एक सीधे-सादे व्यक्ति थे। सभा-सोसाइटियोंसे घबराते थे। तू तू मैं-मैं से दूर भागते थे। अपने कामसे काम रखते थे। न ऊधोका लेना और न माधोका देना, यही उनके जीवनकी रूपरेखा थी। भला, ऐसे आदमीको इस विज्ञापनके युगमें पैदा होनेकी क्या आवश्यकता थी ! कहाँ उनके ऐसा निर्लेप आदमी और कहाँ यह धाँधलीका ज़माना ! न पासमें पैसा, न किसी बेवकूफ़ पैसवालेके पास अपनी पहुँच। न साहित्यिक गुटबंदी, न चार लेखकोंसे आपसदारी और न इसके हामी कि मेरी डफली तू बजा, तो तेरा राग मैं अलापूँ। आजकल बिना इन गुणोंके सफल लेखक या कवि बिरले ही हो सकते हैं। कवि चच्चा यह सब समझते थे, शायद इसीसे उन्होंने अपनेको गुप्त रखा। उनके साथ नित्यके उठने-बैठनेवाले भी जो दो-एक थे वे भी नहीं जान सके कि वे कहाँसे आकर काशीमें बसे थे और उनका असली नाम क्या था। पारिवारिक झगड़ोंने भी उन्हें बुरी तरह पीस डाला था। बेफ़िक्री उन्हें कभी नहीं मुयस्सर हुई, अगर होती तो उनकी प्रतिभाने न जाने और क्या कर दिखाया होता। वे स्वयं ही कहते हैं—

'सैन मिलै नरनाहनको,
चढ़ि धावैं अनेकन राज ढहावै।
रैन मिलैं औ छबीली छुहेलको,
मोद महान लहैं औ लहावै।
बैन कही जो कही सो सही,
एक आस यही कविराय कहावै।
चैन 'चच्चा'को मिलै जो ज़रा,
तो धरा पै कवित्तकी धार बहावैं।'

''एक बात और सुनाकर मैं अब बस करूँगा। कवि चच्चा मनुष्य-जीवनको हँसी-खेल नहीं समझते थे, पर उसे हँस-खेलकर बिता देनेके वे पक्षपाती थे। हँसनेके वे आदी थे, यहाँ तक कि अपने ईश्वरसे भी हँसी करनेमें नहीं चूके। सुनिये—

'नीच हौं निकाम हौं नराधम हौं नारकी हौं,
जैसो-तैसो तेरो हौं अनत अब कहा जांव।
ठाकुर हौ आप, हम चाकर कहाये सदा,
आपुके बिहाय, कहो मोकों और कौन ठांव।
गजकी गुहार सुनि धाये निज लोक छांड़ि,
'चच्चा'की गुहार सुनि भयो कहा फोलपांव।
गनिका-अजामिलके औगुन गन्यो न नाथ,
लाखन उधार अब झांखत हमारे डांव।' ''

('प्रेमा'से)

— —

मीराँबाई

[श्री परशुराम चतुर्वेदी]

मीराँबाईके सब ग्रन्थोंके न मिलनेके कारण उनके तात्त्विक सिद्धान्तका पता लगाना बहुत कठिन है, परन्तु मीराँबाईके दार्शनिक विचारोंकी बानगी उनके निम्न-लिखित पदमें मिल सकती हैं—

''भजि मन चरणकमल अविनासी ॥ टेक ॥
जे ताइ दीसे धरनि गगन बिच।
ते ताइ सब उठ जासी ॥ १ ॥
कहा भयो तीरथ ब्रत कीने।
कहा लिए करवत कासी ॥
इस देहीका गरब न करना।
माटी में मिलि जासी ॥ २ ॥
या संसार चहरकी बाजी।
साझ पड्यां उठ जासी ॥ ३ ॥
कहा भयो है भगवा पहन्यौं।
घर तज भये सन्यासी ॥
जोगी होय जुगति नहि जानी।
उलट जनम फिर आसी ॥ ४ ॥
अरज करौं अबला कर जोरे।
स्याम तुम्हारी दासी ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर।
काटो जम की फांसी ॥ ५ ॥''

मीरॉंबाईने इस पद-द्वारा अपने इष्टदेव 'प्रभु गिरिधर नागर' को 'अविनासी' तथा उसके सामने सम्पूर्ण दृश्यमान संसारको उठ जानेवाला अथवा अनित्य ठहराया है। 'संसार' वास्तवमें असार है, क्योंकि जिस शरीरको पाकर हमें अभिमान होता है, वह भी अन्तको माटी' में ही मिल जानेवाला है, और योगी भी अपनी साधनाके निष्फल होनेपर 'उलट' अर्थात् लौटकर पुनर्जन्म धारण करते हैं। संसारी मनुष्य अपने जीवन-कालमें भ्रमवश निश्चिन्त पड़े रहते हैं। और यह नहीं समझते है कि उनका सारा व्यवहार अथवा विहार 'चहरकी बाजी' अर्थात चिड़ियोंके खेलके समान है, जो सन्ध्याका समय आते ही चिड़ियोंके बसेरापर चले जानेके कारण बन्द हो जाया करता है। इस नाशमान जगत्के आवागमनसे मुक्ति पानेके लिए मीरॉंके विचारमें तीर्थ व्रत करना, काशी 'करवत' लेना अथवा भगवा पहनकर अपना घर-बार छोड़ संन्यासी हो जाना-मात्र बेकार है। इसका उपाय केवल यही है कि अपनी निर्बलता तथा असहायतापर ध्यान देते हुए एक दासकी भाँति भगवानके प्रति आत्म-समर्पण कर दे और उनके चरण-कमलोंका भजन करे। 'जमकी फाँसी' अथवा पुनर्जन्म और कर्म बन्धनको प्रसन्न होनेपर भगवान ही काट सकते हैं। इसी भगवानको मीरॉंबाईने 'प्रभु', 'गिरिधर नागर', 'हरि', 'श्याम', 'गोपाल', 'नन्दलाल', 'राम' तथा 'स्वामी' आदि कई नामोंसे पुकारा है। यही मीरॉंके सर्वस्व गिरिधर गोपाल हैं, जिनके सिवा संसारमें उनका 'दूसरा न कोई' है। इनके सामने 'तात, मात, भ्रात, बंधु' तक भी अपने नहीं और इन्हींके लिए मीरॉंने कुलकी कानि छोड़ दी और सन्तोंके पास बैठ-बैठकर लोक-लज्जाको तिलांजलि दे दी। वास्तवमें इन इष्टदेवका रूप भी वैसा ही है। एक बार जहाँ दृष्टि पड़ी कि फिर लोक या परलोक कुछ भी नहीं सुहाता। इनके वर्णनमें कहा है—

"मोरनकी चन्द्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसरको तिलक भाल तीन लोक मोहै॥
कुंडलकी झलकन कपोलन पै छाई।
मनो मीन सरबर तजि मकर मिलन आई॥
कुटिल भृकुटि तिलक भाल चितवनिमें टौना।
खंजन अरु मधुर मीन भूले मृग छौना॥
सुन्दर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे रूप अति बिसेखा॥
अधर बिंब अरुन नैन मधुर मंद हांसी।
दसन दमक दाडिम दुति चमके चपला-सी॥
छुद्र घंट किंकिनी अनूप धुनि सुहाई।
गिरिधरके अंग-अंग मीरा बलि जाई॥"

ऐसे इष्टदेवमें मीराका प्रेम हो जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ऐसे बड़े घर ताली' लगने अर्थात् परम पुरुषसे लगन हो जानेके कारण ही मीरॉंका चित्त जगतकी कामनाओंसे हट गया है। उनका मन छिछले तालाब या गढ़ेके पानी अथवा गंगा यमुना तकमें भी नहीं लग सकता, अब वे समुद्रसे ही जाकर मिल रही हैं। जब स्वयं 'दरबार' से ही बात करनेकी ठहर गई हो, तो फिर हाली मवाली अथवा अधिकारियोंकी सहायताकी क्या आवश्यकता हो सकती है?

परन्तु 'प्रेम भगति' का रास्ता विचित्र होता है। वह 'न्यारा' है और स्वयं प्रीति 'दुखहारीमूल' है। ऐसी दशामें भगवानसे प्रेमका निर्वाह कर लेना और भी कठिन बात है। चारों तरफ़से गली बन्द रहती है और वहाँ तक पहुँचनेकी राह तक रपटीली है। पैर ही नहीं ठहरते, बड़े यत्नोंके उपरान्त सोच-सोचकर रखे जानेपर भी डिगने लगते हैं। बात यह है कि हृदयका मैल जब तक न छूट जाय, तब तक भक्ति अथवा प्रेम हो ही कैसे सकता है? काम चांडाल कुत्तेकी भाँति लोभकी डोरीमें हमें बाँधे रहता है, क्रोध कसाईकी भाँति घटमें निवास करता है, तथा अभिमान एक ऐसे टीलेकी रचना कर देता है, जिसपर प्रेमरूपी जल ठहरने ही नहीं पाता और अन्तर्यामीसे ही कपट करनेकी बान पड़ जाती है। हाँ, मीराके विषयमें यह बात नहीं है। यहाँ तो अनुराग पूर्व जन्मका है और दोनों दिल ऐसे मिल गये हैं, जैसे सोना और सोहागा मिल जाते हैं, अथवा जैसे चन्द्रमा और चकोर एक दूसरेसे बँधे रहते हैं। मीरॉंका कहना है कि "जिस प्रकार एक अमली अर्थात् नशेवालेके लिए उसका अमल आधार हुआ करता है, उसी प्रकार 'रमैया' मेरा प्राणाधार है। चाहे कोई निन्दा करे, अथवा स्तुति करे। मुझे सिवाय उसके कोई भी वस्तु नहीं। अब पक्का रंग चढ़ गया और यह अमल किसी प्रकारके उपायसे छूटनेवाला नहीं। दूसरोंके प्रियतम अथवा पति परदेशोंमें रहा करते हैं, जहाँ उन्हें बहुधा पत्रादि भेजनेकी आवश्यकता पड़ा करती है, परन्तु मेरा पति सदा मेरे हृदयमें ही निवास करता है और उसके साथ मैं दिन-रात रहस्यमयी बातें किया करती हूँ। उसकी 'सुरत' मेरे मनमें है, जिसका ध्यान नित्यशः करती हुई सर्वदा आनन्दमें मग्न रहा करती हूँ और प्रीतिकी खुमारी आँखके बिबके समान चढ़ी रहती है। कभी-कभी तो मेरी इच्छा ऐसी होती है कि—

"मैं तो म्हाँरा रमैयाने, देख्यो करूँ री ॥ टेक ॥
तेरो ही उमरण तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूँ री ॥ १ ॥
जहाँ-जहाँ पाँव धरूँ धरणीपर, तहां-तहां निरत करूँ री ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर, चरणाँ लिपट परूँ री ॥ ३ ॥

अथवा

गोहनें गुपाल फिरूँ। ऐसी आवत मनमें ॥
अवलोकत बारिज बदन। बिबस भई तनमें ॥ १ ॥
मुरली कर लकुट लेऊँ। पीत बसन धारूँ ॥
आछी गोप भेष मुकट। गोधन संग चारूँ ॥ २ ॥
हम भई गुल कामलता। वृन्दावन रैनां ॥
पसूपंछी मरकट मुनी। श्रवन सुनत बैनां ॥ ३ ॥"

इत्यादि।

अपने प्रियतमके पास पत्र लिखते समयकी दशाके विषयमें जो पद लिखा गया है, वह बहुत ही उत्तम है। प्रेम रसमें ओतप्रोत प्रेमीकी दशा बड़ी विचित्र है। लिखती हैं—

पतियां मैं कैसे लिखूँ, लिख ही न जाई ॥ टेक ॥
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदो रह्यो धरराई ॥ १ ॥
बात कहूँ मोहि बात न आवै, नैन रहे झरराई ॥ २ ॥
किस बिध चरणकमल मैं गहिहूँ, सबहि अंग थरराई ॥ ३ ॥
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर, सबही दुख बिसराई ॥ ४ ॥

वास्तवमें यह प्रेमकी स्तब्धावस्था है, जब कि प्रेमी एकदम जड़वत मूक एवं निश्चल तक हो जाता है और लाख मानसिक प्रयत्न भी उसकी निष्क्रियता दूर नहीं कर पाते। मीराँने इसी प्रकार प्रेमकी तन्मयावस्थाके वर्णनमें भी किसी ग्वालिनकी दशाका परिचय दिया है—

कोई स्याम मनोहर ल्योरी। सिर धरे मटकिया डोलै।
दधिको नांव बिसर गई ग्वालन। हरि ल्यो हरि ल्यो बोलै ॥१॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर। चेली भई बिन मोलै ॥
कृष्ण रूप छकी है ग्वालनि। औरहि औरं बोलै ॥ २ ॥

मीराँबाई एक बड़े घरानेकी लड़की और उससे भी प्रतिष्ठित कुलकी रमणी थीं, इस कारण वंश-परम्पराके प्रतिकूल राह पकड़ना देख उनकी ओर लोग आश्चर्यकी दृष्टिसे देखने तथा उन्हें अनेक प्रकारसे समझाने लगे थे। बार-बार उनकी कुल-मर्यादाके साथ साधु सुलभ जीवनकी तुलना करते हुए वे उन्हें अपनी लोक-लज्जाकी रक्षा करनेका उपदेश देते तथा उन्हें भक्ति-मार्गसे छुड़ाना चाहते। किन्तु मीराँका हठ अपूर्व था, एक बार निश्चय कर लेनेपर वे सच्ची राजपूत बालाकी भाँति अपने आदर्शका त्याग करनेमें असमर्थ थीं, इसलिए उन्हें अपने पदोंमें अनेक बार अपनी दृढ़ताका प्रसंग लाना पड़ा है। 'मेरो गिरिधर गोपाल' वाले पद तथा अन्य और पदोंमें उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि जो होना हो होता रहे, अब तो कोई बात छिपी नहीं। बट-बीजकी भाँति चारों ओर फैल चुकी है। और लोग जान भी गये हैं। प्रीति करते समय यदि चाहती तो मैं हट भी सकती थी, किन्तु अब बीचमें आ चुकनेपर सोच-विचार करनेका कोई अवसर ही नहीं रह गया। अब कलाबाज़ नटकी भाँति एक बार जहाँ चूके कि फिर 'ठौर' नहीं मिल सकता। मान-अपमान दोनोंको सिरसे उतारकर पटक दिया और प्रकट रूपमें नाचने लगी। अब तो—

मीराँ गिरिधर हाथ बिकानी। लोग कहैं बिगड़ी ॥

इसलिये अपना निश्चय यह है कि—

भली कहो कहो कोई बुरी कहो मैं। सब लई सीस चढ़ाय ॥

मीराँके प्रेममें इसी प्रकार, आत्म-समर्पणका भाव भी विद्यमान है। इस विषयका नीचे लिखा पद गुजराती साहित्यमें भी बहुत प्रसिद्ध है—

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे,
मन लागी कटारी प्रेमनी रे ॥ टेक ॥
जल जमुना मां भरवा गया तां,
हती गागर माथे हेमनी रे ॥ १ ॥
कांचे ते तांतणे हरिजी ये बांधी,
जेम खेंचे तेम तेमनी रे ॥ २ ॥
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर,
सांवली सुरत सुभ एमनी रे ॥ ३ ॥

इसमें 'कांचे ते तांतणे हरिजी ये बांधी, जेम खेंचे तेम तेमनी रे' पंक्ति विशेष महत्त्व की है। प्रेम पात्रने प्रेमीको केवल कच्चे धागेमें ही कठपुतलीकी भाँति बांध रक्खा है और जैसे चाहे वैसे खींच-खींचकर नचाता है।

मीराँबाईके विरह-सम्बन्धी पद भी अधिकतर ऐसे हैं, जिनसे मीराँका अपने इष्टदेवको पतिवत् मानकर उनसे व्यवहार सिद्ध होता है। मीराँका कहना है—"बड़े दु:खकी बात है कि हरिने मेरी बात ही न पूछी क्योंकि सारी रात न तो पर्दा हटाया और न मुझसे कुछ बोले ही। स्वप्नमें दर्शन

दिये और आंखें खुलते ही जाते हुए दीख पड़े। मैं अब रह-रहकर पछताती हूँ। मैं प्रेमकी दीवानी बनी फिरती हूँ, और मेरा दर्द कोई पहचान नहीं पाता। बात यह है कि घायलकी दशा या तो घायल ही बतला सकता है अथवा उसे घायल करनेवाला जानता है। दर्दसे बेचैन होकर वन-वन डोलती फिरती हूँ, परन्तु कोई वैद्य ही नहीं मिलता। बिना 'सांवलिया'के मीराँकी पीर नहीं मिट सकती। इस कारण तब तक किसी प्रकारसे कल नहीं। शरीर क्षीण होता जा रहा है और मुखसे बार बार 'पिय-पिय'की आवाज निकलती रहती है। विरहकी पीड़ा भीतर सता रही है और वह इसे जान नहीं पाता। जैसे चातक बादलके लिए, और मछली पानीके लिए घबराती है, उसी प्रकार व्याकुल होनेके कारण मेरी भी 'सुध बुध' नष्ट हो गई है।'' अपनी विवशताके विषयमें मीरां कहती है—

मैं विरहिन बैठी जागूँ,
जगत सब सोवे री आली॥ टेक॥
विरहिन बैठी रंग महलमें,
मोतिन की लड़ पोवै।
इक विरहिन हम ऐसी देखी,
असुवनकी माला पोवै॥ १॥
तारा गिण-गिण रैण बिहानी,
सुखकी घड़ी कब आवै।
मीराँके प्रभु गिरिधर नागर,
मिल के बिछुड़ न जावै॥ २॥

मीरांने सबसे स्पष्ट आर्योचित उद्गार नीचे लिखे उपालभ द्वारा व्यक्त किया है—

श्याम म्हासूँ ऐंडो डोले हो॥
औरन सूँ खेले धमार।
म्हासूँ मुखहूँ ना बोले हो॥ श्या०॥ १॥
म्हाँरी गलियाँ ना फिरे।
वाके आंगण डोले हो॥ श्या०॥ २॥
म्हाँरी आंगुली ना छुवे।
वाकी बहियाँ मोरे हो॥ श्या०॥ ३॥
म्हाँरो अँचरा ना छुवे।
वाको घूँघट खोले हो॥ श्या०॥ ४॥
मीराके प्रभु सांवरो।
रंग रसिया डोले हो॥ श्या०॥ ५॥

मीरांबाईने बहुतसे पद श्रीकृष्णकी दधि-लीला, वंशी-लीला, पनघट लीला, चीर-हरण लीला आदि विविध लीलाओंके विषयमें भी लिखे हैं, जिनकी सुन्दरता और मधुरतासे प्रभावित होकर एवं मीरांकी 'पूर्व जन्मका कौल', 'पूर्व जन्मकी प्रीति' आदि पुनरुक्तियोंपर विचार करते हुए लोग बहुधा उन्हें गोपियोंका अवतार कहा करते हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि अपनी बाल्यावस्थामें मीराँने श्रीकृष्णकी मूर्तिको देखकर पूछा था कि ये कौन हैं, तो किसीने हँसीसे उस मूर्तिको उनका दुल्हा कह दिया था। उसी समयसे मीराँने श्रीकृष्णको अपना पति मान लिया था। जो हो, मीराँकी भक्तिमें दाम्पत्य-प्रेमका पुट प्रायः प्रत्येक स्थलपर वर्तमान है। मीरांबाईके बहुतसे पद ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें उन्होंने अपने कुटुम्बियों द्वारा दिये गये कष्टोंका भी थोड़ा बहुत उल्लेख किया है। पता नहीं ऐसे पदोंमें से कौन कौन उनके बनाये हुए हैं और कौनसे प्रक्षिप्त हैं। मुन्शी देवीप्रसादजी द्वारा मीराँ-रचित माना हुआ एक पद नीचे देते हैं। मीराँ अपने देवर महाराणासे कहती हैं—

मीराँ लागो रंग हरी।
सब रंग अटक परी॥ टेक॥
गिरिधर गास्यां सती न होस्यां।
मन बसिया घन नामी॥
जेठ बहू को नातो नाहीं।
तुम सेवक हम स्वामी॥ १॥
छाया तिलक मनोहर बानी।
सील सँतोष सिंगारो॥
और कछू न भावे हो राणा।
यो गुर ज्ञान हमारो॥ २॥
गिरिधर धैणी कुटुंबी गिरिधर।
मात पिता सुत भाई॥
थे थाँरे म्हे म्हाँरे हो राणा।
गावै मीराँ बाई॥ ३॥

इससे प्रकट होता है कि मीरांने अपनेको गिरिधरके ऊपर निछावर करके किस प्रकार अपना मन विरक्त कर लिया था।

(हिन्दुस्तानी से)

चील-झपट्टा

श्री श्रीराम शर्मा, बी० ए०

टिहरी (गढ़वाल, राज्यका बन-विभाग कार्यालय दयारा नामक स्थानमें है। दयारा सुरसरि-चुम्बित तथा भिलंगना-आलिंगित टिहरी नगरसे, दक्षिणकी ओर, भिलंगनापर है। कौआ-उड़ानमें तो वह टिहरीसे दो फर्लांगकी दूरीपर होगा, पर मार्गमें श्रीनगर (गढ़वाल) वाली सड़कसे होकर और भिलंगना-पुल पार करके उसकी दूरी एक मीलके लगभग बैठेगी। अपने पाँच-छै वर्षके टिहरी-जीवनमें वह कोई विरला ही दिन होगा, जब मैं उस सुन्दर सड़कपर घूमने न गया हूं। घोर वृष्टि और कड़ाकेदार जाड़ेमें भी एक मील तक तो उस सड़कपर टहल ही आता था। सड़कके दोनों ओरवाली झाड़ियोंमें बसेरा लेनेवाले पक्षियों तकसे मेरा परिचय था। अमुक खालेवाले वृक्षपर चार जगली मुर्गियाँ और एक मुर्ग रातको बसेरा लेता है; उससे आगे कोई बीस क़दमपर कलचिराड़ पक्षीका जोड़ा रहता है और सड़कके अमुक घुमावपर मीठे करौंदाका पेड़ है—ये सब बातें मुझे मालूम थीं। सड़कसे नीचे भिलंगनावाले तट और उसकी दीर्घकाय चट्टानें मेरे विशेष आकर्षणकी वस्तुएँ थीं। नदी-तटवर्ती चट्टानोंपर, अकेले बैठकर, मैंने अपने जीवनके अनेक सुखद स्वप्न देखे हैं, और वहींसे यौवन-मदमाती भिलंगनाका अश्रुपूर्ण करुण रुदन तथा उसकी कटि-भंगी छटा देखी है। उसके कलकल निनादमें मैंने, वहींसे, संसारकी असारताका गान सुना है। सड़कसे ऊपर पर्वतश्रेणियोंके ऊँचे अंचलोंमें बालरविकी अपार छटा देखी है, और दूसरी ओर तीतरपाँखी बदलीमें सूरजकी आँखमिचौनीका मज़ा भी लूटा है। सेपर्स महालेके पश्चिमवाले कोनेसे एक मील तक सड़क धनुषाकारमें सुषुप्त-सी पड़ी है और नीचे भिलंगना उसकी प्रत्यंचा है। इस प्रत्यंचाके पूर्वी छोरपर ऊपरको दयारा है। दयारासे यदि कोई प्रकृति-प्रेमी अपनी आँख उठाकर देखे, तो एक विचित्र ही छटा दृष्टिगोचर होती है। भिलंगना क्या है, मानों शेषनाग नगरकी रक्षाके लिए वक्ररूपमें पड़े हुए रोम-रोमसे फुफकार रहे हैं।

दयाराका एक दूसरा आकर्षण था वहाँपर बाघका आना; पर दयारामें जिन लोगोंकी पहुँच थी, उनके होते हुए मेरा वहाँ बिना बुलाये जाना शिष्टाचारके विरुद्ध था, और यदि दखलदर माकूलातका साहस भी करता, तो किस बूतेपर! हाँ, यदि मैं स्वयं उन लोगोंसे बाघकी तलाशमें या प्रतीक्षामें वहां बैठनेको कहता तो वे इनकार न करते। ऐसा मेरा खयाल है, पर पूछता कैसे? थोथे मान (False prestige) की केंचलीका पर्दा जो दिमागपर पड़ा हुआ था। कहते हैं केंचलीसे साँपको कष्ट होता है। जब तक केंचली उतर नहीं जाती, तब तक वह अन्धेकी भाँति फिरता है—उसकी असली आँखें ढक जाती हैं। मनुष्योंमें भी व्यक्तिगत मान-सम्बन्धी थोथी केंचली बहुधा चढ़ी रहती है और वास्तविक परिस्थिति-रूपी वज्रसे फटकर वह उतर जाती है; अथवा काईकी भाँति फटकर फिर आ जाती है। भीतरसे तो तबीयत करती थी कि वहाँ बकरा बाँधकर बाघ मारनेका प्रयत्न करूँ, पर किसीसे कहनेका मेरा साहस न होता था। इसी प्रकार उधेड़बुनमें सुबह और शाम होती रहती और दयारामें बाघके लिए बैठनेका विचार विचाररूपसे आगे न बढ़ता।

× × ×

कभी-कभी मनुष्यकी वर्षोंकी मुरादें ऐसे पूरी हो जाती हैं, जैसे अनेक वर्षोंके देवी-देवताके पूजनके उपरान्त किसी ग़रीब किसानका विवाहका आना। स्वभावानुसार मैं एक दिन टहल रहा था और हवाई क़िला बनाता हुआ ध्यानावस्थित चला जाता था। ऊटपटांग विचारोंमें एक बार

सोचा कि आगे मोड़पर तीन लाख रुपयेके नोट कोई भूल गया हो तो झट उठा लूँ और त्यागपत्र देकर ग्रामसंगठन-कार्य करने लगूँ। इसी अनधिकार चेष्टाके होते ही विचारका चक्रमें 'ब्रेक'-सा लगता और अन्तरात्मा कहती—"परद्रव्येषु लोष्ठवत्। मुझे दूसरेका—बिना परिश्रमका धन लेनेका क्या अधिकार?" पापात्मा कहती—"यह मूर्खोंकी दलील है। पड़ी हुई चीज़पर मेरा अधिकार है। ग़रीबी संसारमें निकृष्टतम पाप है। रुपया किसी प्रकार एकत्र कर ले, फिर धर्म कमा लेना। इसी मानसिक द्वन्द्वमें—फ़ज़ूलके पापमें—लिप्त मैं चला जा रहा था कि कुछ ऐसी भनक-सी मालूम हुई, मानो कोई पीछेसे पुकार रहा हो कि मास्टर साहब, तनिक खड़े रहिये, आपसे काम है। मेरा ध्यान तो कहीं और था और समगतिसे मेरी टाँगें शरीरको धीरे-धीरे आगे बढ़ाये लिये जा रही थीं, मानो शरीरमें कूक सी भर दी हो। तल्लीनता—एकाग्रतामें मनकी विचारशक्ति आतशी शीशेकी किरणोंकी भाँति एक बिन्दुपर लग जाती है। आवाज़से मानो विचार-क्रिया अवरुद्ध हो गई हो। सिरको कुछ हिलाया, मानो आँखोंपरसे कूड़ा हिलाकर गिराया हो और पीछे मुड़कर देखा तो एक आदमीने हाथका झाला देकर कहा—"मास्टर साहब खड़े रहिये।"

मैं रुक गया और सोचा कि प्रातःकाल यह क्या बला आई। कहीं दरबारसे कोई काग़ज़ तो नहीं आया। आवाज़ सुनकर मैं रुका। चपरासी पास जो आया, तो मेरा चेहरा क्रोधसे तमतमा गया। मैंने उसे महाराजका चपरासी समझा था। उसीकी-सी आवाज़ मालूम हुई थी। महाराजके चपरासीकी आवाज़पर न खड़ा होना दरबारका अपमान समझा जाता। रियासतोंमें और विशेषकर पिछड़ी हुई रियासतोंमें महाराजके चपरासीके बड़े मानी होते हैं, पर यह तो वन-विभागका चपरासी था। उसे मेरे साथ बदतमीज़ी करनेका साहस क्यों हुआ? बदतमीज़ी तो मुझे महाराजके चपरासीकी भी असह्य थी। ख़याल किया सीधा-सादा पहाड़का आदमी है। सुनूँ तो क्या बात है।

दम लेकर उसने कहा कि कन्सरवेटर साहबने मुझे आपके घर भेजा था कि आपसे यह कह दूँ कि दयारामें एक बाघ आता है। उसके मारे लोगोंकी नाकमें दम है। कन्सरवेटर साहबके वह सात बकरे खा गया है।

बाघका नाम सुनकर मेरी क्रोधाग्नि ऐसे शान्त हो गई, मानो एक अंगारेपर घड़ों पानी डाल दिया हो। जैसे चिड़िया पड़े हुए दानेको विचित्र दृष्टिसे देखती है, वैसे ही मैंने उसकी ओर ध्यान देकर कहा—"सात बकरे खा गया!"

चपरासी—"हाँ साहब, सात बकरे खा गया और मरा तक नहीं।"

मैं—"मारने कौन बैठा था?"

चपरासी—"सिंह और अन्य कई शिकारी।"

मैं—"पहले दिन कितने बकरे मारे थे?"

चपरासी—"घरमें दो बकरे थे। एकको मारकर खा गया और दूसरेको अधखवा छोड़कर चला गया।"

मैं—"तो फिर उस अधखवेपर कोई बैठा था?"

चपरासी—"नहीं साहब, बैठा तो कोई नहीं। अधखवे बकरेको तो एक डोम ले गया। कन्सरवेटर साहबने गांवसे अपने लिए एक बकरा और मँगाया, और उसको बन्द करके रखा, पर न मालूम बाघने किवाड़ कैसे खोल लिये और बकरा उठा ले गया।"

मैं—"बकरा उसने खाया कहाँ?"

"पासके खालेमें"—चपरासीने कहा।

मैं—"तब फिर उसे मारनेके लिए लोग कब बैठे?

चपरासी—"कन्सरवेटर साहबने तब एक और बकरा मँगाकर—सिंहको दिया। उन्होंने उसे खालेमें बाँधा और पास लालटेन भी रखी। बाघ आया और बकरा ले गया। आफ़से * लालटेनका शीशा और टूट गया।"

मैं (कुछ सोचकर)—"शेष चार बकरे कैसे खा गया यह भी बतादो।"

च०—"अरे साहब, क्या पूछते हो! मेरी उमर साठ बरसकी होने आई। जन्मभर जंगलातकी नौकरी की।

---

* बड़े छर्रेको आफ़ कहते हैं। S G आफ-कारतूसमें नौ छर्रे होते हैं।—गोलीके नौ समभाग।

बीसों बाघ मरते देखे, पर ऐसा बाघ मैंने न कभी देखा और न सुना.......''

मैं (बात काटकर)—''तुमने तो आल्हा गा डाली। यह बताओ कि बाक़ी चार बकरे कैसे खाये गये और—सिंहके अतिरिक्त और कौन-कौन बैठा ?''

चप०—''बाक़ी चार बकरोंको एक-एक करके चार दिनमें ले गया। एक दिन तो चार बन्दूकँवाले इस प्रकार बैठे कि सबकी गोलियां एक ही ओरको पड़ें। बाघके आनेका रास्ता एक ही ओरसे था। बकरा खालेमें बाँधा गया। लालटेन रखी गई, पर बाघ बकरापर बिजलीकी तरह टूटा और बकरेको ऐसे उठा ले गया, जैसे बाज़ बटेरको ले जाता है।''

मैं—''तो फिर फ़ायर भी नहीं हुआ होगा।''

चप०—''अरे साहब, चाँदमारीसी कर डाली। सबकी सब नालें दाग दीं।''

मैं—''और वह घायल तक न हुआ !''

चप०—''घायल होता तो हमला करता। खूनका खोज मिलता। बाघ क्या है, जादू है !''

मैं—''और कौन बैठा ?''

चप०—''खिसियानपटके मारे वे तो फिर नहीं बैठे। दो सैपर्स बैठे। उनका बैठना ही था कि बाघ कहींसे आ कूदा। गोलियाँ चलीं। बाघ बकराको ले गया। गोली बकरेके लगी। बाघकी वह ढाल बना।''

मैं—''यह कैसे जाना कि गोली बकरेको लगी ?''

चप०—''अगले दिन प्रातःकाल खोजा तो देखा, तो खूनकी धारका खोज मिलता गया। शिकारी खुशीके मारे आपेसे बाहर हो गये और बन्दूकें भरकर सावधानीसे खोजपर चले। सबका यह खयाल था कि बाघके पेटमें चोट लगी है और वह आगे मरा हुआ मिलेगा, पर आध मीलकी दूरीपर एक झाड़ीके पास बकरेके खुर और सींग मिले।''

मैं—''शिकारियोंको इतना अनुभव न था कि घायल बाघको अपनी जानके लाले पड़ते हैं। यदि बाघ घायल हो जाता, तो बकरा वहीं मरा हुआ या सिसकता हुआ मिलता। हाँ, तो कन्सरवेटर साहबने क्या कहा है ?''

चप०—''उन्होंने कहा है कि कृपा करके मास्टर साहब भी आकर आज़मा लें। बकरा बाँधनेको तैयार मिलेगा। कन्सरवेटर साहब कहते थे कि वह दरबारमें भी सूचना देनेवाले थे कि सैपर्सको भेजकर बाघको मरवा देना चाहिए, नहीं तो किसीकी जानपर आ बनेगी। कहीं आदमीका खून उसकी दाढ़को लग गया, तो वह रुद्रप्रयागके मनुष्य-भक्षीसे अधिक खूखार बनेगा।''

मैं—''अच्छी बात है। देर होती है। कन्सरवेटर साहबसे जाकर कह देना कि मैं आऊँगा। बकरा तैयार रहे। मैं दिनमें ही आ जाऊँगा।''

चपरासी फौजी सलाम करके चला गया और मैं खुशी-खुशी घर आया। शिकारका मेरा शौक़ व्यसनमें परवर्तित हो रहा था। व्यसनी पहले थोड़ी मात्रासे प्रारम्भ करता है और फिर बिना गहरी छने उसे आनन्द नहीं आता। इन्द्रिय-जन्य सुख—चाहे वह किसी इन्द्रियका हो—रबरकी भाँति घटाया-बढ़ाया जा सकता है। यह सब कुछ जानते हुए भी मैं शास्त्रविद्याकी अपेक्षा शस्त्रविद्यामें अधिक तल्लीनता (चित्तवृत्ति निरोध) पाता था। एक बाघ मारकर अधिक नहीं तो इतना प्रसन्न तो होता ही था, जितना कि पूर्वकालमें वैयाकरणी सूत्रोंकी एक मात्रा घटाकर सुखी होते थे।''

घर आकर सोचता रहा कि बाघको मारनेके लिए क्या उपाय करना चाहिए। बकरा बाँधा और बाघ आकर उसे ले गया, और बकरा मेरी ही गोलीसे मारा गया तो बड़ी बुरी बात होगी, मुँह दिखानेको ठौर न रहेगा। तब फिर क्या किया जावे ? अपना बकरा मोल लें ? ऐसा करना भी अनुचित था, क्योंकि बकरा लिया और बाघने उसे न भी मार पाया, तो वह लक्ष्मीदत्तकी हाँड़ीको गरम करता। इसके सिवा कन्सर्वेटर खीझे बैठे थे। कई बकरोंकी बलि चढ़ा चुके थे। एक और सही, बात कौनसी थी।

नौकरसे पं० लक्ष्मीदत्तको कहला भेजा कि स्कूल चलनेसे पहले वह मुझसे मिलें, बाघकी खबर आई है। मेरे साथ ही खाना खावें तो और भी अच्छा है। घंटाघरकी

और देखा, तो स्कूलके लिए चालीस मिनट बाकी थे। पन्द्रह मिनटमें ड्राइंग-मास्टर लक्ष्मीदत्तजी आ जायँगे, तब तकके लिए मैं लेट रहा, और यह सोचने लगा कि बाघको मारनेका कौनसा ढंग निकाला जाय। बाघके दाव-पेंचको समझ लेना आवश्यक था। दिल्लीपति पृथ्वीराजने मुहम्मद ग़ोरीके दाव-पेंच नहीं समझे और ग़ोरीने चौहान-शिरोमणिकी कमज़ोरी, जीतके उपरान्त सतर्कताका अभाव और पराजित शत्रुको तुच्छ समझनेकी कमज़ोरी—को ऐसा समझा कि अवसर पाते ही उसने चौहान-विजय धवल-कीर्तिको कलंकित कर दिया। वीर लड़े, पर मक्खी जालमें फँस चुकी थी।

बाघके छलनेके लिए भी उसके स्वभावसे काम लेना था। पड़ा-पड़ा सोचता रहा और मुँहसे यह गुनगुनाता रहा—

"सच कह दूँ ऐ बिरहमन, गर तू बुरा न माने।
इस बुतकदाके सारे बुत हो गये पुराने॥"

बाघको मारनेका कोई नवीन ढंग ही निकालना पड़ेगा। पुराने ढंगोंसे तो बहुतोंने शर्म उठा ली। उपाय निश्चय कर मैं उठना ही चाहता था कि लक्ष्मीदत्तजीके पैरोंकी आहट हुई।

× × ×

सायंकालके चार बजे पं० लक्ष्मीदत्त एक लेंडी कुत्तेको ज़ंजीरसे बाँधे मेरे पास आ गये। कुत्तेके नाख़ून जो गिने, तो बाईस निकले। कुत्तोंके प्रायः अठारह नाख़ून होते हैं। बीस नखवाले कम होते हैं, और गाँवोंमें बीस-नखा कुत्तेको प्रायः बीसा कहते हैं। बाईस नखवाला कुत्ता मैंने पहले नहीं देखा था। बाईस-नखा कुत्तेको पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। यह एक शुभ शकुन था। भीतरसे तबीयत करती थी कि दयारा पहुँचनेपर मरा बड़ा भी मिल जाय। मनुष्य अपनी शुभ कामनामें अशुभ कामनाकी आशंका नहीं करता। छोटे बच्चेकी भाँति अपने जीवनकी योजना बनाता है, घरुआ-पतुआका-सा स्वाँग रचता है और सृजनहार उसके इस खेलको पानीके बबूलेकी भाँति फोड़ देता है या असम्भवको सम्भव कर देता है। हम लोग भी बाघ मारनेका घरुआ-पतुआ-सा बना रहे थे। मैंने दोनों बन्दूकें ले लीं और कारतूस जेबमें डाले। लक्ष्मीदत्तजीने कुत्ता लिया और दो फालतू ज़ंजीरें और दो मज़बूत रस्सियां भी ले लीं। हम लोग घरके पिछवाड़ेसे निकले, सड़कसे होकर नहीं। शिकारी जब शिकारको जावे, तब उसे कभी न टोके। यदि कोई पूछे "क्यों साहब, आज कहां जा रहे हैं, क्या शिकार होगा?" तो शिकारी कुढ़ जाता है। इस टोककी रोकके लिए ही हम लोग पीछेसे गये। दयारा पहुँचकर कन्सर्वेटर साहबसे अभिवादन किया। पहलेकी मुलाक़ात विशेष न थी। एक बार हम लोगोंने उनके यहां चाय पी थी। पहाड़पर इतना परिचय काफ़ी होता है। कुत्ता देखकर वे बड़े चकराये। दत्तात्रेयका रूप धरकर हम लोग वहां पहुँचे थे। सबसे पहले यही बात हुई कि कुत्ता क्यों लाया गया। मैंने उन्हें समझाया कि हम लोग अपने भाग्यकी परीक्षाके लिए लाये हैं। खालेमें नहीं बैठेंगे और न बकरा ही बाँधेंगे। बाघके रसगुल्ले—कुत्ते—से काम लिया जायगा। यदि बाघ कुत्तेको ले भी गया, तो कोई बात नहीं। कन्सर्वेटर साहबको हमारी बात कुछ जँची नहीं, उनकी मुखाकृति इस बातको प्रकट कर रही थी। पर हम लोग अपनी बातपर दृढ़ थे। सबसे पहले हम लोगोंने कुत्ता बांधनेका स्थान निश्चय किया। बाघ जब इतना मूर्ख हो कि कोलाहलमेंसे भी बकरा उठा ले जावे, तो उसके लिए जंगलमें क्या बैठना? पर ऐसे बाघ कम ही होते हैं। इसलिए हम लोगोंने कुत्तेको मकानके पास ही अमरूदके पेड़के पास बांधना निश्चय किया और अपने लिए दोतल्लेपर दालानमें एक कम्बल बिछा लिया और सामने लकड़ीकी बाड़पर ओटके लिए कम्बल डाल दिया। बैठनेका स्थान बनानेकी कोई कठिनाई ही नहीं पड़ी। घरमें जाकर बैठ रहे, पर कुत्ताका बाँधना शेष था, और वही परमावश्यक था।

बाघ आता अवश्य था और बकरा ले जाता था। फिर बकरे या कुत्तेको इतना कड़ा क्यों न बाँधा जाय कि बाघ

कितनी ही शक्ति लगावे—चाहे कुत्तेकी बोटी बोटी भी उड़ा ले जाय—उसका रस्सा न टूटे। हमने यही सोचा कि बाघ कुत्तेको वहीं भले ही मार जाय, पर झपट्टा मारकर रस्सी तोड़कर उसे नहीं ले जा सके। एक बात और थी, वह भी बड़ी विचारणीय थी। जंगलमें आकर अन्धाधुन्ध फायर करना भी मूर्खता थी। हम लोगोंने इन्हीं दो बातों—अन्य शिकारियोंकी भूलों—से लाभ उठाया। मैं तो बन्दूक हाथमें लिये खड़ा-खड़ा देख रहा था, और कुत्ता और बकरा बाँधनेमें सिद्धहस्त प० लक्ष्मीदत्तजी कुत्ता बाँधनेमें लगे थे। पहले तो कुत्तेके गलेमें चार लड़की रस्सीका कालर डाला और उसमें फन्दा डालकर चौलड़ी रस्सीको अमरूदके पड़में कसकर बाँध दिया। कुत्तेकी दाईं और बाईं ओर दो खूँट खूब गहरे गाड़ और कुत्तेको दोनों जंजीरोंसे जकड़ दिया, पर इतने ही से हम सन्तुष्ट न थे। यदि कुत्ता बैठ जाय और भौंके नहीं, तो कदाचित बाघको पता भी न चले कि उसका रसगुल्ला इतना [illegible]ट है। उसका भी उपाय सूझ गया। रूईकी पूनीसे जस धागा निकलता है, वैसे ही मन-रूपी चर्खा घुमानेसे विचार-रूपी तागोंका तांता पुर जाता है। कुत्ता बैठ कैसे सकता था? उसकी कमरसे एक रस्सी बाँधी और उसको पेड़की शाखासे बाँध दिया। इन सब कृत्योंके उपरान्त लक्ष्मीदत्तजीने कुत्तेके कान मलने प्रारम्भ किये। कौंय-कौंय और हौंव-हौंवकी ध्वनिसे आसपासका जंगल प्रतिध्वनित हो उठा। मैंने हँसते हुए मना भी किया कि कान न मलो, पर लक्ष्मीदत्तजीके अंगूठे कुत्तेके कानपर ही थे। मैंने पास जाकर कुत्तेको छुड़ाया और कहा कि क्रूरताकी भी सीमा है। हम लोगोंका तमाशा है और उसे कष्ट हो रहा है।

लक्ष्मीदत्त—"सीरम निकालनेमें, बधिया करनेमें और क्लोरोफार्म सुँघानेमें कौन कम कष्ट होता है। हमारा उद्देश तो एक आततायीको मारना है। इसी उद्देश सिद्धिके लिए तो इन क्रूर साधनोंको स्वीकार करना पड़ रहा है। यहाँ सत्याग्रहसे काम न चलेगा।"

मैं—"सत्याग्रहपर फब्ती क्यों छोड़ते हो! महात्मा लोग बाघसे भी सत्याग्रह कर सकते हैं। स्वामी रामतीर्थ काले साँपको पकड़ लेते थे। बाघ उनके पास आ जाता था, पर ऊपर चलो, नहीं तो बाघ हाथ न आवेगा।

× × × ×

मकानके ऊपर बैठे हुए हम लोग आँखें फाड़ फाड़कर कुत्तेके चारों ओर देख रहे थे। कुत्तेसे तीन गजकी दूरीपर पूर्वकी ओर स्कूलपर लालटेन रखी थी, जिससे कुत्तेके चारों ओर उजाला था। हाँ, स्कूलके चारों ओर अँधेरा था और अमरूदके पेड़की पीछेकी छाया कुत्तेकी पश्चिम ओरको पड़ रही थी। कुत्तेको अपने अटूट बन्धनोंसे कष्ट हुआ और उसने रोना प्रारम्भ किया। दस-पन्द्रह मिनट तक तो वह अनवरत-रूपसे करुण क्रन्दन करता रहा। रोग अथवा कष्टकी प्रारम्भिक अवस्था बड़ी दुखदायिनी होती है। बादको समयके आवर्तमें पड़कर अभ्यास, सन्तोष और टिमटिमाती हुई दीपक-शिखा आशासे दुखी और रोगी कष्टको भोगने लगता है, इसीलिए पुराने रोगकी अवस्था (Chronic stage) में प्रारम्भिक अवस्थाकी अपेक्षा कम कष्ट होता है। कुत्तेको भी इस अटल नियमका पालन करना पड़ा।

हम लोग घूर-घूरकर और आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे कि कहीं बाघकी झाईं पड़े। थे तो हम मूर्तिवत, पर हमारी आँखें अजगरकी-सी हो रही थीं। घूरने और ध्यानसे देखनेसे आँखोंपर ज़ोर पड़ता, तो उन्हें तनिक बन्द करके उनपर हाथ फेरते और फिर उसी मुद्रामें हो जाते। सारी प्रकृति निद्राकी तन्द्रामें मस्त थी। हमारे पीछे कमरेमें कन्सर्वेटर साहब भी सो रहे थे। घड़ाघरकी टन-टनसे मालूम हुआ, दस बजे थे; पर हिमालयके शिखर और भिलंगनाकी अन्धकारमय घाटी निर्जीव-सी थी। हिमालय कुछ गतिरहित-सा है। शिव और पार्वतीके कालसे हिमाच्छादित शिखरोंपर कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। हाँ, नदियोंने उसकी छातीपर आरे-से चलाये हैं, पर वह फिर भी मस्त है। सामने भिलंगनाने ही हजारों वर्षसे उसे सताया है,

पर वह टससे मस नहीं होता। भारतका वह उत्तरी चौकीदार है और भारतके स्वार्थके लिए वह पड़ा है। अपने कर्तव्यपर अटल है, चाहे कोई उसे चीरे अथवा मारे, उसके परमरम्य शिखरोंपर चाहे तपस्या करो अथवा प्रणयकेलिमें समय बिताओ। भारतीय इतिहासका नाटक देखते-देखते वह बूढ़ा हो गया। उसे साधारण-सी घटनाओंकी पर्वाह नहीं, हमारे कुत्तका फिर उसे क्या खयाल हो सकता था और क्यों होता।

> "What is the use of it all,
> These lips, these flowers,
> These dewdimmed eyes,
> These star kissed skies,
> This Wine, these Music-mad hours."

है तो सब निस्सार, पर तारागण-चुम्बित नीलाम्बरके नीचे हमारे निकट, कुत्तेके पास रखी लालटेनके पास, अर्ध अँधेरेमें हमारे खेलके मुखपात्रकी झाईं सी मारी। ध्यानसे जो देखा, तो कोई काली-सी चीज़ अँधेरेमें से अर्ध अन्धकारकी ओर बढ़ी। बाघके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है! कुत्तेकी घ्राणशक्ति बड़ी प्रबल होती है, पर उसने तो अपने निकटवर्ती शत्रुको सूँघ ही न पाया। कदाचित वायु कुत्तेकी ओरसे बह रही होगी। मैंने ड्राइंग-मास्टरको संकेतसे बताया कि हमारी चीज़ हाज़िर हो गई, पर ड्राइंग मास्टरकी आँखें बहुत तेज़ नहीं थीं। उत्तरमें उन्होंने मेरा हाथ दबाया, जिसका अर्थ था कि उन्होंने तो बाघको नहीं देख पाया। दिखाई मुझे भी नहीं पड़ता था, पर एक काली सी चीज़ अँधेरेमें बैठी थी। मैं उसपर गोली भी चला सकता था, पर मुझे भी एक आशंका हुई, यदि बाघ वही था तो इतनी देर तक प्रतीक्षा क्यों करता। कुत्तेपर टूट ही पड़ता, पर सभी बाघ तो प्रतीक्षा करते हैं। लोगोंको मालूम यही होता है कि अमुक बाघ सीधा तीरकी भाँति आया। इसी असमंजसमें मैंने अपनी बन्दूककी नाल ऊपरको की। नाल ऊपरको हुई ही थी कि एक ऐसा दृश्य सम्मुख आया कि जो जीवनमें कभी न देखा था और फिर देखनेको तो क्या मिलेगा। बाघ वहींसे एकदम झपटा और उसने बाएँ पंजेसे कुत्तेकी गर्दन और ज़ंजीरको इतने वेगसे धक्का मारा कि यदि कुत्ता ढीला बँधा होता तो उस झपेटके मारे वह गज़ों आगे जा गिरता, पर कुत्ता तो ड्राइंग मास्टरके क्रूर हाथोंसे बाँधा गया था। बाघ ज़ंजीर और रस्सीसे ऐसा टकरा गया कि उसकी पिछली टांगें ऊपर आसमानको हो गईं। ऐसी बढ़िया कलाबाज़ी मैंने कभी न देखी थी। लड़कपनमें स्कूलमें मोर-चाल और बिच्छू-चालका मुझे भी अभ्यास था, पर ऐसी बढ़िया कला कभी नहीं देखी थी। तीव्रगतिसे दौड़ते हुए इंजनके मार्गमें कोई भारी रोक आ जाय तो इंजन पटरीसे उतर जायगा। बाघकी गति भी एकदम रुक गई, पर उसने अपने शरीरको ऐसा सँभाला कि पिछली टाँगोंके ऊपर होते ही उसने एक दूसरी कला खाई और कलामुंडी खाता हुआ आगे अमरूदके पेड़की छायामें पहुँच गया। हँसीके मारे पेटमें बल पड़े जाते थे। मुँहमें रूमाल ठूँसकर हँसी रोकी। बाघकी घात खाली गई, और वह बहुत खिजा होगा, नहीं तो दूसरे कुत्तेपर क्यों गुर्राता। हँसीका एक कारण बाघका गुर्राना भी था। छायामें से कुत्तेको धमका रहा था कि उसके साथ ऐसी बेअदबी क्यों की। कुत्तेकी नोमकी बन्द थी। उसकी घिग्घी बँध गई थी। हू हू, काँय-काँय और दिखावटी क्रोधसे--वह क्रोध जो कोई मरते समय दिखाता है—वह अपनी स्थितिका परिचय दे रहा था। बाघ थोड़ी देरके लिए गुर्राना बन्द कर देता और एकदम भागकर पेड़की पींड़ तक आता। कुत्तेकी आँखें, कान और सारा शरीर उसी ओरको लगा रहता, ज्योंही बाघ झपट्टा मारकर आता कि उसकी कांय-कांय और हांव-हांव करुणा और क्रोधके अन्ततम बिन्दु तक पहुँच जाती। बन्धन खोलनेके लिए पैर पीटता, पर वह बांधा गया था यम-पाशमें, और यम यातना वह भुगत भी रहा था। यदि किसी प्रकार उन बन्धनोंसे उसकी मुक्ति भी हो जाती, तो वह बाघको स्वादिष्ट ब्यालू बनता। बाघके लिए वह पसीनाकी कमाई होता। हम लोग समझ गये थे कि भयके कारण कुत्तेके

स्नायु और अवयव ढीले पड़ गये होंगे। छोटे बच्चे बहुत धमकाये जानेपर पेशाब कर रहते हैं। बाघको देखकर अनेक शिकारियोंकी भी कभी-कभी यही गति हो जाती है।

बाघ तेज़ीसे पेड़की पींड़की छाया तक आता और गुर्राकर लौट जाता। कुत्ता कातरतासे खीम निकालकर अपने दाँत दिखाता, अपने हथियारोंका प्रदर्शन करता और हाँव-हाँव जारी रखता ; बाघ गुर्राकर फिर लौट जाता। यह तमाशा—यह चील-झपट्टा—लगभग पन्द्रह मिनट तक रहा। लालटेनके प्रकाशमें वह आता न था। कुत्ता अपना मुँह इधर-उधरको कर नहीं सकता था, क्योंकि कड़ा बँधा था। यदि कुत्तेका मुँह बाघकी मारकी सीधी रेखासे इधर-उधर होता, तो वह अपनी घातमे उसपर वार करता। इसके अतिरिक्त बाघ जब अपने शिकारपर वार करता है, तो सर्वदा गर्दनपर वार करता है, और अपने पंजे और दाँतोंसे एक ही चोटमें अपने भोजनके जीवको बेक़ाबू कर देता है। जब गाय और बैल तक उसके प्रहारको नहीं झेल सकते, तो बकरे और कुत्तेकी बात ही क्या! मुँहके चार कीलें गर्दनके नीची ओर, अगले पैरके चार-पाँच नाख़ून—पैने छुरे—गर्दनकी एक ओर और उतने ही दूसरी ओर, पीठपर बोझा और पिछले पैरोंके नाख़ून मांसमें घुसे हुए और ये सब एकदम एक साथ—इस प्रलयकारी प्रहारसे कितने गाय-बैल बच सकते हैं। केवल वही, जिनकी आयु हो और जिनको भगवान बचाना चाहे। यदि उस प्रहारसे कोई बच भी जाय, तो नख-विषसे पशु नहीं बचता। बाघ अपने स्वाभाविक प्रहारको नहीं कर रहा था। पहला वार उसका ख़ाली गया था, कदाचित् वह इसीलिए कुत्तेको अँधेरेमें ले खींचना चाहता था ; पर वह ऐसा न कर सका, इसीलिए वह रुक-रुककर चील-झपट्टाका आश्रय ले रहा था। एक और बात थी। बाघ घायल होकर तो न आव गिनता है न ताव, और जहाँ भी और जैसे भी उससे बन पड़ता है, आक्रमण करता है ; पर अपने शिकारमें वह सावधानीसे काम लेता है। गायको मारना हो चाहे बकरेको, जंगलमें वह बड़ी सावधानीसे और सोच-समझकर वार करता है। बाघ अँधेरेमें होकर कुत्तेपर झपटता था, पर वार होनेसे पहले ही कुत्ता भूँक पड़ता था। बाघको भी कोई आशंका हो जाती थी। बाघ जब अपने शिकारपर वार करता है, तब धोकेसे वार करना उसका स्वभाव है। कदाचित् इस कारणसे भी वह आगे न बढ़ रहा हो अथवा उसे हमारे बैठनेका पता चल गया हो।

दस पन्द्रह मिनट उपरान्त चील-झपट्टेका खेल थम गया। तूफ़ान आनेसे पूर्व वायुका वेग रुक जाता है। मरनेसे पहले जीवन-ज्योति दीप-शिखाकी भाँति कुछ अधिक प्रज्ज्वलित हो जाती है। मैंने भी यही समझा, और ठीक समझा कि बाघ पैंतरा बदल रहा है। वह पीछेसे वार करेगा, पर आध घंटा तक कहीं कुछ दृष्टिगोचर नहीं हुआ। कुत्तेने भी समझा कि बला टल गई, पर वह बला टलनेवाली न थी। मैंने जो घूरकर आँखें गड़ाईं, तो स्कूलकी पूर्व ओर पहलेकी-सी कोई वस्तु प्रतीत हुई। मैंने संकेतसे लक्ष्मीदत्तजीसे कहा कि फायर करता हूँ। चाहे लगे या न लगे। बन्दूक़में ग्राफ़ भरे थे। बाईं आँख बन्द की और अनुमानसे निशाना बाँधा। रातके अँधेरेमें निशाना लेनेका ढग यह होना चाहिए कि बन्दूक़की नाल ऊँचेसे नीचे करता चला आवे और जब शिकार नलीकी सीधमें आवे, तभी घोड़ा दाब दे। ऐसा करनेसे निशाना प्रायः ठीक पड़ता है। नहीं तो रातमें निशाना लगाना बड़ा कठिन है। अगली मक्खीपर थोड़ी रूई भी लगाना अच्छा है। मैंने ऐसा ही किया। बन्दूक़के चलते ही बाघ कुत्तेकी ओर होकर भागा। लक्ष्मीदत्तजीने भी फायर किया, पर वह नीचे पड़ा। प्रकाशमें धूल उड़ गई।

बन्दूक़की आवाज़ सुनकर कन्सर्वेटर साहब आ गये और पूछने लगे—"बाघ मरा?"

बड़ी झेंपसे मैंने कहा—"फायर तो मैंने कर दिया है, पर लगा नहीं मालूम होता।"

"तो आप बैठे रहिये। वह बड़ा पाजी है। फिर आवेगा। जब तक कुत्ता बँधा है और वह जीवित है, तब तक तो वह आये बिना मानेगा नहीं।"

"तो आप सो जाइये। अभी तो १२ बजे हैं। हम लोग डटे रहेंगे।"—मैंने कहा।

× × ×

गोली लगी कि नहीं लगी, इस प्रश्नका उत्तर नहीं मिल रहा था। अन्दाज़से ही तो फायर किया था। गोली लग भी सकती है और खाली भी जा सकती है। चित्त चलायमान हो रहा था। नीचे उतरकर हम लोग देखने आये। ऐसा करना मूर्खता और पागलपन था। फायर करनेके उपरान्त चाहे गोली लगे अथवा नहीं, कभी भी रातमें स्थानसे नहीं हटना चाहिए और न बोलना चाहिए। अनेकों शिकारी ऐसी भूलोंसे मारे गये हैं, पर शिकारी भी तो बुद्धिहीन हो जाया करते हैं। सफलताकी उत्कट लालसा शिकारियोंको भी इन्द्रियोंके अधीन कर देती है। लालटेनसे चार-पाँच गज़ तक देखा कि कहीं रक्तकी बूँदें मिलें, पर कुछ भी दिखाई न दिया। यदि घायल बाघ उस समय हमपर टूट पड़ता, तो हम कुछ न कर पाते।

हम लोग फिर ऊपर आ बैठे, पर बाघ न आया। प्रात:काल होने आया। बसन्तऋतु थी। पक्षियोंका प्रणय-कलरव प्रारम्भ हो गया। स्वकीया और परकीया नायिकाएँ वृक्षोंकी शाखापर फुदकने लगीं। नर पंडुक गर्दन फुला-फुलाकर अपनी मानिनी पंडुकीको मनाने लगा। हम लोग नीचे उतरे। तबीयत तो यह करती थी कि कन्सर्वेटर साहबसे बिना मिले ही निकल जायँ, पर हमें एक सन्तोष था कि बाघ हमसे कुत्ता न छीन सका।

लोटा लेकर लक्ष्मीदत्त शौचको गये। मैंने सोचा कि भिलंगनाकी करारवाली झाड़ियोंमें ही एक नज़र मार लूँ। घायल होकर बाघ वहीं न मरने चला गया हो। बन्दूक लेकर मैं उधर चला। वहाँसे भिलंगनाकी करार तीस गज़पर होगी। यह सोचकर कि घायल बाघ सीधा निकटवाली झाड़ीकी ओर जायगा। मैं उधर गया। वहां पहुँचते ही मुझे बाघका पंजा दिखाई पड़ा। मैं एकदम पीछे लौटा और घोड़ा चढ़ा लिया, पर बाघका पंजा चित पड़ा था। जीवित होता, तो पंजा चित न होता। मैंने यह समझकर कि बाघ मरा पड़ा है, एक कङ्कड़ मारा। वह टससे मस न हुआ। मैंने वहींसे आवाज़ लगाकर डाइंग-मास्टरको बुलाया।

दयारामें चारों ओर खबर फैल गई कि बाघ मारा गया। कन्सर्वेटर साहबने हम लोगोंको अनेक बधाइयाँ दीं। बाघ लाकर कुत्तेके पास रखा गया। कुत्ता मरे बाघको भी देखकर घबराता था। कुत्ता खोल दिया गया। उसके कहीं भी कुछ चोट न थी।

बाघ लदवाकर हम लोग घर आये। पड़ोसकी स्त्रियाँ भी उसे देखने आईं। खाना खाकर मैं उसे विरक्त सेठ मुरलीधरजीकी कुटियापर ले गया। मेरे विद्यार्थी श्रीयुत गंगाधर तड़ियालने बाघकी फोटो ली, मेरी बिटिया कमलाने बाघके पास खड़े होनेकी बड़ी हठ की। मैंने उसीके हाथमें बन्दूक दे दी। कमला और मैं बाघके शवके पास खड़े हो गये। लोग उसको अब भूल गये हैं, पर उसका चित्र मुझे अब भी उसके 'खेल-झपट्टा'का स्मरण दिलाता है।

महिला-मंडल

कलकत्तेकी सत्याग्रही महिलाएँ

श्रीमती लीलावती कपूर

कुमारी पुष्पवती

श्रीमती उज्जाम बेन

स्वर्गीय श्रीमती चमेली देवी

श्रीमती मिट्ठू बेन

श्रीमती बच्चू बेन

कुमारी श्रीमती देवी

कुमारी सरस्वती देवी

श्रीमती अमृत बेन

श्रीमती यशोदा देवी

श्रीमती मगला बेन

चित्र-संग्रह

बंगाली बालकका आत्मोत्सर्ग

मोहिनीमोहनको गत वर्ष क़ानून-भंग आन्दोलनमें शरीक होनेके कारण क़ैद हो गई थी। गत सेप्टेम्बर मासमें छोड़ दिये जानेपर फिर वे आन्दोलनमें शामिल हुए और २५ जनवरीको फिर गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारीके समय उनके हाथमें स्वराज झंडा था, जिसको पुलिसने छीनना चाहा, और उसी सिलसिलेमें उन्हें गहरी चोट पहुँची। उन्हें पहले राजा-हाट थानेमें और बादमें बारासातकी सब-जेलमें रखा गया। विचाराधीन अवस्थामें उक्त जेलकी हवालातमें ही १० फरवरीको उन्हें टायफॉयड ज्वर हुआ और १६ फरवरीको रातके १२ बजकर १० मिनटपर उनकी मृत्यु हुई!

इस ज्वरकी हालतमें भी उन्हें किसी अस्पतालमें नहीं भेजा गया!

मृत्यु-शय्यापर मोहिनीमोहन

स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरूके श्राद्ध-दिवसमें कलकत्तेकी अक्टरलोनी मीनारके नीचे विराट सभामें श्रीयुत यतीन्द्रमोहन सेन-गुप्त कांग्रेसके समझौतेकी शर्तें पढ़ रहे हैं

कलकत्तेमें स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरूका श्राद्ध-दिवस
सभाका एक दृश्य

फ्रेस्को चित्र

फ्रेस्को उन चित्रोंको कहते हैं, जो ईंट पत्थर या सीमेन्टकी दीवारोंपर अंकित किये जाते हैं। परन्तु उनके अंकित करनेकी एक विशेष विधि होती है। दीवारोंपर पलस्तर चढ़ाकर उसके सूखनेसे पहले चित्र-विचित्र रंगों द्वारा चित्रकारीकी की जाती है। गीला होनेके कारण पलस्तर उन रंगोंको सोख लेता है और सूखनेपर वे पक्के हो जाते हैं। फिर यदि कोई दीवारके ऊपरी परतको थोड़ा खुरच भी डाले, तो भी भीतर ज्योंका त्यों रंग दीखता रहता है। अजन्ताकी गुफाओंमें इसी प्रकारके चित्र बने हैं। इटलीके संसार-प्रसिद्ध चित्रकारोंकी अनेकों कृतियाँ इन्हीं फ्रेस्कोंके रूपमें रोम आदि नगरोंके गिर्जाघरोंमें अंकित हैं।

हालमें बोलपुरके कला-भवनके प्रसिद्ध चित्रकार श्री नन्दलाल वसुने श्री निकेतनकी दीवारोंपर कुछ फ्रेस्को चित्र अंकित किये हैं, जो यहां प्रकाशित किये जाते हैं।

शान्तिनिकेतनके श्रीनिकेतनमें हल-चालन उत्सव (एक अंश)

शान्तिनिकेतनके श्रीनिकेतनमें हल-चालन उत्सव (एक अंश)

शान्तिनिकेतनके श्रीनिकेतनमें हल-चालन उत्सव (एक अंश)

शान्तिनिकेतनके श्रीनिकेतनमें हल-चालन उत्सव (एक अंश)
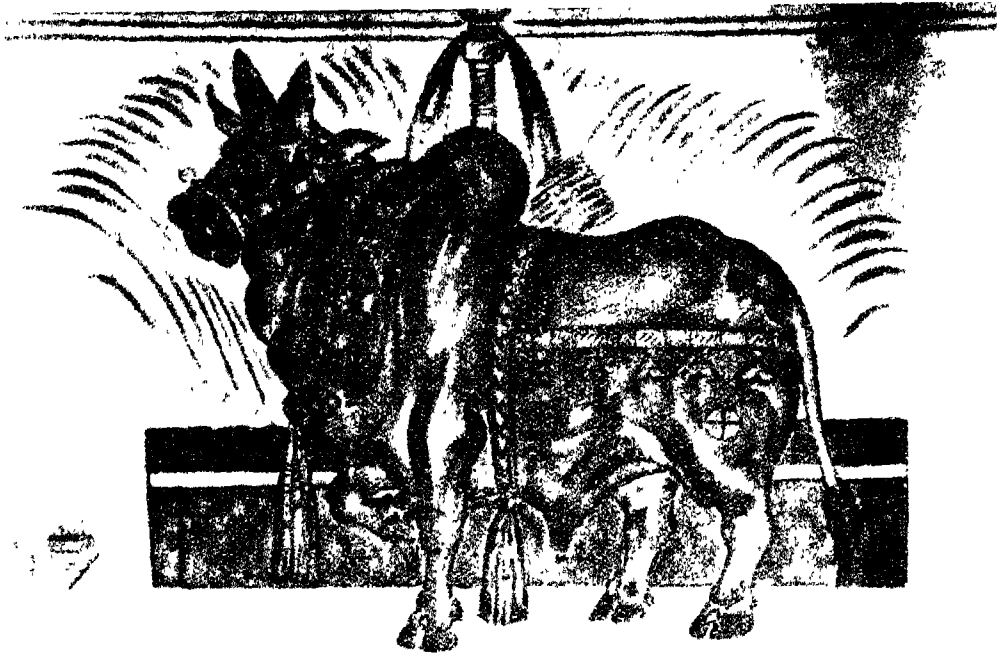
शान्तिनिकेतनके श्रीनिकेतनमें हल-चालन उत्सव (एक अंश)

शान्तिनिकेतनके श्रीनिकेतनमें हल-चालन उत्सव (एक अंश)

श्रीमती ज़ोजफाइन बटलर

मिस मेलिसेन्ट शेफर्ड

'विशाल-भारत' के पिछले अंकमें श्रीमती ज़ोजफाइन बटलरका एक चित्र प्रकाशित हुआ था। जो लोग मुखाकृति देखकर किसीके आध्यात्मिक चरित्र जाननेकी चेष्टा करते हैं, वे देखेंगे कि ज़ोजफाइनके चेहरेसे उनका प्रगाढ़ सन्तोष, कष्ट सहन करनेकी शक्ति और उनका दृढ़ धार्मिक विश्वास प्रत्यक्ष ही प्रकट होता है।

मिसेज़ ज़ोजफाइन बटलर कहा करती थीं—"एक ऐसा रहस्य है, जिसे बहुत कम लोग समझते हैं। वह रहस्य है दूसरोंका प्रतिनिधि बनकर कष्ट सहन करनेकी शक्ति तथा दूसरोंके लिए प्रार्थना करनेका प्रसाद। महान आत्मायें समाजके पापोंका बोझ स्वयं अपने ऊपर लेकर उनके दुःखसे दुःखी होती हैं और उनका प्रायश्चित्त करती हैं।" निस्सन्देह मिसेज़ बटलरके इस कथनसे उनके जीवनपर काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

हमारे पाठक स्वभावतः ही यह प्रश्न करेंगे कि इस पवित्रात्मा मिसेज़ ज़ोजफाइन बटलरका इतिहास क्या है? उसकी सांसारिक स्थिति कैसी थी? उसने क्या-क्या किया? मैं यहां ज़ोजफाइन बटलरके सम्बन्धमें दो-चार बातें बताऊँगी। ज़ोजफाइनका जन्म १८२८ में हुआ था। वह इंग्लैण्डके सीमाप्रान्तके बलवान परिवारमें उत्पन्न हुई थी। उसके पिता जान ग्रे अपनी पीढ़ीके एक विशिष्ट व्यक्ति थे। जानके पिता उसे छोटी अवस्थामें ही छोड़कर मरे थे। उस सुकुमार आयुमें ही सांसारिक उत्तरदायित्वका बोझ सिरपर आ पड़नेसे जान ग्रेके चरित्रपर जीवनभरके लिए एक गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने नेता बनकर अपने आस-पासके किसानोंके अज्ञानके विरुद्ध आवाज़ उठाई। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनोंमें उनके ज़िलेकी खेतीकी अवस्था सुधर गई और उनका ज़िला अपनी अधिक उपजके लिए विख्यात हो गया। जान ग्रेको घोड़ोंका बड़ा शौक था और वे अच्छे घुड़सवार थे। उन्होंने अपने बच्चोंमें—जिनमें ज़ोजफाइन भी थीं—घुड़सवारी, शिकार तथा देहाती जीवनके अन्य स्वास्थ्यप्रद खेलोंका शौक उत्पन्न कर दिया था।

ज़ोजफाइनकी माता 'ह्यूगोनाट' वंशकी थीं, जो धार्मिक अत्याचारके कारण फ्रांससे इंग्लैण्ड आ बसा था। ज़ोजफाइनने अपनी मातासे धार्मिक स्वतन्त्रता और आध्यात्मिकताके महत्वपूर्ण विचार प्राप्त किये थे।

ज़ोजफाइनका बाल्यकाल सुखसे बीता। छोटी अवस्थामें उनमें कला और संगीतके प्रति प्रेमके चिह्न भी दिखाई पड़ते थे। वे ख़ूब लिखती थीं और अच्छी तरह गा-बजा लेती थीं। उनकी बनाई ड्राइंग और तसवीरोंकी वे लोग, जिनके पास सौभाग्यसे वे ड्राइंग और चित्र हैं, अब तक सराहना करते हैं। इंग्लैण्ड और स्काटलैण्डकी सीमापर नार्दम्बरलैण्डमें उनका मकान भिन्न-भिन्न रुचियोंके व्यक्तियोंके अतिथि-सत्कारका केन्द्र था। उनके यहाँ आनेवालोंमें कुछ लोग ऐसे थे, जिनका अरब और अफ्रिकाके गुलामोंके रोज़गारसे गहरा सम्बन्ध था। उनके सम्पर्कमें आनेके बाद जान ग्रेने इंग्लैण्डमें दासत्व प्रथा उठवानेमें प्रमुख भाग लिया। इस प्रकार अपने अन्य भाई-बहनोंके साथ ज़ोजफाइनको बचपन ही से सार्वजनिक बातोंका कुछ-कुछ ज्ञान हो चला, जो उस ज़मानेमें साधारण बात न थी। उन्हें उसी समयसे उन भयंकर व्यापारोंका कुछ-कुछ आभास मिल चला था, जिनके द्वारा भले-बुरेका विचार न करनेवाले अर्थलोलुप व्यक्ति पैसा पैदा करते हैं। ज़ोजफाइनसे उनके भावी पति जार्ज बटलरकी भेंट उस समय हुई, जब बटलर महाशय डरहम यूनिवर्सिटीमें शिक्षक थे। बटलर शिक्षक तो थे, परन्तु उनके विचार उनके समयसे साठ वर्ष आगे थे। उन्होंने आक्सफोर्डमें

कलाके शिक्षणका चलन सफलता-पूर्वक चलाया और आधुनिक भाषाओंके अध्ययनको भी बहुत प्रोत्साहन दिया।

सन् १८५० ई० का आक्सफोर्ड आजकलके आक्सफोर्डकी अपेक्षा एकदम भिन्न था। मिसेज़ जोज़फाइन बटलर वहाँ अपने पतिके अध्ययनके कमरेमें चुपचाप बैठी-बैठी क़सीदा काढ़ा करती थीं। वहां उन्होंने अलक्ष्य भावसे अन्डरग्रेजुयेट विद्यार्थियोंकी जो बातें सुनीं, उन्हींसे पहले-पहल उन्हें यह पता चला कि समाजमें कुछ ऐसे नियम प्रचलित हैं और समाजकी ऐसी दशा है, जिससे वे तब तक बिलकुल अनजान थीं। मिसेज़ गैसकेलने एक उपन्यास लिखा था, जिसमें उन्होंने अविवाहित माताओंकी समस्यापर दृढ़ता और अन्तर्दृष्टिके साथ कोमलता-पूर्वक विचार किया था। इस प्रकार नाना प्रकारके साधनोंसे मिसेज़ बटलरको ज्ञात हुआ कि यूरोपमें एक प्रकारका क़ानून प्रचलित था, जो नैपोलियानिक कोड कहलाता था। इस क़ानूनके अनुसार युवती स्त्रियोंको पुलिसमें अपना नाम रजिस्टरी कराना पड़ता था, समय-समयपर उन स्त्रियोंकी डाक्टरी परीक्षा होती थी, रुग्न पाई जानेपर उनका ज़बर्दस्ती इलाज किया जाता था और वे पृथक मुहल्लोंमें रहनेको बाध्य की जाती थीं। यह सब केवल इसलिए किया जाता था, जिससे वे पुरुषोंकी कल्पित आवश्यकताको पूरा कर सकें। उन दिनों सभ्य समाज अपनी सुशिक्षिता नारियोंको इन बातोंकी जानकारीसे बड़ी सावधानी-पूर्वक अलग रखा करता था। मगर विद्यार्थियोंके कुछ व्यक्तिगत मामलोंने मिसेज़ बटलरके हृदयमें अन्यायपूर्वक दंडित स्त्रियोंके प्रति गहरी सहानुभूति उत्पन्न कर दी और उन्होंने इस विषयकी जानकारी प्राप्त करनेका निश्चय किया। उन्होंने केवल यूरोपके क़ानूनका ही ज्ञान प्राप्त करनेका निश्चय नहीं किया, बल्कि इस सम्बन्धमें इंगलैंडकी तत्कालीन स्थितिको भी अच्छी तरह समझनेकी मनमें ठान ली। वह जेलमें जाकर दंडित युवतियोंसे मिलीं और वहां उनसे पूछताछ की। अब वे चेलटनहेममें रहती थीं, जहाँ उनके पति कालेजके प्रिन्सपल थे, तब उन्होंने स्त्रियोंकी शिक्षा-विस्तार तथा उन्हें उच्च शिक्षा देनेका आन्दोलन उठाया। इसी बीचमें उनकी इकलौती पुत्रीका देहान्त हो जानेपर उनका परिवार लिवरपूल चला गया और वहां वे सन् १८६७में उत्तरी इंग्लैंडकी उच्च शिक्षा-समितिकी प्रधान हो गईं। उसी समय यूनिवर्सिटी एक्सटेंशन आन्दोलन आरम्भ हुआ था। मिसेज़ जोज़फाइन बटलरने इस आन्दोलनको काफ़ी सहायता दी; साथ ही उन्होंने न्यूहेम कालेजकी स्थापनामें भी बड़ा काम किया। मिसेज़ बटलरका यह विचार था कि स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंके विषयमें चुप रहनेका जो एक मूक षड्यन्त्र सा इंग्लैंडमें फैला था, स्त्रियोंमें उच्च शिक्षाके प्रचारसे वह षड्यन्त्र टूट जायगा। अत: कुछ समयके लिए—केवल कुछ ही समयके लिए—वे अपने शिक्षा प्रचारके कार्यसे सन्तुष्ट रहीं।

वे लिवरपूल जेलमें जाकर अकसर क़ैदी स्त्रियोंके सुख-दु:ख सुना करती थीं। फल यह हुआ कि उनके घरपर अनेकों दु:खित-पीड़ित स्त्रियां आने लगीं। जोज़फाइन उन स्त्रियोंकी अनेक प्रकारसे सहायता करने लगीं। वे उन्हें अपने यहाँ ठहरातीं और उनके साथ सच्ची मित्रताका व्यवहार करती थीं। अब उनके घरमें इस कामके लिए जगह कम पड़ने लगी। अत: उन्होंने लिवरपूलमें त्रस्त और पीड़ित नारियोंके आश्रयके लिए एक अबला-आश्रम खोला। आजकल जो पतिता और दुखी स्त्रियोंके उद्धारका कार्य हो रहा है। उसका आरम्भ इस प्रकार लिवरपूलमें हुआ था।

उनका अबलाश्रम दिन-दिन बढ़ने लगा। पाठक विचार करेंगे कि जोज़फाइन बटलर अपने सुखी पारिवारिक जीवनके साथ-साथ अबला-आश्रम और शिक्षा प्रचारके कामसे ही भलीभांति सन्तुष्ट होंगी। परन्तु वे महान् व्यक्तियोंमें से थीं, जो सेवाके लिए अपना सम्पूर्ण जीवन दे डालते हैं; जो किसी भी बुराईको दूर करनेके लिए उसके शाखाओंपर प्रहार न करके उसकी जड़पर आघात करते हैं।

संसारमें वेश्या-पद्धति बड़ी प्राचीन है। इस कुरीतिकी जड़ इस ग़लत धारणामें है कि पुरुषको कभी-कभी अपनी स्वाभाविक कामवासनाको अनियमित रूपसे तृप्त कर लेना उचित

है, पर स्त्रियोंको ऐसा करना अनुचित है। इसी ग़लत धारणाकी बदौलत 'नेपोलियनिक कोड' नामक क़ानूनका जन्म हुआ और आगे चलकर इसी क़ानूनकी देखादेखी ब्रिटिश सरकारने भी सन् १८६४ में इंग्लैण्डमें इसी प्रकारके क़ानून बनाये। इस 'अनियमित काम तृप्ति' में तरह-तरहकी बीमारियाँ हो जानेके भयसे सन् १८६४ में 'छुतैली बीमारी ऐक्ट' नामक क़ानून बनाया गया। सरकारने इस क़ानूनको, जहाँ तक सम्भव था, गुपचुप रखकर पास करा लिया। परन्तु मिसेज़ जोज़फ़ाइन बटलरने फ़ौरन ही अपने पतिकी अनुमतिसे इस ऐक्टके खिलाफ़ आवाज़ उठाई। वे भलीभाँति जानती थीं कि इस क़ानूनके विरुद्ध आवाज़ उठानेसे उन्हें तथा उनके स्नेही-सम्बन्धियोंको कितनी दिक़्क़त उठानी पड़ेगी। सन् १८६९ में ब्रिस्टल नगरमें सोशल साइन्स कांग्रेसने बहुमतसे इस क़ानूनके प्रतिवादमें एक प्रस्ताव पास किया और इस कानूनका विरोध करनेके लिए वहीं ५वीं अक्टूबर १८६९ में सबसे पहली संस्था कायम हुई। मिसेज़ बटलरकी महिला राष्ट्रीय सभाने ब्रिस्टलकी संस्थाके साथ अपनी तमाम शक्ति लगाई और लोगोंके हस्ताक्षर एकत्रित करके एक विज्ञप्ति प्रकाशित की, जो दैनिक पत्रोंमें छपी थी। इस विज्ञप्तिमें 'छुतैली बीमारी ऐक्ट' का प्रतिवाद इस आधारपर किया गया था कि वह ऐक्ट अन्यायपूर्ण और मनुष्यताहीन है, उससे एक महा भयकर दूषण क़ानूनन उचित बन जाता है और उस क़ानूनमें जिन उपायोंसे बीमारियां घटानेका प्रस्ताव किया गया है, उससे बीमारियां नहीं घट सकतीं।

यह देखकर कि इस आन्दोलनमें प्रचारकी बड़ी आवश्यकता है, मिसेज़ जोज़फ़ाइन बटलरने सन् १८७० के मार्च महीनेमें "शील्ड" (ढाल) नामक पत्र प्रकाशित किया। यह अब तक निकलता है और मिसेज़ बटलरके चलाये हुए सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया करता है। इसके बाद सत्रह वर्ष तक वे इसी समस्याका अध्ययन करती रहीं, और उपरोक्त ऐक्टके विरुद्ध व्याख्यान देतीं और कार्य करती रहीं। आरम्भमें अख़बारों, पादरियों, वकीलों और पब्लिक नेताओं तथा भांति-भांतिके नर-नारियोंने उनका विरोध किया। परन्तु मज़दूर-श्रेणीके लोग सदासे उनका समर्थन करते रहे, क्योंकि वे अपने निजी अनुभवसे उस क़ानूनसे उत्पन्न होनेवाली बुराइयोंसे परिचित थे। मिसेज़ जोज़फ़ाइन बटलरने कोलचेस्टरके पार्लामेन्टके निर्वाचनमें सर हेनरी स्टोर्कका विरोध भी किया, परन्तु उस निर्वाचनके झगड़ेमें एक बारसे अधिक उनपर शारीरिक हमला भी किया गया। होटलोंने उन्हें जगह देनेसे इनकार कर दिया। एक जगह वे प्रार्थनाके लिए सभा कर रही थीं कि विरोधी दलने नीचेवाले कमरेमें घास-फूस इकट्ठा करके आग लगा दी और अन्तमें उन्हें भागकर एक मज़दूरकी झोंपड़ीमें शरण लेनी पड़ी। इस लड़ाईमें उन्हें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, एक छोटेसे लेखमें उनका वर्णन करना असम्भव है।

अन्तमें स्वर्गीय डब्ल्यू० टी० स्टेडके नेतृत्वमें धीरे-धीरे समाचारपत्रोंमें इस विषयपर जागृति उत्पन्न हुई। उन्हें सच्ची स्थितिका पता चला और संसारमें एक नई स्पिरिट दिखाई देने लगी। मिसेज़ ब्राउनिंगने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अरोरा ले' (Aurora Leigh) लिखी, चार्ल्सडिकेन्सने 'डेविड कापरफील्ड'की रचना की, मेरेडिथने अपनी 'रोडा-ल्फेमिंग' नामक पुस्तकमें इस समस्यापर अपने विचार प्रकट किये और यूरोपमें इस क़ानूनकी कुछ बुराइयोंपर विक्टर ह्यूगोने अपने 'ले मिज़रेबिल्स' में प्रकाश डाला। इस प्रकार पुरुष और स्त्रियोंमें समान न्यायकी सम्भावनाका उदय हुआ। इस बार यह उदय सच्चा उदय था। सन् १८७९ से १८८२ तक हाउस-आफ-कामन्सकी एक सेलेक्ट कमेटी 'छुतैली बीमारी ऐक्ट'के कार्य और परिणामोंकी जांच करती रही और अन्तमें १८८६ में वह क़ानून रद किया गया। सेलेक्ट कमेटीको अपने निर्णय तक पहुँचनेमें मिसेज़ बटलरसे बड़ी ज़बरदस्त सहायता मिली; क्योंकि सन् १८८० में मिसेज़ बटलरने इस बातका भंडा-फोड़ करके कि इंग्लैण्ड और बेल्जियममें पापाचारके लिए स्त्रियों और बालिकाओंका कितना बड़ा रोज़गार होता है, एक सनसनी फैला दी।

साथ ही उन्होंने एक घटना प्रकाशित की, जिसमें बताया गया था कि स्विट्ज़रलैण्डके जेनेवा नगरमें सरकार द्वारा लाइसन्स-प्राप्त वेश्यालयोंके मालिक मुक्ति फौजके पादरियोंको किस प्रकार तंग करते हैं। मुक्ति फौजके जनरल ब्रेमवेल बूथने मिस्टर स्टेडको पापाचारके लिए स्त्रियों और बच्चोंके बेरोक-टोक रोजगारकी तमाम बातें बताईं और आंकड़े दिये, और उनके आवाज़ उठाने तथा मिसेज़ बटलरके वर्षोंके विरोधके परिणाम स्वरूप अन्तमें इंग्लैण्डका कानून रद्द हुआ। साथ ही एक बात और भी हुई। यूरोपके जिन देशोंमें नैपोलियानिक क़ानून प्रचलित था, उन देशोंमें भी ज़ोज़फाइनके समान विचार रखनेवाले लोगोंने अपने-अपने दल संगठित किये और इस सम्बन्धमें कार्य आरम्भ किया। इन दलोंमें यूरोपके अनेक गण्यमान व्यक्ति थे। उनके लिए मिसेज़ ज़ोज़फाइनका नाम युद्ध-घोषक समान था। मिसेज़ बटलरके अंग्रेज मित्रोंमें राइट आनरेबुल जेम्स स्टुअर्टका नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय है।

सन् १८९० में ज़ोज़फाइनके पतिकी मृत्यु हो गई। परन्तु मृत्युके पहले उन्होंने तथा ज़ोज़फाइनने यह देख लिया कि जेनेवामें यूरोपके विभिन्न दलोंका एक सम्मिलित संगठन 'इंटरनेशनल एवोलिशनिस्ट फेडरेशन'के नामसे स्थापित हो चुका था और सन् १८८१ में अलसेस प्रान्तके लाइसेन्स-प्राप्त वेश्यालय उठा दिये, और सन् १८८६ में नार्वेने नियमित वेश्यालय बन्द कर दिये। पांच वर्ष बाद अलसेसके कोलमर नगरमें ज़ोज़फाइनको नगरके मेयरने सार्वजनिक स्वागत कर सम्मानित किया। कोलमर यूरोपमें सर्वप्रथम नगर था, जिसने सबसे पहले अपने यहाँसे नियमित वेश्यालय उठाये थे। सन् १९०१ में ज़ोज़फाइनको यह भी देखनेका सौभाग्य मिला कि डेनमार्कने भी अपने देशमें नियमित वेश्यालयोंका अन्त कर दिया।

सन् १८५८ में ब्रिटिश सरकारने भारतके शासनका भार अपने हाथमें लिया। इससे पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन चलाती थी। १८५९ में एक रायल कमीशन इसलिए नियत हुआ कि वह भारतीय सेनाकी Sanitary state (स्वास्थ्य आदि) के सम्बन्धमें जांच करे। सन् १८६४ में भारतवर्षमें भी इंग्लैण्डकी भांति 'छूतैली बीमारी ऐक्ट' के समान एक परिवर्तित क़ानून 'कन्टूनमेंट ऐक्ट' के नामसे बनाया गया। इस कानूनमें इस बातकी व्यवस्था की गई थी "जिससे रेज़ीमेन्टल बाज़ारोंमें रहनेवाली वेश्याओंकी— चाहे वे छावनीमें हों या कूच करनेवाली फौजके साथ— उचित देख-भाल की जा सके; जिससे आवश्यक संख्यामें स्त्रियोंका इन्तज़ाम किया जा सके और इस बातका ध्यान रखा जाय कि वे स्त्रियाँ काफी आकर्षक हों तथा उनके रहनेके लिए मकानोंकी व्यवस्था हो।" सन् १८८८ तक भारतके इस क़ानूनके अस्तित्वका पता विलायतवालोंको न था। जैसे ही उन्हें इस बातका पता चला, वैसे ही मिसेज़ बटलरके दलने मि० एच० जे० विल्सन और प्रोफेसर स्टुअर्टके साथ इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। दो अमेरिकन महिलाएँ—मिसेज़ एलिज़बेथ ऐण्ड्रूज़ और डाक्टर कैथेरिन बुशनल—विलायत घूमनेके लिए आई थीं। वहां उनपर मिसेज़ ज़ोज़फाइन बटलरका बड़ा प्रभाव पड़ा और वे भारत जाकर वहांकी छावनियोंकी वास्तविक अवस्थाकी जांच करने और उसपर रिपोर्ट देनेके लिए स्वयं तैयार हो गईं। इन महिलाओंकी रिपोर्ट 'भारतमें महारानी विक्टोरियाकी पुत्रियाँ' नामक किताबके रूपमें सन् १८९८ में प्रकाशित हुई थी, और वह पुस्तक मिसेज़ बटलरको समर्पित की गई थी।

नियमित वेश्यालयोंके विरोधियोंकी दलीलें ऐसी स्थायी और सार्वभौमिक हैं कि उनमें देश, जाति अथवा सामाजिक अवस्थाकी विभिन्नताओंसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। खेद है कि मिसेज़ बटलर अपने सामने भारतीय क़ानूनको रद्द होते न देख सकीं। सन् १९०६ में नार्दम्बरलैण्डमें अपने घरपर उन्होंने शान्तिपूर्वक यह संसार त्याग दिया। मिसेज़ बटलरकी समितिसे—जो 'एसोसिएशन फार मारल ऐण्ड सोशल हाइजिन' (नैतिक तथा सामाजिक पवित्रताकी समिति) के नामसे प्रसिद्ध है—आर्थिक और ज्ञान-संबंधी सहायता प्राप्त करके रेवरेन्ड टी० डिक्सन अपनी पत्नी मिसेज़ कैथेरिन डिक्सनके

साथ भारतवर्ष आये और इस विषयमें सन् १९१४ से लेकर १९१८ तक कार्य करते रहे। फल यह हुआ कि फौजके नियमित वेश्यालयोंके विरुद्ध देशमें एक शक्तिशाली जनमत उत्पन्न हो गया है। डिक्सन दम्पतिके परिश्रमसे बोये हुए बीजोंके फल हमें अभी मिलने बाकी हैं।

हांगकांग, बर्मा, लंका, सिंगापूर, जिब्राल्टर, माल्टा, दक्षिण अफ्रिका और आस्ट्रेलिया आदि स्थानोंमें अनेकों ऐसे व्यक्ति हैं, जो मिसेज़ बटलरके दिखाये हुए मार्गपर चलते हैं और उनके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हैं। सन् १९२०में लिवरपूलके एवरक्रोम्बी स्क्वायरमें 'ज़ोजफाइन बटलर मेमोरियल ट्रेनिंग हाउस' नामक एक स्कूल खोला गया है। इस स्कूलमें स्त्रियोंको इस प्रकारकी शिक्षा दी जाती है, जिससे वे इस सामाजिक दूषणके विरुद्ध, जहां कहीं आवश्यकता हो, कार्य कर सकें। अब तक यह स्कूल प्रायः एक सौ महिलाओंको इस प्रकार शिक्षा दे चुका है। इनमेंसे पांच महिलाएँ इस समय भारतवर्षमें कार्य कर रही हैं।

सन् १९२७ में जेनेवाकी लीग-आफ-नेशन्सने संसारके अठाईस देशोंमें पापाचारके रोज़गारके सम्बन्धमें जांच कराई थी। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि लीग-आफ-नेशन्सने इस विषयमें मिसेज़ बटलरके प्रारम्भिक कार्यको प्रशंसाके साथ स्वीकार किया है। मिसेज़ बटलरकी प्रेरणासे भिन्न-भिन्न देशोंमें जो दल स्थापित हो गये थे, उन्हींकी सहायतासे 'लीग' यह जांच करा सकी। उनकी सहायताके बिना यह काम असम्भव था।

मिसेज़ ज़ोज़फाइन बटलरके सिद्धान्तोंके प्रचारका फल यह होगा कि धीरे-धीरे जन-साधारणकी आत्मा ऊपरको उठेगी और वे देखेंगे कि जो सत्य और उचित है, वह सम्भव भी है तथा जो चीज़ अन्यायपर स्थित है, वह कभी क़ायम नहीं रह सकती।

हिन्दीका प्रथम समाचारपत्र

श्री ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी

'विशाल-भारत'के गत फरवरीके अंकमें मैंने यह बताया था कि हिन्दीका सबसे पहला समाचारपत्र 'उदन्त-मार्तण्ड' कलकत्तेसे सन् १८२६ में प्रकाशित हुआ। इस लेखमें 'उदन्त-मार्तण्ड' के कुछ उद्धरण प्रकाशित किये जाते हैं। इससे पाठकोंको एक शताब्दी पूर्वकी पत्रकार-कला, उस समयकी भाषा, उस समयके समाचार, उस समयकी विचार-धारा आदिका कुछ आभास मिलेगा।

'उदन्त-मार्त्तण्ड' का पहला अंक 'जेठ बदि ९ संम्वत् १८८३। ३० में १८२६ साल भौम' को प्रकाशित हुआ था। उसका साइज़ फुलिस्केप था और वह टाइपमें छपता था। मुखपृष्ठपर 'उदन्त-मार्त्तण्ड' के मोटे हेडिंग के नीचे लिखा रहता था—

अर्थात्

'दिवाकान्त कान्तिं विनाध्वान्तमन्तं
नचाप्नोति तद्वज्जगत्यज्ञ लोकः।
समाचार सेवामृते ज्ञत्वमाप्तुं
नशक्नोति तस्मात्करोमीति यत्नं॥'

संस्कृतकी उपरोक्त पूरी इबारत एक ही लम्बी पंक्तिमें लिखी रहती थी।

पहले अंकमें सबसे पहले 'इस कागज़के प्रकाशकका इश्तिहार' नामसे प्रकाशककी विज्ञप्ति है, जिसमें प्रकाशक महाशय कहते हैं—

''यह उदन्त मार्तण्ड अब पहले पहल हिन्दुस्तानियोंके हितके हेत जो आजतक किसीने नहीं चलाया पर अंग्रेज़ी ओ पारसी ओ बंगलेमें जो समाचारका कागज़ छपता है उसका सुख

उन बोलियोंकि जाने ओ पढ़नेवालों को ही होता है और सब लोग पराये सुख सुखी होते हैं जैसे पराए धन धनी होना ओ अपनी रहते पराई आंख देखना वैस ही जिस गुणमें जिसकी पैठ न हो उसको उसके रसका स्वाद मिलना कठिन ही है और हिन्दुस्तानियों में बहुतेरे असे हैं कि पराई चाल देखकर अपनी यहाँ तक भुले हैं कि परायोंमें जो बुद्धिमन्त है वे अपनी तो बनी बनाई है पर पराई पर भले बुरेका बराव करने का बाना बान्धते हैं असी को धन कहा चाहिये जो इसमें वे बड़े कायर हैं जो इतने पर भी भाग टटोलते हैं बांह जो आंखों से सहजमें देख सकेंगे उसको धोखे भी न देखकर आंखों को व्यर्थ माथे चढावते हैं असी असी बातोंके विचारसे नाना देश के सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेंय ओ पराइ अपेक्षा ओ अपने भापेके उपज न छोड़े इसलिए बडे दयावान करुणा ओ गुणनि के निधान सबके कल्यानके विषय श्रीमान गवर्नर जेनेरल बहादुरकी आयस से असे साहसमें चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाटठाटा जो कोई प्रशस्त लोग इस खबरके कागज़के लेनेकी इच्छा करें तो अमड़ातलाकी गली ३७ अंक मार्तण्ड छापा घर में अपना नाम ओ ठिकाना भेजनेही से सतवारेके सतवारे यहांके रहनेवाले घर बैठे ओ बाहिर के रहने वाले डाकपर कागज़ पाया करेंगे इसका मोल-महीने में दो रुपया ओ डाकके महसूलकी तेहाई लिईजायगी और यहाँसे बाहिर रहते हैं उनको यहाँ रुपयेकी मानौती कर देनी होयगी काहेसे कि महीने महीने के अन्तर रुपये भर पावने की रसीद भेजनेमें किसी जगह डेढ ओ कहीं एक रुपया डाकका महसूल लगेगा ओ कोइ कारण पाय करके उसी मध्ये फिर लखना पडे तो फिर उतना खरच बैठेगा। इसमें दो रुपयेके पटने में दो तीन रुपया महसूल का देना लगेगा इससे यहाँकी मनोती रहनेसे इतना खरच ओ अबेर ओ कलेश न होयगा।"

'उदन्त-मार्तण्ड'के पहले ही अंकमें श्रीमान् गवरनर जेनरेल बहादुरका सभावर्णन दिया हुआ है। उस समय लार्ड एमहर्स्ट भारतके गवर्नर जनरल थे। ब्रह्माकी लड़ाई समाप्त हो चुकी थी, और ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रह्माके राजामें उसी सन्में सन्धि हुई थी। 'उदन्त-मार्त्तण्ड' में इस सन्धिकी शर्तें प्रकाशित हुई थीं। इस सन्धिके उपलक्षमें जो दरबार हुआ था, उसीका वर्णन 'श्री श्रीमान् गवरनर जेनरेल बहादुर का सभा वर्णन' शीर्षकमें दिया गया था। उसे भी मुलाहज़ा कीजिए—

"श्री श्रीमान् गवरनर जेनरेल बहादुरका सभा वर्णन

अंगरेजी १८२६ साल १६ मेको सरकार कम्पनि अंगरेज बहादुर ओ ब्रह्माके बीचमें परस्पर सन्धि हो चुकने के प्रसग से यह दरबार शोभनागार होके श्री*श्रीमान लार्ड एमहर्स्ट गवरनर जेनेरेल बहादुरके साक्षात् मे मौलबि महम्मद सलिलुद्दीन खां अवधविहारी:बादशाह की ओर से वकालत के काम पावने के प्रसंग से सात पारचे की खिलअत् ओ ज़िगा सर पेच जडाऊ मुक्ताहार ओ पालकि झालरदार ओ मृत महाराजा सुखमयि बहादुर के संतति राजा शिवचन्द्रराय बहादुर ओ राजा नृसिंह चन्द्रराय बहादुर राज्य ओ बहादुरी पदवी मिलने के प्रसंग से सात सात पारचे की खिलअत ज़िगा सरपेच जडाऊ मुक्त हार ढाल तलवार और चार घोड़े की सवारी की अनुमति ओ राय गिरधारी लालबहादुर ओ मिर्जा महम्मद कामिल खाँ नवाब नाज़िम बहादुर के विवाह के प्रसग से छ छ पारचेकी खिलअत् ज़िगा सरपेच जडाऊ ओ कृपाराम पंडित नवाब फैज मुहम्मद खां बहादुरकी ओर से पुरी वकालतका पद होने के प्रसग से दोशाला गोशवारा नीमे आस्तीन सरपेच जडाऊ पगड़ी ओ विश्वंभर पंडित की स्त्री के एकटिंग वकील देविप्रसाद तिवाडी दोशाला ओ मुहम्मद सईद खां साहिब ओ राजा भूपसिंह

---

* जिस प्रेसमें 'उदन्त-मार्त्तण्ड' छपता था, उसमें बंगला भाषाके भी टायप थे, और हिन्दीके 'श्री' के टाइप और बंगला 'श्री' के टाइप मिल गये थे अथवा शायद हिन्दीकी 'श्री' बहुत थोड़ी थीं क्योंकि 'उदन्त-मार्त्तण्ड' ने अकसर 'श्री श्री' के स्थानमें 'श्री श्री' छपा है, यद्यपि कहीं कहीं 'श्री श्री' भी है। —लेखक

बहादुर कोटे के एक-एक हारसे भूषित औ कृतकृत्य हुए औ जालवनके रईसके वकील शिव राव ने श्री श्री नव्वर गवरनर जेनूरेल बहादुरके साक्षातकार इस संधिके बधाईकी कविता भेट धरी औ नरः श्रेष्ठ उस कविताका भाव बूझे पर बहुत रीझे।''

'उदन्त-मार्त्तण्ड' में कम्पनीके सरकारी गजटसे अफसरोंकी नियुक्ति और परिवर्तन तथा पब्लिक इश्तहार, जहाजोंके आनेकी खबर, कलकत्तेकी बाजार दर देश-विदेशके समाचार, ज्ञानवर्धक बातें और मनोरंजक चुटकुले इत्यादि प्रकाशित हुआ करते थे। कलकत्तेमें गंगाजीकी मिट्टीके सम्बन्धमें 'उदन्त-मार्त्तण्ड' में यह सरकारी नोटिस प्रकाशित हुआ था—

''इश्तेहार

सभों को खबर दी जाती है कि जो किसी को गंगा की मिट्टी लेनी होय तो तीरकी राह वल्ली ओर फुट १५ के अटकल जगह छोड के खाले की भुई खनि लेय औ जब ताईं दूसरा हुकुम न होय तब तक यही हुकुम बहाल रहेगा और जिसको मिट्टी की दरकार होय वह उसी तीरकी राहके अमीन मेसटर केलार्क साहबके यहाँ अपनी अरजी देवेगा।''

संस्कृतके सुप्रसिद्ध नाटक 'मृच्छकटिक'का अनुवाद किसी अंग्रेजने किया था और वह अबसे प्रायः १०५ वर्ष पूर्व कलकत्तेसे प्रकाशित हुआ था; क्योंकि 'उदन्त-मार्त्तण्ड' में प्रकाशित हुआ था—

''आज हिन्दुओंके नाटक शालेकी चुनी बांनगिओं में से अङ्क। १।

मृच्छ कटि या मिट्टीका छकडे का जो सकल गुण आकर ज्ञान प्रभाकर गौडीय समाजके सेकटरी बोरेस हेमेन् उईलूसन साहिबने संस्कृत मूलका उलथा किया।

—

वह उलथा

छापे वाले मिसियर्स इस्मित कम्पेनी औ मेसूटर हलकाकर औ मेसूटर बेकर साहिब के यहां और सरकारी छापा घरमें रुपयेको मिलेगा एप्रिल् १० १८२६ साल।''

'उदन्त-मार्त्तण्ड' के तीसरे अंकमें व्यापारियोंकी एक चिट्ठी छपी थी, जिसमें कलकत्तेके व्यापारियोंने उदन्त-मार्त्तण्डकार से यह प्रार्थना की थी कि वह अपने पत्रमें जो अर्घवती—बाजारदर—छापते थे, वह सम्पूर्ण होनी चाहिए। 'उदन्त-मार्त्तण्ड'की अर्घवती अपूर्ण रहती थी। इसपर 'उदन्त-मार्त्तण्ड प्रकाशस्य उत्तरमिदं' हेडिंगके अन्तर्गत उसके सम्पादक महाशयने व्यापारियोंकी प्रार्थना स्वीकार करके उन्हें विश्वास दिलाया था कि भविष्यमें सब बातेकी पूरी-पूरी अर्घवती प्रत्येक शुक्रवारको अलग छपा करेगी। यह पत्रोत्तर 'मार्त्तण्ड'के कई अंकोंमे विज्ञापन-स्वरूप छपता था।

'उदन्त-मार्त्तण्ड' में कभी-कभी बड़ी मनोरंजक बातें छपा करती थीं। उदाहरणके लिए आषाढ वदी १ संवत् १८८३ के 'मार्त्तण्ड'में प्रकाशित हुआ था—

''फरासीस देशकी खबर

कहते हैं कि बादशाह गरदी के रौले में एक ठौर बहुतेरे आदमी मारे गए थे एकदिन एक आदमी ने एक मुरदे की जोरूको उस जगह जाते देखा औ ठंढी सांस लेके यह बोला कि परमेश्वर की इच्छा ऐसी ही थी तेरा स्वामी संसारसे उठ गया इसमें क्षमा के सेवाय कुछ उपाय नहीं है तू अपने जी को समझाव ऊसने उतर किया कि इसमें क्या सन्देह है जो होना था सो हो चुका मैं यह देखने आई हूँ कि घरकी कुंजी उसकी खलीती में है या नहीं कुंजी न पाऊँ तो घर कैसे जाऊँ वह सुनकर एक टक लगा रहा।''

हमारी अदालतोंकी कार्रवाईमें अक्सर बड़ा समय लगा करता है। अनेकों मुकदमे पचीसों वर्ष तक चला करते हैं। फल यह होता है कि बेचारे मुकदमेबाजोंका खर्चके मारे दिवाला निकल जाता है और वकील तथा अदालतवाले मजा करते हैं। अबसे सौ वर्ष पहले भी अदालतोंकी दशा इससे कुछ अच्छी नहीं थी। अषाढ़ बदि ८ संवत् १८८३ के 'उदन्त मार्तण्ड' में इसी विषयपर एक मजाक प्रकाशित हुआ था—

"ठट्ठे की बात

एक यशी वकील वकालत का काम करते करते बुड्ढा होकर अपने दामाद को वह काम सौंप के आप सुचित हुआ। दामाद कई दिन वह काम करके एक दिन आया औ प्रसन्न होकर बोला हे महाराज आपने जो फलानेका पुराना औ संगीन मोक़द्दमा हमें सौंपा था सो आज फैसला हुआ यह सुन कर वकील पछता करके बोला कि तुमने सत्यानाश किया उस मोकद्दमें से हमारे बाप बढ़े थे तिस पीछे हमारे बाप मरती समय हमें हाथ उठाके दे गए औ हमने भी उसको बना रखा औ अब तक भली भांत अपना दिन काटा औ वही मोकद्दमा तुम को सौंप करके समझा था कि तुम भी अपने बेटे पोते परोतों तक पलोगे पर तुम थोड़े से दिनों में उसको खो बैठे ॥"

भादों सुदी ११ के 'उदन्त मार्तण्ड' में एक समाचार छपा था—

"बहुत मोटे ओ बड़े आदमी ॥

विलायत में एक बड़े आदमी साहिब कि जिसका शरीर तौल में दो सौ साढ़े सतरह सेर वा पांच मन साढ़े सतरह सेर लोगों के देखने में आया। विलायत में लोग कहते हैं कि ऐसा बड़ा आदमी कभी देखने सुने में नहीं आया पर वहां इसके आगे भी बड़े आदमी थे ॥

अंगरेजी १८०६ साल की २८ जूनको डेनियल लाम्बोर्ट नामके साहिब जिसकी अवस्था चालीस बरस की थी औ उनने उसी अवस्थामें चोला छोड़ा उनकी मोटाई कहां तक कहिये कि वे जिस कोठरी में मरे उस कोठरीसे उनको निकालते एक दरवाज़ा औ एक खिड़की जो वहां थी उसको तोड़ के दूसरे दरवाज़े मे मिलानी पड़ी थी। उनका शरीर तीन सौ उनहत्तर सेर वा नौ मन नौ सेर तौल में था यहां बंगालियों में कोई भागवान ऐसा मोटा न देखनेमें आया हिन्दुस्तानियोंमें एक बाबू नंदराम बैजनाथ की कोठी के मुनीब बाबू रामप्रसाद औ कुछ थोड़े बहुत बाबू नंदूशाह जी भी मोटे हैं पर तौल की विध बिना तौले नहीं मिलती पर अकिलके इससे भी मोटे बहुत देखने में आते हैं।"

कलकत्ता नगरकी उन्नति करने, उसकी सड़कें, पार्क तथा पब्लिक इमारतें बनानेके लिए ईस्ट इंडिया कम्पनीने लाटरी-कमेटीकी स्थापना की थी। ये कमेटियां लाटरी उठाया करती थीं। जन साधारण लाटरीके टिकट खरीदते थे, और उनके धनका एक भाग 'नाल'के रूपमें कमेटी ले लिया करती थी, बाक़ी धन इनामोंके रूपमें बांट दिया जाता था। कलकत्तेकी अनेकों सड़कें और पार्क इसी नालके रुपयेसे हुए हैं। 'उदन्त मार्तण्ड' में इस प्रकारकी लाटरीकी खबरें भी प्रकाशित होती थीं।

आश्विन वदि ३ के अंकमें 'राज्यसंपदा' शीर्षकके अन्तर्गत पुर्तगालके राजाकी धन-सम्पत्तिका वर्णन है, वह भी सुन लीजिए—

"पुरानोंमें लिखा है कि वेणु राजाके बड़ा धन था पर धर्मका लेश नहीं। वैसा तो काहे को पर देश काल पात्र। पुर्त्तगेज बादशाह ऐश्वर्य जो अंग्रेज़ी कागज़ों में लिखता है वह भी गिनने गूथने के बाहर ही है काहे से कि जब से उस राज की बढ़ती हुई तबसे दिन दूनी औ रात चौगुनी ही होती गई और उसका पसेव भी नहीं उठा। जैसा लोग कहते हैं कि मैं मरि जैहों पर तोहि न भंजे हों। और की कौन चाले बादशाह आप अपनी रोकड़की बिधि न मिला सके इस लिए कुछ उस राज की प्रभुता का वर्णन करने में आता है। बादशाह अपने गेह के एक भुइंधरे में जहां बयार भी न पैठ सके रोकड़ की पेटियों सदा सुची रहती हैं विशेष करके बड़े बादशाह जो कुछ दिन हुए संसार से उठ गये औ कुछ भी छाती पर धर के ले न गए वे संचय करनेमें एक ही प्रबीन औ सब पेटियों की ताली अपने हाथ रखते और जवाहिर की पेटियों को पल भर भी आंखों के ओट न करते वे यहां तक की यत्न के से टुक वहां से न सरकते औ उस विभव को देख कलेजे को ठंढा किया करते इस सम्पद होनेका मूल यह है कि सोना चांदी हीरे की खान उन के अधिकार में है और उस

राज में कभी खटका नहीं हुआ। एक बेर जेनरेल बोनापार्टने मारे लोभ के उस सब अधिकार पर अपना अधिकार कर लिया पर बड़े बादशाह ने जेनरेल के आवते आवते अमिरेका के मुलुक के जो ब्रजिल में जो वहाँ का बादशाह इसका बेटा है झटपट सब रोकड़ औ जवाहिर जहाजों पर लाद लाद ले जा टल बैठा। जब इधर से बोनापार्ट के पैर टले तबसे अपने जहाँ का तहाँ आन बैठा। इस राज की जो आमदनी थी इसमें एक चिन्नी न उठती थी इस आमदनी के सिवा दश हजार रुपया रसोईका खरच प्रजासे नित्य उगाहा जाता था। गोई भर उठा करता यहां तक कि खरच होने के डर से लड़के को साथ बिठाल कर नहीं खिलाते। पर घोड़े की सवारी का इसको शौक़ था उसमें अपने जो कुछ उठाता हो सो सही काहे से कि यह बादशाह विलायत भर में एक ही घोड़चढ़ा था। अब इस बादशाह की मां ने एक परब हीरे का दिया था उसका विशेष लिखा चाहिये कि जिससे उस राज्य की विभव लोग जानें कि वह परब हीरे का तोल में विलायती १६०० बिस्वा अथवा यहाँ का आध सेर का डले का डला है ऐसा परब आजकल के जौहरियों ने कहीं देखने की कौन बात है सपने में भी न सुना होगा और न किसी बादशाह के यहां है। और बड़े हीरे के परब जिस बादशाह के यहां है वह लिखते हैं। रूसके बादशाह के यहां एक १०६ बिस्वेका एक हीरा है। फरासीसों के यहां १३६ बिस्वेका एक परब है। तसकनी में १४६ बिस्वे का एक टुकड़ा है। ईरान की बादशाहत में जो एक परब हीरे का ४६३ बिस्वे का है उसका मोल पुर्तकसी रतनपारखे दो पद्म आंकते हैं औ अंगरेजी औ फरासीसी जौहरी पचास करोड़ लगावते हैं। बड़े बादशाह की कुरती में एक बोताम हीरे का चार करोड़ रुपये का लगा था और एक हीरे की परब गिरजे को भेट की। वह जब गिरजा करने के समय निकाल के रखा जाता है तब उसकी छटा से घर का घर उजियाला हो जाता है। अब इतना ही मन को खेद होता है कि लोग यहां की उजियाली का घमंड रखते हैं परलोक की अंधियाली गैल पर एक दीवा चिकनई का भी नहीं बालते।।"

'उदन्त-मार्त्तण्ड के अनेकों अंकोंमें 'लाहौरादि प्रान्तर्गत महाराजा रनजीतसिंह बहादुरकी खबर' छपी है। जैसे—

"अखबारके देखने से समझ पड़ा कि महाराजाधिराज २६ जुलाई तक लाहौरमें थे १५ को भावलपुर के नवाब के वकील ने अपने धनी का खरीता गुजराना औ बिनती की कि हुकुम के प्रमाण ठगों के खोज को सवार गये पता लगने से व्यापारियों के माल समेत महाराज के सामने पकड़े आवेंगे और पूर्णमासी की भेट १८ को पाच जोड़े दोशाले औ रोक नानक पुत्र की गद्दी पर पहुँची कड़ाहजी का छान्दा बँटा फिर क़िले में साम तक भजन सुनत रहे २६ को कोतवालको हुकुम हुआ कि पन्द्रह चोर जो क़ैद हैं उनके नाक कान उतार रावी पार उतरवा और लाहौर नगर में ढिंढोरा पिटवा देवें कि बड़ी झड़ी लगी है लोग अपने पुराने घरों को गिरवा देवें औ जिसकी मरम्मत चाहिए उसको तुर्त बनवा लेवें औ मुन्तजमुद्दौला बहादुरके औ अंबाले के छावनी के मुखतार साहिब के नाम खरीता औ अनन्दसिंह वकील को पुरजा रवाने हुआ और कुँवर तारासिंह की अरजी पाच घोड़ों साथ आई हुकुम हुआ कि घोड़े तबेलेमें भेज जावें।"

बंगलाके तत्कालीन समाचारपत्र 'समाचार दर्पण' में गलतीसे महाराज रणजीतसिंहके पुत्र राजकुमार खड्गसिंहका नाम 'गोरक्षसिंह' छपा करता था। 'उदन्त-मार्त्तण्ड' के सम्पादकने 'समाचार-दर्पण' की यह गलती पकड़ी थी। इसपर उसने आश्विन बदि ३ के 'उदन्त-मार्त्तण्ड' में सम्पादकीय नोट लिखा था। इससे पहले 'मार्त्तण्ड'में सम्पादकीय शीर्षकमें कोई बात नहीं छपी थी। वह नोट इस प्रकार है—

"Editorial Ramark.

अशुद्धता

समाचार दर्पण में नए समाचार न मिलें इसका कुछ दुख नहीं है पर लाहौरके रनजीतसिंह के समाचारमें

गोरक्षसिंह जो लिखा जाता है यह जैसे श्रीरामपुरी भाषा व्याकरण के विभक्ति में कुकुर शब्द साधा है वैसा ही तात्पर्य हो तो चिंता नहीं। और कदाचित् जो भूल हो तो मूल इसका खड्गसिंह है और ए महाराजके बड़े कुमार हैं। इतनी विनय और है कि अंगरेज़ी गवर्नमेंट गेजेटमें भी शोध देवें काहेसे कि सन्देह होता है कि इसी खबरकी परछाहीं दर्पणमें पड़ी न हो ॥"

'मार्तण्ड'के इस कटाक्षपर श्रीरामपुरी—'समाचार-दर्पण'ने भी कुछ लिखा था और इस सम्बन्धमें कुछ वाद-विवाद भी चला था। 'उदन्त-मार्तण्ड'के अगले अंकमें इस विषयपर पुनः एक टिप्पणी है। 'मार्तण्ड'का यह अंक इसी टिप्पणीसे प्रारम्भ होता है—

"Editorial Remark

और भी नई अशुद्धता ॥

गए शनिश्चर के समाचार दर्पण में उसके प्रकाशक ने लिखा है कि हमने प्रचार किया है कि "दर्पण प्रदर्शक ने श्रीश्री "युत महाराज रणजितसिंह बहादुर के पुत्रका प्रकृत नाम "खड्गसिंह न लिखके श्लेषोक्ति करके खड्गक सिंह लिखा करते हैं" इसमें हमें यह कहना है कि हमने पिछले मार्तण्ड में लिखा है कि दर्पण प्रकाशक सदा गोरक्षसिंह लिखा करते हैं। खड्गकसिंह लिखते हैं ऐसा हमने लिखा ही नहीं और दर्पण प्रकाशक भी अपने अपूर्व दर्पण में ऐसा शब्द नहीं लिखा। इससे यही समझ पड़ता है कि यथार्थ जो खड्ग शब्द है उससे खड्गक प्रयोग प्रायः तुल्यता औ ऐक्यता रखता है इस हेत दर्पण प्रदर्शकने अपनी भूलको समूल करने के लिए गोरक्ष शब्द जो आप लिखा करते हैं और हमने अपने कागज़में स्पष्ट लिखा है उसका नाम न लेके अद्भुत खड्गक शब्द लिख दिया। इस कारण और दर्पण प्रकाशक के ऐसा लिखने में कि बगाल……* अंगरेज़ी खबरके कागज़से जान पड़ा।' इससे साफ पाया जाता है कि उन्होंने 'उदन्त-मार्तण्डको हेरके भी न हेरा।

और दर्पण प्रदर्शक ने एक बेर खड्सिंह औ दूसरी बेर खड्गक सिंह फिर खड्क सिंह अपने दर्पणमें लिख दिया है। इसमें कौन शब्दमें उनकी अभिरुचि है यह समझमें न आया ॥

दर्पणके प्रकाशक ने लाहौरके आये हुए समाचार से क्या फारसी अथवा अंगरेजी अखबारको देख वह अशुद्ध नाम लिखा था सो हमारे समझमें न आसका इससे हमारे प्रति 'कल्पना' सम्भव नहीं होती बस यह प्रयोग उनको आप अंगिकार करना पहुँचता है काहे से कि उसी नाम के विषय औ अनूठा शब्द दर्पण में देख पड़ा और भी हमने सन्देह अपना प्रकाश किया है कि समझ पड़ता है गवर्नमेन्ट गेजेटकी परछांही दर्पण में पड़ी होगी जिस हेत उस कागज़में भी गोरक्ष शब्द देखनेमें आया इस हेत विनय की है कि उस कागज़में भी शोध देव ॥

और दर्पण प्रकाशक लिखते हैं कि अब प्रकृत नाम जाना हम सभों के सन्तोष क निमित्त इस उपरांत खड्ग प्रयोग करेंगे। इसमें हम सभों ने जो भ्रान्ति दिखलाया था उन के उस चूकके मान लेने ही से हम लोगोंका तोष हुआ पर वे भी शुद्ध शुद्ध नामके-विषय खड्ग प्रयोग न करके शुद्ध नाम का प्रयोग करने से सर्वसाधारण के तुष्टिका सम्भावना है पर और नाम की अशुद्धता से व्यक्ति को न निरूप सकनेसे पढ़वैए सन्तुष्ट न होते उन्हों के तुष्टि का विशेष कर के कारण होगा।"

सन् १८५७ के विप्लव में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए लड़नेवाले क्रान्तिकारी नेताओंमें बिहारके बाबू कुंवरसिंह बहुत प्रसिद्ध हैं। विप्लव के पूर्व वे अंगरेज़ी सरकार के मित्रोंमें से थे। 'उदन्त-मार्तण्ड'की एक खबर से मालुम होता है कि सन् १८२६ में उन्हें गवर्नर-जनरल लार्ड एमहर्स्टने सम्मानित किया था—

"गवरनर बहादुरकी खबर

१६ औ १७ सिप्टेंबर की पटने की चिट्ठियोंसे समाचार भुगते कि पटने में गवरनर के साथ सब नावें आगे पीछे पहुँचीं। × × × × × १६ को हिन्दुस्तानियों का

* कागज़में यह अंश कीड़े खागये, पढ़ा नहीं जाता। —लेखक

दरबार हुआ उस दरबार में विहारके ओरके गिनती के जमींदार ओ पटनेके रहीस सरदार लोग सब गए थे और इतने सरदारोंको खिलअतें हुई। पहिले टिकारीवाले महाराज मितजित सिंहको ओ दूसरे तिरहुत वाले दरभंगा के महाराज छत्रसिंह को ओ चम्पारन के बेतियावाले राजा अनंदकिशोर सिंहको। और शाहाबादके जमीदार बाबू कुमारसिंह को खिलअतें मिलीं। हम सभों के आनंद का विषय है कि यद्यपि सबेरे के पहर गरमी हुआ करती थी पर लार्ड साहिब इतने ओ और कितने अन गिनती आदमियोंसे मिलते थे परंत यह किसी ने न लखा कि अब भेंट अवाईसे उकता उठे······· ·····॥''

'उदन्त-मार्त्तण्ड' के प्रत्येक अंकके अन्त में लिखा रहता था —

'युगलकिशोरः कथयति धीर,

सविनय मेतत सुकुलज वरः॥

उदिते दिनकृति सति मार्त्तण्डे

तद्धद्विलसती लोक उदन्ते॥'

यह श्लोक अंकके अन्तिम कालम में रहा करता था और उसके नीचे हिन्दीमें यह इबारत डबल कालममें रहती थी—

''यह उदंत-मार्त्तण्ड कलकत्तेके कोल्हू टोला के अमड़ा तलाकी गली के ३७ अंककी हवेली के मार्त्तण्ड छापा में हर सतवांरे मंगलवार को छापा होता है जिनको लेनेका काम पड़े वे इस छापाघरमें अपना नाम भेजने ही से उनके समीप भेजा जायगा उसका मोल आठ आने अंक लगेगा। जिन्होंने सही की है जो उनके पास कायज न पहुँचे तो उस छापाखाने में कहला भेजने ही से तुर्त उनके यहाँ भेजा जायगा॥''

'विशाल-भारत'के अगले अंकमें 'उदन्त-मार्त्तण्ड के कुछ और मनोरंजक अंश तथा उसके अस्त होनेकी कथा प्रकाशित की जायगी।
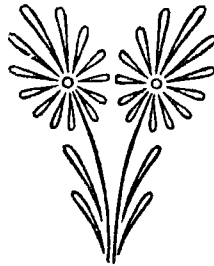
धूप और छाया

श्री दीनेशचन्द्र गुप्त

[इस कहानीके लेखक श्री दीनेशचन्द्र गुप्तने—जिन्हें बंगाल-सरकारकी जेलोंके इंस्पेक्टर-जनरल मि० सिमसनकी हत्याके अभियोगमें मृत्युका दंड मिला है—अदालतके हुक्म सुनाये जानेके बाद यह इच्छा प्रकट की कि उनकी यह कृति 'प्रवासी' सरीखे किसी अच्छे बंगला मासिक पत्रमें प्रकाशित कर दी जाय। हम उनकी इस कहानीका, जो शायद उनकी अन्तिम रचना हो, अनुवाद प्रकाशित करते हैं। —सम्पादक]

अगहनका महीना है। सवेरा हो रहा है। शहरके लोग कुछ जगे हैं, कुछ सो रहे हैं। दो-एक दुकानके दरवाज़े खुले हैं, सो भी अधखुले।

छोटे दारोगा हाफिज़उद्दीन साहब रातकी ड्यूटी खतम करके एक कानिस्टेबिलके साथ थानेको लौट रहे हैं। कानिस्टेबिलका नाम है रामसिंह। वह मुजफ्फरपुर ज़िलेसे सिर्फ़ नौकरीके लिए इतनी दूर बंगालमें आया है। नौकरी ठीक ही चल रही है, उसकी तोंद देखकर इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं रह जाता।

अचानक कुत्तेका भोंकना सुनकर दारोगा साहबने पीछेकी ओर देखा। दुबला-पतला, काला-सफेद, दुरंगा एक कुत्ता है, उसके पीछे-पीछे एक आदमी बेइन्तहा ज़ोरसे दौड़ा आ रहा है, दौड़ते-दौड़ते बेचारेकी काँछ तक खुल गई थी। उसने ज़ोरसे एक उछाल मारी और कुत्तेकी पीछेकी दोनों टांग पकड़कर वह सड़कपर पड़ रहा। कुत्ता पीछेकी ओर गरदन मोड़कर उसे काटनेकी व्यर्थ चेष्टा करता हुआ 'कें' 'कें' करने लगा।

आदमी चिल्ला उठा—"अरे मुन्नी, जल्दी आ! अरे मोती, आ तो सही!—हैं हः, अभी किसीसे पाला नहीं पड़ा है! अब ज़रा मज़ा चखो बेटा!"

शोर-गुल सुनते ही मुन्नी और मोती नामके दोनों प्राणी निकल आये, साथ ही बिना-बुलाये और भी बहुतसे लोग धोती सम्हालते और आँखें मींजते हुए सड़कपर जमा हो गये और अपनी बहादुरी दिखाकर मुँह बाये खड़े रह गये।

रामसिंह कानिस्टेबिलने दारोगा साहबसे कहा—"हज़ूर, मालूम होता है कि उधर कोई हल्ला मचा रहा है।"

हज़ूरकी भौंह चढ़ गई। वे लम्बे-लम्बे डग रखते हुए घटनास्थलपर पहुँचे।

वह आदमी तब तक उठकर खड़ा हो गया था। मुन्नी और मोती दोनों जने ताक़त-भर ज़ोरसे कुत्तेके कान पकड़े खड़े हैं। बेचारा कुत्ता मारे डर और जाड़के थर-थर काँप रहा है; पूँछपर कहीं किसी तरहका जुल्म न हो, इस आशंकासे पूँछ तकको उसने पेटके नीचे चालान कर दिया है। उस आदमीके दाहने हाथकी उँगलीसे खून टपक रहा था। हाथ ऊपरको उठाकर दखते ही वह मारे गुस्सेके चिल्ला उठा—"कुत्तेके बच्चेने हमको तो एकदम मार डाला!"

दरोगा साहब भीड़ चीरकर भीतर घुसे और गरजकर बोले—"ऐ, हल्ला मत करो। क्या हुआ? इतना हल्ला काहेका? तुम साँड़की तरह चिल्लाता क्यों है? नाम क्या तुम्हारा?"

वह आदमी बेचारा घबरा-सा गया, एक सलाम ठोंककर बहुत ही करुण स्वरसे बोला—"हज़ूर, मेरा नाम है रामलोचन लुहार। सोनेका काम करता हूँ, यानी सुनारका। चाँदी मैं हाथसे नहीं छूता, मेरे वंशमें किसीने चाँदी नहीं छुई। हज़ूर मा-बाप हैं। एकदम मार डाला है, हज़ूर!"

दरोगाने तीखी नज़रसे उसकी तरफ़ देखा और मूँछपर ताव देते हुए कहा—"चिल्लाओ मत। हुआ क्या, सो साफ-साफ बताओ।"

रामलोचनने एक बार कुत्तेकी ओर देखा। उसके बाद खूनसे तर अपनी उँगलीकी ओर देखकर कहा--"हजूर, बिस्तरेसे उठकर मैदान गया था। मैदानसे लौटकर लोटा रखकर घरमें घुसा ही चाहता था कि इतनेमें चटसे—न जाने कहाँसे आकर--इस अभागे कुत्तेने उँगली काट खाई। खूनकी नदी बहने लगी, हजूर! उँगली इस पार उस पार कर दी है, हजूर। हजूर माई-बाप हैं, इसका कुछ न कुछ फैसला करना ही पड़ेगा, हजूर।"

हजूरने भौंहें तानकर कहा—"हूँ:। किसका है यह कुत्ता?" रामलोचनने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"मालूम नहीं हजूर। हजूर माई-बाप हैं।"

दरोगा साहबने फिर एक बार चेहरेपर गम्भीरता लाकर कहा—"हूँ:।" उसके बाद कुछ देर तक चुप रहकर चिल्ला उठे—"यह सब नहीं चलेगा। कुत्ता पालनेका शौक़ निकाले देता हूँ, ठहरो। कमरमें रस्सी बाँधकर थानेमें घसीट ले चलूँगा। पीठपर दो बेंत पड़ते ही कुत्ता पालनेका शौक़ मिट जायगा। रामसिंह, देखो तो किसका कुत्ता है। सालेको कान पकड़कर थानेमें पहुँचाओ, फिर मज़ा चखाये देता हूँ। है किसका कुत्ता यह?"

चारों तरफकी जनता एक दूसरेका मुँह देखने लगी। भीड़में से एक आदमी बोल उठा--"यह तो, हजूर, पुलिस-साहबका कुत्ता है।"

ज़रा चौंककर दरोगा साहबने कुत्तेको ग़ौरसे एक बार देख लिया, कुछ निश्चय न कर सके। रामसिंहकी तरफ जिज्ञासु-दृष्टिसे देखकर मानो पूछा---तुम्हारी क्या राय है?

रामसिंह उस समय बिलकुल निर्लिप्त-सा बनकर आसमानकी तरफ देख रहा था। दरोगा साहबसे निगाह भिड़ते ही बोल उठा—"बड़ी उमस मालूम होती है, हजूर शायद बरसेगा।"

दरोगा साहबने चटसे एक बार ऊपरकी ओर मुँह उठाकर कहा--"मालूम तो ऐसा ही होता है।"

फिर रामलोचनकी ओर मुखातिब होकर कड़ककर बोले--"देखो, यह बात हमारी कुछ समझमें ही नहीं आती कि एक ज़रासे कुत्तेके पिल्लेने तुम जैसे एक हट्टेकट्टेको काटा कैसे। तुम्हारा यह हँड़िया-सा मुँह देखकर तो कुत्तेकी हिम्मत ही नहीं पड़ सकती कि आगे बढ़े। जा, भाग, कहींसे उँगली काट लाया है और कहता है कुत्तेने काटा है। झूँठा कहींका! कसके दो तमाचे जमा देनेसे ही अक़्ल दुरुस्त हो जायँगी।—चलो, रामसिंह।"

इतना कहकर वे जाना ही चाहते थे कि इतनेमें भीड़में से एक आदमी आगे बढ़कर बोल उठा---"हजूर, रामलोचनकी एक भी बात विश्वास मत कीजिये। यह शराबी आदमी है। रात भर नशेमें चूर रहा है। सबेरे कुत्ता अपना रास्तेसे जा रहा था, उसे पकड़कर कंधेपर चढ़ाकर लगा नाचने। फिर उसके मुँहमें जलती हुई सिगरेट ठूँस दी, बस फिर क्या था, उसने धर दबाई उँगली। इसमें कुत्तेका क्या दोष, हजूर? आदमीको इस तरह छेड़ा जाय तो वह भी काटे बग़ैर न रहेगा। देखिये न, उस दिन---"

रामलोचन बीच ही में बोल उठा—"बस, रहने दे, तुझे लिक्चर नहीं देना होगा। तू कैसा धर्मराज जुधिष्ठिर है, मुझे मालूम है। गँजेड़ी कहींका, आया है यहां लिक्चर देने। सिगरेट क्या रे गधा! सिगरेट अब पीता कौन है?"

रामसिंह गरजकर बोल उठा---"ए:, हल्ला मत करो।"

रामलोचन खामोश हो गया और दरोगा साहबकी ओर मुड़कर सलाम करके बोला--"हजूर, बड़े साहबके कुत्तेको मैं पहचानता हूँ। यह साहब बहादुरका कुत्ता नहीं है।"

"ठीक मालूम है?"

"हां, हजूर।"

चारों तरफकी जनताने सिर हिलाकर उसकी बातका समर्थन किया।

दरोगा साहबने ज़रा समझदारकी तरह मुसकराकर कहा—"वही तो मैं कहूं!—यह कोई कुत्तेमें कुत्ता है। पुलिस-साहब तो इसे फाटकके भीतर भी न घुसने देंगे। किस सूअरने कहा है कि यह पुलिस-साहबका कुत्ता है?

साहब बहादुरका कुत्ता तुम्हारी तरह थोड़े ही है, जो दर-दर मारा-मारा फिरता रहेगा। चल रे रामलोचन, थानेमें चल, इजहार देना।"

रामसिंह अब तक कुत्तेको अच्छी तरह पहचान रहा था। उसने डरते-डरते कहा—"हजूर, यह कुत्ता तो साहबका ही मालूम होता है। कल ऐसा ही कुत्ता साहबकी कोठीमें देखा था।"

एक आदमी बोल उठा—"अरे, इसे तो सभी जानते हैं, साहबका ही कुत्ता है।"

दारोगा साहबका चेहरा गंभीर हो गया। ज़रा खाँस-खखारकर बोले—"ओफ़ हो, बड़ा जाड़ा पड़ रहा है। मजाल क्या कि कोई दो घड़ी खड़ा-खड़ा बात भी कर ले! रामसिंह कुत्तेको बड़े साहबकी कोठीमें पहुँचा दो, बड़े साहबको मेरा सलाम देकर कहना—कुत्तेको रास्तेमें पाकर मैंने भिजवाया है।"

उसके बाद रामलोचनसे बोले—"ख़ूब हो चुका, बस रहने दे। मूसल-सा काला हाथ ऊँचा करके नखरा न दिखा। बड़ा बहादुर आया है कहींका! कहीं ज़रा घिस्सट लगी होगी, पंद्रेने उछलना शुरू कर दिया! अरे तेरा सिर बच गया, यही ग़नीमत है। एक तो क़सूर किया, फिर ऊपरसे चिल्लाता है, देखना ज़रा! जा जा, भाग जा।"

इतनेमें एक बोल उठा—"अरे, यह आ तो रहा है पुलिस-साहबका चपरासी करीम। उसीको बुला लेनेसे काम चल जायगा।"

करीमको बुलाना नहीं पड़ा। भीड़ देखकर वह ख़ुद ही आ पहुँचा।

एक आदमीने व्यग्र कंठसे पूछा—"चपरासी साहब, यह पुलिस-साहबका कुत्ता है न?"

करीम ज़रा हँसकर बोला—"कौन कहता है? यह नहीं है बड़े साहबका कुत्ता। यह तो—"

दरोगा साहब ताबड़तोड़ बोल उठे—"हाँ, यही तो मैं कह रहा था, करीम! ऐसा मुर्दा कुत्ता बड़े साहबका कैसे हो सकता है? और इतनी पूछ-ताछकी क्या ज़रूरत है? देखते ही मालूम हो जाता है—किसी वकील साहबका कुत्ता है। हा: हा: हा:! ख़ैर, हँसीकी बात नहीं। यह कुत्ता चाहे जिसको काटता फिरे, यह नहीं हो सकता। इसके गलेमें रस्सी डालकर थानेमें ले चलो। फिर कुत्तेके शौकीन बाबुओंको भी देख लिया जायगा।"

करीमने कहा—"यह साहब बहादुरका कुत्ता तो नहीं है, मगर उनके दोस्त हनसिंग साहबका मालूम होता है। कल ही आ गये हैं वे।"

दरोगा साहबका चेहरा फिर फ़क़ पड़ गया। उन्होंने किसी तरह एक घूँट लेकर कहा—"कहाँ, कब आये साहबके दोस्त, मुझे तो मालूम भी नहीं। कितने दिन रहेंगे यहाँ? हैं तो अच्छी तरह? आ गये, अच्छा हुआ। साहबके दोस्त वैसे आदमी कैसे हैं? यह कुत्ता उन्हींका है न? अच्छा है, अच्छा है।"

दरोगा साहब कुत्तेको गोदमें उठाकर उसकी देहपर हाथ फेरने लगे। चेहरेपर मुसकराहट और प्रसन्नताका भाव लानेकी भरसक कोशिश करके बोले—"कुत्ता है बड़ा सीधा-सादा, देखते ही गोदमें उठा लेनेकी तबीयत होती है। कैसा चुपचाप बैठा है। कैसी आँखें हैं! जाड़ेमें काँप रहा है! —ज़रा उसकी बात तो सुनो, कहता है, इस कुत्तेने उसकी उँगली काट खाई है। है न पागल!"

करीम दारोगा साहबकी गोदसे कुत्ता लेकर चला गया।

दरोगा साहबने रामलोचनकी ओर मुख़ातिब होकर कहा—"बेटेकी हिम्मत तो देखो! सिगरेट खोंसने चला है! नालायक बदमाश शराबी कहींका! और ऊपरसे नख़रे बताता है! मारे चाबुकोंके होश ठिकाने कर दिये जायँगे।"

—धन्यकुमार जैन

साहित्य-सेवी और साहित्य चर्चा

कविवरसे बातचीत

कबीर और रवीन्द्रनाथ

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थायी समितिकी एक मीटिंगमें कविवर श्री रवीन्द्रनाथका ज़िक्र आ गया। हिन्दीके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित लेखकने, जो साहित्य-सम्मेलनके सभापति भी रह चुके हैं, कहा—"श्री रवीन्द्रनाथने अपनी 'गीतांजलि'में बहुत कुछ कबीरसे लिया है। जब मैंने पहले-पहल 'गीतांजलि' पढ़ी, तो फौरन यह बात मुझे प्रतीत हुई कि कबीरका रवीन्द्रनाथपर ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा है। मैं ऐसे भाव बतला सकता हूँ, जो कबीरसे लिये गये हैं, और कबीरकी किस कवितासे कौन भाव लिया गया है, यह भी बतला सकता हूँ।"

यह बात सुनकर मुझे विशेष आश्चर्य न हुआ, क्योंकि इस तरहकी बातें अनेक हिन्दी-साहित्य-सेवियोंके मुँहसे प्रायः सुनी हैं। कोई कहता है—"रवि बाबूने नई चीज़ क्या दी है? हमारे सन्त-कवियोंकी रचनाओंको उठाकर बंगलामें रख दिया है।" दूसरा फर्माता है—"गीतांजलिमें रक्खा ही क्या है? हे फूल, हे आकाश इत्यादि अंट-संट बातें भरी हुई हैं। भई, चाहे कुछ कहो, हमें तो 'गीतांजलि' कुछ जँची नहीं। नोबुल प्राइज़ मिलने लायक तो उसमें कुछ है ही नहीं।" तब तीसरा जवाब देता है—"बात यह है कि विलायत-वालोंके यहाँ रहस्यवादकी कविताओंका अभाव है, इसलिए उनके लिए ये बातें नवीन हैं, पर हमारे यहाँ तो इस तरहकी कविताएँ बहुत पड़ी हुई हैं, इसलिए हमारे हृदयको वे अपील नहीं करतीं।"

गत १६ मार्चको कविवरके दर्शन करनेका सुअवसर मुझे मिला था। थोड़ी देर तक साहित्यिक बातचीत भी हुई। मैंने सीधा उनसे यही प्रश्न किया—"अभी उस दिन हमारे एक प्रतिष्ठित लेखकने कहा था कि आपने 'गीतांजलि'में बहुत कुछ कबीरसे लिया है, यह बात कहाँ तक ठीक है?" कविवरने हँसते हुए उत्तर दिया—"कबीरकी कविताओंके पढ़नेके बहुत वर्ष पहले मैं 'गीतांजलि'की रचना कर चुका था। हाँ, यह बात ठीक है कि कहीं-कहीं भाव सादृश्य आ गया है; पर यह तो स्वाभाविक ही है। हम दोनों एक ही देशके हैं, हमारी दोनोंकी संस्कृति एक ही है इसलिए विचारोंके टकरा जानेमें कोई आश्चर्य नहीं। यदि मैंने कबीरसे कुछ लिया होता, तो इस बातको स्वीकार करते हुए मुझे कुछ भी लज्जा न आती; पर कबीरकी रचनाओंको तो मैंने बहुत पीछे पढ़ा। क्षिति बाबू (श्रीक्षितिमोहन सेन) ने हिन्दीके सन्त-कवियोंका अच्छा अध्ययन किया है और उन्होंने कबीरकी रचनायें मुझे सुनाई। चूँकि मेरी रचनाओंसे वे भली-भाँति परिचित हैं, इसलिए खास तौरसे वे कविताएँ उन्होंने मेरे सामने उपस्थित कीं, जिनमें मेरी कविताओंसे भाव-सादृश्य था।"

इसपर मैंने कहा—"क्षिति बाबूको तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ, और मुझे इस बातका पता भी था कि उन्होंने सन्त-कवियोंकी रचनाओंको खूब पढ़ा है। बात दर-असल यह है कि हम हिन्दी-वालोंको Inferiority Complex अर्थात अपने आपको छोटा समझनेकी बीमारी है, और इस रोगकी प्रतिक्रियाके कारण हम लोग यह समझने लगते हैं कि दूसरोंके यहाँ जो कुछ अच्छी चीज़ है, वह हमारे यहाँसे ही ली गई है।" कविवरने फिर कहा—"आपके यहाँ तो उत्तमोत्तम भावपूर्ण कविताओंका भंडार है, पर आप लोग उधर यथोचित ध्यान नहीं देते। मैंने शिवप्रसादजी गुप्तसे कहा था कि सन्त-कवियोंकी कविताकी रक्षा करनेका भरपूर उद्योग होना चाहिए। जो कविताएँ साधु और फकीर गाया करते हैं, उनका भी संग्रह होना चाहिए। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपके कवि अलंकार, अनुप्रास इत्यादिके चक्करमें पड़े हुए हैं और भावोंकी ओर कम ध्यान देते हैं।"

"आप यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि अब धारा दूसरी ओर बहने लगी है। भावपूर्ण कविताओंकी ओर हिन्दी-जनताकी रुचि बढ़ती जाती है, पर आपकी नक़ल करनेवालोंमें कुछ लोग ऐसी कविता लिखते हैं, जो समझमें ही नहीं आती।"

इसपर कविवर मुसकराते हुए बोले—"Yes, I am responsible to a for of bad literature. ('हाँ, बहुत-कुछ बुरे साहित्यके लिए मैं जिम्मेवार हूँ') यह सुनकर सब हँसने लगे, और कविवर स्वयं भी खूब हँसे।

श्री धन्यकुमार जैनने कविवरको 'कुमुदिनी'की दो प्रतियाँ भेंट कीं। यह उनके 'योगायोग' नामक उपन्यासका हिन्दी अनुवाद है। कविवरने कहा—"मुझे इस बातकी बड़ी शर्म है कि मैं हिन्दी बोल नहीं सकता, पर पढ़ और समझ लेता हूँ। 'आँखकी किरकिरी' मुझे बहुत पसन्द आई थी। उसकी भाषामें मुझे एक प्रकारकी Nervousness (कोमलता) प्रतीत हुई।"

इसपर मैंने कहा—"निस्सन्देह अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है, उसका बहुत बड़ा श्रेय पुस्तकके प्रकाशक महोदयको है। श्री नाथूरामजी प्रेमी, जिन्होंने पुस्तक छपाई है, अच्छी तरह बंगला जानते हैं। बीस वर्षसे 'प्रवासी' पढ़ रहे हैं।"

अब कहानीकी चर्चा चली तो मैंने कहा—'विशाल-भारत' में आपकी 'दृष्टिदान' कहानी छपी थी, वह मुझे बहुत पसन्द आई। किसी-किसीका कहना है कि वह आपकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है।"

कविवरने कहा—"हाँ, वह मेरी उत्तम कहानियोंमें से एक है।"

हिन्दी कविताका ज़िक्र आते हुए हिन्दी-कवि-सम्मेलनकी भी चर्चा हो गई थी। कविवरने कहा—"एक हिन्दी-कवि-सम्मेलनमें मैं भी गया था। मुझे तो वहाँका दृश्य Wretched (बहुत भद्दा) जँचा और कविताएँ और उनके पढ़नेका ढंग लड़कपनसे भरा purile था।" कविवरका यह कथन कितना सत्य है, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं।

तदनन्तर मैंने 'प्रेम-प्रपंच' नामक पुस्तक भेंट की, और कहा—"तुर्गनेवकी एक कहानीका यह अनुवाद मैंने प्रकाशित किया है।"

कविवरने कहा—"हमारे बंगला-साहित्यमें यह त्रुटि है कि हमारे यहाँ अनुवाद बहुत कम हुए हैं। संसारकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओंका अनुवाद हमारे यहां भी होना चाहिए।"

मैं—"हिन्दीवाले तो इस विषयमें असावधान नहीं हैं। हमारे यहाँ तो अनुवाद खूब हो रहे हैं, पर एक त्रुटि है और वह यह कि भली-बुरी सभी तरहकी रचनाओंके अनुवाद हिन्दीमें छप रहे हैं।"

'कुमुदिनी'की जिल्द हाथमें लेकर कविवरने कहा—"इससे मुझे हिन्दी पढ़नेमें मदद मिलेगी। हिन्दी जनताने इसे पसन्द किया या नहीं? मुझे यह आशंका है कि Orthodox (पुराने विचारोंके) कट्टर आदमियोंको तो यह पसन्द न आई होगी।"

इसपर मैंने कहा—"अब तक तो जो आलोचनाएँ हुई हैं, वे अच्छी ही हुई हैं। पंजाबमें इस पुस्तककी बहुत प्रतियाँ बिकी हैं, शायद इसका कारण यह है कि वहां स्त्री-शिक्षाका अधिक प्रचार है। हिन्दीवालोंके विचार स्त्रियोंकी स्वाधीनताके विषयमें काफ़ी उन्नत हो चुके हैं। खास तौरसे कुमुद और विप्रदासके चरित्रको पाठकोंने खूब पसन्द किया है।"

फिर मैंने 'सुधा'में प्रकाशित श्री सुधीन्द्र वर्माकी आलोचनाका निम्न-लिखित अंश उन्हें सुनाया—

"कुमुद भारतीय नारीका सच्चा प्रतिबिम्ब है—निष्ठावान, सती, पतिपरायणा, स्नेहमयी तथा उदार। नारीत्वके अपमानको सह न सकना ही उसमें एक विशिष्टता है। होता यह गुण प्रत्येक स्त्रीमें है, किन्तु भक्तिके तथा सतीत्वके अव्यक्त तथा अस्पष्ट आवरणमें छिपा होनेके कारण वह अन्यत्र इतना स्पष्ट तथा परिलक्ष्य नहीं होता। 'कुमुद' में वह खूब स्पष्ट तथा पीड़ासे और भी अधिक पुष्ट सा होकर प्रकट हुआ है, किन्तु इस विशिष्टतासे कुमुदके प्रति हमारी श्रद्धा और भी बढ़ जाती है। यही मनमें आता है कि कुमुद हमारी बहन क्यों नहीं हुई। विप्रदासके सौभाग्यपर ईर्ष्या-सी होती है कि 'कुमुद' उन्हींकी बहन होनेके लिए क्यों 'रिज़र्व' की गई; क्यों नहीं भगवानने हम सभोंको कुमुद ऐसी एक बहन दी। घर-घरमें कुमुद ऐसी बहनोंकी सख्त ज़रूरत है। ऐसी बहनें ही समाजकी बेहद लम्बी नाक तथा लम्बकर्णक-से बड़े-बड़े कानोंका ठीक उपयोग कर सकती हैं।"

पिछले वाक्यको सुनकर कविवरको हँसी आ गई। अन्तमें मैंने कहा—"धन्यकुमारजीकी बहुत दिनोंसे इच्छा है कि वे आपकी कहानियाँ आपके ही मुखसे सुनें। हिन्दी-जनताके प्रति वे आपके दुभाषिया हैं, इसलिए उन्हें यह सुअवसर मिलना चाहिए।" कविवरने कहा—"आप इन्हें शान्तिनिकेतन भेज सकते हैं।"

कविवरसे मिलनेके लिए इतने अधिक आदमी आया करते हैं कि उनसे बातचीतके लिए समय पाना अत्यन्त कठिन ही है। चूँकि दूसरे आदमी प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए हम लोग प्रणाम करके चले आये।

सम्पादकीय विचार

क्या सरकार शान्ति चाहती है ?

'क्या सरकार सचमुच शान्ति चाहती है ?'—यह प्रश्न पिछले तीन सप्ताहमें अनेक भारतीयोंके मनमें उठ रहा था। जिस अनुचित कंजूसीके साथ प्रान्तीय सरकारोंने राजनैतिक क़ैदियोंको छोड़नेका काम किया है, और जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ज़िलोंके अधिकारी सन्धिके नियमोंका पालन करनेमें आना-कानी कर रहे हैं, उससे जनताको यह आशंका हो रही थी कि सरकार वास्तवमें हृदयसे शान्तिके पक्षमें नहीं है। फिर भी कुछ लोग यह आशा लगाये बैठे थे कि शायद लार्ड इर्विन अपने व्यक्तित्वके कारण अधिकारियोंपर प्रभाव डाल सकें, पर अब तो मामला बिलकुल स्पष्ट हो गया है। २४ मार्चके पत्रोंमें छपा है—**"सोमवारको सन्ध्या समय ७ बजे भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेवको फाँसी दे दी गई।"**

सरकारकी मनोवृत्तिपर इस कार्यसे जो प्रकाश पड़ता है, उसमें अब शंका करनेकी गुंजाइश नहीं रही। सरकार इस बातको अच्छी तरह जानती थी कि भारतीय नवयुवकोंके हृदयमें स्वर्गीय भगतसिंह इत्यादिके प्रति कितना अधिक सम्मान है, उसे यह भी मालूम था कि कराची-कांग्रेसके फैसलेपर इसका प्रभाव पड़ेगा, और यदि वह चाहती तो फाँसीके दण्डको कालेपानीकी सज़ामें परिवर्तित कर भारतीय जनताके हृदयको सन्तोष दे सकती थी, पर उसने यह नहीं किया और जान-बूझकर भारतीय नवयुवकोंको चैलेंज दिया है। सरकारकी इस कार्रवाईने महात्माजीकी स्थितिको और भी नाजुक बना दिया है। इसके बाद अब सरकारकी शान्तिप्रियता पर विश्वास करना असम्भव है। लाखों आदमियोंके हस्ताक्षरोंसे युक्त प्रार्थनापत्र सरकारकी सेवामें भेजे गये, बड़े बड़े नेताओंने वायसरायको तार भेजे, स्वयं महात्माजीने भी बीचमें पड़कर इन लोगोंके लिए प्राण-भिक्षा माँगी, पर सरकार टससे मस नहीं हुई। लाहोरके सुप्रसिद्ध पत्र 'पीपुल' ने ठीक ही लिखा था—"क़ैदखानेमें पड़ा हुआ भगतसिंह ब्रिटिश-साम्राज्यके लिए उसका आधा भी खतरनाक नहीं है, जितना कि फाँसीपर लटका हुआ भगतसिंह। भगतसिंहकी छाया कराची-कांग्रेसमें जाकर शान्तिके लिए प्रयत्न नहीं करेगी, बल्कि वह शान्तिके विरुद्ध ज़बरदस्त शक्ति होगी।" खेद है कि मदान्ध साम्राज्यवादियोंकी समझमें यह बात नहीं आई। ब्रिटिश-सरकारकी हृदय-हीनताका इससे अधिक प्रबल प्रमाण और क्या मिल सकता था ? इन लोगोंकी एंठ अभी तक नहीं गई।

सरकारने यह कार्रवाई किस उद्देश्यसे की है, यह हम निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकते। मुमकिन है कि हिंसामें विश्वास रखनेवाले दलको उत्तेजित करना ही सरकारका उद्देश्य हो, क्योंकि हिंसायुक्त आन्दोलनको सरकार आसानीसे दबा सकती है। सरकारने जो क्षणिक सन्धि की है, वह हृदयके परिवर्तनसे की है, ऐसा विश्वास महात्माजी भले ही कर लें, दूसरे आदमी शायद ही कर सकेंगे। जब मैनचेस्टर तथा लंकाशायरवालोंके घरोंमें चूहे दण्ड पेलने लगे और लाखों ही आदमी बेकार हो गये, इधर भारत सरकारका दिवाला निकलनेकी नौबत आ पहुँची, तो मजबूरन सरकारको समझौता करना पड़ा। पर सरकारी अधिकारियोंके हृदयसे अभी द्वेषकी मात्रा कम नहीं हुई और सम्भवत: खिसियाहटके कारण ही उन्होंने यह कार्रवाई की है, जिससे नवयुवक-दल उत्तेजित हो और उन्हें फिर दमन करनेका मौक़ा मिले। यदि नवयुवकोंने उत्तेजित होकर दस-बीस जगह बमबाज़ी की, तो उससे उपर्युक्त मनोवृत्तिके अधिकारियोंको सन्तोष ही होगा। बुद्धिमानी इसीमें है कि नवयुवक-दल गवर्मेन्टकी इस चालमें न आवे। उन्हें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि सरकार जो इस समय दबी है, वह साधारण

जनतामें महात्मा गांधीके विचारोंके प्रचारके कारण। इसलिए कोई भी कार्य ऐसा न किया जाना चाहिए, जिससे महात्माजीके हाथ निर्बल हो जायँ।

जब यह बात निश्चित हो गई कि सरकार शान्ति नहीं चाहती, तो फिर साधारण जनताका कर्तव्य है कि वह भावी संग्रामकी तैयारीमें जी-जानसे जुट जाय। कार्यकर्ताओंको शिक्षा देनेके लिए भारतके सभी ज़िलोंमें स्कूल खुल जाने चाहिए। गुजरात-विद्यापीठने इस विषयमें अग्रसर होकर प्रशंसनीय कार्य किया है। उसके बतलाये हुए मार्गका अनुसरण होना चाहिए। गोलमेज़ कानफरेन्सके होनेमें अभी कई महीनोंकी देर है, और उसका परिणाम निकलते निकलते तो सात-आठ महीने लग जायँगे। इन सात-आठ महीनोंको रचनात्मक कार्यमें लगा देना चाहिए। इस बीचमें यदि हम चार-पाँच हज़ार कार्यकर्ताओंको ट्रेनिंग दे सकें, तो दोनों हालतोंमें वे बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे। सरकारसे समझौता हो गया तो अधिकार मिलनेपर भारतीय नेताओंको जो रचनात्मक कार्य करना पड़ेगा, उसमें ये लोग बड़े सहायक सिद्ध होंगे और यदि फिर लड़ाई ही छिड़ी, तो इनका उपयोग स्वयंसिद्ध है। ब्रिटिश सरकारसे हम लोग कितने अधिकार छीन सकेंगे, यह प्रश्न निर्भर है उस कार्यपर, जो भारतीय जनता आगामी आठ-नौ महीनेमें करेगी।

—

मुसलिम नेताओंकी मनोवृत्ति

अभी उस दिन हम बम्बईका पत्र 'इंडियन डेली मेल' पढ़ रहे थे। इस पत्रके सम्पादक मि० विलसन, जो पहले पायोनियरके सम्पादक रह चुके हैं, 'स्कूटेटर' के नामसे बड़ी मनोरंजक टिप्पणियाँ लिखा करते हैं। हालमें आपने मौलाना शौकतअलीसे मिलकर बातचीत की थी और उसका वृत्तान्त अपने पत्रमें लिखा है, उसे सुन लीजिये :—

"पिछली बार मैं मौलाना शौकतअलीसे तब मिला था जब कि लन्दनमें उनके भाई मौलाना मुहम्मद अलीकी मौतपर उनके यहाँ मातमपुरसीके लिए गया था और तेजस्वी मुहम्मदअलीकी लाश पासके कमरेमें रखी हुई थी। आज फिर मौलानासे बातचीत करनेका मौक़ा मिला। हिन्दू मुसलिम समस्यापर बहुत देर तक बातचीत होती रही। यदि मुझे क्षमा किया जाय तो मैं यह कहूँगा कि मौलाना शौकतअलीका दिमाग़ इस वक्त कुछ गड़बड़ हालतमें है। अपने निजी विचारों और अपने भाई मुहम्मद अलीके आखिरी मसौदेके कारण, जो मरनेके पहले उन्होंने हिन्दू-मुसलिम समस्याको सुलझानेके लिए लिखा था, मौलाना साहब गड़बड़ा गये हैं। उनसे बातचीत करनेके बाद मुझे इस बातकी आशा नहीं रही कि सन्तोषजनक हिन्दू-मुसलिम समझौता हो सकेगा। मौ० शौकतअली सम्मिलित चुनावको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हैं। हिन्दू लोगोंने लन्दनमें मुसलमानोंके लिए जो रियायतें स्वीकार की थीं उन्हें मौलाना शौकतअली रियायत ही नहीं मानते, वे तो उन्हें अपना अधिकार समझते हैं। वे यह बात सोचनेकी पर्वाह नहीं करते कि सम्मिलित चुनावके द्वारा वे उन संरक्षणोंको भी आसानीसे प्राप्त कर सकेंगे, जिनपर वे इतना अधिक ज़ोर देते हैं। दरअसल बड़े मौलाना साहब काफ़ी भयंकर प्रतीत हुए। सैकड़ों वर्ष तक मुसलमानोंने इस मुल्कपर सल्तनत की थी, इस आधारपर अल्पसंख्यक मुसलमानोंके अधिकारोंकी माँग पेश करना हमारी समझमें तो नहीं आता। यह सच है कि मुसलमानोंने यहाँ सैकड़ों वर्ष तक राज किया था, पर इसके साथ यह भी तो सच है कि उनका शासन जाता रहा। इसलिए इस बातको बीचमें लानेसे क्या फ़ायदा? एक ओर तो यह कहना कि 'हम लोगोंने इस मुल्कपर एक बार सल्तनत की थी और फिर भी करेंगे' और दूसरी ओर यह भी कहना कि 'सुलह तभी हो सकती है जब दिल साफ़ हों' क्या यह किसी मुसलमानको शोभा देता है? सिर्फ़ एक पार्टीसे ही दिल साफ़ करनेके लिए कहना फ़िज़ूल है। दोनों ही पार्टियोंका दिल साफ होना चाहिए? क्या मुसलमान लोग एक

स्वराज्य-प्राप्त भारतमें आत्म-सम्मानयुक्त नागरिककी तरह अपना उचित स्थान ग्रहण करेंगे। अथवा क्या वे अपने प्राचीन इतिहासकी पुरानी गाथाओंको गाते रहेंगे ? नवीन भारतमें पैन—इस्लाम आन्दोलन के लिए कोई जगह नहीं है। मुस्तफा कमालने यह बात अपने शासनके प्रारम्भमें ही जान ली थी, और हिन्दुस्तानी मुसलमानोंको चाहिए कि वे मुस्तफा कमालकी मिसालको अपने सामने रखें और उसपर चलें। ब्रिटिश गवर्मेन्टको इस बातके लिए दोष देनेसे क्या फ़ायदा कि उसने मि० जिन्नाकी चौदह शर्तोंको नामंज़ूर कर दिया ? मैकडोनल्डको गाली देनेसे क्या लाभ ? मि० शौकत अलीने मुझसे कहा—'गान्धीजीने मुझे यक़ीन दिला दिया है कि तुम जो-जो शर्तें चाहते हो, उन्हें लिख लाओ और मैं उनपर बिना किसी हिचकिचाहटके दस्तखत कर दूंगा।' मेरी समझमें मि० शौकत अलीने गान्धीजीके कहनेका भाव न समझकर उनका लफ्ज़ी मतलब निकाला है। सुलह करनेका यह तो कोई तरीक़ा नहीं है। सुलहके लिए ज़रूरत है कि दोनों पार्टी कुछ-कुछ झुकें। होना तो यह चाहिए कि सम्मिलित चुनावके आधारपर समझौता हो और मुसलमानोंकी सांस्कृतिक स्वाधीनताके लिए काफ़ी सरक्षण हों। अगर ऐसा न किया गया तो नवीन शासन विधानमें साम्प्रदायिक पक्षपात घुस बैठेगा, जो बड़े खेदकी बात होगी। लेकिन अगर मौलाना शौकत अली साहब यह समझते हैं कि अधिकांश मुसलमान इन ऊलजलूल शर्तोंमें उनका साथ देंगे या इस धमकीका समर्थन करेंगे कि हमें तो एक पौण्ड गोश्त चाहिए, चाहे जान भले ही निकल जाय, और नहीं तो हम हिन्दुस्तानको स्वराज्यकी ओर बिलकुल आगे नहीं बढ़ने देंगे, तो वे बड़ी ग़लतीपर हैं।"

मि० विलसनके इस लेखसे मौलाना शौकतअली तथा उनके साथियोंकी दूषित मनोवृत्तिपर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। इस तरह तो समझौता होना नामुमकिन है।

—

देशी राज्योंका प्रश्न

इसमें सन्देह नहीं कि भविष्यमें देशी राज्योंका प्रश्न अधिकाधिक महत्त्व धारण करेगा। जनसत्तावादकी जो लहर भारतमें उत्पन्न हुई है, वह देशी राज्योंकी सीमासे टकराकर वापस लौट आवेगी, ऐसा समझनेवाले सचमुच बुद्धि-विहीन हैं। जब ज़ार जैसे एकतन्त्र शासकोंका अन्त हो गया, तो फिर हिन्दुस्तानके छोटे मोटे शासकोंका क्या ठिकाना है ? आवश्यकता इस बातकी है कि देशी राज्योंके शासक, जो अभी तक अपनेको ईश्वरका अवतार समझते रहे हैं, आँख खोलकर चारों ओरकी हालत देखें और समय रहते सावधान हो जायँ। खूबी इसीमें है कि वे अपनी प्रजाको स्वयं ही अधिकार दे दें, जिससे उसे वे तमाम झगड़े न करने पड़ें, जो हम लोगोंको करने पड़े हैं। महात्माजीने दिल्लीमें पत्रकारोंके सामने जो भाषण दिया था, उसका एक अंश यह था—

"राजाओंके संघ-राज्यका सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेसे मुझे सचमुच ही आश्चर्य हुआ है। पर यदि वे संयुक्त-भारतमें बराबरीके हिस्सेदार बन रहे हों तो मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि उन्हें अपनी खुशीसे ही उस स्थितिकी ओर बढ़ना चाहिये जिसे प्राप्त करनेके लिये "ब्रिटिश भारत" इतने वर्षोंसे प्रयत्न करता रहा है। खालिस व्यक्तितन्त्र—चाहे वह कितना ही उत्तम क्यों न हो और विशुद्ध लोकतन्त्रके सम्मिश्रणका फल विस्फोट होना अनिवार्य है। इसलिए मेरे खयालमें उन्हें अपने भावी साथीकी अपील सुननेसे इनकार न करना चाहिये। यदि वे इनकार करेंगे तो कांग्रेसकी पोजीशन बड़ी खराब हो जायगी। कांग्रेस सम्पूर्ण भारतका प्रतिनिधित्व करती है या करनेका प्रयत्न करती है। वह ब्रिटिश-भारत और रियासतोंमें रहनेवालोंको दो नहीं मानती। रियासतोंकी भीतरी कार्रवाइयोंमें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिपर चलनेमें उसने बड़ी ही बुद्धिमानी और बड़े ही संयमसे काम लिया है। उसने यह इस विचारसे किया कि जिससे अकारण ही रियासतोंका मन न दुखे, पर साथ ही वह यह भी सोचती थी कि इस आत्मसंयमके कारण उचित अवसर आनेपर उसकी आवाज़ रियासतोंमें अधिक सुनी जायगी। वह अवसर अब आ गया है। अत: क्या मैं

यह आशा करें कि हमारे राजा महाराजा उस अपीलको, जो कांग्रेस उनकी प्रजाकी ओरसे करती है, सुनी अनसुनी न करेंगे ?"

निस्सन्देह महात्माजीने बड़ी नरम भाषामें अपनी बात कही है। फिर भी उनके शब्द undiluted autocracy (खालिस व्यक्तितन्त्र) गम्भीर अर्थ रखते हैं। उधर लार्ड इर्विनने भी नरेन्द्र-मण्डलका उद्घाटन करते समय राजाओंको उचित उपदेश दिया है :—

"जिस भावनासे कोई सरकार शासन करती है, वह भावना शासन-विधानकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। शासनविधान चाहे एकतन्त्र हो, या लोकतंत्र अथवा वैध राजतंत्र, उसकी सफलता इसी प्रश्नपर निर्भर होती है कि उस विधानमें प्रजाके हितके लिए आवश्यक बातें मौजूद हैं या नहीं। प्रजाकी सद्भावनासे या उसकी इच्छासे बने हुए कानूनों द्वारा शासन होना चाहिये। व्यक्तिगत स्वाधीनता और अधिकार सुरक्षित हों। कानूनकी निगाहमें राज्यके सभी निवासी बराबर हों। सुसंगठित पुलिस रखी जावे और सुयोग्य न्यायविभागकी स्थापना की जावे, जो अधिकारियोंके स्वेच्छाचारसे प्रजाकी रक्षा करे, और जब तक यह न्यायविभाग अपना कर्तव्य पालन कर रहा हो, तब तक वह अलग न किया जा सके। परिस्थितिके देखते हुए यथासम्भव कम टैक्स लगाया जावे, वह सुविधापूर्वक वसूल किया जा सके और टैक्स देनेवालेकी सामर्थ्यके अनुरूप हो। राजाका निजी खर्च कम हो— बस उतना ही, जिससे उनके शान-शौक़तकी रक्षा हो सके—और राज्यकी आमदनीका अधिकांश प्रजाकी शिक्षा, स्वास्थ्यसुधार, समाजसेवा, कृषि, मार्गों और मकानोंकी उन्नति इत्यादिमें व्यय हो सके। इसके सिवाय प्रजाकी इच्छा और आवश्यकताको समझनेके लिए कोई उचित उपाय भी होना चाहिये, जिससे राजा और प्रजामें घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहे।"

इस प्रकार महात्मा गांधी और लार्ड इर्विन दोनोंने ही देशी राज्योंके शासकोंको उपदेश दिये हैं, पर देशी शासक इन उपदेशोंके अनुसार कार्य करेंगे या नहीं, यह कहना कठिन है।

'सर्वेन्ट आफ् इंडिया' के सम्पादक श्रीयुत सदाशिव गणेश वझेने दक्षिणी राज्योंकी प्रजा-परिषद्के प्रधानकी हैसियतसे जो भाषण पूनामें दिया है और उसमें गोलमेज़ कानफरेन्सकी जो भीतरी बातें लिखी हैं, उनसे पता लगता है कि ये राजा-महाराजा अपने निरंकुश शासनको बिलकुल ज्यों-का-त्यों बनाये रखना चाहते हैं। श्रीयुत वझेके भाषणमें यह पढ़कर कि हमारे नेताओंने देशी रियासतोंकी प्रजाके हितोंकी कैसी उपेक्षा की और इस विषयमें कितनी निर्बलतासे काम लिया, बड़ा खेद होता है। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि मि० वझे विलायत गये हुए लिबरल प्रतिनिधि-मण्डलके मंत्री थे, और उन्हें आन्तरिक स्थितिका खूब पता मिलता रहा था। देशी राज्योंकी प्रजासे हमें इतना ही कहना है कि वे ब्रिटिश भारतके नेताओंके भरोसे न रहें। उन्हें डटकर आन्दोलन करना चाहिए और तब तक विश्राम न लेना चाहिए, जब तक इन रियासतोंके निरंकुश शासनका पूर्णतया अन्त न हो जाय।

—

सूरसागरका सम्पादन

हिन्दीमें एक दोहा बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध है :—

सूर सूर तुलसी शशी, उडगन केशव दास।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करहिं प्रकास॥

कुछ लोग इसी प्रकारका एक दूसरा दोहा कहा करते हैं, जिसमें केशवदासजीका तीसरा स्थान कबीरदासजीको दे दिया गया है :—

साँच-साँच सूरा कही, तुलसी कही अनूठ।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब जूंठ॥

जो कुछ भी हो, यह बात निर्विवाद है कि हिन्दी साहित्यमें सूरदासजी सदा प्रथम स्थान पर बिठाये जाते हैं। 'चंद' की डिंगली कविताके बाद हिन्दी—ब्रजभाषा—के सबसे प्रथम महान कवि सूरदासजी ही हैं। उनके पदोंका लालित्य अनुपम है, उनकी भाषाकी मधुरता मिश्रीको भी मात करती है और उनकी भक्ति और करुण रस भरी कविता हिन्दी-साहित्यकी महामूल्यवान निधियोंमें है।

हिन्दीमें तुलसीदासजीकी रामायणके सैकड़ों संस्करण निकल चुके, उनकी सम्पूर्ण कृतियोंका प्रामाणिक संस्करण काशीनागरी प्रचारिणी सभाने प्रकाशित किया है, केशव

श्री जगन्नाथदास रत्नाकर

बिहारी आदि कवियोंकी पुस्तकोंके भी अनेकों संस्करण और अनेकों टीकाएं आदि प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु बड़े खेद और लज्जाकी बात है कि सूरदासजीकी कृतियोंका अबतक कोई भी सुसम्पादित और प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित न हो सका।

प्रसन्नताकी बात है कि ब्रजभाषाके सुप्रसिद्ध कवि और साहित्यिक, श्री जगन्नाथदासजी रत्नाकर इस महान और आवश्यक कार्यको पूरा करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। सूरदासजीकी रचनाका सम्पादन करना कोई हंसी-खेल नहीं है। वह बड़े परिश्रम, बड़े धैर्य और बहुत अधिक व्ययका काम है। रत्नाकरजी इस कार्यको जिस लगन और परिश्रमसे कर रहे हैं वह औरोंके लिए यदि असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। अभी हालमें हमें काशीमें उनका कार्य देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उसे देखकर मालूम होता है कि वे कितना भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

रत्नाकरजीने यह कार्य जनवरी सन् १९२६ से आरम्भ किया था। तबसे वे प्रायः निरन्तर अपने तीन क्लर्कोंके साथ छै घंटे प्रति दिन परिश्रम करते हैं। उन्होंने बड़ी मेहनतसे ढूंढ-ढांढकर सूरसागरकी उन्नीस प्रतियाँ एकत्रित की हैं। इन प्रतियोंमें तीन चार प्रतियाँ छपी हुई हैं, बाक़ी सब हस्त-लिखित हैं। इन हस्त-लिखित प्रतियोंके लिए उन्हें बड़ी दिक़्क़त उठानी पड़ी। कई प्रतियोंको उनके मालिकोंको सही सलामत लौटा देनेके लिए उन्हें दो-दो, तीन-तीन हज़ार रुपयेकी ज़मानत देनी पड़ी। एक सज्जनके पास हस्त-लिखित सूरसागर तीन जिल्दोंमें है। वे एक समयमें एक जिल्दसे अधिक मांगे नहीं देते, वह भी अधिकसे अधिक दो मासके लिए। अतः उन जिल्दोंका ले आने और ले जानेके लिए बनारससे शाहजहाँपुर बार बार-आदमी भेजना पड़ता है। इसी प्रकार पहले तो उन्हें प्रतियोंके संग्रहमें ही अनेकों अड़चनोंका सामना करना पड़ा।

प्रतियाँ इकट्ठी करके, पहले सब पदोंकी प्रथम पंक्ति एक-एक काडपर लिखी गई और उन्हें अकारादि वर्ण क्रमानुसार एक रजिस्टर पर चढ़ाया गया। रजिस्टरमें इन पंक्तियोंके सामने प्रत्येक प्रतिके लिए एक-एक खानेके हिसाबसे १९ खाने हैं, जिनमें प्रत्येक प्रतिमें वे पद जिस पृष्ठपर हैं उनका नम्बर दर्ज किया गया है। इस रजिस्टरके पूरे हो जानेपर यह ज्ञात हुआ कि विभिन्न प्रतियोंमें अनेकों पदोंकी प्रथम पंक्तिके आदिके शब्दोंमें हेर-फेर हो गया है, जिससे रजिस्टरके अनुसार अन्य प्रतियोंमें उनका पता लगाना असम्भव है। इसलिए—यह सोचकर कि पदोंकी प्रथम पंक्तिके अन्तिम शब्दोंमें टक होनेके कारण, परिवर्तन होना कठिन है—एक दूसरा रजिस्टर बनाया गया जिसमें वर्ण-क्रम पदोंकी पहली पंक्तिके अन्तिम अक्षरके अनुसार रखा गया है। यह रजिस्टर 'ब' अक्षर तक पहुँच चुका है। इसके पूरे होते ही ग्रन्थ लेखनका कार्य आरम्भ होगा। अभी तक तो केवल बुनियाद ही भरी जा रही है, इमारत बनाना अभी बाक़ी ही है। परन्तु इस बातकी पूरी आशा है कि एक बार

बुनियाद पक्की हो जानेपर इमारत बनानेमें अधिक विलम्ब न होगा। नमूनेके लिए रत्नाकरजीने ढाई सौ पदोंका एक खंड लिख भी लिया है। पुस्तकमें पदोंका जहाँ तक सम्भव होगा शुद्ध पाठ दिया जायगा। फुटनोटमें विभिन्न प्रतियोंके महत्वपूर्ण पाठ भेद और टिप्पणियाँ रहेंगी।

रत्नाकरजीके सम्मुख एक और कठिनाई यह है कि सूरसागरमें अनेक ऐसे पद मिलते हैं जो तुलसीदासजीकी गीतावली अथवा विनयपत्रिकामें भी मौजूद हैं। ऐसी दशामें यह निर्णय करना कि वे तुलसीदासजीकी ही रचनायें हैं या सूरदासजी की, ज़रा टेढ़ी खीर है। लोग कहते हैं कि भाषा शैलीसे यह भेद जाना जा सकता है, मगर यह केवल अंधेरेमें निशाना मारना है, इसके लिए कोई निश्चित फैसला देना कठिन है। सम्भव है कि सूरदासजीके भक्तोंने तुलसीदासजीकी कुछ उत्तम कृतियोंको सूरसागरमें सम्मिलित कर दिया हो। मगर रत्नाकरजीको जो सबसे प्राचीन प्रति मिली है वह सम्वत १७५३ अर्थात तुलसीदासजीकी मृत्युके कुल ७३ वर्ष बादकी लिखी हुई है, उसमें भी इस प्रकारके पद पाये जाते हैं। तुलसीदासजीके केवल ७३ वर्षके भीतर ही उनके पदोंको हथियाकर सूरसागरमें सम्मिलित कर डालना समझमें कम आता है। यह एक ऐसी पहेली है जिसका अभी तक समाधान नहीं हो सका।

सूरसागरकी प्रतियोंमें ऐसे भी अनेक पद मिलते हैं, जिनके न तो छन्द ही ठीक हैं और न अर्थ ही लगते हैं। रत्नाकरजीको ऐसे पदोंमें यथासम्भव न्यूनतम परिवर्तन करके उनके छन्द और अर्थ ठीक करने पड़ते हैं।

यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि सूरदासजीने एक लाख पदोंकी रचना की थी। मगर यह एक लाखकी गिनती पंक्तियोंकी हो तो हो, पदोंकी नहीं है, क्योंकि सूरसागरकी किसी एक प्रतिमें अब तक पदोंकी जो अधिकसे अधिक संख्या मिलती है वह साढ़े चार हज़ार है। हाँ ऐसे अनेकों पद हैं जो एक प्रतिमें पाये जाते हैं पर दूसरीमें नहीं पाये जाते। रत्नाकरजीका कथन है कि इस प्रकारके सब पदोंको एकत्रित कर लेनेपर उनकी संख्या प्राय: छै हज़ारके लगभग होगी।

रत्नाकरजी इस कार्यमें अब तक स्वयं अपने परिश्रमके अतिरिक्त—जो अमूल्य है—कई सहस्र रुपये व्यय कर चुके हैं। हम परमेश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि उनका यह कार्य शीघ्र ही समाप्त होकर हिन्दी जनताके हाथमें पहुँच जाय। हिन्दी-संसार उनके इस महान कार्यके लिए चिरकाल तक कृतज्ञ रहेगा।

—

चित्र परिचय

प्रकाश और छाया

सुखका उलटा दुख है, ज्ञानका उलटा अज्ञान खुशीका उलटा रंज, जीवनका उलटा मृत्यु, और प्रेमका उलटा घृणा है। परन्तु इन सब शब्दोंमें, एक दूसरेके विरुद्ध होते हुए भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तवमें वे सापेक्ष शब्द हैं। उनमेंसे प्रत्येकका अस्तित्व दूसरे पर निर्भर है। सुखकी बुनियाद दुखपर और दुखकी नींव सुखपर। उनका चोली-दामनका साथ है। जहाँपर भी आप ज्ञानकी सीमाको समाप्त समझ लें, वहींसे अज्ञानका श्रीगणेश हो जायगा। ये सापेक्ष शब्द एक दूसरेसे अलग नहीं हो सकते। ठीक यही बात प्रकाश और छायाके सम्बन्धमें है। प्रकाशकी कमी छाया है और छायाकी अनुपस्थिति आलोक है। इनमेंसे—दूसरीको ध्यानमें लाये बिना—किसी एककी कल्पना करना असम्भव है।

'प्रकाश और छाया' नामक चित्रमें चित्रकार श्री एस० के० धरने प्रकाश और छायाके इसी अभिन्न सम्बन्धको रूपमय कल्पनामें उपस्थित किया है। चित्रकारकी सुकुमार कल्पनाने प्रकाश और छायाको मानव आकार—स्त्री और पुरुष—में प्रकट किया है। पुरुष मूर्ति प्रकाशकी है और रमणी मूर्ति छायाकी।

चित्रकी विशेषता उसके रंगोंमें है। प्रकाशकी ओर उज्ज्वल प्रकाश बना हैं और छायाकी ओर घनीभूत अंधकार। कहाँपर प्रकाश समाप्त होता है और कहांसे छाया प्रारम्भ

श्रीराम शर्मा बी० ए०
[इस चित्रका सम्बन्ध 'चील-झपट्टा' शीर्षक लेखके साथ है]

होती है यह ऐसी सुघराईसे अंकित है कि हमें सन्ध्या समयके उषा कालका अपने ही आप स्मरण हो आता है।

विमना।

विमना नामक रमणी मूर्तिका चित्र श्री किरणमय धरकी कृति है। पर्वतके चरण-देशमें एक पहाड़ी झरना बह रहा है। उस झरनेके तटपर एक युवती पानीमें पैर लटकाये हुए बैठी है। पहाड़के पीछे डूबते हुए सूर्यकी लालिमा सन्ध्याके आगमनकी खबर दे रही है। रमणी किसी चिन्तामें विभोर होकर अनमनीसी बैठी है। इस समय उसे संसारकी कुछ भी खबर नहीं है। रमणीकी आकृति, उसके वस्त्राभूषण, और चित्रका पृष्ठ भाग बड़ी सुन्दरतासे अंकित हैं। —ब्रजमोहन वर्मा

—

सहयोगियोंका स्वागत

'प्रेमा'—सम्पादक श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव तथा श्री परिपूर्णानन्द वर्मा। प्रकाशन—इंडियन प्रेस लि० जबलपुर। वार्षिक मूल्य ४॥)। प्रकाशकसे प्राप्य।

पिछले पाँच महीनेसे जबलपुरसे 'प्रेमा' नामक एक सचित्र सुन्दर मासिक-पत्रिका निकल रही है। बिहारकी भाँति मध्य-प्रदेश भी हिन्दी पत्र पत्रिकाओंके लिए मरुभूमिकी भाँति रहा है। वहाँ "प्रभा" और "श्री शारदा" के समान उच्चकोटिकी मासिक-पत्रिकाएँ प्रकट हुईं, परन्तु थोड़े ही समयमें अपनी जीवन-लीला समाप्त करके अस्त हो गईं। "श्री शारदा" के बन्द होनेके बादसे मध्य-प्रदेशमें कोई भी अच्छी मासिक-पत्रिका नहीं रही। लोगोंको इस बातकी कमी बहुत अनुभव होती थी। प्रसन्नताकी बात है कि "प्रेमा" ने मध्य-प्रदेशकी बहुत दिनोंकी इस कमीको पूरा

किया है। ''प्रेमा'' का प्रकाशन सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेसकी जबलपूर-शाखासे होता है, उसकी नींव सुदृढ़ चट्टानपर है अतः हमें पूरा विश्वास है कि अपने साहित्य-प्रेमकी अविरल धारा बहा कर मध्यप्रदेशकी मरुभूमिको हरी-भरी शस्य-श्यामला बना देगी।

''सरस्वती'' और ''बाल-सखा'' सरीखे सुन्दर पत्रोंके जन्मदाता इंडियन प्रेसकी छपाई आदि हिन्दी-संसारमें प्रसिद्ध है अतएव 'प्रेमा''की छपाई-सफाई सुन्दरता और 'गेट अप' के सम्बन्धमें इतना ही कहना काफ़ी है कि वह इंडियन प्रेसके द्वारा प्रकाशित होती है। कवर पृष्ठपर एक सुन्दर बहुरंगा चित्र है। भीतर एक रंगीन तथा अनेकों सादे चित्र हैं। ''प्रेमा'' सम्पादन बड़ी सुन्दरतासे होता है। उसके लेख सुरुचिपूर्ण और उच्च-कोटिके होते हैं। हमारे सामने उसका फरवरीका अंक है। इस अंकमें 'विश्व-वार्ता' नामक शीर्षकमें श्रीयुत परिपूर्णानन्दजीने अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिपर अच्छा प्रकाश डाला है। यह स्तम्भ 'प्रेमा' की एक विशेषता है। श्री ज़हूरबख़्शजीने ''सैयद अमीर अली 'मीर''' नामक लेखमें हिन्दीके प्रसिद्ध मुसलमान कवि ''मीर'' साहबके जीवनकी करुण-कथाकी मर्मस्पर्शी बातें बताई हैं। अन्यान्य लेखोंमें श्री रामचन्द्र सधीका 'महाराष्ट्र शासन पद्धतिमें प्राचीन हिन्दू-संस्थाओंका समावेश' श्री ब्योहार राजेन्द्र सिंहका 'ग्रामसुधारकी समस्या' श्री अवध उपाध्यायका 'सौन्दर्य शास्त्र और छन्द' आदि हैं। कविताओंमें रुबाइयात उमर ख़यामका श्री केशवप्रसाद पाठकका किया हुआ सुन्दर पद्य-बद्ध अनुवाद, 'प्रेमा' की एक स्थायी विशेषता है। अन्य कविताओंमें श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीका 'कुञ्ज' श्री कालीप्रसाद विरहीका 'वृन्दावन' श्री हरिकृष्ण प्रेमीकी 'जादूगरनी,' व्यथित हृदयकी 'तेरी ओर' आदि रचनाएँ हैं। 'प्रेमा' के एक पिछले अंकमें प्रकाशित श्री अन्नपूर्णानन्दजीका 'बिलवासी मिश्र और कवि चच्चा' शीर्षक लेख 'विशाल-भारत' के इसी अंकमें अन्यत्र 'चयन' नामक शीर्षकमें प्रकाशित किया जाता है।

अप्रेल मासमें 'प्रेमा' श्री अन्नपूर्णानन्दजीके सम्पादकत्वमें हास्य-रसपर एक विशेषांक निकालनेवाली है। हम उसके इस प्रयत्नकी हृदयसे सफलता चाहते हैं, तथा अपने हिन्दी-भाषा-भाषी भाइयोंसे अनुरोध करते कि वे प्रेमाको अपनावें।

"माया"—सम्पादक श्री क्षितीन्द्रमोहन मित्र मुस्तफी और श्री विजय वर्मा। प्रकाशक माया कार्यालय जार्जटाउन प्रयाग। वार्षिक मूल्य ४) एक अंकका ॥) प्रकाशकसे प्राप्य।

''माया'' कहानियोंकी सचित्र पत्रिका है। वह गत एक वर्षसे प्रकाशित हो रही है। उसका प्रधान उद्देश्य कहानियों और गल्पों द्वारा साहित्य और समाजकी सेवा करना है। अभी तक लोग कहानियोंका केवल-मात्र उद्देश्य मनबहलाव या समय काटना समझते थे। मगर अब धीरे-धीरे यह बात संसारमें मान ली गई है कि अच्छी कहानी कलाकी एक उत्कृष्ट वस्तु होती है। किसी उत्कृष्ट कहानीके अन्तरमें छिपी हुई शिक्षा पाठकके हृदयपर जितना प्रभाव डालती है, उतना अनेकों लम्बे चौड़े व्याख्यान नहीं डाल सकते, इसीलिए समस्त संसारमें कहानियोंकी मांग बढ़ रही है। हिन्दीमें अब तक केवल कहानियोंका कोई अच्छा पत्र नहीं था। अब गत वर्षमें इस विषयके दो पत्रों--'हंस' और 'माया'—का जन्म हुआ है। मायाकी कहानियाँ अक्सर सचित्र होती हैं। सम्पादकोंमें श्रीयुत वर्माजीके साथ-साथ श्रीयुत मुस्तफीका नाम देखकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है। मुस्तफी महाशय बंगाली हैं उनकी मातृभाषा बंगला है फिर भी उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी ही के द्वारा साहित्य-सेवा करनेका जो शुभ विचार किया है उसे देखकर उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। 'माया' अपने ढंगकी अत्युत्तम पत्रिका है। उसने अपने छोटे जीवनमें 'राष्ट्रीय-अंक' नामक एक विशेषांक भी प्रकाशित किया है। हम हृदयसे 'माया' की उन्नति चाहते हैं।

EDITED, PRINTED & PUBLISHED BY BENARSI DAS CHATURVEDI, AT THE PRAVASI PRESS.
120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.

भगवान रामचन्द्र और गिलहरी

चित्रकार — श्री कनु देसाई

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ४ भाग ७ | अप्रैल १९३१ ; वैसाख १९८८ | अङ्क ४ पूर्णाङ्क ४०

साकेत

श्री मैथिलीशरण गुप्त

हरी-हरी वनधरा रुधिरसे
लाल हुई हलकी होकर,
शूर्पणखा लंकामें पहुँची,
रावणसे बोली रोकर--

"देखो, दो तापस मनुजोंने
कैसी गति की है मेरी,
उनके साथ एक रमणी है,
रति भी हो जिसकी चेरी।

भरतखण्डके दण्डक वनमें
वे दो धन्वी रहते हैं,
स्वयं पुनीत, नहीं, पावन बन
हमें पतित जन कहते हैं।"

शूर्पणखाकी बात सुनकर
क्षुब्ध हुआ रावण मानी,
वैर शुद्धिके मिष उस खलने
सीता हरनेकी ठानी।

तब मारीच निशाचरसे वह
पहले कपट मंत्र करके
उसे साथ ले दण्डक वनमें
आया यती-वेश धरके

हेम हरिण बन गया वहाँपर
आकर मायावी मारीच,
श्री सीताके सम्मुख आकर
लगा लुभाने उनको नीच।

मर्म समझ हँसकर प्रभु बोले—
"सब सुचर्मपर मरते हैं,
इसे मार हम प्रिये, तुम्हारी
इच्छा पूरी करते हैं।

भाई सावधान!" यह कहकर
और धनुषपर रखकर बाण,
उस कुरंगके पीछे प्रभुने
क्रीड़ा-पूर्वक किया प्रयाण।

अरुण-रूप उस तरुण हरिणकी
देख किरण-गति, ग्रीवाभंग,
सकरुण नरहरि राम रंगसे
गये दूर तक उसके संग।

समझ अन्तमें उसका छल जो
छोड़ा इधर उन्होंने बाण,
"हा लक्ष्मण! हा सीते!" कहकर
छोड़े उधर छलीने प्राण।

सुनकर उसकी कातरोक्ति वह
चंचल हुई चौंक सीता,
क्या जाने प्रभुपर क्या बीती
वे हो उठीं भूरि भीता।

लक्ष्मणसे बोली—"शुभ-लक्षण!
यह पुकार कैसी है हाय!
जाओ, झट-पट जाकर देखो,
आर्यपुत्र जैसी है हाय!"

लक्ष्मणने समझाया उनको—
"भाभी, भय न करो मनमें,
कर सकता है कौन आर्यका
अहित तनिक भी त्रिभुवनमें?

तुम कहती हो—'पर यह मेरा
दक्षिण नेत्र फड़कता है,
आशंका-आतंक भाव से
आतुर हृदय धड़कता है।'

तदपि मुझे उनके प्रभावका
है इतना विस्तृत विश्वास,
हिलता नहीं केश तक मेरा,
क्या प्रकम्प है, क्या निश्वास।"

"किन्तु तुम्हारे ऐसे निर्मम
प्राण कहाँसे मैं लाऊँ?
और कहाँ तुमसा जड़ निर्दय
यह पाषाण हृदय पाऊँ?"

कहा क्रुद्ध होकर देवीने—
"घर बैठो तुम मैं जाऊँ,
जो यों मुझे पुकार रहा है,
किसी काम उसके आऊँ।

क्या क्षत्रिया नहीं मैं बोलो,
पर तुम कैसे क्षत्रिय हो?
इतने निष्क्रिय होकर भी जो
बनते यों स्वजनप्रिय हो।"

"हा! आर्य, प्रियकी अप्रियता
करनेको कहती हो तुम,
यदि न करूँ मैं तो गृहिणीकी
भाँति नहीं रहती हो तुम।

मैं कैसा क्षत्रिय हूँ, इसको
तुम क्या समझोगी देवी,
रहा दास ही और रहूँगा
सदा तुम्हारा पद-सेवी।

उठा पिताके भी विरुद्ध मैं,
किन्तु आर्य-भार्या हो तुम,
इससे तुम्हें क्षमा करता हूँ,
अबला हो, आर्या हो तुम।

नहीं अन्ध ही, किन्तु बधिर भी;
अबला वधुओंका अनुराग;
जो हो, जाता हूँ मैं, पर तुम
करना नहीं कुटीका त्याग।

रहना इस रेखाके भीतर,
क्या जाने कब क्या होगा,
मेरा कुछ वश नहीं कर्म-फल
कहाँ न कब किसने भोगा ?''

कसे निषंग पीठपर प्रस्तुत
और हाथमें धनुष लिये,
गये शीघ्र रामानुज वनमें
आर्त्त नादको लक्ष्य किये।

शून्याश्रम से इधर दशानन
मानों श्येन कपोतीको,
हर ले चला विदेहसुताको
भयसे अबला रोती को !

कह सशोक 'हा !' दोनों भाई
लगे सकोप पटकने हाथ,
रोने लगी माण्डवी—''जीजी,
तुमसे तो उर्मिला सनाथ !''

आगे सुननेको आतुर हो
सबने यह आघात सहा,
हनूमानने धीरज देकर
शीघ्र शेष वृत्तान्त कहा।

चिल्ला तक न सकीं घबराकर
वे मूर्च्छित हो जानेसे,
भाँय-भाँय कर उठा किन्तु वन
निज लक्ष्मी खो जानेसे।

वृद्ध जटायु वीरने खलके
सिरपर उड़ आघात किया,
उसका पक्ष किन्तु पापीने
काट केतु-सा गिरा दिया।

गया जटायु इधर सुरपुरको
उधर दशानन लंकाको,
क्या विलम्ब लगता है आते
आपद को, आशंका को।

आकर खुला शून्य पिंजर-सा
दोनोंने आश्रम देखा,
देवीके बदले बस उनका
विभ्रम देखा, भ्रम देखा

''प्रिये, प्रिये, उत्तर दो, मैं ही
करता नहीं पुकार अभंग,
शून्य कुंज-गिरि-गुहा-गर्त्त भी
तुम्हें पुकार रहे हैं संग !''

लक्ष्मणने, मैंने भी, देखा,
रोती थी जब सारी सृष्टि,
एक मेघ उठ—'सीते ! सीते '
गरज-गरज करता था वृष्टि।

उनके कुसुमाभरण मार्गमें
थे जिस ओर पड़े उच्छिन्न
उन्हें बीनते हुए विलपते
चले खोज करते वे खिन्न।

''जिनके अलंकार पाये हैं,
आर्य उन्हें भी पावेंगे,
सोचो, साधु भरतके भी
क्या साधन निष्फल जावेंगे ?

पच सकती है रश्मिराशि क्या
महाग्रासके तमसे भी ?
आर्य, उगलवा लूँगा अपनी
आर्याको मैं यमसे भी।

मेट सकेगा कौन विश्वके
पातिव्रतकी लीक, कहो ?
यह अंबर उस अग्नि-शिखाको
ढँक न सकेगा, दुखी न हो।''

"काल-फणीकी मणिपर जिसने
फैलाया है अपना हाथ,
उसी अभागेका दुख मुझको,"
बोले लक्ष्मणसे रघुनाथ।

कर जटायु संस्कार बीचमें
दोनोंने निज पथ पकड़ा,
आगे किसी कबन्धासुरने
अजगर ज्यों उनको जकड़ा।
मारा बाहु काट वैरीको,
बन्धु-सदृश फिर दाह किया,
सदा भावके भूखे प्रभुने
शबरीका आतिथ्य लिया।
यों ही चलकर पम्पा-सरका
पत्र-पुष्प-अर्पण देखा,
निज कृश-करुण मूर्तिका मानों
प्रभुने वह दर्पण देखा !
आगे ऋष्यमूक पर्वत पर,
वानर ही कहिए, हम थे,
विषम प्रकृतिवाले होकर भी
आकृतिमें नरके सम थे।
था सुग्रीव हमारा स्वामी,
मनके दुःखोंका मारा,
कामी अग्रज बली बालिने
हर ली जिसकी धन दारा।
इस किंकरने उतर अद्रिसे
दया-दृष्टि प्रभु की पाई,
सहज सहानुभूतिवश उसपर
प्रीति उन्होंने दिखलाई।
लिये जा रहा था रावण-बक
जब शफरी-सी सीताको,
देखा हमने स्वयं तड़पते
उन पद्मिनी पुनीताको।
हिम-सम अश्रु और मोतीका
हार उन्होंने हमें निहार,
उफल दिया मानों झोंकेसे
देकर निज परिचय दो बार।

अश्रु विन्दु तो पिरो ले गई
किरणें स्वर्गाभरण विचार
उनका स्मारक छिन्न हार हो
हुआ वहाँ उनका उपहार।
कह सुकण्ठको बन्धु उन्होंने
किया कृतार्थ अंक भर भेंट,
बर्बर पशु कह एक बाणसे
किया बालि का फिर आखेट।
इसके पहले ही विभु-बलका
था हमको मिल चुका प्रमाण,
फोड़ गया था सात ताल-तरु
वहाँ एक ही उनका बाण।
वर्षा काल बिताया प्रभुने
उसी शैल पर शकर रूप,
हुआ सती सीताके मुख-सा
शरच्चन्द्रका उदय अनूप।
भूला पाकर किष्किन्धाका
राज्य और दारा सुग्रीव,
स्वयं ब्रह्म ही "मायामय है,
कितना सा है जनका जीव ?
भूल मित्रका दुःख शत्रुसा
सुख भोगे, वह कैसा मित्र ?
पहुँचे पुरमें प्रकुपित होकर
धन्वी लक्ष्मण चारु चरित्र।
ताराको आगे करके तब
नत वानरपति शरण गया,
देख दीन अबलाको सम्मुख
आवेगी किसको न दया ?
गये सहस्र सहस्र कीश तब
करनेको देवीकी खोज,
मुझे मुद्रिका दी प्रभुवरने,
फेरा मुझ पर स्वकर-सरोज।

दुस्तर क्या है उसे विश्वमें
प्राप्त जिसे प्रभुका प्रणिधान ?
पार किया मकरालय मैंने
उसे एक गोष्पद सा मान।

देख एक दो विघ्न बीचमें
हुआ मुझे उलटा विश्वास—
बाधाओंके भीतर ही तो
कार्य सिद्धि करती है वास।

निरख शत्रुकी स्वर्णपुरी वह
मुझे दिशा-सी भूली थी,
नील जलधिमें लंका थी या
नभमें सन्ध्या फूली थी!

भौतिक विभूतियोंकी निधि-सी,
छबि की छलच्छाया-सी,
यन्त्रों-मन्त्रों-तन्त्रों की थी
वह त्रिकूटिनी माया-सी!

उस भव-वैभवकी विरक्ति-सी
वैदेही व्याकुल मनमें,
भिन्न देशकी छिन्न लता-सी
पहँचानी अशोक-वनमें।

क्षण-क्षणमें भय खातीं थीं वे,
कण-कण आँसू पीती थीं,
आशाकी मारी देवी उस
दस्यु-देशमें जीती थीं!

थी उस समय रात, मैं छिपकर
अश्रु पोंछ था देख रहा,
आकर काल-रूप रावणने
उन मुमूर्षुके निकट कहा—

"कहा मान अब भी हे मानिनि,
बन इस लंकाकी रानी,
कहाँ तुच्छ वह राम ? कहाँ मैं
विश्वजयी रावण मानी ?"

"जीत न सका एक अबलाका
मन तू विश्वजयी कैसा ?
जिन्हें तुच्छ कहता है उनसे
भागा क्यों तस्कर ऐसा"

मैं वह सीता हूँ, सुन रावण,
जिसका खुला स्वयंवर था,
वर लाया क्यों मुझे न पामर,
यदि यथार्थ ही तू नर था ?

वर न सका कापुरुष, जिसे तू
उसे व्यर्थ ही हर लाया,
अरे अभागे, इस ज्वालाको
क्यों तू अपने घर लाया ?

भाषण करनेमें भी तुझसे।
लग न जाय हा! मुझको पाप,
शुद्ध करूँगी मैं इस तनुको
अग्नि-तापमें अपने आप।"

विमुख हुई मौनव्रत लेकर
उस खलके प्रति पतिव्रता,
एक मासकी अवधि और दे,
गया नीच वे रहीं हता।

जाकर तब देवीके सम्मुख
मैंने उन्हें प्रणाम किया,
प्रभुकी नाम-मुद्रिका देकर
परिचय, प्रत्यय, धैर्य दिया।

"करें न मेरे पीछे स्वामी
विषम कष्ट-साहसके काम,
यही दुःखिनी सीताका सुख
सुखी रहें उसके प्रिय राम।

मेरे धन वे घनश्याम ही,
जानेगा यह अरि भी अन्ध,
इसी जन्मके लिए नहीं है—
राम-जानकीका सम्बन्ध,

देवरसे कहना—"मैंने जो
मानी नहीं तुम्हारी बात,
उसी दोषका दण्ड मिला यह
क्षमा करो मुझको अब तात !"

मैंने कहा—"अम्ब, कहिए तो।
अभी आपको ले जाऊँ ?"
बोलीं वे—'क्या चोरी चोरी
मैं अपने प्रभुको पाऊँ ?"

माँग अनुज्ञा मैंने उनसे
उस उपवनके फल खाये,
और उजाड़ा उसे प्रकृतिवश,
मारे जो रक्षक आये।

आया तब कुछ सैनिक लेकर
एक पुत्र रावणका अक्ष,
विटपोंसे भट मार शत्रुका
तोड़ दिया घूँसोंसे वक्ष।

नागपाशमें विदित इन्द्रजित
बाँध ले गया मुझे अहा !
"जीता हुआ जला दो इसको,"
रावणने सक्रोध कहा।

लंकामें भी साधु विभीषण
था रावणका ही भाई,
लेता रहा पक्ष प्रभुका पर
सुनता है कब अन्यायी ?

तब लपेट तैलाक्त पटम्बर
आग लगाई रिपुओंने,
पर निज पुरी उसी पावकमें
जलती पाई रिपुओंने।

जली पापकी लंका जिससे
थी वह एक सतीकी हूक,
मैंने तो झटपट समुद्रमें
कूद बुझा ली अपनी लूक।

देवीने चूड़ामणि दी थी
मैंने प्रभुको दी लाकर,
तुष्ट हुए वे सुध पाकर यों
मानों उनको ही पाकर।

तब लंकापर हुई चढ़ाई,
सजी ऋक्ष-वानर-सेना,
मिल मानों दो सलिल-राशियाँ
उमड़ी फैलाकर फेना।

भंग-भित्तियाँ उठा-उठाकर
सिन्धु रोकने चला प्रवाह,
बाँधा गया किन्तु उलटा वह,
सेतु-रूप ही है उत्साह।

नीलनभोमण्डल-सा जलनिधि,
पुल था छायापथ-सा ठीक,
खींच दी गई एक अमिट सी
पानी पर भी प्रभुकी लीक !

उधर विभीषणने रावणको
पुन: प्रेम-वश समझाया,
पर उस साधु पुरुषने उलटा
'देशद्रोही' पद पाया।

"तात, देशकी रक्षाका ही
करता हूँ मैं उचित उपाय,
पर वह मेरा देश नहीं जो
करे दूसरों पर अन्याय।

किसी एक सीमामें बँधकर
रह सकते हैं क्या ये प्राण ?
एक देश क्या, अखिल विश्वका
तात, चाहता हूँ मैं त्राण।

बार धर्मपर राज्य जिन्होंने
वनका दारुण दुख भोगा,
वे यदि मेरे वैरी होंगे,
तो फिर बन्धु कौन होगा ?

शत्रु नहीं, शासक वे सबके,
आप न इस मदमें भूले,
गुरुतम गज भी सह सकता है
क्या लघु अंकुशकी हूलें ?

पर नारी, फिर सती और वह
त्यागमूर्ति सीता-सी सृष्टि,
जिसे मानता हूँ मैं माता
आप उसीपर करें कुदृष्टि !

उड़ जावेगा दग्ध देशका
सती-श्वाससे ही बल-वित्त,
राम और लक्ष्मण तो होंगे
कहने भरके लिए निमित्त।''

उपचारकपर रुक्ष रुग्ण-सा
रावण उलटा क्षुब्ध हुआ—
''निकल यहाँसे, शत्रु-शरण जा,
जिसके गुणपर लुब्ध हुआ।''

''जैसी आज्ञा'', उठा विभीषण,
यह कह उसने किया प्रयाण—
''जँचा इसीमें तात, मुझे भी
निज पुलस्त्य कुलका कल्याण।''

वैरीका भाई था, फिर भी
प्रभुने बन्धु-समान लिया,
उसको शरणागत विलोककर
हितसे समुचित मान दिया।

कहा मंत्रियोंने कुछ, तब वे
बोले--''दुर्बल हैं हम क्या ?
छले धर्म ही हमें हमारा
तो है भला यही कम क्या ?''

प्रभुने दूत भेज रावणको
दिया और भी अवसर एक,
हितमें अहित, अहित ही में हित
किन्तु मानता है अविवेक।

सर्वनाशिनी बर्बरता भी
पाती है विग्रहमें नाम,
पड़ा योग्य ही रक्षोंको हम
ऋक्ष-वानरोंसे अब काम।

आयुध तो अतिरिक्त समझिये,
अस्त्र आप हैं अपने अंग,
दन्त, मुष्टियाँ, नख, कर, पद सब
चलने लगे सग ही संग।

मार-मार हुँकार साथ ही
निज निज प्रभुका जय-जयकार,
बहते विटप डूबते प्रस्तर
बुझते शोणितमें अंगार।

निज आहार जिसे कहते थे,
राक्षस अपने मदमें भूल,
हुए अजीर्ण वही हम उनके,
मारक गुल्म, विदारक शूल।

रण तो राम और रावणका,
पण परन्तु है लक्ष्मणका,
शौर्य-वीर्य दोनोंके ऊपर,
साहस उन्हीं सुलक्षणका।

लड़ना छोड़-छोड़कर बहुधा
देखा मैंने उनका युद्ध,
निकले-घुसे घनोंमें रवि ज्यों,
रह न सके क्षण-भर भी रुद्ध।

शैल-शूल, असि-परशु, गदा-घन,
तोमर-भिन्दिपाल, शर-चक्र।
शोणित बहा रही हैं रणमें,
विविध सार धाराएँ वक्र।

मारे, आ, जा रे, जा, कह-कह
भिड़ते हैं जन-जनके साथ,
घन-घन, झन-झन, सन-सन
निस्वन होता है इन-इनके साथ !

नीचे स्यार पुकार रहे हैं,
ऊपर मँडराते हैं गिद्ध,
सोनेकी लंका मिट्टीमें
मिलती है लोहेसे विद्ध।

भेद नहीं पाते हैं रविकर
दिया शून्यको रजने पाट,
पर अमोघ प्रभुके शर खर तर
जाते हैं अरिकुलको काट।

अपने जिन अगणित वीरोंपर
गर्वित था वह राक्षसराज,
एक-एक करके भी मरकर
हुए *नगण्य* अहो वे आज।

दाँत पीसकर ओंठ काटकर
करता है वह क्रुद्ध प्रहार,
पर हँस-हँसकर ही प्रभु सबका
करते हैं पलमें प्रतिकार।

देखा आह! आज ही मैंने
उन्हें क्रोध करते कुछ काल,
काँप उठे भयसे हम सब भी
कहूँ शत्रुओंका क्या हाल।

क्षुब्ध इन्द्रजितने, क्रम-क्रमसे
सबको देख कालकी भेंट,
छोड़ी लक्ष्मण पर लंकाकी
मानों सारी शक्ति समेट।

विधिने उसे अमोघ किया था,
पर न हटे रामानुज धीर
इसी दासने दौड़ उठाया
हा! उनका निश्चेष्ट शरीर।

धैर्य न छोड़ें आप, शान्त हों,
भक्षकसे रक्षक बलवान,
उन्हें देख 'हा! लक्ष्मण' कहकर
सजल हुए प्रभु जलद समान।

जगी उसी क्षण विद्युज्ज्वाला
गरज उठे होकर वे क्रुद्ध,
"आज कालके भी विरुद्ध है
युद्ध-युद्ध बस मेरा युद्ध।

रोऊँगा पीछे, होऊँगा
उऋण प्रथम रिपुके ऋणसे"
प्रलयानलसे बढ़े महाप्रभु,
जलने लगे शत्रु तृण-से।

एक असह्य प्रकाश-पिण्ड था
छिपी तेजमें आकृति आप,
बना चाप ही रवि मण्डल-सा
उगल-उगल शर-किरण-कलाप।

कोप-कटाक्ष छोड़ता हो ज्यों
भ्रकुटि चढ़ाकर काल कराल,
क्षण-भरमें ही छिन्न भिन्न-सा
हुआ शत्रु-सेनाका जाल।

क्षुब्ध नक्र जैसे पानीमें
पर्वतमें जैसे विस्फोट,
अरि समूहमें विभु वैसे ही
करते थे चोटोंपर चोट।

कर-पद रुण्ड-मुण्ड ही रणमें
उड़ते गिरते पड़ते थे,
कल-कल नहीं, किन्तु भल-भलकर
रक्तस्रोत उमड़ते थे।

रिपुओंकी पुकार भी मानों
निष्फल जाती बारंबार,
गूँज उसे भी दबा रही थी
उनके धन्वाकी टंकार।

प्रथम नाद होता है नभमें
तब पृथ्वीतल पर पवि-पात,
निज निर्घोषोंके भी आगे
जाते थे उनके आघात।

सर्वनाश-सा देख सामने
रावणको भी कोप हुआ,
पर पल-भरमें प्रभुके आगे
सारा छल-बल लोप हुआ।

"बच रावण, निज वंश-नाश तक
बन न राम बाणोंका लक्ष,
मेरे वत्स शोकका साक्षी
बन यहाँ तेरा ही वक्ष,

कहाँ इन्द्रजित ? किन्तु न होऊँ
मैं लक्ष्मणका अपराधी,
जिसने आज यहींपर उसकी
वध-साधन-समाधि साधी।

राक्षस, तेरे तुच्छ बाण क्या
मेरे इस उरमें है शेल,
उसे झेलनेके पहले तू
मेरा एक विशिख ही झेल।"

अश्व, सारथी और शत्रुभुज
एक बाणने वेध दिया,
मूर्च्छित छोड़ उन्होंने उसको
अगणित अरि-पशु मेध किया।

आँधीमें उड़ते पत्तोंसे
दलित हुए सब सेनानी,
पर उस मेघनादके बदले
आया कुम्भकर्ण मानी।

"भाईका बदला भाई ही!"
गरज उठे वे घन-गम्भीर,
गज पर पञ्चानन-सम उस पर
टूट पड़े उसका दल चीर।

"अनुमोदक तो नहीं, किन्तु निज
अग्रजका अनुगत हूँ मैं,
निद्रा और कलह दो में ही
राघव, सन्तत रत हूँ मैं।

वज्रदन्त, धूम्राक्ष नहीं मैं,
नहीं अकम्पन और प्रहस्त,
राम, सूर्य-सम होकर भी तुम
समझो मुझको अपना अस्त।"

"निद्रा और कलहका भी यों
तू बखान कर रहा सगर्व,
जाग, सुलाऊँ तुझे सदाको
मेटूँ कलह कामना सर्व।"

उस उत्पाती घनने अपने
उपल-नत्र बहु बरसाये,
किन्तु प्रभंजन बलसे प्रभुके
उड़ी धज्जियाँ, शर छाये।

गिरा हमारे दल पर गिरि-सा
मरते मरते भी वह घोर
छोड़ धनुःशर बोले प्रभु भी
कर युग कर रावणकी ओर।

"आ भाई, वह वैर भूलकर
हम दोनों समदुःखी मित्र,
आजा, क्षणभर भेंट परस्पर,
कर लें अपने नेत्र पवित्र!"

हाय! किन्तु इसके पहले ही
मूर्च्छित हुआ निशाचर-राज,
प्रभु भी यह कह गिरे—"रामसे
रावण ही सहृदय है आज!"

सन्ध्याकी उस धूसरतामें
उमड़ा करुणाका उद्रेक,
छलक-छलककर झलके ऊपर
नभके भी आँसू दो-एक।

हम सब हाथोंपर सँभालकर
उन्हें शिविरमें ले आये,
देख अनुजकी दशा दयामय
दुगुने आँसू भर लाये।

"सर्व-कामना मुझे भेंटकर,
वत्स, कीर्ति-कामी न बनो,
रहे सदा तुम तो अनुगामी,
आज अग्रगामी न बनो!"

समझाया वैद्योंने उनको—"आर्य,
अधीर न हो इस भाँति,
अब भी आशा, वही कीजिए
सफल हो सके वह जिस भाँति।"

"तुच्छ रक्त क्या, इस शरीरमें
डालो कोई मेरे प्राण,
गत सुनकर भी मुझे जानकी
पावेगी दु:खोंसे त्राण।"

बोल उठे सब—"प्रस्तुत हैं, ये
प्राण, इन्हें लक्ष्मण पावें,
डूब जायँ हम सौ-सौ तार,
चन्द्र हमारे बच जावें।"

"संजीवनी मात्र ही स्वामी,
आ जावे यदि रातों रात,
तो भी बच सकते हैं लक्ष्मण,
बन सकती है बिगड़ी बात।

पजर भग्न हुआ, पर पक्षी
अब भी अटक रहा है आर्य!"
आगे बढ़ बोला मैं—"प्रभुवर,
किंकर कर लेगा वह कार्य।"

आया इसीलिए मैं, आहा!
हुआ बीचमें ही वह काम,
अब आज्ञा दीजे जाऊँ मैं,
चिन्तित होंगे वे गुण-धाम।

मायावी रावण प्रसिद्ध है,
किन्तु सत्य-विग्रह श्रीराम,
चिन्ता करें न आप चित्तमें,
निश्चित ही है शुभ परिणाम।"

मारुतिने निज सूक्ष्म-गिरामें
बीज-तुल्य जो वृत्त दिया
आते ही इस अश्रु-भूमिमें
उसने अंकुर रूप लिया!

चौंक भरत-शत्रुघ्न-माण्डवी,
मानो यह दु:स्वप्न विलोक,
औषध देकर भी कुछ उनसे
कह न सके सहकर वह शोक।

खींचकर श्वास आस-पाससे प्रयास बिना
सीधा उठ शूर हुआ तिरछा गगनमें।
अग्नि-शिखा ऊँची भी नहीं है निराधार कहीं,
वैसा सार वेग कब पाया सान्ध्य-घनमें।
भूपरसे ऊपर गया यों वानरेन्द्र मानों
एक नया ग्रह भौम जाता था लगनमें,
प्रकट सजीव चित्र सा था शून्य पटपर,
दण्ड-हीन केतन दयाके निकेतनमें!

लंकानल, शंका-दलन, जय-जय पवनकुमार,
तुमने सागर पारकर किया गगन भी पार।

बलकारक लड्डू

श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट

पन्द्रह-बीस जगह अर्जियाँ भेजीं, ससुरालके उच्च-पदस्थ सम्बन्धियों तकपर ज़ोर डलवाया, पर फिर भी काम न बना—हाई स्कूलकी परीक्षामें तीन बार फेल होनेवाले पं० अभागचन्दको कहीं १५) मासिककी नौकरी नहीं मिली। अन्तमें झुँझलाकर अभागचन्दने सोचा—"भगवानकी बाँह लम्बी हैं, वह पत्थरके भीतर रहनेवाले कीड़ोंको भी भोजन देता है, फिर मैं ही क्यों अपने मनको दुर्बल होने दूँ? दुनियाँ नौकरी ही करके पेट-पालन नहीं करती, और भी बहुतसे काम हैं, जो किये जा सकते हैं।"

अब अभागचन्द कुछ स्वतन्त्र व्यवसाय करनेकी चिन्तामें लगे। एक दिन उन्होंने हिन्दीका एक समाचारपत्र उठाया, और विज्ञापनोंपर दृष्टि दौड़ाई—'जाड़ा आ गया है, हमारा पाक सेवन करके बुढ़ापा भगाइये!' 'हमारे लड्डू सेवन करके वर्ष-भरके लिए बलसंचय कर लीजिए।'—आदि शीर्षकोंपर इनकी तबीयत कुछ जमती-सी दिखाई दी। इन्होंने सोचा—"मैं भी इसी तरह विज्ञापन-बाज़ी क्यों न करूँ। इसी विज्ञापनबाज़ीकी बदौलत आज दुख-संहारक कम्पनीवाला लखपती हो गया; पीयूष प्यालेवालेने सड़कपर अपना नाम लिखा लिया; केशगंजनवालेने मोटर रख ली, और बुद्धि-भंजनवाला नया मकान बनवा रहा है।"

विज्ञापनबाज़ीके लिए पहले कुछ रुपया चाहिए, इसके नामपर यहाँ शून्य था; यह भी एक कठिनाई थी। अन्तमें बहुत सोच-विचार करनेके बाद अभागचन्द इस परिणामपर पहुँचे कि जाड़ा सचमुच आ रहा है, इसलिए बलकारक लड्डू बनाकर पहले अपने मुहल्लेके धनी आदमियोंको बेचूँ, और बादको उसी रुपयेसे विज्ञापनबाज़ीका काम शुरू कर दूँ। अभागचन्दने असली घीमें आटेको खूब भूना, यहाँ तक कि वह काला हो गया, उसमें जलाँद आने लगी और बिलकुल ही स्वाद बदल गया, तब उसमें थोड़ा-सा भुना खोवा डाला और फिर भूना और लड्डू बाँधते समय मिश्री, बादाम, पिस्ते, इलायची आदिकी भरमार कर दी। बलकारक लड्डू बन गये। अब इन्होंने टीनके चार डिब्बे लिये और उनमें पाव-पावभर बोझ रखा। मूल्य ८) सेर लगाया।

× × ×

मुहल्लेमें एक चुंगीके मेम्बर रहते थे—यानी म्युनिसिपल-कमिश्नर। पहले अभागचन्द एक डिब्बा लेकर उनके यहाँ गये। सवेरे कोई ९ बजे, जब झाड़ूवाला सड़क साफ करके कभीका चला गया था, मेम्बर साहब टूटे तख्तपर बैठे लम्बी दातुन लिये, लगभग चौबीस घंटेके लिए, अपनी बैठकका आगा, अन्धाधुन्ध थूक-थूककर बिगाड़ रहे थे। वे इनको देखते ही उठ खड़े हुए और आदरके साथ उसी तख्तपर बैठा लिया। अभागचन्द बोले—"जी, काम तो कुछ नहीं; वैसे ही इधर घूमता-घामता चला आया। जाड़ा आ गया है, कुछ बलकारक लड्डू उस लड़कीकी माँने बनाये हैं, बोली कि मेम्बर साहबके यहाँ ज़रूर दे आओ।"

मेम्बर—"आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैं कहाँ तक···"

अभागचन्द—'जी, कहाँ तककी कोई बात नहीं है, सिर्फ ८) रुपये सेरके हैं। इस डिब्बेमें पावभर हैं, २) रुपयेके हुए।"

मेम्बर—(गर्दन हिलाकर) 'ज़रूर, ज़रूर, भला दो रुपयेसे भी कमके क्या होंगे। अबे बुधुआ, जा ये लड्डू तो भीतर दे आ।

बुधुआके भीतर चले जानेके बाद मेम्बर साहबने कहा—"पंडितजी, आप तो कभी मिलते-जुलते ही नहीं, और न आपने आज तक हमसे कोई सेवा ही ली। कहिये,

आपकी मेहतरानी ठीक तौरसे काम करती है न ? न करती हो, तो जमादारसे सालीके दो-चार लीतड़े लगवा दूँ।''

अभागचन्दको मेहतरानीसे कोई शिकायत न थी।

मेम्बर साहब बोले—''अबकी बार जब आपके घरपर टैक्स लगने लगे, तो आप उजरदारी करनेसे पहले मुझसे सलाह ले लीजियेगा। मैं आपका टैक्स बहुत कम करा दूँगा।''

अभागचन्द बड़े प्रसन्न हुए और इधर-उधरकी दो-चार बातें करके अपने घर लौटे। चलते समय मेम्बर साहबसे संसारका कटु अनुभव होनेके कारण यह कहना न भूले कि लड्डुओंके दामोंकी विशेष चिन्ता न कीजियेगा। आप इनको खाइये, फिर और मँगवा लीजियेगा। दाम तो घरमें है।

× × ×

उसी दिन साँझको लड्डुओंका दूसरा पौवा लेकर अभागचन्दजी एक आनरेरी मजिस्ट्रेटके यहाँ गये। मजिस्ट्रेट साहबने भी आवभगतकी और लड्डुओंका डिब्बा भीतर भेजते हुए कहा—''मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइये। कोई आपके घरमें ईंटे फेंकता हो या किसी इक्केवालेने आपसे पैसे ज्यादा ले लिए हों ?''

अभागचन्दने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं है। मजिस्ट्रेट साहब सुनी, अनसुनी करके बोले—''हाँ, इस समय इस नगरमें आप ही की धाक समझिये। अबकी बड़े दिनपर मैंने कलक्टर साहबको वह डाली दी कि जितने तहसीलदार और डिप्टी कलक्टर थे सब देखकर दंग रह गये।''

अभागचन्दने कहा—''क्यों नहीं, भला आपकी बराबरी कोई क्या कर सकता है ?''

कुछ और इधर-उधरकी बातें होनेके बाद अभागचन्द बोले—''अच्छा, तो अब चलता हूँ। आप दामोंकी चिन्ता न कीजियेगा, चाहे जब भिजवा दीजियेगा, और यदि लाभकारक जँचे, तो जितने आवश्यक हों, मँगवा लीजियेगा।''

बीचमें अनाड़ी मजिस्टर साहबको याद आ गयी थी कि एक पोस्टकार्ड बिना पढ़ा परसोंसे जेबमें पड़ा है। जब अभागचन्दने पिछली बात कही, तब उनका ध्यान उसी कार्डमें लगा था, अतएव बिना इनकी बात अच्छी तरह सुने वे बोले—'आपका घर है, चाहे जब तशरीफ़ लाइये।''

× × ×

तीसरा पौवा प्रान्तीय कौन्सिलके एक मेम्बरके भाग्यमें बदा था। ये मेम्बर महोदय देखनेमें तो मरियल थे, पर धन और बुद्धिके काफ़ी मोटे थे। लड्डू लेकर बोले—''पंडितजी, आपने सच पूछिये तो मुझे बचा लिया। इस इतने बड़े शहरमें मैं अकेला पतला-दुबला मेम्बर ! सबका काम करूँ और मेरे स्वास्थ्यकी चिन्ता किसीको भी नहीं ! एक आप ही ऐसे निकले कि मेरी आवश्यकताको अपने आप समझ गये। इधर तीन महीने मलेरियाने झंझोड़ा ; कभी खाँसी, कभी बुखार—आप जानते हैं यही झगड़ा लगा रहता है। कमज़ोरी तो ख़ूब ही है। बोलते-बोलते हँफनी होने लगती है।''

अभागचन्द—''इन लड्डुओंसे आपको शर्तिया लाभ होगा। आप खाकर देखिये, और जितने चाहें मँगा लीजियेगा। केवल आठ ही रुपये सेरके तो हैं।''

मेम्बर—''अच्छा पंडितजी, अब आप यह बतलाइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? अगर आपको पुलिसने तंग किया हो, तो कहिये तो मैं कौंसिलमें यह सवाल करदूँ कि शारदा नहरमें कुल कितने रुपये खर्च हुए। अगर आपकी नौकरी कहींसे अन्यायपूर्वक छुड़ा दी गई हो, तो कहिये मैं यह सवाल करके सरकारका नातका बन्द कर दूँ कि खेतीकी उन्नतिके लिए सरकारने पिछले दस वर्षोंमें क्या किया ?''

अभागचन्द—मुझे, आपकी दयासे अभी—।''

मेम्बर—(बीचहीमें) ''क्योंकि सरकारी मेम्बर मुझसे बहुत डरते हैं। जब देखो तब वोटके लिए हाथ जोड़े मेरी खुशामद ही करते रहते हैं। मैं उनके लिए वोट देता हूँ, तो मेरा उनसे काम क्यों न निकलेगा ?''

अभागचन्द—''अवश्य, अवश्य ; आप क्या कोई ऐसे

वैसे हैं ? इसी लिए तो मैं आया था, लड्डू जितने चाहिये और मँगा लीजिएगा। आठ ही रुपये सेर हैं। दाम फिर देते रहियेगा।"

मेम्बर साहबने कहा—"जी, बहुत अच्छा।"

× × ×

चौथा पौआ एक सम्पादकको दिया गया। सम्पादकजी एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकालते थे। जनम रोगी थे। एक ओर नोन, तेल, लकड़ीकी चिन्ता, दूसरी ओर देशकी; तीसरी ओर लड़केकी, जो बक्समें से टिकट चुराकर बेच आता था; चौथी ओर लड़कीकी जो विवाह-योग्य हो गई थी और जिसके लिए कोई वर नहीं मिल रहा था। इन चिन्ताओंके मारे सम्पादकजी घुने बाँस हो गये थे। लड्डू पाकर बड़े प्रसन्न हुए, और बोले—"मैं अपने स्तम्भोंमें इनकी बढ़िया समालोचना करूँगा।"

अभागचन्द—"दाम केवल आठ रुपये सेर रखा है।"

सम्पादक—"दामोंका भी उल्लेख कर दूँगा। कुछ न कुछ बिक्री अवश्य होगी।"

अभागचंद—"आवश्यकतानुसार और मंगा लीजिएगा; दाम चाहे जब मिल जायँगे।"

सम्पादक—"ठीक है; अवश्य मगाऊंगा। मैं गृहस्थीकी चिन्ताके मारे आधा सिड़ी हो गया हूं।"

अभाचंद—"इनमें ब्राह्मी भी पड़ी है।"

सम्पादक—"रातको नींद नहीं आती।"

अभागचंद—"विजयाका भी पुट है।"

सम्पादक—"मुझे बहुमूत्रका भी सन्देह होता है।"

अभागचद—"अल्मोड़ेसे मंगाकर शिलाजीत डाला है।"

सम्पादक—"यह सब अजीर्ण और कोष्ठबद्धताकी कृपा है।"

अभागचंद—"त्रिफला शुद्ध करके डाला है। मेदा, महामेदा कांची, अवन्तिका, विहारीकंद, वाराहीकंद, खरेटी, गंगेरन, असगध गांधारी, पिंडारी आदि सभी चीजें पड़ी हैं।"

सम्पादक—"तब अवश्य लाभ होगा।"

अभागचंद—"लाभ ही के तो दाम हैं।"

सम्पादक—'कहिये तो आपका विज्ञापन छाप दूँ।"

अभागचंद—"अभी तो थोड़े ही लड्डू बनाये हैं। खैर, छाप दीजिये। और बन. लिये जायँगे। बात यह है कि परिश्रम बहुत पड़ता है।"

सम्पादक—"क्यों नहीं?"

[२]

कुछ ही दिनों बाद अभागचंदको लड्डू और बनाने पड़े। कारण यह हुआ कि चारों ही सज्जनोंने सेर-सेर दो-दो सेरके लिए कहला भेजा। यों लगभग पचास-साठ रुपयेके मालकी खपत हो गई, किन्तु वसूल अभी एक पाई भी नहीं हुई थी। उधर सम्पादकजीने समालोचना छाप दी थी और प्रति सप्ताह विज्ञापन भी छप रहा था, इससे कुछ बाहरी आर्डर भी आ गये थे. लेकिन उनके लिए माल नहीं था। दाम मिले तो माल बने, वरना बने कहाँसे ? अभागचंद समझते थे कि सभी गाहक भलेमानस हैं, बड़े आदमी हैं और प्रतिष्ठित हैं। उन्हें अभी यह अनुभव नहीं हुआ था कि शीघ्र दाम चुकानेवाले दूसरे होते हैं; बड़े आदमियोंकी तो बातें बड़ी हुआ करती हैं। वे प्रतिदिन चारों महानुभावोंके यहाँ किसी न किसी बहाने चक्कर काट आते थे; कभी कभी अपनी दीन दशाकी ओर भी संकेत कर देते थे; पर ये बड़े आदमी मानो उनकी बातका मतलब ही नहीं समझते थे। अन्तमें जब बाहरी गाहकोंके उलाहने आने लगे, तब इन्होंने सोचा कि अब बिना तकाजा किये काम न चलेगा। अब तकाज़ेके विचारसे ये अपने मनको पक्का करके जाते, पर वहाँ न जाने क्यों कच्चे पड़ जाते, और इधर-उधरकी बातें करके लौट आते। मार्गमें अपनेको बहुत कुछ धिक्कारते और घर आकर खटियापर सुस्त पड़ रहते। एक दिन इनकी स्त्रीने कहा—"चलो जाओ भी, तुमसे अपने रुपये भी नहीं माँगे जाते हैं। कहीं इस तरह व्यापार किया जाता है ? बड़े आदमी होंगे तो

अपने घरके होंगे। मुझसे कहो तो मैं अभी दुष्टोंको बीस गालियाँ सुनाऊँ।"

स्त्रीकी फटकार बुरी होती है। अभागचंदने मन ही मन प्रतिज्ञा कर ली कि कल चाहे जो हो, बिना तकाज़ा किये न मानूँगा ; अपना रुपया है, क्या कोई फाँसी थोड़ ही दे देगा !

दूसरे दिन अभागचंद तकाज़ेको चले। क्रोध था, पर दिल भी धड़क रहा था। पहले म्यूनिसिपल कमिश्नरके यहाँ गये। थोड़ी देर तक इधर उधरकी बातें करनेके बाद जब इन्होंने लड्डुओंके रुपये माँगे, तब उसने आश्चर्य चकित होकर कहा---"रुपये ! मैं तो यह समझा था कि आप मुझे नज़र कर रहे हैं ! न जाने कितने लोग रोज़ कुछ न कुछ भेंट मुझे दे जाते हैं, आख़िर मैं भी तो उनके काम आता हूँ।"

अभागचदने कहा---"नहीं साहब, मैंने तो आपको मोल दिये थे।"

म्यूनिसिपल कमिश्नरने पहले तो आँख दिखाई और फिर कहा---पन्द्रह दिन बाद बात कीजिएगा।"

आनरेरी मजिस्ट्रेटने इन्हें मारनेको रूल उठाई और कह दिया--"तेरे बापसे लिये जायँ, तो ले लीजियो। कम्बख्तने जाने क्या भेज दिया सूरन-पागसा।"

कौन्सिलके मेम्बरको इस बातपर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि लड्डू उसे लोक-सेवाके लिए बली बनानेको नहीं, बल्कि रुपये वसूल करनेके लिए दिये गये थे। बहुत-सी खरी-खोटी सुनानेके बाद वह बोला—"घबड़ाइये मत, मैं अबकी कौन्सिलमें प्रस्ताव करनेवाला हूँ कि लोग ताक़तकी दवाके नामसे न जाने क्या-क्या बेचकर पब्लिकको बीमार किये डाल रहे हैं, सरकारको चाहिए कि बनावटी वैद्योंकी बाक़ायदा रजिस्ट्री करे और इनकी दवाओंकी जाँच कराया करे। आपके लड्डुओंने मेरे स्वास्थ्यका ढेर कर दिया। मैं आपकी रिपोर्ट करूँगा पुलिसमें।"

सम्पादकजीने कहा कि लड्डुओंसे सचमुच लाभ हुआ है, रही दामोंकी, सो आपके लड्डुओंके दाम १२) हुए ; मगर मेरे विज्ञापनके आपपर ५४) हो चुके हैं। १२) काटकर बाक़ी दे दीजिए। चीज़ आपकी सचमुच अच्छी थी।"

अभागचन्दने कहा—"मैं तो समझता था कि विज्ञापन आप बिना मूल्य छाप रहे हैं।"

सम्पादक---"मैं भी यही समझा था कि आप मुझे लड्डू बिना मूल्य दे रहे हैं, पर घोड़ा घाससे यारी करेगा तो खायगा क्या ? अतएव आपका लड्डुओंके, और मेरा विज्ञापनकी छपाईके दाम माँगना ठीक ही है। तो बतलाइये कब भेजियेगा बाक़ी रुपया ?"

× × ×

अभागचन्द अपना-सा मुँह लेकर घर चले आये। पाँच छः दिन बाद उन्हें एक समन मिला। ज्ञात हुआ कि घरके बाहर कूड़ा इकट्ठा करनेके अपराधमें म्यूनिसिपैलिटीने उनपर मुक़दमा चलाया है !

इसके एक दिन बाद फिर एक समन आया। मालूम हुआ कि दफ़ा ३४ में पुलिसने चालान कर दिया है। मुक़दमा किसी आनरेरी मजिस्ट्रेटकी अदालतमें है।

बेचारे अभागचन्द बड़ी साँसतमें पड़े। कुछ समझमें नहीं आया कि क्या किया जाय। स्त्रीने कहा—"उन्हीं दुष्टोंने मुक़दमे चलवाये हैं ; उनका काला मुँह हो।"

किसीने सलाह दी कि वकील पूरनघाघ साहब बड़े तजुर्बेकार हैं ; उन्होंने न जाने कितनी रियासतें इधरकी उधर कर दी हैं ; उनसे सलाह लो। बेचारे अभागचन्द वकील साहबके यहाँ पहुँचे। लालकाणी आँख युक्त उनके काले चेचकी चेहरे और मक्काके भुट्टे जैसी दाढ़ी देखते ही इनके होश गुम हो गये। उन्होंने बड़ी रुखाईसे पूछा, 'क्या है ?' इन्होंने बलकारक लड्डुओंका सारा हाल सुनाया। सुनकर वकील साहब मुसकराये, जिससे उनका चेहरा और भी भयानक जँचने लगा। वकील साहबने कहा—"तुम्हारे पास रुपये भी हैं या यों ही मुक़दमेकी पैरवी करने निकल पड़े हो ?"

इन्होंने हाथ जोड़कर अपनी दीनताकी कहानी सुनाई।

वकील साहब बोले—"तुम परले सिरेके अहमक़ हो। जाओ, म्यूनिसिपल कमिश्नर साहब और आनरेरी मजिस्ट्रेट साहबसे माफ़ी माँगकर अपना पिंड छुड़ाओ, वरना कहींके न रहोगे। भाग जाओ।"

अभागचन्द उठकर चले, पर चलते-चलते कुछ ठिठके और इन्होंने मुड़कर वकीलकी ओर देखा। वकीलने पूछा—"अब और क्या चाहते हो?"

अभागचन्द—"हुज़ूर अगर नाराज़ न हों, तो एक बात पूछना चाहता हूँ।"

वकील—"बोलो क्या?"

अभागचन्द—"ये लोग लड्डू खाकर मुझसे तन क्यों गये, और क्यों लड़नेको तैयार हो गये, जब कि लड्डूओंमें मैंने माल लगाया था, और उनसे इन लोगोंको लाभ भी हुआ?"

वकील—"तुम परले सिरेके बेवकूफ़ हो। भला ताक़तकी दवाकी क़ीमत पेशगी ली जाती है या बादमें? सोचो, जब कोई कमज़ोर तुमसे ताक़तकी दवा लेने आयगा, तब वह कमज़ोर होगा। मगर जब उसे ताक़तकी दवा मिल जायगी और उससे उसे फ़ायदा होगा, तब वह खुद ताक़तवर हो जायगा। तुम्हारे लड्डुओंसे इन लोगोंको फ़ायदा न हुआ होता तो ज़रूर तुमको दाम मिल जाते। अब, जब कि उनमें ताक़त आ गई है, तुम सरीखे दुबले-पतलेको दाम देना उनके लिए पूरी हिमाक़त है। पहले तुम उनसे ज्यादा ताक़तवर थे, अब तुम्हारे दवाके लड्डू खाकर वे तुमसे ज्यादा ताक़तवर हो गये हैं। जब तुम उनके यहाँ तकाज़ा करने गये थे, तब बिना पिटे घर लौट आये इसीमें अपनी खुशकिस्मती समझो।"

अभागचन्द इन बातोंको सोचते हुए घर लौटे और स्त्रीसे बोले—"ताक़तकी दवाकी क़ीमत तुरन्त ले लेनी चाहिए, नहीं तो फिर नहीं मिलती। लोग दवा खाकर ताक़तवर हो जाते हैं और दामोंका तकाज़ा करो तो मार-पीटपर उतारू हो जाते हैं।"

स्त्रीने चकित होकर कहा—"ठीक तो है! यह बात हम लोगोंको पहले नहीं सूझी!"

अभागचन्दने रुखाईसे कहा—"महादेवजीको भी नहीं सूझी थी, जब उन्होंने भस्मासुरको वर दिया था।"

सोवियट रूसकी औद्योगिक उन्नति

श्रीयुत भालचन्द्र आपटे

जिस देशका उद्योग-व्यवसाय काफ़ी बढ़ा हुआ हो, उसी देशका सम्मान वर्तमान संसारमें किया जाता है। किसी भी देशकी आर्थिक उन्नति उसकी औद्योगिक स्थितिपर निर्भर है। इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, जापान इत्यादि साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने उद्योग-व्यवसायके बलपर ही संसारमें बड़े-बड़े साम्राज्य क़ायम कर सके हैं, और यही कारण है कि संसार भरमें उनका दबदबा दिखाई देता है। महासमरके बाद जितने नये राष्ट्र उत्पन्न हो गये हैं, उनमें से प्रत्येककी यह महत्त्वाकांक्षा है कि हम भी इंग्लैंड और अमेरिकाकी तरह संसारकी बड़ी शक्तियोंके पंक्तिमें सम्मानके साथ बैठनेका अधिकार प्राप्त करें। उनकी यह महत्त्वाकांक्षा औद्योगिक उन्नतिसे ही सफल हो सकती है। रूस भी ऐसे राष्ट्रोंमें से एक है, परन्तु वह अन्य देशोंकी भाँति साम्राज्य-विस्तारके लिए लालायित नहीं है। वह देशके उद्योग-व्यवसायपर राज्यका कब्ज़ा रखकर श्रम और पूँजीके झगड़ेको जड़से ही खतम करना चाहता है।

रूसके राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक किसी भी प्रश्नपर विचार करनेके पूर्व 'नवम्बरकी राज्य-क्रान्ति' (१६१७)

तथा उसके बादके तीन वर्षोंमें जो घटनाएँ हुईं, उनका रूसपर आर्थिक दृष्टिसे क्या असर हुआ, यह देखना चाहिए। रूसकी जनता राजा, सरदारों तथा अमीर-उमराओं और बड़े-बड़े सेठ-साहूकारोंके अत्याचारोंसे तंग आ गई थी। ज़मींदारों और सेठ-साहूकारोंके ज़ुल्म और ऋणके नीचे दबे हुए किसान, सोलह सोलह घंटे मिलों और कल-कारखानोंकी गन्दी हवामें अपने ख़ूनको पानी करनेवाले और उसपर भी मिल-मालिकों और पूँजीपतियोंके नौकरों-द्वारा पीटे जानेवाले मज़दूर, लगातार तीन सालसे जर्मनी-जैसे ज़बरदस्त राष्ट्रसे टक्कर लेनेवाले फौजी सिपाही और लड़ाईके खर्चके नीचे पीसे जानेवाले रूसके प्रजाजन—ये सब उस सुअवसरकी प्रतीक्षामें थे, जब वे अपने सब बंधनोंको काटकर और सब प्रकारके अत्याचारोंसे मुक्त होकर संसारके अन्य देशोंके नागरिकोंकी तरह स्वाभिमान पूर्वक सरको ऊँचा कर सकेंगे। ७ नवम्बर १९१७ ही वह दिन था, जिस दिन रूसका शासन-सूत्र बोल्शेवी लोगोंके हाथोंमें आ गया। सोवियट सरकारने समय समयपर सूचनाएँ निकालकर ज़मीनपर किसानोंका और कल-कारखानों पर मज़दूरोंका अधिकार घोषित कर दिया, और लड़ाई बन्द कर दी। इससे किसान, मज़दूर तथा सैनिक तीनों सन्तुष्ट हुए, और सारे देश-भरमें कुछ कालके लिए शान्ति स्थापित हो गई, ऐसा प्रतीत होने लगा।

सर्वसाधारण समझते थे कि यह शान्ति हमेशाके लिए हो गई है, परन्तु जो राजनीतिके सरल व कुटिल दोनों अंगोंको अच्छी तरह समझनेवाले कुछ राजनीतिज्ञ थे, उनको इस बातका पूरा पता था कि वास्तविक अशान्तिका काल इसके बाद ही आनेवाला है। रूसकी इस नई सरकारके विरुद्ध संसारकी सब बड़ी-बड़ी शक्तियाँ एक घोर षड्यन्त्रकी रचनामें लगी हुई थीं। फिर इस बाहरी भयके अतिरिक्त भीतरी भय भी कम नहीं था। राजपक्षके लोग, प्रतिघातवादी (Reactionaries) और मन्शेवी लोग फिरसे अपनी-अपनी शक्ति बटोरकर बोल्शेवी सरकारकी नींवको खोखला करनेका प्रयत्न बड़ी दृढ़ताके साथ कर रहे थे। इन दो संकटोंका सामना कर बोल्शेवी-सरकार क़ायम रही।

रूसने लड़ाई बन्द करके शान्ति स्थापित करनेके उद्देश्यसे महासमरमें भाग लेनेवाले सब राष्ट्रोंके पास पत्र भेजा। जर्मनीको छोड़कर किसीने जवाब तक देना उचित नहीं समझा। जर्मनीसे ब्रेस्टलिटोवस्क (Bresthtovsk) में रूसकी संधि हो गई। इस संधिके कारण रूसको आर्थिक दृष्टिसे बहुत नुकसान हुआ। ७५% लोहा व कोयला और ५४१० मिलें तथा कल कारखाने उसके हाथसे निकल गये। रूसकी स्थिति बहुत खराब थी, इसीलिए उसने यह अपमानजनक संधि स्वीकार कर ली।

जर्मनीसे संधि कर लेनेके कुछ ही महीने बाद वह आन्तरिक कलह (Civil war) और बाह्य हस्तक्षेप (Intervention) इन दोनोंके भँवरमें तीन वर्ष तक (१९१८-१९२० अन्त) फँसा रहा। मित्र राष्ट्रोंने सबसे पहले उसके प्रति आर्थिक अवरोध (Economic blockade) करनेका निश्चय किया। शत्रुको झुकानेके लिए सबसे निष्ठुर परन्तु अचूक यही तरीका है। इसी समय वहाँ आन्तरिक कलहका प्रारम्भ हुआ। अलक्ज़िफ (Alexeiev), कार्निलाफ (Kornilov), केलेडिन (Kaledin) इत्यादि नेताओंके नेतृत्वमें बोल्शवी सरकारके विरोधी दलने बलवा किया। मित्र राष्ट्रोंसे इनको अस्त्र-शस्त्र मिला करते थे। इस भीतरी लड़ाईके साथ साथ बाहरी आक्रमणोंका भी सामना करना पड़ता था। सबसे पहले फ्रान्सके भड़कानेसे जेको-स्लोवैक लोगोंने, जो कि भगोड़े तथा समर क़ैदी (War prisoners) थे, (ये लोग व्लैडिवास्टक होते हुए भागे थे) रूसपर आक्रमण करना शुरु किया। उन्होंने ट्रैन्साइबेरियन रेल रोडके बहुत बड़े हिस्सेको घेर लिया और साइबेरियाके पेन्ज़ा, समारा, ओम्स्क इत्यादि शहरोंपर कब्ज़ा कर लिया। जहां-जहां वे गये वहां-वहां सोवियट शासनको भंग करते गये। एक तरफ तो ज़ेकोस्लोवैकोंकी सहायता करनेके बहानेसे मित्र-राष्ट्रोंकी एकत्रित सेनाने, जिसमें अमेरिका और जापानकी सेनाएँ मुख्य थीं, व्लैडिवास्टकपर कब्ज़ा कर लिया।

दूसरी तरफ अमेरिका और इंग्लैण्डकी सेनाने आरकाञ्जेलपर अधिकार कर लिया। अब जर्मन लोगोंने भी रूसका विरोध करना शुरू किया। जर्मन सेना युक्रेनमें घुस गई और उसने वहाँके प्रतिघातवादियोंका राज्य क़ायम किया। उसके बाद जर्मन लोग नोवगवडानको पार कर काले समुद्रके उत्तरी हिस्सेमें पहुँच गये। वहीं पर जर्मनीका मित्र तुर्की भी काकेशसकी ओरसे हमला करता हुआ उनसे आकर मिल गया। जब जर्मनीको पश्चिमकी ओरसे मित्र-राष्ट्रोंसे हार खानी पड़ी, तब फरासीसियोंने युक्रेनपर कब्ज़ा कर लिया। यूडेनिच नामक एक सेनापतिने पेट्रोग्रेड तक पहुँचनेका असफल प्रयत्न भी किया। अन्तमें पोल लोगोंको आगे करके आख़िरी प्रयत्न किया गया। परन्तु रूसके लोग, जो अपने देशके लिए, अपने आर्थिक प्रयोगको सफल बनानेके लिए और सारे संसारको एक नई दुनियाका अनुभव करानेके लिए अपने प्राणोंकी आहुति देनेको तैयार थे, जी जानसे लड़े। उन्होंने संसारको दिखा दिया कि लेनिन और उनके साथियोंने सोवियट-पद्धतिपर राज्यकी जो यह इमारत बाँधी है, वह बालूकी नींवपर नहीं, बल्कि देशकी गरीब किसानों और मज़दूरोंकी हड्डियों और खूनके ऊपर बाँधी है, उसे गिरानेके लिए दैवी कोप भी असमर्थ है।

अब इन तीन वर्षोंके अशान्ति-कालकी घटनाओंके पर्यालोचनके बाद यह देखना चाहिए कि १९१४ से १९२० तक किस प्रकार रूसकी आर्थिक दुर्गति हुई। सोवियट सरकारने औद्योगिक दृष्टिसे कितनी उन्नति की है, यह बात उक्त शासनप्रणाली कायम होनेके पूर्व उद्योग-व्यवसायकी रूसमें जो अवस्था थी, उसका ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद ही मालूम हो सकती है।

जिस समय पश्चिमी यूरोप औद्योगिक उन्नतिके फल चख रहा था, उस समय रूसमें फ्युडलिज्मके अवशिष्ट मौजूद थे। १८८५ तक रूसका आर्थिक क्षेत्र घरेलू उद्योग-धन्धों (Cottage industries) में सीमित था। जाड़ोंमें जब किसानोंको कोई दूसरा खेतीका काम नहीं रहता था, तब वे इन्हींपर अपना निर्वाह करते थे। इससे किसानोंकी आवश्यकताएँ तो पूरी हो जाया करती थीं, परन्तु बड़े-बड़े सरदारों, सेठ साहूकारों या अमीर उमरावोंको विदेशोंसे आनेवाली चीजोंपर पूर्ण रूपसे निर्भर रहना पड़ता था। उस समय जो कारखाने थे, उनसे पैदा होनेवाली चीजें रूस जैसे एक बड़े मुल्कके लिए नहींके समान थीं। १८९० के क़रीब फरासीसी, जर्मन इत्यादि विदेशी लोग अपनी-अपनी पूँजी लेकर रूसके मास्को, पेट्रोग्रेड आदि बड़े-बड़े शहरोंमें आने लगे। रूसमें औद्योगिक उन्नतिके लिए आवश्यक साधन—कोयला, तेल, लोहा और कच्चा माल—मौजूद थे। धीरे धीरे सब प्रकारके कारखाने खुल गये। १९१० में रूस-भरमें पंद्रह हजार कारखाने स्थापित हुए और तीस लाख रूबलोंकी* उत्पत्ति होने लगी। दो-चार वर्ष बाद यह उत्पत्ति डेढ़गुनी हो गई, जिसमें एक तृतीयांश सूत और कपड़ेके कारखानोंसे ही होती थी।

यद्यपि देखनेमें यह संख्या बहुत बड़ी मालूम होती है, परन्तु रूस जैसे सारे भूखण्डके एक-षष्ठांशको व्याप्त करनेवाले और साढ़े सतरह करोड़ जन-संख्याको आबाद करनेवाले देशके लिए यह बहुत ही कम थी, उसी समय अमेरिकामें जो जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनोंमें रूससे बहुत छोटा था, दो लाख पचहत्तर हज़ार कारखाने थे, जिनसे २४ अरब डालरोंकी† उत्पत्ति होती थी। रूसके कुल व्यवसायोंमें जितनी पूँजी लगी थी, उससे कुछ ही कम अमेरिकाके 'युनाइटेड स्टेटस स्टील-कार्पोरेशन' नामक केवल एक कम्पनीकी थी। सन् १९०९ में आदमी पीछे रूसमें १६० डालर और अमेरिकामें २२६० डालरकी उत्पत्ति थी। उपर्युक्त तुलनासे महासमरके पूर्वके रूसकी औद्योगिक परिस्थितिकी कुछ कल्पना की जा सकती है।

* एक रूबल (Rouble) २ शिलिंग १० पेन्सका होता है अर्थात् दो रुपये दो आनेके बराबर।

† एक डालर ४ शिलिंग २ पेन्सका होता है अर्थात् तीन रुपये दो आनेके बराबर।

रूसके उद्योग-व्यवसायको, उसकी बाल्यावस्थामें ही महासमरके कारण असाधारण धक्का पहुचा। उद्योग-व्यवसायका बढ़ना विदेशसे यन्त्र-सामग्री आनेपर निर्भर करता था। जर्मनीके तटावरोधके कारण रूससे कच्चा माल विदेशोंको नहीं जा सकता था और जब तक कच्चा माल जाना बंद रहा, तब तक यंत्र सामग्री भी नहीं आ सकती थी। मजदूरोंको कारखाने छोड़कर सेनामें भरती होना पड़ा। जो थोड़ेसे कुशल कारीगर थे, उनको ऐसे कारखानोंमें काम करना पड़ा, जिनमें लड़ाईका सामान बनता था। देशकी पूंजी ऐसे ही उद्योगोंमें केन्द्रित हो गई। इससे थोड़े कल-कारखाने थे, वे भी नष्टप्राय हो गये। नवम्बरकी क्रान्तिके पहले कच्चा माल और कोयला आदि ईंधनका सामान खतम हो गया था। बहुतसे यंत्र, जिनसे कई महीनोंमें काम नहीं लिया गया था, बेकार हो गये थे। उत्पत्ति (Production) तथा उत्पादन-शक्ति (Productive capacity) कम हो गई थी।

जब सोवियट सरकार स्थापित हो गई, तब उसको इन्हीं बिखरे हुए और अनुपयुक्त कारखानोंसे काम लेना पड़ा। इन्हींपर मजदूरोंका कब्ज़ा घोषित किया गया था। इतना होनेपर भी रूसके आपत्तिके दिन समाप्त नहीं हुए थे। १९१८ से १९२० तक सोवियट सरकारको आन्तरिक कलह और बाह्य हस्तक्षेप दोनोंका मुक़ाबिला एक ही साथ करना पड़ा। ऐसे समय उसे एक ऐसी नीतिका अवलम्ब करना पड़ा, जिसको फौजी साम्यवाद (Military communism) कहते हैं। भीतरी और बाहरी दोनों लडाइयोंके लिए अपनी फौजी शक्ति बढ़ाना आवश्यक था और साथ-साथ अपने देशका शासन भी सुचारु रूपसे चलाना था, इसीलिए इस नीतिका अवलम्बन किया गया।

इस फौजी साम्यवादके समयमें 'प्रधान-आर्थिक-समिति' (Supreme Economic Council), जिसके उनसठ मुख्य केन्द्र थे, रूसके सारे औद्योगिक प्रबन्धकी देख-भाल करती थी। 'प्रधान-आर्थिक-समिति'के नीचे काम करनेवाली क्रान्तिकारी उपसमितियां (Revolutionary Committees) थीं, जो अपने-अपने केन्द्रोंके कामको देखा करती थीं, कोयला, चमड़ा, कागज़, कपड़ा इत्यादिके उद्योगोंका प्रबन्ध इनके सुपुर्द किया गया था। जितनी उत्पत्ति होती थी, उसमें से कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंके लिए रखकर बाक़ी सब वितरण (Distribution) करनेके लिए राज्यको दे दी जाती थी। राज्य इसके बदलेमें, औद्योगिक उन्नतिके लिए आवश्यक कच्चा माल, ईंधन-सामग्री (Fuel) इत्यादि वस्तुओंकी पूर्ति करता था। पक्के मालका वितरण टिकट (Ration cards) द्वारा होता था। 'He shall not eat who does not work' अर्थात 'जो काम नहीं करता, वह भोजन भी नहीं कर सकता'—इसी सिद्धान्तपर भोजन टिकट दिये जाते थे। धनका उपयोग बन्द कर दिया गया था। सारा व्यापार एक सुसंगठित वस्तु-विनिमय (Systematic barter) से होता था। हिसाब-किताब (Book-keeping & accounting) बिल्कुल नये ढंगसे रखा गया था।

इस साम्यवादके कारण बहुत असन्तोष फैल गया। उस असाधारण परिस्थितिमें यदि इस तरहका कोई ज़बरदस्त संगठन नहीं होता, तो महासमरके बादके बिखरे हुए उद्योगोंके अस्तित्वमें भी शंका थी, परन्तु अशान्ति काल समाप्त होनेपर भी इस तरहकी कोई नीति चलाते रहनेसे और अधिक असन्तोष फैल जानेके कारण कुछ अनिष्ट परिणाम निकलनेकी भी सम्भावना थी। हुआ भी ऐसा ही। बोलगा और साइबेरियाके किसानोंने विद्रोह किया। किसानोंका यह कहना था कि "हमारे द्वारा पैदा की गई वस्तुओंपर हमारा अधिकार नहीं है, बल्कि सरकारका है। जंगल कहनेको तो हमारा है, पर उसकी लकड़ी सरकारकी है। जब हमारी मेहनतका फल हमें मिलनेवाला नहीं है, बल्कि सरकारको मिलनेवाला है, तो हमारी परिस्थितिमें क्रान्तिसे क्या परिवर्तन हुआ? पहले हम ज़मींदार और सेठ-साहूकारोंका घर भरते थे, अब सरकारका खज़ाना भरेंगे, हम जैसे थे वैसे ही रह गये।"

(यहाँपर यह कह देना आवश्यक है कि उत्पत्ति और वितरणके क्षेत्रोंपर फौजी साम्यवादके कारण सरकारका अधिकार था)। इसी तरहका दूसरा विद्रोह क्रानस्टाड (Cronstodt) के जहाजरके मज़दूरोंने कर दिया। इन मज़दूरोंको ट्राट्स्की (Trotsky), 'Pride and beauty of the Revolution') अर्थात्— क्रान्तिका गौरव और सौन्दर्य' कहता है। जब इन्होंने भी असन्तोष प्रकट किया, तब सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। यद्यपि दोनों विद्रोह शान्त कर दिये गये, तो भी क्रान्तिकारी नेता बलवेका महत्त्व भलीभाँति समझ गये। रोगीको वही वैद्य अच्छा कर सकता है, जो रोगीकी नाड़ीपर हाथ रखकर क्या रोग हुआ है, यह जानकर तुरन्त उसकी ठीक दवा शुरू कर दे। साम्यवादी नेताओंने ठीक इसी तरह प्रजाकी नाड़ीपर हाथ रखकर बलवेकी जड़को खोजा, और उसका तुरन्त इलाज किया। वे समझ गये कि यह एक नये प्रकारका वर्ग-संघर्ष (Class war) है।

ट्राट्स्कीने एक स्थानपर कहा है—"हम अपने प्रयत्नमें पूर्णरूपसे सफल नहीं हुए, इसका कारण है कि हम तैयार नहीं थे।" कार्ल मार्क्सका ध्यान जिस वर्ग-संघर्षकी ओर स्वप्नमें भी नहीं गया था, वह रूसमें प्रत्यक्ष दिखाई दिया। कार्ल मार्क्स केवल दो ही वर्ग जानता था—चूसनेवाले और चूसे जानेवाले। इसलिए उसने वर्ग-संघर्षका समर्थन किया। उसकी कल्पना तक नहीं थी कि किसान और मज़दूरोंमें आपसमें कभी किसी समय लड़ाई हो सकती है। किसानोंने उतनी ही पैदावार कर रखी, जितनकी उनको अपने घरके लिए आवश्यकता थी। उनको शहरके कारखानोंमें तैयार होनेवाली वस्तुओंकी इतनी ज़रूरत नहीं रहती थी, क्योंकि देहातोंमें प्रचलित उद्योग-धन्धोंसे ही उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो जाया करती थीं। नये औज़ारोंका उपयोग किस प्रकार करते हैं, उनको मालूम नहीं था। शहरोंमें भी देहातियोंके उपयोगका सामान बहुत कम प्रमाणमें बनता था। इस कारण शहरोंसे देहातोंमें बहुत कम माल जाया करता था, परन्तु इसके मुक़ाबिलेमें देहातोंसे अन्न और कच्चा माल अधिक मात्रामें शहरोंको जाता था। यही झगड़की जड़ थी। किसानोंने पैदावार कम कर दी। देशकी अन्न-सामग्री (Food supply) कम हो गई। इसका असर उद्योग-व्यवसायपर भी पड़ा। मज़दूरोंने, पेट भरनेके लिए काफ़ी अन्न अथवा मज़दूरी जब तक न मिले, तब तकके लिए काम बन्द कर दिया।

इसी समय एक भीषण दुर्भिक्षका उदय हुआ। १९२० के अन्त और १९२१ के प्रारम्भके अकालकी तरहका अकाल इसके पहले एक-दो बार ही हुआ होगा। संकट अपने परिवार और मित्रवर्गके साथ आता है, ऐसी कहावत है। इस आपत्तिकी दशामें संक्रामक रोगोंने भी रूसमें ज़ोर पकड़ा।

इतने प्रकारकी आपत्तियाँ किसी देशपर जब एक ही समय आ जाती हैं, तब उस देशकी आर्थिक दशा कितनी सोचनीय हो जाती है, इसकी कल्पना करना कठिन है। जेनेवाकी कानफ्रेन्समें यह बताया गया है कि रूसके उद्योगको ६२१२ मिलियन रूबलका,—जिसमें कोयलेको २५१८ मि०रू०, कपड़ेको २०८९ मि०रू० और खेतीसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायोंको १८०१ मि०रू०,—घाटा हुआ। १९१३में उद्योगोंमें जितनी उत्पत्ति होती थी, उसके केवल १६ १८ प्रतिशतकी उत्पत्ति १९२१में, जब नवीन आर्थिक नीतिकी घोषणा की गई, रह गई। कोयला २६ प्रतिशत, कच्चा लोहा (Iron ore) १॥ प्रतिशत, सूत ५ प्रतिशत, तेल (जलानेका) ४२ प्रतिशत, चीनी ६ प्रतिशत, रसायनिक (chemicals) ५ प्रतिशत रह गये। राष्ट्रीय धन ९२·५ मिलिअर्डसे ५९·३ मिलिअर्ड पर आ गया, अर्थात् ३६ प्रतिशत घट गया।* उपर्युक्त अंकोंसे स्पष्ट है कि अशान्तिके कारण रूसके आर्थिक जीवनको, विशेषकर उद्योगको कितनी बड़ी चोट पहुँची थी। देशकी इस गिरती हुई हालतको देखकर साम्यवादी नेताओंने अपने

* उपर्युक्त अंक मुख्य रूपसे सोवियट यूनियन इयर बुक १९३० से लिया गया है।

सिद्धान्तोंको कुछ कालके लिए दूर रखकर देशकी भलाईके उद्देश्यसे एक नई आर्थिक नीतिका सहारा लिया, जिसके लिए वे धन्यवादके पात्र हैं।

१९२१ के वसन्त कालमें सोवियट-सरकारने नवीन आर्थिक नीतिकी घोषणा की। इस नीतिकी घोषणासे रूसके आर्थिक जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें परिवर्तन हो गया। यहाँ हमें उसके औद्योगिक क्षेत्रकी ही चर्चा करनी है। तीन वर्षके 'फौजी साम्यवाद' के कालमें जो अनुभव हुआ, उसके आधारपर यह परिवर्तन किया गया था। देहातोंकी दस्तकारियोंको पहलेकी तरह पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई। इतना ही नहीं, बल्कि उनको उत्साहित करनेका पूरा प्रयत्न किया गया। व्यक्तिगत व्यवसायों, कम्पनियों और सहयोग-समितियों द्वारा चलाये जानेवाले व्यवसायोंको पूर्ण-स्वतन्त्रता दे दी गई। आजकल रूसमें जो औद्योगिक संगठन दिखलाई देता है, उसका ढाँचा इसी समय बनाया गया था।

राजके नियुक्त ट्रस्ट द्वारा, जिनको पूर्णरूपसे व्यापारी पद्धतिपर संगठित किया गया है, वर्तमान उद्योगका प्रबन्ध होता है। सार्वजनिक बजटसे इसका किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। कुछ व्यवसायोंको, जो महत्त्वके और नये हैं और जिनको व्यापारी-पद्धतिपर चलाना सम्भव नहीं है राजकी तरफ़से कुछ सहायता दी जाती है। जिन व्यवसायोंमें मुनाफा होता है, उनको अपने मुनाफेका कुछ हिस्सा राजको देना पड़ता है।

प्रत्येक ट्रस्टका काम उद्योगके किसी एक अंगको लेकर उस अंगके जितने कारखाने उस ट्रस्टमें शामिल हों उन सबका प्रबन्ध (management) स्वावलम्बनके आधारपर करना है। १० अप्रैल १९२३ के दिन रूसके लोक नियुक्त मंत्रि-मंडल (Council of peoples commissars) ने एक प्रस्ताव पास करके इस प्रकारके ट्रस्ट बनानेकी अनुमति दे दी। परन्तु इन ट्रस्टोंको यदि कोई घाटा होगा, तो राजकोष उसके लिए जिम्मेदार नहीं रहेगा। और यदि ट्रस्टको मुनाफा होता है, तो ट्रस्टकी अनुमतिके बाहर राज उस मुनाफेमेंसे कुछ नहीं लेगा। इस प्रस्तावसे स्पष्ट है कि सरकार ट्रस्टको पूर्ण स्वतंत्रता देती है, इतना ही नहीं बल्कि उसको यह विश्वास भी दिलाती है कि उसके मुनाफेपर सरकारका हस्तक्षेप नहीं रहेगा।

ट्रस्ट अपने कार्यके लिए आवश्यक पूँजी बैंकों तथा अन्य साख-संस्थाओं (Credit institution) से लेते हैं। परन्तु दीर्घकालके लिए यदि उनको कर्ज लेना होता है तो प्रधान आर्थिक समितिकी आज्ञा लेनी पड़ती है। परन्तु इस तरहकी इजाजत देनेके बाद भी राज उस कर्ज़की अदायगीका ज़िम्मेदार नहीं रहता। यह अदायगी उस उद्योगसे होनेवाले मुनाफेमें से ही होनी चाहिए। इस तरह ट्रस्ट राजकोष पर किसी प्रकारका भार न डालकर उत्पत्तिका प्रबन्ध स्वावलम्बनके सिद्धांतपर करता है। राजको यह फायदा है कि उसपर कोई भार न रहते हुए उसके उद्योग-व्यवसायका प्रबन्ध अच्छी तरह हो जाता है।

यद्यपि मुनाफा करना क़ानून-द्वारा मना नहीं है तो भी अनावश्यक मुनाफा लेनेकी प्रवृत्तिको अन्य कई नियमोंसे मर्यादित करनेका पूरा प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक ट्रस्टको अपने सब प्रकारके व्यवहारों (Transactions) की रजिस्ट्री करानी पड़ती है। राजके अथवा सहयोगी-समितियोंके व्यापारिक-संगठनोंको अन्य व्यापारिक संगठनोंकी अपेक्षा अधिक सुविधाएँ देनी पड़ती हैं। सबसे महत्वकी बात मूल्य निर्धारित करना कराना, जिसपर मुनाफा निर्भर करता है, ट्रस्टके हाथमें नहीं है।

ट्रस्ट दो प्रकारके होते हैं—(१) समकक्ष (Horizontal) (२) क्रमागत श्रेणिबद्ध (Vertical)। उदाहरणार्थ कपड़ा बनानेवाली मिलोंका जो ट्रस्ट होगा, वह समकक्ष ट्रस्ट कहलायगा। क्रमागत श्रेणिबद्ध ट्रस्ट वह है, जो कपाससे कपड़ा बनाने तक बीचमें जितने कारखाने हैं, जैसे बीज निकालना, प्रेस करना, धुनना सूत कातना इत्यादि, सबका प्रबन्ध देखता

हो। दोनों प्रकारके ट्रस्ट रूसमें वर्तमान हैं। रूसके सब बड़े-बड़े कारखाने ट्रस्टमें आ मिले हैं।

जिस प्रकार पक्षियोंके दो मुख्य पंख होते हैं उसी प्रकार रूसके उद्योगके भी दो पंख हैं जो उसको सम्हालकर रखते हैं। उसमें से एकका वर्णन ऊपर हो चुका। ट्रस्ट प्रबन्धका काम करता है। परन्तु कच्चे मालका लाना और तैयार मालको बाज़ारोंमें पहुँचाना ये दो काम रह जाते हैं। इस कामको सिन्डिकेट (Syndicate) नामका दूसरा एक संगठन करता है। कई ट्रस्ट एक सिन्डिकेटमें शामिल हो जाते हैं। एक प्रकारके कारखानोंका प्रबन्ध करनेवाले जितने ट्रस्ट हैं, वे उस प्रकारके ट्रस्टमें मिल जाते हैं। उदाहरणके लिए नमकके सिन्डिकेटमें दप स्टेट ट्रस्ट, जो रूस-भरमें पैदा होनेवाले नमकका ६० प्रतिशत पैदा करते हैं, शामिल हैं। कोयला तेल, चमड़ा, नमक, कपड़ा, चीनी, खेतके यंत्रों इत्यादिके २३ सिन्डिकेट इस समय रूसमें काम कर रहे हैं। थोक पद्धतिपर किये गये संगठनसे सबसे बड़ा फ़ायदा यह है कि माल भेजने आदिमें जो व्यर्थ खर्च होता है, उसमें बचत होती है। सिन्डिकेट मुख्यरूपसे निम्नलिखित काम किया करते हैं।

(१) बाज़ारोंका निरीक्षण करना, व्यापारकी परिस्थितिमें होनेवाले परिवर्तनको देखना, आर्डर लेना और भिन्न-भिन्न ट्रस्टोंके पास उनकी उत्पादन शक्तिके अनुसार उन आर्डरोंकी पूर्ति करनेके लिए भेजना।

(२) तैयार मालकी बिक्रीकी शर्तें निश्चित कर व्यापार विभागके मन्त्री (Commissar for trade) की सहायतासे मूल्य निर्धारित करना।

(३) कच्चे मालका वितरण और केन्द्रित खरीद (Contralised purchase)

(४) गुणके अनुसार वस्तुओंको श्रेणियोंमें विभक्त करना।

(५) खरीदने तथा बेचनेके कामको करनेवाली एजन्सियाँ कायम करना।

इन एजेन्सियोंको ट्रस्ट अपने कारखानेमें तैयार किया गया माल बिक्रीके लिए देते हैं और एजेन्सियाँ इस मालको भिन्न-भिन्न बाजारोंमें माँगके अनुसार भेज देती हैं।

रूसका आर्थिक जीवन दिन-प्रतिदिन इतना विस्तृत और जटिल होता जा रहा है— खासकर खेती और उद्योगकी उन्नति इतनी अधिक हुई है—कि देशका आंतरिक और विदेशी व्यापार यन्त्रकी भाँति नियमित तरीकेपर किस प्रकार चलाया जाय, इस ओर सरकारका ध्यान बड़े ज़ोरोंके साथ आकर्षित हो रहा है। रूसका व्यापार सिन्डिकेट, सहयोग समितियों तथा अन्य व्यापारी संस्थाओंके हाथमें है। इन तीनोंमें व्यापारके लिए थोड़ी-बहुत स्पर्धा बनी ही रहती है। उसको बन्द करनेके लिए इन सब संस्थाओंका एक संगठनमें शामिल होना आवश्यक है। इसी उद्देश्यसे 'दी यूनियन आफ सिन्डिकेट्स' (The Union of syndicates) नामका एक संगठन क़ायम हुआ है। यह यूनियन और कामोंके अतिरिक्त निम्न-लिखित बातोंका भी ध्यान रखते हैं—

(१) सहयोग-समितियों तथा व्यापारी संस्थाओंका कच्चा माल पैदा करनेवालोंसे सम्बन्ध बनाये रखना।

(२) सिन्डिकेट तथा व्यापारी संस्थाओंकी आर्थिक आवश्यकताओंकी पूर्तिका उपाय सोचना।

निम्नलिखित अंकोंसे यह स्पष्ट हो जायगा कि केवल चार सालकी अवधिमें सिन्डिकेट-द्वारा होनेवाली बिक्री कितनी अधिक बढ़ गई है—

१९२५-२६	१,५४५.६ मिलियन रुबल्स
१९२८-२९	६,०५८.५ ,, ,,

राजके जो उद्योग हैं, उनका प्रबंध तथा नियंत्रण प्रधान आर्थिक समितिके जिम्मे रहता है। यही समिति उद्योग विभागके अध्यक्ष (Commissar for Industry) का काम भी करती है। यूनियन आफ सोशलिस्ट सोवियट रिपब्लिकस यू० एस० एस० आर० में राज्यके उद्योगोंका नियंत्रण तीन प्रकारसे होता है। जिन व्यवसायोंमें बड़ी मात्रामें उत्पत्ति होती हो, उनका नियंत्रण यू० एस० एस० आर० की प्रधान आर्थिक समिति द्वारा होता है। मध्यम स्थितिवाले

व्यवसायोंका नियन्त्रण प्रजातन्त्रोंकी प्रधान आर्थिक समिति द्वारा और मामूली उद्योगोंका नियंत्रण म्यूनिस्पैलिटी द्वारा होता है। प्रधान आर्थिक समितिके हाथमें नियंत्रण रहता है और वही सार्वजनिक सिद्धान्तोंको भी निर्धारित करती है। ट्रस्ट और सिंडिकेट उत्पत्ति तथा व्यापार करते हैं।

इस प्रकारके व्यापारी संगठनके अतिरिक्त नवीन आर्थिक नीतिके अनुसार और कई प्रकारकी सुविधाएँ दी गई हैं। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिको स्वतंत्ररूपसे उद्योग करनेका अधिकार दिया गया है। उद्योगको बढ़ानेके लिए आवश्यक पूँजीको आकर्षित करना ही इसका उद्देश्य हो सकता है। रूसमें धनकी कमी है और उद्योगको बढ़ानेके लिए पूँजीकी आवश्यकता है। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब धनिकों और पूँजीवालोंको सुविधाएं दी जायें और उनको विश्वास दिलाया जाय कि उनका धन सुरक्षित रहेगा। रूसकी नैसर्गिक सम्पत्ति प्रचुर परिमाणमें है, परन्तु उसका उपयोग करनेके लिए पूँजी और जानकार आदमियोंकी आवश्यकता है। विदेशोंमें पूँजी तथा जानकार आदमी दोनों हैं। पर इनका उपयोग तभी हो सकता है, जब विदेशी पूँजी आकर्षित करनेके लिए खास रिआयतें की जायँ। इसी उद्देश्यसे समय समयपर घोषणाएँ निकालकर उनको सुविधाएँ दी जाने लगीं। १५ सितम्बर १९२८ को बोल्शवी सरकारने एक वक्तव्य प्रकाशित कर यह घोषित किया कि खान, धातु, मोटर, काग़ज़ आदिके व्यवसाय करनेवालोंको अनेक उदारतापूर्ण सुविधाएँ दी जायँगी। सबसे बड़ी सुविधा यह दी गई कि बाहरसे आनेवाली यंत्र सामग्रीपर कर नहीं लिया जाने लगा। करके आधारपर रियायतें तीन प्रकारकी हैं :—

(१) जो अन्य अराजकीय उद्योगों (Private enterprise) की तरह कर देते हैं।

(२) जो राज-द्वारा चलाये जानेवाले उद्योगोंकी तरह कर देते हैं।

(३) जो करके स्थानमें कोई निश्चित रकम प्रति वर्ष राजको देते हैं।

नवीन आर्थिक नीतिकी घोषणाके बादसे ही इस प्रकारकी सुविधाएँ दी जाने लगीं। परन्तु १९२२ में ही पहले-पहल विदेशी धनिकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। १९२२-२६ में कन्सेशन कमेटीके पास २६७० प्रार्थना-पत्र रिआयतें पानेके लिए आये। सबको रिआयतें नहीं दी गईं। केवल ५६ के प्रार्थना-पत्र स्वीकृत हुए। ये रिआयत पानेवाले इस प्रकार विभक्त हैं—२१ खानोंमें काम करनेवाले, १६ पक्का माल तैयार करनेवाले, ४ लकड़ीका व्यवसाय करनेवाले, ११ खेती-सम्बन्धी व्यवसाय करनेवाले, ६ रेल आदि वाहन-व्यवसाय करनेवाले, ६ इमारतोंका काम करनेवाले और २६ व्यापार करनेवाले। रिआयतें पानेवालोंमें जर्मनीके सबसे अधिक, फिर जापान, अमेरिका, इंग्लैंड आदि राष्ट्र हैं। सरकार-द्वारा प्रधान आर्थिक समितिके नीचे काम करनेवाली एक कन्सेशन कमेटी मुक़र्रर हुई है, जो अपने प्रतिनिधि भिन्न-भिन्न देशोंमें रखती है और इनके द्वारा विदेशियोंके आये हुए प्रार्थना पत्रपर प्रधान आर्थिक समितिकी रायसे रिआयतें निर्धारित की जाती हैं।

निर्धारित कालके लिए पट्टा (Lease) देनेका भी तरीका है। यह पट्टे सहयोग-समितियों, कम्पनियों तथा व्यक्तियोंको दिये जाते हैं। यह रिआयतोंकी तरह दीर्घकालके लिए नहीं दिये जाते; यह पाँच-दस सालके लिए होते हैं। छोटे व्यवसाय (Light Industries) को चलानेका अधिकार उनको रहता है।

सम्मिलित कम्पनी (Mixed Companies) तीसरी प्रकार है। इसमें सरकार तथा व्यक्ति दोनोंकी सहायतासे काम होता है। सरकार ज़मीन, इमारत तथा अन्य वस्तुएँ, जिनको वह आसानीसे दे सकती है, वे देती है और व्यक्ति अपनी पूँजी लगाकर व्यवसायोंको चलाते हैं। व्यवसायका प्रबंध सरकार तथा पूँजीके मालिकके सम्मिलित प्रतिनिधियोंकी एक समिति-द्वारा होता है। सरकार अपना मुनाफेका हिस्सा लगानके रूपमें लेती है।

(शेष दूसरे अंकमें)

बलि-वेदीपर

श्री श्यामसुन्दर खत्री

(१)

मधु-ऋतु थी उसके जीवनकी
तनकी द्युति थी निखरी न्यारी,
बहु ललित लालसाकी मनमें
खिल उठी अभिनव फुलवारी।

विस्मित औ मुग्ध हृदयसे वह
जिस ओर उठाता था लोचन,
उन्मत्त उसे करनेवाले
उस ओर बिछे थे आकर्षण।

वे ही दिन वे ही रातें थीं
वे दृश्य पुराने चिर परिचित,
उनमें कुछ बात नई आई
लगता था सब कुछ परिवर्तित।

अभिलाषाएं जागीं उरमें
करती थीं लिप्साएं नर्तन,
संसार खड़ा था ले सम्मुख,
वांछित सुखके सारे साधन।

वासना पकड़कर हाथ, उसे
ले चली भोगके प्रिय पथपर,
सोल्लास बढ़ाए पग उसने
यौवन-मदमें तन्मय होकर।

इतनेमें उसके कानोंने
आवाज़ कहींसे सुन पाई—
"मांका उद्धार करो वीरो!
उपयुक्त घड़ी यह है आई।

यौवन वनके सुन्दर फूलो!
सारी आशाके थल तुम हो
अवलम्ब तुम्हीं भारत मांके
सम्बल तुम हो औ बल तुम हो।

तन-मन-धन जीवनको अपने
मांके चरणोंमें बलि कर दो,
आओ आओ युवको! आओ
रण-चण्डीकी गोदी भर दो।

धिक उसको जो इस अवसरपर
सुखकी निद्रामें सोता है,
धिक-धिक उसके बल पौरुषको
जो कष्ट निरख कर रोता है।"

ये शब्द नहीं थे सायक थे
जो तुरत चुभे उरमें जाकर,
परदा आँखोंका दूर हुआ
पीछे लौटा वह शरमा कर।

क्षण भंगुर सुख तृष्णाओंको
मारी उसने ठोकर निर्दय,
रसना रसमय हो चिल्लाई—
"जय-जय भारत-माताकी जय।"

(२)

वह युद्धस्थलका सैनिक था
लड़ना ही उसका बाना था,
धीरजसे उसका नाता था
गम खाना उसका खाना था।

पहले वह सेवक मनका था
अब अपने मनका स्वामी था,
पहले प्राणोंपर ममता थी
अब वह मरनेका हामी था।

पद-पद पर निर्बलता अनुभव
पहले वह करता आया था,
अब जग-सत्तासे अपराजित
दैवी बल उसने पाया था।

जिसको सब यौवन कहते थे
वह लिप्साओंकी थी माया,
अब समझा वह सच ही समझा
सच्चा यौवन था अब आया।

अद्भुत मस्ती-सी छाई थी
निर्भयता उरमें आई थी,
जननीकी भक्ति समाई थी
सेवाके संग सगाई थी।

भारतके सुख दुखमें हर दम
रहता रोमाँ रोमाँ तन्मय,
रह-रह उद्गार निकलते थे—
"जय-जय भारत-माताकी जय।"

(३)

आया था एक बवण्डर-सा
सब ओर मचा था कोलाहल,
आन्दोलित जन-मन-सागर था
दहलानेवाली थी हलचल।

निर्दय निर्मम क़ानूनोंका
भावुकतासे संघर्ष हुआ,
प्रज्वलित अनलकी लपटोंका
घृत-आहुतिसे संस्पर्श हुआ।

डंडे रक्षक बरसाते थे
जनता चुप सहती जाती थी,
दुर्दान्त प्रहारों पर उनके
आगे कर देती छाती थी।

कुछ लोग जय ध्वनि करते थे
कुछ नीरव अश्रु बहाते थे,
कुछ घबराए, कुछ मूर्च्छित थे,
कुछ उठ-उठकर गिर जाते थे।

उनमें हाँ वह भी बैठा था
पत्थरकी मूरत-सा निश्चल,
सिरसे उसके बह निकली थीं
शोणितकी धाराएँ अविरल।

पीड़ासे वह अस्थिर था, पर
अधरोंमें हास्य चमकता था,
रक्ताक्त कलेवरसे उसके
कुछ अद्भुत तेज बरसता था।

नायक उसका, था पास खड़ा,
निःशङ्क जनोंका सेनानी,
सहसा उसपर कुछ हाथोंने
अपनी अपनी लाठी तानी।

अवसर था और न पल भरका
उसने अपना दुख बिसराया,
नायकके प्राण बचानेको
वह उछला औ' सम्मुख आया।

जब गाज अचानक गिरती है
तब गिरि-चूड़ा ढहती जैसे,
सम्मिलित प्रहारोंमें पड़कर
वह भूपर पतित हुआ वैसे।

नभ चीख उठा—'देवत्व इसी
पृथिवी पर ही है निःसंशय",
शत शत कण्ठोंमें नाद हुआ
"जय जय भारत माताकी जय।"

(४)

जो वीरोंका गर्व स्थल था
सैनिकताका गौरव-धन था,
कर मर्दित पंकज-सम्पुट-सा
वह चेष्टाहीन अचेतन था।

मां उसकी सिरहाने बैठी
सिर पीट पछाड़ें खाती थी,
मांकी ममताकी समता क्या?
करुणाको करुणा आती थी।

आखिर उस वीर-शिरोमणिने
आँखें खोलीं, संज्ञा आई,
बुझते दीपककी लौने था
अपनी अन्तिम द्युति दरसाई।

वह बोला—"मां, क्यों रोती हो,
क्यों मुँह आँसूमें धोती हो?
हँसनेकी आज घड़ी आई,
तुम खिन्न हृदय क्यों होती हो?

मैं जन्मधरा-ऋण-मुक्त हुआ
आनन्द नहीं इससे बढ़कर,
मैं धन्य हुआ, तुम धन्य हुईं,
दुखकी छाया क्यों आनन पर?

होता हूँ आज विदा तुमसे
आशीष यही मुझको दो मां!
जनमूँ फिर भारतमें ही मैं
भारत हित मेरी बलि हो मां!

वह देखो, भारत-माता हैं
बाहें फैलाए निज कर द्वय"—
यह कहकर उसने प्राण तजे—
जय-जय भारत-माताकी जय।"

दुखिया जननीने दुहराया—
जय जय भारत-माताकी जय
प्रतिध्वनित दिशाओंने गाया
जय-जय भारत-माताकी जय।

नोट—ऊपरके चित्रके लिए हम 'कुमार'के ऋणी हैं।
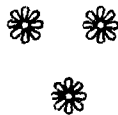
मुग़ल राजवंशकी अंतिम झलक

श्री अख्तर हुसेन रायपुरी

उस दिन जब मैं मटियाबुर्जकी एक पुरानी ईंटकी इमारतके आगे जाकर खड़ा हुआ, तो न जाने क्यों, एक ठंढी सांस खिंच गई और आँखोंसे टपाटप दो आँसूकी बूंदें ढुलक पड़ीं। आँसूका सोता उमड़ पड़ा, अंतस्तलमें हाहाकार मच गया। दिल क्यों न मातम करे, आँखें क्यों न सावन-भादोंका समां बांध दें कि इसी मकानमें ताजमहल और लालक़िला बनानेवालोंका एकमात्र नामलेवा बसता है। इसी उजड़े हुए घरमें मुग़ल राजवंशका प्रभात-दीप टिमटिमा रहा है। यहीं बहादुरशाह ज़फ़रका प्रपौत्र, उनके सबसे लाड़ले बेटे जवांबख्तके एकलौते पुत्र जमशेदबख्तका नौ सालका बच्चा ज़िंदगीके दिन काट रहा है।

मैंने कुंडी खटखटाई। थोड़ी देरके बाद एक हट्टे-कट्टे किन्तु बूढ़े आदमी बाहर निकले। आँखोंमें सुझाई न पड़ता था, टटोल-टटोलकर चलते थे; चश्मा लगानेपर भी वह आँखें झिलमिला गई हैं, जो अपनी मूक वाणीमें ट्रेजेडी, करुणा और विषादका अनंत-सागर अंतर्हित रखती हैं। यह शाहज़ादे बेदारबख्तके नाना और अभिभावक प्यारे मिर्ज़ा हैं। सुननेमें आया है कि अवध-राजवंशसे उनका भी कुछ सम्बन्ध है। मेरी बाट जोहते बैठे थे, बड़े तपाकसे मिले, हाथ पकड़कर अन्दरके कमरेमें ले गये—तो क्या देखा!

इस ईंटकी जीर्ण-शीर्ण और धूल-धूसरित इमारतके दो हिस्से हैं। एकमें मकान-मालिक रहते हैं, दूसरेमें प्यारे मिर्ज़ा अपने नन्हें-नवासे बेदारबख्त और वृद्धा पत्नीके साथ जीवन यापन कर रहे हैं। दो कमरे उनके क़ब्ज़ेमें हैं। मुझे जिस कमरेमें ले गये, वह उनका शयनकक्ष, बैठक-घर आदि सब कुछ है। रात हो चुकी थी, कमरेमें एक लेम्प अपना सिर धुन रहा था। दो बड़े-बड़े तख्त बिछे थे, जिनपर नाना और नवासेका बिस्तर लगा हुआ था। सन् ५७ में दिल्लीमें जो दीया बुझ गया था, उसकी एक किरण वहीं झिलमिल कर रही थी। मिर्ज़ा बेदारबख्त आराम कर रहे थे। मैं चुपका-चुपका उन्हें देखता रहा, दिल रोता था और आँखोंके आगे वह चित्र घूम रहा था, जब हुमायूंके मक़बरेमें सन् १८५७ में अंतिम मुग़ल-सम्राट् बहादुरशाह सकुटुम्ब गिरफ्तार हो गये थे, जब हडसनने उनके तीन सुकुमार बेटोंको चौराहेमें दुनियाके देखते तलवारके घाट उतारकर उनका चुल्लू भर ख़ून पिया था, जब बहादुरशाहको उसने ख़ूनमें तैरते हुए तीनों सिर थालीमें रखकर भेंट किये थे। फिर कल्पनाने उस हृदयविदारक दृश्यकी तस्वीर खेंच दी, जब बूढ़े बादशाहने डबडबाई हुई आँखोंसे अपने प्यारे बेटोंके रक्तरंजित सिरोंकी ओर देखकर कहा था—"शुक्र है उस ख़ुदाका! तैमूरके बच्चे ऐसे ही सुर्खरू होकर बापके आगे आते हैं।" फिर कल्पना आईना दिखाने लगी; बहादुरशाहको आजीवन निर्वासन दंड होता है। अपनी प्राण प्यारी पत्नी ज़ीनत महल और दुलारे बेटे जवांबख्तके साथ उन्हें बड़ी बुरी हालतमें रंगून भेज दिया जाता है। इसी ट्रेजेडीका सबसे दुःखांत सीन उस दिन देखनेमें आया, जिसका एक पृष्ठ आज पाठकोंके आगे पेश करूँगा।

बहादुरशाहका देश निकाला

जब शाह आलमको लार्ड लेकने सिंधियाके पंजेसे निकालकर 'फटे हुए शामियाने'के सुवर्णछत्र तले ला बिठलाया था, तो मुसलमानोंके हर्षका पारावार न रहा। और यही कम्पनी सरकारका छिपा हुआ उद्देश्य था। ब्रिटिश-कूटनीतिका इतिहास यही पाठ पढ़ाता है कि "हर खुले हुए कार्यके पीछे छिपा हुआ अभिप्राय होता है।" मराठों और जाटोंका बल तोड़नेके लिए, टीपू सुलतान और बंगालके प्रहारका दाग मिटानेके लिए मुसलमानोंको चुमकारनेका इससे

अच्छा कौन-सा उपाय हो सकता था। पर जब बहादुरशाह सन् १८३७ में सिंहासनाधिरूढ़ हुए, तो पेशवा बिठूरमें पराधीनता-पाशमें छटपटा रहे थे, भोंसला और होलकरका गर्वखर्व हो चुका था; भरतपुरकी ईंटसे ईंट बज चुकी थी। अब सरकारको 'दिल्लीकी कठपुतली' फूटी आँख नहीं सुहाती थी। बहादुरशाहके समय दिल्लीका एजेन्ट चार्लस मेटकाफ था, जो मुगल-शाहीका नाम मिटानेपर तुला हुआ था। सन् १८४५में भारत आनेपर लार्ड केनिंग दिल्ली दरबारका हाल यों जताते हैं—"गवर्नर जनरल और कमांडर इनचीफ़ बादशाहको पहले जो भेंट देते थे, वह बंद कर दी गई। सिक्केपर अपना नाम चलानेका अधिकार भी छीन लिया गया है। गवर्नर जनरलकी सीलपर अब अधीनताका चिन्ह नहीं रहता, और देशी नरेशों तकको इसकी मनाही कर दी गई है।" लार्ड केनिंग बचे-खुचे राजसी चिन्हको भी छीननेका उपाय करने लगे। बहादुरशाहके मरनेके बाद उनके उत्तराधिकारीको शाही किलेसे खदेड़ने, बादशाहकी उपाधि छोड़कर 'शाहज़ादा' पर सन्तुष्ट होने और 'क़ानूनसे माफ़ी' का विशेषाधिकार छीननेके जोड़-तोड़ लगाने लगे। इसके लिए सरकारको किसी ऐसे राजकुमारकी आवश्यकता थी, जो उसके हाथमें पुतली बनकर रहे और अंगरेज़ी शासनका शुभचेता हो। बहादुरशाहने अपने प्रिय पुत्र जवांबख्तको उत्तराधिकारी बनानेकी भरसक चेष्टा की। उनके आठ अवशिष्ट पुत्रोंने जवांबख्तको ही गद्दी देनेकी प्रार्थना की, पर एक न सुनी गई। क्यों? इसलिए कि जवांबख्त आत्माभिमानी, स्वदेश-प्रेमी और विदेशी सत्ताके विरोधी प्रसिद्ध थे। इसीलिए ग़दरमें कोई अभियोग प्रमाणित न होनेपर भी केवल १७ वर्ष अवस्थामें अपनी मां ज़ीनत-महलके साथ "राजबंदी" बनाकर बूढ़े सम्राट सहित वे निर्वासित कर दिये गये।

यह धुँधली-सी रूपरेखा है, बहादुरशाहकी शोचनीय अवस्था थी! अपनी आँखोंसे उन्होंने अपना मान-सम्मान लुटते देखा था, उनका हर अरमान कुचल दिया गया था, सन्तानका अन्धकारपूर्ण भविष्य आँखोंके आगे था! ऐसी ही हालतमें ग़दर शुरू होता है; आँधी उठती है, चल जाती है और अपने पीछे सर्वनाशका चिन्ह छोड़ जाती है। यहाँ मैं न बताऊँगा कि ८० सालका साधु-स्वभाव, असहाय, हताश, भग्नहृदय सम्राट् निरपराध था या नहीं। बहादुरशाहके कट्टर विरोधी ऐतिहासिक 'कावे' की इस स्वीकृतिका भी मैं स्मरण न कराऊँगा कि "वह शान्तस्वभाव था, और राजनीतिक दाव-पचकी ओर उसका राई-भर झुकाव न था।" मैं उस रोमांचकारी घटनाका भी वर्णन नहीं करना चाहता, जब मुगल राजवंशके बच्चे 'गामी खां' जैसे झूठे जासूसोंके गपोड़ोंको वेद-वाक्य मानकर फाँसीपर टाँग दिये जाते थे; जब ममता पछाड़ खाती थी, सोहाग रोता था, शैशव सिर पीटता था, बुढ़ापा सीना कूटता था; जब राजकुमार सैनिकोंके बूटकी ठोकर खाते थे और दिल्लीका सतीत्व सूरजके उजियालेमें हिचकियां भरता था!

अब भी दो चार आदमी ऐसे मिलेंगे, जो २७ जनवरी १८५८ को बहादुरशाहके मुक़दमेमें हाज़िर हुए होंगे। उन्होंने मुट्ठी-भर हड्डियोंके ढाँचेको अपराधियोंके कठघरेमें खड़ा देखा होगा जिसपर ब्रिटिश-सरकारके विरुद्ध सैनिक-विद्रोह कराने, अपने बेटों और नौकरोंको लड़नेके लिए उभारने, अपनेको सम्राट् घोषित करने और २६ मईको निरीह यूरोपियनोंको मरवानेके अभियोग लगाये गये थे! ४० दिन तक मुक़दमा होता रहा। अन्तमें फ़ौजी अदालतने "दिल्लीके भूतपूर्व नरेश बहादुरशाहको प्रत्येक अभियोगका अपराधी पाकर" आजीवन निर्वासन-दण्ड दे दिया।

बहादुरशाह अपराधी थे या नहीं? इस विषयमें यहाँ मैं कुछ नहीं लिखना चाहता। हाँ, ख्वाजा हसन निज़ामीकी पुस्तक और गवर्नर जेनरल और भारत-सरकारके सेक्रेटरीके नाम २६ अप्रैल १८५८ के सर जान लारेन्स (पंजाबका गवर्नर) के पत्रके कुछ अंश उद्धृत करूँगा। ख्वाजा साहब "दिल्लीकी जांकनी" में लिखते हैं—"बादशाहके नामपर जो अत्याचार हुए, उनकी ज़िम्मेवारी उसके सिर नहीं मढ़ी जा सकती। वह तो उमड़ती हुई नदीके बीचमें एक लकड़ीका टुकड़ा था। उसके व्यक्तिगत

जीवनके विषयमें इतना ही कहना काफ़ी है कि अकबरके बाद अगर बहादुरशाह भारतका सम्राट होता, तो न मालूम देश कितनी उन्नति करता और अब हिन्दू मुसलिम मिलापकी जड़ कितनी गहरी चली गई होती। बहादुरशाह जैसे भले राजा संसारमें बहुत कम हुआ करते हैं।" सर जान लारेन्सकी ओरसे लार्ड केनिंगको जो पत्र लिखा गया था, उससे यही ध्वनि निकलती है—"(१) दिल्लीके हत्याकांडमें बादशाह प्रधान अपराधी न थे। (२) उन्होंने या उनके सलाहकारोंने ऐसे भीषण आन्दोलनका नेतृत्व करनेका कभी स्वप्न भी न देखा था। (३) बंगालकी फ़ौजके बलवेसे उनका कोई सम्बन्ध न था।" फिर भी सर जान लारेन्स ब्रिटिश-सरकारकी नीतिको खूब समझते थे। उन्हें मालूम था कि कम्पनी बहादुरको हटाकर ग्रेट-ब्रिटेनकी सरकार शासन-सूत्र अपने हाथमें लेना चाहती है और मुग़ल सम्राटको कभी ऐसी हालतमें नहीं देखना चाहती, जिससे वे "मुसलमानोंके लिए छत्रछायाका काम दे सकें।" इसलिए अपने पत्रमें उन्होंने राय दी:—"बन्दीको समुद्रपार चोर-डाकुओंके समान भेज देना चाहिए, जहाँ मलाया द्वीपपुंज या किसी द्वीपमें वह मुसलमानोंसे बिलकुल अलग-थलग रख दिया जाय।"

बहादुरशाहके निर्वासन जीवनके सम्बन्धमें इतिहास चुप है, पर जाननेवाले जानते हैं कि "चोर-डाकुओंके समान उन्हें कैसे अलग-थलग" रखा गया। अहमद मुक़द्दमके सिवा और किसीको राजकुटुम्बसे मिलने न दिया जाता था। स्वतन्त्र विचरण करनेके लिए बूढ़ा सम्राट तड़फता था, पर वह हाथ पैर न मार सकता था। बहादुरशाहका कारागृह अभी चार-पाँच साल पहले तक सेंट्रल जेल रंगूनके पीछे अपनी बेकसीपर मातम कर रहा था, मालूम नहीं अब भी बाक़ी है या खंडहर हो गया है। लकड़ीका मकान था—बिलकुल टूटा-फूटा हुआ। कई सालसे उसकी मरम्मत या कलई नहीं हुई। सन् १९२१ तक उसमें बहादुरशाहकी वयोवृद्धा पोती रौनक़ज़मानी बेगम रहती थीं। पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अपने कुटुम्बके गत वैभवकी चोट उनके दिलपर इतनी गहरी लगी थी कि उम्र-भर ब्याह न किया और अपने बूढ़े बाप जवांबख़्तकी सेवा करती रहीं। शाहजहाँकी सेवा करते जहानआराने भी अपना जीवन इसी प्रकार काट दिया था।

ढूँढ़नेपर भी हमें पता नहीं चलता कि बहादुरशाहके जीवन-नाट्यके अन्तिम पाँच वर्ष कैसे कष्टसे कटे। दुनिया और उस अर्धभग्न कुटियाके बीचमें संगीनोंकी जो संगीन-दीवाल थी, उसे भेदकर बीच-बीचमें सम्राट्‌का जो करुणक्रन्दन कविताके रूपमें हम तक पहुँचा है, उसका ज़िक्र आगे आयगा। याद नहीं, कई वर्ष पहले अंग्रेज़ीके किस पुराने मासिक-पत्रमें मैंने एक अंग्रेज़ महिलाके रंगून भ्रमणका वर्णन पढ़ा था। उसमें दिल्लीके निर्वासित नरेशकी कसक कहानीका धुँधला-सा चित्र आँखोंके सामने आ जाता है। दीवालोंपर बड़ी शीत थी, ओढ़ने-बिछानेका अच्छा सामान न था, मिट्टीके एक-एक कणसे दरिद्रता और व्यथा टपकती थी। फिर भी दिलपर सिल रखकर ६० सालके अभागे सम्राटने सितमपर सितम सहे, मगर उफ़ न की। कहा जाता है कि केवल १० छेमें दैनिक व्ययके लिए उन्हें मिलते थे। न जाने कहाँ तक सच है, फिर भी उन्होंने सरकारके आगे कभी हाथ नहीं फैलाया, जो मिलता था धैर्यपूर्वक ग्रहण करते थे। आखिर, १८६२ ई०की ७ नवम्बरको वे ईश्वरको प्यारे हुए—मुग़ल राजवंशका चिराग़ सदाके लिए बुझ गया!

दुनियासे उठ जानेके बाद भी सरकारने उन्हें चैन न लेने दिया। कई वर्ष तक क़ब्रपर कड़ा पहरा रहा, उसपर कोई निशान तक न लगाने दिया जाता था। सिरहाने बेरीका एक सूखा ठुंठ वैभवके पतझड़की याद दिलाता था। जब बर्मी मुसलमानोंने आन्दोलन किया, तो निशान लगानेकी इजाज़त मिली। १९२५ तक समाधिकी क्या दशा थी, यह 'अलामान' सम्पादककी ज़बानी सुनिये—"अहाता बिलकुल मामूली और ७० फ़ीट लम्बा तथा ५० फ़ीट चौड़ा है। अन्दर झाड़-झंखाड़ मुँह बाये हुए थे और सफ़ाईका

कोई प्रबन्ध न था। जिस सम्राटके राज लेनेवाले अपने स्नान-कक्षोंमें क़ीमती टब लगाते हैं, उसकी क़ब्र तक पहुँचनेके लिए रास्ता नहीं मिलता। घास और जंगलके काँटे फैले हुए हैं। मुजावर (रक्षक) की टूटी-फूटी झोंपड़ीके पास ही एक छोटासा मक़बरा नज़र आया, जो बाँसकी कमचियोंसे घिरा हुआ था। ऊपर टीनकी दो-तीन चादरें मिलाकर लकड़ीके तीन-चार खम्भोंके सहारे खड़ी की गई हैं। इसके नीचे बहादुरशाह और ज़ीनतमहल आराम कर रहे हैं। क़ब्र ज़मीनसे एक हाथ भी ऊँची न होगी। उसपर लिखा हुआ है—

(१) ज़फ़र शाह बहादुरशाह दिल्लीका इन्तक़ाल हुआ ७ नवम्बर १८६२ ई०को।

(२) ज़ीनतमहल बेगम शाह दिल्लीकी इन्तक़ाल हुआ जुलाई सन १८८६ ई०को।

× × ×

उस भयावनी अँधेरी रातको जब बहादुरशाहको यमदूत शान्तिका सन्देशा पहुँचाने आया था, तो उनकी आँखोंके आगे दरबारे आम और लाल क़िलेका चित्र-पट घूम रहा था। हुमायूँ और अकबरकी आत्मा उन्हें पास बुलाती थी और डगमगाती हुई दीवालों और थर्राती हुई छतको देख-देखकर अपना एक शेर बार-बार पढ़ते थे—

"हम अपने कुंजे-ग़ममें नाला वो फ़रियाद करते हैं।
इमें क्या गर चमनमें चहचहा है अन्दलीबोंका।"

× × ×

जो क़िस्से गुम हो गये हैं

इस प्रकार मध्य एशियासे जो लहर उठकर भारतमें फैल गई थी, 'कालेपानी' में जाकर गुम हो गई।

बहादुरशाह और उनके बेटोंके सम्बन्धमें कई किम्बदंतियाँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें कुछ सबको याद हैं, कुछ थोड़े लोगोंको और कुछ किसीको नहीं। उनसे मनोरंजनके साथ-साथ हमें सबक भी मिलता है। अगर उनमें दो-चारको यहाँ लिख दूँ, तो प्रसंग भंग न होगा।

बड़े बूढ़ोंसे सुनते आये हैं कि हडसनने जब बहादुरशाहको गिरफ्तार करके उनके हथियार ले लिये, तो एक चुभता हुआ शेर कहा, जिसमें भारतकी पराजयकी ओर संकेत था—

"दमदमोंमें दम नहीं, अब ख़ैर माँगो जानकी।
अय ज़फ़र बस हो चुकी, तलवार हिन्दोस्तानकी।

बूढ़े सम्राटमें शारीरिक बल न था, फिर भी आत्मा अजेय थी, फ़ौरन जवाब दिया—

"ग़ाज़ियोंमें जब तलकके बू रहे ईमानकी।
जाके लन्दनपर पड़ेगी तेग़ हिन्दोस्तानकी।"

हडसनका नाम आया, तो मुझे एक ऐसी बात कहनी पड़ती है, जो पाठकोंको बिलकुल अनोखी जँचेगी। अपने सिपाही विद्रोहके इतिहासमें राइस होम्सने साबित कर दिया है कि बहादुरशाहसे रिशवत लेकर हडसनने उनकी जान बचाई थी। ज़ीनत महलने भी बादमें किसी अंग्रेज़-यात्रीसे रंगूनमें यह बात कही थी, जिसका हवाला लन्दनके 'स्पेकटेटर' में मिलता है।

हडसनके बारेमें मि० कायें लिखते हैं—"मनुष्योंकी यातनाओंसे उसमें दयाकी उपज न होती थी, ख़ून बहानेसे उसे कष्ट न होता था, जान लेनेसे उसे कोई पछतावा न होता था।" इसीलिए तो अपने आत्म-चरित्रमें वह लिखता है—"क्या ही अच्छा होता, जो बहादुरशाहको जीवित नहीं, बल्कि मृतावस्थामें मैं दिल्ली लाता।" आश्चर्य है कि रिश्वत लेनेके बाद भी प्रतिज्ञा भंग करके उसने असहाय सम्राटपर वार नहीं किया।

ख़्वाजा हसन निज़ामी 'दिल्लीकी जांकनी'में लिखते हैं—"कोई आदमी बहादुरशाहके बेटे जवांबख़्तको हाथीपर बिठाकर लाल कुएँके पास उनकी मां ज़ीनतमहलके महलमें ले गये, और उनसे उनकी माके मालमत्तेका पता पूछकर सब निकाल ले गये। इस बातका पता न चला कि यह हज़रत थे कौन, और मालका क्या हुआ।" इसीलिए निर्वासनमें बहादुरशाह बिलकुल कंगाल हो गये थे, उनकी सब सम्पत्ति छीन

ली गई थी। यही नहीं, बल्कि कलकत्तेमें वाजिदअली शाहने जब उन्हें मोतियोंका थाल भेंट किया, तो सरकार बहादुरने दरिद्र राजबन्दीको वह भी न लेने दिया!

अब मैं उस बयानके बाद बहादुरशाहकी करुण-कहानी समाप्त करूँगा। उनके कई बेटे ग़दरमें मर-खप गये थे, और कई भगदड़में लापता भी हो गये। सुना है कि आज़ाद बख्त नामक एक पुत्र भागकर रूस चले गये, वहीं विवाह किया और बस गये। दो बच्चे भी हुए, लेकिन वहींके समाजमें विलीन हो गये। ग़दरके पहलेसे ही यह बात प्रसिद्ध थी कि दो-एक मुग़ल-राजकुमार रूसके ज़ारसे लिखा-पढ़ी कर रहे थे। Kaye and Malleson अपने इतिहासमें लिखते हैं कि मिर्ज़ा हैदरपर रूससे पत्र-व्यवहार करनेका सन्देह किया जाता था। कहा जाता है कि नाना साहबके दाहने हाथ अज़ीमुद्दौला लुक-छिपकर रूसके ज़ारसे सहायता प्राप्त करनेके लिए मिले थे। अभी सात-आठ वर्ष पहले भारतीय पत्रोंमें यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि नाना धुन्धुपन्त अपने सगियों-सहित रूससे भारत वापस आते आते सीमान्तके पास परलोकवासी हुए और उन्हें रूस-सरकारकी ओरसे तब तक पेंशन मिलती थी। मि० मांटेगूने भी अपनी डायरीमें लिखा है कि नाना साहबके जीवित होनेकी बात उन्हें मालूम हुई थी, और किसी जासूसने एक लाख रुपया लेकर नाना साहबसे उन्हें मिलानेका वादा भी किया था। अस्तु, आज़ादबख्तकी रूस गमनकी अफ़वाह भी संभव हो सकती है।

× × ×

अब न वह दिल्ली है, न वह मुग़लोंका वैभव, बस नाम ही नाम रह गया है। अब न दरबारे-आमसे 'होशियार, अदब क़ायदा निगहदार' की आवाज़ गूँजती है, न मीठी-मीठी शहनाई सुनाई देती है। हाँ, दिल्लीके दूसरे कोनेसे बिगुल और घुड़सवारोंकी लानतान सुनाई तथा दिखाई पड़ती है। इधर सम्राट पंचम जार्जके प्रतिनिधि रहते हैं, जिनके ठाट बाटका क्या कहना?

कालकी महिमा भी अपरम्पार है! जो लोग संसारके सर्वश्रेष्ठ भूपति, कुबेरके मुनीम समझे जाते थे, जिनके भ्रूक्षेपपर आकाश काँपता था, जिनकी मुस्कानपर संसार बलिहार होता था, उनकी आखिरी यादगार—दिल्लीकी अन्तिम झलक समुद्रके उस पार अकेलेपनमें दम तोड़ देती है, और इस हालतमें कि संसार उसकी मृत्यु-यन्त्रणापर आँसू नहीं बहा सकता और वह मर जाता है, तो कोई क़ब्रपर कई साल तक फ़ातिहा भी नहीं पढ़ने पाता। कहते हैं कि इसीलिए कई बरस तक उस उजड़ी हुई समाधिसे यह आवाज़ आती थी—

"ऊँचे ऊँचे मकान थे जिनके,
आज वह तंग गोरमें हैं पड़े।
ताजमें जिनके थे टके गौहर[1],
ठोकरें खाते हैं वह कासए सर[2]।"

बहादुरशाहके पुत्र और पौत्र

बहादुरशाहके अवसानके उपरान्त उनके लाड़ले बेटे जवांबख्त उनके लुटे हुए आसनपर विराजे। ज़ीनतमहलने उन्हें राजगद्दीपर बिठानेके लिए जो दाव-पेच खेले थे, कालकी एक ही चालने उन्हें मात कर दिया और अभागे राजकुमारको अपनी बिपताकी मारी भग्न-हृदया माताके साथ रंगूनमें नज़रबन्दीमें दिन काटने पड़े। प्रयत्न करनेपर भी अब तक मुझे उनकी दु:खबीती न मिल सकी। सुना है, उन्होंने बहादुरशाहके बन्दी-जीवनका रत्ती-रत्ती हाल लिखा था। अगर टूटे हुए दिलके ये टुकड़े हमें मिल जाते, तो वियोग और विहागका कैसा करुण संगीत सुननेमें आता! उनकी पत्नी शाहज़मानी बेगम उर्दूमें कविता करती थीं, पर प्रत्येक शब्द करुणामें शराबोर, हर तार दर्दमें डूबा हुआ। यह वही बेगम थीं, जिनके ब्याहपर ग़ालिब और ज़ौक़ सेहरे लिखकर आपसमें उलझ पड़े थे। उनके बेटे प्रिंस जमशेद-बख्तने इन कविताओंका संग्रह रोमन-लिपिमें लिखा था;

(१) हीरा। (२) खोपड़ी।

ढूँढ़नेपर उसकी हस्तलिखित प्रति शायद अब भी रंगूनमें कहीं मिल जाय। किमेनदाईमें शाहज़मानी बेगमने एक फुलवारी बनाई थी, जो अब भी लहलहा रही है और उसे सींचनेवाली अभागा राजकुमारी 'तमाई' के किसी कोनेमें हमेशाके लिए सो रही है। जवांबख्तके एक पुत्र जमशेदबख्त और एक पुत्री रौनक़ज़मानी बेगम थीं। उन्हें सवारी, मकान और अतिरिक्त व्ययके सिवा ५००) मासिक पेंशन मिलती थी। सन् १६१२-१३ के लगभग (तारीख़ न मालूम हो सकी) मोलमीनके एक सुनसान कमरेमें भारतके अन्तिम मुग़ल-सम्राटके उत्तराधिकारीने दम तोड़ दिया। कभी जो सिंहासनपर बैठनेका सुवर्ण-स्वप्न देखा करता था, अनन्त निद्रामें लीन हो गया।

मिर्ज़ा जमशेदबख्त भाग्यके धनी थे, जो हमारी सरकार बहादुरने उनकी कोई दुर्गति न की। उन्हें भी मकान और सवारीके साथ ५००) पेंशन और पहाड़पर रहनेका खर्च मिलता था। उनकी बहिन रौनक़ज़मानी बेगमको ३००) पेंशन मिलती थी और सात-आठ साल पहिले रंगूनमें उनका देहान्त हुआ। मिर्ज़ाजमशेदबख्तने तीन विवाह किये, जिनमें से दो शास्त्रानुसार हुए। लाडली बेगम और प्यारे मिर्ज़ाकी पुत्री नादिरजहां बेगम उनकी विवाहिता पत्नी थीं और हलीमा बी से नियमानुसार विवाह न हुआ था। लाडली बेगम पतिके स्वर्गारोहणके पश्चात् अपनी तीनों बेटियोंके साथ लखनऊ चली गई। जीते जी उन्हें सौ डेढ़ सौ पेंशन मिलती थी, जो उनके आँख मूंदते ही बन्द कर दी गई। बेटियोंने बहुत हाथ पैर मारा मगर बेकार! हलीमा बी से सिकन्दरबख्त नामी बेटा है, पर औरस नहीं। सिकन्दरबख्त २२-२३ वर्षके युवक हैं और बहादुरशाहकी समाधिपर पड़े रहते हैं। वहां जो भेंट-प्रसाद चढ़ता है, उससे रोटियोंका बन्दोबस्त हो जाता है। पढ़े-लिखे होने पर भी सिसकते कसकते जीवनरथको घसीट रहे हैं। आन-बान वही शाहाना है, यहां तक कि अपने दादा परदादाके नौकरोंको अब तक अलग नहीं किया। जवांबख्तकी बहिन उन्हें बहुत चाहती थीं और मरते दम तक उन्हें अपने साथ रखा; पर आँखें बंद होते ही नाता टूटा। प्रिंस जमशेदबख्तकी तीसरी और सबसे लाडली पत्नी नादिरजहां बेगम थीं, जिनसे सन् १६१६ में उनका विवाह हुआ। खुद रौनक़ज़मानी बेगमने दूल्हेके सिर सेहरा बांधा और दुल्हनकी मांग भरी। उन्होंने २१ दिसम्बर १६२० को हमारे चरित्र-नायक बेदारबख्तको जन्म दिया। जून सन् १६२१को जमशेदबख्त इस संसारसे सिधार गये। इस वज्रपातसे नादिरजहां बेगमकी जान छूट गई और अक्टूबरमें वह भी अपने दुधमुंहे बच्चेको अपने असहाय पिताकी गोदमें डालकर चल बसीं।

बहादुरशाहका अभागा परपोता

इसके बाद अन्याय और निष्ठुरताका जो ताण्डव-नृत्य हुआ वह इतिहासमें आप अपना जवाब है। बूढ़ा बाप जवान बेटीके वियोगमें छाती पीट रहा है, मां सिर पटक रही है, नन्हां बच्चा बिलख रहा है और बर्मा सरकारके अधिकारी प्रिंस जमशेदबख्तकी कुल सम्पत्तिकी कुर्कीका वारंट लेकर यमदूतके समान आ पहुँचते हैं। एक ओर मुग़ल सम्राटकी पतोहूकी लाश रखी हुई है, दूसरी ओर सम्राट पंचमजार्जके प्रतिनिधि उसके असहाय बच्चेको राहका भिखारी बनानेका सरंजाम कर रहे हैं! २ नवम्बर सन् १६२१ को पुलिस उनके मकानसे तार तार उठा ले गई। उस्तरा, कैंची, निब, सूई धागेसे लेकर, जड़ाऊ ताज, क़ीमती तलवार और रिवाल्वर तक पुलिस उठा ले गई। इसी अवसरपर पुलिस तीन हस्तलिखित पुस्तकें और एक टीनका डिब्बा ले गई, जिनके विषयमें कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। आज तक किसीने सोचा भी न होगा कि उस डिब्बेमें क्या था और पुस्तकें कैसी थीं।

सुना है कि लकड़ीके टूटे हुए संदूक़से एक टीनका छोटासा डिब्बा मिला, जिसमें ताला जड़ा हुआ था। तालेमें ज़ंग लग गया था, इसलिए उसे तोड़ना पड़ा। अन्दरसे लोहेकी कई बड़ी-बड़ी बेढंगी चाबियां मिलीं। सारे देशमें

यह किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि मुग़ल-सम्राटोंकी अनन्त धन-राशि दिल्लीमें कहीं न कहीं गड़ी हुई है। कहीं इन चाभियोंसे उस खज़ानेका तो सम्बन्ध न था? जो कुछ भी हो, यह बात निश्चित है कि आज तक उन चाबियोंका कहीं ज़िक्र सुननेमें न आया, न जाने क्या हुई।

इनसे अनमोल वह हस्तलिखित पुस्तकें थीं। सुननेमें आया है कि बहादुरशाहके हाथकी लिखी हुई थीं। अगर यह सच है, तो मानना पड़ेगा कि विश्व-साहित्यपर इस ज़ब्तीने बड़ा अत्याचार किया कि ऐसे अनूठे मोती हमसे छीन लिये गये। अवश्य ही उनमें बहादुरशाहके निर्वासन कालकी करुण-कहानी दर्ज होगी। मुझे बहुधा विस्मय होता था कि बहादुरशाहके प्रवास-कालकी कविताएँ कहां चली गईं। उनके गुम हो जानेसे भारतीय साहित्यकी कैसी अकथनीय हानि हुई है। उनमें अभागे सम्राट्ने कलेजा निकाल कर रख दिया होगा, आँसुओंकी स्याहीसे उसने जो खून रुलाने वाली आपबीती लिखी होगी, उसका जवाब 'मीर' या 'दर्द'के यहां भी नहीं मिल सकता। इस अगाध करुणावारिधिकी एक मौज अब भी बहादुरशाहके नामसे बहती है। कैसा पाषाण हृदय है, जो इसे पढ़कर पसीज न जाये—

न किसीकी आँखका नूर[1] हूँ, न किसीके दिलका क़रार हूँ।
जो किसीके काम न आ सके, मैं वह एक मुश्ते ग़ुबार[2] हूँ।
मैं नहीं हूँ नग़मए जांफ़िज़ा[3], मेरी सुनके कोई करेगा क्या?
मैं बड़े बिरोगकी हूँ सदा, किसी दिलजलेकी पुकार हूँ।
मेरा रंग-रूप बिगड़ गया, मेरा यार मुझसे बिछड़ गया।
जो चमन ख़िज़ां[4]से उजड़ गया, मैं उसीकी फ़स्ले बहार हूँ[5]।
न तो मैं किसीका हबीब हूँ[6], न तो मैं किसीका रक़ीब[7] हूँ।
जो बिगड़ गया वह नसीब हूँ, जो उजड़ गया वह दयार हूँ।
कोई फूल मुझपे चढ़ाये क्यों, कोई मुझ पे अश्क[8] बहाये क्यों।
कोई आके शमअ[9] जलाये क्यों, के मैं बेकसीका मज़ार[10] हूँ।

---

(१) प्रकाश। (२) मुट्ठी-भर फूल। (३) मनोमोहक संगीत। (४) पतझड़। (५) बसंत ऋतु। (६) प्रीतम। (७) प्रतिद्वन्द्वी। (८) आंसू। (९) दीपक। (१०) समाधि।

'रंगून डेली न्यूज़' अपने १ दिसम्बर सन् १९२१ के अंकमें लिखता है—"प्रिंसकी मृत्युके पश्चात् मकानसे सब सामान हटा दिया गये, दो-चार चीज़ें विधवाके पिताके पास 'धरोहर' रख दी गईं। इस 'धरोहर'में कुछ टूटी हुई कुर्सियाँ और आलमारियां थीं, जिन्हें बादमें पुलिस उठा ले गई।" उक्त पत्र आगे चलकर लिखता है—"कालचक्रने उस आदमीसे कैसा बर्त्ताव किया! वह यदि सौभाग्यशाली होता, तो किसी सिंहासनको सुशोभित करके राजपाट करता; पर उसे कुछ टूटे हुए शीशों और लकड़ीके सन्दूकोंपर सन्तुष्ट होकर एक कुटियामें जीवन बिताना पड़ा। हमारा ध्यान एक अत्यन्त अन्यायपूर्ण कृत्यकी ओर खींचा गया है। विधवा और उसके पुत्रके उपयोगके लिए जो थोड़ा-बहुत सामान छोड़ दिया गया था, वह भी बादमें छीन लिया गया। अब उस कुटुम्बके पास कुछ नहीं रहा है। बच्चेके नाना प्यारे मिर्ज़ा सरकारी मकानमें रहकर उसका पालन-पोषण कर रहे थे। उन्हें तीन दिनके भीतर मकान खाली करनेका हुक्म हुआ। प्यारे मिर्ज़ाने प्रार्थना की कि जब तक कोई अच्छा मकान न मिल जाय, तब तक तो कहीं ठहरनेकी अनुमति दी जाय, पर उनकी दरख्वास्तपर किसीने ध्यान न दिया!" तब एक दिन जब कुहासा छाया हुआ था और सूरज बादलोंकी ओटमें छिप गया था, ताकि एक असहाय बूढ़े और अनाथ राजकुमारकी बिपतासे आँखें आगके आँसू न बहायें—बहादुरशाहके दस महीनेके प्रपौत्रको गोदमें लेकर प्यारे मिर्ज़ा ब्रिटिश-सरकारके मकानसे बाहर निकलनेपर बाध्य हुए। इस घर निकालेके बाद उन्हें आराम नसीब न हुआ, भाग्यका फेर पैरोंको चक्कर खिलाता रहा। प्रिंस जमशेदबख़्तके अन्तिम संस्कारमें उन्होंने हज़ार रुपये खर्च किये थे, जिसमेंसे ५००) देनेकी उदारता बर्मा सरकारने दिखलाई। प्यारे मिर्ज़ाने दरख़ास्त की कि मेरी विधवा बेटीको कमसे कम उसके मेहरका २५ हज़ार रुपया ही सरकार दे दे; लेकिन सब व्यर्थ।

नन्हें बेदारबख़्तको उनके पिताकी पेंशन भी न मिली।

बहुत हाथ-पैर मारनेपर बर्मा-सरकारने आठ रुपया मासिक पेंशन मुक़र्रर की !!! प्यारे मिर्ज़ाने उसे स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया, और ठीक भी था। जो राजकुटुम्ब अपने गुलामों और दरवानोंको भी ८) वेतन देते लजाता था, उसका वंशधर इस अपमान-जनक भेंटको कैसे स्वीकार करता? जब प्यारे मिर्ज़ा भग्नमनोरथ हो गये, और कोई आशा न रही, तो रंगूनमें विदा लेकर भारतवर्षका रुख किया। तबसे आज तक उनका और बहादुरशाहके प्रपौत्र मिर्ज़ा बेदारबख़्तका जीवन टूटे हुए अरमानों और ठुकराई हुई कामनाओंकी कहानी है। प्यारे मिर्ज़ाने अपने नवासेकी पेंशनके लिए जान तोड़कर कोशिश की। प्रान्तीय सरकारके बाद भारत सरकार और सम्राट् पंचमजार्ज तक लड़ आये मगर—'थी एक ख़ामोशी तेरी, सबके जवाबमें।'

बड़ी कठिनाईसे एक दिन भारत-सरकारने ख़रीता भेजा कि आठ वर्षकी अवस्था तक आठ रुपया और २० वर्ष तक १६) मासिक पेंशन मिलेगी—और उसके बाद नदारद। राजकुमारने इस भीखको लेनेसे साफ़ इनकार कर दिया। उनका दावा है कि अपने बापका एकमात्र सुपुत्र और उत्तराधिकारी मैं ही हूँ, तो उनकी पेंशन मुझे क्यों न मिलनी चाहिए?

आज तक सरकारने अपनी हठका कोई उपयुक्त कारण नहीं बताया है। असेम्बलीमें नवाब सरफ़राज़ हुसेन, सर मालकम हेली और सर अलेक्जेंडर मुडीमैनके होममेम्बरीके ज़मानेमें पूछते-पूछते थक गये, पर हमेशा यही जवाब मिला, "सरकार विचार कर रही है, जांच-पड़ताल की जा रही है।" लेकिन सोचो, तो उस 'बड़ी सरकार'के आगे इस अन्यायका क्या जवाब दोगे? एक असहाय, बलहीन और अनाथ बच्चेको पथका भिखारी बनानेसे क्या मिलेगा? उसके पूर्वपुरुषोंने ही तुम्हें भारतमें क़दम जमानेका मौक़ा दिया था; शाह आलमने ही तुम्हें दीवानी दी थी; कभी कम्पनीकी टकसालमें मुग़ल सम्राटोंका ही सिक्का ढलता था। जिनके ऐश्वर्यको देखकर संसार दाँतों तले अंगुली दबाता था, जिनकी विभूति भारतको स्वर्गका नमूना बनाए हुए थी। हाँ, उन अदूरदर्शी नरेशोंकी आत्माएँ क्या सोचती होंगी? अफ़ग़ानिस्तानके राजकुमारोंसे भारतका क्या सम्बन्ध है? फिर भी भारत सरकारके कोषमें उन्हें पेंशन देनेके लिए हज़ारों रुपया है; मगर भारतके अन्तिम सम्राटका परपोता अन्न-अन्न बिना तरसता है। क्या भारतकी सभ्यता, संस्कृति और साहित्यपर उसका कोई हक़ नहीं है? क्या नई दिल्लीके बनानेमें जो करोड़ों रुपये खर्च हुए हैं, उनका एक छोटा-सा हिस्सा उसे इसलिए नहीं दिया जा सकता कि वह तन ढँक सके, पेट भर सके और पढ़ लिखकर संसारमें जीनेके लायक़ बन सके?

मिर्ज़ा बेदारबख़्त अनाथ हैं; माँ-बापने शैशवमें ही साथ छोड़ दिया था; नानी बूढ़ी हैं और नाना अन्धे; दोनों आधे रास्तेके मुसाफ़िर हैं। उनके बाद उस बच्चेकी क्या दशा होगी? अन्धेकी लाठी जब हाथसे गिर जायगी, तब यह निर्दयी संसार उसे कुचलता हुआ अपने कँटीले मार्गपर बढ़ता जायेगा, कालकी आँधी उसे कभी यहाँ पटकेगी, और कभी वहाँ।

प्रिंस आफ़ वेल्स जब रंगून गये थे, तो नन्हे राजकुमारको एक क़ीमती टोपी भेंटकी थी। इससे आशा बंध चली थी कि भारत-सरकार नहीं तो ब्रिटिश-सरकार ही उनका कोई न कोई समुचित प्रबन्ध करेगी। लेकिन बड़ी बी तो बड़ी बी और छोटीबी सुभान अल्लाह!" की कहावत यहां चरितार्थ हुई। प्यारे मिर्ज़ा भारत आकर कई वर्ष तक दौड़धूप करते रहे। बेचारे उलझे हुए क़ानून क़ायदोंको न जानते थे। प्रांतीय सरकारके दरख़ास्त देते थे, तो जवाब मिलता था कमिश्नरके ज़रियेसे भेजो। वहांसे आदेश होता था, छोटे साहबका दरवाज़ा खटखटाओ। फिर भी उन्होंने साहस न छोड़ा, अनवरत चेष्टाकी और भारत-सरकार तक स्मारक-पत्र भिजवा ही दिया। लेकिन वहांसे जवाब मिला, सरकार इस प्रार्थना पत्रको स्वीकार करनेमें असमर्थ है अर्थात् प्रिंस जमशेदबख़्तके बेटको उनकी पेंशन नहीं दी जा सकती।

कलकत्तेका बङ्गला साप्ताहिक "हनफ़ी" अपने २८ अक्टूबर सन् १९२९ के अंकमें असह्य अविचार शीर्षक अग्रलेखमें लिखता है :—अंगरेज़ोंने भारतीय साम्राज्यपर अधिकार करनेके बाद सिपाही विद्रोहके समय जिस निष्ठुरतासे दिल्लीके राजकुटुम्बका खातमा किया वह इतिहास प्रेमियोंको मालूम है। अब बहादुरशाहके वंशमें उनके एकमात्र प्रपौत्र विद्यमान हैं। इस आख़िरी यादगारका नाम शाहज़ादा बेदारबख़्त है और उनकी उम्र सिर्फ़ आठ साल है। अपनी पुरानी नीतिके अनुसार सरकारने माता-पिताकी सारी सम्पत्तिको हथिया कर इस अनाथ बच्चेको निराश्रय कर दिया, जिसके राज-ऐश्वर्यको पाकर अंगरेजोंका इतना गौरव और प्रभाव है, जिसके पूर्व पुरुषोंके अनुग्रह लाभसे अंगरेज़ अपनेको धन्य मानते थे, दिल्लीके शाही खानदानके उसी नामलेवाके लिए आठ रुपया मासिक पेंशन देते हुए ब्रिटिश सरकारको लेशमात्र लज्जा नहीं आती।"

एक अंगरेज़ ऐतिहासिक लिखता है—"अंगरेज़ सरकारकी यह कूटनीति अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि लगभग ५० वर्षमें उसने उस महान राजकुटुम्बका नाम मिटा दिया, जिसका झंडा ७०० वर्ष तक भारतपर फहराता रहा था।"

प्यारे मिर्ज़ा हताश हो गये, कमर टूट गई, नयन प्रकाशहीन हो गये और अब मटियाबुर्जमें किरायेके कमरे लेकर वे दुर्दैवको रोते पड़े हुए हैं। जब उनसे कोई यह दर्द भरी कहानी सुनना चाहता है, तो बरबस ज़बानसे यह शेर निकलता है :—

क्यों छेड़ रहे हो तुम अफ़साना मेरे दिलका,
इस दर्दके क़िस्सेमें हसरतके सिवा क्या है ?"

शाहज़ादा बेदारबख़्त

मिर्ज़ा बेदारबख़्तकी उम्र लगभग दस वर्ष है। छरहरा शरीर, सुरमई आंखें, सांवला रंग, किताबी चेहरा, जो मुग़ल राजकुटुम्बकी निशानी है। मैं उनकी बातें सुनकर दंग रह गया। इतनी सी उम्रमें भी बातचीतमें बड़ी राजसी ठाट है। ऐसे समझदार बालक मैंने बहुत कम देखे हैं। अपने मा—बापका ज़माना उन्हें याद नहीं, क्योंकि छः सात महीनेके भी न थे कि दोनोंका साया सिरसे उठ गया। आंखोंसे आकर्षण और करुणा टपकती है, जैसे चुम्बक पर किसीने जादू फूंक दिया हो। मैं उनसे बात करता जाता था और यह भी सोचता था कि अगर उनके पढ़ने-लिखनेका सामान हो जाय तो क्या ही अच्छा हो।

आज मुझे अनुभव हुआ कि ख़ूनका असर कितना गहरा होता है। कहने लगे मुझे इन स्कूलोंमें पढ़ते शर्म आती है, हर ऐरे ग़ैरके साथ मैं बैठ नहीं सकता। अब्बा (अपने नाना प्यारे मिर्ज़ाको अब्बा कहते हैं) ने मास्टर तैनात कर दिया है, जिसके पास कुछ पढ़ लेता हूँ।" मगर अर्थाभावके कारण घरमें पढ़ाईका कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं हो सका। प्यारे मिर्ज़ा हमेशा इसी दुःखमें कुढ़ते रहते हैं। मिर्ज़ा बेदारबख़्तने मेरे नोटबुकपर जो दस्तख़त किया, वह बिलकुल आड़ा तिरछा था। इससे मैंने अन्दाज़ लगाया कि उनकी पढ़ाईके ढंग अच्छे नहीं हैं।

पासमें ही एक किताब पड़ी थी, वे उसे उलटने लगे। बीचमें बहादुरशाहके दरबारका एक फ़ोटो था, पूछने लगे, "यह क्या है ?" मैंने कहा, आपके परदादा बहादुरशाहके दरबारके तस्वीर है; यह वज़ीर हैं, यह सब दरबारी, यह चोबदार और यह नक़ीब।" मिर्ज़ा बेदारबख़्तने बड़ी हसरतसे कहा, "देखिये, दादाजान" ज़फ़रशाह क्या थे और आज हम क्या हो गये। कह नहीं सकता कि दिलपर कैसी चोट लगी, कितनी लम्बी आह खिंच गई। बेदारबख़्त बड़े विनोदी और हंसमुख भी हैं पर उनकी हर मुस्कानके पीछे आंसूकी बूंद छिपी होती है।

इन धमनियोंमें अकबर और जहांगीरका वही गर्म ख़ून बह रहा है, वही आनबान है, रस्सीका बल अभी नहीं गया है। बेदारबख़्त बहुत निर्भीक और बकबोले हैं। दूसरे बच्चोंमें जो दब्बूपन और नम्रता होती है, वह उनमें नहीं है। बातचीत बड़े ठिकानेसे करेंगे, लेकिन आंखोंसे आंखें मिलाकर, बिना किसी हिचकिचाहटके। उन्हें हमेशा यह

अन्तिम मुग़ल सम्राट बहादुरशाह 'ज़फ़र'

याद रहता है कि मेरे पूर्वजोंका सिक्का कभी चल चुका है, इसलिए कोशिश करनेपर भी आवश्यकतासे अधिक नम्रता नहीं दिखला सकते। उनकी बातचीतसे गम्भीरताके साथ ऐसा भाव टपकता है, जो मिलनेवालेको याद दिला देता है कि 'तुम्हारे बड़े-पुराने हमारे पुरखोंके आगे सिर झुका चुके हैं।'

क्या थे और क्या हो गये ?

मिर्ज़ा बेदारबख़्तपर पहाड़-जैसे कठिन दस साल गुज़र चुके हैं। मिट्टीके टूटे हुए खिलौने जिसे नहीं मिलते, उसे क्या मालूम कि 'दादाजान ज़फ़रशाह' के बच्चे एक-एक बीरबहूटीपर एक-एक अशर्फ़ी खर्च करते थे। लकड़ीके कड़े तख़्तपर सोनेवालेने कभी सोचा भी न होगा कि लाल क़िलेके राजकुमारोंको फूलोंकी सेजपर भी नींद न आती थी। कई-कई बार फूलकी चादर बदली जाती थीं ; उन्हें जगानेके लिए कोकिल कंठोंसे 'प्रभाती' की तान उड़कर आकाश-पातालको सगीतमय कर देती थी। शाहज़ादे बेदारबख़्तको कौन बतलावे कि उनके किसी पुरखेको सोने-चाँदीसे तौलकर दान बँटता था, जिसके कृपा-कटाक्षके लिए बड़े-बड़े राजा-महाराजा तरसते थे! उजड़ जानेपर भी दिल्लीके क्या जोबन थे! उस चहारदीवारीके राज्यके भी क्या ठाठ थे! लाल क़िला हीरे-मोतियोंसे भरा जगमग-जगमग करता था, नहरमें

गुलाब-जल बहता था। इन उबलते हुए आँखोंके कटोरोंमें उस दिनका धुँधला-सा प्रतिबिम्ब तैर रहा है, जब बहादुरशाह दरबारमें क़दम रखते थे। बड़े-बड़े राजा नवाबोंकी आँखें ज़मीनपर गड़ जाती थीं, क्या मजाल कि कोई उफ़ तो करे! लुट जानेपर भी हुन बरसता था। बरसातकी ऋतुमें शम्सी तालाबके किनारे डेरे लग जाते थे। पलटनका कड़ा पहरा रहता था, कोई पर भी न मार सकता था। आबनूस और चन्दनकी नौकाओंको सुनहली-रुपहली पतवारें खेती थीं। राजकुमारियाँ झूलेपर बैठी चुहल कर रहीं हैं, उधर कोयलकी कुहूके साथ कुछ मलार अलापती हैं। बादल गरजा तो 'उइ नौज' कहकर एकने कानपर हाथ रखा और बेसुध हो गई। चारों ओर हुल्लड़ मच जाती है, केवड़ेके परनाले बह जाते हैं, हज़ारों रुपये सदक़े उतारकर भिखमंगोंको बांट दिये जाते हैं। किसी शाहज़ादेको मखमली खिलअत भारी दमकी मिली, तो उन्होंने भौं कमान की और कहा—"हज़रत, यह गधेका बोझ तो हम न लादेंगे।" उठाकर लौंडी-गुलामोंको दे दिया गया। सोने-चांदीके टुकड़े मिट्टी-कंकर-जैसे ठुकराए जाते थे।

और आज? 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' के नाम-लेवाकी आज क्या हालत है? दर-दरका भिखारी, दाने-दानेको मुहताज, दुनियाका ठुकराया हुआ, प्रारब्धकी चक्कीमें पिसा हुआ। जिसने कभी सुखके दिन नहीं देखे, जिसपर यातनाओंका डैना हमेशा फैला रहा, जो निरपराध होनेपर भी अपराधियोंसे बुरी हालतमें है। कोई अकबर और शाहजहांकी क़ब्रोंके आगे जाकर कहे कि लाल क़िला और ताजमहलके बनानेवालो! तुम्हारे वंशधरको सिर छिपानेकी जगह नहीं मिलती, गर्मीमें उसका बसेरा आगकी भट्टी है, तो बरसातमें झलझलाई हुई झोंपड़ी। संसारको विद्यादान करनेवालो, तुम्हारे परपोतेके पास पढ़नेका कोई सामान नहीं है। गुदगुदे फ़र्शोंसे पैर नीचे न रखनेवालो, तुम्हारे नौनिहालका तलवा पैदल चलते-चलते छलनी हो गया है।

और ऐ मिट्टीके बुलबुलो, तुम किस बिरतेपर घमंड करते हो? क्या दौलतपर, इज्ज़तपर, हुकूमतपर! तब जाओ, और मटियाबुर्जकी उस टूटी हुई इमारतके आगे जाकर देखो, उन सबका जनाज़ा निकल रहा है। उसके पास तुम्हें भारतके अन्तिम सम्राट बहादुरशाहका नौ-सालका परपोता यह शोक-गान गाता हुआ मिलेगा—

"बर मज़ारे मां ग़रीबां नै चिराग़े नै गुले।
नै परे परवाना सोज़द नै सदाए बुलबुले।"

मेरी उजड़ी हुई समाधिपर न फूल है न दीपक। न पतिंगके पंख जलते हैं, न बुलबुलका गीत सुनाई देता है।
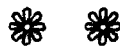
मध्यवर्तिनी

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पहला परिच्छेद

निवारणकी गिरस्ती निहायत मामूली ढगकी है, उसमें काव्यरसकी गन्ध तक न थी। जीवनमें उक्त रसकी कोई आवश्यकता है, यह बात कभी उसके मनमें भी उदित न हुई। जैसे परिचित पुराने जूतेमें पैर बिलकुल निश्चिन्ततासे प्रवेश करते हैं, उसी तरह निवारण इस पुरानी पृथ्वीपर अपना चिराभ्यस्त स्थान दखल किये हुए है; इस विषयमें भूलकर भी वह कोई चिन्ता, तर्क या तत्त्वालोचना नहीं करता।

निवारण सवेरे ही उठकर गलीके किनारे अपने दरवाज़ेपर उघाड़े बदन बैठ जाता और हुक्का हाथमें लिये निश्चिन्त होकर तम्बाकू पिया करता है। सड़कसे आदमी जाते आते हैं, गाड़ी घोड़ा चलते हैं, भिखारी गीत गाते हुए भीख माँगते चले जाते हैं, सीसी-बोतल-कागज़के फेरीवाले आवाज़ लगाते हुए निकल जाते हैं; ये सब चञ्चल दृश्य उसके मनको थोड़ा बहुत बहलाये रखते हैं; और जिस दिन कच्चे आमवाला या मछलीवाला आ जाता है, उस दिन बहुत दर-दाम करनेके बाद कुछ ले लाकर विशेषरूपसे भोजनकी तैयारियाँ होती हैं। उसके बाद यथासमय तेल लगाकर, नहाकर, खा-पीकर, चपकन पहनकर, एक चिलम तम्बाकू पानके साथ अच्छी तरह पीकर, फिर एक पान मुँहमें भरकर दफ्तर चला जाता है। दफ्तरसे वह शामको लौटता और पड़ोसी रामलोचन घोषके घर प्रशान्त गम्भीर-भावसे सन्ध्या बिताता, फिर खाने पीनेके बाद रातको शयनगृहमें अपनी स्त्री हरसुन्दरीसे उसकी मुलाक़ात होती।

उस समय चौधरियोंके घर लड़केके ब्याहमें कुँवर-भात भेजना, नई दासीकी बेहूदगी, छौंक बघार आदिकी उपयोगिताके विषयमें जो संक्षिप्त समालोचना होती है, उसे आज तक किसी कविने छन्दोबद्ध न किया; और इसके लिए निवारणको कोई क्षोभ भी नहीं है।

इतनेमें फागुनके महीनेमें हरसुन्दरी बहुत सख्त बीमार पड़ गई। बुखार किसी तरह पीछा ही नहीं छोड़ता। डाक्टर ज्यों-ज्यों कुनैन देता गया, ज्वर बाधाप्राप्त प्रबल स्रोतकी तरह उतना ही बढ़ता गया। इस तरह बीस दिन, बाईस दिन, चालीस दिन तक बीमारी आगे बढ़ती ही रही।

निवारणका दफ्तर जाना बन्द है; रामलोचनके यहां शामको बैठकमें वह बहुत दिनोंसे नहीं गया है; क्या करे क्या नहीं करे, उसकी कुछ समझमें नहीं आता। कभी कमरेके अन्दर जाकर रोगीकी हालत देख आता है, कभी बाहरके बरामदेमें बैठकर चिन्तित मनसे तम्बाकू पीता रहता है। दोनों वक्त डाक्टर-वैद्य बदले जाते हैं, और जो जैसा कहता है, वैसी ही दवा दी जाती है।

प्रेमकी ऐसी अव्यवस्थित शुश्रूषा होनेपर भी चालीस दिनमें हरसुन्दरी व्याधि-मुक्त हुई। मगर इतनी कमज़ोर और ऐसी दुबली हो गई कि शरीर मानो बहुत दूरसे अत्यन्त क्षीण स्वरमें इतना ही मात्र कह रहा है कि "मैं हूँ।"

उस समय वसन्तकी दक्खिनी हवा चलने लगी थी और रातमें चन्द्रमाकी चाँदनीको भी सीमन्तिनियोंके खुले हुए शयनगृहमें चुपकेसे प्रवेश करनेका अधिकार मिल गया था।

हरसुन्दरीके घरके पास ही पड़ोसीके घरका बगीचा था। वह कोई विशेष सुदृश्य रमणीय स्थान हो, सो बात नहीं। किसी समय किसीने उसमें शौकसे थोड़ेसे क्रोटनके पेड़ लगाये थे, उसके बाद फिर उसने उनकी तरफ़ कुछ ध्यान नहीं दिया। सूखी डालियोंके मचानपर कुम्हड़ेकी बेलें फैल गई हैं, बूढ़े बेरके पेड़के नीचे जंगल जम गया है;

रसोईघरके पासकी दीवाल टूट जानेसे वहाँ ईंटोंका ढेर लग गया है, और उसके साथ ही जले हुए कोयलों और राखका ढेर भी दिन-दिन बढ़ रहा है।

परन्तु अब जंगलेके पास लेटकर उस बगीचेकी तरफ़ देखकर हरसुन्दरी क्षण-क्षणमें जैसा आनन्दरस पीने लगी, उसका शतांश भी पहले उसने कभी नहीं पिया। गरमियोंमें स्रोतका वेग मन्द पड़ जानेसे छोटीसी ग्राम्य नदी जब बालूकी शय्यापर शीर्ण होकर पड़ी रहती है, तब उसमें जैसी अत्यन्त स्वच्छता आ जाती है—तब जैसे प्रभातकी सूर्य-किरणोंसे उसका तलदेश तक कम्पित हो उठता है, वायुका स्पर्श उसके सर्वाङ्गको पुलकित कर देता है और आकाशके तारे जैसे अपने स्फटिक-दर्पणोंपर सुख स्मृतियोंकी तरह अत्यन्त स्पष्टतासे प्रतिविम्बित होते रहते हैं, उसी तरह हरसुन्दरीके क्षीण जीवन-तन्तुओंपर आनन्दमयी प्रकृतिकी प्रत्येक अंगुली मानो स्पर्श करने लगी और अन्तःकरणके भीतर जो एक संगीत उठने लगा, उसे वह पूरी तरह समझ न सकी।

इसी समय उसका पति पास आकर जब पूछता कि—"कैसी हो?"—तब उसकी आँखोंमें आँसू मानो छलक पड़ते। दुबले-पतले चेहरेपर उसकी आँखें बहुत बड़ी मालूम होती हैं, उन बड़ी बड़ी प्रेमसे भीगी हुई सकृतज्ञ आँखोंको पतिके मुँहकी तरफ़ उठाकर अपने शीर्ण हाथोंसे उनका हाथ पकड़कर वह चुपचाप पड़ी रहती. पतिके हृदयमें भी मानो कहींसे एक नवीन अपरिचित आनन्दकी किरणें प्रवेश करने लगतीं।

कुछ दिन इसी तरह बीत गये। एक दिन रातको, टूटी दीवारपर उगे हुए पीपलके पेड़की काँपती हुई शाखाओंके बीचमें से आकाशमें उठता हुआ पूनोंका चाँद दिखाई दिया और सन्ध्याकी उस उमसको दूरकर सहसा निशाचर पवन जाग्रत हो उठा ; ठीक इसी समय निवारणके बालोंमें उँगलियाँ फेरते हुए हरसुन्दरीने कहा—"मेरे तो कोई लड़का-बाला हुआ नहीं, तुम दूसरा ब्याह कर लो!"

हरसुन्दरी कुछ दिनोंसे यही बात सोच रही थी। मनमें जब एक प्रबल आनन्द—बड़े भारी प्रेम—का सञ्चार होता है, तो मनुष्य सोचता है कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ। तब सहसा एक आत्म-विसर्जनकी इच्छा बलवती हो उठती है। स्रोतका उच्छ्वास जैसे कठिन तटपर अपनेको वेगके साथ मूर्च्छित कर देता है, उसी तरह प्रेमका आवेग, आनन्दका उच्छ्वास एक महान् त्याग, एक बड़े भारी दुःखपर अपनेको मानो फेंक देना चाहता है।

उस अवस्थामें अत्यन्त पुलकित चित्तसे एक दिन हरसुन्दरीने स्थिर किया—अपने पतिके लिए मैं कोई खूब बड़ा त्याग करूँगी। परन्तु हाय, जितनी साध होती है उतनी सामर्थ्य किसमें है! हाथोंके पास क्या है, क्या दिया जा सकता है! ऐश्वर्य नहीं, बुद्धि नहीं, क्षमता नहीं, सिर्फ प्राण हैं, वह भी यदि कहीं देना पड़े तो अभी दे दूँ, लेकिन उसका भी मूल्य क्या है?

अपने पतिको यदि दुग्ध-फेनके समान शुभ्र, नवनीतके समान कोमल, शिशु-कन्दर्पके समान सुन्दर एक स्नेहकी पुतली सन्तान दे सकती! परन्तु प्राणपणसे इच्छा करके मर मिटनेपर भी तो ऐसा नहीं हो सकता। तब उसके मनमें आई, पतिका दूसरा ब्याह करा देना चाहिए। सोचने लगी, स्त्रियाँ इससे इतना डरती क्यों हैं, यह काम तो ज़रा भी कठिन नहीं! पतिको जो चाहती है, सपत्नीसे प्रेम करना क्या उसके लिए इतना असाध्य है! सोचते सोचते उसकी छाती फूल उठी।

पहले-पहल जब यह प्रस्ताव सुना, तो निवारणने उसे हँसीमें उड़ा दिया, और दूसरी-तीसरी बार कहनेपर भी उसपर उसने ध्यान नहीं दिया। पतिकी इस असम्मति, इस अनिच्छाको देखकर हरसुन्दरीका विश्वास और आनन्द जितना ही बढ़ने लगा, उतनी ही उसकी प्रतिज्ञा दृढ़ होने लगी।

इधर निवारणने ज्यों-ज्यों बार-बार इस अनुरोधको सुना, त्यों-त्यों उसकी असम्भवता उसके मनसे दूर होने लगी, और घरके दरवाज़ेपर बैठकर तम्बाकू पीते समय सन्तानोंसे भरे हुए

घरका सुखमय चित्र उसके मनमें उज्ज्वल होकर दिखाई देने लगा।

एक दिन अपने-आप प्रसंग छेड़कर उसने कहा—"बुढ़ापेमें एक नन्हींसी लड़कीके साथ ब्याह करके उसे पाल-पोसकर बड़ा करना मुझसे न बनेगा।"

हरसुन्दरीने कहा—"इसके लिए तुम्हें कोई चिन्ता न करनी होगी। इस कामका भार मेरे ऊपर रहा।" कहते कहते इस सन्तान हीन रमणीके मनमें एक किशोरी, सुकुमारी, लज्जाशीला, माकी गोदसे हाल ही में बिछुड़ी हुई नववधूकी मुख-छबि उदित हो आई, और हृदय स्नेहसे विगलित हो गया।

निवारणने कहा—"मेरे दफ्तर है, काम-काज है, तुम हो,—उस ज़रासी लड़कीको दुलार करनेकी मुझे फुरसत कहाँ है?"

हरसुन्दरीने बार-बार कहा कि उसके लिए ज़रा भी समय नष्ट नहीं होगा, और अन्तमें मसखरी करते हुए कहा—"अच्छा जी, तब सब देख लूँगी, कहाँ तुम्हारा काम रहता है, कहाँ मैं और कहाँ तुम?"

निवारणने इस बातका उत्तर तक देनेकी आवश्यकता न समझी, दंड-स्वरूप हरसुन्दरीके कपोलपर आघात करके रह गया। यह तो हुई भूमिका।

दूसरा परिच्छेद

एक छोटीसी लड़कीके साथ निवारणका ब्याह हो गया, उसका नाम था शैलबाला।

निवारणने सोचा, नाम बड़ा मीठा है और मुँह भी बड़ा सुन्दर गोल-मटोल है। उसका भाव-स्वभाव, उसका चेहरा, उसका चलना-फिरना वह ज़रा विशेष मनोयोगके साथ देखना चाहता है, लेकिन ऐसा मौक़ा ही नहीं मिलता। बल्कि उसे तो उल्टा ऐसा भाव दिखाना पड़ता है कि ज़रासी की तो लड़की है, उसे लाकर बड़ी मुसीबतमें जान फँस गई है, किसी तरह उससे बचकर अपनी अवस्थाके योग्य कर्तव्य क्षेत्रमें पहुँच जाय, तो उसकी जान बच जाय।

हरसुन्दरी निवारणके इस विपद्ग्रस्त भावको देखकर मन-ही-मन बड़ी ख़ुश होती। किसी-किसी दिन निवारणका हाथ मसककर कहती—"अरे, भागे कहाँ जाते हो! ज़रासी की लड़की है, वह तुम्हें निगले थोड़ी ही जाती है।"

निवारण दूना व्यस्त-भाव धारण करके कहता—"अरे, ठहरो ठहरो, मुझे एक ज़रूरी काम है।"—कहकर भागनेकी कोशिश करता। हरसुन्दरी दरवाज़ा रोककर कहती—"आज तुम धोखा नहीं दे सकते।" आख़िर निवारण बिलकुल निरुपाय होकर चुपचाप बैठ जाता।

हरसुन्दरी कानोंके पास जाकर कहती—"पराई लड़कीको घरमें लाकर इस तरह निरादर करना ठीक नहीं।"

यह कहकर शैलबालाको पकड़कर निवारणकी बाईं तरफ़ बिठा देती और ज़बरदस्ती घूँघट खोलकर ठोड़ी पकड़कर उसके झुके हुए मुहको ऊपर उठाकर निवारणसे कहती—"अहा, कैसा सुन्दर चाँद-सा मुँह है, देखो तो सही!"

किसी-किसी दिन दोनोंको घरमें बिठाकर कामका बहाना करके झट उठकर चल देती और बाहर जाकर खटसे दरवाज़ेकी साँकल लगा देती। निवारण निश्चित जानता था कि कौतूहलपूर्ण दो आँखें किसी-न-किसी छेदसे ज़रूर लग गई होंगी,—वह अत्यन्त उदासीन भावसे करवट लेकर सोनेकी कोशिश करता, और शैलबाला घूँघट खींचकर पेटमें घुटने टेककर मुँह फेरकर एक कोनेमें चुपचाप पड़ी रहती।

अन्तमें हरसुन्दरीने बिलकुल लाचार होकर यह कोशिश छोड़ दी, किन्तु इससे वह बहुत ज़्यादा दुःखित नहीं हुई।

हरसुन्दरीने जब कोशिश करना छोड़ दिया, तब स्वयं निवारणने इस ओर ध्यान दिया। यह बड़ा कौतूहल है! यह बड़ा रहस्य है! एक हीरेका टुकड़ा मिल जानेपर उसे अनेक तरहसे हेर-फेर कर देखनेकी इच्छा होती है,
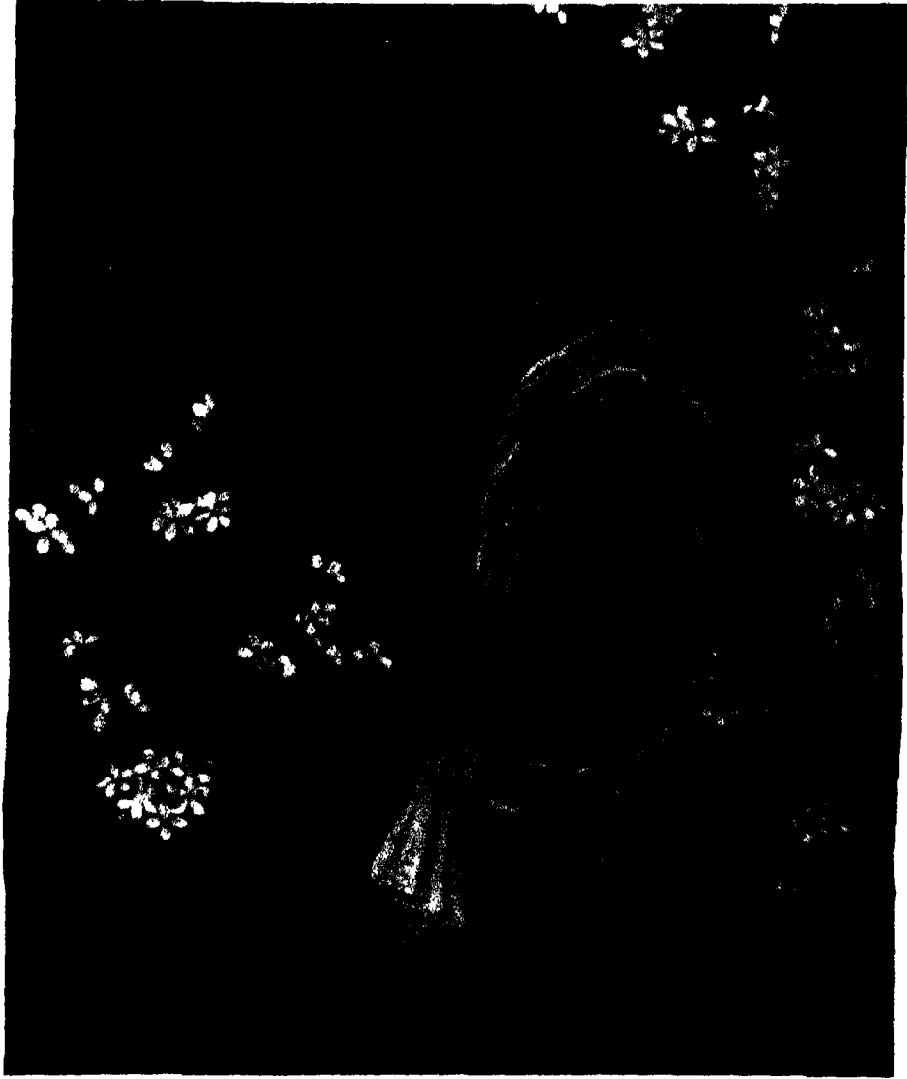
वेणु

'विशाल-भारत']

चित्रकार—श्री अयोध्यालाल

तब दोनों तटोंको प्लावित करके मनुष्य सोचता है—मेरी कहीं भी सीमा नहीं है। तब वह एक बड़ी प्रतिज्ञा कर बैठता है, परन्तु जीवनके सुदीर्घ भाटेके समय उस प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेमें उसके प्राण खिंचने लगते हैं। ऐश्वर्यके दिन एकाएक लेखनीकी एक लकीरसे जो दानपत्र लिख दिया जाता है, चिर-दरिद्रताके दिन पल-पलमें तिल-तिल करके उसे चुकाना पड़ता है। तब समझमें आता है कि मनुष्य बड़ा दीन है, हृदय बड़ा दुर्बल है, उसकी शक्ति-सामर्थ्य बहुत ही साधारण बिलकुल मामूली है।

बहुत दिन बीमारी झेलनेके बाद क्षीण, रक्तहीन, पांडु-कलेवर हरसुन्दरी उस दिन दौजके चन्द्रमाके समान एक शीर्ण रेखामात्र थी; संसारमें बहुत ही हलकी होकर वह रही थी! मालूम होता था—कुछ भी न हो, तो भी उसका काम चल सकता है। क्रमशः शरीर बलिष्ठ हो उठा, खूनका तेज बढ़ने लगा, तब हरसुन्दरीके मनमें न जाने कहांसे कुछ साझीदार आ पहुँचे, उन लोगोंने चिल्लाकर कहा—'तुम तो त्यागपत्र लिखकर बैठ गईं, पर हम अपना हक़ नहीं छोड़ सकते।'

हरसुन्दरीने जिस दिन पहले-पहल साफ़-साफ़ अपनी हालत समझ ली, उस दिन निवारण और शैलबालाको अपना शयनगृह सौंपकर वह अलग कमरेमें अकेली जाकर सो गई।

आठ वर्षकी उमरमें गौनेकी रातको जिस पलंगपर वह पहले-पहल सोई थी, आज सत्ताईस वर्ष बाद उस पलंगको उसने त्याग दिया। दिया बुझाकर यह सधवा रमणी जब असह्य हृदय-भार लेकर अपनी नई वैधव्य-शय्यापर आ पड़ी, तब गलीके दूसरी तरफ़ एक शौक़ीन युवक विहाग रागिनीमें मालिनीका गीत गा रहा था; और एक आदमी बायाँ तबला बजा रहा था, और सुननेवाले मित्रगण 'सम'के पास पहुँचते ही हाः-हाः कहकर चिल्ला उठते थे।

उसका वह गाना, उस निस्तब्ध ज्योत्स्ना-रात्रिमें पासके घरमें बुरा नहीं लगता था। उस समय बालिका शैलबालाकी आँख नींदके मारे झूम रही थीं, और निवारण उसके कानोंके पास मुँह ले जाकर धीरेसे कह रहा था—'सखी!'

इस भले आदमीने इस बीचमें बंकिम बाबूका 'चन्द्रशेखर' पढ़ डाला है, और एक आधुनिक कविका काव्य भी शैलबालाको पढ़कर सुना दिया है।

निवारणके जीवनके नीचेकी तहमें जो एक यौवनका सोत ज़ोरसे दबा पड़ा था, आघात पाकर सहसा वह बड़े बेमौके उमड़ पड़ा। कोई भी उसके लिए तैयार न था, इसी कारण अकस्मात् उसकी विवेक-बुद्धि और गिरस्तीका सारा इन्तज़ाम उलट-पुलट हो गया। वह बेचारा कभी नहीं जानता था कि मनुष्यके भीतर ऐसे सब उपद्रव-जनक पदार्थ रहते हैं, ऐसी प्रचण्ड दुर्दम शक्तियाँ रहती हैं, जो सारे हिसाब-किताबको, शृङ्खला-सामञ्जस्यको बिलकुल तीन-तेरह कर देती हैं।

अकेले निवारण ही नहीं, हरसुन्दरीको भी एक नई वेदनाका परिचय मिला। यह काहेकी आकांक्षा है, यह काहेकी दुःसह यन्त्रणा है! मन अभी जो चाहता है, उसे पहले तो कभी उसने नहीं चाहा, और न कभी पाया ही है। जब भले आदमियोंकी तरह निवारण प्रतिदिन नियमित रूपसे आफिस जाता था, जब सोनेके पहले कुछ देरके लिए दूधवालेका हिसाब, चीजोंकी महँगाई और लौकिकताके कर्तव्यके बारेमें उससे बातचीत करता था, तब तो इस अन्तर्विप्लवका कोई सूत्रपात तक न था। वह उससे प्रेम अवश्य करता था, किन्तु उसमें तो कोई चमक—कोई उत्ताप न था। वह प्रेम केवल अप्रज्वलित ईंधनके समान था, बस।

आज उसे मालूम होने लगा—जीवनकी सफलतासे मानो कोई उसे हमेशासे वंचित करता आया है। उसका हृदय मानो हमेशासे उपवास करता आया है। उसका यह नारी-जीवन अत्यन्त दरिद्रतामें ही कटा है। उसने अपनी ज़िन्दगीके पिछले सत्ताईस वर्ष केवल साग-तरकारी, आटा-दाल आदिके झमटमें ही दासीकी तरह बिता दिये; और अब जीवनके बीच मार्गमें आकर देखा तो उसीके

शयनगृहके पास एक गुप्त महान् ऐश्वर्यके भंडारका ताला खोलकर एक छोटीसी लड़की एकाएक राजराजेश्वरी बन बैठी है। माना कि नारी दासी है, पर साथ ही नारी रानी भी तो है! बटवारा करके एक नारी हुई दासी, और दूसरी हुई रानी! इसमें दासीका गौरव जाता रहा और रानीका सुख।

कारण, शैलबालाको भी नारी-जीवनके यथार्थ सुखका स्वाद नहीं मिला। लगातार इतना लाड़-प्यार पाया कि प्रेम करनेका उसे क्षण-भर भी अवकाश नहीं मिला। समुद्रकी ओर प्रवाहित होने और समुद्रमें अपनेको विसर्जित करनेमें नदीकी शायद कोई महान् सार्थकता है, किन्तु समुद्र यदि ज्वारके प्रवाहमें आकृष्ट होकर लगातार नदीका सामना करता रहे, तो नदी केवल अपनेमें ही आप फूलती रहती है। गृहस्थी अपना सारा लाड़-सुहाग लेकर दिन-रात शैलबालाकी ओर बढ़ती रही, जिससे शैलबालाका आत्माभिमान बहुत ही ऊँचेको चढ़ने लगा, गिरस्तीसे उसका प्रेम न हो पाया। उसने समझा, 'मेरे लिए ही सब कुछ है और मैं किसीके लिए भी नहीं हूँ।' इस अवस्थामें अहंकार काफी है, परन्तु तृप्ति ज़रा भी नहीं।

चौथा परिच्छेद

एक दिन घनघोर बादल झुक आये। ऐसा अँधेरा छा गया कि घरमें काम-धन्धा करना मुश्किल हो गया। बाहर झम-झम बरसा हो रही है। बेरके पेड़के नीचेके छोटे-छोटे पौधे और लतायें पानीमें डूब गई हैं, और दीवारके बगलका नाला बड़े ज़ोरोंसे बह रहा है, हरसुन्दरी अपने शयन गृहके निर्जन अन्धकारमें जंगलेके पास चुपचाप बैठी है।

इसी समय निवारण चोरकी तरह चुपकेसे दरवाज़ेके पास पहुँचा; लौट जाय या आगे बढ़े, इसकी कुछ अक्लमें न आया। हरसुन्दरीने सब कुछ देख लिया, लेकिन मुँहसे कुछ कहा नहीं।

तब निवारणने सहसा एकदम तीरकी तरह हरसुन्दरीके पास जाकर एक स्वाँसमें कह डाला—"कुछ गहनोंकी ज़रूरत है। बहुतसा कर्ज़ सरपर सवार है, महाजन बड़ी बेइज़्ज़ती कर रहे हैं—कुछ गिरवी रखकर उनसे पिंड छुड़ाना है—फिर जल्द ही छुड़ा लूँगा।"

हरसुन्दरीने कुछ उत्तर न दिया, निवारण चोरकी तरह खड़ा रहा। अन्तमें फिर बोला—"तो क्या आज न दे सकोगी?"

हरसुन्दरीने कहा—"नहीं।"

घरमें प्रवेश करना जैसा कठिन है, वहाँसे बाहर निकलना भी उतना ही कठिन है। निवारणने ज़रा संकोचके साथ कहा—"तो कहीं दूसरी जगह कोशिश करूँ"—कहकर चल दिया।

किसका कर्ज़ है और कहाँ गहने गिरवी रखे जायँगे, हरसुन्दरी सब समझ गई। समझ लिया कि नववधूने कल रातको अपने इस पालतू पुरुषको बड़ी ठसकके साथ कहा होगा—'जीजीके पास सन्दूक भरे गहने पड़े हैं, और मेरे लिए एक भी नहीं दिलाते।'

निवारणके चले जानेपर उसने धीरेसे उठकर लोहेका सन्दूक खोला और उसमेंसे एक-एक करके सब गहने निकाल लिये। शैलबालाको बुलाकर पहले उसे ब्याहकी साड़ी पहनाई, उसके बाद सिरसे लेकर पैर तक उसे ज़ेवरोंसे लाद दिया। अच्छी तरह जूड़ा बाँधकर दिया जलाकर देखा—बालिकाका मुँह बड़ा मीठा है, तुरत पके हुए सुगन्धित फलके समान गोल-मटोल है, रसभरी शैलबाला जब झम झम करती हुई चली गई, तब उसकी वह आवाज बहुत देर तक हरसुन्दरीकी नसोंमें खूनके भीतर झनझनाती रही। अपने मनमें कहने लगी—'अब आज इससे मेरी तुलना किस बातपर हो सकती है? पर किसी समय मेरी भी तो यही उमर थी, मैं भी तो इसकी तरह यौवनकी अन्तिम रेखा तक भर उठी थी, तो फिर मुझे इसकी किसीने खबर क्यों

नहीं दी ? कब वह दिन आया और कब चला गया, उसकी मुझे कुछ भी खबर न लगी। परन्तु इसे देखो, कैसी ठसकसे, किस गौरवसे, किस तरंगमें चलती है !'

हरसुन्दरी जब केवल घर गिरस्तीको ही अपना सब-कुछ जानती थी, तब ये गहने उसके लिए कितने कीमती थे। तब क्या वह अपने इन गहनोंको इस तरह एक साथ उठाकर दूसरेको दे देती ? अब वह गिरस्तीके अलावा और एक बड़ी चीज़से वाकिफ हो गई है, अब इन गहनोंकी कीमत और भविष्यका हिसाब उसके लिए बहुत ही तुच्छ चीज़ है।

और शैलबाला, सोने जवाहरातके गहने पहनकर छम-छम करती हुई सीधी अपने सोनेके कमरेमें चली गई उसने एक बार क्षण-भरके लिए सोचा भी नहीं कि हरसुन्दरीने उसे कितना दे डाला। उसने समझा कि चारों तरफकी सारी सेवा, सारी सम्पदा, सारा सौभाग्य स्वाभाविक नियमसे उसीमें आकर समाप्त होगा; कारण वह है 'शैलबाला' वह है, 'सखी' !

पाँचवाँ परिच्छेद

बाज आदमी ऐसे होते हैं कि स्वप्नावस्थामें निर्भीकताके साथ अत्यन्त संकटके मार्गसे चले जाते हैं, ज़रा भी विचार नहीं करते। बहुतसे जाग्रत मनुष्योंकी भी यही दशा होती है; उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, वे हमेशा स्वप्नावस्थामें ही रहते हैं, विपत्तिके सकीर्ण मार्गमें निश्चिन्त होकर अग्रसर होते रहते हैं, और अन्तमें दारुण सर्वनाशके बीचमें जाकर जाग उठते हैं !

हमारे मैकमोरन कम्पनीके हेड बाबूकी भी यही दशा हुई। शैलबाला उसके जीवनके मध्य-स्रोतमें एक प्रबल भँवरकी तरह घूमने लगी और बहुत दूर दूरसे अनेक बहुमूल्य पदार्थ आ-आकर उसमें विलुप्त होने लगे। केवल निवारणका मनुष्यत्व और मासिक वेतन, हरसुन्दरीका सुख सौभाग्य और वस्त्राभूषण ही नहीं, बल्कि साथ-ही-साथ मैकमोरन कम्पनीकी रोकड़ भी अज्ञात रूपसे उस भँवरमें खिंचने लगी। उसमें से भी दो-एक करते-करते धीरे-धीरे थैली-की थैली गायब होने लगी। निवारण सोचता कि अगले महीनेकी तनखाहसे धीरे-धीरे चुका दूँगा। परन्तु अगले महीनेकी तनखाह हाथमें आते ही वह भी उसी भँवरमें पड़ जाती और अन्तिम दुअन्नी तक चमकती हुई बिजलीकी तरह उसीमें समा जाती।

अन्तमें एक दिन पकड़े गये। पुश्तैनी नौकरी थी; साहब बहुत चाहता था। तहवील पूरी करनेके लिए उसने दो दिनका समय दिया।

किस तरह उसने धीरे धीरे ढ़ाई हजार रुपये गायब कर दिये, यह बात उसकी खुद ही समझमें भी न आई। वह बिलकुल पागल-सा हो गया, हरसुन्दरीके पास जाकर बोला—'सत्यानाश हो गया !"

सब हाल सुनकर हरसुन्दरीका चेहरा फक पड़ गया।

निवारणने कहा—"जल्दी गहने निकाल दो।"

हरसुन्दरीने कहा—"मैंने सब गहने छोटी बहूको दे दिये हैं।"

निवारण बिलकुल बच्चेकी तरह अधीर होकर कहने लगा—'क्यों दिये उसे ? क्या दिये ? तुमसे किसने कहा था कि तुम दे दो ?"

हरसुन्दरीने इसका ठीक जवाब न देकर कहा—"सो इसमें हर्ज क्या हो गया ? कोई कुएमें तो पड़ नहीं गये।"

भीरु निवारणने कातर स्वरमें कहा—"तो तुम किसी बहानेसे उससे निकाल लाओ ! लेकिन तुम्हें क़सम है, मेरा नाम न लेना, और न यह कहना कि किस लिए चाहिए।"

तब हरसुन्दरी मर्मभेदी क्रोध और घृणाके साथ कह उठी—'यह क्या बहाना करनेका—मुहाग दिखानेका समय है। चलो !" यह कहकर वह पतिको साथ लेकर छोटी बहूके कमरेमें पहुँची।

छोटी बहू कुछ न समझी। सब बातमें वह यही कहती रही—"सो मैं क्या जानूँ !"

ऐसी कोई शर्त उसके साथ थी क्या कि उसे घर-गिरस्तीके बारेमें कोई चिन्ता-फिकर करनी पड़ेगी ? बात तो यों होनी चाहिए कि सब अपनी-अपनी फिकर आप करें और सब मिलकर शैलबालाको आराम पहुँचानेकी सोचें। इसका व्यतिक्रम हो, यह कितना बड़ा अन्याय है !

आखिर निवारण शैलबालाके पैरों पड़कर रोने लगा। शैलबाला बार-बार यही कहने लगी— 'सो मैं नहीं जानती। अपनी चीज़ मैं क्यों दूँ ?"

निवारणने देखा कि यह दुर्बल छोटीसी सुन्दर सुकुमारी लोहेके सन्दूकसे भी ज्यादा कठोर है। हरसुन्दरी सकटके समय पतिकी इस कमज़ोरीको देखकर मारे घृणाके जल भुन उठी। शैलबालासे उसने ज़बरदस्ती चाबीका गुच्छा छीनना चाहा। शैलबालाने फौरन चाबीका गुच्छा दीवारके उसपार तालाबमें फेंक दिया।

हरसुन्दरीने अपने हतबुद्धि पतिसे कहा—"ताला तोड़ डालो न !"

शैलबालाने प्रशान्त भावसे कहा—"तो मैं गलेमें रस्सी डालकर मर जाऊंगी !—"

निवारणने कहा—"अच्छा मैं और कोई कोशिश करता हूँ।"—कहकर योंही बिना कुछ कपड़े-लत्ते पहने चल दिया। निवारण दो ही घटेके अंदर पैत्रिक मकान ढाई हज़ार रुपयेमें बेच आया।

बड़ी मुशकिलसे हाथोंमें हथकड़ी तो नहीं पड़ी, पर नौकरी छूट गई। स्थावर-जगम सम्पत्तिमें सिर्फ बचीं दो स्त्रियाँ। जिनमें क्लेशसे कातर बालिका स्त्री तो गर्भवती होकर बिलकुल स्थावर-सी ही हो गई। छोटीसी गलीमें एक ज़रासे सीड़े मकानमें इस छोटेसे परिवारने आश्रय लिया।

छठा परिच्छेद

छोटी बहूके असन्तोष और रोगका अन्त न रहा। वह किसी भी तरह यह नहीं समझना चाहती कि पति उसके असमर्थ हो गये हैं। 'अगर सामर्थ्य नहीं थी, तो ब्याह क्यों किया ?'

पहली मंज़िलमें सिर्फ दो ही कोठरियाँ थीं। एक कोठरीमें निवारण और शैलबालाका शयनगृह है। दूसरी कोठरीमें हरसुन्दरी रहती है। शैलबाला खुनखुन करती रहती—"मुझसे रात-दिन इसी कोठरीमें नहीं रहा जाता।"

निवारण झूठ-मूठको तसल्ली देकर कहता—"दूसरे मकानकी तलाशमें हूँ, जल्दी ही बदलूंगा।"

शैलबाला कहती—"क्यों, यह है तो सही बगलवाला मकान !"

शैलबालाने अपनी पहलेकी पड़ोसिनोंकी तरफ़ कभी मुँह उठाकर देखा भी न था। निवारणकी वर्तमान दुरवस्थासे व्यथित होकर एक दिन वे मिलने आईं ; शैलबाला घरका दरवाज़ा बद करके बैठ रही, आखिर किसी भी तरह खोला ही नहीं। उनके चले जानेपर गुस्सा होकर, रो-रोकर, उपासी रहकर हिस्टीरिया करके मुहल्ले-भरके नाकों दम कर दिया। ऐसा उपद्रव अकसर होने लगा।

आखिरको इस शारीरिक सकटके समयमें शैलबाला सख्त बीमार पड़ गई ; यहां तक कि गर्भपात होने तककी नौबत आ गई।

निवारणने हरसुन्दरीके दोनों हाथ थामकर कहा—"तुम उसे बचाओ।"

हरसुन्दरीने न दिन देखा, न रात ; शैलबालाकी जी-जानसे सेवा-टहल करने लगी। किसी बातमें ज़रा भी कसर रह जाती, तो शैलबाला उससे झिड़ककर बोलती, परन्तु हरसुन्दरी जवाब तक न देती।

शैलबाला साबूदाना न खाती, कटोरा समेत ज़मीनपर दे

मारती, वह बुखारमें श्रामके अचारसे भात खाना चाहती और नहीं मिलनेपर रो रोकर ज़मीन-श्रासमान एक कर देती। हरसुन्दरी उसे "मेरी रानी" "मेरी बहन" "जीजी मेरी" कहकर बच्चोंकी तरह बहलानेकी कोशिश करती।

लेकिन शैलबाला बची नहीं। गिरस्तीका सारा सुहाग सारा लाड़-प्यार लेकर अत्यन्त रोग और असन्तोषसे बालिकाका छोटासा अधूरा व्यर्थ जीवन नष्ट हो गया।

सातवाँ परिच्छेद

निवारणको पहले तो एक गहरी चोट लगी, फिर देखा तो उसका एक बड़ा-भारी बन्धन टूट गया। शोकमें भी सहसा उसे एक मुक्तिका आनन्द प्राप्त हुआ। एकाएक ऐसा मालूम हुआ कि इतने दिनोंसे मानो उसकी छातीपर कोई दुःस्वप्न सवार था। होश आनेपर क्षण-भरमें उसका जीवन अत्यन्त हलका हो गया। माधवी लताकी तरह यह जो कोमल पाश टूट गया, यही क्या उसकी प्यारकी शैलबाला थी? सहसा उसास लेकर देखा—नहीं, वह उसके गलेकी रस्सी थी।

और उसके चिरजीवनकी संगिनी हरसुन्दरी? देखा, वही तो उसकी सभी घर-गिरस्तीपर अकेली दखल जमाये उसके जीवनके सारे सुख-दुःखोंके स्मृति-मन्दिरके बीचमें बैठी हुई है—किन्तु फिर भी बीचमें विच्छेद है। बिलकुल जैसे एक छोटीसी चमकती हुई सुन्दर निष्ठुर छुरीने आकर एक हृदयके दाएँ और बाएँ अंशके बीचमें वेदनापूर्ण विदारण-रेखा खींच दी हो।

एक दिन गहरी रातको, सारा शहर जब सो रहा था, निवारणने चुपकेसे हरसुन्दरीके एकान्त शयनगृहमें प्रवेश किया। चुपचाप उसी पुरानी शय्याके दाहने हिस्सेपर सो रहा, परन्तु अबकी बार उसने अपने उस चिर-अधिकारके अन्दर चोरकी तरह प्रवेश किया।

हरसुन्दरी कुछ भी न बोली, निवारणके मुँहसे भी एक बात न निकली। पहले जिस तरह दोनों अगल-बगल सोया करते थे, अब भी उसी तरह अगल-बगल सोये, लेकिन बीचमें एक मरी हुई बालिका पड़ी ही रही, उसे कोई लाँघ न सका।

— धन्यकुमार जैन
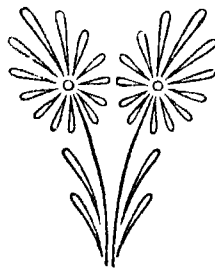
यूरोपका आर्थिक साम्राज्यवाद

डा० मथुरालाल शर्मा, एम-ए०

प्राचीन साम्राज्यवाद और आधुनिक साम्राज्यवादके स्वरूप और ध्येयमें आकाश-पातालका अन्तर है। आर्य साम्राज्यवादका ध्येय था यशोलाभ और एकछत्र शासनकी स्थापना। मुसलमानोंके साम्राज्यवादका ध्येय था धर्मप्रचार। आर्य शास्त्रकारोंने विजय-लाभ द्वारा अपना यश फैलाना राजाका कर्तव्य बतलाया है। पैग़म्बर मुहम्मद तलवारके बलसे इसलाम धर्मका प्रचार करना खुदाका आदेश मानते थे। मध्यकालीन यूरोपमें भी अनेक युद्ध धर्मके नामपर हुए थे। यूरोपके ईसाइयोंमें और पश्चिम एशियाके मुसलमान तुर्कोंमें जेरुसलमके धर्म-मन्दिरके विषयमें तीन सौ वर्ष तक युद्ध जारी रहा। सिकन्दरसे लेकर नादिरशाह तक जितने प्रसिद्ध विजयी हुए, उनको या तो अप्रतिभ शक्तिकी भूख थी या विस्तृत भूखण्डपर राज्य-स्थापनाकी आकांक्षा। सिकन्दर, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त मौर्य, अकबर आदि विजेता प्रधानतः अपना आधिपत्य मात्र स्वीकार कराना चाहते थे। *इसलिए सिकन्दरने पोरसका राज्य लौटा दिया था;* समुद्रगुप्तने अनेक राजाओंको हटाकर पुनः अपने राज्यासनोंपर बैठा दिया था और अकबर महाराणा प्रताप-द्वारा शाहशाह कहलाने मात्रका अभिलाषी था। तैमूर, चंगेज़ खां, महमूद ग़ज़नी, मुहम्मदग़ोरी आदिमें लूटकी तृष्णा अवश्य थी, परन्तु धर्मान्धता, विजयाकांक्षा और शक्तिलाभ इस तृष्णाके प्रधान मूल थे। कभी-कभी शासकोंकी व्यक्तिगत तरंगोंके कारण भी युद्ध हो जाया करते थे।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दिमें यूरोपमें अद्भुत जाग्रति हुई। यूरोपके नाविकोंने अमेरिकाका पता लगाया और सम्पूर्ण भूमंडलकी परिक्रमा करके अश्रुतपूर्व देशोंका ज्ञान प्राप्त किया। धार्मिक जाग्रतिके कारण और छापेके आविष्कारके कारण लोगोंका ज्ञान-क्षितिज-विस्तृत होने लगा। फलतः राजनैतिक जाग्रति भी होने लगी और प्रजाके अभ्युदयकी चिन्ता करना शासकोंका कर्तव्य माना जाने लगा। इसी समय कभी अवनत देशोंकी सम्पत्ति-हरणकी इच्छासे, कभी अपने शासकोंके धार्मिक अत्याचारोंसे बचनेके उद्देश्यसे, कभी उत्तम निर्वाहकी इच्छासे और कभी व्यापारकी गरज़से यूरोपीय लोग देश-देशान्तरोंमें फैलने लगे। सत्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें संसारके सम्पूर्ण प्रधान प्रदेशोंमें यूरोपीय लोग फैल गये। अमेरिकाको इन लोगोंने अपना उपनिवेश ही बना लिया। दक्षिण अमेरिकाके कई समृद्ध-देशोंको लूटकर अपना देश धनसे पाट लिया। एशियाके दक्षिण तट और अफ्रिकाके पश्चिमी तटके कई प्रधान बन्दरगाहोंपर यूरोपीय व्यापारियोंने अधिकार स्थापित कर लिया और व्यापारी कोठियाँ बना लीं। इस प्रकार यूरोपीय प्रभुत्वके प्रसारके साथ ही साथ जगत्की परम्परागत साम्राज्य-नीति भी बदलने लगी। यह ऐसी विजय-नीति थी, जिसका संसारने *अब तक उपयोग नहीं किया था।*

सोलहवीं शताब्दीमें रोमके पोपने यह व्यवस्था दे दी थी कि यूरोपसे पूर्वके भूखंडको पोर्तुगीज़ और पश्चिमके भूखंडको स्पेन अधिकृत कर सकता है। यूरोपीय लोगोंकी धारणा हो गई थी कि यूरोपके अतिरिक्त शेष सब संसार असभ्य और जंगली है, और जगत्में सभ्यताका प्रचार करना यूरोपका कर्तव्य है। पोर्तुगीज़ लोगोंने कुछ समय तक अधिकृत लोगोंको ईसाई बनानेके लिए विवश करनेकी नीतिका भी अवलम्बन किया था, पर वह अधिक समय तक नहीं निभ सका। वास्तवमें उन लोगोंका प्रधान उद्देश्य धर्म-प्रचारका था भी नहीं। वे लोग अपने साम्राज्यका विस्तार और अपने व्यापारकी वृद्धि चाहते थे। धर्म-प्रचार और सभ्यता-विस्तार तो गौण उद्देश्य थे, और प्रायः कहने मात्रको थे। इस

समय भी ऐसे यूरोपीय लोगोंकी कमी नहीं है, जो यह समझते हों कि अफ्रिका और एशियाको अपने चंगुलमें फँसाये रखना यूरोपका कर्तव्य है, क्योंकि यूरोपकी देख-रेखमें ही ये देश उन्नति कर सकते हैं। यदि यूरोपकी प्रभुता इन स्थानोंमें से हटा ली जाय, तो देश पुन: अन्धकारमें गिर जायगा। अवनत देशोंको उन्नत बनाना सफेद जातियोंका कर्तव्य है। यह भार परमात्माने उनको सौंपा है। यह श्वेत जातियोंके कर्तव्यकी तान अफ्रिका और एशियाके अनेक देशोंके विषयमें पुकारी जाती है, परन्तु वास्तवमें कर्तव्य-पालनकी भावनासे अफ्रिका और एशियाके किसी भी देशमें यूरोपियन जातियोंने प्रवेश नहीं किया है। प्राय: जहाँ भी ये लोग पहुँचे हैं, वहाँ आर्थिक लाभके लिए पहुँचे हैं। जब छल, बल और कौशलके द्वारा अपना पैर किसी देशमें जमा लेते हैं, तब वहाँ हमेशा बने रहनेके लिए 'श्वेत जातियोंके कर्तव्य' का पाठ दोहराया जाने लगता है।

किसी देशपर अधिकार प्राप्त कर लेनेके पश्चात उसके सान्निध्यमें अन्य देशोंको जीतनेके लिए बहाना ढूँढना कोई कठिन कार्य नहीं है। कभी अधिकृत देशोंके निकटवर्ती देशोंपर इस बहानेसे आक्रमण किया गया है कि वे असभ्य हैं और सुशासित देशोंपर उनका कुप्रभाव पड़ता है। कभी यह कहकर पासके देशोंको जीत लिया गया है कि वे यूरोपियनों द्वारा शासित देशोंकी शान्ति भङ्ग करते हैं। कभी युद्धका यह कारण बतलाया गया है कि उन देशोंमें यूरोपियन सौदागर निर्विघ्न व्यापार नहीं कर सकते। कभी राष्ट्रीय झण्डोंके अपमानका बदला लेनेके लिए चढ़ाई की जाती है, और कभी आर्थिक स्वार्थोंकी रक्षाके निमित्त।

गत शताब्दीके आरम्भसे ही यूरोपियन देशोंने यह कहना छोड़ दिया है कि ईसाई मतका प्रचार करनेके लिए, सभ्यता और शान्तिका पाठ पढ़ानेके लिए उन्होंने अफ्रिका या एशियामें प्रवेश किया है या करते हैं। सम्पूर्ण संसार इस बातको जानता है और यूरोपीय लेखकोंने प्राय: अब स्वीकार कर लिया है कि अफ्रिका और एशियामें यूरोपीय लुटेरोंके प्रवेशका कारण आर्थिक था न कि धार्मिक या नैतिक। परन्तु जब यह प्रश्न होता है कि एशिया और अफ्रीकाके जागृत, सभ्य और उन्नत देशोंको अपने चुंगलमें फंसाये रखनेका यूरोपियन लोगोंको क्या अधिकार है? तो उनका उत्तर होता है कि संसारके देशोंको सभ्य और स्वराज्यके योग्य बनाना उनका कर्तव्य है और अपने उत्तरदायित्वको निभानेके लिए ही वे इन देशोंमें ठहरे हुए हैं। इस उत्तरमें कितना सार है, यह बतलानेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। फ्रान्स यह कहनेका साहस नहीं कर सकता कि उसने ट्यूनिसको लोक हितकी दृष्टिसे जीता है, न इंग्लैंड इस बातका दावा कर सकता है कि उसने परोपकारके लिए मिश्र या सूडानमें प्रवेश किया है। परन्तु जब इन देशोंका पिण्ड छोड़नेका प्रश्न उठता है, तो कहा जाता है कि फ्रान्स और इंगलैंडके बिना ट्यूनिस और मिश्र नष्टभ्रष्ट हो जायँगे, इन देशोंको उन्नत और सभ्य बनानेके अभिप्रायसे ही फ्रान्स और इङ्गलैंड उनपर अपनी छत्र छाया बनाये हुए हैं। वास्तवमें गोरी जातियोंके कर्तव्य-भारकी नीतिका उस समय उदय होता है, जब अधिकृत देशोंकी अपहृत सम्पत्तिसे गोरे देश मालामाल होने लगते हैं।

यूरोपीय देशोंमें यह भी विश्वास हो गया है कि यूरोपके बाहर किसी देशपर अधिकार करना यूरोपीय राज्यके लिए यश और गौरवकी बात है। जिस यूरोपीय रियासतका राज्य यूरोपसे बाहर नहीं है, उसका आदर कम है और जिसका बाहर राज्य है, उसका आदर अधिक है। अर्थात गैर मुल्कोंकी स्वतन्त्रता हरणकी क्षमता ही यूरोपीय रियासतोंके सम्मानकी कसौटी है। इसलिए जब अंगरेजोंने साइप्रस टापूपर अधिकार कर लिया, तो फ्रान्सने समझा मानो उसकी नाक कट गई, और फ्रेंच मन्त्रीने अपने भाषणमें कहा कि फ्रान्सके मानकी रक्षा तभी हो सकती है, जब वह टोंकिन या ट्यूनिसके कुछ प्रदेशपर अपना अधिकार जमा ले। प्रत्येक यूरोपीय देशमें ऐसे लोगोंका भी अभाव नहीं है, जो इस साम्राज्यवादका विरोध करते रहे हैं, लेकिन अधिकृत देशोंसे राज्यका गौरव माना जाता है, इसलिए साम्राज्यवादका

विरोध करना भी एक प्रकारका देशद्रोह समझा जाने लगा है।

यूरोपीय विस्तारके कुछ कारण सैनिक भी हैं, परन्तु वे सब जगह लागू नहीं होते। एलजीरिया, ट्यूनिस और मोरोक्कोको अपने राज्य मिलते हुए फ्रान्सने यह दलील पेशकी थी कि इन देशोंमें आत्मरक्षाका सामर्थ्य तो है नहीं, यदि फ्रान्सके राज्यमें इनको सम्मिलित नहीं किया गया, तो कोई अन्य यूरोपीय रियासत इनपर अपना अधिकार जमा लेगी, जिससे फ्रान्सके लिए एक निरन्तर विघ्न उपस्थित हो जायगा। त्रिपोलीपर कब्ज़ा करते हुए इटलीने भी ठीक इसी प्रकारका व्याख्यान दिया था। ट्यूनिस, त्रिपोली और मोरोक्कोके लिए यह दलील शायद उपयुक्त हो, लेकिन शेष अफ्रीका यूरोपसे इतना दूर है कि उसका यूरोपके दक्षिणी राष्ट्रोंकी सैनिक स्थितिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। किसी साम्राज्यवादीने यह नहीं कहा है कि अपने देशकी आत्मरक्षाके लिए अफ्रिकाके पूर्वी और पश्चिमी तटपर तथा एशियाके किसी देशपर अपना अधिकार स्थापित करना अनिवार्य था। परन्तु ज्योंही यूरोपियन रियासतने किसी देशपर कब्ज़ा किया, त्योंही सारी स्थिति बदल जाती है। अब यह कहा जाने लगता है कि अपने मातहत देशकी रक्षा और कल्याणके लिए निकटस्थ देशोंको भी अपने राज्यमें मिलाना आवश्यक है, बल्कि सैनिक दृष्टिसे अनिवार्य है। अंग्रेज़ोंने मिश्रका गला इसलिए दबा रखा है कि यूरोपसे भारतवर्षके मार्गपर वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देश है और इसलिए सैनिक-दृष्टिसे उसको दबाये रखना अंग्रेज़ोंके लिए आवश्यक है। अंग्रेज़ साम्राज्यवादियोंका मत है कि यदि अंग्रेज़ मिश्रको मुक्त कर देंगे, तो दूसरी कोई यूरोपीय रियासत उसको जीत लेगी और भारतवर्षके मार्गमें एक भारी विघ्न खड़ा हो जायगा। जैसे एक असत्यको छिपानेके लिए कई और असत्य बोलने पड़ते हैं, उसी प्रकार एक देशको जीत लेनेके पश्चात् अन्य देशोंको जीतना भी आवश्यक हो जाता है।

ऊपरकी पंक्तियोंसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि यूरोपके साम्राज्य-विस्तारके प्रधान कारण परोपकार, आत्म-रक्षा या गौरव प्राप्ति नहीं हैं। परोपकारके लिए रक्तपात-द्वारा विजय प्राप्तिकी आवश्यकता ही नहीं थी। यदि यही यूरोपीय जातियोंका ध्येय होता, तो वे महाराज अशोककी अहिंसात्मक तथा प्रेममयी-नीतिका अवलम्बन कर सकती थीं। आत्मरक्षाके लिए इतना पर्याप्त था कि फ्रान्स और इटली अफ्रिकाके उत्तर भागपर अपना अधिकार जमा लेते। सारे संसारमें पैर फैलानेकी क्या आवश्यकता थी? केवल गौरव-प्राप्ति भी इस विस्तारका कारण नहीं कहा जा सकता। यूरोपीय देशोंके भी सत्यनिष्ठ तथा साम्यवादी लोगोंका मत है कि साम्राज्यवादसे राज्यकी गौरव वृद्धि नहीं, बल्कि गौरव-क्षति होती है।

जब हम आर्थिक कारणोंपर विचार करते हैं, तो पता चलता है कि यूरोपके साम्राज्यवादके ये ही मूल कारण है। गत शताब्दीके पूर्वार्द्धमें इनका स्वरूप और ही था और अब कुछ और ही है। औद्योगिक विप्लवके कारण यूरोपीय देशोंमें १९ वीं शताब्दीके आरम्भमें ही यह समस्या प्रकट होने लगती थी कि पक्के मालको कहाँ खपाया जावे और कच्चा माल कहाँ बेचा जावे। उससे पूर्व भी यूरोपीय लोग व्यापारिक लाभके लिए ही अफ्रिका, एशिया और अमेरिकामें पहुँच गये थे और भोले-भाले अवनत देशोंके साथ व्यापार करके विपुल लाभ प्राप्त कर चुके थे। १७वीं और १८वीं शताब्दीमें यूरोपियन लोगोंकी अनेक व्यापारिक कम्पनियाँ एशिया और अफ्रिकामें फैल चुकी थीं। लेकिन १९वीं शताब्दीके आरम्भसे यूरोपकी व्यापारिक नीतिमें एक विशेष समस्या खड़ी होने लगी और व्यापारिक संगठनका स्वरूप बदलने लगा। वैज्ञानिक आविष्कारोंके कारण औद्योगिक उपजकी अत्यधिक वृद्धि होने लगी, और कृषक लोग गाँवोंको छोड़कर नगरके कारखानोंमें भर्ती होने लगे। इस प्रकार कारखानोंमें विपुलताके साथ माल पैदा किया जाने लगा और खाद्य-पदार्थोंकी उपज घटने लगी। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि कारखानोंके लिए कच्चा माल कहाँ

खरीदा जाय। फलस्वरूप ऐसे अनेक व्यापारिक संघ बने। जिनने एशिया और अफ्रिकामें कई स्थानोंपर अपना अधिकार जमा लिया और वाणिज्य-केन्द्र स्थापित करके वहाँ अपना माल खपाने और कच्चा माल तथा अन्न वहाँसे खरीदनेका धन्धा करने लगे। अपने व्यापारको निर्विघ्न चलानेके लिए इन संघोंने कहीं तो देशी शासकोंसे विशेष अधिकार प्राप्त किये, कहीं अपने स्वार्थोंकी रक्षाके लिए अवनत देशोंको कुचला, कहीं अधिकृत देशोंमें अपना माल खपानेके लिए वहाँके उद्योग-धन्धोंको नष्ट किया और कहीं अपने मातहत देशोंकी रक्षाके बहाने निकटवर्ती देशोंको जीतकर अपने राज्यमें मिलाया। इस प्रकार इन संघोंने एशिया और अफ्रिकामें अपना जाल फैलाकर कहीं खास सहूलियतें हासिल कीं और कहीं अपना राज्य जमा लिया। परन्तु गत शताब्दीके मध्य तक यह कार्य धनिक वणिकोंके संघोंका था। शासन और व्यापार दोनों इन संघोंके हाथमें थे। यूरोपियन सरकारोंका इस व्यापारिक सम्राज्यवादसे अब तक कोई खास सम्बन्ध नहीं था। यूरोपीय रियासतें कभी-कभी इन संघोंके प्रबन्धमें हस्तक्षेप करती थीं और कभी-कभी इनको सहायता भी देती थीं, परन्तु १८५० से पूर्व कोई भी यूरोपीय सरकार अपने देशके व्यापारिक-संघोंकी हितवृद्धि अपना कर्तव्य नहीं मानती थीं। गत शताब्दीके उत्तरार्द्धमें धीरे धीरे यूरोपीय सरकारें इस बातको स्वीकार करने लगीं कि अपने देशके व्यापारको संसारमें उन्नत करना और उसके विघ्नोंका निवारण करना राजनैतिक कर्तव्य है।

१६ वीं शताब्दीके मध्यमें यूरोपके प्रायः सम्पूर्ण राष्ट्रोंमें प्रजातन्त्र स्थापित हो चुके थे और जहाँ शाही घरानोंका अन्त नहीं किया गया था, वहाँ शासकोंकी शक्तियां अत्यन्त नियन्त्रित कर दी गई थीं। अतः शासननीति और शासन संचालन प्रायः प्रजाके हाथमें थे। पहले ही यह बतलाया जा चुका है कि औद्योगिक विप्लवके कारण कल कारखानोंकी संख्या बड़े ज़ोरोंसे बढ़ने लगी थी और अत्यधिक माल पैदा किया जाने लगा था। साथ ही शासन-नीति भी प्रजाके हाथमें आ चुकी थी। प्रायः सब यूरोपीय रियासतोंका व्यवसाय मुख्यतः पक्का माल उत्पन्न करना था, जिसके कारण प्रत्येक सरकारके सामने पक्के मालको खपानेका और कच्चे मालको खरीदनेका प्रश्न उपस्थित होने लगा। इतना ही नहीं, पूंजीपति यह भी चाहते थे कि पक्का माल महँगेसे महँगा बेचा जावे और कच्चा माल सस्तेसे सस्ता खरीदा जावे। प्रायः सब ही यूरोपीय देश इस ओर उन्नति करते जाते थे, अतः इनमें एक दूसरेका न पक्का माल खप सकता था और न इनमें कच्चा माल खरीदा जा सकता था। सन १८७० के लगभग यूरोपीय सरकारोंने रक्षणात्मक चुंगीकी नीति जारी कर दी और अमेरिकाने भी इसका अनुसरण किया। इस कारण यूरोपीय देशोंका माल जो वहाँ थोड़ा बहुत खपता था, सो भी बन्द हो गया, और समस्या और भी अधिक विकट हो गई।

इस स्थितिमें सब यूरोपीय औद्योगिक देशोंकी दृष्टि अफ्रीका, एशिया और पूर्वी द्वीपसमूह तथा आस्ट्रेलिया पर पड़ी। व्यापारिक संघोंकी संख्या दिन-दिन बढ़ने लगी और इन महाद्वीपोंके बाज़ार यूरोपीय वस्तुओंसे पाटे जाने लगे। परन्तु शान्तिमय साधनोंसे व्यापार अधिक समय तक न चल सका। जो रक्षणात्मक नीति यूरोपीय राष्ट्रोंने अपने घरोंमें जारी की थी, उसको अधिकृत देशोंमें जारी करना क्या कठिन था? अतः जहां अंग्रेजोंका प्रभुत्व था वहां फ्रान्सके मालपर और जहां फ्रान्सका अधिकार था वहां अंग्रेजोंके मालपर भारी कर लगाना शुरू हुआ। इसलिए अपने राज्यसे बाहर व्यापार करना यूरोपीय देशोंके लिए कठिन हो गया। फल इसका यह हुआ कि प्रत्येक राष्ट्रको अपने राज्य विस्तारकी आवश्यकता होने लगी, और सब यूरोपीय सरकारोंकी आँखें उन देशोंपर पड़ने लगीं, जो अब तक गोरी जातियोंके अधिकारमें नहीं आये थे। सन १८८० के लगभग सब यूरोपीय राष्ट्र अपने-अपने साम्राज्यको विस्तृत करनेका प्राणपणसे प्रयत्न करने लगे और अफ्रिका तथा एशियाके देशोंकी स्वतंत्रताका यूरोपीय आर्थिक साम्राज्यवादकी

वेदीपर बलिदान होने लगा। फ्रान्स, जर्मनी और ब्रिटेन जहाँ-तहाँ देशोंको अपने राज्यमें मिलाने लगे। १८८० और १८६० के बीचमें अफ्रीकाकी ५० लाख वर्गमील भूमि और ६ करोड़ जनसंख्या पर यूरोपीय राष्ट्रोंने अधिकार प्राप्त कर लिया। इन्हीं दश वर्षोंके अन्दर एशियामें ब्रिटेनने बर्मा, बलूचिस्तान और मलाया अन्तरीपको अपने राज्यमें मिलाया और फ्रान्सने अनाम तथा टोंकिंगपर कब्जा करके चीनभंगका श्रीगणेश किया। उधर ये ही तीनों यूरोपीय राष्ट्र प्रशान्त महासागरके टापुओंको अपने-अपने राज्यमें मिलानेका यत्न करने लगे।

१८८० और १६१४के मध्यमें यूरोपके कई राजनीतिज्ञोंने यह स्पष्ट कहा है कि विदेशोंको अपने शासनमें रखनेसे सबसे बड़ा लाभ यह है कि उनका व्यापार चलता है और पक्का माल बेचने तथा कच्चा माल खरीदनेका स्थान मिलता है। फ्रान्समें इस नीतिके पोषक थे जुलेफ़ेरी, सेन्त हिलेर और एटीन। ये तीनों इस विषयमें सहमत हैं कि आर्थिक लाभ उनकी नीतिका मूल है। तीनोंका कहना है कि अपनी पूँजीका लाभकारी धन्धोंमें उपयोग करनेके लिए तथा अपने मालको खपानेके लिए फ्रान्सको अपने साम्राज्यका विस्तार करना पड़ा है, और करना चाहिए। ब्रिटेनमें इस आर्थिक साम्राज्यवादके हामी थे जोज़फ चेम्बरलेन और लार्ड रोज़बरी। जो॰ चेम्बरलेनने एक बार घोषित किया था कि—"हमारी सरकारको इस बातकी निरन्तर चिन्ता है कि नये बाज़ार उत्पन्न किये जायँ और पुराने बाजारोंको उन्नत बनाया जावे। अतः इस बातकी आवश्यकता है कि सम्पूर्ण उचित उपायों द्वारा अफ्रीका महाद्वीपमें हम अपना राज्य और अधिकार बढ़ाते जावें।" इसी प्रकारके विचार लार्ड रोज़बरीने कई बार प्रकट किये थे। जर्मनीमें यह नीति बिस्मार्कने आरम्भ की थी। वह स्वयं तो साम्राज्यवादी नहीं था, लेकिन सम्पन्न व्यापारियोंके दबावसे उसको इसका अवलम्बन करना पड़ा था। उसने स्पष्ट घोषित कर दिया था कि उसके सब कार्योंका उद्देश्य आर्थिक लाभ है। उसने कहा था कि—"मैं यूरोपके बाहर प्रान्त नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरी अभिलाषा विपुल वाणिज्यलाभके लिए है।" इस समय चर्चिल और उनके अनुयायीगण भारतकी स्वतन्त्रताके विरोधमें जो आन्दोलन कर रहे हैं, उसके भी कारण आर्थिक ही हैं। चर्चिल कई बार स्पष्ट कह चुका है कि अंग्रेजी साम्राज्यमें से जब भारत निकल जायगा, तो रह ही क्या जायगा। फिर कहां ब्रिटेनका माल खपेगा और कहां उसको माल मिलेगा। चीनको ब्रिटेन, जर्मनी, अमेरिका और फ्रान्सने अब तक जो पंजेमें फँसा रक्खा था, उसका कारण भी यही था कि वहां ये देश अपना माल बेचते थे और कच्चा माल खरीदते थे। मिश्रमें अंग्रेज़ अपना पक्का माल बेचते हैं और वहांसे रुई कौड़ियोंके दामपर खरीदते हैं। यही नीति अफ्रीका और एशियाके सब देशोंके साथ बरती जाती है।

अब इस आर्थिक साम्राज्यवादके भीषण स्वरूप और उसके रक्त शोषक परिणामोंको सब अधिकृत देश समझ गये हैं। जापानकी नींद सबसे पहले खुली थी और वह अपने त्यागी शासकोंके प्रतापसे शीघ्र ही इस कपट-जालसे मुक्त हो गया। रूस महासमरके पश्चात् कमाल पाशाने मुक्त किया और अफग़ानिस्तानको शाह अमानुल्लाने। सीरिया, पलस्तीन और ईराक़ अभी यूरोपके पंजेमें फंसे हुए हैं पर इनकी स्वतन्त्रता अब दूर नहीं है। भारतवर्षको महात्मा गांधीने चेताया है और स्वदेशी आन्दोलनने आर्थिक साम्राज्यवादकी असली नस दबाई है। सम्पूर्ण एशियामें इस समय रूसके अतिरिक्त सब यूरोपीय राष्ट्रोंके प्रति रोष उमड़ा हुआ है, सर्वत्र यूरोपीय वस्तुओंके बहिष्कारकी चर्चा है। आर्थिक साम्राज्यवादके युगका अन्त निकट ही जान पड़ता है। कौन कह सकता है कि आगामी युग क्या होगा और कैसा होगा? कुछ भी हो, यूरोपीय प्रभुत्वका अन्त अवश्यम्भावी है और अत्यन्त निकट है।

दरिद्र देश

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, बी०ए०, बी०एल०

जर्मनीके 'Berlinn Tageboalt' नामक समाचारपत्रने दो वर्ष पहले Bernhand Kellumann नामक एक सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखकको भारत, फारस और चीन देशमें भ्रमण करने और उन देशोंकी परिस्थितिके सम्बन्धमें रिपोर्ट देनेके लिए नियुक्त किया था। उक्त लेखकने जर्मन-भाषामें भारतवर्षके सम्बन्धमें जो वृत्तान्त प्रकाशित कराया था, उसका अंग्रेज़ी अनुवाद इस देशके किसी अंग्रेज़ी पत्रमें प्रकाशित हुआ था। उसी लेखका सारांश हम पाठकोंकी जानकारीके लिए अनुवादके रूपमें यहां उपस्थित करते हैं।

"भारतवर्ष, वही भारतवर्ष, जो किसी समय संसारके समस्त समृद्धिशाली देशोंका शिरोमणि था, जिसके ऐश्वर्य वैभवकी कथाएँ विदेशियोंको कल्पित कहानी-सी प्रतीत होती थीं, वही देश आज एक दरिद्र भिक्षुक देशके सिवा और कुछ नहीं रह गया है। निरावलम्ब और नैराश्यपूर्ण भविष्य, शोक और अन्धकारमें डूबा हुआ यह देश इस समय अपने प्राचीन राजप्रासादोंके सामने नत मस्तक होकर अपनी गौरव-गरिमाको स्मरण करता हुआ दुःख और शोकके आँसू बहा रहा है। यद्यपि यह देश भारतवासियोंका है, किन्तु यहांके वास्तविक निवासी इस समय विदेशी बने हुए हैं।

भारतके सम्बन्धमें हम विदेशियोंको बहुत कम ज्ञान है। उस देशका हमें उतना ही ज्ञान है, जितना हमें उसका विदेशी मालिक ज्ञान होने देता है। भारतवर्षको भी संसारके सम्बन्धमें उतना ही ज्ञान है, जितना उसका विदेशी मालिक उसे जानने देता है। बस, इससे अधिक वह कुछ जानने नहीं पाता। भारतके समाचारपत्र ग़रीब हैं। वहांके डाक और तारपर विदेशियोंका नियन्त्रण है। जिन घटनाओंको लेकर संसारमें उथल पुथल मची रहती है, उनके विषयमें भारतको बहुत कम ज्ञान होने पाता है। संवाद-वाहक संस्था-द्वारा जो संवाद भेजे जाते हैं, उन्हें इस प्रकार काट-छाँटकर दिया जाता है कि उनसे पाठकोंको बाहरी दुनियाका वास्तविक ज्ञान होना प्रायः असम्भव-सा हो जाता है। भारतवर्षमें स्वतंत्रतापूर्वक अपने मतों और मनोगत भावोंको व्यक्त करना सम्भव नहीं है। वहांके विदेशी अधिकारी इस बातको गवारा नहीं कर सकते कि गुलाम और भिखमंगे देशके लोग अपने विचारोंको प्रकट करें। भारतके समाचारपत्रोंमें पत्र सम्पादकोंके विरुद्ध चलाये गये मामलोंके संवाद प्रायः रोज़ ही प्रकाशित होते रहते हैं। राजनीतिक कैदियोंसे वहांके जेल आये दिन भी भरे रहते हैं। राज्य-शासनके विरुद्ध विद्रोह करना नहीं, बल्कि उसके प्रति असन्तोष और अप्रीतिका प्रचार करना ही जेलकी सज़ाके लिए काफ़ी क़सूर है। इसी अपराधके लिए लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी जैसे पुरुष-पुंगव भी कारावासका दण्ड भुगत चुके हैं।

एक बार मैं भारतके किसी बाज़ारमें घूम रहा था, जब कि घोड़ेपर सवार तीन भद्र-पुरुष मेरी ओर आते हुए दिखाई पड़े। मुझे देखते ही वे फ़ौरन घोड़ेसे उतर पड़े और घोड़ेको अलग करके मुझे झुककर सलाम किया। मैं उनके ऐसा करनेपर चकित हो रहा था, जब कि मेरे साथीने मुझसे बताया कि उन्होंने मुझे अंग्रेज़ समझकर डरसे सलाम किया है। इस एक घटनासे ही यह साफ़-साफ़ मालूम हो जाता है कि विजेताओंने विजितोंके हृदयपर कितना ज़बरदस्त आतंक जमा रखा है। इस प्रकार यह देश केवल भिखमंगा ही नहीं, बल्कि गुलाम भी बन गया है। यहांके लोगोंकी यह आदत-सी

पड़ गई है कि किसी साहबकी भौंहें टेढ़ी हुईं या उसकी पेशानीपर ज़रा भी शिकन आई कि उसी दम वे हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने और दयाकी याचना करने लग जाते हैं।

जिस प्रकार एक बार भारतीयोंने मुझे भ्रमसे अंग्रेज़ समझनेकी भूल की थी, उसी प्रकार अंग्रेज़ लोग भी मुझे अकसर हिन्दुस्तानी समझनेकी भूल कर बैठते थे। जब कभी मैं इम्पीरियल बैंकके आफिसमें कामसे जाता था, तो मैं उसके नौजवान डाइरेक्टरोंको बिलकुल अहंकारयुक्त भाव भंगीमें कुछ घृणाका भाव धारण किये हुए अपने ठंडे कमरेमें बैठा हुआ पाता था। उनमेंसे एक तो एक कुर्सीकी बाँहपर अपना पाँव तक रखे हुए था। मुझे इन गोरे डाइरेक्टरोंकी भाव-भंगी देखकर फौरन यह खयाल हो आया कि उन भारतवासियोंका यह कहना कितना सच है कि जब कभी उन्हें किसी बड़े अफसरके यहाँ कामसे जाना पड़ता है, तभी वे क्रोधसे काँपने लग जाते हैं और उनका चेहरा अपमानसे पीला पड़ जाता है। उन भारतवासियोंने मुझसे ज़ोरके साथ कहा था—"भारतवर्ष ऐसा देश नहीं, जिसमें कोई आदमी प्रतिष्ठाके साथ रह सकता है। यह देश बिलकुल गया बीता है।" मैंने हिन्दुस्तानमें हज़ारों मील मोटर-द्वारा सफर किया है और वहाँके लोगोंके सम्बन्धमें जानकारी हासिल की है। मैंने उन्हें व्यवहारमें अत्यन्त विनम्र और मैत्रीभावपूर्ण पाया है। क्या अंग्रेज़ लोग समझते हैं कि इन भारतवासियोंके हृदयमें उनके प्रति घृणाका भाव कितना बद्धमूल है!

भारतको कौन जान सकता है? वह सर्वथा अपरिमेय है। वह *निस्सीम* है। एक *महादेश* है। जो लोग बीसों वर्ष तक उस महादेशमें भ्रमण कर चुके हों और वहाँकी सैकड़ों भाषाओंके ज्ञाता हों, वे ही शायद उसका पता पा सकें। एक साधारण यात्री तो उस देशकी रेलों, होटलों, मोटर गाड़ियोंसे भरी हुई नगर-वीथियोंमें सुरक्षित *उद्यान, प्रजायबघरों और आधुनिक ढंगके बड़े-बड़े मकानोंको* ही देख पाता है। वह कलकत्तेके बन्दरगाहको जहाज़के डकोंसे भरा हुआ, कल-कारखानोंके चिमनियोंको, आश्चर्यपूर्ण हवड़ा पुलको—जो दिन-रात हज़ारों मोटर गाड़ियों, लोरियों और भैंसा-गाड़ियोंसे गड़गड़ाता रहता है—देखकर ही देशके सम्बन्धमें अनुमान करने लगता है। एक सामान्य यात्री जो देख पाता है, वह तो पूर्णरूपेण परिचालित शासन-यन्त्रके सिवा और कुछ नहीं है, जिसे देखकर यही आभास मिलता है कि शासन-व्यवस्था सर्वथा सुव्यवस्थित और *वाणिज्यके साथ पूर्ण समृद्धिशालिनी है।* किन्तु इन सारी तड़क-भड़कके पीछे, जो दरिद्र और अपमानित अथवा वास्तविक भारत छिपा हुआ है, उसे तो वह देख ही नहीं पाता।

भारतीय जनसख्याकी एक निश्चित तादाद प्रतिवर्ष अन्नके अभावसे भूखों मर जाती है। अंगरेज़ोंने जो हिसाब लगाया है, उसीसे मालूम होता है कि हिन्दुस्तानियोंकी औसत सालाना आमदनी ४० से ८० मार्क अर्थात् २६) से ५२) रु० तक पड़ती है। अधिकांश भारतवासियोंको, जो परिमितव्ययी इतने होते हैं कि उसपर विश्वास नहीं होता, भर-पेट भोजन नहीं मिलता और वे प्रतिदिन भूखे रहकर ही सो जाते हैं। दीन-दुःखी ग्रामोंमें जाकर देखिये तो पता चलेगा कि अधभूखे परिवारके लोग ऐसी झोपड़ियों और सूराखोंमें रहा करते हैं, जो मनुष्योंके बासके लिए तो सर्वथा अयोग्य हैं ही, उसमें जानवर भी मुश्किलसे आश्रय पा सकते हैं। मिलोंमें एक स्त्रीको रोज़ाना एक मार्कसे अधिक और पुरुषको दो मार्कसे अधिक मज़दूरी दस घंटा काम करने पर भी नहीं मिलती। खानोंमें काम करनेकी मज़दूरी तो इससे भी कम है। सरकारी दफ्तरोंमें ५०-६० रुपये मासिक वेतनके पदोंके लिए सैकड़ों शिक्षित युवक टूट पड़ते हैं।

बेकारी बहुत बढ़ी हुई है। जब कभी कोई जगह खाली होती है, तो उसके लिए सैकड़ों उमीदवार देख पड़ते हैं। मुझे *ऐसे बहुतसे बेकाम अफसर मिले, जिन्हें वर्षोंसे कोई काम न*

मिला था। किसी विदेशीको देखकर झुंडके झुंड भिखमंगे उसे घेरकर खड़े हो जाते हैं। ब्रिटिश भारतमें ही प्रतिवर्ष चालीससे लेकर पचास लाख तक मनुष्य ज्वर, प्लेग, चेचक और हैज़ेसे मर जाया करते हैं। इसी ब्रिटिश भारतमें, जिसकी आबादी २५ करोड़के लगभग है, सन् १९२३ ई०में यहाँके अस्पतालोंमें सिर्फ ६० हजार रोगियोंके लिए रहनेका स्थान था। भारतके बहुतसे छोटे-छोटे शहरोंमें मैंने देखा है कि वहाँके वैद्य और डाक्टर किस प्रकार बिलकुल अपर्याप्त साधनोंके रहते हुए भी इन रोगोंकी बाढ़के विरुद्ध साहसके साथ युद्ध कर रहे हैं। रोगियोंकी संख्या इतनी अधिक होती थी कि वे बड़ी मुश्किलसे रजिस्टरमें उनके नाम दर्ज कर सकते थे। भारतवासियोंकी औसत आयु २४ वर्षसे अधिक नहीं होती, और यूरोपमें यही आयु परिमाण इसका दुगुना होता है।

भारतवर्ष इस समय संसारमें सबसे बढ़कर दरिद्र देश है। इतनेपर भी लोग इस दरिद्र देशको प्रतिवर्ष लगभग १ अरब ५० करोड़ मार्कका कपास, २५ करोड़ मार्कका अनाज, ५० करोड़ मार्ककी चाय और इसके अलावा बहुतसा कच्चा चमड़ा, लोहा, पेट्रोलियम और चीनी बाहर भेजना पड़ता है। इस देशके आयात-निर्यातका अंक १० अरब मार्क (एक मार्क लगभग १ शिलिंगके बराबर होता है) तक पहुँच जाता है। भारतके समान समृद्धिशाली देश आज किस प्रकार इतना दीन-हीन बन गया है? भारत-सरकारके अर्थ विभागके भूतपूर्व सदस्य सर जान स्ट्रेचीने भारतकी दरिद्रताका ज़िक्र करते हुए लिखा है कि भारतवर्षको अपनी राजनीतिक और आर्थिक पराधीनताके कारण लगभग २ करोड़ १० लाख मूल्यकी पैदावार बाहर भेजनी पड़ती है और इसके बदलेमें उसे आर्थिकलाभके रूपमें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार प्रतिवर्ष लगभग ४० करोड़ मार्क सरकारी और विदेशी महाजनोंकी पूँजीके तावान (क्षतिपूर्ति) के रूपमें इस देशसे निकल जाया करता है।

अर्थ-शास्त्रियोंने अन्दाजा लगाया है कि विदेशी पूँजीके रूपमें इस देशमें जो ५७ करोड़ पौंडकी रकम लगी हुई है, उसमें सिर्फ इंग्लैंडका ४० करोड़ पौंड है। रेल, बैंक, ट्रामवे, जल-कल, खान, पेट्रोलियम, रबर, चाय, कहवा आदि हरएक चीज़में प्राय: तीन-चौथाई हिस्सा अंग्रेज़ोंके हाथमें है। इस पूँजीसे जो मुनाफा होता है, वह विदेशी अंग्रेज़ोंकी जेबमें चला जाता है। भारतवासी कुली बनकर ज़िन्दगी बसर करते हैं।

भिखमंगे भारतवासियोंको प्रतिवर्ष लगभग १ अरब मार्क फ़ौजके लिए खर्च करना पड़ता है, जिस फ़ौजका एकमात्र उद्देश्य उन्हें दबाकर रखना है। भारतीय सेना संसारमें सर्वोत्तम और सबसे बढ़कर खर्चीली है, जिसे देखकर सैन्यबल सज्जित करनेवालोंका हृदय आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठता है। फौजी अफसर और कमांडर सुरम्य उद्यानवेष्टित सुन्दर और विस्तृत स्थानोंके बीच छोटे-छोटे महलोंमें रहा करते हैं। उनके आवागमनके लिए सैकड़ों नई मोटरगाड़ियाँ तैयार रहती हैं। फ़ौजी छावनियोंमें आने-जानेकी सड़कें बहुत ही अच्छी हुआ करती हैं। और इस सब साज-सामानका खर्च कौन जुटाता है?—वही भिखमंगा देश।

अभी हाल ही में भारतीय नौसेनाका निर्माण किया गया है, और इसके निर्माणपर एक बड़े अंग्रेज़ अफसरने भारतीय राष्ट्रको इस सौभाग्यपर बधाई दी है कि उसकी नौसेना प्रतापशालिनी अंग्रेज़ी नौसेनाका एक अंग बनकर रहेगी। एक भारतीय मित्रने मुझसे इस सम्बन्धमें चर्चा करते हुए बताया कि अंग्रेज़ी बेड़ाकी प्रसिद्धिके विषयमें तो किसीको सन्देह हो ही नहीं सकता, लेकिन इस नौसेनाके यहाँ बराबर रहनेकी ज़रूरत ही क्या है? क्या हम भारतवासी इतने मूढ़ हैं कि इस बातको समझते ही नहीं? असलमें यह तो भारत-वासियोंको गुलाम बनानेका एक और उपाय है और इसके साथ-साथ इंग्लैंडके व्यवसायके लिए एक सुभीता है। बस, इसके सिवा और इसका कुछ भी अभिप्राय नहीं हो सकता।

वायसराय, गवर्नर तथा अन्य बहुसंख्यक उच्च अफसर, जो गर्मीके दिनोंमें शिमला और दार्जिलिंगके शैल-शिखरोंपर

रहा करते हैं और जिनके साथ हमेशा झुंडके झुंड नौकर-चाकर, अर्दली और मोटरगाड़ियाँ मौजूद रहा करती हैं, उनका खर्च कौन जुटाता है?—वही दरिद्र भिखमंगे भारतवासी।

अंग्रेज़ोंके गिरजाघरोंके लिए भी इन भारतवासियोंको ही खर्च देना पड़ता है। सो भी कितना? प्रतिवर्ष ८० लाख रुपया! यह रक़म तो सचमुच ही बहुत कम है!

सरकारी कागज़ोंसे ही मालूम होता है कि भारत-सरकार अपनी कुल सालाना आमदनीका प्रतिशत २८ भाग सेनामें खर्च करती है। और यही सरकार शिक्षा और स्वास्थ्यमें कितना खर्च करती है? शिक्षाके मदमें सिर्फ सैकड़े पीछे पाँच हज़ार और स्वास्थ्यमें हज़ार पीछे एक खर्च करती है। पुलिस और क़ानूनमें आमदनीका सैकड़े १० भाग खर्च होता है और भारतीय ऋणके ब्याजपर भी लगभग इतना ही खर्च होता है। कृषिके ऊपर लगाये गये टैक्ससे भारत सरकारको अपनी आयका लगभग सैकड़े सोलहवाँ हिस्सा प्राप्त होता है और इंग्लैंडमें इस मदमें सिर्फ एक हिस्सा प्राप्त होता है। संसारका दूसरा कौन देश बिना सर्वनाशको प्राप्त हुए एक वर्षसे अधिक इस प्रकारका शासन-भार सहन कर सकता है? और भारतवर्ष इस भारको लगभग सौ वर्षसे सहन करता आ रहा है।

एक ओर तो करोड़ों आदमी भूखे और अधपेट रहकर दिन बिताते हैं, और इधर पाठशालाओंकी संख्या इतने बड़े देशको देखते हुए नहींके बराबर है। भारतीय स्त्रियोंमें प्रतिशत २ से भी कम लिख-पढ़ सकती हैं। कुल मिलाकर शिक्षित स्त्री-पुरुषोंकी संख्या फी सदी आठसे अधिक नहीं है। सफाई और स्वास्थ्यका प्रबन्ध सर्वथा अपर्याप्त है और दूसरी ओर अंग्रेज़ नौकरशाही केन्द्रीय शासनके प्रतीक रूपमें एक नये नगरका निर्माण कर रही है, जिसका नाम नई दिल्ली है। यह नई दिल्ली पुरानी दिल्लीके फाटकके सामने विशाल रूपमें निर्मित की जा रही है, जिसमें मनोहर उद्यान, वृक्षोंकी पंक्तियोंसे सुसज्जित सुन्दर सड़कें, क्रीड़ाभूमि, घुड़दौड़के लिए स्थान, सरकारी इमारतें, वायसराय-भवन तथा अन्य छोटे बड़े अफसरोंके रहनेके लिए बहुसंख्यक मकान पूरे साज-सरंजामके साथ सम्मिलित रहेंगे। जिस समय यह नई दिल्ली पूरी तैयारी और ठाट-बाटके साथ बनकर तैयार हो जायगी, उस समय तक इसके निर्माणमें कुल खर्च ५० करोड़ रुपये तक लग जायगा। इस ५० करोड़ रुपयोंको जुटानेवाले भी वे ही भूखे भारतवासी हैं, जिन्हें ज़िन्दगीमें भर-पेट भोजन मुश्किलसे नसीब होता है!

दरिद्र भारत, दरिद्र भिक्षुक, दरिद्र भिखमंगा राजा!

छत्रपति शिवाजीकी दक्षिण-विजय

सर यदुनाथ सरकार

पूर्व कर्णाटकके राज और ऐश्वर्य

किसी समय विजयनगरका प्रसिद्ध साम्राज्य कृष्णा नदीके किनारेसे सारे दक्षिण देशमें, पूर्वीय समुद्रतटसे पश्चिमी समुद्रके किनारे तक, अर्थात् मद्रासमे लेकर गोआ तक, फैला हुआ था। परन्तु सन् १५६५ ईस्वीमें दक्षिणके सब मुसलमान सुलतानोंने मिलकर विजयनगरके सम्राट्को लड़ाईमें पराजित कर मार डाला, और राजधानी बदलनेका प्रयत्न किया। परन्तु इस लड़ाईके बाद ही विजयनगरका साम्राज्य टूटने लगा; कुछ प्रदेश तो मुसलमानोंने छीन लिये और कुछ भाग खुदमुख्तार हो गये। विजयनगरके अन्तिम सम्राट् श्रीरंग रायलने अपना सर्वस्व खोकर अपने एक सामन्त श्रीरंगपत्तनके राजाके यहाँ आश्रय लिया (१६५६ ई०)।

इसी बीचमें बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतानोंने विजयनगरको कर देनेवाले छोटे छोटे राजाओंके हाथसे वर्तमान मैसूरराज्य और मद्रासके आस पासका प्रायः समस्त भू-भाग छीन लिया। ये राजा लोग शक्तिशाली विजयनगर सम्राट्के आश्रयको त्यागकर अपनी-अपनी सीमामें खुद मुख्तार होनेके गर्व और स्वार्थमें अन्धे हो रहे थे। अतः वे शक्तिशाली मुसलमान शत्रुओंके विरुद्ध संगठित न हो सके। फल यह हुआ कि मुसलमानोंने उन्हें एक-एक करके सहज ही में हरा दिया। इस प्रकार सन् १६३७ और १६५४ के बीच कुतुबशाहने गोलकुण्डाके दक्षिण-पूर्वकी ओर बढ़कर कडापा, उत्तरी अर्काटका जिला (पलार नदीके उत्तरका हिस्सा) और मद्रासके समुद्र-तटका प्रदेश शिकाकोलसे सद्रास बन्दर (मद्राससे प्रायः ५० मील दक्षिण) तक अपने अधिकारमें कर लिया। इसका नाम हुआ "हैदराबादी कर्णाटक।" इसके ठीक दक्षिणमें—पलार नदीसे कावेरी नदी तककी चौरस ज़मीन और लगभग सारे मैसूर प्रदेशमें आदिल शाहने अपना राज फैलाया। उसका नाम हुआ "बीजापुरी कर्णाटक।"

धन-धान्य और जनसंख्यामें यह कर्णाटक प्रदेश भारतके अन्य सब प्रदेशोंसे चढ़ा-बढ़ा था। वहाँकी ज़मीन बहुत उपजाऊ थी और वहाँके अधिवासी बड़े परिश्रमी और शिल्प-कार्यमें चतुर थे। मणि माणिक्यकी खानोंसे और हाथियोंसे भरे जंगलोंसे राजाको खूब आमदनी होती थी। इन्हीं सब कारणोंसे देशकी आमदनी शीघ्रतासे बढ़ती जाती थी। इस आयका बहुत कम हिस्सा खर्च होता था, क्योंकि प्रजा बड़ी मितव्ययी थी और उसमें किसी प्रकारकी विलासिता न थी। लोग बासे भातमें इमलीका पानी और नमक-मिर्च मिलाकर आनन्दसे खाते और लँगोटी पहनकर बारहों महीने गुज़र करते थे। इस कारण हर साल कर्णाटकमें बहुतसा धन जमा होता था और उसका कुछ हिस्सा बड़े-बड़े मन्दिरोंके बनानेमें खर्च होता था; बाकी धन ज़मीनमें गाड़ दिया जाता था। इसीलिए युग युगान्तरसे कर्णाटक-प्रदेश सुवर्णमय देशके नामसे प्रसिद्ध था। समय-समयपर विदेशी राजा और सामन्त लोग इस देशसे अगाध धन-रत्न लूट ले गये थे। इस समय शिवाजीकी दृष्टि इसी कर्णाटकके ऊपर पड़ी।

कर्णाटकमें बीजापुरी जागीरदारोंमें घरेलू कलह और उनकी राजनीति

सन् १६७६ में वर्तमान मैसूर राज्यका समस्त भाग बीजापुरके अधीन था और कई हिस्सोंमें बँटा हुआ था। उनमें कुछ तो उमरावोंकी जागीरें थीं और कुछ कर देनेवाले छोटे-छोटे हिन्दू राजाओंके राज्य थे। इसको लोग "कर्णाटक बालाघाट" (अर्थात् 'ऊँची ज़मीन') कहते थे।

मैसूरके पूर्वकी ओर बंगालकी खाड़ी तक फली हुई जो समभूमि है (अर्थात् मद्रासके आर्कट आदि ज़िले) उसका नाम था 'कर्णाटक पाइन घाट'' (यानी 'नीचा देश')। मैसूरके पहाड़से इस मैदानमें उतरनेमें उत्तरसे दक्षिणकी ओर जानेके मार्गमें क्रमसे तीन बीजापुरी उमरावोंकी जागीरें पड़ती थीं। पहले जिंजीके प्रसिद्ध क़िलेके अधीनका प्रदेश था, जिसके हाकिम नासिर महम्मद ख़ां (मृत वज़ीर ख़वास ख़ांके सबसे छोटे भाई) थे, उसके बाद बलिकन्तपुरम् था, जहाँ वानरराज बालीको श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन हुए थे। इसके मालिक शेरख़ाँ लोदी (अफ़गान वज़ीर बहलोल लोदीके जाति-भाई) थे। अन्तमें कावेरीके पार तंजोर पड़ता था, इसे शिवाजीके सौतेले भाई बकाजी उर्फ़ एकोजीने सन् १६७५ में अपने अधिकारमें किया था। इसके और भी दक्षिणमें मदूराका स्वाधीन राज पड़ता था। इसके सिवा वेलुर, अरणि आदि प्रसिद्ध क़िले अलग-अलग अफ़सरोंके हाथमें थे।

इन सब बीजापुरी उमरावोंमें अपने-अपने स्वार्थके लिए हमेशा लड़ाई-झगड़ा, मार-काट और छीना-झपटी चलती रहती थी। कोई भी अपने ऊपर सुलतानके अधिकारको नहीं मानता था, क्योंकि सुलतान उस समय नाबालिग और वज़ीरके हाथके पुतले मात्र थे। शेरख़ांने एक युक्ति सोची कि वह फरासीसी कम्पनीके—जिससे उसकी मित्रता थी—पान्डीचेरीकी कोठीसे गोरे और साहबोंके सिखाये हुए देशी सिपाहियोंको लेकर जिंजीपर अधिकार कर लेगा, और उसके बाद धीरे-धीरे राज्य और बल बढ़ाकर मदूरा और तंजोरकी अगाध धन दौलत लुटेगा और अन्तमें उसी धनके ज़ोरसे फ़ौज बढ़ाकर गोलकुण्डाका राज्य जीत लेगा।

शिवाजीका कर्णाटकपर धावा करनेके पूर्व अन्यान्य राज्योंसे सन्धि करना

शेर ख़ांने १६७६ सालमें जिंजी प्रदेशपर आक्रमण कर उसके बहुतसे हिस्से छीन लिये। जिंजीके मालिक नासिर महम्मदने निरुपाय हो गोलकुण्डासे सहायता माँगी। इस समय गोलकुण्डामें कुतुबशाहके मन्त्री मादन्ना नामक ब्राह्मण ही सर्वेसर्वा थे। उनका वंश परम वैष्णव और धार्मिक हिन्दू था। मादन्नाकी आन्तरिक इच्छा थी कि वे कर्णाटकको मुसलमानोंके (अर्थात् बीजापुरके) हाथसे छुड़ाकर सन् १६४८ से पहलेकी भाँति फिर हिन्दू-शासनमें ले आयँ। शिवाजीके समान भुवन-विजयी भक्त हिन्दूको छोड़ और किसीके द्वारा यह महान कार्य सम्पन्न होनेकी सम्भावना न थी। सुलतानने अपने प्यारे मन्त्रीकी सलाह स्वीकार की। शिवाजीसे इस शर्तपर सन्धि हुई कि शिवाजी मराठी फौजके बलसे बीजापुरी कर्णाटक जीतकर कुतुबशाहको देंगे, और वहाँके राज-कोषमें जो धन-सम्पत्ति मौजूद है, वह तथा लूटका माल और मैसूरकी कुछ ज़मीन स्वयं लेंगे। इस आक्रमणका सब ख़र्च कुतुबशाहके ज़िम्मे रहेगा। इसके सिवा वे तोप और गोले तथा पाँच हजार फौज देकर शिवाजीकी सहायता भी करेंगे। शिवाजीके चतुर दूत प्रह्लाद निराजीने मादन्नाके साथ बातचीत करके यह बन्दोबस्त पक्का किया।

शिवाजीने सोचा कि कर्णाटक विजय करना कठिन काम है, अतः वहाँ खुद न जाकर केवल सेनापतिके भेजनेसे कोई फल न होगा, और इसमें कमसे कम एक वर्ष लगेगा। इधर इतने दिनों तक स्वदेश छोड़कर सुदूर कर्णाटकमें रहनेसे शत्रु लोग ऐसा मौका पाकर अपने राजमें महाअनिष्ट कर सकते हैं। इसी कारण शिवाजी मुग़ल-सरकारसे मेल करनेके लिए उत्सुक हुए। सन् १६७६के अन्तमें मुग़ल और बीजापुरकी जैसी अवस्था थी, उससे शिवाजीको बड़ा सुभीता हुआ। बीजापुरमें नये वज़ीर बहलोल ख़ांके अफ़ग़ानदल और उनके शत्रु दक्खिनी तथा हबशी उमराओंके बीच ज़ोरकी मार-काट और लड़ाई चल रही थी। उधर, मुग़ल सूबेदार बहादुर ख़ां बहलोलके ऊपर बिगड़े हुए थे; वे इसी मौक़ेपर दक्खिनियोंका पक्ष लेकर बीजापुरके ऊपर (३१ मई, १६७६ के) चढ़ाई कर बैठे, और इस लड़ाईमें एक वर्षसे भी ज़्यादा समय तक उलझे रहे। इस समय किसीको भी शिवाजीकी ओर ध्यान देनेका मौक़ा न मिला।

बहादुरखांने देखा कि बीजापुरपर आक्रमण करनेके पहले यदि शिवाजीको हाथमें न कर लिया जायगा, तो मुग़लोंके अधीन प्रदेश अरक्षित और खतरेमें ही रहेंगे। उस ओर शिवाजीने भी देखा कि जब वे खुद कर्णाटकको सर करनेमें व्यस्त रहेंगे, उस समय यदि मुग़ल-सूबेदार शत्रुता करे तो महाराष्ट्र देशकी बड़ी-भारी हानि होगी। इसीलिए "तुम हमें न जलाना, हम तुम्हें न छूएँगे" इस शर्तपर दोनों पक्षोंने मेल किया। शिवाजीके दूत निराजी रावजी पण्डितने बहादुरखाँको गुप्त रूपसे बहुत रुपये घूँस दिये और प्रकटमें बादशाहके लिए कुछ रुपये देकर या भेंट देकर सन्धिकी लिखा-पढ़ी करा ली।

हनुमन्ते वंशकी सहायता

भाग्य सदा उद्योगी पुरुषसिंहके ऊपर प्रसन्न रहता है। शिवाजीको कर्णाटक विजयके लिए एक बड़ा सहायक मिल गया। रघुनाथ नारायण हनुमन्ते नामका एक चालाक, अनुभवी, प्रभावशाली और धनी ब्राह्मण शाहजीके समयसे व्यङ्काजीका संरक्षक और वज़ीर होकर कर्णाटकका राजकाज करता आता था। इसीलिए रघुनाथ और उसके भाई जनार्दनको लोग उस देशके राजाके समान मानते थे, व्यङ्काजीने बड़े होनेपर शासनका भार अपने हाथमें लिया और रघुनाथसे राजस्वका हिसाब मांगा। रघुनाथने इतने वर्षों तक मालिकके बहुत रुपये हड़प लिये थे ; ईर्षासे अन्य मन्त्रियोंने इस बातको ज़ाहिर कर दिया। इतने दिन तक आधिपत्य करनेके बाद, हिसाब देने और व्यङ्काजीकी आज्ञानुसार चलनेमें रघुनाथ अपना अपमान समझने लगा, वज़ीरीसे इस्तीफा देकर वह काशी-यात्राके बहाने तजोरसे सपरिवार चला आया। यह खबर पाकर शिवाजीने उसे बड़े आदरसे बुलाया और अपने राजमें नौकरी दी। रघुनाथने उनको कर्णाटककी सब जगहोंकी नस-नसकी बात बता दी और अपने वंशकी इतने दिनोंकी प्रतिष्ठा देकर शिवाजीके कर्णाटक आक्रमणमें विशेष सहायता दी।

पेशवाको अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर कोंकण प्रदेशका शासन-भार अन्नाजी दत्त (सुरनीस)को देकर और दोनोंके अधीन एक-एक बड़ी फौज रखकर सन् १६७७ के जनवरीके आरम्भमें शिवाजीने रायगढ़से प्रस्थान किया।

इसी बीचमें उनके दूत प्रह्लाद नेराजीने गोलकुंडाके राजा कुतुबशाहको शिवाजीके साथ मुलाकात करनेके लिए राज़ी कर लिया था। पहले तो सुलतानको भय हुआ कि कहीं उनकी भी दशा अफ़ज़ल या शायस्ता खांकी तरह न हो। परन्तु प्रह्लादने अनेक प्रकारसे धर्मकी शपथ खाकर उनको समझाया कि शिवाजी कभी भी विश्वासघात न करेंगे। मादन्नाने भी इस बातका समर्थन किया और राजाको समझाया कि शिवाजीको पास बुलाकर मैत्री कर लेनेसे भविष्यमें मुग़लोंके आक्रमणसे गोलकुंडाकी रक्षाका निश्चित उपाय हो सकेगा।

शिवाजीका गोलकुंडा राज्यमें प्रवेश

अपनी आँखोंके सामने फौजोंको शृंखलापूर्वक चलाकर नित्य नियमित कूँच करके शिवाजी एक महीनेमें (फरवरीके पहले सप्ताहमें) हैदराबाद शहरमें जा पहुँचे। उन्होंने कड़ा हुक्म जारी कर दिया था कि कोई सिपाही या नौकर-चाकर रास्तेमें किसी गाँववालेकी चीज़ोंपर हाथ न डाले या स्त्रियोंकी आबरू न बिगाड़े। पहले दो-चार मराठोंने इस नियमको भंग किया, पर अपराधियोंको फाँसी अथवा हाथ-पैर काटनेकी सज़ा देनेसे ऐसा भय फैला कि पचास हज़ार हथियारबन्द सिपाहियोंका दल एक महीने तक बड़े शान्त और साधु-भावसे यात्रा करता रहा। किसीकी पेड़के एक तिनके या अन्नके एक दानेकी भी हानि नहीं हुई। इस कारण चारों ओर शिवाजीका यश फैल गया।

कुतुबशाहने राजधानीसे कई कोस आगे बढ़कर शिवाजीकी अभ्यर्थना करनेका प्रस्ताव किया। परन्तु शिवाजीने नम्र होकर उन्हें मना करा दिया। वे बोले—"आप हमसे बड़े हैं, गुरुजनोंको इतना आगे बढ़कर छोटेका सम्मान करना अनुचित है।" इसलिए केवल मादन्ना, उनके भाई अकन्ना और हैदराबादके बड़े-बड़े लोगोंने शहरसे पाँच-छै कोस आगे

बढ़कर शिवाजीकी अभ्यर्थना की और उन्हें राजधानीमें ले आये।

हैदराबाद शहरमें शिवाजीकी अभ्यर्थना

शिवाजीके स्वागतके लिए राजधानी हैदराबादने आज अत्यन्त सुन्दर वेश धारण किया था। बड़े-बड़े रास्ते और गलियाँ कुंकुम और केशरके सदृश लाल पीली दिखाई देती थीं। जगह-जगहपर फूल बिछे थे और रंगीन ध्वजा पताका तथा फाटकोंमें सारा शहर सजाया गया था। लाखोंकी संख्यामें नगरवासी अच्छी-अच्छी पोशाक पहनकर रास्तोंके किनारे खड़े थे। कुज्जे और बरामदे वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित महिलाओंसे भरे थे।

शिवाजीने भी अपनी फ़ौजको इस दिनके लिए खास कपड़े पहनाये थे। चमकीली पोशाक और हथियारोंके कारण उनके सिपाही धनी उमरावोंकी तरह मालूम पड़ते थे। चुने-चुने सिपाहियोंकी पगड़ियोंमें मोतीकी झालर ('तोड़े'), हाथोंमें सोनेके कड़े, बदनपर सफ़ेद नर्म्म और ज़रीकी पोशाकें थीं।

दोनों राजाओंकी मुलाक़ातके लिए निर्दिष्ट शुभ दिनको यह पचास हज़ार मराठी फ़ौज हैदराबादमें घुसी। उनकी वीरताकी कहानियाँ इतने दिनोंसे दक्षिणमें लोगोंके मुँहमें प्रचलित हो रही थीं, कितनी ही गाथाओं (ख्यालाओंमें) और गीतोंमें गाई जाती थीं। आज लोग आश्चर्यके साथ उन्हीं सब प्रसिद्ध वीर नेताओं और सिपाहियोंकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। इतने दिन तक जिनके नाम ही सुनते आते थे, आज उनको अपनी आँखोंके सामने देखा।

सबकी नज़र सेनापति, मंत्री और रक्षकोंसे घिरे हुए वीरश्रेष्ठ शिवाजीके ऊपर जा अटकती थी। उनका शरीर इकहरा और मझोले क़दका था। पिछले सालकी बीमारीसे और महीने-भरकी प्रतिदिनकी यात्राके कारण वे और भी पतले दिखाई देते थे, परन्तु उनके गोरे मुँहसे सर्वदा हँसी टपकती थी, उनकी तीखी चमकीली आँखें इधर-उधर घूमती दिखाई पड़ती थीं। शहरके लोग आनन्दसे "जय शिव, छत्रपतिकी जय" की ध्वनि करने लगे। महिलाएँ बरामदेसे सोने-चाँदीके फूल बरसाने लगीं या आकर उनके मुखके चारों ओर आरती उतार स्वागत-गान गाने और आशीर्वादके वचन उच्चारण करने लगीं। शिवाजी भी जनतामें मोहर और रुपये लुटाने लगे। उन्होंने हरएक मुहल्लेके प्रधान मुखियाको खिलअत और अलंकार प्रदान किये।

शिवाजी और कुतुबशाहकी भेंट

इस प्रकार जुलूस कुतुबशाहके दादमहल (न्याय-प्रासाद) के सामने पहुँचा। वहाँ और सब शान्त-शिष्ट भावसे रास्तेमें खड़े हो गये। केवल शिवाजी पाँच प्रधान कर्मचारियोंको साथ ले सीढ़ीसे दरबार गृहमें पहुँचे। वहाँ कुतुबशाह उनकी प्रतीक्षामें थे। उन्होंने दरवाज़े तक आकर शिवाजीको आलिंगन किया और हाथ पकड़कर उन्हें अपनी बग़लमें गद्दीपर बैठाया। मंत्री मादन्नाको फ़र्शपर बैठनेकी अनुमति दी गई। और सब खड़े ही रहे। अन्तःपुरकी बेगमें दोनों ओरकी पत्थरकी झिर्झरियोंके छिद्रोंसे बड़े आश्चर्यसे यह अपूर्व दृश्य देखने लगीं।

कुतुबशाहने तीन घंटे तक बातचीत की। उन्होंने शिवाजीके मुँहसे उनके जीवनकी आश्चर्य घटनाएँ और वीर-कीर्तियोंका लम्बा-चौड़ा बयान बड़े चावसे सुना। अन्तमें उन्होंने ख़ुद अपने हाथसे शिवाजीको पान इतर दे और मराठे मंत्रियों और सेनापतियोंको खिलअत, अलंकार, हाथी, घोड़े आदि उपहार देकर विदा किया। वे स्वयं शिवाजीके साथ-साथ सीढ़ीके नीचे तक पहुँचानेके लिए आये। वहाँसे शिवाजी रास्तेमें रुपये लुटाते हुए अपने डेरेको लौट गये।

दूसरे दिन मादन्ना पंडितने शिवाजी और उनके प्रधान कर्मचारियोंको निमंत्रण देकर भोजन कराया;—अतिथियोंके लिए उनकी माताने स्वयं रसोई बनाई थी। भोजनके अन्तमें अनेक उपहार लेकर मराठे डेरेपर लौटे।

गोलकुंडा राज्यके साथ सन्धि

अब कामकी बातें शुरू हुईं। अनेक आलोचनाओंके बाद शिवाजीके साथ इस शर्तपर सन्धि हुई कि (१) कुतुबशाह

प्रतिदिन पन्द्रह हजार रुपये नकद और अपने सेनापति मिर्ज़ा महम्मद अमीनके अधीन पांच हज़ार सेना, कई तोपें और गोला-बारूद देकर शिवाजीको कर्णाटक जीतनेमें सहायता देंगे। शिवाजीने प्रतिज्ञा की कि (२) कर्णाटकका जो अंश उनके पिता शाहजीका था, उसको छोड़ समस्त जीता हुआ प्रदेश कुतुबशाहको देंगे। इसके सिवा उन्होंने कुतुबशाहके सामने धर्मकी शपथ खाकर कहा कि (३) मुग़लोंका आक्रमण होनेपर वे गोलकुण्डा राजकी रक्षा करनेके लिए फौरन आयेंगे। उसके लिए (४) कुतुबशाहने शिवाजीको पूर्व स्वीकृतिके अनुसार पांच लाख रुपये वार्षिक कर नियमित रूपसे देनेका आश्वासन दिया।

गुप्त रूपसे यह सब सलाहें और सन्धि-चर्चा हो रही थी, और प्रकटमें आनन्द-मंगल, तमाशा और भोजमें मराठोंका और नगरवासियोंका समय सुखसे बीत रहा था। शिवाजीने दूसरी बार कुतुबशाहसे मुलाकात की। दोनों राजा प्रासादके बरामदेमें पास ही पास बैठे। समस्त मराठी फ़ौज कूच करके उनके सामनेसे निकाली गई; गोलकुंडाके सुलतानने उनको नाना उपहार भेंट किये। शिवाजीके घोड़े तकको एक मणि और हीरेकी माला गलेमें पहना दी गई, क्योंकि वह भी उनके युद्ध-जयका साथी था।

एक दिन कुतुबशाहने पूछा—"आपके यहाँ कितने हाथी हैं?" शिवाजीने अपने हज़ारों मावले पैदलोंको दिखाकर कहा—"यही हमारे हाथी हैं।" तब सुलतानके एक बड़े-भारी मस्त हाथीके साथ मावले सेनापति येसाजी कंकने तलवार लेकर युद्ध किया और उसको कुछ देर तक रोक कर अन्तमें एक चोटमें उसकी सूँड़ काट डाली। हाथी हारकर भाग गया।

इस प्रकार एक महीनेके बाद रुपये और चीज़-वस्त लेकर शिवाजीने मार्च महीनेके शुरूमें हैदराबादसे प्रस्थान किया। दक्षिणकी ओर जाकर शिवाजीने कृष्णानदीके तीर "निवृत्ति संगममें" (भवनाशी नदीके संगमके क्षेत्रमें) स्नान, पूजा दानादि कर फौजको अनन्तपुर भेज दिया, और स्वयं थोड़ेसे रक्षक और कर्मचारियोंको ले शीघ्रतासे श्रीशैलके दर्शनको चल दिये।

शिवाजीका श्रीशैल-दर्शन

यह स्थान कर्नूल शहरसे ८० मील पूर्वकी ओर है। यहाँ कृष्णानदीसे हज़ार फीटकी ऊँचाईपर एक समतल भूमिमें, जनहीन वनके बीच मल्लिकार्जुन शिवजीका मन्दिर है। ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें से एक लिंग हैं। मन्दिर पचीस-छब्बीस फीट ऊंची दीवारसे घिरा हुआ है, इसके चारों ओर खूब चौड़ा आँगन है। यह दीवार बड़े-बड़े चौकोर पत्थरोंसे बनी है और इसमें हाथी, घोड़े, बाघ, शिकारी, योद्धा, योगी और रामायण तथा पुराण आदिके दृश्य, बड़ी सुन्दरतासे खुदे हुए हैं। शिव-मन्दिरके चारों कोने बराबर हैं। विजयनगरके दिग्विजयी सम्राट् कृष्ण देव रायके धनसे मन्दिरके चारों ओरकी दीवार और तमाम छत सोनेके चमकदार पत्तरकी चादरोंसे मढ़ी हुई है (१५१३)। इस वंशकी एक साम्राज्ञीने ऊपरसे नीचे कृष्णाके जलकी धारा तक हज़ार फीटसे भी अधिक लम्बे मार्गमें पत्थर जड़वा दिये थे। उसके नीचेके घाटका नाम था "पाताल गंगा", और कुछ दूर नीचे नदीके दूसरे तटपर "नील गंगा" नामका एक घाट था। ये दोनों प्रसिद्ध तीर्थ थे। शिव-मन्दिरके पास एक छोटा-सा दुर्गाजीका मन्दिर है।

शिवाजीने श्रीशैलमें जाकर पूजा, ध्यान, दान, लक्ष ब्राह्मण-भोजन इत्यादि पुण्यकार्य करते हुए वहींपर नवरात्र (अर्थात् चैत्र शुक्ल पक्षके प्रथम नौ दिन, २४ मार्चसे लेकर १ अप्रेल १६७७ तक) बिताये। इस तीर्थ-स्थानके शान्त-स्निग्ध सौन्दर्य, रम्य निर्जनता और धर्मभाव जगानेवाली स्वाभाविक शक्ति देख वे आनन्दमें मग्न हो गये। यह स्थान उनको द्वितीय कैलास या शिवके स्वर्गके समान जान पड़ा। मरनेके लिए ऐसा उपयुक्त स्थान और समय फिर न आयेगा, ऐसा विचारकर शिवाजीने देवीकी मूर्तिके चरणोंपर अपना सिर काटकर देह त्यागनेका निश्चय किया। कहते हैं कि भगवतीने स्वयं प्रकट हो शिवाजीको हटाई हुई

तलवारको छीनकर फेंक दिया, और उन्हें रोककर कहा—"बच्चा ! इस उपायसे तुझे मोक्ष नहीं मिलेगी। यह काम मत करना। तेरे ऊपर अभी भी बहुत बड़े-बड़े कार्योंका भार है।" यह कहकर देवी अन्तर्द्धान हो गईं और शिवाजी भी शान्त हो गये।

जिंजी अधिकार

अप्रेलकी ४ और ५ तारीखको अनन्तपुर लौटकर शिवाजी फ़ौजके साथ चटपट मदरासकी ओर चल पड़े। भारत-भरमें प्रसिद्ध तिरुपति पर्वतके मन्दिरको दक्ष दे इस ओरकी समभूमिमें उतरे और मईके प्रथम सप्ताहमें मदरास शहरसे सात मील पश्चिमकी ओर पेड्डापोलम नामक नगरमें जा पहुँचे। यहाँसे उनकी आगे चलनेवाली फ़ौज—पाँच हज़ार घुड़सवार—बड़ी तेज़ीसे जिंजीके क़िलेमें जा उपस्थित हुई। उसके मालिक नसीर महम्मद खांने वार्षिक पचास हज़ार रुपयेकी आमदनीकी जागीर और कुछ नक़द रुपये मिलनेका वचन पाकर उसी दम (१३वीं मईको) यह अजेय दुर्ग मराठोंके सुपुर्द कर दिया। शिवाजी फ़ौरन वहाँ जा पहुंचे और जिंजीको अपने अधिकारमें करके उसकी दीवार, परिखा, बुर्ज इत्यादिको इतना मज़बूत कर दिया कि "यूरोपियन लोग भी वैसा करनेमें गर्व अनुभव करते।"

वहाँसे चलकर शिवाजीने २३ वीं मईको वेलूरदुर्ग घेरा। यह भी जिंजीकी ही तरह दुर्जेय गढ़ था। इसके शासनकर्ता थे आदिलशाहके विश्वासी कर्मचारी हब्शी अबदुल्ला खां। वे मराठोंकी तमाम गोलाबारी और आक्रमणकी उपेक्षा करते हुए बड़े पुरुषार्थके साथ चौदह महीने तक लड़ते रहे, किन्तु अन्तमें जब उन्होंने देखा कि उनके मालिकसे मदद मिलनेकी कोई आशा नहीं है और क़िलेके भीतर रक्षा करनेवाली फ़ौजके ५०० सैनिकोंमें से केवल एक सौ बचे हैं, तब अबदुल्लाने शिवाजीके लिए क़िला छोड़ दिया (२१ अगस्त, १६७८)। इसके लिए उसको डेढ़ लाख रुपये नक़द और उतनी ही आमदनीकी जागीर देनेकी शर्त तय हुई।

मराठोंका कर्णाटक लूटना

शिवाजीकी सेनाने जल्दी-जल्दी कूचकर, बाढ़की तरह मद्रास प्रदेशकी समभूमिको ढक लिया। उसने चारों ओर जिधर जो कुछ मिला, हड़प लिया। उसका सामना करनेकी किसीकी भी हिम्मत न हुई। केवल दो-चार इने-गिने क़िले, पानीसे घिरे हुए द्वीपकी नाईं कुछ दिनके लिए स्वाधीनतासे खड़े रहे। पहले एक हज़ार मराठे घुड़सवार दो दिनके रास्तेपर आगे-आगे चले। उनके पीछे बाक़ी फ़ौज लेकर शिवाजी खुद आये और सबके पीछे नौकर-चाकर तथा सिंहके पीछे-पीछे सियारोंके झुंडकी तरह लूटके लोभसे आये हुए स्थानीय छोटे-छोटे ज़मींदार, डाकुओंके सरदार और जंगली जातिके दलपति ("पलिगर") फिरते थे। रुपये वसूलनेके लिए शिवाजीका कठोर पीड़न और उनकी सेनाके विक्रम और कठोरताका समाचार आगे-आगे चलता था। बड़े आदमी जिधर रास्ता मिलता, उसी ओर भागने लगे ; कोई वनमें और कोई स्त्री-पुत्र और धन-रत्न लेकर साहबोंके सुरक्षित बन्दरगाहोंमें आश्रय लेने लगे।

इधर शिवाजीको रुपयेकी बड़ी ज़रूरत थी। उन्होंने प्रतिज्ञा भंग करके कुतुबशाही सरकारको जिंजीका क़िला न देकर उसे अपने क़ब्ज़ेमें रख लिया था, जिससे गोलकुंडासे पन्द्रह हज़ार रुपये रोज़की आमदनी बन्द हो गई। तब शिवाजीने इस अंचलके बड़े-बड़े शहरोंमें चिट्ठी भेजकर दश लाख रुपया क़र्ज़ चाहा। इस ऋणके चुकानेकी आशा अवश्य ही न थी, परन्तु क़र्ज़ देकर मांगनेकी हिम्मत किसमें थी ? शिवाजीने इस देशके धनी लोगोंके नाम-धाम और उनकी जायदादकी एक तालिका तैयार की। उनके चौथ वसूल करनेवाले तहसीलदार देश-भरमें छा गये। बीस हज़ार ब्राह्मण इसी नौकरीके भरोसे उनके साथ आये थे। "उन लोगोंने बिलकुल निर्लज्ज हो लोगोंसे उनकी आख़िरी कौड़ी तक छीन ली—न्याय, विचार, दया इत्यादिकी कुछ भी परवाह न की।" (फ्रान्सोया मार्टिनकी डायरी)।

अंग्रेज़, फरासीसी और डच कोठाके महाजनोंने बार-बार दूत और भेंट भेज-भेजकर शिवाजीको खुश रखा।

शेर खां लोदीकी हार

जिंजी प्रदेशके दक्षिणमें कावेरी नदी तक फैली हुई शेरखां लोदीकी बड़ी भारी जागीर थी। वह युद्ध विद्यामें बिलकुल अनजान था और सब काम अपने चालाक द्रविड़-ब्राह्मण-मन्त्रियोंकी सलाहसे किया करता था। इन लोगोंने उसको समझा दिया था कि शिवाजीकी फ़ौज कुछ भी नहीं है; परन्तु उसके मित्र और मददगार पाण्डीचेरीके शासनकर्त्ता फ्रान्सोया मार्टिनने उससे कहा कि यह शत्रु बड़ा भयंकर है। शेरखां अपनी फ़ौज—चार हज़ार घुड़सवार और तीन-चार हज़ार प्यादे, जो डरपोक और निकम्मे थे—लेकर १०वीं जूनसे तिरुवदीमें (कड्डालोरसे १३ मील पश्चिममें) मराठोंका रास्ता रोके बैठा था। २३ वीं मईको शिवाजी जिंजीसे बेलूर पहुँचकर वहाँ एक महीने ठहरे और इस क़िलेको घेरनेका बन्दोबस्त ठीक-ठाक करके छै हज़ार घुड़सवारोंके साथ २६ वीं जूनको तिरुवदी आये। उनको देखते ही शेरखां अपनी फ़ौज सजाकर उनके ऊपर चढ़ाई करनेको आगे बढ़ा, परन्तु मराठे लोग अपनी जगह स्थिर होकर चुपचाप खड़े-खड़े शत्रुकी राह देखते रहे। यह दृश्य देख शेरखांका हृदय काँपने लगा। उसे बड़ी-भारी आफ़त दिखाई पड़ने लगी। उसने अपनी फ़ौजको लौटनेकी आज्ञा दे दी। इससे वे और भी डरे और छितरा गये। ठीक इसी मौक़ेपर शिवाजी घोड़ा दौड़ाकर उनके ऊपर टूट पड़े। शेरखांकी सब सेना जान लेकर भागी और चारों ओर तितर-बितर हो गई।

शेरखां तिरुवदीके छोटे क़िलेमें दौड़कर घुस गया और भीतरसे दरवाज़ा बन्द करके बैठ रहा। कड्डालोरमें आश्रय लेनेकी इच्छासे वह रातको वहाँसे बाहर निकला। परन्तु मराठोंको यह बात मालूम हो गई, और उन लोगोंने उसका पीछा करके अकालनायकके जंगलमें खदेड़ दिया। चन्द्रमा अस्त होनेपर, अन्धकारकी आड़में जंगलसे बाहर निकलकर शेरखां केवल एक सौ सवार ले (२७वीं जूनको) बाईस मील दूर बोन गिर-पटन नामक एक छोटेसे क़िलेमें (भेलार नदीके उत्तर किनारे पर) घुसा। परन्तु उसके पाँच सौ घोड़े, दो हाथी, बीस ऊँट और तम्बू, नगाड़ा, पताका तथा लदुये बैल आदि सब सामान मराठोंने छीन लिया। इसके बाद कुछ दिनके दर्मियान ही शेरखांकी रियासतके बहुतसे शहर और क़िले शिवाजीने बेरोक-टोक ले लिये। अन्तमें ५ वीं जुलाईको खांने सन्धिकर शिवाजीको अपना सारा देश दे डाला, और स्वयं अपने छुटकारेके लिए एक लाख रुपये देनेका वचन दिया। रुपये अदा न करने तक उसने अपने लड़के इब्राहीम खांको ज़ामिनके तौरपर शिवाजीके अधीन रखा। शिवाजीने प्रतिज्ञा की कि वे शेरखांको परिवारके साथ खुले आम इस क़िलेसे बाहर निकलने देंगे और कड्डालोरमें रखी हुई उसकी सम्पत्ति ले जाने देंगे। *

शिवाजीसे व्यङ्काजीकी मुलाक़ात और झगड़ा

शिवाजीने यहाँसे और भी दक्षिणकी ओर कूच कर कोलेरुण नदी (कावेरीके मुहानेके पासकी सबसे उत्तरकी शाखा) के तीर तिरुमलवादी नामक स्थानमें १७ वीं जुलाईको पहुँचकर वर्षाऋतु बितानेके लिए फ़ौजका डेरा डाला। व्यंकाजीकी राजधानी तंजोर शहर यहाँसे केवल दस मील दक्षिणकी ओर है। बीचमें केवल कोलेरुण नदी पड़ती है। यहीं बैठे-बैठे मदूराके राजासे कर वसूल करनेकी कोशिश होने लगी। एक करोड़ रुपये माँगे गये, परन्तु अन्तमें तीस लाखपर मामला तय हुआ। यह तय हुआ कि इतने रुपये मिल जानेपर शिवाजी फिर मदूरापर आक्रमण न करेंगे।

इसी बीचमें शिवाजीने अपने सौतेले भाई व्यंकाजीको मुलाक़ातके लिए बुला भेजा। पहले उनके अनुरोधसे व्यंकाजीके मंत्री शिवाजीके साथ सलाह करने आये।

---

* अन्तमें सन् १६७८ के एप्रिल महीनेमें राज्य-रहित पूँजी-हीन शेरखांने मदूरा-राजके द्वारपर आश्रय लिया।

शिवाजीके तीन मंत्री निमंत्रणपत्र लेकर उनके साथ शिवाजीके अभय वचनसे निश्चिन्त हो व्यंकाजीके यहां आये। व्यंकाजी दो हज़ार सवारोंके साथ जुलाई महीनेके बीचोबीच तिरुमलवाड़ी पहुँचे। शिवाजीने उनका स्वागत किया और कई दिन तक भोज और उपहारोंका आदान-प्रदान चलता रहा।

उसके बाद कामकी चर्चा चलने लगी। मरनेके समय शाहजी जो कुछ धन-सम्पत्ति और जागीर कर्णाटकमें छोड़ गये थे, वह सब व्यंकाजीके हाथ लगी थी। पिताके ज्येष्ठ पुत्रकी हैसियतसे शिवाजीने अपना बारह-आना हिस्सेका दावा किया, परन्तु व्यंकाजीने चौथाई हिस्सा लेकर सन्तोष करनेसे इनकार किया। तब शिवाजीने गुस्सेमें आकर उनको खूब धमकाया और नज़रबन्द कर दिया। व्यंकाजीने देखा कि सब धन-सम्पत्ति बिना सौंपे छुटकारा मिलना मुश्किल है। किन्तु वे भी शिवाजी ही के भाई तो थे। चुपचाप सब बन्दोबस्त ठीक कर एक दिन रातको शौचके बहाने वे नदीके किनारे एक निर्जन स्थानमें गये। वहां पांच आदमी नावोंका बेड़ा लेकर तैयार थे। व्यंकाजी उसमें कूद पड़े और नदी पार होकर अपने राजमें जा पहुँचे! (२३ जुलाई)

दूसरे दिन सवेरे खबर पानेपर शिवाजी बड़े बिगड़े और कहने लगे—"वह भागा क्यों? क्या हम उसे पकड़ने जाते थे? भागनेकी कोई बात नहीं थी। हम जो चाहते वह अगर न देना था, तो वैसा कह सकता था। छोटा तो छोटा ही है, बुद्धि भी लड़केकी तरह दिखाई।" व्यंकाजीके मंत्री भी मालिकके भागनेकी खबर पाकर भागनेको थे, पर वे पकड़कर शिवाजीके पास लाये गये। कुछ दिन रोककर शिवाजीने उन लोगोंको छोड़ दिया और खिलअत और इनाम देकर तंजोर भेज दिया। उन्हें व्यर्थकी तकलीफ देनेसे शिवाजीको बदनामीके सिवा कुछ हाथ लगनेवाला न था। उन्होंने कोलेरुणके उत्तर शाहजीकी सम्पूर्ण जागीर पर कब्ज़ा कर लिया।

शिवाजीके शिविरका वर्णन

फरासीसी दूत जारमाग्याने तिरुमलवाड़ीमें शिवाजीके शिविरको देखकर उसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

"उनके शिविरमें किसी प्रकारकी धूमधाम नहीं है। भारी-भरकम चीज़ों या स्त्रियोंकी झंझट नहीं है। सारे शिविरमें केवल दो तम्बू हैं, वह भी छोटे और साधारण मोटे कपड़ेके बने हुए। एकमें शिवाजी रहते हैं और दूसरेमें उनके पेशवा। मराठे सवारोंका मासिक वेतन दस रुपया था। उनको घोड़े और साईस राजाकी ही ओरसे मिलते थे। दो-दो सिपाहियोंमें तीन-तीन घोड़े रखे जाते हैं। इसलिए वे खूब तेज़ीसे चल सकते हैं। शिवाजी गुप्तचरोंको खुले हाथ रुपये देते हैं, और वे उनको सच्चे समाचार देकर उनकी विजयमें विशेष सहायता करते हैं।"

व्यंकाजीको लौटा लानेकी आशा न देख शिवाजी २७ जुलाईको तिरुमलवाड़ी छोड़ फिर उत्तरकी ओर आये। रास्तेमें बलिकन्तपुरम्, चिदम्बरम् और वृद्धाचलममें (दो प्रसिद्ध तीर्थ) देव-दर्शन करके धीरे-धीरे ३ अक्टूबरको मद्राससे दो दिनके रास्तेपर आ पहुँचे। इसी बीचमें आरणि आदि किले भी उनके हाथमें आ गये।

कर्णाटकमें नये राज्यका बन्दोवस्त

अब उनको खबर मिली कि एक महीने पहले औरंगजेबके हुक्मसे मुग़ल-सूबेदारने बीजापुरके साथ मिलकर गोलकुंडापर आक्रमण किया है, क्योंकि कुतुबशाहने शिवाजीके समान विद्रोहीके साथ मैत्री की है। इधर शिवाजीको भी अपना राज छोड़े दस महीने हो गये थे। वहांका काम-काज काफी अच्छी तरहसे नहीं चल रहा था। इसलिए उन्होंने अपने देशको लौटना ही निश्चय किया।

नवम्बरके प्रथम सप्ताहमें चार हज़ार सवारोंको साथ ले वे कर्णाटककी समर-भूमि छोड़ मैसूरकी अधित्यकाके ऊपर चढ़े और वहां अपने पिताकी जागीरके सब महाल अधिकार करनेके बाद महाराष्ट्रको लौट आये। उनके बहुतसे सिपाही फिलहाल

कर्णाटकमें ही रह गये : क्योंकि उस ओर उन्होंने जो राज जीता था, वह बहुत बड़ा और धनशाली था। लम्बाईमें १८० मील और चौड़ाईमें १२० मील था। उसमें ८६ क़िले थे। उसकी सालाना मालगुज़ारी ४६ लाख रुपयेसे अधिक थी : यह नया राज जिंजी और बेलुरके ज़िलोंसे बनाया गया था। इसकी राजधानी थी जिंजीका क़िला। शाहजीके दासी-पुत्र शान्ताजीको इसका शासनकर्त्ता, रघुनाथ हनुमन्तेको दीवान और हम्मीरराव मोहितेको सेनापति नियुक्त कर शिवाजी लौट आये। रंगोनारायण मैसूरकी अधित्यकाके विजित महालोंके हाकिम हुए।

इसी बीचमें व्यंकाजी कर्णाटकमें पिताकी जागीरके उद्धारके लिए चारों ओर षड़यन्त्र रचने लगे : पर कुछ न कर सके। अन्तमें १६७७ की १६ नवम्बरको वे कोलेरुण पार होकर चौदह हज़ार सेनाके साथ शान्ताजीकी बारह हज़ार सेनापर टूट पड़े। सारे दिन लड़कर शान्ताजी हार मानकर एक कोस पीछे हटे। परन्तु रातको जब व्यंकाजीकी विजयी सेना थककर अपने खेमोंमें घोड़ोंके ज़ीन खोलकर सुस्ता रही थी, तब शान्ताजीने अपनी हारी हुई फौजको फिर इकट्ठा किया और उसमें नया जोश भरकर अच्छे घोड़ोंपर चढ़ा, एक विकट रास्तेसे ले जाकर अकस्मात् व्यंकाजीके शिविरपर धावा कर दिया। व्यंकाजीका दल आत्मरक्षा न कर सका। बहुतसे मारे गये और बाक़ी सब नदी पारकर तजोर भाग गये। तीन प्रधान फ़ौजी अफसर पकड़े गये। शत्रुके एक हज़ार घोड़े, तम्बू और अनेकों चीज़ें शान्ताजीके हाथ लगीं।

व्यंकाजीके साथ आख़िरी निपटारा

दोनों भाइयोंमें और भी कुछ दिन तक छोटी-मोटी लड़ाई होती रही। देशकी अवस्था दिनपर दिन बिगड़ती ही गई। अन्तमें शिवाजीने देखा कि अपनी इतनी फ़ौज और बड़े-बड़े सेनापतियोंको कर्णाटकमें अधिक दिन तक अटका रखनेसे महाराष्ट्रकी रक्षा कठिन हो जायगी। तब उन्होंने व्यंकाजीके साथ सन्धि कर ली। व्यंकाजीने उनको छै लाख रुपये दिये। उसके बदलेमें शिवाजीने कर्णाटकसे उत्तर जिंजी और बेलुर-प्रदेश अपने कब्ज़ेमें रखकर बाक़ी सब देश (अर्थात् कोलेरुणके उत्तरके कई महाल और उसके दक्षिणमें तंजोरका सम्पूर्ण राज्य) भाईको दे दिया। कुछ दिन बाद मैसूरकी जागीर भी व्यंकाजीको मिली। इस प्रकार शान्ति स्थापित हो जानेपर हम्मीरराव शिवाजीकी बाक़ी फ़ौज लेकर देश लौट आये। कर्णाटककी रक्षाके लिए रघुनाथ हनुमन्तेने वहींके लोगोंकी दस हज़ारकी एक फ़ौज बनाई।

कर्णाटकमें जो धन-रत्न शिवाजीको मिला, वह कल्पनातीत था।

बर्फका तूफान

(गल्प)

पुश्किन

सन् १८११का अन्तिम भाग रूसियोंके लिए एक स्मरणीय समय था। उस समय ग्वा० गैब्रिल नामक एक बूढ़ा भला मानस नेनाराडोवामें अपनी जमींदारीपर रहा करता था। वह अपने अतिथि-सत्कार और उदार-हृदयके लिए जिले-भरमें मशहूर था। अड़ोस पड़ोसके भले आदमी हमेशा उसके घर आया-जाया करते थे। कोई तो उसके यहाँ खाने पीनेके विचारसे आते थे, कोई उसकी स्त्री प्रसकोवियाके साथ ताश खेलने आते थे और कोई उसकी युवती लड़की मेरियाको देखनेके प्रलोभनसे आते थे। सत्रह वर्षकी मेरिया इकहरी देहकी थी। उसका रंग चम्पई था। वह अपने माता-पिताकी इकलौती लड़की थी, इसलिए लोग जानते थे कि उसके साथ विवाह करनेवालेको उसके पिताकी सब जायदाद भी मिलेगी। इसलिए बहुतसे लोग उसके साथ अपना अथवा अपने लड़कोंका विवाह करनेके इच्छुक थे।

मेरिया फ्रेंच उपन्यास पढ़-पढ़कर बड़ी हुई थी, फलतः वह प्रेम-बन्धनमें बंध चुकी थी। उसका प्रेम-पात्र फ़ौजका एक ग़रीब सब-लेफ्टिनेन्ट था, जो उन दिनों छुट्टीपर गांवमें आया था। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि नवयुवक लेफ्टिनेन्ट भी मेरियाके प्रेमका उतनी ही सरगर्मीसे प्रतिदान करता था। परन्तु मेरियाके माता-पिताने, उन दोनोंका पारस्परिक अनुराग देखकर, अपनी लड़कीको नवयुवक लेफ्टिनेन्टका विचार तक मनमें लानेकी सख्त मनाही कर दी थी। नवयुवकके साथ उनका व्यवहार तो अपराधीसे भी गया बीता था।

हमारे प्रेमी-प्रेमिका छिपे-छिपे पत्र व्यवहार करते और प्रायः प्रतिदिन, चीड़के जंगलमें या गिरजेके पीछे, किसी निर्जन स्थानमें गुप्त रूपसे मिला करते थे। जब वे मिलते तो भाग्यचक्रकी उपेक्षा करके भी, अनन्त काल तक एक दूसरेको प्रेम करनेकी प्रतिज्ञा करते और नाना प्रकारके प्रस्तावोंपर विचार करते। इस प्रकार पत्र-व्यवहार और प्रेमालाप करके अन्तमें वे इस परिणामपर पहुँचे—

'जब हम एक दूसरेसे पृथक् रहकर जीवित नहीं रह सकते और जब हमारे निष्ठुर माता-पिता अपने अत्याचारसे हमारे सुखके मार्गमें रोड़े अटकाते हैं, तो क्या यह उचित नहीं है कि हम उनकी पर्वाह किये बिना ही अपना काम निकालें?'

निश्चय ही यह सुखप्रद विचार नवयुवकके मस्तिष्कमें उत्पन्न हुआ था, परन्तु मेरियाका कल्पनाप्रिय हृदय इस विचारसे नाच उठा।

जाड़ा आरम्भ हो गया और इससे उन दोनोंका मिलना-जुलना भी बन्द हो गया। परन्तु उनका पत्र-व्यवहार अधिक बढ़ गया। नवयुवक व्लाडीमीर मेरियासे प्रत्येक पत्रमें यही प्रार्थना करता था—"तुम राज़ी हो जाओ, तो चलो हम लोग चुपकेसे विवाह कर लें और कुछ दिनोंके लिए कहीं छिप रहें, बादमें आकर माता-पिताके चरणोंमें गिरकर क्षमा-प्रार्थना करें। हम लोगोंकी ऐसी दृढ़तापूर्ण लगन देखकर माता-पिताका हृदय भी अन्तमें द्रवित हो जायगा और वे कहेंगे 'अच्छा आओ बच्चो, हमारे गले मिल जाओ'।"

मेरिया बहुत दिन तक असमंजसमें पड़ी रही। उसके सामने तरह-तरहके अनेकों प्रस्ताव उपस्थित किये गये, उनमें कहीं भाग जानेका जो प्रस्ताव था, वह कुछ दिनोंके लिए तो अस्वीकृत कर दिया गया। पर अन्तमें मेरिया राज़ी हो गई। यह तै हुआ कि निश्चित दिनको वह सिर-दर्दका

बहाना करके रात्रिका भोजन न करेगी और शामसे ही अपने शयनागारमें चली जायगी। फिर वह और उसकी नौकरानी—जो इस भेदमें सम्मिलित थी—पीछेके ज़ीनेसे चुपकेसे उतर कर बाग़में चली जायगी। बाग़के सिरेपर उन्हें एक 'स्ले' * तैयार मिलेगी, जिसपर चढ़कर वे सीधी जेड्रिनो गाँवके गिरजेको—जो पांच मील दूर था—चली जायगी। गिरजेमें ब्लाडीमीर उनका इन्तज़ार करता हुआ मिलेगा।

उस परिवर्तनकारी दिनसे पहली रातको मेरिया रात-भर नहीं सोई वह अपने कपड़े-लत्ते बांधती-बूंधती रही। इसके अलावा उसने दो लम्बी-लम्बी चिट्ठियां लिखीं। एक अपने माता-पिताको और दूसरी अपनी एक भावुक सहेलीको। माता-पितावाली चिट्ठीमें उसने उनसे बड़े मर्मस्पर्शी शब्दोंमें विदा मांगी थी। अपनी इस कार्रवाईके लिए उसने प्रेमकी अजेय शक्तिकी दुहाई दी थी। पत्र समाप्त करते हुए उसने लिखा था—"मैं उसे अपने जीवनका सबसे सौभाग्यशाली समय समझूँगी, जब आप लोग मुझे अपने चरणोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना करनेकी इजाजत देंगे।" इन दोनों पत्रोंको लिफाफेमें बन्द करके और उसपर मुहर—जिसमें दो पान चटकीले लाल रंगमें अंकित थे और उसके नीचे उन्हींके उपयुक्त कुछ शब्द लिखे थे—लगाकर मेरिया बिस्तरपर लेट रही। सवेरा होनेमें थोड़ी ही देर थी। उसे झपकी आ गई, परन्तु भयानक विचार आ-आकर प्रतिक्षण उसकी निद्रा भंग करने लगे। पहले तो उसे यह मालूम हुआ कि जिस समय वह विवाह करने जानेके लिए 'स्ले'पर चढ़ रही थी, ठीक उसी वक्त उसके पिताने आकर उसे रोक लिया। उसने मेरियाको बेरहमीसे बर्फपर घसीटते हुए ले जाकर एक अन्धकारमय गहरे तहखानेमें ढकेल दिया। वह तहखानेमें सिरके बल गिरी, उसका हृदय बैठा जा रहा था। फिर उसने देखा कि ब्लाडीमीर घासपर पड़ा है। वह पीला पड़ गया है और उसके शरीरसे खून बह रहा है। उसका दम निकल रहा है और वह मरती हुई आवाज़में मेरियासे प्रार्थना कर रहा है कि वह शीघ्रतासे उसके साथ विवाह कर ले। इसी प्रकार और भी अनेक भयावने और बेसिर-पैरके दृश्य उसके सामनेसे एकके बाद एक निकले। अन्तमें जब उसकी नींद उचटी और वह सोकर उठी, तब उसका चेहरा और दिनसे अधिक पीला पड़ गया था और उसके सिरमें सचमुच ही दर्द हो रहा था।

उसके माता-पिताने उसकी उतरी हुई शक्लको लक्ष्य कर लिया। वे बार-बार पूछने लगे—"मेरिया, तुम्हारा क्या हाल है, क्या कुछ तबियत खराब है?" उनके ये प्रेम और चिन्ता-भरे प्रश्न मेरियाके हृदयमें बर्छीसे चुभने लगे। उसने अपनेको प्रसन्नमुख बनानेकी चेष्टा करके उनकी चिन्ताओंको शान्त करना चाहा, परन्तु सफल न हो सकी। शाम हो गई। 'आज मैं अपने माता-पिता और परिवारके साथ अंतिम दिन व्यतीत कर रही हूँ'—यह विचार उसके हृदयको दुखी कर रहा था। उसने चुपचाप हरएक व्यक्ति और घरकी हर एक वस्तुसे मन ही मन विदा ली।

शामका भोजन परोसा गया। मेरियाका हृदय बड़े ज़ोरसे धक-धक कर रहा था। उसने कांपती हुई आवाज़में कहा—'मैं भोजन न करूँगी', और माता-पिताको सन्ध्याका प्रणाम किया। उन्होंने उसका चुम्बन करके प्रतिदिनकी भांति आशीर्वाद दिया। मेरिया प्रायः रो पड़ी।

अपने सोनेवाले कमरेमें पहुँचकर वह एक आरामकुर्सीपर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी नौकरानीने उसे समझाया—'शान्त हो, हिम्मत करो। सब सामान तैयार है।' आध घंटेमें मेरिया अपने माता-पिताका घर, अपना कमरा, अपना शान्तिपूर्ण बाल्य-जीवन—सभीको सदाके लिए छोड़ देगी।

बाहर बर्फ पड़ रही थी और ज़ोरकी हवा चल रही थी। दरवाज़े और खिड़कियां हवासे खड़खड़ा रही थीं। मेरियाको हर चीज़में अपशकुन और डर मालूम पड़ रहा था।

थोड़ी ही देरमें सब सो गये, घरमें सन्नाटा छा गया। मेरियाने अच्छी तरहसे शाल ओढ़कर ऊपरसे एक गर्म लबादा

* रूसमें बर्फपर चलनेवाली बिना पहियेकी गाड़ीको 'स्ले' कहते हैं।

पहन लिया और हाथमें एक बक्स लेकर पिछले ज़ीनेकी ओर निकल गई। नौकरानी उसके पीछे दो कंबल ले आई। दोनों उतरकर बागमें पहुँचीं। बर्फका तूफान ज़ोरोंपर था। उनके सामनेसे बड़े ज़ोरकी हवा चल रही थी, मानो वह इस छोटी अपराधिनको रोकनेकी कोशिश कर रही हो। कठिनाईका सामना करती हुई वे बागके सिरेपर पहुँचीं। सड़कपर 'स्ले' उनकी राह देख रही थी।

सर्दीके मारे घोड़े चुपचाप खड़े न होते थे। व्लाडीमीरका कोचवान उनके सामने इधरसे उधर टहल रहा था, और उन्हें शान्त रखनेकी कोशिश कर रहा था। उसने नवयुवती मेरिया और उसकी नौकरानीको सहारा देकर अपनी-अपनी जगहपर बिठाया और शृंगारदान तथा असबाबको ठीक ठिकाने रखकर घोड़ोंकी रास सम्हाली। रात्रिके घने अन्धकारमें घोड़े उड़ चले।

(२)

मेरियाको कोचवान और अपने भाग्यके सुपुर्द करके, आइये, ज़रा उसके युवक प्रेमीकी खबर लें।

व्लाडीमीरको सारा दिन 'स्ले' पर घूमते बीता। सवेरे वह जेड्रिनो ग्रामके पादरीके पास गया। वहाँ बड़ी मुश्किलसे उसने उससे सब बातें तय कीं। इसके पश्चात् वह पास-पड़ोसके भले आदमियोंमें गवाह ढूँढनेके लिए चला।* सबसे पहले वह जिस आदमीके पास गया, उसका नाम ड्रेविन था। वह पहले घुड़सवारोंमें झंडाबर्दार था। उसकी उम्र चालीस-पैंतालीस वर्षकी थी। वह फौरन ही राज़ी हो गया। उसने ज़िद करके व्लाडीमीरको दोपहरके भोजनके लिए ठहराया और इस बातका विश्वास दिलाया कि अन्य दो गवाहोंके मिलनेमें ज़रा भी दिक्कत न होगी। बात भी कुछ ऐसी ही हुई। भोजनके उपरान्त ही ड्रेविनके यहाँ दो और आदमी आ गये। उनमेंसे एक बड़ी मूँछोंवाला महमेज़ पहने श्मिट नामी सर्वेयर था, और दूसरा एक मेजिस्ट्रेटका लड़का था। उसकी उम्र सोलह वर्षकी थी और वह कुछ ही दिन पहले उलहन फौजमें भरती हुआ था। वे दोनों व्लाडीमीरका प्रस्ताव सुनकर केवल राज़ी ही नहीं हो गये, बल्कि इस बातका भी दम भरने लगे कि मौक़ा पड़नेपर वे उसके लिए जान देनेको भी तैयार हैं। व्लाडीमीरने प्रसन्नतासे उन्हें गले लगा लिया और 'स्ले' पर सवार होकर सब ठीक-ठाक करनेके लिए चल दिया।

अँधेरा हुए देर हो चुकी थी। व्लाडीमीरने अपने विश्वासपात्र कोचवानको ज़रूरतके अनुसार हिदायतें देकर दो घोड़ेवाली 'स्ले'के साथ मेरियाके बागकी ओर रवाना किया। अपने लिए उसने एक घोड़ेवाली 'स्ले' तैयार कराई और उसपर अकेला, बिना कोचवानके, जेड्रिनोके लिए चल पड़ा। मेरिया कोई दो घंटेमें जेड्रिनो पहुँचेगी। वह जेड्रिनोका रास्ता जानता ही था। उसे अपनी 'स्ले' पर वहाँ तक पहुँचनेमें बीस मिनट लगेंगे।

व्लाडीमीर फाटकसे बाहर निकलकर खुले मैदानमें मुश्किलसे पहुँचा था कि हवा उठ खड़ी हुई, और फौरन ही बर्फका ऐसे ज़ोरका अन्धड़ चलने लगा कि उसे कुछ भी दिखाई न देता था। एक ही क्षणमें सड़क और मैदान सब बर्फसे पट गये। सड़कके तमाम निशान उस पीले अन्धकारमें, एक-एक करके ग़ायब हो गये। मैदानसे व्लाडीमीरने सड़कपर पहुँचनेकी कोशिश की, मगर व्यर्थ हुई। घोड़ा अनिश्चित मार्गमें भटकता हुआ इधरसे उधर चलने लगा। एक क्षण वह बर्फपर पैर धरता तो दूसरे क्षण गाड़ीकी लीकके गड्ढेमें जा पड़ता, इसलिए पग-पगपर 'स्ले' उलट जाती थी। व्लाडीमीरने इस बातकी कोशिश की कि कम-से-कम वह ठीक दिशामें रहे। मगर उसे यह जान पड़ा कि आध घंटेसे अधिक हो गया है, और वह अभी तक जेड्रिनोके जंगल तक भी नहीं पहुँचा। दस मिनट और भी गुज़र गये, फिर भी जंगलका कहीं पता नहीं था। व्लाडीमीरकी 'स्ले' मैदानोंसे होकर जा रही थी, जिसमें

* रूसमें विधिवत विवाहके लिए तीन गवाहोंकी आवश्यकता होती है, जिनके सामने पादरी मन्त्र पढ़कर विवाहकी क्रिया सम्पन्न करता है।

जगह-जगहपर खाइयाँ थीं। न बर्फका तूफान ही बन्द हुआ और न आस्मान ही साफ हुआ। चलते-चलते घोड़ा भी एकदम थक गया। यद्यपि प्रति क्षण उसके पैर बर्फमें घुस जाते थे, फिर भी उसके बदनसे मेहकी तरह पसीना बरस रहा था।

अन्तमें व्लाडीमीरको मालूम हुआ कि वह ग़लत दिशामें जा रहा है। वह रुका, और करके सोचने लगा, रास्ता याद करनेकी कोशिश की और सोच-विचारके बाद अन्तमें उसे यह निश्चय हुआ कि उसे दाहनी ओर मुड़ना चाहिए था। खैर, अब वह दाहनी ओर मुड़ा। उसका घोड़ा ऐसा थक गया था कि अब वह मुश्किलसे 'स्ले'को घसीट पाता था। लेकिन उसे घरसे निकले एक घंटेसे अधिक हो चुका है, इसलिए जैड्रिनो अब ज्यादा दूर न होगा। वह चलता गया, फिर भी मैदानका ओर-छोर न मिला। अब तक बर्फ गिर रही थी और खाइयाँ मिलती जाती थीं, प्रतिक्षण 'स्ले' उलट जाती थी और प्रतिक्षण व्लाडीमीरको उसे उठाकर सीधा करना पड़ता था।

समय बीतता जा रहा था। अब तो व्लाडीमीरको गहरी चिन्ता हुई। अन्तमें दूरपर कुछ काला-काला-सा दिखाई पड़ा।

व्लाडीमीर उसी ओर मुड़ा और पास पहुँचनेपर उसे मालूम हुआ कि वह जंगल है।

"ईश्वरको धन्यवाद है, अब मैं मंज़िलके क़रीब पहुँच गया"—उसने अपने मनमें कहा।

वह शीघ्र ही सड़कपर जा पहुँचा और जंगलके—जो जाड़ेके कारण पत्तोंके बिना नंगा हो रहा था—अँधेरेमें घुसा। यहाँ हवाका उतना ज़ोर नहीं था, सड़क भी अच्छी हमवार थी, घोड़ेने थोड़ी हिम्मत बाँधी और इससे व्लाडीमीरको भी कुछ ढाढस हुआ।

वह चलता गया, किन्तु फिर भी जैड्रिनोका कहीं पता न था। वह जंगल ही न खतम होने आता था। उसे मालूम हुआ कि वह किसी अज्ञात जंगलमें जा पहुँचा है। यह समझते ही उसका हृदय दहल उठा। उसने घोड़ेको चाबुक लगाया। बेचारा जानवर तेज़ीसे दुलकी जाने लगा। परन्तु भला इतनी मेहनतके बाद यह कब सम्भव था? वह जल्द ही थक गया और व्लाडीमीरके लाख कोशिश करनेपर भी पन्द्रह मिनट बाद फिर वही रेंग-रेंगकर चलने लगा।

धीरे-धीरे पेड़ कम होने लगे और व्लाडीमीर जंगलके बाहर जा पहुँचा; मगर जैड्रिनो कहीं नज़र न आया। प्रायः आधी रात बीत गई होगी। नवयुवककी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। वह अनिश्चितरूपसे जिधर हुआ उसी ओरको घोड़ा हांकने लगा। अब तूफान थम गया, बादल छँट गये, सामने विस्तृत मैदानमें बर्फकी चाँदनी बिछ गई। पहलेकी अपेक्षा अब रात साफ हो गई थी। उसने देखा कि थोड़ी दूरपर चार-पांच झोंपड़ोंका एक गाँव है। व्लाडीमीर उसी ओरको हांकने लगा। पहले ही दरवाज़ेपर पहुँचकर वह 'स्ले' से कूद पड़ा और दौड़कर खिड़की खटखटाई।

कुछ मिनट बाद खिड़कीका एक पल्ला खुला, एक बुड्ढेने अपनी सफेद दाढ़ी निकालकर पूछा।

"क्या चाहते हो?"

"यहाँसे जैड्रिनो कितनी दूर है?"

"यहाँसे जैड्रिनो कितनी दूर है?"

"हाँ, हाँ! क्या वह यहाँसे दूर है?"

"नहीं, दूर तो नहीं है, दस मील होगा।"

यह उत्तर सुनकर व्लाडीमीरने अपने सरके बाल नोच लिये। वह वहीं इस प्रकार एकटक निश्चल होकर रह गया, मानो उसे मौतकी सज़ाका हुक्म सुनाया गया हो।

"तुम कहाँसे आ रहे हो?"—बूढ़ेने पूछा। व्लाडीमीरमें उत्तर देनेकी हिम्मत ही न थी।

उसने कहा—"भाई, तुम मेरे लिए जैड्रिनो जानेके लिए घोड़ोंका बन्दोबस्त कर सकते हो?"

"हमारे घरमें घोड़े नहीं हैं।"—किसानने उत्तर दिया।

"क्या कोई आदमी रास्ता दिखानेके लिए दे सकते हो? मैं उसे मुँह-मांगी मज़दूरी दूँगा।"

"ठहरो, मैं अपने लड़केको तुम्हारे साथ किये देता हूँ,

वह तुम्हें पहुँचा आवेगा।"—यह कहकर बूढ़ेने पल्ला बन्द कर दिया।

व्लाडीमीर ठहरा रहा। मुश्किलसे एक मिनट बीता होगा, उसने फिर दरवाज़ा खटखटाया। पल्ला खुला, और फिर दाढ़ी दिखाई पड़ी।

"क्या चाहते हो?"

"तुम्हारे लड़केका क्या हुआ?"

"वह अभी आ रहा है, जूते पहन रहा है। तुम्हें सर्दी लगती होगी, भीतर आकर ज़रा गरमा लो।"

"धन्यवाद। अपने बेटेको फौरन भेजो।"

दरवाज़ेकी चूँ-चूँ सुनाई दी और एक नौजवान डंडा लिये बाहर निकला। वह आगे-आगे चला। कभी वह हाथसे सड़क दिखाता और फिर दूसरे क्षण बर्फमें सड़क खोजने लगता।

"के बजा होगा?"—व्लाडीमीरने पूछा।

"बस, सवेरा होनेमें थोड़ी ही देर है।"—नौजवानने उत्तर दिया। व्लाडीमीरके मुँहसे फिर दूसरा शब्द न निकला।

जब वे जेड्रिनो पहुँचे, तब सवेरा हो गया था; मुर्गे बोल रहे थे। गिरजाघरका फाटक बन्द था। व्लाडीमीरने पथप्रदर्शकको दाम देकर बिदा किया और 'स्ले' लिये हुए सीधे पादरीके घरके बाहरी आँगनमें जा पहुँचा। आँगनमें उसकी दो घोड़ोंवाली 'स्ले' कहीं न दिखाई पड़ी। यहाँपर उसके भाग्यमें क्या समाचार सुनने बदे थे!

(३)

अच्छा, अब ज़रा चलकर नेनाराडोवाके ज़मींदारोंकी दशा देखिये। उनके घरमें क्या हो रहा है?

कुछ नहीं।

बूढ़े, बुढ़िया, मेरियाके माता-पिता अपने समयपर सोकर उठे और बैठकखानेमें आकर बैठे। गैब्रिल फलालेनकी जाकेट पहने हुआ था, मेरियाकी माता ड्रेसिंग गाउन पहने थी। चायकी केतली सामने आई। गेब्रिलने नौकरानीको यह देखनेके लिए भेजा कि मेरियाकी तबियत अब कैसी है और रातमें नींद कैसी आई। नौकरानीने आकर खबर दी कि छोटी मालिकिनको रातमें नींद अच्छी तरह नहीं आई, पर इस समय वे अच्छी हैं और अभी क्षण-भर बाद बैठकमें आती हैं। उसी क्षण दरवाज़ा खुला और मेरियाने आकर अपने माता-पिताको प्रणाम किया।

"मेरिया, अब तुम्हारा सिरका दर्द कैसा है?"—बापने पूछा।

"अच्छा है, पिताजी।"—मेरियाने उत्तर दिया।

"अंगीठीका धुआँ लगनेसे तुम्हारे सिरमें दर्द हो गया होगा।"—माताने कहा।

"शायद यही हुआ हो।"—मेरियाने कहा।

दिन-भर अच्छी तरह बीता, शामको मेरिया बीमार पड़ गई। दूसरे दिन शहरसे डाक्टर बुलाया गया। उसने शामको आकर देखा कि मरीज़ सरसाममें जकड़ गया है। थोड़ी देरमें उसे बड़े ज़ोरका बुखार चढ़ आया और पन्द्रह दिनमें वह मौतके किनारे जा पहुँची।

घरके किसी आदमीको उस रातको चुपकेसे भागनेकी घटना नहीं मालूम थी। मेरियाने जो चिट्ठियाँ लिखी थीं, उन्हें उसने जला डाला था। मालिक-मालिकिनके क्रोधके डरसे मेरियाकी नौकरानीने उस घटनाके सम्बन्धमें किसीसे एक शब्द भी नहीं कहा। पादरी, झंडाबरदार, बड़ी मूँछवाला सर्वेयर और मेजिस्ट्रेटका लड़का—इन सबने बुद्धिमानी भी की, अपना मुँह बन्द रखा। मुँह बन्द रखनेके लिए उनके पास कारण भी था। इस प्रकार यह भेद ऐसा गुप्त रहा, जैसा आधे दर्जन षड्यन्त्रकारी भी नहीं रख सकते।

मगर उस लम्बी बीमारीमें—सरसामकी दशामें—स्वयं मेरियाने उस गुप्त रहस्यकी सब बातें प्रकट कर दीं। परन्तु उसके शब्द और बातें इतनी असम्बद्ध थीं कि मेरियाकी माता—जो एक क्षणके लिए भी उसके सिरहानेसे न हटती थी—केवल इतना ही जान सकी कि उसकी लड़की बड़ी बुरी तरह व्लाडीमीरके प्रेममें फँसी है, और शायद वह प्रेम ही इस

बीमारीका कारण है। उसने इस सम्बन्धमें अपने पति तथा अन्य दो-एक पड़ोसियोंसे सलाह की और अन्तमें सबने एक मतसे यह निश्चय किया कि उन्हें मेरियाके भाग्यमें हस्तक्षेप न करना चाहिए। जिस स्त्रीके भाग्यमें जो पति बदा है, उससे उसे अलग करनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है। फिर ग़रीबी कोई अपराध नहीं है। स्त्रीको पतिके साथ रहना है, न कि पैसेके साथ, इत्यादि इसी तरहकी अन्य बातें कहीं गईं। अब हम अपनी बातोंके औचित्यके पक्षमें कोई नई बात नहीं निकाल सकते, उस समय इस प्रकारकी नैतिक कहावतें कैसी उपयोगी होती हैं!

इसी बीचमें मेरियाकी दशा सुधरने लगी। व्लाडीमीरके साथ आरम्भ ही में मेरियाके पिताने जो व्यवहार किया था, उससे वह इतना डर गया था कि फिर वह कभी ग्रेबिलके घरमें नहीं दिखाई दिया। अब यह निश्चय किया गया कि व्लाडीमीरको बुलाकर उसे यह आनन्ददायक समाचार सुनाया जाय कि—जिसकी उसे रत्ती-भर आशा नहीं—मेरियाके माता-पिता उसके साथ मेरियाका सम्बन्ध करनेको राज़ी हैं।

परन्तु मेरियाके माता-पिताको इस बातसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके निमन्त्रणके जवाबमें व्लाडीमीरने पागलोंका-सा ऊटपटांग उत्तर भिजवाया। उसने कहलवाया—"मैं कभी आपके घर पैर नहीं रख सकता। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझ अभागेकी बात भूल जायँ। अब तो मेरी एकमात्र आशा मृत्युमें है।" इसके दो ही चार दिन बाद उन्होंने सुना कि व्लाडीमीर गाँव छोड़कर चला गया और फिर फ़ौजमें भर्ती हो गया।

धीरे-धीरे मेरिया अच्छी होने लगी। बहुत दिन बीतनेपर भी घरवालोंकी यह हिम्मत न हुई कि उसे व्लाडीमीरकी बात बतावें। उसने कभी व्लाडीमीरके नामका ज़िक्र नहीं किया। कई महीने बाद उसने यह समाचार पढ़ा कि व्लाडीमीरने एक लड़ाईमें बड़ी वीरता दिखलाई और वह बुरी तरह घायल हुआ। इस ख़बरको पढ़कर वह बेहोश हो गई, और इस बातका डर होने लगा कि कहीं फिर वह बुख़ार लौट न आवे; पर ईश्वरको धन्यवाद है, बेहोशीका दौरा शीघ्र ही ठीक हो गया और कोई बुरा परिणाम न हुआ।

मेरियाको एक और दुःख सहना पड़ा। उसके पिताकी मृत्यु हो गई और वह उनकी समस्त धन-सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी हुई; परन्तु इस उत्तराधिकारसे भी उसे किसी प्रकारकी सान्त्वना न मिल सकी। उसने सच्चे हृदयसे अपनी माके दुःखमें हाथ बँटाया और इस बातकी प्रतिज्ञा की कि वह अपनी माको छोड़कर कहीं न जायगी।

इस सम्पत्तिशालिनी सुन्दरीके चारों ओर विवाहेच्छु युवकोंकी टोली मंडराने लगी, मगर उसने किसीको रत्ती-भर भी आशा न दी। कभी-कभी उसकी माता उसे यह समझानेकी चेष्टा करती कि अब उसे किसीको अपने जीवनका साथी चुन लेना चाहिए, मगर मेरिया सिर हिलाकर चुप हो जाती और विचार-सागरमें डूब जाती।

व्लाडीमीर अब जीवित न था। वह मास्कोमें फ्रेंचोंके आनेके एक दिन पहले मर गया था। मेरिया उसकी स्मृतिको पवित्रतासे अपने हृदयमें सुरक्षित रखती थी। प्रत्येक चीज़को, जो उसे व्लाडीमीरका स्मरण दिलाती थी; जैसे व्लाडीमीरकी पढ़ी हुई पुस्तकें, उसके प्रिय गीत, उसकी बनाई हुई ड्राइंग, उसकी नक़ल की हुई कविताओं आदिको वह बड़ी हिफ़ाज़तसे संभाल-सहेजकर रखती थी।

पड़ोसी लोग जो इन बातोंको सुनते थे, उसकी स्थिरता पर आश्चर्य करते थे। वे कहा करते थे—देखें कौनसा भाग्यवान नायक अन्तमें इस कुमारीके हृदयपर विजय पाता है।

इसी बीचमें युद्ध समाप्त हो गया था। विदेशोंसे रूसी फौजें विजय प्राप्त करके स्वदेशको लौट रही थीं। लोग प्रसन्नतासे दौड़ दौड़ कर सैनिकोंका स्वागत करते थे। रेजीमेन्टोंके बाजोंमें कहरवोंकी ध्वनि और विजयके उल्लास भरे गीत गूंजते थे। अफसर लोग, जो लड़ाईपर जानेके पूर्व निरे छोकरे-से थे, अब जाड़ेकी स्वास्थ्यप्रद वायुसे परिपुष्ट होकर और लड़ाईमें अनेकों पदक और सम्मान प्राप्त करके हट्टे-कट्टे

जवानोंके रूपमें लौट रहे थे। सैनिक प्रसन्नतासे एक दूसरेसे बातचीत करते थे, परन्तु उनकी भाषामें बातबातमें फ्रेञ्च और जर्मन शब्द मिश्रित दिखाई देते थे। वह विजय, प्रसन्नता और उल्लासका समय था! भला उसे कोई कैसे भूल सकता था? 'स्वदेशकी जय" शब्दोंपर रूसियोंका हृदय कैसा उछलने लगता था! बिछुड़े हुए सैनिकोंके मिलन-अश्रु कैसे मधुर थे। एक ओरसे दूसरी ओर तक राष्ट्रीय गर्व और ज़ारके प्रति प्रेमके भाव झलक रहे थे! और ज़ारके लिए तो वह समय कैसा सुखदाई था!

उन दिनों महिलाएँ—हमारी रूसी महिलाएँ—बड़ी शानदार दिखाई देती थीं। उनकी साधारण उदासीनता दूर हो गई। उनकी प्रसन्नता सचमुच ही उन्मादकारी थी। वे विजयी सैनिकोंको देखकर प्रसन्नतासे जय-जयकार करती थीं और सैनिक गण बदलेमें खुशीसे अपनी टोपियाँ उछालते थे।

उस ज़मानेके अफसरोंमें कौन ऐसा था, जो यह न मानता हो कि उसे विजयका जो सबसे मूल्यवान इनाम मिला है, उसके लिए वह किसी रमणीका आभारी नहीं है? इस आनन्दोत्सवके समय मेरिया अपने गाँवमें माताके साथ एकान्तमें रहती थी। उन मा-बेटियोंमें कोई भी शहरके जल्से-तमाशे देखने नहीं गई। मगर देहातों और गांवोंमें यह आनन्द और उत्साह शायद और भी ज्यादा था। इन स्थानोंमें किसी अफसरका पहुँच जाना उसके लिए विजय-यात्राके समान था। उसीकी हर जगह पूछ थी। उन दिनों युवतियोंके स्वीकृत प्रेमियोंकी भी, जो फौजी पोशाकमें न होते थे, कोई पूछ न थी। हम पहले ही कह चुके हैं कि विवाहके प्रति बिलकुल उदासीनता दिखानेपर भी अनेकों विवाहेच्छु युवक मेरियाको घेरे रहते थे। परन्तु जब वहाँपर हुसार्स फौजका कप्तान बौरमिन आया, तब इन सब युवकोंको दुम दबाकर हट जाना पड़ा। बौरमिन लड़ाईमें जख्मी हुआ था, और उसने सेंट जार्जके पदकका सम्मान प्राप्त किया था। उसके चेहरेपर एक आकर्षक पीलिमा-सी थी! उसकी उम्र २६ वर्षकी थी। वह छुट्टी लेकर अपनी ज़मींदारीपर आया था, जो मेरियाके बंगलेके पास ही थी। मेरिया भी उसपर इतना ध्यान देने लगी जितना उसने और किसीपर भी नहीं दिया। बौरमिनकी उपस्थितिमें उसकी स्वाभाविक उदासी जाती रहती थी।

बौरमिन सचमुच बहुत ही सौम्य नवयुवक था। उसके व्यवहार-बर्तावमें कुछ ऐसी मनोहरता थी, जो स्त्रियोंको बहुत रुचिकर प्रतीत होती थी। वह जानता था कि कौन बात उचित है और क्या सुन्दर लगेगा। उसमें बनावटी आडम्बर नहीं था, और वह एक अजीब लापरवाहीसे हँसता था। मेरियाके प्रति उसका व्यवहार सरल और स्वाभाविक था; वह बहुत ही शान्त और विनम्र स्वभावका मालूम होता था। नगरमें यह अफवाह मशहूर थी कि किसी समय वह बड़ा उपद्रवी था। परन्तु इस अफवाहसे उसके प्रति मेरियाके विचारोंमें कोई अन्तर न पड़ा। क्योंकि सभी युवती स्त्रियाँ नवयुवकोंके भावुकता-भरे दुस्साहसिक उपद्रवोंको प्रसन्नतासे क्षमा कर देती हैं।

बौरमिनका प्रेम-प्रदर्शन, उसकी हृदयहारी बातचीत, उसकी आकर्षक पीलिमा और उसका पट्टी बँधा हुआ जख्मी हाथ आदि आकर्षक बातोंने कहीं अधिक उसके मौनने मेरियाके कल्पना-जगतमें कौतूहल उत्पन्न कर दिया। वह अपने मनमें स्वीकार करने लगी कि बौरमिन उसे बड़ा भला लगता है। दूसरी ओर बौरमिनने भी शायद अपनी प्रखर बुद्धि और अनुभवसे यह देख लिया कि उसके प्रति मेरियाके हृदयमें अनुराग है। लेकिन एक बात समझमें न आती थी कि इतना सब होनेपर बौरमिनको उसके आगे घुटने टेककर प्रेमकी प्रार्थना करनी चाहिए थी; परन्तु अब तक उसने अपने मुँहसे एक शब्द भी नहीं कहा था। क्या मेरियाने उसे कोमलता दिखाकर प्रोत्साहित नहीं किया? क्या बौरमिनके मनमें कोई रहस्य है?

अन्तमें बौरमिन ऐसे गहरे विचारमें निमग्न हो गया और उसकी आँखोंसे मेरियाको देखकर ऐसी ज्योति निकलने

लगी, जिससे यह प्रत्यक्ष जान पड़ने लगा कि वह क्षण अब दूर नहीं है, जब वह मेरियाके चरणोंमें खुल्लमखुल्ला अपना हृदय समर्पित कर देगा। पड़ोसी आपसमें कानाफूसी करने लगे कि अब मेरियाका विवाह बिलकुल निश्चित बात है। उधर मेरियाकी माताको इस बातकी प्रसन्नता थी कि अन्तमें उसकी कन्याको उपयुक्त वर प्राप्त हो गया। मेरियाकी मा बैठकखानेमें बैठी हुई मेज़पर ताश बिछा रही थी। उसी क्षण बौरमिनने कमरेमें प्रवेश किया और पूछा—"मेरिया कहां है?"

"वह बागमें है। वहीं चले जाओ। मैं अभी थोड़ी देर यहीं रहूँगी।"—वृद्धाने उत्तर दिया। उसने मन-ही-मन हाथ जोड़कर कहा—"ईश्वर चाहेगा तो आज इन दोनोंका सम्बन्ध निश्चित हो जायगा।"

बौरमिनने देखा कि मेरिया तालाबके किनारे एक लता-मण्डपमें बैठी किताब पढ़ रही है। वह सफेद पोशाक पहने थी और किसी कल्पनाशील कहानीकी नायिका-सी प्रतीत होती थी। आरम्भमें दो-एक बातोंकी पूछताछके बाद मेरियाने जान-बूझकर बातचीत बन्द कर दी। इस मौनने उन्हें एक विचित्र परेशानीमें डाल दिया, इससे निकलनेका एक ही उपाय था कि बौरमिन एक बार ही प्रेमका प्रस्ताव उपस्थित कर दे। हुआ भी वही। बौरमिनने कहा—"मैं बहुत दिनोंसे इस बातका मौका ढूँढ़ रहा था कि आपसे अपने मनकी बात कहूँ। क्या आप एक क्षणके लिए इधर ध्यान देंगी?" मेरियाने किताब बन्द करके आँखें नीची कर ली, जैसे वह उसकी बात सुननेको तैयार है।

"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। समस्त हृदयसे प्यार करता हूँ।"—बौरमिनने कहा। मेरियाका मुँह लाल हो गया, उसका सिर और भी नीचा हो गया।

"मैंने बड़ी ग़लती की, जो रोज़ तुमसे मिलता रहा और तुम्हारी हृदयकी बातोंको सुनता रहा। परन्तु अब अपने भाग्यका प्रतिरोध करना असम्भव है। अब तो आजसे तुम्हारी मधुर-स्मृति और तुम्हारी अनुपम मूर्ति ही मेरे मनमें एक साथ पीड़ा उत्पन्न करेगी और सान्त्वना देगी। मैं तुमसे एक भयानक भेदकी बात बताता हूँ, जो हमारे-तुम्हारे बीचमें एक ऐसी खाई बना देगी, जिसे हम लोग कभी पार नहीं कर सकते। हमलोगोंका मिलन असम्भव है।"

"हमारे तुम्हारे बीचमें खाई तो सदासे ही मौजूद है।" मेरियाने बात काटकर कहा—"मैं कभी तुम्हारी पत्नी नहीं हो सकती।"

बौरमिनने तुरन्त ही जवाब दिया—"मैं जानता हूं कि तुम किसीको प्यार करती थीं, परन्तु उसकी मृत्युसे और तीन वर्षके लम्बे अर्सेसे तुममें कुछ परिवर्तन ज़रूर हुआ है। प्यारी मेरिया! तुम कमसे कम मेरी इस अन्तिम सान्त्वनाको तो न छीनो कि तुम मुझे सुखी बनानेको राज़ी हो जातीं यदि मैं......। बीचमें बात न काटो। उफ़! तुम मुझपर जुल्म करती हो! मैं जानता हूँ, मुझे यह अनुभव हो रहा है कि तुम मेरी हो जातीं, परन्तु—हाय! मैं संसारमें सबसे बड़ा अभागा हूँ—मेरा विवाह पहले ही हो चुका है।"

मेरिया आश्चर्यसे उसकी ओर देखने लगी।

"हाँ, मेरा विवाह हुए तीन वर्षसे अधिक हो गये।" बौरमिनने कहा—"और मैं यह नहीं जानता कि मेरी स्त्री कौन है, कहां है और इस ज़िन्दगीमें मैं उसे फिर कभी देखूंगा या नहीं।"

"कह क्या रहे हो!" मेरिया बोल उठी—"बड़े आश्चर्यकी बात है! क्या हुआ!"

बौरमिन बोला—"सन् १८१२ के आरम्भमें मेरी फौज विलनामें तैनात थी। मैं वहीं जा रहा था। रास्तेमें जब एक चौकीपर पहुँचा, तब रात हो गई थी। मैंने फौरन घोड़े तय्यार करनेका हुक्म दिया। उसी समय एकाएक बर्फका बड़ा भयकर तूफान चलने लगा। चौकीके स्टेशन मास्टर और कोचवानोंने मुझसे कहा कि अभी ठहर जाइये, यह तूफान थम जाने दीजिये। मैंने उनकी बात सुनी, मगर उस समय मेरे हृदयमें एक दुर्दमनीय अशान्ति-सी पैदा हो गई। मुझे ऐसा मालूम होता था, मानो कोई अदृश्य शक्ति

ज़बर्दस्ती मुझे खींच रही हो। इस बीचमें तूफान भी बन्द न हुआ। मैं और अधिक देर तक न रुक सका, फिर घोड़े तैयार करनेका हुक्म दिया और तूफानमें ही चल पड़ा। कोचवानके मनमें यह बात आई कि नदीके किनारे होकर आनेमें तीन मील कम चलना पड़ेगा। हम लोग सड़क छोड़कर नदीके तटसे जाने लगे, मगर नदीका किनारा बर्फसे भरा था। जिस मोड़से घूमकर हम लोग फिर सड़कपर आ पहुँचते, कोचवान उस मोड़को भूलकर आगे बढ़ गया, और हम लोग एक अज्ञात स्थानमें जा निकले। तूफान थमता ही न था। मुझे दूरपर एक रोशनी-सी दिखाई दी। मैंने कोचवानसे उसी ओर चलनेको कहा। हम लोग एक गाँवमें जा पहुँचे। वह रोशनी गाँवके गिरजाघरसे निकल रही थी। गिरजा खुला हुआ था। जंगलेके बाहर कई 'स्ले' खड़ी थीं और कुछ लोग गिरजेके बरामदेमें बाहर-भीतर आते-जाते थे।

" 'आ गये, आ गये' कई आदमी चिल्ला उठे। मैंने कोचवानसे सीधे गिरजेकी ओर हांकनेको कहा। एकने आगे बढ़कर मुझसे कहा—'तुम रह कहां गये थे? वधू बेहोश हो गई है, पादरी बेचारे किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो रहे हैं कि क्या करें। हमलोग भी बस जाने ही वाले थे। जल्दी करो, आओ।'

"मैंने चुपचाप 'स्ले'से उतरकर गिरजेमें प्रवेश किया। गिरजामें दो-तीन तेलकी कुप्पीओंसे बड़ी धुँधली-सी रोशनी हो रही थी। एक अंधेरे कोनेमें एक लड़की बैठी थी। एक दूसरी औरत उस लड़कीकी कनपटी सहला रही थी। वह दूसरी औरत बोली—'ईश्वरको धन्यवाद है कि तुम आ गये। तुमने तो इस बेचारीकी जान ही ले ली थी।'

"बुड्ढे पादरीने मेरे पास आकर कहा—'तो मैं शुरू करूँ?' मैं बिना कुछ सोचे-समझे अन्यमनस्क भावसे बोल उठा—'हाँ, हाँ शुरू कीजिये।'

"वह नवयुवती पकड़कर खड़ी की गई। मैंने देखा कि वह सुन्दरी थी। उफ! उस वक्त मैंने ऐसा मूर्खतापूर्ण चिलबिलापन किया, जिसका प्रतिकार असम्भव है! मैं वेदीके सामने उस युवतीकी बगलमें जा खड़ा हुआ। पादरी जल्दी-जल्दी मंत्र पढ़ने लगा। तीनों गवाह और वह औरत—नौकरानी—उस युवतीको पकड़े हुए थे। उन सबका सारा ध्यान उसीकी ओर था। बस, हमारा विवाह हो गया!

"पादरीने कहा—'अपनी स्त्रीका चुम्बन करो।'

"मेरी स्त्रीने अपना पीला चेहरा मेरी ओर घुमाया। मैं उसे चुम्बन करने ही वाला था कि वह चीख उठी—'ओह! ये वे नहीं हैं, वे नहीं हैं!' यह कहकर वह बेहोश होकर गिर पड़ी। गवाह मेरी ओर घूर-घूरकर देखने लगे। मैं घूम पड़ा और गिरजेके बाहर निकल गया। किसीने मुझे रोकनेकी कोशिश भी नहीं की। मैं जाकर अपनी 'स्ले' में गिर पड़ा और कोचवानसे चिल्लाकर बोला—'हाँको!' "

मेरियाने कहा—"ऐं! तुम्हें यह भी पता नहीं कि फिर तुम्हारी उस अभागी स्त्रीका क्या हुआ?"

"नहीं"—बौरमिनने कहा—"न तो मुझे उस गाँवका नाम ही मालूम है, जिसमें मेरा विवाह हुआ था, और न उस चौकीका ही नाम मालूम है, जहाँसे मैं चला था। उस समय मैंने अपने इस दुष्टतापूर्ण मज़ाकका रत्ती-भर भी ख़याल नहीं किया, यहाँ तक कि गिर्जासे निकलनेपर मैं 'स्ले' में सो गया और सबेरे जब जागा, तब मैं तीन चौकियाँ आगे निकल चुका था। जो नौकर मेरे साथ था, वह लड़ाईमें मारा गया। इस प्रकार अब मुझे यह आशा भी नहीं है कि कभी उस अभागी स्त्रीका पता लगा सकूंगा, जिसके साथ मैंने ऐसा क्रूरतापूर्ण मज़ाक किया था। अब उसी क्रूरतापूर्ण मज़ाकका वैसा ही क्रूरतापूर्ण फल मुझे मिल रहा है।"

"हे ईश्वर!"—मेरिया उसका हाथ थामकर चिल्ला उठी—"तब वह तुम्ही थे! और तुम मुझे पहचानते भी नहीं?"

बौरमिनका चेहरा पीला पड़ गया। वह मेरियाके चरणोंमें गिर पड़ा।

—व्रजमोहन वर्मा

चित्रशाला-भवन

"निशात-बाग"।

मेरी ईरान-यात्रा

श्री मोशियो आर० तूर्त
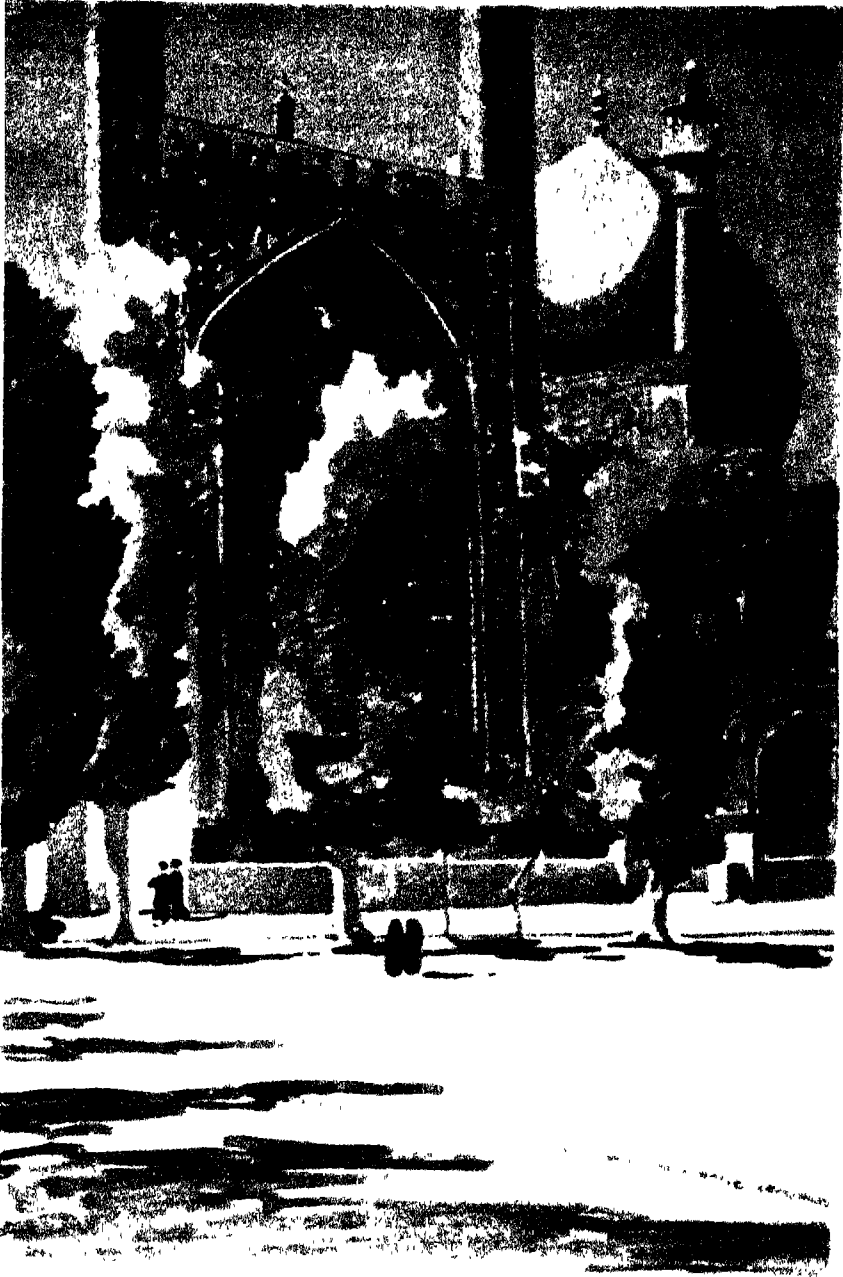
[मोशियो आर० तूर्त एक नवयुवक फ्रेंच इंजीनियर हैं। वे अपनी स्त्रीके साथ संसारकी यात्रा कर रहे हैं। पेरिससे एथेन्स तक आप पैदल आये। वहांसे कुछ दूर मोटरपर और कुछ दूर स्टीमरपर यात्रा करके भारतवर्ष आये। इस लेखमें उन्होंने अपनी ईरान यात्राका कुछ वृत्तान्त दिया है। साथमें जो चित्र प्रकाशित हैं, उन्हें तूर्त महाशयने स्वयं ही उन्हीं स्थानोंसे अंकित किया था। तूर्त महाशय 'विशाल-भारत' आफिसमें और भी बहुतसे स्केच और चित्र लाये थे। यहांपर केवल कुछ चुने हुए चित्र ही दिये जाते हैं। सं०]

बगदादमें हमने आखिरी पूछताछ की और रुपयोंको भुनाकर चांदीके सामान और केक ले लिये। इसके बाद हम खनीकीनकी गाड़ीमें सवार हुए। वहां मिट्टीके तेलकी बहुत खानें हैं। हमें बताया गया कि अंग्रेज उनका फायदा उठा रहे हैं।

वहांसे मोटरपर हम इराकसे रवाना हुए। ईरान जैसे विस्तृत देशमें रेलवेका कहीं पता नहीं है; आमद-रफ्तका एक-मात्र साधन मोटर ही है। मोटर द्वारा हम कसरुल शीरींकी सरहदी चौकी तक पहुंच गये। अब मैदानोंसे गुज़रकर हम इस पार्वत्य प्रदेशकी घाटियोंमें प्रवेश कर रहे थे। यहां बड़ी खुश्की और गर्मी थी। हमें रोग-संक्रमण निवारक अधिकारियोंके इस आदेशसे बड़ा अचम्भा हुआ कि वहां पाँच दिनों तक निरीक्षणके लिए ठहरना ही पड़ेगा। और वह भी अन्यान्य यात्रियोंके साथ, जिनमें कर्बलाकी तीर्थयात्रासे लौटनेवाले मुसलमानोंकी संख्या अधिक थी। यह स्वास्थ्य रक्षाकी पेशबंदी थी, हालां कि बगदाद-स्थित ईरानी राजदूतके परामर्शानुसार हमने चेचक और प्लेगका टीका ले लिया था। यहां हमें खुले मैदानमें पड़ा रहना पड़ा और उसका किसी होटलसे भी ज्यादा किराया देना पड़ा। भोजनका प्रबंध स्वयं ही करना पड़ता था।

कसरुल शीरीं एक छोटासा हरा-भरा शहर है, जहां एक निर्मल झरनेके किनारे फल और तरकारियोंके पेड़ लहलहाते हैं; लेकिन मकान मिट्टीके बने हुए हैं और वह भी टूटे फूटे! इससे हमें ईरानकी हालतका पूर्वाभास मिल गया कि वह एक मरुस्थल होगा, जहां छोटी नदियोंके पास मुरझाई हुई हरियालीमें जीर्ण शीर्ण छोटे-मोटे मिट्टीके मकानोंके थोड़े बहुत शहर होंगे। ये नदियां भी थोड़ी दूर बहकर रेगिस्तानमें गुम हो जाती हैं।

हमें जितने आदमी मिले, सब 'पहलवी कुलाह' पहने हुए थे। यह एक प्रकारकी फौजी टोपी है, जिसे पहननेके लिए हर ईरानी बाध्य है। वे पैरोंमें तस्मे बांधे हुए थे। महिलाएँ सिरसे पैर तक काले कपड़े पहिने थीं, और ऐसे पर्देमें थीं जिसमें हवाकी गुज़र भी मुश्किल थी।

अब हमें ईरानके दार्शनिक सौन्दर्यका पता चलने लगा। जान पड़ता था कि हर आदमी जीवनके ध्येयको पा गया है और अपनी कामनाओं और उद्देश्योंकी सिद्धिसे सन्तुष्ट हो गया है। हरएक अपने मनका बादशाह है। उसकी सल्तनतमें एक चायकी प्याली, हुक्का और गलीचा है, जिसपर बैठकर वह जल-प्रवाहको देखते हुए अपने हाथके फूलको सूँघता रहता है।

पांच दिन गुज़र गये। समयकी धारा रुकती नहीं। स्वप्न देखते दिन बीत जाते हैं।

*　　*　　*

कसरुल शीरींके बाद ईरानके प्लेटोकी कठिन यात्रा आरम्भ हुई। बलूतके अधमुरझे और छितरे हुए वृक्ष, छायाहीन जंगल, उज्ज्वल निर्मल झरने, ऊबड़खाबड़ चट्टानें जो रंगीन और जगमगा रही थीं और जिनपर शानदार पेड़-पौधे लहलहा रहे थे। लेकिन सड़कें गन्दी और दुरूह थीं। छायाका तो उनमें नाम भी न था।

करिंद एक खूबसूरत शहर है। वहां हरियाली, खूबानीके

पेड़, झरने और शीतल मन-भावन संध्याएँ होती हैं। हारुनाबाद नामक छोटासा ग्राम शाहकी सम्पत्ति है। थोड़ी दूरपर तेलके कुएँ दिखाई पड़े, और हम लोगोंको मालूम हुआ कि उनपर अंग्रेज़ोंका कब्ज़ा है।

अन्तमें हम करमानशाह पहुँच ही गये, जिसका बड़ा नाम सुनते आये थे। यहां साफ़ पानी और फलोंकी बहुतायत है। नगरवासी बताते हैं कि शीघ्र ही वहां एक ऐसा सुन्दर चौराहा बननेवाला है, जिसका दुनियामें कहीं जवाब न होगा। इन्शाअल्लाह ! उसे बन तो जाने दो ! इस समय तो वहां उन मकानोंके ढेरके सिवा, जो धूलमें मिलाये जा रहे हैं, और कुछ नहीं है। उसके आसपास घूमनेमें बड़ा मज़ा आता है। यहां बहुतेरे यहूदी रहते हैं; एलायन्स इज़रेलाइट स्कूलोंको धन्यवाद देना चाहिए कि वे सब फ्रेंच बोलते हैं। सारे ईरानमें हमारी फ्रच भाषाकी तूती बोल रही है, और हमने हर जगह ऐसे स्कूल देखे। बाज़ार भी दिखलाई पड़े, जिनमें चहलपहल न थी, फिर भी बिक्री अच्छी खासी हो जाती है। मोटरघर और होटलें भी हैं।

करमानशाहके पास तक़ीबोस्तांमें कलकल शब्दवाले निर्झरणोंकी बगलमें चट्टानोंपर बड़े सुन्दर बेलबूटे खुदे हुए हैं। यह स्थान कविताओंमें शराबोर है। यहांवाले अफीम पीते हैं। टहलनेके लिए यह आनन्ददायक जगह है। शुक्रवारको मुसलमान और यहूदी यहाँ जश्न (आनन्द) करते हैं और करासाओ यानी काली नदीके किनारे भी जाते हैं।

करमानशाहके बाद मार्गकी चढ़ाई और भी ऊँची है। एक ऊँचे पहाड़पर चढ़ना पड़ा। यह बड़ा सुरम्य स्थान है और यहांसे हम अलवन्दकी पहाड़ीको देख सकते हैं, जो ३७५० फीट ऊँची है।

गाँवोंमें आइये तो कठोर और डरावनी शकलवाले कुर्द मिलेंगे, जो बड़े अतिथिसेवी होते हैं। ईरानियोंके विचारमें हमादान अब भी 'मोती' है। दूसरोंकी समझमें उसकी प्रसिद्धि पुरातन 'अगबतना'के कारण है, जिसकी याद ही याद बाक़ी है, निशान कहीं नहीं। हमने आजतक इस नगरसे बढ़कर करुणोत्पादक दृश्य कहीं नहीं देखा। सड़कोंको चौड़ा नहीं किया जाता और राजमार्गोंपर भी गाड़ियां बड़ी कठिनाईसे चल सकती हैं; क्योंकि वे केवल गधों और ऊँटोंके लिए बनाये गये थे। मोटरघरोंके सिवा नई इमारतें हैं ही नहीं, और उनमें और पुरानी कारवां सरायोंमें विशेष अंतर नहीं है। साधारणतः उनके बीचमें बड़ासा आंगन होता है और आसपास मोटर रखनेके लिए कोठरियां होती हैं। सड़ककी ओर आंगनके साथ यात्रियोंके सोनेके लिए कुछ कमरे हैं, जिनके नीचे आफ़िस और सर्वव्यापी चायख़ाने होते हैं। हमने इज़्ह और मारडेसीकी क़ब्रों, मस्जिदों और बाज़ारोंकी सैर की। नगरके चारों ओर बहुत अच्छे फलोद्यान हैं। अंगूरके बाग़ीचे भी हैं। उनसे जो शराब निकलती है, कहीं-कहीं उसकी प्रशंसा भी सुनी। आसपासके पहाड़ोंकी चोटियां बर्फ़से ढकी हैं और ऊँचाईके कारण रातको खासी ठंड पड़ती है।

इसके बाद सड़क जिस इलाक़ेमे गुज़रती है, वह रेगिस्तानसे बिलकुल मिलता-जुलता है। कहीं-कहीं छोटे-छोटे गाँव देखनेमें आते हैं; पर बरबादी और उजाड़पन उनसे भी टपकता है। लेकिन चायख़ाने वहाँ भी हैं और मोटरोंका उनके आगे रुकना अनिवार्य है। वहाँ आपको नन्हीं प्यालियोंमें कड़ी चायके साथ खारे 'नान' और 'मास' भी मिलेंगे; और अधगंदला पानी भी मिल जायेगा। किसान दूरीका हिसाब फरसंग' में लगाते हैं। सड़कोंपर 'किलोमीटर' के पत्थर गड़े हुए हैं। ६ किलोमीटरका एक फरसंग होता है।

लेकिन 'क़सवीन' से जो शान टपकती है, वह बड़ी ही आश्चर्यजनक है। चौड़ी-चौड़ी सड़कोंकी दोनों ओर ऊँचे पेड़ोंकी क़तार है, जिनके इधर-उधर बड़ी बड़ी कारवाँ सरायें और नीले गुंबदोंकी मस्जिदें खड़ी हैं। यहाँ बुनाईका एक कारख़ाना भी है, जो उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना विस्तीर्ण है। मोटरघरोंके सिवा यहीं एक नई रोशनीका चिह्न देखनेमें आया। यहाँ पिस्तेके

इस्फहानके पास आतिश परिस्तोंका मन्दिर

टुकुर-टुकुर देखते रह गये। अब ८० मीटर चौड़ी सड़कोंके किनारे मिट्टीकी झोपड़ियोंकी दीवारें खिंची हुई हैं, जो बरसातमें घुल जाती हैं तो धूपमें पक भी जाती हैं। पत्थर और ईंटकी इमारतें बहुत-कम हैं। सबसे ऊँची हवेलीमें एक आँगन है और छत नदारद! सड़कें और गलियाँ मिट्टीकी ही हैं, आस-पास नालियोंमें पानी बहा करता है और म्यूनिसिपैलिटीके भिश्ती साहब सड़कोंपर इतना पानी उँडेल देते हैं कि वे हमेशा कीचड़से लथपथ

बाग भी हैं। तेहरानको जो सड़क गई है, उसकी बाईं ओर कुछ पहाड़ियाँ होनेपर भी वह चौड़ी-चकली है। यह सड़क अच्छी और चौड़ी तो है लेकिन बिलकुल सुनसान और एक सूखे हुए मैदानके बीचमें है। तेहरान पहुँचनेके बहुत पहले हमें 'दमावंद' की बर्फीली चोटी नज़र पड़ी, जो ५४६५ फ़ीट ऊँची है। यहीं एक ऐसा निशान है, जिससे आप दूरसे राजधानीका पता चला सकते हैं। दूरसे तेहरानकी छाया भी आप नहीं देख सकेंगे। हरियालीके ऊपर उड़ी हुई धूलसे बादल छाकर नगरको आँखोंसे ओझल कर देते हैं।

तेहरान सिर्फ नामके लिए देशकी राजधानी है। वह राजधानी तो मालूम ही नहीं पड़ता। बड़ा भद्दा शहर है, जिसमें क़सम खानेके लिए भी कोई आकर्षक चीज़ नहीं है। मालूम होता है कि पहले वहां बहुतेरे हरेभरे बग़ीचे और सुन्दर पेड़ोंकी कतारदार सड़कें थीं। शाहने कहा—"मैं अमेरिका जैसी सीधी-सादी सड़कें चाहता हूँ, जो ६० मीटर चौड़ी हों, शाँज़ेलीज़ (पेरिसकी सबसे चौड़ी सड़क) से भी कहीं अधिक विस्तृत।" पेड़ काट दिये गये, मकान गिरा दिये गये और इस नगरसे प्रेम रखनेवाले यूरोपियन

रहती हैं। ईरानी अपने प्रधान राजमार्ग अलजर्दकी तुलना पेरिसकी सड़कोंसे और अपनी दूकानोंकी तुलना बड़े-बड़े स्टोरोंसे किया करते हैं। इस सम्बन्धमें मैं अपना विचार प्रकार न करूँगा। इसपर कुछ न कहना ही अच्छा है। 'पहेलवी कुलाह' के नीचे जो दिमाग़ छिपा है, उसमें कल्पनाका अनन्त कोष संचित है; पर न उसके हौसले ऊँचे हैं, न आवश्यकताएँ अधिक हैं। सड़कें रेगिस्तानी मालूम होती हैं, जिनपर चलनेवाला धूपमें झुम्हला जाता है और जलविहीन भूमिमें सूख जाता है। इन्हीं सड़कोंपर एक छोटीसी ट्रामगाड़ीको एक घोड़ा धीरे-धीरे घसीटता घसीटता ले जाता है। केवल दूतावासोंसे ही कारोबार होता है और सरकारी अधिकारी नगरके सर्वेसर्वा हैं।' चादर ओढ़े हुए औरतें डरावने काले कौवोंकी तरह सड़कोंपर चलती हैं। फिर उनमें क्या ख़ाक रंगीनी आयगी। यूरोपियन महिलाओंकी पोशाक पहिनकर खुले-बंदों घूमनेका साहस बहुत कमको होता है। ईरानी कट्टर शिया मुसलमान हैं। जब तक "फिरंगी" चालबाज़ी या बख़शिशसे काम न लें, तब तक वे मस्जिदोंमें क़दम नहीं रख सकते।

ग्रीष्मऋतुमें दूतावास 'शिमरंद' चले जाते हैं,
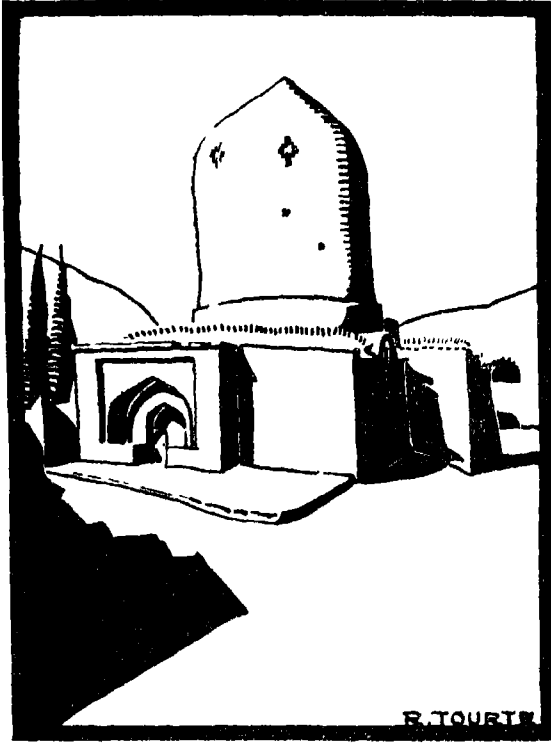
हमादनमें इज़हरका मक़बरा

पहाड़ोंपर वर्षा होनेके कारण कुछ ठंडा रहता है और इससे शहरकी बची-खुची जान भी निकल जाती है और 'तेहरान' पत्थरोंका एक बीहड़ घेरा-सा मालूम होता है। सम्भव है कि किसी दिन वह सचमुचमें राजधानीका रूप धारण कर लेगा।

'रे' यहाँसे अधिक दूर नहीं है और वहाँ 'रेगस'के खण्डहर दिखाई पड़ते हैं, जहाँ सिकन्दरने डेरा डाला था। अब तो वह अनन्त मरुस्थलकी रेतके नीचे ढका पड़ा है। हाँ, अन्वेषकों और कल्पना-प्रेमियोंकी स्मृतिमें उसकी एक आध झलक मौजूद है।

दक्षिणकी ओर जितना ही बढ़ते जाइये, रेगिस्तानका विस्तार भी उतना ही बढ़ेगा। यह नमकके महान् मरुस्थल हैं, जहाँ ज़मीनपर नमककी एक चादर-सी बिछी रहती है, जो दोपहरकी धूपमें बिखरे हुए बर्फीले मैदानमें जैसी दिखलाई पड़ती है। एक दिन प्रभातमें हम एक चौड़ी नदीको पार करके 'कूम' पहुँचे। उस नदीमें बहुत कम पानी था। 'कूम' तीर्थस्थान है और वहाँकी प्रसिद्ध मसज़िदके दर्शनके लिए हज़ारों शिया यात्री आते हैं। बाल सूर्यकी किरणोंमें वह धर्मकी अनोखी मशालके समान सुनहली होकर जगमगाती रहती है। इस छोटीसी रेगिस्तानी बस्तीमें एक विशेष खिंचाव है। वह अब भी अपने पुराने रंगपर क़ायम है। उसके बाज़ारोंमें अब भी मोटरें चक्कर नहीं लगातीं। गधे, ऊँट और कुमैत घोड़े उनमें धीरे-धीरे गुज़रा करते हैं। कूम-निवासी उद्योग-धन्धोंमें लगे हुए हैं। वे फ़ेल्टहैट बनाते है और रुई और रेशम बुनते हैं। कुम्हार बर्तन तैयार करते हैं। एक शान्तप्रद चहल-पहल—जो यात्रियोंके लिए अत्यन्त आनन्ददायक है—यहाँ राज्य करती है।

हम कूम, उसके सुनहरे मीनार और रहस्यमय वातावरणको पीछे छोड़ते हैं। इसके बाद और भी बीहड़ रेगिस्तान और सन्नाटा है। बीच बीचमें इक्के-दुक्के उजड़े हुए गाँव हैं, जिनका धुँधला-सा नज़्ज़ारा दूरसे चिनारके पेड़ोंकी कतारको देखनेसे मालूम हो जाता है। इन पेड़ोंको दीमक चाट जाती हैं। धूसर वर्णकी मिट्टीके मकानोंसे भी गाँवकी दुर्दशा टपकती है। उनके अधिवासी कुछ नहीं करते। ईरानी थोड़ेसे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, ज़्यादा कुछ नहीं चाहते।

लेकिन इतनेसे ही ईरानमें जो कुछ देखने योग्य है, समाप्त नहीं हो जाता। इस्फ़हानका दृश्य एकदम विस्मयकारी है। जब थका मांदा यात्री, जिसके अंग-अंग थकावटसे चूर हो रहे हैं, चारों ओर निराशासे देखता हुआ प्रकृतिके इस एकान्त कोनेमें जा पहुँचता है, तब उसकी समस्त थकावट एकाएक ग़ायब हो जाती है, वह अचानक तरोताज़ा हो जाता है। एक तो इस्फ़हानके चारों ओर प्राकृतिक दृश्योंने अनोखे उपादान इकट्ठे कर दिये हैं, दूसरे मनुष्यने अपनी मेहनतसे उसे ऐसा सुरम्य बना दिया है कि उसे देखकर वहाँ ठहरनेको जी चाहने लगता है। इस्फ़हानकी शक्लसे ही वह राजधानी मालूम पड़ता है। यह पुरानी राजधानी है, और यद्यपि वर्तमान शासकोंने इसे त्याग दिया

है, फिर भी इसकी शान-शौक़तमें कमी नहीं हुई है। बड़े भारी परन्तु उत्तम पुलोंसे ज़ेन्दर रुदको पार करके शहरमें पहुंचते हैं। यहाँकी शेरबाग सड़क, यद्यपि पेरिसकी शॉज़ेलिज़ेका मुक़ाबला नहीं कर सकती, फिर भी शक्ल-सूरतमें उससे कम सुन्दर और शानदार नहीं है। वास्तवमें इसकी सुन्दरता बहुत भली लगती है। इसके दोनों ओर ऊँचे ऊँचे बेदेमजनूंके पेड़ोंकी क़तारें हैं। सड़कके बीचोबीच पैदल चलनेवालोंके लिए फुट-पाथ है, और उसके इधर-उधर गाड़ियोंके लिए दो मार्ग हैं। इन चिन्होंको देखकर इस बातका अन्दाज़ लगता है कि अब्बासके समयमें हौज़ और फव्वारोंसे सुसज्जित यह सड़क कैसी सुन्दर रही होगी। इसका विचित्र नक्शा जिस इंजिनियरने बनाया होगा, उसे हम आधुनिक नये नगरोंकी रचना करनेवालोंका पुरखा कह सकते हैं। एक तरफ चारों ओर पेड़ोंसे घिरा हुआ एक बड़ा बाग है, जिसके एक ओर शानदार जुम्मा मस्ज़िद है और दूसरी ओर बलादियेह या शाह अब्बासका प्राचीन महल है। सामने अल्लाह मस्ज़िद है और पीछेकी ओर बाज़ारका बड़ा भारी फाटक। खूबसूरतीसे रचे हुए बागके बीचोबीच अब भी एक छोटा इन्द्रभवन-सा महल है, जिसे 'शेतुल सुतूं' या "चालीस खम्भा महल" कहते हैं। महलमें वास्तवमें सिर्फ बीस ही खम्भे हैं; परन्तु चूँकि वह एक बड़े तालाबके सामने स्थित है, इसलिए पानीका प्रतिबिम्ब बीस खम्भोंको चालीस बना देता है। पुराने शहरमें अनेको सुन्दर और बड़ी-बड़ी मसज़िदें हैं, जिनके मीनेके कामके हरे और नीले गुम्बद सूर्यकी रोशनीमें पन्ने और नीलमके बड़े-बड़े ढोकोंके समान दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त सभी सड़कोंपर छोटे-छोटे छप्पर और फव्वारे दिखाई देते हैं। चारों ओर सब्ज़ी-ही-सब्ज़ी है। इस्फहानका शहर बाग और फल-फूलके बगीचोंके बीचमें बसा है। इन बगीचोंमें अनेकों तालाब और पुष्करिणी हैं, जिनसे चारों ओर शान्तिदायिनी शीतलता छाई रहती है। फिर ये बाग-बगीचे और सारा शहर चारों ओर पहाड़ियोंसे घिरा है, जिनका कोमल वर्ण और उस

मजदीखास्त

बाह्यरेखाएँ दूरसे ही दिखाई पड़ती हैं। परन्तु आधुनिक नगरोंकी दृष्टिसे शहरमें कुछ अधिक नहीं है। मकान सब नीचे-नीचे हैं। ऊँचे-से ऊँचे मकानोंमें एक मंज़िलसे अधिक नहीं है। वे धूपमें सुखाई हुई ईंटोंके बने हैं। शहरमें कारवांसराय हैं, जो मोटरघरोंका अस्तबलका काम देती हैं। व्यापारका केन्द्र अब भी 'बाज़ार' ही है। ये बाज़ार बड़े विचित्र हैं, इनमें गुफाओंकी भांति महराबदार छतें हैं। उनकी नन्हीं-नन्हीं दूकानोंमें एशिया और यूरोपकी चीज़ें एक दूसरेसे कंधा रगड़ती हुई दिखाई देती हैं। छपी हुई छींटोंके साथ-ही-साथ 'जामेवार' और स्वादिष्ट फलोंकी बगलमें बिसातखानेकी ठुकड़ही चीज़ें दिखाई पड़ेंगी। यहां सुन्दर और बड़े क़ीमती क़ालीन बनते हैं।

शीराज़में हाफ़िज़के मक़बरेके समीप

मैदानमें जा पहुँचते हैं। इसी मैदानकी स्वच्छ वायुमें कवियोंका हसरतज़दा शीराज़ स्थित है। शीराज़का दृश्य सुन्दर है। उसके सुन्दर देवदारुके वृक्ष गुलाबी और सुनहरी पहाड़ियोंकी बेंगनी छायामें बड़े विचित्र दिखाई देते थे। थोड़ी दूरपर पहाड़की वृहत् छायामें महाकवि सादी और हाफ़िज़के मक़बरे हैं। ये मक़बरे अंगूरकी लताओंसे घिरे हुए हैं, जिनसे प्रसिद्ध शीराज़ी शराब बनती है। यहाँकी क्रियाशील म्यूनीसिपेलिटीके प्रभावसे शहर अब आधुनिक ढांचेपर ढलनेकी चेष्टा करता जान पड़ता है। आजकल रेखागणितके अनुसार एक बिलकुल नया मुहल्ला बनाया गया है, जिसमें मोटरखाने और होटल आदि हैं। ये सब ईंट और पत्थरोंके बने हुए हैं।

शीराज़के बाद फिर पहाड़की चढ़ाई शुरू हो जाती है। ये पहाड़ दोज़खसे दिखाई देते हैं। दो दिनमें हमने यहाँसे बुशाइर तक—जो २५० किलोमीटर (मीलसे कुछ कम) की दूरीपर फारसकी खाड़ीके तटपर स्थित है—मोटर द्वारा यात्राकी। हम लोग चक्करदार रास्तेसे पहाड़के नीचे उतरने लगे। रास्ता ऐसा था, जिसमें मोटरको मोड़ना मुश्किल था और कई बार कोशिश करनेपर मोटर मुड़ता था। उसपर सड़कमें मोड़ोंकी संख्या सैकड़ोंसे ऊपर थी। पहाड़के नीचे गर्मी बढ़ जाती है। यहाँ पेड़ोंके नामपर केवल खजूरके वृक्ष हैं। यहाँके मैदानमें बहुतसे झरने हैं, जिनमें गंधककी भाप निकला करती है। बुशाइर ईरानका एक मात्र बन्दरगाह है, यदि आप बन्दरगाह ऐसे स्थानको कहें, जहाँ बड़े जहाज़ तटके कई मील दूर तक नहीं आ सकते हों। शहरमें किसी तरहके पेड़-पत्ते नहीं हैं, वहाँकी आब-हवा हानिकारक है। शहरमें कोई भी विशेषता नहीं है, सिवा उस विशेषताको छोड़कर जिसके लिए अंगरेज़ी झंडा वहाँ स्थापित है। यह ऊँचा झण्डा हवामें फहराया करता है और शहरपर अपना प्रभुत्व जमाये हुए मालूम पड़ता है।

जुल्फा पुलकी दूसरी ओर अरमीनियन लोगोंका मुहल्ला या उपनगर है। यह मुहल्ला अब तक एक छोटा-मोटा क़स्बा बना है। परन्तु यहांके ईसाई बाशिन्दे सब यूरोपियन ढंगके कपड़े पहनते हैं। शामको जैसे ही सूर्यकी गर्मी कुछ ढलती है वैसे ही आपके जुल्फाकी वयस्का तथा युवती स्त्रियाँ पेरिसके फैशनकी रेशमी पोशाकें पहनकर चलती-फिरती नज़र आयेंगी।

हम लोगोंने इस प्राचीन ऐश्वर्य और प्रसिद्ध स्मारकोंके नगरको छोड़कर पुनः रेगिस्तानकी राह पकड़ी। फिर ऊँचे पहाड़ मिले, और कहीं-कहीं सुन्दर खूबसूरत कोनोंमें यज़दीखास्त ऐसे क़स्बे नज़र पड़े। यज़दीखास्त पहाड़की एक ऊँची टौरियापर, जिसके नीचे एक झरना झरता है, बसा हुआ है। अन्तमें हम लोग ऐरेक्सकी घाटीमें अचमेनडिसकी प्राचीन राजधानी परसेपोलिस नगरमें जा पहुँचे। दाराके सुप्रसिद्ध महलमें अब केवल एक चौड़े छज्जे और दीवालपर बने हुए कुछ खूबसूरत काम तथा कुछ खम्भोंको छोड़कर और कुछ बाक़ी नहीं है। परन्तु ये सब भी बाईस सौ वर्षोंसे धूप और मेहका सामना करते हुए अब तक ठीक उसी दशामें खड़े हैं, जिसमें महान सिकन्दरने उन्हें छोड़ा था।

मरदश्तका विस्तृत मैदान अब नहीं है, उसके स्थानमें भी रेगिस्तान है। रूई और थोड़े अनाजके दो-चार छोटे-छोटे खेत इधर-उधर बिखरे हैं। इसके बाद पुनः घाटी आरम्भ हो जाती है। सड़क बड़ी कठिन और तक़लीफ़ दे है। पहाड़के पार्श्वसे एकाएक हम फिर एक दूसरे

हज़ारीबाग़ जेलमें बारह मास

श्री भवानीदयाल संन्यासी

संसारमें मानव-स्वभावका अनुभव प्राप्त करने और मानवी प्रकृतिके अध्ययन करनेका सबसे अच्छा और सरल उपाय क्या है? यदि कोई मुझसे यह प्रश्न करे, तो अब मैं निस्संकोच यह उत्तर दूँगा कि कुछ दिनोंके लिए बादशाह सलामतकी मेहमानी करना, जिसे आप असंस्कृत भाषामें यों कह सकते हैं कि चन्द महीनोंके लिए 'बड़ेघर'की हवा खाना।

यह बात मैं अपने अनुभवसे कह रहा हूँ। लगभग सालभर तक महामान्य सम्राट्का अतिथि रहकर मुझे जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, वे मुझे जीवन-भर न भूलेंगे। इस जेल-जीवनने कई दृष्टियोंसे मेरे ज्ञानकी काफी वृद्धि की है। हज़ारीबाग़ जेलमें मुझे कई ऐसी बातोंकी जानकारी हुई, जो शायद स्वतन्त्र जीवनमें कभी न होती। इससे पहले सन् १९१३ में महात्मा गांधीके साथ दक्षिण-अफ्रिकाके सत्याग्रहमें मैं सपरिवार—स्त्री-पुत्र सहित—उनका आतिथ्य ग्रहण कर चुका हूँ, परन्तु इस बारके अनुभव पहलेके अनुभवोंसे बिलकुल ही भिन्न हैं।

मैं २६ मार्चको आरा स्टेशनपर गिरफ्तार किया गया। मेरे विरुद्ध राजद्रोहात्मक वक्तृताएँ देनेका अभियोग लगाया गया था। सरकार बहादुर पहले ही से मेरी ताकमें थी, क्योंकि मुक़दमेके प्रहसनमें यह बताया गया कि मेरी वक्तृताओंकी रिपोर्ट लेनेके लिए पहले ही से विशेष रिपोर्टर नियुक्त किये थे। मेरी गिरफ्तारीकी खबर फैलते ही शहर-भरमें हड़ताल हो गई, और कई हज़ार आदमियोंका एक भारी जुलूस भी निकाला गया। मैं चौदह दिन तक—जब तक मुक़दमेकी दिल्लगी होती रही—आरा-जेलमें रखा गया। मुक़दमेके समय अदालतमें इतनी अधिक भीड़ होती थी, जिससे दो-एक बार तो अदालतकी कार्रवाईमें भी खलल पड़ा। मैंने सबसे पहली बात जो अनुभव की, वह जनताका उत्साह और प्रेम था। मैं बिहार प्रान्तका रहनेवाला हूँ, परन्तु जीवनका बहुत बड़ा भाग तीन समुद्र तेरह नदी पार सुदूर दक्षिण-अफ्रिकामें बीता है। भारत लौटे हुए भी मुझे अधिक दिन नहीं हुए, फिर भी जनताने मेरी तुच्छ सेवाओंके लिए जो सम्मान और प्रेम प्रदर्शित किया, वह मुझे जीवन-भर याद रहेगा। भारतीय जनताके हृदयमें कितना अगाध प्रेम भरा हुआ है, उसका प्रत्यक्ष परिचय मुझे उसी दिन मिला।

खैर, मुक़दमेका तमाशा होता रहा। नाटकके पात्रोंकी तरह गवाह, रिपोर्टर, इंस्पेक्टर, मैजिस्ट्रेट आदि आते, 'वन, टू, थ्री' करके अपना-अपना सबक दोहराते और गायब हो जाते। बेचारे सरकारी वकील उठते, सिर हिलाते, हाथ मटकाते, सवाल पूछते और बैठ जाते। कई दिनकी कसरतके बाद मैजिस्ट्रेट साहबने दस तारीखको कहा कि वे १२को फैसला सुना देंगे। ११ तारीखको आरावालोंने बखुरा ग्राममें नमक कानून तोड़नेका उद्योग किया। शहर-भरकी जनता उधरकी ओर उमड़ पड़ी। अधिकारियोंने यह मौक़ा देखकर ११ तारीख को ही मेरा फैसला सुना दिया और उसी दिन शामको चटपट मुझे हज़ारीबाग़ जेलको ट्रान्सफर कर दिया। मुझे दो वर्षकी सादी क़ैद और ३००) जुरमानेका दंड मिला था। अधिकारियोंके छिपानेपर भी मेरे हज़ारीबाग़ जानेकी खबर लोगोंको मालूम हो गई और स्टेशनपर काफी भीड़ इकट्ठी हो गई।

१२ अप्रिलको मैं हज़ारीबाग़ पहुँचा। हज़ारीबाग़ जेलमें केवल 'ए' और 'बी' श्रेणीके राजनैतिक क़ैदियोंके रखनेका ही प्रबन्ध किया गया था। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, उस समय वहाँ केवल दो ही राजनैतिक क़ैदी और थे। तीसरा नम्बर मेरा ही था। दो ही चार दिनके

बाद बिहार-सरकारने दमन-चक्रकी पूरी मेशीन चालू कर दी, रोज़ रोज़ जेलमें राजनैतिक क़ैदियोंके चालान आने लगे और थोड़े ही दिनमें हम लोगोंकी संख्या दो सौ हो गई। इन दिनों हज़ारीबाग़का जेल क्या था, सरकारके विरुद्ध निःशस्त्र बग़ावत करनेवालोंकी एक छोटी-मोटी 'कालोनी' थी।

भारतीय जेलोंका जीवन कैसा होता है, इस विषयपर पचासों लेख निकल चुके हैं, इसलिए इसपर अधिक कुछ लिखना बेकार है। हां, इतना जानता हूँ कि साधारण 'सी' क्लासके बन्दीके साथ जेलमें जो व्यवहार होता है, उसका उद्देश और फल यही होता है कि उसकी मानवता नष्ट करके उसे पशु-श्रेणीमें पहुँचा दिया जाय। जेलकी डिक्शनरीमें नैतिक-पतनकी इस क्रियाका नाम अनुशासन और सुधार (Discipline and Reformation) है। सुपरिन्टेन्डेन्टके आनेपर क़ैदियोंको एक क़तारमें खड़े होकर अपने हाथ और दांत दिखाने पड़ते हैं। यह क्रिया कैसी आत्म-पतनकारी है, इसका अनुभव भुक्त-भोगियोंके सिवा अन्य लोगोंको कठिन है। हम लोग जेल अधिकारियोंके प्रति किसी प्रकारका असम्मान प्रकट करना नहीं चाहते थे और न जेलकी मर्यादा और नियम ही भंग करना चाहते थे, परन्तु फाइलमें खड़े होकर हाथ और दांत दिखाना हमारे आत्मगौरवको असह्य था, अतः हम लोगोंने उसका घोर प्रतिवाद किया। अन्तमें हम लोग फाइलमें खड़े होकर हाथ और दांत दिखानेसे बरी कर दिये गये। सुपरिन्टेन्डेन्टके सम्मानके लिए उठकर खड़े हो जाने ही से जेलकी मर्यादाकी रक्षा हो गई।

जेलमें व्यावहारिक रूपसे हम लोगोंको कोई विशेष कष्ट न था। खाने-पीने, उठने-बैठने, मिलने-जुलने आदिकी काफी सुविधाएँ थीं। परन्तु स्वतंत्रता अपहरण करके यदि किसीको आप स्वर्ण-महलोंमें रखकर सब प्रकारके भोग-विलासके समान एकत्रित कर दें, फिर भी वह सुखी नहीं हो सकता। हज़ारीबाग़में कोई विशेष कष्ट न होनेपर भी हम लोगोंको प्रतिक्षण यह बात स्मरण रहा करती थी कि हम क़ैदी हैं, जेलमें हैं। यहां मैं यह बात खुले शब्दोंमें कह देना चाहता हूँ कि हम लोगोंके साथ जेलके-अधिकारियोंका व्यवहार काफी अच्छा, शिष्ट और विनम्र था। हम लोगोंमेंसे एक दोके साथ जेलके अधिकारियोंने कुछ ज़्यादती अवश्य की, मगर उसके लिए दोनों ही पक्ष दोषी थे। परन्तु सब बातोंको देखते हुए हमारे साथ जो व्यवहार हुआ, उसके लिए अधिकारीवर्ग और विशेषकर जेलर महाशय धन्यवादके पात्र हैं।

हम लोगोंको समयकी कोई पाबन्दी न थी। हम सब अपने अपने समयका जैसा चाहते सदुपयोग और दुरुपयोग कर सकते थे। 'ए' और 'बी' दोनों ही क्लासके क़ैदियोंसे कोई काम नहीं लिया जाता था। अतः सबने अपने अपने अलग कार्यक्रम बना रखे थे। मैं सुबह-शाम टहलता था और बाकी समयका अधिकांश भाग पढ़ने-लिखनेमें व्यतीत करता था।

लोगोंके सामने सबसे बड़ा प्रश्न था समय काटनेका। हम लोगोंको पढ़ने-लिखनेका सामान मँगानेकी इजाज़त थी। अतः हम लोगोंने जेलमें एक हस्त लिखित पत्र निकालनेका विचार किया। आरम्भमें इस विचारको एक सज्जनने व्यावहारिक रूपमें परिणत कर 'क़ैदी' को जन्म दिया था। बादमें सर्वसम्मतिसे 'कारागार' नामक पत्र निकाला गया और उसके सम्पादनका भार मुझे सौंपा गया। भिन्न-भिन्न सज्जन लेख लिखकर देते और मैं उनका सम्पादन करके एक जिल्द बंधी हुई कापीपर उन्हें साफ-साफ हरूफोंमें नक़ल कर देता था। वही कापी पाठकोंकी सेवामें इधरसे उधर घूमा करती थी। 'कारागार' का पहला अंक 'कृष्णांक' था, जो जन्म-अष्टमीके समय प्रकाशित हुआ था। दूसरा अंक 'दिवाली अङ्क' था और तीसरा अङ्क 'सत्याग्रह अंक' था, जिसे बिहार प्रान्तके सत्याग्रहका विस्तृत इतिहास कहना चाहिये। इस अंकमें प्रान्तके प्रत्येक ज़िलेके नेताओंने अपने-अपने ज़िलेमें सत्याग्रह संग्रामके तमाम उद्योगोंका वर्णन किया था। पहले दो अंक दो दो सौ पृष्ठोंकी कापीमें समाप्त हुए थे,

परन्तु 'सत्याग्रह अंक' में इस प्रकारकी चार कापियां लगी थीं। इस प्रकार कुल १२०० पृष्ठोंका मैटर लिखा गया।

हज़ारीबाग़के जीवनमें मुझे जो सबसे बड़ा लाभ हुआ, वह विहार प्रान्तके राजनैतिक कार्यकर्त्ताओंका परिचय प्राप्त करना था। मैं भारतके राजनैतिक जीवनका नया रंगरूट हूं। यद्यपि विहारके प्रमुख व्यक्तियोंमेंसे अनेकोंसे मेरा मामूली सा परिचय —दुआ-सलाम—था, परन्तु हज़ारीबाग़में १२ महीने तक दिन-रात एक साथ रहकर मुझे उनका बहुत ही घनिष्ट परिचय मिला है। उनमेंसे अनेकोंके मधुर संस्मरण अब मेरे जीवनके एक अभिन्न अंश हो गये हैं। प्रान्त भरके 'ए' और 'बी' श्रेणीके समस्त बन्दी हज़ारीबाग़में ही रखे गये थे, अत: विहार-उड़ीसाके प्राय: सभी गण्यमान्य नेता और कार्यकर्त्ता वहां मौजूद थे।

विहारके कांग्रेस-कार्यकर्ताओंका नाम लेते हुए सबसे पहला नाम जो आता है, वह पटनाके बाबू राजेन्द्रप्रसादका है। राजेन्द्र बाबू बड़े शिष्ट, सुसंस्कृत, सौम्य और सरलताकी मूर्ति हैं। उनकी सचाई और ईमानदारीपर कोई स्वप्नमें भी सन्देह नहीं कर सकता। लोग उन्हें विहार प्रान्तका गान्धी कहा करते हैं। लोगोंके इस कथनमें अतिशयोक्तिकी अपेक्षा सत्यकी मात्रा कहीं अधिक है। वे निरभिमान और निस्पृह व्यक्ति हैं। उनका स्वभाव कोमल है, और शायद इतना अधिक कोमल है, जिससे उनके लिए दूसरोंपर नियन्त्रण करना कठिन है। उनके आदर्श व्यक्तित्वमें बड़ा भारी प्रभाव है। हज़ारीबाग़ जेलमें कोई ऐसा न होगा —साधारण क़ैदियोंसे लेकर जेलके अधिकारियों तक—जिसपर उनकी शुद्ध प्रकृति और पवित्र आचरणका प्रभाव न पड़ा हो। वे नियमित रूपसे चर्खा कातते थे। उन्होंने स्वयं जेलरसे कहकर निवार बुननेका काम ले लिया था और नित्य-दस-पाँच गज़ निवार बिन लिया करते थे। खेद है कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। उन्हें जेलमें बहुधा कोई-न-कोई शिकायत रहा करती थी। परन्तु वे सब कष्टोंको धैर्य और सन्तोषसे सहन किया करते थे। राजेन्द्र बाबूको जन्म देनेका सम्मान प्राप्त करके विहार भी अन्य प्रान्तोंके सामने गर्वसे अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है।

भागलपुरके प्रसिद्ध रईस बाबू दीपनारायण सिंहके आनेसे जेलके जीवनमें काफ़ी परिवर्तन हुआ। बाबू साहब प्रसिद्ध यात्री हैं। उन्होंने अनेकों बार पृथ्वीकी परिक्रमा की है। उन्होंने न केवल संसारके ही बड़े-बड़े देश देखे हैं, बल्कि पृथ्वीके कोने-कोनेमें बसे हुए सुदूर टापुओंकी भी यात्रा की है। उनके आगमनसे जेलके कठोर और शुष्क जीवनमें भी सरसता और स्निग्धता आ गई। उनके चारों ओरकी आब-हवामें चहल-पहल और ज़िन्दादिली दिखाई देती थी। हज़ारीबाग़ जेलके इतिहासमें, उनके आनेके बाद ही शायद पहले-पहल कलकत्तेके रसगुल्ले, दिल्लीकी दालमोठ, आगरेके पेठे, कुल्लूके सेब और नागपुरके सन्तरोंने जेलकी चहारदीवारीके भीतर प्रवेश किया था। वे बड़े यारबाश आदमी हैं। सप्ताहमें दो-तीन बार वे क़ैदी मित्रोंको निमंत्रित करके भोज दिया करते थे। इसके सिवा 'ब्रिज' खेलनेके लिए तो प्रत्येकको स्थायी निमन्त्रण दिया हुआ था। उनके इस जंगलमें मंगल रचानेसे हममें से अनेकोंको जेलका कठोर जीवन भी सह्य हो गया था।

विहार कौन्सिलमें स्वराज-दलके नेता बाबू श्रीकृष्ण सिंह भी हमारे साथ थे। वे कौन्सिलके बड़े अच्छे वक्ताओंमें प्रसिद्ध हैं। उनका स्वभाव बहुत ही सौम्य और शान्त है। वे दिन-रात पुस्तकोंके अध्ययनमें निरत रहा करते। हज़ारीबाग़ जेलकी लाइब्रेरी काफ़ी बड़ी है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उसमें उपन्यासोंकी (अंग्रेज़ीके उपन्यासोंकी) ही भरमार है। अन्य विषयोंकी पुस्तकें तो निरा कूड़ा-करकट हैं। हालमें वहाँ सौ-डेढ़ सौ रुपयेकी हिन्दीकी पुस्तक भी मँगाई गई हैं।

हज़ारीबाग़के नेता बाबू कृष्णवल्लभसहाय बड़े सीधे-सादे और सच्चे व्यक्ति हैं। उन्हें न ऊधोका लेना न माधोका देना, किसीके झगड़े-टंटेसे काम नहीं। उनका राजेन्द्र बाबूसे

बड़ा प्रेम था। वे राजेन्द्र बाबूकी सेवा बड़े स्नेहके साथ करनेको तत्पर रहते थे।

मुज़फ्फ़रपुरके बाबू रामदयालु सिंह बड़े श्रद्धालु पुरुष हैं। वे महात्माजीके अनन्य भक्त हैं और इसीलिए उनका समय गीता पाठ, चरखा कातने और अध्ययन करनेमें बीता करता था। लोग उनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे। रामदयालुजी अहिंसाके चरम भक्त हैं। लोगोंके अधिक उत्साह और नवयुवकोंके निरीह जोश-खरोशमें भी उन्हे हिंसाकी बू मालूम पड़ती थी।

पटनाके अंग्रेज़ी दैनिक 'सर्चलाइट' के सम्पादक बाबू मुरली मनोहरप्रसाद बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। वे बातचीत करनेमें बड़े तेज़ हैं—प्रवृत्तिमें ही नहीं, बल्कि बातचीतकी स्पीडमें भी! उनसे बातचीत करनेमें किसी भी पढ़े-लिखे विद्वानको आनन्द आ सकता है बशर्ते कि वह चायका काफी बन्दोबस्त पहलेसे कर रखे।

हज़ारीबाग़के बाबू बजरंगसहाय बड़े मेधावी सज्जन हैं। उनकी स्मरण-शक्ति ऐसी तीव्र है कि जो बात वे पढ़ लेते थे उसे अक्षरशः मुँह ज़बानी दोहरा देते थे। वे जेलमें हम लोगोंके चलते-फिरते, बोलते-चालते, सजीव समाचारपत्र थे। वे हर समय नई खबरकी खोजमें रहा करते थे। जहाँ उन्होंने कोई नई खबर सुनी या पढ़ी, बस फ़ौरन ही वह उन्हें कंठाग्र हो गई और वे समाचार-वितरणके निःस्वार्थ मिशनपर निकल पड़े। उन्हें देखते ही लोगोंके चेहरोंपर प्रश्नवाचक चिह्न अंकित हो जाता था—'क्या नई खबर ?'

हम लोगोंने जेलके भीतर अनेक उत्सव भी मनाये थे। सब राष्ट्रीय त्यौहार, जैसे जलियांवाला दिवस, महात्माजीका जन्मदिन, स्वतन्त्रता-दिवस आदिके अतिरिक्त जन्माष्टमी, दशहरा और दीपावलीके उत्सव भी मनाये गये थे।

जन्माष्टमीके उत्सवका नेतृत्व पटनाके बाबू जगतनारायण लालने किया था, जो बिलकुल उपयुक्त भी था, क्योंकि बिहारमें वे ही हिन्दू-महासभाके धनी-धोरी समझे जाते हैं। बाबू जगतनारायण लाल बड़े उत्साही व्यक्ति हैं। कांग्रेसके सदस्योंके कौन्सिल त्याग देनेपर भी उन्होंने कौन्सिलसे इस्तीफा नहीं दिया था। बादमें हवाका रुख देखकर उन्होंने इस्तीफा दे दिया और संग्राममें सम्मिलित होकर दो बार जेल-यात्रा की। पहली बार जेल आनेके कुछ ही दिन पूर्व आपने विवाह किया था और जेल जानेपर अपनी बालिका पत्नीको पटना ज़िलेका डिक्टेटर नियुक्त किया था। जेलमें उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ करने और नई स्कीमें बनानेमें व्यतीत होता था। जेलमें उन्होंने अर्थशास्त्रपर एक पुस्तक भी लिखी है, जिसकी उपयोगिताकी जांच, प्रकाशित होनेपर अर्थशास्त्रज्ञ करेंगे।

मुज़फ्फ़रपुरके बाबू मथुराप्रसाद सिंह 'कारागार' के कार्यमें मेरे सहायक थे। वे 'कारागार'की प्रति एक पाठकसे लेकर दूसरेको पहुँचाया करते थे। साथ ही लोगोंसे तकाज़ा करके लेख लिखानेका कठिन काम भी उन्होंने ले रखा था। इस काममें बहुत अधिक धैर्य और तत्परताकी आवश्यकता थी, परन्तु मथुराप्रसादजीमें ये गुण पूर्ण मात्रामें मौजूद हैं। वे लेख वसूलनेमें काबुली सूदखोरोंके धैर्यका मुक़ाबला करते थे।

गिद्धौर राजवंशके कुमार कालिकाप्रसाद सिंहका व्यक्तित्व एक आकर्षक व्यक्तित्व है। वे स्वतन्त्र प्रकृतिके हैं, अतः उनके जीवनमें किसी प्रकारका नियमित कार्यक्रम न था। जब जो मनमें आता, करते थे। हाँ, उनके इस नियमविहीन जीवनमें केवल एक बात नित्त नैमित्तक ढंगसे हुआ करती थी, वह था उनका पूजा-पाठ, जिसमें उनका बहुत काफ़ी समय व्यतीत हुआ करता था। उनमें वक्तृता देनेकी और चित्र खींचनेकी अच्छी प्रतिभा है। वे 'कारागार' पत्रके आर्टिस्ट थे। उन्होंने उसे सुसज्जित करनेके लिए अनेकों तसवीरें बनाई थीं।

चम्पारनके तकली प्रेमी बैरिस्टर श्री विपिनविहारी वर्माने जेलमें सबसे अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण भार ले रखा था। वे हम लोगोंके 'पीस मेकर' (शान्ति-स्थापक) थे। जब कभी किसीसे भी जेल-अधिकारियोंसे, तकरार हो जाती थी

तभी वे बेचारे बीचमें पड़कर अपनी नम्रता और विनयसे दोनों पक्षोंमें शान्ति स्थापित करते थे। उनकी विनम्रता और विनयशीलताको कोई कोई उनकी कमज़ोरी समझते थे, परन्तु वे लोगोंकी सम्मतिपर ध्यान न देकर अपना प्रशंसनीय काम किया करते थे। वे बड़े सीधे-सादे स्वभावके हैं।

हज़ारीबाग़ ज़िलेके कार्यकर्ता श्री रामनारायण सिंहको जेलमें सबसे अधिक कष्ट हुआ। एक तो जिस समय वे जेलमें थे, उसी समय उनके परिवारमें कई मृत्यु हो गईं, दूसरे जेलके अधिकारियोंके साथ उनका सदा लड़ाई-झगड़ा चला करता था। इस झगड़ेके विषयमें दोनों ही ओरसे बहुत कुछ कहा जा सकता है, परन्तु श्री रामनारायणजीमें कैसी दृढ़ता है, इसका परिचय अच्छी तरह मिल गया। जेलकी सब सज़ाओंको भुगतकर भी वे अपनी बातपर डटे रहे। उन्हें इस बातका बड़ा दु:ख था कि वे बिहारमें क्यों पैदा हुए, उन्हें पंजाबमें पैदा होना चाहिये था। खैर वे हलुआ खा-खा कर अपने इस दु:खको कुछ हलका कर लिया करते थे। वे कभी-कभी चर्खा काता करते थे। उन्हें एक गिलास पानी पीनेमें पन्द्रह मिनट लगता था और भोजन करते समय घड़ी सामने रखकर एक घंटे तक भोजन करते थे। रामनारायणजी योगसाधन भी करते थे। वे एक विशेष आसनमें बड़ी देर तक मुर्देकी भांति पड़े रहा करते थे। शायद इस योगाभ्याससे ही उनका शरीर काफ़ी स्वस्थ हो गया था।

बाबू धरणीधर दरभंगाके पुराने कार्यकर्ता हैं। वे बड़े निर्भीक और स्पष्टवक्ता हैं। किसी प्रकारका संकोच किये बिना वे खरी बात मुँहपर कह देते हैं। यद्यपि वे आशुतोष हैं और सिर्फ 'डोमीनियन स्टेटस' से ही सन्तुष्ट होनेके लिए राज़ी भी हैं मगर फिर भी लार्ड इरविनका सब्जबाग़ उन्हें सन्तुष्ट न कर, सका और इसीलिए वे जेल भी आये।

'मुक्ति' पत्रके सम्पादक, पुरुलियाके बाबू निवारणचन्द्र गुप्त बड़े प्रतिभावान व्यक्ति हैं। सचाई, सीधेपन और साधु स्वभावमें वे राजेन्द्र बाबूके एक छोटे संस्करण हैं। उन्होंने देशके लिए अपना सर्वस्व दान कर दिया है। वे बड़े-भारी पंडित और गीताके बड़े ऊंचे विद्वान हैं। 'कारागार' के 'कृष्णाङ्क' में कृष्ण भगवानपर उनका लेख सर्वोत्तम था।

उड़ीसाके राजनैतिक कार्यकर्तागण भी हमारे साथ थे। उड़ीसाके नेता आचार्य हरिहरदासके समान साधु-स्वभावका दूसरा व्यक्ति खोजनेपर ही मिलेगा। उनके विषयमें इतना ही कहा जा सकता है कि वे देव प्रकृतिके व्यक्ति हैं।

श्री गोपबन्धु चौधरी बड़े सरल स्वभावके सज्जन हैं। वे चर्खा काता करते थे। उनकी मितव्ययता गांधीजीसे भी एक नम्बर अधिक है, क्योंकि महात्माजी एक छोटी धोती पहनते और एक कपड़ा ओढ़ते हैं, इस प्रकार उन्हें दो कपड़ोंकी ज़रूरत होती है, परन्तु गोपबन्धु बाबू केवल एक ही कपड़ेमें काम चला लेते हैं। वे सदा आधी धोती पहने, आधी धोती ओढ़े नज़र आते थे। वे सज्जनताकी मूर्ति हैं, इस कथनमें अधिक अतिशयोक्ति नहीं है।

श्री नीलकंठदास इन सबसे भिन्न प्रकारके सज्जन हैं। वे लेजिस्लेटिव असेम्बलीके मेम्बर थे। उनके आनेपर हम लोगोंको तथा जेल-अधिकारियोंको मालूम हुआ—और भली भांति मालूम हुआ—कि वे असेम्बलीके सदस्य थे। इतना ही नहीं, बल्कि हम सबको इस बातका भी ज्ञान हुआ कि सरकार उनको दिल्ली और शिमला आने-जानेका डबल फर्स्ट क्लास भाड़ा और २०) रोज़ देती थी और वे ताज और सेवाय होटलोंमें ठहरा करते थे! मालूम नहीं कि सरकार अन्य सदस्योंको भी इतना देती है या नहीं, मगर यह बात हम सबको अच्छी तरह मालूम हो गई कि उन्हें सरकार अवश्य देती थी।

दरभंगाके बाबू सत्यनारायण सिंहके हम सब—हज़ारीबाग़ जेलके राजनैतिक क़ैदी मात्र—आभारी हैं। वे हम सबकी अन्नपूर्णा थे, क्योंकि उन बेचारेने 'मन्सा'का भार अपने ऊपर ले रखा था। आप कहेंगे कि यह 'मंसा' क्या बला होती है? जेलकी शिष्ट भाषामें मंसा रसोईघरको कहते हैं।

सत्यनारायणजी ही सबके खाने-पीनेकी खोज-खबर रखते थे। इतने अधिक आदमियोंके खान-पानकी व्यवस्था करना, हर एकके तकलीफ आरामका खयाल रखना बड़ा कठिन काम है। कभी कभी लोग उन्हें तंग भी करते थे और उन्हें परेशान भी होना पड़ता था, फिर भी वे धैर्य सन्तोष और स्नेहसे अपना काम करते रहते थे।

हमारे साथमें दो मुसलमान नेता श्रीयुत जुबेर और श्रीयुत ज़हूर भागलपुरी भी थे। पहले दिन हिन्दुओंने कुछ जाति-पाँतिका झगड़ा लगाया और ज़हूर साहबको अलग बिठाकर खिलाया। मुझे यह बुरा मालूम हुआ और मैंने उन्हें निमन्त्रित करके अपने साथ भोजन कराया। दो एक दिनके बाद हिन्दुओंकी झिझक जाती रही और सब एक साथ बैठकर भोजन करने लगे।

हज़ारीबाग़की महिला कार्यकर्त्री श्रीमती सरस्वती देवी और श्रीमती मीरादेवी भी दंडित होकर हज़ारीबाग़ जेलमें रखी गई थीं, वे स्त्रियोंके वार्डमें थीं, जो हम लोगोंके वार्डसे एक दीवारके द्वारा पृथक कर दिया गया था।

सरकारी दमन-चक्र कितनी क्रूरतासे चलाया गया था, इसका आभास इस बातसे मिल जाता है कि कई एक कच्ची उम्रके लड़के भी—आठ-आठ दस-दस वर्षके—शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यको मिटा देनेके अपराधमें हज़ारीबाग़ जेलमें भेजे गये थे!

हमारे जेलके साथियोंमें कुछ नवयुवक स्वतन्त्र विचारोंके भी थे। उन्हें अपने विचार-स्वातन्त्र्यका गर्व भी था, मगर शायद उनकी डिक्शनरीमें 'विचार स्वातन्त्र्य' का मुख्य अर्थ महात्मा गांधी और राजेन्द्र बाबू आदि नेताओंके कथनका प्रतिवाद करना मात्र था, प्रतिवादका चाहे कोई युक्तिसंगत कारण हो या नहीं!

जेलमें लोगोंको अपने आध्यात्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य सुधारनेकी काफ़ी चिन्ता मालूम होती थी। आध्यात्मिक स्वास्थ्यके लिए गीताका आश्रय लिया जाता था। जिसे देखिये, वही भगवद्गीताकी एक प्रति दबाये हुए दिखाई पड़ता था। शारीरिक स्वास्थ्यके लिए हलुवा और मुर्ग़ीके अंडे थे। लोगोंका मानसिक स्वास्थ्य कितना दुरुस्त हुआ, इसका तो कुछ ठीक-ठीक पता नहीं है, हाँ, शारीरिक स्वास्थ्यके सम्बन्धमें यह निश्चित-रूपसे कहा जा सकता है कि हज़ारीबाग़में बेचारे कुक्कुट-वंशके समाप्त होनेमें अधिक कसर बाक़ी नहीं थी।

जेलमें कवि-सम्मेलन भी धूमधामसे हुआ करते थे। पहले तो इन सम्मेलनोंकी काफ़ी धूम रही, मगर बादमें यह उत्साह कुछ मन्द पड़ गया था। श्री बुद्धिनाथ झा 'कैरव' और श्री जोगेश्वरप्रसाद 'खलिश' की कविताएँ बड़ी सुन्दर होती थीं।

दीपावलीका उत्सव हम लोगोंने ऋषि दयानन्दके स्मारकमें मनाया था।

होलीका त्योहार जिस धूमधामसे हज़ारीबाग़ जेलमें मनाया गया था, उसे भूलना असम्भव है। वसन्त ऋतु, फागुनका महीना और होलीका त्यौहार—यह बातें ही भारतीयोंके हृदयमें उल्लास भरनेके लिए बहुत काफ़ी हैं। होलीके दिनोंमें यों भी मुर्दा-मनहूस सूरतोंपर हँसीकी रेखा आ जाती है, परन्तु इस बार जेलमें होलीके साथ-साथ गांधी-इर्विन समझौतेका भी समाचार आया। शीघ्र ही सबके छूट जानेकी आशा आँखोंके सामने नाचने लगी। फिर भला हम सबके उल्लासका क्या ठिकाना! जेलके भीतर सारी ज़मीन लाल हो गई। कैदी, वार्डर और अधिकारीवर्ग ही नहीं, बल्कि यूरोपियन बन्दियोंके मुँह भी अबीर और गुलालसे लाल हो गये!

सन्धिकी खबर आ चुकनेपर सबको एक-एक दिन काटना मुहाल हो गया। एक-एक मिनट लोगोंको एक एक घंटेके समान मालूम होता था। इतने ही में १७ मार्चको मैं, १२ दिन कम साल-भरकी कैद भुगतनेके बाद छोड़ दिया गया।

हिन्दीका प्रथम समाचारपत्र

श्री ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जी

'विशाल-भारत' के पिछले अंकमें हिन्दीके सर्व-प्रथम समाचारपत्र 'उदन्त मार्तण्ड'के कुछ उद्धरण प्रकाशित किये गये थे। यहाँपर मैं और भी कुछ मनोरंजक उद्धरण प्रकाशित करता हूँ।

आजकल हमारे देशमें लगभग ६०,००,००,०००) का विलायती कपड़ा आता है। आजकल हम लोगोंको अपनी शारीरिक लज्जाको भी निवारण करनेके लिए विदेशियोंके आगे हाथ फैलाना पड़ता है, मगर क्या भारतवर्ष सदासे वस्त्रके लिए दूसरोंका आश्रित रहा है? एक सौ पन्द्रह वर्ष पहले विलायती कपड़ेकी कितनी खपत भारतवर्षमें थी, इसका हाल 'उदन्त मार्तण्ड' के तारीख ५ सितम्बरके अंकमें इस प्रकार दिया है—

बिलायती कपड़ा

"इस देश में विलायती कपड़ों की आमदनी किस तरहसे साल-साल बढ़ती गई वह नीचे के लिखे ब्योरे के देखने से ही समझ पड़ेगा॥

"सन १८१५ में एक लाख उनचास हजार अरसठ रुपयेका ओ १८१६ में एक लाख तिरसठ हज़ार छ सै पदरह रुपए का ओ सन १८१७ में चार लाख तेइस हज़ार आठ सौ चौंतिस रुपयेका ओ सन १८१८ में सात लाख एक हजार पांच सै बिरानवे रुपए का ओ १८१९ में चार लाख छेआसठ हजार सोलह रुपए ओ सन १८२० में आठ लाख तिरसठ हजार छ सै एकतिस रुपये का ओ सन १८२१ में ग्यारह लाख छत्तीस हजार चौहत्तर रुपए का ओ सन १८२२ में ग्यारह लाख सतसठ हज़ार दो सौ छियालीस रुपए का ओ सन १८२३ में ग्यारह लाख इक्यासी हजार छ सै एकहत्तर रुपए का ओ सन १८२४ में ग्यारह लाख अड़तीस हजार एक सै छैयासठ रुपयेका माल आया और अब सूते की भी आमदनी इससे बढ़के होगी॥"

ज़रा सोचिये कि कहाँ डेढ़ लाख रुपयये सालका कपड़ा और कहाँ साठ करोड़ रुपये वार्षिकका! एक सौ पन्द्रह वर्षमें ४,००,००,००) प्रति सैकड़ाकी वृद्धि!! जब राजसत्ताके साथ साथ व्यापारिक दोहनकी नीति काममें लाई जाती है, तब उसका परिणाम कितना भयंकर होता है।

हम लोगोंको जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उसमें अंग्रेज़ी फ़ौज द्वारा की हुई लूट-मारका कहीं ज़िक्र भी नहीं मिलता। कारण यह है कि अधिकांश इतिहासोंमें अंग्रेजी शासनकी काली दिशाओंको छिपानेका पूरा प्रयत्न किया गया है। पिण्डारोंकी लड़ाईकी लूटकी खबर 'उदन्त मार्तण्ड' के १७ अक्टूबर सन १८२६ के अंकमें इस प्रकार दी हुई है—

लूट की छूट

"अंगरेज़ी १८१७ साल में पिण्डारों की लड़ाई की लूटका १,००,००,०००) एक करोड़ की अटकलका होगा हाथ आया था सो मंदराज ओ बबई ओ बंगाले ओ हिन्दुस्तान की पल्टनोंके सिपाहोंको जिस पत्ती के लेखे बंटेगे उसका बेवेरवार चिट्ठा इंगलेण्ड के बादशाह के साक्षात कौनूंसल में निरूप के उतरा है और उसकी प्रति पिछले २२ सिपटेंबर के गवर्नमेंट गेजेटमें प्रकाश पाई है अब कुछ दिनों में वह पत्ती बंटेगी इसके पहिले फिर समाचार बटने के दिन निरूपे जाने का समाचार दिया जायगा जो किसी का नाम भूल से उस चिट्ठे में न चढ़ा हो वे इसी समय दरखास्त करने से ही उस विषय के विचार पूर्वक उनका नाम अब भी चढ़ जा सकेगा।"

सन् १८२६ में गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्टने उत्तर भारतकी एक लम्बी यात्रा की थी। उस समय रेल तो थी नहीं,

अच्छी सड़कें भी न थीं। आमद-रफ्तका एक सर्व प्रधान मार्ग था पतित पावनी गंगाकी धारा। अधिकांश यात्री तथा व्यापारी गंगाजीसे ही नावों द्वारा आते-जाते और माल भेजते थे। लार्ड एमहर्स्टने भी इसी जल मार्ग द्वारा यात्राकी थी। वे सोमवार तारीख ३१ जुलाई सन् १८२६ को प्रातःकाल कलकत्तेसे रवाना हुए। साथमें लेडी एमहर्स्ट, उनकी पुत्री, मुसाहब और संगी-साथी थे। लार्ड एमहर्स्टके साथ तीन सौ नावें गई थीं। इस यात्रामें उन्हें एक वर्ष सवा दो महीने लगे थे। वे १० अक्टूबर सन् १८२७ को लौटकर कलकत्ते पहुँचे थे। 'उदन्त मार्त्तण्ड' में उनकी यात्रा, दरबार और लोगोंसे मिलने जुलनेकी खबरें बराबर छपा करती थीं। अवधके बादशाहसे उनकी भेंट किस ठाट-बाटसे हुई, उसका वर्णन सुनने योग्य है। २८ नवम्बर सन् १८२६ के 'उदन्त-मार्त्तण्ड' में लखनऊमें लाट साहबकी खातिरदारीकी तैयारियोंका वर्णन है :—

"लखनौमें गवरनर बहादुर की स्वागत के लिए कानपुर तक अवध बिहारी बादशाह आप ही यात्रा करेंगे इसके पहिले से प्रति दिन सोने चांदी की पादार्थों और पालकी और हौदे झालरदार और सुनहरे चित्रकार और पशमीने की बिदरीकी बिर्दारियाँ और उत्तम उत्तम कपड़ों की गठरियाँ लोग दिखला भला रहे हैं और बादशाही शागिर्द पेशोंकी उरदियों को सजनेके लिए काम काजियों को हुकुम हुआ औ हाफिज अली खाँको चार पारचे की खिलअत हुई औ चांदी औ लकड़ी के अमारी औ हौदे औ गद्दी के हाथी और झालरदार पालकी औ अच्छे घोड़ों समेत और हाजरी के असबाबके साथ मीर अली दारोगे स्वाधीन जो उस दारोगे ने भी जड़ावर पाया और वह हाजरी बनानेवालों का दारोगा है ए सब नवाब गवरनर बहादुर के वहाँ भेजे गए और मौलवी खलीलुद्दीन खाँ सुलतानी वकील लार्ड साहिब की सैन्य से बादशाह के समीप नवाब मातमुद्दौला के उपलक्षसे पहुँच चौदह पारचे की खिलअत पाई और कुछ ही दिन में लार्ड साहब की लशकर को आने का हुकुम पाया और २० रवीं अलौवल को खबर लगी कि कानपुर को डेरा भेजा गया हुकुम हुआ कि कानपुर के नीचेकी गंगाके इस पार बादशाही डेरा पड़े औ बादशाही डेरे के एक मनजिल उधर और डेरे पड़ें और रिसालेदारों को परवानगी हुई कि अपने अपने सवारोंको साथ लिए एकट्ठे करो।"

१२ दिसम्बरके 'उदन्त मार्त्तण्ड'में भेंटका हाल इस प्रकार दिया है—

"१६ नवम्बरको अवध बिहारी बादशाह के आवने की तोपें छूटीं उस दिन तीसरे पहर को र्श्टलिंग साहिब औ हेल साहिब औ मेजर फिण्डल साहिब औ रेविनशा साहिब लार्ड साहिबकी ओरसे अवध बिहारी की छावनी में जाकर के बड़े साहिबका सलाम कहा और मोर होके लार्ड साहिब के साथ हाजिरी करने का नेवता किया।

"फिर अवध बिहारी बादशाह के जाने के लिए कानपुर के तले गंगा में नावों की पुल बंदी हुई और बादशाह बड़े ठाट से गंगा पार हो गवरनर जेनेरल बहादुर के सन्निध गए। लार्ड आमहर्सट जब कानपुर पहुँचे थे उस समय जैसे सिपाहों का दोहरा परा बंधा था वैसे ही बादशाह के कानपुर जाने में भी परा बंधा था। बादशाह जब पुरमें पैठे तब लार्ड आमहर्सट अपने आमात्यों को ले करके हाथी की सवारी पर आयट साहिब की कोठीसे थोड़ी दूर आगे बढ़ रहे थे औ साथ के तुर्क सवार चारो ओर से परा बांधे हुए खड़े थे। इस उपरांत बादशाह एक तख्त् खांकी सवारी पर उतर ऊपर ही से ऊपर बड़े साहिब के हाथी पर हो बैठे औ बड़े साहब से मिला भेंटी हुई फिर वार्तालाप होते आयट साहिबकी कोठीको गए लखनौ बादशाहके साथ नवाब मोहसन दौला और उनके सोलह आदमी मुसाहिब साथ थे। लार्ड साहिब ने उस दिन वहां के सब काम वाले आपलटनिए साहिबों को हाजरी का नेवता दिया था और ८१ आदमियों ने एक मेजमें बैठके भोजन किया। भोजन हुए उपरांत बादशाह को बढ़िया कपड़े औ दोशाले और भांत भांतके आभरण औ रत्न करके खचित औ जटित एक्यावन थार आगे धरा औ उनके पोते के बीस थार और सब भाइयों को बीस बीस

बीस थार के लेखे दिया गया। फिर लार्ड साहिब उठ आके बादशाह की उंगली में बड़े मोल की एक अंगूठी पहिना दी और सब मुसाहिबों को भी यथा योग पारितोषिक दिया। फिर अतर ओ पान के सन्मान हुए पर बादशाह अपनी छावनीको लौट आए।

"उसके सवेरे होके बादशाह के मुसाहिब लोग भी लार्ड साहिब की कोठीमें जा करके बादशाह का सलाम कह बादशाह की छावनी में हाजरी करने का नेवता दिया। तिसपर बड़े साहिब आप घोड़े पर सवार हो और बड़े साहिब के समीपी सब साहिबान अपने अपने हुद्दों के आभूषणों करके भूषित हो हो पचास हाथियों पर चढ़चढ़ दल बांधे हुए चले और ८१ पलटन के सब सवार वा एक हजार सवार और बड़े साहिबके तैनाती सवार अपने अपने मेलकी मिमिल बांध के बड़े ठाट से ठट् ठट् के चले। जब लार्ड साहिब गंगा पार गए उस समय बादशाहने गवरनर बहादुरको अपने हाथीके हौदेपर चढ़ा लिया इस समय की शोभा एक तो बादशाही हाथी के सोनहरे हौदे की झलक और सब साहिबों के आभूषणों की दमक ओ हजार सवारों की कुर्तियां ओ हथियारों की चमक और सभों की एक मद गति और दोनो ओर तोपों की ध्वनि इस कौतुक को देख कर के किस की टकटकी न लगी ओ अपनी गति न भूली ओ चिंतामणि की सुध न आई होगी। पहिले लार्ड साहिब को मुलतानी बानात के डेरे में ले गए वहाँ तीन मुख्यासन बिछे थे उस तीनो में से बिचले आसन में गवरनर जेनरेल बैठे ओ दाहिने बादशाह ओ बांए बामांगी लेडी आमहर्सट साहिबा बैठीं। थोड़ी सी देर में उस डेरे के एक ओरका पर्दा उठाया गया ओ देखने में आया कि दूसरे एक बिचित्र डेरे में एक मेज सौ साहिबों की पंगत बैठने योग लगी है। इस पीछे सभी जुड़ मिल के रिल पिल के भोजन करके लार्ड साहिब गमनोन्मुख हुए उस समय एक्यावन थार बड़े मोलों की पदार्थ उनको और उनके मुसाहिबों को भी यथा योग सौगात दी।"

१६ दिसम्बर सन् १८२६ के उदन्त-मार्तण्डमें लार्ड एमहर्स्टके लखनऊ जानेका सविस्तर हाल दिया हुआ है :—

"...... सवेरे साढे सात घण्टा बजे गवरनर बहादुर अपनी छावनी मे बड़ी तैयारी करके चले ओ नगर लखनौ की सीमा में पहुँचे उस समय बादशाह आप आ करके बड़े साहिब के ले चले। बादशाह के साथ हाथी घोड़े ऊंट ओ सवार पियादे अनगिने आए और जब दोनोंका सामना हुआ तो अपनी अपनी मर्यादा का सन्मान करके लार्ड साहिब बादशाह के हाथी पर हो बैठे ओ इसी प्रकार परा बांधे हुए पुर में पैठे आगे आगे बादशाही हाथी तिस पर सुलतानी पताका ओ नौबत झड़ती हुई उसके पीछे बहुत से कोतल घोड़े तिस पीछे सवारोंका परा उस से परे लार्ड साहिबी ओ सुलतानी सवारी। तिसके पीछे बड़े साहिब के तैनाती सवार उस उपरान्त बादशाही सवार जिनकी उरदी ओ साज अंगरेजी बादशाही पलटन की सी थी उसके पीछे सवारी के हाथी ओ एक दल सवारोंका और सांड़िनी चलियां। जिस समय ए सब नगर में पैठे उतने समय देखने में आया कि राज मार्ग में दोनो ओर छोटी छोटी हवेलियों के बारजों पर मुसज्जर ओ कमखाब ओ ताश बादले के कामों के सोनहले ओ रुपहले ओ कारचोबियों के काम के कपड़े लोगों ने लटकाए थे और लखनौ शहर भीतर जितनी दुकानां जिस जिस पदार्थ की थीं उस समय सामग्री से सुची हुई उसकी शोभा देखते ही से बन आवती है। और जैंव जैंव सवारी शहरमें धँसी तैंव तैंव ठौर ठौर नाच रंग भी देखने में आए।

"फिर जब वे आसफुद्दौला के महल के पास होके निकले उस समय बादशाह की जेठी बहिन की ड्वढ़ी की तैनाती फौज आ करके सलामी की। फिर वे सब गोमती के तीर पहुँचे वहाँ देखा तो राह में दोनों ओर सिपाह दल बांधे खड़े हैं उस के बीच से सवारी चली जब सवारी फरीदबखश सुलतानी कोठी के पास पहुंची वहाँ पर बहुत सी तोपें दगियां और उन लोगों ने उसी कोठी में जा करके हाजरी खाई हाजरी हो चुके पीछे बड़े साहिब और उनकी मनोरमा के आगे

कई थार अच्छी पदार्थोंके धरे और बादशाह ने लार्ड साहिबको हीरे मोतियों और जवाहिरों मे जटित अपनी एक छोटी सी तसवीर दी और लेडी आमहर्सट को एक मसनद दी तिस उपरान्त वहां के अंगरेजी बसीठ रिकेट साहिब की कोठी में गए भो जब तक गवरनर जेनरेल बहादुर लखनौ में रहेंगे तब तक उसी कोठी में रहेंगे।

''उसके दूसरे दिन सवेरे छर्लिंग साहिब भो हेल साहिब भो कप्तान पियर्सन साहिब लार्ड साहिब की ओर से जा करके बादशाह को बड़े साहिब के समीप लाए और वे मिल करके रिकेट साहिब की कोठी में हाजरी खाई।

''१ डिसेबर को तीसरे पहर चार घण्टा बजे लार्ड साहिब भो लेडी साहिबा भो उनके अनुगामियों ने उसी फरीदबख्श की कोठी में खाना खाया और उस दिन रात को उस कोठी में ऐसी रौशनी हुई कि बर्णन नहीं कर सकते भो उनके आवती बेर राह में दोनो ओर भी भांत भांत की रौशनियां देखने में आई भो उसके दूसरे दिन बादशाह ने भी रिकेट साहिबकी कोठी में जा करके लार्ड साहिब के साथ खाना खाया।

''३ डिसेंबर को बड़े साहिब ने वहां एक दरबार किया उस दरबार में वहां के बहुत बहुत बड़े बड़े आदमियों ने खिलअतें पाईं।''

'उदन्त-मार्त्तण्ड'के अगले अङ्कमें लखनऊमें लार्ड एमहर्स्टकी खातिरदारीका सविस्तर वर्णन दिया है।

लंकामें दालचीनी बहुत अच्छी पैदा होती थी। जावाकी दालचीनी लंकाकी अपेक्षा बहुत घटिया होती थी। जावावाले लंकाकी तरह बढ़िया मेलकी दालचीनी अपने यहां पैदा करना चाहते थे; परन्तु लंकावालोंने अपने देशसे दालचीनीके पौधोंका बाहर जाना वर्जित कर रखा था। मगर गोरे व्यापारी भला इस बातसे कब रुक सकते थे। *उन्होंने बेईमानीसे दालचीनीके ३००० पौधे लंकासे (Smuggle करके) मँगा लिये। इस चोरीकी खबर ११ जुलाई सन् १८२८ के 'उदन्त-मार्तण्ड'में इस प्रकार है :—*

दालचिनीके पौधे ॥

''जावा की चिट्ठी से समझ पड़ा कि पिछले फरवरी महीने में वहाँ छोटा एक जहाज पर लंकासे तीन हज़ार दालचिनी का पौधा लाया गया है। और वहाँ के बड़े साहिब की इच्छा है कि जैसी सरस दाल चीनी लंका में होती है वैसही जावा में होय। उस दाल चिनी का पेड़ लंका से बाहिर निकालने का हुकुम नहीं है इस लिए वे सब इस प्रकार से उन पौधों को वहाँ से उड़ाय लाए हैं कि पांइट डिगाल के नाम की जगह में वही छोटा जहाज लगाय के परमिट के सामने से और पेड़ों क पौधा दिन को उस जहाज़ पर लाए फिर रात के समय छोटी नावों पर दालचिनी के पौधे छिपा करके उस जहाज़ में लाए करके पिछले पौधों को फेंक इन पौधों को सन्दूकों की मिट्टी में जमा जावा को ले आये।''

'उदन्त मार्त्तण्ड' के अनेकों अंकोंमें ''श्री बुद्धि प्रकाश रामायण रामाश्वमेध'' का विज्ञापन निकला करता था। इस बुद्धिप्रकाश रामायण के रचयिता खियालीराम सुकुल थे। यह मार्त्तण्ड प्रेसमें छपनेवाली थी। मालूम नहीं कि यह फिर छपी या नहीं। विज्ञापन इस प्रकार था :—

श्री बुद्धिप्रकाश रामायण अश्वमेध ॥

''इस ग्रन्थ का आज तक किसी ने भाषा न किया था, सो अब अन्तर्वेद के रहने हारे कान्यकुब्ज जातीय खियालीराम सुकुल ने संस्कृत मूलसे श्री गोसाईं तुलसीदासजी की बानी के अनुसार दोहा चौपाई ललित चोटक छप्पै कुंडलिया कबित्त भूलना सोरठा छन्दों की रीत से आद्योपान्त भाषा वर्षों के परिश्रम में किया है सो मार्त्तण्ड छापखाने में यह पोथी छापी जायगी पोथी ब्रज बिलास की इतनी होयगी चाहिए कुछ बड़ी होय पर उतने में तो कुछ सन्देह नहीं है।

''जो सज्जन इस पोथी को—लेने की इच्छा करें वे *उसी छापा घर में लिख भेजें वा बन्द पर सही कर दें पोथी छप चुकने ही से उनको पहुँचेगी इस पोथी का दाम*

रुपया १०) दश लगेगा पोथी लेके दाम देना होगा अबके सही न करनेवाले रुपए १५ पन्दरह को भी वह पोथी चाहिये न पावें। जो पोथी देखा चाहे तो उस छापेखाने में आनके देख जावें।''

७ नवम्बर सन १८२६ के अंकमें सांपके विषकी औषधि लिखी हुई है। मालूम नहीं कि यह औषधि कहाँ तक उपयोगी है।

सर्प दंशन विष उतारनेकी ओषधि

''सभों के उपकार के निमित किसी एक दयावान ने इण्डिया गेजेट नाम के अंगरेजी अखबार में सांप काटने के विष उतारने की औषद छपवा दी है और इतनी उनकी प्रार्थना है कि इसका उल्था और भाषों में होके सब जगह फैल जाय ओ बड़े बड़े आदमी अपनी जमींदारी ओ तालुकों पर छोटे बड़े सब को जनाय देवे इस लिए हम लोगों ने इस का उल्था कर सब के हितार्थ प्रकाश किया॥

''दो मौताद नौसादर ओ उसकी चौथी मौताद भर गरम पानी में घोल के एक कांच के बरतन में भरके उस में एक मौताद भर चूना मिलाके उस बरतन में ढट्ठी लगा देवे और पंदरह अथवा बीस अंगरेज़ी मिनट वा पलमें उस भांडे को भले फिर धर देवे जब गाद बैठ जाय तब ऊपर २ का अलग एक दूसरे कांचके बरतन में ढाल लेवे ओ तलछट निकाल के पिछले बरतन मे ढट्ठी देके धर रक्खे जब किसी को सांप डसे उस समय वह दो चमची वा बारह आना भर लेके छोटी एक कटोरी में पानी मिला के रोगी को पिलावे उसके कुछ एक रहके फिर तीन चमची व अठारह आना भर उसी प्रकार पानी में मिलाके रोगी को पिला देवे जो उस रोगी को लहर आवने लगे तो फिर वही तीन चमची भर थोड़े से पानी में मिला देवे पर वह रोगी जैसा चंगा होता जाय वैसे वैसे औषद की भी मौताद घटाके देता जावे। एशिएटिक मिरूस ५ नवेम्बर।''

सन् १८२७ में भारतवर्षमें नया स्टाम्प ऐक्ट जारी हुआ था। इस एक्टके सम्बन्धमें 'उदन्त मार्तण्ड'में पचीसों पृष्ठ रंगे हुए हैं। स्टाम्प ऐक्टकी विभिन्न धाराओंका विस्तृत अनुवाद, उनके अर्थ, जनताका उसके विरुद्ध प्रतिवाद, उसे रद करनेकी दरख्वास्त, लन्दनकी पार्लमेंटमें स्टाम्प ऐक्टके विरुद्ध प्रार्थनापत्र भेजनेकी सलाह आदि बातोंका वर्णन मार्तण्डके अनेकों अंकोंमें मिलता है।

सन १८२७ के आरम्भिक महीनोंमें कलकत्तेमें अनेकों फार्मोंका दिवाला निकला था, जिससे बाजारमें तहलका सा मच गया था। इत्तिफाक़से दिवाला निकालने वालोंमें बहुत बड़ी संख्या बंगाली व्यापारियोंकी थी। अतः देशवाली और मारवाड़ी व्यापारियोंने आपसमें मिलकर बंगालियोंका व्यवहार उठा दिया। इसपर 'रसिकारसया पोद्दार'के नाम से किसी काल्पनिक अथवा वास्तविक व्यक्तिने बंगलाके 'समाचार चन्द्रिका' नामक समाचारपत्रमें देशी और मारवाड़ी व्यापारियोंके विरुद्ध एक चिट्ठी प्रकाशित कराई। उस चिट्ठीमें देशी और मारवाड़ी व्यापारियोंको बहुत कुछ बुरा भला कहा गया था। इसके उत्तरमें 'उदन्त मार्तण्ड' में दो-तीन चिट्ठियां प्रकाशित हुईं। उत्तरदाताओंने तमाचे का जवाब घूँसेसे और गालीका बदला गालीसे चुकाया। 'चन्द्रिका' का पत्र और 'मार्तण्ड' का उत्तर—दोनोंमें से किसीमें भी शिष्टताका नाम नहीं है। 'मार्त्तण्ड' ने उत्तरके पत्र छापकर निम्न-लिखित नोट लिखा :—

''इस पत्रके प्रकाशक का मत। चन्द्रिका प्रकाशक अगले दिनो सम्वाद कौमुदी सम्पादक से यहां तक रहस्य किया कि किसीको विशेष करके इंगलेण्डीय बहादुरों को बंगला खबर के कागज पढ़ने में अश्रद्धा हो गई और अपनी अपनी सज्जनता प्रचार पाई सो सुनाके में और हिन्दुस्तानी ओ बंगाली का सांकेतिक शास्त्रार्थ होना बहुत कठिन है काहे से कि कोई आम कहे तो दूसरा इमली समझता है इस हेतु २६४ संख्या के चंद्रिका में जो पिछला फारमा केवल इसी कुबोध से भरा गया है जो कोई कहे कि इसका परिणाम में तुमने क्या फल अटकला है तौ वह कहेंगे कि यह भी एक रस है बिभत्स

हुआ तो क्या। पर मार्त्तण्ड सम्पादक को यह सब निरर्थक समझ पड़ा और चद्रिका के लेख की जल्पना आकार्य ओ अन्याय और मत खण्डन मण्डन ओ स्थापन कुछ किसी के समझ में न आया। इससे जो आदमी के हाथ कहला भेजते तो हम ही लिख भेजते इतना काहे परिश्रम किया और अपने गुह्य छिद्रों को प्रचार कराया और किसी पण्डितको व्यर्थ पत्र प्रयोग की साधनिका की पुनरावृत्तिका कष्ट दिया सहज ही लोग जानते हैं कि यह काम बिना मुग्ध बोध पढ़े नहीं निभता तिस पर चंद्रिका कार की सहायता पर एक अच्छे पण्डित हैं उन के कुचोद्य करने में केवल मुँह की दरिद्रता है। लेखनी, पत्र ओ मस्याधार में से एक भी हाथ से छूना नहीं पड़ता जो सब एकट्ठे करके एक पद लिखना पड़ता तो इस कष्ट के कष्टित होते सो जो हो हमें अैसे इष्टलाप से चुपाई साधनी अच्छी है और यह हमरी विनय है कि फिर अैसी हास्य न करें। इस के उत्तर प्रत्युत्तर प्रकाश करने में हमें संकोच ओ खेद होता है। कलह की जिसे रुचि होय उस से अपनी खुजली मिटवावें।"

इसपर 'समाचार चन्द्रिका'के सम्पादकने 'उदन्त मार्त्तण्ड'के सम्पादकपर मानहानिकी नालिश कर दी। ५ अप्रिल सन् १८२७ को 'उदन्त मार्त्तण्ड' के सम्पादकको यह नोटिस मिला,—

To

JUGGUL KISSORE SOOKOOL

Editer and Proprietor of the Nagree News-Paper Called the Odunta Martunda.

I have been instructed by my client Baboo Bhowany Churn Bannerjee to institute proceedings against you in the Supreme Court of Indicature for the libellous matter contained in your paper the Odunta Martunda of the 27th March last affecting the character and reputation of my client.

I request you will inform me of the name of your Attorney that I may communicate with him accordingly.

Yours Obediently
R. W. Poe
Attorney at Law

Calcutta
5 th April 1827

॥ ऊपर की अंगरेजी चिट्ठी का उलथा ॥

उदन्त मार्त्तण्ड नामक नागरी अखबार के कर्त्ता ओ धनी युगलकिशोर सुकुल योग्य

हमारे मवक्किल भोवानी चरण बनरजी ने हमारे प्रति तुम्हारे गत २७ मार्च के उदन्त मार्त्तण्ड कागज में अपवाद विशिष्ट विषय रहने से हमारे मवक्किल के संभ्रम ओ शुयश में लाञ्छन लगता है इस कारण तुम पर सुप्रीम कोर्ट जुडिकेटिऊ की अदालत में मोकद्दमा करने का आदेश किया है।

हम विनय करते हैं कि तुम अपने वकील का नाम हमको जनाओगे कि हम उन्हीं से यथारीति व्यवहार रखें।

कलकत्ता
४ अप्रिल १८२७

तुम्हारे आज्ञावह
आर डबलिऊ पो साहिब
वकील सिरिश्ते के

इस मुक़दमेमें क्या हुआ, इस बातका कुछ पता 'उदन्त मार्त्तण्ड'के अगले अकोंमें नहीं लगता।

'उदन्त मार्त्तण्ड' प्रेस पहले कोल्हूटोलाकी आमड़ातला गलीमें था। वहाँसे उठकर वह बांसतला गलीके एक मकानमें चला गया और अन्तमें कबरडांगा थानेके पिछवाड़े ले जाया गया, और वहीं मार्त्तण्डका अस्त हुआ।

'उदन्त मार्त्तण्ड' में ग्राहकोंकी कमीका रोना अक्सर निकला करता था। सम्पादकने एक लेखमें यह कहा है कि शूद्र सेवा चाकरी आदि नीच काम करते हैं, उन्हें पढ़ाई-लिखाईसे मतलब नहीं। कायस्थ फारसी, उर्दू पढ़ा करते हैं और वैश्य मुंडे अक्षर सीखकर बही-खाता करते हैं, खत्री बजाजी आदि करते हैं, पढ़ते-लिखते नहीं, और ब्राह्मणोंने तो कलियुगी ब्राह्मण बनकर पठन-पाठनको तिलांजली दे रखी है, फिर हिन्दीका समाचारपत्र कौन पढ़े और खरीदे?

१२ जून सन् १८२७ के 'उदन्त मार्त्तण्ड' में प्रकाशित हुआ,—

"....इस कागज के निकलने के पहले समझते थे कि यह चीज़ अनूठी ईजाद करने में आवे तो चाहिये कि

अपना औ पराया दोनों के सुख का कारण होवेगा और चाहिये तो आगे पर सभी दुःख इस से विमुख हो जायगें। यही मन में ठान आज तक किसी आन बान से निबाहे जाते हैं। लेकिन इन दिनों शमसुल अखबार वाले का विलाप देख देख जिसे सुनते हैं सिरिफ अपनी कमाई का भरोसा न था क्यों कि उस कागज़ के जारी होने से मौकूफ होने की तारीख तक ऐसे गाहक उसके न थे कि उनके भरोसे छापेखाने के नौकरों के भी दरमाहे का खरच चलता हो साथ इसके चार पांच बरस तक किसी के आसरे पर काम चलता था और एक ही बेर निराश होते ही एक दिन भी कागज़ न ठहरा।

"सच है कि इन दिनों बंगला अखबारों में समाचार दर्पण और फारसी का जामि जहांनुमा ने सरकार की कटाक्षसे अंगरेजी अखबारों के पास पास अपने भागों को भिड़ाया है और निश्चय है कि जब तक लोगों को अपने भले बुरे का विवेक न होगा तब तक सरकारी बल बिना पाये अपने बाहु बल सब निरफल होंगे ऐसे मक़ाम में हम ऐसे अनाथ भी जो सनाथ हों तो निखटकते जैसे दर्पण में बहुतेरे बंगालियों अपनी मूर्खता की परछांही देख देख विद्या की स्वच्छता की ओ दिन दिन करते जाते हैं और जहान की कैफियत एक जाम में देख यावनी वेत्ता भी अपने गुण धाम तक पहुँचते जाते हैं वैसा ही जो मार्त्तण्ड पर भी सरकार की सहायता का प्रतिबिंब पड़ता तो निरे हिन्दुस्तानियों की दुर्बुद्धि की घटा मार्त्तण्ड को घेर लेने न पाती॥"

अन्तमें तारीख ४ दिसम्बर १८२७ को मार्त्तण्ड बन्द हो गया। उस दिन केवल मार्त्तण्डकी बन्दीका समाचार देनेके लिए एक परचा प्रकाशित हुआ था। उसमें लिखा था—

"उदन्त मार्त्तण्ड की यात्रा

आज दिवस लौं उग चुक्यौ, मार्त्तण्ड उदन्त।
अस्ताचल को जात है दिन कर दिन अब अन्त॥
चल्यौ सूर्य निज सदन युगल अपनौ कर खैंचौ।
अबहू के निर्मोह मेट आगे को चौ चौ॥
गुण रबि को परकाश कहो किम होय जड़नि मैंह।
जहां जड़नि को मान ग्लान है है बोही कैंह॥

जब ते या कलकत्ता नगरमें उदन्त मार्तण्ड को प्रकाश भयौ तब ले आज दिवस लौं काहू प्रकार तें ढाढ़स बांध विद्या के बीज बैबे को हिन्दुस्तानिअन के जड़ता के खेत को बहु विध जोत्यौ पहिले तो ऐसी कठोर भूमि काहे कौ जुते ताहू पै काया कष्ट कर जैसो तैसौ हर चलाय वा खेतमें गांठओ ब्यु बखेर बड़े यतन तें सींच फल लुन्यौ चाह्यौ ता समय लोभ रूपी टीडी परि वा खेत के फल फूल पाती सिगरी चरि गई अब जो फिरि फिरि या नशे क्षेत्र को गोड़िये तो श्रम ही कौ फल फलेगौ।

यहां मुरख को नाम ज्ञान चर्चा को बूझै।
हमी तु अपनी रोक जगत अन्धियारोहि सूझै॥
जड़ता जर नशि चल्यौ गात को होयगो पतझर।
काको है प्रतीत बहुरि चलि है सुत्र बेहर॥

प्रथमहि या काज कौ जा कारण कर्‌यौ ताको विस्तार सभनि को जनाव नौ उचित है तातें अब कछु मध्यदेशीय भाषा लिखुत हौं।

मध्य देशीय भाषा

इस उदन्त मार्तण्ड के नांव पड़ने के पहिले पछांहियों के चित्त को इस कागज के होने से हमारे मनोर्थ सफल होनेका बड़ा उत्साह था इसलिए लोग हमारे बिन कहे भी इस कागज की सही की बही पर सही करते गये पै हमें पूछिये तो इन की मायाबी दया से सरकार अंगरेज कम्पनी महा प्रतापी की कृपा कटाक्ष जैसे औरों पर वैसी पड़ जाने की बड़ी आशा थी और मैं ने इस विषय में उपाय यथोचित किया पै करम की रेख कौन मेटै तिस पर भी सही की बही देख जी सुखी होता रहा अन्त को नटों के से आम दिखाई दिये इस हेत स्वारथ अकारथ जान निरे परमारथ को मान कहां तक बनजिये इस लिये अब अपने व्यवसाई भाइयों से मन की बात जनाय विदा होते हैं हमारे कहे सुनेका कुछ मन में लाइयो जो देव औ भूधर मेरी अन्तर व्यथा औ इस पत्र के गुण को विचार सुध करेंगे तो मेरे ही हैं शुभमिति॥"

समाधिके प्रदीपसे

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

तुम जीवनकी क्षण-भंगुरताके सकरुण आख्यान !
तुम विषादकी ज्योति नियतिकी व्यंगमयी मुसकान !
अरे विश्व-वैभवके अभिनयके तुम उपसंहार !
मन ही मन इस प्रलय-सेजपर गाते हो क्या गान ?

तुम्हारी इस उदासिता बीच
मौन रोता किसका इतिहास ?
कौन छिप क्षीण शिखामें दीप
सृष्टिका करता है उपहास ?

इस धूमिल एकान्त-प्रान्तमें नभसे बारम्बार
पूछ पूछकर कौन खोजता है जीवनका सार ?
और कौन तेरा प्रकाश बन कहता है चुपचाप
"अरे, कहूँ क्या अबुध मृत्तिका एक अर्थ संहार।"

दीप, यह भूमि गर्भ गम्भीर
बना है किस विरहीका धाम ?
तुम्हारी सेज तले दिन-रात
कौन करता अनन्त विश्राम ?

कौन निठुर रोती माकी गोदीका छोड़ दुलार—
इस समाधिके प्रलय-भवनमें करता स्वप्न-विहार ?
अरे, यहाँ किस 'शाहजहाँ'की सोती है 'मुमताज' ?
यहाँ छिपी किस 'जहांगीर'की 'नूरजहां' सुकुमार ?

हाय रे परिवर्तन विकराल।

सुनहली मदिरा है वह कहाँ ?
मुहब्बतकी वे आँखें चार,
सिहरता शर्मीला चुम्बन,
कहाँ वह सोनेका संसार ?
कहाँ मखमली कक्षमें आज
मधुर उठती संगीत-हिलोर ?
शाहकी पृथुल जाँघपर कहाँ
सुन्दरी सोती अलस-विभोर ?
झाँकता उस बिहिश्त'में कहाँ
खिड़कियोंसे लुक-झुक महताब ?
इन्द्रपुरका वह वैभव कहाँ ?
कहाँ 'जिस्मेगुल' ! कहाँ 'शराब' !

कहाँ नवाबी महलोंका वह स्वर्गिक विभव-विहान ?
(नश्वर जगमें अमरपुरीकी ऊषाकी मुसकान)
सुन्दरियोंके बीच शाहजादोंका रूप-विलास,
अरे, कहाँ गुलबदन और गुलसे हँसता उद्यान ?

कितने 'शाह' 'नबाब' ज़मींमें समा चुके, है याद ?
कितनी 'लैला'के 'मजनूँ' औ' 'शीरीं'के 'फरहाद' ?
शरण खोजते आये कितने 'रुस्तम' औ' 'सोहराब' ?
मरकर कितने 'जहांगीर'ने किया इसे आबाद ?

अपनी प्रेयसिके करसे पानेको दीपक-दान—
इस खँडहरकी ओर किया किन-किनने है प्रस्थान ?
औ' कितने 'याकूब' यहाँपर ढूँढ़ चुके निर्वाण ?
तुम्हें याद है अरे, नियतिकी व्यंगमयी मुसकान ?

हँसते हो, हाँ हँसो, अश्रुमय है जीवनका हास ;
यहाँ श्वासकी गतिमें गाता झूम-झूमकर नाश।
क्या है विश्व ? विनश्वरताका एक चिरन्तन राग।
हँसो, हँसो, जीवनकी क्षण-भंगुरताके इतिहास !

न खिलता उपवनमें सुकुमार-
सुमन कोई अक्षय छबिमान।
क्षणिक निशिका दीपक शृंगार।
उषाकी क्षण-भंगुर मुसकान ॥
हासका अश्रु साथ विनिमय,
यही है जगका परिवर्तन।
मिलनसे मिलता हमें वियोग,
मृत्युकी क़ीमत है जीवन ॥

कभी चाँदनीमें, कुञ्जोंकी छायामें चुपचाप—
जिस 'अनार'* को गोद बिठा करते थे प्रेमालाप,
आज उसी 'गुल'की समाधिको देकर दीपक-दान—
विधुर 'सलीम' लिपट ईंटोंसे रोते बाल समान ॥
यही शाप मधुमय जीवन पानेका है परिणाम।
हँसो, हँसो, हाँ हँसो, नियतिकी व्यंगमयी मुसकान !

* अनारकली—अकबरके बांदी-महलमें रहनेवाली एक बाल-युवती थी। जिसे 'सलीम' (जहांगीर) के प्रेमके कारण अकबरके काजीने जीवित ही गड़वा दिया था।

साहित्य-सेवी और साहित्य-चर्चा

मेरे फूल

हिन्दी कवि-सम्मेलनोंके विषयमें कविवर श्री रवीन्द्रनाथने जो सम्मति प्रकट की थी, और जिसे हम गताङ्कमें प्रकाशित कर चुके हैं, वह प्रत्येक मुक्तभोगीको माननी पड़ेगी। कविता देवीपर जैसा अत्याचार हमारे कवि-सम्मेलनोंमें होता है, वैसा शायद ही कहीं होता होगा। यद्यपि हम साहित्यिक मामलोंमें सरकारी दस्तन्दाज़ीके सर्वथा विरुद्ध हैं, पर यदि सरकार कभी कभी १४४ धाराका प्रयोग हिन्दी कवि-सम्मेलनोंके अवसरपर किया करे, तो हमें विशेष दुःख नहीं होगा। इन कवि-सम्मेलनोंमें अच्छी रचनाएँ शायद ही कभी सुननेमें आती हों ; हाँ, कभी कभी एक आध असाधारण चीज़ सुनाई दे जाती है। किसी कवि-सम्मेलनमें हमने श्री बंशीधरजी विद्यालंकारकी निम्न-लिखित कविता सुनी थी, और उसकी ये दो पंक्तियाँ अब भी हमारे कानोंमें गूँज रही हैं :—

> "दरवाज़े को खोल दे माली!
> मुझे बुलाती डाली डाली ॥"

पूरी कविता इस प्रकार है,—

फूलोंकी बहार

(१)

मैं हूँ बटोही दूरसे आया,
किसी जगह आराम न पाया।
मुँह जो इधर आ मैंने उठाया,
प्रभुने कैसा दृश्य दिखाया।
तेरे बग़ीचेमें बैठूंगा,
और बहारोंको देखूँगा।
दरवाज़ेको खोल दे माली!
मुझे बुलाती डाली डाली ॥

(२)

फूल बसन्ती फूल रहे हैं,
धीमे-धीमे भूल रहे हैं।
बागकी आँखें बागके तारे,
हर्षके फूटे हुए फवारे।
रंगत इनकी मैं देखूँगा,
तेरे बग़ीचेमें बैठूँगा।
दरवाज़ेको खोल दे माली!
मुझे बुलाती डाली डाली ॥

(३)

क्या हरियाली छाई हुई है,
एकसे रंगत एक नई है।
क्या सुषमासे सजी मही है,
स्वर्ग यही है-स्वर्ग यही है।
मस्त हुआ यह मैं गाऊँगा,
तेरे बग़ीचेमें बैठूँगा।
दरवाज़ेको खोल दे माली,
मुझे बुलाती डाली-डाली ॥

(४)

पाससे इनके लोग हैं जाते,
इधर नहीं पर आँख उठाते।
काममें अपने भूले हुए हैं,
इन्हें पता क्या फूल खिले हैं?
इनसे निठल्ला मैं खेलूँगा,
तेरे बग़ीचेमें बैठूँगा।
दरवाज़ेको खोल दे माली,
मुझे बुलाती डाली-डाली ॥

(५)

देख इन्हें दिल भर जाता है,
जाने क्या-क्या कह जाता है।
किस प्यारेकी याद दिलाकर,
मुझे बुलाते हैं अपनाकर।
इनमें दुख अपना भूलूँगा,
तेरे बग़ीचेमें बैठूँगा।
दरवाज़ेको खोल दे माली!
मुझे बुलाती डाली-डाली ॥

(६)

हँस हँस कर ये मर जायेंगे,
खिल-खिल कर ये झड़ जायेंगे।
कैसा जीना कैसा मरना,
जब तक रहना हँसते रहना।
हँसना इनसे मैं सीखूँगा,
तेरे बग़ीचेमें बैठूँगा।
दरवाज़ेको खोल दे माली!
मुझे बुलाती डाली-डाली॥

यह कविता श्री वंशीधरजी विद्यालंकारकी पुस्तक 'मेरे फूल' से ली गई है। हमने उसकी एक प्रति अपने एक मित्रसे मँगाकर पढ़ी, और उसके कई पद्योंसे हृदयको बड़ा आनन्द मिला। हम कविता-मर्मज्ञ नहीं हैं, और न हम यह बतला सकते हैं कि इस चीज़में क्या अच्छाई है, पर एक साधारण पाठककी हैसियतसे हमें यह कहनेका अधिकार अवश्य है कि यह रचना हमें पसन्द आई। इस डालीमें ४५ फूल हैं और किसी-किसीकी सुगन्ध बड़ी मधुर है। पुस्तककी भूमिका श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायने लिखी है। उसके प्रारम्भिक शब्द सुन लीजिये।

"कविता एक पुष्पकी तरह सरल और स्वाभाविक वस्तु है। दोनोंकी उत्पत्ति एकसी अवस्थाओंमें होती है, इसलिए इन्हें युग्मज कहा जा सकता है। पुष्प पृथिवीके गहन अन्धकारमें से धीरे-धीरे अपनेको व्यक्त करता है। इससे पूर्व कि वह प्रकाशकी झलकको देखे उसे सीमाओंके अन्दरसे बाहर आना पड़ता है। परन्तु फ़ूल क्या है? यह एक रंग और सुगन्धकी सुन्दर सृष्टि है। यह पत्तों तथा टहनियोंमें बसन्तकी संगीतमय तरंगोंका सूक्ष्म विकास है, जिसके बिना फूल फूल नहीं बन सकता। कविता भी ऐसी ही वस्तु है। कविता बीजकी तरह मानव-हृदयकी रहस्यमयी गम्भीरतामें छुपी रहती है। यहींसे उसका विकास प्रारम्भ होता है; परन्तु जब उसके कुसुमित होनेकी घड़ी आती है, कविता सीमाओंमें से अपने आपको अभिव्यक्त करती है, अन्धकारको छोड़कर नये प्रकाशमें चमकने लगती है। कविता रंग और सुगन्धकी एक अपूर्व सृष्टि है। यह कविके बसन्तमय उद्गारोंका छन्दोमयी सुन्दर सीमाओंमें बँधा हुआ विलक्षण अभिप्राय है।"

'मेरे फूलों' को पढ़कर किसी भी सहृदय पाठकको यह विश्वास अवश्य हो जायगा कि श्री वंशीधरजीने कवि-हृदय पाया है। वे प्राकृतिक सौन्दर्यके बड़े प्रेमी हैं। नदी, आकाश, उपवन, पवन, पुष्प, वृक्ष और पक्षियोंके प्रति कविके हृदयमें स्वाभाविक स्नेह है। कहीं वह प्रकाशकी प्रतीक्षा करते हुए गाते हैं—

"खड़ा हुआ हूँ पूर्व दिशामें,
व्याकुल दृष्टि उठाये।
कब प्रकाशकी किरणोंसे यह,
जग जगमग हो जाये।
पत्ता-पत्ता हिल-हिल नाचे,
पक्षी-पक्षी गाये।
एक अपूर्व हर्षसे सारा,
भूमण्डल भर जाये।"

तो कहीं नदीके मुखसे कहलाते हैं—

"मैंने छोड़ दिया घर बार।
पिय मिलने की आश लगाई, तोड़ा सुखका तार॥
विकट, अगम पर्वत क्या रोकें, मेरे पियका द्वार।
राह बनाती चलती जाती, यह छोटी-सी धार॥"

कभी वे फ़ूलसे कहते हैं—

"हे फ़ूल! कहाँ तू भटका,
किन काँटोंमें आ अटका।
क्या तेरी मधुर हँसी है,
कण-कणमें श्री बिखरी है।
देखा है जबसे तुझको,
कुछ नहीं सुहाता मुझको।
बस ऐसा मस्त हुआ हूँ,
दुनियाँको भूल गया हूँ।
अब आता है यह जीमें,
तेरे ही पास रहूँ मैं।"

कभी वे टटीरीसे प्रार्थना करते है :—

"अपने पंखोंको फैलाये,
गर्दन ऊपर ज़रा उठाये।
सरिताके पाटोंके ऊपर,
जब तू जाये उछल-उछलकर।
बोल—टटीरी! टिर-टिर टीर,
जो हरले इस दिलकी पीर॥"
अमित हर्ष जगमें भरनेको,
सारी चिन्ताएँ हरनेको।
अपनी पूरी चोंच खोलकर,
आशा और उमगोंमें भर।
बोल टटीरी! टिर-टिर-टीर,
जो हर ले इस दिलकी पीर॥"

'आगे-आगे' शीर्षक कविताकी श्री हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्यायने बड़ी प्रशंसा की है, पर हमें तो उसमें ओज और शक्तिकी कमी प्रतीत हुई—

"भय क्या तब इकला जानेमें
जब न किया इकला आनेमें।
अब भी इकले, सदा अकेले,
आगे-आगे चलना होगा।"

इन पंक्तियोंपर कविवर रवीन्द्रनाथकी "एकला चल, एकला चल, एकला चल रे" कविताकी छाया पड़ी हुई प्रतीत होती है; पर जो शक्ति कविवरकी उस कवितामें है, उसका शतांश भी विद्यालंकारजी अपने पद्यमें न ला सके।

श्री वंशीधरजीके 'समानताके स्वप्नमें' की निम्न-लिखित पंक्तियोंको पढ़कर हमें सत्यनारायणकी एक कविताकी याद आ गई —

"बेहद तारे एक गगनमें, जैसे झिल मिल करते हैं,
फूल असंख्य जिस तरह मिलकर, एक भूमिपर खिलते हैं।
इस निस्सीम विश्वमें वैसे ही मनुष्यता फूलेगी,
तरस रही हैं आँखें किस दिन, मधुर दृश्य यह देखेंगी"
(वंशीधरजी)

"देवी मनुष्यते! अब, वीणा मधुर बजादे!
सुन्दर सुरीला गाना चित्त शान्तिका सुनादे।
अज्ञानकी अँधेरी, पथ भूल मारा मारा—
ये जग भटक रहा है, इसको प्रभा दिखादे।
भाई सभी परस्पर, ऊँचा न कोई नीचा,
समवेदनाके मोहन मृदु मंत्रको जगादे।
काला कलहका परदा कृपया उसे हटाकर,
'एकात्मता' का दर्शन, दुनियाको फिर करादे।
नीरस न जाने कबका, भावन-हृदय पड़ा है,
प्यारी पियूष धारा, उसमें विमल बहादे।
सोती हुई कलायें, कवितायें चारु कोमल,
कौशलमयी उन्हें तू, बस छेड़कर जगादे,
सच्ची स्वतंत्रताकी, समताकी भावनायें।
पावन प्रताप पूरण, इस जगमें जगमगादे।
(सत्यनारायण)

'मेरे फूल' को हमने प्रारम्भसे अन्त तक देखा। निस्सन्देह इनमें कोमलता है और सुगन्ध भी है। यद्यपि कहीं-कहीं रचयिता महोदयने अधखिली कलियोंको ही तोड़कर इस डालीमें रख दिया है, और इस प्रकार अपने अधैर्यका परिचय दिया है, तथापि वे रस और गन्धसे खाली नहीं हैं। सम्भवत: कुछ रचनाओंको विज्ञ पारखी (amatourish) समझें, पर बात वस्तुत: यह प्रतीत है कि जितनी शीघ्रताके साथ कविके हृदयमें भाव प्रगट होते हैं, उतना अधिकार काव्यकी भाषापर न होनेके कारण वे भलीभाँति प्रकट नहीं होने पाते। इसमें सन्देह नहीं कि श्री वंशीधरजी ठीक दिशामें जा रहे हैं और उनकी बातें समझमें आ जाती हैं। आजकलके ज़मानेमें यह कौन थोड़ी बात है। सुसंस्कृत हिन्दी जनता भी अब "तान तुक ताला, दुशाला, विशाला, चित्रशाला तथा सुबाला" इत्यादिको विनोदका मसाला नहीं समझती। उसकी रुचि अब भावपूर्ण कविताओंकी ओर प्रवृत्त हो गई है। शायद इसका कारण यह है कि आजकलके जनसत्तात्मक ज़मानेमें वे चीज़ें ग़रीब आदमियोंके लिए दुष्प्राप्य

हैं। उन्हीं चीज़ोंको भोगनेमें आनन्द आ सकता है जो अल्प प्रयत्नसे जनताको प्राप्त हो सकती हैं और वह भोग भी निर्दोष वस्तुओंका होना चाहिए। एक सुन्दर पुष्प किसी सहृदय व्यक्तिको जो आनन्द दे सकता है वह आनन्द क्या उपर्युक्त 'विनोदके मसालों'में मिल सकता है? यद्यपि जब तक मनुष्य मनुष्य है तब तक निम्नकोटिके शृंगारसे परिपूर्ण रचनाएँ साधारण जनताके हृदयको अपील करती रहेंगी, तथापि सुसंस्कृत व्यक्तियोंकी रुचि परिमार्जित होनी चाहिए। उन्हें इस तरह की भद्दी (Crude) वस्तुओंके भौंड़े वर्णनमें कभी आनन्द नहीं मिल सकता। भयंकर जीवन-संग्रामके कारण संसारके अधिकांश प्राणी इतने दुःखी हैं कि उद्दीपक वस्तुओंका पतनकारी वर्णन करके उसकी धन-तृष्णा अथवा कामपिपासाका बढ़ाना घोर पाप है। श्री वंशीधरजी विद्यालंकारकी रचनाएँ हमें इसी लिये पसन्द आई कि हमें जनसुलभ स्वच्छ निर्दोष आनन्द (innocent enjoyment) देती हैं। श्री विद्यालंकारजीका प्रकृति-प्रेम देखकर मनमें आता है कि उनका सत्संग करें। हिन्दी भिन्न-भिन्न कवियोंके सत्संगकी भिन्न-भिन्न रीतियाँ हैं। कोई ऐसे हैं, जिनके साथ भाँगकी गोली लेकर मघई पान खाते हुए ऊँघनेमें आनन्द आवेगा, तो कोई ऐसे हैं कि जिनके साथ गाँजेकी चिलम पीनी चाहिए, । किसीके साथ एकान्तमें पवित्र प्रेमालाप करनेकी आकांक्षा होती है, तो किसी-किसीके कर्णकटु बेतुके छन्द सुनकर फौजदारी करनेको जी चाहता है। यदि कविवर मैथिलीशरणजी राज़ी हो जायँ, तो उनके साथ अयोध्या, जनकपुरी, चित्रकूट और पंचवटीकी यात्रामें अद्भुत अलौकिक रस मिलेगा और श्री माखनलालजीके साथ नर्मदा और विन्ध्यतटोंकी सैर करनी चाहिए। व्रजके चौरासी कोसकी यात्रा जिसके साथ की जानी चाहिए थी, वह व्रजकोकिल तो इस संसारमें अब रहा नहीं। विद्यालंकारजीके साथ वन-उपवनकी सैर करनेमें जो आनन्द आवेगा, उसकी कल्पना उनके सुन्दर सुगन्धित फूलोंसे की जा सकती है।*

---

*'मेरे फूल'—मूल्य बारह आना। पता—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव, बम्बई।

आर्य साहित्य पुरस्कार

सहयोगी आर्यमित्रने एक उपयोगी प्रस्ताव आर्यसमाजके सम्मुख रखा है। हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रतिवर्ष सर्वोत्तम मौलिक हिन्दी ग्रन्थके लिये १२००) पुरस्कार प्रदान किया करता है। उसके इस उद्योगसे कई अच्छे ग्रन्थ जनताके सामने आ गये हैं। पुरस्कारसे लेखकोंका प्रोत्साहन बढ़ता है और वे अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखनेके लिए प्रवृत्त होते हैं। यद्यपि किसी साहित्यके सर्वोत्तम ग्रन्थके लिए बारह सौ की रक़म बहुत थोड़ी है, फिर भी कुछ न होनेकी अपेक्षा थोड़ा होना भी श्रेयस्कर है। हम देखते हैं, सार्वदेशिक सभा या परोपकारिणी सभाकी ओरसे आर्यसाहित्य प्रचारके लिए अब तक ऐसी किसी आयोजनाको जन्म नहीं दिया गया। न प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभाओंकी ओरसे यह काम हुआ है। अगर उपर्युक्त सभाएँ चाहें तो आर्यसाहित्य सम्बन्धी सर्वोत्तम मौलिक ग्रन्थोंके लिए प्रतिवर्ष पुरस्कार प्रदान कर सकती है। पुरस्कारका परिमाण सभाओंकी आर्थिक शक्तिके अनुसार निश्चित किया जा सकता है। परोपकारिणी और सार्वदेशिक सभा चाहें तो किसी उत्तम ग्रन्थके लिए एक-एक हज़ार रुपके प्रतिवर्ष प्रदान कर सकती हैं। इसी प्रकार प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाएँ पांच-पांच सौ रुपये प्रदान कर इस कार्यको प्रोत्साहन दे सकती हैं। इस प्रकार करनेसे सालमें कितने ही उत्तम ग्रन्थ आर्यसमाजको मिल जाया करेंगे। यह पुरस्कार विविध भाषाओं और विविध विषयोंके ग्रन्थोंके लिए होने चाहिये। प्रत्येक पुस्तकके लिए भाषा और विषयका निर्देश एक साल पूर्व कर देना उचित होगा। हमारा तो विश्वास है कि अगर इस प्रस्तावको उपर्युक्त सभाओंने क्रियात्मक रूप दिया तो आर्यसाहित्य वृद्धिमें बड़ी सहायता मिलेगी।"

क्या हम आशा करें कि आर्यसमाजके प्रतिष्ठित नेता इस प्रस्तावकी ओर ध्यान देंगे? आर्यसमाज द्वारा जिस साहित्यकी सृष्टि हो रही है वह उच्च कोटिका नहीं है। आर्यसमाजको अपनी सम्पूर्ण शक्ति अब ठोस तथा रचनात्मक कार्यकी ओर लगानी चाहिए और इस दृष्टिसे उपर्युक्त प्रस्ताव अत्यन्त उपयोगी तथा सामयिक है।

कराची कांग्रेस

तारीख २९ मार्चको शामके साढ़े छः बजे कराचीमें मोतीलाल पंडालमें कांग्रेसका खुला अधिवेशन शुरू हुआ। भिन्न भिन्न प्रान्तोंके बत्तीस सौ प्रतिनिधि कांग्रेसमें शामिल हुए थे। सवा छः बजे कांग्रेसके मनोनीत सभापति सरदार पटेल पंडालमें पधारे, लोगोंने जय-जयकारके साथ उनका स्वागत किया। खुले हुए पंडालमें एक शामियानेके नीचे प्रधान और नेताओंके बैठनेके स्थान थे। इस दिन स्वागताध्यक्ष डाक्टर चोथरामजी गिडवानी और प्रधान सरदार पटेलके भाषण पढ़े गये।

इसके पश्चात तीन प्रस्ताव पेश हुए, जिन्हें स्वयं प्रधानने पेश किया। पहले प्रस्तावमें त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरूकी मृत्युपर शोक प्रकट किया गया। मौलाना मुहम्मदअली और देशके कितने ही वीर और वीरांगनाओंके लिए, जो लड़ाईके अवसरमें खप गये, शोकका प्रस्ताव पास हुआ और उनके परिवारके साथ समवेदना प्रकट की गई। दूसरे प्रस्तावमें कानपुरके हिन्दू मुसलिम दंगा दोनोंकी घोर निन्दा प्रकट की गई, और उसके लिए एक जाँच-कमेटी नियुक्त हुई, जिसमें प्रधान श्री भगवानदासजी, श्री शिवप्रसाद गुप्त, पं० जवाहरलाल

कांग्रेसके मंचपर स्वागत सभापति डा० चौथराम पी० गिडवानी भाषण दे रहे है।

कांग्रेसके सभापति सरदार वल्लभभाई पटेल मंचपर खड़े भाषण दे रहे हैं

रहा था, इस कार्यसे वह मिट गया, और इसके बदले उल्टे देशमें रोषका तूफान उठ खड़ा हुआ। इस प्रस्तावको पेश करते हुए पं० जवाहरलाल नेहरूने कहा कि महात्माजीने यह प्रस्ताव तैयार किया है। अब तक शोलापुर, पेशावर और कितने ही जगहोंपर कितने ही देशके योद्धा काम आये लेकिन सरदार भगतसिंह आदिकी फांसीपर देशने जो आह भरी, वह किसी और पर नहीं! इन शहीदोंको जो यश प्राप्त हुआ है, वह उनके अतुल बलिदान और साहसका नतीजा है। आपने आगे बतलाया कि भगतसिंह आदिके मार्गको हम इसलिए स्वीकार नहीं करते कि हमारी वर्तमान स्थिति इसके अनुकूल नहीं है।

इसके बाद पं० मदनमोहन मालवीयने प्रस्तावका समर्थन किया और अपने हृदयस्पर्शी भाषणसे लोगोंको रुला दिया। आपने कहा कि हमारे नौजवान गुलामीसे बेहद अकुला कर भटक गये। इसकी जिम्मेदारी अधिकतर सरकारके ऊपर है। महात्माजी और देशकी पुकारको ठुकराकर उन्हें फांसी दी गई, यह हमारी गुलामीका नतीजा है। फिर आपने बतलाया कि नौजवान भाई उस मार्गपर न जायँ, अब हम और भगतसिंह खोना नहीं चाहते।

मालवीयजीके बाद भगतसिंहके पिता सरदार किशनसिंहने लोगोंके आग्रह तथा प्रार्थना करनेपर आध घंटे तक भाषण दिया कि किस तरह देशके पीछे भगतसिंहने पढ़ाई-लिखाई और शादीको धता बता दी। उन्होंने उसके सम्बन्धकी और बातें बतलाकर लोगोंको शान्ति धारण करनेकी अपील की। भगतसिंह ज़िन्दाबाद और इन्क़िलाब ज़िन्दाबादके साथ लोगोंने प्रस्ताव पास किया।

नेहरू, श्री श्रीप्रकाश, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, पंडित सुन्दरलाल, श्री रफ़ी अहमद किदवई, श्री शेरवानी और चौधरी खलीकुज्ज़मा आदि मेम्बर नियुक्त किये गये। तीसरा प्रस्ताव इस विषयका था कि युद्धसे पहले और बादमें जितने लोग राजबन्दी बनाये गये हैं, चाहे वे अहिंसात्मक क़ैदी हों या हिंसात्मक, सब मुक्त कर दिये जायँ। ये प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हुए।

इसके बाद सरदार भगतसिंह आदिकी फांसीके सम्बन्धमें प्रस्ताव पेश हुआ। इस प्रस्तावको पं० जवाहरलाल नेहरूने पेश किया, जिसमें कहा गया कि भगतसिंह आदि जिस मार्ग पर चले थे, उसको ग़लत समझते हुए भी हम उन वीरोंके देश-प्रेम, साहस और बलिदानकी प्रशंसा करते हैं, और उनकी आत्माकी शान्तिके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करते हुए उनके शोक-सतप्त परिवारोंके साथ समवेदना प्रगट करते हैं। साथ ही सरकारके साथ घृणा और रोष प्रकट किया गया, जिसने तमाम मुल्ककी आवाज़को ठुकरा कर उनको फांसी दे दी, और अपने इस कृत्यसे जनताको विक्षुब्ध बना दिया। इंगलैण्ड और भारतमें इस समय जो सौहार्द्रभाव पैदा हो

स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीकी पौत्री श्रीयुक्ता पेरिन कैप्टेन और कांग्रेसके स्वयंसेवक

अधिवेशनका दूसरा दिन

ता० ३० मार्चको साढ़े छै बजे फिर अधिवेशन शुरू हुआ। उस दिन पंडालमें पहले दिनकी अपेक्षा कम भीड़ थी। पहले तीन प्रस्ताव बिना किसी विशेष विरोधके पास हुए। पहला प्रस्ताव पश्चिमोत्तर प्रान्त सम्बन्धी था, जिसमें कहा गया कि सरहदी सूबेमें सरकार अभी उसी ज्यादतीके साथ पेश आ रही है, इससे वहांका वातावरण रोषपूर्ण हो रहा है। सरकारको अब अपनी दमन-नीति बन्द कर देनी चाहिए। दूसरा प्रस्ताव खादीके सम्बन्धमें था, जिसमें खादीके विशेष व्यवहार, प्रचलन और प्रचारपर ज़ोर दिया गया। तीसरे प्रस्तावमें शान्तिपूर्ण धरना देनेकी बात कही गई, जो शराब और विलायती कपड़ेपर दिया जाना चाहिए। इसके बाद महात्माजीका मुख्य प्रस्ताव पेश हुआ। इस प्रस्तावमें दिल्लीके समझौतेको स्वीकार करने और गोलमेज़ सभाकी कार्रवाईमें भाग लेनेकी बात पेश हुई। प० जवाहरलाल नेहरूने इस प्रस्तावको पेश करते हुए कहा कि लाहौरमें कांग्रेसका ध्येय पूर्ण स्वाधीनता रखा गया था, अब इस तरहके प्रस्ताव पेश करनेके साथ शक किया जा सकता है, पर उसके साथ हम अपने उस पूर्ण स्वतन्त्रताके ध्येयका समर्थन करते हैं। अगर गोलमेज़ सभामें जानेसे कुछ लाभ नहीं हो, तो हमें वहां न जाना चाहिए। आपने यह भी कहा कि उस पंचायतमें हमारी गुलामीकी बेड़ियां और जकड़ी गई, तो लड़ाई फिर शुरू हो जायगी। अन्तमें आपने कहा कि गोलमेज़ सभामें

सरदार वल्लभभाई पटेल

सत्याग्रहियोंके कैम्पमें कांग्रेसके नेतागण

शामिल होनेवाले कांग्रेसके प्रतिनिधियोंके प्रधान महात्मा गांधी होंगे।

इस प्रस्तावपर ज़ोरदार बहस छिड़ी। प्रस्तावके पक्षमें डा० अन्सारी, श्री सेनगुप्त और श्री सत्यमूर्ति आदिने भाषण दिया। डा० अन्सारीने बतलाया कि दिल्लीके समझौतेमें कांग्रेसकी सभी बातें स्वीकार की गई हैं। जो लोग असंतुष्ट हैं, उन्हें जानना चाहिए कि प्रस्तावमें पूर्ण स्वाधीनताके लक्ष्यका समर्थन किया गया है। श्री सेनगुप्तने कहा कि महात्मा गांधी अंग्रेज़ोंसे स्वराज्यकी भीख मांगने नहीं जा रहे हैं, बल्कि उनके हाथसे ताक़तसे छीन लेना चाहते हैं। अगर यह बात पूर्ण न होगी, तो सत्याग्रहका युद्ध बड़े ज़ोरोंके साथ शुरू हो जायगा। श्री सत्यमूर्तिने अपने भाषणमें बतलाया कि जो प्रतिबन्ध भारतके हितको दृष्टिमें रखकर न रखे जायेंगे, वे कदापि स्वीकृत न होंगे। गोलमेज़ सभाके प्रतिनिधि पूर्ण स्वाधीनताके लक्ष्यको कायम रखेंगे। देशको महात्माजीमें पूर्ण विश्वास है, और इस समझौतेमें कुछ सचाई है, तभी महात्माजीने इसे स्वीकार किया है। हमको अपने लंगोटीवाले फकीरमें पूर्ण विश्वास करना चाहिए, जो देश और क्रान्तिका मध्यस्थ है। इंग्लैंडको भी अपनी प्रतिज्ञाओंको पूर्ण करनेका हमें आखिरी मौक़ा देना चाहिए।

डा० गिडवानीके साथ महात्मा गान्धी

प्रस्तावके समर्थनमें ही पश्चिमोत्तर-प्रान्तके गांधी ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ारने अपना भाषण दिया, जिसमें आपने कहा कि मैं न तो राजनीतिज्ञ हूँ, न विशेष वक्ता। मैं तो एक सिपाही हूँ और अपने सेनापतिके हुक्मपर मरनेको तैयार हूँ। आपने कहा कि अफरीदी और पठानोंका गांधीजी और उनके आन्दोलनमें पूर्ण विश्वास है, और स्वराज्य प्राप्त

सरदार वल्लभभाई राष्ट्रीय झंडा फहरा रहे है

सेठ हरचन्दराय विशनदास

होने तक वे लड़ाईमें साथ रहेंगे। इस एक सालके युद्धने पठानोंकी दिमाग़ी गुलामी दूर कर दी है। उन्होंने अब स्वतन्त्रताका मूल्य समझा है और हमारे लिए वे अपने नौजवानोंका खून देनेको तैयार हैं, पर उन्होंने महात्माजी द्वारा ही स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका निश्चय किया है। क़ौमी फ़सादोंकी बाबत आपने कहा कि वे जब दुश्मनका मुक़ाबला करते है, तो आपसके मतभेद भूल जाते हैं, यही बात सब लोगोंको करनी चाहिए। आपने महात्माजीकी बातका समर्थन किया।

इस प्रस्तावके विरोधमें स्वामी गोविन्दानन्दजीने कहा कि महात्माजी और कांग्रेसके दूसरे प्रतिनिधि गोलमेज़ सभामें जावें और वहांसे स्वराज्य ले आवें तो अच्छा है; अगर वहांसे वे खाली हाथ लौटें, तो फिर कांग्रेसको मेरे दल (नौजवान दल) के हाथमें सौंप दें। बम्बईके युवक श्री मेहरअलीने कहा कि अंग्रेज़ साम्राज्यवादियोंके साथ राज़ीनामा होना असम्भव है। युवक-दल 'हृदय-परिवर्तन' वाली कहावतमें विश्वास नहीं करता है। आपने कहा कि नौजवान लोग तो लड़ाईकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकतासे कर रहे हैं। आपके बाद जर्मनीसे लौटे हुए एक शेखने भाषण दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि वह 'इनक़िलाब ज़िन्दाबाद' की आवाज कहां है, जो लाहौरमें मिनट-मिनटपर सुनाई देती थी।

खान अब्दुल गफ्फारके नेतृत्वमें उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेशके लाल कुर्त्ती-धारी स्वयंसेवक

राष्ट्रीय पताकाके सामने सरदार वल्लभभाई पटेल

सामने थोड़ामा कहनेको आया हूँ। मैं पहले अपने उत्तेजित नौजवान मित्रोंके लिए कहता हूँ कि मैं उनसे प्रेम करता हूँ; क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि उनके दिमाग़ोंमें आज क्या बात गूँज रही है। मेरे दिलमें उन सबके लिए पूरी सहानुभूति है। मुझे इसका कुछ ख्याल नहीं है कि उन्होंने मुझे चोट पहुँचाई और मैं विरोधसे नाखुश हो गया हूं। मुझे तो यही खेद है कि मैं आप लोगोंमेंसे कुछको आज नाराज़ कर रहा हूं, क्योंकि मैं वही कहता हूँ, जो मेरा कर्तव्य मुझे कहनेके लिए वाध्य करता है। आगे आपने गोलमेज़ सभाके सम्बन्धमें बतलाते हुए कहा कि लोग कहते हैं कि उससे कुछ मिलनेका नहीं। मैं यह कहता हूं कि गोलमेज़ सभा कोई जादू नहीं कि वहाँ हमें जानेसे भला ही भला होगा। आप याद रखें कि आपके लिए गोलमेज़ सभासे मैं आशाएँ नहीं बांधता। मैं आप लोगोंकी इसलाह, आपके पूर्ण स्वतन्त्रताके दावेको लेकर वहाँ जाऊँगा। मैंने भी इस बातको सोचा है और मेरा इस सम्बन्धमें जो धर्म है, वही मैं करता हूँ। ऐसे अवसरमें यदि मैं अपने कर्तव्यको न पालूँ तो मैं अक्षम्य ग़लती करूंगा। हम और आप सत्याग्रही हैं। सत्याग्रहीका धर्म है कि वह प्रत्येकको और अपने दुश्मनको भी प्यार करे, अपने इस व्यापारसे हम दुश्मनको भी मित्र बनायेंगे। सत्याग्रही कभी दुराग्रही नहीं बनना चाहता। प्रधानमन्त्री मि० रैमसे मैकडोनल्ड और वायसरायने जिस बातकी घोषणा की है, मैं उसपर काम करना चाहता हूँ। यदि आप मुझसे नाराज़ हैं, तो मेरे साथ चाहे जिस तरहसे पेश आवें, आप मुझे मेरी ग़लती बता सकते हैं। मैं फिर यह कहता हूँ कि मैं आपके सामने

इसपर चारों ओरसे 'इनक़िलाब ज़िन्दाबाद' की आवाज़ आने लगी। आगे आपने कहा कि हम ग़रीब और किसानोंका राज्य चाहते हैं, पूँजीपतियोंका नहीं। गोलमेज़ कान्फरेन्स ग़रीबोंका खून चूसनेके लिए की जा रही है। डा० किचलूने अपने भाषणमें कहा कि उन्हें अस्थायी सन्धिकी बातोंमें विश्वास नहीं, लेकिन इस वक्त महात्मा गांधीके बतलाये हुए मार्गके अलावा और कोई मार्ग भी हमारे सामने नहीं है। डाक्टर आलमने कहा कि देशने महात्मा गांधीके कमांडमें लड़ाई लड़ी है, और महात्माजीको समझौता करनेका अधिकार है। नौजवान तो बिना स्वतन्त्रताका अर्थ समझे ही स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता चिल्लाते हैं।

इस सभाके बहसके बाद महात्मा गांधी विरोधका उत्तर देने और प्रस्तावका समर्थन करनेके लिए मंचपर आये। उस वक्त चालीस मिनट तक पंडालमें निस्तब्धता छा गई, लोगोंकी निगाह महात्माजीकी ओर लग गई, और लोग उनके एक-एक शब्दको ध्यानपूर्वक सुनने लगे। आपने हिन्दीमें भाषण करते हुए कहा कि दस बजेके समय मैं देरीमें आपके

वहाँ जा रहा हूँ। यह खयाल मत कीजिये कि आप मुझे 'महात्मा' कहते हैं, और मैं सबसे बड़ा हूँ। मैं आपका केवल प्रतिनिधि हूं। मैं जो कुछ कहता हूं वह आपके शब्द, आपके विचार, आपकी इच्छा और आपके सिद्धान्त हैं। अन्तमें आपने खान अब्दुल गफ्फार और अफरीदियोंको बधाई दी। प्रस्ताव वोट लेनेपर बहुमतसे पास हुआ।

सभामंडपमें सरदार वल्लभभाई। दाहनी ओर करांची म्युनिसिपालिटीके कर्णधार श्रीयुत जमशेद एन. आर. मेहता खड़े हैं।

मुख्य अधिकारोंका प्रस्ताव

महात्मा गांधीने स्वराज्य शासनमें लोगोंके अधिकारों वाला प्रस्ताव पेश करते हुए कहा कि हम सरकारको नागरिक बनाना चाहते हैं, न कि आफिसर। किसानोंसे हम कह दें कि हम धर्म-राज्यकी स्थापना कर रहे हैं। इस प्रस्तावके द्वारा लन्दन गोलमेज सभामें हम यह कह देंगे कि 'हमारी ये माँगें हैं।' आपने कहा कि स्वराज्य सरकारमें वायसरायको भी पाँच सौ रुपयेसे अधिक वेतन न मिलेगा। अन्तमें आपने कहा कि इस प्रस्तावको पास करके स्वराज्य-भवनका निर्माण करो और अल्प मतकी जातियोंसे प्रेम और सहयोग तथा स्त्री और पुरुषोंके समान अधिकारोंकी घोषणा कर दो।

इस प्रस्तावके समर्थनमें और विरोधमें भाषण हुए और वोट लेनेपर प्रस्ताव पास हो गया। प्रस्तावकी धाराएँ ये हैं :—

"कांग्रेसकी राय है कि जिस तरह जनतामें आजकल बेचैनी फैली है, उसे दूर करनेके लिए राजनैतिक स्वतन्त्रताके साथ उन्हें आर्थिक स्वतन्त्रता भी रहेगी, जिससे देशके करोड़ों भूखोंको रोटी मिलेगी। कांग्रेस स्वराज्यके मानी बहुत सीधे शब्दोंमें जनताको बतलाती है, जिससे जनता स्वराज्यकी क़दर करे। इसलिए स्वराज्य-सरकारमें नीचे लिखी बातें होंगी।

(१) मनुष्यके जन्मसिद्ध अधिकारोंकी रक्षा, जैसे—

(क) संस्थाओंको स्वतन्त्रता देना।

(ख) भाषण और समाचारपत्रोंकी स्वतन्त्रता।

(ग) विचार-कार्य और धर्म-सम्बन्धी स्वतन्त्रता।

(घ) पब्लिकके कार्योंमें, नौकरियोंमें और व्यापार आदिके मामलोंमें जाति या मजहबके प्रतिबन्ध नहीं होंगे।

(ङ) तमाम नागरिकोंको समान अधिकार, और सड़क, कुएँ और दूसरी चीज़ोंका स्वतन्त्र उपयोग होगा।

(च) आत्म-रक्षाका ख्याल करते हुए निश्चित क़ायदेके अनुसार सबको हथियार रखनेका अधिकार होगा।

(२) राज्य धार्मिक मामलोंमें तटस्थ रहेगा।

(३) शिल्प कारखानोंमें कार्य करनेवाले मज़दूरोंके लिए काम करनेके निश्चित घंटे होंगे, उनकी तन्दुरुस्तीके अनुसार उनसे काम लिया जायगा तथा उनकी आर्थिक दशा और वृद्धावस्थाका खयाल रखना पड़ेगा।

(४) मज़दूरोंको दासताके बन्धनसे मुक्त कर दिया जायगा।

(५) महिला-मज़दूरोंकी दशाका ध्यान रखा जायगा।

करांचीमें हिन्दू-महासभाका अधिवेशन

(१४) सरकारी महकमोंके भारी-भारी खर्च और बड़ी-बड़ी तनख्वाहें कम की जायँगी, किसी विशेष अवस्थामें ही वेतन एक निश्चित तादादसे अधिक दिया जावेगा, पांच सौ रुपयेसे अधिक वेतन न बढ़ेगा।

(१५) विदेशी कपड़े और विदेशी सूतको देशमें आनेसे रोका जायगा और स्वदेशीको प्रोत्साहन दिया जायगा।

(१६) शराब आदि नशीली वस्तुओंकी पूरी मनाही रहेगी।

(१७) नमक-कर न होगा।

(१८) विनिमय आदिकी दरें भारतके व्यापार और आम लोगोंके हितका खयाल करके कायम की जायँगी।

खासकर उनको छुट्टी और प्रसवके दिनोंमें उन्हें काफ़ी सुविधा दी जायगी।

(६) जिन लड़कोंकी उम्र पढ़नेकी होगी, उन्हें फ़ैक्टरी या कारखानोंमें जाकर काम करनेसे रोका जायगा।

(७) अपने अधिकारोंकी रक्षा और मांगोंके लिए मज़दूरोंको पचायतें और संघ कायम करनेकी स्वतंत्रता रहेगी।

(८) ज़मीनके लगान, किराये आदिमें आर्थिक दशाके अनुसार काफ़ी कमी की जायगी, आवश्यक दशामें लगान आदि बिलकुल माफ किये जा सकेंगे।

(९) कृषिपर निश्चित आमदनीके ऊपर क्रमश: टैक्स लगाया जायगा।

(१०) विरासतकी जायदादपर भी निश्चित तादादके अनुसार टैक्स लिया जायगा।

(११) हर बालिग आदमीको वोट देनेका अधिकार होगा।

(१२) नि:शुल्क प्राइमरी शिक्षा।

(१३) फ़ौजका खर्च अबसे कम-से-कम आधा कर दिया जायगा।

(१९) कारीगरीके साधनोंपर राज्यका नियन्त्रण रहेगा और आम लोगोंको मदद दी जाया करेगी।

(२०) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे सूदखोरी आदिके मामलोंपर नियन्त्रण रक्खा जायगा।"

आखिरी दिनकी कार्रवाईमें दस प्रस्तावोंमेंसे आठ प्रस्ताव कांग्रेस प्रधानकी तरफ़से पेश किये गये और वे सब पास हुए। लखनऊके मि० कुतुबुद्दीन साहबने अपने व्याख्यानमें बतलाया कि स्वराज्यकी लड़ाईमें मुसलमान तहे दिलसे कांग्रेसके साथ हैं। स्वराज्यकी मांगके लिए मुसलमान हिन्दुओंसे पीछे नहीं हैं।

इसके बाद ब्रह्माके श्री मौंगमौंगजीने ब्रह्माके सम्बन्धमें प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा कि ब्रह्माके निन्यानबे फ़ी-सदी आदमी इस बातके विरुद्ध हैं कि ब्रह्माको हिन्दुस्तानसे अलग कर दिया जाय। आपने कहा कि भारतका जब संघ-शासनसे निर्माण हो रहा है, तो ब्रह्मा उसका एक भाग क्यों नहीं हो सकता? पंडित जवाहरलाल नेहरूने इस प्रस्तावका समर्थन किया और वह पास हुआ।

सभा-मंडपमें बैठे हुए कांग्रेसके नेतागण

इसके बाद पश्चिमोत्तर-प्रान्त सम्बन्धी प्रस्ताव पास करते हुए प० जवाहरलाल नेहरूने कहा कि सरकार भारतके ऊपर अपना अधिकार रखनेके लिए सरहदी प्रान्तपर कड़ाई कर रही है, इस तरहके भाव फैला दिये गये हैं कि अंग्रेज़ोंके भारतसे बाहर होते सब जगह लूट मच जायगी। आपने कहा कि मैं पठानोंको जानता हूँ, वे बहादुर और ईमानदार हैं, स्वराज्य-शासनमें हमारा उनसे भाईचारेका सम्बन्ध रहेगा। पंडितजीने आगे कहा कि सरकार अपनी कड़ी नीतिसे सरहदी लोगोंको गुलामीका पाठ पढ़ा रही है।

खान अब्दुल ग़फ्फारने प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा कि सरकारने अपने मतलबके लिए सरहदकी असली अवस्था जाननेसे लोगोंको महरूम रक्खा है। अप्रेल महीनेके गोली-काण्डका जिक्र करते हुए आपने कहा कि उस हत्याकाण्डके बाद सरहदी अफरीदियोंने महात्मा गान्धी और मुझे बुलवानेका प्रयत्न किया था। जब अफरीदियोंकी प्रार्थनापर ध्यान न दिया गया, और उनके घरोंपर हमले होने लगे, तब उन्होंने मजबूरीकी हालतमें अपनी रक्षाके लिए हथियार लिये। आपने कहा कि वह समय चला गया, जब सरकार हममें फूट फैलाकर अपना उल्लू सीधा कर लेती थी। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि अगर सत्याग्रह-आन्दोलन फिर चला, तो पठान उसमें लड़ेंगे।

आपने अफरीदियोंकी तरफसे कहा कि महात्माजी स्वयं वहाँ जाकर देखें, अफरीदी लोग उनके दर्शनके लिए प्यासे हैं; महात्माजी ही वहां शान्ति स्थापित कर सकते हैं, अगर वे देख लें कि अफरीदी निर्दोष हैं, तो वे सरकारसे उन्हें स्वतन्त्र करवा दें।

मि० पीरबक्सने प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा कि महात्मा गान्धी और उनकी अहिंसाका जो प्रभाव सरहदी प्रान्तपर है, उसे देखकर सरकार हैरान हो गई है। जो दमन उसने किया है, उसे इतनेमें ही समझ लीजिये कि पिछले नौ महीनेमें छब्बीस लाखके तो बम्ब उसने खर्च कर दिये हैं। अन्तमें आपने कहा कि अफरीदियोंका भारतसे कोई झगड़ा नहीं है। स्वराज्य-सरकारमें वे सरहदपर रक्षाका काम करेंगे।

इसके बाद प्रस्तावपर वोट लिये गये और वह पास हुआ।

पटाक्षेप

३१ मार्चको बारह बजे रातमें कांग्रेसका अधिवेशन समाप्त करते हुए स्वागतकारिणी समितिके प्रधान डाक्टर चौथराम गिडवानीने सब लोगोंको धन्यवाद दिया।

श्रीमती सरोजिनी नायडूने स्वागताध्यक्ष और दूसरे लोगोंको धन्यवाद देते हुए श्रद्धेय श्री गणेशशंकर विद्यार्थीकी मृत्युपर खेद प्रगट किया और कहा कि विद्यार्थीजीका बलिदान हिन्दू-मुसलिम एकताकी बुनियाद डाल देगा। कांग्रेसके अधिवेशनके सम्बन्धमें जिक्र करते हुए कहा कि उसमें दो मुख्य प्रस्ताव पास हुए हैं। एक यह कि गांधी-इरविन समझौतेको कामयाब बनाया जाय और देशकी मांगको पूरा किया जाय। दूसरा प्रस्ताव वह है जिसमें प्रजाके स्वभाविक अधिकारों और स्वराज्य सरकारमें पूरी आज़ादीके साथ उन्हें भोगनेकी व्यवस्था दी है। अन्तमें प्रधान श्रीयुत पटेलजीने अपना अन्तिम भाषण किया। आपने कहा कि गांधी-इरविन समझौतेको मंजूर करके कांग्रेसने यह बतला दिया है कि देश महात्माजीमें कितनी श्रद्धा रखता है और वह इसे सम्माननीय समझौता समझता है।

नौजवानोंके सम्बन्धमें बतलाते हुए आपने कहा कि सिर्फ छः महीनेका समय और है, इसमें सब बात मालूम हो जायँगी। नौजवानोंके लिए छः महीना कोई अधिक नहीं हैं, हाँ, महात्माजी और मुझ जैसे वृद्धोंके लिए छः महीने अधिक हैं। यह हो सकता है कि हम छठे महीनेकी अन्तिम तारीखको नहीं देख सकें, लेकिन हमारी इच्छा है कि हम ऐसा समय आनेसे पूर्व ही भारतको स्वतन्त्र देख लें। नौजवानोंको हमें अन्तिम अवसर देना चाहिए। आपने आगे कहा कि कांग्रेस किसी एक जमात की नहीं है, उसपर सभीका अधिकार है। एक दिन नौजवानोंका अधिकार उसपर होगा। उन्हें इतना अधीर नहीं होना चाहिए। इन छः महीनोंमें उन्हें खद्दरका प्रचार और विदेशी कपड़ेके बहिष्कारमें शक्ति लगाना चाहिए।

विदेशी कपड़ेके व्यापारियोंसे आपने कहा कि उन्होंने विलायती कपड़ा मँगाना बन्द नहीं किया है। अगर उन्होंने यह न किया तो उन्हें पछताना पड़ेगा। उन्हें याद रखना चाहिए कि कांग्रेसमें अब पहलेसे सौ गुनी ताकत आनेवाली है।

कान्फ्रेन्सके सम्बन्धमें आपने कहा कि अगर हमारे पीछे शक्ति है तो गोलमेज सभामें जो मसौदा तय होगा और देशको वह नामंजूर होगा तो वह रद्दीकी टोकरीमें फेंका जा सकेगा। अगर हमारे अंदर वह ताकत नहीं है तो हज़ार गांधी भी देशको स्वतन्त्र न कर सकेंगे। अन्तमें आपने नौजवानोंको महात्मा गाँधीके लिए काले झंडे आदिका प्रदर्शन करनेके लिए फटकारा। इसके बाद एक गीत गाया गया और कांग्रेसका अधिवेशन समाप्त हुआ।
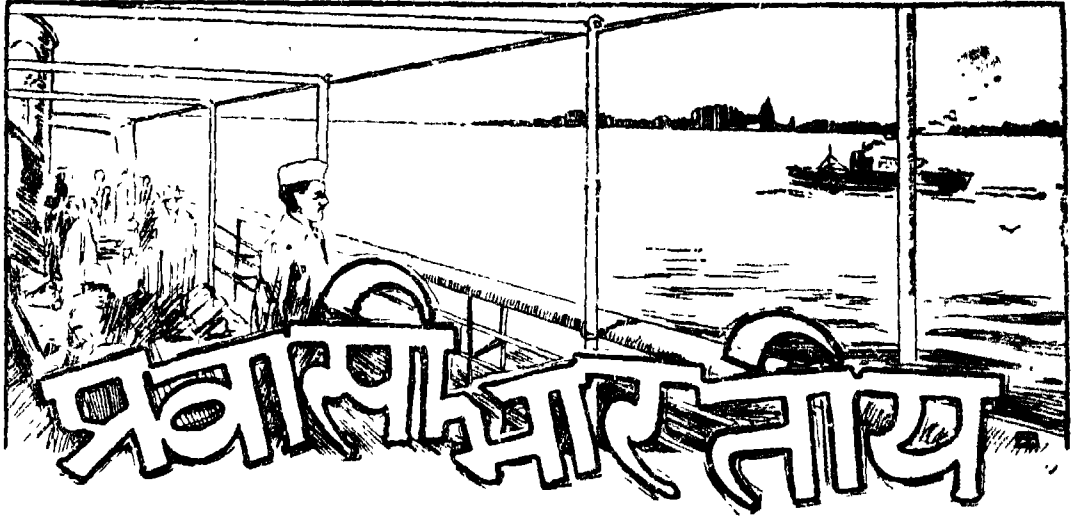
"विदेशोंमें आर्यसमाज"

आज लगभग छः वर्ष हुए, मथुरामें दयानन्द शताब्दीके अवसरपर प्रवासी आर्योंके सम्बन्धमें हमने एक प्रस्ताव उपस्थित किया था, जो सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ था। उसका एक अंश यह है—"(ग) विदेशोंमें अब तक आर्य-समाज द्वारा जितने कार्य हुए हैं, उनका सार्वदेशिक सभा द्वारा पूर्ण विवरण प्रकाशित किया जाय।" इतने अर्से तक यह प्रस्ताव खटाईमें पड़ा रहा, पर इस विषयपर हमें अधिक कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। सार्वदेशिक सभाका बाईसवाँ वार्षिक वृत्तान्त हमारे सामने है, जिसमें इस बातका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—

"इन प्रस्तावोंको सभा गतवर्ष तक कार्यमें परिणत न कर सकी थी। सभाका ध्यान श्री स्वामी भवानीदयालजी संन्यासीने इस आवश्यक विषयकी ओर आकर्षित किया। अत: सभाकी २४-३-२६ की अंतरंग बैठकमें इस विषयपर विचार हुआ। अन्तत: सभाके अधीन प्रवासी-विभागका खोला जाना निश्चय किया गया। प्रवासी-विभागके सम्बन्धमें स्कीम बनाई गई। सर्वसाधारणकी सम्मति तथा भिन्न-भिन्न औपनिवेशिक संस्थाओंकी सम्मति मँगाई गई। सम्मतियां आ रही हैं। काफी सम्मतियां प्राप्त हो जानेपर संशोधित स्कीम सभाके सामने रखी जायगी। इस समय इस विभागको व्यवस्थित करनेके पूर्व सभा उपनिवेशोंमें आर्यसमाजके कार्यको पुस्तक रूपमें प्रकाशित करना चाहती है। औपनिवेशिक प्रतिनिधि सभाओंसे विवरण मँगाये जा रहे हैं। समस्त विवरण प्राप्त हो जानेपर श्री स्वामी भवानीदयाल संन्यासीको, जिन्होंने इस कार्यके सम्पादन करनेका वचन दिया है, इतिहास लेखनका कार्य सौंप दिया जायगा।"

अभी उस दिन संयोगवश सार्वदेशिक सभाके प्रधान महात्मा नारायण स्वामीजीसे मुलाकात और इस विषयपर बातचीत भी हो गई। इस बातचीतमें स्वामी भवानीदयालजी भी शामिल थे। हमने औपनिवेशिक प्रचारके सम्बन्धमें विशेष रूपसे उनका ध्यान आकर्षित किया, और हम महात्मा नारायण स्वामीको इस बातपर राज़ी कर सके कि यदि कोई खास अड़चन न हुई, वे तो अगले सालसे स्वयं कुछ उपनिवेशोंका पर्यटन करके प्रवासी हिन्दुओंकी हालत अपनी आंखोंसे देखें और प्रवासी भाइयोंमें वैदिक धर्म प्रचार और आर्य-संस्कृतिकी रक्षाके लिए समुचित व्यवस्था करेंगे। इस साल तो प्रधानजीने आसाम और मद्रासका दौरा करना निश्चय कर लिया है, किन्तु हमें आशा है कि अगले साल वे कुछ उपनिवेशोंका भ्रमण कर इस बातका अनुभव कर सकेंगे कि प्रवासियोंमें आर्य-संस्कृतिकी रक्षा और प्रचारके लिए कितना अधिक उद्योग करनेकी आवश्यकता है।

खैर, हम इस बातकी पूरी कोशिश करेंगे कि सभाके प्रवासी-विभाग द्वारा प्रवासियोंका अधिकाधिक हित हो सके, लेकिन इस समय सबसे आवश्यक और महत्वका काम है। "विदेशोंमें आर्यसमाज" नामके ग्रन्थका प्रणयन और सम्पादन। इस कार्यके सम्पादनके लिए सभाने श्री भवानी-दयाल संन्यासीसे स्वीकृति लेकर सचमुच दूरदर्शिताका परिचय दिया है। हमारी समझसे उनसे बढ़कर इस कामके लिए

दूसरा कोई योग्य व्यक्ति नहीं मिल सकता था। वे आज बीस सालसे लगातार प्रवासियोंकी सेवा कर रहे हैं, और इस विषयपर वे अधिकारपूर्वक लिख और बोल सकते हैं। हमें विश्वास है कि वे भावुकतासे काम न लेंगे, जहाँ आर्यसमाजके गुणोंका वर्णन करेंगे, वहां दुर्गुणोंको भी प्रकट करनेमें संकोच न करेंगे।

प्रवासी भाइयोंसे हमारा एक निवेदन है। वह यह कि श्री भवानीदयाल संन्यासीमें एक विशेषता यह है कि जिस कामको वे हाथमें लेते हैं, उसे यथासम्भव शीघ्र ही पूरा करनेके लिए जी जानसे भिड़ जाते हैं। इस समय वे हिन्दुस्तान लौटे हुए प्रवासियोंके विषयमें अपनी रिपोर्ट छपवा रहे हैं। इसके बाद ही वे ग्रंथ लेखनका कार्य प्रारम्भ कर देंगे और पुस्तक तैयार होते ही छपनेके लिए तुरंत प्रेसमें दे दी जायगी। यदि प्रवासी भाई अपने-अपने यहाँके विवरण भेजनेमें ढिलाई करेंगे, तो नतीजा यह होगा कि उनके यहाँका पूरा इतिहास न छपनेपर उनको पछताना पड़ेगा। समस्त औपनिवेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभाओं, समाजों तथा सस्थाओंको अपना विवरण शीघ्र लिख भेजना चाहिए। विवरण चाहे हिन्दीमें हो या अंगरेजीमें। साधारणत: निम्न-लिखित बातोंका उत्तर अवश्य लिख भेजना चाहिए :—

(१) आपके उपनिवेशमें पहले-पहल कब आर्यसमाजकी स्थापना हुई ?

(२) इस समय आपके उपनिवेशमें कितने आर्यसमाज हैं ?

(३) किन-किन समाजोंके कितने सदस्य हैं, और उन सदस्योंके नाम और धन्धा क्या है ?

(४) किन-किन समाजोंके अधीन शिक्षा-सम्बन्धी तथा अन्य प्रकारकी संस्थाएँ हैं, और उन संस्थाओंकी अवस्था क्या है ?

(५) आर्य प्रतिनिधि सभाके अधीन कितने समाज हैं, और कितने समाज उससे पृथक् हैं ? उनके अलग रहनेका कारण क्या है ?

(६) आपके उपनिवेशमें अनुमानत: आर्यसमाजियोंकी संख्या क्या होगी, और उनमें कितने हिन्दी, कितने तैमिल और कितने अन्य भाषाभाषी होंगे ?

(७) आपके उपनिवेशमें किन-किन समाजोंके पास अपना मन्दिर है ? उनमेंसे किस मन्दिरकी लागत कितनी है ?

(८) अब तक आपके उपनिवेशमें कौन-कौन आर्योपदेशक प्रचारार्थ जा चुके हैं, और उनके प्रचारका ढंग कैसा रहा है। वे स्वतन्त्र रूपसे कार्य करते रहे हैं, अथवा किसी सभाके अधीन रहकर ?

(९) आपके उपनिवेशमें ईसाई, मुसलमान और सनातनी हिन्दू भाइयोंका आर्यसमाजके प्रति व्यवहार क्या रहा है और इस समय कैसा है ?

(१०) आपके उपनिवेशमें कितने उपदेशकोंकी आवश्यकता है और आपकी सभा कहां तक उनका व्ययभार स्वीकार कर सकती है ?

इसके अतिरिक्त अन्य आवश्यक बातोंका भी उल्लेख करना न भूलें। अपने यहाँके आर्य मन्दिरों, आर्य संस्थाओं और कुछ चुने हुए प्रतिष्ठित आर्य-पुरुषोंके चित्र भी अवश्य भेजें, क्योंकि ग्रन्थ सचित्र होगा। सब प्रकारकी सामग्रियां सीधे स्वामी भवानीदयाल संन्यासीके पास निम्न-लिखित पतेसे भेजना चाहिए—

Swami Bhawani Dayal Sannyasi
Pravasi-Bhawan
P. O. Khargarh, Via Sasaram, E. I. Ry.
Bihar, India.

—

सरदार पटेल और प्रवासी भाई

कांग्रेसके प्रधानकी हैसियतसे सर्दार वल्लभभाई पटेलने अपने भाषणमें कहा था—"हमें अपने प्रवासी भाइयोंको नहीं भूलना चाहिए। दक्षिण अफ्रिका, पूर्वीय अफ्रीका और संसारके अन्य भागोंमें उनका भाग्य अब भी अधरमें टँगा हुआ है। सौभाग्य है कि दीनबन्धु एण्ड्रूज़ दक्षिण अफ्रिकामें हमारे देशवासियोंकी सेवा कर रहे हैं। पंडित हृदयनाथ कुंजरूने पूर्व अफ्रिकाके प्रवासी भारतीयोंके मामलोंमें विशेष भाग लिया है। उन्हें आश्वासन देनेके लिए कांग्रेस उन्हें उनसे अपनी सहानुभूतिका विश्वास दिला सकती है। वे जानते हैं कि उनकी दशा उतनी ही सुधरेगी, जितना हम अपने उद्देश्यकी ओर बढ़ेंगे। आपकी ओरसे मैं उन सरकारोंसे, जिनके अधीन हमारे भाई हैं, प्रार्थना करता हूँ कि वे हमारे भाइयोंसे उचित बर्ताव करें, क्योंकि वे उस राष्ट्रके व्यक्ति हैं, जो अपना पूर्व गौरव शीघ्र ही प्राप्त करनेवाला है, और जो किसीको हानि पहुंचाना नहीं चाहता। हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे भाइयोंके साथ वही बर्ताव करें, जो वे हमसे उस समय चाहेंगे, जब उनके साथ व्यवहार करनेके लिए हम स्वतन्त्र होंगे। यह माँग बहुत बड़ी माँग नहीं है।"

एक शिक्षित किसानसे बातचीत

रशियन अराजकवादी प्रिन्स कोपाटकिनने अपनी एक पुस्तकमें * लिखा है :—

"यदि किसी चित्रकारने खेतोंमें कार्य करके स्वयं आनन्दका अनुभव नहीं किया हो, तो क्या वह केवल ध्यान और कल्पनाके भरोसे कृषिकार्यके कवित्वका चित्र खींच सकता है ? यदि उस चित्रकारका ज्ञान खेतीके विषयमें उतना ही हो, जितना कि उन प्रवासी पक्षियोंको, जो एक देशसे दूसरे देशोंको उड़कर जाया करते हैं, अपने नीचेके देशोंका होता है, तो क्या वह चित्रकार कभी भी कृषिके आनन्दको चित्रित कर सकता है ? जिसने अपने यौवनके प्रारम्भमें उषाकालके समय हल नहीं चलाया, जिसने हृष्ट-पुष्ट किसानोंके सत्संगमें खुरपी लेकर घास काटनेका आनन्द नहीं प्राप्त किया—जब कि एक ओर ये शक्तिशाली किसान दनादन खुरपी चला रहे हों और दूसरी ओर किसान लड़कियाँ अपने मधुर गीतोंसे आकाशको गुंजायमान कर रही हों—तो भला वह कृषि-जीवनका चित्र सफलतापूर्वक कैसे खींच सकता है ? कहीं कोई आदमी केवल तूलिकासे चित्र खींचकर भूमि और भूमिमें उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंसे प्रेम करना सीख सकता है ? यह प्रेम तो भूमिकी सेवा करनेसे ही प्राप्त हो सकता है, और बिना प्रेमके भला कोई किसीका चित्र खींच सकता है ? यही कारण है कि अब तक अच्छे-से-अच्छे चित्रकारोंने जो तस्वीरें कृषि-जीवनकी खींची हैं, वे बिलकुल अपूर्ण हैं, निर्जीव हैं और प्रायः शुष्क भावमय हैं। उनकी रचनाओंमें शक्तिका अभाव है।"

आज ग्राम-संगठनके विषयमें जो लेख और पुस्तकें हिन्दीमें निकल रही हैं, उनके विषयमें उपर्युक्त बातें लागू होती हैं। बस 'चित्रकार' की जगह 'लेखक' शब्द रख दीजिये, और आपको इन ग्राम-संगठन विषयक रचनाओंका हूबहू चित्र उपर्युक्त पंक्तियोंमें मिल जायगा।

जिन महानुभावोंको यह भी पता नहीं कि रब्बी और खरीफ़ किसे कहते हैं, जो गेहूँ और जौके पौधोंकी पहचान

---

* "How can the painter express the poetry of work in the fields if he has only contemplated it, imagined it, if he has never delighted in it himself ? If he only knows it as a bird of passage knows the country he soars over in his migrations ? If in the vigour of early youth, he has not followed the plough at dawn, and enjoyed mowing grass with a large sweep of the scythe next to hardy haymakers vying in energy with lively young girls who fill the air with their songs ? The love of the soil and of what grows on it is not acquired by sketching with a paint-brush—it is only in its service ; and without loving it, how paint it ? This is why all that the best painters have produced in this direction is still so imperfect, not true to life nearly always merely sentimental. there is no strength in it."

Prince Kropotkin.

नहीं कर सकते, और जिन्होंने हल चलाकर कभी अपने हाथोंको पवित्र नहीं किया है, वे भी पुस्तकोंके रटे-रटाये ज्ञानके बलपर ग्राम-संगठन विषयक लेख लिख रहे हैं ! यदि कोई आदमी तैरनेकी पुस्तक पढ़कर तैरना सीख सकता है, तो वह इन लेखों तथा पुस्तकोंको पढ़कर ग्राम-संगठन भी कर सकता है। इस तरहकी रचनाओंसे ऊबकर हमने यह विचार किया कि स्वयं किसानोंसे बातचीत करके उनके सुख-दु:खकी जाँच करनी चाहिए। सौभाग्यसे एक शिक्षित किसान भी हमें मिल गये। किसीने कहा है कि जो आदमी एक दानेकी जगह दो दाने उत्पन्न कर सकता है, वह देशके लिए किसी कोरमकोर व्याख्यानदातासे कहीं अधिक उपयोगी है। पंडित बालाप्रसादजीने वर्षों अपने हाथसे खेती की है, अपने गाँवके साथी किसानोंको खेतीमें उन्नति करनेके उपाय बताये हैं, साग-तरकारी, ईख इत्यादि उगाकर उन्हें व्यावहारिक ज्ञान सिखाया है और हारी-बीमारीमें उनकी दवादारूका भी प्रबन्ध किया है। किसानोंके मानवोचित अधिकारोंके लिए लड़ते हुए उन्हें ज़मींदार और पुलिसवालोंके हथकंडोंका काफ़ी अनुभव हो चुका है, ग़रज़ यह कि वे किसानोंके यानी अपने जीवनके प्रत्येक पहलूसे भलीभाँति परिचित हैं। इसलिए कृषि और ग्राम-संगठनके विषयमें उनके अनुभव 'विशाल-भारत' के पाठकोंको सुनाना अनुचित न होगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सुप्रसिद्ध पत्रकार मि० ब्रेल्सफोर्ड जब पिछली बार भारत-यात्राके लिए पधारे थे, तो वे बालाप्रसादजीकी कुटियाके अतिथि बने थे, और उन्होंने आपके साथ ही आस-पासके ग्रामोंका निरीक्षण किया था। उनके खेतकी उगी हुई मटरोंकी फली खानेका सौभाग्य इन पंक्तियोंके लेखकको भी प्राप्त हो चुका है। मामूली मटरोंके मुकाबलेमें उनमें उतना ही माधुर्य है, जितना नाममात्रके छायावादी कवियोंकी रचनाओंके मुकाबलेमें कवीन्द्र रवीन्द्रनाथके कविताओंमें !

बालाप्रसादजीसे किसान, खेती ग्राम-संगठन इत्यादि विषयोंपर हमारी बहुत देर तक बातचीत हुई। उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

प्रश्न—किसानोंके सुधारके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न कौनसा है ?

उत्तर—रोटीका सवाल किसानोंके लिए सबसे ज़रूरी है। अधिकांश किसानोंको भर-पेट भोजन नहीं मिलता। खास-खास त्यौहारोंपर जैसे होली, दिवाली, सलूना, दशहरा इत्यादिपर यदि कहींसे उन्हें घी-गुड़ और तेल उधार मिल जाते हैं, तो पूड़ियाँ बन जाती हैं। इसकी प्रतीक्षा कितने ही दिन पहलेसे तमाम घरवाले करते हैं, और बच्चोंको तो बड़ी भारी ख़ुशी होती है। गेहूँ तो इन किसानोंको नसीब ही नहीं होते। जब फसल कटकर आती है, तब भले ही दो-चार दिन खानेको गेहूँ मिल जायँ, पर गेहूँका खाना तो अमीरोंका भोजन समझा जाता है। दूध, दही, घी, मक्खनका भी यही हाल है। कर्ज़के मारे किसान इतने दबे हुए रहते हैं कि उन्हें उधार चुकानेके लिए दूध और घी दे देने पड़ते हैं। बच्चोंको भी दूध नसीब नहीं होता। भैंस भी हरएक किसानको नहीं मिल सकती। जिसकी हालत अच्छी समझी जाती है, उसे उधार मिल जाती है। रही फलोंकी बात, सो नीमकी निबौरी और झरबेरीके बेर और कहीं-कहीं आम मिल जाते हैं।

प्रश्न—फलोंके पेड़ वे खेतोंमें क्यों नहीं लगाते ?

उत्तर—ज़मींदारकी मर्ज़ीके बिना किसान क़ानूनन कोई पेड़ अपने खेतमें नहीं लगा सकता। अगर वह लगा ले, तो बेदखल किया जा सकता है। अब नये टैनेन्सी ऐक्टके अनुसार इतना परिवर्तन हो गया है कि ज़मींदारकी आज्ञाके बिना भी पपीता, केला, अमरूद, नीबू वगैरह फलोंके पेड़ लगा जा सकते हैं, लेकिन क़ानूनमें यह विषय भी विवादास्पद रखा गया है। पर बेचारे किसानोंमें इतनी हिम्मत कहाँ है कि वह ज़मींदारकी इच्छाके विरुद्ध कोई पेड़ लगा सके।

प्रश्न—किसानोंके स्वास्थ्यका क्या हाल है ?

उत्तर—जब खानेका ही ठीक नहीं है, तो स्वास्थ्य कैसे ठीक हो सकता है ? किसानोंको बस दो चीज़ें जीवित बनाये

हुई हैं, एक तो शुद्ध वायु और दूसरी धूप। रही जलकी बात, सो हर ऋतुमें स्वच्छ जल नहीं मिलता, क्योंकि कच्चे कुओंका जल बरसातमें खराब हो जाता है।

प्रश्न—गाँवोंमें कौन-कौन बीमारियाँ अधिक होती हैं?

उत्तर—प्राय: बरसातके अन्तमें मलेरिया इकतरा अधिक होता है, और चैतके महीनेमें खसरा और चेचक निकलती है। जाड़ोंमें निमोनिया अक्सर हो जाया करती है। ठीक-ठीक पथ्य न मिलनेसे बहुतसे आदमियोंको तिल्ली हो जाती है। कभी-कभी हैज़ेका भी प्रकोप हो जाता है।

प्रश्न—इलाजका क्या प्रबन्ध है?

उत्तर—गाँवोंमें इलाजका कोई भी प्रबन्ध नहीं है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डने कहीं-कहीं प्रबन्ध किया है, पर वह दालमें नमकके बराबर भी नहीं है। बीमार होनेपर गांवोंमें ईश्वर ही रक्षक है। कपड़ोंका तो अभाव रहता ही है। अगर निमोनिया हो जाय, तो बीमारको उढ़ानेके लिए वस्त्र नहीं! जब मि० ब्रेल्सफोर्ड मेरी कुटियापर ठहरे हुए थे, उस समय इंदमई गाँवका एक किसान अपने तीन वर्षके बच्चेको लेकर मेरे पास दवा लेनेको आया। मि० ब्रेल्सफोर्डने उससे पूछा कि इसे अस्पतालमें क्यों नहीं ले जाते? उस समय बच्चेको १०२ डिग्री बुखार था, और उसके तनपर कुरता भी नहीं था। किसानने जवाब दिया—"सफाखानेमें ग़रीबोंको कोई नहीं पूछता। सफाखाने तो अमीरोंके लिए होते हैं।" मैंने मि० ब्रेल्सफोर्डके सामने होमियोपैथी बक्समेंसे एकोनाइट नामक दवा दी, और उससे कहा कि बच्चेको दूध पिलाना। इसपर किसानने कहा कि दूध तो सपनेमें भी नहीं मिल सकता। यह सुनकर मि० ब्रेल्सफोर्डका हृदय द्रवित हो गया और उनकी आँखोंमें आँसू आ गये।

प्रश्न—आपकी सम्मतिमें गाँवोंके लिए दवाईका क्या प्रबन्ध ठीक होगा?

उत्तर—मैं अपने अनुभवसे यह कह सकता हूँ कि अंग्रेज़ी मेडिकल स्कूलोंके पासशुदा डाक्टर लोगोंकी दवाइयाँ ग्रामवाले अपनी ग़रीबीके कारण नहीं ख़रीद सकते। एक तो डाक्टरोंकी संख्या ही बहुत कम है, और फिर उनकी फीस और दवाईके दाम देनेको किसानोंके पास पैसा भी नहीं। यदि कोई चतुर आदमी किसी अनुभवी वैद्यके यहाँ आयुर्वेदका साधारण ज्ञान प्राप्त कर ले, और फादर मुलरकी Twelve Tissue Remedy तथा होमियोपैथी द्वारा भी मामूली तौरपर इलाज करना सीख ले, तो वह ग्रामवालोंके लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

प्रश्न—आपका इस बारेमें निजी अनुभव क्या है?

उत्तर—मैं ढाई-तीन वर्षसे नियमपूर्वक होमियोपैथीकी दवाई बाँटता रहा हूँ, और Twelve Tissue Remedy का भी प्रयोग किया है। हैज़ा, दस्तोंकी बीमारी, सिर-दर्द तथा स्त्रीरोगमें Tissue Remedy ने रामबाणका काम किया है, और फसली बुखार तथा अन्य ज्वरोंमें होमियोपैथीकी औषधियोंने अद्‌भुत चमत्कार दिखलाया है। ये दवाइयाँ इतनी सस्ती होती हैं कि एक पैसेमें एक खुराक बन जाती है। सबसे बढ़कर बात यह है कि इन दवाइयोंसे हानि होनेका खतरा नहीं है। बिच्छूके काटनेपर और आगसे जलनेपर होमियोपैथीकी दवाइयोंने जादू जैसा असर कर दिखाया है।

प्रश्न—ग्रामवासियोंकी शिक्षाके लिए आपकी समझमें सर्वोत्तम उपाय क्या है?

उत्तर—इस प्रश्नको कई विभागोंमें बाँटा जा सकता है। जहाँ तक बड़ी उम्रवालोंकी शिक्षाका विषय है, वहाँ तो मैजिक लेनटर्न (जादूकी लालटेन) द्वारा सरल भाषामें व्याख्यान द्वारा बहुत कुछ काम हो सकता है। इससे ग्रामवासियोंका बड़ा मनोरंजन भी होगा। विषय ऐसे चुने जाने चाहिए, जिनसे उनके दैनिक जीवनका सम्बन्ध हो। ग्रामकी स्त्रियोंके लिए भी कुछ उपयोगी व्याख्यान तैयार करने चाहिए। सफाई, तन्दुरुस्ती, भोजन बनाना, रोगीकी सेवा, शिशु-पालन इत्यादि विषयोंकी शिक्षा मैजिक लेनटर्न द्वारा बड़ी आसानीसे दी जा सकती है। बच्चोंकी शिक्षाका प्रश्न भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। पाठ्य पुस्तकोंके विषय ग्रामोंकी

आवश्यकताके अनुसार चुने जाने चाहिए। इस विषयपर विस्तारपूर्वक फिर कभी कहूँगा। डिस्ट्रिक्ट बोर्डमें जिन महानुभावोंके चार्जमें शिक्षा विषय रहता है, उन्हें प्राय: इतना अवकाश ही नहीं रहता कि वे ग्रामोंका भ्रमण कर ग्रामवासी बच्चों और शिक्षकोंकी कठिनाइयोंका अनुभव प्राप्त कर सकें। ग्रामोंमें अनेकों वर्ष तक शिक्षक रहनेके बाद मैं यह कह सकता हूँ कि ग्राम्य-स्कूलोंकी पढ़ाई किसानोंके लिए बहुत कम उपयोगी है। प्रत्येक ग्राममें स्कूल भी नहीं हैं। जहाँ हैं, वहाँपर आसपासके ग्रामोंसे लड़के आते हैं, और उन्हें खान-पानका बड़ा कष्ट होता है। ग्रामके अध्यापकोंके पास अपना ज्ञान बढ़ानेकी कुछ सामग्री भी नहीं है। न स्कूलोंमें नक्शोंका ही प्रबन्ध है और न टाट वगैरः ही रहते हैं। खेलका भी उचित प्रबन्ध नहीं रहता।

प्रश्न—ग्राम्य स्कूलोंके अध्यापकोंके विषयमें आपकी क्या सम्मति है।

उत्तर—ग्राम्य संगठनका कार्य मुख्यतया इन अध्यापकोंके ही द्वारा किया जा सकता है, इसलिए उनके चुनावमें अत्यन्त सावधानीसे काम लिया जाना चाहिए। ट्रेनिंग स्कूल और नार्मल स्कूलोंकी पढ़ाईमें ग्राम-संगठन विषय खास तौरसे रखा जाना चाहिए। यदि इन शिक्षकोंको क्रियात्मक कृषि-विद्या, खेतीके नवीन यन्त्रोंका प्रयोग, खाद, स्वास्थ्य-रक्षा, First Aid (प्रारम्भिक चिकित्सा), आयुर्वेद तथा होमियोपैथीका भी मामूली ज्ञान करा दिया जाय, तो ये अध्यापक ग्रामोंके लिए बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे। ग्राम-संगठन करनेवालोंको पहले इन अध्यापकोंका संगठन करना चाहिए।

प्रश्न—ग्राम-संगठनका कार्य कैसे उठाया जाय?

उत्तर—जहाँ ज़मींदारोंका सहयोग प्राप्त हो सकता है, वहाँ तो इस कार्यमें बहुत कम कठिनाई पड़ेगी, पर जहांके ज़मींदार उन्नतिशील नहीं हैं, और जो इस विषयके महत्त्वको नहीं समझते अथवा स्वार्थकी वजहसे सहयोग नहीं देना चाहते, वहाँपर ग्राम-संगठन करना कठिन होगा। किसान लोग इस तरह ज़मींदारोंके प्रभावके अधीन हैं कि उनकी हिम्मत किसी स्वतन्त्र कार्यके लिए नहीं पड़ सकती। आवश्यकता इस बातकी है कि कुछ देशभक्त धनाढ्य तथा सार्वजनिक कार्यकर्ता इस प्रश्नको उठावें। पहले तो उन्हें उन तमाम संस्थाओंके कार्यको देखना चाहिए, जिन्होंने इस विषयके प्रयोग किये हैं। यंगमैन क्रिश्चियन एसोसियेशनके आदर्श ग्रामोंका निरीक्षण अत्यन्त आवश्यक है, और प्रयागकी कृषिशालासे भी बहुतसी बातें सीखी जा सकती हैं।

प्रश्न—ग्राम-संगठन करनेवालोंको किन-किन बातोंसे बचना चाहिए?

उत्तर—ग्राम-संगठनकर्ताको किसी भी राजनैतिक या साम्प्रदायिक दलबन्दीमें न पड़ना चाहिए, नहीं तो ग्रामोंमें भी दलबन्दीका संक्रामक रोग फैल जायगा। ग्राम-संगठनका कार्य बिलकुल नि:स्वार्थ और पवित्र दृष्टिसे किया जाना चाहिए। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा कौन्सिलोंके चुनावके अवसरपर संगठनकर्ताको बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिए। हिन्दू-मुसलिम झगड़ोंमें तो उसे कभी भी न पड़ना चाहिए। ग्रामोंमें सभी सम्प्रदायोंके भारतीय रहते हैं, और सभीकी सेवा करना हमारा कर्तव्य है।

प्रश्न—वर्तमान स्वाधीनता-संग्राममें ग्रामवासियोंका क्या कर्तव्य है?

उत्तर—जहाँ तक संग्रामके रचनात्मक भागसे सम्बन्ध है, वहाँ तक तो किसानोंको पूर्ण सहयोग देना ही चाहिए। चरखा और खादी-प्रचारका कार्य तो मुख्यतया गाँववालोंके लिए है ही। करबन्दी इत्यादिके विषयमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यह कार्य साधारण स्थितिके किसानकी सामर्थ्यके बाहर है। कांग्रेसकी माँग स्वीकार हो जानेसे ही एक साथ ग्रामोंका उद्धार थोड़े ही हो जायगा। उनकी आर्थिक स्थितिको सुधारनेमें अनेक वर्ष व्यतीत होंगे। वह दिन अभी दूर ही दीख पड़ता है, जब ग्रामवासियोंके हाथमें असली शक्ति आवेगी। अभी तो जीवित रहनेका प्रश्न हमारे सम्मुख है।

चिट्ठी-पत्री

'मुसकान'के सम्बन्धमें

लगभग साल भरकी बात हुई, "विशाल भारत" के कालमोंमें "मुसकान" उपन्यासकी एक आलोचना प्रकाशित हुई थी। उसे पढ़कर मुझे खुशी भी हुई थी, आश्चर्य भी हुआ था और साथ ही दुःख भी। खुशी इसलिए हुई थी कि मेरे जैसे लेखककी एक क्षुद्र कृतिकी कुछ आलोचना तो हुई। आलोचनाके सम्बन्धमें आजकल मैं एक दूसरी ही प्रवृत्ति देख रहा हूँ। बात यह है कि जहाँ तक सम्भव होता है, *समालोचनामें लेखक 'इग्नोर' किये जाते हैं।* समालोचना तो उन कला-कोविदोंकी कृतियोंकी होती है, जो बहुत ऊँचे शिखरपर विराजमान होते हैं। नहीं तो साधारण *लेखकोंकी कृतियोंकी परख प्रायः नहीं होती।* परिचय-भर लिख दिया जाता है। सो भी टालू ढंगसे, मसलन *'पुस्तक मज़ेकी है। भाषा भी बुरी नहीं है। पाठकोंका समय व्यर्थ नहीं जायगा इत्यादि।'* इसीलिए जब मैंने देखा कि मेरी "मुसकान"के लिए समालोचकने—नहीं भाई, स्वयं सम्पादकजीने—अपना अमूल्य समय और "विशाल-भारत"के चार कालम खर्च किये हैं, तो कोई खासुल-खास बात ज़रूर होगी। मैं मारे खुशीके फूल गया।

अब आश्चर्य और दुःख होनेकी कथा भी सुनिये। आश्चर्य मुझे समालोचनाकी *यथार्थ* कसौटीपर मुग्ध होकर हुआ था। वह भी क्या समालोचना, जिसका कुछ उत्तर दिया जा सके। सो आलोचकने मेरी "मुसकान" की समालोचना भी ऐसी पासग-रहित तराज़ूमें की थी कि मैं एकदमसे अवाक् रह गया! अलोचकजीकी यह प्रतिभा अभी तक क्यों सोई पड़ी रही!! वाकई वह तो एकदमसे चमत्कारिणी कल्पनातीत-सी प्रतीत हुई। और दुःख क्यों हुआ, यह बात अब मैं भला आपसे क्या बताऊँ! लेकिन बतलानेकी इच्छा न होते हुए, उस दिन जब आलोचकजीसे अचानक मुलाक़ात हुई, तो वह बात मेरे मुँहसे निकल ही गई। आपको मालूम ही है, लेखकोंका दिमाग़ी नशा बड़ा विचित्र होता है। जो अपने आपको उपन्यासकार समझनेकी धृष्टता करने जा रहा हो, वह इकतरफ़ा डिगरीसे जब यकायक "अड़मति" बना दिया जाय, तो उसकी गति-मतिकी क्या स्थिति होगी, यह आप स्वयं सोच सकते हैं। उस आलोचनामें मुझे जो आशीर्वाद दिया गया था, वह इस प्रकार है—"आशा है, प्रयत्न करते-करते वे अच्छे औपन्यासिक बन जायँगे—*करत-करत अभ्यासके* लेखक बने महान्।" चतुर्वेदीजीने जो आशा की, ख़ुदा जाने, वह कहां तक पूरी होगी। पर एक बात मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उपर्युक्त दोहेका सम्पादन करते हुए जिस अंशको उन्होंने बदल दिया है, अर्थात् "*अड़मति होत सुजान*", उसके अनुसार इन पंक्तियोंका लेखक अपनेको अड़मति ही समझनेमें *अपना 'गौरव'* समझता है।

लेखककी समझका यह दृष्टिकोण एकदमसे अकारण नहीं है, यह जाननेकी यदि आवश्यकता ही हो, तो कहना होगा कि कहानी और कविताके मामलेमें 'अभ्यास' का उतना स्थान नहीं है, जितना अनुभूति और प्रतिभाका। जिन लोगोंका यह विश्वास हो कि कहानी या कविता लिखना अभ्यास-आपेक्षित है, वे मुझे क्षमा करें। अभ्यास करनेसे भाषामें सुधार हो सकता है, पर जहाँ तक इस विषयमें कलाका सम्बन्ध है, अभ्यासको क़तई महत्व नहीं दिया जा सकता। अभ्यास किये बिना भी लेखक अपनी पहली ही कृतिके कारण अमर हो सकता है, और अभ्यासका क्रम उत्तरोत्तर वृद्धिगत रखने और अनेक कृतियाँ करते रहनेपर भी लेखक अमर हो ही सकता है, यह नहीं कहा जा सकता। अभ्यासका सामञ्जस्य चेष्टा और प्रयत्नके द्वारा होता है। पर कलाकी सृष्टि अन्तर्ध्वनिसे होती है। इसलिए इन पंक्तियोंके लेखकका यह अपराध यदि सदा अक्षम्य ही बना रहे कि वह उपन्यास लिखनेका अभ्यास करनेका आदी नहीं है, तो भी शायद उसकी गति-मतिमें कोई व्यवधान न पड़ेगा।

आलोचककी शिकायत यह है कि 'मुसकान' उपन्यासमें दुर्घटनाएँ अधिक हैं। और उच्चकोटिके औपन्यासिक, जो मनोविज्ञानके ज्ञाता हैं, इन बातोंका आश्रय नहीं लेते। आलोचकका यह कथन भी यथार्थ ही है। यदि उच्चकोटिके उपन्यासकारोंका *यही लक्षण मान लिया जाय*, तब तो शिकायतकी ज़रा भी गुंजायश नहीं है। एक तो 'मुसकान' लेखकने उच्चकोटिका उपन्यासकार बननेके स्वप्न देखनेका अभ्यास भी नहीं किया है। दूसरे, यदि समालोचक-समुदाय मिलकर इस बातका निश्चय कर भी दे कि इतने पृष्ठोंके उपन्यासमें इतनी घटनाएँ होनी चाहिए, तो भी इस नियमका निरन्तर उल्लंघन करनेवाले धृष्ट उपन्यासकार यदि कभी उच्चकोटिके

कहलाने लगेंगे, तो साहित्यका बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा, यह भी तो एक विकट समस्या है।

परन्तु इस बातका निर्णय करनेके पूर्व ही मेरी एक दरख्वास्तपर यदि आप ग़ौर फ़रमायें, तो मैं आपका बहुत शुक्रिया अदा करूँगा। हुज़ूर पहले यह भी ते कर दें कि मनुष्यके जीवनमें कितनी दुर्घटनाएँ होनी चाहिए। साथ ही इस बातपर भी विचार कर लेना ज़रूरी है कि यदि दुर्घटनाओंकी उस परिमित सङ्ख्यासे किसी व्यक्तिके जीवनमें कुछ अधिक दुर्घटनाएँ हो ही जायँ, तो भला मियाँ किस सज़ाके मुस्तहक़ होंगे!

क्या उपन्यासकी सफलता दुर्घटनाओंकी कमी-बेशीपर आपेक्षित है? नहीं भाई, दुर्घटनाएँ उपन्यासका वाह्यरूप होती हैं। आपको किसीका वाह्यरूप पसन्द नहीं आया, आपने देखा कि यह तो कई कपड़े पहने डटे हुए हैं, तो क्या आप उससे बात नहीं करेंगे? कोई सिरपर मुरेठा बाँधे हुए है, अँगरखेके भीतर रुईका सलूका भी है और पैरोंमें पायजामा, भीतर धोती और बाहर मोज़े भी। माना कि आपको यह सब पसन्द नहीं है। आप सर खुला रखते हैं और केवल कोट कमीज़ और ढीली धोती ही धारण करते हैं। पर इससे क्या? देखना तो यह चाहिए कि दोनोंमें मनुष्यत्वके नाते किसका कहाँ स्थान है। अभीष्ट देखना तो यह होगा कि दूसरा व्यक्ति कपड़े अधिक ज़रूर पहने हैं, पर उसके इस ढंगमें कहीं कोई अस्वाभाविकता या कृत्रिमता तो नहीं है। पर यह सब भी रूपकी परीक्षा होगी। मनुष्यत्वकी परीक्षा तो भीतरकी वस्तु है। उसका मर्म तो तभी मिलेगा जब आप उसकी बात सुनेंगे, और इन बातोंमें उसके चरित्रका यथार्थ जीवन देखेंगे। उपन्यासकी परीक्षा भी इसी तरह कीजिये तो अच्छा होगा। देखिये, उसके पात्र हैं किस ढंगके। वे जो कुछ कहते हैं, वे जो कुछ करते हैं, उससे क्या ध्वनि निकलती है। आपने कह दिया—यह चीज़ अच्छी है, यह बुरी है, यह तो समीक्षा नहीं हुई।

इन पंक्तियोंको समाप्त करते हुए मुझे रस्किनका एक कथन याद आ गया। एक बार उसने इसी विषयपर कहा था कि शरीरकी सुन्दर गठनको सभी देख सकते हैं और समझ सकते हैं, पर शरीरके द्वारा जिस भावकी अभिव्यक्ति होती है, उसको देखनेके लिए कुछ समझ चाहिए। जो चित्रकार मनुष्यकी आकृतिमें भिन्न-भिन्न अवस्थाओंकी भावना व्यक्त करता है, उसको अपने जीवनमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। जो चित्र उसके वर्षोंके अध्ययन और परिश्रमका फल है, उसके सम्बन्धमें घड़ी-भरमें यह सोच लेना बड़े साहसका काम है कि जो कुरूपता हमने क्षण-भरमें देख ली है, वह चित्रकारको नहीं दिखलाई दी होगी।

सच पूछिये तो आज पूरे वर्ष-भर बाद 'मुसकान' की उस आलोचनाका उत्तर देनेकी आवश्यकता न थी; लेकिन उदार-हृदय आलोचकजीकी इच्छासे उत्साहित होकर ये कुछ विचार लिख दिये गये हैं। यदि इनमें कहीं कोई बात लेखककी विनयशीलतापर प्रहार करनेवाली जान पड़े, तो वह क्षमा की जाय। इसलिए कि उसे समालोचना जैसे कटकाकीर्ण पथका पथिक बननेका क़तई अभ्यास नहीं है, और ईश्वर न करे कि उसे कभी इसका अभ्यास करना पड़े

—भगवतीप्रसाद वाजपेयी

गुजरातके चित्रकार

'विशाल-भारत' के कला-अङ्कमें श्री बचु भाई रावतका 'गुजरातमें कला-सम्बन्धी नवीन जाग्रति' शीर्षक एक सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें श्री बचु भाईने गुजरातके आधुनिक चित्रकारोंका परिचय दिया है। परन्तु खेद है कि उस लेखमें कुछ प्रसिद्ध गुजराती चित्रकारोंका वर्णन छूट गया है। मैं यहाँ उनका सक्षेपमें कुछ वर्णन किये देता हूँ।

जब चित्रकार श्री रविशंकर रावल बम्बईके आर्ट स्कूलमें पढ़ते थे, उस समय गुजरातमें सबसे प्रसिद्ध चित्रकार श्री मगनलालजी थे। उन्होंने अनेकों तैलचित्र बनाये हैं, जिनमें कुछ चित्र ऐतिहासिक भी हैं। बंग-भंगके समय उन्होंने भारतमाताका एक सुन्दर चित्र बनाया था, जो बहुत प्रसिद्ध हुआ था। हाँ, यह बात ज़रूर है कि उन्होंने सामयिक पत्रों या पुस्तकोंके लिए चित्र नहीं बनाये।

जिस समय श्रीयुत रावलने अहमदाबादमें रहना शुरू किया था, उस समय चित्रकार स्वर्गीय त्रिभुवन पटेल भी जीवित थे। मेरी समझसे त्रिभुवन पटेलके समान कार्य गुजरातमें किसीने भी नहीं किया। इन दोनों ही चित्रकारोंने स्वयं विद्योपार्जन किया था, उन्होंने कभी कलाके किसी स्कूलका मुँह भी न देखा था। सन् १९२२ में श्रीयुत पटेलका देहान्त हो गया। उनकी शोकजनक मृत्युसे गुजराती कलाको जो हानि पहुँची है, वह अभी तक पूरी नहीं हुई।

१९२२ में अहमदाबादकी कांग्रेसके मंडपको सजानेके

लिए जो चित्र तैयार किये गये थे, वे चित्रकार कल्याणजी शुक्लके बनाये हुए थे। श्रीयुत शुक्ल इस समय अहमदाबादमें चित्रकलाकी शिक्षा देते हैं। आप एकान्तप्रिय होनेके कारण सर्वसाधारणकी नज़रोंमें नहीं आये।

श्री चन्दूलाल शाह भी एक अच्छे चित्रकार हैं, जिनके कई और तथा गुजरातकी प्राचीन मूर्तियोंकी रेखाकृतिया गुजराती 'नवचेतन' में प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्रीयुत हरिलाल त्रिवेदीके चित्र 'शारदा' नामक गुजराती मासिकपत्रिकामें अक्सर निकलते रहते हैं। इनके अतिरिक्त नवयुवक चित्रकारोंमें श्री जगमोहन मिस्त्री तथा श्रीयुत यज्ञेश्वर शुक्ल आदि हैं।

श्री यज्ञेश्वर शुक्लके चित्र गत वर्ष 'बाम्बे क्रानिकल' के कांग्रेस-अंकमें प्रकाशित हुए थे, और 'बम्बई समाचार' में भी निकले थे। श्रीयुत शुक्ल इस समय बम्बईके आर्टस्कूलमें पढ़ रहे हैं।

गुजरातके चित्रकार अकर्मण्यता छोड़कर कलाकी उन्नति करें, यही हमारी कामना है। —जिज्ञासु

क्या परलोक-विद्या काल्पनिक है ?

परलोकवादके विषयमें श्री अवध उपाध्यायका लेख पढ़कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। कुछ महीने पहले मुझे उनसे मिलनेका संयोग हुआ था। उस समय मैंने उन्हें इस विषयके सम्बन्धमें विचार-विनिमय करनेके लिए बुलाया था, किन्तु आठ दस दिनमें वे एक दिन भी नहीं आये। इस लेखमें उनके विचार देखकर उनके अज्ञानका अच्छा पता लगता है।

समग्र लेख पढ़नेसे यह प्रकट होता है कि श्री उपाध्यायजीके मतसे परलोक-विद्या केवल कल्पना अथवा धोखेबाज़ीका परिणाम है। वे समझते हैं कि माध्यमोंकी धूर्तता तथा चालाकीसे पश्चिमीय लोगोंका इस महत्त्वपूर्ण ज्ञानपर विश्वास हो गया था, किन्तु उनकी क़लई खुल जानेपर वे आशंकित हो गये। इस लेखमें कई बातें बिलकुल निराधार हैं। श्री उपाध्यायजीने शब्दाडम्बरसे लोगोंका दृष्टिभ्रम करनेका अश्लाघ्य प्रयत्न किया है। सर कैननडायल आदि प्रसिद्ध परलोकवादियोंसे प्रत्यक्ष मिलनेका सुयोग मुझे प्राप्त हुआ था। उनके ग्रन्थ पढ़नेसे उनका निरीक्षण और अध्ययन कितना दीर्घ था, इसकी कल्पना सहज ही हो सकती है। सर कैननडायलने अपने 'न्यू रेवीलिशन' नामक पुस्तकमें लिखा है—"इस विद्याका अध्ययन तथा विचार मैंने जितना किया है, उतना किसी भी अन्य विषयका नहीं किया है।" वे इस विद्याको पहले मूर्खता तथा अज्ञानकी चीज़ मानते थे, किन्तु तीस-पैंतीस वर्ष तक लगातार अवलोकन करनेसे उनका इसपर दृढ़ विश्वास हो गया, और वे इस विद्याके अनन्य भक्त हो गये। अपनी आयुके अन्तिम कालमें उन्होंने इस विद्यासे अपना सम्बन्ध तोड़ दिया था, यह कथन नितान्त भ्रमोत्पादक है। 'सायकिक रिसर्च सोसाइटी' के मार्गसे सहमत न होनेके कारण उन्होंने उस सोसाइटीके सदस्यके पदसे त्यागपत्र दे दिया था। 'सायकिक रिसर्च सोसाइटी' के और 'स्पिरिचुएलिस्टिक सोसाइटी' के मतोंमें अन्तर होनेके कारण उन्होंने ऐसा करना उचित समझा; क्योंकि वे कट्टर परलोक-विद्यावादी थे, उनको पूरा विश्वास था कि 'सायकिक रिसर्च सोसाइटी' की अभी तक सशंक वृत्ति थी। इस सशंक वृत्तिके होते हुए किसी सोसाइटीके सभासद सर कैननडायल-जैसे परलोक विद्याके अनन्य भक्त कैसे रह सकते थे ?

पुत्र-वियोगके दुःखसे अथवा अन्य किसी नैमित्तिक कारणसे सर आलिवरलाज अथवा सर कोननडायलका चित्त इस विद्याकी तरफ आकर्षित नहीं हुआ। उस घटनाके पहलेसे ही उन्होंने अभ्यास करना शुरू किया था, ग्रन्थ लिखे थे और जनताको अपने ज्ञानका लाभ पहुँचाया था। केवल सत्यान्वेषणसे ही वे प्रेरित हुए थे और दूसरे किसी हेतुका आरोप करनेसे वस्तु-स्थितिका विपर्यास करना होगा। 'सरवाइवल आफ मैन' आदि ग्रन्थ सर आलिवरलाजने रेमंडकी मृत्यु होनेके कई वर्ष पहले लिखे थे, और वे अब भी इस विषयके नये-नये ग्रन्थ प्रकाशित करके जनताके ज्ञानका विस्तार कर रहे हैं। यदि महायुद्धके पहले लोग इस महत्त्वपूर्ण ज्ञानके सम्बन्धमें उदासीन थे, तो यह उनका दोष मानना चाहिए। व्याकुल हृदयसे जब वे विचार करने लगे, तब परलोक-विद्यावादियोंने उनकी अच्छी तरह मदद करके उनका समाधान किया। इसी कारणसे इस विद्याका प्रचार ज़ोरसे होने लगा और आज केवल इंग्लैंडमें पाँच सौ 'स्पिरीच्युएलिष्टिक सोसाइटी' बराबर काम कर रही हैं। क्या यह सब धोखेबाज़ीका परिणाम है ?

युसेपिया आदि प्रसिद्ध माध्यमोंके बारेमें भी जो उपाध्यायजीने लिखा है, वह केवल विरोधी ग्रन्थ देखकर लिखा हुआ प्रतीत होता है। माध्यमोंके दोष निकालने

वालोंने कुछ ग्रन्थ लिखे हैं, उनके आधारसे इस प्रकार दृष्टि-भ्रम कर देना सहज है। इस विषयका पूर्ण विवेचन करनेके लिए और अमुक माध्यम विश्वसनीय थे या नहीं, इसका निर्णय करनेके लिए कई लेख लिखने आवश्यक होंगे। प्रस्तुत लेखमें यह कार्य नहीं हो सकेगा। युसेपिया पैलेडिनोके विषयमें बहुत-कुछ लिखा गया है। वह एक प्रसिद्ध माध्यम थी। बहुतसे लोग उसके प्रयोग देखकर आश्चर्य-चकित हो गये थे, और इन अद्भुत अनुभवोंसे इस विद्याकी सत्यता मानने लगे थे। युसेपियामें जैसी एक नैसर्गिक शक्ति थी, उसी प्रकार कुछ दोष भी थे। अपने दुराग्रहसे वह अपने दोष दूर न कर सकी और इसीलिए विरोधियोंको सहज ही अवसर मिल गया। हेरवड कैरिंगटनके 'मेरे परलोक ज्ञानके अनुभव' नामक पुस्तकमें पाठकोंको सविस्तार वृत्तान्त मिल सकेगा।

परलोक-वर्णन पढ़कर लेखक महोदयको बड़ा आश्चर्य हुआ है। जिनको मरणोत्तर अस्तित्व और दिवंगत मनुष्योंसे वार्तालाप करना संभवनीय प्रतीत नहीं होता, उनका विचार इस प्रकार होना स्वाभाविक है। किन्तु जिन्होंने इस सत्यको समझ लिया है, उनको मृतात्माओं द्वारा प्राप्त हुआ परलोक-वर्णन किसी अन्य कारणसे अविश्वसनीय नहीं हो सकता। इस वर्णनकी सत्यताके विषयमें इतना कहना पर्याप्त होगा कि जिन्होंने यह वर्णन दिया है कि उन्होंने अपना मरणोत्तर वैयक्तिक अस्तित्व सन्देह-रहित प्रमाणोंसे सिद्ध कर दिया था। सब देशोंमें प्रायः एक ही प्रकारका वर्णन आता है। ऐसे कई कारणोंसे यह वर्णन यदि अपनी पूर्व कल्पनासे असगत अथवा विरुद्ध प्रतीत होता हो, तो भी किसी भी निष्पक्ष समझदार मनुष्यको विश्वसनीय मानना पड़ेगा। सर ओलिवर लाजके स्वर्गीय पुत्रने अथवा अन्य किसी परिचित मृतात्माने अपना अस्तित्व निसंदेह स्थापित करनेके पश्चात् अपनी दिनचर्या अथवा अन्य बातें लिखीं, तो उन्हें विश्वसनीय माननेमें कौनसी आपत्ति होगी? इस सम्बन्धमें महाकवि कालिदासका वचन "पुराणमित्येव न साधु सर्वम्। नवीन मित्येव न गर्हणीयम्॥" माननीय है।

इस विद्याकी सत्यता देखनेके लिए हमेशा किसी माध्यमकी भी आवश्यकता नहीं होती। ईश्वरकी कृपासे यह शक्ति न्यूनाधिक परिमाणमें प्रायः प्रत्येक मनुष्यमें है। स्वल्प प्रयत्नसे इसका विकास हो सकता है, और अपने प्रिय परलोक-वासियोंसे वर्तालाप करना शुरू हो सकता है। मैं अपने निजी प्रयोगोंमें दस सालसे इस सत्यका अनुभव कर रहा हूँ। मेरी स्वर्गीय पत्नीका विलायतके माध्यम द्वारा फोटो आया है। क्या यह सब ढकोसला है? ये सब प्रमाण तथा अपनी पुस्तकमें जो अन्य प्रमाण मैंने दिये हैं, यदि वे सब अविश्वसनीय माने जायँ, तो संसारमें किसी बातपर विश्वास रखना कठिन हो जायगा।

समस्त सुशिक्षित संसारमें इस विद्याका आन्दोलन जारी है। सन् १९२८ में लन्दनमें 'अन्तर्राष्ट्रीय परलोक-विद्या कांग्रेस' हुई थी। उसमें तीस देशोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे। भारतवर्षकी तरफसे मुझे उपस्थित होनेका सुयोग प्राप्त हुआ था। उस महासभामें सात दिन चर्चा होकर परलोक-विद्याके विविध सिद्धात निश्चित किये गये। सूक्ष्मदृष्टिसे उनका अवलोकन किया गया तो यह सिद्ध हुआ कि वे सिद्धान्त हिन्दूधर्मके बहुत परिपोषक हैं। इस कारणसे हिन्दू-जनताको इस विद्याके प्रसारमें यथेष्ट सहायता देना चाहिए। किन्तु दुर्भाग्यवश यह देखनेमें आता है कि आधुनिक शिक्षा-विहीन जनतामें इस सम्बन्धमें कुछ विश्वास भी है, पर आंग्ल विद्या-विभूषितोंमें प्रायः सशंक वृत्ति प्रतीत होती है। उनको विश्वास दिलाना परमावश्यक है। भारतवर्षमें कई माननीय लोग इस विद्याकी सत्यता मानते हैं और निजी प्रयोगोंमें उनको अच्छे अनुभव भी प्राप्त हुए हैं, किन्तु सघटित प्रयत्न न होनेके कारण उनके अनुभवोंका लाभ साधारण जनताको नहीं होता और यह समझा जाता है कि यह केवल एक-दो व्यक्तियोंका खेल है। जिस ज्ञानसे विरहदग्ध मनुष्योंका समाधान होता है, जिससे मानवी विचारोंमें क्रांति होगी, जिससे धर्म ग्लानि नष्ट होकर मनुष्य सचेत होगा, ऐसे महत्वपूर्ण विषयके बारेमें भ्रमपूर्ण विचार फैलानेका प्रयत्न करना सर्वथा अश्लाघ्य है।

—बी० डी० ऋषि

स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी

श्री श्रीराम शर्मा, बी०ए०

"अमानुषिकता, असज्जनताके विरुद्ध लड़ता रहा, और ईश्वर बल दे कि आगे भी लड़ सकूँ।' यह मार्मिक वाक्य श्रद्धेय विद्यार्थीजीने गत २६ जनवरी सन् १९३१ को अपनी जेल-डायरीमें अंकित किया था। यह वाक्य उनके जीवनका मूल मन्त्र था। वे अमानुषिकता और असज्जनताके विरुद्ध अन्तिम श्वास तक लड़ते रहे—उसी सिद्धान्तपर शहीद हो गये ! शिवि और दधीचिने भी अमानुषिकता और असज्जन-रूपी दैत्यके दमनके लिए अपना मांस और हड्डी दी थीं, और श्रद्धेय विद्यार्थीजीने भी हिन्दू मुसलिम-ऐक्य तरुके लिए अपना सर्वस्व दे डाला। उसे अपने खूनसे सींचा। भगवन्, वह तरु पल्लवित होकर फले-फूले। यही कामना है।

पर, श्रद्धेय विद्यार्थीजीको स्वर्गीय लिखते हुए हृदयमें एक हूक उठती है। शूल-सा होने लगता है। उनके बधसे हृदयको एक ऐसी चोट लगी है कि इन पंक्तियोंका लेखक किं-कर्तव्य-विमूढ़-सा हो गया है, और उनके विषयमें अभी कुछ विचार-पूर्वक लिखनेको सर्वथा असमर्थ है। फिर भी इस अवसरपर उस महापुरुषकी स्मृतिमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना अपना वह कर्तव्य समझता है। इस लेखका उद्देश उनकी जीवनी नहीं है, वरन् एक सरसरी तौरसे उस महान आत्माके आदरणीय तथा पवित्र जीवनका विहंगावलोकन करना है। अधिकांश लोग चालीस वर्षकी आयुके लगभग अपना सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ करते हैं, पर विद्यार्थीजीने चालीस वर्षकी आयुमें साहित्य, राजनीति, पत्रकार-कला और सार्वजनिक जीवनमें इतना काम किया कि वे अमर हो गये। उनकी मौत भी ऐसी निराली और पवित्र रही कि जैसी सन् १८५७ के बाद बहुत कम महापुरुषोंको नसीब हुई होगी।

× × ×

श्री गणेशशंकरजीके पिता बाबू जयनारायणजी हतगांव जिला फतहपुरके निवासी थे। फारसीके वे अच्छे ज्ञाता थे। अंग्रेज़ी अध्ययन भी उन्होंने स्वयं किया और वे मुंगावली राज्य ग्वालियरके ऐंग्लो वरनाक्यूलर स्कूलके सेकेंड मास्टर हो गये।

स्वर्गीय श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी

बालक गणेशका जन्म प्रयागमें—उनके ननिहालमें—क्वार सुदी १४ इतवार संवत् १९४७ वि०को हुआ। जब वे गर्भमें थे, तब उनकी नानीने एक स्वप्न देखा कि उनके हाथमें किसीने गणेशकी मूर्ति दी है। इसलिए उन्होंने निश्चय कर लिया कि उनके दौहित्रका नाम गणेश रखा जायगा और यदि कन्या हुई तो गणेशी नाम होगा। परमात्माकी कृपासे सबकी मनोकामना पूरी हुई और बालकका जन्म

सन् १९ में प्रतापका स्टाफ। बैठे हुए बाईं ओरसे—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, श्री श्रीराम शर्मा। खड़े हुए—श्री सुरेश भट्टाचार्य, श्री रामस्वरूप गुप्त श्री ब्रजविहारी मेहरोत्रा, श्री भागीरथ प्रसाद।

हुआ। नाम तो पहलेसे ही निर्णय हो चुका था। जन्मके समय बालक गणेशकी आंखें कुछ छोटीसी थीं, पर जैसे ही समय बीतता गया, वे आंखें बढ़कर उचित आकारको प्राप्त कर कितनी स्नेहमयी हो गईं, इस बातको प्रत्येक परिचित व्यक्ति जानता है।

बालक गणेशका जन्म उसके कुटुम्बके लिए प्रत्येक दृष्टिसे शुभसूचक हुआ। उनके पिताकी वेतन-वृद्धि भी हो गई। पाँच वर्षकी आयुमें उनको उर्दू पढ़ाना प्रारम्भ किया गया। इस प्रकार उनकी प्रारम्भिक शिक्षा राज्य ग्वालियरमें हुई। बाल्यावस्थामें गणेशशंकरपर बाबू जयनारायणके चरित्र-गठन, शिष्टाचार और सहृदयताका बड़ा प्रभाव पड़ा।

किसी व्यक्ति और आन्दोलनकी पूर्व परिस्थिति (Back ground) को समझे बिना उसके वास्तविक रूप अथवा बड़ाई-छुटाईको समझना कठिन हो जाता है। मनुष्यका बाल्यकाल, उसकी अमीरी और ग़रीबी विपत्ति, और सुख और उसका पूर्व स्वभाव उसके जीवनकी परिस्थिति (Back ground) है। श्री गणेशशंकर जी के बाल्यकाल और युवावस्थामें पदार्पण करनेसे पूर्वकी कुछ घटनाएँ उनकी सिद्धान्तपर अटल रहनेकी वीरोचित भावनाका हमें दिग्दर्शन कराती हैं। उस समयकी एक घटना यहां दी जाती है।

अबसे बहुत पहले पोस्टकार्डका टिकट (स्टाम्प) काटकर किसी कागज़ या सादा पोस्टकार्डपर लगाना क़ानूनन जायज़ था। एक बार इसी प्रकार एक पोस्टकार्ड बैरंग कर दिया

राष्ट्रीय झंडेमें ढका हुआ विद्यार्थीजीका शव

श्री गणेशशंकरजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री हरिशंकर विद्यार्थी

गया। गणेशशंकरने एक पोस्टकार्डका स्टाम्प काटकर एक दूसरे कागज़पर लगाया और अपने नामपर उसे डाल दिया। पोस्टकार्ड बैरंग होकर उनके पास आया। पैसे देकर उन्होंने पोस्टकार्ड ले लिया और पोस्ट-मास्टरके यहाँ इस सम्बन्धकी लिखा पढ़ी की। वे अधिकारियोंसे इतने भिड़े कि उनको अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी, और उनके पैसे लौटा दिये गये। यह घटना उस समयकी है, जब गणेशशंकरजी मिडिलस्कूलमें पढ़ते थे। पाठक इससे समझ

सङ्ख्याङ्कित व्यक्तियोंमें १ श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, २ श्री एस० आर० पंडित और ३ पं० रमाकान्त मालवीय हैं
[श्मशान घाटमें लोगोंके बीचमें बैठकर श्री आर० एस० पंडित, श्री रमाकान्त मालवीय और श्री पुरुषोत्तमदास टंडन विद्यार्थीजीकी हत्याके सम्बन्धमें बयान ले रहे हैं]

सकते हैं कि डटकर लड़नेकी उनकी प्रवृत्तिका अंकुर उनके बाल्यकालमें ही उत्पन्न हुआ था।

समाचारपत्र पढ़नेका शौक़ भी उन्हें प्रारम्भसे ही था। शौक़ क्या, वह तो उनका दैनिक मानसिक भोजन था। अध्ययनशील भी वे परले सिरेके थे।

सन् १९०७ ई० में श्री गणेशशंकर विद्यार्थीने एन्ट्रेन्स परीक्षा पास की और १९०८ में इन्टरमीडियेटमें पढ़नेके लिए प्रयाग चले गये, पर आर्थिक संकट तथा गृहस्थीके भारके कारण उनकी पढ़ाई-लिखाई न हो सकी, और वे कानपुर लौट आये। वहाँ उन्होंने नौकरी कर ली। सन् १९०७ से १९१३ तक—'प्रताप' के जन्म तक—का काल विद्यार्थीजीके जीवनमें उनकी आत्माका युद्ध-काल है। ऐसे संघर्षण प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें आते हैं, और ऐसे ही कालमें मनुष्य धैर्य आत्माभिमान और कर्मयोगकी कड़ी कसौटीपर कसा जाता है। महानुभाव इस कसौटीपर खरे उतरते हैं, और साधारण प्राणी विपत्तियोंकी लहरमें बहे चले जाते हैं, प्रतिदिन प्रतिमास, प्रतिवर्ष और प्रतियुगमें लाखों मनुष्य समयके थपेड़ोंसे नष्टभ्रष्ट हो जाते हैं; पर वीर पुरुष—वे जिनके सतसे संसार कायम है और वे जो डूबतोंको सहारा और आदर्श हैं—संकीर्णता, हृदयहीनता और अमानुषिकताके भँवरोंको लांघकर, क्रूरता और अत्याचाररूपी मगरमच्छोंको परास्त कर अपना सत्यपथ स्वयं खोज निकालते हैं और विरोधरूपी चट्टानोंको चूर करके सुखद मार्गपर न केवल स्वयं ही चलते बल्कि लगड़े-लूलोंका हाथ पकड़कर उन्हें भी वह परम पवित्र पथ प्रदर्शित करते हैं।

प्रयागसे लौटकर श्री गणेशशंकरजीने कानपुरमें करेन्सी-विभागमें नौकरी कर ली। वेतन कदाचित बीस रुपया मासिक था। काम करनेमें तो वे कुशल थे ही, पर अध्ययनशील वे इतने थे कि जब कभी उन्हें समय मिलता, तब वे पुस्तकावलोकनमें व्यस्त हो जाते। एक बार वे बैठे हुए पढ़ रहे थे और नोट भी जलाते जा रहे थे। नोटोंके जलानेका उचित प्रबन्ध करके वे किताब खोलकर पढ़ने लगे। इतनेमें उनका अंग्रेज़ अफ़सर आ गया। वाद-विवादमें अफ़सरने अन्तमें यह कहा—"I am the monarch of all I survey. (मैं अपने अधीन लोगोंका निरंकुश शासक हूँ)। गणेशशंकरजी भला इस बातको कब सहनेवाले थे। उन्होंने नौकरीसे इस्तीफा दे दिया।

इसके पश्चात् वे कानपुरके पृथ्वीनाथ हाई स्कूलमें अध्यापक हो गये। उन दिनों 'कर्मयोगी' बम विस्फोटक-सा समझा जाता था। उसकी खासी धूम थी। विद्यार्थीजी 'कर्मयोगी' पढ़ा करते थे, और उसको स्कूल भी ले जाते और छुट्टीके समय उसे पढ़ा करते। 'कर्मयोगी'को स्कूल न ले जानेका कोई नियम तो था नहीं, इसलिए विद्यार्थीजी उसको साथ ले जाते और अवकाशमें पढ़ा करते। एक बार छुट्टीके समय वे क्लासमें बैठे 'कर्मयोगी' पढ़ रहे थे कि हेड मास्टरने आकर देख लिया। वाद-विवाद हो पड़ा और विद्यार्थीजीने वहांसे भी त्यागपत्र दे दिया। योगी जिस प्रकार मायाकी अन्धकारमय घाटियोंको पार करके निर्विकल्प समाधिमें लीन हो जाता है, उसी प्रकार विद्यार्थीजी अपनी प्रकृतिके विपरीत कार्यको छोड़कर अब पत्रकार-कलाकी ओर आ गये। उन्होंने 'सरस्वती'में एक सुन्दर लेख लिखा। कदाचित 'टाइटानिक' जहाजके डूबनेपर लिखा था। पूज्य द्विवेदीजी होनहार सम्पादकपर मुग्ध हो गये और उनको 'सरस्वती'में बुला लिया।

एक वर्षके उपरान्त वे 'अभ्युदय' में चले गये। 'अभ्युदय' में भी वे सफलतापूर्वक काम करते रहे। 'अभ्युदय' की आर्थिक स्थिति कुछ बिगड़-सी गई और मालवीय परिवारने उसे बेचनेका विचार किया। अभ्युदय' के सस्ते दामोंपर बिकनेकी आशंका थी। युवा गणेशशङ्करने 'अभ्युदय'को स्वयं मोल लेनेका प्रयत्न किया और अपने प्रिय मित्र अथवा भाई पं० शिवनारायणजी मिश्रको रुपयेके प्रबन्धके लिए लिखा, पर 'अभ्युदय' की बिक्री रोक दी गई और मिश्रजीके प्रयत्न निरर्थक ही रहे। 'अभ्युदय'-सम्बन्धी बात मैंने अभी मिश्रजीकी प्राइवेट फाइलमें पढ़ी है।

मिश्रजी और विद्यार्थीका सम्बन्ध भी 'प्रताप' के जन्मके लिए एक अद्वितीय बात थी। जिन दिनों श्री विद्यार्थीजी कानपुरमें सरकारी नौकरीपर थे, उन दिनों मिश्रजी ब्रह्मावर्त सनातन-धर्म-मंडलके सेक्रेटरी थे। एक दिन मंडलकी ओरसे व्याख्यान हो रहे थे। श्रोताओंमें से एक गम्भीर मुखाकृतिवाला युवक उठा और कहने लगा—"क्या मैं भी कुछ कह सकता हूँ?" उसे बोलनेकी आज्ञा दी गई। युवकने बोलना प्रारम्भ किया और ऐसा बोला कि सबको मंत्र-मुग्ध कर दिया, और मिश्रजीको तो उसने अपना लिया। वह युवक गणेशशंकर विद्यार्थी ही था। उस दिनसे मिश्रजीकी विद्यार्थीजीकी मैत्री इतनी बढ़ी कि 'प्रताप'के जन्मके कई वर्ष बाद तक कानपुरके अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति दोनोंको सहोदर समझते थे।

'अभ्युदय' से श्री गणेशशंकरजी चले आये, और सन् १९१३में उन्होंने १६ पृष्ठका 'प्रताप' निकाला। 'प्रताप'के जन्मसे लेकर २५ मार्च सन् १९३१ तक उनका जीवन 'देशकी सम्पत्ति' रहा है। 'प्रताप' श्री गणेशशंकरजीका प्रतिबिम्ब था। 'प्रताप'के रूपमें विद्यार्थीजी देशकी भग्नावशेष कुटियामें पहुँचते थे, पर अनेक लोगोंको यह पता नहीं होगा कि गणेशशंकरजीको 'प्रताप' के सम्पादन और संचालनमें कैसी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं और किस प्रकार वे नरपुंगव राणा प्रतापके समान अपने सिद्धान्तोंपर अटल रहे। फ़ीलखानामें तीन रुपया मासिकका एक जीर्ण-शीर्ण मकान लिया गया। 'प्रताप' का जन्म वहीं हुआ। गणेशशंकरजी और शिवनारायणजीके पास रुपया तो था ही नहीं, और न कोई उनकी साख थी, पर इन सबसे बढ़कर उनके पास दो चीज़ें थीं—वे थीं पवित्रतम लगन और अनुपम त्याग। दो-तीन सौ रुपयेका प्रबन्ध करके 'प्रताप' निकाला गया। ३-४ ही अंक निकले होंगे कि प्रेसवालोंने बाधा डाली। ३-४ अंकोंमें घाटा रहा। प्रेसवालोंने समझा कि कहीं छपाईके दाम न मारे जावें। विकट समस्या थी, पर इन्हीं कठिनाइयोंका सामना करनेसे आदमी आदमी बनता है। विद्यार्थीजी विचलित नहीं हुए। विपत्तियाँ और आवश्यकताएँ विशेष व्यक्तियोंकी सूझ भी बढ़ा देती हैं। उनकी बुद्धिको पैना कर देती हैं। विद्यार्थीजीने प्रयत्न किया और एक छोटासा प्रेस मोल ले लिया। इस कार्यमें कानपुरके सेठ रामगोपालने कुछ सहायता की, और सेठ कमलापतिजीने कुछ क़र्ज़ दिया, जो बादमें सहायताके रूपमें ही रहा। कदाचित इस योजनामें लगभग सात सौ रुपये लगे होंगे। श्री नारायणप्रसादजी अरोड़ाने भी 'प्रताप'के संचालनमें हाथ बटाया था, पर वे थोड़े दिनों बाद ही अलग हो गये। लेखकके ख़यालसे सबसे बड़ी सहायता विद्यार्थीजी और मिश्रजीको मिली कानपुरके प्रसिद्ध विचारशील दार्शनिक-वृत्तिवाले महाशय काशीनाथजीसे। उन दिनों उनके परामर्श और उनके द्वारा अन्य सहायताने 'प्रताप'के लिए वह काम किया, जो बादबान नावके लिए करते हैं। पर 'प्रताप'का संचालन और सम्पादन तो केवल मिश्रजी और विद्यार्थीजी पर था। स्याही लगानेसे लेकर कम्पोज़ीटरी तकका काम मिश्रजी करते थे। लिखनेका काम आद्योपान्त विद्यार्थीजीके ऊपर था। ग्राहकोंके पते तक स्वयं लिखते थे। मिश्रजी 'प्रताप' का पुलन्दा अपने सिरपर लादकर बड़े डाकखाने ले जाते और स्वयं ही उसे बाज़ारमें बेचते थे। श्री गणेशशङ्करजी-से पराक्रमी और स्वावलम्बी युवक कितने हैं? कितने ऐसे हैं, जो साधारण काम करनेसे शर्माते न हों?

'प्रताप' की धाक चारों ओर जम गई। 'प्रताप' का आगमन पत्रकार-कलामें युगान्तर-सूचक था। उसके विचार-पूर्ण गम्भीर सम्पादकीय लेख, हृदयग्राही कविताएँ और विद्वत्तापूर्ण लेख और 'प्रताप' द्वारा अत्याचार और अन्याय पर कुठाराघात—इन सब बातोंने 'प्रताप'को देशकी एक शक्ति बना दिया।

'प्रताप' ने नौकरशाही-दुर्गपर हमला बोल दिया। 'प्रताप'को परास्त करनेके लिए उसने अनेकों चालें चलीं। कई बार तो उसकी ज़मानत ज़ब्त हुई।

विद्यार्थीजीके समयमें 'प्रताप'ने क्या किया, इस विषयपर

तो एक अलग ही लेख होना चाहिए। यहांपर तो उनका नाम जान लेना ही पर्याप्त होगा। चम्पारन और बेतियाका आन्दोलन, मेवाड़की दुःखी प्रजाके पक्षका समर्थन, देशी राज्योंकी समस्या, होमरूल लीग आन्दोलन, किसान आन्दोलन, विशुद्ध साहित्य और ठोस राजनीतिके प्रांगणमें 'प्रताप' की सेवाएँ अतुलनीय हैं। विद्यार्थीजीमें एक विशेष गुण यह था—कदाचित यह उनमें ईश्वर-प्रदत्त गुण था—कि राजनैतिक गुत्थियोंको समझनेमें उनको एक क्षण भी न लगता था। जिधर उन्होंने अपने मनको लगाया, मानो सर्चलाइट-सी उस ओर पड़ गई। उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ लाखों भूखे किसानोंकी पुकार थीं। बिजलीघरसे जिस प्रकार नगर-भरको बिजली दी जाती है उसी प्रकार 'प्रताप' द्वारा हिन्दी भाषा-भाषी ग्रामीण जनता तक ज्ञानकी ज्योति पहुँचती थी। हिन्दी-संसारमें ऐसे अनेक सुशिक्षित लोग हैं, जो अंग्रेज़ी समाचारपत्रोंको पढ़कर भी उस समय तक सन्तुष्ट नहीं होते जब तक वे 'प्रताप'का पारायण न कर लें। गाँववालोंका तो कुछ कहना ही नहीं। पटवारी, गाँवके अध्यापक, अधपढ़े, अनपढ़े पीड़ित और दीन-दुःखी लोग तो 'प्रताप'की सम्मतिको अन्तिम सम्मति मानते हैं। आप उनसे कहें कि अमुक पत्र यह कहता है और अमुक महानुभाव अमुक बात करते हैं, तो तर्कमें गाँववाले हार जानेपर भी गर्दन हिलाकर यही कह देते हैं कि हम तो 'प्रताप' की बात मानेंगे।

श्रद्धेय विद्यार्थीजीने हिन्दी पत्रकार-कलाकी एक नवीन प्रणाली (New School of Journalism) ही स्थापित कर दी थी। उन जैसा सफल पत्रकार कोई दिखाई नहीं पड़ता।

कहां हैं ऐसे सम्पादक जो दीन-हीन किसानोंके अत्याचारको देखकर रो पड़ें और उनकी रक्षाके लिए सत्ताधारियोंसे भिड़ पड़ें? पिछले असहयोग-आन्दोलनके समयमें (१९२०-२१) अवधके किसानोंपर घोर अत्याचार हुए। रायबरेली-कांडका समाचार आया। 'प्रताप' ने किसानोंका पक्ष लिया। चारों ओरसे प्रयत्न हुए कि क्षमा-याचना कर ली जावे। कांग्रेसका सिद्धान्त भी था कि अदालतमें सफ़ाई न दी जाय। पर श्रद्धेय गणेशशंकरजीने एक न सुनी। वे जानते थे कि मुक़द्दमा न लड़नेसे अवधके किसान सर्वदाके लिए दब जायँगे। उनका रहा-सहा जीवन भी नष्ट हो जायगा। मुकदमेकी कार्रवाई हिन्दी-जगतके सामने है। रायबरेलीके किसानोंकी अधोगति और उनपर किये गये अत्याचारोंको देखनेका अवसर मुझे भी हुआ। 'प्रताप-बाबा'—गणेशशंकरजीको वे लोग कितनी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। वास्तवमें वे उनके त्राता थे।

देशी राज्योंकी दुखी प्रजाके लिये वे संकटमोचन थे। अपने सिद्धान्तों और सत्यपक्ष ग्रहण करनेके कारण बीसों देशी राज्योंमें 'प्रताप'के लिए 'प्रवेश निषेध' है। पर क्या चांदीके टुकड़े उन्हें पथ-भ्रष्ट कर सकते थे? एक बार विद्यार्थीजीने मुझसे कहा कि एक बड़े देशी राज्यने उन्हें निमंत्रण देकर खातिरदारी करनी चाही। उद्देश यह था कि 'प्रताप' उस राज्यकी आलोचना न करे। प्रशंसा न करे, तो तीव्रालोचना भी न करे। कदाचित इसका पुरस्कार था एक लाख चांदीके टुकड़े। पर वीरवर राणा प्रतापकी भांति समाचार-पत्रोंके 'प्रताप' के स्वरूप श्री गणेशशंकर उस पाशमें कहीं बँध सकते थे? इसके फलस्वरूप 'प्रताप' का राज्यमें जाना रोक दिया गया। रुपये-पैसेकी आवश्यकता होती है, पर संसारमें केवल रुपया-पैसा ही कोई चीज़ नहीं। सत्यनिष्ठा, ईमानदारी और कर्तव्यपरायणताके सम्मुख रुपया-पैसा हेच है।

'प्रताप' जब देशकी एक संस्था हो गई, तब विद्यार्थीजीने उसका ट्रस्ट बना दिया।

महात्मा गांधीके शब्दोंमें विद्यार्थीजी स्वयं एक संस्था थे। बड़े वृक्षके नीचेवाले अन्य पौधा पनपते नहीं और न प्रत्येक बड़ा आदमी दूसरोंको बड़ा बना सकता है। विद्यार्थीजीमें एक विचित्र गुण था। उन्होंने जितने लेखक, पत्रकार और संवाददाता तैयार किये, उतने किसी औरने नहीं। उनमें औरोंको सिखानेका एक विशेष गुण था।

एक और विशेष बात उनके चरित्रमें यह थी कि आडम्बर और नामकी गन्ध उन्हें छू तक न गई थी। सेवा करना और लीडरीसे दूर रहना उनके रोम-रोमसे टपकता था।

जेलसे निकले दस-बारह दिन ही हुए थे कि कानपुरका उपद्रव प्रारम्भ हो गया, और ठीक तेरह दिन बाद ता० २५ मार्च सन् १९३१ को ४१वें वर्षमें उन्होंने अमानुषिकता और असज्जनताके विरुद्ध लड़ते-लड़ते एकताके अग्नि-कुंडमें अपनी आहुति दे दी।

विद्यार्थीजीने छै सन्तान छोड़ी हैं—दो लड़के और चार लड़कियाँ, और छोड़े हैं अनेक मित्र, प्रशंसक और शिष्य, जो अनाथसे रह गये हैं। आपके ज्येष्ट पुत्रका नाम है श्री हरिशंकर विद्यार्थी। हरिशंकर योग्य पिताके योग्य पुत्र हैं। हरिशंकरजीसे देशको और श्रीगणेशशंकरजीके शिष्योंको बड़ी आशा है। श्रद्धेय गणेशशंकरजी और भाई बालकृष्णकी अनुपस्थितिमें, आर्डिनेन्सोंके युगमें, हरिशकरजीने 'प्रताप'का सम्पादन जिस योग्यतासे किया, उससे पाठक हरिशंकरजीकी योग्यताका अन्दाज़ा लगा सकते हैं।

हरिशंकरजीपर इस छोटी आयु—१९ वर्षकी आयु—में घरका भार आ पड़ा। चार अविवाहित बहनोंका भार, रुग्णा माता, वृद्धा दादी और विद्यार्थीजीके बड़े भाईका खयाल, ये सब भार भारी हैं; पर हरिशंकरजीके दु:खमें हम सब दु:खी हैं। उनके समान हम सब अनाथ हो गये। महात्मा गांधीने १-४-३१ को तार भेजा—

"Have been too busy to write or wire. Though heart bleeds, it refuses to send condolences over death so magnificent as Ganesh Shankar's. It may not do so to day; but his innocent blood is bound some day to cement Hindus and Mussulmans His family therefore, deserves no condolence but congratulations. May his example prove imfections.
—Gandhi."

अर्थात्—"कार्यमें व्यस्त रहनेके कारण मुझे न तो लिखनेका अवकाश मिला और न तार देनेका। यद्यपि गणेशशंकरकी मौतसे हृदय घायल है, तो भी गणेशशंकरकी शानदार मौतपर समवेदना प्रकट करनेको मेरा जी नहीं चाहता। यह सम्भव है कि आज उनकी मौतसे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य न हो, पर उनका पवित्र खून किसी न-किसी दिन हिन्दू-मुसलमानोंको एकताके सूत्रमें बाँध देगा। इसलिए उनका कुटुम्ब समवेदनाका अधिकारी नहीं है, बरन् बधाइयोंका। परमात्मा करे उनकी मौत संक्रामक सिद्ध हो।
—गान्धी"

जिसने भयको जीत लिया है, जो जीवन्मुक्त है और जो अपने सिरपर अपना कफ़न बाँधे फिरता है, जो अहिंसाकी मूर्ति है, वही ऐसा तार दे सकता है। उसीको यह तार शोभता है। इस लेखकने तो हज़ारों आँसू बहाये हैं और जब तक वह भी उनसे जाकर न मिलेगा, तब तक उनकी याद करता रहेगा।

निजी बात

यदि मैं विद्यार्थीजीके संस्मरण लिखने लगूँ, तो 'विशाल भारत'का सम्पूर्ण कलेवर भर जायगा। विद्यार्थीजीसे मेरा घनिष्ट सम्बन्ध सन् १९२० से ही था। उससे पहले वे मेरे लिए एक आदर्शकी सजीव प्रतिमा थे। आगरा-कालेजमें मैं पढ़ रहा था। श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवालसे कई वर्ष पहलेका सम्बन्ध था। आपसमें बन्धुत्व था। गणेशजीके दर्शन पहली बार पालीवालजीके यहाँ हुए थे। सन् १९२० में 'प्रताप'का दैनिक संस्करण निकलने जा रहा था। उसके लिए एक सहायक सम्पादककी आवश्यकता हुई। एक विज्ञापन निकाला गया। मैंने कोई आवेदन-पत्र न भेजा, पर पालीवालजीने आकर मुझसे कहा—"तुम कानपुर जाकर गणेशजीसे मिल आओ। दैनिक 'प्रताप'के लिए गणेशजीको एक सहायक चाहिए। मेरी इच्छा वकील बननेकी थी, पर पालीवालजीने ज़ोर दिया। आज्ञाका उलंघन न कर सका। गया।

'प्रताप'में जाकर कालेज-शिक्षाका सब गर्व चूर हो गया। किताबी पढ़ाईपर घृणा हो गई, और मैट्रीक्युलेशन

पासवाले विद्यार्थीजीसे मैंने इतना सीखा, जितना कि कालेजमें भी न पढ़ा और न सीखा था। सुन्दर और सूक्ष्म शीर्षकका महत्व, सार करना, अग्रलेख लिखना, स्टाफ़के सदस्योंमें प्रेमसे काम लेना, ये सब बातें विद्यार्थीजी अपने सहकारियोंको बड़ी ख़ूबीके साथ सिखलाते थे। विद्यार्थीजी साधारण-सी भूलोंको भी पसन्द न करते थे। प्रूफ़की भूल, उचित समाचार और उचित नोटका अभाव उनके लिए असह्य था। स्टाफ़वालोंसे कार्यके उपरान्त वे भाईके समान मिलते थे। जहाँपर यह भावना हो, वहाँके लिए उस व्यक्तिके लिए मर मिटनेके लिए लोग क्यों न तैयार हों।

दैनिक 'प्रताप'की धाक जम गई। 'प्रताप'का यश तो पहले ही था, अब उसकी ग्राहक-संख्या भी धड़ाधड़ बढ़ने लगी। वह विरला ही महीना होगा जिसमें दो तीन सौ ग्राहक न बन जाते हों। ग्राहकसंख्या पाँच-छै हज़ार तक पहुँच गई।

सन् १९२१ में 'प्रताप' और सरदार वीरपाल सिंहका मुक़दमा चला। उन्हीं दिनों नौकरशाहीके एक महाप्रभुने एक व्यक्तिसे कहा था—"The Public life in U. P. cannot be safe unless the Pratap is crushed." "जब तक 'प्रताप'का अन्त न कर दिया जायगा, तब तक सयुक्तप्रान्तका सार्वजनिक जीवन सुरक्षित नहीं हो सकता।" पर गणेशशंकरजी इन बातोंसे विचलित होनेवाले न थे। मुकदमा चला और 'प्रताप' बाबाकी तूती बोल गई। निरीह किसानोंको मालूम हो गया कि उनके लिए मर मिटने वाला वीरवर गणेशशंकर है। नौकरशाहीने उनको १०८ धारामें फाँसना चाहा, पर उसकी एक न चली।

मुक़दमाके कारण 'प्रताप'का दैनिक संस्करण बन्द हो गया। अपने आर्थिक संकटके कारण मुझे 'प्रताप' छोड़ना पड़ा, पर मेरा कौटुम्बिक सम्बन्ध 'प्रताप' और विद्यार्थीजीसे वैसे ही बना रहा और वह बढ़ता ही गया।

जेल जानेके पहले एक पत्रमें विद्यार्थीजीने मुझे लिखा था—

"हम लोग जेलकी तैयारी कर रहे हैं, आवश्यकता पड़ेगी, तो आप 'प्रताप'में जोते जायँगे। सम्पादनका भार आप पर पड़ेगा।

—ग० शं० विद्यार्थी।"

एक बार उन्होंने मुझे एक आन्दोलनकी जाँच करने भेजा। वह स्थान कानपुरसे आठ सौ मीलकी दूरीपर था। ख़बर थी कि बड़े बड़े लोगोंके मुँह मीठे कर दिये गये हैं। कतिपय बड़े नेता तक उस व्यक्तिके विरुद्ध कुछ न कह सकते थे, लाखों रुपये अपनी संस्थाके लिए पा चुके थे। मैं भी गया और गया 'प्रताप'का प्रतिनिधि होकर। बड़ी आव-भगत हुई। मेरे सम्मुख पांच हज़ार रुपएका लालच रखा गया। प्रार्थनाएँ की गईं कि 'प्रताप' तटस्थ ही बना रहे, पर 'प्रताप'का प्रतिनिधि गणेशशंकरजीके चरणोंमें बैठ चुका था। उसको ख़ूब खरीखोटी सुनाईं और वहाँकी रिपोर्ट निष्पक्ष रूपसे 'प्रताप'में निकाली गई।

गणेशशंकरजी दो-चार बार मेरी कुटियापर आये थे। ग्राम-संगठनपर घंटों उनसे बातचीत होती रहती। मेरा विचार था कि विद्यार्थीजी, पालीवालजी इत्यादि मित्रोंके सहयोगसे ग्राम-संगठनका कार्य प्रारम्भ करूँ। इसी अप्रेल सन् १९३१ में श्रीविद्यार्थीजी एक सप्ताहके लिए मेरी कुटियापर इसी विषयपर बातचीत करने आनेवाले थे, पर विधाताको कुछ और ही मंज़ूर था!

× × ×

मैं जो कुछ हूँ और जैसा हूँ, विद्यार्थीजीकी कृपासे हूँ। वे मेरे रहनुमा थे। बड़े भाई थे। गुरु थे। वे मेरे थे और मैं उनका हूँ। वे बलिदान हो गये। मैं लुट गया। अनाथ हो गया।

सम्पादकीय विचार

हिन्दू मुसलिम समस्या

हिन्दू मुसलिम समस्याको हल करना देशके लिए इस समय अत्यन्त आवश्यक हो गया है, पर अभी उसके सन्तोष-जनक रीतिसे सुलझनेके लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते। मुसलमान जनता जहालतके अन्धकारमें इतनी अधिक फँसी हुई है कि उसे अपना भला-बुरा कुछ नहीं सूझता। यद्यपि इस अन्धकारमें आशाकी कुछ-कुछ झलक दीख पड़ती है यानी अब राष्ट्रीय मुसलमानोंका भी एक दल संगठित हो रहा है, जो पुराने स्वार्थी नेताओंके पंजेसे मुसलिम जनताकी रक्षा करना चाहता है, पर अभी हमें इसकी सफलतामें बहुत सन्देह है; क्योंकि धर्मान्ध लोगोंको सीधे मार्गपर लाना आसान काम नहीं है। यदि मौलाना शौकतअली मुसलिम जनताके सच्चे प्रतिनिधि हैं तो हम निस्संकोच कह सकते हैं कि मुसलमानोंकी अक्लके ठिकाने आनेमें अभी बहुत दिन लगेंगे। मुसलमान लीडर यह बात बड़े घमंडके साथ कहा करते हैं कि हमने भारतपर सैकड़ों वर्ष तक शासन किया था, पर वे साथ ही इस ऐतिहासिक सत्यको भूल जाते हैं कि मुसलिम शासकोंकी धर्मान्धता और ऐशपसन्दीके कारण ही उनका पतन हुआ। आज मुग़ल शासकोंके वंशज बहादुर शाहके परपोतेके पास इतना भी पैसा नहीं है कि वह शिक्षा प्राप्त कर सके! यदि किसी तरह धर्मान्ध औरंगज़ेबकी आत्मा मटियाबुर्जमें बुलाई जा सके तो अपने वंशके टिमटिमाते हुए दीपकको देखकर उसकी आँखें खुल सकती हैं। जिस धर्मान्धताके कारण मुसलमानोंका पतन हुआ उसीको वे फिर आश्रय दे रहे हैं! दूसरोंके परिश्रमकी कठिन कमाईको मौजमें उड़ानेकी प्रवृत्तिने भी उनके हृदयमें घर कर लिया है। स्वराज्य संग्राममें कमसे कम ८० फीसदी परिश्रम हिन्दुओंको करना पड़ा है। यदि ब्रिटिश सरकार समझौता करनेके लिए झुकी है तो मुख्यतया इन्हींके त्याग और तपके कारण। इस अवसरपर मुसलिम जनता तथा नेताओंका कर्तव्य था कि अपनी अकर्मण्यताके लिए लज्जित होते, पर बजाय इसके वे स्वाधीनताके मार्गमें रोड़े अटका रहे हैं! पंजाब और सीमान्त प्रदेशके मुसलमानोंने जो प्रशंसनीय भाग इस संग्राममें लिया है, उसे हम नहीं भूलते। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि उनका परिश्रम निष्फल नहीं गया। आज किसकी हिम्मत है, जो यह कह सके कि सीमान्त प्रदेशको अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा कम अधिकार मिलने चाहिये? अपने तपसे सरहद्दी मुसलमानोंने अपनी पोज़ीशन इतनी मज़बूत कर ली है कि अब स्वराज्य प्राप्त होनेपर उनके अधिकार दूसरोंसे किसी तरह कम नहीं हो सकते। यदि अन्य प्रान्तोंके मुसलमानोंमें कुछ भी अक्ल होती तो वे इससे कुछ सबक सीखते। पर उनकी मनोवृत्ति तो दूसरी दिशामें चली जा रही है। वे सोचते हैं "इस वक्त हिन्दू नेता मुसलमानोंसे समझौता करनेकी फिक्रमें हैं, इसलिए जितना इन्हें दबाया जा सके दबाओ। अधिकार लेनेका यह अच्छा मौक़ा है।" इस तरह यदि अन्याय-पूर्वक कुछ बेजा अधिकार मुसलमान ले भी लें तो क्या वे उन्हें बहुत दिनों तक कायम रख सकते हैं? जो हिन्दू जनता ब्रिटिश साम्राज्यको नाकोंचने चबवा सकती है क्या वह अनन्त काल तक मुसलमानोंकी बेजा कार्रवाइयोंको सहती रहेगी? इस विषयमें हम 'प्रताप'के एक सम्पादकीय लेखका एक अंश उद्धृत करते हैं :—

"मुसलिम कानफरेन्सने मुख्य रूपसे दो प्रस्ताव पास किये हैं। एक प्रस्ताव है कानपुरके दंगेके सम्बन्धमें और दूसरा है भावी शासन-विधान और मुसलिम माँगके सम्बन्धमें। यदि ये दोनों प्रस्ताव मुसलमान मनोवृत्तिके द्योतक कहे जा सकें, तो हम यह भविष्यवाणी करनेका दावा करते हैं कि आगामी पचास वर्षोंमें हिन्दोस्तानके मुसलमान ऐसी हीन और नीच दशाको पहुँच जायँगे, जिससे उनका उद्धार करना मुल्कके लिए एक समस्या हो जायगी। कानपुरके दंगेके

प्रस्तावमें इतनी झूठी और बनावटी बातें कही गई हैं, जिन्हें पढ़कर एक बार तो झूठ बोलनेकी आदत भी सकुचा जायगी। कानपुरके दंगेका सारा दोष कांग्रेसके मत्थे मढ़ा गया है, हालां कि अभी तक इसके सम्बन्धमें एक भी सबूत नहीं मिला। कांग्रेसकी अहिंसा नीतिके सम्बन्धमें कहा गया है कि वह तो एक दिखावा मात्र है और उसका पालन सिर्फ़ इसलिए किया जाता है कि सरकारके पास बल बहुत है, लेकिन अन्तर्जातीय मामलोंमें कांग्रेस इस नीतिको तिलांजलि दे देती है। यह ऐसा कमीना हमला है कि इसका जवाब देना ज़रूरी है। आंखोंके अन्धोंको क्या यह नहीं मालुम कि ख़ूँख्वार भेड़ियोंने युक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सभापति तकको मार डाला? अगर कांग्रेसकी अहिंसा थोथी होती, तो क्या आज श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी इस तरह मारे जाते? दिल्लीमें बैठ इस बेईमानीसे भरे हुए प्रस्ताव पास करनेवाले मुसलमान क्या यह नहीं जानते कि मुसलमान भेड़ियोंको शान्त करने और हिन्दू मुहल्लोंसे सैकड़ों मुसलमानोंको बचाकर निकाल ले आनेके उद्योगमें ही प्रान्तीय कांग्रेसके सभापति, और एक स्वयंसेवक जानसे मारे गए और कानपुर नगरके भूतपूर्व डिक्टेटर पंडित गगाधर गणेश जोग तथा श्रीयुत शंकरराव नामक वालंटियरके सर फट गए? एक कोई फ़तह मुहम्मद नामक कानफ़रेंसिये मुसलमानने उस कानफरेन्सर्में यहाँ तक कह डाला कि 'गान्धीकी जै' के मानी हैं 'मुसलमानोंकी छै!' इसके मानी यह हैं तो नहीं; लेकिन अगर मुसलमानोंका यही रवैया रहा जो इस कानफरेन्समें प्रकट हुआ है तो युग धर्म अपने आप उन्हें क्षयकी ओर ढकेल देगा। राजनीतिक परिस्थिति और शासन-विधानका प्रस्ताव मुसलिम नेताओंके अन्धेपनका नमूना है। मुसलमानोंको प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डलमें स्थान ज़रूर मिले, नौकरियोंमें उनका हिस्सा क़ानूनन मुक़र्रर कर दिया जाय, बड़ी व्यवस्थापिका-सभामें ३३⅓ फ़ीसदी मुसलमान रहें, प्रान्तोंमें आजकल जहां जितने हैं, वे उतने ही रहें, बंगाल और पंजाबमें मुसलमानी बहुमत हो, चुनाव-क्षेत्र अलग अलग हों, कोई ऐसा क़ानून, जिसे मुसलमानोंका बहुमत अस्वीकार करे, न पास किया जाय, इत्यादि बातें इतनी लचर, इतनी निन्दनीय, युगधर्मके इतनी विपरीत हैं कि उनका जवाब देना व्यर्थ है।"

हर्षकी बात है कि महात्मा गान्धीजीने इस विषयमें अपनी सम्मतिको बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। उनके निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य हैं :—

"राष्ट्रवादी मुसलमानोंने मुझे यह चेतावनी दी है कि मैं कोई भी ऐसी बात मंज़ूर न करूँ जो दो बातोंपर निर्भर न हो, एक तो प्रत्येक बालिग़ आदमीको मताधिकारका मिलना और दूसरे संयुक्त-निर्वाचन। इन राष्ट्रवादी मुसलमानोंमें कुछ तो मेरे बहुत ही पुराने सहकारी है और उन्हें मौ० शौकतअली ईमानदारी, बहादुरी और सच्चे इस्लाम-प्रेमी होनेका सार्टिफिकेट भी दे चुके हैं। उन्होंने मौलानाके सार्टिफिकेटको सत्य साबित कर दिखाया है। फिर जब वे कहते हैं कि मुसलमान जनता पृथक् निर्वाचन नहीं चाहती, पृथक निर्वाचन मुसलमानोंके लिए हानिकर है, तो मुझे उनकी ये बातें ज़रूर सुननी पड़ेंगी। कुछ भी क्यों न हो मैं किसी भी ऐसी बातका समर्थन करनेके लिए तैयार नहीं जिसकी नींव स्पष्टतया साम्प्रदायिकताके आधारपर स्थित हो और साथ ही उस सम्प्रदायके सभी आदमी जिसे मानते भी न हों। यह बात तो निर्विवाद है कि पृथक निर्वाचनकी प्रथा दोषपूर्ण है और अराष्ट्रीय भी। हिन्दू मुसलिम समस्याका पृथक निर्वाचन द्वारा हल करना तभी स्वीकार किया जा सकता है, जब कमसे कम सभी मुसलमान तो उसके पक्षमें हों।"

सच बात तो यह है कि साम्प्रदायिक चुनाव ही हिन्दू मुसलमानोंके झगड़ोंकी जड़ हैं और इस पृथक निर्वाचनकी प्रथाका जड़मूलसे नाश हुए बिना हिन्दू-मुसलिम समस्या कदापि हल नहीं हो सकती।

—

'अभ्युदय'

प्रयागका सुप्रसिद्ध पत्र 'अभ्युदय' गत चौथाई शताब्दीसे मातृ-भाषा और जन्मभूमिकी बड़ी तत्परतासे कर रहा है। प्रसन्नताकी बात है कि हालमें 'अभ्युदय' के आकार प्रकार आदिमें बड़ा उन्नतिशील परिवर्तन हुआ है। अब उसके प्रति अंकमें 'श्रीकृष्ण-सन्देश' के साइज़के ४० पृष्ठ होते हैं, और उसके साथ ही सामयिक घटनाओंके दर्जनों चित्र भी रहते हैं। सप्ताह-भरकी खबरें, सुन्दर लेख और मनोहर कवितायोंके साथ-साथ कई एक विशेष स्तम्भ खोल देनेसे उसकी विषय विभिन्नता और उपयोगितामें बहुत वृद्धि हो गई है। यह प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि 'अभ्युदय' के सम्पादक और संचालक उसे सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर साप्ताहिक बनानेके प्रशंसनीय प्रयत्नमें संलग्न हैं। 'अभ्युदय'-सम्पादक पंडित कृष्णकान्त मालवीयको इस आशातीत उन्नतिके लिए हम हृदयसे बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि हिन्दी-जनता अभ्युदयको अपनावेगी। वार्षिक मूल्य ७)। पता—मैनेजर 'अभ्युदय', प्रयाग।

'हिन्दुस्तानी'

पिछले कुछ वर्षोंसे संयुक्त-प्रदेशमें एक अर्द्ध-सरकारी संस्था स्थापित हुई है, जिसका नाम 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' है। 'एकेडेमी' का उद्देश्य हिन्दी और उर्दूकी उन्नति करना तथा हिन्दू-मुसलमानोंमें सांस्कृतिक एकता स्थापित करना है। एकेडेमी हिन्दी और उर्दूके महान विद्वानोंको निमन्त्रित करके उनके व्याख्यान कराती है, और उन व्याख्यानोंको प्रकाशित भी करती है। हिन्दी-उर्दूके अच्छे-अच्छे लेखकोंकी कृतियोंपर पुरस्कार देती है, और दोनों-भाषाओंकी मूल्यवान प्राचीन निधियोंकी खोज करके उन्हें प्रकाशित करनेमें प्रयत्नशील रहती है। एकेडेमीके अन्य सदुद्देश्योंमें एक यह भी है वह हिन्दी और उर्दूके विद्वानोंमें पारस्परिक सद्भाव स्थापित किया जाय।

हालमें एकेडेमीने अपनी मुख पत्रिकाके रूपमें 'हिन्दुस्तानी' नामक एक त्रैमासिक पत्रिकाको जन्म दिया है। इस पत्रिकाके सम्पादक हैं श्री रामचन्द्र टंडन। टंडनजी कई वर्षसे हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें लेख लिख रहे हैं। उन्होंने अनेक यूरोपियन कहानियोंका अनुवाद भी किया है। गत वर्ष उनकी एक सुन्दर मौलिक पुस्तक भी प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार हिन्दी-संसार उनसे काफी परिचित है। टंडनजीकी सहायताके लिए एक सम्पादक-मंडल भी है, जिसमें (१) डाक्टर ताराचन्द एम० ए०, डी० फिल० (आक्सन); (२) डाक्टर बेनीप्रसाद एम० ए०, पी—एच० डी०, डी० एस-सी० (लन्दन); (३) श्रीयुत् धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, और (४) श्रीयुत् कृष्णबलदेव वर्मा (गत मास वर्माजीकी मृत्यु हो गई) आदि विद्वान हैं। इस प्रकार सम्पादन-विभागमें किसी प्रकारकी कोर-कसर बाक़ी नहीं है।

'हिन्दुस्तानी'का पहला अंक गत जनवरी मासमें प्रकाशित हुआ था इस अंकमें रायल अठपेजी १३७ पृष्ठ हैं। पत्रिकाकी छपाई-सफाई बहुत ही सुरम्य है, और मूल्य ८) वार्षिक है।

हिन्दुस्तानीके प्रथम अंकमें सात लेख हैं—(१) राजा बीरबर—लेखक, डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी; (२) मुसलमानोंका हिन्दुस्तानमें आना—लेखक, डाक्टर ताराचन्द; (३) मीरांबाई लेखक, श्री परशुराम चतुर्वेदी, (४) बृत्तों व्यासकी वेश तथा परिधि-सम्बन्धी संख्याओंकी समस्या—लेखक, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार; (५) सवाई राजा शूरसिंहजी—लेखक श्रीयुत विश्वेश्वर नाथ रेउ, (६) मध्ययुगमें हिन्दू मुस्लिम सम्बन्ध—लेखक, प्रो० मुहम्मद हबीब और (७) हिन्दीमें नई ध्वनियां तथा उसके लिए नये चिह्न—लेखक श्रीयुत धीरेन्द्र वर्मा।

इनमें से पहला, तीसरा और सातवाँ लेख ही शुद्ध साहित्यिक लेख कहे जा सकते हैं। शेष सब लेख ऐतिहासिक हैं। यद्यपि पहला लेख ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों श्रेणियोंमें आ सकता है। सभी लेख सुन्दर और पठनीय हैं। 'हिन्दुस्तानी' मुख्यतः साहित्यिक पत्रिका है, इसलिए उसमें साहित्यिक लेखोंका बाहुल्य होना अधिक समीचीन होता। 'राजा बीरबर', 'मीरांबाई' और 'मुसलमानोंका हिन्दुस्तानमें आना' शीर्षक लेखक बहुत अच्छे हैं। मीरांबाई शीर्षक लेखका कुछ अंश गतमास 'विशाल-भारत' में उद्धृत किया गया था। 'हिन्दीमें नई ध्वनि तथा उनके लिए नये चिह्नोंके लिए यह उत्तम हो कि कुछ विद्वानोंकी कमेटी बनाकर उसपर विचार कर लिया जाय।

हम ऐसी सुन्दर पत्रिका निकालनेके लिए एकेडेमीको तथा सम्पादक श्री रामचन्द्र टंडनको हृदयसे बधाई देते हैं। साथ ही हम नम्रतापूर्वक यह निवेदन करेंगे कि पत्रिकाका वार्षिक मूल्य ८) कुछ अधिक है। ६) होता तो ठीक होता।

बहादुरशाहका परपोता

देखा गया है कि सैनिक न्यायालयोंका निर्णय बहुधा राग और घृणापर अवलम्बित होता है। कोर्ट मार्शलमें कभी-कभी भयानक अनर्थ हो जाता है। जोन आफ आर्क और नाना धुन्धुपंतकी पुत्री मैनाके साथ इन फ़ौजी अदालतोंने जो अन्याय किया, वह इतिहासके पाठकोंसे छिपा नहीं है। साम्राज्यवाद और पूंजीवादके संरक्षणके लिये सेनाओंका अस्तित्व है, और जब उन्हींकी सत्तापर आघात होता है, तो सेना जिस पशुबलका प्रदर्शन करती है, उसके विषयमें कुछ न कहना ही अच्छा है।

सन् ५७ के ग़दरके बाद कई महीनों तक उत्तरी भारतमें सैनिक-शासन रहा। खुद लार्ड केनिंगको महारानी विक्टोरियासे गोरे फ़ौजियोंकी शिकायत करनी पड़ी थी। ऐसे ही संकट-कालमें दिल्लीके अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह एक फ़ौजी अदालतके आगे पेश हुए, और उन्हें आजीवन निर्वासन दण्ड दे दिया गया। बहादुरशाहके विरुद्ध जो प्रमाण पेश किये गये थे, वे अवश्य ही विवादास्पद हैं। उनके खूनके प्यासे और उनके पुत्रोंके वधिक हडसनने अपनी डायरीमें उन्हें बिलकुल निरपराध बतलाया है। जो कुछ भी हो, फ़ैसला एकतर्फ़ा ही हुआ था, क्योंकि बहादुरशाहकी ओरसे न कोई गवाह पेश हुआ, न कोई वकील। फिर भी उनके बयानके एक-एक शब्दसे सचाई टपकती है और कोई निर्णय करनेके पहले हमें यह सोचनेके लिए बाध्य होना पड़ता है कि क्या ८० सालका रोगी वृद्ध ऐसे भीषण विद्रोहका नेतृत्व कर सकता है?

अगर कुछ देरके लिए मान भी लिया जाय कि बहादुरशाह विद्रोहके अपराधी थे, तो उनकी सन्तान किस दोषकी भागी है? यह कैसा न्याय है, जो बापकी सज़ा बेटेको देता है? इसी अंकमें बहादुरशाहके परपोतेकी दुःख बीती छप रही है, जिसे पढ़कर प्रत्येक सहृदय पाठकको खेद हुए बिना न रहेगा।

ब्रिटिश शासनके विरुद्ध अनेक भारतीय शासकोंने तलवार उठाई, और कईने उसकी ओर मित्रताका हाथ भी बढ़ाया। अवध और कर्नाटकके नवाब उसका सदा दम भरते रहे, और टीपू सुलतानको हमेशा लड़ते बीता। उन सबका राजपाट सरकारने छीन लिया, फिर भी उनकी सन्तानको हज़ारों रुपया मासिक पेंशन आज भी मिलती है। यही क्यों, ठगोंके सरदार अमीरअलीका कुटुम्ब हमारी सरकार बहादुरकी कृपासे अब भी राज्योपभोग कर रहा है। इन सबमें अभागा ठहरा दिल्लीका राजकुटुम्ब, जिसके लाल आज भीख मांगते फिरते हैं!

हमें यह जानकर बड़ा क्षोभ और दुःख हुआ कि बहादुरशाहका एकमात्र प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी आज दर-दरका भिखारी है। मालूम नहीं, किस कारण सरकारने इस अनाथ बालकको उसके बापकी पेंशनसे वंचित रखा है। इस मातृ-पितृहीन राजकुमारके प्रति भारत या भारत-सरकारका कुछ भी कर्तव्य नहीं है?

इस अन्यायका प्रतिवाद करते हुए हम अपने सहयोगियों और असेम्बलीके सदस्योंसे आशा करते हैं कि वे सरकारपर ज़ोर डालकर बहादुरशाहके परपोतेके भरण-पोषण और शिक्षा आदिका प्रबन्ध करानेकी चेष्टा करेंगे।

—

भूल-सुधार

इसी अंकमें मेरा जो लेख छप रहा है, उसमें अज्ञानवश मैंने लाडली बेगमके स्वर्गवासका ज़िक्र कर दिया है। बादमें पता चला कि वे जीवित हैं, और लखनऊमें रहती हैं। इस भूलके लिए मुझे हार्दिक दुःख है।

—अख्तर हुसेन रायपुरी

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।
सहकारी सम्पादक :—व्रजमोहन वर्मा और धन्यकुमार जैन।

आदिकवि वाल्मीकि

'विशाल-भारत'] [चित्रकार – स्व० यृ० राय

साहित्य-अंक
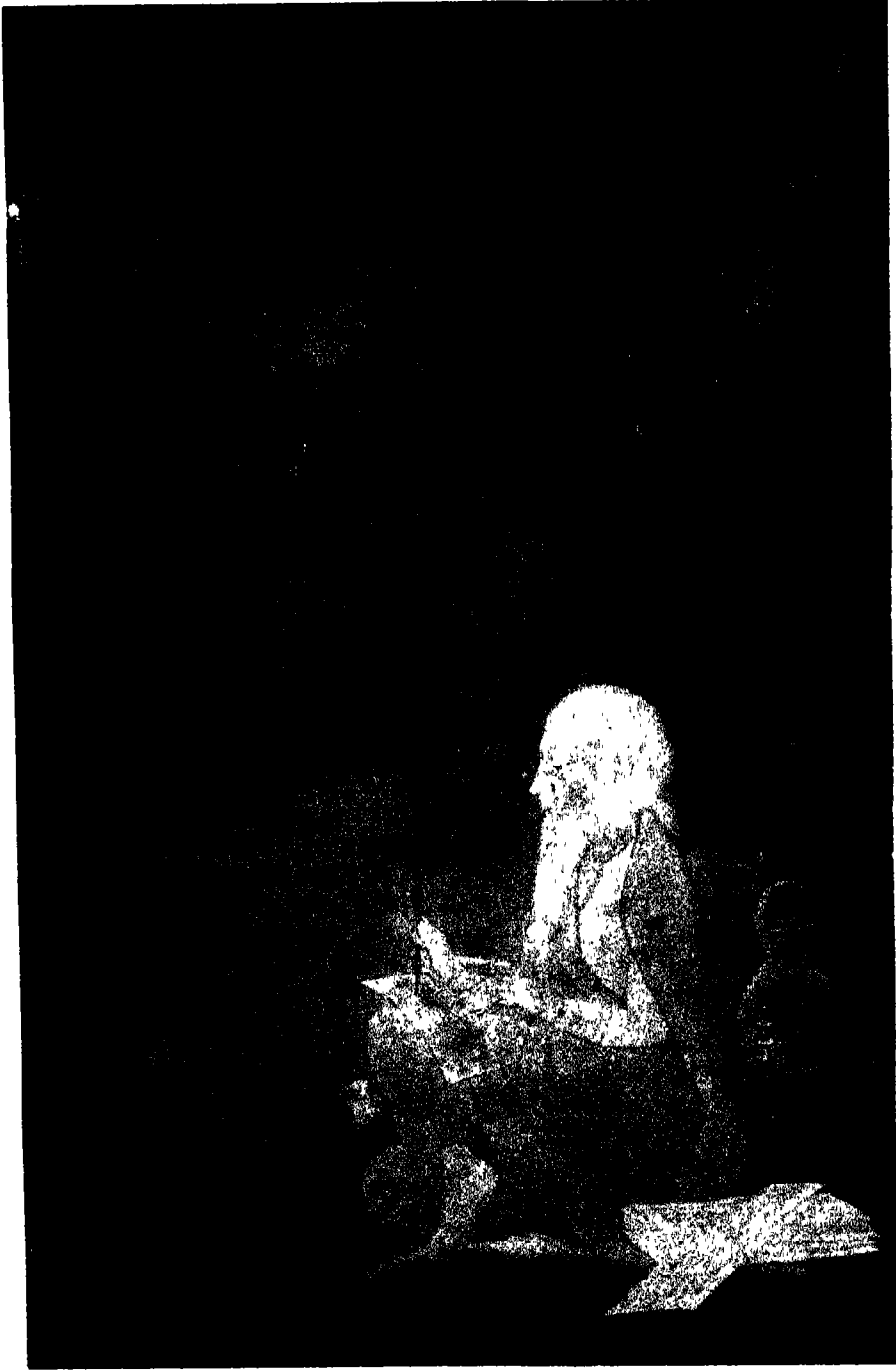
"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ४ भाग ७ | मई १९३१ ; जेठ १९८८ | अङ्क ५ पूर्णाङ्क ४१

हिन्दी भाषामें वात्सल्य रस

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

वात्सल्य शब्द बड़ा प्यारा है। वत्सलता मानव-हृदयकी परमप्रिय सामग्री है, अतएव सर्वसाधारणके मानसोंमें उसका विकास होना स्वाभाविक है। कविजनोंमें मानस-भावोंके यथातथ्य चित्रणकी जो शक्ति है, वह इस विकासको उपयुक्त शब्द और वाक्योंमें परिणत करके एक ऐसी कलाका सृजन करती है, जो अलौकिक कही जा सकती है। उसमें बड़ा रस होता है, बड़ी मिठास मिलती है, विमुग्धकारिताका तो कहना ही क्या! यही कारण है कि प्रत्येक भाषाके साहित्यमें वात्सल्य रस पाया जाता है; किन्तु हिन्दी भाषामें इस रसका बड़ा ही विशद वर्णन है, इस विषयके प्रतिपादनके लिए ही यह लेख लिखा गया है। अन्य भाषाकी रचनाओंसे हिन्दी भाषाकी रचनाओंकी तुलना करनेपर ही हमारे कथनकी आप लोग उचित मीमांसा कर सकेंगे, अतएव पहले अन्य भाषाओंकी रचनाएँ उपस्थित की जाती हैं।

संस्कृत भाषाका साहित्य समुद्रके समान गम्भीर है। उसके रत्न-समूहका हाथ आना सहज नहीं। कौन अमूल्य रत्न कहाँ है, यह खोज लेना सुगम नहीं। विशेष प्रचलित ग्रन्थ ही मेरे देखनेमें आये हैं, उनमें श्री मद्भागवत ही ऐसा विशद ग्रन्थ है, जिसमें वात्सल्य रस उत्ताल तरंगसे तरंगायमान हो कर प्रवाहित है। मेरा विचार है कि वात्सल्य रसका ऐसा पूर्ण उदात्त व्यापक और सुन्दर वर्णन शायद ही किसी ग्रन्थमें मिले। उस महान् ग्रन्थके कुछ भावमय पद्य नीचे लिखे जाते हैं :—

तावङ्घ्रि युग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
　　घोष प्रघोष रुचिरं व्रज कर्दमेषु,
तन्नादहृष्ट मनसावनुसृत्य लोकं
　　मुग्धप्रभीतवदुपेय तुरन्ति मात्रोः ।
तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
　　पङ्काङ्ग राग रुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ,
दत्वा स्तनं प्रपिबतोःस्ममुखं निरीक्ष्य
　　मुग्धस्मिताल्प दशनं ययतुः प्रमोदम् ॥"

(भागवत, दशमस्कन्ध, अध्याय ८)

दोनों भाई (कृष्ण और बलराम) पैरोंको घसीटकर सुन्दर सिक्त रजसे परिपूर्ण व्रज-भूमिमें पेटके बल चलते थे। चलते समय कमर और पैरके बजनेवाले आभूषण बजने लगते, उस समय उनके रुचिर शब्दको सुनकर वे बहुत ही आनन्दित होते। इधर-उधर आते-जाते हुए लोगोंके पीछे-पीछे दो-चार पग जाकर वे भोलेपन और भयभीत भावको प्रकट करते और माताओंके पास भाग आते। उस समय उनके स्तनोंसे स्नेहकी अधिकताके कारण आप-ही-आप दुग्धस्राव होने लगता; तब वे पंक और अंगराग-शोभित पुत्रोंको गोदमें उठाकर गलेसे लगा लेतीं और उनको दुग्ध पिलाने लगतीं। दुग्ध पिलाते समय भोली मुसकान और छोटी-छोटी दँतुलियोंसे शोभित बालकोंके मुखारविन्दको देखकर माताओंको अपार आनन्द होता था :—

"केचित्पुष्पैः दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः,
　　शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ।
सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्व भोज्य रुचिं पृथक् ,
　　हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥
बिभ्रद् वेणुं जठर पटयोः शृङ्ग वेत्रे च कक्षे,
　　वामे पाणौ मसृण कवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।
तिष्ठन्मध्ये स्वपरि सुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः,
　　स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥"

कोई फूलोंपर, कोई पत्तोंपर, कोई पल्लवोंपर, कोई अंकुरोंपर, कोई फलोंपर, कोई छालोंपर और कोई शिलाओंपर रखकर भोजन करने लगा। सभी बालक परस्पर अपनी भिन्न-भिन्न रुचि दिखलाते हुए हँसते-हँसाते बालकृष्णके साथ आहार करते थे। कमरमें बँधे हुए पटमें वेणु रखेसे सुशोभित, बाईं बगलमें सींग, दाहिनी बगलमें बेंत दबाये, हाथमें माखन-भातका कौर लिये और उँगुलियोंकी संधिमें गोली रखे, व्रजचन्द्र बालकोंके बीचमें विराजमान थे। वे परिहास करके साथियोंको हँसाते, भोजनका आनन्द देते और बाल-केलि दिखला कर देवताओंको विस्मित करते थे।

कुछ पद्य अंग्रेज़ी भाषाके भी देखिये :—

"'Tis bed-time; say your hymn, and bid 'Good-night,
God bless Mamma, Papa, and dear ones all',
Your half-shut eyes beneath your eyelids fall,
Another minute you will shut them quite.
Yes, I will carry you, put out the light,
And tuck you up, although you are so tall!
What will you give me, Sleepy One, and call,
My wages, if I settle you all right?
I laid her golden curls upon my arm,
I drew her little feet within my hand,
Her rosy palms were joined in trustful bliss,
Her heart next mine beat gently, soft and warm;
She nestled to me, and, by Love's command,
Paid me my precious wages—'Baby's kiss'."

—F. Erokine, Earl of Rosslyn.

यह सोनेका समय है, प्रार्थना करो, प्रणाम करो। भगवान मा-बाप और सर्व-प्रियजनोंका मंगल करें। जब तुम्हारी अर्द्ध-निमीलित आँखें पलकोंमें निमग्न होंगी, तब तुम उनको बिलकुल मूँद लोगी। उस समय मैं तुम्हें गोदमें ले लूँगी, दीपक बुझा दूँगी और तुम्हें उठा ले चलूँगी। यद्यपि तुम बढ़ गई हो, तो भी मैं तुमको ढकका लूँगी। ओ सोनेवाली, यदि मैं तुमको आरामसे लिटा दूँ, तो तुम मुझको बदलेमें क्या दोगी? मैंने उसके सुनहले घूँघरवाले बालोंको अपनी बाँहपर लहराने दिया, उसके छोटे-छोटे पैरोंको अपने हाथोंमें लिया। उसकी गुलाबी हथेलियाँ किसी विश्वासात्मक कल्याणके लिए जुड़ी हुई थीं। उसका कोमल और प्रेम-पूरित हृदय मेरे हृदयके समीप ही धीरे-धीरे धड़क रहा था। वह मेरे कलेजेसे लगी हुई थी। उसने प्रेमकी आज्ञासे मुझे मेरा अमूल्य पुरस्कार एक चुम्बन-द्वारा दिया।

"Golden slumbers kiss your eyes,
Smiles awake you when you rise.
Sleep, pretty wantons, do not cry,
And I will sing a lullaby,
Rock them, Rock them, lullaby.
Care is heavy, therefore sleep you.
You are care, and care must keep you.
Sleep, pretty wantons, do not cry,
And I will sing a lullaby.
Rock them, rock them, lullaby."

—T. Dekker.

मीठी नींद तुम्हारी आँखोंको चूमे ; जब तुम उठो, तो मुसकराते हुए उठो। ऐ मेरे प्यारे खिलाड़ी ! रोओ मत, सोओ। मैं लोरियाँ गाऊँगी, आ, लोरी, आ, बच्चेको पालने पर झुला। देखभाल गुरुतर है, इसलिए तुम सो जाओ, देखभाल तुम्हीं हो, वही तुम्हारी रक्षा करे।

"She kneels and folds her baby hands,
And gaily babbling lisps her prayer
What if she laughs ? God understands
The joyous heart that knows no care."

वह अपने नन्हें हाथोंको जोड़कर घुटनेके बल झुकती है और प्रसन्नतासे तुतलाते हुए अपनी प्रार्थना करती है, यदि वह हँसती है, तो क्या ! ईश्वर उसके उस प्रफुल्ल हृदयकी बात समझता है, जो निश्चिन्त है।

उर्दू-साहित्यमें वात्सल्य रसकी कविताएँ दुष्प्राप्य हैं। आबेहयातमें भी यह अमृत न मिला। कविवर अनीस ही एक ऐसे कवि हैं, जिनकी लेखनी सर्वतोमुखी है। उन्होंने एक स्थानपर एक बालकका वर्णन किया है, उसीको मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"छोटासा एक सब्ज़ अमामा था सीश पर,
माथा मंडूखे बालोंमें हालेमें ज्यों क़मर।
जुट्टी भवें वह जिन प तसद्दुक़ दिलोजिगर,
आँखें तो नरगिसी प नक़ाहत बैयाज़तर।
सायामें दामने ख़लफ़े बूतराबके,
रुख़सार थे कि फूल खिले थे गुलाबके।
फैला हुआ वह आँखमें काजल इधर-उधर,
ख़ुशक़ीदा होंठ मूपे मिज़ा आंसुओंसे तर।
बाज़ोंसे था नमूद जमे दूधका असर,
हाथोंमें नीले डोरे थे हैकल थी सीनापर।
कुर्ता बदनमें आता था इस रंगसे नज़र।
पड़ती है ओस फूलों प जैसे दमे सेहर।"

कुछ कविताएँ और देखिये, मौलाना इसमाईल माके प्यारका वर्णन करते हैं :—

"कैसा लेटा है यह ख़ुशोख़ुर्रम,
न कोई फ़िक्र है न कोई ग़म।
न तो रोता न बिलबिलाता है,
गोदमें क्या हुमुकके आता है।
मुसुकुराता है क्या ही ख़ुश होकर,
जैसे चिड़िया मगन हो डाली पर।
जब कि सोनेका वक़्त है आता,
मेरे सीनेसे है चिमट जाता।
जब कि आँखोंमें नींद आती है,
बिसतरा उसका मेरी छाती है।
नींद लेकर हँसी ख़ुशीसे उठा,
फूल गोया खिला चमेलीका।
लग गई भूख कह नहीं सकता,
प्यारी नज़रोंसे है मुझे तकता।
प्यारका भी मेरे यही है सबब,
नहीं आता बयानमें मतलब।

शौक़ क़िदवाई साहबकी बातें भी सुन लीजिये, एक लड़कीके सौन्दर्यका चित्र खींचते हैं :—

"दिलको लुभा रहा है अन्दाज़ इस हँसीका।
पेशे नज़र है नक़्शा खिलती हुई कलीका।
यह दाँत साफ़ इसके यह होंठ साफ़ इसके।
दो नीम रंग गुल हैं चेहरे में गाल इसके।
क़ुदरतने इन लबोंको क्या लाल कर दिया है।
दो हर्फ़ लिखके गोया शंगर्फ़ भर दिया है।

अपनी हँसीकी शायद इसको खबर नहीं है।
क्या फूल खिल रहे हैं इसपर नज़र नहीं है।
गालोंमें पड़ गई है कुछ कुछ शिकन हँसीसे।
चमका है हुस्ने फ़ितरत इस हुस्न आरज़ीसे।
क्या खिलखिला रही है इसकी हँसी तो देखो।
रुखपर लटें पड़ी हैं वारुस्तगी तो देखो।
ज़ाहिर है भोलेपनसे कुदरतकी कारसाज़ी।
ख़ूबीको नाज़ इसपर खुद उसको बेनियाज़ी।
क्या चीज़ है लड़कपन परवा नहीं किसीकी।
अय 'शौक़' उम्र तिफ्ली है जान ज़िन्दगीकी।"

कविपुंगव सूरदासका वत्सल-रस-वर्णन अत्यन्त मनोहर और सरस है। उसमें जितनी स्वाभाविकता और मार्मिकता है, वह सहृदय-हृदय-संवेद्य है, वर्णनीय नहीं। महामहिम गोस्वामी तुलसीदासने भी वात्सल्य भावोंका चित्रण बड़ी विलक्षणतासे किया है। किसी-किसी विषयमें वे सूरदाससे भी आगे हैं ; कहीं-कहीं उनका चित्र अभूतपूर्व है, फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सूरदासके समान उनका वर्णन व्यापक और पूर्ण नहीं है। बाललीला और बाल्यकाल-सम्बन्धी कार्य-कलापोंका जितना सुन्दर और विस्तृत वर्णन उन्होंने किया है, गोस्वामीजीने नहीं। उनके अनेक पद्योंमें सूरदासके पद्योंका अनुकरण पाया जाता है, और उनमें उनकी छाया भी मिलती है, इसलिए मेरा हृदय यही स्वीकार करता है कि हिन्दी-संसारमें वात्सल्य रस-वर्णन-प्रधानताका सेहरा सूरदासके ही सिर है। हिन्दीका अन्य कोई कवि इस विषयमें उनकी समता नहीं कर सकता। इस अवसरपर हृदयमें यह प्रश्न स्वभावतया उपस्थित होता है कि सूरदासकी ये उच्चकोटिकी रचनाएँ मौलिक हैं अथवा उनका भी कोई आधार है। मेरा विचार है कि इस विषयमें वे श्रीमद्भागवतके ऋणी हैं। यही वह महास्थान है, जिसमें से उन्होंने अपने मनोहर भाव-कुसुम चुने हैं। उनके अनेक पद्योंमें मौलिकता है, उनकी अधिकांश उक्तियाँ नई हैं, किन्तु उनकी विकास-भूमि भागवतकारकी ही प्रतिभा है। सूरसागर श्रीमद्भागवतका स्वतन्त्र अनुवाद है, इससे भी इस विचारकी पुष्टि होती है। दोनोंकी रचनाके आधार बालकृष्ण ही हैं, यह भी यही सिद्ध करता है। यह सब सच है, परन्तु सूरदासका स्वकीयत्व भी असन्दिग्ध है। उनका महाकवित्व उनकी वात्सल्य-रसकी रचनाओंमें भी अक्षुण्ण है। आप लोग निम्न-लिखित पद्योंके भावोंको भागवतके ऊपर लिखे पद्योंके भावसे मिलाइये—

"किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नन्दके आँगन मुख-प्रतिबिम्ब पकरिबे धावत।
कबहुँ निरखि हरि आप छाँहको पकरनकों चित चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दँतियाँ पुनि पुनि तेहि अवगाहत।
कनक भूमिपर कर पग छाया, यह उपमा एक राजत।
प्रतिकर प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा कनक बैठकी साजत।
बाल दसा सुख निरखि जसोदा पुनि पुनि नन्द बुलावति।
अँचरातर ले ढांकि सूर प्रभु जननी दूध पियावति।"

"माई छाक बुलाये श्याम।
यह सुनि सखा सबै जुरि आये सुबल सुदामा अरु श्रीदाम।
कमलपत्र दोना पलासके सब आगे धरि परसत जात।
ग्वाल-मंडली मध्य श्याम घन सब मिलि रुचिकर भोजन खात।
कैसी भूख माँहि यह भोजन पठै दियो है जसुमति मात।
सूर श्याम अपनो नहिं जेंवत ग्वालन कर तें ले-ले खात।"

दोनों अपूर्व ग्रन्थोंकी रचनाओंमें बहुत कुछ भाव-साम्य है। एक ही विषयका वर्णन दोनोंमें है। कौन किससे उत्तम है, किसमें अधिक रस-परिपाक और अधिक स्वाभाविकता है, इस विषयकी मीमांसा गहन है। दूसरी रचनाओंमें प्रथम रचनाओंका प्रतिबिम्ब स्पष्ट है। जो संस्कृत भाषाका ओज और माधुर्य है, वह उसमें और हिन्दी भाषाकी सरलता, कोमलता और भावुकता सूरदासकी कवितामें मौजूद है। उसमें उनका निजत्व भी झलक रहा है, और उनकी वह सहृदयता भी विकसित है, जो मानसिक भाव-चित्रणका सर्वस्व है। तुलनाके लिए इतना ही यथेष्ट है।

इस प्रकारकी एक रचना गोस्वामी तुलसीदासकी भी लिखता हूँ। उसका माधुर्य, सौन्दर्य और विकास देखिए—

"मुनिके संग विराजत बीर।
काक पच्छ धर कर कोदण्ड सर सुभग पीतपट कटि तूनीर।
बदन इन्दु अम्भोरुह लोचन स्याम गौर छबि सदन सरीर।
पुलकत ऋषि अवलोकत सोभा उर न समात प्रेमकी भीर।
खेलत चलत करत मग कौतुक बिलमत सरित सरोवर तीर।
तोरत लता सुमन सरसीरुह पियत सुधा सम सीतल नीर।
बैठत विमल सिलनि विटपनि तर पुनि-पुनि बरनत छाँह समीर।
देखत नटत केकि, कल गावत, मधुप मराल कोकिला कीर।
नयननिको फल लेत निरखि खग मृग सुरभी बालक अहीर।
तुलसी प्रभुहिं देत सब आसन निज निज मन मृदु कमल कुटीर।"

अंग्रेज़ीके पद्योंमें माताके हृदयका प्रतिबिम्ब पाया जाता है, उसकी स्नेह-धारा भी उसमें बहती मिलती है; किन्तु उसमें स्वाभाविकता और मार्मिकता कितनी है, बाल-भाव कितना विकसित है, इसका अनुमान आप निम्न-लिखित पद्योंको पढ़कर करें—

"जसुदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लालको आउ निंदरिया काहे न आनि सुआवै।
तू काहे न बेग री आवै तोकों कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलकि हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै-ह्वै रहि करि-करि सैन बतावै।
एहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नँद भामिनि पावै।"

× × ×

छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरिकै तूँ देरी मैया,
'लै कन्हैया, सो कब?' अबहिं तात।
सिगरियै हौं ही खैहौं, बलदाऊकों न देहौं,
सो क्यों भट्ट, तेरो कहा, कहि इत उत जात।
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपी गन महरि मुदित पुलकित गात।
नूपुरकी धुनि किंकिनिके कलरव सुनि,
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात।
तनियाँ ललित कटि विचित्र टेपारो सीस,
मुनि-मन हरत बचन कहै तोतरात।
तुलसी निरखि हरखत बरखत फूल भूरि भागी,
ब्रजबासी विबुध सिद्ध सिहात।

× × ×

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपने हरिहिं लिए चन्दा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी देखो धौं भरि नैन जुड़ावत।
चितै रहे तब आपुन ससि तन अपने कर लै-लै जु बतावत।
मीठो लगत किधौं यह खाटो देखत अति सुन्दर मन भावत।
मन ही मन हरि बुद्धि करत हैं माताको कहि ताहि मँगावत।
लागी भूख चन्द मैं खैहौं देहु देहु रिस करि विरुझावत।
जसुमति कहति कहा मैं कीनो रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर श्यामकों जसुमति बोधति गगन चिरैया उड़त लखावत।

× × ×

सोइये लाल लाड़िले रघुराई।
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई।
हँसे हँसत अनरसे अनरसत प्रतिबिम्ब न ज्यों झाँई।
हौ जम्हात अलसात तात! तेरी बानि जानि मैं पाई।
गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई।
बछरु छबीले छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई।
सानुज हिय हुलसति तुलसी प्रभु निरखि ललित लरिकाई

× × ×

जागिये ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद-वृन्द सकुचित भये भृङ्ग लता भूले।
तमचुर खगरोर सुनहु बोलत बनराई।
राँभति गौ खरिकनमें बछरा हित धाई।
बिधु मलीन रवि प्रकास गावत नर नारी।
सूर स्याम प्रात उठो अम्बुज करधारी।"

मेरा विश्वास है कि इन पद्योंको पढ़कर आप लोग यह खुले दिलसे स्वीकार करेंगे कि हिन्दीके पद्योंमें अंग्रेज़ीके

पद्योंसे अधिक सरसता और भावुकता है। उनकी रचना जितनी मनोमोहक है, उतनी ही प्राकृतिक और स्वाभाविक। उनमें बाल-भाव मूर्तिमन्त होकर विराजमान है, और शब्दावलीमें ही क्रीड़ा करता दृष्टिगत होता है। जिस पद्यमें जिस विषयका वर्णन है, उसमें उसीका सांगोपांग विकास है, किसी अन्य विषयका नहीं। हिन्दी भाषाके पद्य अपने भावोंमें आप ही लीन हैं, उनमें दूसरे अप्रासंगिक भावोंकी झलक तक नहीं है, इसीलिए वे विशेष प्रस्फुटित हुए हैं और उनमें वह विशेषता उत्पन्न हो गई है, जो रसमें परिणत होकर मानसोंमें अलौकिक आनन्दका संचार करती है। यह बात अंग्रेज़ी पद्योंमें नहीं पाई जाती। उर्दूके पहले और तीसरे पद्यमें बाल-छविका चित्रण है और दूसरेमें बाल-भावोंका वर्णन। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रचनाएँ हृदयग्राहिणी हैं, और उनके लिखनेमें कवि-प्रतिभा विकसित हो उठी है ; किन्तु ऐसे अवसरोंपर जो चमत्कार कविवर सूरदास और भगवती वीणा-पाणिके वर पुत्र तुलसीदासकी लेखनीने दिखलाया है, वह विचित्र है, उसमें भाव और भाषा दोनोंकी पराकाष्ठा हो गई है। इस प्रकारकी उनकी कुछ रचनाएँ नीचे लिखी जाती हैं—

"नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तो कों दिये कर नृपवरनि।
बाल भूखन बसन तन सुन्दर रुचिर रज भरनि।
परस्पर खेलनि अजिर, उठि चलनि गिरि गिरि परनि।
झुकनि झाँकनि छाँह सो किलकनि, नटनि, हठि लरनि।
तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मन हरनि।
सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि।
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दे जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भये चहैं तरनि।

× × ×

आँगन आँगन अँगना खेलत चारु चारयो भाई।
सानुज भरत लाल लखन राम लोने लोने,
लरिका लखि मुदित मातु समुदाई।
बाल बसन भूखन धरे नख सिख छबि छाई,
नील पीत मनसिज सरसिज मंजुल,
मालनि मानो है देहनि ते दुति पाई।
ठुमुक ठुमुक पग धरनि, नटनि लरखरनि, सुहाई।
भजनि, मिलनि, रूठनि, टूठनि, किलकनि।
अवलोकनि, बोलनि बरनि न जाई।
सुमिरत श्री रघुबरनि की लीला लरिकाई।
तुलसिदास अनुराग अवध आनन्द,
अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई।

× × ×

सुन्दर मुखकी बलि बलि जाऊँ।
लावनि निधि गुननिधि सोभानिधि
निरखि निरखि जीवत सब गाऊँ।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी
प्रगटति रस रुचि ठावँ ठाऊँ।
तापै मृदु मुसुकानि मनोहर
न्याय कहत सब मोहन नाऊँ।
नैन सैन दै दै जब हेरत
तापै हौं बिन मोल बिकाऊँ।
सूरदास प्रभु मन मोहन छबि
सोभाकी उपमा नहिं पाऊँ।

× × ×

झूलत राम पालने सोहैं।
भूरि भाग जननी जन जोहैं॥
मृदु तन मंजुल मेचकताई।
झलकति बाल बिभूखन झाँई॥
अधर पानि पद लोहित लोने।
सर सिंगार भवसारस सोने॥
किलकत निरखि बिलोल खेलौना।
मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना॥

रंजित अंजन कंज विलोचन ।
भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
लस मसि बिन्दु वदन विधुनीको ।
चितवत चित चकोर तुलसीको ॥

× × ×

बर दन्तकी पंगति कुन्द कली अधराधर पल्लव खोलनकी ।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलनकी ।
घुघुरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलनकी ।
निवछावर प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलनकी ।''

× × × ×

संस्कृत भाषाका सौन्दर्य, माधुर्य, उसकी प्रांजलता और विशदता बुधजनानुमोदित है । वह भारतीयताकी जननी है, उसकी आभासे समस्त आर्यभाषाएँ विभासित हैं और देवभाषा कहकर उसको पुष्पांजलि प्रदान की जाती है । ऐसी दशामें उसके साथ हिन्दी भाषाकी स्पर्द्धा कैसी ? केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वात्सल्य रस-वर्णनमें जो उत्कर्ष संस्कृत भाषाने प्राप्त किया है, उसीका विकास उसमें देखा जाता है, जो उसको अन्य भाषाओंसे अधिक गौरवान्वित बनानेमें समर्थ है । यह विकास इतना पूर्ण, मर्मस्पर्शी और विमुग्धकर है, जितना किसी समुन्नत भाषाकी महत्ता और शोभावर्द्धनके लिए वांछनीय है । अपनी भाषामें संस्कारगत सबका प्रेम होता है, ऐसी दशामें यह कहा जा सकता है कि इस विचारमें उसीकी प्रतिच्छाया है । यह हो सकता है, किन्तु जितने प्रमाण मैंने उपस्थित किये हैं, वे हमारे कथनको यथार्थ प्रतिपादन करनेके लिए पर्याप्त हैं । सम्भव है, अंग्रेज़ीका विद्वान् अंग्रेज़ीकी रचनाको ही प्रधानता दे और इसी प्रकार उर्दूका प्रेमी उर्दूकी कविताओंको । क्योंकि प्रत्येक भाषाकी शैली, प्रणाली और विचार-परम्पराका सम्बन्ध उस भाषा बोलनेवालेके संस्कारसे होता है, अतएव वही इस प्रकारके प्रत्येक विचारणीय विषयोंमें उसको संचालित करता रहता है । फिर भी अनेक भाषा जाननेवालों और अनुवाद पढ़नेवालोंको यह अवगत हुए बिना नहीं रहता कि भाव एक होनेपर भी उसके व्यंजन और चित्रणमें किस भाषाकी कवितामें विशेष भावुकता और सहृदयता विद्यमान है । मैंने जितनी कविताएँ अन्य भाषाओंकी अपने लेखमें उद्धृत की हैं, उनको अथवा उनके अनुवादको पढ़कर प्रत्येक कविता-मर्मज्ञ यह स्वीकार करेगा कि तुलना करनेपर हिन्दी भाषाकी वात्सल्य-रसकी रचनाओंमें उनसे विशेष मार्मिकता और स्वाभाविकता पाई जाती है । वास्तव बात यह है कि जैसा सूक्ष्म मानसिक भावोंका व्यक्तीकरण, जैसी सरसता और भावुकता, जैसा मनोहर शब्दविन्यास, जैसी वाच्यार्थकी स्पष्टता तथा ध्वनिकी मधुरता हिन्दी रचनाओंमें है, वैसी अन्य रचनाओंमें कहाँ है ? इसीलिए मेरा यह विचार है कि वात्सल्य रसका निरूपण हिन्दी भाषा जैसा अन्य भाषाओंमें दुर्लभ है ।

कहीं हम भूल न जायँ

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

अपने उपकारियोंके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हिन्दुओंका स्वाभाविक धर्म है। इसीके लिए वे परलोकगत पितरोंका ही नहीं, देवताओं और ऋषियोंका भी तर्पण करते हैं। उन्होंने हमारे क्या उपकार किये हैं, यह जिसमें कहीं भूल न जायँ, इसीलिए तर्पणकी प्रथा प्रचलित है। आजकल कलकत्तेमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हो रहा है, परन्तु किस महापुरुषके प्रयत्नसे कलकत्ता इस योग्य हुआ कि उसमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हो सके? आज आप सम्मेलनमें समवेत सज्जनोंसे यह प्रश्न करें, तो वे इसका क्या उत्तर देंगे? बहुत कम लोग ठीक-ठीक उत्तर दे सकेंगे। इसका कारण यह है कि हममें कृतज्ञताका वह हिन्दू-भाव दिनों-दिन कम होता जा रहा है। राजनीतिक क्षेत्रमें लोकमान्य तिलकको अभी सर्वथा तो लोग नहीं भूले, परन्तु दादाभाई नवरोजीका तो कोई नाम ही नहीं लेता, और मजा यह है कि दादाभाईने ही लोगोंको राजनीतिक आन्दोलनका साहित्य दिया था।

कलकत्तेमें हिन्दीके बहुतसे लेखक और उन्नायक हुए हैं, परन्तु जिनके परिश्रमके फलस्वरूप आज यहाँ छ-छ दैनिक पत्र हिन्दीमें निकल रहे हैं, हिन्दीकी इतनी उन्नति हुई है, उन पं० दुर्गाप्रसाद मिश्रको लोग भूले जा रहे हैं। हमारे सौभाग्यसे 'भारतमित्र' के आदि सम्पादक पं० छोटूलाल मिश्र आज तक वर्तमान हैं, और यह बात भी बहुत कम लोग जानते हैं। पं० सदानन्द मिश्र, पं० गोविन्दनारायण आदिने भी हिन्दी पत्र-सम्पादन और प्रकाशनका काम किया सही, परन्तु पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र यदि न होते, तो उनके कामोंको कोई न जानता।

हिन्दीकी एक मासिक पत्रिका 'भारतमित्र' के जन्मके पहले भी कलकत्तेसे निकली थी, परन्तु 'भारतमित्र' निकलनेके बाद ही कलकत्तेमें हिन्दीकी जड़ जमी; यद्यपि आधुनिक हिन्दी लेखनका जन्म कलकत्तेमें ही श्री लल्लूलाल कविके द्वारा 'प्रेम-सागर' के रूपमें हुआ था। हिन्दीका पहला प्रेस पं० सदानन्द मिश्रके पिता पं० योगध्यान मिश्रने 'सारसुधानिधि' नामसे खोला था, और शायद उसीमें 'प्रेमसागर' पहले-पहल गिलक्रिस्ट साहबकी आज्ञासे छपा था। सन् १८७६ ई० में बंगलामें प्रति सोमवारको 'सोमप्रकाश' नामक पत्र निकला करता था। इसे देखकर पं० छोटूलाल मिश्र और स्वर्गवासी पं० दुर्गाप्रसाद मिश्रके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि ऐसा ही एक पत्र हिन्दीमें भी निकलना चाहिए, और तदनुसार उन्होंने पाक्षिक 'भारत-मित्र' निकाला। परन्तु उन दिनों हिन्दी पाठक बहुत-कम थे, इसलिए ग्राहक तो लोग बन जाते थे, पर पत्र पढ़ न सकते थे। यह समस्या इस तरह हल की गई कि पं० दुर्गाप्रसाद कई गद्दियोंमें जाकर लोगोंको 'भारतमित्र' पढ़कर सुना आया करते थे।

एक वर्ष बाद कुछ मतभेद हो जानेके कारण पं० दुर्गाप्रसाद 'भारतमित्र' से अलग हो गये, और पं० सदानन्द मिश्र, पं० गोविन्दनारायण मिश्र और पं० शम्भुनाथ मिश्रसे मिलकर 'सारसुधानिधि' निकाला। इस पत्रको उदयपुरके स्वर्गवासी महाराणा सज्जनसिंह बड़े चावसे पढ़ते थे। पहली साल जब घाटेके कारण पत्र बंद कर देनेकी नौबत आई, तब उन्होंने लिखा कि घाटेकी रकम हम भेज देंगे, आप 'सारसुधानिधि' बंद न करें। कोई दो वर्ष बाद पं० दुर्गाप्रसादने 'सारसुधानिधि' से अलग होकर अपना स्वतन्त्र पत्र 'उचित वक्ता' निकाला। कई वर्ष चलाकर यह बन्द किया गया, और कुछ वर्ष बन्द रहकर फिर दुबारा निकला। सन् १९०३ में अम्बूसे लौटकर उन्होंने 'मारवाड़ी-बन्धु' नामका

साप्ताहिक पत्र निकला, जो धनाभावके कारण सन् १९०७ में बन्द हो गया। 'सारसुधानिधि' नौ वर्ष और 'उचित वक्ता' भी प्रायः इतने ही समय चला। 'भारतमित्र' गिरता-पड़ता, लुढ़कता-पुढ़कता अब तक चल रहा है, यद्यपि उसकी आब जाती रही। मद्रासके 'हिन्दू' और पूनेके 'केसरी'ने पचास वर्ष समाप्त करके अपनी-अपनी जुबिली की, परन्तु 'भारतमित्र' "उन्नतिको का फ़ख़त हो जीवन को हि कलेस" का नमूना बन रहा है।

पं० दुर्गाप्रसाद मिश्रने समाचारपत्र-प्रकाशनसे कुछ कमाया नहीं, उलटे घरके धान पयालमें ही मिलाये। परन्तु उनको इस कामका शौक था, नशा था, इसलिए कुछ ऊटक-नाटक किया ही करते थे। वे प्रचारक प्रथम श्रेणीके थे। जब १९०७ में अफ़गानिस्तानके अमीर दिल्ली आये थे, तब वहाँके कुछ अदूरदर्शी मुल्लाओंने प्रस्ताव किया था कि उनके आगमनके उपलक्ष्यमें बकरीदपर १०८ गायोंकी कुर्बानी की जाय, पर अमीर साहबने कहा कि अगर मेरे लिए आप यह करना चाहते हैं, तो एक भी गायकी कुर्बानी न करें। क्या मुल्कमें काफ़ी भेड़-बकरे नहीं हैं? मैं हिन्दोस्तान आया हूँ और हिन्दुओंका मेहमान हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरी किसी कार्रवाईसे उनका दिल दुखे। पं० दुर्गाप्रसादजीने अमीरका यह सन्देश अपने हाथसे मारवाड़ी-बन्धु के अतिरिक्त अंक-स्वरूप छापकर जगह-जगह चिपका दिया। काश्मीरके स्व० महाराज सर प्रतापसिंहके अधिकार जब सरकारने छीन लिये थे और उन्हें लाकर जम्बूमें रख दिया था तथा श्रीनगरमें 'कौन्सिल'से शासन आरम्भ हो गया था, तब पं० दुर्गाप्रसाद मिश्रने इसके विरुद्ध भारतव्यापी आन्दोलन किया था। 'रईस ऐंड रैयत'के सम्पादक स्व० डा० शम्भुचन्द्र मुकर्जी और 'अमृत बाज़ार पत्रिका'के स्व० बाबू शिशिरकुमार घोषसे इस काममें उन्हें बड़ी सहायता मिली थी, और इसलिए अन्तमें सन् १९०४ में लार्ड कर्जनने महाराजको फिर सब अधिकार दे दिये थे।

पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र न तो ग्रेजुएट थे और न शास्त्री या तीर्थ अथवा आचार्य, परन्तु अपने कामकी योग्यता उनमें यथेष्ट थी, यह कोई नहीं कह सकता था कि वे क्या पढ़े हैं। वे खुशमिजाज़ थे और बिना हँसीके बहुत कम बातें उनके मुँहसे निकलती थीं। वे सुवक्ता भी थे। लोगोंकी खातिर खूब करते थे। खाने-खिलानेका उन्हें खूब शौक था। वे जम्बूमें फलाहार करने लगे थे और कलकत्ते आकर जब फिर अन्न खाने लगे, तब उनकी पाचनशक्ति नष्ट हो गई और अन्तमें सन् १९१० में इसी रोगसे उनका देहान्त हो गया।

उनकी भाषा बड़ी प्रौढ़ और व्याकरण-सम्मत होती थी, यद्यपि वे बराबर कहते थे कि "'ब्याहकरन' मेरे पास नहीं है, उसकी ज़रूरत हो, तो मानिकके पास जाओ।" इससे उनके दो अभिप्राय थे कि व्याकरण मैं नहीं जानता; उस विषयमें कुछ पूछना हो, तो पं० गोविन्दनारायण मिश्रसे पूछो। उन्हें लोग मानिकजी कहते थे। इसमें व्यंग्यार्थ था कि स्त्री मर जानेपर मैंने ब्याह नहीं किया है, मानिकने किया है। इसी तरहकी बातें हुआ करती थीं। दिल्लगी करते समय उन्हें कुछ खर्च भी करना पड़ता, तो मज़ेसे करते थे। एक बार एक पत्रके सम्पादक और मालिकको कुछ फोश बातें छापकर भेजी थी। इसका मैटर खुद कम्पोज करके खुद ही छापा था, और कम्पोज किया हुआ मैटर गंगामें फेंक दिया था। बादमें सबके नाम बड़ी पर्चा टिकट लगा-लगाकर चन्दननगरसे भेजा था। मालिक साहबको ठीक उन्हींपर सन्देह हुआ। वे तलाशीके लिए पुलिस ले आये, पर उस बूँदसे भेंट कहाँ?

पं० दुर्गाप्रसाद और उनके भाई पं० कालीप्रसादके कोई लड़का न था। उनके भतीजे केशवप्रसादका १९०२ में प्लेगसे देहान्त हो गया था! उनके चचेरे भाई प० वासुदेव मिश्र भी अल्पायु हो गये! वासुदेवजीने 'भारतमित्र' में कई वर्षों तक बड़ी योग्यतासे कार्य किया था। दुर्गाप्रसादजीके उस घोर परिश्रमसे हिन्दीने कलकत्तेमें उन्नति की है। आज इस सम्मेलनके अवसरपर 'विशाल-भारत' द्वारा हम अपने श्रद्धेय मिश्रको श्रद्धांजलि दे रहे हैं।

आसावरी *

[तीन ताल, मध्य लय]

मृदु-तन हम मधु-बाल, मधुर-मन,---
नव जीवित से नव मुकुलित नित
जरा-जीर्ण जग-डाल, विटप, वन- मृदु०

जीवन के मधु-स्वप्नों-से खिल,
शिशिर-शयित जग-पलकों पर हिल,
निशि-जड़ मृत्यु-दृगों में तन्द्रिल
हम नव जन्म-सकाल, स्वर्ण-धन—मृदु०

* 'क्रीड़ा' नामक नाटकसे, बालकोंका कोरस।

नव इच्छाओं का नव गुंजन,
मंजु मञ्जरित तन, मन, लोचन,
नव यौवन-पिक पंचम कूजन,
मुखरित विश्व रसाल हरित, घन—मृदु०

नव रंग, नव छविके कलि-किसलय,
नव वयके अलि, नवल कुसुम-चय.
मधुर प्रणय नव, नव मधु-संचय,
जग मधु-छल विशाल. सुपूरण—मृदु०

--सुमित्रानन्दन पन्त

हिन्दू-मुस्लिम एकता

क्या 'साहित्य' द्वारा सम्भव है ?

'हिन्दी-मुस्लिम'

हां, इसलिए सम्भव है कि जिस साहित्यके द्वारा भारतवर्ष जगद्गुरु कहलाता था, जिस साहित्यके द्वारा अमेरिका धनकुबेर हो रहा है, जिस साहित्यके द्वारा ब्रिटिश जाति राज्य-विस्तारमें सबसे अधिक बढ़ गई और जिस साहित्यकी सहायता पाकर जर्मनी और जापान अपना-अपना संगठन करके ऊँचा माथा किये हुए यशस्वी हो रहे हैं, उसी उच्च साहित्यके—उसी यथानाम तथागुण वाले हितसाधक साहित्यके—नष्ट हो जानेसे आज भारत दीन-हीन हो रहा है, उसकी सन्तान उसीकी छातीपर आज गृह-कलहका दाना दल रही है। विद्वानोंका कहना है कि देशका प्राण साहित्य है, इसीलिए विजेत विजित जातिके साहित्यको नष्ट करनेके लिए यत्नशील रहता है, विशेषकर साहित्यके प्राण इतिहासका नाश पहले करता है।

आजसे कई सौ वर्ष पूर्व जब एशियाके पश्चिमी किनारेवाले सिरिया प्रदेशके (जिसकी चरणरज भूमध्य सागर धोया करता है) अधिकारी उसी देशके निवासी सिरियन लोग थे, और क्रीसस वहाँका राजा था। उसने अपने बाहुबलसे सिरियाकी राज-सीमा बढ़ाकर पूर्वी देश ईरानसे मिला दी थी। विजय-गर्वसे उन्मत्त क्रीससने ईरानपर भी हाथ बढ़ानेकी इच्छासे चढ़ाई कर दी। ईरानके तत्कालीन शाह साइरसने अपने विचारवान मंत्री-मंडलकी सहायतासे सिरियन लोगोंको करारी शिकस्त दी। इतना ही नहीं, सिरियापर भी ईरानियोंका कब्जा हो गया। दुर्भाग्यवश क्रीसस क़ैद करके ईरान लाया गया। साइरसने संरक्षाके खयालसे कुछ थोड़ीसी ईरानी सेनाके साथ अपना एक गवर्नर रख दिया, शेष सब प्रबन्ध ज्यों-का-त्यों रहने दिया। सिरियन लोगोंको विदेशियोंकी इतनी हुकूमत भी पसन्द न आई, इसलिए उन्होंने ईरानियोंके विरुद्ध षड्यंत्र करके विप्लव कर दिया। उस समय क़ैदी क्रीससने साइरसको जो सलाह दी थी वह यह थी कि अगर सिरियापर आप अपना चिरस्थायी अधिकार रखना चाहते हों, तो इतने काम कीजिये :—

(१) प्रारम्भिक शिक्षामात्र सिरियन रखकर उच्च शिक्षा ईरानी भाषामें दीजिये।

(२) छात्रालय ईरानी ढंगके बनाकर उनमें भोजनका प्रबन्ध भी ईरानी कर दीजिये।

(३) उच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी स्कूल-टाइममें ईरानी लिबास (यूनीफ़ार्म) पहनने और ईरानी भाषामें ही बातचीत करनेके लिए बाध्य किये जायँ।

(४) सिरियन इतिहास बंद करके ईरानी वीरों और उनकी विजयका इतिहास पढ़ाइये। फिर मज़ेसे बैठे-बैठे राज्य कीजिये।

विप्लव शांत करनेके बाद ऐसा ही किया गया। परिणाम यह हुआ कि उस समयकी बात ही क्या, आज तक भी सिरिया आज़ादीका मुँह नहीं देख सका। देखे कहाँसे ? जब कि आत्माभिमानके लिए न तो उनकी भाषा ही रह गई, न वेश और न भोजन। सबसे बड़ी हानि जो हुई, वह थी उनके गौरवपूर्ण पूर्वजोंके इतिहासकी। आत्माभिमानके नाश होनेसे देशका नाश हो जाता है।

ऊपर लिखी संक्षिप्तमें ऐतिहासिक कथा पढ़कर हम भारतवासियोंको सबक़ लेना चाहिए, और यत्न करना चाहिए कि भारतीय साहित्यकी श्रीवृद्धि हो, जिससे वह अपने पूर्व गौरवको प्राप्त करनेमें समर्थ हो। श्रीवृद्धि उसी दशामें होगी, जब भारत-निवासी पहले ख़ुदको भारतीय कहना सीखें। सन् १९२७ में भारत-भ्रमण करनेवाली

सुविख्यात नामा ज़किया सुलेमान मुस्लिम महिलाने यहांकी दुर्दशा देखकर कहा था कि मिसरकी ईसाई प्रजा देशके मिसरी झंडेके नीचे आनेपर खुदको मिसरी कहती है, जिस तरह कि मुस्लिम प्रजा। जापानका उदाहरण भी भारतके लिए आदर्शका काम करता है। वहाँ बौद्धोंके सिवा वहींके आदिम निवासी शिंताई और हालके धर्म-परिवर्तक ईसाई भी हैं, लेकिन देशके नातेसे वह सब 'जापानी' हैं। जापानी-रशियन युद्धमें इसी आत्माभिमानने जापानको जय दिलाई थी।

अभी ऊपर मैंने इतिहासको साहित्यका प्राण बतलाया है, इसलिए सबसे पहले हमें अपने इतिहासको दुरुस्त करनेकी ज़रूरत है। बिना इतिहासके संशोधन किये भारतकी दो महान् जातियों—हिन्दू और मुसलमानों—का मेल असम्भव है।

मेरा विचार है कि यदि नीचे लिखी योजनाएँ काममें लाई जायँ, तो सम्भव है कि भारतीय साहित्य फिरसे उन्नत हो जाय। वह न केवल हिन्दू-मुसलमानोंको, वरन् समस्त अल्पसंख्यक जातियोंको जोड़नेमें सीमेंटका काम करने लगे। भावी भलाईके लिए पिछली भूलोंका सुधार अपेक्षित है। साथ ही उन बातोंके भूल जानेकी आवश्यकता है, जो परस्परमें हमारे पूर्वजोंसे बनी थीं। बाप-दादोंका बदला नाती पोतोंसे लेना बुद्धिमानी नहीं। बदला लड़ाईके मैदानमें लिया जाता है, सुलह हो जानेपर फिर बदला कैसा? इसके सिवा एक बात और ध्यानमें रखने योग्य है, वह यह कि पराये अशकुनके लिए अपनी नाक न कटानी चाहिए और पराये अहितके लिए शिखंडी न बनना चाहिए। स्वार्थकी रक्षा करो, पर परार्थ बिगाड़नेके लिए हमला न करो।

सम्पादक—सबसे पहले मैं सम्पादक महोदयोंसे नम्र निवेदन करूँगा कि आप लोग साहित्यके महारथी हैं। भावी इतिहास आपके लेखोंसे लिखा जायगा, इसलिए आप लोग कृपा कर अपनी लेखनीको नियन्त्रित रखा कीजिये। आप तो अपना अकेला विचार अपनी मतिके मुताबिक उत्तेजक शब्दोंमें लिख जाते हैं, परन्तु कभी-कभी उससे कितना संहार होता है, सो बात आपसे छिपी नहीं। आप लोग अपना एक ट्रेनिंग स्कूल खोलें, और जब तक डिप्लोमा न पा लें, सम्पादकीय जैसे महत् उत्तरपूर्ण कामके लिए अग्रसर न हों। आप जो कुछ लिखें, खूब समझ-सोचकर लिखें। आप चाहे जिस जातिके हों पर सम्पादककी गद्दीपर बैठनेके समय देशको न भूलें। केवल पत्रके ग्राहक बढ़ानेकी इच्छासे एक जातिका पक्ष लेकर मनमानी न लिखा करें। ऐसे समाचार कभी न छापें, जो भ्रमपूर्ण हों अथवा जिनसे तनातनी या कलह हो जानेकी सम्भावना है।

लेखक—यही बात जो सम्पादकोंसे कही है, लेखकोंसे कहूँगा कि आप चाहे लेख लिखें या निबन्ध अथवा कोई पुस्तक। उसमें इतना ध्यान रखें कि आपके लेखसे आपकी जाति या पड़ौसी जातिके हृदयको ऐसी ठेस न लग जाय कि दोनों आपसमें मर मिटें। आपके लेख वैसी ही सद्भावनासे लिखे जाना चाहिए, जैसी सद्भावनासे एक मित्र दूसरे मित्रको लिखता है। अब समय 'रंगीला रसूल' और 'कुफ्र तोड़' जैसी पुस्तकोंके लिखनेका नहीं रहा। कार्लाइल ईसाई सज्जन थे, उन्होंने हज़रत मुहम्मद साहबकी निष्पक्षपात पूर्ण लेखनीसे जीवनी लिखकर मुसलमानोंको आभारी बना लिया था। अभी हालमें इसी 'विशाल-भारत' के किसी अंकमें एक हिन्दू सज्जनने भी हज़रत मुहम्मद साहबसे मिलनेवाली हज़ारोंमें से दो-चार शिक्षाओंका वर्णन बड़ी चित्ताकर्षक भाषामें किया था। मौलाना हसन निज़ामीने भी 'कृष्ण बीती' नामकी एक पुस्तक उर्दूमें बड़े अच्छे ढंगसे लिखी है। सारांश यह कि जो कुछ लिखा जाय, भारतीय दृष्टिसे और भारतकी भलाईके लिए लिखा जाय।

कवि—लेखकोंकी अपेक्षा कवियोंका महत्व अधिक है। उनकी वाणीमें आकर्षण भी हुआ करता है और जादू भी। उन्हें जो कुछ लिखना हो, लिखें, परन्तु लिखनेसे पहले इतना अवश्य सोच लें कि हमारी कवितासे अनर्थ तो न हो जायगा। आपकी ओज और प्रसादमयी कविताकी अमृतधारा राष्ट्रमें सजीवता ला दे, वो बिछुड़े हुए भाइयोंको मिला दे,

टूटे हुए दिलोंका जोड़ दे, मुर्दादिलोंमें जान और जनतामें पारस्परिक प्रेम ला दे। आपकी कवितासे दुष्टोंके दिल भी पसीज जायँ, राष्ट्रीयताकी लहर फैलाकर शान्तिका राम-राज्य स्थापित हो जाय। आज देश ऐसी ही कविता चाहता है।

व्याख्याता और उपदेशक—कभी-कभी इन सज्जनोंकी करतूतसे कानपुर जैसी घटनाएँ जन्म ले सकती हैं। इन्हें ऐसी बातें कहना चाहिए, जो भूले हुए लोगोंको राहपर ला देवें, न कि महाभारतकी पुनरावृत्ति करा देवें। गुप्तवंशके अपने अपमानका बदला लेनेके लिए नन्दवंश जैसे वंशको उत्तेजित करके राज्यका उलट-फेर करानेके लिए चाणक्य भी न बनिये, जिससे निर्दोष प्रजा व्यर्थमें पिस जाय और भाईका वैभव हथियानेके लिए विभीषण भी न बनिये। शत्रुपक्षसे मिलकर अपने घरकी बरबादी कराके अनित्य और नगण्य लाभके लिए भी कुछ न कहिये। आप जो कुछ कहें, कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे विश्वप्रेमके प्रेमी बनकर प्रेम-भरी बातें कहें। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उक्ति चरितार्थ कराके दिखा दें। आज देशमें साम्प्रदायिकताका जो विष फैला है, उसे दूर करनेके लिए धन्वन्तरि बन जाइये। अधिकारोंके पानेके स्वप्न देखनेवालोंको रोम राज्य और रूस राज्यका इतिहास बताइये। सारांश यह कि वैसा कीजिये, जैसा किसी मनस्वीको करना चाहिए।

चित्रकार—आप भी साहित्यके सहायक कहे जाते हैं। सचित्र चरित्र बड़े आकर्षक होते हैं, लेकिन ऐसे कार्टून न बनाइये, जो घरमें ही जूता-पैजार करा दें और विपक्षियोंको हँसनेका मौका दें। आप जात-पांत और देश-विदेशका पचड़ा छोड़कर ऐसे भावपूर्ण चित्र बनाइये, जिनके असरसे संगदिल भी मोह जायँ और पानी-पानी बन जायँ।

गायक—साहित्यके साथ संगीतका चोली-दामन कैसा साथ है। गानेवाले सज्जन सब क़ौमों और सब मुल्कोंमें होते हैं। भारत तो इस सम्बन्धमें सबका गुरु ही रहा है। यहाँ तानसेन और बैजू बावरे जैसे गायकोंने जन्म लिया था, जो अपने गान द्वारा दीपक जला सकते, कोल्हू चला सकते और पानी बरसा सकते थे। आज भी विष्णु दिगम्बर और प्यारे मास्टर जैसे नामी गवैये हैं, लेकिन वे राग-रागिनियोंके घेरेमें से निकलकर देशमें प्रेम-भाव और राष्ट्रीयता स्थिर करनेकी बहुत कम कोशिश करते हैं। भारतके प्रसिद्ध गायक यदि अपने गाये हुए राष्ट्रीय गीतोंको ग्रामोफ़ोनके रिकार्डोंमें भरवा दें, तो भारतका बहुत हित हो। ऐसे गीत न गाये जायँ, जो दो जातियोंमें कलह उत्पन्न करा दें। देश शांतिकी तलाशमें है, वह अमीरोंके हृदयमेंसे ग़रीबोंके प्रति अहंभाव और ग़रीबोंके हृदयमें से अमीरोंके प्रति भयके भाव निकालकर भाईचारा पैदा करना चाहता है। आप उन गानोंको गाना छोड़ दें, जिनसे वैमनस्य और घृणाके भाव फैलनेकी सम्भावना हो।

कलाविद्—यों तो सब मिलाकर ६४ कलाएँ हैं, जिनके लिए भारत प्रसिद्ध रहा है, परन्तु उनमेंसे इमारती काम (मन्दिर, मसजिद, महल आदि), गुफाएँ खोदकर उनमें मंडप—आसन और मूर्ति आदि बनानेका काम, धातु अथवा पत्थर आदिसे मूर्ति बनानेका काम, चित्र-कला और व्यायाम आदि कलाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनके द्वारा एक दूसरेके साथ रहनेसे तबादला खयालातका होना और प्रेम बढ़ता है। इसी प्रकारके दूसरे छोटे-छोटे शिल्प (लुहार, बढ़ई, दर्जी आदि) की बातें हैं, जिनका जीवनचर्या चलानेके लिए नित्य काम पड़ता है। उनमें कभी-कभी संकीर्णताके भाव देखे जाते हैं, कोई-कोई महाशय काम लेनेके वक्त जात-पाँतका पचड़ा खड़ा कर देते हैं। गत सैकड़ों वर्षोंसे हिन्दू-मुसलमान कारीगर हिन्दू-मुसलमान जनताके साथ हिलमिलकर रहते आये हैं, और एक दूसरेके गुणकी क़द्र करते आ रहे हैं। जयपुर (मकराना) की बनी संगमर्मरकी देव-मूर्तियाँ बनाने और बेचनेवाले मुसलमान और ख़रीदनेवाले हमारे हिन्दू भाई देखे जाते हैं। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है? जाति-भेद-भावका प्रश्न इधर गत तीस-पैंतीस सालसे देखनेमें आ रहा है। सन् १९१९ के इधर तो मानो उस भेद-भावकी

रजिस्ट्री-सी हो गई है। सम्भव है, इसमें धार्मिक अन्धभक्ति और राजशक्ति कारणभूत हो, इसलिए अब हरएक देशप्रेमी सज्जनका काम है कि इस भेद-भावकी दीवालको तोड़ देवे और एक दूसरेकी बनी स्वदेशी वस्तुओंकी क़द्र करें। प्रदर्शनियोंमें हिन्दू मुसलमानोंकी और मुसलमान हिन्दू भाइयोंकी कारीगरीकी दाद दें, तो देशको बहुत लाभ हो।

इस प्रकार संक्षेपमें साहित्य और साहित्यके अन्तर्गत संगीत और कला-द्वारा हो सकनेवाले मेलका वर्णन किया गया। यदि देशके समाचारपत्रों और मासिक पत्रोंके संचालक और लेखक चाहें, तो देशकी जनताके सामने उन देशोंका आदर्श सरल, सुबोध और अव्यंग्यपूर्ण भाषामें सद्भावनासे प्रेरित होकर रखें, जिन-जिन देशोंने राजके दुखद क़ानून, धर्मके नामपर कठिन बन्धन और समाज-संगठनके नामपर साम्प्रदायिकताकी अनपेक्षित बनी हुई चहारदीवारीको तोड़कर फेंक दी है, और जनताके कल्याण-कामनासे प्रेरित होकर सब प्रकारके त्यागोंका सामना किया है। यह सब परिमार्जित साहित्यके द्वारा ही होना सम्भव है। यह काम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने हाथमें लेवे।

यदि इस प्रकारका लेख कोई इतिहासज्ञ विद्वान् लिखता, तो स्थान-स्थानपर इतिहासके हवाले देकर लेखको उपादेय बना देता। मैंने प्रस्तावके रूपमें समयको देखते हुए यह छोटासा लेख लिखा है। यदि इस लेखमें लिखी विधियाँ देशके लिए लाभदायक समझी जायँ, तो एक-एक बातको लेकर अनेक लेख धारावाही रूपमें लिखे जा सकते हैं और अनेक पुस्तकें निर्माण की जा सकती हैं। यदि भारतमें राष्ट्रीयता लाना अभीष्ट है, अल्पसंख्यक जातियोंका संरक्षण लाज़मी है, महात्माजीकी बात रखनी है, तो सबसे पहले हम लोग एक दूसरेको बुरा कहना छोड़ दें। मुसलमान बादशाहों, अमीरों, रईसों और साधारण प्रजा द्वारा और इसी तरह हिन्दू राजा-महाराजा, जागीरदार, ज़मींदार और साधारण प्रजा द्वारा हिन्दू तथा मुसलमानोंको जो लाभ पहुँचा हो, धर्मकी भिन्नता रहनेपर भी अभिन्न हृदयसे मन्दिर, मसजिद, कुएँ, बावली, सराय और सड़क आदि बनवा दी गई हों, शालाएँ खोलीं और जागीरें लगा दी गई हों, और जानकी बाज़ी लगाकर पराई प्राण-रक्षा की गई हो, उन-उन लाभप्रद उल्लेखोंका उल्लेख करके परस्पर प्रेम और विश्वास बढ़ावें। हिन्दू साधु और फ़क़ीरोंके सच्चे करिश्मे लिखकर पेश करना भी हितकर होगा। वे बातें भूलके गढ़ेमें डाल दी जायँ, जिन्हें याद रखनेसे आज हम और हमारी भावी सन्तानें लड़ती रहें और गुलामीकी ज़ंजीरें हमेशाके लिए पैरोंमें पड़ी रहें। अन्तमें मैं तो यही कहूँगा कि—

"हिन्दू मुसलमान हों किंवा भारतके जनमे ईसाई।
जननी जन्मभूमिके नाते, सब ही हैं भाई-भाई॥
मिलकर ऐसे करो काम हो जिससे उन्नत देश-समाज।
भूल जाओ कलहकी वे बातें जिससे कलह न होवे आज।"

पत्रकार-कलाकी प्राचीन सामग्री

श्री विष्णुदत्त शुक्ल

पत्रकार-कलाके इतिहासके सम्बन्धमें यह बड़े दुःखकी बात है कि हमारे पास उपयुक्त सामग्री नहीं मिलती। हम यह तो नहीं मानते कि विषयकी सामग्रीका बिलकुल लोप हो गया है, फिर भी इतना अवश्य है कि उसका ढूँढ़ निकालना कठिन हो गया है। एक ओर तो सामग्रीकी यह विरलता और दूसरी ओर हमारी इस विषयसे उदासीनता, दोनोंके संयोगसे इतिहास-सम्बन्धी सामग्री और भी उपलब्ध नहीं होती। परिश्रम करके किसी विषयकी खोज करनेके अभ्यासी न होनेके कारण ही हम अभी तक यह भी नहीं जानते थे कि हिन्दीमें सबसे पहले कौन पत्र प्रकाशित हुआ था। कुछ दिन हुए श्री राधाकृष्णदासने एक पुस्तिका लिखी थी, उसीके आधारपर स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्तने एक निबन्धमाला पत्रकार-कलाके इतिहासके सम्बन्धमें लिखी थी। इन दोनों पुस्तकोंमें बनारसके 'बनारस-अखबार' को ही हिन्दीका सबसे पुराना समाचारपत्र माना गया है, परन्तु बात वास्तवमें यह नहीं थी।

सबसे पहले हिन्दीका कौनसा पत्र प्रकाशित हुआ, इस विषयकी छान-बीन 'माडर्नरिव्यू' के सहकारी सम्पादक श्री ब्रजेन्द्रनाथ बनर्जीने किया है। ब्रजेन बाबू तमाम देशी भाषाओंकी प्राचीन पत्रकार-कलाका इतिहास लिख रहे हैं। इसी सिलसिलेमें उन्होंने ढूँढ़ निकाला है कि 'बनारस-अखबार'से बहुत पहले सन् १८२६ में ही कलकत्तेसे 'उदन्त मार्तण्ड' नामका एक सुन्दर साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता था। उसके सम्पादक थे पं० युगलकिशोरजी शुक्ल और प्रकाशक श्री मन्नू ठाकुर।

बनर्जी महाशयको उस पत्रकी पूरी फाइल भी एक स्थानसे प्राप्त हो गई है, इसलिए उस पत्रके सम्बन्धका काफी विस्तृत वर्णन उन्हें उपलब्ध हो सका है। पत्रका विशेष विवरण 'विशाल-भारत' के गत कई अंकोंमें प्रकाशित हो चुका है। इस विवरणसे हम देखेंगे कि हिन्दी पत्रकार-कलाका इतिहास काफ़ी पुराना है। इस नई खोजसे पत्रकार कलाके इतिहासमें एक नई जान-सी आ गई है।

'उदन्त मार्तण्ड' की पूरी फाइल कलकत्तेके एक पुराने रईसके पुराने पुस्तकालयसे प्राप्त हुई थी। यदि वे सज्जन स्वयं कभी कष्ट करके अपनी इस फाइलका कोई विवरण समाचार पत्रोंमें प्रकाशित करा देते, तो सम्भव था कि इससे बहुत पहले ही हमें 'उदन्त-मार्तण्ड' का कुछ विवरण मिल जाता। परन्तु ऐसा नहीं हो सका। इस प्रकारकी फाइल अन्यत्र भी कहीं है, इसका ठीक-ठीक पता नहीं है, परन्तु अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि कुछ प्राचीन साहित्यानुरागी सज्जनोंके पास इस प्रकारका कुछ मसाला संगृहीत हो। जैसी अवस्था है, उसमें संग्रह किये हुए इस मसालेको सर्वसाधारण खोज निकाले, यह अधिक सम्भव नहीं मालूम होता। अच्छा तो यह हो कि जिन सज्जनोंके यहाँ प्राचीन पुस्तकें प्राचीन पत्र-पत्रिकाएँ आदि इस प्रकार सुरक्षित हों, वे स्वयं कष्ट उठाकर यदि लिख सकें, तो स्वयं उनका थोड़ा-बहुत विवरण सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित करावें, ताकि सबका ध्यान उस ओर आकर्षित हो। यदि ऐसा न कर सकें, तो प्रसिद्ध-प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और साहित्य-संस्थाओंको पत्र लिखकर सूचना दें कि उनके पास अमुक प्रकारकी सामग्री संगृहीत है, जिससे वे साहित्यसेवी और साहित्य-संस्थाएँ उस संचित सामग्रीसे साहित्य-सेवा कर सकें।

हमें मालूम हुआ है कि स्वर्गीय राधाचरण गोस्वामीकी तमाम साहित्य-सामग्री काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभामें ले आई गई है। राधाचरणजीके पास समाचारपत्रोंके

सम्बन्धका अद्वितीय संग्रह था। अन्य समस्त साहित्य-सामग्रीके साथ-साथ समाचारपत्रोंका यह विशाल संग्रह भी निश्चय ही नागरी-प्रचारिणी सभामें आ गया होगा। नागरी-प्रचारिणी सभा प्रतिष्ठित साहित्य-संस्था है। ऐसी सामग्रियोंका वहाँपर आ जाना वास्तवमें बड़े हितकी बात हुई है, परन्तु केवल इतनेसे ही संतोष नहीं हो जाना चाहिए। एक स्थानपर संग्रह हो जाना ही सब कुछ नहीं है। संग्रहीत वस्तुओंका यथोचित उपयोग ही वास्तवमें संग्रहका महत्व है। श्री राधाचरण गोस्वामीकी संचित सामग्रीसे क्या काम किया गया, अभी तक नागरी-प्रचारिणी सभाके कार्यकर्ताओंने इसपर प्रकाश नहीं डाला। उसका कोई उपयोग हो रहा है, इसका भी हमें कोई पता नहीं। हम नागरी-प्रचारिणी सभासे कहेंगे कि वह स्वर्गीय राधाचरण गोस्वामीके संग्रहका यथोचित उपयोग करे।

इस सम्बन्धमें हमारी अल्प मतिके अनुसार सबसे पहले जो काम होना चाहिए, वह यह है कि संचित वस्तुओंका उचित वर्गीकरण करके एक उपयुक्त तालिका तैयार की जाय, और वह समाचारपत्रोंमें प्रकाशित की जाय। इस तालिकासे सर्वसाधारणको मालूम होगा कि उस संग्रहमें कौन-कौनसी वस्तुएँ हैं। इससे जिन सज्जनोंको जिस विशेष वस्तुसे अनुराग होगा, उसके सम्बन्धमें अधिक छान-बीन वे स्वयं कर सकेंगे, परन्तु तालिका प्रकाशित करवा देनेके बाद इस आशासे बैठ रहना भी ठीक नहीं होगा कि जिन लोगोंको जिस विषयसे अनुराग है, वे अपने-आप आकर देख सुन लेंगे और उसके सम्बन्धमें आवश्यक प्रचार भी कर लेंगे। नागरी-प्रचारिणी सभाको इस आशासे चुप हो जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उसे तो यही समझना चाहिए कि उसका उपयोग हमारे ही हाथमें है और बीच-बीचमें दूसरे लोग जो लाभ उठा लेते हैं, वह केवल इस सौदेका घाता है, असली काम तो नागरी-प्रचारिणी सभाका ही है। उसे तालिका प्रकाशित करके वर्गीकरणके अनुसार एक-एक वर्गकी सामग्री लेकर प्रत्येक विषयका अलग-अलग विवरण प्रकाशित करवाना चाहिए। दूसरे कर लेंगे, इस आशासे यदि सामग्रीका कोई उपयोग संग्रहकर्ता स्वयं न करे, तो सूमके धनकी भांति उसकी संचित सामग्रीका नाश ही होगा, विकास नहीं। विकासके लिए यह आवश्यक है कि दूसरोंका आसरा छोड़कर अपने पैरों खड़े हो, जिसके पास जो सामग्री संचित है, वे उसका उचित उपयोग प्रारम्भ कर दें।
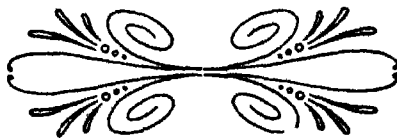
प्रेरणा

श्री प्रेमचन्द

[१]

मेरी कक्षामें सूर्यप्रकाशसे ज्यादा ऊधमी कोई लड़का न था, बल्कि यों कहो कि अध्यापन-कालके दस वर्षोंमें मुझे ऐसी विषम प्रकृतिके शिष्यसे साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ामें उसकी जान बसती थी। अध्यापकोंको बनाने और चिढ़ाने, उद्योगी बालकोंको छेड़ने और रुलानेमें ही उसे आनन्द आता था। ऐसे-ऐसे षड्यन्त्र रचता, ऐसे-ऐसे फन्दे डालता, ऐसे-ऐसे बाँधनू बाँधता कि देखकर आश्चर्य होता था। गरोहबन्दीमें अभ्यस्त था। खुदाई फौजदारोंकी एक फ़ौज बना ली थी, और उसके आतंकसे शालापर शासन करता था। मुख्य अधिष्ठाताकी आज्ञा टल जाय, मगर क्या मजाल कि कोई उसके हुक्मकी अवज्ञा कर सके। स्कूलके चपरासी और अर्दली उससे थरथर काँपते थे। इन्सपेक्टरका मुआइना होनेवाला था, मुख्य अधिष्ठाताने हुक्म दिया कि लड़के निर्दिष्ट समयसे आध घंटा पहले आ जायँ। मतलब यह था कि लड़कोंको मुआइनेके बारेमें कुछ ज़रूरी बातें बता दी जायँ। मगर दस बज गये, इन्सपेक्टर साहब आकर बैठ गये, और मदरसेमें एक लड़का भी नहीं! ग्यारह बजे सब छात्र इस तरह निकल पड़े, जैसे कोई पिंजरा खोल दिया गया हो। इन्स्पेक्टर साहबने कैफ़ियतमें लिखा—डिसिप्लिन बहुत खराब है। प्रिन्सिपल साहबकी किरकिरी हुई, अध्यापक बदनाम हुए। और यह सारी शरारत सूर्यप्रकाशकी थी; मगर बहुत पूछ-ताछ करनेपर भी किसीने सूर्यप्रकाशका नाम तक न लिया। मुझे अपनी संचालन-विधिपर गर्व था। ट्रेनिंग कालेजमें इस विषयमें मैंने ख्याति प्राप्त की थी, मगर यहाँ मेरा सारा संचालन-कौशल जैसे मोर्चा खा गया था। कुछ अक्ल ही काम न करती कि इस शैतानको कैसे सन्मार्गपर लायें। कई बार अध्यापकोंकी बैठक हुई; पर यह गिरह न खुली। नई शिक्षाविधिके अनुसार मैं दंडनीतिका पक्षपाती न था; मगर यहाँ हम इस नीतिसे केवल इसलिए विरक्त थे कि कहीं उपचार रोगसे भी असाध्य न हो जाय। सूर्यप्रकाशको स्कूलसे निकाल देनेका प्रस्ताव भी किया गया; पर इसे अपनी अयोग्यताका प्रमाण समझकर हम इस नीतिके व्यवहार करनेका साहस न कर सके। बीस-बाईस अनुभवी और शिक्षण-शास्त्रके आचार्य एक बारह-तेरह सालके उद्दंड बालकका सुधार न कर सकें, यह विचार बहुत ही निराशाजनक था। यों तो सारा स्कूल उससे त्राहि-त्राहि करता था; मगर सबसे ज्यादा संकटमें मैं था; क्योंकि वह मेरी कक्षाका छात्र था, और उसकी शरारतोंका कुफल मुझे भोगना पड़ता था। मैं स्कूल आता तो हरदम यही खटका लगा रहता था कि देखें आज क्या विपत्ति आती है। एक दिन मैंने अपनी मेज़की दराज़ खोली, तो उसमें से एक बड़ासा मेढक निकल पड़ा। मैं चौंककर पीछे हटा तो क्लासमें एक शोर मच गया। उसकी ओर सरोष नेत्रोंसे देखकर रह गया। सारा घंटा उपदेशमें बीत गया और वह पट्ठा सिर झुकाये नीचे मुसकरा रहा था। मुझे आश्चर्य होता था कि यह नीचेकी कक्षाओंसे कैसे पास हुआ था। एक दिन मैंने गुस्सेसे कहा—"तुम इस कक्षासे उम्र-भर नहीं पास हो सकते।" सूर्यप्रकाशने अविचलित भावसे कहा—"आप मेरे पास होनेकी चिन्ता न करें। मैं हमेशा पास हुआ हूँ और अबकी भी हूँगा।"

"असम्भव"

"असम्भव सम्भव हो जायगा!"

मैं साश्चर्य उसका मुँह देखने लगा। जहीनसे जहीन लड़का भी अपनी सफलताका दावा इतने निर्विवादरूपसे न

कर सकता था। मैंने सोचा, यह प्रश्नपत्र उड़ा लेता होगा। मैंने प्रतिज्ञा की, अबकी इसकी एक चाल भी न चलने दूँगा। देखूँ, कितने दिन इस कक्षामें पड़ा रहता है। आप घबराकर निकल जायगा।

वार्षिक परीक्षाके अवसरपर मैंने असाधारण देख-भालसे काम लिया; मगर जब सूर्यप्रकाशका उत्तरपत्र देखा, तो मेरे विस्मयकी सीमा न रही। मेरे दो पर्चे थे, दोनों ही में उसके नम्बर कक्षामें सबसे अधिक थे। मुझे खूब मालूम था कि वह मेरे किसी पर्चेका कोई प्रश्न भी हल नहीं कर सकता। मैं इसे सिद्ध कर सकता था; मगर उसके उत्तर-पत्रोंको क्या करता! लिपिमें इतना भेद न था जो कोई सन्देह उत्पन्न कर सकता। मैंने प्रिन्सिपलसे कहा तो वह भी चकरा गये; मगर उन्हें भी जान-बूझकर मक्खी निगलनी पड़ी। मैं कदाचित् स्वभाव ही से निराशावादी हूँ। अन्य अध्यापकोंको मैं सूर्यप्रकाशके विषयमें ज़रा भी चिन्तित न पाता था। मानो ऐसे लड़कोंका स्कूलमें आना कोई नई बात नहीं; मगर मेरे लिए वह एक विकट रहस्य था। अगर उसके यही ढंग रहे, तो एक दिन या तो जेलमें होगा या पागलखानेमें।

[२]

उसी साल मेरा तबादला हो गया। यद्यपि यहाँका जलवायु मेरे अनुकूल था, प्रिंसिपल और अन्य अध्यापकोंसे मैत्री हो गई थी; मगर मैं अपने तबादिलेसे खुश हुआ; क्योंकि सूर्यप्रकाश मेरे मार्गका काँटा न रहेगा। लड़कोंने मुझे विदाईकी दावत दी, और सबके सब मुझे स्टेशन तक पहुँचाने आये। उस वक्त सभी लड़के आँखोंमें आँसू भरे हुए थे। मैं भी अपने आँसुओंको न रोक सका। सहसा मेरी निगाह सूर्यप्रकाश पर पड़ी, जो सबसे पीछे लज्जित खड़ा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी आँखें भी भीगीं थीं। मेरा जी बार-बार चाहता था कि चलते-चलाते उससे दो-चार बातें कर लूँ। शायद वह भी मुझसे कुछ कहना चाहता था; मगर न मैंने पहले बातें की, न उसने। हालां कि मुझे बहुत दिनों तक इसका खेद रहा। उसकी झिझक तो क्षमाके योग्य थी; पर मेरा अवरोध अक्षम्य था। सम्भव था, उस करुणा और ग्लानिकी दशामें मेरी दो-चार निष्कपट बातें उसके दिलपर असर कर जातीं; मगर इन्हीं खोये हुए अवसरोंका नाम तो जीवन है। गाड़ी मंदगतिसे चली। लड़के कई कदम तक उसके साथ दौड़े। मैं खिड़कीके बाहर सर निकाले खड़ा था। कुछ देर तक मुझे उनके हिलते हुए रूमाल नज़र आये। फिर वह रेखाएँ आकाशमें विलीन हो गईं; मगर एक अल्पकाय मूर्ति अब भी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। मैंने अनुमान किया, वह सूर्यप्रकाश है। उस समय मेरा हृदय किसी विकल क़ैदीकी भाँति घृणा, मालिन्य और उदासीनताके बंधनोंको तोड़-तोड़ कर उससे गले मिलनेके लिए तड़प उठा।

नये स्थानकी नई चिंताओंने बहुत जल्द मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। पिछले दिनोंकी याद एक हसरत बनकर रह गई। न किसीका कोई खत आया, न मैंने कोई खत लिखा। शायद दुनियाका यही दस्तूर है। [illegible] बाद वर्षाकी हरियाली कितने दिनों रहती है। संयोगसे मुझे इंग्लैण्डमें विद्याभ्यास करनेका अवसर मिल गया। वहाँ तीन साल लग गये। वहाँसे लौटा, तो एक [illegible] प्रिंसिपल बना दिया गया। यह सिद्धि मेरे लिए बिलकुल आशातीत थी। मेरी भावना स्वप्नमें भी इतनी दूर न उड़ी थी; किन्तु पदलिप्सा अब किसी और भी ऊँची डालीपर आश्रय लेना चाहती थी। शिक्षा मंत्रीसे रब्त-ज़ब्त पैदा किया। मन्त्री महोदय मुझपर कृपा रखते थे। मगर वास्तवमें शिक्षाके मौलिक सिद्धान्तोंका उन्हें ज्ञान न था। मुझे पाकर उन्होंने सारा भार मेरे ऊपर डाल दिया। घोड़े पर सवार वह थे, लगाम मेरे हाथमें थी। फल यह हुआ कि उनके राजनैतिक विपक्षियोंसे मेरा विरोध हो गया। मुझपर जा-बेजा आक्रमण होने लगे। मैं 'सिद्धान्त-रूपसे

अनिवार्य शिक्षाका विरोधी हूं। मेरा विचार है कि हरएक मनुष्यको उन विषयोंमें ज्यादासे ज्यादा स्वाधीनता होनी चाहिए, जिनका उससे निजका सम्बन्ध है। मेरा विचार है कि यूरोपमें अनिवार्य शिक्षाकी जरूरत है, भारतमें नहीं। भौतिकता पश्चिमी सभ्यताका मूल तत्व है। वहां किसी कामकी प्रेरणा आर्थिक लाभके आधारपर होती है। जिन्दगीकी जरूरतें ज्यादा हैं, इसलिए जीवन-संग्राम भी अधिक भीषण है। माता-पिता भोगके दास होकर बच्चोंको जल्दसे जल्द कुछ कमाने पर मजबूर करते हैं। इसकी जगह कि वह मदका त्याग करके एक शिलिंग रोजकी बचत कर लें, वे अपने कमसिन बच्चेको एक शिलिंगकी मजदूरी करनेके लिए दबायेंगे। भारतीय जीवनमें सात्विक सरलता है। हम उस वक्त तक अपने बच्चोंसे मजदूरी नहीं कराते, जब तक कि परिस्थिति हमें विवश न कर दे। दरिद्रसे दरिद्र हिन्दुस्तानी मजदूर भी शिक्षाके उपकारोंका कायल है। उसके मनमें यही अभिलाषा होती है कि मेरा बच्चा चार अक्षर पढ़ जाय। इसलिए नहीं कि उसे कोई अधिकार मिलेगा, बल्कि केवल इसलिए कि विद्या मानवी शीलका एक शृंगार है। अगर यह जानकर भी वह अपने बच्चेको मदरसे नहीं भेजता, तो समझ लेना चाहिए कि वह मजबूर है। ऐसी दशामें उसपर कानूनका प्रहार करना मेरी दृष्टिमें न्याय-संगत नहीं। इसके सिवाय मेरे विचारमें अभी हमारे देशमें योग्य शिक्षकोंका अभाव है। अर्द्ध-शिक्षित और अल्प वेतन पानेवाले अध्यापकोंसे आप यह आशा नहीं रख सकते कि वह कोई ऊंचा आदर्श अपने सामने रख सकें। अधिकसे अधिक इतना ही होगा कि चार-पांच वर्षमें बालकको अक्षर ज्ञान हो जायगा। मैं इसे पर्वत मथकर चुहिया निकालनेके तुल्य समझता हूं। वयस प्राप्त हो जानेपर यह मरहला एक महीनेमें आसानीसे तय किया जा सकता है। मैं अनुभवसे कह सकता हूं कि युवावस्थामें हम जितना ज्ञान एक महीनेमें प्राप्त कर सकते हैं, उतना बाल्यावस्थामें तीन सालमें भी नहीं कर सकते, फिर खामख्वाह बच्चोंको मदरसेमें कैद करनेसे क्या लाभ। मदरसेके बाहर रहकर उसे स्वच्छ वायु तो मिलती, प्राकृतिक अनुभव तो होते। पाठशालामें बंद करके तो आप उसके मानसिक और शारीरिक दोनों ही विधानोंकी जड़ काट देते हैं। इसलिए जब प्रान्तीय व्यवस्थापक सभामें अनिवार्य शिक्षाका प्रस्ताव पेश हुआ, तो मेरी प्रेरणासे मिनिस्टर साहबने उसका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। फिर क्या था, मिनिस्टर साहबकी और मेरी वह ले दे शुरू हुई कि कुछ न पूछिये। व्यक्तिगत आक्षेप किये जाने लगे। मैं गरीबकी बीबी था, मुझे ही सबकी भावी बनना पड़ा। मुझे देशद्रोही, उन्नतिका शत्रु और नौकरशाहीका गुलाम कहा गया। मेरे कालेजमें ज़रासी भी कोई बात होती, तो कौंसिलमें मुझपर प्रश्नोंकी वर्षा होने लगती। मैंने एक चपरासीको पृथक किया। सारा कौंसिल पंजे झाड़कर मेरे पीछे पड़ गया। आखिर मिनिस्टरको मजबूर होकर उस चपरासीको बहाल करना पड़ा। यह अपमान मेरे लिए असह्य था। शायद कोई भी इसे सहन न कर सकता। मिनिस्टर साहबसे मुझे शिकायत नहीं। वह मजबूर थे। हां, इस वातावरणमें काम करना मेरे लिए दुस्साध्य हो गया। मुझे अपने कालेजके आन्तरिक संगठनका भी अधिकार नहीं। अमुक क्यों नहीं परिक्षामें भेजा गया, अमुकके बदले अमुकको क्यों नहीं छात्रवृत्ति दी गई, अमुक अध्यापकको अमुक कक्षा क्यों नहीं दी जाती, इस तरहके सारहीन आक्षेपोंने मेरा नाकमें दम कर दिया था। इस नई चोटने कमर तोड़ दी। मैंने इस्तीफा दे दिया।

मुझे मिनिस्टर साहबसे इतनी आशा अवश्य थी कि वह कमसे कम इस विषयमें न्यायपरायणतासे काम लेंगे; मगर उन्होंने न्यायकी जगह नीतिको मान्य समझा, और मुझे कई सालकी भक्तिका यह फल मिला कि मैं पदच्युत कर दिया गया। संसारका ऐसा कटु अनुभव मुझे अब तक न हुआ था। ग्रह भी कुछ बुरे आ गये थे, उन्हीं दिनों पत्नीका देहान्त हो गया। अन्तिम दर्शन भी न कर सका। संध्या समय

नदी तटपर सैर करने गया था। वह कुछ अस्वस्थ थीं। लौटा तो उनकी लाश मिली। कदाचित् हृदयकी गति बन्द हो गई थी। इस आघातने कमर तोड़ दी। माताके प्रसाद और आशीर्वादसे बड़े-बड़े महान् पुरुष कृतार्थ हो गये हैं। मैं जो कुछ हुआ पत्नीके प्रसाद और आशीर्वादसे हुआ। वह मेरे भाग्यकी विधात्री थी। कितना अलौकिक त्याग था, कितना विशाल धैर्य। उसके माधुर्यमें तीक्ष्णताका नाम भी न था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी उसकी भृकुटि संकुचित देखी हो। निराश होना तो जानती ही न थी। मैं कई बार सख्त बीमार पड़ा हूँ। वैद्य भी निराश हो गये हैं, पर वह अपने धैर्य और शान्तिसे अणुमात्र भी विचलित नहीं हुई। उसे विश्वास था कि मैं अपने पतिके जीवनकालमें मरूँगी और वही हुआ भी। मैं जीवनमें अब तक उसीके सहारे खड़ा था। जब वह अवलम्ब ही न रहा, तो जीवन कहाँ रहता। खाने और सोनेका नाम जीवन नहीं है। जीवन नाम है सदैव आगे बढ़ते रहनेकी लगनका। वह लगन गायब हो गई। मैं संसारसे विरक्त हो गया। और एकान्तवासमें जीवनके दिन व्यतीत करनेका निश्चय करके एक छोटेसे गाँवमें जा बसा। चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे टीले थे, एक ओर गंगा बहती थी। मैंने नदीके किनारे एक छोटासा घर बना लिया और उसीमें रहने लगा।

[२]

मगर काम करना तो मानवी स्वभाव है। बेकारीमें जीवन कैसे कटता। मैंने एक छोटीसी पाठशाला खोल ली। एक वृक्षकी छाँहमें गाँवमें लड़कोंको जमा कर कुछ पढ़ाया करता था। उसकी यहाँ इतनी ख्याति हुई कि आस-पासके गाँवके छात्र भी आने लगे।

एक दिन मैं अपनी कक्षाको पढ़ा रहा था कि पाठशालाके पास एक मोटर आकर रुकी और उसमेंसे उस ज़िलेके डिप्टी कमिश्नर उतर पड़े। मैं उस समय केवल एक कुर्ता और धोती पहने हुए था। इस वेषमें एक हाकिमसे मिलते हुए शर्म आ रही थी। डिप्टी-कमिश्नर मेरे समीप आये तो मैंने झेंपते हुए हाथ बढ़ाया, मगर वह मुझसे हाथ मिलानेके बदले मेरे पैरोंकी ओर झुके और उनपर सिर रख दिया। मैं कुछ ऐसा सिटपिटा गया कि मेरे मुँहसे एक शब्द भी न निकला। मैं अंगरेज़ी अच्छी लिखता हूँ, दर्शनशास्त्रका भी आचार्य हूँ, व्याख्यान भी अच्छे दे लेता हूँ, मगर इन गुणोंमें एक भी श्रद्धाके योग्य नहीं। श्रद्धा तो ज्ञानियों और साधुओं ही के अधिकारकी वस्तु है। अगर मैं ब्राह्मण होता तो एक बात थी। हालां कि एक सिविलियनका किसी ब्राह्मणके पैरोंपर सिर रखना अचिन्तनीय है।

मैं अभी इसी विस्मयमें पड़ा हुआ था कि डिप्टी कमिश्नरने सिर उठाया और मेरी तरफ़ देखकर कहा—"आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।"

इतना सुनते ही मेरे स्मृति-नेत्र खुल गये, बोला—"आपका नाम सूर्यप्रकाश तो नहीं है?"

"जी हाँ, मैं आपका वही अभागा शिष्य हूँ।"

"बारह-तेरह वर्ष हो गये!"

सूर्यप्रकाशने मुसकराकर कहा—"अध्यापक लड़कोंको भूल जाते हैं; पर लड़के उन्हें हमेशा याद रखते हैं।"

मैंने उसी विनोदके भावसे कहा—"तुम जैसे लड़कोंको भूलना असम्भव है।"

सूर्यप्रकाशने विनीत स्वरमें कहा—"उन्हीं अपराधोंको क्षमा करानेके लिए सेवामें आया हूँ। मैं सदैव आपकी खबर लेता रहता था। जब आप इंग्लैण्ड गये तो मैंने आपके लिए बधाईका पत्र लिखा, पर उसे भेज न सका। जब आप प्रिंसिपल हुए मैं इंग्लैण्ड जानेको तैयार था, वहाँ मैं पत्रिकाओंमें आपके लेख पढ़ता रहता था। जब लौटा तो मालूम हुआ कि आपने इस्तीफा दे दिया और कहीं देहातमें चले गये हैं। इस ज़िलेमें आये हुए मुझे एक वर्षसे अधिक हुआ; पर इसका ज़रा भी अनुमान न था कि आप यहाँ एकान्त सेवन कर रहे हैं। इस उजाड़

गाँवमें आपका जी कैसे लगता है ? इतनी ही अवस्थामें आपने वानप्रस्थ ले लिया ?''

मैं नहीं कह सकता कि सूर्यप्रकाशकी उन्नति देखकर मुझे कितना आश्चर्यमय आनन्द हुआ। अगर वह मेरा पुत्र होता, तो भी इससे अधिक आनन्द न होता। मैं उसे अपने झोपड़ेमें लाया और उसे संक्षेपमें अपनी राम कहानी कह सुनाई।

सूर्यप्रकाशने कहा—''तो यह कहिये कि आप अपने ही एक भाईके विश्वासघातका शिकार हुए। मेरा अनुभव तो अभी बहुत कम है; मगर इतने ही दिनोंमें मुझे मालूम हो गया है कि हम लोग अभी अपनी जिम्मेदारियोंको पूरा करना नहीं जानते। मिनिस्टर साहबसे भेंट हुई तो पूँछूँगा कि यही आपका धर्म था ?''

मैंने जवाब दिया—''भाई, उनका कोई दोष नहीं। सम्भव है, इस दशामें मैं भी वही करता जो उन्होंने किया। मुझे अपने स्वार्थ-लिप्साकी सज़ा मिल गई, और उसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। बनावट नहीं, सत्य कहता हूँ कि यहाँ मुझे जो शान्ति है, वह और कहीं न थी। इस एकान्त जीवनमें मुझे जीवनके तत्वोंका वह ज्ञान हुआ, जो सम्पत्ति और अधिकारकी दौड़में किसी तरह सम्भव न था। इतिहास और भूगोलके पोथे चाटकर और यूरपके विद्यालयोंकी शरण जाकर भी मैं अपनी ममताको न मिटा सका; बल्कि रोग दिन-दिन और भी असाध्य होता जाता था। आप सीढ़ियोंपर पाँव रखे बगैर छतकी ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकते। सम्पत्तिकी अट्टालिका तक पहुंचनेमें दूसरोंकी ज़िन्दगी ही जीनोंका काम देती है। आप उन्हें कुचलकर ही लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं। वहाँ सौजन्य और सहानुभूतिका स्थान ही नहीं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उस वक्त मैं हिंस्र जन्तुओंसे घिरा हुआ था और मेरी सारी शक्तियाँ अपनी आत्मरक्षामें ही लगी रहती थीं। यहाँ मैं अपने चारों ओर सन्तोष और सरलता देखता हूँ। मेरे पास जो लोग आते हैं, कोई स्वार्थ लेकर नहीं आते और न मेरी सेवाओंमें प्रशंसा या गौरवकी लालसा है।''

यह कहकर मैंने सूर्यप्रकाशके चेहरेकी ओर गौरसे देखा। कपट मुसकानकी जगह ग्लानिका रंग था। मुझसे सन्तोषका उपदेश लेने वह मेरे पास नहीं आया था। शायद यह दिखाने आया था कि आप जिसकी तरफ़से इतने निराश हो गये थे, वह अब इस पदको सुशोभित कर रहा है। वह मुझसे अपने सदुद्योगका बखान चाहता था। मुझे अब अपनी भूल मालूम हुई। एक सम्पन्न आदमीके सामने समृद्धिकी निन्दा उचित नहीं। मैंने तुरन्त बात पलट कर कहा—''मगर तुम अपना हाल तो कहो। तुम्हारी यह काया पलट कैसे हुई। तुम्हारी शरारतोंको याद करता हूँ तो अब भी रोएँ खड़े हो जाते हैं। किसी देवताके वरदानके सिवा और तो कहीं यह विभूति न प्राप्त हो सकती थी।''

सूर्यप्रकाशने मुसकराकर कहा—''आपका आशीर्वाद था।

मेरे बहुत आग्रह करनेपर सूर्यप्रकाशने अपना वृत्तान्त सुनाना शुरू किया।

''आपके चले आनेके कई दिन बाद मेरा ममेरा भाई स्कूलमें दाखिल हुआ। उसकी उम्र आठ-नौ सालसे ज्यादा न थी। प्रिंसिपल साहब उसे होस्टलमें न लेते थे और न मामा साहब उसके ठहरनेका प्रबन्ध कर सकते थे। उन्हें इस संकटमें देखकर मैंने प्रिंसिपल साहबसे कहा—उसे मेरे कमरेमें ठहरा दीजिये। प्रिंसिपल साहबने इसे नियम-विरुद्ध बतलाया। इसपर मैंने बिगड़ कर उसी दिन होस्टल छोड़ दिया, और एक किरायेका मकान लेकर मोहनके साथ रहने लगा। उसकी मा कई साल पहले मर चुकी थी। इतना दुबला-पतला, कमज़ोर और गरीब लड़का था कि पहले ही दिनसे मुझे उसपर दया आने लगी। कभी उसके सिरमें दर्द होता, कभी ज्वर हो आता। आये दिन कोई-न-कोई बीमारी खड़ी रहती थी। इधर साँझ हुई और उसे झपकियाँ आने लगीं। बड़ी मुश्किलसे भोजन करने उठता। दिन चढ़े तक सोया करता और जब तक मैं गोदमें उठाकर बिठा

न देता, उठनेका नाम न लेता। रातको बहुधा चौंककर मेरी चारपाईपर आ जाता और मेरे गलेसे लिपटकर सोता। मुझे उसपर कभी क्रोध न आता। कह नहीं सकता, क्यों मुझे उससे प्रेम हो गया। मैं जहाँ पहले नौ बजे सोकर उठा करता था, अब तड़के उठ बैठता और उसके लिए दूध गर्म करता। फिर उसे उठाकर हाथ-मुँह धुलाता और नाश्ता कराता। उसके स्वास्थ्यके विचारसे नित्य वायु-सेवनको ले जाता। मैं जो कभी किताब लेकर न बैठता था, उसे घंटों पढ़ाया करता। मुझे अपने दायित्वका इतना ज्ञान कैसे हो गया, इसका मुझे आश्चर्य है। उसे कोई शिकायत हो जाती, तो मेरे प्राण नहोंमें समा जाते। डाक्टरके पास दौड़ता, दवाएँ लाता और मोहनकी खुशामद करके दवा पिलाता। सदैव यह चिन्ता लगी रहती थी कि कोई बात उसकी इच्छाके विरुद्ध न हो जाय। इस बेचारेका यहाँ मेरे सिवा दूसरा कौन है। मेरे चंचल मित्रोंमेंसे कोई उसे चिढ़ाता या छेड़ता, तो मेरी त्योरियाँ बदल जाती थीं। कई लड़के तो मुझे बूढ़ी दाई कहकर चिढ़ाते थे, पर मैं हँसकर टाल देता था। मैं उसके सामने एक अनुचित शब्द भी मुँहसे न निकालता। यह शंका होती थी कि कहीं मेरी देखादेखी यह भी खराब न हो जाय। मैं उसके सामने इस तरह रहना चाहता था कि वह मुझे अपना आदर्श समझे और इसके लिए यह मानी हुई बात थी कि मैं अपना चरित्र सुधारूँ। वह मेरा नौ बजे सोकर उठना, बारह बजे तक मटरगश्ती करना, नई-नई शरारतोंके मन्सूबे बाँधना और अध्यापकोंकी आँख बचाकर स्कूलसे उड़ जाना, सब आप-ही-आप जाता रहा। स्वास्थ्य और चरित्र-पालनके सिद्धान्तोंका मैं शत्रु था। पर अब मुझसे बढ़कर उन नियमोंका रक्षक दूसरा न था। मैं ईश्वरका उपहास किया करता था, मगर अब पक्का आस्तिक हो गया था। वह बड़े सरल भावसे पूछता, परमात्मा सब जगह रहते हैं, तो मेरे पास भी रहते होंगे। इस प्रश्नका मज़ाक उड़ाना मेरे लिए असम्भव था। मैं कहता—हाँ, परमात्मा तुम्हारे, हमारे सबके पास रहते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। यह आश्वासन पाकर उसका चेहरा आनन्दसे खिल उठता था। कदाचित् वह परमात्माकी सत्ताका अनुभव करने लगता था। साल ही भरमें मोहन कुछसे कुछ हो गया। मामा साहब दोबारा आये तो उसे देखकर चकित हो गये। आँखोंमें आँसू भरकर बोले—बेटा! तुमने इसको जिला लिया, नहीं तो मैं निराश हो चुका था। इसका पुनीत फल तुम्हें ईश्वर देंगे। इसकी माँ स्वर्गमें बैठी हुई तुम्हें आशीर्वाद दे रही है।

सूर्यप्रकाशकी आँखें उस वक्त भी सजल हो गई थीं।

मैंने पूछा—"मोहन भी तुम्हें बहुत प्यार करता होगा?"

सूर्यप्रकाशके सजल नेत्रोंमें हसरतसे भरा हुआ आनन्द चमक उठा, बोला—"वह मुझे एक मिनटके लिए भी न छोड़ता था। मेरे साथ बैठता, मेरे साथ खाता, मेरे साथ सोता। मैं ही उसका सब कुछ था। आह! वही संसारमें नहीं है! मगर मेरे लिए वह अब भी उसी तरह जीता-जागता है। मैं जो कुछ हूँ, उसीका बनाया हुआ हूँ। अगर वह दैवी विधानकी भाँति मेरा पथ-प्रदर्शक न बन जाता, तो शायद आज मैं किसी जेलमें पड़ा होता। एक दिन मैंने कह दिया था—अगर तुम रोज़ नहा न लिया करोगे तो मैं तुमसे न बोलूँगा। नहानेसे वह न जाने क्यों जी चुराता था। मेरी इस धमकीका फल यह हुआ कि वह नित्य प्रातःकाल नहाने लगा। कितनी ही सर्दी क्यों न हो, कितनी ठंडी हवा चले, लेकिन वह स्नान अवश्य करता था। देखता रहता था, मैं किस बातसे खुश होता हूँ। एक दिन मैं कई मित्रोंके साथ थियेटर देखने चला गया, ताकीद कर गया था कि तुम खाना खाकर सो रहना। तीन बजे रातको लौटा तो देखा कि वह बैठा हुआ है। मैंने पूछा—तुम सोये नहीं? बोला—नींद नहीं आई। उस दिनसे मैंने थियेटर जानेका नाम न लिया। बच्चोंमें प्यारकी जो एक भूख होती है—दूध, मिठाई और खिलौनोंसे भी ज़्यादा मादक—जो माँकी गोदके सामने संसारकी निधिकी भी परवाह नहीं करते, मोहनकी वह भूख कभी संतुष्ट न होती थी। पहाड़ोंसे टकरानेवाली

सारसकी आवाज़की तरह वह सदैव उसके नसोंमें गूँजा करती थीं। जैसे भूमिपर फैली हुई लता कोई सहारा पाते ही उससे चिपट जाती है, वही हाल मोहनका था। वह मुझसे ऐसा चिपट गया था कि पृथक् किया जाता, तो उसकी कोमल बेलिके टुकड़े-टुकड़े हो जाते। वह मेरे साथ तीन साल रहा और तब मेरे जीवनमें प्रकाशकी एक रेखा सी डालकर अन्धकारमें विलीन हो गया। उस जीर्ण कायामें कैसे-कैसे अरमान भरे हुए थे। कदाचित ईश्वरने मेरे जीवनमें एक अवलम्बकी सृष्टि करनेके लिए उसे भेजा था। जब वह उद्देश्य पूरा हो गया तो वह क्यों रहता।

[४]

गरमियोंकी तातील थी। दो तातीलोंमें मोहन मेरे ही साथ रहा था। मामाजीके आग्रह करनेपर भी घर न गया। अबकी कालेजके छात्रोंने काश्मीर-यात्रा करनेका निश्चय किया और मुझे उसका अध्यक्ष बनाया। काश्मीर-यात्राकी अभिलाषा मुझे चिरकालसे थी। इस अवसरको ग़नीमत समझा। मोहनको मामाजीके पास भेजकर मैं काश्मीर चला गया। दो महीनेके बाद लौटा तो मालूम हुआ मोहन बीमार है। काश्मीरमें मुझे बार-बार मोहनकी याद आती थी और जी चाहता था लौट जाऊँ। मुझे उसपर इतना प्रेम है, इसका अन्दाज़ मुझे काश्मीर जाकर हुआ; लेकिन मित्रोंने पीछा न छोड़ा। उसकी बीमारीकी खबर [illegible] मैं अधीर हो उठा और दूसरे ही दिन उसके पास जा पहुँचा। मुझे देखते ही उसके पीले और सूखे हुए चेहरेपर आनन्दकी स्फूर्ति झलक पड़ी। मैं दौड़कर उसके [illegible] लिपट गया। उसकी आँखोंमें वह दूरदृष्टि और [illegible] वह अलौकिक आभा थी, जो मँडराती हुई मृत्युकी सूचना देती थी। मैंने आवेशसे काँपते हुए स्वरमें पूछा—यह तुम्हारी क्या दशा है मोहन? दो ही महीनेमें यह नौबत पहुँच गई! मोहनने सरल मुसकानके साथ कहा—'आप काश्मीरकी सैर करने गये थे, मैं आकाशकी सैर करने जा रहा हूँ।'

मगर यह दुःख-कहानी कहकर मैं रोना और रुलाना नहीं चाहता। मेरे चले जानेके बाद मोहन इतने परिश्रमसे पढ़ने लगा, मानो तपस्या कर रहा हो। उसे यह धुन सवार हो गई थी कि साल-भरकी पढ़ाई दो महीनेमें समाप्त कर ले और स्कूल खुलनेके बाद मुझसे इस श्रमका प्रशंसारूपी उपहार प्राप्त करे। मैं किस तरह उसकी पीठ ठोकूँगा, शाबाशी दूँगा, अपने मित्रोंसे उसका बखान करूँगा, इन भावनाओंने अपने सारे बालोचित उत्साह और तल्लीनताके साथ उसे वशीभूत कर लिया। मामाजीको दफ्तरके कामोंसे इतना अवकाश कहाँ कि उसके मनोरंजनका ध्यान रखें। शायद उसे प्रतिदिन कुछ-न-कुछ पढ़ते देखकर वह दिलमें खुश होते थे। उसे खेलते देखकर वह ज़रूर डाँटते। पढ़ते देखकर भला क्या कहते। फल यह हुआ कि मोहनको हल्का-हल्का ज्वर आने लगा, किन्तु उस दशामें भी उसने पढ़ना न छोड़ा। कुछ और व्यतिक्रम भी हुए, ज्वरका प्रकोप और भी बढ़ा, पर उस दशामें भी जब ज्वर कुछ हल्का हो जाता तो किताबें देखने लगता था। उसके प्राण मुझमें ही बसे रहते थे। ज्वरकी दशामें भी नौकरोंसे पूछता—'भैयाका पत्र आया? वह कब आयेंगे?' इसके सिवा और कोई दूसरी अभिलाषा न थी। अगर मुझे मालूम होता कि मेरी काश्मीर-यात्रा इतनी महँगी पड़ेगी, तो उधर जानेका नाम भी न लेता। उसे बचानेके लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था, वह मैंने सब किया, किन्तु बुखार टाइफायड था, उसकी जान लेकर ही उतरा। उसके जीवनके स्वप्न मेरे लिए किसी ऋषिके आशीर्वाद बनकर मुझे प्रोत्साहित करने लगे और यह उसीका शुभ फल है कि आज आप मुझे इस दशामें देख रहे हैं। मोहनकी बाल अभिलाषाओंको प्रत्यक्षरूपमें लाकर मुझे यह सन्तोष होता है कि शायद उसकी पवित्र आत्मा मुझे देखकर प्रसन्न होती हो। यही प्रेरणा थी जिसने कठिन-से-कठिन परीक्षाओंमें भी मेरा बेड़ा पार लगाया, नहीं तो मैं आज भी वही मन्द-बुद्धि सूर्यप्रकाश हूँ, जिसकी सूरतसे आप चिढ़ते थे।

उसी दिनसे मैं कई बार सूर्यप्रकाशसे मिल चुका हूँ, वह जब इस तरफ आ जाता है, तो बिना मुझसे मिले नहीं जाता। मोहनको अब भी वह अपना इष्टदेव समझता है। मानव-प्रकृतिका यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे मैं आज तक नहीं समझ सका।

इन्दौरमें हिन्दी-प्रचार

और

मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति

श्री के० पी० दीक्षित, 'कुसुमाकर'

मध्य भारतके देशी राज्योंमें इन्दौरका स्थान बहुत ऊंचा है। व्यापारकी दृष्टिसे यह नगर मध्य-भारतमें सर्वश्रेष्ठ है। इतिहास-प्रेमियोंके लिए देवी अहल्या बाई जैसी महिला-रत्नके शासनमें रह चुकनेके कारण यह आज भी आदर और अभिमानके योग्य है। यहां हिन्दीके विद्वानोंका आदर-सत्कार तो होलकर राज्यके संस्थापक श्रीमंत मल्हार राव प्रथमके समयसे ही होता आया है। आपके पुत्र खंडेराव होलकरकी प्रशंसामें हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि सूदनजीने "सुजान रासो" नामक एक नये 'रासो' की रचना की थी। इतना सब होते हुए भी सन् १६०४ ई० तक यहांका राज-कार्य हिन्दीमें नहीं होता था, और न हिन्दी द्वारा शिक्षा ही दी जाती थी। उस समय इन्दौरकी जन-संख्या साढ़े आठ लाख थी, जिसमें लगभग ५० हज़ार अन्य भाषाभाषी थे, शेष सब लोग हिन्दीके ही किसी रूपको लिखने-पढ़ने और बोलनेवाले थे। इसके अतिरिक्त सन् १८७३ ई०से ही यहां हिन्दी भाषाका एक पत्र निकलता था, जिसका नाम 'मालवा अख़बार' था। यही आजकल 'होलकर गज़ट' कहलाता है। वीरवर मल्हारराव होलकरके बाद कुछ समय तक राज्यके कुछ कायज़-पत्रोंका हिन्दीमें होना सिद्ध होता है, परन्तु बादमें हिन्दीका पूर्णरूपसे बहिष्कार हो गया।

श्रीमंत महाराजा शिवाजीराव होलकरके राज्य-त्यागके पश्चात महाराजा तुकोजीरावके अल्पवयस्क होनेके कारण राज्यका भार तत्कालीन प्रधानमंत्री रायबहादुर नानकचन्दजी पर पड़ा। आप बड़े कुशल राजनीतिज्ञ थे। आप प्रजाकी आकांक्षाओंका सदैव ध्यान रखते थे। हिन्दीका राज-कार्यमें उपयोग न होना प्रजाको बहुत खटकता था। जिस समय महाराज शिवाजीरावका राज्याभिषेक हुआ था, उस समय प्रजाने अपने अभिनन्दनपत्रमें लिखा था—"हमारी देश-भाषा जो गिरा दी जा रही है, उसे श्रीमान् उत्तेजना दें।" महाराज शिवाजी साहित्य-प्रेमी नरेश थे। आपने बाण भट्टकी 'कादम्बरी' और कालिदासके 'मेघदूत' पर नाटक लिखनेवालेको पांच हज़ार रुपया प्रदान करनेकी घोषणा की थी। इसपर देवलजी नामके एक कविने "शाप संभ्रम" नामक नाटक की रचना की। महाराजने उन्हें पांच हज़ार रुपये पारितोषिकमें प्रदान किये थे और हाथीपर बैठाकर नगरमें जुलूस निकलवाया था। आप हिन्दी भाषासे भी बड़ा प्रेम रखते थे, परन्तु उस समय राज्यमें प्रयत्न करनेपर भी हिन्दीका प्रचार न हो सका।

जिस समय रायबहादुर नानकचन्दजी नाबालिग शासनका प्रबन्ध प्रधान-मन्त्रीके रूपमें कर रहे थे, उस समय आपने इस बातका पता लगाया कि अधिकांश प्रजाकी भाषा हिन्दी है या नहीं। फल-स्वरूप बहुसंख्यक प्रजाकी भाषा हिन्दी ही सिद्ध हुई। तत्कालीन रेज़ीडेंट बोज़ंकेट महोदयने भी आपके इस मतका समर्थन किया कि राज्यकी भाषा वही होनी चाहिए, जो अधिकांश प्रजाकी भाषा हो। ता० १७ [illegible] १६०४ को इन्दौर कौंसिलका प्रस्ताव नं० ८ [illegible] प्रकाशित हुआ और इसके अनुसार राज-कार्य हि[illegible] होना निश्चित हुआ। मोड़ी-लिपिके स्थानपर [illegible] प्रचलित की गई। तबसे राजकार्यमें बराबर [illegible] उपयोग होता है।

होलकर सरकार हिन्दीकी उन्नतिमें किसी भी [illegible] पीछे नहीं है। आज भी यहाँ सम्मेलन-[illegible] विद्यार्थियोंका विशेष ध्यान रखा जाता है। [illegible] सचिव श्री श्रीमानसिंहजीका उद्योग इस सम्बन्धमें [illegible]
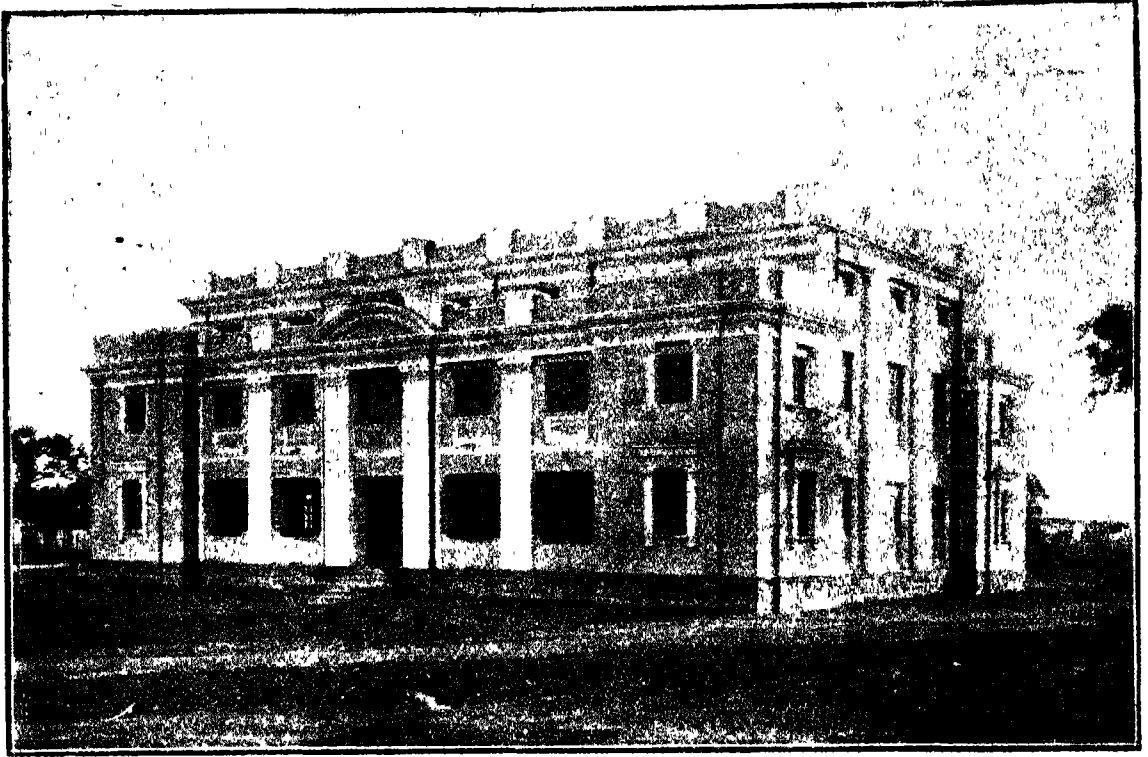
'शिवाजीराव-भवन'की इमारत

कुछ वर्ष पहले ब्रिटिश सरकारने विभिन्न प्रान्तोंकी भाषाओंकी उन्नतिके लिए 'ऐकेडमीज़' की स्थापना की थी, परन्तु भूतपूर्व इन्दौर नरेश महाराजा तुकोजीराव तृतीयने इसकी आवश्यकताका अनुभव बहुत पहले किया था, और उन्होंने अपने राज्यमें "होलकर हिन्दी कमेटी" तथा 'होलकर मराठी कमेटी' की स्थापना उस समय की, जब इन 'ऐकेडमीज़' की देशमें चर्चा भी न थी। आज उन दोनों कमेटियोंको होलकर-सरकारकी ओरसे ढाई-ढाई हज़ार रुपया प्रतिवर्ष मिलता है। इस रुपयेसे हिन्दी तथा मराठीके लेखकोंको प्रोत्साहन दिया जाता है।

जिस राज्यमें हिन्दीकी इतनी अधिक प्रतिष्ठा हो और जहांके नरेश हिन्दी-भाषासे इतना प्रेम रखें वहां हिन्दी भाषाकी सेवा और उसका प्रचार-कार्य करनेवाली किसी संस्थाका न होना वास्तवमें खटकनेकी बात थी। इन्दौरके कई लोगोंको उसकी आवश्यकताका अनुभव होने लगा था। श्री हरप्रसाद चतुर्वेदी तथा डाक्टर लालजी भाईने हिन्दीके लिए प्रशसनीय कार्य किया था, परन्तु कुछ कारणोंसे प्रकट-रूपसे इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं प्रारम्भ हुआ था। सन् १९१८ में झालरापाटनके सुप्रसिद्ध विद्वान् कविरत्न पं० गिरधर शर्मा "नवरत्न" इन्दौर पधारे। यहाँ पं० शिवसेवक तिवारी और उनके मित्र बाबू गोपालचन्द्रजी मुकर्जी एक साहित्यिक संस्थाकी स्थापनापर विचार कर रहे थे। पं० गिरधर शर्मा बड़े कर्तव्यशील पुरुष हैं। आप जिस कार्यमें जुट जाते हैं, उसे खूब उत्साहसे करते हैं। इन्दौर आनेपर आपका तिवारीजी और मुकर्जी महाशयसे मिलना हुआ। आपके परामर्शने एक नवीन जीवन उत्पन्न कर दिया और तब एक साहित्यिक संस्थाकी स्थापनाका कार्य प्रत्यक्षरूपमें आरम्भ हो गया। इस प्रयत्नमें होलकर महाराजके तत्कालीन प्राइवेट

वजीरुद्दौला रायबहादुर एम० ए० बापना, बी० ए० बी० एस-सी० एल०-एल, बी०, प्रधान मन्त्री इन्दौर राज्य

सेक्रेटरी रायबहादुर बापना साहब और श्रीमान डाक्टर सरजूप्रसादजीसे बड़ा प्रोत्साहन मिला। फलस्वरूप १२ नवम्बर १९१४ को सरदार किबे साहबके "सरस्वती-निकेतन" इन्दौरमें सरस्वतीको निमंत्रित करनेके लिए एक वृहत सभा हुई, जिसमें इन्दौर नगर और छावनीके बहुतेरे प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। उस दिनकी सभाके सभापति ठाकुर रामसिंहजी वकील बनाये गये। आपके सभापतित्वमें 'मध्य भारत हिन्दी-साहित्य-समिति'की स्थापना हुई। रायबहादुर डाक्टर सरजूप्रसादजी समितिके मन्त्री बनाये गये। यदि डाक्टर साहबको समितिका प्राण कहा जाय, तो अनुचित न होगा। मध्य भारतके व्यापारियोंमें हिन्दी-द्वारा कार्य करनेकी भावना सबसे प्रथम आप ही ने उत्पन्न की। उस मीटिंगके पश्चात् समितिकी दिन-पर-दिन उन्नति होने लगी। समितिके कार्यमें बादमें जिन लोगोंने हाथ बटाया, उनमें श्री लालचन्दजी सेठी, लाला माठूलालजी और श्रीयुत जालिमसिंहजी कोठारीकी सेवाएँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

संक्षेपमें समितिके पाँच उद्देश्य इस प्रकार हैं—

(१) देवनागरी-लिपि और हिन्दीभाषाका प्रचार करना।

(२) हिन्दी साहित्यकी वृद्धिके लिए उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखाकर प्रकाशित करना।

रावराजा सर सेठ हुकुमचन्दजी साहब

(३) मध्य भारतके राजा-महाराजाओं तथा धनी-मानी व्यक्तियोंसे प्रार्थना करके हिन्दीकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करना।

(४) यथासमय उन उपायोंको ग्रहण करना, जिनसे हिन्दीभाषा सफल तथा उन्नत बनाई जा सके।

अब हमें देखना है कि समिति इन उद्देश्योंकी पूर्तिमें कहाँतक सफल हुई है। समितिके निवेदन करनेपर कई राजा-महाराजाओंने प्रथम उद्देश्यकी पूर्ति करनेकी कृपा की है। मध्य भारतके प्रायः सभी प्रतिष्ठित नरेश इस समय समितिके संरक्षक हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—

श्री ग्वालियर नरेश, श्री इन्दौर नरेश, श्री रीवाँ नरेश, श्री सीतामऊ नरेश, श्री सैलाना नरेश, श्री खिलचीपुर नरेश, श्री झाबुआ नरेश, श्री मैहर नरेश, श्री देवास नरेश, श्री राजगढ़ नरेश और महारानी मा साहिबा डूंगरपुर (राजपूताना)।

समितिकी स्थापनाके पूर्व मध्य भारतके कई हिन्दू राज्योंमें, जहाँकी प्रजा हिन्दी भाषा भाषी है, राज्यका समस्त कार्य उर्दू-लिपिमें होता था। समितिने ऐसे राज्योंके अधिपतियोंसे अपने राज्यके दफ्तरोंमें देवनागरी-लिपि और हिन्दी भाषाको स्थान प्रदान करनेकी प्रार्थना की, और साथ-ही-साथ इस बातका भी प्रयत्न किया कि राज्यमें हिन्दी

पाठशालायें खोली जायँ। समितिकी प्रार्थनाको आदर-पूर्वक स्वीकार करके कितने ही देशी नरेशोंने अपनी कर्तव्य-परायणता तथा राष्ट्र-भाषा प्रेमका परिचय दिया है।

सन् १९१५ में जिस समय महाराष्ट्र और गुजराती साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशन बम्बई और सूरतमें हुए, उस समय समितिने अपने प्रतिनिधि भेजकर वहाँ हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेका प्रस्ताव रखवाया था। प्रतिनिधियोंके प्रयत्न एवं महाराष्ट्र तथा गुजराती भाषा-भाषियोंके सहयोगसे यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था।

समितिके दूसरे उद्देश्यकी पूर्ति अवश्य हो रही है, परन्तु हम उसे सन्तोषजनक नहीं कह सकते। समिति-द्वारा प्रकाशित कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी ग्रन्थोंको छोड़कर अन्य ग्रन्थोंका साहित्य क्षेत्रमें विशेष महत्व नहीं। हमारा विश्वास है कि यदि समिति-द्वारा उच्चकोटिके साहित्यिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए होते तो सर्वसाधारणको तो लाभ होता ही, समितिको भी धन और यश दोनों प्राप्त होते। समितिने अभी तक लगभग ३८ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्यमें समितिके कार्यकर्त्ता तथा पदाधिकारी इस विषयपर अधिक ध्यान देनेकी कृपा करेंगे। समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंका उचित रूपसे सम्पादन न होना भी वास्तवमें खेदकी बात है।

महाराज शिवाजी राव होल्कर (इन्दौरके स्वर्गीय नरेश)

जब समिति-द्वारा सभी विषयोंकी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, ऐसी दशामें उपन्यासोंके प्रकाशित न करनेकी कसम-सी खा लेना समितिको शोभा नहीं देता। उपन्यास साहित्यका एक उपयोगी अंग है। विक्टर ह्यूगो, हालकेन, डूमास, बंकिम बाबू, रवीन्द्र बाबू, शरत बाबू और प्रेमचन्दजी आदि विद्वानों द्वारा लिखित उपन्यासोंने समाजको जाग्रत करनेमें जो कार्य किया है, वह कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। हम चाहते हैं कि समितिसे गंदे उपन्यास प्रकाशित न हों, परन्तु उपयोगी उपन्यासोंसे भी परहेज़ रखना समितिको शोभा नहीं देता।

समितिकी ओरसे "वीणा" नामकी एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। खेद है कि इसके आदि सम्पादक पं० अम्बिकाप्रसादजी त्रिपाठीका स्वर्गवास हो गया। आपने दो वर्ष तक इस पत्रिकाका सम्पादन बड़ी योग्यताके साथ किया। आपकी मृत्युसे समितिको वास्तवमें बड़ी हानि हुई

है। आजकल इस पत्रिकाके सम्पादनका भार इन पङ्क्तियोंके क्षुद्र लेखकपर है।

समितिने अपने तीसरे उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जो कार्य किया है, वह वास्तवमें सराहनीय है। समितिने होलकर स्टेटके तीन सौ स्कूलोंमें वाचनालय स्थापित किये हैं। यह स्कूल राज्यके विभिन्न भागोंमें हैं। यहाँ वाचनालय स्थापित होनेसे सर्वसाधारण, विशेषकर ग्रामीण जनताका बड़ा कल्याण हुआ है। प्रथम वर्ष इस समितिने प्रत्येक वाचनालयको केवल ३५॥~) के मूल्यकी पुस्तकें और सालभर तक 'वीणा' मासिक पत्रिका—जिसका मूल्य ४) है—प्रदान की थी। अब भविष्यमें 'वीणा'के साथ-साथ समिति-द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकें भी उन वाचनालयोंको मिला करेंगी। इसके बदलेमें समितिको प्रति पुस्तकालयसे केवल ५) वार्षिक ही प्राप्त होगा। इससे समितिको आर्थिक क्षति तो अवश्य उठानी पड़ी है, परन्तु कार्यकी गुरुताको देखते हुए यह योजना विशेष महत्व रखती है। समिति कुछ परिवर्तनके साथ इस योजनाको समस्त मध्यभारतमें प्रचलित करना चाहती है।

समितिके पास अपना भवन न होनेके कारण कार्य करनेमें बड़ी बाधा पड़ती थी। उस समय महाराजा तुकोजी रावका शासन था। आप सार्वजनिक कार्योंमें बड़ी उदारता प्रदर्शित करते थे। समितिके प्रधान मन्त्री रायबहादुर डाक्टर सरजूप्रसादजी तिवारीने महाराजा साहबकी सेवामें एक प्रार्थना-पत्र इस आशयका भेजा कि समितिका भवन बनानेके लिए नगरमें स्थान बिना मूल्य राज्यकी ओरसे प्रदान किया जाय, जिसपर समिति २००००) की लागतका 'महाराजा शिवाजी राव भवन' बनवावे ; साथ ही यह भी प्रार्थना की गई कि उस कार्यके लिए होलकर सरकारकी ओरसे १००००) की सहायता भी प्रदान की जाय। महाराजने इस प्रार्थनापत्रको स्वीकार करके स्टेशनके निकट तुकोगंजमें समिति-भवन बनानेके लिए एक विस्तृत स्थान प्रदान किया और १००००) तककी सहायता तथा भवनका नाम "शिवाजीराव-भवन" रखनेकी आज्ञा इस शर्तपर प्रदान की कि ४००००) की लागतका भवन बनवाया जाय। श्रीमत महाराज शिवाजीराव होलकर वर्तमान इन्दौर नरेशके पितामह और महाराज तुकोजीराव होलकरके पिता थे। आप साहित्यप्रेमी थे, अतएव समितिने भवनका नाम उन्हींके नामपर रखना निश्चित किया। समितिने महाराजा साहबकी आज्ञा मान ली और धन एकत्रित करनेका कार्य आरम्भ कर दिया।

इसी बीचमें समितिके उद्योगसे अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन महात्मा गांधीजीके सभापतित्वमें इन्दौरमें हुआ। इस अवसरपर वर्तमान इन्दौर-नरेश श्रीमत महाराज यशवंतराव होलकरने सम्मेलनका उद्घाटन किया, और महात्माजीने समिति-भवनकी नींव रखी। कहा जाता है कि इन्दौरका साहित्य-सम्मेलन सम्मेलनोंके इतिहासमें एक विशेष महत्व रखता है। इसी सम्मेलनसे मद्रास-प्रान्तमें हिन्दीका प्रचार प्रारम्भ हुआ। सम्मेलनको जितनी आर्थिक सहायता इस सम्मेलनमें प्राप्त हुई, उतनी किसी भी सम्मेलनमें नहीं हुई। स्वयं होलकर महाराजने उस अवसरपर सम्मेलनको एक बड़ी रकम प्रदान की थी। महाराज उस समय बम्बईमें थे, परन्तु आपने तार द्वारा अपने राज्यमें महात्माजीका स्वागत किया था।

सम्मेलन होनेके पश्चात् कुछ दिन तक भवन-निर्माणका कार्य स्थगित रहा, परन्तु बादमें डाक्टर साहबके उद्योगसे रुपये एकत्रित होने लगे। भवन-निर्माणके लिए जो सहायताएँ प्राप्त हुईं, उनमें स्व० रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्दजी (मालिक फर्म ओंकारमल कस्तूरचन्द) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके लिए ब्याज-सहित आपसे ३५६७५) प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त स्वर्गीय महाराज शिवाजीरावकी धर्मपत्नी महारानी चन्द्रभागा बाई और महारानी सीताबाईने भी ५०००) का दान देकर समितिमें एक महिला-वाचनालय खुलवानेके लिये सराहनीय सहायता प्रदान की है। इन विशेष रकमोंके अतिरिक्त शेष धन सर्वसाधारणसे प्राप्त हुआ है। समितिका भवन' जो बनकर तैयार है, लगभग ४६०००) लागतका है। समितिका अपना प्रिंटिंग प्रेस भी है

रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्दजी साहब

जिसकी बिल्डिंगकी लागत १००००) और सामानका मूल्य १२०००) है। ३०००) के करीब समितिके वैतनिक कार्यकर्ताओंके रहनेके स्थानमें व्यय हुआ है। समितिके कार्य संचालनके लिए एक स्थायी कोष भी है, जिसकी उन्नतिका प्रयत्न हो रहा है। समिति एक प्रान्तीय सम्मेलन भी कर चुकी है।

समिति-भवनके नीचेके मकानमें 'वीणा' कार्यालय तथा समिति-कार्यालयके अतिरिक्त एक पुस्तकालय और वाचनालय भी है। पुस्तकालयका नाम "डाक्टर सरजूप्रसाद पुस्तकालय" है। इसमें विभिन्न भाषाओंके दैनिक, साप्ताहिक अर्ध साप्ताहिक, पाक्षिक एवं मासिकपत्र आते हैं। पुस्तकोंकी संख्या भी लगभग ४०००) के ऊपर है। ऊपरके हिस्सेमें महिला पुस्तकालयकी आयोजना हो रही है। समितिकी महिला सदस्याओंमें कुमारी इन्दरा बाई भागवत बी० ए० (आक्सन), श्रीमती कमलाबाई किबे (धर्मपत्नी सरदार किबे साहब) और श्रीमती ज्योत्सना मेहताके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। समितिमें प्रथमा और मध्यमाकी पढ़ाईके लिए कक्षाएँ भी खोल दी गई हैं, जिनमें केवल साहित्यकी ही पढ़ाई होती है। आशा है, आगामी वर्षसे इन कक्षाओंकी और भी सुचारुरूपसे व्यवस्था होगी।

समितिका कार्य संचालन करनेके लिए एक उपसमिति है,

रायबहादुर श्री० सरजूप्रसादजी तिवारी
प्रधानमन्त्री, मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति

जिसमें इन्दौरके तथा मध्यभारतके प्रतिष्ठित पुरुष सम्मिलित हैं। बाहरके सदस्योंमें ठाकुर गोपालशरण सिंह, प्रिंसपल रामाज्ञ द्विवेदी 'समीर' एम० ए०, और पं० गिरधर शर्माजी 'नवरत्न' के नाम विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। अन्य प्रमुख पदाधिकारियोंमें समितिके सभापति रावराजा सर सेठ हुकुमचन्दजी हैं और प्रधान मंत्री रा०ब० डा० सरजूप्रसादजी। समितिकी ओरसे हाल ही में एक वृहत् उत्सव हुआ था, जिसके सभापति हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि ठाकुर गोपालशरण सिंहजी थे।

यों तो समितिकी उन्नतिका प्रधान साधन होलकर सरकारकी सहायता है, परन्तु उसकी उन्नतिका बहुत बड़ा श्रेय रा०ब० डाक्टर सरजूप्रसादजी, श्री रायबहादुर एम० एम० वापना, और सरदार माधवराव विनायक किबेको है। *रायबहादुर वापना साहब इस समय इन्दौर राज्यके प्रधान मंत्री हैं। आपके पूर्वज जैसलमेर राज्यके निवासी थे।* सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ 'वीर-विनोद' तथा रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा

द्वारा लिखित राजस्थानके इतिहासमें आपके पूर्वजों और उनके कार्योंका बड़े सम्मानके साथ उल्लेख है। बापना साहब निरभिमानी मिलनसार और चरित्रवान् पुरुष हैं। आप हिन्दी भाषासे भी प्रेम रखते हैं। हाल ही में समितिकी ओरसे आपको एक मानपत्र प्रदान किया गया था। अभिनन्दनपत्रके उत्तरमें राष्ट्रभाषाकी सेवा करना आपने अपना कर्तव्य बताया था। वास्तवमें समय समयपर समितिकी उन्नतिसे आपसे बड़ी सहायता मिली है। सरदार किबे साहब इन्दौरके प्रतिष्ठित जागीरदार है। आप इस समय इन्दौर राज्यके डेपुटी प्राइम मिनिस्टरका पद सुशोभित कर रहे हैं। आप मराठीके उच्चकोटिके विद्वान हैं। आपके पूर्वजोंमें स्वर्गीय श्री विट्ठल महादेव किबेका इन्दौरके इतिहासमें विशेष महत्व है। आप सरलस्वभावके विद्यानुरागी पुरुष हैं। रायबहादुर सरजू प्रसादजी तिवारीकी सेवाएँ समितिके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। आपने इस वृद्धावस्थामें जिस उत्साहसे समितिका कार्य किया है, वह उन्हींके साहसकी बात है। आप रीवां राज्यके निवासी हैं, परन्तु सार्वजनिक कार्यकर्ताके नाते इन्दौरके जीवनमें आपका जितना महत्व है, उतना विरले ही पुरुषोंका होगा। आप सरल एवं स्पष्टवक्ता हैं। आपने अपनी बुद्धि और पौरुषके बलसे साधारण स्थितिसे उठकर इन्दौर राज्यके सरजन तकका पद प्राप्त किया। आप इस समय इसी पदपर कार्य कर रहे हैं। आपका जीवन नवयुवकोंके सामने कर्तव्य-परायणताका आदर्श उपस्थित करता है।

यह तो हुआ समितिका इतिहास और उसकी वर्तमान दशाका निदर्शन। समितिको साहित्य क्षेत्रमें अभी बहुत कार्य करना है। स्थायी साहित्यके निर्माणमें समिति अभी बहुत पीछे है और इस ओर समितिको शीघ्र ध्यान देना चाहिए। समिति-द्वारा साहित्यसेवियोंका सम्मान होना भी आवश्यक है। बिना साहित्यसेवियोंका सम्मान किये समिति अपने उद्देश्योंमें कभी सफल नहीं हो सकती। समितिके पुस्तक-प्रकाशन कार्यके सम्बन्धमें हम इसी लेखमें लिख चुके हैं। समितिको जनतामें साहित्यिक रुचि एवं राष्ट्रभाषाके प्रति प्रेम उत्पन्न करनेका भी प्रबल प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए समितिको प्रति मास व्याख्यानों वादविवादों तथा कवि-सम्मेलनों आदिकी आयोजना करनी चाहिए। कभी-कभी बाहरके सुप्रसिद्ध विद्वानोंको बुलाकर उनका उपयोगी विषयोंपर व्याख्यान कराना भी समितिका कर्तव्य होना चाहिए। समितिमें एक अध्ययन मंडल (Study Circle) की भी परम आवश्यकता है। इससे विद्वानोंको हिन्दी साहित्यका विशेष ज्ञान प्राप्त होगा। कलकत्तेमें होनेवाले हिन्दी-साहित्य सम्मेलनमें "वसन्त व्याख्यानमाला" सम्बन्धी जो प्रस्ताव उपस्थित होनेवाला है, उसका समर्थन तो प्रत्येक साहित्यिक पुरुष और साहित्य-संस्थाको करना चाहिए। समितिको इस आयोजनाको सफल बनानेके लिए हर प्रकारसे प्रयत्नशील रहना चाहिए। समिति इस वर्ष कलकत्तेमें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलनको इन्दौर बुलानेका विचार कर रही है। यदि निमन्त्रण आवे तो हिन्दी-प्रेमियोंको सर्वसम्मतिसे उसे स्वीकृत करना चाहिए।

'अवध-पंच' और उसका जन्मदाता

ब्रजमोहन वर्मा

उर्दू पत्रकलाका इतिहास सौ वर्षसे कुछ अधिक पुराना है। उर्दूका सबसे पहला अखबार 'जामे जहाँनुमा' सन् १८२२ में कलकत्तेसे प्रकाशित हुआ था। यह वह समय था, जब भारतवर्षसे मुसलमानी शासन प्राय: उठ चुका था या उठ रहा था। लेकिन देशमें मुसलमानी प्रभाव पूर्ण मात्रामें वर्तमान था। लोग आपसमें एक दूसरेसे हिन्दी या हिन्दुस्तानीमें ही बातचीत करते थे, परन्तु अदालतों, राज-दरबारों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी लिखने-पढ़नेकी भाषा फारसी थी। फारसीदाँ लोग उर्दू पढ़ने-लिखनेमें अपनी हेटी समझते थे। फल यह हुआ कि 'जामे-जहांनुमा'को उर्दू-पाठक नसीब न हो सके, और कुछ ही हफ्तोंके बाद उसे मजबूर होकर अपनी भाषा फारसी कर देनी पड़ी।

खैर, कुछ दिन बाद भारतके विभिन्न स्थानोंमें उर्दूके अनेकों पत्रोंका जन्म हुआ। लाहोरसे 'अखबार आम' और 'कोहनूर', दिल्लीसे 'अशरफुल अखबार' स्यालकोटसे 'विक्टोरिया रिसाला', बम्बईसे 'कश्फुल अखबार' और मद्राससे 'ज़रीदह रोज़गार' आदि पत्र प्रकाशित हुए; जिनमें से अधिकांश थोड़े दिन तक जीवित रहकर चल बसे। आजकल हम लोग 'समाचारपत्र' का जो अर्थ समझा करते हैं, उस दृष्टिसे इन सब अखबारोंको समाचारपत्र कहना कठिन है। कारण यह है कि इन अखबारोंका कोई राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक ध्येय नहीं था, उनकी अपनी कोई निर्धारित नीति नहीं थी, और न कोई पूर्व-निश्चित मार्ग ही था। उनमें या तो सम्पादकीय विचार होते ही नहीं थे, और यदि होते भी थे, तो उनकी कोई पूर्व-निर्दिष्ट नीति न होती थी। उन्हें समाचारपत्र न कहकर खबरों और विज्ञापनोंका 'बुलेटिन' कहना अधिक उपयुक्त है।

उर्दू अखबारोंका यह निरुद्देश संचालन प्राय: पचास वर्ष तक कायम रहा। सबसे पहले सन् १८७७ में 'अवध पंच'ने जन्म लेकर उर्दू पत्रकार कलाके अस्तित्वमें विस्मयजनक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। यूरोपके उच्चकोटिके अखबारोंकी भांति 'अवध पंच' एक सुविकसित साहित्यिक मार्ग, एक निर्दिष्ट राजनैतिक ध्येय और एक सुनिश्चित सामाजिक उद्देशको लेकर पैदा हुआ। उसके जन्मने उर्दू-संसारमें एक हलचल मचा दी, और शीघ्र ही उसकी तूती बोलने लगी। 'अवध-पंच'ने तीस-पैंतीस वर्ष तक जिस शानके साथ उर्दूके पत्रकार-जगतमें हुकूमत की, वह अब तक किसी अन्य पत्रको नसीब नहीं हुई।

जैसा उसके नामसे प्रकट होता है 'अवध-पंच' 'पंच' अर्थात् हास्यरसका पत्र था। मगर संसारका कोई भी महत्त्वपूर्ण विषय उसकी सीमाके बाहर नहीं था। राजनैतिक और सामाजिक मामलोंके अतिरिक्त साहित्यिक-क्षेत्रमें भी उर्दू-साहित्य 'अवध-पंच' का चिर ऋणी रहेगा। आजकल उर्दूका गद्य प्रौढ़ावस्थाको पहुँच चुका है, परन्तु इसके विकासमें 'अवध-पंच' का काफी हाथ है। आजकल भी यदि कोई व्यक्ति उर्दू-भाषा सीखना चाहे, तो 'अवध-पंच' के टूटे खंडहरोंकी तीर्थयात्रा उसके लिए उत्तम ही नहीं, बल्कि जरूरी है। 'अवध-पंच' की पुरानी फ़ाइलोंके अन्धकारपूर्ण कोनोंमें क़लमके ऐसे धनी पड़े हैं, जिनकी लेखनीकी धाक लोगोंके दिलोंमें ज़लज़ला पैदा कर देती थी।

'अवध-पंच' के सम्पादक और जन्मदाता सैयद मुहम्मद सज्जाद हुसेनका जन्म सन् १८५६ में लखनऊके पास काकोरीमें हुआ था। उनके पिता मन्सूर अली डिप्टी कलक्टर थे और बादमें पेनशन लेकर हैदराबादमें सिविल जज हो गये थे। उनके मामा नवाब फिदा हुसेन लखनऊके प्रतिष्ठित वकील थे और फिर निज़ाम-राज्यमें चीफ जस्टिस

रहे थे। मुन्शी सज्जाद हुसैनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने मामाकी देख-रेखमें लखनऊमें हुई थी। वहीं उन्होंने

'अवध-पंच'के जन्मदाता स्वर्गीय मुन्शी सज्जाद हुसैन

सन १८७३ में इन्ट्रेन्स पास करके कैनिंग कालेजमें प्रवेश किया, मगर एफ० ए० की पढ़ाई समाप्त होनेके पहले ही तबीयत उचट गई और इम्तिहान देनेके पूर्व ही कालेज छोड़कर जीविकाकी चिन्तामें फैज़ाबाद जा पहुँचे। वहाँ फौजी गोरोंको उर्दू पढ़ानेके लिए 'मुन्शी' हो गये। मगर ज़िन्दादिलीके अवतार सज्जाद हुसैनकी इस काममें भला क्या तबीयत लगती। एक वर्षमें ही उसे छोड़ दिया और लखनऊमें आकर 'अवध-पंच' निकालना प्रारम्भ कर दिया।

एक वर्षके भीतर ही मुन्शी सज्जाद हुसैनने 'अवध-पंच'के लिए ऐसे-ऐसे प्रतिभाशाली लेखक ढूंढ़ निकाले, जो उर्दूके साहित्याकाशमें चाँद-सूरज होकर चमके! यह बात निर्विवाद कही जा सकती है कि 'अवध-पंच'को जैसे योग्य, विद्वान्, प्रतिभावान और प्रभावशाली लेखक मिले वैसे शायद ही किसी अखबारको मुयस्सर हुए होंगे। पंडित त्रिभुवननाथ 'हिज्र', मिरज़ा मच्छूबेग 'सितम ज़रीफ', नवाब मुहम्मद खां साहब 'आज़ाद', सैयद अकबर हुसेन 'अकबर', मुन्शी अहमद अली 'शौक़', मुन्शी ज्वालाप्रसाद 'बर्क़' और मुन्शी अहमदअली कसमंडवी आदिकी प्रतिभाशाली लेखनियोंने शीघ्र ही उर्दू-साहित्यका शासन-सूत्र 'अवध-पंच'के हाथमें दे दिया। फिर तो 'अवध-पंच' के कालमोंसे साहित्य और हास्यका जो स्रोत बहा, वह तीस-पेंतीस वर्ष तक जारी रहा, और उसने उर्दू-साहित्यके चमनको जैसा हरा-भरा बनाया, वह भुलाया नहीं जा सकता।

उर्दूकी अखबारी दुनियामें हास्यरसकी एक नवीन और मौलिक शैलीके आविष्कर्ता मुन्शी सज्जाद हुसैन थे। उनकी ज़बान लखनऊकी टकसाली ज़बान थी। वे अपने रंगके 'मास्टर' थे। सज्जाद हुसैनकी सबसे बड़ी ख़ूबी यह थी कि उनमें जातीय द्वेष या मज़हबी तअस्सुब छू तक नहीं गया था। उन्होंने मरते दम तक अपने दामनको इस अलौकिक विषसे पाक रखा। स्वतन्त्रता और ईमानदारी उनके विशेष गुणोंमें से थे। वे अपनी वज़अ-क़तअके ऐसे पक्के थे कि जो वज़अ आरम्भमें ग्रहण की, उसे आख़िरी दम तक निबाहा। हास्यरस तो शायद उनकी घुट्टीमें शामिल था। वह उनके स्वभाव और अस्तित्वका एक अभिन्न अंश था। कैसी ही मुसीबत क्यों न हो, मगर सज्जाद हुसैनके चेहरेपर हास्यकी रेखा ही दीख पड़ती! सन् १८८७ में वे पहले-पहल कांग्रेसमें सम्मिलित हुए और मरते दम तक उसके समर्थक रहे। सन् १९०१ में पहली बार लकवा गिरा, मगर कुछ महीने बीमार रहकर अच्छे हो गये। सन १९०४ में लकवेका दूसरा दौरा हुआ, जिससे बातचीत करनेकी शक्ति जाती रही। तबसे उनकी दशा बराबर बिगड़ती रही, जिससे सन् १९१२ में मजबूर होकर 'अवध-पंच' बन्द कर देना पड़ा। अन्तमें सन १९१५ में हास्यरसके इस सम्राटने दुनियासे कूच कर दिया।

राजनीतिमें 'अवध-पंच' सदासे कट्टर राष्ट्रीय विचारोंका और प्रजा-प्रथाका समर्थक था। कांग्रेसकी स्थापनाके बादसे वह कांग्रेसका पक्ष समर्थन करता रहा। उसने कभी साम्प्रदायिकताका राग नहीं अलापा। सामाजिक मामलोंमें वह पक्का 'कन्सर्वेटिव' था यानी पुरानी रोशनी और

नन्द और यशोदा

[चित्रकार — श्री रविशंकर रावल

कलाम-कृतम उसे पसन्द थी और वह नई रोशनी और नई सामाजिक पद्धतिका घोर विरोधी था। इस प्रकारसे अवध-पंच'के राजनैतिक और सामाजिक उद्देशोंमें दो विचित्र विरोधी नीतियोंका सम्मिश्रण था। राजनीतिमें वह आमूल-परिवर्तन करनेको तत्पर था, मगर सामाजिक मामलोंमें एक नुक़्तेका हेर-फेर भी उसे गवारा नहीं था। नई रोशनीके नादान दोस्तोंकी मूर्खताओंका भंडाफोड़ करनेके अतिरिक्त सामाजिक उन्नतिमें 'अवध-पंच' से कोई और लाभ नहीं हुआ। हास्यरसके विचारसे वह अपने ढगका एक ही पत्र था। 'अवध-पंच' की देखादेखी हास्यरसके और भी कई पत्र, जैसे 'इंडियन-पंच' 'बम्बई-पंच' और 'बांकीपुर-पंच' आदि निकले, लेकिन—

शेखने लाख दाढ़ी बढ़ाई सनकी सी,
मगर वह बात कहाँ मौलवी मदनकी सी!

ये सबके सब थोड़े दिनोंमें ही ज़मानेकी ठोकरें खाकर समाप्त हो गये। पर 'अवध-पंच' का जादू उर्दू भाषापर मुद्दतों चलता रहा। इस लम्बे समयमें 'अवध-पंच'ने साहित्यकी जो सेवाएँ की है, उन्हें देखते हुए उसे उर्दूके दरबारमें बहुत सम्माननीय स्थान मिलना चाहिए।

'अवध पंच' का हास्य बहुत उच्चकोटिका हास्य नहीं है। पवित्र और स्थायी हास्य, सरस हास्य, व्यंग्य, मसखरापन और फब्तियों आदिमें काफ़ी अन्तर होता है। उर्दूका सरस और पवित्र हास्य पाठकोंको 'ग़ालिब' के पत्रोंमें मिलेगा। उसमें न व्यंग्य हैं, न ताने-तिश्ने। उनमें रोज़मर्राकी बातें ऐसे सुन्दर ढंगसे कही गई हैं, जिनमें साहित्यिक छटाके साथ-साथ सरस हास्यका ऐसा मधुर पुट है जिसे पढ़कर पाठकोंका हृदयकमल खिल उठता है और मधुर मुस्कानकी ज्योति उसके चेहरेपर खेलने लगती है। मगर 'अवध-पंच' के हास्यका रंग इससे निराला है। उसके लेखकोंके कलमसे फब्तियां इस तरह निकलती हैं जैसे कमानसे तीर! उनका निशाना अचूक है। जो बेचारा उनका शिकार होता है, वह ज़ार-ज़ार रोता है और देखनेवाले हंसते है! उनके वाक्य दिलोंमें मीठी गुदगुदी नहीं पैदा करते, बल्कि नश्तरकी तरह तैर जाते हैं। वे ग़ालिबकी तरह मुस्कराते नहीं हैं; हंसते भी नहीं हैं; वे क़हक़हे लगाते हैं और दुनियाको अपने साथ क़हक़हे लगानेके लिए बरबस मजबूर करते हैं। उन लोगोंकी तबीयतकी तेज़ी और बेतकल्लुफ़ी कभी-कभी शिष्टताकी सीमा पार कर जाती है, और उनके क़लमसे बेतहाशा ऐसे वाक्य निकल जाते हैं, जिन्हें देखकर शिष्टताको आँखें मूद लेनी पड़ती हैं। मगर 'अवध-पंच' के हास्यपर विचार करते हुए हमें कई बातोंपर ध्यान रखना चाहिए। पहली बात तो यह है कि 'अवध-पंच' एक साप्ताहिक अख़बार था। उसमें सप्ताह भरकी खबरोंके साथ-साथ उन तत्कालीन समस्याओंपर निबन्ध और लेख रहा करते थे, जिनकी ओर जन-साधारणका ध्यान आकृष्ट हो। अत: उसमें जो कुछ हास्यरस लिखा जाता था, वह उसके तात्कालिक प्रभावके विचारसे लिखा जाता था, न कि स्थायी साहित्यके विचारसे। इस बातका निर्णय 'अवध-पंच'के सम्पादक और लेखक ही कर सकते थे कि तत्कालीन परिस्थितिमें किस व्यक्तिको कितनी गहरी या हलकी ख़ुराक देनेकी ज़रूरत थी। आज जो रिमार्क हमें अशिष्ट मालूम होता है, सम्भव है कि तत्कालीन परिस्थितिमें उपयोगिता और प्रभावकी दृष्टिसे वह अनिवार्य हो। दूसरे यह वह ज़माना था जब हमारे साहित्यिक आदर्श इतने विकसित नहीं थे, जितने आज हैं। 'अवध-पंच' के लेखक उस ज़मानेकी हवा खाये हुए थे, जब मज़ाक और बेतकल्लुफ़ीकी सीमाएँ बहुत विस्तृत थीं और बहुतसी बातें जिन्हें आज हम ऐब समझते हैं, तब दूषणोंमें शुमार नहीं थीं।

'अवध-पंच' के लतीफ़ों और वाक्योंपर जन-साधारण लोट-पोट हो जाते थे। उसमें जो फब्ती निकल जाती, वह दूर-दूर तक मशहूर हो जाती थी और महीनों और वर्षों तक लोगोंकी ज़बान पर रहा करती थी। गत वर्ष कलकत्तेमें एक वृद्ध सज्जनके पास बैठे हुए मैंने मुन्शी सज्जाद हुसेन और 'अवध-पंच' का ज़िक्र किया। वे सज्जन लखनऊके

रहनेवाले थे, मगर पचास वर्षसे कलकत्ते आ बसे थे। उन्होंने सज्जाद हुसेनकी वक्तकी सूझ और व्यंग्योक्तिका एक मनोरंजक क़िस्सा सुनाया। उन्होंने कहा कि लखनऊके सुप्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेसके संस्थापक और मालिक मुन्शी नवलकिशोर भार्गव दिल्ली-दरबारमें गये थे। वहां उन्होंने एक 'लैन्डो' गाड़ी तथा बहुत बढ़िया घोड़ोंकी जोड़ी खरीदी। उस समय तक भारतवर्षमें 'लैन्डो' गाड़ियोंका प्रचार न हुआ था। कहते हैं कि लखनऊमें आनेवाली सबसे पहली 'लैन्डो' मुन्शी नवलकिशोरकी ही थी। एक दिन मुन्शीजी लैन्डो' पर बैठे जा रहे थे, अचानक दुर्घटनावश गाड़ी उलट गई और मुन्शीजीके पैरमें चोट आ गई। मुन्शीजी लखनऊके बड़े प्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त व्यक्तियोंमें से थे, अतः इस दुर्घटनाकी खबर प्रायः सभी अखबारोंमें प्रकाशित हुई। मुन्शी नवलकिशोर रायबहादुर-खिताब धारी थे, वे सरकारके खैरख्वाह और कांग्रेसके विरोधी थे। दूसरी ओर 'अवध-पंच' कांग्रेसका पक्का हिमायती था, इसलिए मुन्शीजीसे उसका विरोध स्वाभाविक ही था। वह मुन्शीजीके 'अवध-अखबार' को 'बानया-अखबार' कहा करता था। उसने भी मुन्शीजीके पैरमें चोट लगनेकी दुर्घटनाकी खबर प्रकाशित की, लेकिन निम्न लिखित रूपमें :—

अटकन चटकन *
दही चटोकन
बन फूले बनवारी फूले
बाबाजीकी बारी फूले
बाबा गये दिल्ली
लाये सात कटोरी
एक कटोरी फूटी
'नेवले' की टाँग टूटी !!

* संयुक्तप्रदेशकी ओर छोटे-छोटे लड़के जमीनपर पट हाथ रखकर एक खेल खेलते हैं। एक लड़का हर एकके हाथपर बारी-बारीसे उँगली रखता जाता है, और इन्हीं शब्दों (अटकन चटकन आदि) को दोहराता जाता है।

कहना न होगा कि अन्तिम लाइन औरोंकी अपेक्षा मोटे अक्षरोंमें थी! इस प्रकारसे 'अवध पंच' के जुमले और लतीफे लोगोंको पचास-पचास वर्ष बाद तक याद रहे! उस पर से मज़ेकी बात यह है कि जिन सज्जनने मुझे यह बात बताई थी, वे स्वयं उर्दू नहीं जानते थे, उन्होंने दूसरोंसे सुनकर उसे पचास वर्षसे अधिक दिन तक याद रखा! लखनऊकी म्यूनिसिपैलिटीके चुनावके अवसरपर एक बार 'पंच' ने म्यूनिसिपैलिटीकी घुड़दौड़ शीर्षक एक लेख लिखा जिसमें भिन्न भिन्न मुहल्लेके उम्मेदवारोंको चुनावकी घुड़दौड़में दौड़नेवाला जानवर बनाया था। किसीको ताज़ी, किसीको कुम्मेत और किसीको बैल आदि सुन्दर उपमाएँ दी गई थीं। एक मुहल्लेमें एक कायस्थ सज्जन खड़े हुए थे, जिनका शरीर भारी और रंग पक्का था। 'अवध-पंच' ने उन्हें 'पड़वा' का खिताब अता किया। यह उपनाम उनके रंग और शरीरके अनुसार ऐसा चुस्त होकर बैठा कि मरते दम तक क़ायम रहा!

हास्यरसको छोड़कर 'अवध-पंच' की अन्य कृतियोंमें सबसे बड़ी बात यह है कि उसने उर्दू-गद्यके कृत्रिम आभूषणोंको—जिनमें काग़ज़ी फूलोंके सिवा कुछ न था—उतारकर उसे प्राकृतिक फूलोंसे जिनमें स्वाभाविक सौन्दर्य और मनोहर सुगन्धि थी, सजाया। 'अवध पंच' के पहले रजबअली सरूरकी गद्यशैली पूजी जाती थी। जनसाधारणकी प्रवृत्ति बनावटकी ओर अधिक झुकी हुई थी। उस समयके उर्दू अखबारोंकी भाषा भी ऐसी होती थी, जिसे हम मुश्किलसे उर्दू कह सकते हैं। आजकल उर्दू गद्य जिस स्वाभाविक और सरल पथपर जा रहा है, उसके आविष्कारमें 'अवध-पंच' का बड़ा हाथ है। 'अवध-पंच'का लेखक-मंडल केवल एक नई शैलीका ही आविष्कारक नहीं है, उसके लेखकोंकी भाषामें ग़ज़बकी शोखी और चंचलता है। बोलचालकी भाषा और मुहाविरोंकी सफाईमें 'अवध-पंच' के अन्य लेखकोंकी अपेक्षा मिरज़ा मच्छू बेग 'सितम ज़रीफ' का रंग चोखा रहता था। मुन्शी सज्जाद हुसेनकी

लेखनशैली सबसे निराली थी। उनके लेख क्या हैं, छोटे-छोटे चुटकुलों और लतीफोंके संग्रह हैं। ऐसा मालूम होता है कि पढ़नेवाला बैठा हुआ लेखकसे बात कर रहा है। हास्यके क्षेत्रमें 'अवध-पंच' के लेखक-मण्डलमें हज़रत 'अकबर' सबसे दस क़दम आगे हैं। राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक मसलोंको उन्होंने जैसी सरस हास्यमयी कवितामें उतारा है, वैसी कविता उर्दू ही नहीं, भारतवर्षकी किसी अन्य भाषामें भी कम देखनेको मिलेगी।

'अवध-पंच' के निबन्धोंका क्षेत्र बहुत विस्तृत था। संसारका कोई भी विषय ऐसा न था, जिसपर 'अवध पंच'के प्रतिभाशाली लेखक अपने हास्यकी चाशनी न चढ़ा सकें। लखनऊके साधारण जीवनके विभिन्न अंगोंके सरस हास्यपूर्ण चित्रण अकसर 'अवध-पंच' के पृष्ठोंपर दिखाई देते थे। इसके अतिरिक्त ईद, बक़रीद, मुहर्रम, चेहलुम, शबबरात, होली, दिवाली, वसन्त, मेले-तमाशे, अदालतकी रूबकारियाँ, मुशायरे, मुर्गबाज़ी, बटेरबाज़ीके झगड़े और इलेक्शन आदि ऐसी घटनाएँ थीं, जो 'अवध-पंच' के लेखकोंकी लेखनीके लिए हास्यके नये मसाले एकत्रित किया करती थीं। इसके अतिरिक्त बिरहे, बारहमासे, दोहे, ठुमरियां, ग़ज़लें, रूबाइयाँ आदि लिखनेमें भी उसके लेखक सिद्धहस्त थे। मुन्शी सज्जाद हुसैन प्रति सप्ताह एक छोटा सा लेख 'लोकल अली उल रहमत' के शीर्षकसे लिखा करते थे, जिसमें अकसर ऋतुओंके परिवर्तन आदिकी बातें ऐसे हास्यजनक रूपमें लिखी जाती थीं कि पढ़नेवाले हँसते-हँसते लोट जाते थे।

रोज़मर्राके छोटे-छोटे चुटकुलोंके अलावा 'अवध-पंच' में अनेकों साहित्यिक वाद-विवाद ऐसे प्रकाशित हुए, जो वर्षों तक चलते रहे और जिन्होंने उर्दूके साहित्य-क्षेत्रमें क्रान्तिकारी हलचल मचा दी। 'अवध-पंच' में इस प्रकारका पहला विवाद पंडित रतननाथ दर 'सरशार' के 'फिसाना-आज़ाद' के ऊपर छिड़ा था। 'सरशार' महोदयने लखनऊकी बेगमोंकी जो भाषा लिखी है, वही इस वाद-विवादकी बुनियाद थी। 'अवध-पंच' का ऐतराज़ था कि यह भाषा बेगमातकी नहीं, बल्कि दासियों और नौकरानियोंकी है। अर्से तक इस विषयपर वाद-विवाद चलता रहा।

'अवध-पंच' का दूसरा वार प्रसिद्ध कवि मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' पर हुआ। 'हाली' महोदयने अपने 'दीवान'की भूमिकामें उर्दू कविताके असली उद्देशपर कुछ विचार प्रकट किये थे। इस भूमिकाके प्रकाशित होते ही 'अवध-पंच' की बारूदमें चिनगारी लग गई। उसने 'हाली' महोदयका विरोध किया। उसका कहना था कि 'हाली' जिसे शायरी समझते हैं वह शायरी नहीं है—क़ाफ़ियाबन्दी है। वह कवित्वके स्वाभाविक गुणोंसे शून्य है। 'हाली' के विरोधका एक और भी बड़ा भारी कारण था। उन्होंने अपनी भूमिकामें कृत्रिम और अस्वाभाविक शायरीके जितने उदाहरण उद्धृत किये थे, वे सब दुर्भाग्यवश लखनऊके शायरोंके थे। अत: 'अवध-पंच' ने उसका यह अर्थ लगाया कि मौलाना 'हाली' ने जान-बूझकर लखनऊके कवियोंकी अप्रतिष्ठाके लिए ऐसा किया है। लखनऊ और दिल्लीकी भाषाओंकी पुरानी प्रतिद्वन्द्विता उठ पड़ी। बस, फिर क्या था? बेचारे 'हाली' पर आक्षेपोंकी वर्षा प्रारम्भ हो गई। उनकी कविताके प्रत्येक शेरमें दूषण दिखाये जाने लगे। मुद्दत तक यह सिलसिला जारी रहा। इस विषयमें 'अवध-पंच' के लेखकोंने अकसर अतिशयोक्ति भी की थी, मगर उनके आक्षेप बिलकुल बे-बुनियाद भी नहीं थे। मौलाना 'हाली' पानीपतके रहनेवाले थे। जिस शीर्षकके अन्तर्गत उनपर आक्षेप प्रकाशित होते थे, उसके सिरेपर यह शेर लिखा रहता था—

अबतर हमारे हमलोंसे 'हाली'का हाल है,
मैदान पानीपतकी तरह पायमाल है!"

'अवध-पंच' का तीसरा साहित्यिक हंगामा महाकवि 'दाग़' की कविताको लेकर शुरू हुआ। 'पंच' ने कभी भी 'दाग़' की कविताकी श्रेष्ठता स्वीकार नहीं की। इसका सबब एक तो लखनऊ और दिल्लीकी पुरानी प्रतिद्वन्द्विता थी, दूसरे 'दाग़' के कुछ शागिर्दोंने अपने उस्तादकी कवितापर तमाम

लखनऊको कुरबान कर दिया था। नतीजा यह हुआ कि मूर्ख शागिर्दोंकी अशिष्टताका फल बेचारे उस्तादको भुगतना पड़ा और 'अवध-पंच' के कालमोंमें बहुत दिनों तक आक्षेपोंकी चिनगारियाँ उड़ती रहीं। यद्यपि उनसे 'दाग़' की प्रतिष्ठामें कोई अन्तर नहीं पड़ा, मगर हँसने-हँसानेका सिलसिला मुद्दत तक जारी रहा।

'अवध पंच' अपनी पैदाइशसे ही प्रजा-पक्षका समर्थक था। उसके कालमोंमें राजनैतिक समस्याओंपर भी बड़े मार्केके लेख प्रकाशित हुआ करते थे। उसकी नज़रोंमें हिन्दू मुसलमान बराबर थे। यदि ईदके अवसरपर उसका विशेषांक प्रकाशित होता था, तो होली और वसन्तपर वह लाल और पीला कलेवर धारण किया करता था। यह कहा जाचुका है कि 'अवध पंच' सामाजिक और धार्मिक मामलोंमें अपरिवर्तनवादी था। दूसरी ओर अलीगढ़के प्रसिद्ध नेता सर सैयद अहमद धार्मिक मामलोंमें उदार विचारके और सुधारवादी व्यक्ति थे। अत: 'अवध पंच' और सर सैयदमें विरोध होना अनिवार्य था। इसके अलावा एक बात यह भी थी कि 'अवध-पंच' पक्का राष्ट्रीय विचारका पत्र था, दूसरी ओर सर सैयद अहमदने आरम्भ से ही कांग्रेसका घोर विरोध करके मुसलमानोंमें साम्प्रदायिकताका ज़हर बोया, जिसके कुफल आज तक नहीं मिटे हैं। 'अवध-पंच' ने सर सैयदके मज़हबी सुधार और राजनैतिक विचारोंका विरोध किया। उसने अलीगढ़ कालेजको अधार्मिकताका केन्द्र बताया, और उसके संस्थापकको 'पीर नेचर' की पदवी देकर उनके 'नेचरिया मज़हब' का खूब खाका उड़ाया। 'अवध-पंच' के शह-सवारोंने सर सैयदपर जैसे-जैसे वार किये, उनका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता। हज़रत अकबरने उनपर अपनी क़लम चलाई—

"होता नफ़ा है यूरोपमें नान पावसे,
मैं खुश हूँ एशियाके खयाली पुलावसे।
ईमान बेचने पे हैं अब सब तुले हुए,
लेकिन खरीद हो जो अलीगढ़के भावसे!"

इसमें अलीगढ़की ईमानकी बिक्रीपर जो भीतरी चोट है, उसे सहृदय पाठक भली भाँति समझ सकते हैं। एक स्थानपर लिखा है—

"मुसलमानोंकी खुशहालीकी बेशक धुन है सय्यदको
मगर यह काम निकलेगा न लेक्चरसे न चन्दोंसे।
दुरुस्ती तख़्तो-इज़्ज़तकी कहाँ इन कील काँटोंसे
तवक्क़ा शहसवारोंकी न रखो नालबन्दोंसे॥"

इसी प्रकार गद्य और पद्यकी फुलझड़ियाँ छूटती रहीं। एक महाशयने नज़ीरकी एक प्रसिद्ध ग़ज़लको परिहास (parody) में परिवर्तित करके सर सैयदपर चस्पाँ कर दिया। नज़ीरकी ग़ज़ल है :—

"नज़र पड़ा इक बुते परीवश
निराली सज-धज नई अदाका,
जो उम्र देखो तो दस बरसकी
यह क़हर आफ़त ग़ज़ब खुदाका।
जो शक्ल देखो तो भोली-भाली
जो बात सुनिये तो मीठी-मीठी,
पै दिल वह पत्थर कि सर उड़ा दे
जो नाम लीजे कभी वफ़ाका।
जो घरसे निकले तो यह क़यामत
कि चलते चलते क़दम-क़दमपर
किसीको ठोकर, किसीको थप्पड़,
किसीको गाली, निपट लड़ाका।" इत्यादि

'अवध पंच' ने इसे 'नेचरिया शायरी' का शीर्षक देकर इस प्रकार प्रकाशित किया था :—

नेचरिया शायरी

"नज़र पड़ा एक पीर नेचर
निराली सज-धज, नई अदाका,
जो उम्र देखो तो सौ बरसकी
पै क़हर आफ़त ग़ज़ब खुदाका।
सफ़ेद दाढ़ी पै काला जूता
और उसपे तुर्रा वह सुर्ख टोपी,

बदन पे जाकट गलेमें पट्टे से
मालूम उसपर है इक बलाका।
जो देके लेकचर वह माँगे चन्दा
तो अहमक़ोंकी कतर ले जेबें,
कहे जो स्पीच वेवकूफों पे
जाल फैलाये वह दग़ाका।
× × ×
बहुत दिनों तक किये करिश्मे
तरह तरहके दिखाये नखरे
ख़ुदाके बन्दोंके दीनमें—
दुनियाको खूब लूटा गज़ब ख़ुदाका।
इत्यादि।''

'अवध पंच'की समस्त उन्नति और शान उसके सम्पादककी प्रतिभापर निर्भर थी। मुन्शी सज्जाद हुसेनके समान तबीयतदार और मनचले लोग संसारमें कम होंगे। शारीरिक कष्टों, आर्थिक कठिनाइयों और मानसिक क्लेशोंमें भी हास्यकी विमल ज्योति उनका साथ नहीं छोड़ती थी। लकवा मारनेके बाद बीमारीकी दशामें जो कोई मिजाज पूछता तो कहते थे कि ज़िन्दगीका रोग है, और अपने कष्टोंका हाल इस तरह बयान करते थे कि सुननेवालेको हँसी आ जाती थी। दवा-इलाजसे बिलकुल निराश हो चुके थे, मगर फिर भी दवा जारी रखते थे, और कहते थे कि दवा तो महज़ इसलिए करता हूँ कि बाज़ाब्ता (नियमानुकूल) मृत्यु हो! बिना दवाकी मृत्युको बेक़ानूनी मौत कहा करते थे। सौभाग्यसे आरम्भ ही से उन्होंने 'अवध-पंच'के लिए ऐसे प्रतिभाशाली लेखक पैदा कर लिये थे, जो किसी भी पत्रके लिए गौरवकी बात हो सकते थे। शायद ही किसी पत्रको एक ही समयमें इतने अधिक और ऐसे प्रतिभाशाली लेखक नसीब हुए हों। वे लेखक केवल 'अवध-पंच'के लेखक ही नहीं थे, बल्कि उसे हृदयसे चाहनेवाले थे। उनमें से कई एक 'अवध पंच'को छोड़कर अन्य किसी पत्रमें लेख लिखना अपनी शानके खिलाफ समझते थे। मगर कुछ दिनोंके बाद परिवर्तनशील समयने पल्टा खाया। दस-पन्द्रह वर्ष बाद 'अवध-पंच'के यौवनकी दोपहरी ढलने लगी। उसके लेखकोंका ज्योतिर्मय मंडल बिखरने लगा। कुछको मृत्युने इस दुनियासे उठा दिया। कुछ सांसारिक झंझटोंके कारण अर्से तक 'अवध-पंच' का साथ न दे सके। 'अवध-पंच'के पृष्ठ अब पुरानी प्रभासे हीन दिखाई पड़ने लगे और जो कुछ रहा सहा बाक़ी था, उसे सम्पादककी बीमारीने समाप्त कर दिया। इधर 'पंच'की आर्थिक दशा भी बराबर बिगड़ती चली गई। फिर भी मुन्शी सज्जाद हुसेनके आत्म-सम्मानको यह सह्य नहीं था कि वे अपनी आँखोंके आगे पंचको बन्द होते देखें। वे दस-बारह वर्ष तक 'अवध-पंच'को घाटेसे चलाते रहे। जिस समय 'अवध-पंच' इस अर्धजीवित दशामें घसिट रहा था, उस समय 'भारत-मित्र'के यशस्वी सम्पादक स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तने एक पत्रमें 'पंच'की निर्जीवताकी शिकायत की थी। इस चिट्ठीके उत्तरमें मुन्शी सज्जाद हुसेनने जो पत्र लिखा था, उससे प्रत्यक्ष है कि वे 'अवध-पंच'के जीवनको अपना जीवन समझते थे। उन्होंने लिखा था—

'मुकर्रमी, तस्लीम।

खत पहुँचा। बहुत बजा है, 'अवध-पंच' मुर्दा हाथोंसे इसलिए निकलता है कि कोई उठानेवाला नहीं। दो-एक सतरोंके सिवा हाथसे लिख नहीं सकता हूँ, न मुँहसे बोल सकता हूँ। कुछ नौकर हिम्मत करके निकाल देते हैं। दस सालसे फालिज (लकवा) में गिरफ्तार लबे गोर (क़ब्रके किनारे) हूँ। जब किसी तरफ़से इत्मीनान नहीं तो क्या इन्तज़ाम हो सके? अख़बार सिर्फ इसीलिए निकालता हूँ कि जीते जी मर नहीं सकता। वर्ना इस आरज़ेके हाथों—

'मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता।'

'अवध-पंच' ज़िन्दह अख़बारोंमें नहीं कि इसका ज़िक्र हो। हाँ, गुज़िश्ता ज़मानेमें कुछ था।''

मगर यह दशा अधिक दिनों तक क़ायम न रह सकी। मृत्युके दो वर्ष पहले बेचारे सम्पादकको स्वयं अपने ही मुर्दा

हाथोंसे 'अवध-पंच' का जनाज़ा उठाना पड़ा। मुन्शी सज्जाद हुसेनको जीते जी मरना पड़ा। यद्यपि मृत्युके किनारे होनेपर उनकी यह अन्तिम कामना थी कि—

गो हाथमें जुम्बिश नहीं आंखोंमें तो दम है,
रहने दो अभी सागिरो-मीना मेरे आगे।

'अवध-पंच' का जारी रहना तो दूर रहा, उस समय ऐसी नाज़ुक हालत थी कि यदि दो चार मित्र काम न आते तो शायद 'अवध-पंच'के यशस्वी सम्पादक और हास्यरसके इस महारथीको अपने जीवनकी अन्तिम घड़ियोंमें भोजनके लिए भी मोहताज होना पड़ता।

छत्तीस वर्ष तक देश और साहित्यकी सेवा करके 'अवध-पंच' इस संसारसे विदा हुआ। इस समय उर्दूके अनेकों अच्छे-अच्छे पत्र निकलते हैं, मगर 'अवध-पंच'का स्थान खाली है और शायद बहुत दिनों तक खाली रहेगा। *

* यह लेख स्वर्गीय पं० ब्रजनारायण चकबस्त लखनवीकी लिखी हुई, 'गुल्दस्तये पंच' नामक पुस्तककी भूमिकाकी मददसे लिखा गया है।

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा

श्री मथुरालाल शर्मा एम० ए० डी० लिट०

उन्नीसवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध भारतवर्षमें अपूर्व जागृतिका युग था। चिरसुषुप्त आर्य-जाति कुलबुलाने लगी थी और अपने विलीन गौरवके पुनर्दर्शनके निमित्त प्रयत्न करने लगी थी। जब सन् १८५७ का स्वातन्त्र्य संग्राम शक्ति-संगठनके अभावसे विफल हो गया, और देशको अंग्रेज़ी शासकोंकी दुर्दमनीय शक्तिका परिचय मिला, तो वह अपनी निर्बलताओंका अधिक दु:खके साथ अनुभव करने लगा। लखनऊ, कानपुर, दिल्ली और प्रयाग आदि स्थानोंमें गोरी सेनाओंने जो भीषण हत्याकाण्ड किया, उसको असहाय देशने सजल-नेत्रोंसे देखा। अपने प्रिय पुत्र और पतियोंको संगीन, गोली और रस्सोंके शिकार होते हुए देखकर जब अबलाएँ करुण-क्रन्दन करती थीं, तो त्रस्त देश उनको थोथी सान्त्वना देनेका भी साहस नहीं कर सकता था। पशुबलके इस लोमहर्षण प्रदर्शनसे देशको विश्वास हो गया कि स्वातन्त्र्य प्राप्तिके लिए वर्षोंके प्रयत्नकी आवश्यकता है। इस प्रकार नैराश्यमें आशाका जन्म हुआ और नवीन युगका अनेक रूपोंमें उदय होने लगा। धार्मिक जागृति, राष्ट्रीय भावोंका उदय और समाज सुधारके लिए आन्दोलन, इन सबका एक साथ आरम्भ हो गया।

महर्षि दयानन्दने आर्य-जातिको अपने विस्तृत वैभवकी याद दिलाकर उन्नति पथपर आरूढ़ होनेका उपदेश किया, महादेवगोविन्द रानाडेने सामाजिक कुरीतियोंके निवारणके लिए आन्दोलन शुरू किया, और बाबू हरिश्चन्द्रजीने देशभक्तिपूर्ण काव्य द्वारा देश दुर्दशाकी ओर देशवासियोंका ध्यान आकर्षित किया। इस व्यापक जागृतिके समय प्रत्येक प्रान्तमें एक नवीन भाषा-शैलीका उदय होने लगा। बंगला, मराठी, गुजराती सब भाषाएँ परिमार्जित और सुसंस्कृत होने लगीं और हिन्दीने भी नवयुगमें पदार्पण किया। स्वामी दयानन्दने हिन्दीमें वैदिकधर्मका प्रचार किया और इसीमें अपने सम्पूर्ण सद्ग्रन्थोंकी रचना की। उन्होंने ही सर्वप्रथम हिन्दीको सार्वदेशिक भाषा बननेके योग्य बतलाया। आर्यसमाजके प्रचारके साथ-साथ हिन्दीका स्वत: ही प्रचार होने लगा। अपनी पुरातन सभ्यताके अभिमानी हिन्दू हिन्दीका अधिकाधिक व्यवहार करने लगे और सुन्दर तथा

संस्कृत हिन्दी गद्य-पद्य शैलीका विकास होने लगा। बाबू हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र आदिके प्रयत्नसे हिन्दी उन्नत होने लगी और हिन्दू जनता अपनी एक भाषाके विकासकी आवश्यकता अनुभव करने लगी।

आरम्भ

ऐसी परिस्थितिमें बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंहने १६ जुलाई सन् १८९३ को हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरोंके प्रचारके लिए एक सभा स्थापित की। उस समय शायद ये सज्जन अनुमान भी नहीं कर सके होंगे कि वे एक महान् यशोपयोगी कार्यका आरम्भ कर रहे हैं। प्रत्येक नगरमें इस प्रकारकी अनेकों सभाएँ जन्म लेती हैं और विलीन हो जाती हैं। परन्तु यह सौभाग्यकी बात है कि जिन तीन सज्जनोंने इस पौधेको लगाया था, उसे आज वे महान् वृक्षके रूपमें देख रहे हैं। यों तो इस सभाको उन्नत और उपयोगी बनानेमें अनेक विद्वानों और धनवानोंने सहयोग दिया है, परन्तु इसके वास्तविक जन्मदाता पोषक और रक्षक हैं बाबू श्यामसुन्दरदासजी। हिन्दी भाषाकी आपने इतनी सेवा की है कि आपको वर्तमान हिन्दीका एक निर्माता कहना अत्युक्ति नहीं है। हिन्दीकी उन्नति और हिन्दीका गौरव ही आपके जीवनका ध्येय है। कई वर्ष तक आप कालीचरण हाई स्कूलके हेडमास्टर रहे, अब आप हिन्दू-विश्वविद्यालयमें हिन्दी-विभागके प्रधानाध्यापक हैं। पिछले कुछ वर्षोंसे आपका शरीर भी अनेक रोगोंके कारण खोखला हो गया है, परन्तु फिर भी आप हिन्दीकी कोई-न-कोई सेवा करते ही रहते हैं। यों तो आपने अनेक सुन्दर ग्रन्थोंका सम्पादन और रचना की है, परन्तु सबसे अधिक उल्लेखनीय है आपका हिन्दी 'शब्दसागर'का सम्पादन। यदि किसी स्वतन्त्र देशका विद्वान् अपनी मातृभाषाका मस्तक इतना ऊँचा करता, तो सरकार उसका अपूर्व आदर करती, परन्तु गोरी सरकारने राय साहबकी पदवी ही आपकी सेवाके लिए काफ़ी समझी। वास्तवमें हिन्दी भाषा-भाषी जगत् बाबू साहबका बड़ा ऋणी है। पंडित रामनारायण मिश्र पहिले सब डिप्टी इन्सपेक्टर थे और इस समय आप सेन्ट्रल हिन्दू स्कूलके हेडमास्टर हैं। काशी नागरी-प्रचारिणी-सभाके जन्म दिनसे अब तक आप इस सभाकी निरन्तर सेवा करते रहे हैं। सभाकी मनोरंजन पुस्तकमालामें आपने भी एक पुष्प पिरोया है, जिसका नाम है महादेव गोविन्द रानाडे। आप बड़ी सुन्दर और सरल हिन्दी लिखते हैं।

प्रचार

जिस समय काशी नागरी-प्रचारिणी-सभाका जन्म हुआ, उससे ८ वर्ष पूर्व बाबू हरिश्चन्द्रका और १० वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्दका देहान्त हो चुका था। हिन्दी भाषाके लिए लोगोंमें प्रेम उमड़ता जाता था और बद्रीनारायण चौधरी, विनायकराव, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, लाला सीताराम, नाथूरामशङ्कर शर्मा, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, और महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि विद्वान अपनी सुन्दर रचनाओंसे भाषा-भाण्डारको भर रहे थे, परन्तु सरकारी स्कूलमें आठवीं क्लाससे ऊपर हिन्दीका कोई स्थान नहीं था, और कचहरियोंमें तो इसको कोई पूछता तक नहीं था। स्थापनाके दो वर्ष पश्चात् ही सभाने आन्दोलन करना आरम्भ किया कि सरकारी अदालतोंमें नागरी अक्षरोंका भी व्यवहार होना चाहिए। इसके पक्षमें लोकमत उत्पन्न किया गया और जब संयुक्त प्रान्तके तत्कालीन लेफ्टीनेन्ट श्री पी० मेक्डोनल काशीमें दौरा करने आये, तो उनको जो अभिनन्दन पत्र दिया गया, उसमें उल्लेख किया गया कि सरकारी अदालतों और दफ्तरोंमें केवल फारसी-लिपिका प्रयोग होता है, जिससे जनताको बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। इसके पश्चात् श्रीमान् पंडित मदनमोहन मालवीयजीने यह आन्दोलन अपने हाथमें लिया और अंगरेजीमें एक छोटीसी पुस्तक प्रचारार्थ लिखी, जिसमें स्कूलों तथा अदालतोंमें हिन्दी अक्षरोंके प्रयोगकी आवश्यकता बतलाई। नागरी-प्रचारिणी-सभाने कई डेपूटेशन संयुक्तप्रान्तके नगरोंमें भेजे, जिन्होंने लोकमत जाग्रत किया

तथा लोगोंको नागरी-अक्षरोंके व्यवहारकी आवश्यकता अनुभव कराई। २ मार्च सन् १८९८ को अयोध्याके महाराजा सर प्रतापनारायण सिंह बहादुरकी अध्यक्षतामें एक डेपुटेशन इसी सम्बन्धमें संयुक्तप्रान्तके गवर्नरसे मिला। इस आन्दोलनके फलस्वरूप सन १९००की २१ अप्रेलको गवर्नमेन्टने घोषित कर दिया कि (१) अर्ज़ियाँ नागरी या फारसी-लिपिमें लिखी जा सकती हैं। (२) समन, घोषणाएँ आदि फारसी और हिन्दी दोनों अक्षरोंमें लिखे हुए हों। (३) और ऐसे किसी व्यक्तिको दफ्तरोंमें नियुक्त न किया जाय, जो हिन्दी और फारसी दोनों लिपियोंको भलाभांति नहीं पढ़ सकता हो।*

* इसी अवसरपर श्री बद्रीनारायण चौधरीने एक कविता लिखी थी, जिसके कुछ अंश हम यहां उद्धृत करते हैं।

लह्यो देशभाषा अधिकार सबै निजदेशन।
राजकाज आलय विद्यालय बीच ततच्छन॥
पैहत विरचि नाम उर्दूको 'हिन्दुस्तानी'।
अरबी वरनहुँ लिखित सकै नहिं बुध पहिचानी॥
× × × ×
भारत सिंहासन स्वामिनि जो रही सदाकी।
जगमें अबलौं लहि न सक्यो कोऊ छवि जाकी॥
जासु बरनमाला गुनखानि सकल जग जानत।
बिन गुन गाहक सुलभ निरादर मन अनुमानत॥
राजसभासों अलग कई सौ बरस बितावत।
दीन प्रवीन कुटीन बीच सोभा सरसावत॥

पण्डित प्रतापनारायण मिश्रकी "हिन्दीकी हिमायत" शीर्षक कविता भी उद्धरणीय है।

चहहु जो सांचो निज कल्यान।
तो सब मिलि भारत सन्तान॥
जपो निरन्तर एक जबान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥
तबहि सुधरि हैं जन्म निदान।
तबहि भलो करि हैं भगवान॥
जब रहिहै निसि दिन यह ध्यान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥

इसी समय 'अवध-पंच' में 'उर्दूकी अपील' नामसे एक कविता छपी थी, जिसका उत्तर श्री बालमुकुन्द गुप्तने 'भारतमित्र' में छपवाया था। ये दोनों कवितायें पढ़ने योग्य हैं। देखिये 'कविता-कौमुदी', दूसरा भाग, पृष्ठ २७४-२७६।

प्रधानतः सभाके ही प्रयत्नोंसे इस समय हिन्दी स्कूलोंमें ही नहीं, किन्तु कालेजोंकी उच्चतम कक्षाओंमें भी पढ़ाई जाने लगी है। पंजाबमें इसके प्रचारका श्रेय आर्यसमाजको है और संयुक्तप्रान्तमें काशी नागरी-प्रचारिणी-सभाको। इस समय काशी, प्रयाग, पटना, कलकत्ता और नागपुरके विश्व-विद्यालयोंमें हिन्दी एम० ए० तक पढ़ाई जाती है। काशी विश्वविद्यालयमें तो हिन्दी-साहित्यमें "डाक्टर" तक की उपाधि दी जाती है। हिन्दीको उच्च कक्षाओं तक पहुँचानेमें बाबू श्यामसुन्दर दासका प्रधान हाथ है। इस समय हिन्दी सार्वदेशिक भाषा मानी जा चुकी है, और सुदूर दक्षिणमें भी इसका काफ़ी प्रचार हो चुका है। कांग्रेस-मंचसे महात्मा-गांधी हिन्दी ही बोलते हैं। यह सब प्रचार काशी नागरी-प्रचारिणीके ही प्रयत्नका फल नहीं है, परन्तु यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि सभाका प्रयत्न भी इसमें सहायक हुआ है।

ग्रन्थोंकी खोज

यदि सभा हिन्दीके प्राचीन ग्रन्थोंकी खोज और [illegible] न करता, तो अनेक सुन्दर ग्रन्थ लुप्त हो जाते। [illegible] सभाने खोजका कार्य आरम्भ किया, तो प्रान्तिक सरकार [illegible] ४००) वार्षिक सहायता देती थी; परन्तु अब इस [illegible] लिए २०००) मिलते हैं। सभाके अन्वेषक गांवोंका [illegible] करते हैं और ग्रन्थोंका पता लगाते हैं। जहां स्वयं [illegible] जाने पाते, वहांके किसी स्थानीय व्यक्तिसे पत्र-व्यवहार [illegible] ग्रन्थोंका पता लगाते हैं। इस विभागके प्रथम [illegible] अध्यक्ष बाबू श्यामसुन्दर दास थे, जिन्होंने सन् १९०० [illegible] १९०६ तक बड़ी रुचि और लगनके साथ कार्य किया। [illegible] पश्चात् पंडित श्यामबिहारी मिश्र एम० ए० ने बारह वर्ष [illegible] इस विभागको चलाया। इसके पश्चात् उनके सुयोग्य [illegible] भाई पंडित शुकदेवबिहारी मिश्रने एक वर्ष तक कार्य [illegible] इस समय इस विभागके अध्यक्ष हैं रायबहादुर बाबू हीरा[illegible]जी बी० ए०। इस विभागने सैकड़ों हिन्दी-ग्रन्थोंका [illegible] लगाया है, परन्तु सभा जितना कार्य करना चाहती है,
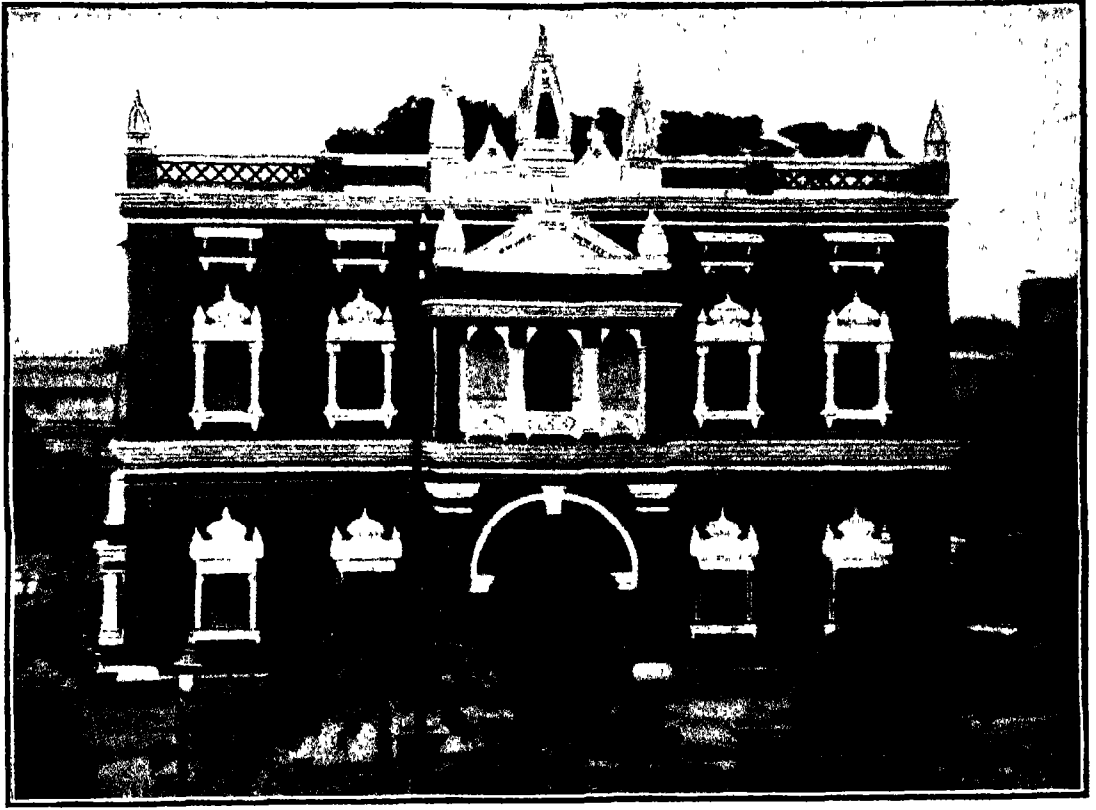
नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी

अर्थाभावके कारण उतना नहीं हो रहा है। पुस्तकोंकी खोजके सम्बन्धमें सन् १६१७ से १६१६ तककी त्रैवार्षिक रिपोर्ट तथा सन् १६२० से १६२२ तककी रिपोर्ट सभाने प्रकाशित भी कर दी है। इन रिपोर्टोंमें दिये हुए विवरणसे पता चलता है कि हिन्दीमें कितने सुन्दर ग्रन्थ अभी अप्रकाशित पड़े हैं। पिछले एक वर्षके अन्दर ही इस विभागने ३८६ ग्रन्थोंका पता लगाया था।

पुराने ग्रन्थोंका प्रकाशन

सभाने कितने ही पुराने ग्रन्थोंका प्रकाशन किया है। इनमें अधिकांश ग्रन्थोंका सम्पादन रायसाहब बाबू श्यामसुन्दरदासजीने ही किया है। काव्य, इतिहास, भक्ति आदि विषयोंके लगभग ४० ग्रन्थोंका प्रकाशन अब तक हो चुका है। उनमें विशेष उल्लेखनीय ग्रन्थ ये हैं—

इतिहास — पृथ्वीराज रासो—चन्द बरदाई
हम्मीरहठ—चन्द्रशेखर
वीरसिंहदेव-चरित—केशवदास
जंगनामा—श्रीधर

काव्य— भूषण-ग्रन्थावली
तुलसीदासके सब ग्रन्थ
रानी केतकीकी कहानी
इन्द्रावती—नूर मुहम्मद
अखरावट—जायसी, इन्हीं कविके अन्य ग्रन्थ
खुशरूकी हिन्दी कविता

भक्ति— भक्तनामावली—ध्रुवदास
दीनदयालगिरिके ग्रन्थ

प्रकाशन-विभागको समय-समयपर संयुक्तप्रान्तकी सरकारने

सहायता भी दी है, और तुलसी-जयन्तीके समय तुलसी-ग्रन्थावलीके प्रकाशनार्थ अलवर नरेशने सभाको पाँच हज़ारका दान दिया था।

हिन्दी-शब्द सागर

सन् १८६८ में सभाने एक 'हिन्दी विज्ञान-कोश' तैयार करनेका निश्चय किया, और इस कार्यकी पूर्तिके लिए एक समिति भी नियत की गई। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू भगवानदीन, श्री माधवराव सप्रे और बाबू ठाकुरप्रसाद इस समितिके मेम्बर और बाबू श्यामसुन्दरदास प्रधान-सम्पादक बनाये गये। आठ वर्षके निरन्तर परिश्रमके फलस्वरूप यह अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ तैयार हुआ था, जिसमें १०३३० अंग्रेज़ी और १६२६६ हिन्दी पारिभाषिक शब्द हैं। सभा इस कोशका दूसरा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित करनेका आयोजन कर रही है।

सन् १६०८ में जब उपर्युक्त कोश तैयार हो चुका, तो सभाने हिन्दी-भाषाका एक वृहत तथा विस्तृत कोष तैयार करनेका आयोजन किया। इसका कार्य भी बाबू श्यामसुन्दर दासके सम्पादकत्वमें ही आरम्भ हुआ, और पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, बाबू रामचन्द्र वर्मा, बाबू अमीरसिंह और बाबू जगन्मोहन वर्मा इस समितिके सभासद बनाये गये। इनके अतिरिक्त कितने ही अन्य विद्वानोंके सहयोगसे यह कार्य सन् १६२६ में समाप्त हुआ। यह 'शब्दसागर' ४० जिल्दोंमें समाप्त हुआ है। वास्तवमें नागरी-प्रचारिणी-सभा और बाबू श्यामसुन्दरदासका यह अमर कार्य प्रशंसनीय है। इस ग्रन्थको संक्षिप्त रूपमें प्रकाशित करनेका भी सभाने निश्चय कर लिया है और आशा है कि दो-तीन वर्षमें यह कार्य भी समाप्त हो जायगा। अभी हालमें सभाने 'मराठी ज्ञानकोश का हिन्दीमें अनुवाद प्रकाशित करनेका भी आयोजन किया है।

पुस्तकमालाएँ

यह सभा इस समय छै पुस्तकमालाएँ प्रकाशित कर रही है—नागरी-प्रचारिणी-ग्रन्थमाला, मनोरंजन-पुस्तकमाला, देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला, सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला। इनमें सबसे अधिक ग्रन्थ मनोरंजन-पुस्तकमालामें प्रकाशित हुए हैं। अब तक इस मालामें लगभग ५० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें उल्लेखनीय ये हैं :—

(१) आदर्श जीवन—पंडित रामचन्द्र शुक्ल। यह ग्रन्थ 'Plain Living and High Thinkig' का भावानुवाद है।

(२) गुरुगोविन्दसिंह—बाबू बेणीप्रसाद।

(३) जीवनके आनन्द—गणपत जानकीराम दुबे। यह 'Pleasures of Life' का भावानुवाद है।

(४) भौतिक विज्ञान—सम्पूर्णानन्द, बी०एस-सी०

(५) बुद्धदेव—जगन्मोहन वर्मा। हिन्दी-भाषामें बुद्धकी सर्वोत्तम जीवनी यही है।

(६) शासन-पद्धति—डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार। इसमें भिन्न-भिन्न देशोंकी शासन-प्रणालियोंका तुलनात्मक वर्णन है।

(७) कृषिकौमुदी—बाबू दुर्गाप्रसाद। इसके लेखकको कृषिका व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान है, अत: पुस्तक उपयोगी है।

(८) शिशुपालन—डाक्टर मुकुन्दस्वरूप वर्मा, एम० बी०, बी०एस।

(६) विश्वप्रपंच—रामचन्द्र शुक्ल। यह 'Riddle of the universe' के आधारपर लिखा गया है।

सूर्यकुमारी-पुस्तकमालाका प्रकाशन शाहपुरा महाराज-कुमारके दानसे उनकी स्वर्गीया धर्मपत्नी श्रीमती सूर्यकुमारीकी स्मृतिको चिरस्थायी रखनेके निमित्त होता है। इस मालाके सब ग्रन्थ उच्च कोटिके हैं। अब तक इस मालामें दस ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है, जो सब उल्लेखयोग्य हैं—

(१) ज्ञानयोग—प्रथम और द्वितीय भाग—जगन्मोहन वर्मा। इसमें स्वामी विवेकानन्दके ज्ञानयोगका वर्णन है।

(२) करुणा—बाबू राखालदास बनर्जी। यह काशी विश्वविद्यालयके स्वर्गीय प्रोफेसर राखालदासकी बंगला पुस्तकका अनुवाद है। इसमें गुप्त-साम्राज्यके अध:पतनके समयकी दशाका अतीव मनोरंजन वर्णन है। अनुवाद बाबू रामचन्द्र वर्माने किया है।

(३) शशांक—इसमें भी उपर्युक्त विषयका वर्णन है, और अनुवाद पंडित रामचन्द्र शुक्लने किया है।

(४) बुद्धचरित Arnold कृत 'Light of Asia' का पद्यात्मक अनुवाद है। अनुवाद पंडित रामचन्द्र शुक्लने किया है।

(५) मुद्राशास्त्र—डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार।

(६) अकबरी दरबार—दूसरा भाग। यह दरबारे अकबरीका हिन्दी अनुवाद बाबू रामचन्द्र वर्माने किया है।

(७) पाश्चात्य दर्शन—गुलाबराय एम० ए०। इसमें यूरोपके सम्पूर्ण दर्शन-सिद्धान्तोंका इतिहास तथा विवेचन है।

(८) कर्मवाद और जन्मान्तर—अनुवादक, पंडित लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय। यह श्री हीरेन्द्रनाथ दत्त एम० ए०, बी० एल०,के बंगला ग्रन्थका अनुवाद है, जिसमें प्राच्य और पाश्चात्य देशोंके प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारपर इस विषयका प्रतिपादन किया गया है।

(९) हिन्दी रसगंगाधर—अनुवादक, पं० पुरुषोत्तम शर्मा।

(१०) हिन्दी-साहित्यका विकास—लेखक, पंडित रामचन्द्र शुक्ल।

'मुन्शी देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' जोधपुरके मुन्शी देवीप्रसादजीके दानसे प्रकाशित होती है। इस मालामें भी आठ सुन्दर ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें छे अनुवाद हैं और दो प्राचीन ख्यातें (इतिहास) हैं। फाहियान, सुंगयुन और सुलेमान सौदागरकी भारत-यात्राओंके अनुवाद बड़े अच्छे किये गये हैं। शेष तीन मालाओंमें

बाबू श्यामसुन्दरदास

अच्छे-अच्छे ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है, जिनकी सूची इस संक्षिप्त लेखमें विस्तार-भयसे नहीं दी जा सकती।

उपर्युक्त पुस्तकमालाओंके अतिरिक्त यह सभा सन् १८९६ से एक पत्रिका भी प्रकाशित करती है। आरम्भमें यह पत्रिका त्रैमासिक थी और फिर मासिक कर दी गई थी; परन्तु जब देखा गया कि हिन्दीमें अनेक मासिक पत्र प्रकाशित होने लग गये हैं, तो यह पत्रिका पुनः त्रैमासिक कर दी गई। इस पत्रिकाका सम्पादन प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाके योग्य हाथोंसे होता है। यह एक उच्च कोटिकी पत्रिका है, और प्राचीन शोध-सम्बन्धी गवेषणापूर्ण मौलिक लेख ही इसमें स्थान पा सकते हैं। पुरातत्व-सम्बन्धी कई लेख प्रथम बार इसी पत्रिकामें प्रकाशित हुए थे, जिसके कारण

यूरोपकी विद्वत्मण्डलीको आश्चर्य हुआ था। इस पत्रिकाका नाम 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' है।

हिन्दीका प्रचार करनेके लिए और लेखकोंका उत्साह बढ़ानेके लिए नागरी-प्रचारिणी-सभाकी ओरसे कई पदक और पारितोषिक प्रतिवर्ष दिये जाते हैं, जिनमें चार उल्लेखनीय हैं—

(१) जोधसिंह-पारितोषिक—यह उदयपुर निवासी कुँवर जोधसिंह मेहताने स्थापित किया था, और हिन्दीमें सर्वोत्तम इतिहास-ग्रन्थके लेखकको दिया जाता है। अभी तक यह पारितोषिक महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाको 'प्राचीन लिपिमाला' के लिए और पं० विश्वेश्वर-नाथ रेऊको 'भारतवर्षके प्राचीन राजवंश' के लिए मिला है।

(२) डा० छन्नूलाल पारितोषिक—यह पं० राम-नारायण मिश्रके दानसे स्थापित किया गया है, और हिन्दीमें सर्वोत्तम वैज्ञानिक ग्रन्थकर्ताको दिया जाता है। अभी तक यह पारितोषिक डा० त्रिलोकीनाथको 'हमारे शरीरकी रचना' के लिए दिया गया है।

(३) रत्नाकर-पारितोषिक—यह बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०के दानसे दिया जाता है, और ब्रजभाषाके मौलिक सर्वोत्तम काव्यके लिए है। यह पारितोषिक अब तक पं० रामचन्द्र शुक्लको अपने 'बुद्धचरित' के लिए मिला है।

(४) बटुकप्रसाद-पारितोषिक—यह रायबहादुर बटुकप्रसाद खत्रीने स्थापित किया है, और हिन्दीमें सर्वोत्तम उपन्यास या नाटकके लिए है। यह पारितोषिक अभी तक केवल बाबू जयशंकर 'प्रसाद' को अपने 'अजातशत्रु' नामक नाटकके लिए मिला है।

पुस्तकालय

काशी नागरी-प्रचारिणी-सभाका पुस्तकालय हिन्दीकी मुद्रित पुस्तकोंका सबसे बड़ा पुस्तकालय है। इसमें लगभग दस हज़ार छपी हुई हिन्दीकी पुस्तकें हैं और लगभग दो सौ हस्त-लिखित। इनके अतिरिक्त सोलह सौ से ऊपर अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाकी पुस्तकें हैं। इस पुस्तकालयका आरम्भ दो हज़ार पुस्तकोंसे हुआ था, जो बाबू गदाधर सिंहने सभाको दान की थीं। यह उनका निजका संग्रह था। इस समय प्रान्तीय सरकार भी इस पुस्तकालयको वार्षिक सहायता देती है।

संग्रहालय

सभाके पास पहलेसे ही एक साधारण कला-भवन था, परन्तु राय कृष्णदासने अपनी कला-परिषद्‌को इसमें सम्मिलित करके इसकी सर्वप्रियता और उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया है। राय कृष्णदासकी दी हुई सामग्री इतनी अधिक थी कि सभाको एक बड़ा हाल और बनाना पड़ा। इस समय कला-भवनमें लगभग एक हज़ार चित्र राजपूत, मुग़ल तथा कांगड़ा-शैलीके हैं। कलाके ये सब चित्र बड़े महत्त्वके हैं। कितने ही चित्रोंपर चित्रकारोंके हस्ताक्षर भी हैं। कुछ चित्र शाही चित्रकार विशनदासके भी हैं, जिनका जहाँगीर-नामेमें उल्लेख आता है। विशनदासके समकालीन मनोहरके भी कई चित्र हैं। शाहजहाँके समयके चित्रकार दानदार और राव चतुरमणि तथा औरंगज़ेबके समयके प्रसिद्ध चित्रकार मीर मुहम्मदकी कलाके भी कई सुन्दर नमूने कला-भवनमें हैं। इन सब चित्रोंपर चित्रकारोंके हस्ताक्षर हैं। कांगड़ा शैलीके प्रसिद्ध चित्रकार मोलारामका बनाया हुआ एक चित्र भी उनके हस्ताक्षर-सहित है। सब चित्रोंमें रस और भावोंकी बड़ी सुन्दर भावाभिव्यक्ति है। कांगड़ा-शैलीके अधिकांश चित्र उन्नीसवीं शताब्दीके हैं और प्रायः सबका विषय नायिका भेद है। इनमें अभिसारका एक चित्र कलाकी पराकाष्ठापर पहुँचा हुआ है। राजपूत-शैलीके चित्रोंमें अधिकांश रामायणके दृश्य हैं। कांगड़ा-शैलीमें भी दुर्गापाठके चित्र अतीव सुन्दर हैं। तीन-चार चित्रोंमें दूरी-निदर्शन (Perspective) अद्भुत है। राजपूत-शैलीके सर्वोत्तम चित्र तो इस संग्रहालयमें नहीं हैं, परन्तु गढ़वाल-शैलीके अनेक सुन्दर और उत्तम चित्र वर्तमान हैं। आधुनिक शैलीके 'मेघदूत' सम्बन्धी चित्रोंकी भावाभिव्यक्ति भी प्रशंसनीय है। इस

कला-भवनमें प्राचीन मूर्तियोंकी संख्या लगभग एक सौके ऊपर है, जिनमें कुछ तो बहुत ही उत्कृष्ट हैं। एक मूर्तिमें यशोदा दधि-मन्थन करती हुई दिखाई गई हैं और कृष्ण दधि चुरानेका प्रयत्न कर रहे हैं। यह मूर्ति कुशनकालकी बतलाई जाती है। स्वामिकार्तिक और भानमतीकी प्रतिमाएँ भी दर्शनीय हैं। चित्र और मूर्तियोंके अतिरिक्त इस संग्रहालयमें तीन सौके लगभग सिक्के, कई फ़ारसीकी पुस्तकें, नासिख आदि कवियोंके हाथकी लिपियाँ तथा सोने-चाँदीकी बनी हुई मीनेकी वस्तुएँ हैं। इनमें अधिकांश वस्तुएँ काशीके रईस राय कृष्णदासकी दान की हुई हैं, और जो वस्तुएँ अन्य सज्जनोंकी दी हुई हैं, वे भी उक्त रायसाहबके ही उद्योगसे प्राप्त हुई हैं।

काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा शुद्ध और परिमार्जित भाषाका प्रचार करना चाहती है और संकर या खिचड़ी भाषाको हेय समझती है। बाबू श्यामसुन्दरदासकी भाषा प्रायः संस्कृतमय होती है। आप समासबद्ध लम्बे शब्दोंका उपयोग तो नहीं करते, परन्तु यथासम्भव फ़ारसी शब्दोंको भी स्थान नहीं देते। काशी नागरी-प्रचारिणी-सभाकी प्रत्येक वार्षिक रिपोर्टमें इस बातकी शिकायत रहती है कि हिन्दीके लेखक भाषा-शैलीको गिराते जाते हैं और परिमार्जनका ध्यान नहीं रखते।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी नामक संस्था—जो प्रान्तीय सरकारने अभी दो वर्षसे प्रयागमें हिन्दी और उर्दूकी उन्नतिके लिए खोली है—की वार्षिक बैठकमें अभी भाषा-शैलीपर बड़ा वाद-विवाद छिड़ा था। सर सुलेमान और प्रयाग-विश्वविद्यालयके कई इतिहास-अध्यापकोंका कहना था कि हिन्दी-भाषाको यथासम्भव उर्दूके निकट लाया जाय और संस्कृत शब्दोंका व्यवहार कम किया जाय। शायद इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए इस संस्थाने अपनी पत्रिकाका नाम भी 'तिमाही पत्रिका' रखा है। यही पत्रिका उर्दूमें भी निकलती है, पर उर्दू अंकका नाम है 'तिमाही रिसाला'। इस अधिवेशनमें बाबू श्यामसुन्दरदासने संकर-शैलीका बड़ा विरोध किया। आपका कहना था कि हिन्दी संयुक्तप्रान्तकी ही नहीं, बल्कि सारे देशकी भाषा है और अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें संस्कृत भाषाके शब्दोंकी प्रचुरता है, अतः हिन्दीको फारसीका चोला पहनाना अन्य प्रान्तोंके साथ अन्याय होगा, पर प्रयागके प्रोफेसरगण संकरतापर तुले हुए जान पड़ते हैं।

नागरी-प्रचारिणी-सभाने देशकी बड़ी सेवा की है और कर रही है। आधुनिक साहित्यिक जाग्रतिमें इस सभाका बड़ा हाथ है। जब तक भारत-भूमिमें हिन्दी-भाषा बोली जायगी, तब तक इस सभाका नाम अमर रहेगा।
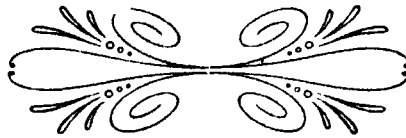
कविवर अख़्गर

श्री ज्वालादत्त शर्मा

अंगरेज़ीके किसी कविने लिखा है कि संसार-रूपी बाग़में अनेकों फूल ऐसे बीहड़ और दुर्गम स्थानोंपर खिलते हैं कि हवा उनकी खुशबूको हम तक नहीं ला सकती, मनुष्य न उनकी शोभा देख सकता है और न सुगन्ध ही सूँघ सकता है। कविवर अख़्गर भी ऐसी ही प्रकृतिके पुरुष हैं। कामसे छूटे और जंगलमें पहुँच गये ; वहाँपर या तो कोई पुस्तक पढ़नेमें लीन हो गये या चुपचाप बैठकर प्रकृतिके एकान्त और शान्त-रूपका रस लेने लगे। यह उनका नित्यका अभ्यास है। आपके बाल्यकालमें कुछ पारिवारिक आपदाओंके कारण शिक्षाका क्रम सुचारु रूपसे न चल सका ; किन्तु आगे चलकर आपने स्वयं इस कमीको पूरा कर लिया। अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन करके उर्दू, फ़ारसी और अंगरेज़ीकी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। उर्दूमें कविता करनेका और कवि-समाजोंमें सम्मिलित होनेका आपको बचपनसे ही शौक़ था। शिमलेमें जब आप अध्यापन-वृत्तिके लिए गये और अंगरेज़ोंके समाजमें अधिकतर आपका आना-जाना होने लगा, तब आप अंगरेज़ीमें भी कविता करने लगे। आपकी कई कविताओंका वहाँके समाजमें बहुत आदर हुआ। 'ताज' और 'बादलों' पर आपकी कविताएँ पसन्द की गईं।

'अख़्गर' साहबने उस समयके प्रधान उर्दू कवि 'तनहा' महोदयसे काव्यकी दीक्षा ली, और आरम्भमें उन्हींके रंगपर लिखते रहे। बादमें आपने सोचा कि उर्दू-काव्यका प्रवाह जिस दिशाको जा रहा है, उससे देश और जातिका कल्याण न होकर अहित हो रहा है। नवयुवकोंमें वह कविता जो प्रेम—वह भी साधारणतया निकृष्ट प्रेम, जिसका सम्बन्ध इन्द्रियोंके साथ ही होता है—का भाव उत्पन्न करती है, उससे वे प्रायः आवारा और अकर्मण्य बन जाते हैं और दीन-दुनिया कहींके नहीं रहते। शेर पढ़ें और हाय-हाय करें, आलस्यमें पड़े रहें और खयाली पुलाव पकाते रहें, पर्देमें किसीको देख लें और उसपर फ़िदा हो जायँ! बस, यही उन्हें उर्दूके उस काव्यसे प्रसाद मिलता था। यह सोचकर आपने इश्क़िया ग़ज़लें लिखना छोड़ दीं और अपनी विचार-धाराको नीति और अध्यात्मवादकी ओर मोड़ दिया। उस दिनसे आपने एक शेर भी वैसा नहीं कहा। जहाँ कहीं भी आपको कोई उर्दूका नवयुवक कवि मिलता है, उसे बड़े आदर, संयम और सभ्यतासे—जिसकी आप मानो मूर्ति हैं—इश्क़िया कविताके ज़हरीले असरके दोष बताकर उससे विमुख करनेका प्रयत्न करते हैं।

'अख़्गर' साहबका हृदय बड़ा कोमल है, पशु-हिंसासे आपको बड़ी व्यथा पहुँचती है। नशीली चीज़ोंमें आप तम्बाकू तक नहीं पीते, जो मुसलमानोंमें जातीयताका रूप हो गया है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे आपका सम्बन्ध सूफ़ी सम्प्रदायसे है, जो अद्वैतवादका ही दूसरा रूप है। उसके बड़े-बड़े आचार्योंसे आपका परिचय है और आपका जीवन एक सच्चे सूफ़ीका जीवन है। आपकी कवितामें भी उसकी पूरी छाप है। कवियोंका कोई 'ज़ू' बनाया जाय, तो शरीरकी दृष्टिसे आप उसकी बुलबुल होंगे। बहुत छोटा क़द और दुबला शरीर, चेहरा उज्ज्वल और बोली मीठी। आपसे मिलकर विलक्षण आनन्द मिलता है ; जितनी बार मिलो, कभी उसमें कमी नहीं आती। शिष्टाचार तो आपमें कूट-कूटकर भरा है। शायद स्वप्नमें भी आपसे उसका कोई नियम भंग न होता होगा। कोई चालीस वर्ष शिमलेमें रहकर अब आप अपने मकानपर आ गये हैं। पारिवारिक स्थितिसे विवश होकर अब तक मिशनरियोंके एक स्कूलमें दो तीन घंटे पढ़ाकर बाक़ी समय ग्रन्थावलोकन और प्रकृति-पर्यालोचनमें बिताते हैं। यद्यपि आपकी आयु सत्तर वर्षके लगभग है और शरीर भी

बहुत कमज़ोर है, तथापि मनमें अभी वही तेज़ी है, जो जवानीमें थी। मीलों टहलना, घंटों चुपचाप जंगलमें बैठे रहना, पहरों गम्भीर विषयोंकी पुस्तकोंसे जूझना !

अब आपकी कविताका कुछ आनन्द लीजिए। पहले आपकी कुछ रुबाइयाँ सुनिए। सिद्धहस्त कवि ही रूबाई लिख सकते हैं। तीन पदोंमें कुछ कहकर चौथे पदमें उसमें जान डाली जाती है। कच्चे हाथवाले यह काम नहीं कर सकते। खय्याम इस रीतिका सुप्रसिद्ध आचार्य हुआ है आप कहते हैं—

"जब सामने तेरे कोई बदख़ू आये,
तुझमें न ज़रा फ़र्क सरेमू आये।
'अखगर'से नहीं ऊदसे खुशखल्की सीख,
जो तुझको जलाये उसे खुशबू आये !"

इसमें आपका उपनाम 'अखगर' बड़े अच्छे ढंगसे आया है। 'आमके आम और गुठलियोंके दाम' वाली बात चरितार्थ हो रही है। फिर कहते हैं—

"खुश हूँ कि मुसीबत हूँ मैं भरनेके लिए,
हर चीज़ बिगड़ती है सँवरनेके लिए।
ज़ेवरसे यह सीखा है सबक़ 'अखगर' ने,
पड़ता है खटाईमें निखरनेके लिए।"

'खटाईमें पड़ना' मुहावरेसे अच्छा लाभ उठाया है। अपना ही सब रूप है—

"हस्ती तेरी हर रूपमें हर रंगमें है,
शीशेमें झलक है तेरी तू संगमें है।
'अखगर' किसे अच्छा कहे और किसको बुरा,
इक शान तेरी सुलहमें इक जंगमें है।"

उपदेश—

"मौक़ा है यह कुछ नेक कमाई कर ले,
अच्छा है बुरोंसे भी भलाई कर ले।

सरेमू=बाल बराबर। अखगर=चिनगारी। ऊद=अगरकी बत्ती। संग=पत्थर।

कविवर अखगर

'अखगर' करमे-आम खुदाकी है सिफ़त,
इस बन्दगीमें कुछ तो भलाई कर ले।

ज़हमतमें हैं जो तू उन्हें रहमत बन जा,
दुख-दर्दके मारोंकी मसर्रत बन जा,
अय 'अखगरे' जाँ सोज़ मेरी बातको मान,
हर दोज़खीके वास्ते जन्नत बन जा।"

कितने अच्छे ढंगसे कितनी अच्छी बात कहते हैं—

"'अखगर'का हरइक फ़ेल मरीज़ाना है,
अल्लाहका हर काम हकीमाना है।
ज़हमतमें छिपी रहती है रहमत उसकी,
दोज़ख जिसे कहते हैं शफ़ाखाना है।"

अब आपके आध्यात्मिकता-पूर्ण कुछ पद्य सुनिए—

"आबरू रख ली मेरी चश्मे हक़ीक़तबींने,
अब तो मोतीमें भी दरिया नज़र आता है मुझे।

करमे आम=सबपर दया-भाव। सिफ़त=गुण। ज़हमत=कष्ट। रहमत=आराम। मसर्रत=खुशी। दोज़खी=नारकी। जन्नत=स्वर्ग। चश्मे हक़ीक़तबीं=तत्त्व-दृष्टि।

जो है सबका मेरी उस तक हो रसाई क्योंकर,
अभी तक अपना पराया नज़र आता है मुझे।
ज़िन्दगी मौतसे बदतर है मेरी अय 'अख़गर',
इस उजालेमें अंधेरा नज़र आताहै मुझे।"

महाकवि अकबरका एक शेर है—

"ख़ुदाके बाबमें यह ग़ौर क्या है,
ख़ुदा क्या है ? ख़ुदा है, और क्या है !"

कुछ इसी बातको अपने ढंगपर 'अख़गर' महोदय कहते हैं—

"मेरा ख़ुदा है मेरी ख़ुदीके हिजाबमें,
यानी छिपा हुआ है मुसन्निफ़ किताबमें।
किस तरह दिल लगाऊँ जहाने ख़राबमें,
बिस्तर लगाये बैठा हूँ नक़्शे बर आबमें।
बाहर ख़ुदाईके भी तो मौजूद है ख़ुदा,
दरिया समा सका न सिमटकर हुबाबमें।
ख़ुद जलके दी चिराग़ने औरोंको रोशनी,
कारे सवाब कर लिया पड़कर अज़ाबमें
ईसाइयोंको न मज़हबका नाम दो,
काँटोंको क्यों बसाते हो इत्रे गुलाबमें।"

इस अन्तिम शेरके आशयको आजकलके धर्मान्ध लोग समझ सकें, तो मनुष्य-जातिका कितना उपकार हो।

अख़गर महोदयकी अंगरेज़ी कविताके अवतरण न देकर हम मि॰ राबसनकी सम्मतिकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना ही पर्याप्त समझते हैं। उन्होंने अपने 'Foreword' में लिखा है—

"Those who read Pope and Dryden will readiy discover how Mr. Akhgar's taste and style have been formed, and will perhaps be interested to find that a type of poetry long since discarded in England, should spring to life again in the hand of an Eastern Poet."

अर्थात्—"जो लोग पोप और ड्रायडनकी कविताओंको पढ़ते हैं, उन्हें यह बात फ़ौरन ही मालूम पड़ जायगी कि श्रीयुत अख़गरकी रुचि और शैली किस प्रकार निर्मित हुई है। उन्हें यह जानकर दिलचस्पी होगी कि कविताका जो ढंग बहुत दिन पहले इंग्लैगडमें त्याग दिया गया था, वह एक पूर्वीय कविके हाथों पुनर्जीवित हो उठा है।"

'अख़गर' जैसे अध्यात्मभाव-प्रधान कवि देश, जाति और भाषाके लिए गौरवकी चीज़ हैं। उनकी कविता पढ़ने और सुननेवालोंके मनमें सद्भाव उत्पन्न करती है या मैथिली-शरणजीके शब्दोंमें 'भद्रभावोद्भाविनी' है। आप स्वयं जुल्फोंके पेंचताबमें उलझे रहनेवाले कवियोंसे विनीत प्रार्थना करते हैं—

"औबाश जवानोंको बनाना छोड़ो,
शरबतकी एवज़ ज़हर पिलाना छोड़ो।
अय शायरो ! नबियोंके हो तुम तो नायब,
अल्लाहसे बन्दोंको छुड़ाना छोड़ो।"

ऐसे कवि जब तक अपनी मातृ-भाषाका उपकार करते रहें, अच्छा है। यों तो—

'नास्ति तेषां यशः काये जरामरणजं भयम्।'

संस्कृत-प्रचारकी आवश्यकता

पं० काशीनाथ शर्मा, काव्यतीर्थ

भारतमें अंग्रेज़ी साम्राज्यकी प्रतिष्ठासे पहले संस्कृत भाषाका पर्याप्त प्रचार था। बड़े-बड़े नगरोंमें ही नहीं, छोटे-छोटे गाँवोंमें भी संस्कृतके गम्भीर विद्वान् मिल जाते थे। बहुतसे लोग अंग्रेजोंके शासनकी रेल, तार, नहर आदि सुख-साधनकी सामग्रियोंके साथ शिक्षा-विस्तारका भी नाम लेते हैं। अंग्रेज़ोंका तो दावा ही है कि "हमने ही भारत-वासियोंको सुसभ्य और सुशिक्षित बनाया है। अंग्रेज़ी शासनसे पहले भारतमें अविद्याका अन्धकार छाया हुआ था। इतने कालेज और स्कूल यहां कहाँ थे। एक प्रकारसे सारा ही देश अशिक्षित था।" अभी तक इस नितान्त भ्रान्त मतके माननेवाले लोग हमारे समाजमें पाये जाते हैं, जो सुशिक्षित और एजुकेटेडका अर्थ ही अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा समझते हैं। उनके मतमें जो अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा नहीं है, वह "शिक्षित" कहलानेका अधिकारी ही नहीं! इस विपरीत ज्ञानका कुछ ठिकाना है! दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ लार्ड मेकालेने भारतमें अंग्रेज़ी शिक्षाके लिए जो हेतु दिया था, वह वास्तवमें बहुत ही यथार्थ सिद्ध हुआ। भारतमें अंग्रेज़ी-राज्यकी जड़ अभी नहीं जमी थी। जड़ जमानेवाले साधनोंका प्रश्न शासकोंके सामने था। शिक्षाकी भाषाका प्रश्न भी विचाराधीन था। हिन्दुओंकी दृष्टिसे संस्कृतका, और मुसलमानोंकी दृष्टिसे अरबी-फ़ारसीका नाम लिया जा रहा था। इसपर विवाद था कि संस्कृत और फ़ारसीमें शिक्षाकी भाषाके रूपमें किसे स्वीकार किया जाय? मेकाले साहबने इस विवादग्रस्त विषयकी समस्याको बड़ी सुगमतासे सुलझा दिया। उन्होंने कहा कि जब तक इन दोनों ही भाषाओंका शिक्षाके क्षेत्रसे बहिष्कार न किया जायगा, तब तक शासनमें कठिनाइयां बनी ही रहेंगी। किसी विजित जातिको आसानीसे अपने अधीन रखनेका सबसे उत्तम उपाय यही है कि उसकी भाषा उससे छीन ली जाय। यदि भारतको सब प्रकारसे अपने अधीन रखना अभीष्ट है, तो यह काम अंग्रेज़ी भाषाके प्रचार-द्वारा ही सिद्ध हो सकेगा। अंग्रेज़ी भाषाकी शिक्षासे भारतीयोंका कायाकल्प हो जायगा। वह अपने प्राचीन गौरवको भूलकर हर बातमें हमारा ही राग गाने लगेंगे। तब वह हमारे सच्चे उपासक बन जायँगे। जो काम अंग्रेज़ी शिक्षाके द्वारा अपनी संस्कृतिके संचालनसे अनायास हो जायगा, वह बलात्कारपूर्वक धर्म-परिवर्तन करानेसे भी नहीं हो सकता। अंग्रेज़ी शिक्षा पाकर इनकी सूरत-शक्ल तो ऐसी ही बनी रहेगी, पर इनका दिल और दिमाग़ अंग्रेज़ी साँचेमें ढल जायगा। "न चारि हिंसा विजयश्च हस्ते।" मेकालेकी इस कपटनीतिका बीज आज एक बड़े-भारी वृक्षके रूपमें परिणत हुआ दिखाई दे रहा है। भारतके विजयमें वह काम अंग्रेज़ी सेनाने भी नहीं किया, जो अंग्रेज़ी भाषाने कर दिखाया। इसने हमारे आचार-विचारोंमें इतना आश्चर्यजनक और भयंकर परिवर्तन कर दिया कि हमें अपनी किसी बातपर भी आस्था नहीं रही। अपनी सभ्यता, संस्कृति और प्राचीनताको हम बिलकुल ही भूल गये। हमारी आकृति तो नहीं बदली, पर हृदय और मस्तिष्क एकदम बदल गये, जिससे अपने देशमें रहते हुए भी आचार-विचारकी दृष्टिसे हम विदेशी बन गये हैं। अपने पूर्वजोंका गौरव, अपना प्राचीन इतिहास, अपने देशकी महिमा, अपने धर्मका महत्व और अपनी सभ्यताकी श्रेष्ठता इन सबको ही हम भूल गये।

किसी ऐसी जातिके सुधार और उद्धारके लिए—जो किसी समय उन्नतिके शिखरपर विराजमान थी—अपने प्राचीन साहित्यका आश्रय लेना नितान्त आवश्यक है। किसी अधःपतित देशका पुनरुत्थान प्राचीन साहित्यके

आधारपर ही सम्भव है। उसीसे अपने प्राचीनोंके परमोच भाव, अनुकरणीय आचार और धार्मिक व्यवहारोंका आदर्श समझमें आ सकता है। संस्कृत-साहित्य ही वह दर्पण है, जिसमें भारतीयोंकी पुरातन कीर्ति, और सभ्यता अपने असली और स्वच्छ रूपमें चमक रही है। इसके अतिरिक्त भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे भी संस्कृत-साहित्यका अध्ययन अनिवार्य है। संस्कृतके आधारपर ही पश्चिमके विद्वानोंने भाषा-विज्ञानकी सृष्टि की है। संस्कृत ही आर्य भाषाओंकी जननी है। इसे बड़े-बड़े भाषा-विज्ञानी लोगोंने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। डाक्टर वैलेनटाइनकी सम्मतिमें संस्कृत अखिल इन्डो यूरोपियन भाषाओंकी जननी है। मौंशयर डूबोंके विचारमें संस्कृत यूरोपकी समस्त भाषाओंका मूल कारण है। एक जर्मन विद्वान्का कहना है कि संस्कृत ग्रीक, लैटिन और जर्मन भाषाओंकी माता है। मिस कार्पेन्टर कहती हैं कि यद्यपि संस्कृतका आदि स्थान आर्यावर्त है, तथापि यह बात अब प्रमाणित हो चुकी है कि प्राचीन समयमें आधुनिक यूरोपके अधिकांश देशोंकी भाषा संस्कृत ही थी। बौप साहबने तो यहाँ तक लिखा है कि किसी समयमें केवल संस्कृत ही संसार-मात्रकी बोलचालकी भाषा थी। प्रो० मैक्समूलरने संस्कृतको 'भाषाओंकी भाषा' कहा है। उनकी सम्मतिमें भाषा-विज्ञानके साथ संस्कृतका वही सम्बन्ध है, जो गणितविद्याका ज्योतिषके साथ। संस्कृतकी महिमाका वर्णन करते हुए मैक्समूलर साहब कहते हैं कि—"संस्कृत जो भारतवर्षकी प्राचीन भाषा है, तत्वतः वही भाषा है जो ग्रीक, लैटिन और ऐङ्गलो सैक्शसन हैं। यह एक ऐसी शिक्षा है, जो बिना भारतीय भाषा और साहित्यके अध्ययन किये हम लोगोंको कभी प्राप्त नहीं हो सकती। यदि यह मान भी लिया जाय कि हमें भारतवर्षसे और कोई शिक्षा नहीं मिली, तो इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि किसी दूसरी भाषाकी अपेक्षा प्रायः अधिक उपदेश भारतवर्षकी ही भाषा संस्कृतने हम लोगोंको प्रदान किया है। यूरोपवालोंको संस्कृत साहित्यके अध्ययनका उपदेश करते हुए मैक्समूलर साहबने लिखा है—"संस्कृत—जिसका पढ़ना शुरूमें तुमको बड़ा कठिन और व्यर्थ मालूम हो सकता है—यदि पढ़ते चले जाओ, तो वह तुम्हारे सामने साहित्यकी ऐसी-ऐसी विस्तृत तहें (स्तर) खोलकर रख देगी, जो प्रायः आजतक अविदित हैं और जिनका अभी तक अन्वेषण नहीं हुआ। साथ ही वह तुम्हें ऐसे-ऐसे उन्नत और गम्भीर विचारोंका ज्ञान करायेगी, जो पहले तुमने कभी नहीं सुने और जिनके उपदेश ऐसे उत्तम हैं कि मानव-हृदयपर स्थायी प्रभाव डाल देते हैं। अपने मुख्य अध्ययनके लिए मानव-बुद्धि-विकाशका चाहे कोई अंग तुम चुन लो—चाहे वह भाषा हो या धर्म, पुराण हो या दर्शन ; आचार, व्यवहार और शासन-शास्त्र हो या प्रारम्भिक कला-कौशल हो अथवा प्रारम्भिक विज्ञान—सब विषयोंमें तुम्हें भारतवर्षकी शरण लेनी पड़ेगी। चाहे तुम्हें यह बात भली लगे या बुरी। किन्तु मानव-इतिहासके कतिपय अत्यन्त उपदेशप्रद पदार्थ भारतमें—और सिर्फ़ भारतमें ही—संचित करके रखे गये हैं। जिस किसीने उन विषयोंके प्रति—जिन्होंने सबसे बड़े विचारशील और कर्तव्यपरायण लोगोंको अपनी ओर खींच रक्खा है—अनुराग रखना सीखा है, वह इससे कभी न डरे कि संस्कृतके समीप जाना उनके लिए एक प्रकारका मानसिक निर्वासन हो जायगा। यदि सच्चे भावसे संस्कृतका अध्ययन किया जाय, तो इसके द्वारा ऐसी शिक्षा प्राप्त होगी, जो ग्रीक-साहित्यसे भी नहीं मिल सकती।"

संस्कृतका साहित्य बहुत ही विस्तृत है। इसमें मनुष्य जातिके अभ्युदय और निःश्रेयससे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक विषयपर असंख्य ग्रन्थोंकी रचना हजारों वर्ष तक होती रही है। विद्याशत्रु और बर्बर विदेशियोंके द्वारा सैकड़ों बड़े-बड़े पुस्तकालयोंके जला दिये जानेपर, और अन्य अनेक प्रकारसे बहुतसे ग्रन्थोंके लुप्त हो जानेपर भी संस्कृतकी सर्वोत्तम हस्त-लिखित पुस्तकोंकी संख्या दस हजार बतलाई जाती है। मैक्स-मूलर कहते हैं कि "ग्रीस और इटली इन दोनों देशोंके समस्त उत्तम साहित्य ग्रन्थोंको मिला देनेपर भी इतनी बड़ी संख्या

न होगी। अध्यात्म-विषयके ग्रन्थ तो संसारके किसी देशकी भाषामें भी ऐसे मिल ही नहीं सकते, जैसे संस्कृतमें हैं। उपनिषदोंके अनुवादोंको पढ़कर ही जर्मनी आदि देशोंके दार्शनिक विद्वान् चकित रह गये हैं।

भारतवर्ष और आर्यजातिका दुर्भाग्य है कि ऐसी सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण उपादेय और उत्तम संस्कृत-भाषाका प्रचार दिनों दिन घटता जाता है। जिस ब्राह्मण-जातिने अनादि कालसे चिर दारिद्र्यव्रत स्वीकार करके संस्कृत-भाषाकी अब तक रक्षा की थी, वह भी अब इससे विमुख हो गई है। महामहोपाध्याय ब्राह्मणोंकी सन्तान संस्कृतको छोड़कर अंग्रेज़ीके पीछे पड़ी है। कैसी विचित्र बिडम्बना है! अमर भाषाका नाम आजकल 'मृतभाषा' हो गया है। संस्कृतको 'डेड लैंगवेज' कहा जाता है। पर सच तो यह है कि हम ही मरे हुए हैं, संस्कृत भाषा नहीं मरी है। जिस भाषाके बोलने और समझनेवाले, पढ़ने और पढ़ानेवाले आज भी लाखों हैं, जो अब भी काश्मीरसे मालाबार तक संस्कृतज्ञोंके विचार-विनिमयका साधन है, उसे मृतभाषा कहना ऐसा ही है, जैसे भारतवासियोंको स्वराज्यके अयोग्य कहना। जो लोग देवभाषा (संस्कृत) को मृतभाषा कहते हैं, उन्हें स्वर्गीय महाकवि श्री महेशचन्द्रने इन पद्योंमें समुचित और मुँहतोड़ उत्तर दिया है—

"ये तु केचिदिमां दिव्यां, भारतीममृतामपि।
मृतां वदन्तो निन्दन्ति, दूरात् परिहरन्ति च॥
मूढास्ते पण्डितम्मन्या, बालास्ते वृद्धमानिनः।
अन्धास्ते दृष्टिमन्तोऽपि, प्राप्ता गजनिमीलिकाम्॥
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति, तेहि ब्राह्मीमितस्ततः।
अद्यापि ब्राह्मणमुखे, नृत्यन्तीं रुचिरैः पदैः॥
यावद्वास्ते त्रयी लोके, चतुर्मुख-मुखोद्गता।
यावद्वा रामचरितं, वाल्मीकिकविचित्रितम्॥
क्षरन्त्यमृतधाराबा, यावद्व्यासस्य सूक्तयः।
वाग्देव्या वरपुत्रस्य, कालिदासस्य वा गिरः॥
तावदेषा 'देवभाषा' देवीस्थास्यति भूतले।
यावद्वंशोऽस्त्यार्याणां, तावदेषा ध्रुवं ध्रुवा।"

अर्थात्—"जो इस दिव्य भारती अमर भाषाको 'मृतभाषा' कहकर निन्दा करते हैं और इससे दूर भागते हैं, वे 'पण्डितम्मन्य' मूर्ख हैं। वृद्धमानी हैं, पर बालक (बूढ़े बालक!) हैं। आँखें रखते हैं, पर अन्धे हैं। मस्त हाथीकी तरह वे देखा अनदेखा कर जाते हैं, जिससे आज भी विद्वान् ब्राह्मणोंके मुखमें रुचिर पदविन्याससे नृत्य करती हुई—इधर-उधर विचरती हुई—इस ब्राह्मीवाणीको वे नहीं देख सकते! जब तक संसारमें वेदत्रयी विद्यमान है, वाल्मीकिकी रामायण और अमृतवर्षा करती हुई व्यासकी रचना (महाभारतादि) तथा सरस्वतीकी सुसन्तान कालिदासकी कविता मौजूद है, अधिक क्या जब तक आर्यजाति भूतलपर वर्तमान है, तब तक संस्कृत-भाषा भी रहेगी।"

बहुतसे लोग कहते हैं कि संस्कृत पढ़नेमें समय नष्ट करनेसे क्या लाभ है। उसके अच्छे ग्रन्थोंका अंग्रेज़ीमें अनुवाद हो गया है। अनुवादके सहारेसे ही उसके उपादेय विषयका ज्ञान हमें प्राप्त हो सकता है। संस्कृत बड़ी कठिन और जटिल भाषा है। उसके व्याकरणको घोटना पड़ता है, जो वैज्ञानिक शिक्षा-पद्धतिके प्रतिकूल है। इससे विद्यार्थीकी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है।

किसी भी भाषाका यथार्थ ज्ञान अनुवादके आधारपर नहीं हो सकता। यह ऐसी ही बात है, जैसे कोई असली घी, दूध और खाद्य-पदार्थोंको त्यागकर नकली घी, दूध और बनावटी आटेसे शरीर-पुष्टि और स्वास्थ्य-सम्पादनकी चेष्टा करे। जो लोग कठिन समझकर संस्कृतसे भागते हैं, उन्हें सोचना चाहिए कि अंग्रेज़ी भाषा सीखनेमें भी कुछ कम कठिनाई नहीं पड़ती। उसके तो स्पेलिंग तक घोटने पड़ते हैं। उसका उच्चारण भी बड़ा क्लिष्ट है। संस्कृत शब्दोंका उच्चारण हमारी भारतीय प्रकृतिके सर्वथा अनुकूल है। उसके सैकड़ों शब्द हमारी बोलचालकी भाषामें प्रचलित हैं। भारतीय भाषाओंकी जननी संस्कृत ही है। राष्ट्रभाषा हिन्दीसे तो उसका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिन्दीके

लेखकोंके लिए संस्कृतका साधारण ज्ञान अनिवार्य है। प्राय: देखा जाता है कि जो हिन्दीके लेखक संस्कृत नहीं जानते, वे हिन्दीमें आनेवाले संस्कृत शब्दोंकी दयनीय दुर्दशा कर डालते हैं। हिन्दीका शब्द-भंडार भरनेके लिए संस्कृत जानना अत्यावश्यक है। फिर जो लोग अंग्रेज़ी आदि विदेशी भाषाओंको आसानीसे सीख लेते हैं, उनके लिए संस्कृत जानना तो कुछ भी कठिन नहीं है। शिक्षित हिन्दू-समाजकी उपेक्षा और लापरवाही ही संस्कृत-विषयक अज्ञानका कारण है। बहुतसे लोग संस्कृतका इसलिए भी निरादर करते हैं कि वह अर्थोपार्जन-द्वारा जीवन-निर्वाहमें सहायक नहीं होती। संस्कृतके ह्रासका सबसे मुख्य कारण यह भी है। यद्यपि शिक्षाका लक्ष्य केवल अर्थोपार्जन या सरकारी नौकरी करना ही नहीं है, पर अर्थोपार्जनकी दृष्टिसे तो अब अंग्रेज़ी पढ़ना भी निरा निरर्थक सिद्ध हो रहा है। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बेकारोंकी तादाद दिन-दिन भयानक रूपसे बढ़ती जा रही है। अंग्रेज़ीका ग्रेजुएट बननेमें जितना खर्च होता है, नौकरी मिलनेपर उसका सूद भी वसूल नहीं होता। अंग्रेज़ी शिक्षाके प्रचारसे देशका जहाँ लाभ पहुँचता है, वहाँ हानि भी कुछ कम नहीं हुई है। अंग्रेज़ी शिक्षाके साथ-साथ देशमें विदेशी वस्तुओंका प्रचार और विलासिताका भाव बढ़ा है। इस प्रकार प्रकारान्तरसे अंग्रेज़ी शिक्षा ही देशकी दरिद्रताका प्रधान कारण बनी है। महात्मा गान्धीके आन्दोलनसे शिक्षित समाजकी आँखें खुलीं तो हैं, पर अभी मोह दूर नहीं हुआ। अंग्रेज़ी शिक्षाके पीछे अब भी लोग पागल हैं। मनुष्यके आचार-व्यवहार पर भाषाका बड़ा गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ता है। अपने पूर्वजोंकी तरह *सादा जीवन व्यतीत करनेके लिए भी संस्कृत पढ़नेकी* आवश्यकता है। धार्मिक विचारके हिन्दुओंका तो यह परम कर्तव्य है कि वे संस्कृत शिक्षाके प्रचारपर पूरा ध्यान दें। संस्कृतके ज्ञानके बिना किसी भी धार्मिक अनुष्ठानका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। हिन्दूधर्मके साथ संस्कृतभाषाका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिन्दुओंके वेद, शास्त्र, इतिहास तथा पुराण सब संस्कृतमें ही हैं। संस्कृतको छोड़कर भारतके प्राचीन सनातनधर्मकी रक्षा किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। बहुतसे शिक्षित हिन्दू टर्कीके कमाल पाशाका उदाहरण देकर संध्या-बंदनादि धार्मिक कृत्योंमें भी संस्कृतका सम्बन्ध छुड़ाकर राष्ट्रभाषाका ही प्रवेश कराना चाहते हैं। यह भाषा और धर्मके मर्मस्थलपर प्राणघातक प्रहार है। ऐसे सज्जन इस बातको भूल जाते हैं कि टर्कीवालोंसे अरबी भाषाका कोई प्राचीन सम्बन्ध नहीं है। अरबी टर्कीकी भाषा नहीं है, इसलिए टर्कीके निवासी सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते हैं, पर आर्यधर्म और भारतीय सभ्यताका संस्कृत भाषाके साथ सनातन सम्बन्ध है, जो कभी छूट नहीं सकता। संस्कृतको छोड़कर आर्य सभ्यता जीवित नहीं रह सकती।

इसके अतिरिक्त कृतज्ञताकी दृष्टिसे भी संस्कृतभाषाका सम्मान करना देशहितैषी भारतीयोंका परम कर्तव्य है। संस्कृतभाषाने ही विदेशियोंकी दृष्टिमें हमारा सम्मान बढ़ाया है। यूरोपके विद्वानोंने जब तक संस्कृत नहीं पढ़ी थी, वे हमें 'नीम वहसी' समझते थे। संस्कृत-साहित्यके अध्ययनने ही उनकी आँखें खोली हैं, और उन्होंने भारतके प्राचीन गौरवके सामने सिर झुकाकर आर्यजातिको परम प्राचीन सभ्य जाति स्वीकार किया है। आर्यजातिपर संस्कृत-साहित्यका यह कुछ कम उपकार नहीं है। इसी आधारपर स्वर्गीय श्री रमेशचन्द्र दत्तने कहा था—"संसारमें जब तक वाल्मीकि रामायण और महाभारत वर्तमान हैं, तब तक आर्यजाति अमर है। जिस आर्यने इन दोनों ग्रन्थोंको संस्कृतमें पढ़ लिया, उसका आर्यजातिमें जन्म लेना सफल और सार्थक *हो गया।"* इसलिए हिन्दू-जन्मको सार्थक करनेके लिए प्रत्येक हिन्दू-सन्तानका कर्तव्य है कि वह अपना धर्म समझ कर संस्कृत पढ़नेका प्रयत्न करे।

जो लोग जातीय संगठन और देशव्यापी आन्दोलनके लिए अंग्रेज़ी भाषाका सहारा ढूँढ़ते हैं, उन्हें विश्वविख्यात विद्वान् श्री लाला हरदयालकी उस सम्मतिको ध्यानसे

पढ़ना चाहिए, जो अभी पिछले दिनों एक पत्रमें प्रकाशित हुई है—

"यह उन लोगोंकी भारी भूल है, जो यह कहते हैं कि अंग्रेज़ी भाषाके प्रचारसे जातीय संगठन तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके लोगोंमें परस्पर सम्बन्ध होगा और वह मिल जायँगे। जो सम्मान या सम्बन्ध बाह्य शक्तिसे प्रेरित होकर उत्पन्न होता है, वह यथार्थ और चिरस्थायी नहीं होता। जातीयताका भाव अन्तरात्मासे उत्पन्न होता है, बाहरसे नहीं। एक हिन्दूके लिए संस्कृत सीखना अंग्रेज़ी सीखनेसे सहल है। जो हिन्दू संस्कृतसे अनभिज्ञ है, वह प्रतिष्ठित हिन्दू कहलानेका अधिकारी नहीं। जो लोग संस्कृतका स्थान अंग्रेज़ीको देना चाहते हैं, वे इतिहास नहीं जानते। कई लोग कहते हैं कि संस्कृत एक मृत भाषा है, पर सच तो यह है कि हम ही मरे हुए हैं, संस्कृत भाषा नहीं मरी है। अंग्रेज़ी शिक्षाके कारण हमारा यह स्वभाव हो गया है कि हम देश-सम्बन्धी सब विषयोंपर अंग्रेज़ी भाषामें ही विचार प्रकट करते हैं, पर वस्तुत: ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। उस ग्रेजुएटका, जो संस्कृत और अंग्रेज़ी दोनों जानता है, कर्तव्य है कि दोनोंमें से संस्कृतको अपनावे। परन्तु यह पराधीन जातिकी दुर्भाग्य है कि वह अपने विजेताओंकी भाषासे अपनी भाषाकी अपेक्षा अधिक प्रेम करती है और अच्छा समझती है। ऐसा करना अपने लिये मृत्युको स्वयं बुलाना है।"

अब समय आ गया है कि संस्कृतके प्रचारके लिए व्यापक आन्दोलन किया जाय। प्रतिष्ठित हिन्दू पत्रकारोंका कर्तव्य है कि इस परम आवश्यक आन्दोलनको पूरी शक्तिसे उठावें।

हिन्दू-संगठनके कर्णधारोंका कर्तव्य है कि जातीय संगठनके इस मूलमन्त्रकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दें—इसे भी अपनी इतिकर्तव्यताकी सूचीमें शामिल करें। इसके बिना वास्तविक दृढ़ संगठन असम्भव है। कोरे प्रस्ताव पास करनेसे कुछ न होगा। हिन्दू-महासभाको चाहिए कि संस्कृत-प्रचारके सम्बन्धमें संस्कृतके पक्षपाती बड़े-बड़े विद्वानोंका मत संग्रह करके पुस्तकाकार प्रकाशित करे, और जो पुस्तकें इस विषयपर कहीं प्रकाशित हुई हैं, उनका प्रचार करो।

बहुत पहले स्वनामधन्य लाला हरदयालने जातीय शिक्षापर बहुत ही हृदयग्राही, महत्त्वपूर्ण, उपादेय और अखण्डनीय युक्तिप्रमाणोंसे युक्त एक लेखमाला 'क़ौमी लीग' नामसे लिखी थी, जो अब अप्राप्य है। उसके पुनरुद्धार और प्रचारकी इस समय ज़रूरत है। यह काम हिन्दू-सभाके करनेका है।

एक छोटीसी, पर बड़ी सुन्दर पुस्तक इस विषयपर और प्रकाशित हुई है, जिसका नाम है 'हिन्दू सभ्यता'। उसमें संस्कृतकी महत्ता और उपादेयतापर बहुत ही अच्छा मैटर इकट्ठा कर दिया गया है। संस्कृत-प्रचारके आन्दोलनमें इससे पर्याप्त सहायता मिल सकती है। संस्कृतके सम्बन्धमें यूरोपीय विद्वानोंका मत इस लेखमें इसी पुस्तकसे उद्धृत किया गया है। हिन्दू जनतामें 'हिन्दू सभ्यता'* का प्रचार वांछनीय है।

बिहार और संयुक्तप्रान्तके शिक्षा-विभागोंने संस्कृतको गौण स्थान दे दिया है, जिससे इन प्रान्तोंमें संस्कृतका प्रचार कम हो रहा है। जनताको इसके विरुद्ध आवाज़ उठानी चाहिए।

---

* यह पुस्तक पटना-निवासी श्री महेशचन्द्रप्रसाद एम० ए० ने लिखी है। एक रुपया मूल्य है। उन्हींसे क़दमकुआँ, बांकीपुर (पटना) के पतेपर मिल सकती है। —लेखक

ब्रजभाषा-साहित्यका संरक्षण

श्री कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए०, एल-एल० बी०

हिन्दीकी आधुनिक कविता जिस खड़ी बोलीमें की जाती है, उसका प्रारंभ चाहे जब हुआ हो, पर पूर्ण अभ्युत्थान हुए अभी अधिक समय नहीं बीता है। इसके पहले हिन्दीकी कविता जिस साहित्यिक भाषामें की जाती थी, उसका नाम ब्रजभाषा था। साधारणतया ब्रजभाषासे लोग उसी बोलीकी ओर निर्देश करते हैं, जो ब्रजमंडल तथा उसके आसपास बोली जाती थी और जो इस समय भी मृत भाषाओंमें नहीं गिनी जाती है; पर हिन्दी-कविताकी साहित्यिक ब्रजभाषामें और ब्रजकी बोलचालकी भाषामें थोड़ासा भेद है। साहित्यकी ब्रजभाषा अधिक व्यापक है। उसमें ब्रजमंडलकी बोलचालकी भाषाका प्राधान्य अवश्य है, पर साथ ही अवधी और बुन्देलखंडी आदि कई भाषाओंके शब्दों, मुहाविरों और क्रियाओंका भी समावेश है। अन्य भाषाओंकी शब्दावलीको इस प्रकार अपनाकर ही साहित्यिक ब्रजभाषाने कई सौ बरस तक हिन्दी-कविताकी सर्वप्रधान भाषा कहलानेका गौरव प्राप्त किया था। हिन्दीके पुराने रीतिग्रन्थोंको ध्यानसे देखनेसे यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है कि पुरानी साहित्यिक ब्रजभाषाका क्षेत्र बहुत व्यापक था।* जिन प्रान्तोंमें ब्रजभाषा नहीं बोली जाती थी, वहाँ भी कविता प्रायः साहित्यिक ब्रजभाषामें ही की जाती थी। चार-पाँच सौ वर्षोंके व्यापक कालमें साहित्यिक ब्रजभाषाने हिन्दी भाषाको हज़ारों ग्रन्थ भेंट किये और हज़ारों कवि उसकी सेवाके लिए तैयार किये। कवियोंके इस विशाल समुदायने अपने समयके समाजकी कविता-प्रवृत्तिको जीवित रखा और उसके मन और हृदयको अपने साहित्यिक प्रयासोंसे सन्तुष्ट किया। यह मानी हुई बात है कि जिस भाषामें हज़ारों कुशल कवि चार-पाँच सौ वर्षों तक कविता करेंगे, उसका एक पृथक् व्यक्तित्व दृष्टिगत होगा, और वह भाषा खूब परिमार्जित हो जायगी। साहित्यिक ब्रजभाषाका भी यही हाल हुआ। थोड़ेसे शब्दों-द्वारा बड़ेसे बड़े भावको व्यक्त कर सकनेकी योग्यता उसको प्राप्त हो गई। धर्म और नारी-प्रेमका सहारा लेकर उसने समाजकी

---

* १—"जो न प्रयोगी सतकबिन कांचीभाषा जान;
मथुरा-मंडल ग्वालियर की परिपक्व बखान।"
—चिन्तामणि

२—"भाषा ब्रज भाषा रुचिर कहैं सुमति सब कोय;
मिले संस्कृत पारस्यौ पै अति प्रकट जु होय।
सूर केसो मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म
चिन्तामनि मतिराम भूषन सुजानिये;
लीलाधर सेनापति निपट नेवाज निधि
नीलकंठ मिश्र सुखदेव देव मानिये;
आलम रहीम रसखान सुन्दरादिक
अनेकन सुमति भये कहाँ लौं बखानिये;
ब्रजभाषा हेत ब्रजबास ही न अनुमानौ
ऐसे-ऐसे कबिनकी बानि हूँ ते जानिये।
तुलसी गंग दुऔ भये सुकबिनके सरदार;
इनके काव्यन मैं मिली भाषा विविध प्रकार।
—दास

३—"ब्रजह ग्वालियर भाषा जहँ तजि और;
भाषा च्युत सो जानौं कवि सिरमौर।
मिलति जामिनी भाषा भाषा मध्य;
बायस-पांति-मरालिक दूषन सध्य।
कहि 'सबील' सो जानौं पंडित लोय;
कियो सप्तसतिका मैं देखिय सोय।
—जगतसिंह

महाकवि बिहारीने अपने एक दोहेमें (सतसईमें) 'सबील' शब्दका प्रयोग किया है, उसीकी ओर इशारा है। यह आचार्य ऐसे शब्दोंका प्रयोग 'बायस पांति मरालिक' दोषमें रखता है।
—लेखक.

सभी श्रेणियोंमें अपना दौरदौरा कर लिया। साहित्यिक व्रजभाषामें ग्राम और नगर तथा घर और बाज़ारकी बोलचालकी भाषाका ऐसा सुन्दर समन्वय हुआ है, जिससे उसकी सर्वप्रियता और व्यापकताकी खूब श्रीवृद्धि हुई। इसी प्रकार उसने अपने अंकमें धर्मको भी इस ढंगसे धारण किया कि धार्मिक लोग भी उसपर लट्टू हो गये। इन बातोंके अतिरिक्त व्रजभाषाकी श्रुतिमधुरताने भी उसका गौरव बढ़ाया।

भारतवर्षमें अंगरेज़ी राज्यके दृढ़ हो जानेपर हिन्दी गद्यकी उन्नति प्रारंभ हुई। हिन्दीमें समाचारपत्र और मासिक पत्र निकलने लगे। उनका क्षेत्र केवल कविताओंका प्रकाशन न था। उनमें कविता रुचिको सन्तुष्ट करनेके अलावा ज्ञान-वर्द्धनकी और भी बहुतसी सामग्री रहती थी। धीरे-धीरे हिन्दी गद्यके विकासके साथ-साथ लोगोंमें यह स्वाभाविक प्रवृत्ति जाग पड़ी कि जिस भाषामें गद्य लिखा जाता है, कविता भी उसी भाषामें क्यों न की जाय। यह प्रवृत्ति ज्यों-ज्यों ज़ोर पकड़ती गई, त्यों-त्यों खड़ी बोलीकी कविताका प्रचार बढ़ता गया। अभी तक साहित्यिक व्रजभाषा हिन्दी कविताकी एकमात्र अधिष्ठात्री थी, पर अब खड़ी बोली भी उस क्षेत्रमें उसकी साझेदार हो गई। दो प्रतिद्वन्द्विनी भाषाओंकी उपस्थितिमें कुछ कवियोंने खड़ी बोलीको अपनाया और कुछ पहलेके समान साहित्यिक व्रजभाषाके भक्त बने रहे। जिन कवियोंने खड़ी बोलीका सहारा लिया, उनकी ममता व्रजभाषाकी ओरसे कुछ कम हो चली। वे उसके अन्ध भक्त नहीं रहे। उन्हें व्रजभाषाकी कवितामें गुणोंके साथ-साथ दोष भी दिखलाई पड़ने लगे। साहित्यिक व्रजभाषाकी कवितामें मध्ययुगके सामाजिक आदर्शोंकी गहरी छाप लगी थी, परन्तु वर्तमान युग उन आदर्शोंसे कुछ पृथक् हो गया है। खड़ी बोलीमें कविता करनेवाले आधुनिक युगके आदर्शोंको सामने रखकर जब कविता करने लगे, तब उन्हें साहित्यिक व्रजभाषामें प्रचलित मध्ययुगी आदर्श बहुत खटके। उन्हें दिखलाई पड़ा कि साहित्यिक व्रजभाषामें जिस कोटिकी विलासमयी कविता है, वह न आधुनिक युगके लिए उपयुक्त है और न उससे समाजका हित ही होगा। व्रजभाषाकी कविताके प्रति अब तक विरक्तिका जो भाव जाग चुका था, वह धीरे-धीरे विलासमयी कविताके दोषका निरीक्षण करनेके बाद घृणाके रूपमें परिवर्तित होने लगा। उधर छात्र-मंडली और समाचारपत्रोंकी पढ़नेवाली जनताका अधिक परिचय हिन्दी गद्य और खड़ी बोलीकी कवितासे हो गया। साहित्यिक व्रजभाषा अब उसे कुछ अपरिचित और दुरूह सी जान पड़ने लगी। समाज-सुधार, व्यापार-प्रसार और राष्ट्रीय उत्थान आधुनिक युगकी प्रधान विशेषताएँ हैं। इन्हीं विशेषताओंकी धाराका अवगाहन करके खड़ी बोलीकी कविता कृतार्थ हुई। खड़ी बोलीके कवियोंको अपना काव्य सफल बनानेके लिए सरलता और ओजकी ही अधिक आवश्यकता प्रतीत हुई। साहित्यिक व्रजभाषाके माधुर्यको उन्होंने अपने काव्यके अनुकूल नहीं पाया। जब उनको तादृश माधुर्यकी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई, तब उन्होंने उस गुणके कारण व्रजभाषाके आतंकको मानना अस्वीकार कर दिया। विश्व साहित्यसे संपर्क हो जानेके कारण जैसे भारतके राजनीतिक आदर्शोंमें द्रुतगतिसे परिवर्तन होने लगे, वैसे ही साहित्यिक आदर्शोंमें भी भारी उथल-पुथल मच गई। नवीन आदर्शवादी कवियोंको मध्ययुगके व्रजभाषाके कवियोंके भाव कुछ ऊँचे नहीं। उससे उनकी मनस्तुष्टि नहीं हुई। इससे भी साहित्यिक व्रजभाषाकी ओर प्रगतिशील नवीन कवियोंका रुझान नहीं रहा। साहित्यिक व्रजभाषामें अब कविता होनी चाहिए या नहीं, इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए यह लेख नहीं लिखा जा रहा है। जो लोग उक्त भाषाके प्रेमी हैं, जिनकी उसमें गति है, वे आज भी उसमें कविता करते हैं और भविष्यमें भी करेंगे। यदि उनकी कवितामें सार होगा, तो उसकी प्रशंसा होगी और यदि केवल साहित्यिक व्रजभाषाकी ममतासे ऊटपटांग छंद रचे जायँगे, तो उनकी निंदा ही होगी, और साथ ही व्रजभाषा बदनाम भी होगी। यह तो हुई इस युगमें उक्त भाषामें कविता करनेकी बात, पर यह भी स्पष्ट है

कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य-समाजमें साहित्यिक ब्रजभाषाके पुराने काव्य साहित्यकी ओरसे उदासीनता हो गई है, और वह उदासीनता बराबर बढ़ती जाती है। इस समय साहित्यिक ब्रजभाषामें कविता न की जाय, यह एक बात है। इसमें मतभेद हो सकता है, पर पुरानी ब्रजभाषाकी कविता उपेक्षाकी दृष्टिसे देखी जाय, उसके संरक्षणका उपाय न किया जाय—यह दूसरी बात शायद अधिक विवादग्रस्त नहीं है। आजकलके प्रगतिशील नवीन कवि भी शायद यह पसंद न करेंगे कि हिन्दीका भावी साहित्य-समाज उनकी आधुनिक रचनाओंका संरक्षण न करे। यदि भविष्यसे आप यह आशा करते हैं कि वह वर्तमान काव्यकी रक्षा करे, तो आपका यह कर्तव्य है कि आप इस समय भूतकालके काव्यकी रक्षा करें। भूतकाल कभी वर्तमान काल था और वह आपके समयको भविष्य समझता था और आप ही के समान उसको भी आपसे आशा थी कि आप उसके साहित्यको लुप्त न होने देंगे।

पुराने साहित्यकी रक्षा करके न केवल आप भविष्य कालको वर्तमान कालके साहित्यके संरक्षणका मार्ग दिखलाते हैं, वरन् अपने साहित्यकी व्यापकताकी परिधिको भी विशाल बनाते हैं। पुराने साहित्यका संरक्षण साहित्य-इतिहास-निर्माणका सबसे आवश्यक काम है। साहित्यका इतिहास समाजके इतिहासकी सबसे उपादेय सामग्री है। दोनों अन्योन्य प्रतिपूरक हैं। अपने पूर्ववर्ती साहित्यिकोंका प्रयास हमें क्रियाशील बनाता है। उनके अनुभवसे हमें लाभ उठानेका अवसर मिलता है और उनकी भूलोंसे हम अपनी कृतियोंको बचा सकते हैं। इन्हीं कारणोंसे वर्तमान हिन्दी-साहित्य-समाजका यह पवित्र कर्तव्य है कि वह अपने पुराने साहित्यिक ब्रजभाषा काव्यका संरक्षण करे। फिर हमारा पुराना साहित्य ऐसा गया-बीता भी तो नहीं है कि विश्व-साहित्य-समाजके सामने हमें उसके कारण नतमस्तक होना पड़े। क्या 'सूरसागर' और 'विनयपत्रिका' ऐसे हीन श्रेणीके काव्य हैं कि विश्व साहित्यमें उनका कोई स्थान ही नहीं! अब विचारणीय यह है कि पुराने ब्रजभाषा-साहित्यका संरक्षण कैसे किया जाय? यों तो संरक्षण-कार्यके लिए बहुतसे उपाय सोचे जा सकते हैं, परन्तु प्रारम्भमें यदि तीन बातोंपर अधिक ध्यान दिया जाय, तो बहुत-कुछ सफलताकी आशा है।

१—प्राचीन साहित्यके प्रति सहानुभूति और आदरके भाव उत्पन्न करना। यह काम व्याख्यानों और लेखोंके द्वारा होना चाहिए। पुराने कवियोंकी कृतियोंपर जितने ही आलोचनात्मक लेख निकलेंगे, उतना ही कविताप्रेमी समाजका ध्यान उस प्रकारके साहित्यकी ओर आकर्षित होगा। आलोचनाएँ चाहे छोटे-छोटे लेखोंके रूपमें हों और चाहे बड़े ग्रन्थोंके रूपमें, पर उनमें विवेक और संयमका समावेश अवश्य रहना चाहिए। आलोचनाके लिए अतिरंजनाका आश्रय लेना ठीक नहीं है, इसका प्रभाव उलटा पड़ता है। अंगरेज़ीमें कवियोंपर जिस प्रकारके Appreciations (स्तुति, समवेत तथ्यमयी आलोचनाएँ) निकलते हैं, उसी ढंगकी आलोचनाओंकी इस समय आवश्यकता है, विशेष दोष-प्रदर्शनकी अभी ज़रूरत नहीं। पिछले कई वर्षोंमें अति स्वल्पमात्रामें यह काम हुआ है, जिससे जायसी, विद्यापति और देवकी कविताके प्रति लोगोंका अनुराग बढ़ा है। पुराने कवियोंके काव्यके प्रति ध्यान आकर्षित करनेका एक यह भी उपाय है कि उनकी जन्म-तिथियों अथवा निधन-तिथियोंके अवसरपर सभाएँ करके व्याख्यानों-द्वारा सर्वसाधारणको उनका परिचय कराया जाय और उस अवसरपर उक्त कविके ग्रन्थ प्रकाशित किये जायँ। गोस्वामी तुलसीदासकी त्रिशत वार्षिक जयन्तीका आयोजन इसी प्रकारका था। इस लेखके लेखकने 'माधुरी' के विशेषांकमें संवत् १९९० में महाकवि पद्माकरकी निधन-तिथिपर उत्सव मनानेका प्रस्ताव किया था। आशा है हिन्दी-संसार उसे भूला न होगा, और संवत १९९० में कानपुरमें तथा अन्यत्र भी समारोहके साथ कविवर पद्माकरकी शतवार्षिकी पुण्यतिथि मनाई जायगी। प्राचीन कवियोंके जो स्मृति-चिह्न शेष हैं, उनसे भी साहित्य-संसारका परिचय होना

चाहिए। स्वर्गवासी श्री कृष्णबलदेव वर्मानें मुझसे कहा था कि कालपीके पास कहीं पद्माकरके मकानके खंडहर मौजूद हैं। उनके चित्र प्रकाशित होने चाहिए। सुनते हैं, आगरेमें अब भी वह मकान मौजूद है, जिसमें आचार्य कुलपति रहते थे। उसका चित्र हिन्दी-संसारके सामने आना चाहिए। कहा जाता है कि कुसमरा जिला मैनपुरीमें देव कविके लगाये बागके कुछ वृक्ष अब तक हैं, उनकी रक्षा होनी चाहिए और उनके वृक्षोंके चित्र साहित्य-जगत्के सामने आने चाहिए। ऐसे स्थानोंपर साहित्य-सेवियोंकी सभाएँ होनी चाहिए। जिन पुराने कवियोंकी हस्तलिपियाँ मौजूद हैं, उनकी रक्षा होनी चाहिए और उनकी फोटो-प्रतिलिपि पत्र-पत्रिकाओंमें छपनी चाहिए। सुकवि सोमनाथ, नवीन तथा देव आदि कई कवियोंकी हस्तलिपियाँ इस लेखके लेखकने 'माधुरी' के विशेषांकमें प्रकाशित की थीं।

२—ऊपर बतलाये गये उपायोंसे वर्तमान साहित्य-सेवियोंमें साहित्यिक ब्रजभाषाके काव्योंपर आदर और सहानुभूतिके भाव उत्पन्न हो सकते हैं, और इन भावोंके उत्पन्न होनेपर लोगोंको उक्त कवियोंके ग्रन्थोंके पढ़नेकी लालसा भी उत्पन्न होना स्वाभाविक है, पर पुरानी साहित्यिक ब्रजभाषामें की गई कविता इस समय बहुतसे लोगोंकी समझमें नहीं आती। ऐसी दशामें यह परमावश्यक प्रतीत होता है कि तद्विषयक साहित्यके अध्ययन करनेवालोंके लिए एक बड़ा कोश, एक अच्छा व्याकरण और एक उत्कृष्ट इतिहास तैयार किया जाय। इन ग्रन्थोंको चाहे विद्वानोंकी एक समिति बनाये और चाहे एक ही विद्वान, पर इनकी रचनामें हाथ उन्हीं लोगोंका रहे, जो इन विषयोंके विशेषज्ञ हों।

यद्यपि इस समय भी हिन्दीमें ऐसे कई उत्कृष्ट संग्रह * मौजूद हैं, जिनसे पुरानी कविताओंके पढ़नेका आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, फिर भी अभी तक ऐसे विशाल व्यापक संग्रहकी आवश्यकता है, जो गुजरातीके 'काव्यदोहन' अथवा संस्कृतके 'सुभाषित रत्न-भाण्डागार' के सदृश हो। ऐसे संग्रहको कई विद्वान मिलकर बनावें तो बहुत अच्छा हो। निदान ब्रजभाषा-काव्यके अध्ययनमें सहायता पहुँचानेके लिए कोश, व्याकरण, इतिहास और संग्रहकी बड़ी आवश्यकता है।

३—कोश, व्याकरण आदिकी सहायतासे साहित्यिक ब्रजभाषा-काव्यमें विद्यार्थीकी कुछ गति हो सकती है, पर उसे चंचु-प्रवेशसे अधिक नहीं कह सकते हैं। उस कविताका पूरा आनन्द तो तभी उठाया जा सकता है, जब आधुनिक वैज्ञानिक ढंगसे विद्वान गुरु द्वारा उसकी शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय। खेद है कि इस समय ऐसी शिक्षाका प्रबन्ध नहींके बराबर है। क्या ही अच्छा हो यदि हिन्दू-विश्वविद्यालयमें एक 'ब्रजभाषा चेयर' की स्थापना की जाय। इससे पुराने काव्योंका गम्भीर अध्ययन हो सकेगा। हिन्दू-विश्वविद्यालयमें एम० ए० तक हिन्दी शिक्षाका प्रबन्ध इस समय भी है, इसलिए थोड़ासा परिवर्तन करनेसे साहित्यिक ब्रजभाषाके अध्ययनकी समस्या सुलझाई जा सकती है। काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभा और प्रयागके हिन्दी साहित्य-सम्मेलनने ब्रजभाषा साहित्यके अध्ययनमें बहुत सहायता पहुँचाई है। काशीकी सभाने पुराने साहित्यके कई अनमोल ग्रंथ प्रकाशित किये हैं, और सम्मेलनने परीक्षाओंका क्रम निकालकर पुराने साहित्यके अध्ययनको प्रोत्साहन दिया है। इसके पूर्व नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ तथा भारत-जीवन प्रेस काशीने भी पुराने काव्यके बहुतसे ग्रन्थ छापे हैं। लखनऊकी गंगा-पुस्तकमालाने भी प्राचीन साहित्यके उद्धारका प्रारम्भ किया था, पर बिखरी शक्तियोंके इस स्तुत्य कामसे वैसा लाभ सम्भव नहीं है, जैसा कि एकमात्र इसी कामको करनेवाली एक सुसंगठित संस्था-द्वारा इस कार्यके संचालनका फल हो सकता है। यदि 'Royal Asiatic Society'

* पं० रामशंकर त्रिपाठीने 'साहित्य-प्रभाकर' नामका एक संग्रह कई साल हुए कलकत्तेके ओसवाल प्रेससे प्रकाशित कराया है। यह संग्रह बहुत अच्छा हुआ है। —लेखक।

अथवा 'French Academy' के ढंगकी कोई संस्था स्थापित की जाय, जिसका एकमात्र उद्देश्य पुराने काव्य-ग्रन्थोंका प्रकाशन हो, तो प्राचीन साहित्यके संरक्षणमें बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है। इस काममें धन और संगठनके अतिरिक्त विद्वानोंके सहयोगकी परम आवश्यकता है, परन्तु यदि ऐसी संस्था बन जाय, तो साहित्य-संरक्षणका मार्ग बहुत कुछ सरल हो जाय। काशीकी सभा और प्रयागका सम्मेलन नवीन साहित्यके निर्माणमें अधिक दिलचस्पी लेते हैं, और यह उचित भी है। ऐसी दशामें यदि ऐसी संस्था स्थापित हो जाय, तो उक्त दोनों संस्थाओंका काम और भी सरल हो जाय। इसके अतिरिक्त नवीन आदर्शवादी साहित्यसेवियोंको अन्य साहित्य-संस्थाओंसे यथारुचि प्रोत्साहन प्राप्त करनेमें किसी प्रकारकी बाधा न रह जाय और प्राचीन तथा नवीनमें संघर्षका भी कोई अवसर न प्राप्त हो। साहित्यिक ब्रजभाषामें जो काव्य-ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनके निर्माण करानेमें देशी नरेशों, राजाओं और ताल्लुकेदारोंका बहुत बड़ा हाथ है। उन्हींके आश्रयमें ब्रजभाषाका अधिकांश काव्य रचा गया है। ऐसी दशामें उस साहित्यके संरक्षणके लिए स्थापित संस्थाको भरपूर आर्थिक सहायता देनेमें भी उस प्रभावशाली दलके लोग मुक्तहस्त होंगे, ऐसी आशा करना अनुचित नहीं है।

सारांश यह कि वर्तमान हिन्दी-साहित्य-संसारका यह पुनीत कर्तव्य है कि वह विविध उपायोंसे पुराने ब्रजभाषा-साहित्यके संरक्षणका अति शीघ्र समुचित प्रबन्ध करे।

ग्राम-गीत

श्री रामनरेश त्रिपाठी

कविका मस्तिष्क एक ऐसा स्थान है, जहाँ विचार-धाराओंका संगम होता है, और वहींसे नवीन धाराओंका उद्गम भी होता है। वह भूतकालको कल्पित भविष्यमें परिणत कर देता है। उसे जो रंग प्रिय लगता है, वह संसारके चित्रको उसी रंगमें रँगता है। वाल्मीकिके विभीषणने रामचन्द्रके पास आकर यह कहा था—

> ''अनुजो रावणस्याहं तेनचास्म्यवमानित:।
> भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणंगत:॥
> परित्यक्ता मया लंका मित्राणि च धनानि च।
> भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च॥''

'मैं रावणका छोटा भाई हूँ। उसने मेरा अनादर किया, इससे मैं आपकी शरणमें आया। मैंने लंकाको और मित्रों तथा समस्त धन-दौलतको भी छोड़ दिया है। अब मेरा राज्य, प्राण और सुख सब आपके अधीन है।'

पर तुलसीदासके विभीषणने यह कहा—

> ''नाथ दसानन कर मैं भ्राता।
> निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
> सहज पापप्रिय तामस देहा।
> जथा उलूकहिं तमपर नेहा॥

> स्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भवभीर।
> त्राहि-त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर॥''

इसके पहले वह सोचता आ रहा था—

> ''देखिहउँ जाइ चरण जल जाता।
> अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
> हर उर सर सरोज पद जेई।
> अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥''

मिलनेके बाद उसने कहा था—

> ''तबलगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन बिस्राम।
> जब लगि भजत न राम कहँ, सोक धाम तजि काम॥''

वाल्मीकिने विभीषणका असली चित्र ही हमारे सामने आने दिया है, पर तुलसीदासने उसे अपना जामा पहनाकर भेजा है। रामके पास पहुँचते-पहुँचते विभीषण तुलसीदास बन गया है। कोई पड़ना चाहे तो इस उलझनमें सहज ही में पड़ सकता है कि विभीषणने वास्तवमें रामसे क्या वाक्य कहे थे? पर हम उस उलझनमें नहीं फँसना चाहते। हम तो सिर्फ यह कहते हैं कि तुलसीदास राम-भक्त थे! उनकी दृष्टिमें रामायणके जितने पात्र हैं, चाहे वे पशु, पक्षी, देव, दानव, मनुष्य, राक्षस—कोई क्यों न हों, सब रामके भक्त थे, और प्रायः सभी रामके 'कोटि मनोज लजावन हारे' रूपपर मुग्ध थे। तुलसीदासने अपने इसी रंगमें विभीषणको रँगा है। रामचरितमानसके चित्रोंमें उसके अन्य पात्रोंकी अपेक्षा हमें तो उसके रचयिता तुलसीदास ही का चित्र अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है। तुलसीदास एक आदर्शवादी थे। उनका एक लक्ष्य था, एक उद्देश्य था। उसकी पूर्तिका उद्योग उन्होंने किया।

ऐसे आदर्शवादी कवियोंकी कविता और ग्राम गीतोंमें बड़ा भेद है। कविताका प्राण स्वाभाविकता है। कविकी आदर्शवादितामें पड़कर स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है और इतिहासकी तो मिट्टी ही पलीद हो जाती है। ग्राम-गीतोंका न कोई आदर्श है, न उद्देश्य है और न लक्ष्य है! वह तो संसारके अनेक प्राकृतिक पदार्थोंकी तरह एक पदार्थ है, जो मनुष्य-समाजमें वाणीके साथ स्वभावतः उत्पन्न हुआ है। उसमें कल्पनाएँ नहीं हैं, मनुष्य-जीवनके अनुभव हैं। उसमें का विभीषण अपने असली रूपमें समाजके सामने आता है, तुलसीदासके रूपमें नहीं। इसीसे उसकी महिमा रससिद्ध कवियोंकी कवितासे भिन्न है। उसका स्वाद ही विचित्र है।

कविताका असली रूप ग्राम-गीतों ही में है। मैंने भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंमें भ्रमण करके यह अनुभव किया है कि यद्यपि भाषाओंका जामा भिन्न-भिन्न है, पर उनके भीतर सर्वत्र एक ही प्राण तरंगित है। समस्त प्रान्तोंके ग्राम-गीतोंमें कौटुम्बिक जीवनका एक ही चित्र चित्रित है। प्रत्येक भाषाके ग्राम-गीतोंमें भावोंका उदय एक ही क्षितिज पर हुआ है। उनमें मनुष्य मात्रकी समानता स्पष्ट झलकती है।

हिन्दीमें अभी इस ओर कम ध्यान दिया जाता है, पर वह समय शीघ्र ही आनेवाला है जब हम लोग ग्राम गीतोंकी दुनियामें अपनी आँखें खोलेंगे और कविताका नैसर्गिक रूप देखकर तृप्त होंगे।

यहाँ मैं ग्राम-गीतोंके कुछ नमूने देता हूँ, जो ग्रामतौरसे खेतोंमें, वनोंमें और राहोंमें गाये जाते हैं। इनके रचयिताओंका पता नहीं। जैसे ही उत्तम कोटिके ये गीत हैं, वैसे ही प्रशंसनीय इनके रचयिताओंकी निःस्पृहता है। उन्होंने, जान पड़ता है, कभी कामना ही नहीं की कि गीतोंके साथ उनका भी नाम चले। कितना बड़ा त्याग है! कैसी उदारता है! कैसा सात्विक दान है!

पहले आन्ध्रदेशसे चलिये। आन्ध्रदेशके गीत बड़े ही सरस होते हैं। वहाँकी साधारण जनतामें भी कितने ही ऐसे गीत प्रचलित हैं, जिनके आगे 'गीतगोविन्द' फीका जान पड़ता है। एक गीत सुनिये—

"एमिर वरद, नी—मोमु चिन्न बोयिनदि,
नामनसु नी मनसु प्रेम निंडि युंडग। एमिर० ॥
मोडिमीदने नुंडगा पडतु लंदरु राग।
वडिगा लेचि पोयिन दे—वलपु लेनि दानना ॥
मुडि बोम्म लेलरा? ना—यक पकले चेयाकु।
मडुपुल नंपिंचिन दे—ममत लेनि दानना ॥ एमिर० ॥
तेलिय जूचिने नीकु—दृष्टि ताके नंट।
तलु पोर जेसिन दे—तलपु लेनि दानना ॥
नलु गुरिलो नीतो—नव्वरादनु चुने।
निलुवरे वचिनु दे—हितवु लेनि दानना ॥
विनरा एलमि पॅकोनि—विंत विलंग रतुल।
पेनगि मैं मरचिन दे—प्रियमु लेनि दानना।"

"क्यों प्राणेश्वर ! हम दोनोंके हृदय प्रेमसे भरे होते हुए भी तुम्हारा मुख इतना उदास क्यों है ?

सहेलियोंके आनेसे मैं तुम्हारी गोदसे उठ गई थी, क्या इसीसे मुझमें प्रेमका अभाव है ?

नाथ ! भौंह क्यों चढ़ाते हो ? मैंने नौकरानीके हाथ पानका बीड़ा भेजा, क्या इसीसे मुझे ममता-शून्य समझते हो ?

देर तक देखनेसे तुम्हें नज़र लग जाती, इसीसे कुछ किवाड़ बन्द कर लिया था, इसीसे क्या तुमपर से मेरा स्नेह उठ गया ?

अन्योंके सामने हँसी-दिल्लगी करना उचित न जानकर घर लौट आना ही क्या मेरी निर्ममताका प्रमाण है ?"

देखिये, शृंगाररसकी कैसी भावपूर्ण कविता है। आन्ध्रदेशके कृष्णा ज़िलेमें यह तेलगू भाषाका गीत 'राह चलते' लोग गाया करते हैं। यदि यह बात कोई न जानता हो, तो क्या वह कह सकता है कि यह किसी महाकविकी रचना नहीं है ?

× × × ×

अब एक काश्मीरका गीत लीजिये। यह गीत मैंने श्रीनगरमें झेलमके वक्ष:स्थलपर अपने हाउस-बोटमें एक काश्मीरी मित्रकी ज़बानी सुना था, पीछे इसी गीतको एक मल्लाहसे काश्मीरी स्वरमें गवाकर सुना था। यह गीत उसे भी कंठस्थ था—

"प्रभात हो आव अक्षय सुचराव।
न्यंदर मो आव न्यंदर मो आव ॥
(प्रभात काल आया, नींद छोड़ो, नींद छोड़ो।)
सु चमकान आथम सिर्युक गाश।
न्यबर अन्दर पि च्यव आकाश ॥
मुचर अक्षय दारि मो ओपराव।
न्यंदर मो आव न्यंदर मो आव ॥
(आत्माके सूर्यका प्रकाश अब चमकने लगा। बाहर और भीतर चित्त-रूपी आकाशमें उजाला हो गया। अब नेत्रोंका द्वार खोलो। नींद छोड़ो, नींद छोड़ो।)

छतज ल्हस्यनय च्य छिहनी कीश।
च ग्रेनन कोन हुख वुपदीश ॥
समय गव रंग बदलिथ आव।
न्यन्दर मो आव न्यन्दर मो आव ॥

(अब तुम्हारे काले केश सफेद हो गये। अब भी तुम्हें उपदेश नहीं भाता। समय गया। अब नया रंग बदल रहा है। नींद छोड़ो, नींद छोड़ो।)

समय ज़ान बांड जशना ज़ान।
गछयस युथ त्युथ गंडुन सामान ॥
नोवुय नोव पाथरा हाथ च़ाव।
न्यंदर मो आव न्यंदर मो आव ॥

(समयको एक नाटककी तरह जानकर चाहे जैसी सामग्री लेकर तुम अपना तमाशा दिखलाओ। जिसमें नवीनता होती है, वही इस नाटकमें नट-वेश धारण करके आता है। यह समय सोनेका नहीं। नींद छोड़ो, नींद छोड़ो।)

मकर चेर फेर च होशस कुन।
वोथ़गनय़ ज्याम नाली कुन ॥
च्यतस वुज़नाव आलुव लाव।
न्यंदर मो आव न्यंदर मो आव ॥
संगर मालन छथचर साम्पुन।
ओतुन सोरुय जगत नाम्पुन ॥
च मुख अद्वैत आनस डाव।
न्यंदर मो आव न्यंदर मो आव ॥

(पर्वतमालाके चारों ओर प्रकाश फैल गया, और सारा जगत् प्रकाशमान हो गया। अद्वैतके दर्पणमें अपना मुख देखकर उठो। नींद छोड़ो, नींद छोड़ो।)

वोथ़ुगा कर त स्वामी सुर।
स्वरत पानस दिथिय ईश्वर ॥
सु करिय योग च कहस आव।
न्यंदर मो आव न्यंदर मो आव ॥

(उद्योग करो और ईश्वरका ध्यान धरो। वह तुम्हें स्वयं सिद्धि प्रदान करेंगे। तुम्हारी भावना जैसी होगी, वैसा फल मिलेगा। नींद छोड़ो, नींद छोड़ो।)

गछुन हुश्यार च्य बडगथ छय।
च्य लागज कुस लागथ छय॥
न्यराशन पान गाश हो आव।
न्यंदर मो त्राव न्यंदर मो त्राव॥"

(इस समय जागना परम कल्याणकारी है। इसमें तुमको क्या लागत लगानी है? निराशोंके लिए स्वयं प्रकाश आया है। नींद छोड़ो, नींद छोड़ो।)

देखिये, कैसा भावपूर्ण प्रभाती गीत है! प्रभात कालका ऐसा सुन्दर वर्णन हिन्दीके किस महाकविकी कवितामें है? यह मुझे नहीं मालूम।

× × ×

अब एक गुजराती गीत लीजिए—

"लवींग केरी लाकडिये रामे सीताने मार्या जो।
फूल केरे दडूलिये सीताई वेरे वार्या जो॥

(लौंगकी लकड़ीसे रामने सीताको मारा। सीताने बदलेमें फूलके गेंदसे रामको मारा।)

राम तमारे बोलडिये हूँ पर घेरे दलवा जईश जो।
तमे जशो जो पर घरे दलवा हूँ घंटूलो थईश जो॥

(सीताने कहा—हे राम! तुम्हारी कड़ी बोलीसे रुष्ट होकर मैं दूसरेके घर पीसने चली जाऊँगी। रामने कहा—यदि तुम दूसरेके घर पीसने चली जाओगी, तो मैं वहाँ पहुँचकर चक्की बन जाऊँगा।)

राम तमारे बोलडिये हूँ पर घरे खाँडवा जईश जो।
तमे जशो जो पर घरे खाँडवा हूँ साँबेलूँ थईश जो॥

(सीताने कहा—हे राम! मैं दूसरेके घर कूटने चली जाऊँगी। रामने कहा—तो मैं वहाँ मूसलकी साम बन जाऊँगा।)

राम तमारे बोलडीये हूँ जल माँ माछली थईश जो।
तमे थशो जो जलमाँ रे माछली हूँ जलमोजूँ थईश जो।

(सीता कहती है—हे राम! मैं जल ही में मछली बन जाऊँगी। रामने कहा—तो मैं जलकी लहर बन जाऊँगा।)

राम तमारे बोलडीये हूँ आकाश बिजली थईस जो।
तमे थशो जो आकाश बिजली हूँ मेहुलीओ थईश जो।

(सीताने कहा—मैं आकाशमें बिजली बन जाऊँगी। रामने कहा—तो मैं मेघ बन जाऊँगा।)

राम तमारे बोलडीये हूँ बलीने ढगलो थईस जो।
तमे थशो जो बलीने ढगलो हूँ भभूतियो थईश जो।

(सीताने कहा—मैं जलकर राख हो जाऊँगी। रामने कहा—तो मैं उस भभूतको शरीरपर रमाकर योगी बन जाऊँगा।)

यह गुजरातके ग्रामीण दम्पतिका प्रणय-कलह है। सीता और रामके बहाने स्त्री-पुरुषकी यह नोंकझोंक बड़ी ही रसीली है। गुजरातकी सुन्दरियाँ जब इसे उन्माद होकर गाती हैं, तब श्रोताओंके हृदयाकाशमें प्रेमकी वर्षा होने लगती है। ऐसा भान होने लगता है कि समस्त सृष्टि चुपचाप खड़ी होकर सुन रही है।

× × × ×

अब बिहारका एक गीत सुनिए—

"एक तो अँगनाकी पातरि दुसरे गरभ सेनी रे
चेरिया तिसरे मैं ठाढ़ी अँगनवाँ तौ केहिरे जगावउँ रे॥
सास तौ सुतलीं अँटरिया ननद गजओबरि रे।
चेरिया वई हरि सुतलें दुवरवाँ मैं केहिरे जगावउँ रे॥
चढ़ति-चढ़ति चेरिया चढ़ि गईं झरोखे लागी झाँकइ रे।
रनिया तोरे हरि ठाढ़े फुलवरियाँ मलिनि सँग बिहँसईं रे॥
भोरेहे मैं मलिनी बोलैहौं पलँग बइठरिहौं रे।
ऐ हो, मलिनीके लम्बे-लम्बे केस मैं लठ दे बिउरिहौं रे॥
मलिनी, तो हऊ मोरी मलिनी तुहैं मोरी मालिनि रे।
मलिनि, कैसे-कैसे मोरे हरि भोरयउ कवने रस राखेउ रे॥
रेशमकी सेजिया बिछावउँ फूल छिटकावउँ रे।
रनिया सारी राति दिमना जरावउँ नयन रस राखउँ रे॥
द्वारेसे अबले हैं रजवा मलिनि सेनी मत करैं रे।
मलिनी आवति हैं रनिया हमारि आदर करि बोलेउ
गरब जनि भाखेउ रे॥
बिनतीन बैठि मलिनिया सुनहु राजा बीनति हो।
राजा दइ देबे गोबरा छितनिया गोबर मोर कढ़िहईं रे॥
एक तौ अँगवा क पातरि कुसुम रँग सुन्दरि हो।
मालिन ओठवन चुवत गुलाब गोबर कैसे कढ़िहईं रे॥

हालीबेगि घोड़वा पलानै त जीन सँवारै हो।
मालिनि बैठि रहौ अपनी मँड़इया मैं देस देखि आवउँ रे॥"

अर्थात्—"एक तो मैं नाजुक, दूसरे गर्भवती; हे दासी! तीसरे मैं आँगनमें खड़ी हूँ; किसको जगाऊँ?

दासी अटारीपर चढ़ गई। झरोखेसे उसने झाँककर देखा और कहा—हे रानी! तुम्हारे प्राणनाथ तो फुलवाड़ीमें खड़े हैं और मालिनसे हँस रहे हैं।

स्त्रीने कहा—सवेरे मैं मालिनको बुलाऊँगी, उसे पलंगपर बैठाऊँगी और उसके लम्बे लम्बे बाल खोलकर ब्योंहूँगी।

दूसरे दिन मालिनके घर पहुँचकर स्त्रीने पूछा—हे मालिन! तुमने मेरे प्राणेश्वरको कैसे लुभा लिया है? उनको किस रसके वशमें कर रखा है?

मालिनने कहा—रेशमकी सेज बिछाकर मैं उसपर फूल बखेर देती हूँ। सारी रात दीपक जलाकर मैं नेत्रोंके रसमें उन्हें रखती हूँ।

पुरुष बाहरसे घरके अन्दर आया। उसने मालिनसे कहा—मालिन! मेरी रानी आ रही हैं। देखना, आदरसे बोलना। अभिमानकी बात मुँहसे न निकालना।

मालिनने कहा—हे राजा! सुनो, रानीको गोबर काढ़नेकी टोकरी थमा दूँगी, वह मेरी गोबर काढ़ा करेगी।

राजाने कहा—एक तो कोमलांगी, दूसरे फूल-ऐसी सुन्दर, उसके ओंठसे मानो गुलाब चूता है; भला, वह गोबर कैसे काढ़ेगी?

पुरुषने जल्दी-जल्दी घोड़ा कसा, ज़ीन रखा और कहा—मालिन! तुम अपनी झोंपड़ीमें बैठी रहो, मैं ज़रा अपना देश देख आऊँ।"

इस गीतमें तीन व्यक्तियोंके मनोभावोंके चित्र खींचे गये हैं। मालिनने पुरुषको बिरमा रखा है। यह समाचार पतिव्रता स्त्री सुनकर न अपने पतिपर क्रोध करती है, न मालिनपर। उलटे वह मालिनको अपने पतिकी प्रियतमा समझकर उसे आदर देनेको उत्कंठित होती है। शुद्ध प्रेमका यही रूप है। सच्चे प्रेमी लोग अपने प्यारेके कुत्ते-बिल्लियों तकको प्यार करते हुए पाये जाते हैं, यहाँ तो स्त्री स्त्रीका प्रसंग है। पतिव्रता स्त्रीके हृदयकी विशालता और उसकी सहनशीलता अवर्णनीय है।

दूसरा चित्र मालिनका है। वह स्वभावकी नीच है। पुरुषने जब उससे कहा कि मेरी विवाहिता स्त्री आ रही है, उससे आदरसे मिलो, तब मालिनने कहा कि उसे गोबर काढ़नेका काम दे दूँगी। यहाँ पुरुषका विवेक जागता है। वह मालिनका प्रतिवाद ही करके चुप नहीं रहता, बल्कि उसे छोड़ भी देता है। इस गीतमें सती और कुलटाका अन्तर और पुरुषके हृदयमें विवेकका जागरण कैसी सुन्दरतासे चित्रित किया गया है!

ज़रा 'ओंठवन चुवत गुलाब' का भी रस लीजियेगा। मालूम होता है 'मुखसे फूल झड़ता है', यह मुहावरा इसीसे उत्पन्न हुआ है, पर 'चुवत' का माधुर्य 'झड़ने' में नहीं है।

दक्षिण, उत्तर और मध्य भारतके ये चार गीत सहृदय पाठकोंको ग्राम-गीतोंकी सरसता बतानेको पर्याप्त होंगे। ऐसे-ऐसे मनोहर गीत जंगलके फूलकी तरह बिना आदर पाये ही नष्ट हो जाते हैं। क्या यह कम दुर्भाग्यकी बात है?

मैंने गत पाँच-छे वर्षोंमें ग्राम-गीतोंके संग्रहका काम किया है, पर वह समुद्रमें एक बूँदके बराबर भी नहीं है। जितना ही मैं ग्राम-गीतोंके समुद्रमें उतरता गया, उतनी ही उसकी गहराई बढ़ती गई। अन्तमें अब तो मैं यहाँ तक आ पहुँचा हूँ कि ग्राम गीतोंका संग्रह एक व्यक्तिका काम नहीं, बल्कि देशव्यापिनी एक संस्थाका काम है। और न दस-पाँच वर्षोंका काम है, बल्कि इसके लिए लगातार बीसियों वर्षों तक उद्योग किया जायगा, तब कहीं जनताके अन्तस्तलमें गूँजते हुए गीत हाथ आयेंगे।

ग्राम-गीतोंके संग्रहके लिए एक स्वतन्त्र 'ग्राम-गीत समिति' की बड़ी आवश्यकता है। इसकी शाखाएँ प्रत्येक ज़िलेमें खोली जानी चाहिए, और उनमें सरकारी अधिकारियोंको भी रखना चाहिए, क्योंकि उनकी सहानुभूतिसे पटवारियों और मुदर्रिसों-द्वारा ग्राम-गीतोंके संग्रहमें बड़ी सहायता मिलेगी। राजपूतानेके गीतोंके लिए मारवाड़ियोंको अपना अलग संगठन करना चाहिए। ग्राम-गीत प्रत्येक समाजकी अमूल्य सम्पदा है। उसे नष्ट होनेसे बचा लेना देश और समाजकी बड़ी-भारी सेवा है।

कष्टका मूल्य

श्री सियारामशरण गुप्त

रामनारायणको स्टेशनपर गाड़ीके लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वे और गाड़ी एक ही साथ प्लेटफार्म पर पहुँचे।

कुलीने शिशु-पुत्रको गोदमें लिये उनकी पत्नी गोमती और उन्हें असबाबके साथ ही भीतर डिब्बेमें ढकेल दिया। जिस तरह कपड़ोंसे ऊपर तक भरे हुए टीनके ट्रंकमें तह किया हुआ एकआध कपड़ा रखकर आसानीसे ढक्कन लगा दिया जा सकता है, उसी तरह रेलके भरे हुए थर्ड-क्लासके डिब्बेमें जब चाहे तब चार-छै आदमी ठँस जा सकते हैं। गोमतीको बेंचपर बिठाकर रामनारायणको अपने लिए जगह निकालनेमें बहुत दिक्कत नहीं हुई। वे बैठे, और सीटी देकर गाड़ी चल दी, मानो वह उन्हींके बैठनेके इन्तजारमें खड़ी थी।

पत्नीको साथ लेकर रामनारायणकी यह पहली ही यात्रा था। घरमें गुरुजनोंके बीचमें उन्हें अपना आनन्द-मिलन ओटके भीतर संकुचित सीमामें आबद्ध-सा प्रतीत होता था, इसलिए आज घरसे बाहर होते हुए भी वे प्रसन्न-वदन थे। बीच-बीचमें इस प्रसन्नतापर अपने-आप लज्जित होकर वे उसे दबा देना चाहते थे, परन्तु कृतकार्य न होते थे। जिस तरह चलती हुई पिचकारीके ऊपरी रन्ध्रको सहसा हथेलीसे दबा देनेपर जल इधर-उधरकी अनजान सन्धियोंमें से जोरके साथ निकल पड़ता है, उसी तरह आज ज़रा-ज़रासी बातपर आनन्द फूटा पड़ता था। जिन लोगोंने बैठनेके लिए उन्हें थोड़ीसी जगह दी थी, उनकी यह साधारण शिष्टता आज उन्हें बहुत अधिक जान पड़ी। 'आपको कष्ट तो नहीं हो रहा है?' इत्यादि प्रश्नोंके साथ शीघ्र ही उन्होंने मधुरालापका रंग जमा दिया।

गोमतीके लिए भी यह यात्रा कम आनन्दकी न थी। चारों ओर आदमी-ही-आदमी होनेपर भी इस समय वह अपने स्वामीको निकटतर अनुभव कर रही थी। उसका शरीर आनन्दसे कंटकित हो रहा था, मानो वह स्वामीके साथ अनन्त आकाशमें वायुयानपर बैठकर विहार करने जा रही थी!

रामनारायण लोगोंके साथ बात कर रहे थे, गोमतीने खिड़कीकी ओर मुँह करके बाहर दृष्टि डाली। गाड़ी वनके बीचमें होकर जा रही थी। जगह ऊबड़-खाबड़ नीची-ऊँची थी। वृक्ष पास-पास न थे। फिर भी जान पड़ता था कि सब अपना सौन्दर्य दिखानेके लिए खिसककर अभेद्य भीड़ सी करके एकके ऊपर एक गिर पड़ते थे। मानो वनकी समस्त शोभा और सौन्दर्य उसीकी ओर दौड़े आ रहे थे! बीच-बीचमें खेतोंपर काम करते हुए स्त्री-पुरुष उत्सुक दृष्टिसे गाड़ीकी ओर देखते हुए दिखाई देते। नया न होनेपर भी आज यह सब उसके लिए नयेसे अधिक था। एक जगह घोड़ीके पीछे-पीछे उसका बच्चा जा रहा था। इतना छोटा घोड़ा (!) उसने पहले कभी न देखा था। शिशुका मुँह उस ओर करके उसने धीरेसे कहा—"देख, वह तेरा घोड़ा!" छोटा घोड़ा और उसके छोटेसे सवारकी कल्पना करके वह हँस पड़ी।

गाड़ी कितने ही स्टेशनोंपर रुककर अनेक आदमियोंको चढ़ाती-उतारती हुई आगे बढ़ी जा रही थी। यात्रियोंमें देशकी समस्याओंपर गम्भीर विचार हो रहे थे। न जाने कितने प्रस्ताव-उपप्रस्ताव उपस्थित हो चुके थे, कितने ही नेताओंपर पुष्प-वृष्टि हो चुकी थी और कितनों ही की नेतागिरीकी सनद जब्त! स्वराज्य-आन्दोलनके सम्बन्धमें वाद-विवादका रूप उग्र हो उठा। स्वराज्यके विरोधी जिस तेजीसे अपना पक्ष समर्थन कर रहे थे, उसे देखकर रामनारायणको आनन्दित ही होना चाहिए था। देशके ही भीतर इतना ओज और

उत्साह संचित है, फिर निराशाका काम क्या? परन्तु वे उस उत्साह और ओजको परास्त करनेके लिए प्राणपणसे लगे हुए थे।

धीरे-धीरे धीमी पड़कर गाड़ी एक छोटे स्टेशनपर रुक गई। गाड़ीकी घड़घड़ाहट यात्रियोंके वाग्युद्धमें मारू बाजेका काम कर रही थी। उसके बन्द होते ही तर्क और युक्तियोंके शस्त्रास्त्र जहाँके तहाँ छोड़कर लोग प्लेटफार्मपर दृष्टि डालने लगे। इस स्टेशनपर चढ़नेवाले यात्रियोंकी संख्या बहुत अधिक थी। अर्थात् व्ययकी अपेक्षा आयका परिमाण बहुत अधिक था। यात्रीगण गठरी-पोटली लिये हुए बदहवास होकर इस डिब्बेसे उस डिब्बेकी ओर दौड़ रहे थे। गाड़ीके लोग डिब्बोंके दरवाज़ोंपर डटकर बाहरवालोंके इस प्रचण्ड आक्रमणका वीरताके साथ सामना करने लगे। बाहरवाले अनुनय करते, विनय करते; जोर-ज़बर्दस्ती भी कर रहे थे। दृढ़निश्चयीकी भाँति अन्तमें विजय उन्हींको प्राप्त हुई। डाँट-फटकारकी गोलियोंकी बौछारमें निर्भयता-पूर्वक वे गाड़ीपर सवार हो ही गये।

जिस समय संग्राम हो रहा था, रामनारायणने विपक्षियोंके एक दलको स्वयं बुलाकर भीतर चढ़ा लिया। जयचन्दके कार्यकी यह विशुद्ध पुनरावृत्ति देखकर कुछ लोग उनपर बेहद बिगड़ उठे। एक बोला—"बस, बहुत हो चुका। बहुत देशभक्ति छाँटनेकी ज़रूरत नहीं है। अब दरवाज़ा बन्द कर दीजिये।"

रामनारायणने कहा—"भाई साहब! क्रोध न कीजिये। अपने भाइयोंकी यह तुच्छ सेवा भी आप सहन नहीं कर सकते!"

"यह 'तुच्छ सेवा' आप अपने दौलतखाना शरीफपर ही कीजियेगा। यहाँ आप किसी दूसरेका दम नहीं घोंट सकते।"

"अच्छा लीजिये, लीजिये" कहकर दरवाज़ा बन्द करते हुए रामनारायणने एक स्त्रीको और भीतर चढ़ा लिया। सब लोगोंके विरुद्ध काम करनेके कारण गोमती मन-ही-मन खीझ रही थी। हिन्दुस्तानियोंमें ऐक्य न होनेका ज्वलन्त उदाहरण उसके सामने था। सोच रही थी—"दस आदमियोंमें मिलकर बैठ सकते नहीं, और चाहते हैं स्वराज्य!"

युद्ध बन्द हो जानेपर भी अशान्ति-कोलाहल तुरन्त नहीं थम जाता। डिब्बेमें बड़ी गड़बड़ मची हुई थी। उस तुमुल ध्वनिमें रामनारायणने सहसा सुना—"अरे मेरा लोटा!"

यह वही स्त्री थी, जिसे रामनारायणने अभी-अभी चढ़ आने दिया था। उसके चेहरेपर हवाई उड़ रही थी। राजाको अपने राज-पाट जानेका भी इतना दुःख न होगा, जितना उसे अपने लोटा छूट जानेका हो रहा था। उसने दरवाज़ेकी ओर बढ़नेकी चेष्टा करते हुए कहा—"भैया, मुझे झटसे उतर जाने दो, मेरा लोटा बाहर छूट गया है।"

रामनारायणने दरवाज़ेकी खिड़कीसे मुँह निकालकर बाहर देखा। पानीके नलके पास दूर एक जगह उसका लोटा अकेला पड़ा हुआ था। रामनारायण उसके उतरनेके लिए दरवाज़ा खोलने लगे। लोगोंने समझा अब और किसीको चढ़ाया चाहते हैं। अनेक कंठ एक साथ गरज उठे—"मत खोलो, दरवाज़ा मत खोलो!"

रामनारायणने सोचा—नीचे उतरकर यह फिर भीतर न आ सकेगी, इसलिए मैं ही इसका लोटा उठा लाऊँ, परन्तु छोटी श्रेणीके आदमियोंके काम करनेका उन्हें अभ्यास न था। फलतः मनमें कुछ संकोच हुआ। एक क्षणमें उन्होंने फिर सोचा—मुझे हाथ धोकर पानी भी तो पीना है। उनकी समस्या हल हो गई, मुँह हर्षसे उद्दीप्त हो उठा। उससे कहा—"ठहरो, मुझे पानीके लिए जाना है। लोटा मैं ही लेता आऊँगा।" कहकर वे तेज़ीसे नीचे उतर गये।

रामनारायण स्वप्नाविष्ट-से होकर सीधे नलके पास आ खड़े हुए। जो विचार हमारे मनमें आते हैं, वे अपनी मर्ज़ीका काम हमारे द्वारा कब करा लेते हैं, यह बात कभी हमें मालूम भी नहीं होने पाती। लोटा उठानेकी प्रधान बात उन्हें भूल गई। मुँह धोनेके बहानेसे ही उन्हें अपनी ओर

खींच लिया। उस समय नलपर कोई आदमी न था। बिना बाधाके हाथ पैर धोकर आँखोंमें छींटे दिये और कुल्ला करने लगे।

एकाएक गाड़ीकी सीटी सुनकर वे चौंक पड़े, लोटा उठाकर गाड़ीकी ओर दौड़े, उनका डब्बा उनसे बहुत दूर था। दौड़ते-दौड़ते उन्होंने देखा, गाड़ी विशालकाय अजगरकी तरह रेंग रही थी, अब उन्हें पीछा करते देखकर भयंकर भक् भक्के साथ तेज हो उठी। रामनारायण घबराहटमें भूल गये कि उनका डब्बा कौन है, बाहरकी छड़ पकड़कर एक डब्बेके पैदानपर खड़े हो गये। भीतर कुछ सिपाही थे, उनका फौजी हुकार सुनकर उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। नीचे उतरकर वे फिर अपने डब्बेकी ओर दौड़े। गाड़ी तब तक अपनी अलस-मंथरता छोड़ चुकी थी। अचानक एक जमादारने पीछेसे उनका हाथ पकड़कर कहा—"बाबू, चलती गाड़ीमें चढ़नेका हुक्म नहीं है।"

प्रयत्न करके भी रामनारायण उसके हाथसे छूट न सके। उन्होंने देखा, गाड़ी भक्भक् करती हुई प्लेटफार्म पार कर गई। दूर तक रेलकी पटड़ी दिखाई देती थी। वृक्ष-श्रेणियोंके बीचमें बने हुए लौहपथपर गाड़ी बढ़ी जा रही थी। उन्हें जान पड़ा, किसीने उनका हृदय काटकर दो टुकड़े कर दिया है। मानो उन्हींके ऊपर अपना प्रलयचक्र चलाती हुई गाड़ी दौड़ रही है। भयंकर आँधी जिस तरह पीछे [illegible] यह नहीं देखती कि कौनसी लता टूटी और कौनसा [illegible] उखड़ा, उसी तरह धड़धड़ाती हुई गाड़ीको भी पीछे देखनेका अवकाश नहीं था! रामनारायण अपनेको सँभाल न सकनेके कारण वहीं सुरम बिछी हुई पृथ्वीपर धमसे बैठ गये।

[illegible] कोई भारी चोट लगती है, तब कुछ देरके लिए [illegible] हो जाती है, मानो वह उतनेमें जड़ कठोर [illegible] अभ्यास करती है। उस अभ्यासके द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है, यदि वह न हो तो कदाचित् चोटके कारण बचना कठिन हो जाय। रामनारायणको पहले मालूम हुआ कि पृथ्वी पैरोंके नीचेसे खिसक रही है, मानो दौड़कर रेलका पीछा करेगी! बादमें उन्हें यह याद न रहा कि वे कहाँ हैं। देखनेवालोंकी दृष्टिमें यद्यपि वे बेहोश नहीं हुए थे, परन्तु कई घण्टे किस तरह निकल गये, उन्हें इसका ज्ञान न हो सका।

उस क्षणिक तन्द्राके अनन्तर वे चौंक-से पड़े। उन्हें जान पड़ा कि वे नींदमें झँप गये थे। गाड़ीकी आवाज़ अभी उनके कानों तक पहुँच रही थी। उनकी मूर्खताकी कुकीर्ति-कालिमाकी तरह इंजनका धुआँ आकाशमें विस्तृत होकर अभी फैल रहा था। फिर भी उन्हें जान पड़ा कि उन्होंने बहुत विलम्ब कर दिया है। दुर्दान्त दस्यु देखते-देखते उनका सर्वस्व छीनकर ले गया और वे निरीह पथिककी तरह खड़े-खड़े देखते रहे। न विरोध किया, न पीछा ही।

अब जमादारके ऊपर क्रोध-भरी दृष्टि डालते हुए गरजकर उन्होंने कहा—"क्यों जी, तुम हमें रोकनेवाले कौन होते थे? गाड़ीमें तो मेरी स्त्री और बच्चा था।"

सब हाल सुनकर जमादार खेद प्रकट करने लगा। बोला—"मुझे क्या मालूम था कि ऐसी खराबी हो जायगी, बाबू? अभी उस दिन इसी तरह एक आदमी बिना टिकट गाड़ीपर चढ़ रहा था कि पैर फिसल पड़ा। सारा तन लोहू-लुहान हो गया और आगेके दो दाँत टूट गये। इसीसे कुछ सख्ती करनी पड़ती है। न करें तो नौकरीसे निकाल दिये जायँ। अब पहलेके-से रहमदिल अफ़सर कहाँ हैं? एक वाल्टन साहब थे—"

वाल्टन साहबकी कीर्ति-कथा सुननेका उन्हें अवकाश न था।

अगला स्टेशन बारह मील दूर था। स्टेशनवालोंकी सलाहसे रामनारायणने वहाँ तक पैदल जानेका निश्चय किया। दूसरी गाड़ीके आनेमें अभी आठ घंटेकी देर थी। अगले स्टेशन-मास्टरको एक तार गोमतीको उतार लेनेके लिए देकर रेलकी पटरीके बगलके मार्गसे वे चल पड़े।

सूर्य अस्त हो गया था। अँधेरी रातका आयंकाल

था। शीघ्र ही घने अंधकारकी सम्भावना थी। स्थान अपरिचित था। फिर भी वे अपने पूरे वेगसे चलने लगे।

उनके हृदयमें बिच्छूके डंककी-सी वेदना हो रही थी। हाय! बेचारी गोमतीका क्या होगा? वह कभी घरकी देहलीके बाहर नहीं हुई और आज उसे अपरिचितोंके बीच छोड़ दिया। भैयाने कहा था—साथमें एक आदमी लिये जाओ। मैंने नहीं माना। अब जब उनके पास मेरी इस मूर्खताका समाचार पहुँचेगा, तब वे क्या कहेंगे? यात्रियोंको मैंने कितनी नई बातें सुनाईं। अब वही कितना व्यंग्य-विद्रूप कर रहे होंगे। कह रहे होंगे—अपनी सेवा तो अपनेसे बनती नहीं, दूसरेकी 'सेवा' करने चले हैं!—यद्यपि चारों ओर सन्नाटा था, झींगुरोंकी अविच्छिन्न झंकारमें संसारके सारे स्वर विलीन हो गये थे, फिर भी उनके कानोंमें उस डब्बेके यात्रियोंका प्रचंड हास्य स्पष्टतः प्रवेश कर रहा था! उन्होंने फिर सोचा—कहीं गोमती वहाँ न मिली! किसी गुंडेके जालमें फँस गई तो!—वे एकदम अवसन्न हो गये। पैर एक-एक मनके भारी हो उठे। फिर और कुछ न सोच सके। अपने बैठे हुए हृदयके साथ वे वहीं बीच पथपर एक जगह बैठ गये।

चारों ओर निर्जन वन था, ऊपर आकाशमें तारे टिमटिमा रहे थे। उनके प्रकाशमें इतना ही दिखाई दे रहा था कि चारों ओर अन्धकार है, और कुछ नहीं! थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर कहींसे बल संचय किया। उस ऊबड़-खाबड़ पथपर पड़े हुए प्रस्तरखंडोंपर पैर रखते हुए, उन्हीं जैसे कठोर होनेकी चेष्टा करते हुए, वे फिर चलने लगे।

लगभग आधी रातके समय रामनारायण उस स्टेशनपर पहुँचे। सीधे मुसाफिरखानेमें चले गये। वहाँ यात्रीगण जागते हुए किसी विषयपर मनोयोगके साथ बातचीत कर रहे थे। एक आदमीसे पूछा तो मालूम हुआ कि उन्होंने जिस गाड़ीमें गोमतीको छोड़ा था, वह तीन-चार स्टेशन आगे दयालपुरके पास एक माल गाड़ीसे लड़ गई है। दो डब्बे चकनाचूर हो गये हैं और सैकड़ों आदमी हताहत! इस समाचारको सुनकर वे जहाँके तहाँ, जैसेके तैसे खड़े रह गये। मुसाफिरखानेमें उन्हें गोमती नहीं दिखाई दी। फिर भी उन्होंने अपनेको सँभालकर दो-तीन बार वहाँ फिर देखा। यदि छोटीसी सूई होती, तो वह उनकी तीक्ष्ण दृष्टिसे अगोचर न रहती, परन्तु वह तो गोमती थी! उन्हें वहाँ उसका पता न चला।

जिस तरह बानरी मरे हुए बच्चेको भी छातीसे चिपकाये रहती है, उसी तरह मनुष्य नष्ट-हुई आशाको भी नहीं छोड़ना चाहता। यद्यपि रामनारायणके मनमें निराशाने अपना पूरा अधिकार जमा लिया था, फिर भी गोमतीको देखनेके लिए वे स्टेशनके भीतर घुसे। प्लेटफार्मकी लालटेनें बुझी हुई थीं। स्टेशन-मास्टरके आफिसमें सरकारी लैम्प मन्द-मन्द प्रकाश दे रहा था। माल-भरे बोरोंकी एक थाकपर स्टेशनके दो निम्न कर्मचारी लेटे हुए थे। ड्यूटीपर असिस्टेन्ट स्टेशन-मास्टर थे। वे एक आराम-कुर्सीपर सोनेके ढंगसे लेटे हुए थे। हाथकी छोटी लालटेन बगलमें रखे हुए एक जमादार बैठे-बैठे निद्रा लेनेका अभ्यास कर रहा था। रामनारायणके पैरोंकी आहटसे वह चौंका। उसने हाथके इशारेसे रामनारायणको बुलाया। बोला—"तुम यहाँ भीतर कैसे चले आये? जाओ, बाहर मुसाफिरखानेमें!"

उसके अफ़सर लोग जिस भाव-भंगीके साथ उसे हुक्म दिया करते हैं, जमादारने उसे खूब अच्छी तरह प्राप्त कर लिया था, बल्कि कहना यह चाहिए कि इस विषयमें वह अपने गुरुओंसे भी योग्य था। उसके ऐसे अप्रत्याशित भाषणसे चिढ़कर रामनारायणने कहा—"हमें स्टेशन-मास्टरसे बहुत ज़रूरी काम है।"

धीमे स्वरमें जितना भी ज़ोर भर सकना सम्भव है, उतना भरकर जमादारने कहा—"बाबू सो रहे हैं। बैठो, उधर मत जाओ, नहीं तो अच्छा न होगा। रातको कोई काम नहीं होता।"

रामनारायणका चित्त इस समय ठीक न था। जमादारकी

बातपर बुरा मानने-योग्य उनकी अवस्था न थी। नरमीके साथ अनुनयके स्वरमें कहा—"शामको पैसेन्जर-गाड़ीसे स्टेशनपर कोई स्त्री तो नहीं उतरी थी ?"

"नहीं उतरी।"

"नहीं उतरी !"

"हाँ, नहीं उतरी, नहीं उतरी। ज्यादा शोर न करो। छोटे बाबू जग जायँगे।"

कुछ सोचकर एकाएक तेजीके साथ पदशब्द करते हुए वे स्टेशन-मास्टरके दफ्तरमें घुस गये। कुर्सीके पास खड़े होकर जोरसे बोले—"बाबू साहब ! बाबू साहब !"

बाबू साहबने आँखें खोलकर इस तरह देखा, मानो वे लेटे ही थे; सोते न थे। परिचितकी तरह रामनारायणकी ओर देखकर मुसकराते हुए उन्होंने कहा—"अच्छा, आप आ गये ! आपका तार तो आ गया था, परन्तु आपने डब्बेका नम्बर नहीं लिखा था।"

बाबूके मुँहपर समवेदना या दुःखका कोई चिह्न न देखकर रामनारायणका पित्त बिगड़ उठा, बोले—"क्या मैं यही सोचकर गाड़ीमें सवार हुआ था कि ऐसी घटना हो जायगी, जो गाड़ीका नम्बर देखकर याद रखता ? आप लोग यदि हरामका ही न खाना चाहें, तो बिना नम्बरके भी बहुत कुछ कर सकते थे।"

"जबानसे बोलिये, हम लोग आपके मातहत नहीं हैं। गलती करते हैं आप, दोष मढ़ते हैं हमारे मत्थे !"

इसी समय बाहरसे आवाज आई—"अरे, बाबू आ गये ! बाबू आ गये !"

रामनारायणने देखा—"वही स्त्री है, जिसका लोटा लेने जाकर इस विपत्तिमें फँसना पड़ा है। पास आकर बोली—"चलिये बाबू, बहूजीके पास चलिये। वे आपके लिए घबरा रही हैं।"

रामनारायण मारे आनन्दके उछल पड़े। बोले—"उन्हें उतार लिया था ? कहाँ हैं ?"

"बड़े बाबूकी कोठी (क्वार्टर) में हैं। बड़ा अच्छा हुआ बाबू, जो तुम गाड़ीपर नहीं चढ़ सके। वो गाड़ी तो बाबू, दो तीन स्टेशन आगे जाकर माल-गाड़ीसे लड़ गई, बच गये बाबू, बच गये। भगवान मालिक हैं—"

अब छोटे बाबू हँस पड़े। बोले—"इसने इतने जल्द समाचार सुनाकर सब गड़बड़ कर दिया, नहीं तो आज बिना मीठा मुँह किये इन्हें न छोड़ता। खैर, मालूम तो भले आदमी होते हैं,—अपना ऋण बिना चुकाये न रहेंगे।"

रामनारायणने कृतज्ञतासे झुककर कहा—"बाबू साहब, आजका ऋण तो मैं अपना सर्वस्व देकर भी नहीं चुका सकता। इस लोटेको ही देखिये। इसे ऊपर तक मोहरोंसे भर दूँ, तो भी इसका पूरा मूल्य नहीं चुका सकता।"

छोटे बाबूसे छुट्टी पाकर उस स्त्रीके साथ रामनारायणने स्टेशन-मास्टरके क्वार्टरमें गोमतीको देखा। उसके कपोलोंपर उसके पूर्व रोदनका इतिहास स्पष्ट अंकित था। जाकर वे एकदम उससे लिपट गये ! उसकी आँखोंसे झर-झर आनन्द-अश्रु झरने लगे।
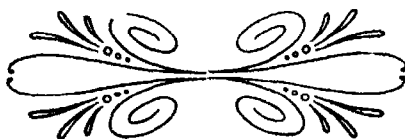
स्वर्गीय प्रो० पूर्णसिंह

श्री पद्मसिंह शर्मा

उस दिन डाकमें आये हुए समाचारपत्र देख रहा था। १२ अप्रैलके 'दैनिक हिन्दी मिलाप'में एक नोटपर नज़र पड़ी, 'स्वर्गीय प्रो० सम्पूरण सिंह'। नोट पढ़कर पर्चा रख दिया। दूसरे अख़बार देखने लगा, कुछ देर बाद कुछ ध्यान आया और मिलापका वह अंक फिर ध्यानसे पढ़ा। पहली बार सरसरी तौरसे पढ़नेपर 'सम्पूरण सिंह' इस नये नामके शीर्षकके कारण बात समझमें न आई थी। अब समझा तो चित्तपर एक चोट लगी, प्रो० पूर्णसिंहका चित्र और चरित्र आँखोंके सामने फिर गया। हृदयकी एक विचित्र दशा हो गई। प्रो० पूर्णसिंहके सम्बन्धकी बहुतसी बातें याद आने लगीं। सन् १९०६ की बात है, प्रो० पूर्णसिंह देहरादूनके फारेस्ट-कालेजमें इम्पीरियल फारेस्ट केमिस्टके पदपर थे, वहीं उनसे परिचय प्राप्त करनेका अवसर मिला था। उन दिनों 'सरस्वती'-सम्पादक श्रद्धेय पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी स्वास्थ्य सम्पादनार्थ मेरे आग्रह और अनुरोधपर ज्वालापुर-महाविद्यालयमें आकर एक मासके लगभग ठहरे थे। एक दिन देहरादून जानेका प्रोग्राम बना। द्विवेदीजी और मैं, दोपहर बादकी गाड़ीसे ४ बजेके क़रीब देहरादून पहुँचे। देहरादूनकी इस यात्राका उद्देश्य प्रो० पूर्णसिंहसे मिलना भी था। आर्यसमाज-मन्दिरमें असबाब रखकर हम लोग पूर्णसिंहसे मिलने उनके बंगलेकी ओर चले। बंगलेके पास पहुँचकर पचास क़दमकी दूरीसे देखा कि प्रोफ़ेसर साहब अपने बंगलेकी ओर धीरगतिसे आ रहे हैं। हम अभी कुछ फ़ासलेपर थे। पूर्णसिंहजी अपने बंगलेके दरवाज़ेपर पहुँच चुके थे, इतने ही में उनके बंगलेसे एक काषाय वेशधारी साधु आता दिखाई दिया। साधु जल्दी-जल्दी कुछ बड़बड़ाता हुआ आ रहा था, बंगलेके दरवाज़े पर प्रोफ़ेसर साहबका और साधुका सामना हो गया। प्रोफ़ेसर साहब साधुसे कुछ सुनकर आवेशकी-सी दशामें आ गये। साधुको बंगलेकी ओर लौटानेके लिए आग्रह करने लगे, साधु क्रोधमें था, लौटना न चाहता था और पूर्णसिंह उससे लिपट रहे थे और मना रहे थे। हम यह तमाशा देखकर जल्दी-जल्दी बंगलेकी ओर बढ़े। जब पास पहुँचे, तो पूर्णसिंह होशमें न थे, ज़मीनपर लोट रहे थे, कोटके बटन तोड़ दिये थे, साफ़ा सिरसे दूर पड़ा था। यह विचित्र दशा देखकर हम लोग घबरा गये, कुछ भेद समझमें न आया, वह साधु भी कुछ चकित-सा क्रोधमुद्रामें पास ही खड़ा था। मैंने पूर्णसिंहको उठाने और होशमें लानेकी चेष्टा की। कुछ देर तक वह उसी दशामें पड़े रहे। मैंने उन्हें झँझोड़कर कहा—उठिये, आपसे मिलने द्विवेदीजी आये हैं। उन्होंने अब तक हमें पहचाना न था। उन्हें ख़याल तक न था कि हम उनके पास खड़े हैं। अब उन्हें कुछ होश आया और एकदम घबराकर उठ बैठे, हाथ मिलाकर बोले—'आप कब आये।' फिर द्विवेदीजीकी ओर झुके, प्रणाम किया और कहा—'क्षमा कीजिये, मुझे मालूम न था कि आप आ रहे हैं। मैं इस समय आपेमें न था—आत्मविस्मृतिकी दशामें पहुँच गया था।' यह कहते हुए हमें साथ लिये हुए बंगलेमें पहुँचे। बैठकर बातें होने लगीं: मैंने पूछा कि यह क्या बात थी? कहने लगे—'कुछ नहीं, यह साधुजी नाराज़ होकर जा रहे थे, मैं मकानपर न था। यह आये, इनका किसीने सत्कार न किया। इन्हें किसीने कुछ कह दिया, यह अपमानसे खिन्न होकर जा रहे थे। इससे मेरे हृदयपर बड़ी वेदना पहुँची कि किसी गृहस्थके घरसे कोई अभ्यागत साधु इस प्रकार खिन्न होकर लौटे, यह मुझे सह्य नहीं।' साधु महाराज भी लौट आये थे। पास बैठे हुए उफन रहे थे, उनका रोष अब भी पूरी तरह शान्त न हुआ था। चेहरेका रंग कपड़ोंसे भी ज़्यादा लाल हो रहा

था। साधुकी इस उद्दण्डता और धूर्ततापर मैं मन-ही-मन उसे धिक्कार रहा था। श्री द्विवेदीजीको भी उसपर क्रोध आ रहा था। वह भी उसकी खुलकर भर्त्सना करना चाहते थे। साधुके क्रुद्ध होनेका कारण जब मालूम हुआ, तो हमें उसपर और भी क्रोध आया। बात कुछ भी न थी। यह साधु अकसर पूर्णसिंहके यहाँ आते और नरम चारा चर जाते थे। पूर्णसिंहको साधुओंपर बड़ी आस्था और श्रद्धा थी। उन दिनों उन्हें पाँच सौसे अधिक वेतन मिलता था, जिसका अधिकांश साधु-महात्मा लोग ही उड़ा जाते थे। उस दिन जो यह साधु आये, तो पूर्णसिंहजी अभी दफ्तरसे नहीं लौटे थे। प्रोफेसर साहबके पिताजी भी उन दिनों वहीं आये हुए थे। उन्हें इन साधुओंमें कुछ ऐसी श्रद्धा न थी। पूर्णसिंहकी साध्वी पत्नी बाल-बच्चोंको लिये हुए किसी और काममें लगी थीं, उन्हें इन दुर्वासा साधुके आनेकी खबर न हुई। प्रोफेसर साहबके पिताजीने इनका कुछ सत्कार न किया। बस, यही अपराध था, जिसपर साधुजी बिगड़ उठे थे। यह सब किस्सा सुनकर मैंने और द्विवेदीजीने उस साधुको फटकार बताई, और प्रोफेसर साहब अब भी अपने ही को दोषी समझ रहे थे। उनकी पतिप्राणा पत्नी भी अपने अपराधके लिए क्षमा माँग रही थीं। कुछ हमारी फटकारसे और कुछ इस अनुनय-विनयसे साधुके क्रोधज्वरका टेम्परेचर नार्मल हुआ, और कुछ खिसियाने-से होकर चले गये। द्विवेदीजीको प्रोफेसर साहबसे मिलनेका शायद यह पहला ही मौका था। कुछ देर बैठकर हम लोग भी चले आये। इस घटनाका द्विवेदीजीके कोमल और भावुक चित्तपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा, और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि वह देवी प्रोफेसर पूर्णसिंहकी पत्नी थीं, तो उनके आश्चर्यकी सीमा न रही! कहने लगे कि मैं तो यह समझा था कि यह कोई प्रोफेसर साहबके बच्चोंकी धाय और परिचारिका है। प्रोफेसर साहबके घरका सब काम—बच्चोंको खिलाना, रोटी बनाना और आनेवाले अभ्यागत साधु-सन्तोंकी सेवा-शुश्रूषा—उनकी पत्नी ही अपने हाथसे करती थीं, कोई दासी न थी, यह जानकर द्विवेदीजी गद्गद हो गये, और प्रोफेसर साहब तथा उनकी पतिप्राणा पत्नीकी सादगीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। ऐसा विद्वान् और एक उच्च पदाधिकारी प्रतिष्ठित सज्जन इस सादगीसे जीवन व्यतीत करता है, इस अदृष्टपूर्व घटनाका द्विवेदीजीपर बड़ा स्थायी प्रभाव हुआ, जिसकी चर्चा देहरादूनसे लौटनेपर भी बार-बार करते रहे।

प्रो० पूर्णसिंह बड़े ही सहृदय, भावुक और उदार प्रकृतिके पुरुष थे। उनका घर अभ्यागतोंकी शाला थी। मिलनेवालोंका ताँता लगा रहता था। कई सज्जनोंकी वे स्थायी रूपसे सहायता करते थे। साधुओंके लिए तो वे कामधेनु ही थे, जो उन्हें हमेशा दुहते रहते थे। उनका सब वेतन इन्हीं कामोंमें खर्च होता था। प्रो० पूर्णसिंह स्वामी रामतीर्थ महाराजके प्रधान और अन्तरंग शिष्य थे। स्वामी रामतीर्थकी तरह वेदान्तकी मस्ती उनपर सदा छाई रहती थी। वेदान्त-विषयक चर्चा करते समय उनकी वाणीमें अपूर्व तेज और प्रवाह आ जाता था, तल्लीनताकी दशामें झूमने लगते थे। एक बार ज्वालापुर-महाविद्यालयमें आये हुए थे। मैंने उनसे कहा कि आज व्याख्यान सुनाइये। कुछ इधर-उधरकी बातोंके बाद बातों-ही-बातोंमें वेदान्तका प्रसंग छिड़ गया। हम चार-पाँच आदमी थे, जो उस समय उनके पास बैठे थे। उन्होंने वेदान्तपर कहना शुरू किया। कोई एक घंटे तक आवेशकी-सी दशामें बड़े ही हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक प्रकारसे मस्तीमें झूम-झूमकर वर्णन करते रहे। हम लोग चित्रलिखित की सी दशामें बैठे सुनते रहे। बातोंका सिलसिला खत्म करके बोले—"लो, व्याख्यान हो गया। ऐसे व्याख्यान भीड़में नहीं हुआ करते, यह तो एकान्तमें कहने-सुननेकी बातें हैं।" बात सचमुच ऐसी ही है। उनका वह बातचीतका व्याख्यान बड़ा ही अद्भुत था। उन चार-पाँच श्रोताओंमें स्वर्गीय पं० भीमसेन शर्मा भी थे। वे भी सुनकर दंग रह गये और कहने लगे कि प्रोफेसर साहब इस व्याख्यानको लिखा दीजिये, 'भारतोदय' में प्रकाशित हो जायगा। प्रोफेसर साहब कहने

लगे—"अब किसे याद है, रटारटाया पेटेन्ट व्याख्यान तो था नहीं, न मालूम जोशमें क्या-क्या कह गया हूँ। उसी वक्त कोई लिखता जाता, तो हो सकता था।" पर लिखनेका होश उस समय किसे था? उस व्याख्यानकी बातें याद नहीं रहीं, पर उसकी धुँधली-सी स्मृति भी हृदयमें अनिर्वचनीय आनन्दका एक स्रोत-सा बहा देती है। उन दिनों प्रो॰ पूर्णसिंहपर रामतीर्थके वेदान्तकी मस्तीका बड़ा गहरा रंग चढ़ा हुआ था। उस रंगमें वे शराबोर थे। उनके आचार-विचार और व्यवहारमें वही रंग झलकता था। वे उस समय स्वा॰ रामतीर्थके सच्चे प्रतिनिधि प्रतीत होते थे। खेद है, आगे चलकर घटनाचक्रमें पड़कर वह रंग एक दूसरे रंगमें बदल गया। देहली-षड्यन्त्रके उस मुक़दमेमें जिसमें मास्टर अमीरचन्दको फाँसीकी सज़ा हुई, सबूत या सफ़ाईमें प्रोफेसर पूर्णसिंहकी भी तलबी हुई, मास्टर अमीरचन्द स्वा॰ रामतीर्थके अनुयायी भक्त थे। उन्होंने स्वामी रामतीर्थजीकी कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं, इस हिसाबसे मास्टर साहब प्रो॰ पूर्णसिंहके गुरुभाई थे। देहलीमें कभी-कभी उनके पास जाकर ठहरते भी थे, उस मुक़दमेमें प्रोफेसर साहबकी तलबीका यही कारण था। उस समय देशकी दशा कुछ और थी और वह मुक़दमा भी बड़ा भयानक था, बहुतसे निरपराध लोग भी उसकी लपेटमें आ गये थे। प्रो॰ पूर्णसिंहके फँसनेकी भी शायद सम्भावना थी या नौकरी छूटनेका डर था। यह देखकर प्रो॰ पूर्णसिंहके आत्मीय और मिलनेवाले—जिनमें सिक्ख सम्प्रदायके सज्जनोंकी संख्या अधिक थी—घबरा गये। उन्होंने प्रो॰ पूर्णसिंहपर ज़ोर डाला कि वे मास्टर अमीरचन्द और स्वा॰ रामतीर्थजीसे अपना किसी प्रकारका भी सम्बन्ध स्वीकार न करें, मजबूर होकर प्रो॰ पूर्णसिंहको यही करना पड़ा। उन्होंने अदालतमें ऐसा ही बयान दिया कि स्वा॰ रामतीर्थसे या उनके शिष्योंसे मेरा किसी प्रकारका भी सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार प्रो॰ पूर्णसिंह उस मुक़दमेकी आँचसे तो बच गये, पर उनके उन विचारोंकी हत्या हो गई। स्वा॰ रामतीर्थके वेदान्त-सिद्धान्तसे उनका सम्बन्ध सदाके लिए छूट गया, प्रो॰ पूर्णसिंहको वैसा बयान देनेके लिए मजबूर करनेवालोंमें एक सिक्ख साधु भी थे, उनकी संगति और शिक्षाने प्रो॰ पूर्णसिंहकी काया ही पलट दी। उन्होंने सब प्रकारसे उस सिक्ख साधुको आत्मसमर्पण कर दिया, बिलकुल उसीके रंगमें रंगे गये। जो कुछ वह कहता, वही करते, स्याह-सफ़ेदका वही मालिक था। पूर्णसिंह उसके हाथके खिलौने थे, इस दशामें जब मैं उनसे एक बार मिला, तो इस दशाविपर्यासको देखकर बड़ा ही आश्चर्य और खेद भी हुआ। पूर्णसिंहकी मिलनसारी इस दशामें भी वैसी ही थी। बड़े प्रेमसे मिले, पर बातोंमें वह मस्ती न थी। जिन्होंने पहले पूर्णसिंहको उस रूपमें देखा था, उन्हें इनका यह नवीन रूप किसी बृहत् पुस्तकका संक्षिप्त और भाषान्तरका संस्करण प्रतीत होता था। प्राय: देखा गया है कि अत्यन्त संवेदनाशील भावुक पुरुष जिधर झुकते हैं, हदपर पहुँच जाते हैं। अत्यधिक श्रद्धा-शीलता भी कभी-कभी मनुष्यके लिए संकटका हेतु हो जाती है। यही पूर्णसिंहके अनिष्टका कारण बनी। देहरादूनमें उन्हें सात सौ रुपये वेतन मिलने लगा था, पर वह सब उदारतामें यों ही उड़ जाता था, उन्हें इसकी ज़रा भी पर्वाह न थी। पूर्णसिंह अपने विषयके भी पूर्ण पंडित थे। उन्होंने एक आविष्कार भी किया था। अपने अंग्रेज़ अफ़सरसे उनकी कुछ अनबन रहती थी। पूर्णसिंह जैसे मनस्वी मनुष्यको अपने अफ़सरका अविवेकमूलक आचरण जब असह्य हो गया, तब वे इस्तीफ़ा देकर ग्वालियर स्टेटमें चले गये।

देहरा छोड़नेके कई वर्ष बाद तक कुछ पता न चला कि वे कहाँ हैं। एक बार अचानक ग्वालियरसे उनकी चिट्ठी आई, जिसमें लिखा था कि मैं अपने लेखोंका संग्रह प्रकाशित करना चाहता हूँ, आप इसमें सहायता दीजिये, लेखोंका सम्पादन और संग्रह करके किसी अच्छे प्रेसमें छापनेका प्रबन्ध कर दीजिए। संवत् १९६६ विक्रमीके 'भारतोदय' की अगहन-पौषकी संख्यामें उनका 'पवित्रता' शीर्षक एक सुन्दर लेख छपा था, उसमें अनुवादकी और प्रेसकी कुछ अशुद्धियाँ हो गई थीं। प्रो॰ पूर्णसिंहकी भाषा बड़ी प्रवाह और प्रभावयुक्त

होती थी। भावोंका तो कहना ही क्या है। मालूम होता था कि साक्षात् स्वामी रामतीर्थकी पवित्र वाणी सुन रहे हैं, पर नागराक्षरोंमें उन्हें हिन्दी लिखनेका उतना अच्छा अभ्यास न था। लेख उर्दू या अंग्रेज़ीमें लिखते थे। अंग्रेजीके वे धुरन्धर लेखक थे। 'भारतोदय'में मुद्रित उनका वह लेख उर्दूसे उल्था किया गया था, अनुवाद अच्छा न हुआ। उस लेखको मैं देख न सका था। मेरी अनुपस्थितिमें वह अनुवाद होकर छपा। लेख बहुत बड़ा था, उसका पूर्वार्द्ध ही छप सका था, सो भी विशुद्ध न छपा, इसकी पूर्णसिंहजीको बड़ी शिकायत रही। लेख छपनेके बाद एक दिन जब मिले, तो सम्पादन-कला और मुद्रण-कलापर एक लेक्चर दे डाला। मैंने सब दशा समझाकर उनसे क्षमा चाही, और आगेको सुसम्पादित रूपमें प्रकाशित करनेका वादा करके उस लेखका उत्तरार्द्ध उनसे मांगा, जिसे उन्होंने नज़रसानीके लिए मँगा लिया था। कहा कि इसे घटा-बढ़ाकर और परिष्कृत करके भेजूँगा, पर वह लेख उनसे फिर न मिल सका। ग्वालियरसे जो यह पत्र भेजा था, इसमें भारतोदयमें मुद्रित उस लेखका खास तौरपर ज़िक्र था। लेखकी कटिंग मँगाई थी और उसके उत्तरार्द्धका अनुवाद कराकर भेजनेकी बात लिखी थी। मैंने 'भारतोदय'का वह अंक उनके पास भेज दिया। उनका एक लेख 'सरस्वती' में भी छपा था। 'सरस्वती'की वह संख्या भी उनके पास न थी। उसका पता भी मुझसे पूछा था। अब उन्हें यह भी याद न रहा था कि 'सरस्वती' की किस संख्यामें किस भागमें वह लेख मुद्रित हुआ है। मैंने उसका पता भी उन्हें लिख दिया और निवेदन किया कि आप लेखोंका संग्रह कराकर जल्दी भेजिये, मैं उसका सम्पादन आपकी इच्छा-अनुकूल कर दूँगा, और किसी अच्छे प्रेसमें छपानेका प्रबन्ध भी करा दूँगा। मेरे उस पत्र और पैकेटकी पहुँच तो आ गई, पर फिर पता न चला कि लेख-संग्रहका क्या हुआ। बीचमें मैंने एक पत्र लिखकर पूछा भी, पर कुछ उत्तर न मिला। कुछ दिनों बाद अचानक उनका एक पत्र पंजाबसे आया, जिसमें ग्वालियर छोड़कर पंजाबके जड़ाँवालामें अपना स्वतंत्र कृषि-कार्य प्रारम्भ करनेकी सूचना दी थी। उसके बाद पूर्णसिंहका कुछ समाचार न मिला था। अब अचानक उनके परलोक प्रयाणका दु:खद वृत्तान्त 'हिन्दी मिलाप' में पढ़ा। 'मिलाप' का वह नोट इस प्रकार है :—

"लाहौर, ७ अप्रेल।

प्रो० प्रीतमसिंह लिखते हैं कि सरदार पूर्णसिंहकी मृत्युसे सिख-जातिकी भारी हानि हुई है। वे पंजाबी (गुरमुखी) और इंग्लिशके उच्च कोटिके लेखक थे। प्रो० पूर्णसिंहका जन्म सन् १८८१ में ऐबटाबादमें हुआ था, और ३१ मार्च सन् १६३१ को मृत्युके समय उनकी आयु प्राय: ५० वर्षकी थी। प्रोफेसर साहब पिछले कुछ दिनोंसे आर्थिक क्षतिके कारण कुछ अस्वस्थ रहते थे। प्रोफेसर पूर्णसिंहने टोकियो (जापान) की इम्पीरियल यूनिवर्सिटीमें सन् १६०० से १६०३ तक केमिस्ट्रीकी शिक्षा प्राप्त की थी। वहाँ वे स्वामी रामतीर्थसे मिले और वेदान्ती हो गये। सन् १६०४ में जब वे भारत लौटे, तो उनमें भारी परिवर्तन था। इसके बाद वे देहरादूनमें इम्पीरियल फारेस्ट केमिस्टके पदपर नियुक्त हुए, और वहाँसे रिटायर्ड होकर ग्वालियर चले गये। इसके बाद उन्होंने जड़ाँवाला (पंजाब) में अपना कृषिकार्य आरम्भ किया। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं, जो देश-विदेशमें सम्मानसे पढ़ी जाती हैं। उनमें से कुछ एकके नाम ये हैं—'स्वामी रामकी जीवनी, 'सेवन बास्केटस् सिस्टरस आफ स्पिनिंग व्हील' आदि'''।" यह है उस महापुरुषकी संक्षिप्त जीवनी। इस ज़रासे नोटके अतिरिक्त और कोई लेख किसी पत्रमें अभी तक देखनेमें नहीं आया। प्रो० प्रीतमसिंह उनकी मृत्युसे सिर्फ़ सिक्ख-जातिकी ही हानि हुई बतलाते हैं, पर यह विचार तो बहुत ही संकुचित है। प्रो० पूर्णसिंह सिख-जातिके ही नहीं, सम्पूर्ण देशके एक पुरुष-रत्न थे। उनकी मृत्युसे सहृदय पुरुषमात्रको, चाहे वह किसी जातिके हों, भारी हानि पहुँची है। प्रो० पूर्णसिंह केवल पंजाबी और इंग्लिशके ही उच्च कोटिके लेखक न थे, वह हिन्दी उर्दूके भी बहुत ही अद्भुत लेखक थे। उनके

एक ही लेखने हिन्दी संसारको चौंका दिया। सन् १९०६ के अक्टूबरकी 'सरस्वती' में उनका पहला लेख प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक 'कन्यादान' था और जिसका दूसरा नाम 'नयनोंकी गंगा' है। इस लेखकी उस समय धूम मच गई थी। यह लेख सचमुच ही नयनोंकी गंगा ही है। इसे पढ़कर पाषाण-हृदय भी पिघल उठते हैं। इस विषयका ऐसा लेख हिन्दीमें आज तक दूसरा नहीं देखा गया। केवल इसी लेखके आधारपर हिन्दी गद्यके एक इतिहास-लेखकने प्रो० पूर्णसिंहका हिन्दी गद्य-लेखकोंमें एक विशेष स्थान माना है, जो बिलकुल यथार्थ है। वह एक लेख ही प्रो० पूर्णसिंहके नामको साहित्य-सेवियोंमें अमर रखनेके लिए पर्याप्त है, हिन्दी गद्यके अनेक वृथा पुष्टपोथोंसे वह लेख कहीं अधिक मूल्यवान् है। 'भारतोदय'में जो उनका 'पवित्रता' शीर्षक लेख छपा है, वह भी अपने ढंगका निराला ही है। हिन्दीवालोंको चाहिए कि वह उनके लेख-संग्रहके प्रकाशनका उचित प्रबन्ध करके अपनी कृतज्ञता प्रकट करें। मालूम नहीं, पूर्णसिंह अपने फुटकर लेखोंका संग्रह कर गये हैं या नहीं। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, उन्होंने इसके लिए एक बार उद्योग तो किया था। यदि प्रो० पूर्णसिंहके किसी आत्मीय-स्वजनको उनके लेख-संग्रहके सम्बन्धमें कुछ मालूम हो, तो उनकी बड़ी दया होगी यदि सूचना देनेकी कृपा करेंगे।

प्रो० पूर्णसिंह भावुकता और प्रेमकी मूर्ति थे। जब मिलते थे, गद्गद हो जाते थे, आँखोंमें प्रेमजल झलकने लगता था, हार्दिक उल्लासकी हद न रहती थी। एक मनोरंजक घटना अकसर याद आ जाती है।

एक दफा मैं देहरादून गया हुआ था। शामके वक्त प्रो० पूर्णसिंहसे मिलनेके लिए गया। वे न मिले, कुछ देर इन्तज़ार करके चला आया। बंगलेपर कोई आदमी भी न था, जिसे अपने आनेकी और निराश लौटनेकी सूचना दे आता। मैंने पेंसिलसे काग़ज़के टुकड़ेपर यह शेर लिखा और कमरेके दरवाज़ेकी चिकमें रख दिया—

"नसीब हो न सकी दौलते-क़दमबोसी ;
अदबसे चूमके दरवाज़ा आस्ताना चले।"

घूम-फिरकर जब रातको सहृदय-शिरोमणि प्रो० पूर्णसिंह बंगलेपर पहुँचे और उस पर्चेपर उनकी नज़र पड़ी, तो पढ़कर तड़प गये। मुझे प्रातःकाल ही वहाँसे चल देना था। जहाँ ठहरा हुआ था, वह जगह उनके बंगलेसे दूर थी, इसलिए अपने ठहरनेके स्थानका उसमें पता न लिखा था। उसके बाद जब पूर्णसिंह मिले, तो कहते थे—"उस शेरको पढ़कर मैं रातभर बेक़रार रहा, मज़े ले-लेकर बार-बार पढ़ता और झूमता था। एक केफ़ियततारी हो गई। तमाम रात नींद न आई। दिल चाहता था कि अभी चलकर मिलूं, पर मालूम न था कि आप कहाँ ठहरे हैं! आपने मुझे ग़ैरहाज़रीकी यह अच्छी सज़ा दी!"

प्रो० पूर्णसिंह बहुत दिनोंसे चुप थे और अचानक चुपचाप ही चल दिये! उनके पुराने मित्रोंको मालूम भी न हुआ। अफ़सोस! "प्यारे पूर्णसिंहकी कहानी रह जायगी!"

× × ×

[प्रो० पूर्णसिंहकी 'Sisters of the Spining Wheel' नामक पुस्तककी भूमिकामें Ernest and Grace Rhys ने स्वयं पूर्णसिंहके लिखे हुए संक्षिप्त आत्म-चरितको उद्धृत किया है। यहाँ उस आत्म-चरितका सार दिया जाता है।

—सम्पादक]

"मेरा जन्म सन् १८८१ में ऐबटाबाद (सीमान्त प्रदेश) के समीप एक ग्राममें हुआ था। मेरा परिवार कभी ऐसा नहीं रहा, जिसे आप धनी कह सकें ; परन्तु अनुभूति और भावनाओंमें मेरे पूर्वज—विशेषकर मातृ-पक्षके—सदा धनी रहे हैं। मेरे पिता एक साधारण सरकारी नौकर थे, जो वर्षके अधिकांश भागमें सीमान्त प्रदेशकी पहाड़ियोंपर दौरा करते थे और फसल तथा भूमि-सम्बन्धी काग़ज-पत्रोंकी देखरेख किया करते थे। हम लोग अपनी माताके साथ एक पहाड़ी ग्राममें रहते थे। हमारी माता हम लोगोंका सब काम-काज करती थीं। वे हम लोगोंका भोजन बनातीं, कपड़े धोतीं और हमें प्रतिदिन पहाड़ी झरनेपर ले जाकर स्फटिक सदृश स्वच्छ ठंडे जलमें स्नान करातीं थीं। वे हमें प्रतिदिन प्रातःकाल गांवकी सिख-संगतमें ले जाकर गुरुके भजन सुनवातीं और तीसरे पहरको भी हम लोग गांवके अन्धीको उस महान् गुरुके शब्दोंको

माता

चित्रकार—श्री प्रसादकुमार

दोहराते हुए सुनते थे। रातके सन्नाटेमें हम लोग घरमें अंगीठीके चारों ओर बैठते थे। मेरी मा और बड़ी बहन उस समय चर्खे कातती थीं, जिसके सूतसे गांवके जुलाहेसे परिवारके लिए कपड़ा बिनवा लिया जाता था।

"आप देखेंगे कि अधिकांश समय मेरी मा अकेली रहती थी। वे हमारे समीप रहकर हमारी रक्षा करती थीं, परन्तु उनके समीप रहकर उनकी रक्षा करनेवाला केवल परमात्मा ही था। उनमें असाधारण साहस था, वे भूत-प्रेत या चोर-चकारसे बिलकुल निडर रहती थीं। समस्त ग्राम उनकी इज्जत करता था। देशका वह भाग पठानोंसे परिपूर्ण है, वे भी माकी वीरतापूर्ण 'स्पिरिट'की सराहना करते थे। ऐसी परिस्थितिमें पिताजी लम्बे अर्सेके बाद—स्वर्गसे गिरे हुए आकस्मिक आनन्दकी भांति—घर आते थे। उनके आनेपर हम बच्चे प्रसन्नताके मारे इधर-उधर चिल्लाते हुए उचकते फिरते थे—'बाबूजी आ गये! बाबूजी आ गये!' हम लोग उनसे गले मिलते, उनकी सीधी-सादी घोड़ीकी गर्दनसे चिपट जाते और इस प्रकार घर आनेपर उनका राजसी स्वागत करते थे।

"मेरे पिता केवल इतना ही उपार्जन करते थे, जिससे हम लोगोंके ग्रामीण जीवनका खर्च किसी प्रकार चल जाय। उस पुराने जमानेमें सब चीजें बड़ी सस्ती थीं, मगर हम लोगोंको इस बातकी रत्ती-भर भी खबर न थी। हमारी माता हम लोगोंका राजकुमारोंकी भांति लालन-पालन करती थीं। वे हमें मखमली कोट पहनाती थीं और अक्सर हम लोगोंको विलायती जूते भी मिल जाते थे। इस प्रकार माताने हम लोगोंके मनमें बचपन ही से ऐसी धारणा उत्पन्न कर दी थी, जिससे हम लोग धन-दौलत अथवा किसी अन्य वस्तुके प्राप्त करनेपर अधिक ध्यान नहीं देते थे। हमारा घर सदा गरीबोंके लिए खुला रहता था। जो कोई भी आकर मासे कपड़ा या पैसा मांगता था, कभी निराश न जाता था।

"मेरे चारों ओर पठान रहते थे। पठानोंमें अदम्य आत्म-स्वतंत्रता होती है। वे मृत्यु और खतरेसे प्रेम रखते हैं। उनका नैतिक विधान सीधा-सादा और सच्चा होता है, जिसे वे ईमानदारीसे पालन करते हैं। ये पठान मुझे अपने घुटनेपर बिठाकर ग्रामीण कहानियां सुनाया करते थे। इस प्रकार मैं बिलकुल एक पठान लड़केकी भांति—जिसका हृदय हिन्दू हो—बड़ा हुआ।

"मेरी माता मुझे अच्छीसे अच्छी शिक्षा देना चाहती थीं। इसलिए पैसेकी कमी होते हुए भी वे मुझे स्कूलमें बिठानेके लिए रावलपिंडी जाकर रहीं। मैं स्कूलमें बहुत तेज लड़कोंमें नहीं था, फिर भी मैं अपने शिक्षकोंपर प्रभाव डालता था और इम्तिहानमें आसानीसे पास हो जाता था। यद्यपि रावलपिंडीमें मेरे कई रिश्तेदार थे, मगर फिर भी मा अकेली ही रहती थीं।

"दिन-भरकी मेहनतके बाद मा जल्द ही सो जाती थीं, परन्तु मैं बैठा-बैठा पढ़ा करता था। मुझे अब तक याद है कि आधी रातके सन्नाटेमें मैं मिट्टीके दीयेके पास बैठा-बैठा पढ़ता था और मेरी मा सोते-सोते पुकारकर कहतीं—'पूरन! अब पढ़ना बन्दकर, सो जा।' परन्तु मैं दीयेमें थोड़ा तेल और उंडेलकर और एक नई बत्ती डालकर अपना सबक पूरा करता। मैंने एन्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की और कालेजमें भर्ती होनेके लिए लाहौर गया। बस यहींसे मेरे घरका मधुर सम्पर्क छूट गया और मुझे अपनी माकी प्रत्यक्ष देख-रेखसे वंचित होना पड़ा। माके साथसे अलग हो जानेके बाद मुझे बोध हुआ कि वे हिमालयकी बर्फीली चोटियोंसे अधिक पवित्र और उज्ज्वल हैं। अब मुझे यह जान पड़ता है कि मैंने अपनी मातासे एक और भी चीज पाई है। वह है मस्तिष्ककी परिवर्तनशीलता। मा दृढ़ विश्वासी और आशावादी स्वभावकी थीं। यदि किसी अप्रिय बातसे वे विचलित हो जातीं, तो उन्हें अपनी स्वाभाविक दशामें आनेमें देर नहीं लगती थी। वे चाहे जिस दशामें हों, फौरन ही अपनेको उसके अनुकूल बना लेती थीं। उनका सिद्धान्त यह मालूम होता था कि ईश्वरमें विश्वास रखो, सब मंगल ही होगा।

"मैं ग्रेजुएट भी न हो पाया था कि मुझे जापान जाकर अध्ययन करनेके लिए एक छात्रवृत्ति मिल गई। मा मुझे अपने पाससे दूर न करना चाहती थीं, परन्तु मैंने उन्हें समझा बुझाकर राजी कर लिया, और बिना अधिक सोच-विचारके मैं सन १६०० में जापान चल दिया। मैंने तीन वर्ष तक टोकियोकी इम्पीरियल यूनिवर्सिटीमें व्यावहारिक रसायनका अध्ययन किया और जापानके औद्योगिक जीवनकी बहुतसी बातोंका ज्ञान प्राप्त किया। वहां मैं अनेक प्रसिद्ध जापानियोंके सम्पर्कमें आया और उनके द्वारा मैंने पुष्पोंसे, प्रकृतिसे और बुद्ध भगवानसे प्रेम करना सीखा। वहां मैं कवियोंसे, कलाविदोंसे, चुपचाप शान्त रहनेवाले पुरुषोंसे तथा आनन्दमें विभोर रहनेवाले व्यक्तियोंसे मिलता और सदा हृदयकी गुप्त विभूतियोंकी खोजमें रहता। जापान-प्रवासके अन्तिम दिनोंमें मुझे वहां आत्म-स्वतन्त्रताका एक नवीन आनन्द प्राप्त हुआ। मेरी सब चीजें छूट गईं और मैं भिक्षु हो गया। मेरी आंखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे। मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा, जैसे मैं सबको

प्यार करता हूँ और सब मुझे प्यार करते हैं। यदि जापान सुन्दर था, तो मेरे चारों ओरके लोग इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण मुझमें देखने लगे। एक फारसी कविका कथन है—

"क्या तुम चमनमें गुलाब देखनेके लिए जाते हो?
कैसे अफसोसकी बात है।
अपने हृदयका द्वार खोल दो और उसमें प्रवेश करके देखो,
वहां कैसे, अग्निकी लपटोंके समान-गुलाब खिल रहे हैं।'

"मेरी भी कुछ ऐसी ही दशा थी, मैं पूर्ण यौवनमें था, जो यौवन विशुद्ध पवित्रताके साथ व्यतीत किया गया था। आनन्दातिरेकसे मैं आपेसे बाहर था। मुझे अपने सामने, पीछे, ऊपर, नीचे सब ओर बुद्ध ही बुद्ध दिखाई देते थे। इसी समय जापानमें एक भारतीय सन्तसे, जो भारतवर्षसे आया था, मेरी भेंट हो गई। उन्होंने मुझे एक ईश्वरीय ज्योतिसे स्पर्श किया और मैं संन्यासी हो गया; मगर अब मैं देखता हूँ कि उन्होंने मेरे हृदयमें और भी अनेकों भाव, जिनके लिए भारतके आधुनिक साधु बहुत व्यग्र हैं, भर दिये—जैसे राष्ट्रका निर्माण, भारतकी महानताको जाग्रत करना और कर्ममें निरत रहना। यद्यपि मैं जीवनकी व्यर्थ बातोंसे आकर्षित नहीं होता था, परन्तु जिसने मुझे आत्मज्ञानकी इतनी बातें बताई थीं, उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं अपनी रसायनकी पुस्तकें फेंक-फांककर भारतकी ओर चल दिया। सब बातोंको देखते हुए मुझे महान ध्येयकी प्राप्ति तथा जीवनकी उच्च स्पिरिटके लिए अपने देशकी अपेक्षा जापान अधिक उपयुक्त जान पड़ा। परन्तु उस हिन्दू संन्यासीने जो प्रचंड वाग्मिताके साथ मुझमें बिजली भरी थी, उससे प्रेरित होकर मैं मधुर स्वप्नों और आशाओंसे भरा हुआ भारतवर्ष आ पहुँचा।

"गेरुआ वस्त्र धारण करनेपर भी मैं अपने पुराने घरको नहीं भूल सका था। मेरी अनुपस्थितिमें परिवारकी दशा और भी खराब हो गई थी। मेरी माने मेरा कलकत्ते आना सुना और वे फौरन पिताजीके साथ कलकत्ते आ गईं। मुझे अब इस बातका आश्चर्य होता है कि इतने दिनोंके बाद माको पहले-पहल देखकर मैं रोया क्यों नहीं? निस्सन्देह उस भारतीय सन्यासीने मेरे आंसू सुखा दिये थे। मेरे पिता मुझे संन्यासीके वेशमें देखकर बड़े दुखी हुए। उन्होंने बातचीतमें मुझे कुछ जली-कटी बातें भी कहीं, परन्तु मेरी माने फौरन ही अपनेको परिस्थितिके अनुकूल बना लिया। उन्होंने मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की, और यहां तक कि मैंने जो मार्ग ग्रहण किया था, उसकी सराहना भी की। दो-एक दिन बाद उन्होंने मुझे अपनी बहनोंको देखनेके लिए घर चलनेको कहा और मैं राजी हो गया। एकबार फिर मैं ऐबटाबादके अपने पुराने कच्चे घरको लौटा। आंगनमें मेरी दोनों बहनें खड़ी हुई मेरा इन्तजार कर रही थीं। उनकी बगलमें अपनी नन्हीं-नन्हीं टांगोंके सहारे मेरे दो छोटे भाई खड़े हुए थे। आधा पेट रहनेवाले छोटे बच्चे अपने कमजोर शरीरसे अपने बड़े भाईके लिए झांक रहे थे। जिस समय अर्धरात्रिको मा अपने संन्यासी पुत्रको लेकर घरमें घुसीं, उस समय वे दोनों रो उठे। चन्द्रमा पूरी तौरसे चमक रहा था। माने उनसे कहा—'लो, तुम्हारे भाई ये हैं!'

"मैं खिली हुई चाँदनीमें गेरुआ वस्त्र पहने खड़ा था। मा मेरी ओर इशारा कर रही थीं। मेरी बहनें प्रसन्नतासे विह्वल हो रही थीं। सहसा वे यह देखकर हतबुद्धि हो गईं कि जिस सिख-बालकको गुरुके दिये हुए केशों और पगड़ीकी सदा रक्षा करनी चाहिए, वही सिख-बालक सिर, दाढ़ी-मूँछ मुँड़ाये, संन्यासीके वेशमें खड़ा है; परन्तु पुरानी स्मृतियोंको हमारे बीचकी खाई पूरनेमें देर न लगी। वे रोने लगीं, परन्तु मैं नहीं रोया, जिसका मुझे अब तक अफसोस है। मेरे आगमनसे मेरे परिवारको जो सान्त्वना मिली, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

"मैंने देखा कि मेरी छोटी बहन गंगाकी तबीयत अच्छी न थी। मेरे आगमनके पन्द्रह दिन बाद ही वह बुखारसे पीड़ित, मेरी गोदमें पड़ी हुई, जीवनकी अन्तिम साँसें ले रही थी। मैंने उससे पूछा—'क्या तेरी कोई इच्छा है, जिसे मैं तेरे लिए पूरा कर सकूँ?'

उसने कहा—'भैया! हमने तुम्हारे लिए जो लड़की चुनी है, उससे विवाह करना।'

मैंने उत्तर दिया—'प्यारी गंगा, मैं ऐसा ही करूँगा। तुम इसके लिए बेखटके रहो।'

मैंने उसका चुम्बन किया और वह मेरी गोदमें देखते ही देखते चल बसी!"

× × × ×

'हिन्दी-शब्दसागर'की भूमिकामें २४६ पृष्ठपर श्री पूर्णसिंहके लिए लिखा है—

"'सरस्वती' के पुराने पाठकोंमें से बहुतोंको अध्यापक पूर्णसिंहके लेखोंका स्मरण होगा। उनके तीन-चार निबन्ध ही उक्त पत्रिकामें निकले, पर उन्होंने दिखा दिया कि विचारों और भावोंको अनूठे ढंगसे व्यंजित करनेवाली एक नई शैलीका अवलम्बन किसे कहते हैं।

उनकी लाक्षणिकता हिन्दी-गद्य-साहित्यमें एक नई चीज थी। भाषाकी बहुत-कुछ उड़ान, उसकी बहुत-कुछ शक्ति 'लाक्षणिकता' में ही देखी जाती है। भाषा और भावकी जो नई विभूति उन्होंने सामने रखी, उसकी ओर क्या किसीने ध्यान दिया? ध्यान कैसे जाता? वे किसी 'साहित्यिक दल' में दाखिल ही नहीं हुए। उनके निबन्ध भावात्मक कोटिमें ही आवेंगे, यद्यपि उनकी तहमें सूक्ष्म विचारधारा स्पष्ट लक्षित है।"

वे मजदूरी और प्रेम' नामक निबन्धमें लिखते हैं—

"जब तक जीवनके अरण्यमें पादरी, मौलवी, पंडित और साधु-संन्यासी हल-कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे, तब तक उनका मन और उनकी बुद्धि अनन्त काल तक मलिन मानसिक जुआ खेलती रहेगी। उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनका विश्वास बासी और उनका खुदा भी बासी हो गया है।"

सुधारके उपाय

अध्यापक रामदास गौड़, एम० ए०

हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके दो पहलू हैं; एक राष्ट्रीय और दूसरा साहित्यिक। जहाँ उसका उद्देश्य राष्ट्र-भाषाका प्रचार, प्रसार और विस्तार है, वहाँ वह शुद्ध राष्ट्रिय संस्था है। जहाँ उसका उद्देश्य सत्साहित्यका निर्माण है, वहाँ वह साहित्यिक संस्था है। कुछ लोगोंका मत है कि जब नाम ही 'साहित्य' सम्मेलन है, तो उससे राष्ट्रीयतासे क्या मतलब, उसे केवल साहित्यिक संस्था समझा जाना चाहिए। यदि इस तर्कपर चलें, तो सम्मेलन और नागरी तथा हिन्दीकी अन्य सभाओं और परिषदोंसे उद्देश्योंमें पूरी समानता आ जाती है, और सालमें ऐसी सब संस्थाओंका एक बार मिलना ही ध्येय रह जाता है। दूसरे शब्दोंमें वार्षिक तमाशा मात्र रह जाता है। परीक्षाएँ साहित्य-निर्म्माणमें कोई सहायता नहीं देतीं, अतः उनका होना असंगत ठहरता है। इस तरहका वार्षिक सम्मेलन इसकी जन्मदात्री काशीकी नागरी-प्रचारिणी-सभा अब करने लगी है, अतः यदि केवल साहित्य निर्म्माण और चर्चा ही सम्मेलनका उद्देश्य हो, तो उसका अलग जीवन ही निरर्थक है। परन्तु ऐसी कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रचारका काम सम्मेलनके मुख्य उद्देश्योंमें है, और वही उसे राष्ट्रीयताका रूप दे देता है। यही राष्ट्रीयता सम्मेलनका वह विशेष उद्देश है, जो इसके स्वतन्त्र जीवनका कारण है। 'साहित्य' शब्द बहुत व्यापक है और राष्ट्रीय साहित्य उसके अन्तर्गत है। हिन्दी ही राष्ट्र भाषा है, अतः इस संस्थाका नाम ही 'राष्ट्र-भाषा साहित्य-सम्मेलन' समझना चाहिए।

आवश्यकता, उपयोगिता और उद्देश्यकी दृष्टिसे हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका चलता रहना ज़रूरी है, परन्तु आज उसे अर्थ-संकट है। उससे उबरे बिना आगे काम चलना कठिन है। साथ ही यदि संस्थाको उन्नतिशील बनाना है, तो उसका आगेका काम भी बढ़ना चाहिए। यदि उन्नति न करे, दशा स्थायी हो जाय, तो संस्थाका वास्तविक अर्थ है मृत्यु, इसीलिए हिन्दी साहित्य-सम्मेलनकी रक्षाके लिए उसकी आर्थिक स्थितिका सुधार और उसके कामोंको अधिक उपयोगी और ठोस बनाना यह दो बातें ज़रूरी हैं।

सम्मेलन-पत्रिका केवल सत्समालोचन-पत्रिका हो जानी चाहिए, और इसी विशेषताके साथ उसे त्रैमासिक रूपमें फिर निकलना चाहिए। साहित्य-समालोचन मात्र अपना ध्येय रखनेवाला एक भी सामयिक पत्र नहीं है। साहित्य-सम्मेलनकी मुखपत्रिकाके लिए यही मुख्य काम होना चाहिए। महत्त्वके प्रकाशनोंपर विस्तृत और साधारण

कोटिके ग्रन्थोंपर टिप्पणीमात्र हो, परन्तु तीन मासके भीतर छपे ग्रन्थ एक भी न छूटें। समालोचनासे प्रकाशकको लाभ होता है। और देशोंमें समालोचकोंका रोज़गार चलता है। यहाँ यदि सम्मेलन प्रकाशकोंसे समालोचनाके लिए कोई निश्चित शुल्क ले, तो मेरी समझमें अनुचित न होगा।

सम्मेलनकी परीक्षाओंमें जिस तरह नारायणजनवीसी और मुनीबी परीक्षाएँ रखी गई हैं, उसी तरह देशकी वर्तमान आवश्यकताको देखकर ग्राम-संगठनके लिए परीक्षाएँ लेनेकी ज़रूरत है। इसमें राष्ट्र-भाषा, कुछ साहित्य और बहुत कुछ देशोपयोगी कामोंकी जानकारीका प्रचार होगा। परीक्षाओंका व्यय परीक्षा-शुल्कसे निकल आयेगा। परीक्षा-विभाग तो शुल्कके द्वारा सहजमें ही स्वावलम्बी हो सकता है। उसे अर्थ-संकट नहीं हो सकता। परीक्षामें बैठनेवाले न मिलें, तो इस विभागको तोड़ दिया जाय।

प्रकाशन-विभागको भी मुद्दतसे अकर्मण्यताका रोग लगा हुआ है। आज अनेक विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीको स्थान मिल चुका है। अच्छे ग्रन्थोंकी खपत हो सकती है। सम्मेलन साधारण प्रकाशक नहीं है। वह यदि अच्छे-अच्छे ग्रन्थ निकाले, तो उनकी बिक्रीमें विशेष कठिनाई न होनी चाहिए। यह काम बड़े महत्वका है और सम्मेलनका कर्तव्य भी है। हम मानते हैं कि इस कामको और संस्थाएँ और प्रकाशक भी कर रहे हैं, जिनके पास अपने यन्त्रालय हैं और अपने निजी कारबारका सुभीता है। सम्मेलनका काम सार्वजनिक होनेके कारण उसमें उसी तरह व्यक्तिगत रस लेनेवाला कोई नहीं है, जिस तरह किसी व्यक्तिके निजी कारबारमें होता है। इसके लिए सहायक मन्त्रीको प्रकाशन-विभागके लाभमें से कुछ सैकड़ा पुरस्कार मिलना चाहिए, जिससे सहायक मन्त्री अपने निजी लाभके विचारसे प्रकाशनके कामको अधिक सफल बनानेमें प्रवृत्त हो। यद्यपि हम शुद्ध सारस्वत कामोंमें लाभके लोभका प्रवेश अच्छा नहीं समझते, तो भी इस काम-क्रोध-लोभसे विजित संसारमें साधारण मानव-प्रवृत्तियोंके अनुकूल चलना व्यवहारमें अनिवार्य हो जाता है, और शुद्ध स्वार्थत्यागी कार्यकर्ता मिलते ही कहाँ हैं और आदर्श संसारमें रहनेवाले हैं ही कितने!

मद्रास-प्रान्तमें राष्ट्र-भाषाके प्रचारका काम सम्मेलनसे स्वतन्त्र और स्वावलम्बी हो गया। यह बहुत अच्छी बात हुई। परन्तु लगभग आधा देश फिर भी शेष है, जिसमें प्रचारकी बड़ी आवश्यकता है। सिंधमें, पश्चिमोत्तर प्रान्तमें, पंजाबमें, बंगालमें, आसाममें, उड़ीसामें और किसी हद तक गुजरात और महाराष्ट्रमें भी प्रचारका काम होना है। सम्मेलनने आसाममें थोड़ासा काम किया भी है, परन्तु वह पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। प्रान्तीय सम्मेलन भी कहीं-कहीं कभी-कभी हो जाते हैं, परन्तु इस तीन दिनोंके खेलसे साल-भरका ठोस काम नहीं होता। प्रचारका काम तो नित्य-नित्यका है। जो कार्यकर्ता इस कामके लिए निकलें, उसे तत्तत्प्रान्तोंके राजनीतिक नेताओंसे मिलकर अपने कामको आर्थिक रीतिसे स्वावलम्बी बनाना चाहिए। इस काममें कांग्रेससे पूरी सहायता मिल सकती है।

ग्राम-संगठनके काममें भी हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें साक्षरताका प्रचार और पढ़ाई-लिखाईका काम सम्मेलनके उद्देश्योंसे बाहरका नहीं है। इस काममें भी गाँव-गाँवमें स्थानीय सहायता मिल सकती है। इस बड़े कामका संगठन तो सम्मेलन नहीं कर सकता, परन्तु यह काम कांग्रेस, चरखा-संघ, नौजवान भारत-सभा आदि जो ही संस्थाएँ करें, उन्हें पूरी सहायता दे सकता है।

यह ठीक है कि पारितोषिक, पुरस्कार आदि देनेका प्रश्न आर्थिक है, परन्तु इन कामोंमें तो दान मिलते हैं। इनके लिए कोई निश्चित नीति या नियम भी नहीं हैं, जिनके पालनके लिए सम्मेलनको लाचार होकर खर्च करना पड़े। परन्तु साहित्य और प्रचार, दोनों कामोंमें प्रोत्साहनके लिए यह उपाय सामर्थ्यके अनुसार ही बर्ते जाने चाहिए।

सम्मेलनने शिक्षणका काम भी आरम्भ किया, परन्तु उसमें सफलता नहीं दीखती। हिन्दी-विद्यापीठ लोकप्रिय

नहीं हुआ। उसकी लोकप्रियताके लिए और उसका काम स्थायी करनेके लिए सम्मेलनके चुने हुए हितैषियोंको बैठकर विचार करना चाहिए, और उचित उपायोंको व्यवहारमें लाना चाहिए। उसकी स्थापनाके कालसे अबके कालमें बड़ा अन्तर पड़ गया है। यदि क्रान्तिकारी परिवर्तन करने हों, तो भी सम्मेलनको तैयार रहना चाहिए।

सम्मेलनका संचालन यदि उचित रीतिसे होता, तो वह अर्थ-संकटमें न पड़ता। इधर राजनैतिक आन्दोलनमें व्यस्त रहनेके कारण उसके प्रमुख कर्णधार श्री टंडनजी उसकी ओर ध्यान न दे सके। शायद इधर साल-भर और उन्हें समय न मिले। अस्थायी सन्धिके कालमें भी काम थोड़ा नहीं है? तो भी, परामर्शके लिए फिर भी वे समय निकाल सकेंगे, ऐसी आशा व्यर्थ न होगी।

अब तक जो नियमावली बरती जा रही है, उसका रूप खड़ा करनेमें मैंने भी सहायता की थी। प्रबन्ध, प्रचार, अर्थ और साहित्य-विषयोंमें मंत्रित्व इसी दृष्टिसे बँटा था कि चारों मंत्री तथा प्रधान मंत्री भी अवैतनिक काम करेंगे। केवल सहायक मंत्री वैतनिक होगा, जो एक तरहसे कार्यालयका अध्यक्ष समझा जायगा। इधर बहुत कालसे मैं कार्यालयके प्रबन्धसे अनभिज्ञ हूँ, परन्तु मैं समझता हूँ कि परीक्षाओंके सिवा जो कुछ काम सम्मेलनमें है, वह हलका है। अतः मेरे विचारसे सहायक मंत्री और दो लेखक सम्मेलनका सारा काम चला सकते हैं। परन्तु सहायक मंत्री, दो लेखक, एक दफ़्तरी और एक चपरासी तथा एक और आदमी, जो सभी वैतनिक होते हैं, जितना व्यय सम्मेलनपर डालें, सब कुछ 'प्रकाशन' और 'परीक्षा'—इन दो विभागोंसे निकल सकता है। परीक्षा-शुल्कसे तथा प्रकाशन-विभागके लाभसे सुप्रबन्धकी दशामें काफ़ी आमदनी होनी चाहिए। प्रत्युत नियम ऐसे बन जाने चाहिए कि सहायक मंत्री और उसके अधीन लेखकोंकी वैतनिक उन्नति इन दोनों विभागोंकी आयपर ही निर्भर हो, जिसमें वे कार्यकर्ता इन कामोंमें वास्तविक रस लें। इस तरह कार्यालय बराबर चलता रहे और अपना खर्च निकाल ले। इसके सिवा जो कुछ व्यय प्रचारार्थ आवश्यक हो, वह तत्तत्स्थानोंसे चन्दा करके किया जाय। वार्षिकोत्सवपर जो कुछ मिले अथवा जो दान अन्य समयोंमें मिले, वह स्थायी कोषकी वृद्धिमें लगे। ऐसे प्रबन्धसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अर्थ-संकटमें न पड़ा करेगा, ऐसी मुझे दृढ़ आशा है।

'सम्मेलन-पत्रिका'का व्यय प्रकाशन तथा परीक्षा-विभागसे निकलना चाहिए। परीक्षा-विभागको एक और आय होनी चाहिए। परीक्षामें जिन प्रकाशकोंकी पुस्तकें चुनी जाती हैं, वे उनकी बिक्रीसे खासा लाभ उठाते हैं। उन्हें चाहिए कि परीक्षा-समितिको अपनी आयका कुछ अंश दिया करें। मुझे खूब मालूम है कि सरकारी परीक्षाओंमें अपनी पुस्तकोंकी नियुक्तिके लिए प्रकाशक बड़ी-बड़ी रिश्वतें दिया करते हैं। इनसे हानि भी होती है, परन्तु परीक्षा-समितिको प्रकाशकोंसे वह अंश दानके रूपमें अवश्य मिलना चाहिए, जो वह बेचनेवालोंको कमीशनके रूपमें और पत्रोंको विज्ञापनकी छपाईके रूपमें दिया करते हैं। परीक्षा-समिति इस अंशको पानेकी अधिकारिणी है, क्योंकि वह किसी पुस्तकको पाठ्य-ग्रन्थोंमें रखकर उसकी ऐसी अनुकूल और उत्तम आलोचना कर देती है, जैसी कि किसी पत्रकार समालोचकसे भी सम्भव नहीं है। वह इस तरह उनकी बिक्री जैसी पूर्ण निश्चित कर देती है, वैसी किसी बेचनेवालेसे सम्भव नहीं है। लाभ उठानेवाले प्रकाशकोंको उसका कृतज्ञ होना चाहिए और उदारतापूर्वक उसे धन देना चाहिए।

सम्मेलन यदि समयोपयोगी राष्ट्रीय साहित्य निकाले, तो उसकी अच्छी बिक्री हो सकती है। सम्मेलनके उद्देश्योंके अन्तमें यह भी प्रकट किया गया है कि सम्मेलनको हिन्दीके प्रचारके सिवा अन्य राजनैतिक विषयोंसे कोई सरोकार न होगा। सम्मेलनको चाहिए कि इस नियमको अधिक व्यावहारिक और समयानुकूल बना दें, जिसमें वर्तमान कालकी आवश्यकताओंके अनुकूल राजनैतिक राष्ट्रीय साहित्य भी तैयार हो सके। इसकी बिक्री सहजमें

हो सकती है, और प्रकाशन-विभाग इससे अधिक लाभ उठा सकता है।

मुझे ऐसा अनुमान होता है कि शायद सम्मेलन-कार्यालयमें नौकरशाहीके दफ्तरोंकी तरहके कुछ दोष आ गये हैं, और दफ्तरका काम ज़रूरतसे ज़्यादा बढ़ गया है। यदि यह अनुमान ठीक है, तो अनावश्यक ज़ाब्तेदारियाँ घटा दी जानी चाहिए।

सम्मेलनके अवैतनिक कार्यकर्ताओंमें तो साधारणतया त्यागके भाव होते हैं। वे अपने आराम और सुभीतेके लिए भी जो खर्च करते हैं, अपनी जेबसे ही करते हैं। यदि आज इस भावमें कुछ कमी है, तो वह कमी दूर हो जानी चाहिए।

चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद शर्माके समयमें चाहे और त्रुटियाँ रही हों, पर उन्होंने निस्सन्देह कार्यालयमें बाग लगाकर उसके बाहरी रूपको अवश्य ही सुन्दर बना रखा था। मेरी रायमें इस सौन्दर्य और कलाकी रक्षा होनी चाहिए। इस सजावटकी रक्षामें इतना व्यय न पड़ेगा कि सम्मेलन सह न सके।

सम्मेलनके पास अपनी इमारत है, जिसकी देख-भाल, मरम्मत आदिका व्यय भी उसे करना पड़ता है। पहले जब अपनी इमारत न थी, तब बीस रुपये (?) मासिक किराया देना पड़ता था। अब यदि बाग़बानी और मरम्मतमें उतना ही व्यय हो जाय, तो इसे हम बढ़ा हुआ खर्च नहीं कह सकते।

विद्यापीठ अवश्य ही सम्मेलनके लिए भारी व्ययकी वस्तु है। आरम्भमें यह विचार था कि विद्यापीठका मुख्य विभाग औद्योगिक होगा, जिससे उसका पूरा नहीं तो अधिकांश व्यय निकल ही आयेगा। खेती उन औद्योगिक साधनोंमें से एक चीज़ थी। यह सारे औद्योगिक काम करनेवाले उसी पीठके छात्र हों, तभी यह काम सध सकता है। मुझे मालूम नहीं कि कितने छात्र हैं, अथवा इस विचारके अनुसार काम होता है या नहीं, अथवा वह कौन कौनसे उद्योग हैं, जो इस समय छात्रोंके व्यवहार और शिक्षाके अंग बने हुए हैं। यदि कोई नहीं, तो सचमुच बड़े दुःखकी बात होगी।

'विशाल-भारत' के सम्पादक महोदयके आग्रहपर मैंने यह थोड़ेसे विचार प्रकट किये हैं। बहुत कालसे सम्मेलनकी सेवासे दूर रहनेके कारण सम्भव है कि मैंने अनेक असंगत उपाय बताये हों अथवा उसके वर्तमान कार्यकर्ताओंने ऊपर बताई अनेक विधियोंको जाँचकर अपनेको असफल पाया हो और मेरा उस सम्बन्धमें लिखना ही वृथा हो, तो भी इस लेखकी यदि एक बात भी हिन्दी भक्तोंको पसन्द आई, तो मैं इस लेखके प्रयासको सार्थक समझूँगा।
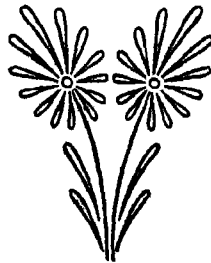
'डार्लिंग'

(रमणीका हृदय)

चेखोवकी एक कहानी

पेनशनयाफ्ता सरकारी अफसर प्लेनीनिकोवकी लड़की ओलिंका बाहर बरामदेमें बैठी हुई कुछ सोच रही थी। तीसरे पहरका वक्त था, बड़ी गर्मी पड़ रही थी, मक्खियोंके मारे नाकमें दम था। पर हाँ, यह सोचकर कुछ सान्त्वना मिलती थी कि शीघ्र ही शाम हो जायगी। मेहसे भरे हुए काले-काले बादल पूरबसे आ रहे थे और रह-रहकर हवाके झोकोंसे बहुत दूरीपर मेंह बरसनेका आभास भी मालूम पड़ता था।

आँगनके बीचोबीच 'टिवोली थियेटर'का मालिक और नाटककार कूकिन, जो उसी मकानके एक बाजूमें रहता था, खड़ा था। वह आस्मानकी ओर देख रहा था।

"आज फिर!" उसने निराशा-भरे स्वरमें कहा—"आज फिर पानी बरसनेके आसार हैं! रोज़-रोज़ पानी! पानी! मालूम होता है, जैसे सिर्फ शरारतके लिए ही पानी बरसता हो। इससे मेरा तो मटिया-मेट हुआ जा रहा है! हर रोज़ कितना अधिक नुकसान होता है!"

उसने अपने हाथ मले और ओलिंकाकी ओर मुड़कर बोला—"आपने हम लोगोंका जीवन देखा? यह किसी भी आदमीको रुलानेके लिए काफ़ी है! चाहे जितनी मेहनत करो, चाहे जितनी फिक्र करो, रात-रातभर जागकर सोचा करो कि कैसे उन्नति की जाय, कैसे सुधार किया जाय; मगर नतीजा क्या होता है? कुछ नहीं। पहली बात तो यह है कि पब्लिक बड़ी मूर्ख और अज्ञान है। आप उसे अच्छे से-अच्छा नाटक, प्रहसन, गीति नाट्य, चाहे जो कुछ दिखायें; मगर क्या आप समझती हैं कि पब्लिकको यह सब भाता है? रत्तीभर भी नहीं। वह क्या चाहती है, नीचे दर्जेके मज़ाक, भोंडी-भद्दी चीज़ें। उसके बाद, ज़रा मौसिमको देखिये! प्रत्येक शामको पानी बरसता है। १० मईसे लगातार पानी बरस रहा है और पूरा जूनका महीना बीत गया। यह महा अनर्थकारी बात है। तमाशेमें पब्लिक तो आती ही नहीं; मगर आर्टिस्ट (ऐक्टर) तो अपनी तनख्वाह छोड़ न देंगे और न मालिक मकान किराया ही छोड़ देगा।"

दूसरे दिन शामको जब फिर आस्मानमें बादल इकट्ठ होना शुरू हुए, तब कूकिनसे न रहा गया। उसने पागलोंकी तरह हँसकर कहा—'बरसने दो! ईश्वर करे, थियेटरमें पानीकी बाढ़ आ जाय और मैं उसमें डूब जाऊँ, जिससे मुझे इस लोककी तरह परलोकमें भी सुख नसीब न हो। ऐक्टर मुझपर नालिश करेंगे, करने दो। मैं परवाह नहीं करता! बहुत होगा, साइबीरियाको कालापानी हो जायगा! फाँसीकी सज़ा हो जायगी! होने दो! हा! हा! हा!"

यही बात फिर तीसरे दिन दोहराई गई।

ओलिंका बिना एक शब्द कहे गम्भीरता-पूर्वक कूकिनकी बातें सुनती थी और कभी-कभी उसकी आँखोंमें आँसू भर आते थे। अन्तमें कूकिनकी मुसीबतोंसे उसका दिल भर आया और वह उसके प्रेममें पड़ गई। कूकिनका क़द नाटा, शरीर दुबला और आवाज़ यहूदियोंकी भाँति काँपती हुई थी। उसकी मूँछें मोम लगी हुई तथा चेहरा पीला था, जिससे सदा निराशा झलका करती थी। फिर भी उसने ओलिंकाके हृदयमें सच्चे और गहरे प्रेमकी प्रेरणा की। वह बिना प्रेमके रह ही नहीं सकती थी, और सदा किसी न किसीसे प्रेम किया करती थी। पहले वह अपने पितासे प्रेम करती थी, जो अब बीमार होकर अँधेरे कमरेमें आराम-चौकीपर बैठा-बैठा साँस लेनेके लिए तड़फड़ाया करता है।

उसके बाद वह अपनी बुआसे प्रेम करने लगी, जो दूसरे शहरमें रहती थी और सालमें केवल दो बार उसके यहाँ आती थी। इससे भी पहले जब वह स्कूलमें पढ़ती थी, तब वह अपने फ्रेंच शिक्षकसे प्रेम करती थी।

ओलिंका एक स्वस्थ, शान्त, भले स्वभाव और दयालु हृदयकी लड़की थी। उसके फूले-फाले गुलाबी गाल, सफेद कोमल गर्दन, जिसपर एक मसा था, तथा उसकी भोली मुसकराहट—जो जब कोई बात उसे भली लगती थी, तब प्रकट हुए बिना नहीं रहती थी—आदिको देखकर लोग मनमें कह उठते थे—"बेशक, वह काफी सुन्दरी है।" वे उसकी मुसकराहट पर मुसकराते थे। उसके घर आनेवाली स्त्रियाँ तो अक्सर बातचीत करते-करते प्रेमावेशमें उसका हाथ पकड़कर कहने लगती थीं—"डार्लिंग, तुम बड़ी प्यारी हो।"

जिस मकानमें वह अपने जन्मसे रहती थी वह शहरसे बाहर 'टिवोली थियेटर'के पास ही था। रातको वह थियेटरका संगीत और आतशबाज़ीकी आवाज़ अक्सर सुना करती थी। उसे उन आवाज़ोंको सुनकर ऐसा मालूम होता था मानो कूकिन अपने भाग्यसे लड़ रहा है, मानो वह अपने प्रधान शत्रु—उदासीन दर्शकों—पर हमला कर रहा है। उसके हृदयमें एक मीठीसी कँपकँपी होने लगती और सोनेकी इच्छा गायब हो जाती। प्रात:कालके लगभग जब कूकिन थियेटरसे लौटकर आता था, तब वह धीरेसे अपनी खिड़कीका दरवाज़ा खटखटाती थी और खिड़कीसे सिर निकाल, कूकिनकी ओर देखकर मधुर-मधुर मुसकराती थी।

थोड़े ही दिन बाद कूकिनने विवाहकी प्रार्थना की, और दोनोंका विवाह हो गया। जब उसे ओलिंकाकी गोरी-गोरी गर्दन और भरे हुए कंधे देखनेका अधिकार प्राप्त हुआ, तो उसने प्रसन्नतासे ताली बजाकर कहा—"डार्लिंग! तुम बड़ी प्यारी हो!"

अपने ढंगके अनुसार कूकिन भी प्रसन्न था; मगर उनके विवाहके दिन भी पानी बरसा, इसलिए उसके चेहरेसे वह निराशाकी झलक नहीं गई।

विवाहके बाद वे दोनों आनन्दसे साथ-साथ रहने लगे। ओलिंका टिकट बेचनेके आफिसमें बैठती; इस बातका ध्यान रखती कि थियेटर झाड़ा-पोंछा तथा साफ रहे; हिसाब-किताब रखता और नौकरोंकी तनख्वाह बाँटती थी। उसके गुलाबी गाल और सीधी-सादी मधुर मुसकान कभी टिकटघरकी खिड़कीपर दिखाई देती तो कभी रंगमंचपर पर्देके पीछेसे झाँकती नज़र आती और ज़रा ही देरमें कभी जलपानवाले कमरेमें दीख पड़ती। वह अपने जान-पहचानवालोंसे कहती फिरती कि संसारमें थियेटरसे अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक दूसरी वस्तु नहीं है। वही एक ऐसी चीज़ है, जिसमें मनुष्यको सच्चा आनन्द प्राप्त होता है और जिससे आदमी सुसंस्कृत हो सकता है तथा उसमें मनुष्यता भी आ सकती है।

"लेकिन क्या आप खयाल करते हैं कि जनता इन सब बातोंको समझती है?" वह पूछा करती—"राम कहिये, वह तो सिर्फ निम्न श्रेणीके प्रहसन चाहती है! कल हम लोगोंने जर्मन कवि गेटेका सुप्रसिद्ध नाटक 'फास्ट' खेला था। आप विश्वास न करेंगे कि थियेटरकी प्राय: सभी बेंचें खाली थीं! अगर मैंने और कूकिनने कोई भद्दा अश्लील-सा खेल किया होता, तो थियेटरमें तिल धरनेको जगह न होती। कल मैं और कूकिन 'नर्कमें तानसेन' नामक खेल दिखायेंगे, आप उसे ज़रूर आकर देखियेगा।"

कूकिन जो कुछ कहता ओलिंका उसे दोहराया करती। अपने पतिकी तरह वह भी कलाके प्रति जनताकी उदासीनता और अशिष्टता देखकर उससे घृणा करती थी। वह 'रिहर्सल'में हस्तक्षेप करती, 'ऐक्टरों'को उनकी भूलें बताती, बाजेवालोंकी देखभाल करती और जब किसी समाचारपत्रमें उसके पतिके थियेटरके विरुद्ध आलोचना छपती, तो वह फूट-फूटकर रोती, जाकर सम्पादकको कैफियत देती और प्रतिवाद करती।

सभी ऐक्टर उसे चाहते थे। वे उसे "कूकिन और मैं" या 'डार्लिंग' कहा करते थे। वह उनसे बड़ा अच्छा बर्ताव

करती थी। जरूरत होनेपर उन्हें थोड़ा-बहुत रुपया-पैसा भी उधार दे देती थी, और यदि उनमें से कभी कोई उसका रुपया मार भी लेता, तो वह चुपचाप अकेलेमें बैठकर खूब रोती, लेकिन कभी अपने पतिसे शिकायत न करती।

जाड़ेमें भी वे बड़े आनन्दपूर्वक रहे। उन्होंने फस्ल-भरके लिए शहरका थियेटर-हाल भाड़े ले लिया और उसे घूमने-फिरनेवाली नाटक-मंडलियों, बाजीगरों और अन्य खेल-तमाशेवालोंको थोड़े थोड़े दिनके लिए किरायेपर देते रहे। ओलिंका अब कुछ तैयार-सी दिखाई देने लगी, और सन्तोष और तृप्तिमें सचमुच ही उसका चेहरा चमकने लगा; मगर कूकिन दिन-दिन दुबला और पीला होता जाता था। वह सब कहीं अपने घाटेका रोना रोता फिरता था, यद्यपि जाड़े-भर उसका रोज़गार खूब अच्छा चलता रहा। रातमें उसे खाँसी आती, तब उसकी स्त्री उसे रस्बेरीस खिलाती, बनफशेका काढ़ा पिलाती, सिरपर यू डी-कलोनमें तर करके रूमाल रखती और अपना मुलायम शाल उसे अच्छी तरह ओढ़ाती। ओलिंका उसके बालोंपर हाथ फेरती और भोलेपनसे कहती—"प्यारे, तुम कितने सुन्दर हो!"

ईस्टर-सप्ताहमें कूकिन एक नई मंडली इकट्ठी करनेके लिए [illegible]। ओलिंका अकेली रह गई। उसे रातको नींद न आती, वह खिड़कीके सामने बैठकर तारोंकी ओर देखा करती। उस समय वह अपनी तुलना उस मुर्गीसे किया करती थी, जो मुर्गेके बिना बसेरा नहीं लेती।

कूकिनको मास्कोमें कुछ दिनके लिए रुक जाना पड़ा। उसने लिखा कि वह कई हफ्ते बाद आवेगा और तब थियेटरका [illegible] करेगा; मगर थोड़े ही दिन बाद बहुत रात बीते, ओलिंकाके दरवाजेपर एक अशकुनभरी खटखटाहट सुनाई दी। खट-खट, खट-खट, खट-खट, किसीने बड़े ज़ोरसे दरवाज़ा [illegible]। रसोईदारिन नींदसे उठकर ऊँघती हुई दरवाज़ा खोलने गई।

"दरवाज़ा खोलो!" किसीने दरवाज़ेकी उस ओरसे [illegible] आवाज़में कहा—"तुम्हारे नाम टेलिग्राम है।"

यह पहला ही अवसर नहीं है, जब ओलिंकाको उसके पतिने तार भेजा हो; परन्तु न मालूम क्यों, इसबार तारका नाम सुनकर वह थर्रा उठी। उसने काँपते हुए हाथोंसे तार खोलकर ये शब्द पढ़े—"आइवन पेट्रोविच (कूकिन) की आज अचानक मृत्यु हो गई। मंगलके दिन अन्तिम संस्कार होगा।"

नीचे मंडलीके मैनेजरके दस्तखत थे।

"हाय प्यारे!" कहकर ओलिंका ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगी—"हाय मेरे स्वामी, हाय मेरे धन, क्या इसी दिनके लिए हमारा सम्मिलन हुआ था? मैं तुमसे क्यों मिली, हाय मैंने तुमसे क्यों प्रीति की? तुम अपनी प्यारी ओलिंकाको छोड़कर कहाँ सिधार गये?......"

मंगलको मास्कोमें कूकिनका अन्तिम संस्कार हो गया। बुधको ओलिंका घर लौट आई। घर पहुँचकर वह खाटपर पड़ गई और ऐसे ज़ोर-ज़ोरसे रोने-पीटने लगी कि उसकी दुखभरी आवाज़ सड़क तक सुनाई देती थी।

पड़ोसी सुनकर छातीपर हाथ रखते और कहते—"ओलिंका अपने पतिके लिए बिलख रही है।"

तीन महीने बाद ओलिंका एक दिन प्रार्थना करके गिरजेसे लौट रही थी। वह काली शोकसूचक पोशाक पहने थी। उसी समय इत्तिफाकसे उसका पड़ोसी ऐंड्रिविच भी—जो गिरजेसे लौट रहा था—उसके साथ हो लिया। वह सीककी टोपी दिये और सफेद वास्कट—जिसमें सोनेकी चेन लटकती थी—पहने हुए था, जिससे वह मामूली व्यापारी न दिखाई देकर, छोटा-मोटा देहाती ज़मींदार-सा दिखाई पड़ता था।

"प्रत्येक बातमें कुछ-न-कुछ अर्थ होता है," ऐंड्रिविचने सहानुभूतिभरे स्वरमें गम्भीरतासे कहा—"यदि हमारा कोई निकट स्नेही मर जाता है, तो भगवानकी इच्छासे ही होता है। हमें अपना ध्यान रखना चाहिए और अपने दुखोंको शान्तिपूर्वक सहन करना चाहिए।"

वह ओलिंकाके साथ-साथ ठेठ उसके दरवाज़े तक गया, और वहाँ उसका साथ छोड़ा। उस दिन, बाक़ी सारा दिन,

ओलिंकाको रह-रहकर ऐंड्रिविचका वह शब्द सुनाई देता-सा जान पड़ता। जभी वह ज़रासा आँख बन्द करती, तभी उसे ऐंड्रिविचकी काली दाढ़ी दीखने लगती। उसके हृदयको वह बड़ा भला लगा। यह बात भी प्रत्यक्ष मालूम पड़ने लगी कि ऐंड्रिविचपर भी उसका काफ़ी प्रभाव पड़ा।

इस घटनाको हुए कई दिन नहीं बीते थे कि एक बूढ़ी औरत —जिसे ओलिंका बहुत कम जानती थी— उसके यहाँ काफ़ी पीनेके लिए आई। उसने बैठते ही ऐंड्रिविचकी बात छेड़ दी, और बतलाने लगी कि ऐंड्रिविच कैसा भलामानस है। अनेकों स्त्रियाँ उससे विवाह करनेका अवसर पानेमें न मालूम कितनी प्रसन्न होगीं। तीन दिन बाद स्वयं ऐंड्रिविच उससे मिलनेके लिए आया। वह दस मिनटसे अधिक नहीं ठहरा और उसने बातें भी बहुत कम कीं, परन्तु ओलिंका उसके प्रेममें ऐसी गहरी तरह फँस गई कि रात-भर उसे बुखार चढ़ा रहा और आँख तक न लगी। दूसरे दिन सवेरे ही उसने उस बूढ़ीको बुलवा भेजा। शीघ्र ही उनका सम्बन्ध पक्का हो गया, और अधिक दिन बीतनेके पूर्व ही दोनोंका विवाह हो गया।

विवाहके बाद ऐंड्रिविच और ओलिंका आनन्दपूर्वक साथ-साथ रहने लगे। ऐंड्रिविच दोपहरको भोजनके समय तक अपने आफिसमें बैठता और भोजनके बाद काम-काजके लिए बाहर चला जाता। तब आफिसमें ओलिंका उसका स्थान ग्रहण करती और शाम तक बैठी-बैठी हिसाब-किताब लिखती और मालके चालानकी देख-भाल करती।

"अब हर साल लकड़ी—शहतीर—बाँस प्रति सैकड़ा महँगे होते जाते हैं।" वह अपने ग्राहकों तथा मिलने-जुलनेवालोंसे कहा करती—"अरे, अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं, जब हम लोग एक सिरेसे यहीं की लकड़ी बेचा करते थे; मगर अब ऐंड्रिको लकड़ी खरीदने मोगलीव ज़िले जाना पड़ता है। वहाँपर कैसी चुंगी देनी पड़ती है, बाप रे बाप! चुंगी है कि आफ़त!' यह कहकर वह भयसे आँखें चढ़ाकर इधर-उधर हाथ फेंका करती।

उसे ऐसा मालूम होता, मानो वह अनेकों वर्षोंसे केवल लकड़ीका ही रोज़गार करती आई है, और संसारमें सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक वस्तु शहतीर है। वह लकड़ियोंके विशेष नामोंको—जैसे बाँस, बल्ली, शहतीर, धरन, कुंदा, तख्ता आदि शब्दोंको—ऐसे ढंगसे उच्चारण करती, जैसे वे उसके सगे-सम्बन्धी हों।

सपनेमें भी उसे तख्तोंके ढेर और कुन्दोंके पहाड़ नज़र आते, और शहरकी ओर लकड़ी लाती हुई गाड़ियोंकी पतें दिखाई पड़तीं। एक बार तो उसने यह सपना देखा, मानो धन्नियोंकी फ़ौजने उसकी टालपर हमला कर दिया हो। उसे देख पड़ा कि धन्नियाँ और तख्ते एक दूसरेसे लड़ते हैं, बड़े धमाकेके साथ गिरते हैं और फिर उठकर लड़ते हैं। वह सोते-सोते चिल्ला उठी। ऐंड्रिविचने कहा "प्यारी ओलिंका, तुम्हें क्या हुआ? करवट बदल लो!"

जो कुछ उसका पति सोचता, वही ओलिंका सोचती। यदि उनका पति सोचता कि कमरेमें बड़ी गरमी है अथवा रोज़गार बहुत मन्दा है, तो वह भी ऐसा ही सोचती। ऐंड्रिविचको बाहरी मनोरंजन पसन्द न था। वह छुट्टीके दिन भी घर ही पर रहता था। ओलिंका सदा उसके साथ रहती थी।

यदि उसके मित्र या सखियाँ जब कभी उससे कहतीं—"तुम हर वक्त घर या आफिसमें ही बैठी रहती हो। कभी-कभी थियेटर या बायस्कोप देखने क्यों नहीं जाया करतीं?"

वह जवाब देती—"ऐंड्रिको और मुझे थियेटरके लिए समय ही कहाँ है! हम लोगोंपर बड़ा कड़ी मेहनत पड़ती है, इसलिए हमारे पास ऐसी मूर्खतापूर्ण बातोंके लिए वक्त नहीं है। इसके अलावा थियेटरसे लाभ ही क्या है?"

शनिवारकी शामको ओलिंका और ऐंड्रिविच गिरजेको जाते और प्रत्येक त्यौहारको प्रार्थनामें शामिल होते। दोनों साथ-साथ गिरजासे लौटते। दोनोंके चेहरोंसे सहृदयता झलकती रहती। वे दोनों थोड़ीसी सुगन्धि लगाते। ओलिंकाकी रेशमी पोशाकसे मुतमधुर सुरसुराहट निकलती। घर-पहुँचकर

वे चाय, दूध, रोटी और तरह-तरहके मुरब्बे खाते और उसके बाद हलुएका भोग लगता। बारह बजे दिनके लगभग उनके घरसे भूख उत्पन्न करनेवाले भोजनोंकी सुन्दर सुगन्धि निकला करती थी। उनके घरके फाटकमें घुसते ही लोगोंकी भूख जाग उठती। उनके आफिसमें चायका बर्तन सदा आँचपर चढ़ा रहता और गाहकोंकी चाय-बिस्कुटसे खातिर की जाती। हफ्तेमें एक दिन मियाँ-बीबी हम्मामको जाते थे, जहाँसे नहा-धोकर दोनों, बगलमें हाथ डाले, लालोलाल होकर लौटते।

ओलिंका अपने जान-पहचानवालोंसे कहती—"हमें कोई तकलीफ नहीं है, हम बड़े आनन्दसे रहते हैं। ईश्वरको धन्यवाद है! ईश्वर करे, सभीको ऐसा सुख नसीब हो, जैसा मुझे और ऐंड्रिको है।"

जब ऐंड्रि लकड़ी खरीदनेके लिए मोंगीलेव गया, तब ओलिंकाको अकेला रहना दूभर हो गया। वह सारी रात जागती और रोया करती। शामको कभी-कभी नवयुवक स्मिरनिन—जो फौजमें घोड़ोंका डाक्टर था और ओलिंकाके मकानकी बगलमें रहता था—आता और उसके पास बैठता। वह ताश खेलता, गप लड़ाता और इस प्रकार कुछ देरके लिए उसका मन बहलाता था। परन्तु ओलिंकाको घोड़ा-डाक्टरके प्राइवेट जीवनकी बातोंमें अधिक आनन्द आता था। वह विवाहित था और उसके एक छोटा लड़का भी था। वह अपनी स्त्रीके साथ नहीं रहता था, क्योंकि उसकी स्त्रीने उसे धोका दिया था, परन्तु वह अपने लड़केके खर्चेके लिए महीनेके महीने चालीस रुपये भेजा करता था। जब वह अपने परिवारकी बातें करता, तब ओलिंका उन्हें सुनकर सिर हिलाती, ठंढी साँसे लेती और उसके लिए बहुत दुखी होती।

जब वह जाने लगता तो ओलिंका मोमबत्ती लेकर दरवाजे तक साथ जाती और कहती—"ईश्वर तुम्हारा भला करे, तुमने इतनी देर मेरा मन बहलाया है, इसके लिए तुम्हें धन्यवाद है। भगवान तुम्हें तन्दुरुस्ती दें।—"

वह ठीक उसी प्रकार गम्भीरतासे बातें करती थी, जैसे उसका पति करता था। जब घोड़ा-डाक्टर सीढ़ीसे उतरकर बाहर चला जाता था, तब भी वह पुकार कर कहती थी—

"व्लाडीमीर, तुम्हें अपनी स्त्रीसे मेल कर लेना चाहिए। तुम्हें उसे क्षमा कर देना चाहिए। यदि और नहीं तो कमसे कम लड़केके विचारसे ही तुम्हें उसे क्षमा कर देना चाहिए। तुम जानते हो, लड़के सब कुछ समझते हैं।"

जब ऐंड्रिविच लौटकर आया, तब ओलिंकाने उससे घोड़ा-डाक्टरके दुखी दाम्पत्य जीवनकी सारी कथा दबी ज़बानसे कही। उन दोनोंने सिर हिलाकर ठंढी साँसें लीं, और कहा कि छोटे लड़केको अपने पिताकी अनुपस्थिति बहुत अखरती होगी। फिर एकाएक किसी अज्ञात सहानुभूतिके बंधनसे दोनोंके दोनों घुटने टेक कर बैठ गये और प्रार्थना करने लगे कि ईश्वर उन्हें भी सन्तान दे।

इस प्रकार वे दोनों प्रेम और शान्तिपूर्वक छै वर्ष तक आनन्दसे रहे। छै वर्ष बाद एक दिन जाड़ेमें ऐंड्रिविच गरमागरम चाय पीकर फौरन ही नंगे सिर बाहर चला गया। फल यह हुआ कि उसे सर्दी लग गई और वह खाटपर धर रहा। अच्छे-से-अच्छे डाक्टरोंको दिखाया गया; मगर बीमारी न घटी और चार महीने बाद वह चल बसा। ओलिंका एक बार फिर विधवा हो गई।

ऐंड्रिविचको दफनाते समय ओलिंका रोने लगी—"प्यारे! मुझे क्यों छोड़े जाते हो? हाय! मैं तुम्हारे बिना कैसे रहूँगी? मैं अभागिन दुखिया हूँ। सभी भले आदमी मुझपर तरस खाते हैं......"

उसने शोकसूचक कपड़े पहने और टोपी और दस्ताने पहनना छोड़ दिया। वह घरके बाहर बहुत कम निकलती, और यदि निकलती भी थी, तो गिरजाघर या अपने पतिकी कब्रपर जानेके लिए। पतिके मृत्युके छै महीने बाद उसने मातमी कपड़े उतारे और खिड़कीके दरवाजे खोले। अब वह कभी-कभी अपनी रसोईदारिनके साथ सवेरे बाजारसे चीजें

खरीदने चली आती थी, मगर घरमें वह कैसे जीवन बिताती थी, वहाँपर क्या होता था, इसका किसीको कुछ पता न था। लोग सिर्फ़ अन्दाज़ लगाते थे। वे इस प्रकारकी बातोंमें उसके जीवनका अन्दाज़ा करते थे जैसे लोगोंने उसे बाहर बाग़में बैठकर घोड़ा-डाक्टरके साथ चाय पीते देखा था, या यह कि घोड़ा-डाक्टर उसे ज़ोर-ज़ोरसे पढ़कर अख़बार सुनाया करता था, अथवा एक दिन राह चलते एक परिचित व्यक्तिसे भेंट होनेपर ओलिंकाने कहा था—

"हमारे शहरमें मवेशियोंके इलाजका काफ़ी इन्तज़ाम नहीं है इसीका फल है कि अक्सर बीमारियाँ हुआ करती हैं। उदाहरणके लिए आप सुना करते हैं कि लोग बुरा दूध पीनेसे बीमार पड़ गये या लोगोंको बीमार घोड़ों या गायोंकी छूतसे रोग हो गया। हमें अपने जानवरों—घोड़ों और गायों—के स्वास्थ्यके लिए भी उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना स्वयं अपने स्वास्थ्यके लिए।"

वह घोड़ा-डाक्टरके शब्दोंको दोहराती थी। अब सब चीज़ोंके सम्बन्धमें उसकी वही राय थी, जो घोड़ा-डाक्टरकी थी। यह बिलकुल प्रत्यक्ष था कि वह बिना किसी बन्धनके नहीं रह सकती थी, और उसे अपने घरके बग़लमें ही यह बन्धन मिल गया था। डाक्टर और ओलिंका दोनोंने ही अपने नये सम्बन्धकी बात किसीसे भी प्रकट नहीं की। उन्होंने उसे गुप्त रखनेकी चेष्टा की; मगर वे सफल न हो सके। डाक्टरके फ़ौजके संगी-साथी जब डाक्टरके यहाँ आते, तब ओलिंका उन्हें भोजन परोसती, उनके प्यालोंमें चाय डालती; परन्तु इस अतिथि-सत्कारके साथ साथ वह बातोंमें मवेशियोंके प्लेगकी बातें करने लगती अथवा जानवरोंके ज़िबहख़ानोंकी बदइन्तज़ामीकी चर्चा चला बैठती। उसकी इन बातोंसे डाक्टरको बड़ी झुँझलाहट होती। जैसे ही अतिथि विदा होते वैसे ही डाक्टर ओलिंकाका हाथ पकड़कर गुस्सेसे कहता—"मैंने तुमसे कह दिया कि जिन बातोंको तुम नहीं समझतीं, उनकी चर्चा न किया करो! मैं तुमसे कहे रखता हूँ कि जब मैं अपने मित्रों और साथियोंसे बातचीत करता हूँ, उस समय बीचमें हस्तक्षेप मत किया करो। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता!"

ओलिंका आश्चर्यभरी निगाहसे देखने लगती और चिन्तासे पूछती—"तो मैं काहेकी बात किया करूँ?" उसकी आँखोंमें आँसू छलकने लगते। वह डाक्टरके गलेमें हाथ डालकर गुस्सा न होनेकी प्रार्थना करती, और उनमें फिर मेल हो जाता।

उनका यह सुख अधिक दिनों तक स्थिर न रह सका। शीघ्र ही घोड़ा-डाक्टरको अपनी फ़ौजके साथ जाना पड़ा। वह एक प्रकारसे हमेशाके लिए विदा हो गया, क्योंकि उसकी फ़ौज सुदूर साइबीरियाके पास तैनात थी। ओलिंका अकेली रह गई।

अब ओलिंका एकदम अकेली थी। उसका पिता कुछ वर्ष पूर्व मर चुका था। उसके पिताकी कुर्सी, जिसका एक पाया टूट गया था, धूलसे भरी हुई माल-गोदामके एक कोनेमें पड़ी थी। ओलिंका दुबली हो गई, यौवनकी प्रभा भी प्रायः लुप्त हो चली। अब राहमें जो लोग उसे मिलते थे, वे न तो पहलेकी भाँति उसकी ओर देखते ही थे और न मुसकराते थे। इससे यह प्रत्यक्ष जान पड़ता था कि उसके जीवनके सर्वोत्तम वर्ष बीत गये। अब उसने एक नये ढंगका जीवन, जो एकदम निराला और अज्ञात-सा था, बिताना आरम्भ किया। उसका यह नवीन जीवन ऐसा था, जिसकी कल्पना न करना ही अच्छा है।

शामको वह अपने घरके बराम्देमें बैठती और पड़ोसके थियेटरसे संगीतकी ध्वनि और आतशबाज़ीकी आवाज़ सुना करती; मगर अब ये शब्द उसके लिए अर्थहीन थे। उनसे उसके हृदयमें किसी प्रकारके भाव जाग्रत न होते थे। वह बैठी-बैठी अपने ख़ाली आँगनकी ओर देखा करती थी। अब उसकी कल्पना बिल्कुल शून्य थी। उसे किसी भी चीज़की इच्छा न होती थी, न वह किसी बातका विचार ही करती थी। रातमें जब वह सोती तो उसे स्वप्नमें घरका भाँय-भाँय करता

हुआ शून्य आँगन दिखाई देता। वह प्राय: प्राणहीन कलकी भांति खाती-पीती और सोती थी।

सबसे बुरी बात तो यह थी कि अब वह किसी चीज़पर अपनी कोई सम्मति न रखती थी। वह अपने चारों ओर चीज़ोंको देखती थी, जो कुछ हो रहा होता उसे समझती, मगर किसी बातपर अपनी राय क़ायम न कर सकती थी। उसे यह भी न समझ पड़ता था कि किसीसे यदि बातचीत करे तो किस विषयपर करे। किसी बातपर अपनी सम्मति न रखना भी कैसा भयंकर है! उदाहरणके लिए मान लीजिए कि एक बोतल रखी है या पानी बरस रहा है, अथवा एक किसान गाड़ी भगाता हुआ निकल गया, भला सोचिये कि यदि हज़ार रुपये देनेपर भी आप यह न कह सकें कि बोतल क्यों रखी है, पानी क्यों बरसता है अथवा किसान क्यों निकल गया तो? कुकिन और ऐड्रेविचके समयमें, या बादमें घोड़ा-डाक्टरके ज़मानेमें ओलिंका इन सब बातोंको समझा सकती थी, हरएक विषयपर अपनी राय दे सकती थी परन्तु अब उसका हृदय और मस्तिष्क दोनों ही उसके आँगनके समान खाली, आँगनके समान रिक्त थे। यह सब महादुखदायी और नीमकी भांति कटु था।

धीरे-धीरे चारों ओरसे शहर बढ़ने लगा। पहलेकी गलियाँ चौड़ी होकर सड़कें बन गईं। पुराने थियेटर और लकड़ीकी टालके स्थानमें नये मकानोंवाली सड़कें निकल गईं। समय कितनी जल्दी बीतता है! ओलिंकाका मकान अब पहलेकी तरह सफेद नहीं। उसकी छत धूल-धूसरित और काली पड़ गई। बागमें घास-फूस, नरकुल आदि उग आये। स्वयं ओलिंका अब बूढ़ी हो गई, उसका रूप-रंग जाता रहा। गर्मीमें वह अपने बरामदेमें बैठा करती। उसके हृदयमें विषाद और शून्यता विराजती थी। जाड़ेमें वह खिड़कीके सामने बैठकर शून्यदृष्टिसे बर्फकी ओर देखा करती। बसन्तऋतुमें जब गिरजेकी घंटीकी आवाज़ उसके कानोंमें पहुँचती, तब स्मृतिकी एक किरण उसे अतीतका स्मरण करा देती थी। उस समय उसका हृदय एक मधुर पीड़ासे भर उठता और उसकी आँखोंसे आँसुओंका प्रबल प्रवाह उमड़ चलता था, परन्तु यह दशा थोड़ी देरके लिए हुआ करती थी, बादमें वही रिक्तता, वही शून्य हाहाकार! उसे स्वयं यह न समझ पड़ता था कि आखिर वह किस लिए जी रही है।

उसकी बिल्ली आकर धीरे-धीरे गुर्राती, प्यारसे अपने मालिकिनके शरीरसे अपनी पीठ रगड़ती, परन्तु ओलिंकापर इस प्रेम-प्रदर्शनका कोई असर न पड़ता। उसे इस प्रकारका प्रेम न चाहिए था। उसे उस प्रकारके प्रेमकी आवश्यकता थी, जो उसके सम्पूर्ण जीवनको, उसकी आत्मा और बुद्धिको निमग्न कर दे, जो उसे जीवनको समझने और उसकी विवेचना करनेकी शक्ति दे। ओलिंकाको ऐसे प्रेमकी आवश्यकता थी, जो उसके पुराने रक्तमें पुन: गर्मी ला दे। वह खीझकर बिल्लीको धक्का देती और कहती—

"दुर! भग यहाँसे। तुझे किसने बुलाया था?"

इस प्रकार बिना किसी प्रकारकी प्रसन्नता, विचार अथवा किसी विषयपर अपनी सम्मतिके दिन और वर्ष बीतते गये। रसोईदारिन जो कुछ कह देती, ओलिंकाके लिए वही अच्छा था।

गर्मीमें एक सुहावने दिन, सन्ध्या समय जब जानवर खेतसे चरकर घरको वापस जा रहे थे और बाहरी आंगनके ऊपर धूलके बादल मँडरा रहे थे, किसीने आकर फाटकका कुंडा खटखटाया। ओलिंका स्वयं ही दरवाज़ा खोलने गई। जब उसने दरवाज़ा खोलकर बाहरकी ओर देखा, तो आश्चर्यसे ठगीसी रह गई। बाहर घोड़ा-डाक्टर सिनेरॉडिन खड़ा था। उसके भी बाल सफेद हो गये थे, और वह फौजी वर्दी न पहनकर मामूली लोगोंके सादे कपड़े पहने हुए था। ओलिंकाको सहसा अतीतकी सब बातें स्मरण हो आईं। वह रो पड़ी और उसने उसे गलेसे लगा लिया। ओलिंकाके मुँहसे एक शब्द भी न निकला। वह इतनी उद्विग्न हो रही थी कि उसे यह भी न मालूम हुआ कि वे दोनों किस प्रकार भीतर आकर चाय पीनेको बैठ गये।

"प्यारे ब्लादीमीर", ओलिंकाने प्रसन्नतासे काँपते हुए कहा—"तुम्हें भगवानने कहाँसे भेज दिया ?"

"अब मैं यहाँ हमेशाके लिए बसनेको आया हूँ।" उसने कहना आरम्भ किया—"मैं फौजसे रिटायर हो गया, अब बुढ़ापेमें यहाँ स्वतन्त्रता-पूर्वक दिन काटना चाहता हूँ। दूसरी बात यह है कि अब मुझे अपने लड़केको स्कूल भेजना है। उसकी पढ़नेकी उम्र हो गई। तुम्हें मालूम ही होगा कि मुझमें और मेरी स्त्रीमें मेल हो गया है।"

"तुम्हारी स्त्री कहां है ?" ओलिंकाने पूछा।

"वह और लड़का होटलमें है। मैं मकान ढूँढ़ने निकला हूँ।"

"मगर तुम मेरा पूरा मकान ले सकते हो! तुम मकान लेकर क्या करोगे ? मैं तुमसे किराया भी एक कौड़ी न लूँगी।" ओलिंकाने उत्तेजनाभरे स्वरमें कहा और एक बार फिर रो पड़ी। "तुम यहाँ रहो। मेरे लिए इस ओरका छोटा हिस्सा बहुत काफ़ी होगा। हे ईश्वर, आज कैसा शुभ दिन है!"

दूसरे दिन छतकी मरम्मत और दीवारोंपर सफेदी होने लगी। ओलिंका कमरपर हाथ रखे हुए मजदूरोंको हुक्म देती घूमती थी। उसके चेहरेपर वही पुरानी मुसकराहट चमक रही थी। मालूम होता था कि उसमें फिरसे नये प्राण आ गये हों, अथवा बड़ी लम्बी नींदसे जागकर उसकी उम्र घट गई हो, बीता यौवन फिर लौटा आ रहा हो!

घोड़ा-डाक्टरकी स्त्री आ गई। वह दुबली-पतली कुरूप और चिड़चिड़ी थी। उसके बाल छोटे छोटे थे। उसके साथ उसका पुत्र शाशा था। शाशा नौ वर्षका गोल-मटोल सुन्दर लड़का था, उसकी आँखें स्वच्छ, नीली और गालोंमें गढ़े थे। जैसे ही उसने आंगनमें पैर रखा, वैसे ही उसने दौड़कर बिल्लीको पकड़ लिया, और कुछ ही देरमें उसकी प्रसन्नताभरी हँसी घर-भरमें गूँजने लगी।

"चाची, यह तुम्हारी बिल्ली है ?" उसने ओलिंकासे पूछा। "जब इसके बच्चे होंगे, तब हमें एक बच्चा दोगी ? अम्माँ चूहेसे बहुत डरती हैं।"

ओलिंकाने शाशाको पास बुलाया, बातें कीं, मिठाई दी। उसके हृदयमें मधुर भावोंका स्रोत उमड़ पड़ा। उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानो शाशा उसीका बेटा हो। शामको जब शाशा मेज़पर बैठकर अपना सबक़ याद करता, तब ओलिंका उसकी ओर प्रेम और करुणाभरी दृष्टिसे निहारती और धीरे-धीरे कहती—"मेरा प्यारा बेटा, मेरा छोटा मुन्ना, तू कैसा होशियार है!"

शाशा पढ़ता—"द्वीप धरतीके उस खंडको कहते हैं, जो चारों ओर पानीसे घिरा हो।"

"द्वीप धरतीके उस खंडको......" ओलिंका दोहराती। इन अनेकों वर्षोंकी विचार-शून्यता और चुप्पीके बाद ओलिंकाने किसी बातपर विश्वासपूर्वक जो सर्वप्रथम सम्मति प्रकट की, वह यही थी कि द्वीप धरतीके उस भागको कहते हैं, जो चारों ओर पानीसे घिरा हो।

अब वह फिर अनेक बातोंपर अपनी सम्मति रखने लगी। शामको भोजनके समय वह शाशाके माता-पितासे बातचीतमें कहती कि आजकल लड़कोंकी स्कूली पढ़ाई कितनी मुश्किल हो गई है। फिर भी घरकी पढ़ाईसे स्कूलकी पढ़ाई अच्छी है, क्योंकि स्कूलसे पास कर चुकनेपर लड़का जो चाहे कर सकता है। डाक्टर बन सकता है, इञ्जीनियर हो सकता है।

शाशा स्कूलमें भरती करा दिया गया। उसकी माता अपनी बहनके पास खरकोव शहर चली गई, जहाँसे फिर कभी लौटकर न आई। शाशाका पिता बीमार जानवरोंको देखनेके लिए दिनभर बाहर रहा करता और कभी-कभी तो लगातार दो-दो, तीन-तीन दिन तक वापस न आता। ओलिंकाको समझ पड़ा कि लड़केकी काफी देखरेख नहीं होती, उसके माता-पिता उसे व्यर्थ समझते हैं। कहीं वह भूख-प्याससे न मर जाय, इसलिए ओलिंका उसे घरमें अपनी ओरके भागमें ले गई और वहाँके एक छोटे कमरेमें ठहराया।

शाशाको ओलिंकाकी ओर आये हुए छै महीने हो गये। प्रतिदिन सवेरे, जब शाशा सिरके नीचे हाथ रखे हुए सोता ही रहता, वह उसके कमरेमें जाती। वहाँ जाते हुए वह मुश्किलसे साँस लेती थी कि कहीं खटकेसे शाशा जाग न उठे। शाशाको जगानेमें उसे बड़ा दुख होता था।

"शाशा!" अन्तमें वह बड़ी मीठी आवाज़मे कहती—"उठो प्यारे, स्कूलका वक्त हो गया!"

शाशा उठकर मुँह-हाथ धोता, प्रार्थना करता और नाश्ता करने बैठता। वह तीन प्याले चाय पीता, दो टुकड़े रोटी और थोड़ा मक्खन खाता। अब तक वह अच्छी तरहसे नहीं जगा है, और कुछ चिड़चिड़ाया हुआसा मालुम होता है।

"शाशा प्यारे, अपनी कहानी अच्छी तरह याद करलो।" ओलिंका कहती और उसे ऐसी दृष्टिसे देखती मानो वह उसे किसी दूर-दराज़ यात्राके लिए विद कर रही हो। "तुम मुझे कितना तंग करते हो! देखो सबक अच्छी तरह याद करना और मास्टर साहबका कहना मानना...... ।"

"ओह, चाची हटो भी!" शाशा जवाब देता।

शाशा स्कूल जा रहा है। उसके सिरपर बड़ीसी टोपी है और पीठपर बस्ता लटक रहा है। ओलिंका चुपकेसे पीछे-पीछे जा रही है। "शशिका!" वह पीछेसे पुकारती है। शाशा मुड़कर देखता है और ओलिंका कोई फल या मिठाई उसके हाथपर धर देती है। जब वह स्कूलके पासवाली मोड़पर पहुँच जाता है, तब उसे इस बातकी शर्म मालुम होती है कि एक बड़ी लम्बी स्त्री उसके पीछे-पीछे आ रही है; वह मुड़कर कहता है—

"चाची, अब लौट जाओ; मैं यहाँसे अकेला जा सकता हूँ।"

वह रुक जाती है और शाशाकी ओर टकटकी लगाये देखती रहती है। यहाँ तक कि शाशा स्कूलके फाटकमें घुसकर ओझल हो जाता है। ओह! वह उसे कितना प्यार करती है! उसके पहलेके प्रेमोंमें कोई भी इतना गहरा नहीं था और न कभी उसकी आत्माको इतने निस्वार्थ-भावसे ऐसी सान्त्वना मिली, जैसी अब—जब उसके हृदयमें मातृत्वके भाव जाग्रत हो रहे थे—मिल रही थी। इस विचित्र लड़केके लिए वह प्रसन्नतासे कृतज्ञता-पूर्वक अपना जीवन दे सकती थी। क्यों? कौन कह सकता है?

शाशाको स्कूल भेजकर ओलिंका शान्ति, सन्तोष और प्रेमसे भरी हुई घर लौटती है। पिछले छै महीनेमें उसके मुखमंडलपर पुनः यौवन आ गया है। उसमें एक अद्भुत चमक दिखाई पड़ती है। जान-पहचानवाले उसे देखकर प्रसन्न होते हैं और कहते है—"डार्लिंग ओलिंका! गुड मार्निंग। कहो, अच्छी तो हो?"

"आजकल स्कूलमें इतने कड़े सबक दिये जाते हैं कि उनका याद करना कुछ हँसी-खेल नहीं है।" वह जान-पहचानवालोंसे कहती— 'कल ही देखिए कि पहले दर्जेमें एक तो कहानी रटनेको दी गई—मुँहज़बानी! फिर लैटिनसे अनुवाद करनेको दिया गया और तीन सवाल......भला एक लड़केसे और कितनी आशा की जा सकती है?"

बस, वह स्कूल और मास्टरों सबक और किताबों तथा सवालोंकी बातें करना शुरू कर देती। शाशाकी सम्मतियोंको दुहराया करती।

तीन बजे दोनों साथ-साथ खाना खाते, शामको घरका काम करते और साथ-साथ रोते-चिल्लाते। ओलिंका शाशाको सुलाकर कई बार परमेश्वरको हाथ जोड़ती और प्रार्थना करती। जब वह स्वयं सोनेको जाती, तब वह सुदूर अस्पष्ट भविष्यकी बातें सोचती, जब शाशा अपनी शिक्षा समाप्त कर लेगा और डाक्टर या इंजीनियर हो जायगा, तब *वह अपना अलग घर बनावेगा, उसका विवाह होगा, बच्चे होंगे*...। *इन्हीं सब बातोंकी चिन्ता करते-करते उसकी बन्द पलकोंसे आँसू निकलकर गालोंपर बहते* और उसे नींद आ जाती। उसकी बिल्ली पासमें पड़ी-पड़ी गुर्र-गुर्र किया करती।

भड़-भड़! भड़-भड़! भड़-भड़!

सहसा किसीने दरवाज़ा खटखटाया। ओलिंका चौंक पड़ी। डरके मारे उसका साँस लेना रुक-सा गया। उसका दिल धड़क रहा है। कुछ क्षण बीत गये। दरवाज़ेपर पुन: खटखटाहट हुई।

वह सोचकर पत्तेकी तरह काँपने लगी—"हो न हो, खरकोवसे तार आया है। शाशाकी मा शाशाको अपने पास रखना चाहती है।......हे भगवान!" ओलिंका निराशा और दु:खमें डूब जाती है। उसका सिर और हाथ-पैर ठंडे हो जाते हैं। उसे ऐसा जान पड़ता है कि संसारमें वही सबसे अभागी प्राणी है। एक मिनट और बीतता है। अब खटखटाहटके साथ-साथ आवाज़ भी सुनाई देती है। घोड़ा-डाक्टर अपने क्लबसे लौटे हैं, उन्हींकी आवाज़ है।

"ईश्वरको धन्यवाद!" वह दरवाज़ा खोल देती है।

धीरे-धीरे वे दु:खभरे भाव मिट जाते हैं। उसका हृदय पुन: हलका हो जाता है। वह फिर अपने बिस्तरपर लेटकर शाशाकी चिन्ता करने लगती है। शाशा बग़लवाले कमरेमें गहरी नींदमें सो रहा है। हाँ बीच-बीचमें उसका बर्राना सुनाई पड़ता है—

"मैं तुम्हें भी दूँगा!" 'हटो' यहाँसे।" "लड़ो मत!"

अनुवादक—ब्रजमोहन वर्मा

'डार्लिंग' पर कुछ विचार

रशियन ऋषि टालस्टाय

बाइबिलमें एक कथा बड़ी अर्थपूर्ण है। इस कथामें बताया गया है कि मोआबिटोंके राजाने 'बलाक' ने इज़राईल लोगोंको, जो उसकी सीमामें घुस आये थे, शाप देनेके लिए 'बलाम' नामक साधुको बुलाया था। बलाकने बलामको इस कार्यके लिए बहुत कुछ इनाम देनेका वचन दिया था, और इसीलिए बलाम लालचमें फँसकर बलाकके पास गया; मगर रास्ते ही में एक फरिश्तेने उसे रोकना चाहा। बलामके गधेने तो फरिश्तेको देख लिया; मगर स्वयं बलाम उसे न देख सका। इतनेपर भी वह बलाकके पास गया और वे दोनों एक पहाड़पर गये। पहाड़पर बछड़ों और मेमनोंका बलिदान देकर एक वेदी बनाई गई थी। वहाँ अभिशापके लिए सब सामान तैयार था। बलाक अभिशाप उच्चारण होनेकी प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु बलामने इज़राईल लोगोंको शाप देनेके स्थानमें आशीर्वाद दे डाला।

बलाकने बलामसे कहा—"तूने यह क्या कर डाला! मैं तुझे यहाँ अपने बैरियोंको शाप देनेके लिए लाया था, पर देख तो, तूने उन्हें एकदम आशीर्वाद दे डाला!"

उसने जवाब दिया—"भगवान मेरे मुँहमें जो शब्द रख देता है, क्या मैं उसकी अवहेला करूँ!"

बलाकने कहा—"चलो, मेरे साथ दूसरे स्थानको चलो ...वहाँसे तुम शाप देना।"

वह उसे दूसरी जगह ले गया। वहाँ भी वेदियाँ बनी थीं, लेकिन फिर भी बलामने शाप देनेके बजाय आशीर्वाद ही दिया।

और तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ।

अब बलामके विरुद्ध बलाकका क्रोध प्रज्वलित हो उठा। उसने हाथ मलकर बलामसे कहा—"मैंने अपने बैरियोंको शाप देनेके लिए तीन बार तुमसे कहा, और तीनों बार तूने आशीर्वाद दिया। इसलिए अब यहाँसे अपने स्थानको काला मुँह कर जा। मैं तुझे बड़े सम्मानका पद देना चाहता था, पर भगवानने तुझे उस सम्मानसे वंचित रखा।"

इस प्रकार बलाम बिना कुछ इनाम पाये हुए लौट आया, क्योंकि उसने बलाकके बैरियोंको शाप देनेके स्थानमें आशीर्वाद दिया था।

बलामकी जो दशा हुई, वही अक्सर सच्चे कवियों और कलाकारोंकी हुआ करती है। बलामके इनामोंकी भांति लोकप्रियता और वाहवाहीके लोभमें पड़कर, अथवा लोगोंकी सुझाई हुई ग़लत धारणाके फेरमें फँसकर कवि लोग उस फरिश्तेको भी नहीं देखते, जो उनका रास्ता रोकता है, और जिसे गधे भी देख लेते हैं। वे शाप देना चाहते हैं, परन्तु शापके स्थानमें आशीर्वाद दे डालते हैं।

ठीक यही दशा सच्चे कवि और कलाकार चेखोवकी हुई, जब उसने 'डार्लिंग' शीर्षक सुन्दर गल्प लिखी।

प्रत्यक्ष रूपसे लेखक इस दयनीय जीव—ओलिंका—का मज़ाक उड़ाना चाहता था। वह उसे अपनी बुद्धिसे तौलता है, हृदयसे नहीं। ओलिंका कूकिनके थियेटर-सम्बन्धी झंझटोंमें हाथ बँटाती है, फिर शहतीरके व्यापारमें डूब जाती है। घोड़ा-डाक्टरके प्रभावमें वह पशुओंके प्लेगको संसारकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात समझती है और अन्तमें बड़ी टोपीवाले लड़केके वात्सल्यमें व्याकरण और भूगोलके सवालोंमें ग़र्क़ हो जाती है। कूकिनका नाम हास्योत्पादक है और उसकी बीमारी और मौतका टेलिग्राम भी हास्यजनक है। लकड़ीका व्यापारी और उसकी गम्भीरता भी उपहास-जनक है, घोड़ा-डाक्टर और लड़का भी हास्यास्पद हैं; मगर ओलिंकाकी आत्मा तथा जिससे वह प्रेम करती है, उसमें अपने समस्त अस्तित्वको निमग्न कर देनेकी क्षमता—ये दोनों वस्तुएँ हास्यास्पद नहीं हैं, वे अलौकिक हैं और पवित्र हैं।

मैं समझता हूँ कि जिस समय लेखकने यह गल्प लिखी थी, उस समय उसके दिमाग़में—हृदयमें नहीं—नये ज़मानेकी स्त्रियोंका कुछ अस्पष्ट-सा ध्यान था। नवीन ढंगकी स्त्रियाँ जो पुरुषोंकी समानताका दावा करती हैं, जो पढ़ी-लिखी, पूर्ण विकसित हैं और स्वतन्त्र रूपसे पुरुषोंकी भाँति—यद्यपि उनसे अधिक अच्छी तरह नहीं—समाजके उत्थानका कार्य करती हैं तथा जिन्होंने नारियोंके अधिकारोंका प्रश्न उठाया है, अथवा जो इस प्रश्नपर बहुत ज़ोर देती हैं—इन्हीं स्त्रियोंको ध्यानमें रखकर 'डार्लिंग' लिखते समय चेखोवने यह बतलाना चाहा था कि स्त्रियोंको कैसा न होना चाहिए। जनमतके बलाकने अविकसित, निर्बल, अनुगता और पुरुषोंपर उत्सर्ग हो जानेवाली नारियोंको शाप देनेके लिए चेखोवको निमन्त्रित किया। चेखोव पहाड़पर चढ़ा, वहाँ वेदीपर बछड़ों और मेमनोंका बलिदान किया गया; मगर जब उसने बोलना आरम्भ किया, तब उसने नारियोंको शाप देनेके स्थानमें आशीर्वाद दे डाला! यह समूची कृति एक अलौकिक सरस हास्यसे शराबोर है, फिर भी कम-से-कम मैं इस सुन्दर गल्पके कुछ अंश बिना आँसू बहाये नहीं पढ़ सकता। किस सर्वांशपूर्ण भक्तिके साथ ओलिंका कूकिनको तथा उसकी प्रत्येक वस्तुको प्यार करती थी, किस भक्तिके साथ वह शहतीरवालेसे और घोड़ा-डाक्टरसे प्रेम करती थी, और उससे भी बढ़कर अकेली रह जानेपर और प्रेम करनेके लिए कोई चीज़ न रहनेपर वह कैसी दुःखित होती थी! अन्तमें उसने अपने समस्त स्त्री-सुलभ तथा मातृत्वके कोमल भावोंको (जिन्हें उसे स्वयं अपनी सन्तान न होनेके कारण कभी व्यक्त करनेका अवसर न मिला था) किस असीम प्रेमके साथ बड़ीसी टोपी देनेवाले बालकपर निछावर कर दिया था। इन सब बातोंको देखकर मेरा हृदय द्रवित हो जाता है।

लेखकने ओलिंकाको हास्यास्पद कूकिनसे, उस तुच्छ लकड़ीवालेसे तथा अप्रिय घोड़ा-डाक्टरसे प्रेम करते दिखाया है; मगर प्रेम कोई कम पवित्र वस्तु नहीं है, चाहे उस प्रेमका पात्र कोई कूकिन हो या स्पिनोज़ा; पेस्कल हो या शीलर। प्रेमका पात्र चाहे जीवनभर एक ही रहे अथवा जल्दी-जल्दी बदला करे—जैसे, ओलिंकाका बदला है—उससे प्रेमकी पवित्रतामें कोई कमी नहीं होती।

अधिक दिन नहीं हुए, मैंने एक पत्रमें श्री० एम० अटाकी एक आलोचनामें स्त्रियोंके सम्बन्धमें कुछ बातें पढ़ी थीं। इस आलोचनामें लेखकने कुछ बुद्धिमत्ता-पूर्ण और गहरे

विचार प्रकट किये हैं। वह कहता है—"अनेकों स्त्रियाँ यह बात सिद्ध करनेकी चेष्टा किया करती हैं कि पुरुष जिन बातोंको कर सकते हैं, उन सबको स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। मैं इस कथनको केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि यह माननेके लिए भी तैयार हूँ कि पुरुष जो कुछ कर सकते हैं उसे स्त्रियाँ भी सकती हैं और शायद पुरुषोंकी अपेक्षा अच्छी तरह कर सकती हैं। मगर दिक्कत तो यह है कि स्त्रियाँ जो कुछ कर सकती हैं, पुरुषोंकी कृति उसके पास पड़ोस तक भी नहीं पहुँचती।"

निस्सन्देह बात ऐसी ही है। यह बात सन्तान-उत्पादन, उसके लालन-पालन और प्रारम्भिक शिक्षापर ही यथार्थ नहीं होती, बल्कि पुरुष उस बातको भी नहीं कर सकते जो महान है, सर्वोत्तम है और जो मनुष्यको परमेश्वरके निकट पहुँचाती है। वह बात है अपने प्रेमीको समस्त भक्ति और निष्ठासे प्रेम करना, जिसे भली स्त्रियाँ ऐसी स्वाभाविकतासे और अच्छी तरह करती आई हैं, कर रही हैं और करेंगी। यदि स्त्रियोंमें यह गुण न हो और यदि वे इस गुणको काममें न लायें, तो हम पुरुषोंकी क्या दशा हो ? इस संसारकी क्या दशा हो ? यदि संसारमें लेडी डाक्टर न हों, महिला तार बाबू, महिला वकील, महिला विज्ञानवेत्री, और महिला लेखिकाएँ न हों, तो भी हमारा काम चल सकता है। मगर यदि संसारमें माताएँ, पुरुषके दुःखोंमें हाथ बटानेवाली, उसे कष्टोंमें सान्त्वना देनेवाली, उसकी जीवनकी संगिनी और सहायिका तथा मनुष्यमें जो कुछ सर्वोत्तम है, उसे प्राणपणसे प्यार करनेवाली महिलाएँ न हों, तो इस संसारमें रहना दूभर हो जाय ! यदि कहीं ऐसा होता तो ईसाको मेरी सी माता न मिलती, असीसीके फ्रेन्सिसको क्लेयर न नसीब होती, डिस्म्बरिस्टोंकी पत्नियाँ उनके निर्वासनमें उनका साथ न देतीं और न दुखोबरोंकी स्त्रियाँ उन्हें रोकनेके स्थानमें उन्हें सत्यके लिए कुर्बान होनेको उत्साहित करतीं।* लाखों कमजोर चरित्रवाले शराबी और भग्नहृदय पुरुषोंको, जिन्हें प्रेम और सान्त्वनाकी सबसे अधिक आवश्यकता है, धैर्य और दिलासा देनेवाली वे लाखों अज्ञात महिलाएँ न मिलतीं। उनका प्रेम ही, चाहे वह कुकिनके प्रति हो या ईसाके प्रति, महिलाओंकी सबसे बड़ी शक्ति है। यह ऐसी शक्ति है जिसकी पूर्ति किसी अन्य वस्तुसे नहीं हो सकती।

आजकल महिलाओंकी समस्याने अधिकांश स्त्रियोंको, यहाँ तक कि पुरुषोंको भी उलझा रखा है, (जैसा प्रत्येक सारहीन विचारमें हुआ करता है)। यह महिलाओंकी समस्या भी कैसी भ्रमोत्पादक है !

'स्त्रियां अपनी उन्नति करना चाहती हैं !" इस कथनसे अधिक न्यायसंगत और उचित बात क्या हो सकती है ?

मगर महिलाओंकी स्वाभाविक वृत्तिसे ही उनका कार्य पुरुषोंसे भिन्न है। इसीलिए महिलाओंके लिए सम्पूर्णताका जो आदर्श है, वही आदर्श पुरुषोंके लिए नहीं हो सकता। हम यह मान लेते हैं कि हमें अभी इस बातका ज्ञान नहीं है कि महिलाओंकी सम्पूर्णताका आदर्श क्या है, लेकिन हर हालतमें यह बात निश्चित रूपसे कही जा सकती है कि वह आदर्श पुरुषोंकी सम्पूर्णताका आदर्श नहीं है। इतनेपर भी हम देखते हैं कि इसी मर्दाने आदर्शकी प्राप्तिके लिए, जो अनेकों स्त्रियोंको भ्रममें डाल रहा है, आजकलकी फैशनेबिल महिलाओंका आन्दोलन अपनी समस्त अस्वास्थ्यकर और युक्तिहीन शक्तियां लगा रहा है।

मुझे भय है कि चेखोवने जब यह कहानी लिखी थी तब वह इसी गलतफहमीके प्रभावमें था।

वह बलामकी भांति अभिशाप देनेवाला था, परन्तु काव्यके देवताने उसे रोककर आशीर्वाद देनेकी आज्ञा दी, और उसने आशीर्वाद दिया। उसने बिना जाने ही उस कोमल प्राणी ओलिंकाको ऐसा सुन्दर ज्योतिर्मय परिधान पहनाया है जो सदा इस बातका उदाहरण रहेगा कि स्त्रियोंको स्वयं सुखी होनेके लिए तथा जिस किसीके साथ उनका भाग्य संलग्न हो जाय, उसे सुखी बनानेके लिए किस प्रकारका होना चाहिये।

* सिस्टर क्लेयर सेन्ट फ्रान्सिसकी बड़ी भक्त थीं। रूसमें एक बार दिसम्बर मासमें विद्रोह हुआ था। इस विद्रोहमें भाग लेनेवालोंके निर्वासनमें उनकी पत्नियाँ साथ गई थीं। दुखोबर एक जाति है, जिसने ज़ारकी फ़ौजमें भर्ती होनेसे इन्कार करके बड़ी यातनायें भोगी थीं।

यह कहानी इतनी उत्तम इसीलिए हो सकी है कि पहलेसे इसका यह प्रभाव अभिप्रेत नहीं था।

मास्कोमें एक बड़ा घुड़सवारीका स्कूल था, जिसमें फौजी दस्तोंकी देखरेख होती थी। मैंने इसी स्कूलमें बाइसिकिलपर चढ़ना सीखा था। इसी स्कूलके दूसरे सिरेपर एक महिला भी साइकिलपर चढ़ना सीख रही थी। मैं यह सोचने लगा कि इस महिलाको किसी प्रकारकी दिक़्क़त न होने देना चाहिए। यही सोचकर मैं उसकी ओर देखने लगा। उसकी ओर देखते-देखते मैं अपनी इच्छाके विरुद्ध उसीकी ओर जाने लगा। उसने भी इस खतरेको देखा और शीघ्र ही रास्तेसे हटनेकी कोशिश की। मैं उससे जा भिड़ा, जिससे उसकी साइकिल उलट गई और वह गिर पड़ी। कहनेका अभिप्राय यह है कि मैं जो कुछ करना चाहता था, मैंने ठीक उसका उलटा किया। कारण यह है कि मैंने अपना सारा ध्यान उस महिलापर केन्द्रीभूत कर दिया था।

ठीक यही बात चेखोवपर घटी, परन्तु इसके विपरीत रूपमें। उसने ओलिंकाको नीचे गिराना चाहा था, परन्तु कविने समस्त ध्यान उसीपर केन्द्रीभूत करके उसे बहुत ऊपर उठा दिया।

विद्यार्थीजीकी पुण्य-स्मृतिमें

श्री कृष्णानन्द गुप्त

स्वर्गीय श्री विद्यार्थीजीको सबसे पहले मैंने सन् १९२२ में देखा। उस समय मैं झांसी हाई स्कूलके दसवें दर्जेका विद्यार्थी था। होस्टलमें रहते हुए प्रायः नित्य ही बाज़ार जाता था, और बाज़ार जाकर घंटे आध घंटेके लिए श्री वृन्दावनलाल वर्मा वकील (अब एडवोकेट)के घर न जाऊं, ऐसा बहुत कम होता था। उनसे मेरा पुराना घरौवा है, अतएव उनकी अनुपस्थितिमें भी उनके घरका द्वार मेरे लिए सदैव खुला रहता था। एक दिन उनके यहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि भीतरके बरामदेमें एक आदमी कम्बलके आसनपर पालथी मारे बैठा भोजन कर रहा है, और स्वयं वर्माजी परोस रहे हैं। निस्सन्देह वह वर्माजीका कोई विशिष्ट मित्र अथवा आत्मीय है, यह सोचते हुए मैंने उन्हें प्रणाम किया। अत्यन्त नम्रता और सहज मुसकराहटके साथ मुझे उसका उत्तर मिला। मैं एकटक होकर उस व्यक्तिकी ओर देखने लगा। मझोला क़द, दुर्बल देहयष्टि, बदनपर साफ़ कुर्ता, जिसकी निर्मलतामें एक प्रकारकी आध्यात्मिक शुचिता थी। गला खुला हुआ, केश ज़रा बड़े—सद्यःस्नानसे भींगे और अपनी कोमलतासे आप ऊपरकी ओर कुछ मुँड़े हुए। नाक सीधी, भौंहोंके मध्यबिन्दुसे कुछ नीचे नासिकाकी अस्थिपर चश्मेके निरन्तर उपयोगका परिचायक एक हलका-सा गड्ढा। नेत्र तेजस्वी। ठोड़ीके पास काला तिल। होठ पतले, निश्चयपूर्ण। मैंने उनकी बातें सुनीं। वर्माजीके साथ उन्हें हँसते और विनोद करते देखा। उनका स्वर गम्भीर और आकर्षक था। वैसे सम्पूर्ण आकृति किसी परिश्रमी, अध्यवसायी, लगनवाले व्यक्तिकी-सी, परन्तु हँसते समय वही व्यक्ति बड़ा कोमल, बहुत उदार और मधुरिमामय मालूम पड़ा। मैं उसके परिचयके लिए उत्सुक हो उठा। वर्माजी जिस समय उन्हें परोसकर भीतर गये, तो मैं उनके साथ हो लिया। धीरेसे पूछा—"ये कौन हैं?"

"ये हैं 'प्रताप'के सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी!"

मैंने मन-ही-मन दुहराया—"प्रतापके सम्पादक

गणेशशंकर विद्यार्थी !' साथ ही मेरे होठोंपर प्रसन्नता फूट पड़ी, और इस खयालसे कि आज मुझे श्री गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे व्यक्तिका परिचय-लाभ हो रहा है और उनकी बातें सुननेको मिल रही हैं, मैंने मन-ही-मन एक प्रकारका गर्व अनुभव किया। उस समय विद्यार्थीजी भोजन समाप्त कर चुके थे। वर्माजीने मुझे आज्ञा दी—"हाथ धुलानेके लिए थोड़ा जल ले लो।" इसे मैंने अपना परम सौभाग्य माना। मैं तो स्वयं ही इस फ़िक्रमें था कि किसी बहाने उस व्यक्तिसे बात करने अथवा उसकी कुछ सेवा करनेका अवसर प्राप्त हो जाय। मैंने हाथ धुलाये, पोंछनेको तौलिया दिया। उसके पश्चात् उस व्यक्तिने अपना चश्मा उठाया, जो भोजनकी थालीके पास रखा था। जिस अन्दाज़से उसे कुरतेके छोरसे पोंछकर अपनी आँखोंपर चढ़ाया, वह मुझे बहुत ही आकर्षक और मनोमोहक जान पड़ा। चश्मेने उनकी आकृतिको मेरे लिए कुछ गम्भीर और कठोर बना दिया। मेरी हिम्मत नहीं हुई कि उनसे कुछ बात कहूँ, या उनके पास बैठ जाऊँ। फिर भी मैं उस व्यक्तिसे बात करना चाहता था और चाहता था उसकी बातें सुनना, परन्तु उसकी गम्भीरता मानो उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। वह चुपचाप बैठा कुछ सोचने लगा और मैं एक ओर उसकी गम्भीर मुद्राका परिशीलन करने और धीरे-धीरे उसके द्वारा प्रभावित-सा होने लगा।

मैं सबसे पहले प्रभावित हुआ उस व्यक्तिकी सादगीसे। मैं उस समय स्कूलका अनुभवहीन विद्यार्थी था। उस वक्त तक मुझे किसी सम्पादकको देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। सम्पादक नामधारी व्यक्तिकी मैंने जो कल्पना कर रखी थी, वह मेरा ही रूपान्तर था। मैंने देखा, उस रूपसे तो इस व्यक्तिकी एक रेखा भी नहीं मिलती! बढ़िया कमीज़, बढ़िया कोट या बढ़िया जूते न सही, परन्तु इस व्यक्तिके पास तो एक फाउन्टेनपेन भी नहीं, जो उस समय मेरे खुले कालरके कोटकी जेबमें शोभा दे रहा था और जिसे मैं प्रत्येक लेखक अथवा सम्पादकके लिए एक अपरिहार्य वस्तु समझता था! फिर भी यह व्यक्ति सम्पादक है, एक प्रसिद्ध पत्रका सम्पादक! और स्वयं भी एक प्रसिद्ध व्यक्ति! अपनी सादगीमें कितना महान! कितना उच्च! और कितना सौन्दर्यशाली! उसके मुक़ाबलेमें अपनेको मैंने बहुत ही तुच्छ और बहुत ही हीन अनुभव किया! मैंने अपनी ओर देखा, मुझे बड़ी शर्म आई। यहाँ तक कि मैं घबरा उठा। इस खयालसे कि निस्सन्देह इस व्यक्तिके कथनमें मैंने कोई अच्छी धारणा उत्पन्न नहीं की! यह चुप क्यों बैठा है? कुछ पढ़ भी नहीं रहा! कुछ सोच भी नहीं रहा! ओफ़! कितना कठोर है!

वर्माजी पान लेकर आये और बातें करने लगे। मैंने फिर देखा, यह व्यक्ति ही बड़ा विनोदी और मधुरभाषी है। सहसा मेरी ओर इशारा करके उन्होंने वर्माजीसे पूछा—"आपका परिचय?" वर्माजीने मेरा जो परिचय दिया, उससे मानो मेरी हीनता और भी बढ़ गई। "बैठिये, आप खड़े क्यों हैं। नहीं, नहीं, यहाँ अच्छी तरह बैठिये।"—मैं संकुचित होकर बैठ गया।

"तो आपको कहानी लिखनेका शौक़ है?" उन्होंने अत्यन्त स्नेहके साथ पूछा।

"जी, यों ही, जो मनमें आता है, सो लिखा करता हूँ।"

वर्माजीने कहा—"आश्चर्य नहीं, जो इस समय भी इनकी जेबमें एकआध कहानी पड़ी हो।" बात यह है कि उन दिनों मुझपर 'गल्प-लेखक' बननेकी धुन सवार थी, और वर्माजी मेरे गुरु हैं।

मैं कुछ कहूँ, इसके पूर्व ही विद्यार्थीजीने कहा—"वाह, तो फिर सुनाइये। इस आनन्दसे आप मुझे कैसे वंचित रख सकते हैं! निकालिये, यदि जेबमें कुछ हो।"

"आपके सुनाने योग्य तो कुछ नहीं है।" मैं एक विलक्षण संकोच, आनन्द और गर्वके साथ उस व्यक्तिकी ओर देखने लगा। यह तो बड़ा उदार और विनोदी निकला! इसके विनोदमें कितना अपनापन है! मुझसे बात

करते-करते 'सम्पादक'के कठोर पहरेदार बिदा ले गये,—कठोर अध्यवसायी देशभक्त मानो मुक्त हो गया! यह इसका स्वभाव है या अपने स्नेहके जादूसे यह नवयुवकोंको केवल प्रभावित और प्रोत्साहित किया करता है, कुछ समझमें नहीं आया। एक स्नेहपूर्ण, मुक्तहृदय मानव मुझे तुरन्त दिखलाई पड़ा, हँसते समय जिसके मुखकी सम्पूर्ण रेखाएँ सौन्दर्यसे फूल-सी उठती थीं। उसका सरल और अकृत्रिम व्यवहार मेरे लिए कल्पनातीत था। उसकी उदारताने मेरी आत्मग्लानिको ढक लिया। मैं उनके साथ घूमने गया। उस समय उन्होंने मेरे साथ इस प्रकार खुलकर बातें कीं, मानों मैं उनका चिरपरिचित मित्र हूँ। बादमें मैंने देखा, यह उस व्यक्तिकी विशेषता है। छोटेसे छोटा व्यक्ति भी उनके समक्ष अपनेको बहुत देर तक छोटा नहीं समझ सकता था।

उस दिन अपनी मित्र-मंडलीमें मैंने बड़े गर्वके साथ इस बातकी घोषणा की कि मैं 'प्रताप' के सम्पादक श्री गणेशशंकर विद्यार्थीसे मिलकर आ रहा हूँ। अभी थोड़े दिनोंकी बात है, हिन्दी-जगतके एक अत्यन्त विनम्र, निरभिमानी और विद्वान सम्पादकको मैंने इसी प्रकारकी गर्वोक्ति करते सुना था—"मुझे इस बातका गर्व है कि मैं अपने जीवनमें अनेक महापुरुषोंसे मिला हूँ।" अतएव देखता हूँ, मेरा वह गर्व स्वाभाविक और सच्चा था।

दूसरे दिन नित्यकी अपेक्षा जल्दी पहुँचा। यह देखकर मुझे खुशी हुई कि विद्यार्थीजी अकेले थे। मुझे देखते ही उन्होंने कहा—"आइये, बैठिये।" उनकी दृष्टिसे यह बात छिपी नहीं रही कि आज मैं केवल कमीज़ पहनकर आया हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे इस कृत्यमें लज्जाकी अपेक्षा भयकी मात्रा अधिक थी। उसके बाद भी मैं एकआध साल तक कोट पहनता रहा, परन्तु 'प्रताप' आफिसमें कभी कोट पहनकर गया हूँ, इसका मुझे स्मरण नहीं आता।

उस व्यक्तिकी उदारताने मेरी धृष्टताको ऐसा प्रश्रय दिया कि मैं बिलकुल उसके पास उससे सटकर बैठ गया और इस प्रकार बातें करने लगा, मानो वह मेरा समवयस्क मित्र हो! और देखिये, मैं अपने साथ एक कहानी ले गया और उनकी सरलताका दुरुपयोग करके निस्संकोच होकर बोला—"क्या आप इसे पढ़नेकी कृपा करेंगे?"

"अवश्य!"—मानों वे उसे पढ़नेके लिए तैयार बैठे थे।

विद्यार्थीजी कहानी पढ़ने लगे। इधर भय और आशंकासे मेरा हृदय धड़कने लगा, मेरी इस रचनामें इन्हें न जाने कितनी ग़लतियाँ नज़र आयेंगी, इस खयालसे! मैं ध्यानपूर्वक उनके चेहरेका उतार-चढ़ाव देखने लगा। मुख-मंडलपर वही प्रशान्ति और अधरोंपर वैसी ही मुसकराहट! मुझे कुछ आशा बँधी। अन्तमें वे बोल उठे—"खूब! आप तो बहुत अच्छा लिखते हैं।" उनका वह प्रोत्साहन इतना सरल, इतना सहज और इतना निर्विकार था कि मैं फिर ग़लती कर बैठा। उन दिनों 'प्रभा' प्रकाशित होती थी। मैंने कहा—"क्या आप इसे 'प्रभा' में प्रकाशित करना पसन्द करेंगे?"

"देखिये"—कहकर उन्होंने कहानी जेबमें रख ली। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मेरी यह पहली रचना 'प्रभा'में प्रकाशित हो गई। उस वक्त मुझे जो खुशी हुई, इसका अन्दाज़ सब कोई नहीं लगा सकते।

फिर कहानी लिखनेका प्रसंग छिड़ गया। विद्यार्थीजी बोले—"देखिये, कहानी लिखना बहुत सहज है"—मैं उद्ग्रीव होकर सुनने लगा—"और बहुत कठिन भी। एक बार इसकी कुंजी आपके हाथमें आ जावे, फिर कुछ मुश्किल नहीं। छोटेसे छोटे विषयको लेकर कहानी लिखी जा सकती है। यही देखिये। कल मैं जिस समय ट्रेनसे उतरा, स्टेशनपर एक बौना आदमी नज़र आया। मुश्किलसे दो फीटका होगा। उसे देखते ही तुरन्त मेरे मनमें एक कहानीका idea बिजलीकी तरह कौंध गया। रास्तेमें प्लाट भी सोच लिया और आज सवेरे पाँच-छै सतरें लिखीं भी। आप जानते हैं, मुझे कहानी लिखना नहीं आता; मगर कोशिश करूँगा। यह देखिये"—कहकर उन्होंने कागज़की एक

स्लिप मेरी ओर बढ़ा दी। कहानीका प्रारम्भमात्र था। शीर्षक था 'छोटा आदमी'। उन पंक्तियोंको मैं अब भी अपने स्मृतिपटलपर अस्पष्ट रूपसे पढ़ सकता हूँ। समयने उन्हें धुँधला बना दिया है, और विद्यार्थीजीकी शैलीका रंग उनमें नहीं है।

"रामप्रसाद (यह नाम मेरा कल्पित है) ने प्लेटफार्मपर उतरते हुए अपने मित्र जयनारायणसे कहा—'देखो कितना छोटा आदमी है !'

जयनारायणने यात्रियोंकी भीड़में एक बौना आदमी देखा। उसे देखकर वह बोला—'भाई, मैं तो इससे भी छोटा हूँ।'

रामप्रसादने क़हक़हा लगाकर कहा—'आप ज़रूर इससे छोटे हैं।''

'हां भाई। सच कहता हूँ। मैं इससे भी छोटा हूँ... '—जयनारायणने एक सांस लेकर कहा।"

विद्यार्थीजीने फिर कभी कहानी लिखनेका प्रयत्न किया या नहीं, कह नहीं सकता। पर यदि वे चाहते तो कहानियाँ लिख सकते थे। कहानियोंके सम्बन्धमें उनकी आलोचना बड़ी मार्मिक और सहृदयतापूर्ण होती थी। उन्होंने प्रायः सभी श्रेष्ठ कहानी-लेखकोंकी रचनाएँ पढ़ी थीं। मोपासाँ उन्हें बहुत पसन्द था। एच० जी० वेल्सकी उच्छृंखल और वैज्ञानिक जगतमें विहरणशील कल्पना उनके श्रान्त मस्तिष्कके लिए कभी-कभी शीतल प्रलेपका काम करती थी। रवीन्द्र बाबूका काव्य उन्होंने पढ़ा था या नहीं, मैं कह नहीं सकता, परन्तु उनकी कहानियोंकी चर्चा होनेपर कह उठते थे—"वाह, क्या कहना !"

× × ×

श्री विद्यार्थीजीको दूसरी बार मैंने 'प्रताप' आफिसमें देखा। कोई तीन महीने पीछे।

एन्ट्रेन्सकी परीक्षा देनेके बाद मैं कोई बड़ा लेखक या सम्पादक बननेका स्वप्न देखने लगा। स्वप्नकी इसी अवस्थामें एक दिन विद्यार्थीजीको मैंने इस आशयका एक पत्र लिखा कि मैं गरमीकी छुट्टियाँ 'प्रताप'-आफिसमें रहकर व्यतीत करना चाहता हूँ। क्या आप मुझे आज्ञा देनेकी कृपा करेंगे ? पत्र भेज चुकनेके बाद मेरे मनमें न जाने क्यों यह विचार उत्पन्न हुआ कि विद्यार्थीजीको इस प्रकारका पत्र लिखकर मैंने ठीक नहीं किया ? मैंने किस बातपर उन्हें ऐसा पत्र लिखनेका साहस किया। उनसे मेरा कोई विशेष परिचय नहीं। कोई जान-पहचान नहीं। केवल उस दिन एक दूसरे व्यक्तिके घरपर उनसे भेंट हुई थी, वह भी घड़ी दो घड़ीके लिए। इस प्रकार तो न जाने कितने नवयुवक उनसे मिलते होंगे। फिर मुझमें ही ऐसी कौनसी विशेषता है, जिससे आकृष्ट होकर वे मुझे छुट्टीके बेकार दिन 'प्रताप' प्रेसमें रहकर व्यतीत करनेकी सहर्ष अनुमति प्रदान कर दें। मैंने जितना ही सोचा, उतना ही ईश्वरसे यह मनाने लगा कि विद्यार्थीजीको मेरा पत्र न मिले। परन्तु पत्र उन्हें मिल गया और यथासमय उसका उत्तर भी मुझे मिला। पत्रमें क्या होगा, इस प्रकारकी एक निश्चित पूर्वधारणाके साथ मैंने उसे पढ़ाना प्रारम्भ किया। जो कुछ लिखा था, उसे पढ़कर मेरा हृदय गद्गद हो गया। विद्यार्थीजीने लिखा था—"आपका घर है। जब जी चाहे, तब चले आइये।" वह पत्र अब भी मेरे सामने है। उसे पढ़कर रोता हूँ और सोचता हूँ, साधारण मनुष्यसे कई बातोंमें कितना ऊँचा था वह हमारा 'विद्यार्थीजी' !

मेरे लिए यह घटना साधारण नहीं है। विद्यार्थीजीके अनेक भक्तों और स्नेहपात्रोंके समक्ष अपनेको अत्यन्त अयोग्य और हीन समझता हुआ मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि वे लोग उस व्यक्तिकी उदारता, सहृदयता और स्नेहशीलताके अनेक ऐसे उदाहरण उपस्थित कर सकते हैं, जिनके प्रकाशमें मेरी ये सब बातें व्यर्थ और फीकी जान पड़ेंगी।

मैंने 'प्रताप' आफिसमें प्रवेश किया। वहाँ उस व्यक्तिकी मैंने दूसरी मूर्ति देखी। वह तसवीरका दूसरा रुख था। स्नेहपूर्ण ललितकला-प्रेमी मानव मेरी दृष्टिसे छिप-सा

गया। मेज़के सामने कुर्सीपर विराजमान वह मूर्ति मुझे फिर बहुत गम्भीर और कठोर जान पड़ी। वह व्यक्ति मानो किसीसे बात करना अपना कर्तव्य नहीं समझता। फिर भी अपरिचितों और आगन्तुकोंके प्रति वह शिष्ट और उदार था।

विद्यार्थीजीके ही कमरेमें, एक कोनेमें, मेरी मेज़ लगी। मेरे दो दिन बहुत बुरे कटे। तीसरे दिन, मैं बैठा था, इतनेमें किसीने पीछेसे आकर सहसा मेरी पीठपर हाथ रखा और कहा—"अजी, तुम कैसे आदमी हो। न हँसते हो, न बोलते हो, न किसीसे बात करते हो। चलो, यहाँके सब लोगोंसे तुम्हारा परिचय करा दूँ।"

मैं संकुचित होकर खड़ा हो गया और आश्चर्यचकित दृष्टिसे अपने सामने खड़े हुए उस व्यक्तिकी ओर देखने लगा। मैंने सोचा, निस्सन्देह दो दिनके निरन्तर परिश्रमसे यह व्यक्ति बहुत थक गया है, इसीलिए कदाचित इस समय मुझसे अपना मनोविनोदन कर रहा है। अन्यथा आज दो दिनके बाद आफिसके भीतर मेरे साथ इसका यह बिलकुल नया व्यवहार कैसा! इसकी कठोर गंभीरताके आवरणमें कितना रहस्य छिपा है?—कितना रहस्य?

विद्यार्थीजीने मेरा हाथ पकड़ लिया और दूसरे कमरेमें ले जाकर भाई बालकृष्णजी और सुरेन्द्रजीके सामने मेरा परिचय देते हुए कहा—"इन्हें जानते हो। ये अपने यहाँ अखबारनवीसीकी दीक्षा लेने आये हैं।"—फिर अपनी सहज मुसकानके साथ मेरी ओर देखकर कहा—"आज तुम्हारा दीक्षा-संस्कार होगा।"

मैंने साहस करके विनोद किया—"तब तो बताशे खानेको मिलेंगे।"

"यहाँ तो घूँसे मिलते हैं।"—विद्यार्थीजीने हँसकर कहा, साथ ही मेरी पीठपर एक हलका घूँसा पड़ा। कितना मीठा और मधुर था वह घूँसा। मानो वह जानते थे कि मेरा संकोच किस प्रकार दूर होगा। उस दिनसे विद्यार्थीजी और अपने एक शुभचिन्तक मित्रमें मुझे कोई अन्तर नहीं जान पड़ा, ऐसा लिखकर मैं अपनी धृष्टताका परिचयमात्र दे रहा हूँ; परन्तु उस व्यक्तिकी महानताका परिचय देनेका और कोई द्वार भी तो नहीं है। मैं उसका मित्र था!

'प्रताप'-आफिसमें अनेक प्रकारके व्यक्ति उनसे मिलने आते थे—कवि, लेखक, सम्पादक, सार्वजनिक कार्यकर्ता, अत्याचार-पीड़ित किसान और मजदूर, दुःखी और विपद्ग्रस्त नवयुवक, दुर्भाग्यके चक्करमें पड़े हुए परदेसी यात्री। किसीके पास पैसा नहीं, किसीका सामान चोरी चला गया, कोई खानेको मुहताज है, कोई घर जानेके लिए टिकटके दाम माँगता है। वह मानवप्रेमी सबकी सहायता करनेको तैयार रहता था। सबके लिए उसके विशाल हृदयमें स्थान था। फिर भी उसकी सज्जनताको धोखा देना कठिन था। उसे मनुष्यकी पहचान थी।

दुःखियोंका दुःख देखकर उनका हृदय विगलित हो जाता था और उनकी पीड़ा अनुभव करके उनके मुखमंडलपर दया और अनुकम्पाका ऐसा भाव झलक उठता था, जिससे उनके समीप बैठा अन्य व्यक्ति संक्रामित हुए बिना नहीं रहता था।

उनको क्रोध भी आता था—अत्याचारके ऊपर और स्वाभिमानपर घात होनेके समय; उस समय उनकी काली मोटी भौंहें सिकुड़ जाती थीं और आँखमें चिनगारी सी जान पड़ने लगती थी, परन्तु दया उसको शीघ्र दबा लेती थी। उस पुरुषका जीवन इसी भावसे अधिक प्रेरित होता जाता था।

मुझे एक समयकी घटना कभी नहीं भूलेगी। वह ज्योंका त्यों मेरे स्मृतिपटलपर अंकित है। मैं विद्यार्थीजीको अपने सामने कुर्सीपर बैठा देख रहा हूँ। वे सम्पादकीय नोट लिखनेमें निमग्न हैं। मैं एक ओर कुर्सीपर बैठा समाचारपत्र पढ़ रहा हूँ। इतनेमें प्रेसके किसी कर्मचारीने—किसने, मैं कह नहीं सकता—दबे पैरों कमरेमें प्रवेश किया। वह किसी प्रकार भी कमरेकी शान्ति भंग नहीं करना चाहता था, इतने धीरेसे कमरेका दरवाज़ा खोला था उस व्यक्तिने। फिर भी विद्यार्थीजीको आहट मिल गई। उन्होंने लिखना

बन्द करके मस्तक ऊपर उठाया और उनकी जिज्ञासु दृष्टिने कुछ क्षुब्ध-सा होकर प्रश्न किया—"क्या है ?"

"बाबूजी, पोस्ट-मास्टर जनरलकी एक विज्ञप्ति है कि 'प्रताप' के ग्राहकोंके पतेके लेबिल अलग अलग प्रान्तके हिसाबसे अलग-अलग रंगके होने चाहिए।"

"लिख दो कि हम उनकी सुविधाके लिए अपने छपे हुए लेबिल नष्ट नहीं करेंगे।" अत्यन्त दृढ़ता और निश्चिन्ततासे जवाब देकर विद्यार्थीजी पुनः इस प्रकार अपने कार्यमें रत हो गये, मानो कुछ हुआ ही नहीं !

उस पुरुषकी अन्य बड़ी बातोंके सामने यह घटना देखनेमें छोटी हो सकती है, परन्तु छोटी बातें ही मनुष्यके चरित्रका सच्चा दर्पण होती हैं। बड़े और सार्वजनिक कार्य मनुष्य न जाने कौनसी भावनासे प्रेरित होकर सम्पादित करता है। उनमें कृत्रिमता और दिखावट हो सकती है, परन्तु मनुष्य अकेलेमें जो कुछ करता है, उसपर यदि हम सदैव दृष्टि रख सकें और वह अकेलेमें जो कुछ कहता है, उसे यदि हम सदैव सुन सकें, तो सच्चे जीवन-चरित लिखे जानेकी समस्या बहुत-कुछ हल हो जाय।

विद्यार्थीजीके सम्बन्धकी एक घटना है, जो संकेत रूपमें समाचारपत्रोंमें प्रकाशन भी पा चुकी है; परन्तु उसका महत्वपूर्ण स्थल, जिसके प्रकट हो जानेमें कुछ हर्ज नहीं, सुनाना बाक़ी है।

एक बार एक प्रसिद्ध देशी राज्यके उच्च पदाधिकारियोंके विरुद्ध 'प्रताप'में कुछ शिकायतें छपीं। इस देशी राज्यके महाराज विद्यार्थीजीको व्यक्तिगत रूपसे जानते और एक प्रकारसे उनको अपना ही समझते थे। अपने इसी सम्बन्धके नाते उन्होंने विद्यार्थीजीको अपने यहाँ तलब किया। विद्यार्थीजी उनसे मिलने गये। उनके साथ श्री वृन्दावनलाल वर्मा भी थे, जिनका मैं विद्यार्थीजीके जीवनकी प्रस्तुत घटनाके लिए ऋणी हूँ। स्टेशनपर राज्यके कर्मचारी विद्यार्थीजीको लेने आये थे। उन्हें पहचान न पाकर वे प्लेटफार्मपर व्यर्थ ही इधरसे उधर दौड़ रहे थे। वर्माजीने यह बात ताड़ ली। उन्होंने एक कर्मचारीसे पूछा—"आप किसे देख रहे हैं ?"

"कानपुरसे एडीटर साहब आ रहे हैं—"

"वे ये हैं।" वर्माजीने विद्यार्थीजीकी ओर इशारा कर दिया। उस दुबली-पतली आडम्बरशून्य मूर्तिको देखकर महाराजके कर्मचारी मानो आसमानसे गिर पड़े। यही महाराजका मेहमान है! नंगे सिर, खद्दरकी धोती, खद्दरका कुरता, पैरोंमें पुराने चप्पल और हाथमें हैन्ड-बेग। एक साथ कई आदमी विद्यार्थीजीके हाथका बोझ लेनेके लिए दौड़ पड़े। विद्यार्थीजीने हैन्ड-बेग देनेसे इनकार करते हुए कहा—"अरे भाई, रहने दो। इस छोटेसे वज़नको मैं खुद ही ले चलूँगा।"

विद्यार्थीजी राज्यके अतिथि-गृहमें ठहरे और दूसरे दिन महाराजसे मिलने गये।

एकन्त कमरा है। बीचमें महाराज बैठे हैं। आसपास महाराजके सेक्रेटरी। सामने मेज़पर उन फाइलोंका ढेर लगा है, जो 'प्रताप'में प्रकाशित शिकायतोंसे सम्बन्ध रखती थीं। विद्यार्थीजी जैसे ही उस कमरेमें आये, महाराज खड़े हो गये, और तुरन्त व्यंग्यके साथ बोले—"तशरीफ़ रखिये। मैं इस राज्यका अपना स्थान आपके लिए खाली करनेको तैयार हूँ। अपने उसूलोंके मुताबिक़ राज्य करिये।" विद्यार्थीजी केवल मुसकरा दिये। बैठ गये। फिर महाराजने कहा—"मुझको तो इस बातका अभिमान था कि हमारी रियासतके एक होनहारने बाहर जाकर खूब नाम कमाया, पर आपके पेपरने हमारे ऊपर ही सितम कर डाला।"

न तो महाराजके उस व्यंग्यने उस अकेले व्यक्तिपर कुछ प्रभाव डाल पाया और न उस प्रच्छन्न खुशामदने।

'प्रताप'में छपे हुए शिकायती पत्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाली मिसिलें उल्टी-पल्टी जाने लगीं। प्रत्येक मामलेकी मिसिलका सफ़ा सफ़ा विद्यार्थीजीको पढ़कर सुनाया गया। विद्यार्थीजीको ज्यों ही मालूम हुआ कि उनके संवाददाताकी भूल थी, तुरन्त उन्होंने स्वीकार कर लिया, और कहा कि

मैं भ्रम-संशोधनको छाप देनेके लिए तैयार हूँ"—और एक प्रस्ताव भी महाराजने किया—"यदि आप शिकायती चिट्ठीका प्रतिवाद भिजवा देते, तो मैं अवश्य प्रकाशित कर देता और उसका यह काफ़ी प्रतिकार हो जाता।"

अनियन्त्रित अधिकारकी गोदमें जीवन बिताये हुए महाराजने उत्तर दिया—"मैं किस-किस शिकायती चिट्ठीका प्रतिवाद छपाता फिरूँगा। जिसके मनमें जो आवे, लिखे; मैं परवाह नहीं करता।"

विद्यार्थीजी इसपर केवल हँस दिये। उनको महाराजकी इस युग-विरुद्ध धारणापर दया भी आई थी।

शिकायती चिट्ठीसे सम्बन्ध रखनेवाला एक मामला ऐसा निकला, जिसके न्यायके सम्बन्धमें विद्यार्थीजी महाराजसे सहमत न हो सके। विद्यार्थीजीने कहा—"इस आदमीके साथ आपने न्याय नहीं किया।"

महाराज सन्नाटेमें आ गये। केवल "खैर" कहकर रह गये।

उनके सेक्रेटरियोंने उस मामलेके सम्बन्धमें खींच-खाँच करके विद्यार्थीजीका समाधान करना चाहा, परन्तु वे किसी तरह भी सहमत न हो सके।

शिष्टाचारके बाद वह अधिवेशन समाप्त हुआ, परन्तु सन्तुष्ट उससे कोई भी न हुआ,—विद्यार्थीजी भी नहीं।

विद्यार्थीजी जिस दिन चलने लगे, महाराजके सेक्रेटरीने जेबसे कुछ नोट निकाले और उनको विद्यार्थीजीके सामने उपस्थित करके कहा—"यह आपका मार्ग-व्यय।"

विद्यार्थीजीने नोटोंपर नज़र डालकर लेनेसे इनकार करते हुए कहा—"इसकी आवश्यकता नहीं।"

"परन्तु मुझे आज्ञा मिली है कि आपका मार्ग-व्यय दे दिया जाय।"

"मैं यहाँ अपने कामसे आया था—एक सत्यासत्यकी जाँच करने। ऐसी दशामें मेरे लिए आपसे मार्ग-व्यय लेना ठीक नहीं।" विद्यार्थीजीने उत्तर दिया।

सेक्रेटरीने विद्यार्थीजीकी ओर ताककर कहा—"आप इसका ख़याल मत कीजिये। हमारी रियासत ग़रीब नहीं है।"

"जनाब, हमारा 'प्रताप' भी ग़रीब नहीं है।"—सेक्रेटरीको तुरन्त दर्प-भरा उत्तर मिला और इसके पहले कि वह कुछ कह सके, विद्यार्थीजी वहाँसे चले गये।

इस एक घटनासे मालूम होता है कि विद्यार्थीजीमें स्वाभिमानकी मात्रा कितनी अधिक थी और उनमें कितना चरित्र-बल था।

केवल सम्पादकीय शिष्टाचारके उच्च आदर्शके नाते ही उन्होंने रायबरेलीवाले केसकी सारी विपत्ति अपने सिर ले ली थी, अन्यथा उससे वे सहज ही में मुक्ति पा सकते थे।

मुझ जैसे दुर्बल-प्रकृति नवयुवकोंके लिए विद्यार्थीजीके स्नेहपूर्ण हृदयमें सहानुभूतिकी सीमा नहीं थी। उनके वे सच्चे मित्र, बड़े शुभचिन्तक और परम अवलम्ब थे। उनकी छोटीसे छोटी कमज़ोरियाँ उन्हें दुखी बना देती थीं। उनकी भलाईके लिए वे उनसे परिचित होनेका प्रयत्न करते थे और कोशिश करते थे उनके व्यक्तिगत जीवनकी गहराई तक पहुँचनेकी।

एक बार मैं उनसे मिलने गया। उस वक्त वे कुछ लिखकर बैठने जा रहे थे। उनके हाथमें एक किताब थी, कहानियोंका एक संग्रह। किसीने समालोचनार्थ उनके पास भेजी थी। उसे मेरी ओर बढ़ाकर उन्होंने पूछा—"तुमने यह किताब पढ़ी है?"

पुस्तक देखकर मैंने कहा—"पढ़ी तो है।"

"कैसी है?"

"मुझे तो इसमें आदिसे अन्त तक हाहाकार और मूक रुदनके सिवा और कुछ नज़र नहीं आया। भाषा भी कुछ अजीब है।"

उन्होंने जल्दीसे कहा—"भाषा तो ठीक है। कवियोंकी भाषा ऐसी ही होती है। उनकी रचनामें तुम्हें शृंखला नहीं मिल सकती। भई वे दूसरी दुनियामें रहते हैं और हमारी बात दूसरी है।"—फिर गम्भीर होकर बोले—

"परन्तु मुझे इस नवयुवकके लिए (पुस्तकके लेखकके लिए) बड़ी चिन्ता है। यह मुझे physically wrek जान पड़ता है। बता सकते हो, यह जीवनसे इतना निराश क्यों है ?"

मैंने कहा—"मैं इस रचनाके प्रकाशमें इसके लेखकके व्यक्तिगत जीवनकी आलोचना करनेको तैयार नहीं। मैं तो इसे युग-धर्मका प्रभाव मानता हूं। देखिये न, इटलीमें लेपार्डी, जर्मनीमें हेन और इंग्लैंडमें टामसन सभी निराशावादी थे। इनके सम्बन्धमें आप क्या कहेंगे ?"

"अजी, ये सब बूढ़े कवि थे।"—और उन्होंने पुनः अपनी पूर्व गम्भीरताके साथ कहना प्रारम्भ किया—"नव-युवकके जीवनमें निराशा कैसी! निराशा तो एक रोग है। मैं इस व्यक्तिको पत्र लिख रहा हूँ। यह देखो, अभी लिखा है। रचना अच्छी है, परन्तु मुझे इसके स्वास्थ्यकी चिन्ता है। देखूँ, क्या जवाब आता है।"

मैंने देखा, उनकी इस चिन्तामें जितनी सचाई थी, उतनी ही व्यग्रता।

उनकी आलोचना बहुत सहानुभूतिपूर्ण होती थी, परन्तु अपनेको वे सदैव खरी दृष्टिसे देखते थे।

इधर कुछ दिनोंसे साहित्य और कलाके मूल सिद्धान्तोंके अध्ययन और मननकी ओर उनकी विशेष रुचि हो गई थी। अभी थोड़े दिन पहले मेरे छोटेसे पुस्तकालयकी चुनी हुई पुस्तकोंमें से उन्होंने लेबेलकी 'Success in Literature' नामक पुस्तकको जिस हार्दिक उल्लास और प्रसन्नताके साथ बाहर निकाला था, उसीके बलपर मैं यह बात कह रहा हूँ।

ह्यूगोके वे परम भक्त थे, इसे दुहरानेकी ज़रूरत नहीं। वह उनकी कोमल प्रकृतिके खूब अनुकूल था। उसकी प्रशंसा करते वे कभी थकते नहीं थे। ह्यूगोके अमर ग्रन्थ 'ला मिज़रेबिल' का अनुवाद करना उनके जीवनकी एक बड़ी साध थी, कहा करते थे—"ला मिज़रेबिलके चाहे जितने अनुवाद हो जायँ, फिर भी मैं उसका अनुवाद करूँगा, परन्तु यह कार्य जेलमें ही हो सकता है।"

दैवकी विचित्र गति! इस बार जेलमें रहकर तीन घंटे प्रतिदिन अनवरत परिश्रमके हिसाबसे आठ महीनेमें उन्होंने 'ला मिज़रेबिल'का पूरा अनुवाद कर लिया। उनके जीवनकी एक इच्छा पूरी हो गई। यह क्या इसीलिए कि फिर उन्हें समय मिलनेको नहीं था। हाय!

उनका साहित्यिक ज्ञान खूब विस्तृत हो चला था। जेलमें उन्होंने बर्नर्डशाके ग्रन्थ पढ़े थे। इसके पूर्व वे शाके साम्यवादी विचारोंका अध्ययन कर रहे थे। अमेरिकाके सुप्रसिद्ध साम्यवादी लेखक अप्टन सिनक्लेयरकी रचनाओंसे वे बहुत प्रभावित हुए थे। उसपर उनकी श्रद्धा सी हो गई थी। फ्रेंच लेखकोंमें उन्हें अनातोले फ्रान्स और बालज़क पसन्द थे। 'The Tragedy of a Genius' नामक उपन्यासके द्वारा बालज़ककी प्रखर प्रतिभाने उन्हें बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। तबसे उसकी रचनाएँ वे बहुत भावसे पढ़ने लगे थे।

उन्हें जीवनसे प्रेम था। जीवनमें जो कुछ सत्य, सुन्दर, प्रेम और उल्लासमय है, उसपर उन्हें अनुराग था। इसलिए रोमान्स और ऐतिहासिक उपन्यास उन्हें शुरूसे ही पसन्द रहे। स्काटके वे प्रेमी थे, और प्रकृति उन्हें सदैव अपनी ओर आकृष्ट करती रही। उनकी रुचि जब वे स्कूलके विद्यार्थी थे, तभी परिष्कृत हो चली थी। बेसिर-पैरके जासूसी उपन्यास उस वक्त भी उनकी रुचिके अनुकूल नहीं थे। इतिहाससे उन्हें बहुत प्रेम था। उनके जीवनको गढ़नेमें इतिहासका बड़ा-भारी हाथ था। विद्यार्थी जीवनमें ही—मेरा तात्पर्य उनके स्कूली जीवनसे है, वैसे तो वह पुरुष आजीवन विद्यार्थी ही रहा—मिस यंग रचित 'Book of Golden Deeds' नामक पुस्तकका उनपर बहुत प्रभाव पड़ा। यहां तक कि उक्त पुस्तकके आधारपर उन्होंने 'हमारी आत्मोत्सर्गता' नामकी एक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने 'भारतवासियोंके आत्म-त्यागकी ऐतिहासिक कथाओंका संग्रह' किया। इस अप्रकाशित पुस्तककी हस्त-लिखित प्रति कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्तके पास सुरक्षित है। यह

उनके पास पढ़नेके लिए भेजी गई थी, तबसे उन्हींके पास रही। विद्यार्थीजीकी यह पहली रचना है। इसका एक लेख 'सरस्वती'में प्रकाशित हुआ था, जिसे लोगोंने बहुत पसन्द किया था। यह किताब डिमाई चौ-पेजी कापीपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी गई है। आवरण पृष्ठके शीर्षभागपर 'बन्देमातरम्' लिखा है। फिर पुस्तकका नाम। फिर संग्रहकर्ता गणेशशंकर विद्यार्थी। नीचे १६-६-०६ की ता० पड़ी है। पुस्तककी भूमिकासे विद्यार्थीजीकी साहित्यिक अभिरुचि-सम्बन्धी अनेक बातोंका पता चलता है। भूमिका क्या है, विद्यार्थीजीके मानसिक विकासका छोटासा इतिहास है। देश-प्रेमका बीज किसी घटना-परिस्थितिकी प्रेरणासे उनके हृदयमें नहीं आया। वह तो बहुत पहलेसे ही वहाँ मौजूद था। उनकी इस अप्रकाशित पुस्तककी भूमिका पढ़नेसे प्रकट होता है कि वह बीज सन् १९०६ में अच्छी तरह अंकुरित हो उठा था। भूमिकाके कुछ वाक्य देखिये—

"मातृभूमिकी सेवा करना हरएक मनुष्यका कर्तव्य है। इतिहासका प्रचार देशोद्धारका एक बड़ा उपाय है। मेरा यह कर्तव्य है कि मैं मातृभूमिकी सेवा अपने विश्वासानुसार जहाँ तक बने, करूँ...."

उनकी शैली अपने ओज, अपने प्रवाह, अपने सामर्थ्य और अपने प्रसादगुण तथा सचाईके कारण विद्यार्थीजीका दूसरा रूप बन गई थी। शैशव रूपमें उसकी छटा देखिये—

"प्राचीन कथाओंको ही सुनकर हिन्दूपति महाराणा प्रताप स्वतन्त्रता-देवीके स्वतन्त्र आराधक हुए थे—महाभारत और रामायणकी कथाओं ही ने परतंत्र पिताके परतंत्र पुत्र शिवाजीको महाराष्ट्रका छत्रपति राजा बनाया था। दूर क्यों जाइये, हमारे देशमें बरसातके दिनोंमें देहाती आल्हा गाते हैं; गाते समय उनके जोश, उनके कहनेका ढंग, उनके अंग-अंगसे वीरताकाका दर्शना—इत्यादि देखनेके योग्य होते हैं। सारांश यह कि इतिहास सोते हुए मनुष्यको जगा सकता है, जगे हुएको पैरोंपर खड़ा कर सकता है और खड़े हुएकी नसोंमें खून दौड़ा सकता है। मुर्देको जिन्दा करना, सूखेको हरा करना या तो अमृत (यदि अमृत कोई वस्तु है तो) का काम है या फिर इतिहासका—इतिहासके लाभोंको न मानना हठधर्मी है...."

अपने जीवनकी बाल्यावस्थामें एक अंग्रेज महिलाकी पुस्तकसे अनुप्राणित और उद्बोधित होकर विद्यार्थीजीने बड़ी लगनसे भारतवासियोंके आत्म-त्यागकी कथाओंका संग्रह किया; और फिर अपने जीवनकी विकासोन्मुखी अवस्थामें—जब कि मनुष्यके लिए यह जगत प्रतिक्षण अधिकाधिक प्रिय होता जाता है—उन कथाओंके आदर्शकी वेदीपर अपनी बलि देकर स्वयं ही आत्मोत्सर्गका एक उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित कर दिया! यह एक ऐसा करुण और चित्ताकर्षक संयोग है, जिसके प्रति विद्यार्थीजीके भावी जीवनी-लेखक विशेष रूपसे आकृष्ट होंगे। विद्यार्थीजीके एक स्नेही मित्रसे जब मैंने उनके बाल्य जीवनकी इस प्रथम रचनाका ज़िक्र किया, तब वे उच्छ्वसित होकर बोल उठे—"और अब स्वयं विद्यार्थीजीका नाम उसमें जुड़ेगा!"

मनुष्य कब कौनसे भावोंकी प्रेरणासे लोकरुचिके समक्ष अपनी बलि दे देता है, यह कहना कठिन है, परन्तु कर्तव्यके अनुरोधसे अपने आदर्शके लिए स्वेच्छापूर्वक निश्चित मृत्युका आलिंगन करना एक ऐसी बहादुरी है, संसारके इतिहासमें जिसके उदाहरण बहुत कम मिलेंगे। विद्यार्थीजी अपने विश्वासके अनुसार वही उदाहरण उपस्थित कर गये। वे एक इतिहासका निर्माण कर गये।

पंडित रुद्रदत्त शर्मा

श्री बाबूराम शर्मा

'आर्यावर्त' 'भारत-रत्न' 'सरपंच' आदि समाचारपत्रोंके पढ़ने तथा 'स्वर्गमें सब्जेक्ट-कमेटी' और 'स्वर्गमें महासभा' प्रभृति पुस्तकोंके अवलोकनसे स्वर्गवासी पं० रुद्रदत्त शर्मा सम्पादकाचार्यके नाममे तो मैं बहुत दिनोंसे परिचित था ; परन्तु उनके साक्षात् दर्शनका सौभाग्य उस समय प्राप्त हुआ, जब वे सन् १६०४ में 'आर्यमित्र' के सम्पादक नियुक्त होकर आगरेमें पधारे। हिन्दीके सुलेखक होनेके साथ ही पंडितजी संस्कृतके भी बड़े अच्छे विद्वान् थे। यद्यपि उन्होंने किसी स्कूल या कालेजमें नियमानुसार शिक्षा नहीं पाई थी, पर तो भी उन्हे अंग्रेज़ी भाषाका इतना परिज्ञान था, जितना किसी under graduate को हो सकता है। वे अंग्रेजी अखबारोंकी खबरोंका ही नहीं, प्रत्युत जटिल सम्पादकीय निबन्धों (articles) का अनुवाद भी बड़ी ही विशुद्ध परिमार्जित और शैलीसम्पन्न (बामुहावरा) भाषामें कर सकते थे। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जब रूस-जापान-युद्ध हो रहा था, तो उसकी घटनाओंसे सम्बन्ध रखनेवाली एक बृहत् अंग्रेज़ी भाषाकी एक पुस्तक आगरेके सुप्रसिद्ध वकील श्री प्रयागनारायणने पंडितजीको अनुवाद करनेके लिए दी। पंडितजीने उसके कुछ अंशका सुगमतासे अनुवाद कर डाला। एक दिन बा० प्रयागनारायण असली पुस्तक लेकर उससे अनुवादका मिलान करनेके लिए 'आर्यमित्र' कार्यालयमें पधारे, वकील साहबके हाथमें असल पुस्तक थी और पंडितजी अनुवाद पढ़ते जाते थे। लगभग एक घंटे तक पंडितजी अपने किये अनुवादको सुनाते रहे, परन्तु वकील साहबको किसी स्थानपर भी टोकनेकी आवश्यकता प्रतीत न हुई। वे उस विशुद्ध बामुहावरे अनुवादको सुनकर दंग रह गये। वहीं अंग्रेज़ी भाषाके एक और मर्मज्ञ बैठे थे। उन्होंने मुझसे स्पष्ट कहा कि ऐसा शैलीसम्पन्न अनुवाद तो कोई ग्रैजुएट भी नहीं कर सकता।

पंडितजीका स्वभाव बड़ा ही सरल था। छल-प्रपंचकी बातें करना तो वे जानते तक न थे। वे सदा प्रसन्नवदन बने रहते थे। स्वकार्यसे जब अवकाश पाते, तो अनेक प्रकारके हास्य और मनोरंजनकी बातें सुनाकर हम सबको प्रसन्न और अतीव आनन्दित कर दिया करते। अभिमानका तो उनमें लेश भी न था। छोटे-बड़े सबसे वे बड़े प्रेम और प्रीतिके साथ मिलते थे। उनकी ऐतिहासिक विज्ञता और बहुज्ञताका क्या वर्णन करूँ। फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैंड, टर्की और भारतवर्षकी अनेक अतीत क्रान्तियोंका जब वह वर्णन करने बैठते थे, तो हम उन रोचक और अश्रुतपूर्व बातोंको सुननेमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि समयका अन्दाज़ा बिलकुल न लगता था, और दो-दो घंटे अनायास ही व्यतीत हो जाते थे। उनकी धारणा-शक्ति विलक्षण थी। सन् सत्तावनके दैनिक विद्रोहके अनेक रक्त-रंजित और पैशाचिक वृत्ति-पूरित वृत्तान्त जब वे सुनाने बैठते थे, तो उनकी साहित्यमयी भाषाके उच्चारणसे ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे किसी ऐतिहासिक ग्रन्थकी आवृत्ति कर रहे हों। शोक कि वे समस्त ऐतिहासिक उपादान अपने साथ ही लेकर चल दिये ! यदि वे समस्त ऐतिहासिक घटनाएँ लेख-रूपमें संग्रहीत हो जातीं तो उनसे भारतवासियोंको बिहार और संयुक्त प्रान्तके अनेक प्रातःस्मरणीय पावन चरित्र और निष्काम-भावसे देश और जातिकी सेवा करनेवाले सच्चे कर्मवीरोंके आदर्श त्याग और प्रशंसनीय बलिदानका ज्ञान ही प्राप्त न होता, प्रत्युत वे भावी भारतीय इतिहासकी एक बड़ी त्रुटिका साधन बनतीं और अपने आलोकसे उसकी द्युतिको अधिकाधिक प्रकाशित कर देतीं।

दीर्घसूत्रताके साथ पंडितजीका घनिष्ट सम्बन्ध था। पत्रके लिए प्रति सप्ताह ठीक समयपर कापियाँ लिखकर दे देना उनके लिए प्राय: असम्भव-सी बात थी, इसीलिए प्रेस-प्रबन्धकसे यदाकदा उनकी कहासुनी हो जाया करती थी, परन्तु यह पारस्परिक वाग्युद्ध उन्हें उत्तेजना देकर उनके कार्योंको नियमपूर्वक और ठीक समयपर समाप्त करा देनेमें विशेष सहायक हो जाता था, लेकिन इसका प्रभाव उनपर क्षणिक होता था—स्थायी नहीं। जहाँ कार्य समाप्त किया और हृदय गंगाजलवत् निर्मल हो गया। पंडितजी किसीसे द्वेष करना तो जानते ही न थे। अपकारी जनोंको भी वे सर्वथा उपेक्षा और क्षमाकी दृष्टिसे देखते थे,. इसलिए (लगभग दस वर्षके सत्संगमें) हमको उनका कोई भी विरोधी दिखाई न पड़ा। यह गुण उनमें इतनी अधिक मात्रामें बढ़ा हुआ था कि उन्हें यदि हम अजातशत्रुके नामसे भी स्मरण करें, तो अनुचित न होगा।

पंडितजी नीरस प्रकृतिके न थे। जब वे अपने कार्यको समाप्त कर लिया करते थे, तो उन्हें नैसर्गिक हार्दिक हर्ष और प्रफुल्लता प्राप्त हुआ करती थी—उस समय विश्राम (rest) लेनेके लिए प्राय: मेरे ही पास आकर बैठा करते थे। वही समय होता था, जब हमें उनके मुखसे अतीव मनोरंजक और रहस्यमयी बातें सुननेको मिला करती थीं। आश्चर्य है कि यद्यपि पंडितजी फ़ारसी या उर्दू भाषा नहीं जानते थे, परन्तु उन्हें सैकड़ों शेर ऐसे मार्केके याद थे कि जब वे अपने वार्तालापमें यत्रतत्र यथावसर उनका प्रयोग करते थे, तो इनसे अपने कथनमें सोनेमें सुगन्धिकी सार्थकता लाकर वे श्रोताओंको मंत्रमुग्ध कर दिया करते थे। तारीफ़की बात तो यह है कि उनका शीन क़ाफ़का (तलफ्फुज़) इतना सही और दुरुस्त होता था कि सुननेवालोंको इस बातका पता तक न लगता था कि वे उर्दू-फ़ारसी भाषाओंसे अनभिज्ञ हैं। पंडितजीको फ़ारसीके निम्नशेरपर बड़ा ही ममत्व था—

"मन न गोयम् अनलहक़,
यार मे गोयद बिगो।
चूँ न गोयम् चूँ मरा,
दिलदार मे गोयद बिगो॥"

पंडितजीकी पवित्र वाणीसे इस शेरको मैंने सैकड़ों ही बार सुना, और उनके मुखारविन्दसे सुनते-सुनते मुझे भी कंठस्थ हो गया, जिसकी स्मृति आज तक जैसीकी तैसी ही बनी चली आ रही है। पंडितजी यदाकदा वार्तालापमें भी इसका प्रयोग करते थे, और हार्दिक हर्ष तथा प्रसन्नताके समय भी बारबार इसकी आवृत्ति करके गुनगुनाया करते थे।

मितव्ययिताके साथ पंडितजीका प्राकृतिक विद्वेष था। उन्होंने अपनी व्यय-सम्बन्धिनी इच्छाओंको सर्वथैव स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी, अत: स्वाधीन और स्वैरिणी स्त्रियोंकी भाँति ये प्राय: ही पंडितजीके क्लेशोंका कारण बनी रहा करती थी। मासकी समाप्ति तक वे थोड़ा-थोड़ा करके प्राय: अपना सब ही वेतन प्राप्त कर लिया करते थे, और नि:संकोच भावसे मुक्तहस्त होकर वे प्राय: सबका सब ही महीनेके अन्त तक खर्च कर डालते थे। कभी कभी तो यह दशा हो जाती थी कि आयकी अपेक्षा व्ययका परिमाण बढ़ जाया करता था, परन्तु इससे उनकी अभ्यस्त प्रगतिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता था। यही कारण है कि लोकसेवा करनेके पश्चात् जब उनके हाथ-पैर थक गये तो अर्थाभावसे उन्हें ऐसे-ऐसे कष्ट सहन करने पड़े कि जिनके स्मरणमात्रसे रोमांच होता है, और जनताकी इस हृदयहीनतापर आँसू बहाने पड़ते हैं। पंडितजीने अर्थ-संग्रहको कभी अपने जीवनका उद्देश्य नहीं बनाया। जहाँ वे स्वेच्छाओंको पूर्ण करनेमें निस्संकोच भावसे द्रव्यका व्यय कर डालते थे, वहाँ दूसरोंको खिलाने-पिलानेमें बड़ी उदारतासे काम लेते थे, और ऐसा करनेमें वे परमानन्दका अनुभव करते थे, अपने हाथसे अंगीठीपर विविध प्रकारकी खाद्य-सामग्री प्रस्तुत करके अपने इष्टमित्रोंको खिलानेमें उन्हें अतीव प्रसन्नता हुआ करती थी। इसके साथ ही या तो

शेरख्वानी जारी रहती थी अथवा संस्कृतके कूट श्लोकोंका उच्चारण अथवा कोई अन्य धार्मिक, सामाजिक या ऐतिहासिक प्रसंग छिड़ा रहता था। स्वभावके बड़े ही उदार थे, दृढ़ आर्यसामाजिक विचारोंके होते हुए भी सनातनधर्मावलम्बी उनके इष्टमित्र तथा अड़ोसी-पड़ोसी होलीके अवसरपर उन्हें आपाद मस्तक रंग और गुलालसे रंग डालते थे, परन्तु मृदु हास्यपूर्वक निषेध तथा अनुनय-विनय करनेके अतिरिक्त कभी भी उनके मुखमंडलपर रोषकी रेखा अथवा विरक्तिका भाव दृष्टिगत न होता था।

ताजबीबीका रोजा, ऐतमाद-उद्दौला, सिकन्दरा, कैलास और फतहपुर सीकरीकी यात्राओंमें पंडितजीके साथ जो आनन्द प्राप्त होता था, वह वर्णनातीत है। उपर्युक्त स्थानोंसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ सुनाते चले जाया करते थे, जिनको सुननेमें पैदल यात्रा भी बड़ी ही सुखकर प्रतीत होती थी। भगवान् जाने, उन्हें यह ऐतिहासिक अभिज्ञता वंग-साहित्यके अनुशीलनसे प्राप्त हुई थी या किन्हीं अन्य गुप्त रत्नोंके अवलोकनसे; क्योंकि जो-जो विलक्षण ऐतिहासिक बातोंका ज्ञान उन्हें था, वह बहुतसे अंग्रेज़ीकी उच्चसे उच्च शिक्षा-प्राप्त सज्जनोंको भी नहीं है।

पंडितजी यद्यपि संस्कृत भाषाके अच्छे विद्वान् थे, किन्तु हिन्दी भाषासे उन्हें बड़ा प्रेम था। वे कहा करते थे कि हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा होनेकी योग्यता रखती है, और कुछ कालमें ही इसका साहित्य इतनी उन्नति कर जायगा कि बंगला आदि भाषाओंका साहित्य इसका मुँह ताकता रह जायगा और यह इन सबसे आगे बढ़कर उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर पहुँच जायगा।

पंडितजीकी बुद्धि इतनी प्रखर और दूरदर्शी थी कि बड़ीसे बड़ी भावी घटनाओंका अनुमान वे अनायास लगा लिया करते थे। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि एक दिन हम दोनों वृन्दावनके प्रेम महाविद्यालयमें बैठे थे। बातों ही बातोंमें प्रसंग चलनेपर उन्होंने कहा था कि यूरोपमें युद्धके बादलोंकी काली घटाएँ घिरती चली आ रही हैं, जो बिना बरसे न रहेंगी। निकट भविष्यमें ऐसा घोर युद्ध होनेवाला है, जिसमें कल्पनातीत जनसंहार होगा। इससे पृथ्वी रक्तमयी हो जायगी और संसारका बड़ा ही अपकार होगा। पंडितजीकी यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हुई। उन्होंने आठ-दस मासके भीतर ही जर्मनी तथा मित्र-राष्ट्रोंके घोर संग्रामको अपनी आँखोंसे देख लिया।

चित्तमें बड़ी दया थी, किसी भूखे प्यासेको देखकर उसे खिला-पिला देना उनके लिए एक साधारण-सी बात थी। साधारणसे साधारण स्थितिके व्यक्तियोंके दुःख-दर्दमें सम्मिलित होकर उसके प्रतिकारकी चेष्टा करना कराना उनका स्वभाव था। शोक है कि ऐसे कोमलहृदय, करुणाशील और परोपकारी सज्जनको अपने जीवनके अन्तिम दिवस बड़े ही कष्ट और यातनाओंमें व्यतीत करने पड़े!

जीती मौत

श्री वंशीधर विद्यालङ्कार

(१)

पहले मैं और मेरे प्यारे
एक ही दुनियामें रहते थे ।
जबसे यह जग उनसे छूटा,
बनी निराली मेरी दुनिया ।
जिस जीवनपर नाज़ मुझे था,
अब है वह जीती मौत बना ॥

(२)

दुनिया सारी बसी हुई है,
दुनिया मेरी उजड़ गई है ।
फूल तो कोमल बिखर चुका है,
कांटा मेरे लिए बचा है ।
चले गये वे जो थे अपने,
अब उनके हैं रह गये सपने ॥

(३)

काम है मेरा बैठे रहना,
उनकी बातें करते रहना ।
हरदम, हर पल उन्हें सोचना,
और मुझे है अब क्या करना ।
दुनिया मेरी, याद है उनकी,
मैं उसमें ही भूली रहती ॥

(४)

होना अलग था, हम हो जाते,
ना मैं रहती, ना रहते वे ।
अलग हुए हैं वे भी कैसे,
पलभर एक अलग नहिं होते ।
जीती थी पहले उनमें मैं,
अब प्रियतम मुझमें जीते हैं ॥

(५)

जा न सके वे जगसे जाकर,
रह न सकी मैं जगमें आकर ।
भूलके मुझको नहिं वे भूले,
छुट कर मुझसे नहिं वे छूटे ।
मर कर भी वे सके नहीं मर,
जी न सकी मैं जीती रह कर ॥

(६)

रोती हूँ नयनों से फूटे,
तड़पा करती दिलसे टूटे ।
मरी हुई अब मैं जीती हूँ,
उनके सांस लिया करती हूँ ।
केवल मेरी दृष्टि उधर है,
मेरा प्यारा गया जिधर है ॥

आरा नागरी-प्रचारिणी सभा

श्री शुकदेव सिंह

हिन्दीके आधुनिक इतिहासमें काशी नागरी-प्रचारिणी सभाका स्थान एक बहुत महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित स्थान है। गत पैंतीस-चालीस वर्षोंमें उसने हिन्दीकी जो सेवा की है, वह सदा अमर रहेगी। काशी नागरी-प्रचारिणी सभाका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है। आराकी नागरी-प्रचारिणी सभाका कार्यक्षेत्र उतना विस्तृत नहीं रहा है। फिर भी उसने अपने जीवनमें हिन्दी-साहित्यकी जो सेवाएँ की हैं और बिहार-प्रान्तमें हिन्दी-प्रचारका जो उद्योग किया है, वह भुलाया नहीं जा सकता।

जिस समय आरा नागरी-प्रचारिणी सभाका जन्म हुआ उस समयकी स्थिति आजसे बिलकुल भिन्न थी। संस्कृत पढ़े-लिखे विद्वान हिन्दीको 'भाखा' कहकर उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे। दूसरी ओर थोड़ी भी अंग्रेज़ी जाननेवाले व्यक्ति हिन्दी लिखने-पढ़नेमें अपनी हेठी समझते थे। हिन्दीमें पत्र लिखना, हिन्दीकी पुस्तकें तथा अखबार आदि पढ़ना सभ्य समाजमें अच्छी दृष्टिसे नहीं देखा जाता था। ऐसे समयमें आरा नागरी-प्रचारिणी सभाने जन्म लेकर बिहारमें हिन्दीकी काफी सेवा की।

सन् १९०१ की बात है। दुर्गापूजाकी छुट्टियाँ थीं। एक दिन स्वर्गीय बाबू जयबहादुरजी जमींदारके घरपर उनके मित्र स्वर्गीय बाबू रामकृष्णदास और काव्य-व्याकरण-सांख्य-तीर्थ पं० सकलनारायण शर्मा आये और वार्तालाप करने लगे। बातचीतके सिलसिलेमें यह प्रसंग उठ खड़ा हुआ कि आरामें हिन्दीकी एक साहित्यिक संस्था स्थापित करना चाहिए। बाबू रामकृष्णदासने काशी नागरी-प्रचारिणी-सभाकी एक शाखा खोलनेकी राय दी, परन्तु अन्तमें एक स्वतन्त्र नागरी-प्रचारिणी सभाका स्थापन निश्चित हुआ। फलत: स्व० देवकुमारजी, स्व० रामकुमारजी, स्व० रायसाहब हरगुप्रसाद सिंह तथा स्व० जैनेन्द्रकिशोरके सहयोगसे शीघ्र ही सभाकी स्थापना हो गई। सभाका कार्यालय और पुस्तकालय बाबू जयबहादुरजीके मकानपर स्थापित हुआ, और दस वर्ष तक वहीं रहा।

आरा न तो कोई तीर्थस्थान है और न व्यापारिक केन्द्र ही है। वह एक मामूली दर्जेका छोटा शहर है। उसमें बड़े-बड़े श्रीसम्पन्न सेठ-साहूकारोंका अभाव-सा है, इसीलिए सभाकी आर्थिक स्थिति कभी अच्छी नहीं हुई। ऐसी कठिन अवस्थामें भी सभाने जो कुछ भी सेवा की है, वह उसके लिए गौरवकी बात है।

आरम्भमें सभाके संस्थापकोंने पुस्तकालयको विशेष उन्नत बनानेका प्रयत्न किया। पुस्तकालयका नाम 'नागरी प्रचारक पुस्तकालय' रखा गया। स्व० जयबहादुरजीने उच्च पदाधिकारियोंका सहयोग प्राप्त किया ; पं० सकलनारायण शर्माने जनताका ध्यान इधरको आकर्षित किया ; आर्थिक कठिनाईमें स्व० रामकृष्णदासने सहायता दी ; इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें पुस्तकालय सर्वप्रिय हो गया। उसमें बहुतसी पुस्तकें एकत्रित हो गईं और हिन्दीके प्राय: सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाएँ आने लगीं।

अब सभाने आरा नगरके सर्वसाधारणमें हिन्दी-प्रचारका कार्य उठाया। उस समय आजकलकी भाँति हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाएँ नहीं निकलती थीं और न आजकल जैसी सामयिक पुस्तकें ही प्रकाशित होती थीं। हिन्दीके पत्रोंकी संख्या उंगलियोंपर गिनी जाने योग्य थी। हिन्दी-पाठकोंकी संख्या बहुत थोड़ी थी। आरा नागरी-प्रचारिणी सभाने सर्वसाधारणमें हिन्दीके प्रति अनुराग उत्पन्न करने और पुस्तकालयमें अधिकाधिक संख्यामें पाठकोंको आकर्षित करनेके लिए प्रति सप्ताह पुस्तकालयमें भिन्न-भिन्न विषयोंपर व्याख्यान

दिलानेका प्रबन्ध किया, भिन्न-भिन्न विषयोंपर निबन्ध-पाठ और कविताकी समस्या-पूर्तिका आयोजन किया गया। एक समालोचक-विभागकी रचना करके हिन्दीकी नव प्रकाशित पुस्तकोंकी साहित्यिक आलोचना होने लगी। सभाकी इन सब व्यवस्थाओंके विस्तृत विवरण पत्र-पत्रिकाओंमें छपने लगे। उत्तमोत्तम निबन्धोंपर पदक तथा पुरस्कारकी घोषणासे गंभीर तथा गहन विषयोंपर सुन्दर निबन्ध प्रकाशित होने लगे। सभाके इन सब कार्योंका सुन्दर फल हाथों-हाथ मिलने लगा। एक वर्षके भीतर ही सभा आरा नगरमें लोकप्रिय बन गई। बाहरके भी सैकड़ों महानुभाव सभाके कार्यसे काफी प्रभावान्वित हुए। लेखोंपर पुरस्कार तथा पदक आदि देनेके लिए अनेकों सज्जनोंके पत्र आने लगे।

स्वर्गीय ईश्वरीप्रसाद शर्माने—जो उस समय विद्यार्थी ही थे—लिखा-पढ़ी करने तथा प्रचार-कार्यको आगे बढ़ानेके लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। सभाके कार्यकर्ताओंको अनुभवसे ज्ञात हुआ कि अधिकांश लोगोंको अपनी जीविकोपार्जनके कार्योंसे इतना कम समय मिलता है, जिससे वे पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें पढ़नेमें प्रायः असमर्थ-से रहते हैं, इसलिए सभाने एक उपसमिति नियत करके एक नई योजना निकाली। इसके अनुसार पुस्तकालयमें आनेवाली नई पत्र-पत्रिकाओंको पुस्तकालय बन्द होनेके बाद सभाके सदस्यों तथा बाहरी व्यक्तियोंको पढ़नेके लिए वितरण किया जाता था, और दूसरे दिन पुस्तकालय खुलनेके पूर्व ही वापस ले लिया जाता था। पुराने पत्र एक सप्ताह तक रहने दिये जाते थे। यह योजना खूब सफल हुई। लोगोंको मानसिक भोजनका स्वाद मिला और उसका चस्का पड़ गया। फिर तो लोगोंके पास पत्र-पत्रिकाएँ न पहुँचनेपर तक़ाजे होने लगे। यह व्यवस्था कई वर्ष तक चली, अन्तमें जब सर्वसाधारणमें पठन-पाठनकी स्थायी प्रवृत्ति पड़ गई, तब सभाने इस व्यवस्थाको तोड़ दिया।

लोगोंमें पठन-पाठनकी इस रुचिको उत्पन्न करनेका ही फल यह है कि आजकल आरामें हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंके पाठक बहुत काफ़ी संख्यामें मिलेंगे। जनताकी पठन-पाठनकी तृषाको तृप्त करनेके लिए इस समय आरा नगरमें चार पब्लिक पुस्तकालय हैं। धनी-मानी सज्जनोंके प्राइवेट पुस्तकालय इससे पृथक हैं।

बिहार प्रान्तमें पहले पाठ्य पुस्तकें कैथीमें छपती थीं, परन्तु सभाके ही प्रबल आन्दोलनसे वे देवनागरी लिपिमें छपने लगीं। सभाके प्रयत्नसे कलकत्तेके प्रेसीडेन्सी कालेजमें कुछ दिनोंके लिए हिन्दी भाषाके व्याख्याता (लेक्चरर) की नियुक्ति हुई थी। साथ ही सभा भारतके मुख्य-मुख्य नगरोंके गण्यमान्य सज्जनोंकी सेवामें पत्र तथा डेपुटेशन भेजकर हिन्दी-हितैषिणी संस्थाओंको स्थापित करानेकी चेष्टा करती रही। डालटेनगंज, दाऊदनगर, बुलन्दशहर आदि स्थानोंमें सभाके पुस्तकालयकी शाखाएँ स्थापित की गईं।

सभा प्रतिवर्ष रेलवे बोर्ड, भारतीय नरेशों तथा देशी व्यापारियोंकी सेवामें छपे हुए मेमोरियल भेजकर उनसे प्रार्थना करती रही कि वे अपने दफ्तरोंमें हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपिको स्थान दें। फल-स्वरूप आजकल अनेकों देशी रियासतोंमें हिन्दीकी प्रधानता दीख पड़ती है।

उस समय तक बिहार प्रान्तकी कचहरियोंमें उर्दू भाषा और उर्दू लिपि ही काममें लाई जाती थी। सभाने कचहरियोंमें हिन्दीका व्यवहार करनेके लिए घोर आन्दोलन किया और प्रान्तीय गवर्नरके पास मेमोरियल भेजे। अन्तमें सरकारको मानना पड़ा और कचहरियोंके आवश्यक कागज़-पत्र देवनागरी लिपिमें छपने लगे।

आरा नागरी-प्रचारिणी सभाने इस बातका भी प्रयत्न किया कि स्वर्गीय दरभंगा-नरेशकी सहायतासे हिन्दी तथा संस्कृतकी उच्च शिक्षाके लिए एक विद्यालय स्थापित किया जाय। फिर यह सोचा गया कि काशीमें संस्कृतके अनेकों विद्यालय हैं, फिर भी संस्कृतकी काफी उन्नति नहीं होती, इसलिए उसके लिए कोई और तरकीब करनी चाहिए। इसपर सभाने महाराजसे प्रार्थना की कि वे प्रेमचन्द-रायचन्द छात्रवृत्तिकी भाँति हिन्दी और संस्कृतके विद्यार्थियोंके लिए भी दो हजार,

एक हज़ार और पाँच सौ रुपयेकी तीन 'स्टूडेन्ट शिप' स्थापित करें। 'अमृतबाजार पत्रिका' ने सभाकी इस बातका समर्थन भी किया था और महाराजबहादुरने स्वीकार भी कर लिया था, परन्तु फिर कुछ कारणोंसे वह मामला ज्योंका त्यों रह गया।

सन् १९०६ में, जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जन्म नहीं हुआ था, सभाके अनन्य प्रेमी स्वर्गीय उमापतिदत्त शर्मा कलकत्तेमें रहते थे। पंडित सकलनारायणने उन्हें लिखा कि वे वहाँ पं० दीनदयाल शर्मासे मिलकर उन्हें आरा नागरी प्रचारिणी सभाके वार्षिकोत्सवपर आरा आनेके लिए राज़ी करें। स्वर्गीय उमापतिजीने उत्तर दिया कि दो-एक व्याख्यान करानेकी अपेक्षा यह उत्तम होगा कि आरेमें एक 'अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' स्थापित करके देशके समस्त लेखक, पत्रकार और साहित्यिकोंको आमन्त्रित किया जाय। पहले तो शर्माजीने इतनी बड़ी योजनाके लिए आवश्यक प्रबन्ध और व्यय करनेमें अपनेको तथा सभाको असमर्थ बताया; मगर जब उमापतिजीने द्रव्य संग्रह करनेके लिए स्वयं कमर कसी, तब शर्माजी तैयार हो गये।

तमाम समाचारपत्रोंमें इस प्रकारके सम्मेलन करनेकी आवश्यकता प्रकट की गई। हिन्दीके प्रसिद्ध साहित्यिकोंकी सम्मतियाँ माँगी जाने लगीं। सम्मेलनमें विचारणीय बातोंपर मन्तव्य प्रकाशित होने लगे और आन्दोलन चलने लगा, मगर उस समय परमात्माको यह स्वीकार नहीं था। अकस्मात् पंडित उमापतिदत्तका स्वर्गवास हो गया! उनकी मृत्युसे शर्माजीका उत्साह भी भंग हो गया और सब मामला ठंडा पड़ गया। इसके बाद ही प्रयागके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जन्म हुआ।

सम्मेलनकी स्थापनाके बाद आरा नागरी-प्रचारिणी सभाने एक सम्पादक-समिति स्थापित करनेका आन्दोलन उठाया। सभाके आन्दोलनका फल यह हुआ कि लोगोंको इस प्रकारकी एक समिति बनानेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी और सम्पादक-समितिका जन्म हुआ। जब तक सम्पादक-समितिका कार्यालय रहा, तब तक सभा उसे २०) वार्षिककी आर्थिक सहायता भी देती रही। अब सम्पादक-सम्मेलन एक नाममात्रकी संस्था है, जिसका अधिवेशन सम्मेलनके अवसरपर रस्म अदा करनेके लिए हो जाया करता है।

सन १९२७ में बिहारकी व्यवस्थापिका-सभाने देशी भाषाओंके विकासके लिए एक समिति नियत की। इस समितिने एक योजना पेश की, जिसके अनुसार सातवें दर्जेसे ग्यारहवें दर्जे तकके विद्यार्थियोंको उर्दू पढ़ना अनिवार्य कर दिया गया था और अदालतोंमें उर्दू-लिपिका व्यवहार करनेका आग्रह किया गया। सभाने इन बातोंका घोर विरोध किया। उसने स्थान-स्थानपर इनके प्रतिवादके लिए सभाएँ कराईं, और सहस्रों आदमियोंके हस्ताक्षर कराकर सरकारको मेमोरियल भेजा। इस आन्दोलनसे पहला नियम तो स्थगित हो गया; मगर कौन्सिलके मुसलमान सदस्योंके हठपर दूसरा नियम पास हो गया। सभा इस विषयमें अनुकूल समयकी प्रतीक्षामें है। उपयुक्त समय आते ही इसके लिए पुनः प्रयत्न करेगी।

आर्थिक संकट रहते हुए भी आरा नागरी-प्रचारिणी-सभाने हिन्दीकी महत्त्वपूर्ण सेवा की है। उसने भिन्न-भिन्न विषयोंकी अनेकों महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनका हिन्दी-संसारमें यथेष्ठ सम्मान हुआ है। सभाने जितनी पुस्तकें प्रकाशित की हैं, वे हिन्दी-साहित्यके अभावकी पूर्तिके विचारसे की हैं, न कि व्यापारिक लाभकी दृष्टिसे। वे पुस्तकें स्थायी साहित्यकी कृतियाँ हैं। उनमें मैथिल कोकिल, विद्यापतिकी कृतियाँ, 'हिन्दी-सिद्धान्त-प्रकाश', 'नवरस', मेगास्थनीज़का भारत-विवरण, सिख गुरुओंकी जीवनी, गत पचास वर्षोंमें बिहारमें हिन्दीकी दशा तथा रसायन, तर्क, खगोल, विज्ञान, अर्थशास्त्र, सृष्टितत्त्व आदि विषयोंकी ऐसी चुनी हुई पुस्तकें हैं, जो हिन्दीमें सदा आदरकी दृष्टिसे देखी जायँगी। सभाने विद्यापतिकी कृतियोंका प्रकाशन उस समय किया था, जब हिन्दी-संसारको इस महान कविकी भावपूर्ण रचनाओंका नाम मात्रका ज्ञान था। आजकल तो कई

प्रकाशकोंने सभा-द्वारा प्रकाशित पदावलीके आधारपर विद्यापतिके ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं।

सभाके साहित्यिक कार्योंमें 'साहित्य-पत्रिका' नामक एक पत्रिकाका प्रकाशन भी है। यह पत्रिका पहले 'नागरी-हितैषिणी' के नामसे त्रैमासिक रूपमें प्रकाशित होती थी, फिर 'साहित्य पत्रिका' के रूपमें प्रकाशित होने लगी। इधर कुछ दिनोंसे आर्थिक कठिनाईके कारण पत्रिकाका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया है। सभाके संचालक उसे पुनर्जीवित करनेके यत्नमें हैं।

सभा गत ३१ वर्षोंसे कार्य कर रही है, परन्तु उसके पास अब तक अपना भवन नहीं है। गत सात वर्षोंसे सभाके कार्यकर्तागण सभाके लिए उपयुक्त भवन बनवानेके प्रयत्नमें अपनी शक्ति लगा रहे हैं। परमात्माकी कृपासे उनका प्रयत्न सफल भी हो रहा है। सरकारकी ओरसे 'रमना' नामी स्थानमें पौने दो बीघेके लगभग ज़मीन मिल गई है। यह ज़मीन बड़े मौक़ेकी है। सभाने भवन बनवानेका कार्य भी आरम्भ कर दिया है। अब तक प्रायः १३०००) व्यय हो चुके हैं। सम्पूर्ण भवनके बनानेमें एक लाख रुपयेका व्यय होनेका अन्दाज़ लगाया गया है। अभी भवनका केवल एक अंश बन पाया है, जिसमें दो बड़े-बड़े कमरे हैं। भवनका निर्माण-कार्य तब तक पूरा होना कठिन है, जब तक देशके धनी-मानी सज्जन आर्थिक सहायता देनेकी उदारता न दिखायेंगे। आशा है कि बिहारके श्रीसम्पन्न उदारचेता महानुभाव मुक्तहस्तसे सभाकी सहायता करके इस कार्यको पूरा करेंगे।

कृष्ण भगवान

मुन्शी महाराजबहादुर बर्क़, बी० ए०, मुन्शी-फ़ाज़िल

तू वह बुत है काबए-दिल है सनमख़ाना तेरा,
शमा जां-अफ़रोज़ है तू मैं हूँ परवाना तेरा ॥
अक्से-वहदत परदए-कसरतमें है परतो-फ़िगन,
ये तिलस्माते-जहां है आइना-ख़ाना तेरा ॥
नक्शे बन्दे-दहर है फिर दोनों आलमसे अलग,
रंग है नैरंगे-हस्तीसे जुदागाना तेरा ॥

बुत=मूर्ति। काबए-दिल=दिलका काबा। सनमख़ाना=बुतख़ाना, मन्दिर। शमा=मोमबत्ती, दीपक। जांअफरोज=जिसमें जीवनकी बत्ती बलती है। परवाना=दीपकका प्रेमी पतंग। अक्से-वहदत=अद्वैतका प्रतिबिम्ब। कसरत=बहुत्व। परतोफ़िगन=प्रकाश डालनेवाला। तिलिस्माते-जहां=संसाररूपी जादूघर। आईना-ख़ाना=शीशमहल, दर्पण-गृह। नक्शे बन्देदहर=संसारका स्रष्टा। दोनों आलम=यह लोक और परलोक। नैरंगे-हस्ती=प्रकृतिका रूप।

रश्के-सदकाने मलाहत मोहनी मूरत तेरी,
ग़ैरते-हुस्ने-बुतां अन्दाज़े जानाना तेरा ॥
नग़मए-नै है बराए अहले-दिल फ़िरदौसे-गोश,
वलवला-खेज़े-तसव्वफ़ रक्से-मस्ताना तेरा ॥
नक़्दे-जाने-आशिक़ां सदक़े तेरे एजाज़पर,
दिल है बैआना तेरा ईमान नज़राना तेरा ॥

रश्के-सदकाने मलाहत=लावण्यकी सैकड़ों खानोंसे सुन्दर। ग़ैरते-हुस्नेबुतां०=तेरे प्रेमकी छवि सारे प्रेमियोंके प्रेमको मात करनेवाली है। नग़मए-नै=बांसुरीका स्वर; जिसपर सहृदय स्वर्गसे भी कान लगाये रहते हैं। वलवला-खेज़े-तसव्वफ़=तुम्हारा (श्रीकृष्णका) मस्ताना नाच अद्वैत-भावनाका उत्तेजक है। नक़्दे-जाने-आशिक़ां०=प्रेमियोंका प्राणधन तुम्हारे अलौकिक चमत्कारपर निछावर है, और हृदय तो तुम्हारा बयाना (किसी चीज़को खरीदनेके लिए मूल्यसे पहले जो रुपया दिया जाता है) और ईमान—श्रद्धा-विश्वास तेरा नज़राना (भेंट) है

बहरे-हस्तीमें कमलकी तरह तर-दामन नहीं,
होशमन्दे-खुद फ़रामोशी है दीवाना तेरा ॥
सब कि नज़रोंमें समाता है बक़द्रे-शौक़े दीद,
चश्मे-नज़्ज़ारेमें है जलवा जुदागाना तेरा ॥
क़तरा क़तरा बन गया खुमख़ानए-वहदत असर,
जोशे-मस्तीमें ज़रा छलका था पैमाना तेरा ॥
फ़िलसफ़ा 'गीता'का है दुनियामें काते-मार्फ़त,
बन्द है कूज़ेमें दरयाए-रवाने मार्फ़त ॥
आइना आलम पै तूने राज़े-इरफ़ां कर दिया,
जलवए-तौहीद कसरतमें नुमायां कर दिया ॥
रूए-रोशनमें दिखाकर शाने-तनवीरे-अज़ल,
दहरके ज़ुलमतकदेको जलवा सामां कर दिया ॥

बहरे-हस्तीमें=संसार-सागरमें रहकर भी कमलकी तरह पाप-पंकसे अलिप्त है—'पद्मपत्रमिवाम्भसा'। होशमन्दे०=तुम्हारा प्रेमी अपने आपको भूलकर भी होशमें रहता है। सबकी नज़रोंमें०=जिसकी दृष्टिमें देखनेका जितना शौक़ है, वह तुझे उतना देखता है—वैसा ही देखता है। हर किसीकी दृष्टिमें उसकी भावनाके अनुरूप तुम्हारा दृश्य जुदा ही दीखता है। क़तरा-क़तरा बन गया=संसारका एक-एक बिन्दु अद्वैत भावकी मस्तीसे भर गया, मस्तीके जोशमें तुम्हारा उपदेशका प्याला (गीता) ज़रा ही छलका था। फ़िलसफ़ा= गीताकी फ़िलासफ़ी ज्ञानकी खान है, मानो गागरमें सागरको भर दिया है। आइना आलम पै=ज्ञानका रहस्य संसारपर प्रकट कर दिया। बहुत्वमें एकत्वका दृश्य दिखा दिया। रूएरोशन= अपने मुख-मंडलकी ज्योतिमें अनादितत्त्वकी झलक दिखाकर संसारकी अँधेरी गुफामें प्रकाश भर दिया।

दे के तालीमे-हक़ीक़त खेश ऐने-ज़ातकी,
मासिवाका इल्म ज़ेबे-ताक़ निसियां कर दिया ॥
भर दिया नूरे जहां-अफ़रोज़ चश्मे-शौक़में,
ख़ानए-दिलको तजल्ली-गाहे-इरफ़ां कर दिया ॥
शाने यकताईकी थी वो तेरे जलवेमें झलक,
जिसने बातिल इमतयाज़े कुफ़्रो ईमां कर दिया ॥
राज़का परदा उठाकर चेहरए-मक़सूदसे,
हुस्ने मानी तूने बेपरदा नुमायां कर दिया ॥
अहदे-तिफ़्लीमें दिखाकर दहरकी नैरंगियां,
साबित इस दुनियाको बाज़ी गाहे-तिफ़्लां कर दिया ॥
आलमे-अजसाममें बनकर सरापा नूरका,
अर्शे आलापर दिमाग़े-बज़्मे इमकां कर दिया ॥
दौर-दौरा माद्दियतका है फिर संसारमें,
खुदनुमाईका दिखा जलवा नये औतारमें ॥

देके तालीमे-हक़ीक़त०=उसके स्वरूपकी शिक्षा देकर उससे भिन्न सब पदार्थोंको विस्मृतिमें विलीन कर दिया—भुला दिया। भर दिया०=दर्शनोत्सुक दृष्टिमें ज्योतिको—जो संसारको प्रकाशित करती है—भरकर हृदय-मंदिरको ज्योतिसे जगमगा दिया। शान इकताई०= तुम्हारे दर्शनमें वह अनुपम भाव था, जिसने सारे मिथ्या मतभेद दूर कर दिये। राज़का परदा०=अभीष्टके मुखसे रहस्यका परदा उठाकर परमतत्त्वको प्रकट कर दिया। अहदे-तिफ़्लीमें०=बचपनकी बाल-लीलामें नाना प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक दिखाकर इस दुनियाको बच्चोंका खेल साबित कर दिया। आलमे-अजसाममें=मनुष्य-रूपमें तेजोमय शरीर धारण करके संसारकी महत्ता सिद्ध कर दी। दौरदौरामाद्दियत० =संसारमें अब फिर नास्तिकता फैल रही है। नया अवतार धरकर आओ और इस अंधकारको हटाओ।

धनी लेखकोंका अपराध

श्री लक्ष्मीकान्त झा

लेखकोंको अपने लेखके लिए सम्पादकों और प्रकाशकोंसे रुपया लेना उचित है या नहीं, इस विषयपर हिन्दीके लेखकोंमें मतभेद दीख पड़ता है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो अपने लेखके लिए रुपया लेनेमें अपनी हीनता समझते हैं और पुरस्कार लेना—यदि सम्पादकने देना स्वीकार भी कर लिया, क्योंकि अधिकांश लेखोंके लिए तो सम्पादकगण पुरस्कारकी बातको अपने मनमें आने तक नहीं देते—अस्वीकार कर देते हैं। अब विचार इसपर करना चाहिए कि यह मनोवृत्ति साहित्य और साहित्य-सेवियोंके लिए लाभदायक है या नहीं।

यूरोप, अमेरिका आदि देशोंमें तो इस प्रश्नपर विचार करना ही मूर्खता समझी जायगी; वहाँ बड़े-बड़े लार्ड, राष्ट्रीय नेता, विशप, आर्कबिशप और धनकुबेर, कोई भी अपने लेखोंके लिए रुपया लेनेमें नहीं हिचकता। वहाँ सम्पादकगण हमारे देशके सम्पादकोंकी तरह यह विज्ञप्ति नहीं निकलते कि—"पुरस्कार पाने योग्य लेखोंके लेखकोंको, यदि वे पुरस्कार लेना स्वीकार करें तो, पुरस्कार भी दिया जायगा।" कारण, वहाँ जो लेख प्रकाशित होनेके योग्य समझे जाते हैं, वे पुरस्कारके योग्य भी ज़रूर समझे जाते हैं। लेखकगण भी पुरस्कारको अपना अधिकार समझते हैं, न कि सम्पादकोंकी उदारताका फल। वहाँ लेखकोंको अधिकसे अधिक पुरस्कार देकर लेख प्रकाशित करनेवाली कम्पनियाँ भी हैं, जो लेखकोंको प्रकाशकोंके यहाँ दौड़नेसे अथवा तक़ाज़ेकी चिट्ठियोंके स्टाम्पके फ़िजूल खर्चसे बचाती हैं।

वहाँ लेखकों और सम्पादकोंसे वही सम्बन्ध होता है, जो यहाँ अनाज उपजानेवाले किसानों और अनाज खरीदनेवाले व्यापारियोंसे होता है। जिस प्रकार धनीसे धनी ज़मींदार अथवा किसान 'लोकसेवा'के खयालसे व्यापारियोंको मुफ्तमें अनाज नहीं देता, उसी प्रकार वहाँ लेखक भी, चाहे वह कितना ही धनी क्यों न हो, 'साहित्य-सेवा' (?) के खयालसे अपना लेख सम्पादकोंको मुफ्त छापनेके लिए नहीं देता।

जिस 'आत्म-त्याग'से दूसरोंको वास्तविक लाभ न पहुँचे, वह आत्म-त्याग नहीं, आत्म-हत्या है। आत्म-त्याग महान् विषय है, आत्म-हत्या पाप है। जो लेखके लिए पुरस्कार नहीं लेते, वे सचमुच आत्मत्यागके धोखे आत्महत्या कर रहे हैं। लेखोंके लिए पुरस्कार न लेनेसे जनताको कुछ भी लाभ नहीं होता। कारण, प्रकाशकगण दाममें रियायत नहीं करते! कभी-कभी पुरस्कारका धन सुन्दर रेशमी जिल्द लगानेमें व्यय कर देते हैं और जनतासे दूना दाम वसूलते हैं। प्रकाशकोंका धन बढ़ानेसे हमारा साहित्य धनी नहीं होता। विदेशके लेखक इस बातको अच्छी तरह समझते हैं।

यदि हमारे यहाँके लेखक भी इस बातको स्मरण रखें, तो लेखकोंको भूखों मारकर प्रकाशकगण धनी न बन सकें। आप देखेंगे कि बहुधा बेचारे लेखकोंको—निरे लेखकोंको, जिन्हें जीविका निर्वाहके लिए अपनी लेखनीका ही भरोसा है—गरीबीमें अथवा क्लर्कीमें ही अपना जीवन व्यतीत कर देना पड़ता है। खाली पेट लेख लिखनेसे लेख कमज़ोर और भावोंसे खाली होते हैं। "साहित्यके घोड़ेपर चढ़कर भूखके कोड़ेकी सहायतासे सड़क पर के रोड़े छोड़ रुपयोंके तोड़े बटोरनेवाले भोड़े" केवल अन्नपूर्णानन्दजीकी 'मेरी हजामत' में ही सुनाई पड़ते हैं। वास्तवमें तो सुन्दरसे सुन्दर लेखक भूखके कोड़े खाते-खाते और सड़कोंके रोड़े बटोरते-बटोरते भोंड़े हो जाते हैं।

लेखकोंकी गरीबीका फल यह होता है कि उन्हें या तो लिखना बन्द कर देना पड़ता है, अथवा साथ ही साथ कोई दूसरा काम भी करना पड़ता है। प्रसिद्ध पत्रकार पेटलोवेटने अपनी एक पुस्तकमें लिखा है कि लेखन-कला एक ऐसी

प्रेमिका है, जिसे सौत गवारा नहीं। जिन लेखकोंको लेख लिखनेके सिवा जीविकोपार्जनके अन्यान्य साधनोंका सहारा लेना पड़ता है, वे अपनी शक्तिभर साहित्य-सेवा नहीं कर पाते। इस प्रकार ग़रीब लेखक सम्पादकों और प्रकाशकोंसे यथेष्ट धन नहीं पा सकते और साहित्य उनकी सेवासे वंचित रहता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि धनी लेखकोंको पुरस्कार लेना चाहिए या नहीं? हमारी रायमें तो उन्हें भी अवश्य पुरस्कार लेना चाहिए। कारण, जब वे मुफ़्तमें लेख लिखकर देते रहेंगे, तो कोई भी प्रकाशक ग़रीब लेखकोंका लेख पैसा देकर लेना न चाहेगा। प्रसिद्ध अंग्रेज़ लेखक और नाटककार जार्ज बर्नार्ड शा ने—जिनकी गणना संसारके तीन सर्वश्रेष्ठ पुरुषोंमें हुई है—अपनी पुस्तक 'एन इंटेलिजेन्ट वोमेन्स गाइड टु सोशियालिज्म' (An Intelligent Woman's Guide to Socialism) के सस्ते संस्करणकी (वहाँ एक ही किताबके कई संस्करण साल-भरमें निकल जाते हैं, 'सस्ता संस्करण' क़रीब चार रुपयेका था) भूमिकामें लिखा है—"एक ग़रीब महिलाने मुझे इस पुस्तकके पहले संस्करणका मूल्य पन्द्रह शिलिंग रखनेके लिए कोसा है। उस ग़रीब महिलाके लिए, जिसे रोज़ अपने पसीनेकी कमाईसे धन उपार्जन कर अपने बच्चोंका पालन करना पड़ता है, यह संस्करण भी ख़रीदना सम्भव न होगा, पर मैं इस पुस्तकका मूल्य ज्यादा घटाकर अपने सहयोगी लेखकोंकी *दशा उसी ग़रीब महिलाकी तरह नहीं बना देना चाहता।* यदि मैं अपनी पुस्तकके मूल्यमें ज्यादा कमी करूँ, तो बेचारे ग़रीब लेखकोंके लेखका मूल्य और भी घट जायगा।"

हमारे यहाँ जो धनी लेखक अपने लेखोंके लिए धन नहीं लेते, वे अपनी इस भूलको नहीं समझ पाते कि इस 'अनावश्यक' धनको अस्वीकार कर वे कितने ग़रीब लेखकोंकी मुँहकी रोटी प्रकाशकोंसे ज़बरदस्ती छिनवाते हैं। जिन्हें यह धन अनावश्यक मालूम हो, वे इसे लेकर किसी सुपात्रको—प्रकाशकको नहीं—दान दे सकते हैं।

साहित्यकी उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि उसके प्रेमी उसकी सेवा जी-जानसे करें, पर इसका अर्थ यह नहीं कि वे इसके लिए भूखों जान दे दें। यदि उन्हें जीविका निर्वाहके लिए अन्य उपायोंका अवलम्बन करना पड़ेगा, तो साहित्य-सेवामें बाधा पहुँचे बिना न रहेगी। न जाने कितने उदीयमान लेखक भूखके कोड़े खाते-खाते सदाके लिए अकालमें ही अस्त हो गये।

हमारे यहाँ लेखनीके भरोसे किसी तरह वे ही जी सकते हैं, जो किसी पत्र अथवा पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें नौकरी कर लेते हों। ऐसी दशामें भी हमारे कितने ही सम्पादक मित्रोंका कहना है कि उन्हें बहुधा मुहताज ही बना रहना पड़ता है।

सभी लेखक तो सम्पादक भी नहीं हो सकते। समाचारपत्रोंको छोड़ प्राय: सभी पत्र-पत्रिकाओंमें नब्बे प्रतिशत लेख बाहरके रहते हैं और केवल दस फ़ी-सदी सम्पादकीय विभाग-वालोंके। इन इने-गिने सम्पादकोंको छोड़कर और लेखक किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करते हैं, इस बातपर यदि हम ध्यान दें, तो हमें मालूम हो जायगा कि पुरस्कार—अधिक-से-अधिक पुरस्कार—लेना प्रत्येक साहित्य सेवीका कर्तव्य है।

लेखकोंकी दशा सुधारना प्रत्येक साहित्य-प्रेमीका कर्तव्य है। जिस दिन हमारे लेखकोंकी दशा सुधर जायगी, उस दिन हमारा साहित्य भी—हमारे देशका राष्ट्रीय साहित्य—*केवल हमारे ही लिए नहीं, सारे एशियाके लिए गर्वका विषय* होगा; पर हमें उसके लिए चेष्टा और आन्दोलन करते रहना चाहिए, जिससे लेखकोंकी दशा सुधरे और लेखकोंका मूल्य बढ़े, और भारतमें भी स्वतन्त्र पत्रकारी (Free Lance Journalism) प्रचलित हो, तभी साहित्य उन्नति कर सकेगा।

क्या धनी लेखक इस बातपर विचार करेंगे और आत्म-त्यागके नामपर आत्म-हत्या करना छोड़ वास्तविक साहित्य-सेवा करेंगे?

कहानी

श्री मोहन सिंह मेहता, एम० ए०

तीन भाई थे और तीन बहनें थीं। एक भाई नौकर था। एक नौकरके लिए जिस क़दर अधीन होना, चिन्तातुर होना, धनहीन होना, अस्वस्थ होना उचित है, वह सब कुछ था। दूसरा भाई आवारा था। आवारगी जिस क़दर स्वतन्त्रताका प्रेम, प्रेमका प्रेम, निश्चिन्तताका प्रेम उत्पन्न कर सकती है, वह सब उसमें मौजूद था। तीसरा भाई छोटा था, वह दोनों भाइयोंको देखता था और कभी इसके मृत सुखको और कभी उसके जीवित दुःखको सराहता था और चाहता था। कभी-कभी वह सपने भी देखता, जिनमें न तो सुखका प्रवेश था और न दुखका। उनमें निपट कल्पना थी या केवल रोमान्स—कल्पना-निर्मित स्वर्गलोक।

तीन बहनें थीं। मँझली कहती थी—"मैं शादी नहीं करूँगी" क्योंकि बड़ी बहनकी स्थितिको वह वर्षोंसे देख रही थी। छोटी बहन कहती थी—"मँझली झूठी है। दिलमें कुछ और है, कहती कुछ और है। जीजाजी आ लें तो फिर उनके सामने इसको ख़ूब शरमिन्दा करूँगी।" बड़ी कहती थी—"मेरी बहनोंकी शादी ज़रा देरमें करना। अच्छे वर ढूँढ़नेमें यदि देर भी लग जाय तो कोई हर्ज नहीं।"

भाइयोंकी दुनियाँ बहनोंके जगतसे सर्वथा अलग थी। फिर हरएक भाईका संसार दूसरे भाईसे और हरएक बहनका दूसरी बहनसे भिन्न था। एक हिमाचलकी छै सन्तानें पृथक-पृथक दिशाओंमें बह रही थीं। मगर असम्भव सम्भव हो गया, और वे सब घूमघामकर एक ही सागरकी ओर बहने लगीं। वह कैसे हुआ?

[२]

हिन्दू-मुसलिम फ़साद हुआ। दंगा होनेमें क्या देर लगती है? कलहकारिणी स्त्रीको साधु पतिसे, लाड़ले बेटेको अच्छी अम्मांसे, कंजूस मालिकको भले नौकरसे, शरीर लड़केको अमीरके बेटे, भोले सहपाठीसे, लफंगेको लफंगेसे, गुंडेको गुंडेसे दंगा करनेमें क्या देर हो सकती है?

दंगा कहाँ हुआ—यह बतानेकी क्या आवश्यकता है? मौतके लिए सब दरवाज़े हर वक्त खुले हैं और वह हर समय बिना किसी बहानेके आ सकती है। फिर हिन्दुस्तान ऐसे मुल्कमें!

दंगा हुआ। स्त्रियाँ मारी गईं। उनकी आबरू उतारी गई। उनको क़ैदकर लिया गया, क्योंकि वे बहुत निर्बल होती हैं। बच्चे मारे गये, घायल हुए, क्योंकि वे निर्दोष होते हैं। मारे गये मनुष्योंमें हमारे कुनबेका बड़ा भाई भी था, क्योंकि वह आख़िर क्लर्क ही तो था।

उसकी मृत्युपर पाँच जीव रोये। पांच ही तो बाक़ी रह गये थे। मौत आई और चली गई, किन्तु जीवनको फ़िक्र और अंदेशेमें डाल गई। दोनों भाइयोंको खलबली-सी लगी रहती थी।

बहनोंने मर्दोंको आदमी समझना छोड़ दिया था। वे सोचती होंगी, *कहाँ यह नर-रूप पशु और कहाँ हम देवियाँ! विधाताने कहाँके जानवर लाकर हमारे साथ पिंजड़ेमें बंद कर* दिये हैं। उन्हें इस जातिसे घृणा उत्पन्न हो गई। वे अब भाइयोंसे भी डरने लग गईं। न जाने किस समय क्या कर बैठें। इन सबके अन्दर शैतान बसता है!

[३]

अब चार रह गये। मँझला चाहता था कि मैं किसीपर क़ुर्बान हो जाऊँ। क़ुर्बान होनेके लिए उसे भारत-भूमि मिली। उसने बमबाज़ोंकी संगत की, जिसका परिणाम

यह हुआ कि वह फांसीपर लटकाया गया। सुनते हैं कि उसके लिए चार तो घरके लोग रोये और कुछ बाहरके; मगर कौन रोता है और फिर कितने दिन? यह जीतोंकी दुनिया है, यहाँ जी सकनेवालोंकी क़द्र है, मुर्दोंसे क्या काम? मरघटको जाते समय जीवनकी यही बातें होती हैं:—मुझे जब वेदान्तकी सूचना मिली, मैं यह कर रहा था, मैं वह कर रहा था। मरघटसे लौटते वक्त जीवनकी यह बातें होती हैं:—जल्दी स्नान करके दफ्तर जाना है। स्वर्गवासीके बच्चोंके खानेका प्रबन्ध करना है। उसकी विधवाको मायके भेजना है, बैंकको सूचना देनी है।

बमसे एक आदमी मरा था। षड़यन्त्रमें चार फांसीपर चढ़े। बहनें सोचती थीं, मर्दोंको क्या हो गया है? और इस सोचसे भागती थीं कि हमारा क्या होगा? दिनको खानेको कहाँसे आयेगा और रातको मर्दोंसे बचावकी क्या सूरत होगी?

[४]

तीन ही तो रह गये। बड़ी बहन जेलमें थी, क्योंकि वह लोगोंको शराब पीनेसे रोकती थी। यह बात हमारी समझमें न आई। शराब बुरी है तो पीनेवालेके लिए। चोरी बुरी है तो चोरके लिए। दोनों सज़ा पायेंगे। विलायतवाले कपड़ा भेजते हैं, बिना आर्डरके थोड़े ही भेजते हैं। मँगानेवाले बिना माँगके थोड़े ही मँगवाते हैं। खैर, जब वह जेलमें गई, तब उसको सात मासका गर्भ था। वहीं बच्चा हुआ। बच्चा आया, माको साथ लेकर चला गया। सुनते हैं कि मा-बेटेकी अखबारोंमें तसवीर छपी थी। उनकी मौतपर रोया कोई भी नहीं, और न अधिक शोक ही प्रकट किया गया; क्योंकि उन दिनों स्वराज्य-आन्दोलन ज़ोरोंपर था। लोगोंने अपने दिलोंको पत्थर बना लिया था। ऐसी बातें हुआ ही करती हैं। लड़ाईमें शोकका अवकाश कहाँ!

[५]

मँझलीको खद्दर बहुत ही सुन्दर लगता था। वह सफेद खद्दर पहनकर चमेलीके फूलोंकी देवी-सी प्रतीत होती थी या चन्द्रलोककी अप्सरा-सी जान पड़ती थी, जो अभी-अभी क्षीर-सागरमें नहाकर आई हो। जब वह स्वयंसेविकाओंकी क़तारमें आगे-आगे चलती थी, तो ऐसा दिखाई देता था मानो आगरेके ताजमहलका कोई एक भाग चाँदनीमें चल-फिर रहा है। एक कविसे मैंने पूछा—"खद्दरमें इतना सौन्दर्य क्यों है?" वह बोला—"भाई, इन खद्दर धारण करनेवालियोंमें चार प्रकारका सौंदर्य एकत्रित होता है। जवानीका, त्यागका, स्वतन्त्रताका और देशप्रेमका। और जब देखनेवालोंकी आँखोंमें श्रद्धा और आदर-सम्मानके भाव हों, तब यह सौन्दर्य बहुत अधिक दृष्टिगोचर होता है।"

मँझलीने, जिसे विवाहकी चाह न थी, एक कांग्रेस नेतासे विवाह कर लिया, और दोनों कहीं चल दिये; ऐसा सुना है। बाक़ी दो ही रह गये।

[६]

छोटे भाईको न अच्छा खाना मिलता था, न अच्छा कपड़ा। बड़े भाईकी मृत्युके पश्चात् उसने एक छोटा अँधेरा कमरा किरायेपर ले लिया था। उसमें साल-भरसे कम ही रहा होगा कि नन्हेको उग्र क्षयरोग (Galloping Pthysis) हो गया। पन्द्रह दिन हुए, हम उसे ईश्वरके हवाले कर आये। म्यूनिसिपैलिटीमें रपट लिखवाई, तो बेचारे क्लर्कने बहुत शोक प्रकट किया। कहने लगा, एक-एक दिनमें तेरह-तेरह मौतें इस बीमारीसे हुई हैं। क्या शहर और क्या देहात, इस तेज़ीसे यह रोग बढ़ रहा है कि जीनेका मज़ा ही जाता रहा। कब और किस समय यह जिन आ चिपटे, कुछ ठिकाना नहीं।

[७]

नन्हीं ग्यारह वर्षकी थी। उसके एक दूरके नातेदार आये। वे मलाया स्ट्रेटसमें दूधकी दूकान करते हैं और

अच्छा पैसा कमाते हैं। वे आये तो इस मरतबा नन्हींको साथ ले गये। जाते समय मैंने उनसे पूछ लिया था कि "वहाँ हिन्दू-मुसलिम दंगे तो नहीं होते? वहाँ बम तो नहीं गिराये जाते? वहाँ गर्भवती स्त्रियाँ जेल तो नहीं जातीं? वहाँ प्रेम-विवाह करनेके लिए या करनेके पश्चात वतन तो नहीं त्यागना पड़ता? वहाँ क्षयरोग तो नहीं होता? वहाँ अनाथोंको पालनेके लिए देश और धर्म तो नहीं छोड़ने पड़ते?"

जब सबका जवाब नहींमें मिला, तब मैंने कह दिया कि नन्हींको बेशक ले जाओ। नन्हींकी तसवीर मेरे पास है। बड़ी बहनने एक रूमाल दिया था, वह भी मेरे पास है। मँझलीने अपने सिरका एक बाल काटकर दिया, जब उसने बालोंका फैशन बदलवाया था, वह भी मेरे पास है। बड़े भाईने एक क़लम दी थी, वह भी है, और मँझलेका दिया एक नावेल है। हाँ, सबसे छोटे भाईको जिन शीशियोंमें दवाइयाँ पिलाई थीं, वे सब मेरी आलमारीमें रखी हैं और नुसखे भी वहीं पड़े हैं।

[८]

मैंने यह 'कहानी' अपने दोस्तको दिखाई, तो बोला—"इसको कहानी कौन कहता है? मैं लिखता, तो एक-एकका एक-एक नावेल लिखता, ऐसा कि सब चकित हो जाते और श्री प्रेमचन्दके नावेलोंसे बढ़कर बिकता।" मैं चुप हो रहा।

स्त्री-कवि-कौमुदी

श्री ईश्वरीप्रसाद

साहित्यकी वृद्धि मानवजातिके जीवित होनेका प्रमाण है। संसारमें जिन जातियोंका उत्कर्ष हुआ है, उनका साहित्य उच्चकोटिका रहा है। उत्तम साहित्यका प्रादुर्भाव मनुष्योंके आदर्शोंपर निर्भर है। साहित्यके विकासका ऐतिहासिक दृष्टिसे अनुशीलन करनेसे इस कथनकी पुष्टि होती है। प्राचीन ग्रीस, रोम, भारतवर्ष, आधुनिक इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदिका इतिहास इस बातको सिद्ध करता है कि मनुष्यकी परिस्थिति, आदर्श और विचार उसके साहित्यपर बड़ा प्रभाव डालते हैं। साहित्यमें काव्य एक अद्भुत चीज़ है। उपयोगितामें इसकी तुलना आधुनिक विज्ञानसे नहीं की जा सकती। जहाँ अन्नके चार दाने उत्पन्न होते हैं, वहाँ कवि आठ नहीं पैदा कर सकते और न वह शिकागोसे कुस्तुन्तुनिया तक आनन-फ़ाननमें उड़ा ले जानेवाला वायुयान तैयार कर सकता है; परन्तु कवि जीवनको रसमय बनाता है। वह जीवन-संग्रामकी विविध कठिनाइयोंमें उद्वेग-पीड़ित तथा व्यवसाय-व्यग्र जनताको शान्ति और सुख प्रदान करता है। वह हमारे विक्षिप्त हृदयको शीतल करता है और अपने लालित्यपूर्ण शब्दों-द्वारा एक नई सृष्टिका दिग्दर्शन कराता है। सौन्दर्यके उपासकोंका तो कहना ही क्या है, साधारण मनुष्योंके लिए भी काव्यका बड़ा भारी महत्त्व है। काव्य मानवजातिकी सम्पत्तिमें एक अमूल्य वस्तु है। वह समाजके उत्कर्ष-आदर्शोंका चित्रण है। जहाँ काव्य नहीं, वहाँ जीवन नीरस है। जहाँ काव्यका आदर करनेवाले नहीं, वहाँ सभ्यताका अभाव या कला-विज्ञानका ह्रास है। भारतवर्षमें काव्यकी कमी कभी नहीं रही। आज भी, जब कि भारत परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें जकड़ा हुआ है, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सरोजिनी नायडू, जगन्नाथ दास रत्नाकर, अयोध्यासिंह उपाध्याय प्रभृति कवि अपनी कृतियोंसे इस प्राचीन देशकी कीर्तिको उज्ज्वल बना रहे हैं। निर्मलजीकी 'स्त्री-कवि-कौमुदी'को देखकर हर्ष हुआ और आश्चर्य भी। हम नहीं जानते थे कि हिन्दी-साहित्यकी शोभा बढ़ानेवाली

स्त्री कवियित्रियोंकी इतनी संख्या है। इनकी कविताओंको संग्रह कर निर्मलजीने अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है। निर्मलजीकी यह साहित्य सेवा विशेष रूपसे उल्लेखनीय है, क्योंकि इनका संग्रह करनेमें उन्हें बड़ी खोज करनी पड़ी होगी। इस अन्वेषण, अध्यवसाय और साहित्यिक उद्योगके लिए हिन्दी-संसार उनका सदा आभारी रहेगा। 'स्त्री-कवि-कौमुदी'से पता लगता है कि भारतमें एक अद्भुत शक्ति है, जो अभी सुषुप्त अवस्थामें है। जिस समय स्वतन्त्र शिक्षा द्वारा उसकी जाग्रति होगी, साहित्य-क्षेत्रकी प्रतिभा दुगुनी-चौगुनी हो जायगी।

पुस्तकके आरम्भमें निर्मलजीने स्त्री-काव्य-साहित्यके ऐतिहासिक विकासका बड़ी विद्वत्ता और गम्भीरताके साथ सिंहावलोकन किया है। हम यहाँ उनकी भाषाके माधुर्य, लालित्य और रोचकताकी प्रशंसा न कर केवल इतना ही कहेंगे कि वे काव्यके अच्छे मर्मज्ञ हैं। उसके रसकी उन्हें परख है और उन्हें इस बातका ज्ञान है कि हमारे देशका काव्य किन-किन परिस्थितियोंमें होकर अपने वर्तमान रूपपर पहुँचा है। मीराँबाईसे महादेवी वर्मा तक जितनी प्रभाव-शालिनी कवियित्रियाँ हुई हैं, उनकी रचनाओंका इस पुस्तकमें वर्णन है। साथमें उनका परिचय भी दिया गया है, जिससे पाठकोंको उनकी विशेषताका ज्ञान हो जाय। स्त्रियोंकी साहित्य-सेवा बहुत ही आश्चर्यजनक है।

मिश्रबन्धु, बाबू श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानोंने अपने इतिहासोंमें इस विषयमें बहुत कम लिखा है। निर्मलजीने अपूर्व निर्मलताके साथ स्त्री-काव्यका हमें दिग्दर्शन कराया है। हमें आशा है कि महिला-समुदाय इससे प्रोत्साहित होकर साहित्य-भंडारकी उत्तरोत्तर वृद्धि करनेकी चेष्टा करेगा। इस भावी उन्नतिका श्रेय सबसे अधिक 'स्त्री-कवि-कौमुदी'के लेखकको ही रहेगा।

माध्यमिक कालमें, जब सूरदास, तुलसीदास, रहीम आदिका जन्म हुआ, ब्रजभाषाकी धूम थी। देशमें चारों और वैष्णवधर्मकी दुन्दुभी बज रही थी। भक्ति तथा शृंगारका ज़ोर था। यही विष्णु भगवानकी आराधनाके साधन थे। इस कालकी कविताओंमें इनकी पूर्ण झलक है। ब्रजभाषाकी कवितामें पद-लालित्य, रचना-सौन्दर्य, कल्पना-शक्ति उच्चकोटिके हैं।

आजकल खड़ी बोलीका अधिक प्रचार है, परन्तु इसमें ब्रजभाषाका-सा लालित्य और माधुर्य कहाँ? यों तो काव्यमें असली चीज़ भाषा नहीं, बल्कि कविकी भावुकता है। काव्यका बढ़िया-घटिया होना उसीपर निर्भर है, परन्तु ब्रजभाषाका रस हृदयग्राही है। वह शीघ्र प्रभाव डालता है। अधिकांश जनता अब भी जिस प्रेमसे ब्रजभाषाकी कविता सुनती है, वैसे खड़ी बोलीकी नहीं। सम्भव है कि ब्रजभाषाके सम्बन्धमें हमारी सम्मति नितान्त पक्षपातरहित न हो, क्योंकि वह हमारी मातृभाषा है; परन्तु यथार्थमें हमारा अनुभव ऐसा ही है। खड़ी बोलीमें कविता करनेवाले बहुतसे नवयुवक अंग्रेज़ी काव्यका अनुकरण करते हैं। कभी-कभी तो इस बोलीके काव्यमें इतनी अस्वाभाविकता दिखाई देती है, जितनी हैट, बूट, टाई और कालरसे अलंकृत भारतवासीकी वेश-भूषामें। विदेशी कवियोंका अनुकरण कवित्व-शक्ति नहीं है। बनावटी कल्पनाशक्ति द्वारा नीरस तुकबन्दीसे साहित्यके महत्वको बढ़ानेकी आशा करना व्यर्थ प्रतीत होता है। इसका यह आशय नहीं है कि खड़ी बोलीमें सुन्दर कविता हो ही नहीं सकती, परन्तु ब्रजभाषा अधिक मनोहर जान पड़ती है और उसकी कविता सुननेसे आनन्द प्राप्त होता है। ठाकुर गोपालसिंहकी पुस्तक 'माधवी'का परिचय लिखनेमें महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, जो ब्रजमंडलके निवासी नहीं हैं, कहते हैं कि मेरी समझमें नहीं आता कि जब ब्रजभाषा जैसी सुन्दर, मनोहारिणी भाषा मौजूद है, तब लोग क्यों खड़ी बोलीमें कविता करते हैं। इस वाद-विवादमें पड़नेसे हमें क्या प्रयोजन। हम तो जहाँ बढ़िया चीज़ मिलेगी, उसका आदर करेंगे। इस पुस्तकमें मीराबाई, ताज, शेख, चन्दकुँवरि बाई, ब्रजदासी, सहजोबाई, आदि देवियोंकी कृतियाँ उद्धृत की गई हैं। इनकी कविता

व्रजभाषामें है और भक्तिभावसे परिपूर्ण है। इनकी कृतियोंमें हिन्दू-मुसलमान धर्मोंका सम्पर्क और विचारोंका सम्मिश्रण है। मुसलमान स्त्रियाँ भी उसी प्रेमसे कृष्णकी आराधना करती हैं, जिस तरह हिन्दू स्त्रियाँ।

मीरा कहती है—

"मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
दूसरो न कोई साधो, सकल लोक जोई॥
भाई छोड्या बन्धु छोड्या, छोड्या सगा सोई।
साधु संग बैठ बैठ, लोक लाज खोई॥ मे०
भगत देख राजी भई, जगत देख रोई।
अँसुअन जल सींच सींच, प्रेम बेलि बोई॥ मे०
दधि मथ घृत काढ़ि लियो, डार दई छोई।
राणा बिषको प्यालो भेज्यो, पीय मग्न होई॥ मे०
अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई।
मीरा प्रभु लगन लागी, होनि होई सो होई॥ मे०"

सेखका नमूना देखिये:—

'जुग है कि जाम ताको मरम न जाने कोऊ,
बिरहीकी घरी और प्रेमीको जुग पल है॥
सेख प्यारे कहियो सँदेसो ऊधो हरि आगे,
व्रज बारियेको घरी-घरी घृत जल है॥
हाँसी नहीं ने सुकु उसासी देत जोग तन,
बिरह वियोग झार और दावानल है॥
[illegible] न खेले पग मेले न परे लौं जाय,
गिरि हू ते भारी यहाँ बिरह सबल है॥"

ताजका वाक्य और भी बढ़िया है:—

"सुनो दिलजानी, मेरे दिलकी कहानी तुम,
दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं॥
देव पूजा ठानी हूँ निवाज हूँ भुलानी तजे
कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं॥
स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्हे दिये,
तेरे नेह दागमें निदाग हो रहूँगी मैं॥
नन्दके कुमार कुरबान ताणी सूरत पे,
हूँ तो तुरकानी हिन्दुआनी हो रहूँगी मैं॥"

अधिकांश स्त्री-कवियोंकी कविताएँ व्रजभाषा ही में हैं। इनकी वाणी कोमल, मधुर और हृदयको प्रसन्न करनेवाली है। कहीं भक्ति और शृंगारकी झलक है, तो कहीं नीति, सद्धर्म और सदाचारकी महत्त्वपूर्ण शिक्षा। संसारका अनुभव है; मानव-जीवनकी लम्पटताकी तीव्रालोचना है; उपमा, अलंकारकी भी कमी नहीं। आधुनिक कवि अधिकांश १६वीं शताब्दीके हैं। इनकी कविता खड़ी बोलीमें है। इनमें तोरणादेवी शुक्ल, सुभद्राकुमारी चौहान, श्री० महादेवी वर्माकी कविताएँ उच्च कोटिकी हैं। 'झाँसीकी रानी' हृदयग्राही तथा ओजस्वी भाषामें एक क्षत्रिय वीरांगनाके हृदयका उद्गार है; उसके कुलाभिमान, अद्भुत वीरत्व तथा देश-प्रेमका प्रत्यक्ष नमूना है। श्री० महादेवी वर्माका स्थान भी आधुनिक कवियोंमें ऊँचा है। आपकी कविता कठिन है। साधारण मनुष्योंके लिए नहीं है। जिस प्रकार सूरदास, तुलसी, रहीम, मीरा, सहजोंको पढ़कर हृदय प्रभावान्वित होता है, वैसा इनकी कृतियोंको पढ़नेसे नहीं। इनके काव्यमें विश्वविद्यालयकी झलक है। विद्वत्ताकी अनिवार्य क्लिष्टता है, परन्तु भाव और भाषा दोनों ही निराले हैं। दोनोंका आनन्द वही लूट सकता है, जो काव्यके मर्मको जानता है। उदाहरण लीजिये:—

आँसू

"यहीं है वह विस्मृत संगीत, खो गई है जिसकी झंकार,
यहीं सोते हैं वे उच्छ्वास, जहाँ रोता बीता संसार;
यहीं है प्राणोंका इतिहास, यहीं बिखरे बसन्तका शेष,
नहीं जो अब आयेगा लौट, यही उसका अक्षय संदेश।
समाहित है अनन्त अज्ञान, यही मेरे जीवनका सार,
अतिथि! क्या ले जाओगे साथ, मुग्ध मेरे आँसू दो-चार?"

और लीजिये:—

जो तुम आ जाते एक बार

"कितनी करुणा कितने संदेश, पथमें बिछ जाते बन पराग,
जाता प्राणोंका तार तार, अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पद पखार।

हँस उठते पलमें आर्द्र नैन, धुल जाता ओठोंसे विषाद,
छा जाता जीवनमें वसन्त, लुट जाता चिर संचित विराग ;
आँखें देतीं सर्वस्व वार !''

इन कविताओंका आशय सरलतासे समझमें नहीं आ सकता। भाव श्रेष्ठ है, शैली अनुपम है, भाषा लालित्यपूर्ण है ; परन्तु हम जैसे अल्पज्ञोंके लिए यदि श्रीमतीजी सरल भाषामें भी अपने कुछ विचारोंको व्यक्त करतीं, तो बड़ा उपकार होता। यदि यह लेख कभी उनके दृष्टिगोचर हो, तो इसपर वे कृपया विचार करें। एक अंगरेज़ कवि लिखता है कि काव्य जीवनकी आलोचना है। यदि हम प्रार्थना करें कि यह आलोचना ऐसी हो, जिसका तारतम्य हम ग्रहण कर सकें, तो अनुचित न होगा।

पुस्तकके अन्तमें छोटी-छोटी बहुतसी कविताएँ दी हुई हैं, जिनसे हमारे महिला-मंडलके बौद्धिक विकासका पता लगता है। भगवान करे, हमारे साहित्य-गगन-मंडलके इन उज्ज्वल तारोंका प्रकाश निरन्तर बढ़ता रहे, और गाँव-गाँवमें श्री० महादेवी वर्मा जैसी विदुषी कवयित्रियाँ अपनी कृतियोंसे हमारे साहित्यिक भांडारकी वृद्धि करें और हमारे निरक्षर स्त्री-समाजके जीवनको सुखमय बनानेकी चेष्टा करें। कविका स्थान जीवन-संग्रामके हल्लेगुल्लेसे दूर है, परन्तु भारतीय स्थिति ऐसी है, जिसमें कवित्वका व्यावहारिक जीवनसे अधिकाधिक सम्बन्ध होना वांछनीय है।

'श्री कवि-कौमुदी' की बहुतसी खूबियाँ हैं, परन्तु त्रुटियोंका सर्वथा अभाव नहीं है। लेखक महोदयने अपनी भूमिकामें इन त्रुटियोंको जाननेकी इच्छा प्रकट की है, इसीलिए उनका यहाँ उल्लेख किया जाता है, छिद्रान्वेषणकी इच्छासे नहीं। निर्मलजीने ऐतिहासिक दृष्टिसे दो-एक भूलें की हैं, परन्तु कालिदासके शब्दोंमें—

''एकोहि दोषो गुण सन्निपाते
निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्कः।''

वे भूलें निम्न-लिखित हैं। आशा है द्वितीय संस्करणमें लेखक महोदय इन्हें ठीक कर देंगे—

(१) प्रवीणराय केशवदासकी प्रेमपात्री थी। निर्मलजी (पृ० ५३ पर) लिखते हैं—''भारतमें इस समय अकबरका राज्य था। प्रवीणरायको एक बार अकबरने अपने दरबारमें बुलाया और उसकी कविता सुनी।'' यह ग़लत है। केशवदास शाहजहाँके समयमें हुए, इसलिए प्रवीणरायका अकबरके दरबारमें जाना किसी किम्बदन्तीके आधारपर लिख दिया गया है।

(२) चम्पादेका वर्णन करते हुए (पृ० १३४-३७) निर्मलजी लिखते हैं—''वे जैसलमेरके राव लटरराजकी पुत्री और बीकानेरके राजा राजसिंहके भाई पृथ्वीराजकी रानी थीं।'' सं० १८१० (१७५३ ई०) पृथ्वीराजका समय माना जाता है। फिर आगे चलकर कहते हैं—''यह वही रानी है, जो नौरोज़के जल्सोंमें अकबरके चंगुलमें फँस गई थी और कटार निकालकर बादशाहकी छातीपर चढ़ बैठी थी।'' निर्मलजीकी तिथियोंको मानते हुए यह किस प्रकार हो सकता है। अकबर तो सन् १६०५ ही में मर गया। फिर नौरोज़की यह कथा भी कपोलकल्पित है। सिवा टाडके और कहीं नहीं पाई जाती। मुसलमान इतिहासकार कोई इसका समर्थन नहीं करता। बदाऊनी, जो बादशाहका बड़ा कट्टर विरोधी है, इस बातका ज़िक्र भी नहीं करता, और जैसुएट पादरी, जिसने बादशाहके बारेमें बहुतसी ऊटपटाँग बातें लिख मारी हैं, इसका उल्लेख करता है।

(३) पृ० २१पर निर्मलजी 'ताज' का वर्णन करते हुए लिखते हैं—''अनेक सज्जनोंका अनुमान है कि शाहजहाँ बादशाहकी बेगम ताजबीबी 'ताज' नामसे कविता लिखती थीं।'' यह कथन बिलकुल ग़लत है। शाहजहाँके विषयमें अब्दुलहमीद लाहौरी लिखता है कि उसे गाने-बजानेका शौक़ था और वह हिन्दी गीत भी गाता था, परन्तु मुमताज़महलके विषयमें तो किसीने नहीं लिखा कि वह कविता करती थी। ऐसी असत्य बातोंका गम्भीर पुस्तकोंमें समावेश न होना चाहिए।

(४) पृष्ठ ७५ में लिखा है कि लिवायमें महाराजा

भगवानदास एक सुप्रसिद्ध वीर पुरुष हो गये हैं। अकबर बादशाहने उन्हें कई बार अपने चंगुलमें फँसाना चाहा, किन्तु वे इस चक्करमें न आये। उन्होंने दो-चार स्थानोंपर अकबरका अपमान भी किया था, इससे अकबर बादशाहने उन्हें बाँका कहा। राजा भगवानदासका अबुलफ़ज़ल अक्सर ज़िक करता है। उनका नाम अकबरनामेमें सैकड़ों जगह आया है। वे अकबरके विश्वासपात्र थे। उन्हें ऊँचा ओहदा दिया गया था। नहीं मालूम, यह बात किस इतिहासके आधारपर लिखी गई है। राजा भगवानदासका बादशाहको यहाँ तक विश्वास था कि बेगमोंके भी वे कभी-कभी इनचार्ज कर दिये जाते थे। हाँ, उनसे बादशाहने एक बार दीन इलाही स्वीकार करनेके लिए कहा था, परन्तु उन्हें मना कर दिया। अपमानका लेख तो नहीं पाया जाता।

(५) पृ० २५६ पर श्रीं० गोपालदेवीके वर्णनमें हमें कुछ विज्ञापनकी झलक मालूम हुई। निर्मलजीने उनकी कविताके विषयमें कुछ न कहकर उनके वैद्यक-ज्ञानकी अधिक चर्चा की है। हमारी सम्मतिमें इतना ही कहना पर्याप्त था कि वे प्रयागकी प्रसिद्ध वैद्याओंमें से हैं। उनकी कविताके विषयमें अथवा साहित्यिक स्थितिके विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता थी।

(६) निर्मलजी गिरधर कविका वर्णन करते हुए कहते कि 'साँई' शब्दसे ऐसा मालूम होता है कि ये कुंडलियाँ उनकी स्त्रीकी लिखी हुई हैं। हिन्दी-साहित्यमें किम्वदन्तियाँ बड़ी शीघ्रतासे मान ली जाती हैं, और लेखकगण जो कुछ पाते हैं, उसे अपनी पुस्तकोंमें लिख देते हैं। ऐसा न होना चाहिए। अप्रमाणित बातें लिखना साहित्यके उन्नत होनेमें बाधा डालती हैं।

ऐसी ही अन्य कतिपय अशुद्धियाँ और सन्देह उत्पन्न करनेवाले स्थल हैं, जिनका यहाँ स्थानाभावके कारण वर्णन नहीं हो सकता। हमें आशा है कि निर्मलजी इनपर विचार करेंगे और जो त्रुटियाँ रह गई हैं द्वितीय संस्करणमें उन्हें पूरा कर देंगे। यह सब होते हुए भी 'स्त्री-कवि-कौमुदी' अपने ढंगकी निराली पुस्तक है। स्त्री-समाजके लिए यह कितनी उपयोगी होगी कि कहनेकी आवश्यकता नहीं। इससे स्त्री-शिक्षाको प्रोत्साहन मिलेगा। इस दीन-हीन भारतमें आजकल भी कवित्व-शक्ति मौजूद है। देहातोंमें अनपढ़ स्त्रियाँ आज भी ऐसे-ऐसे गीत बनाती हैं, जिनमें कल्पना-शक्ति, भावुकता, अलंकारकी कमी नहीं, परन्तु शिक्षाके अभावके कारण भारतीय जनताका आधा भाग मूक हो रहा है। न मालूम कितनी शक्तिका, साधन न मिलनेके कारण, ह्रास हो गया। पर्दा, भूख, बाल्य विवाह, प्रसव पीड़ा, शिक्षाका अभाव—ये ही हमारे स्त्री-समाजकी दुरवस्थाके प्रधान कारण हैं! ऐसी दशामें निर्मलजीकी पुस्तकसे विशेष लाभ होनेकी सम्भावना है।
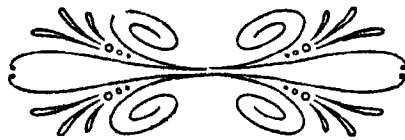
गणेशजीकी स्मृतिमें

श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी

सन् १९०६ में, अबसे कोई २४-२५ वर्ष पहले, जब मैं नागपुरमें स्वर्गीय पं० माधवराव सप्रेके साथ हिन्दीकी पहली राष्ट्रीय ग्रन्थमाला 'हिन्दी-ग्रन्थमाला' और हिन्दीके पहले राष्ट्रीय पत्र 'हिन्दी-केसरी' में काम करता था, कानपुरके फीलखाना मुहल्लेके कोनेमें एक छोटासा 'विद्यार्थी', जिसकी अवस्था उस समय मुश्किलसे पन्द्रह वर्षकी होगी, अपनी प्यारी मातृभूमिकी स्वतन्त्रताके विषयमें विचार करने लगा था। बंग-भंगका आन्दोलन उन दिनों ज़ोरोंपर था। स्वर्गीय ऋषिकल्प दादाभाई नौरोजीने सन् १९०६ की कलकत्तेकी कांग्रेसमें पहले-पहल राष्ट्रपतिकी हैसियतसे अपने भाषणमें 'स्वराज्य' शब्दका उच्चारण करके भारतीय जनताका ध्यान इस ओर दिलाया था कि अब कांग्रेसको अन्य सब छोटी-मोटी बातोंको छोड़कर 'स्वराज्य' प्राप्त करनेका ही आन्दोलन करना चाहिए; क्योंकि जब तक स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा, भारतकी पराधीनतामें बंग-भंगके समान दुर्घटनाएँ होती ही रहेंगी। 'स्वराज्य' के आन्दोलनके साथ ही साथ उसके प्राप्त करनेके शस्त्र 'स्वदेशी और बायकाट' का प्रस्ताव भी पहले-पहल इसी कांग्रेसमें निश्चित हुआ था। उस समयके तीन प्रसिद्ध नेता "लाल-बाल-पाल"—स्वर्गीय लालाजी, लोकमान्यजी और बाबू विपिनचन्द्र पाल सम्पूर्ण भारतमें स्वराज्य और स्वतन्त्रताके आन्दोलनको ज़ोरोंके साथ अग्रसर कर रहे थे। उसी समय हमारा उपर्युक्त छोटा-सा विद्यार्थी—हमारे प्रान्तका इस समयका सबसे बड़ा, देखनेमें सबसे छोटा, पर कर्मशीलतामें सबसे बड़ा नेता—राष्ट्रीय भावनाओंसे अनुप्राणित हो रहा था।

मैं भी कानपुरका ही था, इसलिए नागपुरमें बैठे हुए भी इस विलक्षण विद्यार्थीकी ओर मेरा विशेष ध्यान गया था। यह चौदह-पन्द्रह वर्षका विद्यार्थी नागपुरके 'हिन्दी-केसरी' का नियमित रूपसे पाठक था। उस समय मुझे इस विद्यार्थीका पत्र-मात्रसे परिचय हुआ था। वास्तवमें उसके विशाल हृदयमें देश-सेवाकी उमंगे उसी समयसे हिलोरें मार रही थीं। उस समय हिन्दीके राष्ट्रीय समाचारपत्रोंमें 'हिन्दी-केसरी' की धूम थी। हिन्दी पढ़नेवालोंमें लोकमान्यका यह पत्र राजनैतिक विचारक्रान्ति उत्पन्न कर रहा था, परन्तु लगभग दो ही ढाई वर्ष तक चलकर सरकारका कोपभाजन बनकर इस पत्रको बन्द हो जाना पड़ा। इसके बन्द हो जानेसे मैं अपने घर कानपुरकी ओर आया। लगभग सन् १९०९ की बात है। उस समय कानपुरमें मेरे ठहरनेके स्थान—गिलिश बाज़ारमें पं० रामप्रसाद मिश्रका मकान या पटकापुरमें बा० नारायणप्रसाद अरोड़ा बी० ए० अथवा स्वामी सत्यदेवकी 'सत्य-ग्रन्थमाला' का दफ्तर था। मिश्रजी, अरोड़ाजी और स्वामी सत्यदेवजी उस समय कानपुरमें कुछ नवीन राष्ट्रीय भावोंकी जागृति अपनी-अपनी तौरपर कर रहे थे। साहित्यका मुख्य केन्द्र शहरमें राय देवीप्रसाद पूर्णका कमरा और शहरसे बाहर जुहीमें आचार्यप्रवर पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' सम्पादकका निवासस्थान था। कर्मयोगी युवक सुन्दरलालजी भी प्रयागमें राष्ट्रीय भावनाओंका केन्द्र बनाकर 'कर्मयोगी' समाचारपत्र निकालनेके उद्योगमें थे। कानपुरके महाशय काशीनाथ खत्री भी उस समय एक उठते हुए नवयुवक थे, जो शिक्षा-प्रचार तथा अन्य कार्योंके द्वारा देश-सेवा करनेका उत्साह दिखला रहे थे। कर्मवीर सुन्दर-लालजी कानपुरमें उस समय उन्हींके यहाँ ठहरते थे। मेरी

मुलाक़ात सन् १९१० के लगभग पहले-पहल सुन्दरलालजीसे यहीं हुई थी। इन नवयुवकोंके सिवा क्राइस्ट चर्च कालेजका एक छात्र भी उस समय कानपुरमें देश-सेवाके भावोंको लेकर उठ रहा था। उनका नाम पं० वेंकटेशनारायण तिवारी था। इस समय उन्हें सब लोग जानते हैं। पं० शिवनारायण मिश्र तो गणेशजीके साथी ही थे। इनके सिवा डा० मुरारीलाल और डा० जवाहरलाल कानपुरमें उस समय समाज-सुधार (सोशल रिफार्म) के कुछ कार्य कर रहे थे।

इसी समयके लगभग एक बार मैं कानपुरके पटकापुर मुहल्लेमें एक सार्वजनिक सभामें सम्मिलित हुआ था। सभा उठनेपर हम दस-पाँच नवयुवक वहाँ खड़े रह गये। उन्हींमें एक तेजस्वी नवयुवक शायद केसरिया शिरोभूषण पहने अपनी निराली ठवनसे खड़ा हुआ अपनी शान और आनबानसे हम सभीको प्रभावित कर रहा था। यह नवयुवक अभी शैशव और युवा अवस्थाकी सीमापर था। थोड़ी-थोड़ी रेख भीन रही थी। चेहरेमें और नेत्रोंमें एक अपूर्व उत्साह और तेज झलक रहा था। इस नवयुवकने मेरा ध्यान स्वभावतः ही अपनी ओर आकर्षित किया। मैंने एक मित्रसे पूछा—"ये कौन हैं ?" उन्होंने कहा—"गणेशशंकर विद्यार्थी।" हम दोनोंका प्रत्यक्ष पहला परस्पर परिचय यहीं हुआ। उस समय कानपुरकी यह नवयुवक-मंडली कानपुरसे एक राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र निकालनेके विचारमें थी, और महाराणा प्रतापके नामपर पत्रका नामकरण भी 'प्रताप' इन लोगोंने आपसमें निश्चित कर लिया था। अपना यह विचार उन नवयुवकोंने मुझसे भी प्रकट किया। मैंने उस शुभ विचारका हृदयसे अभिनन्दन किया, परन्तु उनका यह विचार उपर्युक्त घटनाके लगभग तीन वर्ष बाद कार्यरूपमें परिणत हुआ।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि विद्यार्थीजीको बालपनसे ही अपनी प्यारी मातृभूमिकी सेवा करनेकी उमंग थी, और उस सेवामें पत्र-सम्पादक और एक राष्ट्रीय लेखक बननेकी महत्त्वाकांक्षा भी उनके हृदयमें सन् १९०६ के लगभग उत्पन्न हो चुकी थी। महाराष्ट्र-साधु तुकारामने कहा है—"सत्य संकल्पका दाता भगवान है और वही सर्व मनोरथ पूर्ण करता है।" भगवानकी कृपासे पूज्यवर आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीसे उस समय आपका परिचय हो गया था। द्विवेदीजी कानपुर शहरसे बाहर जुहीमें रहकर 'सरस्वती' सम्पादनका कार्य किया करते थे। होनहार नवयुवकोंको उत्साहित करके साहित्यके कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण करना और अपनी कृपाका अवलम्ब देकर उनको उन्नतिके शिखरपर चढ़ाते रहना द्विवेदीजी महाराजका सदैवसे ही व्रत रहा है। आपने अपने सम्पादन-कालमें सैकड़ों नवयुवक गद्य और पद्य-लेखकोंको आगे बढ़ाया, और उनको साहित्य और राष्ट्रके विशाल मैदानमें लाकर खड़ा कर दिया। उस नवयुवक-मालिकामें श्री गणेशशंकर विद्यार्थीको 'सुमेरुमणि' कहना चाहिए। विद्यार्थीजीका यह सौभाग्य ही था कि जहाँ अन्य नवयुवकोंको आचार्य द्विवेदीजीसे दूर रहकर हिन्दी लिखनेकी शिक्षा और उत्तेजना मिल रही थी, वहाँ विद्यार्थीजीको स्वयं आचार्यके चरणोंमें बैठकर हिन्दी लिखनेके अभ्यासका अवसर प्राप्त हुआ था। सन् १९०८ और १९०९ के लगभग आचार्य द्विवेदीजी विद्यार्थीजीसे अपने 'सरस्वती' सम्पादनमें कुछ सहायता ले रहे थे। कुछ लेख गणेशजीके नामसे 'सरस्वती' में रहते थे। सम्भव है कि द्विवेदीजी 'विविध विषय' लिखने-लिखानेका भी कुछ काम विद्यार्थीजीसे लेते हों। सम्पादनकार्यमें प्रूफ संशोधनका प्रबन्ध करना भी एक बहुत कठिन कार्य है। आजकलके कई समाचारपत्रोंको उठाकर आप देखिये, प्रूफ-संशोधनकी ठीक-ठीक व्यवस्था न होनेके कारण लेखोंकी कैसी दुर्दशा दिखाई देती है। लाइनकी लाइन गायब हो जाती हैं, कहींकी लाइन कहीं पड़ जाती है और शब्दों तथा अक्षरोंके हेर-फेरसे और भी अनेक 'अर्थके अनर्थ' होते रहते हैं। द्विवेदीजी 'सरस्वती' के प्रूफकी बहुत सुन्दर व्यवस्था रखते थे। कामा-मात्राकी भी छोटीसे छोटी अशुद्धि उनको सह्य नहीं होती थी। अवश्य ही विद्यार्थीजीको भी सम्पादनकी इन

छोटी-मोटी सभी बातोंकी ट्रेनिंग आचार्य-चरणोंमें रहकर मिल रही थी।

परन्तु मैं पहले ही कह चुका हूँ कि गणेशजी और उनके कुछ नवयुवक मित्र कानपुरसे एक प्रभावशाली राष्ट्रीय पत्र निकालनेकी धुनमें थे, अतएव विद्यार्थीजी 'सरस्वती' की सहायक सम्पादकतामें बहुत दिन न रह सके। परन्तु आचार्य द्विवेदीजीकी छत्रछायामें रहकर थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा दिखलाकर बहुत अच्छी तरहसे हिन्दी लेख लिखना सीख लिया; और फिर अपने मुख्य उद्देश्यकी ओर अग्रसर हुए। 'प्रताप'के निकलनेमें अभी कुछ विलम्ब था, इसलिए विद्यार्थीजी 'अभ्युदय'के सम्पादकीय विभागमें आकर काम करने लगे। सन् १६११-१२ के लगभग विद्यार्थीजी 'अभ्युदय' में काम करते थे। उस समय मैं पूनेमें 'चित्रमयजगत्' का सम्पादन करता था। पहले-पहल 'अभ्युदय'में ही गणेशजीकी प्रतिभाशाली लेखनीका चमत्कार दिखाई दिया। उन दिनों 'अभ्युदय' के लेखों और टिप्पणियोंमें जान-सी आ गई थी। यहाँ भी विद्यार्थीजीको बहुत दिन तक रहनेका मौका नहीं मिला, परन्तु प्रयागमें रहकर उन्होंने उस समय राजनैतिक कार्यकर्ताओं और उस समयके नेताओंकी गतिविधिका सूक्ष्मतासे अध्ययन किया। उनके साथ, उस समयके अनुकूल, कार्य किया; और पं० कृष्णकान्त मालवीय, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० सत्यानन्द जोशी, पूज्यवर पं० बालकृष्ण भट्ट, कर्मवीर सुन्दरलालजी, श्री मंगलमणी सोख्ता, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल तथा अन्य अनेक साहित्यिक कार्यकर्ताओंसे प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किया, और अपने भावी जीवनके लिए अनुभव, राष्ट्रीय विचारोंकी प्रौढ़ता, समाचारपत्र-सम्पादन-विषयक पटुता तथा देशसेवाके मार्गकी कार्यक्षम प्रणाली इत्यादि बातें थोड़े ही दिनोंमें अपनी कुशाग्र बुद्धिके द्वारा ग्रहण कर लीं।

इधर विद्यार्थीजी अपने भावी जीवनकी तैयारी इस प्रकार कर रहे थे, उधर कानपुरमें उनके कुछ युवक मित्र 'प्रताप' निकालनेकी तैयारी कर रहे थे। अन्तमें शायद सन् १६१३ में बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा बी०ए० और पं० शिवनारायण मिश्र वैद्यने एक छोटेसे प्रेसकी तैयारी करके 'प्रताप' निकाल दिया। इस समय विद्यार्थीजी पं० कृष्णकान्त मालवीयकी देखरेखमें 'अभ्युदय' का सम्पादन कर रहे थे, इसलिए पहले-पहल 'प्रताप'के कुछ अंकोंका सम्पादन अरोड़ाजी इत्यादिने किया। फिर विद्यार्थीजी बहुत जल्द प्रयागसे कानपुर आ गये, और 'प्रताप' के सम्पादनका भार ग्रहण किया। यह सन् १६१३ की बात है। मैं भी उस समय पूनासे आगरा 'आर्यमित्र' में आ गया था। गणेशजीके 'प्रताप' में आनेपर मैंने बधाई-सूचक एक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी थी।

अब गणेशजीको अपने मनका कार्यक्षेत्र मिला, जिसके लिए वे आज चार-पाँच वर्षसे उत्सुकतापूर्वक प्रयत्नशील थे। जिस समय कानपुरमें गणेशजीने 'प्रताप'के सम्पादनका भार सम्हाला, उस समय हिन्दीमें राष्ट्रीय दलका कोई भी नाम लेने योग्य पत्र नहीं था। नागपुरका 'हिन्दी-केसरी' बन्द हो ही चुका था। सुन्दरलालजीका 'कर्मयोगी' भी कुछ दिन तक अपनी राष्ट्रीय छटा दिखलाकर बन्द हो गया था। अब गणेशजीने एक नवीन ही ढंगपर अपने राष्ट्रीय पत्रको चलाना शुरू किया। जिस पुराने ढर्रेपर हिन्दीके उस समयके समाचारपत्र चल रहे थे, उसी ढर्रे पर चलना उनको अभीष्ट नहीं था। उनकी सम्पादनशैली अपनी निजकी कल्पना थी। उन्होंने नवीन-नवीन स्तम्भ अपने पत्रमें खोल दिये। अग्रलेख, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, समाचार-संग्रहके अतिरिक्त 'गोलमालकारिणी सभा' की रिपोर्ट (राष्ट्रीय और साहित्यिक हास्यविनोद), किसानों और मजदूरोंका आन्दोलन, देशी राज्योंकी प्रजाका आन्दोलन, चम्पारनके निलहे गोरोंसे पीड़ित बिहारकी प्रजाका आन्दोलन, सर्वसाधारण जनताके ऊपर होनेवाले पुलिसके तथा अन्य अधिकारियोंके अत्याचार इत्यादि कई प्रकारके आन्दोलन अपने 'प्रताप' के द्वारा उन्होंने उठाये। इसके सिवा

भिन्न-भिन्न विषयोंके विशेषज्ञों द्वारा फुटकर भी बहुतसे लेख लिखाकर 'प्रताप' में निकालना शुरू किया। राष्ट्रीय कविताओंके लिए एक पृष्ठ अलग ही सुरक्षित कर दिया, और अनेक युवकोंको राष्ट्रीय कविताएँ लिखनेके लिए उत्साहित किया। 'प्रताप' के द्वारा जनतामें उन्होंने एक प्रकारकी खलबली उत्पन्न कर दी। चाहे सरकारी अधिकारियोंके अत्याचार हों, चाहे हमारे अपने निजके सामाजिक अत्याचार हों, गणेशजीने उनकी पोल खोलनेमें किसीके साथ रियायत नहीं की। यही कारण था कि 'प्रताप' जहाँ एक ओर प्रान्तके सरकारी अधिकारियोंकी आँखोंमें काँटेकी तरह चुभने लगा, वहाँ देशी राज्योंके शासनकर्ताओं और ताल्लुकेदारोंके हृदयमें भी यह शल्यकी तरह चुभने लगा। फलतः गणेशजीको 'प्रताप' के कारण दो-तीन बार जेलकी यातनाएँ भोगनी पड़ीं। कई देशी राज्योंमें 'प्रताप' का प्रवेश बन्द कर दिया गया। कई बार सरकारकी ओरसे पत्रसे जमानतें ली गईं। कई मानहानिके मुकदमे चलाये गये। दो-एक देशी नरेशोंने तो गणेशजीको अन्य प्रकारके भी प्रलोभन दिखाये, पर वह वीर अपनी नीतिसे तिलभर भी विचलित नहीं हुआ। सारांश यह कि गणेशजी अन्य पत्रकारोंकी तरह केवल 'अखबार-नवीस' ही नहीं थे, कि जो मामूली विषयोंपर लेख या खबरें छापकर ही छुट्टी पा लेते ; बल्कि वे एक प्रकारके 'एजीटेटर' थे, जो अपनी कलमके जोरपर जनतामें विचार-क्रान्ति उपस्थित करके एक प्रकारका गहरा 'एजीटेशन' या हलचल पैदा कर देते थे। जहाँ कहीं देशमें जनताका कोई गहरा आन्दोलन उपस्थित होता कि चट 'प्रताप' के द्वारा वे उस आन्दोलनको जोर पहुँचाने लगते थे। प्रत्येक वर्ष दशहरेपर 'प्रताप' के राष्ट्रीय अंक निकालकर हिन्दीवालोंमें विशेषांक निकालनेकी परिपाटी उन्होंने चलाई थी।

गणेशजीको नवयुवकोंसे बहुत प्रेम था। नवयुवकोंके वे जीवनप्राण थे। किंबहुना यदि यह कहा जाय कि 'गणेशशंकर विद्यार्थी'—और कुछ नहीं—नवयुवकोंका एक बड़ा-भारी समुदाय था, तो इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी। भारतके जिन-जिन प्रान्तोंमें हिन्दी भाषा बोली जाती है, सभी प्रान्तोंके नवयुवकोंपर उनका प्रभाव था। युक्तप्रान्त, बिहार, राजस्थान, मध्यभारत, मध्यप्रदेश और पंजाबके नवयुवकोंके कई दल गणेशजीको अपना नेता मानते थे, और समय-समयपर उनकी सम्मतियोंसे लाभ उठाते थे। राजनैतिक षड्यन्त्रकारी नवयुवकोंसे भी गणेशजीका बड़ा प्रेम था। यद्यपि वे स्वयं षड्यन्त्रकारी कभी नहीं थे, परन्तु षड्यन्त्रकारियोंसे पूरी-पूरी सहानुभूति रखते थे। वे स्वयं एक साहसप्रिय नवयुवक थे। अतएव षड्यन्त्रकारियोंके साहसको वे बुरा नहीं समझते थे, उनका विचार था कि जब देश क्रान्तिके मार्गसे गुजरता है, तब इस प्रकारके वीर, आत्मत्यागी और साहसी नवयुवकोंकी भी कुछ आवश्यकता देशको रहती ही है। कुछ वर्ष पहले महात्मा गान्धीके अहिंसावादपर उनका दृढ़ विश्वास नहीं था, और बातचीतमें अपनी शंका प्रकट भी कर देते थे ; पर अब तो वे भी दृढ़ अहिंसावादी हो चले थे। हाँ, जब कोई नवयुवक-मंडली राजनैतिक षड्यन्त्रमें बुरी तरह फँस जाती थी, तब उसको उबारनेका भी वे, गुप्त और प्रकट रूपसे, काफी प्रयत्न करते थे। जेलोंमें कई बार जब ऐसे नवयुवकोंने भूख हड़ताल शुरू की, तब उनके हृदयको बड़ा कष्ट हुआ, और भूख-हड़ताल तुड़वानेकी भी उन्होंने बड़ी कोशिशें कीं।

'प्रताप' निकालनेके कुछ महीने बाद शायद सन् १९१४में गणेशजी पं० शिवनारायणजी मिश्रके साथ चित्तौड़-यात्राको निकले थे। मार्गमें आगरेमें आप उतर पड़े, और मेरे ही घरपर ठहरे थे। उन दिनों आगरेमें मेरे आसपास एक युवक-मंडली जमा होती थी। पं० बदरीनाथ भट्ट बी०ए०, अध्यापक रामरत्नजी, झाँसीके बाबू वृन्दावनलाल वर्मा बी०ए० एल०-एल० बी०, बा० [illegible], देहरादूनके ठाकुर मनजीतसिंहजी राठौर, कानपुरके बाबू नवलकिशोर भरतिया, स्वर्गीय कविरत्न पं० सत्यनारायणजी, पं० मुरलीमनोहर दीक्षित बी०ए० एल-एल० बी० (कानपुर),

पंडित ठाकुरप्रसाद शर्मा एम०ए० एल-एल० बी०, पंडित मंगलदेव शर्मा, बा० सूर्यनारायण अग्रवाल बी०ए० तथा अन्य अनेक नवयुवक मेरे यहाँ जमा होते थे। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी भी कभी-कभी दर्शन दे जाते थे। गणेशजीके आनेका समाचार पाकर नवयुवक लोग जमा हो गये। इनमें से कई नवयुवकोंका आगे चलकर गणेशजीके साथ घनिष्ट सम्बन्ध और प्रेम हो गया। इनमें से अधिकांश युवक कालेजोंमें उस समय पढ़ते थे। गणेशजी जब चित्तौड़को चलने लगे, तब हमारी युवक-मंडलीमें से एक नवयुवक उनके साथ हो लिया। यह युवक श्रीकृष्णदत्त पालीवाल थे। पालीवालजी उस समय आगरा-कालेजमें एफ०ए०में पढ़ते थे, और मेरे घनिष्ट प्रेमियोंमें थे। पालीवालजीका और गणेशजीका यह परिचय इस प्रान्तके लिए बहुत ही हितकर हुआ। पालीवालजीने गणेशजीसे बहुत कुछ राष्ट्रीय स्फूर्ति प्राप्त की, और आज प्रान्तके एक अच्छे कार्य करनेवालोंमें हैं।

गणेशजी अपने ढंगके अकेले हिन्दी-लेखक और पत्र-सम्पादक थे। वे जो कुछ लिखते थे, उसमें अपना हृदय निकालकर रख देते थे। उनकी लिखी हुई लकीरें पढ़नेवालेके हृदयपर बिजलीकी-सी रेखा करती हुई चली जाती थीं। लेखनीमें गजबका ओज था। क्या भाव और क्या भाषा थी! भाषा तो उनकी अपनी निजकी चीज़ थी। वैसी भाषा लिखनेवाला अब कोई हिन्दीमें नहीं रहा। नये शब्द, नये मुहाविरे और नई शैली, जाने कहाँसे ढूँढ़कर लाये थे! वास्तवमें यह उनकी स्वाभाविक प्रतिभाका प्रभाव था। लेखनीकी तरह वाणीमें भी स्वाभाविक ओज था, जो उनके साधारण वार्तालापमें भी टपकता रहता था। यह थी हृदयकी सच्चाई, जो उनके लिखे हुए और बोले हुए अक्षरोंमें अभिमन्त्रित रहती थी।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि गणेशशंकर विद्यार्थीका व्यक्तित्व क्या था, नवयुवकोंका एक बड़ा-भारी समुदाय था। इस समुदायके अंग हिन्दी-भाषाभाषी प्रान्तोंमें फैले हुए थे, और उसका स्वरूप उनके केन्द्रस्थान कानपुरमें प्रत्यक्ष दिखाई देता था। गणेशजीने कानपुरके सार्वजनिक जीवनमें राष्ट्रीयताका प्राण संचारित किया था। जिस समय कानपुरमें गणेशजीका उदय हुआ, उस समय कानपुरमें राजनेतिक चर्चा बहुत कम थी। गणेशजीने वहाँके पुराने सार्वजनिक कार्यकर्ताओंमें नवीन जीवन फूँक दिया। साथ ही नये-नये नवयुवक कार्यकर्ता उत्पन्न होने लगे। इन नवयुवकोंने गणेशजीसे राष्ट्रीय स्फूर्ति प्राप्त की, और गणेशजीने उन नवयुवकोंको अपने आसपास संगठित करके, एक मंडल बनाकर, उनसे कार्य लेना शुरू किया। कानपुरमें आज अनेक नवयुवक भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय क्षेत्रोंमें कार्य करते हुए देखे जाते हैं। यह गणेशजीका ही प्रभाव है। बात यह है कि गणेशजी उन सार्वजनिक नेताओंमें नहीं थे, जो 'ऊँटपर चढ़कर बकरियाँ चराना चाहते हैं।' अपनेको बहुत ऊँचा समझते हैं, और जनतामें जो नवयुवक आगे आकर काम करना चाहते हैं, उनको पीछे रखकर—अथवा उनके उत्साहको कुचलते हुए—अपने नेतापनका बोझ जनताके ऊपर लादना चाहते हैं। ऐसे नेता अपने व्यक्तित्वकी उच्चताका मिथ्या आडम्बर रचते हैं, और उसी अपने आडम्बरपूर्ण ऊँचे अभिमानपर आरूढ़ रहकर जनतारूपी भेड़-बकरियोंको हाँकना चाहते हैं; पर गणेशजीका यह हाल नहीं था। उन्होंने जनताके अस्तित्वमें अपने अस्तित्वको मिला दिया था। "Plain living and high thinking" (जनताकी बराबरीपर रहना और विचार उनसे ऊँचे रखना) के वे मूर्तिमान अवतार थे। उनकी सादी रहन-सहन, सादी बोली-बानी और उच्च विचारोंमें गजबका आकर्षण था। इसके सिवा वे जो कुछ कहते थे, उसको हृदयसे अनुभव करते थे, और उसके अनुसार उनके कार्य भी देखे जाते थे। इन सब दिव्य बातोंका कानपुरकी नवयुवक-मंडलीपर बहुत प्रभाव पड़ा था, और यही कारण था कि उनके आसपास नवयुवक दल जमा हो गया था। उन नवयुवकोंमें वे सच्चाईकी स्फूर्ति भरते थे और उनको राष्ट्रीय कार्योंमें लगाते थे। कानपुरके कई पुराने कार्यकर्ता, जो अभी तक सामाजिक

सुधार या सोशल रिफार्मके ही मैदानमें कार्य करते थे, उनको भी गणेशजी खींच-खाँच करके राजनीतिके मैदानमें लाये और उनके दरजेको बढ़ा दिया। इसी प्रकार जिस किसी नवयुवकको उन्नतिशील देखा, उसीको उत्साहित करके आगे बढ़ाया।

कानपुरमें अमीर सेठ-साहूकारोंकी कमी नहीं है। इनमें से ऐसे बहुत-कम सौभाग्यशाली होते हैं, जिनका धन अच्छे कामोंमें खर्च होता है। निजके भोग-विलास और बेहूदा कामोंमें ये मूर्ख 'धन-पशु' अपना धन पानीकी तरह बहाया करते हैं। गणेशजीने कानपुरके कई धनिकोंको राष्ट्रीय कामोंमें धन खर्च करनेकी ओर झुकाया। कई धनिक नवयुवक उनके अनन्य भक्त और प्रेमी बन गये। बाबू चुन्नीलाल गगके मुक़ाबलेमें जब गणेशजी प्रान्तीय कौन्सिलके लिए कांग्रेसकी ओरसे खड़े हुए, तब गगजीकी ओरसे लगभग एक लाख रुपया चुनावकी लड़ाई लड़नेमें खर्च किया गया। गणेशजीकी ओरसे भी लगभग पचीस हज़ार रुपयेसे कम खर्च न हुआ होगा। गणेशजी तो बिलकुल निष्कांचन थे। यह सारी रक़म उनके धनिक नवयुवक मित्रोंने ही खर्च की। वास्तवमें चुनावकी यह लड़ाई गगजी और विद्यार्थीजीमें नहीं थी। विद्यार्थीजी तो चुनावमें खड़े होनेवाले भी नहीं थे, पर एक सिद्धान्तकी रक्षाके लिए मित्रोंके आग्रहसे खड़े हो गये थे। मैं उन दिनों कानपुर गया था और गणेशजीसे 'प्रताप' कार्यालयमें मिला था। तमाम शहरमें चुनावकी लड़ाईका तूफ़ान उठा हुआ था, परन्तु गणेशजी हिमालयकी तरह गम्भीर और अटल थे। सारी जनता ही उनकी ओरसे लड़ रही थी। एक धनिकके मुक़ाबले निष्कांचन देश-सेवककी वह एक अपूर्व विजय थी।

कहाँ तक लिखा जाय, गणेशजीके सम्बन्धकी अनेक बातें लिखनेको जी चाहता है। समय धीरे-धीरे बतलावेगा कि उनका व्यक्तित्व कैसा था। ऐसा पुरुषरत्न हम लोगोंके बीचसे इतनी जल्दी उठ गया! स्वप्न-सा दिखाई दे रहा है। गणेशजी मुझसे तीन-चार वर्ष छोटे होंगे। मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अपने सामने उनको इस लोकसे जाता हुआ देख रहा हूँ! महर्षि व्यासने महाभारतमें कहा है कि संसारमें मनुष्य-जीवन दो प्रकारके होते हैं—एक टिमरनी (तिन्दुक या तेंदुआ) की लकड़ीकी तरह कुछ ही समय जलकर अपने अपूर्व प्रकाशको फैला जाते हैं, और दूसरे धानकी भूसीकी तरह बहुत देर तक सुलगते रहकर धुआँ देते रहते हैं। इनमें से गणेशजीका जीवन प्रथम श्रेणीका था, जो थोड़े ही समयमें संसारको अपने दिव्य आलोकसे आलोकित करके चलते बने।

हमारे इस दुर्भाग्यमें भी यह परम सन्तोषकी बात है कि गणेशजीका यह बलिदान ऐसा अपूर्व हुआ है कि उसने उनको चिरकालके लिए अमर बना दिया। गणेशजी एक वीर सैनिककी तरह युद्धक्षेत्रमें धराशायी हुए—उस वीर सैनिककी तरह नहीं कि जो दूसरोंपर शस्त्र चलाता हुआ दूसरोंको मारता-काटता हुआ स्वयं वीरगतिको प्राप्त होता है, बल्कि दूसरोंको मृत्युसे बचाते हुए वे धारातीर्थमें पतन हुए हैं। दूसरोंको मारकर मरनेवालोंकी अपेक्षा दूसरोंको बचाकर अपनी आत्माको अर्पण करना कहीं अधिक श्रेष्ठ कार्य है, इसलिए गणेशजीकी सद्गतिके लिए क्या कहना है। सचमुच ही इस राष्ट्रके लिए उनका यह अमर बलिदान है।

गणेशजीके ज्येष्ठ पुत्र चि० हरिशंकर विद्यार्थी एक होनहार नवयुवक हैं। आशा है कि वे अपने पूज्य पिताके नामको और भी उज्ज्वल करेंगे। गणेशजी अपनी विधवा धर्मपत्नीके साथ तीन कन्याएँ और तीन पुत्र छोड़ गये हैं। दो कन्याएँ क़रीब-क़रीब विवाह योग्य हैं। गत वर्ष गणेशजी जब प्रयाग आये थे, तब अपनी बड़ी कन्याके लिए वरकी खोजमें थे। वे निष्कांचन थे, अतएव विवाहमें दिक़्क़तें पड़ रही थीं। इतनेमें सत्याग्रहका युद्ध शुरू हो गया, और गणेशजी उसीमें लग गये। सच तो यह है कि उनका जीवन जनताके लिए था। घर-गृहस्थीकी अनेक चिन्ताएँ रहते रहनेपर भी सार्वजनिक चिन्ताओंमें ही उनका सब समय जाता था। सोते-जागते, उठते-बैठते, चौबीसों घंटे वे देश और समाजके कल्याणकी ही चिन्तामें रहते थे, और उसीके अर्थ अपने तन-मन-धन सबको अर्पण कर दिया। धन्य हैं गणेशजी!

मणि-हीन

('मणि-हारा')

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

उस टूटे-फूटे पुराने घाटके पास मेरा बोट बँधा था। सूर्य अस्त हो चुका था।

बोटकी छतपर माँझी नमाज़ पढ़ रहा था। पश्चिमके अंगार-से धधकते हुए लाल आकाश-पटपर उसकी नीरव उपासना क्षण-क्षणमें मानो तसवीर-सी खींचती जा रही थी। स्थिर तरंगहीन नदीके जलके ऊपर भाषातीत असंख्य वर्णच्छटाएँ देखते-देखते फीकी लिखावटसे गहरी लिखावटमें, सुनहले रंगसे फौलादके रंगमें, एक आभासे दूसरी आभामें समाई जा रही थीं।

उस टूटे-फूटे बंगले और लटकते हुए बरंडेवाले बूढ़े मकानके सामने मैं बरगदकी जड़से फटे हुए उस घाटपर झींगुरोंकी झंकारसे मुखरित सन्ध्याके समय अकेला बैठा हुआ था। मेरी सूखी आँखोंके पलक भींगना ही चाहते थे, इतनेमें सिरसे लेकर पैर तक एकाएक चौंककर मैंने सुना—"आप कहाँसे आ रहे हैं?"

देखा, वह भला आदमी स्वल्पाहारसे दुबला-पतला और भाग्यलक्ष्मी द्वारा अत्यन्त अनादृत या तिरस्कृत हुआ है। बंगालके अधिकांश विदेशी नौकरोंकी जैसी एक तरहकी बहुत समयसे जीर्णोद्धार-हीन शकल-सूरत हुआ करती है, इसकी भी वैसी ही थी। धोतीके ऊपर एक मैली तिलौंछी आसामी अंडीकी चपकन—जिसके बटन खुले हुए थे—पड़ी थी; मानो दफ्तरसे काम करके हाल ही लौट रहा हो। और जिस समय कि उसे कुछ जलपान करना चाहिए था, उस समय अभागा नदी किनारे सिर्फ सन्ध्याकी हवा खाने आया है।

आगन्तुक सीढ़ियोंपर मेरे पास बैठ गया। मैंने कहा—"मैं राँचीसे आ रहा हूँ।"

"क्या काम करते हैं?"

"व्यापार करता हूँ।"

"क्या व्यापार?"

"हड़, रेशमके कोये और लकड़ीका काम होता है।"

"क्या नाम है?"

कुछ ठहरकर एक नाम बता दिया; मगर वह मेरा नाम न था।

उस भले आदमीका कौतूहल दूर न हुआ। उसने फिर पूछा—"यहाँ किस लिए आना हुआ?"

मैंने कहा—"आब-हवा बदलने।"

उसको कुछ आश्चर्य हुआ। कहने लगा—"अजी साहब, लगभग मैं छै सालसे यहाँकी हवा और उसके साथ-साथ रोज़ पन्द्रह ग्रेन कुनैन खा रहा हूँ; मगर कुछ भी फर्क नहीं मालूम हुआ।"

मैंने कहा—"यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि राँचीकी हवामें इस हवामें काफी फर्क है।"

उन्होंने कहा—"जी हाँ, काफी।—यहाँ ठहरेंगे?"

मैंने घाटके सामनेवाला पुराना खंडहर मकान दिखाकर कहा—"इस मकानमें।"

शायद उनके मनमें कुछ सन्देह हुआ कि मुझे इस खंडहर मकानमें गड़े हुए किसी गुप्तधनका पता लग गया है। परन्तु इस विषयमें उन्होंने कोई तर्क नहीं उठाया,—सिर्फ, आजसे पन्द्रह वर्ष पहले उस अभिशाप-ग्रस्त मकानमें जो घटना हुई थी, उसीका विस्तृत वर्णन सुनाने लगे।

यहाँके वे स्कूल-मास्टर हैं। उनके क्षुधा और रोगसे दुर्बल चेहरेपर, गंजी चाँदके नीचे, बड़ी-बड़ी दो आँखें अपने

कोटरके भीतरसे अस्वाभाविक उज्ज्वलतासे जल रही थीं। उन्हें देखकर अंग्रेज़-कवि कोलरिज-कृत प्राचीन नाविककी बात याद आ गई।

मांझी नमाज़ खतम करके रसोई बनानेमें लग गया। सन्ध्याकी अन्तिम आभा आकाशमें विलीन हो गई, और घाटके सामनेवाला अन्धकारमय सुनसान मकान प्रेत-मूर्तिकी तरह निस्तब्ध खड़ा रहा।

स्कूल-मास्टर कहने लगा—"मेरे इस गाँवमें आनेसे लगभग दस वर्ष पहले इस मकानमें फणिभूषण साहा रहा करते थे। उनके ताऊ दुर्गामोहनके कोई लड़का न था। उनका खूब बड़ा-चढ़ा रोज़गार था। धन-दौलत और जायदाद भी काफी थी। उनके मरनेके बाद उन सबका मालिक हुआ फणिभूषण।

मगर फणिभूषणमें एक दोष था, उनपर नये ज़मानेका भूत सवार हो गया। पढ़े-लिखे शिक्षित आदमी थे। जूता-समेत साहबके दफ्तरमें घुसकर एकदम असली अंग्रेज़ी बोलते थे। उसपर रखा ली दाढ़ी, इससे अंगरेज़ सौदागरोंके ज़रिये उनकी जो कुछ तरक्की होती भी, सो भी रुक गई। वेशभूषामें वे आधुनिक बंगाली-से लगते थे।

ये तो था ही, घरमें एक और आफत आ जुटी। उनकी स्त्री थीं सुन्दरी। एक तो कालेजकी पढ़ी-लिखी, उसपर सुन्दरी; भला, फिर पुराने ज़मानेको कौन पूछे। और और तो क्या, ज़रा सी तबीयत खराब होते ही असिस्टेन्ट सर्जन बुलाया जाता था। अशन-वसन-भूषण भी ज़मानेके साथ-साथ बढ़ते ही चले गये।

मैं समझता हूँ, आप ज़रूर विवाहित होंगे, इसलिए आपसे तो यह कहना ही फ़िज़ूल है कि साधारणतः स्त्रियाँ कच्चे आम, चरपरी मिर्च और कड़े पतिको पसन्द करती हैं। जो अभागा मर्द अपनी स्त्रीके प्रेमसे वंचित है, वह बदसूरत या निर्धन हो, सो बात नहीं; असलमें वह अत्यन्त निरीह—भोला-भाला होता है।

अगर आप यह पूछें कि क्यों ऐसा हुआ, तो इस विषयमें मैंने बहुतसी बातें सोच रखी हैं। जैसी जिसकी प्रवृत्ति और शक्ति होती है, उसकी चर्चा किये बिना वह सुखी नहीं होता। हरिन अपने सींग पैनानेके लिए मज़बूत पेड़का कड़ा तना ढूँढ़ता है, कदलीवृक्षसे सींग घिसकर उसे आराम नहीं मिलता। जबसे नर और नारीका भेद हुआ है, तभीसे स्त्रियाँ दुर्दान्त पुरुषोंको तरह-तरहकी तरकीबोंसे फुसलाकर वश करनेकी विद्याकी चर्चा करती आ रही हैं। जो पति अपने-आप ही वश होकर बैठ रहते हैं, उनकी स्त्रियाँ बिलकुल बेकार हो जाती हैं; और उन्हें जो अपनी नानियोंसे सैकड़ों-हज़ारों-लाखों वर्षोंके पैनाये हुए उज्ज्वल वरुणास्त्र, अग्निबाण और नागपाश आदि मिले थे, वे भी सब व्यर्थ और निष्फल हो जाते हैं।

स्त्री चाहती है कि पुरुषको फुसलाकर अपनी शक्तिसे प्रेम वसूल करे,—पति अगर भला आदमी बनकर उतना भी उसे मौक़ा न दे, तो समझना चाहिए कि उसकी तक़दीर ही खराब है, और स्त्रीकी तो उससे भी बढ़कर!

नई सभ्यताके शिक्षामन्त्रसे पुरुषने अपनी स्वभाव-सिद्ध विधाताकी दी हुई महान् बर्बरता खोकर आधुनिक दाम्पत्य-सम्बन्धको इतना ढीला कर डाला है। अभागा फणिभूषण आधुनिक सभ्यताकी मशीनसे बहुत भला आदमी बनकर निकला था,—न तो व्यापारमें वह कुछ कर-धर सका, और न दाम्पत्यमें ही उतना सुखी हुआ।

फणिभूषणकी स्त्री मणिमालिकाको बिना कोशिशके प्यार, बिना आँसू बरसाये ढाकेकी साड़ी और बिना दुर्जय अभिमानके बाजूबंद मिल जाया करते थे। इस तरह उसकी नारी-प्रकृति और साथ ही उसका प्रेम निश्चेष्ट हो गया था। वह सिर्फ लेती ही थी, देती कुछ न थी! उसका भोला-भाला और निर्बोध स्वामी, समझता था कि दान ही शायद प्रतिदान पानेका उपाय है। बिलकुल उलटा समझ रखा था बेचारेने!

इसका नतीजा यह हुआ कि पतिको वह अपने लिए ढाकेकी साड़ी और बाजूबंद देनेवाली मशीन-सी समझती थी,—मशीन भी ऐसी अच्छी कि कभी किसी दिन उसके पहियेमें एक बूंद तेल तक देनेकी ज़रूरत नहीं हुई।

फणिभूषणका जन्मस्थान था फूलबेड़े, और व्यापार करता था यहां। काम-काजके लिए ज़्यादातर यहीं उसे रहना पड़ता था। फूलबेड़ेमें उसकी मा नहीं थी, फिर भी बुआ, मौसी आदि और पाँच जनी तो थीं ही। पर फणिभूषण बुआ और मौसी आदिके उपकारके लिए ही खास तौरसे सुन्दरी स्त्रीको ब्याहकर घर लाया हो, सो बात नहीं। इसलिए उसने स्त्रीको उन पाँच जनियोंके पाससे लाकर इस कोठीमें अकेले अपने पास ही रखा; परन्तु और और अधिकारोंसे स्त्री-अधिकारमें भेद यह है कि स्त्रीको पाँच जनियोंके पाससे अलग करके अकेले अपने पास रखनेसे ही हर हालतमें उसके मनपर अधिक अधिकार होगा ही, ऐसा कुछ नियम नहीं।

स्त्री उसकी ज़्यादा बोलती न थी, अड़ोस-पड़ोसकी स्त्रियोंके साथ भी वह कम मिलती-जुलती थी। व्रत-उपवासके मौक़ेपर ब्राह्मणको खिलाना, या वैष्णवी भिखारिनको दो पैसे देना, यह उससे कभी नहीं हुआ। उसके हाथसे कोई चीज़ नष्ट नहीं हुई; सिर्फ पतिके प्यारको छोड़कर और जो कुछ उसे मिला है, सब सहेज-सहेजकर रखती गई है। आश्चर्य तो इस बातपर है कि मानो उसने अपनी अपूर्व यौवन-श्रीमें से भी लेशमात्र अपव्यय नहीं होने दिया। लोग कहते हैं कि चौबीस वर्षकी उमरमें भी वह चौदह वर्षकी-सी कच्ची-कोमल दीखती थी। जिनका हृत्पिंड बर्फ़का पिंड है, जिनके हृदयमें प्रेमकी जलन-तड़पनके लिए स्थान नहीं, वे शायद बहुत दिनों तक ताज़े रहते हैं, वे कंजूसकी तरह भीतर और बाहरसे अपनेको सहेज-सहेजकर रख सकते हैं।

अति-पल्लवित सतेज लताकी तरह विधाताने मणिमालिकाको निष्फल बनाये रखा, उसे सन्तानसे वंचित किया। अर्थात् उसे ऐसी कोई चीज़ नहीं दी, जिसे वह अपने लोहेके सन्दूक़के मणि-माणिक्योंसे भी बढ़कर समझ सकती, जो वसन्त-प्रभातके नवीन सूर्यकी तरह अपने कोमल उत्तापसे उसके हृदयके बर्फ़-पिण्डको गलाकर घर-गिरस्तीपर एक स्नेह-धारा बहा देती है।

परन्तु मणिमालिका काम-काजमें मज़बूत थी। कभी भी उसने नौकर-चाकर ज़्यादा नहीं रखे। जिस कामको वह ख़ुद कर सकती है, उसके लिए कोई दूसरा तनखा ले जाय, यह उससे सहा नहीं जाता था। वह किसीके लिए सोचती नहीं थी, न किसीसे प्रेम करती थी, सिर्फ काम करती थी और चीज़ें जोड़ा करती थी; इसीलिए उसे रोग, शोक, ताप कुछ भी नहीं था। अपरिमित स्वास्थ्य, अविचलित शान्ति और इकट्ठी की हुई सम्पदामें वह अपने बूतेपर रहती थी।

अधिकांश पतियोंके लिए यही काफी है; काफ़ी क्यों, दुर्लभ है। शरीरमें 'कमर' नामकी एक चीज़ है, कमरमें दर्द हुए बिना उसकी याद नहीं आती,—घरकी आश्रय-स्वरूपिणी स्त्री नामकी जो एक वस्तु है, प्रेमकी ताड़नासे पद-पदपर और चौबीसों घंटे उसका अनुभव करनेका नाम 'घर-गिरस्तीकी कमरमें दर्द' है। अत्यधिक पातिव्रत्य स्त्रीके लिए गौरवका विषय हो सकता है, मगर पतिके लिए वह आरामकी चीज़ नहीं,—मेरी तो यही राय है।

भला आप ही बताइये, स्त्रीका प्रेम ठीक कित[illegible] मिला, ठीक कितना कम पड़ा, बहुत ही बारीक़ीसे दिन[illegible] काँटेपर उसकी तौल करना क्या मरदोंका काम है! स्त्री[illegible] अपना काम करे, हम अपना काम करें—घर-गिरस्तीका मामूली हिसाब तो यही है। अव्यक्तमें कितना व्यक्त है, भावमें कितना अभाव है, स्पर्शमें भी कितना इशारा है,—अणु-परमाणुओंमें कितनी विशालता है,—प्रेम-सम्बन्धी इतनी सूक्ष्म बोधशक्ति विधाताने मनुष्यको नहीं दी—देनेकी आवश्यकता ही नहीं हुई। हाँ, पुरुषोंके तिल-मात्र अनुराग विरागके लक्षण लेकर स्त्रियां उसे अलग तौलने बैठ जाती हैं। बातमेंसे असल भावको, और भावमेंसे असल बातको वे चीर-चीरकर धुन-धुनकर निकाला करती हैं। कारण, पुरुषका

प्रेम ही स्त्रियोंका बल है—उनके जीवन-व्यवसायका मूलधन है। इसीकी हवा देखकर वे ठीक समयपर ठीक तरहसे पाल घुमाती रहें, तो उनकी तरणी तर जाती है, इसीलिए विधाताने प्रेम तौलनेका यन्त्र स्त्रियोंके हृदयमें लटका दिया है, पुरुषोंको नहीं दिया।

मगर अब तो, विधाताने जो चीज़ नहीं दी, आजकल पुरुषोंने उसे भी प्राप्त कर लिया है। कवियोंने विधाताको ठेंगा दिखाकर यह दुर्लभ मशीन—यह दिग्दर्शन-यन्त्रशलाका—बिना विचारे सर्वसाधारणके हाथमें दे दी है। विधाताको मैं दोष नहीं देता, उन्होंने स्त्रियोंको काफ़ी भिन्न रूपमें तैयार किया है; मगर सभ्यतासे तो अब वह भेद भी नहीं रहता; अब स्त्रियाँ भी पुरुष हो रही हैं, और पुरुष भी स्त्री हो रहे हैं। इसलिए घरमेंसे शान्ति और सिलसिला तो अब जाता ही रहा। अब तो शुभ-विवाहसे पहले, पुरुषको ब्याहा जा रहा है या स्त्रीको, इस बातका किसी तरह निर्णय न होनेसे वर और कन्या दोनों ही का मन आशंकासे धुकुर धुकुर करता रहता है।

आप नाखुश मालूम होते हैं!—अकेला पड़ा रहता हूँ; स्त्री द्वारा निर्वासित हूँ मैं, इससे घर-गृहस्थीके अनेक गूढ़ तत्त्व मनमें उदित होते रहते हैं,—विद्यार्थियोंके सामने कहने लायक यह विषय नहीं है, इसीसे प्रसंग पाकर आपसे कहे हूँ, विचारकर देखियेगा।

कहनेका मतलब यह कि यद्यपि रसोईमें नमक कम न होता था और न पानमें चूना ही ज्यादा होता था, फिर भी फणिभूषणका हृदय क्या-जाने-क्या-नामक एक दुःसाध्य उपद्रवका अनुभव करता रहता था। स्त्रीका कोई दोष नहीं था, कोई ग़लती नहीं थी, फिर भी उसकी तरफ़से पतिको कोई सुख नहीं था। वह अपनी सहधर्मिणीके शून्य-गह्वर हृदयको लक्ष्य करके बराबर हीरा-पन्ना-मोती-जवाहरातके गहने छोड़ता रहता, परन्तु लक्ष्यभ्रष्ट होकर वे जाकर पड़ते थे लोहेके सन्दूक़में—हृदय शून्य-का-शून्य ही बना रहता। चचा दुर्गामोहन न तो प्रेमको इतना सूक्ष्मतासे समझते थे, न इतनी कातर दृष्टिसे देखते थे, और न इतना ज्यादा देते ही थे; मगर चाची उसे खूब देती थी। जिसे व्यवसायी बनना है, नई रोशनीका बाबू बननेसे उसका काम नहीं चल सकता; और जिसे पति बनना है, उसके लिए पुरुष बनना आवश्यक है,—इसमें आप ज़रा भी सन्देह न करें।"

ठीक इसी समय पासके जंगलमें बहुत ही ऊँचे स्वरसे सियाल बोल उठे। मास्टर साहबकी कहानीमें कुछ मिनटोंके लिए बाधा पड़ गई। बिलकुल ऐसा मालूम होने लगा, मानो उस अन्धकार सभा-भूमिमें कौतुकप्रिय शृगाल-सम्प्रदाय या तो स्कूल-मास्टरकी कही हुई दाम्पत्य-नीति सुनकर या नई सभ्यतासे दुर्बल फणिभूषणके आचरणपर रह-रहकर अट्टहास्य करने लगा। उनका भावोच्छ्वास समाप्त होनेपर जल और स्थल पहलेसे दूना निस्तब्ध हो गया, और तब मास्टर साहबने सन्ध्याके उस अन्धकारमें अपनी बड़ी-बड़ी चमकती हुई आँखोंसे घूरकर फिर कहानी कहना शुरू कर दिया।

"फणिभूषणके जटिल और बहु-विस्तृत व्यापारमें सहसा एक अलप आ खड़ी हुई। दर-असल क्या बात थी, सो मुझ सरीखे अव्यवसायीके लिए समझना और समझाना कठिन है। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि अचानक न जाने क्यों, बाज़ारमें अपनी क्रेडिट क़ायम रखना उसके लिए दुश्वार हो उठा। अगर सिर्फ़ पाँच ही रोज़के लिए कहींसे उसे लाख डेढ़-लाख रुपया मिल जाता और बाज़ारमें बिजलीकी तरह उन रुपयोंकी शकल लोगोंको दिखा देता, तो बस, इतनेसे ही सारे संकट दूर हो जाते—और व्यापारकी नाव खूब तेज़ीसे दौड़ने लगती।

रुपयोंका कुछ जुगाड़ नहीं हो रहा था। गाँव और आसपासके परिचित महाजनोंसे कर्ज़ लिया जा रहा है—ऐसी अफ़वाह फैल जानेपर व्यापारका दूना अनिष्ट होगा, इस आशंकासे उसे अपरिचित स्थानसे कर्ज़ लेनेकी कोशिश करनी पड़ी; मगर वहाँ बिना ज़ेवर या मिलकियत गहने रखे रुपये कैसे मिल सकते थे।

ज़ेवर रखनेसे लिखा-पढ़ीकी कोई झंझट नहीं, और न देरीका डर, झटपट और आसानीसे काम हो सकता है।

फणिभूषण एक बार अपनी स्त्रीके पास गया। अपनी स्त्रीके पास पति जिस तरह सहज-स्वाभाविक भावसे जा सकता है, फणिभूषणमें उस तरह जानेकी सामर्थ्य न थी। दुर्भाग्यवश वह अपनी स्त्रीको बहुत चाहता था—प्रेम करता था, जिस तरहका प्रेम काव्यका नायक काव्यकी नायिकासे करता है; जिस प्रेममें सम्हल-सम्हलकर पैर रखना पड़ता है और सब बातें मुँह खोलकर कहते नहीं बनतीं,—जिस प्रेमका प्रबल आकर्षण सूर्य और पृथिवीके आकर्षणकी तरह बीचमें एक बहुत बड़ा व्यवधान रख देता है।

फिर भी, टेढ़ा-सीधा कोई मामला आ पड़ता है, तो काव्यके नायकको भी प्रेयसीके पास जाकर हुंडी, तमस्सुक और हाथचिट्ठेका प्रसंग छेड़ना पड़ता है; मगर गला रुक आता है, वाक्य अधूरा रह जाता है, ऐसी कामकी बातोंमें भी भावोंकी जड़ता और वेदनाकी कँपकँपी आ जाती है। अभागा फणिभूषण साफ़-साफ़ कह ही नहीं सका कि "सुनती हो, मुझे ज़रूरत आ पड़ी है, अपने ज़ेवर दे दो!" बात तो यही कही, पर अत्यन्त दुर्बलतासे। मणिमालिकाने जब कठोर मुँह बनाकर 'हाँ' 'ना' कुछ भी जवाब नहीं दिया, तो उसे बड़ी गहरी चोट पहुँची; मगर उसने चोट पहुँचाई नहीं। कारण, पुरुषोचित बर्बरता उसमें नाममात्रको भी नहीं थी। जहाँ उसे ज़बरदस्ती छीन लेना चाहिए था, वहाँ वह आन्तरिक क्षोभ तकको पी गया। जहाँ प्रेम ही का एकमात्र अधिकार है, सत्यानाश हो जानेपर भी वहाँ बलको हर्गिज़ न घुसने देगा—यह उसके मनकी गति थी। इस विषयमें यदि उसे डाटा-फटकारा जाता, तो शायद वह ऐसा सूक्ष्म तर्क करता कि बाज़ारमें अगर किसी कारणसे मेरी क्रेडिट जाती रही है, तो मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं बाज़ारको लूट लूँ; इसी तरह स्त्री यदि अपनी इच्छासे मुझपर विश्वास करके ज़ेवर नहीं देना चाहती, तो मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं उसका ज़ेवर ज़बरदस्ती छीन लूँ। बाज़ारमें जैसी क्रेडिट है, घरमें प्रेम भी वैसा ही है, बाहुबल सिर्फ़ रणक्षेत्रमें दिखलाना चाहिए। पद-पदपर ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म-सूक्ष्म तर्क-सूत्रोंको काटनेके लिए ही क्या विधाताने पुरुषोंको ऐसा उदार, ऐसा प्रबल, ऐसा विशाल बनाया था? उसे क्या बैठे-ठाले अत्यन्त सुकुमार चित्तवृत्तिको अत्यधिक कृशताके साथ अनुभव करनेका अवकाश है, या उसे यह शोभा देता है?

कुछ भी हो, अपनी उन्नत हृदय-वृत्तिके गर्वमें स्त्रीका ज़ेवर न छूकर वह दूसरी तरक़ीबसे रुपयोंका इन्तज़ाम करने कलकत्ता चल दिया।

संसारमें साधारणतः स्त्रीको पति जितना पहचानता है, पतिको स्त्री उससे कहीं ज़्यादा पहचानती है; परन्तु पतिकी प्रकृति यदि अत्यन्त सूक्ष्म हो, तो स्त्रीके अनुवीक्षण-यन्त्रमें वह सब-की-सब दिखाई नहीं देती। फणिभूषणकी स्त्री ये सब बातें ठीक तौरसे समझती न थी। स्त्रियोंका अशिक्षित-पटुत्व प्राचीनकालसे चले आये जिन पुराने संस्कारोंसे बना है, अत्यन्त आधुनिक पुरुष उसके बाहर चले जाते हैं। ये कुछ और ही तरहके हैं। ये स्त्रियोंकी तरह रहस्यमय होते जा रहे हैं। साधारण पुरुषके जो कईएक मुख्य-मुख्य विभाग हैं—अर्थात् कोई बर्बर है तो कोई भोंदू, कोई [illegible] है तो कोई कुछ—इनमेंसे किसीमें भी उन्हें ठीक [illegible] नहीं रखा जा सकता।

मणिमालिकाने सलाह लेनेके लिए अपने [illegible] बुलवाया। गाँवके रिश्तेमें या दूरके नातेमें मणि[illegible]का एक भाई फणिभूषणकी गद्दीमें गुमाश्तेके नीचे काम [illegible]। उसका ऐसा स्वभाव न था कि काम दिखाकर [illegible] कर सके, कोई एक मौक़ा पाते ही आत्मीयताके [illegible] वेतन या वेतनसे भी ज़्यादा कुछ-न-कुछ वसूल [illegible] करता था।

मणिमालिकाने उसे बुलाकर सब बातें कहीं, [illegible] "अब क्या सलाह देते हो?"

उसने अत्यन्त बुद्धिमानकी तरह सिर हिलाया,—

'लच्छन तो अच्छे दिखाई देते'। बुद्धिमान लोग कभी भी लच्छन अच्छे नहीं देखते। बोला—' बाबू कहींसे रुपये ला ही नहीं सकते, आखिर तुम्हारे ही गहनोंपर नम्बर आयेगा।''

मणिमालिकाने मनुष्यको जहाँ तक पहचाना था, उससे समझा कि ऐसा होना सम्भव है और यही ठीक है। उसकी दुश्चिन्ता सुतीव्र हो उठी। इस घरमें उसका है कौन? सन्तान उसके नहीं, पति हैं तो सही, पर उनके अस्तित्वका वह हृदयमें अनुभव कहाँ करती है?—अतएव जो उसकी एकमात्र स्नेहकी चीज़ है, जो उसकी सन्तानकी तरह धीरे-धीरे वर्षके वर्ष बढ़ती जा रही है, जो सिर्फ़ रूपक ही नहीं, जो वास्तवमें सोना है, जो माणिक-मोती है, जो उसकी छातीका है, गलेका है, माथेका है—बहुत दिनोंकी, बड़े साधकी वह चीज़ एक ही क्षणमें व्यवसायके अथाह समुद्रमें फेंक दी जायगी, इसकी कल्पना करते ही उसका सारा शरीर बर्फ़-सा ठंडा हो आया। उसने कहा—''अब क्या किया जाय?''

मधुसूदनने कहा—''सब गहने लेकर अभीसे मायके पहुँच जाओ!''

[illegible] ज़ेवरमें से कुछ हिस्सा, बल्कि अधिकांश, किस तरह [illegible] पल्ले पड़ेगा—मन-ही-मन मधुने उसकी तरकीब [illegible]

[illegible] मालिका इस बातपर उसी वक्त राज़ी हो गई।

× × ×

[illegible] अन्तमें ठीक शामको इसी घाटपर एक नाव [illegible]। रात्रिशेषके उस बादलोंसे घिरे हुए निविड़ [illegible] निद्राहीन भेकोंके कलरवमें, एक मोटी चादरसे [illegible] पैर तक ढकी हुई मणिमालिका नावपर जाकर बैठी। मधुसूदन नावके भीतरसे जागकर बोल उठा—''गहनेकी पेटी मुझे दो।''

[illegible] मणिने कहा—''सो पीछे होगा, पहले नाव खोल दो।''

[illegible] खोल दी, तीव्र स्रोतमें समाती हुई बह चली।

मणिमालिका रात-भर बैठी-बैठी एक-एक करके अपने सारे गहने पहनती रही है,—सिरसे लेकर पैर तक कहीं भी तिल रखनेको जगह नहीं थी। पेटीमें ज़ेवर रखनेसे पेटी इधर-उधर हो सकती है, यह डर उसके पेटमें पहले ही से बैठा था; मगर देहमें पहन लेनेसे, बिना उसे जानसे मारे, कोई उसके गहने ले नहीं सकता।

साथमें कोई पेटी या सन्दूक न देखकर मधुसूदनकी कुछ समझमें न आया,—मोटी चादरके भीतर मणिमालिका अपने प्राणोंसे भी अधिक गहनोंसे लदी हुई है, यह बात उसके ध्यानमें न आई। मणिमालिका फणिभूषणको भले ही न पहचानती हो, मगर मधुसूदनको पहचाननेमें कोई कसर न थी।

मधुसूदन गुमाश्तेको एक चिट्ठी लिखकर दे गया था कि वह मालिकिनको मायके पहुँचाने जा रहा है। गुमाश्ता फणिभूषणके पिताके ज़मानेका था; उसे बड़ा गुस्सा आया; उसने ह्रस्व इकारको दीर्घ ईकार और दन्ती 'स' को तालवी 'श' बनाकर मालिकको एक चिट्ठी लिखी,—भाषा अच्छी न थी, पर स्त्रीको ज़्यादा सिरपर चढ़ाना पुरुषोंकी शानके ख़िलाफ़ है, यह बात ठीक तौरसे ज़ाहिर कर दी।

फणिभूषण मणिमालिकाके मनकी बात ठीक समझ गया। उसके दिलपर सबसे गहरी चोट इस बातकी लगी कि मैंने बड़ी-भारी हानि उठाते हुए भी स्त्रीके ज़ेवरमें हाथ नहीं लगाया, और रुपयोंके लिए दर-दर भटक रहा हूँ। फिर भी मुझे सन्देह! मुझे अब भी नहीं पहचाना!

अपने प्रति जिस कठोर अन्यायसे फणिभूषणको क्रुद्ध होना चाहिए था, उससे वह सिर्फ क्षुब्ध होकर रह गया! पुरुष तो विधाताका न्यायदण्ड है, उसमें उन्होंने वज्राग्नि निहित कर रखी है, अपने लिए या दूसरेके लिए अन्यायका संघर्ष होते ही अगर वह भभकसे जल न उठी, तो धिक्कार है पुरुषको! पुरुषोंको ज़रासा कारण मिलते ही दावाग्निकी तरह क्रोध आना चाहिए, और स्त्रियोंको सावनके बादलकी तरह बिना कारण आँसू बरसाते रहना चाहिए—विधाताने ऐसी ही व्यवस्था की थी; मगर अब उसकी चलती कहाँ है!

फणिभूषणने अपराधिनी स्त्रीके लिए मन-ही-मन कहा—'अगर तुम यही चाहती हो तो ऐसा ही सही, मैं अपना कर्त्तव्य पालन करता रहूँगा।'—और भी पाँच-छः शताब्दी बाद, जब सिर्फ अध्यात्म-शक्तिसे दुनिया चलने लगेगी, तब जिसे पैदा होना चाहिए था, वह भावी युगका फणिभूषण उन्नीसवीं सदीमें अवतीर्ण होकर आदि युगकी स्त्रीके साथ ब्याह करने बैठा, शास्त्रोंमें जिसकी बुद्धिको प्रलयंकरी कहा गया है! फणिभूषणने स्त्रीके लिए चिट्ठी देना तो दूर रहा, एक हरूफ भी नहीं लिखा; बल्कि मन-ही-मन प्रतिज्ञा करके बैठ गया कि इस विषयमें मणिसे कभी भी कोई बात न पूछेगा। कैसा भीषण दण्ड-विधान है!

आठ-दस दिनके बाद किसी तरह रुपयोंका इन्तज़ाम करके विपद्-उत्तीर्ण फणिभूषण घर लौटा। वह समझता था कि मायकेमें गहना-गुरिया रखकर मणि अब तक घर लौट आई होगी। उस दिनके दीन प्रार्थी-भावको छोड़कर कृतकार्य कृती पुरुष जब स्त्रीसे जाकर मिलेगा, तो मणि कैसी लज्जित होगी और अपने अनावश्यक प्रयत्नके लिए पश्चात्ताप करेगी—इस बातकी कल्पना करते-करते फणिभूषण अन्तःपुरमें शयनागारके द्वारके पास आकर खड़ा हो गया।

× × ×

देखा, दरवाज़ा बन्द है। ताला तोड़कर घरमें घुसकर देखा—घर सूना है। कोनेमें लोहेका सन्दूक खुला पड़ा है, उसमें गहनेका नामो-निशान तक नहीं। स्वामीके कलेजेमें तीर-सा समा गया!—मालूम हुआ, संसार उद्देश्यहीन है, प्रेम और वाणिज्य-व्यवसाय सब-कुछ व्यर्थ है। हम इस दुनियादारीके पिंजड़ेकी प्रत्येक सींकपर प्राण देनेको बैठे हैं; मगर उसके भीतर चिड़िया है ही नहीं, और रखो भी तो रहती नहीं,—फिर क्यों, दिन-रात हृदयके रक्त-माणिक और अश्रुजलकी मणिमालासे क्या सजाने बैठा हूँ! चिर-जीवनके उस सर्वस्व-पोषित सूने संसार-पिंजरको फणिभूषणने मन ही मन लात मारकर दूर फेंक दिया।

फणिभूषणने अपनी स्त्रीके सम्बन्धमें कुछ भी चेष्टा करना नहीं चाहा। सोच लिया, उसकी इच्छा होगी तो आ जायगी। बूढ़े ब्राह्मण गुमाश्तेने आकर कहा—"चुप होकर बैठे रहनेसे क्या होगा,—बहूजीकी खबर तो लेनी चाहिए।"—इतना कहकर उन्होंने बहूके मायके आदमी भेज दिया। वहाँसे खबर आई कि मणि या मधु आज तक कोई भी यहाँ नहीं पहुँचा।

तब चारों तरफ ढूँढ़ेरा मच गया। नदीके किनारे-किनारे पूछते हुए आदमी दौड़े। मधुकी तलाशीके लिए थानोंमें खबर दी गई,—किस नावपर, माँझी कौन, किस रास्तेसे, कहाँ गये—कुछ भी पता न लगा।

सब तरहसे हताश होकर एक दिन सन्ध्याके समय फणिभूषणने अपने छोड़े हुए शयन-गृहमें प्रवेश किया। उस दिन जन्माष्टमी थी, सवेरेसे लगातार मूसलधार वर्षा हो रही है। गाँवके बाहर एक जगह जन्माष्टमीका मेला लगता है; वहाँ बड़े-भारी शामियानेके नीचे पंचायती 'जात्रा'* हो रही थी। मूसलधार वर्षाके शब्दमें 'जात्रा'के गानका सुर और भी मीठा होकर कानोंमें प्रवेश करने लगा। यह सामने जो खिड़की दीख रही है, जिसके कुलावे ढीले हो पड़ गये हैं, फणिभूषण उस खिड़कीके पास अँधेरेमें अकेला बैठा था,—बरसाती हवा, मेहकी बौछार और 'जात्रा'का गान घरमें प्रवेश कर रहा था,—उसे इसकी कुछ खबर ही न थी। दीवालपर आर्ट-स्टूडियोकी लक्ष्मी-सरस्वतीकी एक तसवीर टंगी थी; अलगनीपर अंगोछा और तौलिया, चूड़ी पाड़की साड़ी और एक डोरियाकी साड़ी हाल ही इस्तेमालमें आने-लायक तरीकेसे चुनीचुनाई लटक रही है। एक कोनेमें तिपाईपर पीतलके पानदानमें मणिमालिकाके अपने हाथके लगाये हुए पान पड़े-पड़े सूख रहे थे। काँचकी आलमारीमें उसके आबाल्य-संचित चीनीमट्टीके खिलौने, एसेन्सकी शीशियाँ, रंगीन काँचके डिकेन्टर, बढ़िया ताश, समुद्रकी बड़ी-बड़ी कौड़ियाँ, और तो क्या, साबुनके रीते बकस तक खूब अच्छी तरह सजे हुए थे। अपने जिस छोटे-से

* बिना सीन-सीनरीका नाटक।

शौकके लैम्पको वह खुद अपने हाथसे रोज़ जलाकर तिखालमें रख दिया करती थी, वह जहाँ-का-तहाँ बुझा हुआ म्लान होकर खड़ा है, सिर्फ यह छोटा-सा लैम्प ही उस शयनगृहमें मणिमालिकाके अन्तिम चाणकी निरुत्तर साक्षी है। सब सूना करके जो चला जाता है, वह भी इतने चिह्न, इतना इतिहास, सारी जड़ वस्तुओंके ऊपर अपने सजीव हृदयके स्नेहके इतने हस्ताक्षर रख जाता है!

आओ मणिमलिका, आओ, तुम अपना दीप स्वयं आकर जलाओ, तुम अपने घरमें स्वयं आकर उजाला करो, आईनेके सामने खड़ी होकर बड़े चावसे चुनी हुई अपनी साड़ीको आकर पहनो, तुम्हारी चीज़ें तुम्हारे लिए बाट जोह रही हैं। तुमसे कोई कुछ चाहेगा नहीं, कोई कुछ माँगेगा नहीं, सिर्फ तुम यहाँ आकर, बस, एक बार अपनी सूरत दिखाकर, अपने अक्षय यौवन, अपने अम्लान सौन्दर्यसे चारों तरफकी बिखरी हुई इन अनाथ जड़ वस्तुओंको अपने प्राणोंका संस्पर्श देकर संजीवित कर दो। इन सब मूक प्राणहीन वस्तुओंके अव्यक्त क्रन्दनने घरको श्मशान बना रखा है!

गहरी रातको कब किस समय वर्षाकी धारा और 'जात्रा'का संगीत थम गया, कुछ पता नहीं। फणिभूषण जंगलेके पास जैसे बैठा था, वैसे ही बैठा रहा। खिड़कीके ऐसा एक जगद्व्यापी अभेद्य अन्धकार है कि उसे होता था, मानो सामने यमालयका अभ्रभेदी सिंहद्वार मानो यहाँ खड़े होकर रोनेसे चिरकालकी लुप्त वस्तु अचिरकालके लिए एक बार दिखाई दे, तो दे भी सकती है। इस स्याही-से स्याह मृत्युके पटपर इस अति-कठिन काली कसौटीपर उस खोये हुए सोनेकी एक रेखा पड़े, तो पड़ भी सकती है!

इतनेमें एक ठकठक शब्दके साथ-साथ गहनेका झमझम शब्द सुनाई दिया। ठीक ऐसा मालूम हुआ, मानो शब्द नदीके घाटपर से मकानकी ओर आ रहा है। उस समय नदीका जल और रात्रिका अन्धकार दोनों एक हो गये थे। पुलकित फणिभूषण अपनी दोनों उत्सुक आँखोंसे अन्धकारको ढकेल-ढकेलकर छेद-छेदकर देखनेकी चेष्टा करने लगा,—फूला न समाया, उसका हृदय और व्यग्रदृष्टि व्यथित हो उठी, कुछ भी दिखाई न दिया। देखनेकी चेष्टा ज्यों-ज्यों अधिकाधिक बढ़ने लगी, त्यों-त्यों अन्धकार और भी घना होने लगा—दुनिया मानो छाया-सी दीखने लगी। प्रकृतिने निशीथ रात्रिमें अपने मृत्यु-निकेतनके गवाक्ष-द्वारपर अकस्मात् अतिथि समागन देखकर जल्दीसे हाथ बढ़ाकर मानो और भी एक ज्यादा पर्दा डाल दिया।

शब्द क्रमशः घाटके सर्वोच्च सोपानको छोड़कर मकानकी ओर अग्रसर होने लगा। मकानके सामने आकर थम गया। ड्योढ़ी बन्द करके दरबान मेलेमें 'जात्रा' देखने गया था। ऐसा मालूम हुआ, मानो बन्द फाटकपर कोई ठकठक झमझम शब्द कर रहा है, मानो अन्धकारके साथ-साथ एक कठिन वस्तु द्वारपर आ-आकर टकरा रही है। फिर तो फणिभूषणसे रहा न गया। दिया बुझे हुए अँधेरे कमरोंको पार करके अँधेरी सीढ़ियोंसे उतरकर वह बन्द फाटकके पास पहुँचा। देखा, तो ताला बन्द था। फणिभूषणके दोनों हाथसे उसे झकझोरते ही उसके संघात और शब्दसे वह चौंककर जाग गया। देखा कि सोते-सोते वह ऊपरसे नीचे उतर आया है। उसका सारा शरीर पसीनेसे तर, हाथ-पैर बर्फ़-से ठंडे और हृदय बुझते हुए दीएकी तरह काँप रहा था। स्वप्न जब टूट गया, तो देखा कि बाहर किसी तरहका शब्द नहीं है, सिर्फ श्रावणकी वर्षाधारा उस समय भी झरझर शब्द करती हुई पड़ रही थी और उसीके साथ मिलकर सुनाई दे रहा था 'जात्रा'में होनेवाले गीतका भोरका सुर।

यद्यपि यह सब-कुछ स्वप्न ही था, किन्तु इतना अधिक निकटवर्ती और इतना सत्यवत् कि फणिभूषणको मालूम हुआ, मानो बहुत थोड़ेके लिए वह अपनी असम्भव आकांक्षाकी आश्चर्यजनक सफलतासे वंचित रह गया। वह वर्षाके शब्दके साथ दूरसे आई हुई भैरवीकी तान उससे कहने लगी—'यह जागरण ही स्वप्न है, यह जगत् ही मिथ्या है।'

उसके दूसरे दिन भी 'जात्रा' थी और दरबानके लिए

भी छुट्टी थी। फणिभूषणने हुक्म दिया कि आज रात-भर ड्योढ़ीका दरवाज़ा खुला रहेगा। दरवानने कहा—"मेलेमें हर जगहसे हर तरहके आदमी आते रहते हैं—दरवाज़ा खुला रखना ठीक नहीं।" फणिभूषणने एक न मानी। दरवानने कहा—"तो फिर मैं रात-भर यहीं रहकर पहरा दूँगा।" फणिभूषणने कहा—"नहीं, यह नहीं होगा, तुम्हें 'जात्रा' देखने जाना ही पड़ेगा।" दरवान बड़े चक्करमें पड़ गया,—इन्हें हो क्या गया।

दूसरे दिन शाम ही से दिया बुझाकर फणिभूषण अपने सोनेके कमरेमें उसी जंगलेके पास आकर बैठ गया। आकाशमें बिना बरसे हुए बादल उमड़ रहे थे और चारों ओर किसी एक अनिर्दिष्ट आसन्न प्रतीक्षाका सन्नाटा था। मेढ़कोंका अश्रान्त कलरव और जात्राकी संगीतध्वनि भी उस निस्तब्धतामें खलल न डाल सकी, बल्कि उसमें वह एक तरहका असंगत अद्भुत रसका संचार कर रही थी।

बहुत रात बीते, एक समय मेढ़क झींगुर और जात्राके संगीतने चुपकी साध ली, और रात्रिके अन्धकारपर एक और न-जाने कैसा अन्धकार आ जमा। हाँ, अब समय हो आया।

कलकी तरह नदीके किनारे घाटपर फिर वही ठकठक और झमझम शब्द सुनाई दिया; मगर फणिभूषणने उधर देखा नहीं, उसे भय हुआ कि कहीं अधीर इच्छा और अशान्त चेष्टासे उसकी सारी इच्छाएँ, सारी चेष्टाएँ व्यर्थ न हो जायँ। कहीं आग्रहका वेग उसकी इन्द्रियशक्तिको प्रभावान्वित न कर ले। उसने अपनी सारी शक्ति, सारी चेष्टाएँ अपने मनको दमन करनेमें लगा दीं—पत्थरकी मूर्तिकी तरह कठोर होकर बैठा रहा।

नूपुरके शब्दने आज घाटसे धीरे-धीरे अग्रसर होकर मुक्त द्वारके भीतर प्रवेश किया। सुनाई दिया कि अन्दरमहलकी गोल सीढ़ियोंसे घूमता हुआ शब्द ऊपर आ रहा है। फणिभूषण अपनेको सम्हाल न सका। उसका हृदय तूफानमें पड़ी नावकी तरह पछाड़ें खाने लगा और साँस तक आनेकी नौबत आ गई। गोल सीढ़ियोंको पार करके वह शब्द बरामदेमें होकर क्रमशः घरके पास आने लगा। अन्तमें ठीक शयनगृहके द्वारके पास आकर ठिठककर रह गया। बस, सिर्फ एक चौखट पार होनेकी देर है!

फणिभूषणसे रहा न गया, उसका रुका हुआ आवेग एक क्षणमें प्रबल वेगसे उच्छ्वसित हो उठा—वह बिजलीकी तरह तड़ककर चौकीपर से उठ बैठा और चिल्ला उठा—"मणि!"

उसी क्षण चौंक पड़ा, जागकर देखा कि उसीकी उस व्याकुल कंठकी चीत्कारध्वनिसे घरकी खिड़कियाँ तक ध्वनित और स्पन्दित हो रही हैं। बाहर वही मेढ़कोंकी टर्र-टर्र हो रही थी और 'जात्रा'के लड़कोंके क्लिष्ट कंठका गान।

फणिभूषणने अपनी तक़दीरपर ज़ोरसे हाथ दे मारा।

दूसरे दिन मेला उठ गया। दूकानदार और 'जात्रा'वाले सब चले गये। फणिभूषणने हुक्म दिया कि आज शामके बाद हमारे सिवा मकानमें और कोई नहीं रहने पायेगा। नौकरोंने समझा कि बाबू तान्त्रिक मत साध रहे हैं। फणिभूषणने दिन-भर कुछ खाया-पीया नहीं, रातको भी उपासा रहा।

सूने मकानमें शाम होते ही वह खिड़कीके पास आकर बैठ गया। उस दिन आकाशमें कहीं-कहीं बादल थे, और कहीं-कहीं धुली हुई निर्मल हवामें नक्षत्र बहुत ही [illegible] दिखाई दे रहे थे। कृष्णपक्षकी दशमी थी, चाँद [illegible] बहुत देर थी। मेला खतम हो जानेसे नदीमें नाव[illegible] चिह्नमात्र न था, और उत्सवमें जगते रहनेके कारण दो दिनके थके हुए ग्रामवासी सब निद्रामें निमग्न हो गये थे।

फणिभूषण एक चौकीपर बैठा हुआ उसकी पीठपर सिर रखे ऊपरको मुँह किये तारे देख रहा था; सोच रहा था—एक दिन जब उसकी उमर उन्नीस वर्षकी थी, जब वह कलकत्तेके कालेजमें पढ़ता था, जब सन्ध्याके समय कालेज-स्क्वायरके बागमें तृणासनपर बाँहपर सिर रखे चित लेटकर अनन्तकालके इन तारोंकी ओर देखा करता था, तब उसे याद आती थी नदी-किनारेकी उस ससुरालकी जहाँ एक निर्जन कोठरीमें

चौदह वर्षकी उस वय:सन्धिगता मणिका कचा-कोमल मुखड़ा हरदम उसकी यादमें म्लान रहता था। तबका वह विरह कैसा सुमधुर था, तबके उन तारोंका आलोक-स्पन्दन हृदयके यौवन-स्पन्दनके साथ-साथ कैसा विचित्र 'वसन्तरागेण यतितालाभ्य' बज-बज उठता था। आज वही आकाश है, वही तारे हैं, आज उन्हीं—एक ही—तारोंने आकाशमें आगसे मोह-मुद्गरके श्लोक लिख रखे हैं, कह रहे हैं— 'संसारोऽयमतीव विचित्र:'।

देखते-देखते तारे सब विलीन हो गये। आकाशसे एक अन्धकार उतरा और पृथिवीसे एक अन्धकार ऊपरको चढ़ा, आँखोंके ऊपर-नीचेके पलकोंकी तरह दोनों आकर मिल गये। आज फणिभूषणका चित्त शान्त न था। वह निश्चित जानता था कि आज उसका अभीष्ट सिद्ध होगा, साधकके सामने मृत्यु अपना रहस्य खोल देगी।

कलकी रातकी तरह, वह शब्द नदीके पानीमेंसे निकलकर घाटकी सीढ़ियोंपर चढ़ा, फणिभूषण दोनों आँखें मीचकर स्थिर दृढ़ चित्तसे ध्यानासनमें बैठ गया। शब्दने प्रहरी-शून्य ड्योढ़ीके भीतर प्रवेश किया,—शब्द जनशून्य अन्त:पुरकी गोल सीढ़ियोंसे घूमता हुआ ऊपर चढ़ने लगा, शब्द लम्बा बरामदा पार होकर आगे बढ़ा,—और शयनगृहके द्वारके पास आकर क्षण-भरके लिए ठिठक कर [illegible] गया।

[illegible]भूषणका हृदय व्याकुल हो उठा, सारे अंग-प्रत्यंग रोमांचित हो उठे, परन्तु आज उसने आँखें नहीं खोलीं। शब्दने चौखट पार होकर अँधेरे घरके अन्दर प्रवेश किया। अलगनीके पास—जहाँ मणिकी साड़ी चुनी-चुनाई टँगी थी, तिपाईके सामने—जहाँ किरोसिनका लैम्प खड़ा था, तिपाईके पास—जहाँ पानदानमें पान सूखा पड़ा था, और उस विचित्र सामग्री-पूर्ण आलमारीके पास, हर जगह एक-एक बार खड़ा हो-होकर अन्तमें वह शब्द फणिभूषणके बहुत ही पास आकर थम गया।

तब फणिभूषणने आँखें खोलीं, और देखा कि घरमें नवोदित दशमीके चन्द्रालोकने प्रवेश किया है, और उसकी चौकीके ठीक सामने एक कंकाल खड़ा है। उस कंकालकी आठों उंगलियोंमें अंगूठियाँ चमक रही हैं, हाथोंपर रतनचक्र, पौहुँचोंमें कड़े, बाँहमें बाजूबंद, गलेमें हार, माथेपर बेना और माँगमें सिन्दूर—सिरसे लेकर पैर तक उसकी हड्डी-हड्डीमें एक-एक आभरण सोने और हीरेकी झलकसे झलमला रहे थे। अलंकार सब ढीले, इतने ढीले कि खिसककर गिर पड़ने लायक, फिर भी अपने स्थानसे कोई खिसकता न था। सबसे भयंकर थीं उसके अस्थिमय चेहरेपर उसकी दो सजीव आँखें ;—वही काली पुतलियाँ, वही घनी लम्बी पलकें, वही सजल उज्ज्वलता, वही अविचलित दृढ़ शान्त दृष्टि। आजसे अठारह वर्ष पहले एक दिन आलोकित सभा-गृहमें नौबतकी शहाना-रागमें फणिभूषणने जो दो बड़ी-बड़ी काली काली छलकती हुई आँखें 'शुभदृष्टि'में पहले-पहल देखी थीं, वे ही आँखें आज उसने श्रावणकी निशीथ रात्रिमें कृष्णपक्षकी दशमीकी चन्द्रकिरणोंमें देखीं,—देखकर उसके सारे शरीरका खून बर्फ-सा ठंडा हो आया। जी-जानसे आँखें मीचनेकी कोशिश की, पर कर न सका, उसकी आँखें मुरदेकी आँखोंकी तरह जैसी-की-तैसी पथराकर रह गईं।

तब उस कंकालने स्तम्भित फणिभूषणके चेहरेकी ओर अपनी दृष्टि स्थिर रखकर दाहना हाथ उठाकर चुपकेसे उंगलीके इशारेसे अपनी ओर बुलाया। उसकी चारों उंगलियोंकी हड्डियोंमें हीरेकी अंगूठियाँ चमक उठीं।

फणिभूषण मूढ़की तरह उठ खड़ा हुआ। कंकाल दरवाजेकी ओर चला ; हड्डियाँ हड्डियोंमें और गहनों गहनोंमें लगकर कठोर शब्द होने लगा। फणिभूषण जालमें फँसी कठपुतलीकी तरह उसके पीछे-पीछे चला। बरामदा पार होकर वह निबिड़ अन्धकारमय गोल सीढ़ियोंसे घूमता और खटखट झमझम करता हुआ नीचे उतरा। फिर नीचेका बरामदा पार कर दीप-हीन सुनसान अँधेरी ड्योढ़ीमें प्रवेश किया ; अन्तमें ड्योढ़ी पार होकर सुरम-बिछे सुनसान बगीचेके रास्तेसे बाहर निकल गया। सुरमपर हड्डियोंके पैर पड़नेकी-सी

आवाज़ होने लगी। क्षीण ज्योत्स्ना घनी डालियोंमें इस तरह हिलग रही थी कि उसे छुटकारा मिलना मुशकिल हो रहा था। वर्षाके उस निबिड़ गन्धयुक्त अन्धकारपूर्ण छायापथसे जुगनुओंके झुंडमें होकर दोनों नदीके घाटपर पहुँचे।

घाटकी जिन सीढ़ियोंसे शब्द चढ़ा था, उन्हीं सीढ़ियोंसे आभूषणोंसे अलंकृत कंकाल अपनी आन्दोलन-हीन ऋजुगतिसे कठिन शब्द करता हुआ एक-एक डग उतरने लगा। भरी हुई बरसातकी नदीके प्रबल स्रोतपर ज्योत्स्नाकी एक लम्बी रेखा छिटक रही थी।

कंकाल नदीमें उतरा, अनुवर्ती फणिभूषणने भी पानीमें पैर दिया। पानीका स्पर्श होते ही फणिभूषणकी तन्द्रा दूर हो गई। सामने अब उसका कोई पथप्रदर्शक न था—सिर्फ नदीके उसपार पेड़ोंकी पंक्ति स्तब्ध होकर खड़ी थी और उनके सिरके ऊपर चाँदका टुकड़ा शान्त और अवाक् होकर सब देख रहा था।

बार-बार आपादमस्तक अपनेको देखकर सिहर-सिहरकर लड़खड़ाते पैरोंसे आगे बढ़कर फणिभूषण स्रोतमें जा पड़ा। यद्यपि वह तैरना जानता था, मगर शरीरकी नाड़ियाँ उसके वशमें न थीं—स्वप्नमेंसे केवल एक क्षणके लिए जागरणके तटपर आकर दूसरे ही क्षणमें वह अतलस्पर्श सुप्ति या निद्रामें निमग्न हो गया।"

× × ×

कहानी खतम करके मास्टर-साहब थोड़ी देरके लिए चुप हो रहे। सहसा चुप होते ही ऐसा मालूम हुआ, मानो इस बीचमें जगतके और सब-कोई नीरव और निस्तब्ध होकर बैठे थे। बहुत देर तक मैं कुछ न बोला, और अंधेरेमें वे मेरे चेहरेका भाव भी न ताड़ सके।

मुझसे पूछा—"आपको क्या इस कहानीपर विश्वास नहीं हुआ?"

मैंने पूछा—"आप क्या इसे सच समझते हैं?"

उन्होंने कहा—"नहीं तो। क्यों नहीं, उसके कारण बतलाता हूँ। पहली बात तो यह है कि प्राकृति-महारानी उपन्यास-लेखिका नहीं हैं, उनके हाथमें बहुतसे काम हैं—"

मैं बोल उठा—"दूसरे, मेरा ही नाम श्रीयुत फणिभूषण साहा है।"

स्कूल-मास्टरने ज़रा भी लज्जित न होकर कहा—"तो मेरा अनुमान ठीक ही था। आपकी स्त्रीका नाम क्या था?"

मैंने कहा—"नृत्यकाली।"

—धन्यकुमार जैन
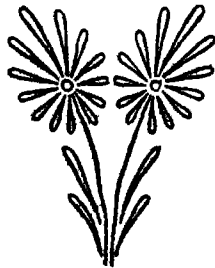
हिन्दुस्तानी एकेडेमी

भारतवर्षका बहुत बड़ा भाग प्रायः सौ डेढ़ सौ वर्षसे अंग्रेजोंके अधीन है। अंग्रेजी शासन-कालमें हमारी देशी भाषाओं और उनके साहित्यने थोड़ी-बहुत उन्नति अवश्य की है, परन्तु इतने लम्बे समयको देखते हुए वह उन्नति कुछ नहींके बराबर है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारा शासन-विधान ऐसे अनुत्तरदायी तानाशाहोंके हाथमें रहा है, जिन्होंने हमारी देशी भाषाओंको प्रोत्साहन न देनेकी क़सम-सी खा रखी थी। उनकी नज़रोंमें हमारी देशी भाषाओंकी कोई वक़त न थी और न उससे उन्हें प्रेम था। इसका फल यह हुआ कि देशमें उच्च शिक्षाके मन्दिरोंमें देशी भाषाओंका प्रवेश बन्द कर दिया गया, उन्हें विकसित होनेके लिए स्थान न मिला और वे समयकी गतिके साथ-साथ न बढ़ सकीं। बेचारे देशी भाषाके लेखक और कवि गाजर-मूलीसे भी गये-बीते समझे जाते थे।

सन् १९१९ के नये शासन-सुधारसे शासकोंकी उच्छृंखलतामें कुछ कमी हुई। शिक्षा-विभाग उत्तरदायी मन्त्रियोंके हाथमें आ गया। यद्यपि ये मन्त्री महाशय सिविलियनोंके हाथोंकी कठपुतली ही थे, और उनकी शक्ति प्रायः नगण्य थी, जिससे वे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सके, फिर भी उन्होंने देशी भाषाओंके प्रति शासकोंकी उपेक्षा-दृष्टिमें अवश्य ही परिवर्तन कर दिया। अब हिन्दी, उर्दू कालेजोंमें पढ़ाई जाने लगी हैं, और विद्यार्थीगण उनमें सर्वोच्च उपाधियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

संयुक्तप्रान्तकी व्यवस्थापिका सभाने हिन्दी और उर्दूकी उन्नतिके लिए 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' नामक एक संस्था भी स्थापित की है, जो गत चार वर्षोंसे कार्य कर रही है। इस अल्प कालमें 'एकेडेमी'ने हिन्दी और उर्दूके विकासके लिए जो प्रयत्न किया है, उससे यह आशा बँधती है कि भविष्यमें यह संस्था और भी अधिक लाभदायक सिद्ध होगी।

'एकेडेमी' की स्थापनाका अधिकांश श्रेय आनरेबिल राय राजेश्वरबलीको है। सन् १९२५ के दिसम्बरमें बनारसके पं० यज्ञनारायण उपाध्यायने व्यवस्थापिका सभामें एक प्रस्ताव उपस्थित किया कि सरकार हिन्दी और उर्दूके लिए एक 'ट्रान्सलेशन ब्यूरो' की स्थापना करे।

उस समय शिक्षा-विभागके मन्त्री श्री राय राजेश्वरबली थे। उन्होंने उपाध्यायजीके प्रस्तावका उत्तर देते हुए कहा कि हिन्दी और उर्दूके साहित्यको प्रोत्साहन देनेके लिए एक संस्थाकी स्थापना करनेका विचार उनके मनमें पहले ही उदय हो चुका है, और उन्होंने उस विषयपर प्रयागमें कुछ साहित्यिक मित्रोंसे बातचीत भी की है।

सन् १९२६ के अप्रेलमें कानपुरके हाफ़िज़ हिदायत हुसेनने व्यवस्थापिका सभामें एक प्रस्ताव उपस्थित किया—

"यह सभा सरकारसे शिफारिश करती है कि वह इस प्रान्तमें हिन्दी और उर्दूके साहित्यकी वृद्धिके लिए 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' नामक एक एकेडेमी स्थापित करे, और प्रतिवर्ष उसके खर्चके लिए दो लाख रुपये दिया करे।"

राय राजेश्वरबलीने हाफ़िज़ साहबका प्रस्ताव प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया और घोषित किया कि सरकार एकेडेमीकी स्थापनाके लिए पचीस हज़ार रुपया अलग करती है। इस प्रकार 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी'के जन्मका सूत्रपात हुआ, जिसके लिए साहित्य-संसार राय राजेश्वरबलीका चिर कृतज्ञ रहेगा।

एकेडेमीकी स्थापना २९ मार्च १९२७ को युक्त-प्रान्तके तत्कालीन गवर्नर सर विलियम मेरिसके द्वारा लखनऊमें हुई। गवर्नर महोदयने उक्त अवसरपर अपनी स्पीचमें इस बातकी इच्छा प्रकट की थी कि—"एकेडेमी ऐसी मौलिक कृतियोंके उत्पादनमें विशेष ध्यान देगी, जो मूल रूपसे भारतीय हों और जिनके विचार मुख्यतः प्रान्तीय हों। इसके कार्यमें

भाषाशैलियोंकी देख-रेख करना अथवा उनके पारिभाषिक ज्ञानके प्रसारकी अपेक्षा साहित्यकी उन्नतिपर अधिक ध्यान दिया जायगा। यदि हम चाहते हैं कि यह साहित्य एक जीता-जागता साहित्य हो, तो उसे स्वतन्त्र रूपसे विकसित होना होगा, न कि दूसरोंके ऊपर जीवित रहकर।"

हिन्दुस्तानी एकेडेमीका उद्देश हिन्दी और उर्दूके साहित्यकी रक्षा, उसका विकास और उन्नति करना है। एकेडेमी इस कार्यके लिए निम्नलिखित कार्य करेगी।

(१) विभिन्न विषयोंकी चुनी हुई पुस्तकोंकी रचनाके लिए पारितोषिक देना।

(२) अन्य भाषाओंकी पुस्तकोंका, पारिश्रमिक देकर या वैसे ही, हिन्दी और उर्दूमें अनुवाद कराना और उन्हें प्रकाशित करना।

(३) विश्वविद्यालयों तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओंको आर्थिक सहायता देकर या यों ही हिन्दी और उर्दूकी मौलिक कृतियों और अनुवादोंको प्रोत्साहन देना।

(४) बड़े-बड़े लेखकों और विद्वानोंको एकेडेमीका 'फेलो' चुनना।

(५) एकेडेमीको लाभ पहुँचानेवालोंको आनरेरी फेलो चुनना।

(६) एक पुस्तकालयकी स्थापना और उसका संचालन।

(७) बड़े-बड़े विद्वानोंको व्याख्यान देनेके लिए निमन्त्रित करना।

(८) उपर्युक्त बातोंको पूरा करनेके लिए और जो कुछ उचित उपाय हों करना।

'एकेडेमी' के संगठन-विधानमें एक कौंसिल, एक कार्यकारिणी सभा और कौन्सिल-द्वारा निर्वाचित फेलो होते हैं।

एकेडेमीकी साधारण नीति-सम्बन्धी समस्त बातें एकेडेमीकी कौन्सिल निश्चित करती है। वही निर्णायकोंको नियत करती है, जो साहित्यक कसौटीका 'स्टैन्डर्ड' निर्धारित करते हैं। इस कौन्सिलमें एक सभापति, छ पदाधिकारी और तीस सरकार-द्वारा मनोनीत सदस्य होते हैं। कौन्सिलको छै अन्य सज्जनोंको सदस्य बना लेनेका अधिकार होता है।

कार्यकारिणी समितिमें सभापति और प्रधान मन्त्रीके अतिरिक्त पाँच सरकार-द्वारा मनोनीत और दो एकेडेमीकी कौन्सिल-द्वारा निर्वाचित सदस्य होते हैं। कार्यकारिणीका यह काम है कि वह कौन्सिल-द्वारा निर्धारित नीतिको काममें लानेका प्रबन्ध करे और उसके धनके आय-व्ययका हिसाब किताब देखे।

सरकारने सर तेजबहादुर सप्रूको एकेडेमीका प्रथम सभापति, डाक्टर ताराचन्दको प्रथम प्रधान मन्त्री तथा अन्य तीस सज्जनोंको कौन्सिलका सदस्य नियुक्त किया। कौंसिलने अपनी पहली बैठकमें दो सर्वे सब-कमेटियाँ नियुक्त कीं, जो हिन्दी-उर्दूके साहित्योंकी जांच-पड़ताल करके दोनोंकी कमियों और आवश्यकताओंको निर्देश करें। इन सर्वे कमेटियोंकी रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है।

सन् १९२८ की फरवरीमें कौन्सिलकी दूसरी बैठकमें पुरस्कार निर्णायकोंकी नियुक्त हुई। कौन्सिलने यह भी निश्चय किया कि एकेडेमीके धनका एक काफी भाग हिन्दी और उर्दूमें वैज्ञानिक साहित्य उत्पन्न करनेमें व्यय किया जाय। यह भी तै हुआ कि कार्यकारिणी समिति हिन्दी और उर्दूमें विश्वकोष बनानेके प्रश्नपर भी विचार करे।

कौन्सिलकी चौथी मीटिंगमें एकेडेमीके नियमोंमें परिवर्तन करनेका विचार हुआ।

सन् १९२९ की मार्चमें कौन्सिलने निश्चय किया कि एकेडेमी प्रतिवर्ष एक वार्षिक साहित्यिक अधिवेशन किया करे, जिसमें साहित्यिक और वैज्ञानिक विषयोंपर निबन्ध पढ़े जांय और उनपर वाद-विवाद हो सके। इस प्रस्तावके अनुसार अभी हालमें प्रयागमें एकेडेमीने एक साहित्यिक समारोह किया था।

सर्वे-रिपोर्टपर विचार करके एकेडेमीकी कार्यकारिणीने यह निश्चय किया—

(१) 'प्राचीन भारतीय संस्कृति' और 'मध्यकालीन

संस्कृति', इन दो विषयोंपर, मौलिक रचनाएँ तैयार करनेके लिए लेखक नियत किये जाँय।

(२) हिन्दी-उर्दूकी पुस्तकोंके सम्पादनके लिए दो विद्वान् नियुक्त किये जाँय।

(३) हिन्दी, उर्दूमें गद्य और पद्यकी सर्वोत्तम रचनाओंपर पांच-पांच सौ रुपयेके पुरस्कार दिये जाँय।

(४) मध्यकालमें भारतकी सामाजिक और आर्थिक अवस्था तथा राजपूत-कालमें भारतकी सामाजिक और आर्थिक अवस्थापर दो व्याख्याताओंके व्याख्यान कराये जाँय।

इसके अतिरिक्त कार्यकारिणी समितिने विभिन्न वैज्ञानिक विषयोंपर हिन्दी-उर्दूमें रचनाएँ प्रकाशित करानेका निश्चय किया है। जो लेखक धनाभावके कारण अपने ग्रंथ प्रकाशित करनेमें असमर्थ हैं, उनकी अच्छी कृतियाँ प्रकाशित करनेके लिए दस हजार रुपये भी पृथक किये गये।

पिछले तीन वर्षोंमें एकेडेमी क्या-क्या करनेमें समर्थ हुई है, इसका ब्यौरा सुन लीजिये।

अब तक एकेडेमीने निम्न-लिखित विद्वानोंके व्याख्यान कराये हैं।

सन् १६२७-२८ में

(१) अब्दुल्ला यूसुफ अली, एम० ए०, एल-एल० एम०का [व्याख्]यान—'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' पर—उर्दूमें।

(२) महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द [ओझाका] व्याख्यान—'राजपूतकालमें भारतीय संस्कृति' पर [—हि]न्दीमें।

सन् १६२८-२६ में

(३) महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, वायस चांसलर इलाहाबाद-यूनिवर्सिटीका व्याख्यान—'कवि रहस्य' पर—हिन्दीमें।

(४) मौलाना अमीन अब्बासीका व्याख्यान—'मुस्लिम संस्कृतिमें हिन्दुओंका भाग' पर—उर्दूमें।

(५) मौलाना सैयद सुलेमान नदवीका व्याख्यान—'मुसलोंके आगमनके पहले हिन्द और अरबोंका सम्बन्ध' पर—उर्दूमें।

(६) डाक्टर ताराचन्द, एम० ए०, डी० फिल०, का व्याख्यान—'भारतीय संस्कृतिपर इसलामका प्रभाव' पर—हिन्दीमें।

सन् १६२६-३० में

(७) डाक्टर भगवानदास, एम० ए०, एल-एल० डी०, का व्याख्यान—'दर्शन और उसका प्रसार' पर—हिन्दीमें।

(८) मौलाना अब्दुल हक़का व्याख्यान—'दक्खिनमें उर्दूकी उन्नति' पर—उर्दूमें।

ये सब व्याख्यान इलाहाबाद-यूनिवर्सिटीकी इमारतमें हुए थे।

सन् १६२८-२६ में हिन्दी गद्यका पुरस्कार श्रीयुत 'प्रेमचन्दजी' को उनकी 'रंगभूमि' नामक पुस्तकके लिए और पद्यका पुरस्कार श्रीयुत जगन्नाथदास 'रत्नाकर' को उनकी 'गंगावतरण' नामक पुस्तकके लिए मिला। उर्दू गद्यका पुरस्कार मौलाना मुहम्मद अकरामुल्ला खाँ नदवीने 'वक़ारे हयात' पर और पद्यका पुरस्कार मौलाना सैयद अलीन नदवीने अपनी 'तनज़ीमुल हयात' पर प्राप्त किया।

सन् १६२६-३० में बाबू गुलाबराय एम० ए० को उनके 'तर्क-शास्त्र' पर पुरस्कार दिया गया।

एकेडेमीने अंग्रेज़ीके उच्च कोटिके नाटकोंका अनुवाद प्रकाशित करानेका भी निश्चय किया है। उसने अब तक जान गल्सवर्दीके निम्न-नाटकोंके अनुवाद प्रकाशित किये हैं।

Justice,	अनुवादक,	श्री प्रेमचन्दजी—हिन्दीमें
"	,,	श्री दयानारायण निगम—उर्दूमें
Skin game	,,	श्री जगतमोहन लाल 'रवाँ'—उर्दूमें
Strife	,,	श्री प्रेमचन्द—हिन्दीमें
,,	,,	श्री दयानारायण निगम—उर्दूमें
Silver Box	,,	श्री प्रेमचन्द—हिन्दीमें
,,	"	श्री दयानारायण निगम—उर्दूमें

इनके अतिरिक्त एकेडेमीने श्री अब्दुल्ला यूसुफ अली, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, डा० गंगानाथ झा, मौ० सैयद सुलेमान नदवी आदिके व्याख्यान, श्री देवीदत्त आरोराकी 'चर्म बनानेके सिद्धान्त' और श्री ब्रजेशबहादुरकी 'जन्तु-जगत' आदि पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं।

गत जनवरी १९३१ से एकेडेमीने 'हिन्दुस्तानी' नामक दो त्रैमासिक पत्रिकाएँ हिन्दी और उर्दूमें प्रकाशित करना आरम्भ किया है। 'हिन्दुस्तानी' के सम्पादनके लिए चार व्यक्तियोंका एक सम्पादक-मंडल है। हिन्दीकी 'हिन्दोस्तानी' के प्रधान सम्पादक श्री रामचन्द्र वर्मा हैं। पत्रिकाके अब तक दो अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इन दोनों अंकोंमें बहुत ऊँचे दर्जेके सुपाठ्य लेख हैं।

अपने छोटे जीवन-कालमें ही एकेडेमीने साहित्यकी जो सेवा की है, उससे आशा होती है कि भविष्यमें उसके द्वारा हिन्दी-उर्दू साहित्यका काफी कल्याण होगा।

सुकुमारी

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

[१]

उसके गुलाबके दल-जैसे रसीले ओठ काले पड़ गये हैं। वह नील गगनकी ओर एकटक देख रही है। उसके केश बिखरे हुए हैं, उनसे मीठी-मीठी खुशबू लहरा रही है। ललाटके बीचोबीच एक सिन्दूर-बिन्दु हँस रहा है। उसका शरीर एकदम निश्चल है। उसे बड़ी गहरी नींदने अपनी गुलगुली गोदमें सुला लिया है। आज उसकी चिरकालीन तपस्या सफल हुई है। नींदने उसे प्यार किया है। नींद उसे बड़ी प्यारी रही है, बड़ी ही। पर न जाने क्यों नींदने उसे कभी ऐसा प्यार नहीं किया, जैसा वह आज कर रही है।

इस शरीरको अपने निकट पानेके लिए मैंने अपने जीवनके एक-दो-तीन, अरे नहीं, अनेक वर्ष बिता दिये। वे दिन! आह! उनकी बातें बड़ी ही अद्भुत हैं, बड़ी मर्मान्तक। हाँ, उसे अपने निकट पानेके लिए मैंने सदा अपने प्रति अन्याय किया है। कभी रोटी खाई, कभी यों ही रह गया। कभी ज़रासा कच्चा दूध पी लिया और कभी किसी मित्रके यहाँ एक प्याला चा पीकर ही रह गया। कभी चिरशान्तिकी गोदमें सोनेके लिए शीशेके गिलासमें कुछ थोड़ीसी, यही एक-दो बोतलमात्र, गलेके नीचे उतार जाता था। उससे बड़ा गहरा नशा आता था, और मैं उसके साथ न-जाने कहाँ-कहाँ सैर करता फिरता था। बड़ा अच्छा लगता था तब।• बड़ा ही अच्छा! और तब मैं सब कुछ पा जाता था।

एक दिन उसकी कन्या मेरे कमरेमें आई। मेरे कागज़-पत्रोंको इधर-उधर उलटने-पुलटने लगी। उनींदा-सा था। मैंने कहा—"क्या है री?"

उसने कहा—"तसवील।"

मैंने एक मासिक पत्र उठाकर उसको दे दिया।

वह उसे देख-देखकर किलकने लगी। कभी चित्रपर हाथ फेरती, कभी पड़ी हुई पेन्सिलसे उसपर टेढ़ीमेढ़ी विचित्र रेखाएँ खींचती। कभी मुँह बनाती, कभी किसी तसवीरको देखते-देखते उसे अपने मुँहके पास ले जाती और कभी केवल उस पन्नेको ही पकड़कर पूरी पत्रिकाको उठाकर नचाने लगती। चित्र फट जाता और वह कहती—"अले-अले, पत गया।"

मैंने उसे उठाकर चूमना शुरू किया। एक ओरकी चुम्मी देकर वह दूसरी ओरकी चुम्मी देने लगी। मैं राजा हो गया!

इस लड़कीका नाम था रत्नो।

रत्नोके लिए मैं ढेर-के-ढेर मासिक पत्र लाता था। वह तसवीरोंके साथ उन्हें फाड़-फाड़कर खेलती थी और मैं खुश होता था। क्या मेरा यह सुख थोड़ा था?

[२]

अब रत्नो कुछ बड़ी हो गई थी। छोटी-छोटी लड़कियोंके साथ अब वह मुहल्लेके स्कूलमें पढ़ने जाने लगी थी, इसलिए मुझे असुविधा यह होने लगी कि मैं उसके घर एकाएक उड़कर पहुँचूँ कैसे? पहुँचूँ भी तो क्या कहकर अन्दर जाऊँ? इसीलिए ऐसे समयकी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, जब रत्नो वहाँ उपस्थित रहती थी।

रत्नोका पिता एक मामूली क्लार्क था। बेचारा किसी तरह अपनी गृहस्थी चलाता था। वह रत्नोके खाने-पहननेमें अधिक खर्च नहीं कर सकता था। रत्नो मेरे घर आ जाती थी, और जब उसकी इच्छा होती, तब अपनी चचीसे लड़-[illegible]र मिठाई मँगवा ही लेती थी। उसकी चची भी [illegible]न-बूझकर जब बहुत खिझा लेती, तभी उसे मिठाई [illegible] थी। उसकी इस आदतसे भी मैं बहुत सुखी [illegible]।

[illegible] कपड़े उसकी चची ही सींती थी। वही उसका [illegible] भी अपनी पसन्दसे खरीदती थी। वही रत्नोको, उसके आनेपर, अपने यहाँसे पहनाकर भेजती थी। उसे रत्नोको बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनानेमें जितना आनन्द आता था, उससे कहीं बढ़कर मुझे भला लगता था।

जब कभी मैं रत्नोके घर जाता, मुझे बड़े उलहने मिलते—"क्या कहीं बाहर गये थे?"

"तो कैसे? बाहर गये होंगे। मुझसे झूठ बोलते हो।"

"नहीं, मैं कभी इस तरहका झूठ नहीं बोलता।"

"तो फिर इतने दिनोंमें क्यों आये। क्या यह घर काटता है?"

"नहीं तो। रत्नो नहीं दीख पड़ती है।"

"आज उसके स्कूलमें इनाम बाँटा जा रहा है, इसीलिए इनाम लेने गई है।"

"और दादा कहाँ हैं?"

"लेटे हुए हैं। तबीयत ठीक नहीं है।"

"किसकी दवा हो रही है?"

"दवा! दवा तो···एक वैद्यकी हो रही है।"

"किस वैद्यकी? कुछ सेहत भी है? देखूँ न चलके। चलो।"

"चलती हूँ। ज़रा उनके लिए पानी गरम कर लूँ।"

× × ×

"अरे, ये तो एकदमसे दुबले हो गये।···क्या आपको बुखार भी आता है?"

"नहीं राजा बाबू, बुखार खुलकर नहीं आता। ऐसा ही थोड़ा-थोड़ा रहता है। खाँसी भी···आती है।"

"इनकी दवा करो लगकर। इस तरह ये अच्छे न होंगे।"

वह कुछ न कह सकी।

मैंने कहा—"पहाड़पर ले जाओ, वहाँ ये अच्छे हो जायँगे।"

उसने कहा—"लेकिन···ले कैसे जाऊँ?"

मैंने उसी समय दादाके सामने पचास-पचासके दो नोट रख दिये।

उन्होंने निहाल होकर, लेकिन उन्हें वापस करते हुए, कहा—"नहीं राजा बाबू, मुझे इसी तरह मरने दो। मैं न इस तरह अच्छा हूँगा और न उस तरह। मैंने जो पाप किये हैं, उनका फल ज़रा भोग भी तो लूँ। अभी बिना भोगे चला जाऊँगा, तो फिर वे भोगने पड़ेंगे।"

मैंने कहा—"यह फ़िलासफ़ी इस समय रहने दीजिए। मेरा कहा मानकर पहाड़पर चले जाइये। मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा।"

लेकिन उन्होंने रुपये न लिये। किसी तरह न लिये। बोले—"अब और भार मैं अपने ऊपर न लादूँगा। जो कुछ अभी तक किया है, वह काफ़ी है। ना भाई! मुझे कीचड़में और अधिक न फँसो।"

मैं उनके पाससे चला आया। नोट वहीं छोड़ दिये। चलते हुए वह मुझे वे नोट लौटाने लगी। मैंने फिर घूमकर देखा भी नहीं, एकदम चला ही आया।

[३]

रातके ग्यारह बजे हैं। पड़ोसके थियेटर-हालमें नाटक हो रहा है। कड़कीली आवाज़ कानोंको फाड़े डाल रही है। अन्धकार खूब सघन होकर कुछ गा-सा रहा है, और मैं ऊपरी छतपर चुपचाप बैठा हुआ उसके ताल, लय, स्वर और कम्पनका अनुभव कर रहा हूँ।

अन्धकार मुझे बड़ा प्रिय है। वह एकान्तवासी है, और मैं भी। वह नीरव रहता है, और मैं भी नीरव रहना पसन्द करता हूँ। उसका रंग काला है, और मेरा विषाद भी कुछ ऐसा ही है। वह स्वतः अपने आपमें लय हो जाता है, और मैं भी अपने आप मस्त रहता हूँ।

यही सब मैं सोच रहा था कि गृहिणीने कहा—"अरे, एक बात तो मैं तुमसे कहना ही भूल गई।"

मैंने पूछा—"क्या?"

उसने कहा—"रन्नोकी मा, दादाको साथ लेकर, पहाड़पर गई थीं।"

मैंने कहा—"हाँ-हाँ, सो क्या हुआ?"

वह—"वहाँसे चिट्ठी आई थी। मैंने टेबिलकी दराज़में रख दी थी। यह लो।"

मैं उसकी चिट्ठी पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—

"राजा बाबू,

यहाँ आनेपर उनकी तबीयत सँभल रही है। आप यह जानकर सुखी होंगे। मैं चाहती तो आज ऊपरकी इस पंक्तिके साथ ही इस पत्रको समाप्त कर देती, लेकिन आज मैं आपसे खुलकर कुछ बातें करना चाहती हूँ। वे बातें, यदि आपके समक्ष कहनेका साहस करती, तो भी कह सकती या नहीं, यह नहीं जानती। कई बार प्रयत्न करनेपर भी मेरा मुँह नहीं खुला, इच्छा होनेपर भी कुछ कह न सकी; पर आज मैं अपने आपको इतना संयत नहीं पा रही हूँ। हायरे नारी हृदय!

आप मुझे कुछ भी समझें, लेकिन एक मैं ही नहीं, इस नारी-जातिका हृदय ही विधाताने कुछ ऐसा बनाया है। उसमें प्रकाश है, तो छाया भी है। सो मेरे हृदयकी छाया ही आज मुझे ऐसा विवश कर रही है। वृक्षों और झाड़ियोंकी छायामें शीतल समीर और शान्तिके झकोरे होते हैं, उससे मन-मानस स्थिर निर्लिप्त-सा हो जाता है। पर नारी-हृदयकी छायामें अवसाद होता है। वही उसकी जीवन-धाराकी विजन शान्तिका कोलाहल है।

आप तब कालेजमें पढ़ते थे। मेरे मामाके यहाँ आते-जाते भी थे। उन्हीं दिनों मेरा आपका साक्षात्कार हुआ था। मुझे पढ़नेके लिए आपने कुछ पुस्तकें दी थीं। इसी तरह मैं आपसे और आप मुझसे बातें करने लगे थे। मैं चाय बनाकर लाती, साथ [illegible] बिस्कुट भी। आप हँसते-हँसते मेरी ओर एक बार देख [illegible] और चाय पी जाते थे। आपकी उस दृष्टि और उस हास्यसे मैं बहुत प्रसन्न होती थी। यह बात आप जानते भी थे। इसीलिए आप मेरे मामासे कहा करते थे—'राधे बाबू, मैं तो बस चाय पीनेके अभिप्रायसे आया था। अब चलता हूँ।' आपका यह ढंग मुझे उस समय अच्छा नहीं लगता था, पर जब आप चले जाते थे, तब आपके इस ढंगमें मुझे एक प्रकारका कुतूहल, एक तरहकी उत्क्रान्तिका भाव देख पड़ने लगता था, इसलिए वह ढंग पहले अच्छा न लगनेपर भी, फिर कुछ प्रीतिकर-सा प्रतीत होने लगता था।

वे दिन बहुत ही थोड़े थे—केवल दो ही तीन वर्ष। फिर आप डिग्री लेकर घर चले गये। इसके बाद मेरी जीवन-धारा भी एकदमसे बदल गई। कुछ ही दिनों बाद मेरा इनके साथ विवाह हो गया। विवाहके दिनोंकी ही बात है। एक बार मेरे मामाने कहा था—'मुझे ताराके लिए वर ढूँढ़ने कहीं जाना न पड़ेगा। वह तो मैंने पहले ही से खोज रखा है।'

पहले तो नहीं, पर पीछेसे जब मेरा विवाह इनके साथ हो गया, मुझे यह भी मालूम हुआ कि मामा जिनकी बात किया करते थे, वे आप ही थे। आप ही ने, अम्मासे ही मुझे ज्ञात हुआ था, मेरे मामाके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया था। संयोगकी बात, कानपुरमें ही मैं भी आ पड़ी। ज़रा इस संयोगकी रचनाको तो देखो!

आपके दादासे मुझे कोई शिकायत नहीं है। मनुष्यका भाग्य अमिट वस्तु है। उसके लिए न आपको ही कुछ कह सकती हूँ, न और किसीको। पर यहाँ रन्नो तुम्हारी ही रट लगाये रहती है। कहती है—'चचा कितने भले आदमी हैं! वे मामूली आदमियोंसे एकदम ऊपर हैं। देखो न, यदि उनकी इतनी दया न हुई होती, तो दादा भला काहेको अच्छे हो पाते।' मैं उसकी ये बातें सुनकर चुप रहती हूँ, तो वह कहती है—'तुम तो कृतघ्न हो। कभी उनकी प्रशंसामें एक शब्द भी तुम्हारे मुँहसे नहीं सुन सकी।' लेकिन क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि जिन भावोंका उदय रन्नोकी इन बातोंसे होता है, वे क्या मेरे हृदयमें कभी उठते ही नहीं हैं!

जिन्हें आप दादा कहते हैं, उनसे तो आपका कभी परिचय था नहीं। एक दिन मुझे ही अचानक यहाँ देखकर आप मेरे घर आने लगे थे, इसलिए जब आप मेरे परिचयका उपयोग कर रहे हैं, तब क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि मेरे मामाने भी यदि उसी परिचयका आधार लिया था, तो क्या अपराध किया था? अब यदि आपसे मैं यह पूछनेका साहस करूँ कि आखिर आप मुझे अपने कर्मोंका भोग करनेसे वंचित क्यों कर रहे हैं? यह क्या, यह सहानुभूतिका समुद्र, जो आपके हृदयमें लहराया करता है, उसके भारको मेरी छातीपर लाद-लादकर आप मुझे क्यों नरकमें ठेल रहे हैं? मैं तो आपकी कोई हूँ नहीं। हम लोगोंको जीवनकी उसी निश्चित धारामें आखिर आप बहने क्यों नहीं देते? हम लोग यदि इस पृथ्वीपर जीवित ही रहेंगे, तो क्या होगा! और यदि इस भीषण तूफ़ानसे अपनी जीवन-सरितामें सदाके लिए अन्तर्हित ही हो जायँगे, तो क्या हो जायगा!

आपकी—तारा।"

[४]

ताराका एक और पत्र आया है। उसमें लिखा था—

"कृपा करके उस पत्रका कुछ खयाल न कीजियेगा। उसे फाड़ ही डालिये। उसमें मैं कुछ ऐसी बातें लिख गई हूँ, जिनके लिए मुझे बड़ा अफ़सोस है। उसमें मेरे जीवनकी कालिमा फूट निकली है। आपको भगवानने बड़ी ऊँची आत्मा दी है। एक संभ्रममें आकर मैंने उसे पीड़ा पहुँचानेकी जो चेष्टा की है, उसे आपका उदाराशय हृदय मुझे क्षमा कर देगा, इसका मुझे विश्वास है।"

चिट्ठी मेरे हाथसे छूट पड़ी। अब मेरी दृष्टि फिर उसी सघन अन्धकारमें मिल गई। इसी अन्धकारकी बात सोच रहा था। उसने लिखा है—'उसमें मेरे हृदयकी कालिमा फूट निकली है। ए री मानव-हृदयकी कालिमा, तू मेरे इस हृदयमें भी तो है। ताराने झूठ थोड़े ही लिखा है, वह मेरी होती कौन है। फिर भला मेरी सहायता वह क्यों स्वीकार करे!

आज रात-भर कुछ अच्छा नहीं लगा। खाना भी मुझसे नहीं खाया गया। गृहिणीने पूछा—"क्या लिखा है?"

मैं भला उन्हें क्या बतलाता?

फिर भी कुछ तो बतलाना ही था। कह दिया—"रन्नोके पिताकी तबीयतका हाल लिखा है। अच्छे हो रहे हैं। तुम्हें बुलाया है। चलोगी न?"

वैसे वह चाहे न भी आतीं, पर इस समय वहाँ चलनेको तैयार हो ही गईं।

× × ×

पहाड़पर आये हुए मुझे कई दिन हो गये। दादा अच्छे हो रहे हैं। आशा हो रही है कि वे अच्छे हो जायँगे। पर इधर कई दिनसे ताराको ज्वर आने लगा है। यही चिन्ताकी बात हो गई है।

इस समय तारा चारपाईपर लेटी हुई करवटें बदल रही है। और लोग सो रहे हैं। रज्जो अभी तक जगती थी, अब उसे भी सुला दिया है। गृहिणी सोनेमें सदासे तेज़ रही हैं। जगनेका उन्हें ज़रा भी अभ्यास नहीं है। लेकिन इधर कई रातोंसे उन्हें भी जगना पड़ा था। सो आज वह बिना ही कोई कार्यक्रम ते किये सो गई हैं। दादा भी चुपचाप सो रहे हैं। बहुत दिनों बाद उन्हें अब नींद आने लगी है।

मैं ताराके पलंगके पास कुर्सी लगाये बैठा हुआ हूँ। तारा मुझसे बातचीत कर रही है। पहले उसने पूछा—"चिट्ठी मिली थी ?"

मैंने कहा—"हाँ, मिली थी।"

"उसे पढ़कर आपने भला क्या सोचा होगा ?"

मैं चुप रहा।

"बोलो, आज जो कुछ भी कहना चाहते हो, कह लो। मैं बचूँगी नहीं, किसी तरह नहीं। कोई भी शक्ति मुझे अब मरनेसे नहीं रोक सकती।"

मैं उस समय अपने आँसुओंके आवेगको रोक न सका।

उसने कहा—"मेरी तबीयत भी कुछ दिनोंसे खराब रहती है। लेकिन मैंने कभी किसीसे कुछ कहा नहीं। एक दिन तो यह होनेको ही था, पर मेरी जो कर्म-रेखाएँ अभी तक सदा कुटिल प्रतिफल देती आ रही हैं, वे आज ऐसा सौभाग्य मेरे सामने कैसे खींचकर ला सकीं, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। मेरे जीवनके अवसादको तुम तो जानते हो। मैं अब चलते-चलाते 'तुम' शब्दका ही प्रयोग तुम्हारे लिए करूँगी, क्योंकि तुम मुझे सदा अपने निकट ही मिलते रहे हो। सो आज एक काम करो, ज़रा और पास आ जाओ।"

पहले तो मैं एकदम सन्न रह गया, जैसे मेरा खून अचानक जम गया हो। फिर जीवनके अतीतकी भूली-भटकी सारी तरंगमालाएँ इकट्ठी हो-होकर मेरे मानसमें हिलोरें लेने लगीं। उसने कहा—"अब मरते दम मैं अपने आपको संयत नहीं रखना चाहती। यदि यह पाप ही हो, तो वह साक्षात् महापाप होकर क्यों न रहे। किसी तरह शान्तिके साथ मेरे प्राण तो मुझे छोड़ दें। नहीं तो ये न जाने कब तक अटके रहेंगे। आओ, ज़रा मेरे पास आ जाओ।"

मैं उसके सिरहाने बैठ गया। उसने मेरी गोदमें अपना सिर रख लिया और मेरे गलेमें अपनी बाँहें डाल दीं।

उसने आँसू भर लिये—मैं रोने लगा।

उसने अपने अंचलसे मेरे आँसू पोंछ डाले, और कहा—"छि: रोते हो! काहेको रोते हो भला! मैंने तो कभी तुम्हें अपनेसे दूर नहीं समझा। हाँ, यह मनकी बात थी, लेकिन केवल अभी तक। अब वह तनकी भी बात हो गई। हो गई न ?"

मैंने समझा था, यह भावोंका आवेश है। सदा ऐसा ही थोड़े रहेगा। अभी कौन बहुत बीमार है, अच्छी हो जायगी। पर हाय रे हमारे दुर्भाग्य!—सचमुच कुछ ही घड़ियोंका यह नाटक समाप्त होते-होते उसके हृदयकी गति बातकी बातमें रुक गई! वह मेरे देखते-देखते मुझे एकटक देखती रह गई।

मैं सोचने लगा—कैसा सरल, सुकुमार और अनोखा था इसका हृदय! असीम अवसाद तो इसने दिन सहन किया, पर ससीम सुख ज़रासी देर भी न सह सकी!

—

मदरासमें हिन्दी-प्रचार

श्री हृषीकेश शर्मा

महात्मा गान्धी सफलताके मूर्तिमान स्वरूप हैं। वे जब जिस आन्दोलनका सूत्र अपने हाथमें लेते हैं, उस आन्दोलनको आशातीत और अभूतपूर्व सफलता मिलती है। आजसे कोई तेरह वर्ष पहले उन्होंने इन्दौरमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सभापति-पद स्वीकार कर सम्मेलनमें नवीन जीवनका संचार किया था। इन्दौरके चिरस्मरणीय सम्मेलनमें ही समस्त भारतके प्रतिनिधियोंके सामने हिन्दीको राष्ट्र-भाषाका गौरवपूर्ण पद प्रदान किया गया था। वहींपर मदरासमें हिन्दी-प्रचारके लिए एक योजना बनाई गई थी। संसार यह भी भलीभाँति जानता है कि गान्धीजी अपनी किसी भी आयोजनाको, जिससे देशका कल्याण होनेकी संभावना है, केवल प्रस्ताव-रूपमें पास कराकर ही अपने कार्यकी इतिश्री नहीं समझ लेते, वे उसे शीघ्रातिशीघ्र कार्यरूपमें परिणत कर डालते हैं। उन्होंने ही मदरासमें हिन्दी-प्रचारकी नींव डालकर 'सम्मेलन'को 'अखिल भारतीय' कहलानेका अधिकारी बनाया। इस समय भी मदरासका हिन्दी-प्रचार उनके दैनिक तपोमय जीवनके प्रिय विषयोंमें से है।

कुछ मद्रासके सम्बन्धमें

हालां कि हिन्दी अपनी सरलता, व्यापकता और लोकप्रियताके कारण सारे उत्तर-भारतकी सार्वजनिक भाषा—राष्ट्रभाषा—मानी जा चुकी थी, किन्तु जब हमारी नज़र दक्षिण-भारतपर पड़ती थी, तो एक विकट समस्या, जिसका हल होना टेढ़ी खीर जान पड़ता था, आकर सामने खड़ी हो जाती। ऐसा मालूम होता था, मानो मदरासमें हिन्दीका प्रचार करना हिन्दी-प्रचारकोंके लिए हिमालयकी सर्वोच्च चोटी 'माउन्ट एवरेस्ट' की चढ़ाईसे किसी तरह कम नहीं है। परन्तु महात्माजीके नामके जादूने मदरासमें (मेरा मतलब सारे दक्षिण-भारतसे है) इतने कम समयमें लाखों नर-नारियोंको, जिनमें सभी श्रेणीके शिक्षित लोग शामिल हैं, हिन्दीका पक्का हिमायती बनाकर छोड़ा। वे खूब समझते थे और मनमें अफ़सोसके साथ इस बातको महसूस भी करते थे कि जब तक हिन्दुस्तानमें पेशावरसे तूतीकोरिन तक भारतीय जनता अपने प्रान्तीय सार्वजनिक कार्य अपनी मातृभाषामें और अखिल भारतीय सार्वदेशिक कार्य राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें नहीं करने लगती, तब तक देशको पापपूर्ण पराधीनतासे छुटकारा नहीं मिल सकता। न केवल महात्मा गान्धीके ही, बल्कि देशके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके दूरदर्शी नेताओंके हृदयमें भी आपसमें व्यवहार करनेके लिए एक राष्ट्र-भाषाका अभाव बराबर खटका करता था।

इस प्रान्तका विस्तार मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन आदि चार-पाँच देशी रियासतोंको मिलाकर १,४२,६२४ वर्गमील है। जन-संख्या लगभग छः करोड़ है। कांग्रेसके मन्तव्यानुसार मदरासप्रान्त भाषाकी भित्तिपर, चार प्रदेशोंमें बँटा हुआ है। मदरासके दक्षिणी ज़िलोंमें तामिल भाषा बोली जाती है। यह भाग 'तामिल नाड' (नाड कहते हैं देशको) कहलाता है। मदराससे उत्तरमें, कलकत्ता-लाइनपर, लगभग ७०० मीलकी लम्बाई तक आन्ध्र फैला हुआ है। इस प्रदेशकी भाषा तेलगु है। कोचीन रियासत, ट्रावनकोर राज्य और ब्रिटिश मालाबार—इन तीनोंको मिलाकर केरल प्रान्त बना है, यहाँ मलयालम भाषा बोली जाती है। मैसूर स्टेट, बंगलोर, मेंगलोर, दक्षिणी और उत्तरी कनाड़ा ज़िलोंकी भाषा कनड़ी है। ये चारों भाषाएँ अपनी साहित्यिक सम्पत्तिसे भरपूर हैं। प्राचीन द्राविड़ संस्कृति साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक और भौगोलिक दृष्टिसे

भारतमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। भाषाके हिसाबसे तेलगु-भाषी आन्ध्रोंकी संख्या २½ करोड़ है, और सारे भारतमें तेलगुका नंबर बंगलाके बाद ठहरता है। उसमें प्रतिशत ६०-७० शब्द संस्कृत भाषासे आकर मिल गये हैं। प्राचीनताकी दृष्टिसे तामिल और उसका साहित्य संस्कृतसे भी पहलेका है। देशी और विदेशी विद्वानोंने खोज कर तामिल भाषा और उसके साहित्यको बिलकुल स्वतन्त्र और दस हज़ार वर्षसे पूर्वका ठहराया है। अभी कुछ समयसे संस्कृतके दस-पांच प्रतिशत शब्द तामिलमें प्रयोग होने लग गये हैं। अपने अनुभवसे मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि सारे भारतवर्षको देने लायक कई साहित्यिक सुन्दर चीज़ें इन द्राविड़-भाषी देशबन्धुओंके पास मौजूद हैं, और वे अपनी इस साहित्य-सम्पदाको हिन्दी भाषाके माध्यम द्वारा बड़ी ही आसानीसे समस्त भारतीयोंको वितरण कर सकते हैं। जिस दिन समूचा भारतवर्ष हिन्दीमें प्रवीण हो जायगा, तभी हमारा राष्ट्रीय जीवन सम्पूर्ण और समृद्ध होगा।

मदरासमें हिन्दीके प्रथम प्रचारक

इन्दौर-सम्मेलनके ढाई महीनेके बाद श्री देवदास गांधी पूज्य बापूकी आज्ञासे राष्ट्र-भाषाका झंडा लेकर मदरास पहुँचे। सन् १९१८ की १७ वीं जूनको मदरासमें श्रीमती बेसेन्टकी अध्यक्षतामें, सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरकी प्रारम्भिक वक्तृताके साथ गोखले-हालमें हिन्दीका पहला वर्ग प्रारम्भ हुआ। मदरासके लोगोंने इस कार्यमें इतना उत्साह दिखलाया कि श्री देवदासकी सहायताके लिए महात्माजीने स्वामी सत्यदेवको मदरास भेजा। इन दोनों महानुभावोंने कितना अच्छा काम कर दिखलाया, यह बतलानेके लिए सिर्फ इतना ही कहना काफी है कि उन्हींकी डाली हुई इस दृढ़ नींवपर आज मदरासमें राष्ट्र-भाषा हिन्दी प्रचारका विशाल राष्ट्रीय भवन तैयार हुआ है, जिसकी छायामें हज़ारों दक्षिण-भारतीय नर-नारी, जिनमें पांच-पांच छः-छः वर्षकी बालक-बालिकाओंसे लेकर साठ-साठ वर्षके बूढ़े तक, शिक्षित ऐडवोकेट, वकील, विद्यार्थी, शास्त्री, अध्यापिकाएँ, राजा, रईस, भद्र महिलाएँ, ईसाई और मुसलमान सभी श्रेणीके लोग हिन्दीकी शिक्षा पा रहे हैं।

महात्माजीने इधर तो इस तरह मदरासमें कार्य प्रारम्भ कराया, उधर उन्होंने ६ मदरासी युवकोंका एक दल हिन्दीमें उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिए प्रयाग भेजा। उस दलके सरदार थे वर्तमान हिन्दी-प्रचार-सभाके प्रधान मंत्री पं० हरिहर शर्मा। शर्माजी महात्माजीसे पहले ही से परिचित थे, और उनके साथ कुछ समय तक वे साबरमती-सत्याग्रह-आश्रममें तथा महात्माजीकी रंगून-यात्रामें भी साथ रह चुके थे। हिन्दीको आज इस बातका गर्व है कि श्री देवदासजी और स्वामीजीके यहांसे जानेके बादसे मदरासमें हिन्दीके प्रचारकी बागडोर मदरास ही के एक भारतीय सपूतके हाथोंमें है।

उत्तर-भारतसे भी हिन्दी-प्रचारकोंका एक दल आया। उस दलमें अपने धुनके पक्के कुछ वीर युवक थे, जो अपने हाथोंमें हिन्दीका झंडा थामकर निकल पड़े थे। दक्षिणके भी कुछ उत्साही युवक प्रयागसे हिन्दीकी पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर उसी दलमें आ मिले। इन जोशीले देश-प्रेमी युवकोंने अपनी सेवासे लोगोंमें हिन्दीका प्रेम उत्पन्न कर दिया। आज मदरासमें हिन्दी-प्रचारका कार्य उन्हींके त्याग और लगनका फल है।

प्रचारक विद्यालय

सन् १९२० की नागपुर-कांग्रेसके बाद देशमें असहयोग आन्दोलनने ज़ोर पकड़ा। भारतमें क्रान्तिका युग आरम्भ हुआ। देशमें एक छोरसे लेकर दूसरे छोर तक राष्ट्रीयताकी लहर बड़े वेगसे बह निकली। उसीमें राष्ट्र-भाषाका प्रचार भी ज्वारकी तरह बड़े ज़ोर-शोरसे उठा। हिन्दी-प्रचारकोंकी मांग चारों ओरसे इतनी बढ़ी कि उसे पूरा करनेके लिए यहींपर ट्रेनिंग स्कूल खोलकर दक्षिण-भारतीय युवकोंको हिन्दी-प्रचारक बनाना आवश्यक हो गया। सबसे पहला

विद्यालय सन् १९२१में गोदावरीके रमणीय तटपर राजमहेन्द्रीमें खोला गया। उसके बाद सन् १९२२ में पिनाकिनीके पवित्र तटपर नेल्लोरमें, १९२३ में कावेरीके किनारे ईरोडमें और १९२५ में मदरास नगरमें, सभाके संरक्षणमें 'प्रचारक विद्यालय' स्थापित हुए। उक्त तीनों विद्यालयोंसे अब तक २५० हिन्दी-प्रचारक तैयार हो चुके हैं। अध्यापक तैयार करनेमें श्री रामभरोस श्रीवास्तव, श्री अवधनन्दनजी, श्री देवदत्तजी, श्री रामानन्द शर्मा, श्री नागेश्वर मिश्र, श्री रघुवरदयालु मिश्र, श्री सिद्धगोपाल तथा इन पंक्तियोंके लेखकका विशेष प्रयत्न रहा है। इन विद्यालयोंका स्टैन्डर्ड सम्मेलनकी प्रथमा और मध्यमाके बीचका है, और दक्षिण-भारतमें ये अपने ढंगके राष्ट्रीय हिन्दी-विद्यालय निराले ही हैं। इनमें शिक्षा पाये हुए कई प्रचारक आज भी कई केन्द्रोंमें सभाकी ओरसे तथा स्वतन्त्र रूपसे प्रचार कर रहे हैं।

मदरासमें हिन्दीके सर्वप्रथम प्रचारक श्री देवदास गान्धी (दाहिनी ओर खड़े हुए)

सभाका केन्द्र कार्यालय

"कार्यालयमें कोई विशेष आडम्बर नहीं है, परन्तु यहाँके तीन-चार नित्यके कार्यकर्ता सारे दक्षिण-भारतमें जिस ढंगपर प्रचार-कार्यका संचालन कर रहे हैं, वस्तुत: वह अनुकरणीय है।...हम दक्षिण-भारतमें राष्ट्रभाषा-प्रचारके लिए बराबर उद्योग करनेवाले हिन्दी-प्रचारकोंकी सेवाको भूल नहीं सकते। सम्मेलनकी नींव है हिन्दी-प्रचार, और उसके खमीरमें हमारे प्रचारकोंका परिश्रम और उत्साह पड़ा हुआ है।"—ये आशीर्वाद-रूप शब्द हैं, जो अध्यापक रामदास गौड़ एम० ए० ने सन १९२४ की मई की 'सरस्वती' में अपनी 'मेरी दक्षिण-भारत-यात्रा' में लिखे थे।

समस्त दक्षिण-भारतमें हिन्दी प्रचारको सुव्यवस्थित रूपसे चलानेके लिए सन् १९२६ में श्री देवदासजी तथा स्वामी सत्यदेवने मदरास शहरमें 'हिन्दी-प्रचार-आफिस' के नामपर एक कार्यालयकी स्थापना की थी; परन्तु सम्मेलनके तत्कालीन प्रधानमंत्री टंडनजी और प्रचार-मंत्री पं० रामनरेश त्रिपाठीके अनुरोधसे कार्यालयका नाम 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रचार कार्यालय, मदरास" रखा गया। इस नामकरणके कारण आजसे तीन वर्ष पहले मदरास-प्रचारकी चल-सम्पत्ति और प्रेस आदिके बारेमें सम्मेलनके पिछले मंत्रि-मंडल तथा महात्माजी और जमनालालजीमें कुछ झगड़ा भी हुआ था। महात्माजीके साथ मंत्रिमंडलका मतभेद बढ़ते-बढ़ते पराकाष्ठा तक जा पहुँचा था। अन्तमें महामना मालवीयजीकी अध्यक्षतामें स्व० गणेशजीके प्रयत्नसे स्थायी समितिकी विशेष बैठकमें मदरास-हिन्दी-प्रचारका पूरा भार महात्माजीकी मर्ज़ीपर छोड़ दिया गया। महात्माजीने उसी कार्यालयका

पं० हरिहर शर्मा

'दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा' नाम रखकर संस्थाकी रजिस्ट्री कर दी। सम्मेलनने सन् १९१८ से १९२६ तक जिस दूरदर्शिताके साथ गान्धीजी और जमनालालजीके सहयोगका पूरा लाभ उठा कर—व्यवस्था, शान्तिमय कार्य-संचालन और सहृदयतासे—मदरासकी इस संस्थाको सुसंगठित रूप दे कर यहाँके हिन्दी-प्रेमियोंके हाथोंमें सौंप दिया, यह सदा प्रशंसनीय रहेगा। इससे यहाँकी जनता और नेताओंमें हिन्दी-प्रचारकी जिम्मेवारी बढ़ी, और कार्यने अपनी प्रगतिमें एक्सप्रेस ट्रेनकी चाल अख्तियार की। इसके संचालनमें श्री सत्यनारायणजीका स्थान एक विशेष महत्त्व रखता है।

पुस्तक-प्रकाशन-विभाग

हिन्दी सिखानेके लिए पुस्तकोंके प्रकाशनका विभाग हिन्दी-प्रचारके आरम्भसे ही खोला गया। दक्षिण-भारतके लिए खास ढंगकी सरल और यहाँकी तामिल, तेलुगु आदि प्रान्तीय भाषाओंकी सहायतासे हिन्दी-शिक्षाकी पुस्तकें प्रकाशित करनेकी आवश्यकता समझी गई। इसी उद्देश्यसे 'हिन्दी-प्रचार-पुस्तकमाला' नामक एक सीरीज़ शुरू की गई। इस 'माला' का पहला पुष्प स्वामी सत्यदेवकी लिखी हुई 'हिन्दीकी पहली पुस्तक' है। स्वामीजीने यह पुस्तक ऐसी नवीन वैज्ञानिक शैली और ऐसे सुन्दर ढंगसे लिखी है कि इसकी ३६ हज़ार प्रतियाँ और ग्यारह संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। सभाके अपने प्रेसमें तीन लाख पुस्तकें छपीं, और दो लाख पचास हज़ार बिक चुकी हैं। हिन्दी प्राइमरसे लेकर भिन्न-भिन्न ३६ पुस्तकें सभाने अपनी पुस्तकमालासे निकालीं। इन पुस्तकोंमें कइयोंके तो कई संस्करण निकल चुके हैं। इस कार्यके लिए दस हज़ार रुपये श्री घनश्यामदास बिड़लासे सहायता-रूपमें सभाको मिले थे। सभाका पुस्तक-प्रकाशन-विभाग स्वावलम्बी है, और यही सभाका सबसे भारी आयका मार्ग है। पं० द्वारिकाप्रसाद शर्मा (सम्मेलनके भूतपूर्व प्रधान मंत्री) महोदयने मदरास-प्रचार-कार्यका निरीक्षण कर जो सम्मति दी थी, वह भी ध्यान देने योग्य है—
"पुस्तक-प्रकाशन-कार्यमें सन्तोषजनक कार्य हुआ है, और लाभ भी हुआ है। हमारी समझसे सम्मेलनकी ओरसे दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारके सम्बन्धमें अभी तक जितना भी कार्य हुआ है, वह सर्वथा सन्तोषजनक है। हम इस अवसरपर उत्तर और दक्षिण भारतीय हिन्दी-प्रचारक कार्योंका भी कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं।"

पुस्तकालय

इसमें १६०० पुस्तक भिन्न-भिन्न विषयोंकी हैं, और ५० सदस्य हैं। अधिकांश पुस्तकें उत्तर-भारतके हिन्दी-प्रेमी प्रकाशकोंने देनेकी कृपा की है।

'हिन्दी-प्रचार-प्रेस'

जैसे-जैसे हिन्दी सीखनेवालोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी, वैसे-वैसे पुस्तकोंकी माँगको पूरा करनेके लिए एक हिन्दी प्रेस खोलनेकी आवश्यकता मालूम होने लगी। अन्य

मदरास हिन्दी-प्रचार सभाका हिन्दी प्रचारक विद्यालय
कुर्सीपर बाईं ओरसे—पं० सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ, पं० नागेश्वर मिश्र शास्त्री, पं० हृषीकेश शर्मा (प्रिन्सिपल), पं० हरिहर शर्मा (सभाके प्रधान मंत्री), एम० सत्यनारायणजी। जमीनपर बैठे हुए, दाहनी ओरसे—सिद्धनाथ पंत (मैसोरके हिन्दी प्रचारक), टी० कृष्ण स्वामी (सेलम कालेजके हिन्दी प्रोफेसर) और पं० शिवराम मोमयानी।

प्रेसोंमें पुस्तकें छपानेसे लाभ नहीं था और न समयपर पुस्तकें ही मिलती थीं। सन् १६२२ के सितम्बरमें महात्माजीकी आज्ञा लेकर यह प्रेस खोला गया। मदरास प्रान्तमें नागरी-लिपिका प्रचार बहुत कम है, और अंग्रेज़ीकी छपाईके लिए मदरास मशहूर है। सभाने इस प्रेसको खोलकर हिन्दीके प्रचारके साथ-साथ नागरी-लिपिके प्रचारका भी बीड़ा उठाया। इस कार्यमें सभाको बम्बईके सुप्रसिद्ध सेठ स्व० रामनारायण रुइयाकी धर्मपत्नी श्रीमती सुबटाबाई रुइयाने १०,६५५) की सहायता देकर अपने हिन्दी-प्रेमका परिचय दिया था। यदि श्रीमती रुइयासे यह आर्थिक सहायता न मिलती, तो शायद ही यह प्रेस इतना विस्तृत होता।

सभाकी हिन्दी परीक्षाएँ

यह सर्वसम्मत बात है कि किसी भाषाके प्रचारमें परीक्षा-प्रणालीसे भी लाभ होता है। अनुभवसे भी यह देखा गया है कि हिन्दीकी सरल परीक्षाएँ रखी जायँ तो विद्यार्थी प्रोत्साहित होते हैं। साथ ही इससे दक्षिण-भारतीयोंके हिन्दी-प्रेम और प्रचारकोंके परिश्रमका पता लग जाता है। फलतः सन् १६२२ के मार्चसे 'प्राथमिक', 'प्रवेशिका', 'राष्ट्र-भाषा', 'राष्ट्रभाषा-विशारद' और 'हिन्दी-प्रचारक' नामकी क्रमबद्ध परीक्षाएँ वर्षमें दो बार नियत की गईं। प्रथम तीन परीक्षाओंमें उत्तीर्ण सर्वप्रथम परीक्षार्थीको सभाकी ओरसे १०), १५), २०) का पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षार्थियोंमें सभी श्रेणीके शिक्षित दक्षिण-भारतीय

स्त्री-पुरुष आबाल-वृद्ध उत्साहसे सम्मिलित होते हैं। आरम्भसे अब तक गत ८ वर्षोंमें ग्यारह हज़ार परीक्षार्थी उक्त परीक्षाओंमें बैठे और दस हज़ार उत्तीर्ण हुए। इन परीक्षाओंके ११३ केन्द्र हैं। सभाका परीक्षा-विभाग भी आर्थिक दृष्टिसे स्वावलम्बी है।

सभाका मुखपत्र 'हिन्दी-प्रचारक'

इस संस्थाकी ओरसे 'हिन्दी-प्रचारक' नामक एक मुखपत्र गत ८ वर्षोंसे निकल रहा है। पहले यह पाक्षिक निकलता था, पीछेसे आर्थिक असुविधाके कारण दूसरे वर्षसे मासिक कर दिया गया। इसमें प्रचार-सम्बन्धी बातोंका विशेष विवरण, दक्षिण-भारतीयों-द्वारा लिखित हिन्दीमें लेख, कहानी, कविताएँ आदि रहती हैं। गत दो वर्षोंसे इसमें अंग्रेज़ी विभाग भी जोड़ दिया गया है। यदि उत्तर भारतके हिन्दी-प्रेमी और युवक हिन्दी-लेखक इस पत्रको पर्याप्त सहायता देने लग जायँ, तो 'प्रचारक' और भी चमक उठे, और वह दक्षिण और उत्तर भारतकी एकताका माध्यम बन जाय।

सरकारी पाठ्यक्रममें हिन्दीका स्थान

मदरास-यूनिवर्सिटीमें श्री सत्यमूर्तिके प्रयत्नसे मैट्रिक्युलेशन और इंटरमिडियेटके ऐच्छिक विषयोंमें हिन्दीने जगह पाई। मदरास-सरकारके भूतपूर्व चीफ़-मिनिस्टर डा० सुब्बरायनने अपने कार्यकालमें स्कूल फाइनलके कोर्समें हिन्दीको स्वीकार कराया। माननीय सर टी० विजय राघवाचार्यके मदरासमें 'सरकारी पाठ्यक्रममें हिन्दीका स्थान' इस विषयपर दिये हुए महत्त्वपूर्ण व्याख्यानका सरकारी शिक्षा-विभागपर अच्छा असर पड़ा। आन्ध्र-विश्वविद्यालयमें बी० ए० तक हिन्दी रखी गई है। मैसूर राज्यने अपने हाई-स्कूलके शिक्षा-क्रममें तीन अन्तिम कक्षाओंमें हिन्दी अनिवार्य कर दी है। आशा है, मैसूर-यूनिवर्सिटीमें भी बी० ए० तक वह आगामी वर्षसे अपना उचित स्थान पा जायगी। कोचीन और ट्रावनकोर स्टेटमें हिन्दीने अच्छी प्रतिष्ठा पाई है। दक्षिण-भारतकी प्राय: सभी राष्ट्रीय, म्यूनिसिपल, सरकारी तथा अर्ध-सरकारी शिक्षण-संस्थाओंमें हिन्दी सिखाई जाती है। आज आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्नाटक (इसमें मैसूर राज्य भी शामिल है) में, जहाँ हिन्दीका कोई नामलेवा नहीं था, वहाँ बड़े उत्साहसे हज़ारों आदमी हिन्दी सीख रहे हैं।

स्त्रियोंमें हिन्दी-प्रचार

बिना मातृ-शक्तिके सहयोगके कोई राष्ट्रीय कार्य सफल नहीं बनता—सत्याग्रह-संग्रामने यह अच्छी तरह दिखा दिया है। दक्षिण-भारतकी देवियोंने राष्ट्र-भाषाका जो सम्मान किया है, वह उत्तर-भारतके हिन्दी-भाषाभाषियोंके लिए गौरवकी वस्तु है। जब कभी कोई हिन्दी-प्रेमी मदरास प्रान्तमें भ्रमण करने आवें, वे हमसे मिलें, और हम उन्हें यहाँकी शिक्षित प्रतिष्ठित महिलाओं और बालिकाओंके हिन्दी-प्रेमका प्रत्यक्ष परिचय करा सकते हैं। आप देखेंगे कि अन्त:पुरोंमें आमोद-प्रमोद, घर-गृहस्थी और देश तथा समाज-सेवाकी उलझनोंमें फँसी रहनेपर भी यहाँकी देवियोंने राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी आरती करनेके लिए कितना उत्साह प्रदर्शित किया है। मैसूर, मैंगलोर, बंगलोर, एरनाकुलम, मदरास, गुण्टूर, काकिनाड़ा तथा अन्य कई नगरोंकी शिक्षित बहनोंने हिन्दी-प्रचारमें प्रत्यक्ष भाग लिया है।

जेलोंमें हिन्दी-प्रचार

आज दक्षिण-भारतमें, कांग्रेस-आन्दोलनके बाद, यदि कोई लोकप्रिय और व्यापक आन्दोलन है, तो वह है हिन्दी-प्रचार। जब राजनैतिक आन्दोलन बल पकड़ता है, हिन्दी-प्रचार उसमें घीकी आहुतिका काम करता है। हिन्दी-प्रचारक केवल भाषा ही के प्रचारक नहीं, अपितु भारतवर्षकी राष्ट्रीयताको संपूर्णताके ध्येयपर पहुँचानेवाले सैनिक भी हैं। फलत: ज्यों ही महात्माजीने सत्याग्रहका पांचजन्य शंख बजाया, त्यों ही सभाके कार्यको जारी-भर रखनेके लिए कम-से-कम जितने कार्यकर्ताओंको बाहर रहना चाहिए था, उनको छोड़कर बाक़ी सभी प्रचारक सत्याग्रह-समरमें सम्मिलित

मंगलोरके हिन्दी विद्यार्थी, जो गत फरवरी मासमें सभाकी परीक्षामें सम्मिलित हुए।
बीचमें कुर्सीपर—हिन्दी-प्रचारक पं० देवदूत बैठे हैं।

हुए। उन्होंने जेलके नियमोंका पालन करते हुए जिन राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं और नेताओंको बाहर रहते समय हिन्दी सीखनेकी फुर्सत न मिली थी, उन्हें जेलके अन्दर हिन्दी सिखाई। गत वर्ष मद्रास-प्रान्तके त्रिचनापली, कडलोर, केन्नानोर, राजमहेन्द्री और बेलोर जेल हिन्दी-विद्यालय बन गये थे। सभाके संस्थापक और सरक्षक बापूका इशारा था कि जब महायज्ञकी पूर्णाहुतिकी आवश्यकता होगी, तो कोई भी हिन्दी-प्रचारक अपना बलिदान दिये बिना बाहर खाली न बैठा रहेगा। केवल बेलोर सेंट्रल जेलमें ही 'ए' 'बी' क्लासके सैकड़ों सत्याग्रही कैदियोंको श्री हरिहर शर्मा तथा उनके कुछ मित्रोंने हिन्दी सिखाई। दिसंबरसे मार्च तक चार-पाँच मासमें अढ़ाई हज़ारकी हिन्दी पुस्तकें उसी एक जेलमें शर्माजीके द्वारा बिकीं। सरकारने आन्ध्र, तमिल, केरल, कर्नाटक और उड़ीसा प्रान्तोंकी सत्याग्रही देवियोंके लिए एक नया जेल बेलोर ही में बनवाया है। उसमें श्रीमती जी०दुर्गाबाई अम्मा, श्रीमती रुक्मिनी लक्ष्मीपति बी० ए० तथा आन्ध्रकी अनेक शिक्षित बहनोंने हिन्दी सीखी और सिखाई। बहन दुर्गाबाईने इस सत्याग्रह-संग्राममें गज़बका साहस दिखाया। जेलोंके अधिकारियोंने भी जेलोंके अन्दर हिन्दी-प्रचारमें सराहनीय सहयोग दिया। जेलोंमें हिन्दी वर्ग खोलने, हिन्दीकी पुस्तकें वितरण कराने और सत्याग्रही कैदियोंको हिन्दी सीखनेकी सुविधा देनेमें उनका पूरा-पूरा हाथ रहा है।

कराची-कांग्रेस और हिन्दी

अबकी बार कराची-कांग्रेसने दक्षिण-भारतीय नेताओंकी आँखें खोल दीं। कांग्रेसमें देखा गया कि जिस नेताके पास हिन्दी—हिन्दुस्थानी—में बोलनेकी शक्ति है वही जनताको अपनी तरफ़ खींच सकता है। श्री सत्यमूर्ति आदि नेताओंने भली-भाँति देख लिया है कि वे अपनी स्पीच हिन्दीमें देते तो उत्तरभारतकी राष्ट्रीय प्रजा उनकी बातोंको अच्छी तरहसे

समझ सकती थी। कराची-महासभाने हिन्दीकी राष्ट्रीयताको पूरे सोलह आने साबित कर दिया है। जो नेता या राष्ट्रसेवक भारतके इस राष्ट्रीय युगकी भाषा हिन्दीसे अपरिचित रहेगा, वह एक तरहसे भारतवर्षके राष्ट्रीय जीवनसे अपनेको बहिष्कृत कर लेगा। यदि दक्षिण-भारतके नेता हिन्दीमें प्रगति नहीं करेंगे, तो राष्ट्रीय एकतामें विघ्न डालनेका भारी पाप उनके सिरपर पड़ेगा, यह बात अब अंग्रेज़ीमें धुआधार स्पीच झाड़नेवाले सत्यमूर्तिजी भी हृदयंगम कर चुके हैं। अभी उस दिन कराचीमें विषय-निर्धारिणी-समिति (सब्जेक्ट कमेटी) में गांधीजीने मदरासी नेताओंकी हिन्दी अनभिज्ञतापर जो खरी फटकार बतलाई, वह तरोताज़ा बनी हुई है।

उपसंहार और भावी कार्यक्रम

गत बारह वर्षोंमें सभाने जो कार्य किया है, उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

अभी तक जिन्होंने हिन्दीका अभ्यास शुरू किया	४,००,०००
,, ,, हिन्दीका कामचलाऊ ज्ञान पाया	२,५०,०००
,, जो हिन्दी परीक्षाओंमें सम्मिलित हुए	११,०००
,, ,, ,, ,, उत्तीर्ण हुए	१०,०००
,, सभाके अपने प्रेसमें पाठ्य-पुस्तकें छपीं	३,००,०००
,, सभाकी पुस्तक बिक्री हुई	२,५०,०००
,, सभा द्वारा उत्तर-भारतके पुस्तक-प्रकाशकोंकी विविध पुस्तक बिक्री हुई लगभग	२,५०,०००
,, *सभा-द्वारा प्रकाशित पुस्तकें* ...	३५
,, द० भा० के जिन केन्द्रोंमें प्रचार हुआ	४००
इस समय द०भा०के जिन केन्द्रोंमें प्रचार हो रहा है	१५०
,, *सभाके अन्दर प्रचार हो रहा है*	२५
,, स्वतन्त्र रूपसे प्रचारक काम कर रहे हैं	१२५
इस समय तक सभाने हिन्दी-प्रचारक तैयार किये	२५०
अभी तक मदरास-प्रचारमें खर्च किये गये रुपये	२,५०,०००)
,, उत्तर-भारतसे जमनालालजी आदि द्वारा प्राप्त रुपये	१,५५,०००)
,, दक्षिण-भारतसे प्राप्त हुए रुपये	६५,०००)

यदि कोई निष्पक्ष जाँच-कमेटी कभी मदरास-प्रचारका समीक्षण करे, तो वह स्वयं अनुभव कर सकती है कि सभाके कार्यमें दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है। इस समय जो कार्य हो रहा है, वह बड़ा ही आशाप्रद है। सभाके प्रचार-कार्यकी प्रगति दो बातोंसे आसानीसे जाँची जा सकती है; एक सभाकी छमाही परीक्षाओंमें परीक्षार्थियों तथा केन्द्रोंकी वृद्धिसे, दूसरी सभाकी पुस्तकोंकी बिक्रीसे। दक्षिणभारत भरमें जितना हिन्दी-प्रचारका कार्य हो रहा है, उसको केन्द्रीकरण करनेका अधिकार इसी संस्थाको है और रहना चाहिए। किसी बाहरी संस्थाको इसके कार्यमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। सभाको भी उसमें अपनी सारी शक्ति खर्च कर देनी चाहिए।

आगेका प्रोग्राम किस तरह पूरा किया जा सकता है, नीचे कुछ संक्षेपमें सूचित कर मैं इस लेखको समाप्त करता हूँ।

(१) कांग्रेसके सदस्यों, विशेषकर आल इंडिया कांग्रेस कमेटीके सदस्योंको हिन्दी अनिवार्य रूपसे सिखाई जाय।

(२) सभाकी तरफसे एक हिन्दी-नाट्य-समिति स्थापित की जाय, जो दक्षिण-भारतके शहरों और क़स्बोंमें घूम-घूमकर हिन्दीके ललित-कला-प्रदर्शक उत्तम नाटक खेले और जिससे लोगोंको शुद्ध हिन्दीका उच्चारण सीखने तथा हिन्दीके वातावरणमें रहनेका अवसर मिले।

(३) उत्तर-भारतसे प्रसिद्ध गायनाचार्यों, हरिकथा करनेवालों और कीर्तनकारोंको बुलाकर इस प्रान्तमें दौरा कराया जाय।

(४) यहाँके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों और क्षेत्रोंमें हिन्दी-पुस्तकालय स्थापित किये जायँ। इस कार्यमें उत्तर-भारतके प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशकोंको सहायता देनी चाहिए।

(५) मदरास प्रान्तके हिन्दी-प्रेमियोंका संगठन किया जाय।

(६) हिन्दीके प्रख्यात विद्वान् व्याख्यानदाताओंसे बड़े-बड़े शहरोंमें धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक विषयोंपर हिन्दीमें व्याख्यान दिलाये जायँ, और आवश्यकता हो तो उनके अनुवाद तमिल तेलुगु आदिमें कराये जायँ।

आर्थिक सहायतादाताओंको धन्यवाद

दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारकी वृद्धिके लिए बम्बईकी अग्रवाल-महासभासे ५० हज़ार, श्री घनश्यामदास बिड़लासे १० हज़ार, श्री आनन्दीलाल पोद्दारसे १० हज़ार और श्रीमती रुइया सुबराबाईसे १० हज़ार रुपये प्राप्त हुए हैं। रंगूनके डा० मेहता प्राणजीवनजी हिन्दी-प्रचार कार्यके आरम्भसे अब तक बराबर ५०) प्रतिमास सहायता देते जाते हैं। श्री जमनालालजीके मदरास-भ्रमणमें स्थानीय धनी-मानी श्री रामनाथ गोएनका, श्री कार्यसिंह मेहता, श्री जीवनलालजी, श्री मोतीलालजी, श्री गोपीकृष्ण गोकुलदासजी और श्री नागेश्वरराव पन्तुलसे जो ११ हज़ारके लगभग सहायता मिली थी, सभा उसके लिए सादर अपना आभार प्रदर्शित कर आगे भी सहायताकी अपील करती है। पूज्य बापूजीके निम्न-लिखित शब्दोंमें मैं इन पंक्तियोंको समाप्त करता हूँ :—

"जो भारीसे भारी, बड़ेसे बड़ा कार्य है, वह पूरी तरह मन लगाकर करनेसे एक या दो वर्षमें बड़ा सरल हो जायगा। धन, शरीर, बुद्धि और आत्मा चाहिए। यदि ये चारों मिल जायँ, तो आदर्शकी सिद्धि हस्तामलकवत् हो जाती है।"

हिन्दीमें दो पुस्तकोंका अभाव

श्री श्रीराम शर्मा, बी० ए०

यदि किसी प्रकार यह सम्भव हो सके कि लक्ष्मण और सीताके साथ धनुषधारी राम मनुष्य-रूपमें अपने जन्मस्थान अयोध्यामें थोड़ी देरके लिए आ सकें, तो कदाचित वे दु:खी होकर खूनके आँसू बहावेंगे और भारतवर्षकी वर्तमान अधोगति, हिन्दुओंकी कायरता और आदर्शहीनता उनके लिए असह्य हो जायगी। अवधपुरीकी दीवारोंपर 'धातुपुष्ट', 'अमृतधारा', 'सुधासिन्धु' और चायके विज्ञापन पढ़कर आदर्शवादी राम अपने अनुयाइयोंकी रुचिका पता लगा लेंगे और कदाचित् अन्तर्धान होनेका प्रयत्न करेंगे।

राम देहरूपमें दर्शन दें चाहे न दें। रामकी अवधपुरी भले ही मिट जाय। उनके जन्मस्थानको—उस स्थानको जहाँ माता कौशल्याने उन्हें जन्म दिया था—कुत्ता और कौआ भले ही अपवित्र करें, पर जब तक रामायण है—और वह सर्वदा रहेगी—तब तक रामकी कीर्ति अमर है। रामायणमें रामके चरित्रका ऐसा अनूठा वर्णन है, उनके जन्मसे लेकर मरण तककी सभी घटनाओंका ऐसा सजीव चित्र है कि वह भीतरी आँखसे ओझल नहीं हो सकता।

× × ×

पर यदि घट-घटवासी राम सुरसरिकी ललित धाराकी ओर भूले-भटके निकल आवें, तो वे उसमें विशेष परिवर्तन न पावेंगे। यह माना कि वर्तमान सभ्यताके कीटाणु—मिलें और फैक्टरियोंकी चिमनियाँ—कानपुर, प्रयाग, काशी, पटना आदि नगरोंमें पतितपावनी गंगाको कलुषित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, और हरद्वार जैसे पुण्यतीर्थमें धर्मके ठेकेदारोंने कुटिया न बनाकर भोग-विलासके प्रासाद बना रखे हैं; पर गंगामें एक विशेष शक्ति है—एक सत है, जो सतयुगसे आज तक क़ायम है। उसके जलकी स्वास्थ्यवर्धक शक्ति अब भी उतनी ही बनी है। उसकी पापनाशिनी शक्ति अब भी उतनी ही समझी जाती है, जितनी कि सगरके पुत्रोंके समय समझी जाती थी। गंगा रामके कालमें भी

मैया थी। द्वापरमें भी वह उतनी ही बलवती थी और कलियुगमें—हिन्दुओंके अध:पतन कालमें—भी उसमें कमसे कम उतनी शक्ति तो है ही, जितनी पादरीके बपतिस्मामें। मुसलमानी कालमें तो हिन्दुओंको गंगाने ही बचाया। ज़बरदस्ती कोई मुसलमान बना लिया गया, तो गंगाका एक ग़ोता उसे पवित्र कर सकता था। आजकल भी गंगाकी शपथ कोई चीज़ है। गंगाजली उठानेमें आध्यात्मिक भाव दिया हुआ है। गंगा एक शक्ति है। उसके जलकणमें विद्युत है। उसके नामसे श्रद्धा है।

गंगा सब कुछ है, पर क्या गंगापर कोई सुन्दर पुस्तक है? अबसे सत्रह वर्ष पहले मैंने 'टेम्स' नदीपर एक पुस्तक पढ़ी। कितना सुन्दर वर्णन था! कैसे आकर्षक चित्र थे! कदाचित एक-एक फर्लांगका वर्णन था। पानीका तापमान, उसके किनारेकी जड़ी-बूटियाँ और उसमें विचरनेवाली मछलियाँ और टेम्सपर स्थित सुन्दर भवनों सभीका तो मनमोहक वर्णन था। जर्मनीकी राष्ट्रीय नदी राइनपर ऐसा ही साहित्य पढ़ा, पर बहुत ढूँढ़नेपर भी हिन्दीमें गंगापर कोई बढ़िया पुस्तक न मिली। माहात्म्य मिला। दो-एक शिखरिणी छन्दोंको भी घोक लिया। 'गंगावतरण' पढ़ा। स्कन्दपुराणको श्रद्धासे पढ़ा, और एक बार गंगोत्तरी और गोमुखकी यात्रा भी की। गंगोत्रीके नीचे भैरव घाटीमें बैठकर गंगा-सम्बन्धी आलंकारिक भाषा समझनेका प्रयत्न भी किया, पर मेरा प्रयास-शकट आगे न बढ़ सका। विचारके कोमल धागे टूट गये। मेरा भगीरथ प्रयत्न गंगावाले भगीरथ प्रयत्नके सम्मुख करोड़का एक अंश भी न था।

हाँ, टिहरी सार्वजनिक पुस्तकालयमें, जिसके वर्गीकरणमें मैंने यथेष्ट समय लगाया था, एक पुस्तक एक अंग्रेज़की लिखी मिली। पुस्तक सन् १८३७ की प्रकाशित थी। उसमें गोमुखसे शायद टिहरी या हरिद्वार तकका वर्णन है। लेखकने गंगाके किनारे-किनारे यात्रा की थी।

अब पुराने रोनेसे कोई लाभ नहीं। मैं केवल इतना ही लिखना चाहता हूँ कि हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए यह बड़ी लज्जाकी बात है कि गंगापर कोई ऐसी सचित्र पुस्तक नहीं, जिसमें गंगाका गोमुखसे गंगासागर तकका सचित्र वर्णन हो। उसके किनारेकी जड़ी-बूटियोंके नाम तथा गुण, भिन्न-भिन्न स्थानोंकी गहराई, एक-एक फर्लांगपर पानीका तापमान क्या है, उसमें कौनसी मछलियाँ पाई जाती हैं, कितने और कौनसे मगर पाये जाते हैं, गंगा द्वारा कौन-कौनसे व्यापार होते हैं, गंगाके आसपास योगके परिमाणु क्यों पाये जाते हैं, और गंगातटके सुन्दर दृश्य—इन सब बातोंका वर्णन पुस्तकमें होना चाहिए।

धनी लोगोंने धर्मशालाएँ बनवाई हैं। क्षेत्र खोले हैं। और भी बहुत-कुछ किया है, पर किसी एकने या अनेकोंने मिलकर यह नहीं किया या करवाया कि गंगापर एक सुन्दर पुस्तक लिखी जाय।

गंगापर ऐसी पुस्तक लिखना एक आदमीका काम नहीं है। छः-सात आदमी मिलकर गोमुखसे गंगासागर तककी यात्रा करें। यात्रा करनेवाले अपने-अपने विषयके पंडित होने चाहिए। फ़ोटोग्राफर भी चाहिए। यह कार्य एक दिनका नहीं है, पर है करने लायक़।

× × ×

दूसरी बात जो मुझे खटकती है, वह है 'गाय' पर हिन्दीमें किसी अच्छी पुस्तकका न होना। अंग्रेज़ीमें कितनी सुन्दर पुस्तकें गायके ऊपर हैं। साधारणसे साधारण अंग्रेज़से पूछिये कि विलायती गायके कितने भेद हैं, वह गायके विषयमें कुछ-न-कुछ ज्ञान रखेगा। गाय, गंगा, गायत्री और गीतावालोंसे तनिक पूछिये कि हिन्दुस्तानमें कितने प्रकारकी गायें हैं, तो वे न बता सकेंगे! देशके अनेक कार्यकर्ताओंसे पूछिये कि सिंधी और हरियानेकी गायमें क्या भेद है, तो वे भी कुछ न बता सकेंगे। फेडरल स्कीम (Federal Scheme) पर शायद वे राय दे सकें, संयुक्त-निर्वाचनपर वे ओजस्वी भाषामें आपसे विवाद कर सकें और केनेडा और अफ्रिकाकी शासन-प्रणालीमें वे पारंगत

मिलेंगे ; पर किसानोंकी कामधेनु गायके बारेमें उनका ज्ञान शून्यके बराबर होगा ! अभी हालमें लार्ड-सभामें दूधपर बहस हुई । कितना सुन्दर वाद-विवाद था । अंग्रेज़ लोग स्वतन्त्र है । उन्हें हमारे समान झंझट नहीं है । हम लोग ग़रीबीकी वैतरणीमें पड़े हुए विपत्ति और दुःखके साँप और बिच्छूसे डँसे जा रहे हैं । यह ठीक है, पर गो-प्रचार बिना हमारी और भी अधोगति होगी । इस दरिद्रताकी वैतरणीके लिए भी गायकी पूँछका ही सहारा चाहिए । गो-महिमा हम जानते हैं । बात चलनेपर आकाश-पातालके कुलाबे मिलावेंगे । बकरीदपर आवेशमें आकर मूढ़ फुड़ौअल कर डालेंगे, पर गो-कुलकी उन्नति और वृद्धिके लिए कुछ न होगा । अनेकोंको यह तक नहीं मालूम कि गाय भैंससे अधिक दूध देती है ! गायके प्रति हमारा व्यवहार बड़ा ही लज्जास्पद हैं । एक बार मेरे एक अंग्रेज़ मित्रने अपनी बढ़िया गायें दिखाकर मुझसे कहा—"I am a true Gopal." —मैं सच्चा गोपालमें हूँ । लज्जासे आँखें नीचे करके मैंने कहा—'ठीक है ।"

गत अप्रेल मासमें मैं प्रयागके समीप नैनी-कृषि-संस्था देखने गया । प्रिंसिपल डा० सैम हिगनबौटमने अपनी गायें दिखाईं । दो गायें बैठी हुई थीं । बूढ़े पादरीने गायकी पीठपर हाथ फेरा, और गायसे बोला—"Little lady, come on. Show up. Some gentlemen have come to see you." (छोटी महिला, आ, कुछ सज्जन तुझे देखने आये हैं ।) कैसा सद्व्यवहार था ! और हम लोग ? पहले तो हम स्वयं कुछ नहीं रहे, और तिसपर गायके प्रति हमारा व्यवहार और भी पापमय है । मैं गायको इन पंक्तियोंमें धार्मिक दृष्टिसे नहीं देख रहा हूँ, वरन् आर्थिक दृष्टिसे, और इसी दृष्टिसे मैं चाहता हूँ कि गायके ऊपर हिन्दीमें एक सुन्दर पुस्तक लिखी जानी चाहिए, जिसमें भारतवर्षमें पाई जानेवाली सभी प्रकारकी गायोंके बढ़िया चित्र हों । तुलनात्मक दृष्टिसे भिन्न-भिन्न भेदोंपर प्रकाश डाला जाय । अच्छी और बुरी गायकी पहचान, गो-पालनके साधारण नियम, भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें विशेष प्रकारकी गायकी आवश्यकता आदि विषयोंपर विशद व्याख्या होनी चाहिए ।

ग़रीब किसानके लिए अच्छी गाय रखनेमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं, पर अमीर हिन्दुओंके लिए अच्छी गाय रखनेमें कौनसी कठिनाई है ? बम्बई और कलकत्तावाले कह सकते हैं कि गाय बाँधनेके लिए स्थान नहीं है । कितनी लचर बात है ! मोटर रखनेके लिए तो गैरेज और ड्राइवरका प्रबन्ध हो सकता है, पर बढ़िया गायके लिए हिन्दुओंके घरोंमें स्थान नहीं ! पहले तो दूधका पीना ही छोड़ रहे हैं और डाक्टरका बिल बढ़ा रहे हैं—और यदि पीते भी हैं, तो ग्वालोंके घरका । ग्वालोंके घर जाकर देखो गायोंकी कितनी दुर्दशा है ! मरे और सूखे बच्चोंको चाटकर गाय दुही जाती है । ठोंक-पीटकर उसको दुहा जाता है । बच्चेके लिए हुँकनेपर उसपर डंडे पड़ते हैं ! ऐसी गायका दूध कितना श्रेयस्कर हो सकता है, पाठक स्वयं सोच लें । वर्षोंका मेरा अनुभव तो यह है कि हिन्दू अंग्रेज़ोंकी अपेक्षा गायके प्रति अधिक क्रूर हैं । इंग्लैंडके धनी-मानी लोग गोपालनका व्यवसाय करते हैं । हज़ारों पौंडोंकी एक एक गाय और एक-एक साँड़ रखते हैं ।

हिन्दीके लिए यह गौरवकी बात होगी कि गायपर कोई सुन्दर पुस्तक लिखी जाय । ऐसी पुस्तकसे साहित्यकी वृद्धि भी होगी और किसानोंका लाभ भी ।

वर्तमान गुजराती साहित्य

श्री जेठालाल जोशी

अब यह बात निश्चित रूपसे तै हो चुकी है कि भारतके सर्वसाधारणकी राष्ट्रीय भाषा हिन्दी ही है। भविष्यमें वह दिन निकट है, जब हमारी उच्च शिक्षा तथा प्रजाकीय संस्थाओंका माध्यम हिन्दी होगी। ज्यों-ज्यों हिन्दीका अधिकार बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसे भी अपने सब अंगोंको पूर्ण कर लेना चाहिए। यदि हिन्दीने अपने भंडारको सुसमृद्ध न बनाया, तो उसे देशकी अन्य भाषाओंके सामने शर्माना पड़ेगा। हिन्दीको अपना साहित्योद्यान अत्यन्त विशाल करना होगा। भारतके सभी प्रान्त हिन्दीकी ओर नेत्र लगाये हैं।

हिन्दी चूँकि समस्त भारतकी राष्ट्र-भाषा बनना चाहती है, इसलिए उसका यह परम कर्तव्य है कि उसके साहित्यिक देशकी समस्त भाषाओंकी मौलिक कृतियोंसे अवगत हों, उन्हें प्रत्येक देशी भाषाके साहित्यका ज्ञान हो, उसकी विशिष्टताएँ मालूम हों और वे सब भाषाओंके सौन्दर्य और इतिहाससे भलीभाँति परिचित हों। इसी बातको दृष्टिमें रखकर वर्तमान गुजराती साहित्यका संक्षिप्त परिचय देनेकी चेष्टा करता हूँ।

गुजराती साहित्यके इतिहासको हम चार भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—(१) प्राकृत काल—रासोका युग, (२) आदिकाल—मीराबाई और नरसिंहका भक्तयुग, (३) मध्यकाल—प्रेमानन्द, शामल तथा दयारामका युग और (४) वर्तमान काल। यहाँ हम केवल वर्तमान कालपर ही विचार करेंगे। इस कालको हम तीन विभागोंमें विभक्त कर सकते हैं—(१) प्रारम्भिक काल, (२) विकास-काल और (३) गान्धी-युग। सुविधाके लिए विकाश-काल पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। समयानुसार इसका विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—सन् १८५० से १८८०-८५ तक प्रारम्भिक काल, १८८०-८५ से १९००-१९०५ तक विकास पूर्वार्द्ध तथा १९००-०५ से १९२० तकका विकास उत्तरार्द्ध और १९२० से गान्धी-युग। इस लेखमें साहित्यके क्रमविकासका ही दिग्दर्शन-मात्र है।

गुजरातीके अर्वाचिन साहित्य-युगका प्रारम्भ नर्मदाशंकर और दलपतरामसे होता है। उस समय अंग्रेज़ी शिक्षाका कुछ-कुछ प्रचार हो चला था, परन्तु उसका प्रभाव नहींके बराबर था। इस सम्मिलन कालमें नर्मदाशंकर और दलपतरामने अपनी साहित्य-सेवा द्वारा गुजराती जनताको स्वदेश-प्रेमका पाठ सुनाया। इस प्रारम्भिक युगमें पुराने रीति-रिवाजोंके प्रति घृणा और नये सुधारोंकी ओर झुकाव दिखाई पड़ता है। स्वदेश, स्वदेशी तथा यन्त्रोंका दुष्परिणाम आदि राष्ट्रीय तत्त्व और भाव दृष्टिगोचर होते हैं। नर्मदाशंकर और दलपतराम भिन्न स्थानोंके तथा भिन्न विचारोंके थे, परन्तु दोनोंका प्रवाह एक ही दिशामें अग्रसर होता है। नर्मदाशंकर अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त थे, तो दलपतराम संस्कृत और ब्रजके विद्वान थे। दोनोंकी विचार-प्रणाली भिन्न थी, परन्तु ध्येय एक ही था। नर्मदाशंकर गर्म विचारके राष्ट्रीय और स्वात्माभिमानी थे। दलपतराम स्थिर, व्यवहार-कुशल, मध्यमार्गी और राज्याश्रित थे। नर्मदाशंकर निर्भीक सुधारक और स्पष्टभाषी थे, दलपतराम मधुर हितकर बात कहते थे। दोनों गद्य और पद्यके निर्माता थे। वर्तमान गुजराती गद्यके जन्मदाता नर्मदाशंकर थे और दलपतराम पद्यके। नर्मदाशंकरके पहले रणछोड़दास भाईने कुछ भूमिका तैयार की थी, परन्तु साहित्यिक विशिष्टताओंसे युक्त गद्यका प्रारम्भ नर्मदाशंकर भाईने किया। नर्मदाशंकरकी काव्य-रचना भी अच्छी थी, परन्तु वे मुख्यत: गद्यकार ही थे। उन्होंने ऐतिहासिक एवं धार्मिक ग्रन्थ रचनाओंके द्वारा गद्यको पुष्ट किया।

धार्मिक विचारोंमें उनसे तत्कालीन धर्ममीमांसाका दिग्दर्शन होता है। उनकी भाषा स्पष्ट, चोखी, सरल, गम्भीर और ओजस्विनी होती थी। भाषामें संस्कृतपन, आडम्बर और ग्रामीणताका सर्वथा अभाव था। यद्यपि उनके समकालीन अच्छी भाषा लिखते थे, परन्तु नर्मद गद्य-शैली ही निराली थी। उनकी कविता वीररस और स्वदेश-भक्तिसे भरी हुई होती थी। उनकी कवितामें कृत्रिमता और कला न होती थी। दलपतरामकी कविता सीधी और सरल होती थी। सभारंजन करना उनका मुख्य हेतु था। कविताका विषय सामान्य और तत्कालीन जनताके मानसका द्योतक होता था। इस प्रारम्भिक कालमें उत्तम गद्यशैलीका यश नवलराम भाईको दे सकते हैं। उनके गद्यमें कृत्रिमता, आडम्बर और पांडित्यका सर्वथा अभाव है, फिर भी भाषा प्रौढ़, गम्भीर तथा ओजस्विनी है। नवलराम-शैली शान्त होनेपर भी उत्साही और उन्मादिनी है। उनके गद्यमें रसिकता और मस्ती है। उनकी लिखावटमें एक भी शब्द ऐसा न मिलेगा, जो वृथा ही रखा गया हो। वे न केवल एक अच्छे गद्यकार ही थे, बल्कि वे एक उच्च कोटिके निष्पक्ष समालोचक भी थे। उनकी समालोचना मार्गसूचक और नीर-क्षीर-विवेकपूर्ण होती थी। उनका स्थान सत्समालोचककी हैसियतसे गुजराती साहित्यमें सर्वश्रेष्ठ है।

इस प्रारम्भिक कालके अन्य साहित्य-महारथियोंमें भोलानाथ, महीपत, नन्दशंकर मनसुखराम, रणछोड़ भाई, झवेरलाल व्रजलाल शास्त्री और भगवानलाल मुख्य हैं। भोलानाथ साराभाईने तत्कालीन गद्यकी जो दो शाखाएँ हो गई थीं—एक हिन्दुओंकी और दूसरी पारसियोंकी—उनको परिमार्जित करनेकी दृष्टिसे मध्य मार्गको ही स्वीकृत किया, और उत्तम गद्यका आदर्श उपस्थित किया। महीपतराम भाईने 'वनराज चावड़ो' नामक साधारण कोटिका उपन्यास लिखकर उपन्यास-साहित्यका श्रीगणेश किया, परन्तु उपन्यास-साहित्यके प्रारम्भ करनेका यश नन्दशंकर भाईको ही दिया जायगा। उन्होंने 'करण घेलो'की रचना की, और प्रौढ़ भाषा तथा वर्णनशैलीका परिचय कराया। मनसुखराम भाई और झवेरभाईने अनुवाद-कार्य द्वारा गुजराती साहित्यकी सेवा की। रणछोड़लाल भाईने नाट्य-साहित्यकी बुनियाद डाली। उनका 'ललिता दुःखदर्शन' एक सामाजिक दुःखान्त नाटक है। इस भाँति वर्तमान साहित्यकी नींव नर्मद दलपत युगमें डाली गई, और फिर धीरे-धीरे उसपर विशाल भवनका निर्माण हुआ।

अब हम विकास-कालके पूर्वार्द्धमें आ पहुँचते हैं। यहाँ हमें गोवर्द्धनराम भाई और मणिलाल नथुभाई द्विवेदीके दर्शन होते हैं। यह युग गद्य-विकासका युग था। वर्तमान साहित्यमें गद्यकी प्रौढ़ता स्पष्ट नज़र आती है। अंग्रेज़ी शिक्षाका प्रचार फैल चुका था। ये दोनों बी० ए० तथा एल-एल० बी० तक शिक्षित थे। अंग्रेज़ी साहित्यका प्रभाव पड़ चुका था। हमारे इस युगके दृष्टाओंने इस प्रभावका अच्छा लाभ उठाया और अपने साहित्यको एक नया रूप दिया। गोवर्द्धनराम भाईने अपनी अपूर्व कल्पनाशक्ति द्वारा 'सरस्वतीचन्द्र'को जन्म दिया। 'सरस्वतीचन्द्र' इस युगकी महान् कृति है। हम इसमें प्राचीन आर्य भावना, वर्तमान जनसमाज और पाश्चात्य अंग्रेज़ी शिक्षाके प्रभावकी त्रिवेणीके दर्शन करते हैं। लेखकने अपनी अद्‌भुत कल्पना, चरित्र-निर्माण और सूक्ष्म विचारशक्ति-द्वारा इसे गुजराती साहित्यमें अपूर्व स्थान दिलाया है। इस कृतिको हम विश्व-साहित्यमें स्थान दे सकते हैं। 'सरस्वतीचन्द्र'की भाषा दुरूह, परन्तु तेजस्वी, प्रौढ़ और आनन्ददायक है। शैली आकर्षक है। इस कृतिके निर्माणसे दुनियाको विदित हो गया कि गुजराती भाषा भी एक सजीव भाषा है। इस उपन्यासमें जीवनकी विविध समस्याओंका समावेश है। गृहजीवन, राजस्थानी कलह आदिकी मीमांसाके साथ-साथ यह उपन्यास तत्कालीन कुरीतियोंको कुचलनेकी चेष्टा करता हुआ भारतकालीन आदर्श तक पहुँचता है। उपन्यास क्या है, चार भागोंमें विभक्त एक बृहदाकार मानव-जीवनकी भिन्न-भिन्न वृत्तियोंका स्वरूप है। गोवर्द्धनराम भाईकी कविता भी इसी कोटिकी होती थी।

मणिलाल नथुभाई द्विवेदी तत्त्वचिन्तक कवि, प्रौढ़ गद्यकार तथा सत्समालोचक थे। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। बालाशंकर सरीखे मित्रके सहवाससे उनपर सूफीवादका रंग चढ़ गया था। उनका 'गुलाबसिंह' प्रौढ़ गद्यशैलीका नमूना है। वे 'सुदर्शन'के सम्पादक भी थे। 'सुदर्शन' शिष्ट समाजका प्रिय पत्र था। मणिभाई नाटककार भी थे। उनकी 'कान्ता' साहित्यिक दृष्टिसे उत्तम नाटक है। अपनी कम उम्रमें भी उन्होंने गुजराती साहित्यकी खूब सेवा की है।

इस गोवर्द्धन-मणिलाल युगमें हम 'कान्त', कलापी, बालाशंकर, नरसिंहराव भाई, कमलाशंकर हरिलाल और डाह्याभाई जैसे समर्थ साहित्य-स्रष्टाओंके दर्शन करते हैं। बालाशंकरकी गज़लें हृदयको हिला देनेवाली होती थीं। 'कान्त'की कविताएँ वात्सल्य तथा भक्तिरससे शराबोर होती थीं। उनके 'वसन्त-विजय' तथा 'सागर अने शशि'का नरसिंहराव भाई जैसे कवि श्रेष्ठने अपनी हृदय-वीणामें अनुकरण किया है। कान्तकी कविता सौन्दर्यका नमूना है। शब्द और अर्थका सम्मिलन अपूर्व हुआ है। 'कलापी' कविताके प्रेमी और अच्छे कवि थे। उनका 'केकारव' अच्छी काव्य-कृति है। कान्त और कलापीके साथ हम 'मस्त' कविके दर्शन भी करते हैं। हरिलाल भाई प्राच्य-विद्याविशारद थे। वे 'चन्द्र'के सम्पादक थे। उनका 'कुंजविहार' राष्ट्र-भक्तिका उत्तम नमूना है। उन्होंने भाषान्तर द्वारा और स्वतंत्र काव्य-रचना द्वारा गुजराती साहित्यको समृद्ध किया है। कमलाशंकर त्रिवेदी भण्डारकरके समकक्ष संस्कृतके भारी विद्वान थे। उन्होंने बृहत् व्याकरणकी रचना करके गुजराती साहित्यके एक विशेष अंगकी पूर्ति की है। डाह्याभाई बुलबुल् काव्यके नाते गुजराती साहित्यप्रेमियोंमें प्रिय हैं।

नरसिंहराव भाईने अपनी 'हृदयवीणा' 'कुसुममाला' तथा 'नूपुर-झंकार'में वर्ड्सवर्थका प्रकृति-सौन्दर्य और टेनिसनकी विशालता ला रखी है। 'महाभिनिष्क्रमण' काव्य उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इस युगके 'कान्त' और नरसिंहराव ही कवि हैं, जिनका अनुकरण आवश्यक था। नानालाल भाईके साहित्योद्यानमें अवतीर्ण होने तक ये ही युगके प्रतिनिधि कवि हैं। नरसिंहराव भाई अपनी वृद्धावस्थाके कारण और साहित्यिक प्रवाह सदैव समान न बहनेके कारण आजकल चाहे काव्य-रचना न भी करते हों, परन्तु वे सच्चे हृदयसे ज़मानेके साथ हैं। अभी गान्धीजीके कांची-प्रस्थान करते समय उन्होंने कहा था—

''यत्र योगेश्वरो गान्धी यत्र वल्लभोधनुर्धरः
तत्र श्रीविजयोर्भूति ध्रुवानीति मतिर्मम।''

वे एक अच्छे कवि, समर्थ भाषा-विज्ञानवेत्ता तथा श्रेष्ठ समालोचक हैं। उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र भाषाविज्ञान ही बना लिया है।

विकास-कालके उत्तरार्द्धमें प्रवेश करनेके पहले हमें एक ऐसा व्यक्ति देख पड़ता है, जिसने पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों कालोंको अपनी सेवा द्वारा ऋणी किया है। यह व्यक्ति है रमणभाई महीपतराम। गुजराती साहित्यमें उनका स्वतन्त्र और निराला स्थान है। गुजराती साहित्यके वे हास्यरसावतार हैं। आपका 'भद्रंभद्र' हास्यरससे भरपूर है। वे केवल हास्यरसके ही आचार्य नहीं हैं, वरन् उत्तम नाटककार, कवि और समालोचक भी हैं। उनका 'राईना पर्वत' गुजराती साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ नाट्य-कृति है। नवलराम भाईके बाद गुजरातीके निर्भीक साहित्य-समालोचकोंमें वे ही प्रथम हैं। उनका 'कविता और साहित्य' नामक ग्रन्थ उत्तम विवेचना-साहित्य है।

अब हम विकास-कालके उत्तरार्द्धमें आते हैं। यहाँ हमें नानालाल भाई, आनन्दशंकर ध्रुव, केशवलाल हर्षदराम ध्रुव, कृष्णलाल झवेरी, खबरदार, ललित, कन्हैयालाल मुन्शी और बलवंतराम कल्याणराम ठाकोरके दर्शन होते हैं। इन सबमें नानालाल भाई इस कालके प्रतिनिधि कवि हैं।

आप ही साहित्यिक भावना-जगतके सम्राट् हैं। ललितजी तथा खबरदारका स्थान भी आपकी कोटिका ही है।

केशवलाल भाईकी सेवा विकास-कालके पूर्वार्द्धसे प्रारंभ होती है और अब तक जारी हैं। गुजराती साहित्यमें अनुवादके आवश्यक अंगको पूरा करनेवालोंमें उनका स्थान ही सर्वश्रेष्ठ है। उनका 'गीतगोविन्द' बड़ा सुन्दर अनुवाद है। मुद्राराक्षस, भास आदि नाटकोंका भी उन्होंने अनुवाद किया है। प्रत्येक नाटकके प्रारम्भमें उनकी खोजपूर्ण भूमिकाने उनका नाम गुजराती साहित्य तथा इतिहासमें अमर कर दिया है। उनका भाषापर अधिकार, सूक्ष्म तत्त्वान्वेषक बुद्धि तथा साहित्यानुराग अपूर्व है।

साहित्यमें आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुवका अपना स्थान है। वे भारतके तत्त्व-चिन्तकोंमें प्रथम श्रेणीके हैं। वे उत्तरार्द्ध कालके साहित्य और गान्धी युगकी समस्याओंके अच्छे आलोचक हैं। उनका वसन्त' इस युगके विकसित उत्तरार्द्ध कालका सर्वप्रथम विचारक पत्र है। 'सुदर्शन' के बाद 'वसन्त' ने ही गुजराती साहित्यकी अच्छी वृद्धि की है। अभी 'वसन्त' रजतमहोत्सव-द्वारा उनका योग्य सम्मान किया गया था। कृष्णलाल झवेरीने अपने 'गुजराती भाषाना मार्गसूचक स्तम्भ' में गुजराती साहित्य सेवकोंका परिचय दे, एक विशिष्ट अंगकी पूर्ति की है।

नानालाल भाईका स्थान इस युगके साहित्य-स्रष्टाओंमें प्रथम है। उन्होंने अपनी प्रतिभा-द्वारा गुजराती साहित्यको औरका और ही कर डाला है। वे स्वतन्त्र विचारके निर्भीक साहित्य-महारथी हैं। उन्होंने अपनी शैलीके कारण साहित्यमें उथल-पुथल मचा दी है। उनका गद्य और पद्य निराला ही है। इस युगमें उन्हींकी भावनाका दौरदौरा था। उन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा-द्वारा पचासों रत्नोंकी सृष्टि की। उनका 'रास' गुजराती संस्कृतिका एक अपूर्व नमूना है। 'रास' और 'गरबा' ये दोनों गुजराती जनता और संस्कृतिकी अपूर्व विशिष्टताएँ हैं। प्राचीन आर्य संस्कृति और गुजरातके गौरवके वे सच्चे पुजारी हैं। उनकी 'उषा' सच्ची गुजराती महिलाका आदर्श है। नानालाल भाईने नाटक, कहानी, उपन्यास, रास, महाकाव्य आदिमें सभी साहित्यिक अंगोंको पुष्ट बनाया है। उनके नाटक स्टेजपर चाहे सफलतासे न खेले जा सकें, परन्तु वे भावना और काव्य-कलासे भरपूर हैं। इस महान् पुजारीकी 'जया-जयन्त', 'इन्दुकुमार', 'राजर्षि भरत', 'उषा', 'विश्व-गीता', 'शाहजहाँ', 'सम्राट् अकबर', 'नूरजहाँ', 'कुरुक्षेत्र' तथा 'रास' आदि पचासों कृतियोंने गुजराती साहित्योद्यानको सुवासित कर रखा है। गुजराती साहित्य-स्रष्टाओंमें वे ही सर्वप्रथम हैं, जिनका स्वर्ण-महोत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया गया हो।

ललितजी और खबरदार इस युगके प्रथम पंक्तिके कवि हैं। खबरदार दलपत-स्कूलके कवि हैं। इस युगमें वे वीररसके प्रतिनिधि कवि हैं। वर्तमान जनताके मानसको वे अपनी कविता-द्वारा उत्साहित करते रहते हैं। ललितजीकी कविता मधुर वात्सल्य-रस पूरित और ईश्वरीय प्रेमपूर्ण है। ललितजी और खबरदार विकसित उत्तरार्द्धको पार करके इस नवीन युगमें भी जमानेके साथ हैं।

कन्हैयालाल मुन्शीका प्रभाव गद्य साहित्यमें खासा है। गुजराती उपन्यासकारोंमें उनका दर्जा बहुत ऊँचा है। वे उम्दा कहानी और निबन्ध-लेखक तथा नाटककार भी हैं। उनकी फिलासफी यदि कुछ बढ़ी-चढ़ी होती और भाषाकी शुद्धतापर योग्य ध्यान दिया जाता, तो वे गुजराती साहित्यके महान् साहित्य-स्रष्टा माने जाते। वे गुजरातके गौरवके सच्चे पुजारी हैं। उन्होंने अपनी अपूर्व कल्पना, प्रभावशाली चरित्र-चित्रण वृत्तान्त-बाहुल्य और आकर्षक शैलीसे गुजरातको मुग्ध कर लिया है।

इस विकसित उत्तरार्द्ध और गान्धी-युगके समर्थ साहित्य स्रष्टाओंमें बलवन्तराय ठाकोरका स्थान बहुत ऊँचा है। उनका क्षेत्र नाटक, गद्य, कविता, इतिहास और समालोचना है।

'सोनेट'का गुजरातीमें दर्शन करानेवालोंमें उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उनका आदर्श बहुत ऊँचा है। वे काव्यमें कलापर विशेष ध्यान देते हैं। अच्छे कहानी और नाटक-लेखक होनेके साथ साथ उनमें कुछ ऐसे गुण भी हैं, जो उन्हें वर्तमान साहित्य-समीक्षकोंमें ऊँचा स्थान दिलाते हैं। वे ही एक ऐसे समालोचक हैं, जिन्होंने नवयुवकोंको योग्य मार्ग दिखलाकर प्रोत्साहित किया है। उनकी भाषामें कुछ क्लिष्टता होती है, यदि उसे निकाल दिया जाय, तो उनकी साहित्यिक भाषा बड़ी गम्भीर और विषयानुसारिणी होती है।

साहित्य अब केवल मनोविनोदका गौण अंग नहीं रहा, परन्तु अब उसका ध्येय जातिको नया जीवन प्रदान करना और इस गिरी दशासे उसका उद्धार करना है। नानालाल भाईमें हम इस ध्येयके दर्शन कर सकते हैं, परन्तु अब उनका युग भी समाप्त हो चुका। गोवर्द्धनरामसे लेकर सन १९२० तक ऐसे ही साहित्य-महारथी हुए, जो राज्याश्रित तथा सामाजिक ऊँच-नीच और कुलीनताके भावोंमें रंगे हुए थे।

गत दस-बारह वर्षोंमें भारतीय जीवनमें गहरी क्रान्ति हो गई है। साहित्यपर तो इसकी गहरी छाप पड़ी है। इस नवीन जीवन-युगका प्रभाव सभी प्रान्तीय साहित्योंपर पड़ा है। यह युग स्वतन्त्र भारतका निर्माता है।

इस अपूर्व युगके निर्माता हैं संसारके सर्वश्रेष्ठ महापुरुष गान्धीजी। महात्माजीके समान चरित्रवान् व्यक्ति ही विश्व-साहित्यके निर्माता होते हैं। गुजरातीके सौभाग्यसे इस महान् साहित्य-स्रष्टाकी मातृभाषा गुजराती है। गुजराती भाषा आप जैसे पुजारीको पाकर धन्य हो गई है। गुजराती साहित्यमें 'नवजीवन' का वही स्थान होगा, जो संस्कृतमें गीता और हिन्दीमें तुलसीका है।

इस जीवन-युगमें 'नवजीवन' और नवजीवनकारकी ही प्रधानता है। महात्माजीके जीवन और लेखनीने भारतीय साहित्यपर बड़ा प्रभाव डाला है। कवि, उपन्यासकार और निबन्ध-लेखक—सभीपर उनका प्रभाव दिखाई देता है। वर्तमान कविता-साहित्यको रामनारायण भाई, देशलजी परमार, सुन्दरम्, सुन्दरजी बोटाई, चमनलाल गान्धी, इन्दुलाल गान्धी, कृष्णलाल सिधराणी, स्नेहरश्मि आदि अपनी कवित्व-शक्ति-द्वारा खूब सेवा कर रहे हैं। वर्तमान युग मासिक पत्रोंका युग है। मासिकोंमें ही इन महानुभावोंके दर्शन होते हैं।

उपर्युक्त महानुभावोंमें रामनारायण भाई अच्छे 'सोनेट' लिखते हैं। बलवन्तराय भाईके सोनेटका असर होता है। देशलजी परमारकी भावना राष्ट्रीयताके आदर्शसे भरी हुई है। सुन्दरम् और सुन्दरजी बोटाई अच्छे कवि हैं। गान्धी भाई देशलजी भाईके अनुसरणपर चलते हैं। केशव ह० शेठने अपनी कविता और रासके द्वारा गुजराती साहित्यकी अच्छी सेवा की है। संक्षेपमें इस युगकी कवितामें बाहुल्य चाहे न हो, परन्तु कवित्व-शक्तिके दर्शन अच्छी तरहसे होते हैं।

वर्तमान गद्य प्रौढ़ गद्य है। महात्माजीने 'नवजीवन'-द्वारा गद्यको बहुत ही सरल, स्वाभाविक और बोधगम्य बना डाला है। उनकी भाषा साफ-सुथरी और मँजी हुई अन्त:स्तल तक बैठ जानेवाली होती है। काका साहब अच्छे गद्यकार हैं, निबन्ध-साहित्य और विचारकोंमें उनका स्थान ऊँचा है। वर्तमान युगके गद्यकारोंमें विजयराय कल्याणराय वैद्य, रामनारायण भाई पाठक, महादेवभाई देसाई, अम्बालाल बालकृष्ण पुराणी इत्यादि महानुभावोंने अच्छी उन्नति की है, परन्तु उत्कृष्ट गद्यका नमूना महात्माजीका ही है।

इस जीवन-युगके सत्समालोचकोंमें बलवन्त कल्याणराय ठाकोर, रामनारायण पाठक, विजयराय कल्याणराय वैद्य, विश्वनाथ भट्ट, चुनीलालका वर्द्धमानशाह और भट्टभाई अच्छे समालोचक हैं। बलवन्तराय ठाकोरका स्थान भी इस क्षेत्रमें बहुत ऊँचा है।

कहानी इस युगकी विशिष्टता है। गुजराती साहित्यमें इस ढंगकी कहानी लिखनेका प्रारम्भ कोई पैंतीस-छत्तीस वर्ष पूर्व हुआ था। आजकल धूमकेतु और द्विरेफका स्थान कहानी-लेखकोंमें सर्वप्रथम है। उनमें प्रेमचन्दकी-सी प्रतिभा है। अन्य गुजराती कहानी-लेखकोंमें प्रमुख मलयानिल,

राममोहन राय, रणजीतराम, केशवप्रसाद, रमणभाई, भोलिया जोशी, धनसुखलाल, मस्त फकीर, नारद, उमरवाडीया, लीलावती, रायचुरा, मेघाणी और इन्दुलाला हैं। गुजरातीमें मौलिक उपन्यासोंका अभाव ही है। हाँ, 'कौमुदी' में धारावाहिक निकलनेवाले 'दिव्यचक्षु' को हम इस युगके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें स्थान देंगे।

गुजरातीमें नाट्यकारोंकी संख्या बहुत कम है। उमरवाडीया, यशवंत पांड्या, चन्द्रशंकर मेहता, कन्हैयालाल मुंशी और गजेन्द्रशंकर पांड्या अच्छे नाट्यकार कहे जा सकते हैं।

गुजरातने मोन्टोसोरी पद्धतिके अनुसार शिशु-शिक्षाका प्रारम्भ कर दिया है। तद्विषयक साहित्य भी तैयार हो रहा है। इस क्षेत्रमें दक्षिणामूर्तिका कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उक्त संस्थाके कार्यकर्ता गिजुभाई, ताराबेन, नृसिंह प्रसाद (नानाभाई) इत्यादि महानुभावोंने तथा गांडीव-प्रकाशन मन्दिरने बाल-साहित्यको जन्म देकर इस अंशकी पूर्ति की है।

लोक-साहित्य और ग्राम-साहित्यके लिए झवेरचन्द मेघाणी और रायचुराने विशेष प्रयत्न किया है। वर्तमान साहित्य-दर्शन हमें मासिक पत्रोंमें अच्छी तरह हो सकता है। गुजराती पत्रिकाओंमें अपनी स्वतन्त्र विशिष्टता है। 'बीसवीं सदी' और 'समालोचक' जैसे उच्च कोटिके पाश्चात्य ढंगके मासिकोंने गुजराती साहित्य-समृद्धिका संवर्धन करनेमें अपना सर्वस्व लगा दिया था। 'वसन्त' और 'बुद्धिप्रकाश' अच्छी सेवा कर रहे हैं। 'बुद्धिप्रकाश' कोई सत्तर-पचहत्तर वर्षका पुराना पत्र होते हुए भी अपना स्थान रखता है। 'वसन्त'का रजत महोत्सव कोई दो वर्ष पहले मनाया गया था। यह भी शिष्ट समाजका पत्र है, परन्तु इस युगके प्रथम श्रेणीके पत्रोंमें 'प्रस्थान', 'कौमुदी', 'कुमार', 'नवचेतन', 'साहित्य' इत्यादि हैं। ये पत्रिकाएँ गुजराती साहित्यको अपने स्थायी साहित्य-सृजन द्वारा पुष्ट बनानेमें अच्छा हिस्सा लेती हैं। 'प्रस्थान' क्रान्तिकारी पत्र है। इसके सम्पादक और संचालक हास्यरसके सरस लेखक रामनारायण पाठक हैं। 'कौमुदी' शिष्ट साहित्य-जगत्का उत्कृष्ट नमूना है। इसकी गुर्जर राष्ट्रकी टिप्पणियाँ राजनैतिक क्षेत्रमें स्वतन्त्र विचारके नमूने हैं। इसके सम्पादक और संचालक विजयराय कल्याणराय वैद्य गुजरातीके एक अच्छे समालोचक और साहित्यिक हैं। वे प्रवास-वर्णन और चित्र-दर्शनके अच्छे लेखक हैं। उनकी भाषा गम्भीर, प्रौढ़ और सजीव होती है। 'कुमार' ने नौजवानोंकी रुचि सुधारनेमें अच्छा कार्य किया है। रविशंकर रावल गुजरातके अच्छे कलाकारोंमें से एक हैं। 'साहित्य' भी मट्टुभाईकी देखभालमें अपना कार्य कर रहा है। 'पुस्तकालय'का स्थान ही निराला है। यह वर्तमान गुजराती साहित्य और पुस्तकालयोंका योग्य परिचय दिलानेवाला पत्र है। ऐसे पत्रकी हिन्दीमें बहुत ज़रूरत है। 'नवचेतन' बृहत गुजरातके संस्कृति-प्रेमका ज्वलन्त उदाहरण है। इसका प्रकाशन गुजरातसे सुदूर कलकत्तेमें होता है। बर्मा, अफ्रिका तथा कराचीसे भी गुजराती पत्र निकलते हैं। 'शारदा', 'चित्रमय जगत', 'गुणसुन्दरी', 'स्त्रीबोध', 'बालक', 'बालमित्र' और 'बालजीवन' अपने-अपने क्षेत्रमें योग्य कार्य साधन करते हैं। 'साबरमती', 'पुरातत्व-मन्दिर' भी उच्च कोटिके स्थायी साहित्यमें वृद्धि करनेवाली पत्रिकाएँ थीं। 'गुणसुन्दरी' और 'स्त्रीबोध' महिलाओंके लिए स्वतन्त्र पत्रिकाएँ हैं। 'बालक', 'बालजीवन' और 'बालमित्र' आठ-दस वर्षके बच्चोंके लिए बड़े उपयोगी पत्र हैं।

वर्तमान राष्ट्रीय संग्रामका केन्द्र आज कोई बारह वर्षसे गुजरात ही है। गुजरातीमें 'नवजीवन' अद्वितीय साप्ताहिक पत्र है। 'सौराष्ट्र' निर्भीक पत्रोंमें अपनी कोटिका एक ही है। 'सौराष्ट्र' की देशी रियासतोंसे हमेशा मुठभेड़ हुआ करती है। हिन्दीमें राजपूतानेको ठिकानेमें लानेके लिए ऐसे ही पत्रकी आवश्यकता है। गुजराती वर्तमान पत्रोंमें 'प्रजाबन्धु', 'गुजराती-पंच', 'गुजराती प्रताप', 'कैसरे हिन्द', 'चित्रमय जगत' इत्यादि साप्ताहिक पत्र हैं। 'प्रजाबन्धु', 'गुजराती पंच' शिष्ट नागरिकोंके पत्र हैं। 'बम्बई-समाचार'

गुजरातीमें सर्वश्रेष्ठ दैनिक पत्र है। यह पत्र सर्वथा राष्ट्रीय महासभाका पत्र है। यह कोई एक सौ वर्ष पुराना पत्र है।

साहित्य-प्रचार करनेमें कुछ संस्थाओंने भी खूब कार्य किया है। 'नवजीवन'-कार्यालयने सस्ती और अमूल्य ग्रन्थमाला द्वारा साहित्य-वृद्धिमें आदर्श कार्य किया है। गुजरात-विद्यापीठने भी योग्य साहित्य-संवर्धन किया है। उसका 'कोश' गुजराती भाषाका गौरव है। 'सौराष्ट्र', दक्षिणामूर्ति, गांडीव, चटोतर, राज्य नेशनल सोसाइटीके, प्रस्थान की ग्रन्थमालाओंने इस दिशामें खूब उत्साह दिखाया है। ज़मानेकी गतिविधिका अनुशीलन कर सभी प्रकारका ग्रन्थ-प्रकाशन होता रहता है। एक बात अवश्य खटकती है कि साहित्यका प्रचारक-कार्य कुछ मन्द है।

हाँ, हिन्दीवालोंको चाहिए कि जिस भाषाके पुजारी महात्माजी जैसे हों, उसके साहित्यका हमेशा निरीक्षण करते रहें, और जिन तत्त्वोंको आवश्यक समझें, अपनाते रहें।

स्वतन्त्र पत्रकारके प्रयोगके कुछ अनुभव

श्री उदित मिश्र

'विशाल-भारत' के फरवरीके अंकमें 'स्वतन्त्र पत्रकारका प्रयोग' शीर्षक लेख मैंने दो बार पढ़ा। लेखके अन्तमें आत्म-विज्ञापनवाली बात भी पढ़ी। उस लेखके विषयमें इतना ही कहना काफी होगा कि लेखक महोदयने ऐसा लिखकर हमारे जैसे आदमियोंके लिए एक नया रास्ता दिखलाया है। इसमें बहुतसी बातें मेरे लिए नई हैं। उन बातोंका अनुभव मुझे नहीं था। मैं भी कभी सोचता था कि लेख द्वारा जीविका चल सकती है, पर मेरे सोचनेका तरीक़ा भिन्न था। उसमें मैं बहुत सफल भी हुआ। सम्भवतः परिस्थितिके अन्तरसे ऐसा हुआ, क्योंकि रोटीकी चिन्ता और परिवार-पालनकी भयकर कठिनाईका अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ। लेख लिखनेमें एक बात मेरे ध्यानमें पहले भी आती थी और अब भी आती है कि लेख अच्छा होना चाहिए, फिर स्थान मिलनेमें देर न होगी। अगर लेख कामिल न होगा, तो छप जानेसे भी क्या लाभ? इसीलिए माँगे अथवा बिना माँगे मैंने पत्रोंमें जो लेख भेजे, उनके छपने या न छपनेकी चिन्ता भी छोड़ दी। मुझे स्मरण नहीं है कि आज तक मैंने कोई ऐसा लेख भी लिखा हो, जो न छपा हो, और न यही याद है कि किसी भी सम्पादकसे कभी बिगड़ी हो।

ऐसी प्रवृत्तिका कारण सम्भवतः यह रहा हो कि मैं उन लेखोंपर निर्भर नहीं करता था। मेरे मनमें तो यह बात थी कि मेरे लेख पत्रोंमें छप जाते हैं, यही ग़नीमत है। यह मुझे पता था कि लेखोंपर पैसा भी मिलता है, क्योंकि सन् १९१२ में जबलपुरके पं० नर्मदाप्रसाद मिश्रने 'हितकारिणी' में मेरे कई लेख छापे, और बिना माँगे, पुरस्कार भेजा था। उनसे मेरा कभीका परिचय भी नहीं था। गत वर्ष मैं जबलपुर गया था, तब उनसे भेंट हुई। उन्होंने हिन्दीकी सेवा करके धन कमाया है, यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

पं० कृष्णकान्त मालवीयने 'मर्यादा'में मेरे कई दर्जन लेख निकाले। मेरे भाग्य अच्छे हैं। मुझसे आज तक जितने सम्पादकोंसे भेंट हुई, उनसे मेरी बड़े प्रेमसे निभी। पं० कृष्णकान्तकी तारीफ़ करनेमें दिलको चैन मिलता है। उन्होंने मेरा खूब उत्साह बढ़ाया। उस समय 'मर्यादा' के 'मालवीय' की मर्यादा खूब बढ़ी थी। पं० रामनारायण

मिश्रने जो इस समय काशीके सेन्ट्रल हिन्दू हाई स्कूलके हेड मास्टर हैं, मुझे लेख लिखनेके लिए अवसर और उत्साह दिया। वे मौलिक विचारक और सदाचार-प्रचारक हैं। उनके सत्संगसे मुझे बड़ा लाभ हुआ, और मेरा झुकाव ऐसे लेख लिखनेकी ओर अधिक हुआ जिससे हमारा जीवन बने। अब मैं लेखको बहुत विस्तार न देकर अपनी सफलताकी कहानी प्रारम्भ करता हूँ।

पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे काशीसे 'नवनीत' निकालते थे। आजसे सोलह-सत्रह वर्ष पहलेकी बात है। मेरा उनका वहीं साथ हुआ। 'नवनीत' में लिखनेके लिए उन्होंने मुझको अवसर दिया। गर्देजीने अच्छा हृदय पाया है। पं० कृष्णकान्त मालवीय और गर्देजी ये दोनों ही स्नेहकी मूर्ति हैं। अपने पत्रके लेखकोंको अपना परिवार समझते हैं। दोनोंकी दो कथाएँ मैं इस लेखमें देनेका उद्योग करूँगा।

'मर्यादा' में मेरा एक लेख छपा। मैं अपना लेख 'ग्रामीण' नामसे छपाया करता था। पं० कृष्णकान्तजीके एक आदरणीय मित्रने लेखकका नाम माँगा। लेख उनके मित्रकी समालोचनामें था। समालोचना सद्भावसे और संयत भाषामें लिखी गई थी। पंडितजीने नाम बतानेसे साफ़ इनकार कर दिया। मित्र भी 'मर्यादा' के लेखक थे। उन्होंने नाराज़ होकर अपना लेख लौटा लिया, और क्या-क्या लिखा मुझे मालूम नहीं। इसका मुझे कुछ भी पता नहीं था। अमृतसरके कांग्रेस-अधिवेशनमें जब पंडितजीसे भेंट हुई, तब ये सारी बातें मालूम हुईं।

गर्देजी दैनिक 'भारतमित्र'के सम्पादक थे। मैं पत्रका संवाददाता था। दिल्लीमें मुझे संवाद भेजनेका अच्छा अवसर मिला। मौलाना शौकतअलीसे मैंने लगातार चार-पाँच दिन तक दो-दो, तीन-तीन घंटे बातें कीं। विषय तबलीग़, हिन्दू-संगठन, मसजिदके सामने बाजा, हिन्दू-मुसलिम मनोवृत्ति इत्यादि था। मुलाक़ातके अन्तमें मैंने सार्वजनिक कामकी जितनी बातें थीं, उनको लिखकर मौलानाकी मंजूरीके साथ 'भारतमित्र' में भेज दिया। बातचीतमें और बातोंके अतिरिक्त मौलानाने कहा था—"यदि हमारे हिन्दू भाई अपनी ख़ुशी और आनन्दमें मग्न होकर मसजिदके सामनेसे बाजा बजाते गुज़रते हों, तो हम मुसलमानोंका फ़र्ज़ है कि उनकी ख़ुशीमें शरीक हों, न कि उसका विरोध करें।"

मौलानाकी बातचीत 'भारतमित्र'में छपते ही अख़बारोंने उसको उद्धृत किया। उसका काफ़ी प्रभाव पड़ा। मौलानाको मियाँ लोगोंने दबाया। वे खिसकने लगे और उन्होंने उसका खण्डन छपाया। मैंने 'बातचीत' के समर्थनमें दूसरा लेख भेजा। मौलानाने गर्देजीको लिखा। गर्देजीने उन्हें जवाब दिया—"मुझे अपने संवाददाताकी सत्यतामें तिलमात्र भी सन्देह नहीं। उन्होंने जो लिखा है, सही और दुरुस्त है। संवादकी एक लाइन भी काटने योग्य नहीं है।"

मौलाना बड़े हैरान हुए। गर्देजीको लिखा—"अब इस कांडको यहीं समाप्त कर दीजिये—मैं संवाददातासे दिल्लीमें मिलकर बातचीत कर लूँगा।"

वे दिल्ली आये। मुझसे भेंट हुई। बड़े तपाकसे मिले। उन्होंने मिलते ही कहा—"भाई, उस बातचीतका कुछ लोग नाजायज़ फ़ायदा उठाने लगे, इसलिए मैंने खंडन छपा दिया, अब अन्त करो।"

मैंने कहा—"आपने ग़ालिबका शेर जब सुनाया था—

'नुक़साँ नहीं जुनूँ में बलासे हो घर ख़राब,
सौ गज़ ज़मींके बदले बियाबाँ गराँ नहीं॥'

तब मैंने समझा था कि आप तो बड़े शेरदिल हैं। इस तरहसे आप खिसक जायँगे, इसका मुझे अनुभव नहीं था।"

ख़ैर, यह बात यहीं छोड़नी चाहिए। मतलब गर्देजीकी दृढ़ता दिखलानेका था। पं० कृष्णकान्तजी या गर्देजीको क्या पैसेके लिए लेख भेजे गये थे? नहीं, पर पैसे मिले और ख़ूब मिले। कालम और पेजका हिसाब मुझे नहीं मालूम, पर मैं तो बिना कालम और पेजका हिसाब किये हुए

आज भी दोनों सम्पादकोंकी जेब खाली करा सकता हूँ। प्रेम और सहृदयताका तकाज़ा मोल-भावसे ऊपर है।

सम्पादकों और लेखकोंका ऐसा सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए। यदि सम्पादकके पास पैसा हो और लेखकको आवश्यकता हो, तो उसका फर्ज़ लेखककी सहायता करनेका है; पर जो लेखक पैसा न ले, उसके परिश्रमकी प्रतिष्ठा सम्पादकके दिलमें अवश्य होनी चाहिए। ऐसे सहृदय सम्पादकोंका नाम लिख देना अनुचित न होगा, जिनसे सम्पादकके नाते मुझसे भेंट हुई—आचार्य प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, स्वर्गीय प० रामजीलाल शर्मा, साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा, स्वर्गीय डा० केशवदेव शास्त्री इत्यादि।

इनमें द्विवेदीजी और पं० पद्मसिंहजी दो जो जीवित हैं, और जिनपर हिन्दीवालोंको अभिमान होना चाहिए, उनसे मिलनेपर और उनके पत्रोंको पढ़नेसे हृदय आह्लादित होता है। वे मिलनेवालोंके सामने अपने विशुद्ध व्यवहारका परिचय देते हैं। वे साहित्यकी मूर्ति हैं।

यहाँ पं० ज्वालादत्त शर्माका नाम न देना अनुचित होगा। वे 'प्रतिभा' निकालते थे। जैसे शर्माजी विलक्षण व्यक्ति है, वैसी ही उनकी 'प्रतिभा' थी। उसमें मेरे कई लेख छपे। पं० ज्वालादत्तजी अपने पत्रों द्वारा मेरे लेखोंकी जो दाद देते थे, वह इमदादसे करोड़ों गुना बढ़कर थी।

बीकानेर स्टेटमें जब मैं Deputy Inspector of Schools था, उस समय 'मरुभूमि-महिमा' नामक लेखमाला निकल रही थी। वहाँ मुझे मारवाड़ियोंमें क्या दोष हैं, यह देखनेका अवसर नहीं मिला। उनके गुण ही गुण दिखलाई दिये। शिक्षा-संस्थाएँ, पुस्तकालय और सार्वजनिक सेवाके कार्य वहाँ मैंने अधिक देखे।

मरुभूमि, मतीरा, मारवाड़ी; मारवाड़ी, मतीरा, मरुभूमिमें अनुप्रास देखकर मैंने महिमा शब्द ढूँढ़ा, और वहीं 'मंगल-मार्ग' पुस्तक लिखी। यह सब काम पैसेकी परवाह किये बिना ही किया गया।

मैं सफल कैसे हुआ

दिल्लीमें ऐसे लोग मिले, जो मेरे लेखसे पैसा कमाते थे, इसलिए मुझे हिन्दी लिखकर पैसा कमानेका चस्का दिल्लीमें लगा। दिल्लीमें तीन ऐसे अखबार निकलते थे; जिनको मैं लेख देता था और लेखका दाम वसूल कर लेता था। इसके अतिरिक्त 'ट्रैक्ट' भी लिखनेका काम था। इस प्रकार ६०) मासिक तककी आमदनी हो जाती थी, अपना काम जो मैं करता था, उसके अतिरिक्त यह आमदनी थी।

मेरे छोटे भाई श्री बलवन्त मिश्र 'हिन्दी-प्रभाकर' भी मेरे साथ रहते थे। उनसे मुझे खूब मदद मिलती थी। वे खुशखत हैं, मैं जल्दी लिखनेवाला हूँ। मेरे लेखोंकी प्रतिलिपि और छोटी-मोटी ग़लतियोंको वे सुधार देते थे।

उन दिनों मैं दिल्लीके माडर्न स्कूलमें अध्यापक था। यह स्कूल हिन्दुस्तानमें अपने ढंगका एक है। इसके संस्थापक लाला रघुवीर सिंह हैं। वे रईस हैं और धनवान भी, पर मेरी दृष्टिमें वे अपने सिद्धान्तके पक्के, बातके धनी और सत्यता-प्रेमी हैं। इन्हीं गुणोंके कारण मेरा उनसे बड़ा प्रेम है। मैंने उनका स्कूल छोड़ दिया, पर उन्होंने मुझसे स्नेह नहीं छोड़ा। जब मिलते हैं, गले लगाते हैं। मैं उनको कंधे तक उठा लेता हूँ और गद्गद कंठोंसे उनका कुशल-मंगल पूछता हूँ। इस प्रकार प्रेमसे मिलनेवाले श्री रघुवीर सिंहके बाद या तो मि० ऐण्ड्रूज़ हैं या स्वर्गीय प्रिन्सपल रुद्र थे।

उन दिनों मेरा ध्यान चारों ओर था। तीन प्राइवेट पत्रोंको लेख लिखना, ट्रैक्ट लिखना और 'भारतमित्र' को संवाद भेजना। इनके अतिरिक्त स्कूलका काम सँभालना और साथ ही सबमें सफल होना।

कोई मीटिंग नहीं छूटती थी। कभी-कभी सारांश और कभी-कभी पूरा व्याख्यान भेजनेका मुझे शौक था। महात्मा गान्धीके व्याख्यानको अक्षरशः भेजनेकी मुझे धुन थी। जिस दिन खाली रहता, उस दिन इंटरव्यू (Interview) लेनेका साधन सोचता। इस प्रकार मैं महात्मा गान्धी,

स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू, स्वर्गीय लालाजी, देशबन्धु दास, श्री केलकरके अतिरिक्त मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, स्वर्गीय हकीम साहब, डा० अन्सारी, डा० सैयदमहमूद, अलीबन्धु, ख्वाजा हसन निज़ामी, डा० किचलु, मि० आसफ़ अली, इत्यादि मुसलमान लीडरोंके खयालात पत्रोंमें भेजता रहा। इसी व्याजसे इन महानुभावोंसे बार बार भेंट करनेका अवसर मिला।

मुझे सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि डा० अन्सारीका बँगला माडर्न स्कूलके ठीक सामने है।

मुसलमान लीडरोंसे बार-बार मिलनेमें मुझे बहुत अनुभव हुआ। दिल्लीके जिन अखबारोंको मैं पैसा लेकर लेख देता था, उनमें एक गोरक्षा विषय था। मैंने उनमें 'गो माताका डेपुटेशन' नामक एक लेखमाला शुरू की। डेपुटेशन प्रत्येक मुसलमानके पास भेजा। लेखकी सामग्री अनायास मिल गई। 'गोरक्षा' ऐसे प्राचीन विषयपर लिखते हुए भी मैं लेखमें नवीनताका पुट देनेका उद्योग कर सका। मैंने उस दिन 'विशाल-भारत'के सम्पादकका निजी दफ्तर देखा, तो मुझे अपनी लापरवाहीपर बड़ा खेद हुआ। आज तक मैं अपना एक लेख भी सुरक्षित रख न सका। महात्मा गान्धीजीके पत्रोंको छोड़कर औरोंके पत्र भी मेरे पास नहीं।

मैं लीडरोंके 'इन्टरव्यू' भेजनेके अतिरिक्त 'रमेश—एक दस सालके लड़केकी बातचीत', 'धोबीकी बातचीत', 'अस्सी वर्षके एक बुड्ढेसे बातचीत' आदि भी लिखा करता और इसी प्रकार 'अल्तमशकी क़ब्र', 'गालिबकी समाधि', 'तुग़लक़ाबादका सैर-सपाटा' इत्यादि विषयोंपर भी लेख भेजा करता था। लेख नया हो, ढंग निराला हो और बात कामकी हो, यही बात लेख लिखते समय दिमाग़में रहती थी।

मुझे इसी प्रसंगमें दीनबन्धु ऐंड्रूज़की सरलताका अनुभव हुआ। मैंने उन्हें फोन किया—"मैं आपका विचार कुछ एक विषयोंपर जानना चाहता हूँ। मैं दैनिक 'भारतमित्र'का संवाददाता हूँ। कृपा करके कुछ समय दीजिये।"

उन्होंने कृपा करके समय दिया, और मैं ठीक समयपर स्टीफेन्सन-कालेज में पहुँचा। जाकर मैं बाहर कुर्सीपर बैठ गया और कार्ड भेजा। उन्होंने तत्काल बुलाया और गलेसे लगा लिया। मेरे जीवनमें यह मेरा पहला अनुभव था। मैं उनका प्रेम देखकर चकित हो गया। खूब बातें हुई। इसके बाद उनसे मैं जब जब मिला, वे उसी प्रकार मिले।

मेरे पास 'भारतमित्र' का जब मनीआर्डर आता था, तब मैं मामूली बात समझता था। पर जब गर्देजीका पत्र आता था, तो बहुत खुश होता था। प्राय: प्रत्येक लेखके बाद वे पत्र लिखते थे। गर्देजी लिखते थे कि यदि सवारीका खर्च लगे, तो लिखियेगा ; मगर बातचीत करनेका अवसर मत जाने दीजियेगा।

सिसिल होटेलमें एक जर्मन पंडित आया था ; देवी, देवता दोनों साथ ही थे। वे संस्कृतके प्रोफेसर थे। शान्ति-निकेतनमें रह चुके थे। उनसे समय पक्का करके मिला और क़रीब दो घंटे तक बातें हुईं।

मेरे लिखनेका तात्पर्य यह है कि मैं इस काममें सफल हुआ और इस समय भी मुझे पूरा भरोसा है कि ऐसा अवसर आते ही सफल हूँगा।

ट्रेक्टोंकी बात सुनिये, एक ट्रेक्ट एक फ़ार्मका होता था। पन्द्रह-सोलह रुपयेके अतिरिक्त फल-फूलका नियम भी था। ट्रेक्ट बेचनेवाले मुझे खुशीसे दे जाते थे।

दिल्लीमें एक पर्दा गार्डन है। वहाँ बच्चोंका मेला (Baby Show) होता था। मैं ट्रेक्ट शनिवारकी रातको लिखना प्रारम्भ करता था और रविवारको समाप्त करता था। हफ्तेमें एक दिन पाँच-छै घंटे मेहनत करता था।

एक ट्रेक्ट बेचनेवाला शनिवारको आया। मैंने कहा कि कल आना, रुपये और फल साथ ही लाना। वह इतवारको आया सही, पर दो सेब लेकर, पैसे नदारद। मैंने ट्रेक्ट तैयार कर रखा था। मजमून था।

'पर्दा-बाग़की दर्दभरी कहानी'

जिसमें मैंने ग्रामीण और शहरकी स्त्रियोंकी पंचायत

'पर्दा-बाग' में कराई थी, और अपनी अक्लके मुताबिक शरीर ठीक रखनेकी विधि बतलाई थी।

ट्रैक्ट बेचनेवालेने कहा—"मेरे पास कुछ नहीं है।"

मैंने कहा—"तब ?"

उसने कहा—"मेरा विश्वास करिये, मैं किताब बेचकर पैसे दे दूँगा।"

"अच्छी बात है"—कहकर मैंने उसे लेख सौंप दिया, वह बोला—"छपानेके लिए भी मेरे पास पैसा नहीं है।"

मैंने कहा—"भाई, अच्छे मिले !"

वह गिड़गिड़ाकर बोला—"इस बार दया कीजिये ; आपके जान-पहचानी लोग यहाँ बहुत हैं, किसी प्रेसको लिख दीजिए।"

मैंने कुछ देर सोचकर उसके मुँहकी ओर देखा, और कहा—"अच्छा, यह पुर्जा ले जाओ, तुम्हारा काम बन जायगा, पर किताब बेचकर मेरा और प्रेसका दाम दे देना।"

मैंने पुर्जेमें एक प्रेसके मैनेजरको लिखा था—"यह नया अनुभव है, यदि छपाई आपको न मिलेगी तो मैं दूँगा।"

मेला दो दिन बाद होनेवाला था।

मेलेमें हमलोग पहुँचे। वह चिल्ला-चिल्लाकर किताबें बेच रहा था।

"पर्दा-बागकी दर्द भरी कहानी, दाम एक आना।"

मैंने कहा—"एक मुझे भी देना।"

वह मेरे पास आया। १५) दिये और मित्रोंको कापियाँ दीं। कहा—"छपाईका दाम, शामको दे दूँगा। मुझे ३५) बच जायँगे।"

जो आदमी लेखकके लेखसे पैसा कमाता है, उससे पैसा लेनेमें रियायत नहीं करनी चाहिए।

जहाँ मामला Business का आ जाता है, वहाँ उसी प्रकार काम करना चाहिए। आप अपना लेख अच्छासे अच्छा बनाइये, यदि उसकी जरूरत पत्रको होगी, तो पैसा आपको अवश्य मिलेगा। हाँ, यदि बाजारमें अच्छे लेखकी खपत न होगी, तब मामला बेढब हो जायगा। ऐसी अवस्थामें अच्छे लेख-ग्राहकोंकी संख्या बढ़ानी पड़ेगी। तात्पर्य यह कि हमको अपने मालकी प्रतिष्ठा अपने आप बढ़ानी पड़ेगी। वह कैसे बढ़ती है, यह हरएक लेखक स्वयं समझे।

इस विषयका मैं अपना अनुभव बतलाता हूँ। एक प्रकाशकने मुझसे पुस्तक माँगी। मैंने पुस्तक दी, और चार फार्मकी पुस्तकके दाम दो सौ रुपये लिये। अधिकारपत्रकी रजिस्ट्री करानी पड़ी। इसमें मेरे तीन रुपये शिनाख्त कराईमें खर्च हुए। वहाँ केवल Business का नाता था, इसलिए रियायत, प्रेम और सहृदयताका सवाल ताकपर रखना पड़ा।

मेरे साथ यह बात जरूर थी कि जब तक दो सौ रुपये न मिलते, मैं अपना माल रख छोड़ता।

मैं आशा करता हूँ कि अन्य लेखकगण 'विशाल-भारत'में अपना-अपना अनुभव प्रकट करेंगे, जिससे सबको एक दूसरेकी सुविधा-असुविधाकी जानकारी हो जाय। 'विशाल-भारत'के सम्पादकने जितनी कठिनाइयोंका सामना किया, उनको देखते हुए मैं कहूँगा कि वे खूब सफल हुए।

हिन्दी-साहित्यकी उन्नति किस प्रकार हो ?

डा० हेमचन्द्र जोशी, डी० लिट्

'हिन्दी-साहित्यकी उन्नति किस प्रकार हो' यह बड़ा कठिन प्रश्न है। यद्यपि मैं वर्षोंसे यह समस्या हल करनेकी फ़िक्रमें हूँ—यह केवल स्वान्त: सुखाय; कोई विज्ञ लेखक यह न समझ बैठे कि मुझे किसीको सम्मति देनेकी ज़ुरंत हो सकती है—तो भी अब तक मेरी आत्माको पूर्ण सन्तोष नहीं मिला है कि अब मैं ऐसे नतीजेपर पहुँच गया हूँ, जो कारगर हो; किन्तु आज तो ठान ली है कि इस सम्बन्धमें अपने स्पष्ट विचार, चाहे वे कितने ही अप्रिय और कठोर क्यों न हों, हिन्दी-साहित्यसेवी-समाजके सामने रखूँ।

सच तो यह है कि हिन्दीका—हमारी बोली जानेवाली 'भाषा'का साहित्य प्राय: नहीं है। "उगा है सब्ज़ा हरसू घरमें वीरानी तमाशाका, मदार अब खोदनेपर घासके हैं मेरे दरबांका।" मेरी इस सम्मतिपर आपको बड़ा अचरज होगा, क्योंकि हर साल हिन्दीमें प्रकाशित पुस्तकोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। नये-नये लेखक हर दिन हर घंटे पैदा हो रहे हैं। कवि 'रहस्यवाद, छायावाद, मायावाद, कायावाद' आदि सब वादोंपर तुकांत अतुकांत तथा मित्राक्षर-अमित्राक्षर सब छन्दोंमें कविता कर रहे हैं, और हमारी पत्र-पत्रिकाएँ उनकी कांतपदावलीसे अपना कलेवर सज्जित कर रही हैं, किन्तु साहित्य-संसारसे तुलना करनेपर यह आपको भी मानना ही होगा कि जादोंके इस मेघाडम्बरके भीतर न तो बिजलीकी कड़क है, न उसकी प्रतिभा। मैं तो स्पष्ट देखता हूँ कि हिन्दीमें यदि कुछ है तो 'बंगला-साहित्य-छाया-वात' इस वातने हमारा साहित्य पंगु कर दिया है। अब वह अपने पावों खड़ा नहीं हो सकता। कोई लेखक या कवि जानबूझकर किसी भारतीय आर्य-भाषाका अनुवाद करता है, तो कोई अनजाने अपनेको मौलिक लेखक समझ इस भ्रममें चक्कर खा रहा है कि मेरी रचना मौलिक है। इस मौलिक शब्दकी जो दुर्गति हिन्दीमें हुई है, वह अन्यत्र देखनेको न मिलेगी। कोशिश तो बहुतसे लेखक मौलिक होनेकी करते हैं, पर दूसरी भाषाओंका 'छाया-वात' उन्हें आगे बढ़ने नहीं देता।

"जाता हूँ थोड़ी दूर हर एक तेज़ रौके साथ,
पहिचानता नहीं हूँ अभी राहबरको मैं।"

इस बारेमें मुझे कुछ उदाहरण मार्केके जान पड़ते हैं। आज दस-बारह सालकी बात है, मेरे परममित्र और बहुज्ञ अध्यापक विनयकुमार सरकारने हबशी-सुधारक बुकर टी० वाशिङ्गटनकी आत्मकथा 'अप फ्राम स्लेवरी' का बंगलामें अनुवाद किया था। किसी अन्य महाराष्ट्र लेखकने उसका मराठी अनुवाद किया, जो बम्बईकी मनोरंजन-पुस्तकमालामें छपा। हिंदीमें भी इसके दो संस्करण भिन्न-भिन्न प्रकाशकोंने छापे, किन्तु यह देख मेरे हृदयको दु:सह यातना हुई कि एक तो बंगला तथा दूसरा मराठीका अनुवाद था! हममें इतनी भी शक्ति नहीं थी कि मूल अंगरेजी पुस्तकका अनुवाद छपाते। और देखिये, प्रयागमें संयुक्तप्रान्तकी सरकारकी सहायतासे 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' नामक संस्था स्थापित हुई। इसका उद्देश्य हिन्दी और उर्दू साहित्यकी उन्नति करना तथा इन भाषाओंके लेखकोंको प्रोत्साहन देना है। इसके मन्त्री एक पी-एच० डी० हैं। सदस्य भी सब विद्वान् हैं। तब भी इसमें मि० अब्दुल्ला युसफ अली मध्यकालीन 'भारतकी सामाजिक अवस्था पर लिखते हैं, 'धर्म बनानेके सिद्धान्त' आयवरी फिनिश पेपरपर छपते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसकी प्रकाशित पुस्तकोंमें तीन गेल्सवर्दीका अनुवाद हैं। अब देखिये कि क्या यह संस्था हिन्दी-साहित्यको 'धोखा-धड़ी', 'चाँदीकी डिबिया' 'न्याय' आदि अनुवाद प्रकाशित कर

प्रोत्साहन दे रही है? मतलब यह कि पी-एच० डी० होनेपर इसके मन्त्री 'छाया-वात'से ग्रस्त हैं। यह वातव्याधि विशेष कष्टकर न रह जाती, यदि इसमे साहित्य शरीर एकदम पंगु न हो जाता। अनुवाद ही यदि करवाना था, तो क्या इस तृतीय श्रेणीके लेखकके सिवा संसारमें दूसरा कोई न था? रूसके गोर्की, आन्द्रिएेव और शाशचेका, जर्मनीके गेरहार्ट हौप्टमान, हाइनरिख मान, रिलके और केलर, नारवेके बोयेर, हामसन और अंटसेट, स्वेडनके स्ट्रिन्डवर्ग, लागरलेफ तथा अन्य बीसियों जगद्विख्यात प्रतिभावान लेखक इस संस्थाने छोड़ दिये। रोमाँ रोलांकी पुस्तकोंका अनुवाद चीनी, जापानी, कोरियन आदि भाषाओंमें हो गया है, पर हिन्दुस्तानी एकेडेमीको वह गेल्सवर्दीके सामने तुच्छ जँचा होगा। जब ऐसी विद्वत्परिषद्का यह हाल है, तब औरोंका क्या कहना! इधर एक और नई बात पत्रोंमें देखी। सुना है कि नागरी-प्रचारिणी सभाकी सहायतासे मराठी विश्वकोशका हिन्दीमें अनुवाद होनेवाला है। बंगाली विश्वकोषका अनुवाद निकल गया है, अब मराठीसे होने लगा है; किन्तु एक अपना अलग विश्वकोशका विचार हमारे मनमें नहीं आ सका। मेरा कभीसे ऐसा विचार है, किन्तु मुझे अभी तक ऐसा प्रकाशक भी नहीं मिला, जो ऋग्वेदके चुनिंदे मन्त्रोंका अनुवाद तथा भारतकी प्राचीन संस्कृतिपर कुछ पुस्तकें छपा दे। जो मिलते भी हैं, लेखकका खून चूसकर मोटे होनेवाले मनुष्यरूपधारी जोंक। इस स्थितिमें मुझे हिन्दीका एक नवीनतम ज्ञानसे परिपूर्ण विश्वकोश निकालनेमें कौन सहायता देगा? यह उदाहरण हमारी अनुवादकी चाटके है। अनुवाद बुरी चीज़ नहीं हैं, किन्तु हमारा चुनाव देखिये कि निगाह कहाँ जाके पड़ती है। देखता हूँ कि हिन्दी पत्र जब कुछ यूरोपियन लेखकोंका अनुवाद देते हैं तो उनका, जो आजसे पचास साल पहले मर गये हैं और आज जिनकी साहित्य-संसारमें पूछ नहीं रह गई है। इसलिए हिन्दी-साहित्यकी उन्नतिकी तभी आशा की जा सकती है, जब हम—मेरा अर्थ हमसे उन ज्ञान-विज्ञान-संस्थाओंसे है जो हिन्दीकी उन्नतिको मूलमें रखकर स्थापित हुई हैं—अपने सामने एकमात्र लक्ष्य रखेंगे कि हमारी भाषाका अंग-प्रत्यंग पुष्ट हो। इसके लिए हमारा पहला काम वर्तमान दलबन्दीके दलदलसे बहुत ऊपर उठना होगा। मुझे पता नहीं था कि हिन्दीके क्षेत्रमें हमारे साहित्य-सेवी अपना-अपना गुट बना, कुछ पिछलगुओंको साथ ले एक दूसरेपर खड्गहस्त प्रहार करनेके लिए ही गोया अवतीर्ण हुए हैं। इधर भारतमें आकर यह सब अपनी आँखोंसे देखकर बड़ी वेदना हो रही है कि यहाँ क्यों आया।

अब तो इस स्थितिका उन सबको जिन्हें हिन्दीकी उन्नति अभीष्ट है, सामना करना होगा, अन्यथा "नान्यः पंथा विद्यते-ऽयनाय"—भलाईका कोई रास्ता नहीं है। एक दल इस समय ऐसा बाहर निकले, जो सब पंथ, सारे मत तथा समग्र भेद भाव भूलकर साहित्यकी उन्नतिके पीछे पड़ जाय।

इस समय हिन्दी-साहित्य-संसारकी यह हालत देखी जाती है कि जो दल अपनेको धन, जन तथा बलसे अधिक सगठित करनेमें समर्थ होता है, वही ऊँचे साहित्यिक आसनपर चढ़ बैठता है। यथार्थ प्रतिभाकी कोई पूछ नहीं है। सांसारिक साधनोंसे हीन जो दो-एक यथार्थ प्रतिभाशाली यत्र-तत्र दिखाई देते हैं, उन्हें उत्साह प्रदान करनेवाली कोई भी संस्था हिन्दी-संसारमें नहीं है। हमारे साहित्यिक उन्नतिके पथमें सबसे बड़ी रुकावट यही है। यूरोपमें हम देखते हैं कि जहाँ किसी भी उदीयमान लेखककी प्रारंभिक रचनामें प्रतिभाकी किंचित् भी झलक दिखाई पड़ी, तत्काल क़द्रदान निष्पक्ष समालोचकगण उसे आगेको ठेलकर जनताके सम्मुख प्रकाशमें लानेके लिए जी-जानसे लग जाते हैं, और प्रकाशकगण भी उसकी योग्यताकी जाँच करनेमें समर्थ होनेके कारण उसके यथेष्ट आर्थिक सहायता देकर उत्साहित करते हैं, पर हमारे साहित्यमें ऐसा घोर अनर्थ है कि पहले तो वास्तविक प्रतिभाका क़द्रदान ही लाखोंमें एकआध कोई पाया जाता है, फिर जिस किसी योग्य लेखककी प्रतिभा कुछ-कुछ (बची हुई दबावसे) स्वीकृत

की भी जाती है, तो अर्थलोलुप प्रकाशकगण उसकी असहाय अवस्थाका अनुचित लाभ उठाकर उसका खून चूसनेकी चेष्टामें लग जाते हैं। इसका फल यह होता है कि हतोत्साह होकर लेखक लिखना ही छोड़ देता है, और जब कभी लिखता भी है तो मरे मनसे। बायरनने दर्पके साथ कहा था कि मैंने एक दिन सुबहको उठते ही अपनेको प्रसिद्ध पाया। गेटे भी 'वेर्टेर' (Werther) के छपते ही एक दिनमें जगद्विख्यात हो गया था। जिस युवक कालिदासने अपनी सर्वप्रथम रचना 'मालविकाग्निमित्र' संसारके सम्मुख रखते हुए उद्धत दर्पके साथ कहा था—

"पुराणमित्येव न साधु सर्वम्
न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्।
संत: परीक्ष्यान्यतरद् भजते
मूढ़: परप्रत्ययनेय बुद्धि: ॥" *

हमारे गुणग्राहक पूर्वजोंने उस उदीयमान कविको तत्काल ही अपना लिया था, और उसी दम आशा कर ली थी कि इस कविकी प्रतिभासे 'मेघदूत', 'कुमार-संभव', 'शकुन्तला' जैसे उत्तमोत्तम काव्य प्रसुत हो सकते है। गोर्की एक अत्यंत साधारण परिस्थितिका आदमी था, और भिखमंगों, गुंडों तथा आवारा फिरनेवाले लोगोंके साथ अपने दिन बिताया करता था। एक कहानी उसकी किसी मासिक पत्रमें छप गई। नित्य प्रति हज़ारोंकी तादादमें छपनेवाली कहानियोंके बीच इस नई कहानीकी विशेषता गुणज्ञोंकी तीखी नज़रसे छिपी न रह सकी, और उसकी ख्याति तत्काल ही साहित्य-संसारमें प्रतिष्ठित हो गई। नार्वेजियन लेखक नट हामसन, जो अमेरिकामें Tramp (खानाबदोश) बनकर मारा-मारा फिरता था, अचानक नोबेल प्राइज़ पा गया। शरतचन्द्रकी सर्वप्रथम कहानी एक तृतीय श्रेणीकी मासिक पत्रिकामें छपी थी। उनका कहना है कि एक रातमें ही वह इस कहानीकी बदौलत बंगालके सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक माने गये, पर हिन्दी-साहित्य संसारमें क्या हालत है ? पहले तो यहाँ रसग्राही ही इनेगिने हैं, और जो हैं भी, तो ईर्ष्या-द्वेष और दलबन्दीके फेरमें पड़कर वे किसी उदीयमान प्रतिभाशाली युवकको उत्साहित करनेके बदले उसके प्रति उत्कट अवज्ञा दिखलाते हैं! ऐसी हालतमें उन्नतिकी आशा कैसे की जा सकती है ? जो यथार्थमें प्रतिभासम्पन्न है, उसकी रचनाओंका आदर आजके ईर्ष्याविदग्ध आलोचक न करेंगे, तो कल उसकी सत्ता प्रतिष्ठित होकर ही रहेगी, पर इस समय इस मूर्खतासे साहित्यको जो हानि पहुँच रही है, उसका क्या इलाज है ?

एक मज़ा हमारे साहित्यमें और है। हमारे मासिक पत्रोंके सम्पादकों तथा पुस्तक-मालाओंके संचालकोंको यह पूर्ण विश्वास है कि किसी भी ऐरे-गैरे लेखकको प्रतिभाशाली सिद्ध करके उसे साहित्यिक शिखरपर चढ़ाने तथा किसी वास्तविक योग्यतासम्पन्न लेखकको नीचे गिरानेकी पूरी ताक़त उनके हाथोंमें है। वर्तमान समयमें यह बात बाहरसे देखनेमें सत्य-सी मालूम भी हो रही है, क्योंकि निस्सहाय लेखकके लिए कोई चारा नहीं है; पर चिरकाल तक यह प्रकृति-विरुद्ध बात कदापि सत्य नहीं ठहर सकती। प्रतिभाशाली लेखकके ऊपर कैसा ही जुल्म क्यों न हो, एक न एक दिन वह अपनी सत्ता क़ायम करके ही रहेगा। हमें भविष्यके नवीन साहित्य रसिकों तथा समालोचकोंसे यह पूरी आशा है कि वे संसारके अनेकानेक साहित्योंका रसास्वादन करके वास्तविक गुणग्राही बनेंगे और हिन्दी-साहित्यकी वर्तमान पंकिलताके भीतर जो दो-एक कमल इधर उधर कोनोंमें छिपे पड़े हैं उन्हें प्रकाशमें लावेंगे, और सब साहित्यिक कूड़ा-करकट साफ़ करनेमें समर्थ होंगे। ऐसा होनेसे हमारे स्वयंभू सम्पादकों और पुस्तकमालाओंके संचालकोंकी दाल न गलने पावेगी

प्राय: यह देखा जाता है कि जिस पुस्तकमाला-

* जो कुछ भी पुराना है, वही अच्छा नहीं होता, और जो नया है, वह काव्यमय नहीं है, ऐसा भी कहना उचित नहीं है। संत लोग (गुण-अवगुणकी) परीक्षा करनेपर विचार करते हैं और मूढ़ लोग दूसरोंकी बुद्धिपर विश्वास रखकर अपनी राय देते हैं।

कार्यालयसे जो मासिक पत्र निकलता है, उसमें उस मालाके पुस्तकोंकी बड़ी-बड़ी प्रशंसात्मक आलोचनाएँ ('यशस्वी लेखकों' द्वारा लिखी गई) प्रकाशित कर दी जाती हैं, और जब किसी अन्य पुस्तकमालासे छपी हुई यथार्थमें प्रशंसाके योग्य किसी रचनाकी आलोचना लिखकर कोई लेखक उस पत्रमें प्रकाशनार्थ भेजता है तो संचालक तथा सम्पादक महोदय सिकुड़ जाते हैं। इस पतनका क्या इलाज हो सकता है, हम लोगोंको इसी विषयपर पहले विचार करना होगा। साहित्यकी यथार्थ उन्नतिके लिए जिस उदारताकी आवश्यकता है, वह हम लोगोंमें कहाँ ! इस संकीर्णताकी सीमाका हमें उल्लंघन करना ही होगा।

हमारे 'साहित्यालोचकों' में इस समय अपनी झूठी विद्वत्ता प्रकट करनेकी जो प्रबल इच्छा पाई जाती है, वह भी भ्रान्ति-उत्पादक तथा हानिकारक सिद्ध हो रही है। अकसर देखा जाता है कि हमारे आलोचक महाशयगण ऐसी-ऐसी भाषाओंके शब्दोंकी चर्चा कर बैठते हैं, जिनकी वर्णमालासे भी वे भलीभाँति परिचित नहीं होते। एक महाशयने किसी फ्रेंच-साहित्य-सम्बन्धी लेखमें अनेक फ्रेंच शब्दों तथा वाक्योंका व्यवहार किया था। उनमें उन शब्दोंका ऐसा हास्योत्पादक उच्चारण दिया गया था कि फ्रेंचकी A B C सीखनेवाला भी कभी ऐसी ग़लती नहीं कर सकता। उदाहरणके लिए एक शब्द Chansons था। इसका उच्चारण फ्रेंचमें 'शाँजों' होता है। लेखक महाशयने इसे लिखा था—'चैन्सन्स'। ऐसी ही अनेक हास्योत्पादक भूलोंसे सारा लेख भरा पड़ा था। अंग्रेज़ीकी कई किताबोंमें फ्रेंच तथा जर्मन 'कोटेशन' अनुवाद-सहित दिये जाते हैं। उन्हें पढ़कर अपनेको फ्रेंच-जर्मन-भाषा-तत्त्ववेत्ता सिद्ध करनेकी चेष्टा महामूर्खता है। अनेक लेखक ऐसे हैं, जो ऐसी-ऐसी पुस्तकोंका हवाला अपनी पुस्तकों तथा लेखोंमें दे डालते हैं, जिनके कवर-पृष्ठ भी उन्होंने नहीं देखे—उन्हें पढ़कर उनका भाव समझनेकी बात तो कोसों दूर रही। उदाहरणार्थ एक सुप्रसिद्ध साहित्यिकने अपनी एक आलोचनात्मक पुस्तकमें ग्येटेके 'Werther' (जो एक उपन्यास है) को नाटक बतलाया है, और 'Wilhelm Meister' (यह भी एक उपन्यास है) को एक आलोचनात्मक ग्रन्थ बताया है। इस झूठी विद्वत्तामें पाठकोंको भ्रममें डालना अनर्थमूलक है। संसारके नाना भाषाओंके उत्तमोत्तम साहित्यिक ग्रन्थोंका अनुवाद हिन्दीमें होना आवश्यक है, पर जब हमें इतना ही मालूम नहीं होगा कि अमुक ग्रन्थ उपन्यास है या नाटक, तो ऐसी हालतमें सिवा गौल्सवर्दीके नाटकोंके अनुवादके और किया ही क्या जा सकता है ! जो लेखक वास्तवमें संसार-साहित्यकी श्रेष्ठ रचनाओंसे परिचित हैं और मूल भाषाओंसे उनका अनुवाद कर सकते हैं, उन्हें आर्थिक सहायता देनेवाला कोई प्रकाशक ही नहीं है। हमें इस समय प्रकाशकोंके एक ऐसे संगठनकी आवश्यकता है, जो योग्य और गुणज्ञ अनुवादकोंको इस कार्यमें सर्वतः उत्साह प्रदान करे और उदीयमान प्रतिभाशाली लेखकोंको अपनी मौलिकताका परिचय देनेके लिए उत्तेजित करे। यह प्रारम्भिक कार्य हमारे सामने है, जिसे हमारा निर्धन लेखक-समुदाय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अथवा किसी अन्य हिन्दी-साहित्यके लिए कटिबद्ध संस्थाकी सहायतासे आगे बढ़ा सकता है। आशा तो 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' जैसी समर्थ परिषद्से की जानी चाहिए थी, पर इस विद्वान-मंडलीकी कृति देख मुँहसे यही निकलता है—"भवति विनिपातः शतमुखः।" लेखक यदि अपना पुष्ट संगठन कर सकते, तो हमारे साहित्यकी उन्नतिका पथ विस्तीर्ण और उदार हो जाता, वह रत्न चमकने लगते, जिनके सामने कंकड़-पत्थर स्वयं सूर्यके सामने अंधकारकी भाँति लोप हो जाते। बर्लिनमें एस० फिशर फ़ारलाग (S. Fischer verlage) आज उच्च साहित्य-प्रकाशनके लिए विश्वविख्यात है। पचास वर्ष पहले इसकी उत्पत्ति कुछ उन लेखकोंने की थी, जो प्रतिभाशाली, किन्तु साहित्यमें अन्ध-परम्पराके कट्टर शत्रु थे। इस संस्थाने संसारको टोमास मान, गर्हार्ड हॉप्टमान, हर्मन हेसे आदि लेखक दिये हैं। मेरे पास 'लेखक-संघ' एक पूरी स्कीम तैयार है ; यदि हमारे योग्य लेखक अपना

संगठन करना चाहें, तो उनकी सेवामें पेश कर सकता हूँ। हिन्दीको आगे बढ़ानेवाली ऐसी ही कोई संस्था यह काम कर सकती है, मेरा जो यह भी विचार है कि यथाशीघ्र एक ऐसा आयोजन किया जाय जो संसारके उत्तम-उत्तम ग्रन्थोंका अनुवाद ही प्रकाशित करे, जिससे हमारे लेखक और पाठक यह जानें कि साहित्यका स्वरूप क्या है। अभी तो हिन्दीमें यह काम करना है, पुरानी सड़ी-गंदी इमारत ढाकर नयी पक्की मज़बूत तथा शुद्ध-वायुको प्रवेश देने लायक (well-ventilater) और साफ-सुथरी हवेली खड़ी करनी होगी। हमारा प्रस्तुत वायुमंडल साहित्यका स्वास्थ्य नष्ट कर उसे गाड़नेमें ही समाप्त होगा। जर्मनमें विश्व-साहित्यको प्रकाशित करनेवाली कई संस्थाएँ हैं। एक चार-चार आनेमें संसारकी सभी उत्तम पुस्तकें—प्राय: आठ हजार ग्रन्थ—प्रकाशित कर चुकी है। इसमें चीन, ईरान, भारत, अरब आदि सभी देशोंके उत्तम ग्रन्थ छप चुके हैं और उनके अनुवादक विशेषज्ञ हैं। मैंने इटालियन, फ्रेंच अंग्रेज़ी, स्वेडिश आदि भाषाओंमें ऐसी ग्रन्थमालाएँ देखी हैं, क्या एक ऐसा प्रयास अपनी भाषामें नहीं हो सकता? क्यों नहीं। कमी है तो एक सुसंगठित संस्था और समर्थ पृष्ठपोषकोंकी; सो भी आरम्भमें। कुछ समय बाद तो ऐसी संस्था आत्मनिर्भर हो जायगी। लेख बढ़ रहा है, विशेष सिरजनहार सम्मति फिर दूंगा, अभी तो यही इच्छा है 'तेजस्विनावधीतमस्तु'।

ग्रीष्म

कवित्त

कुसुम कलाप युत कुंजन-निकुंजनिमें
मधुर अलाप करि कोकिला न गावे है।
भौंर भीर गूँजे ना करि-करि गुंजार-गान,
त्यागि मधु-पान मन मौन एक भावे है।
ललित लतान औ बितान छबि छीन भई,
कोमल कमल हू न रंच हरषावे है।
दीन भई भोली कल कलिका कमनीय कहै,
काहे कठोर ग्रीष्म गात झुरसावे है।

—'दामोदर'

चित्र-संचय

कलकत्तेके बीसवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति
श्री जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर'
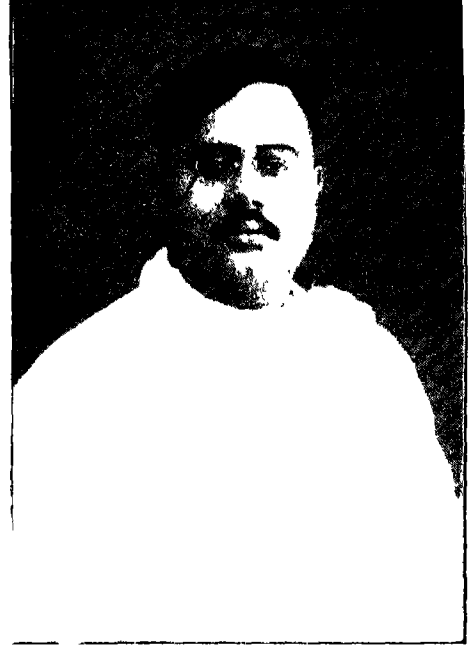
सम्मेलनकी स्वागत कारिणीके प्रधान मंत्री
कुमार श्री कृष्णकुमार एम० ए०

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
जिनका एक सुन्दर लेख इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित है

स्वर्गीय श्री कृष्णबलदेव वर्मा

स्वर्गीय कृष्णबलदेव वर्मा

गत २७ मार्चको हिन्दी पुराने सेवक श्री कृष्णबलदेव वर्माका काशीमें स्वर्गवास हो गया। वर्माजी हिन्दीके पुराने साहित्य सेवी थे। उनकी 'विशाल-भारत' पर बड़ी कृपा रहती थी। कलकत्तेके एकादश साहित्य-सम्मेलनके वे प्रधान मंत्री थे। वर्माजी कालपीके रहनेवाले थे। उन्होंने केशवदासका बड़ा अच्छा अध्ययन किया था। उन्हें पुरातत्व तथा इतिहाससे बड़ा प्रेम था और वे बुन्देलखंडके इतिहासके अच्छे ज्ञाता थे। वे हिन्दुस्तानी एकेडेमीके सदस्य भी थे और हालमें एकेडेमीने जो 'हिन्दुस्तानी' नामक त्रैमासिक पत्रिका निकाली है, वे उसके सम्पादक-मण्डलमें भी थे।

स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीका अन्तिम पत्र

श्रीमती इन्दुमती गोयनकाने कानपुरके दंगेके समय स्वर्गीय विद्यार्थीजीको एक पत्र लिखकर दंगा शान्त करनेके लिए अपनी जानपर खेलकर प्रयत्न करनेकी इच्छा प्रकट की थी। उसके उत्तरमें स्वर्गीय विद्यार्थीजीने एक बड़े मार्केका पत्र लिखा था। यह पत्र प्राय: सभी समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। यहाँपर उस पत्रकी तसवीर प्रकाशित की जाती है। यह विद्यार्थीजीका अन्तिम पत्र है।

—
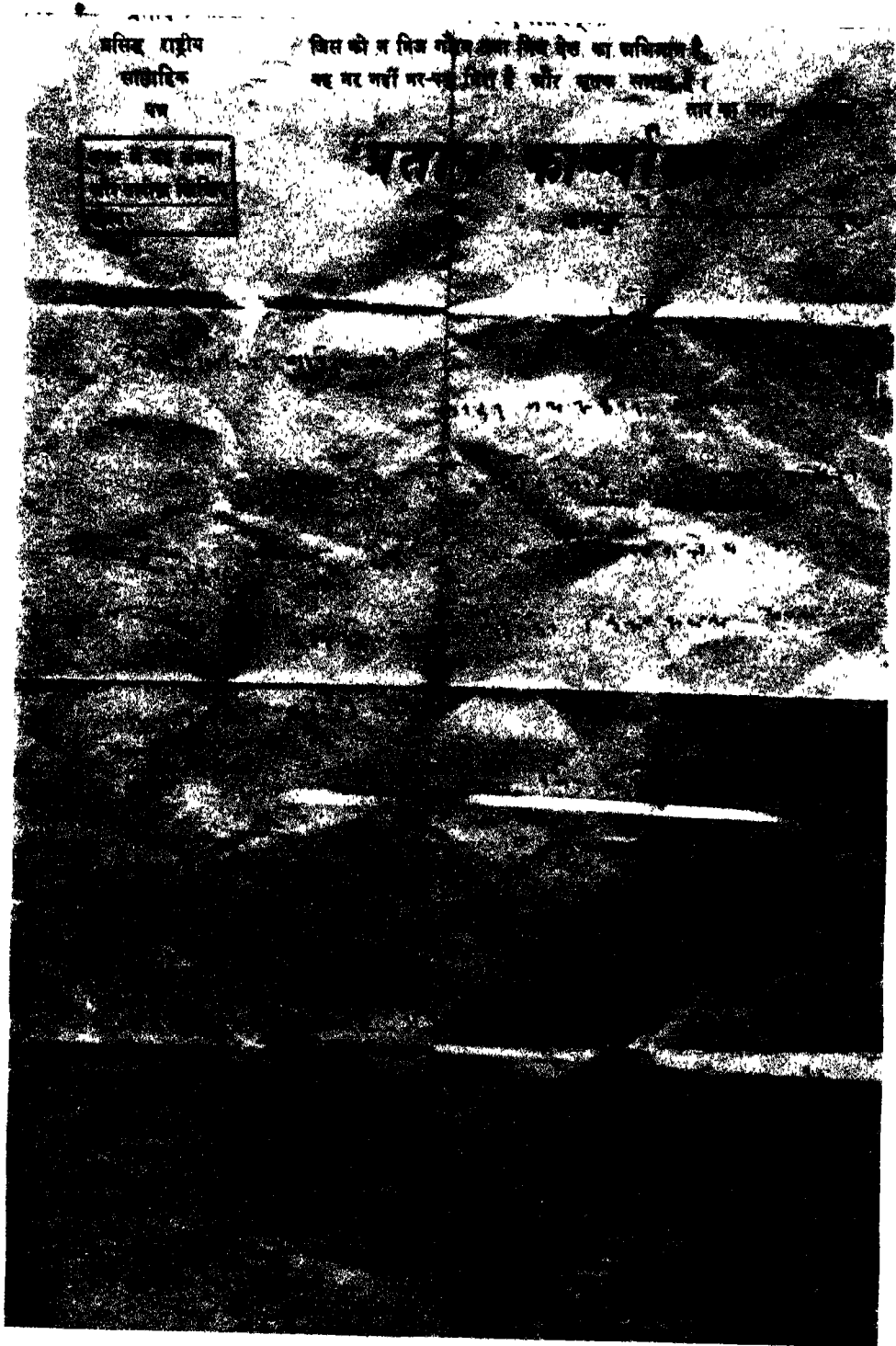
स्व० गणेशशंकर विद्यार्थीका अन्तिम पत्र (श्रीमती इन्दुमती गोयनकाके नाम)
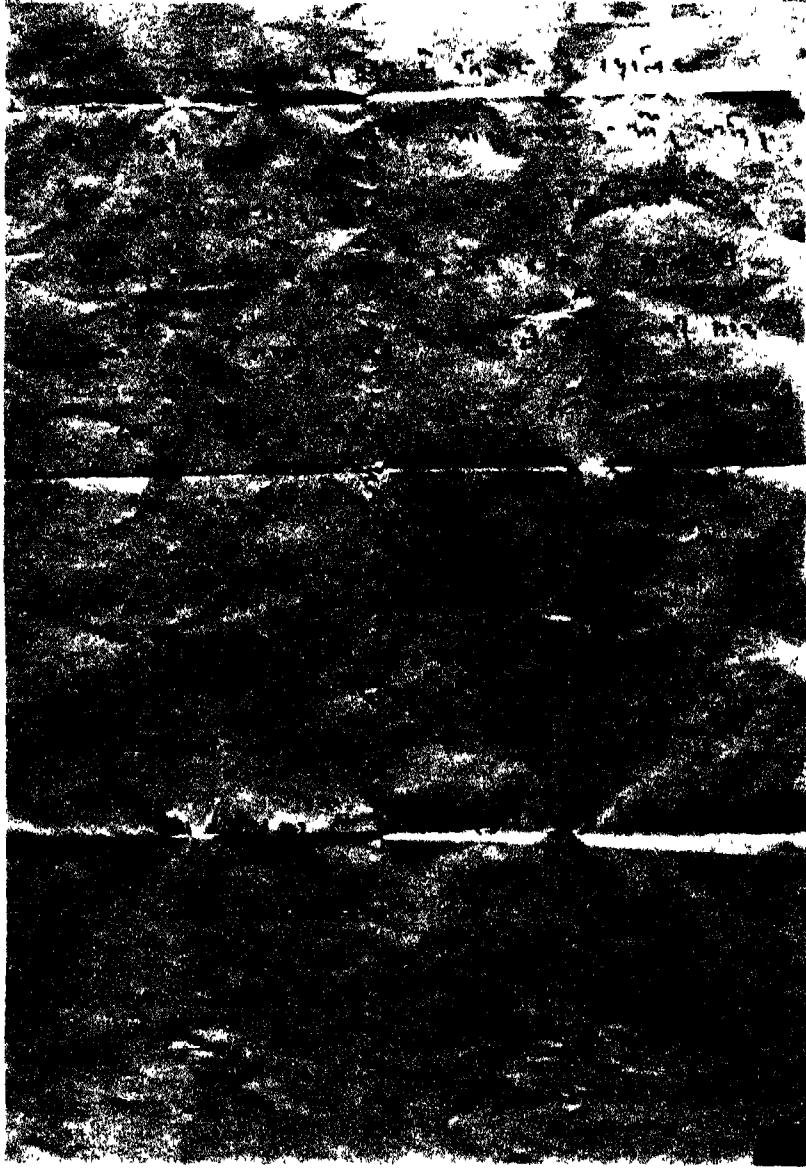
[आदरणीया बहिनजी, सादर नमस्कार। मैं आपसे भलीभाँति परिचित हूं। मेरी धारणा है कि मैंने आपको कलकत्तेमें आजसे १० वर्ष पहिले देखा भी था। उस समय आप बहुत छोटी थीं। यहाँकी दशा नि:सदेह बहुत बुरी है। हम लोग शान्तिके लिए प्रयत्न कर रहे हैं। आपकी यह इच्छा कि आप प्राणोंपर खेलकर भी शान्तिके लिए प्रयत्न करें, बहुत स्तुत्य है। किन्तु मैं अभी आपसे आगे आनेके लिए नहीं कह सकता। मुसलमान नेताओंमें से एक भी आगे नहीं बढ़ा। पुलिसका ढंग बहुत निन्दनीय है। अधिकारी चाहते हैं कि लोग अच्छी तरहसे निपट लें। पुलिस खड़ी-खड़ी देखा करती है, और मसजिद और मन्दिरमें आग लगाई जाती है, लोग पीटे जाते हैं, और दूकानें लूटी जाती हैं। यह दगा तो कल ही समाप्त हो जाता, यदि अधिकारी तनिक भी साथ देते। मैंने अपनी आँखोंसे अधिकारियोंकी इस उपेक्षाको देखा है। ऐसी अवस्थामें मैं आपसे यह कैसे कहूँ कि आप आगे आइए। अधिकारियोंको तो यह ईश्वरदत्त अवसर प्राप्त हुआ है। वे इससे सन्तुष्ट हैं। ईश्वर उनके इस संतोषको भंग करे—इस बातको सभी भले आदमी कहेंगे। विनीत—ग० शं० विद्यार्थी]

उदन्तमार्त्तण्ड

अर्थात्

दिवाकान्त कान्तिं विनाध्वान्तमन्तं न चाप्नोति तद्वज्जगत्यज्ञलोकः समाचार सेवामृते ज्ञत्वमाप्तुं न शक्नोति तस्मात्करोमीति यत्नम्

१ अंक | ज्येष्ठ बदि ९ सम्वत १८८३। ३० मई १८२६ साल नौम | मोल महीना २ रुपया।

इसकागज़ के प्रकाशक का इश्तिहार

यह उदन्त मार्त्तण्ड अब पहिले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आजतक किसीने नहीं चलाया पर अंगरेजी ओ पारसी ओ बंगलेमें जो समाचार का कागज़ छपता है उसका सुख उन बोलियों के जान्ने ओ पढ़ने वालों को ही होता है और सब लोग पराए सुख सुखी होते हैं जैसे पराए धन धनी होना ओ अपनी रहते पराई आंख देखना वैसेही जिस गुण में जिसकी पैठ नहो उसको उसके रस का स्वाद मिलना कठिन ही है और हिन्दुस्तानियों मे बहुतेरे ऐसे हैं कि पराई चाल देखकर अपनी चालतक भूले हैं कि परायों में जो बुद्धिमन्त हैं वे अपनी तौबनी बचाई है पर पराई पर भले बुरेका बरताव करने का बाना बान्धे हैं ऐसों को यह न कहा चाहिये ओ इस मे वे बड़े कायर हैं जो इतनी परभी आगा टटोल लेहि जाय जो आंखों से सहज में देख सकेंगे उसको धोखे भी न देखकर आंखोंका धुंधलाये पछतावेंगे ऐसे ऐसों के विचार से नाना देशके सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेंय ओ पराई अपेक्षा जो अपने भावै के उपज न छोड़ें इसलिये बड़े दयावान करुणा ओ गुणनि के निधान सबके कल्यान के विषय श्रीमान गवरनर जेनेरेल बहादुर की आयससे ऐसे साहस में चित्त लगायके एक प्रकारसे यह नया ठाट ठाटा जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज़ के लेने की इच्छा करें तो अमड़ातला की गली ३७ अंक मार्तण्ड छापा घर में अपना नाम ओ ठिकाना भेजने ही से सतवारे के सतवारे यहाँ के रहनवाले घर बैठे ओ बाहिर के रहने वाले डाक पर कागज़ पाया करेंगे इसका मोल महीने में दो रुपया ओ डाकके महसूल की लेवा देई जायगी और यह जो बाहिर रहते हैं उनको यहां रुपये की भराई करदेनी होयगी काहेसे कि महीने महीने के अन्तर रुपये भर पावने की रसीद भेजने में किसी अगड़बंड़ ओ कहीं एक रुपया डाकका महसूल लगेगा सो बेहकारज पाय करके उसी मध्ये फिर

हिन्दीके सर्वप्रथम समाचार पत्र 'उदन्त-मार्त्तण्ड'के प्रथम अंकके मुखपृष्ठकी प्रतिलिपि

"उदन्त-मार्त्तण्ड" के सम्बन्धमें

Jugulkishore Sukul

हिन्दीके प्रथम सम्पादक श्री युगलकिशोर शुक्लके हस्ताक्षर

विशाल-भारत' के पिछले अंकमें यह बताया जा चुका है कि हिन्दीके सर्वप्रथम समाचारपत्र 'उदन्त-मार्त्तण्ड' (जो सन् १८२६ में प्रकाशित हुआ था) के सम्पादक कानपूर निवासी पंडित युगलकिशोर शुक्ल थे। युगलकिशोरजी पहले कलकत्तेकी सदर दीवानी अदालतमें प्रासीडिंग रीडर थे। फिर उसी अदालतमें वकालत करने लगे थे। 'उदन्त मार्त्तण्ड' के अस्त होनेके कई वर्ष बाद युगलकिशोर शुक्लने एक दूसरे हिन्दी पत्रको जन्म दिया था, जिसका नाम 'सामदन्त मार्त्तण्ड' था ; परन्तु यह भी अधिक दिन तक न चल सका। अगले पृष्ठपर 'उदन्त मार्त्तण्ड' के प्रथम अंकके प्रथम पृष्ठका चित्र दिया जाता है, और उसके सम्पादक श्री युगलकिशोर शुक्लके हस्ताक्षरोंका चित्र प्रकाशित किया जाता है।
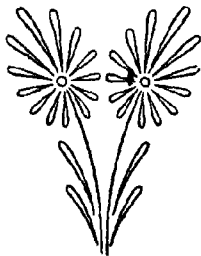
हिन्दीके सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री प्रेमचन्दजी जिनकी कहानी 'विशाल-भारत' के इसी अंकमें अन्यत्र प्रकाशित है।
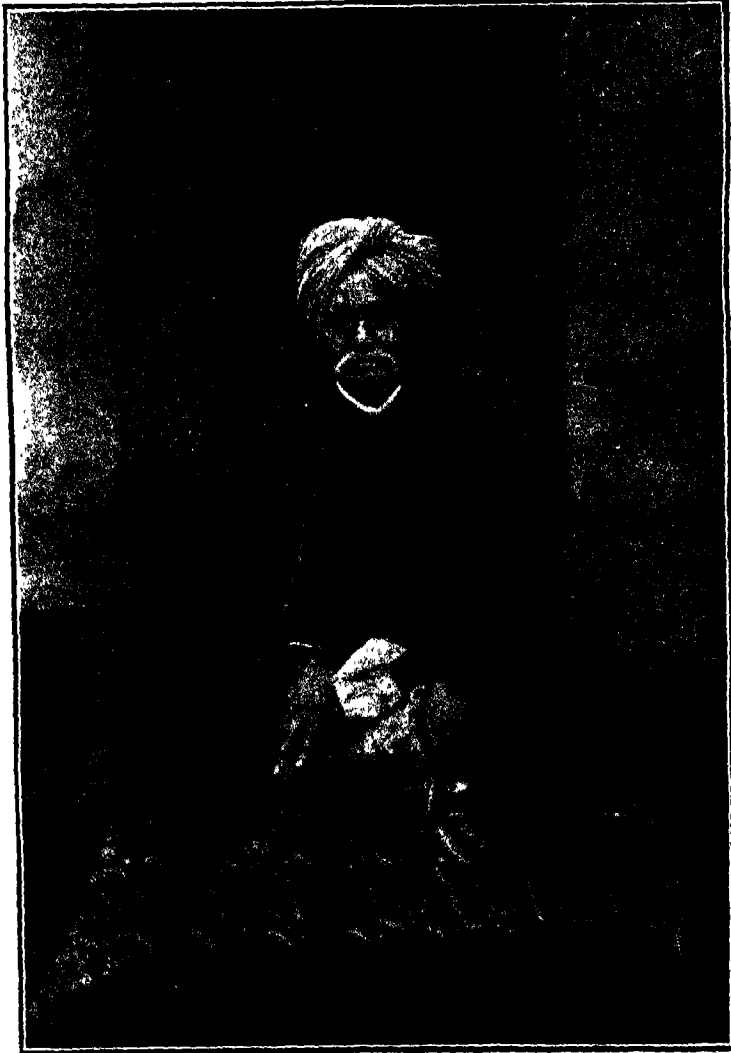
सम्पादकाचार्य पंडित रुद्रदत्त शर्मा
जिनके संस्मरण अन्यत्र प्रकाशित हैं ।

सम्पादकीय विचार

कौन कैसे पत्र लिखता है

मनुष्य-स्वभाव अध्ययन करनेमें अद्भुत आनन्द मिलता है। The proper study of mankind is man, मनुष्यके लिए अध्ययनका सबसे अधिक उपयुक्त विषय मनुष्य है। किसी मनुष्यकी प्रधान वस्तु उसका व्यक्तित्व ही है, बाक़ी सब चीज़ें गौण हैं, और पत्रों-द्वारा मनुष्यके व्यक्तित्वपर जो प्रकाश पड़ता है, वह किसी दूसरे प्रकारसे नहीं पड़ सकता। लेखों और पुस्तकोंको लिखते हुए लेखकके हृदयमें प्राय: कुछ संकोच होता है, इस कारण उनमें कृत्रिमता आना स्वाभाविक है; पर चिरपरिचित मित्रों तथा निकट सम्बन्धियोंको आदमी दिल खोलकर लिखता है, इसी कारण जीवनचरित-लेखकोंके लिए चरितनायकके पत्र अमूल्य वस्तु हैं। जीवन-चरितोंसे प्रेम होनेके कारण इन पंक्तियोंके लेखकने अनेक सज्जनोंके पत्रोंका संग्रह किया है, और उनके द्वारा लेखकोंकी मनोवृत्तिका अध्ययन भी किया है। आज उस संग्रहकी कुछ बानगी 'विशाल-भारत' के पाठकोंके सम्मुख उपस्थित की जाती है।

दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूज़ कविवर रवीन्द्रनाथके कृपापात्र हैं, और कविवरने जो पत्र समय-समयपर उन्हें लिखे हैं, वे बड़े मनोरंजक हैं और साथ ही उपदेशप्रद भी। उनमें कितने ही तो अब पुस्तकाकार प्रकाशित भी हो चुके हैं। साहित्यिक दृष्टिसे कविवरके पत्रोंका काफी महत्त्व है। सन् १६२०-२१ में जब मुझे दीनबन्धुकी सेवामें चौदह महीने रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, मैंने इन पत्रोंमें से कुछकी नक़ल अपनी नोटबुकमें कर ली थी। हालैण्डसे कविवरने एक पत्रमें २५ सितम्बर सन् १६२० को लिखा था:—

"Since I have come to this country I have been hearing a great deal about Java and especially Bali Island. Every body agrees that these Balinese people are delightful—and what I have seen about them in the museum of Colonial Institute makes me think that the people there are very much like Bengalis............We must go and see and know these people, for, they not only have kept preserved in their life the perfume of the spring time of some past centuries of India, they are lovable on their own account, they have the true spirit of the artist in all their expression of life. Now that I have come in touch with Holland it will be easy for us to visit Dutch Indies and study their ruins and their people. We shall be able to establish a bond of sympathy with them and through it shall be greatly benefited. Simplicity is the best casket for gems of truth and these people, who had their seclusion that saved their simplicity from all hurts of the present day, have, I am sure, kept pure some beauty of truth that belonged to India. ......Let us build a small bungalow for ourselves in one of their villages by the sea—and when we have our summer holidays of three months we can go there and carry back to our Ashram, in exchange, some touch of the same India which keeps some part of its precious past living and moving in beauty among the cocoanut groves of this island...Nandlal must go there, for there they have their tradition of art fresh and active, for they have the sentiments deep in their heart which express themselves in works of beauty. We must found a special chair in Vishwa-Bharati for the study of Greater India.........The relics of the true history of India are outside India. For our history is the history of ideas, of how, these, like ripe pods burst themselves and were carried

across the seas and developed into magnificient fruitfulness. Therefore our history runs through the civilisation of Eastern Asia. To study a banyan tree you not only must know its main stem in its own soil, but also must trace the growth of its greatness in the farther soil, for then you can know the true nature of its vitality. The civilisation of India like the banyan tree has spread its beneficient shade away from its own birthplace. Let us acknowledge it, let us feel that India is not confined in the Geography of India—and we shall find our message from our past......"

यह पत्र कविवरके चरित्रके केवल एक पहलुपर प्रकाश डालता है, यानी उनकी क्रियात्मक कल्पनाशक्तिपर। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि इसके बाद स्वयं कविवरने जावा (यवद्वीप), मलाया, बाली इत्यादिकी यात्रा की थी, और वे अपने साथ सुप्रसिद्ध विद्वान डा० सुनीतिकुमार चटर्जीको तथा शान्ति-निकेतनके एक कुशल चित्रकारको भी लेते गये थे। डा० कालिदास नाग अपनी बृहत्तर भारत परिषद् (Greater India Society) द्वारा जो उपयोगी कार्य प्राचीन इतिहासके निर्माणके सम्बन्धमें कर रहे हैं, उसके लिए उन्हें प्रेरणा कविवरसे ही मिली थी। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी भी 'प्रवासी' में एक गवेषणापूर्ण निबन्धमाला इन द्वीपोंके विषयमें लिख रहे हैं। इस प्रकार कविवरकी उक्त पत्रमें वर्णित कल्पनाने क्या ही सुन्दर रूप धारण किया है! और बाली द्वीपके किसी ग्राममें समुद्र-तटपर नारियलके वृक्षोंके नीचे बंगला बनाने और गर्मियोंकी छुट्टियोंमें शान्ति-निकेतनके छात्रोंके वहाँ जानेकी मधुर कल्पना भी किसी न किसी दिन सत्य सिद्ध होकर रहेगी। स्थानाभावसे हम कविवरका एक ही पत्र यहाँ उद्धृत कर सकते हैं।

महात्मा गान्धीजीकी भी चिट्ठियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं। जितने अनुभव सिद्ध अमूल्य मंत्र उनकी चिट्ठियोंमें पाये जाते हैं, उतने शायद ही किसी लेखकके लेखों तथा ग्रन्थोंमें मिल सकेंगे। उनका सारा जीवन ही निजी अनुभवोंके आधारपर निर्मित है। विलायती कपड़ोंके जलानेके विषयमें महात्माजी तथा दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़में कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था। मि० ऐण्ड्रूज़ने उनसे पूछा था कि अगर कोई प्रेमी बहन विलायतसे कपड़ा बुनकर भेंट-स्वरूप आपको भेजे तो आप उसको अंगीकार करेंगे? उसके उत्तरमें उन्होंने लिखा था :—

"The central point in burning is to create an utter disgust with ourselves that so long we have thoughtlessly decked ourselves at the expense of the poor—yes, I see nothing wrong in making it a sin to wear cloth that has meant India's degradation and slavery. What I am trying to do just now is to perform a surgical operation with a hand that must not shake. I would respect the wonderful love put into cloth prepared by a sister in Europe but I would not even then reconcile myself to the use of forbidden cloth even as one must not take at the hands of one's mother indigestable food given in ignorant love. Lady Roberts sent me what she thought was a preparation possessing the qualities of milk but which was said not to have been made from cow's milk. As soon as I discovered that is was made from milk, I wrote to her and asked to be relieved from having to take it. She not only saw the point but apologised for the mistake. The fact is I look upon life as one of discipline and restraint."

अर्थात्—"विदेशी कपड़ोंके जलानेके विषयमें मुख्य उद्देश्य यह है कि हम अपने-आपसे ऊब जायँ, क्योंकि अब तक हम लोग बिना विचारे अपने शरीरको विदेशी कपड़ोंसे सजाते रहे हैं, और उसका परिणाम भोगना पड़ा है गरीब आदमियोंको। हाँ, मुझे तो इसमें कुछ भी बुराई नहीं मालूम होती कि विदेशी कपड़ेका पहनना 'पाप' बना दिया जाय, क्योंकि विदेशी कपड़ा ही भारतकी अवनति और गुलामीका कारण है। इस समय तो मैं एक मजबूत हाथसे, जो कहीं हिलें नहीं, डाक्टरी आपरेशन कर रहा हूँ। यूरोपकी बहन अपने बुने कपड़ेमें जो अद्भुत प्रेम बुनकर भेजेंगी, उसका सम्मान तो मैं अवश्य करूँगा, परन्तु तो भी मैं निषिद्ध कपड़ेका व्यवहार करनेके लिए राजी

नहीं हो सकता। जैसे, यदि माँ किसीको बेसमझी-भरे प्रेमके साथ ऐसा भोजन दे, जो न पच सके, तो उसको कदापि न ग्रहण करना चाहिए। लार्ड राबर्ट्सकी धर्मपत्नीने मुझे भोजनके लिए एक चीज भेजी थी। उनका खयाल था कि उस चीजमें दूधके-से गुण पाये जाते हैं, पर दरअसल वह गायके दूधकी बनी हुई नहीं है। ज्यों ही मुझे पता लगा कि वह चीज दूधकी बनी है, मैंने उन्हें चिट्ठी लिखी, और उनसे प्रार्थना की कि मेहरबानी करके इस भोजनसे मुझे बचाइये। मेरी यह बात उनकी समझमें आ गई और उन्होंने अपनी भूलके लिए मुझसे माफ़ी माँगी। बात दरअसल यह है कि मैं जीवनको संयम तथा नियन्त्रणसे परिपूर्ण मानता हूँ।"

महात्माजीके लिखे हुए अनेकों पत्रकी प्रतिलिपि मेरे पास मौजूद है, और उनमें कितने ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, पर मैं उन्हें बिना आज्ञाके प्रकाशित नहीं कर सकता। केवल उपर्युक्त अंश सार्वजनिक हितसे सम्बन्ध रखनेके कारण दे दिया गया है।

मि० ऐण्ड्रूजके तो पचासों पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। वे चिट्ठियोंकी भरमार कर देते हैं। उनके प्रत्येक मित्रका यह अनुभव होगा कि वे एक चिट्ठीके बदलेमें तीन चार चिट्ठियाँ भेजते हैं और ऊपरसे एकआध तार भी! महात्मा गान्धीने एक बार मज़ाक करते हुए कहा था—"ऐण्ड्रूज ही एक ऐसा आदमी है, जो तार द्वारा प्रेम भेजता है!" विदेशोंसे तार देनेमें काफ़ी खर्च पड़ता है, फिर भी आप 'Give my love' ('अमुकको मेरा प्रेम कहना') ये शब्द जरूर लिखेंगे। सहृदयतापूर्ण पत्र लिखनेमें तो वे कमाल करते हैं। किसी मनुष्यकी हृत्तंत्रीके तारोंको किस प्रकार मधुरतापूर्वक बजाया जा सकता है, इस कलामें वे निपुण हैं, और खूबीकी बात यह है कि उनके पत्रोंमें कृत्रिमता बिलकुल नहीं आने पाती। मैंने किसी लेखमें प्रवासी भारतीयोंके लिए संस्था क़ायम करनेकी आवश्यकता पर ज़ोर दिया था, और कांग्रेसपर इसलिए आक्षेप किया था कि वह प्रवासी भारतीयोंके लिए यथोचित उद्योग नहीं कर रही। इसी सिलसिलेमें उन्होंने मुझे लिखा था :—

"I should strongly advise you to stick close to this literary work : it is your real work which gives you joy and work without JOY is useless. I should advise you to stick to this and do individual work for Indians Abroad, not trouble about organisation and Congress. That, for you, is only waste of precious energy......again I would not ATTACK the Congress or attack any one but simply go quietly on helping wherever I can. I find the older I grow the less I wish to attack the more I want to build up and show sympathy and love."

अर्थात्—"तुम्हें मेरी दृढ़ सलाह यही है कि तुम इस साहित्यिक कार्यमें संलग्न रहो। यही तुम्हारे लिए 'असली' कार्य है, क्योंकि इससे तुम्हें 'आनन्द' मिलता है, और बिना आनन्दका कार्य निरर्थक है। मैं तुम्हें यही सम्मति दूँगा कि साहित्यिक कार्यको न छोड़ो और व्यक्तिगत रूपसे प्रवासी भारतीयोंके लिए कार्य करते रहो। संस्था तथा कांग्रेसके झगड़ेमें न पड़ो। इसमें तुम्हारी मूल्यवान् शक्तिका अपव्यय ही होगा। ...एक बात और भी है। मैं तो कांग्रेसपर—कांग्रेसपर ही क्यों, किसीपर भी—कटाक्ष करनेके पक्षमें नहीं हूँ। जो कुछ काम तुमसे बन पड़े, चुपचाप शान्तिपूर्वक करते रहो और जिस कार्यमें सहायता दे सको, दो। ज्यों-ज्यों मेरी उम्र बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों मेरे हृदयमें दूसरोंपर कटाक्ष करनेकी प्रवृत्ति घटती जाती है और साथ-ही-साथ अधिकाधिक रचनात्मक कार्य करने तथा सहानुभूति और प्रेम प्रकट करनेकी प्रवृत्ति बढ़ती जाती है।"

माननीय श्रीनिवास शास्त्री अत्युत्तम पत्र लेखक हैं। उनसे बातचीत करनेमें जितना आनन्द आता है, उतना ही आनन्द उनसे पत्र-व्यवहार करनेमें भी आता है। एक बार मैंने उन्हें लिखा कि अमुक उपनिवेशको जाना है, बड़ी आफ़तमें हूँ, अंग्रेज़ी कपड़े ढंगके साथ पहनना सीखनेकी फ़िक्र है इत्यादि-इत्यादि। शास्त्रीजीने इस पत्रका बड़ा हास्यमय उत्तर दिया। वह ज्योंका त्यों उद्धृत किया जाता है :—

"Bangalore City
10 Dec. 1924

My dear Benarsi Das,

Don't break your heart over your conventional dress. If you live long enough and become famous enough and make yourself indispensable, you can dress some day as scantily and as orignally as ever you please. Look at Mr. Gandhi, his dress is evolving in proportion to his fame—only as the latter increases the former decreases. But no smaller man dares keep step with him in that respect. Even Das and Nehru still cover a great part of their bodies. When you go out of India, you cannot afford to defy convention at all, unless you don't care for your specific mission and consider it sufficient just to defy convention and earn what notice that brings. It is a funny world, Benarsi Das, we have to live in ; bend first to it and become great then you can make it bend to you. Did Gandhi always dress like this ? If he had begun so, he would have ended differently. Forgive a little lecture from one who loves you.—

V. S. Srinivasan"

"प्रिय बनारसीदास,

तुम अपनी प्रथा-सम्मत प्रचलित पोशाकके लिए हिरासाँ न हो। अगर तुम बहुत वर्ष जीवित रहो, सुप्रसिद्ध हो जाओ और अपनेको ऐसा बना लो कि तुम्हारे बिना काम ही न चल सके, तो फिर किसी दिन तुम चाहे जितना कम कपड़ा और चाहे जिस मौलिक ढंगसे पहन सकते हो। मि० गांधीको देखो, उनकी पोशाक उनकी कीर्तिके अनुपातमें विकसित हो रही है—बस, कीर्ति जितनी ही बढ़ती जाती है, पोशाक उतनी ही घटती जाती है ; लेकिन उनसे छोटा कोई दूसरा आदमी इस मामलेमें उनका साथ नहीं दे सकता। दास और नेहरू तकको अब भी अपने शरीरके अधिकांशको ढकना पड़ता है। हिन्दुस्तानसे बाहर जाकर तुम लोक सम्मत प्रथाओंका बिलकुल उल्लंघन नहीं कर सकते। हाँ, अगर तुम अपने विशेष उद्देश्यके लिए (जिसके कारण तुमने यह यात्रा की है) कुछ चिन्ता न करो और लोक-सम्मत प्रथाको तोड़कर उससे जो विज्ञापन मिले, उसीसे सन्तुष्ट हो जाओ, तो बात दूसरी है। बनारसीदास, यह दुनिया भी—जिसमें हमें रहना पड़ता है—अजीब निराली चीज हैं। पहले इसके सामने नवो, महान् बनो और तत्पश्चात् तुम इसे अपने सामने नवा सकते हो। क्या गांधीजी प्रारम्भसे इसी प्रकारकी ही पोशाक पहनते थे ? यदि उन्होंने इस प्रकार प्रारम्भ किया होता, तो उनका अन्त दूसरे प्रकारका होता। इस छोटेसे उपदेशके लिए, जो तुम्हारे एक प्रेमीका दिया हुआ है, क्षमा करो।

—वी० एस० श्रीनिवासन।"

हिन्दी लेखकोंमें जिन महानुभावोंके पत्र हमें विशेष रूपसे उल्लेख-योग्य प्रतीत होते हैं, वे हैं प० महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं० पद्मसिंह शर्मा। संक्षेपमें और सरलतापूर्वक पत्र लिखना कोई द्विवेदीजीसे सीख ले। एक भी निरर्थक शब्द आप उनकी चिट्ठीमें न पावेंगे। भाषामें असाधारण स्पष्टता, भावोंमें प्रशंसनीय सयम और विचारोंमें पूर्ण स्वाधीनता, ये गुण आपको द्विवेदीजीकी चिट्ठियोंमें मिलेंगे। उनके लिखे हुए पचासों पत्र मैंने देखे हैं और उनमें आत्माभिमान तथा शिष्टताका अद्भुत सम्मेलन पाया है। शब्दाडम्बरको वे निहायत नापसन्द करते हैं। जिस आदमीको अधिक काम करना हो और वह भी समयपर, वह द्विवेदीसे चिट्ठी लिखना सीखे। चिट्ठियोंका वे समयपर उत्तर देते हैं और इस प्रकार हम हिन्दीवालोंके लिए एक अत्यन्त आवश्यक उदाहरण उपस्थित करते हैं। आज कई वर्षोंमें उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है और वे साहित्यिक जीवनसे छुट्टी ले चुके हैं, पर सम्पादक तथा लेखक लोग उन्हें चैन नहीं लेने देते! महीनेमें कितनी ही चिट्ठियाँ उनके पास लेखोंके लिए अथवा पुस्तक इत्यादिपर सम्मतिके लिए पहुँच जाती हैं। अपने हाथसे वे प्रत्येकका उत्तर लिखते हैं।

२१-६-२६ के पत्रमें उन्होंने लिखा था :—

"प्रिय चतुर्वेदीजी,

१७ को चिट्ठी मिली। श्रीधरजी मेरे मित्र थे। उनकी निर्धनवार्ताने मुझे व्यथित किया है। मेरे लिए इधर कुछ

नई चिन्ताएँ पैदा हो गई हैं। मैं कुछ लिख नहीं सकता। लिखनेका कष्ट मुझे न दीजिए। कुछ देना ही हो तो यह आशीर्वाद दीजिए कि मेरी यन्त्रणाएँ अब इतनी ही रहें। काशीके 'राम' के सम्पादकने मुझे कुछ लिख भेजनेके लिए बहुत तंग किया। तब मैंने उस दिन उन्हें यह श्लोक भेजा है :—

'अनेकाधिव्याधिव्यथित हृदयं दीनवदनं
विहीन पुत्रादि स्वजनसमुदायेन जगति।
अतित्रस्तं ग्रस्तं हतविधि विलासैः सपदिमां
शरणय श्रीराम त्रिभुवनपते पाहि दयया ॥'

इसमें मैंने अपनी दशाका यथार्थ अक्षरशः चित्र खींचा है। इसीसे सब समझ लीजिए।

आपका—
म० प्र० द्विवेदी।''

यदि कोई सज्जन हिन्दी-पत्र कलाके विकासका इतिहास मनोरंजक ढंगसे लिखना चाहें तो उन्हे पूज्य द्विवेदीजीकी चिट्ठियोंका संग्रह करना पड़ेगा ; पर शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे जिनकी चिट्ठियाँ पठनीय तथा संग्रहणीय हैं, वे पं० पद्मसिंह ही हैं। जो मज़ा उनकी चिट्ठियोंके पढ़नेमें आता है, वह दूसरे किसी हिन्दी लेखककी चिट्ठियोंके पढ़नेमें नहीं आता। हर चिट्ठीमें पद्मसिंहजी बोलते हैं, हाँ, कहीं पद्मवत् कोमल आलाप है तो कहीं सिंहवत् घोर गर्जन। पद्मसिंहजीने भी शायद मि० ऐण्ड्रूज़की तरह ऐसा कोई गुप्त नियम बना लिया है कि हमारी चार-पाँच चिट्ठियाँ दूसरोंपर चढ़ी रहनी चाहिए। जब तक आप एक चिट्ठीका उत्तर देते हैं, तब तक दो चिट्ठियाँ और आ जाती हैं! भला उनके इस ऋणसे कोई कैसे उऋण हो सकता है? अगर वर्तमान समयमें कोई हिन्दी-भाषा-भाषी सच्चा साहित्यिक जीवन व्यतीत कर रहा है, जिसे खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते साहित्यका ही खयाल है, तो वे शर्माजी ही हैं। यदि पाँच साल पहले कहीं भूलसे आपने उनसे कह दिया कि हमारे यहाँ अमुक कवि हो गये हैं, पर दुर्भाग्यवश उनकी कविताओंका संग्रह अभी तक नहीं छपा, बस इस बातको वे अपने मस्तिष्ककी नोटबुकमें नोट कर लेंगे और समय-समयपर उसका तकाज़ा करते रहेंगे। इस समय मेरे सामने उनके कोई पचास पत्र रखे हुए हैं। उन पत्रोंको पढ़कर यह बात भलीभाँति ज्ञात हो जाती है कि शर्माजीको बीसियों कवियों तथा लेखकोंकी चिन्ता है। यदि चिन्ता नहीं है, तो सिर्फ अपनी! शर्माजी उन आदमियोंमें से हैं, जो अपनी कठिनाइयोंकी चर्चा किसी पत्रमें नहीं करते, दूसरोंके ही कष्टोंको दूर करने, उनकी कीर्तिकी रक्षा करने अथवा उन्हें दाद देनेकी फिक्र उन्हें लगी रहती है।

१३-११-१६२६ की चिट्ठीमें आप लिखते हैं:—

''श्री दुलारेलाल भार्गवका एक कार्ड कल आया है। वह वर्तमान साहित्य-सेवियोंका एक सचित्र जीवन-चरित्र प्रकाशित करने जा रहे हैं, उसके लिए मसाला बटोर रहे हैं। मुझसे भी चित्र-चरित्र माँगा है। मैं पाँचों सवारोंमें शामिल होना नहीं चाहता, पैदल ही अच्छा हूँ। मैंने उन्हें लिख दिया है कि मुझे आगामी संस्करणोंके लिए रिज़र्व रहने दीजिए। मैं सोचता हूँ—

'अफसोस है कि जिन्दा हूँ लिखना पड़ेगा हाल,
क्या मुख्तसिर जवाब य होता कि मर गया।'

पर आप शंकरजी, पं० रुद्रदत्तजी, पं० नन्दकुमार देवजी, आदि दस-पाँच साहित्य-सेवियोंकी संक्षिप्त जीवनी लिखकर अवश्य और शीघ्र भेज दीजिए। भार्गवजी लिखते हैं कि 'मिश्रबन्धु-विनोद' के तृतीय-चतुर्थ भागोंके लिए भी ऐसी जीवनी दरकार हैं। इस अवसरको हाथसे न जाने दीजिये। दस-पाँच जीवनियाँ 'मिश्रबन्धु-विनोद' में शामिल करा दीजिए। संक्षिप्त ही सही। क्या मालूम है कि विस्तृत जीवनियाँ लिखनेकी फुर्सत मिले या न मिले— "साकिया! याँ लग रहा है चल चलाव, जब तलक बस चल सके सागर चले। याने मुर्दोंको आबे-हयातके प्याले पिलाये जाइये, साक़ी बन जाइये······''

२१-११-२८ के पत्रमें शर्माजीने लिखा था —

"पसन्द आनेकी बात है। आपको अकबरके संस्मरण न जाने क्यों इतने पसन्द हैं, उनमें कोई ऐसी खास बात तो नहीं है। आपका मुद्दतसे तक़ाज़ा था, उससे छुटकारा पानेके लिए कुछ फुटकर बातें जल्दीमें लिख दी थीं। अपनी पसन्दकी चीज़ पसन्द आती ही है। 'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणान वस्तुनि।' अस्तु।

महाविद्यालयके संस्मरण अभी अधूरे पड़े हैं। फोटोग्राफरने धोका दिया। १॥ महीना हुआ फोटो उतरवाये थे, अभी तैयार करके नहीं दिये। कल फिर म०वि० से आदमी भेजकर आया हूँ। फोटो मिल जायँगे, तो संस्मरण भी हो जायँगे। ज़रा लम्बी कहानी है। उस एक संस्मरणमें अनेकों संस्मरण हैं। स्व० दर्शनानन्द, बा० ज्योतिःस्वरूप, पं० गणपतिजी इत्यादि कोई एक दर्जन होंगे। फुरसत हो तो खासा पोथा—संस्मरण-पुराण—बन सकता है, पर काम बड़ा मुश्किल है। सबके रोनेको किसका जिगर लाऊँ—

'कहाँसे लाऊँगा ख़ूने जिगर इनके खिलानेको,
हज़ारों तरहके ग़म दिलके महमां होते जाते हैं॥'

सूखे हुए ज़ख्म हरे होते हैं, पुरानी चोटें ताज़ा होकर दुखती हैं, कभीके सोये संस्कार जाग पड़ते हैं और दिलको बेचैन कर देते हैं। पं० भीमसेनजीके दुःखप्रद संस्मरणोंने हिम्मतकी कमर तोड़ दी। इस कूचेमें धसते जी डरता है। ईश्वरका बड़ा अनुग्रह है कि मनुष्यका स्वभाव विस्मरणशील बनाया है। पूर्वजन्मोंके सम्बन्ध याद नहीं रहते, वर्ना आदमी एक दिन भी ज़िन्दा न रह सकता, पागल हो जाया करता या मर जाया करता। एक ही जन्मके सम्बन्धोंकी धुँधली-सी याद बावला बना देती है, सहृदयकी तो मौत है। ...नी या हृदयहीनकी बात दूसरी है। कमसे कम मैं तो ...की निर्बलतासे बहुत तंग हूँ। कभी कभी तो ...रता हूँ कि इस आफतसे बचा—

'इलाही! है सकत नेमुल बदलके तुझको देनेकी,
मुझे इसके एवज़ तू कुछ न दे, पर फेर ले दिलको।'' *

स्थानाभावसे अन्य लेखकोंकी चिट्ठियाँ इस लेखमें उद्धृत नहीं की जा सकीं। यदि हो सका, तो किसी अगले अंकमें उनकी चर्चा की जायगी।

अन्तमें केवल इतना निवेदन करना है कि इस लेखका एकमात्र उद्देश्य एक उपेक्षित किन्तु आवश्यक विषय पत्र-लेखन-कलाकी ओर सर्वसाधारणका ध्यान आकर्षित करना है। प्रसंगवश इन पंक्तियोंके लेखककी जो थोड़ीसी चर्चा आ गई है उसके लिए वह क्षमा-प्रार्थी है।

—

दो उपयोगी प्रस्ताव

कलकत्ता हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनमें श्री पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री द्वारा उपस्थित निम्नलिखित दो उपयोगी प्रस्तावोंका हम हार्दिक समर्थन करते हैं :—

प्रस्ताव नं० १

हिन्दी-साहित्यके विकास और हितके लिये यह सम्मेलन उचित समझता है कि आगामी वर्षके अधिवेशनसे प्रधान सभापतिके साथ-साथ दर्शन, साहित्य, विज्ञान और इतिहासके विशेषज्ञ चार अतिरिक्त सभापति चुने जाया करें। इनके चुनावका अधिकार जहां 'सम्मेलन' हो उस स्थानकी स्वागत-समितिकी कार्यकारिणीको दिया जाय। ये चारों महानुभाव निबन्ध-वाचनके दिन अपने अपने विषयके संक्षिप्त खोज-पूर्ण वक्तव्य तथा उस वर्षमें उस विषयकी हिन्दीकी प्रगतिका विवरण दिया करें। पूर्वोक्त चार विषयोंमें उन सब विषयोंका यथाक्रम समावेश समझा जाय, जिनका समावेश मंगलाप्रसाद-पारितोषिककी नियमावलीमें है।

प्रस्ताव नं० २

(क) यह 'सम्मेलन' कलकत्तेके उन सम्पूर्ण कालेजोंके कर्णाधारोंसे—जिनकी उच्च कक्षाओंमें हिन्दी पढ़ायी जाती

* सकत=शक्ति। नेमुल बदल=बदलेकी चीज़।

है—यह प्रार्थना करता है कि वे हिन्दी अध्यापकोंकी 'नियुक्ति'के समय विशेष सतर्कतासे काम लें, जिससे हिन्दी छात्रोंकी वर्तमान अध्ययन-सम्बन्धी शिकायतें न रहें। इस विषयमें 'सम्मेलन'के प्रधान कार्यालयसे भी संचालकगण सम्मति ले सकते हैं।

(ख) इस प्रस्तावकी नकल कालेजोंके उच्च कर्मचारियोंके पास भेज दी जाय।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

बीसवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका समारम्भ गत २५ मईको हुआ। सम्मेलनकी कार्यवाहीका श्रीगणेश साहित्य-प्रदर्शनीके उद्घाटनसे हुआ। उद्घाटन संस्कार भारतके सुप्रसिद्ध कलाकार डाक्टर अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने किया था। ठाकुर महाशयकी मातृभाषा बंगला है, उन्हें हिन्दीका अभ्यास नहीं है, फिर भी उन्होंने अपनी छोटी वक्तृता आसानीसे समझमें आजानेवाली हिन्दीमें दी थी। उनकी वक्तृतासे उनकी सचाई और सहृदयता टपकती थी।

२५ मईको प्रात:काल सम्मेलनके मनोनीत सभापति श्रीयुत जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर'का आगमन हुआ। बड़ी धूमधामसे जुलूसके साथ उनका स्वागत किया गया।

सम्मेलनका अधिवेशन ता० २६ मईको कलकत्ता यूनीवर्सिटीके विशाल सिनेट-हालमें हुआ। प्रसन्नताकी बात है कि कलकत्तेके बाहरके समागत हिन्दी भाषा-भाषी सज्जनोंके अतिरिक्त मंचपर अनेक प्रमुख बंगाली विद्वान—जैसे सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी, श्री रामानन्द चटर्जी, श्री जे० एम० सेनगुप्त, श्री जे० एन० बोस, श्री अमूल्यचरण विद्याभूषण, श्री सुनीतिकुमार चटर्जी, श्री रमेश बसु, श्री एम० एम० बोस आदि उपस्थित थे। स्वागताध्यक्षने एक छोटी वक्तृतामें आगत महानुभावोंका स्वागत किया। सभापति निर्वाचनके प्रस्तावका समर्थन करते हुए श्रीयुत जे० एम० सेन-गुप्तने हिन्दीमें कहा कि "भारतकी अन्य भाषाओंके साहित्यकी अपेक्षा बंग भाषाका साहित्य बहुत समृद्धिशाली है; परन्तु राष्ट्रभाषाका स्थान हिन्दी ही को प्राप्त है। अत: हिन्दी साहित्यकी उन्नति करना और उसका प्रचार करना भी राजनैतिक स्वाधीनताका अंग है। वह भी हमें स्वराज्य प्राप्तिकी ओर अग्रसर करता है।"

इसके बाद सभापति श्री रत्नाकरजीका सुन्दर खोजपूर्ण भाषण हुआ।

हमारा साहित्यांक

'विशाल-भारत'का साहित्याङ्क पाठकोंकी सेवामें अर्पित है। इस अंकमें हमने यथासम्भव साहित्य, साहित्यसेवी, और साहित्यिक संस्थाओं-सम्बन्धी लेख देनेकी चेष्टा की है और जैसा कुछ संग्रह हो सका है, आपके सामने उपस्थित है। हम श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी श्री प्रेमचन्द, श्री के० पी० दीक्षित, श्री मथुरालाल शर्मा, श्री ज्वालादत्त शर्मा, श्री सुमित्रानन्दन पंत, पं० काशीनाथ शर्मा, श्री कृष्णविहारी मिश्र, श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री पद्मसिंह शर्मा, अध्यापक रामदास गौड़, श्री कृष्णानन्द गुप्त, डा० ईश्वरीप्रसाद, श्री मोहनसिंह मेहता, श्री वंशीधर विद्यालंकार, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्री हृषीकेश शर्मा, श्री जेठालाल जोशी, डा० हेमचन्द्र जोशी, आदि सज्जनोंके विशेष आभारी हैं, जिन्होंने अपनी कृतियोंसे इस अंकको अलंकृत करनेमें हमें सहायता दी है। हमें खेद है कि स्थानाभावके कारण हम कई उपयोगी लेख इस अंकमें नहीं दे सके, जिसके लिए हम उनके लेखकोंसे क्षमाप्रार्थी हैं। वे लेख 'विशाल-भारत'के अगले अंकमें प्रकाशित किये जायँगे।

चित्र-परिचय

चन्द्र और कुमुद

यह सभी जानते हैं कि चन्द्रमाके उदय होनेसे कुमुदिनी खिलती है। गुजरातके प्रसिद्ध चित्रकार श्री रविशंकर रावलकी रूपमयी कल्पनामें चन्द्र और कुमुदका यह सम्बन्ध प्रेमी-प्रेमिकाके रूपमें प्रकट होता है। प्रेमिका कुमुदिनी दिन-भर सोती रही है। रातमें चन्द्र उदय होकर अपनी शीतल रजत रश्मियोंसे उसे गुदगुदा कर जगा रहा है। प्रेमिका कुमुदिनी अपने प्रेमी शीतल स्पर्शसे जगाकर अलसाई हुई उनींदी आँखोंसे देख रही है। रातका सन्नाटा, निर्जन सरोवर और रंगोंका विचित्र सम्मिश्रण दर्शकके हृदयमें स्वप्नके मधुर भाव जाग्रत कर देता है।

माता

यह चित्र श्री प्रमोदकुमार चटर्जीकी कृति है। माता वात्सल्य-भावसे भरी हुई पुत्रको प्यार कर रही है। माका दूसरा पुत्र पासमें खेल रहा है। चटर्जी महाशय अलंकारिक कलामें बड़े प्रवीण हैं। उनकी यह प्रवीणता इस चित्रमें भी दृष्टिगोचर होती है। मा और बेटेका पहनावा, अलंकार तथा आस-पासकी वस्तुओंके डिज़ाइन और कारीगरी दर्शकके मनमें अनायास ही प्राचीन आर्य संस्कृतिका स्मरण दिलाते हैं।

आदिकवि वाल्मीकि

भारतके आदिकवि वाल्मीकिजीकी यह तसवीर स्व० यू० रायकी कृति है। एकान्त कुटीरके शान्त वातावरणमें वृद्ध कवि भगवती शारदाकी आराधनामें तल्लीन हैं।

कांटा

प्रत्येक अच्छे चित्रकी विशेषता यह होती है कि उसे देखते ही दर्शक यह जान जाय कि इसमें क्या भाव प्रदर्शित है। दूसरे शब्दों यों कहिये कि जिसे एकसे अधिक नाम या शीर्षक ही न दिया जा सके। श्री नटेसनकी इस कृतिमें चित्रकलाकी यह उत्कृष्टता प्रत्यक्ष दिखाई देती है। चित्रका भाव इतना स्पष्ट है कि बिना किसी नामके भी दर्शक उसे फौरन ही समझ सकता है।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक :—बनारसीदास चतुर्वेदी, प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।
सहकारी सम्पादक :—व्रजमोहन वर्मा और धन्यकुमार जैन।

श्रामिसौनी

चित्रकार — श्री नन्दलाल बसु

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

वर्ष ४ भाग ७	जून १९३१; आषाढ़ १९८८	अङ्क ६ पूर्णाङ्क ४२

मेरी तारा

श्री इलाचन्द्र जोशी

प्रथम सर्ग

आज मृत्युकी उत्सवमयी निशामें
मरने दो, मरने दो मुझको भाई !
इन्दु-किरण-कणासे सकल दिशामें
देखो, कैसी पुलक-वेदना छाई !
नील गगनमें फैलाकर निज अँचरा,
गूँथ-गूँथकर तारक-चयका गजरा,
प्यारी मृत्यु बनी है कैसी रुचिरा !
क्यों उसकी छवि मेरे नयन समाई ?

देवदारु-द्रुम के मर्मर-दोलन से
होता है यह किस देवीका वीजन ?
गिरि-निर्झरके झरझर सलिल-पतनसे
होता है किस पद-पङ्कजका सिंचन ?
ज्योत्स्ना लहर रही है कम्पनशीला
देख-देखकर किसकी लहरी-लीला ?
यहाँ करेगा छैला कौन छबीला
किसकी लाज-भरी गालोंको चुम्बन ?

झिल्लीगणने बजा-बजा सहनाई
मन मेरा कैसा व्याकुल कर डाला !
मृत्यु-प्रियाने आज मुझे पहनाई
यह कैसी आश्चर्यमयी जयमाला !
रजनीगन्धाकी सौरभमय कलियाँ
इस उत्सव में करती हैं रँग-रलियाँ ;
सब मिलकर मेरी प्यारीकी अलियाँ
बना रही हैं क्यों मुझको मतवाला !

नीचे गिरिके पादमूलमें सरिता
रोड़ों पर इठलाती है, बल खाती,
किस रवसे आकुल होकर कल-कलिता
उन्मद है, उच्छृंखल है, मदमाती ?
दूर-दूरसे उसका कल-कल गुंजन
करता है कैसे मेरा मन-रंजन !
उसके जलसे होकर आर्द्र प्रभंजन
शीतल करती है क्यों मेरी छाती ?

भ्रांति ! भ्रांति है ! घोर भ्रांतिकी माया !
यह उत्सव है या विलाप है विह्वल ?
घनीभूत है घन-विषादकी छाया,
पुंजित है चहुँओर वेदना निश्चल ।
उमड़-उमड़ पड़ता है किसका क्रन्दन ?
पवन-वेगसे किसका वक्ष-स्पन्दन
प्रकट कर रहा है आकुल आवेदन ?
कौन हुआ है विरह-व्यथासे बेकल ?

रो-रोकर, खाकर पछाड़ बहती है
इस सरिताकी तरल-तरंगित धारा,
कल-कल स्वरसे कानोंमें कहती है—
"कहो कहाँ है आज तुम्हारी तारा ?
कहाँ छिपी है वह आँखोंकी तारा ?
कहाँ लय हुई तरल-अश्रु-कण-हारा ?
किधर बह चली सरल-लास-रस-धारा ?
कहाँ गई है आज तुम्हारी तारा ?"

तारे करके अविरल अश्रु-विसर्जन
पुण्य-स्मृतिमें अपनी प्रिया सखीकी
गगनांगनको करते हैं अभिसेचन ;
आग बुझाते हैं वे अपने जीकी ।
हा ! तारा थी उनकी प्रिया सहेली,
करती थी नित उनके सँग अठखेली,
लोप हुई क्यों वह प्यारी अलबेली ?
क्यों त्रिभुवनकी ज्योति कर गई फीकी ?

कब तक मुझे रुलाओगी तुम प्यारी ?
कब तक दिल में काँटा गड़ा रहेगा ?
कहाँ गईं वे विकल उमंगें न्यारी ?
कब तक मुझको दुस्सह दाह दहेगा ?
कहाँ गई वह मृदु-मृदु पुलकित व्रीड़ा ?
वह किशोर-जीवनकी सुखमय क्रीड़ा ?
वे मधु-स्मृतियाँ उपजाती हैं पीड़ा ;
कब तक मम नयनोंसे नीर बहेगा ?

मुझे बताओ हे मम जीवनदाता !
कहाँ छिपी वह सूरत भोली-भाली ?
चिर-परिचित क्यों हुई आज अज्ञाता ?
नित्य-संगिनी कैसे हुई निराली ?
दो दिन पहले जिसकी गुंजित भाषा
उद्दीपित करती थी नित नव आशा,
आज जगाकर जगकी हृदय-पिपासा
शून्य कर गई वह जीवनकी प्याली ।

प्यारी तारा ! भूल गई हो क्योंकर
उस दिनकी वह संध्या, शांत-सुरंजित ?
कुसुम-कुंजके नीचे आश्रय पाकर
तब तमिस्र होता था धीरे पुंजित ;
अस्ताचलके स्वर्ण-रागकी सुषमा
तब विकीर्ण करती थी मधुर-मधुरिमा,
स्निग्ध-शांत थी सुन्दर संध्या-प्रतिमा,
साम-गानसे जग था मृदु-मृदु गुंजित ।

चीड़-द्रुमोंकी सघन-राजिसे होकर
घर्घर-रवसे निर्झर था कल-मुखरित,
शिलाघातसे मुक्ता-सम जल-शीकर
बिखर-बिखर पड़ते थे चूर्ण-विचूर्णित ।
घूर्णित होती थी जल-धारा फेनिल,
झूम-झूम-सा पड़ता था संध्यानिल,
कूजन करते थे कपोत, कल-कोकिल ;
कुररी-क्रन्दनसे वन था आक्रन्दित ।

शिलाखण्डपर तुम थीं स्तब्धासीना,
मैं भी सम खड़ा था एक किनारे;
अन्यमना-सी तुम थीं प्रकृति-विलीना,
उद्दीपित थे विस्मित नयन तुम्हारे।
सांध्य अभ्रके शुभ्र स्फुलिंग बिखरकर,
रँगकर धीरे रक्ताभासे नभपर—
छटा बढ़ाते थे संध्याकी सुन्दर;
सज्जित थे सन्ध्याके भूषण सारे।

हुई प्रेरणा कैसी मुझे अचानक!
अकस्मात् क्या रूप तुम्हारा देखा!
हरण किये संध्याकी छवि मन-मोहक
शोभित थीं तुम अविकल-आकृति-लेखा।
नयनोंमें थी नील-गगनकी छाया,
मुखमण्डलमें स्वर्ण-रागकी माया,
शुभ सेंदुरमें रक्त-मेघ था आया;
बिखरे बालोंमें श्यामल वन-रेखा।

विहगवृन्द नीड़ोंमें पाकर आश्रय,
भजन गा रहे थे करके कल-कूजन,
स्खलित कुंज-कुसुमोंसे मृदु सौरभमय
होता था क्या देवि! तुम्हारा पूजन?
जल-प्रपातके स्फटिक-सलिलसे निर्मल
धौत हो रहे थे पद-कमल सुकोमल;
दिक्-दिगन्तमें व्याप्त चरण-रज परिमल
स्तब्ध प्रकृतिमें फूँक रहा था चेतन।

संभ्रमसे विभ्रांत, भक्तिसे विह्वल
मैं विमूढ़-सा होकर चकित, विमोहित—
झुककर पड़ने लगा तुम्हारे पद-तल,
लगा स्पर्श करने उनकी द्युति लोहित।
मृदु-मृदु हास-सहित कर हस्त प्रसारण
परम प्रेमसे तुमने किया निवारण;
मेरा कंठ पकड़कर सजनि! अकारण
पेलव-लतिका-सम तुम हुईं सुशोभित।

धीरे-धीरे तिमिर गाढ़ हो आया,
पवन-वेगसे काँप उठे तरु-पल्लव;
सघन हो गई श्यामलताकी छाया,
विजन विपिनमें गूँज उठा हाहा-रव।
हुआ भीतिसे दृढ़तर तव आलिंगन,
लगा विकल करने मुझको वह बन्धन,
किया स्नेहसे तव ललाटको चुम्बन;
उमड़ा तव नयनोंसे अश्रु-उपप्लव।

करके अविरल करुणा-किरण विकीरण
स्पन्दित द्युतिसे हो-होकर पुलकाकुल
अश्रु-हाससे संध्याके तारक-गण
दोनोंको करते थे चिन्तित, व्याकुल।
मैं अनमन-सा था तारोंको गिनता,
हमें खींचती थी किस ओर विजनता?
बिसर गई थी जग-जनकी सब चिन्ता,
बिसर गया था हमको भी मानव-कुल।

हास-छटा व्यंजित कर पूर्व-गगनमें
कृष्ण प्रतिपदाका शशि हुआ विभासित,
रजत-शुभ्र ज्योत्स्नासे हुई विपिनमें
निर्झरकी फेनायित मदिरा रभसित।
कलोल्लाससे मार-मार किलकारी
कलित कंठसे कूक उठीं तुम प्यारी;
अश्रु-म्लान मुखकी छवि करुण तुम्हारी
पुनः हुई उस शशि-मंडल-सम विकसित।

अर्द्धरात्रि तक विकल-केकिका कल-कल
सुप्त प्रकृतिको करता रहा सचेतन,
हृदय-तरंगोंसे तव होकर चंचल
था अशांत वह नीरव शांति-निकेतन।
हिल्लोलित लीलासे पुलकित निर्जन
हिम-कणसे करता था अश्रु-विसर्जन;
भक्ति सहित द्रुम करते थे पुष्पार्चन;
फहराया वन-वनमें तव जय-केतन।

आज हर्षसे रोमांचित वह रजनी,
जगा रही है वे सब प्यारी स्मृतियाँ—
वह कैशोर-हृदयकी लीला सजनी !
पुलक-स्नेह-सिंचित वे दो-दो कलियाँ।
अत हो गया वह जीवन उच्छृंखल—
स्वर्ण-स्वप्नकी वह स्वर्णाभा पिंगल,
प्रिय प्रभात, संध्याएँ शांत, सुमंगल,
हुईं शून्यमें लीन प्रीतिकी रतियाँ।

नहीं तुम्हें भाती थीं कोई सखियाँ,
केवल मैं था तव प्रिय सखा प्रवासी ;
उत्सुक रहती थीं वे कुलकुल अँखियाँ
मेरे ही दर्शनके हित नित प्यासी।
किन्तु नहीं स्वीकृत था तुमको बन्धन,
उत्सुक करता था तव वक्ष-स्पन्दन
निरुद्देश्य होकर उड़नेको बन-बन ;
किस तृष्णासे था तव हृदय उदासी ?

राज रही हो आज कहाँ स्वाधीना ?
ढूँढूँ तुमको प्यारी, मैं किस वनमें ?
महाकाशमें क्या तुम हुई विलीना ?
छिपी हुई हो अथवा मेरे मनमें ?
किस तारा-मंडलकी बनकर रानी,
ओढ़े हो तुम क्या अम्बर असमानी ?
किस तुषार-काननकी शुभ्र हिमानी,
बिछी हुई है तव सुकुमार शयनमें ?

रहकर निशि-दिन सजनि ! तुम्हारे सँगमें,
पाकर प्रतिपल प्यारी, प्रेम तुम्हारा—
रँग न सका मैं तुमको अपने रँगमें
देकर भी अपना जीवन-धन सारा।
तुमको कभी न कर पाया मैं अपना,
लगता है सब इन्द्रजाल-सा सपना,
वृथा हाय ! रोना है, व्यर्थ कलपना—
झूठा था वह प्यार, स्वप्न थी तारा !

बिना पिलाये ही यौवनकी मदिरा
कहाँ उड़ चलीं तुम अस्पृश्य कुमारी ?
अन्तर्धान हुईं हिम-कण-सी अचिरा,
बिन सींचे मम तरुण हृदयकी क्यारी !
आज भ्रष्ट है मेरा सारा यौवन,
तमसाच्छन्न हुआ है निष्फल जीवन,
व्यर्थ वसंत, वृथा मन-भावन सावन,
अर्थहीन है शरत्-निशा सुखकारी।

नव-वसंतका देख मदालस-लालस
सजनि ! तुम्हारा जी न कभी ललचाया,
सौरभ-रभसित ललित गुलाबोंका रस
विगलित देख तुम्हारा जी मचलाया ;
मृदुल मल्लिका, लावनमयी चमेली,
लज्जा-नमित लवंग लता अलबेली—
हाय ! तुम्हारी रहीं न कभी सहेली,
मलयानिल था कभी न तुमको भाया।

तड़ित्‌लताकी चलचित्र-सम रेखा
तुम्हें कंटकित, पुलक-चकित करती थी,
होकर मंगल—वर्षा—जल—अभिषेका
काश-कुसुम-शोभा तव मन हरती थी ;
शरत्-गगनकी शान्तच्छवि सुमनोहर
लगती थी तव नयनोंको अति प्रियकर,
हिम-गिरि-प्रेरित सांध्य समीरण बहकर
तव थर-थर हियमें आहें भरती थी।

मेरी थीं तुम प्रिया, प्रकृति की जननी,
शुद्ध, शान्त थीं मूर्तिमती तुम करुणा ;
चिर-संगीतमयी थीं सुमधुर-स्वननी,
दुःख-ज्वाल पीकर थीं तुम चिर-अरुणा ;
उज्वल होम-शिखा-सम परम पवित्रा,
हिम-स्फुलिंग-सी स्वच्छ, शीत, अति शुभ्रा,
ऊषा-सम सिंदूर-सुरंजित-अभ्रा,
संध्याकाश-समान विमुक्ताभरणा।

भूलूँ कैसे? नहीं मानता है मन,
निखिल विश्व लगता है यह सब सूना ;
हाय! लगा है प्रतिफल उसका चिंतन,
बढ़ता है यह वेदन दिन-दिन दूना।
उल्का-सम आई थी वह इस जगमें,
सौरभ-सी क्यों लीन हो गई मगमें?
समा गई है यद्यपि मम रग-रगमें,
पर अदृश्य है मुखड़ा सहज सलोना।

आज मृत्युकी मंगलमयी निशामें
चिर-कुमार मुझको मरने दो भाई।
पूत-प्रभंजन-स्पन्दित सकल दिशामें
पुंजित पुण्य-प्रभा कैसी बिलसाई!
पुलक-प्रकंपित है कैसे यह धरणी!
लहरें लहर रही हैं जीवन-मरणी;
किधर बह चली मम उच्छृंखल तरणी?
किस सागरमें इतराई, इठलाई?

मेरे प्यारो! मेरी चिता सजाना
सरिताकी उस वेत्र-कुंज-छाया पर—
प्यारी तारा जहाँ सुना कल गाना
मुझे विकल करती थी आहें भर-भर;—
जहाँ बिछाकर हरी दूबकी शय्या
परम स्नेहसे डाल-डाल गलबैंया
बिलखाती थी कहकर—"मैया! मैया!"
मुझपर करती थी तन-प्राण निछावर।

रोओ कुररी! रोओ तार-स्वरमें,
जपो निरन्तर—"तारा, तारा, तारा!"
झिल्लीगण! झंकार करो अन्तरमें—
"तारा, तारा, तारा, तारा, तारा!"
निर्झर! छोड़ो आँसूका फ़ौवारा,
विजन! तुम्हारा आज बजे इकतारा,
निकले उससे शब्द करुण यह प्यारा—
"तारा, तारा, तारा, तारा, तारा!"

द्वितीय सर्ग

जिस दिन मैंने पहले उसको देखा था बचपनमें,
मुखमें क्या स्वर्गीय प्रभा थी, विकसित ज्योति नयनमें!
क्या सकरुण. सुकुमार वेदना मुखमें झलक रही थी!
कैसी विह्वल व्याकुलता आँखोंमें छलक रही थी!
भोली-भाली, सरस, सलोनी छवि मेरे मनभाई,
किस विषादकी श्यामल छाया शुष्क हृदयमें छाई!
मैंने सोचा—किस माताकी है यह परम दुलारी,
किस मैयाकी बहन लाड़िली, किस दीदीकी प्यारी?
चिर-परिचित-सी लगी मुझे क्यों पहले ही दर्शनसे?
मरस स्नेह उमड़ा रग-रगमें हाय! प्रथम स्पर्शनसे।
हाथ थामकर उसका मैंने पूछा नाम दुलारा,
मन्द-मन्द मुसकाकर बोली—"मैं हूँ प्यारी तारा।"
मैंने पूछा—"किस माताके नैनोंकी हो तारा?"
करुणा-विह्वल, कलकल रवसे उमड़ चली जल-धारा।
हाय, निखिल जगमें न कहीं थी जीवित उसकी मैया,
दीदी भी न कहीं थी कोई, प्यारी मेन न भैया।
उदासीन थे पिता, निष्ठुरा थी उसकी प्रिय मौसी,
जो प्रिय वचन सुनाती कहकर—"हतभागी, मुंहझौंसी!"
निखिल विश्वके किस कोनेमें थी वह निपट अकेली?
निभृत विजनमें कहाँ स्फुटित थी वह लतिका अलबेली?
अपने ही अन्तरके रससे वह दिन-दिन बढ़ती थी,
स्वप्न-जगत्में हँस-हँसकर वह फिर रो-रो पड़ती थी।
हाय, एक ही दिनमें मुझसे कैसा नाता जोड़ा!
व्याकुल हियसे मुझे जकड़कर पल-भर साथ न छोड़ा।
मुझे विकल करती थीं निशिदिन उत्सुक प्यारी आँखें,
डबडब रससे भरी हुई वे नींबूकी-सी फाँकें।
तरल भाव था कैसा उनका, कैसा था आकर्षण!
देख-देख होता था मेरे रोम-रोममें हर्षण।
मुग्ध दृष्टिसे निरख-निरख वह मुखड़ा सहज सलोना,
समझ गया मैं, मुझको सारे जीवन-भर है रोना।

कभी खेलती वह निर्जनमें कैसा खेल निराला!
कभी गूँथती थी उपवनमें कलित केतकी-माला!
कभी बिलैयाको वह अपनी लेकर गोद सुलाती,
करके प्यार, दुलार उसे तत्काल बिसर-सी जाती।
उसे याद आ जाती थी तब अपनी प्यारी मैना,
जा पिंजड़ेके पास स्नेहसे कहती—"आ जा मैना!"
पिंजड़ेपर निज कोमल अधरोंको करती थी स्थापन,
रक्तचंचुसे मैना उनको कर देती थी चुम्बन।
विकल पुलकसे किलक-किलककर बजा-बजाकर ताली,
स्नेह-सहित अपनी बहनाको देती थी वह गाली।
मैना कहती—"तारा, तू मर जा!" वह हँस पड़ती थी,
बहनाकी प्यारी गालीसे वह न कभी चिढ़ती थी।
इस प्रकार निज तृषित हृदयकी ज्वाला हाय! बुझाती,
स्वयं सृजनकर स्नेह-जगत् निज मन अपना समझाती।
हाय, दुलारी मैना! कैसी सफल हुई वह बानी!
कहाँ आज तुम, हाय कहाँ है मेरी तारा रानी!

सन्ध्याको वह मेरे संगमें नित्य टहलने जाती,
निरख-निरख छवि शान्त प्रकृतिकी अपना मन बहलाती।
निरुद्देश्य फिरते थे दोनों पर्वतके वन-वनमें,
क्या उल्लास झलकता मुखमें, क्या आशा थी मनमें!
किस प्रवेगसे उसे खींचता था संध्याका तारा!
उसके विस्मित नयनोंको लगता था कैसा प्यारा!
उसे देखकर फिर वह आँखें नहीं फिरा सकती थी,
हेर-हेरकर उसकी शोभा वह न कभी थकती थी।
सम्भव है क्या—वह था उसके पूर्व-जन्मका साथी?
वह था सखा दुलारा, तारा उसकी परम प्रिया थी?
छीन ले गया मुझसे उसको क्या ईर्षाके कारण?
अन्तस्तलमें छिपे हुए हैं आज उसे क्या धारण?
चूमो, चूमो सन्ध्या-तारा! करो उसे आलिंगन,
[illegible] [illegible] कर दो उसके अश्रुकणोंको मोचन।
उसे पिलाओ, किन्तु बढ़ाओ मेरे हियकी ज्वाला,
उसे पिलाओ सुधा, मुझे दो हालाहलका प्याला।

सरिताके तीर जाकर दोनों करते थे जल-क्रीड़ा,
उच्छल जलसे हमें रुलाती लहरी लोल अधीरा।
दूर पहाड़ी खेतोंसे मुरलीकी तान सुरीली,
बीच-बीचमें बज उठती थी कैसी करुण, रसीली!
कभी निठुर हम मत्स्य पकड़ते लिए कँटीली वंशी,
निर्निमेष रहते, जब जलमें कभी तैरती हंसी।
कभी बैठकर वेल-लताकी सघन कुंज छायापर,
सब हृदयसे सुनते थे हम सुरुचिर पल्लव-मर्मर!
काश-गुच्छको बाँध-बाँधकर निज कुंचित कुन्तलमें
वहीं लेट जाती सिर रखकर वह मेरे पदतलमें।
वहीं सुनाता था मैं उसको कोई करुण कहानी,
उत्सुक हो, एकाग्रचित्तसे सुनती मेरी रानी।
जब श्मशानके निकट अकारण जाते शिवके मन्दिर,
शुष्कजटा सन्यस्ता देवी दर्शन देती सुन्दर।
दोनोंके मस्तकमें वह क्या ज्वलित भभूत लगाती,
मायामय आशीर्वादसे क्या उल्लास जगाती!
काश-कुसुम करमें लेकर तारा करती थी अर्चन,
रोम-रोममें भक्ति-हर्षका हो जाता था सर्जन।

उल्का पात कभी जब होता, वह होती हर्षाकुल,
लगती थी आनन्द-बाण-सी उसकी रेखा मंजुल।
एक वर्ष जब धूमकेतु था शोभित हुआ गगनमें,
दमक उठा उल्लास अलौकिक उसके दीप्त नयनमें।
किस अनंगका बाण मनोहर हुआ शून्यमें सज्जित!
देख-देखकर उसको तारा हुई पुलकसे लज्जित।
भूल गई वह आकुल वेदन, भूल गई वह रोना,
अशन-वसनकी चिन्ता भूली, भूल गई वह सोना।
लगा उसे वह मस्त तान-सा, चिर-उन्माद-स्वपन-सा,
भाग्य-गगनमें भूला-भटका अस्थिर, अचिर तपन-सा।
आत्मभाव निज जीवनकी क्या देखी उसमें छाया?
धूमकेतु-सी लीन हुई क्या क्षणिक-प्रभा वह माया?

नव-नव रुचिर कुसुम-चय लेकर, गूँथ-गूँथकर माला
पहनाता था उसको प्यारा नव-वसंत मतवाला ;
घृणा-सहित उस मालाको निज पैरोंतले कुचलकर
नष्ट-भ्रष्ट कर देती थी वह प्यारी मचल-मचलकर ।
शरत्-देवकी अमल-धवल नव-कान्ति भुवन-मन-मोहन
उसको [illegible] हरण करती थी बनकर रुचिर, सुशोभन ।
हिम-ऋतुकी जब चन्द्रकान्त-निभ आभा स्वच्छ, सुशीतल
हिम-निपातसे कर देती थी उज्वल यह धरणीतल—
परिस्तानकी तब वह माया उसका हृदय लुभाती,
उसे सुनातीं हिमकी परियाँ क्या संगीत प्रभाती !
जब निहार नीहार-विपिनकी कल-कमनीय हिमानी-
हो जाता था विनमित, अवनत मन उसका अभिमानी,—
विगलित होकर तब वह कहती—"यही जगत् है मेरा !
इसी जगत्के निभृत नीड़में लूँगी हाय, बसेरा ।
यही स्वप्न है मेरा, भैया, इसी अप्सरालयमें
कठिन जगत्से हो विमुक्त अब हुआ चाहती लय मैं ।"
श्वेत-कुसुम-सम हिम-स्फुलिंगकी जब होती थी वर्षा,
नाच-नाच उठती थी तब वह मुझको तरसा-तरसा ।
शुभ्र तुषार-स्फटिक-कण-सा था चिर-कुमार उसका मन,
हुआ उसीके सँग विलीन क्या पकड़ हिमानी-दामन ?

मेरी रानी स्वप्न-जगत्में हुई निःसंशय, निर्भय,
हिम-मंडित हेमन्त-कला-सी दिन-दिन अधिक प्रभामय ।
स्थिर न रहा पर अधिक काल तक स्वप्न-भवन सुमनोहर,
निठुर चक्रके ताड़नसे वह हुआ चूर धरणीपर ।
जकड़ लिया जगने उसको मिथ्या विवाह-बन्धनसे,
बिछुड़ी मुझसे मेरी प्यारी करुण, आर्त्त-क्रन्दनसे ।
सास-ससुर-पतिका शासन, गार्हस्थ्य-चक्रका पीड़न
क्षोभित करने लगा उसे वह पाप-ताप-आलोड़न ।
हिम-संघात-शिला-सी बनकर कठिन-हृदय, निर्मोही
बन्धनसे हो क्षुब्ध-प्राय वह बनी विकट विद्रोही ।
लगी छटपटाने वह विहगी चिर-मुक्ता, निर्लिप्ता,
विगलित होने लगी हिमानी-सी सविता-कर-तप्ता ।
पुन: स्वप्नमय हुई हाय, वह हो अनन्त-निद्रारत,
चिर-कुमारताकी वह महिमा रही अखंड, अनाहत ।
चिता जली थी उसकी प्यारी ! निर्विकार, निर्धूमा,
मैंने उस अन्तिम आभाको झूम-झूमकर चूमा ।
शेष शेष वह हरण कर गई निखिल प्रकृतिकी माया,
स्तब्ध शून्यमें स्तम्भित होकर मैं व्याकुल बौराया !

आज यही है केवल प्यारी ! मेरा करुण निवेदन—
जीवन-भर निर्धूम ज्योतिसे जले हाय ! मम वेदन ;
हाय ! न फिरने पावे मेरी इस आशापर पानी—
गहन मृत्युके सघन कुंजमें मुझे मिलेगी रानी ।

देहाती डाक्टर

तुर्गनेव

शीतऋतुमें एक दिन देशके किसी सुदूर प्रान्तसे लौटते हुए मुझे जुकाम हुआ, और मैं बीमार पड़ गया। खैरियत यह हुई कि जिलेके सदर-मुकामके होटलमें मुझे बुखार आया। डाक्टरको बुला भेजा। आधे घंटेमें वह आ पहुँचा। मामूली क़दका, काले बालोंवाला, दुबला-पतला आदमी था। उसी पुरानी पसीना लानेवाली दवा और पलास्टरका नुस्खा उसने लिख दिया, और अपनी आस्तीनमें बड़ी फुर्तीसे पाँच रूबलका नोट खोंस लिया। साथ ही वह बाहरकी ओर देख देखकर खाँसता भी जाता था। वह घर जानेके लिए उठ खड़ा भी हुआ था, पर बातोंमें फँसकर वहीं बैठ गया। * बुखारसे मैं चूर-चूर हो गया था, मालूम होता था कि रातको नींद न आयगी, इसलिए एक विनोदी संगीसे गपशप करनेको जी भी चाहता था। चाय ढाल दी गई। मेरा डाक्टर जी खोलकर बातचीत करने लगा। वह समझदार आदमी था और उसकी बातोंमें परिहास और उत्साहकी भी पुट थी। संसारमें कई अनोखी घटनाएँ होती हैं। कुछ आदमियोंके साथ चाहे आप वर्षों घुल-मिलकर बिता दें, लेकिन उनके आगे एक बार भी आप दिलकी कुंजी नहीं खोलते। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनसे जान-पहचान होते ही एकाएक अपना दिल एक दूसरेके आगे खोलकर रख देते हैं, जैसे किसी पादरीको जीवन-कहानी सुना रहे हों।[1] कह नहीं सकता कि इस नये मित्रको मुझपर विश्वास कैसे हो गया। मैंने तो ऐसा कुछ न किया था, फिर भी उसने मुझे एक अद्भुत घटना कह सुनाई, जिसे अपने उदार पाठकोंके मनोरंजनके लिए डाक्टरके ही शब्दोंमें ज्योंका त्यों कह सुनाता हूँ।

अपनी कहानी उसने कमज़ोर और काँपती हुई आवाज़में शुरू की। कड़ी नास सूँघते रहनेका यही परिणाम होता है। ''यहाँके जज मिलोव पेवेल लुकिचको भला तुम क्या जानते हो? नहीं जानते? खैर, जानो चाहे न जानो।'' (खाँस-खखारकर उसने आँखें भी मल डालीं) ''अच्छा, तो बिना किसी लाग-लपेटके तुम्हें सारी घटना सुना दूँगा। लेन्टमें बर्फ़ पिघलते समय उसका सूत्रपात हुआ। हमारा जज बड़ा अच्छा आदमी है, प्रिफरेन्स[2] खेलनेका बड़ा शौक़ीन! अकस्मात्—'' (यह शब्द डाक्टरका 'तकियाकलाम' था) ''अकस्मात् लोगोंने बताया कि मुझे नौकर तलाश कर रहा है—'वह क्या चाहता है?' 'एक चिट्ठी लाया है, जो किसी रोगीकी ही होगी।' मैंने कहा—'लाइये तो वह पुर्ज़ा, रोगीका ही है न! तब क्या कहने हैं, अरे यारो, यही तो मेरी जीविकाका सहारा है।' लेकिन बात कुछ और ही निकली; एक विधवा महिलाने लिखा था—'मेरी लड़की मर रही है। ईश्वरके लिए अवश्य आइये। आपके लिए सवारी भेजी जा रही है।' यहाँ तक तो सब ठीक था। लेकिन वह शहरसे २० मील दूर रहती है, फिर घरके बाहर आधी रातके वक्त ऐसी दुर्गम सड़कपर सफ़र, तौबा-तौबा! फिर वह ग़रीब भी थी, इसलिए चाँदीके दो रूबलसे अधिककी आशा न थी और इसका भी भरोसा न था। सम्भव है कि फीस रूखे-सूखे भोजन और मोटे-मोटे कपड़ोंके रूपमें ही आय, तथापि तुम जानते हो कि कर्तव्यका पालन पहले होना चाहिए। रोगी कहीं मर गया तो! प्रान्तीय कमीशनके मेम्बर केलोपीनको अपने हाथके ताश देकर मैं घर लौटा, तो क्या देखा कि किसानोंके मोटे-ताज़े घोड़े—अजी, बहुत ही मोटे—एक जीर्ण-शीर्ण पिंजरानुमा गाड़ीमें

(१) कनफेशन—रोमन कैथलिक ईसाई जीवनके अवसान-कालमें किसी पादरीको अपने पाप-पुण्यका ब्योरा देना आवश्यक समझते हैं।

(२) ताशका एक खेल।

जुते हुए खड़े हैं। घोड़ोंका चारजामा भी फटा-पुराना था। कोचवान सम्मान-प्रदर्शनके लिए टोपी उतारकर बैठा हुआ था। मैंने मन-ही-मन कहा—'सुन लो भइया, यह रोगी मालामाल तो हर्गिज़ नहीं है।' तुम मुसकरा रहे हो, [illegible] मुझ-जैसे ग़रीब आदमीको पहले सब ऊँच-नीच सोच लेना [illegible]। अगर कोचवान साहब रईसी ठाठसे बैठे हों, सलाम करना तो दूर रहा, दाढ़ीकी आड़में मुँह चिढ़ायें और चाबुक दिखायें, तब तो शर्तिया डबल फीस मिल सकती है। लेकिन यह मामला तो बिलकुल ही उलटा था। फिर भी मैंने विचारा कि कर्तव्यपालन पहले होना चाहिए, इसका इलाज ही क्या? सबसे ज़रूरी दवाओंको लेकर चल पड़ा। नरकका मार्ग यही होगा। नदी, नाले, निर्झर सब तो भर आये थे ही, पर बाँध भी एकाएक टूट गया था, यह बड़ी मुसीबत थी। येनकेन प्रकारेण ठिकानेपर मैं पहुँच ही गया। वह फूसके छप्परवाला छोटासा घर था। खिड़कियोंसे रोशनी छन रही थी, जिससे प्रकट था कि वे लोग मेरी बाट जोह रहे थे। मेरा स्वागत एक बड़ी भलीमानस बूढ़ी औरतने किया, जो टोपी पहने हुई थी। 'वह मर रही है, उसे बचा लो—' वह चीख उठी।

मैंने कहा—'घबराइये नहीं, रोगी किधर है?'

'इस ओर आइये।'

मैं एक छोटेसे साफ़-सुथरे कमरेमें पहुँचा। कमरेमें एक लैम्प टिमटिमा रहा था। बिस्तरपर बीस वर्षकी एक युवती बेसुध पड़ी हुई थी। उसकी दो बहनें भी वहीं भयसे सहमी हुई आँसू बहा रही थीं। उन्होंने मुझसे कहा—'कल तो यह भली-चंगी थी और भोजन भी कसकर किया था। आज सबेरे इसके सिरमें दर्दकी शिकायत थी, और अब तो आप देख ही रहे हैं।' मैंने उन्हें सान्त्वना दी। यह भी तो डाक्टरका एक कर्तव्य है। रोगिणीके पास जाकर मैंने उसे नश्तर लगाया, और पलस्तर लगानेको कहकर एक मिक्सचरका नुस्खा लिख दिया। इस बीचमें उसपर मेरी आँख पड़ गई। तुम्हें क्या बताऊँ, सच जानो, आज तक ऐसा मुखमण्डल न देखा था। वह सौन्दर्य-प्रतिमा थी। दयासे मेरा कलेजा हिल गया। कैसे कोमल अंग-प्रत्यंग थे, क्या आँखें थीं।... जब उसकी दशा सुधरने लगी, तो ईश्वरको मैंने कितना धन्यवाद दिया। उसे पसीना आया और धीरे-धीरे होश आने लगा। चारों ओर देखकर वह मुसकुराई और उसने अपने मुँहपर हाथ फेरा। दोनों बहनोंने उसपर झुककर पूछा—'कहो कैसी हो?'

'अच्छी हूँ' कहकर उसने आँखें नीची कर लीं, और मेरे देखते-देखते उसे नींद आ गई। मैंने कहा—'अब रोगिणीको विश्राम करने देना चाहिए।' हम सब पंजेके बल बाहर चले गये। उसे किसी चीज़की ज़रूरत हो, तो पूरा करनेके लिए एक परिचारिका कमरेमें छोड़ दी गई। सहनमें मेज़पर 'समोवर' (चायका बर्तन) और रम शराबकी एक बोतल रखी हुई थी। हमारे पेशेका कोई आदमी इसके बिना रह नहीं सकता। उन्होंने मुझे चाय पिलाई और रात वहीं बितानेके लिए कहा। मैं भी तैयार हो गया। अब सच पूछो, तो इतनी रातको मैं जाता कहाँ? बुढ़िया बराबर कराहती जाती थी। मैंने कहा—'यह क्या? लड़की बच जायगी, आप घबराती क्यों हैं? आपको अब आराम करना चाहिए, दो बज चुके हैं।'

'अगर कुछ हुआ, तो आप मुझे बुला भेजेंगे।'

'हाँ, हाँ।'

बुढ़ियाके चले जानेके बाद दोनों लड़कियाँ अपने शयनकक्षको चली गईं। मेरे लिए सहनमें उन्होंने बिस्तर लगा दिया। मैं लेट तो गया, पर आश्चर्य है कि नींद नहीं आई, हालाँकि मैं थकावटसे चूर-चूर हो गया था। रोगिणीका ध्यान चित्तसे ओझल न हो सका। लाख चेष्टा करनेपर भी उसको न भुला सका और एकाएक उठ खड़ा हुआ। सोचा—चलकर देखना ही होगा कि अब उसकी क्या हालत है। सहनके पार्श्वमें उसका शयनकक्ष

था। मैं चुपके-चुपके उसके पास पहुँचा और हौलेसे दरवाज़ा खोला। दिल धक-धक कर रहा था। अन्दर झाँका, तो देखा कि नौकरानी बत्तीसीकी छटा दिखलाती हुई सो रही थी; कम्बख्त खर्राटे भी भर रही थी। रोगिणीका मुँह मेरी ओर था, और युगल बाहु खुले हुए थे। मैं धीरे-धीरे उसके समीप पहुँचा ही था कि वह चौंक पड़ी और एकटक मुझे देखने लगी—'कौन, कौन?' मैं पहले तो सिटपिटा गया, फिर कहा—'मैडम, डरिये नहीं, मैं डाक्टर हूँ, देखने आया हूँ कि आप कैसी हैं?'

'तुम डाक्टर हो?'

'हाँ, डाक्टर ही हूँ। आपकी माने मुझे शहरसे बुला भेजा है। हमने आपको नश्तर लगाया है। अच्छा, तो अब सो जाइये। ईश्वरने चाहा, तो दो-एक दिनमें आप बिना सहारे खड़ी हो सकेंगी।'

'हाँ, हाँ, मेरे अच्छे डाक्टर, मुझे मरनेसे बचा लो।'

'हज़ारी उम्र हो, आप यह क्या कहती हैं?' मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि उसे ज़रूर बुखार है। नाड़ी देखी तो सचमुच बुखार था। उसने मुझपर नज़र डाली, और हाथ थामकर कहा—'मैं क्यों मरना नहीं चाहती, यह तुम्हें बताये देती हूँ। तुम्हें बताती हूँ...अब हम अकेले हैं, लेकिन कहना नहीं......किसीसे भी...तो सुनो।' मैं झुक गया। अपने ओंठ उसने मेरे कानोंसे भिड़ा दिये, मेरे गालोंसे अपने बाल उसने सटा दिये—सच कहता हूँ कि मेरे होशके तोते उड़ गये—और ओठों-ही-ओठोंमें कुछ कहा...मेरी समझमें खाक-पत्थर न आया......ओह, यह प्रलापके सिवा कुछ न था। वह इतनी तेज़ीसे कानाफूसी करती गई, जैसे रूसीमें नहीं, किसी दूसरी भाषामें बोल रही हो। अन्तमें बातचीत खतम करके काँपते हुए तकियेमें उसने अपना सिर छिपा लिया और अँगुली दिखाकर कहा—'डाक्टर, याद रखिये—किसीसे नहीं।' मैंने किसी प्रकार उसे शान्त किया, एक दवा पिलाई और नौकरानीको जगाकर चला आया।"

इतना कहकर डाक्टरने इतने ज़ोरसे नास खींची कि पल-भरके लिए उसकी तेज़ीने उसे चक्करमें डाल दिया।

"फिर भी दूसरे दिन मेरी आशाके अनुकूल रोगिणीकी दशा सुधरी नहीं। बहुत सोच-विचारकर मैंने निश्चय किया कि दूसरे रोगी प्रतीक्षा करें, तो करने दो, पर मैं तो यहीं ठहरूँगा।...तुम जानते हो कि कोई डाक्टर इस बारेमें लापरवाही नहीं कर सकता, वरना उसकी प्रैक्टिस मारी जायगी। इसके सिवा पूरे कुटुम्बसे मुझे प्रेम हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग दरिद्र थे, पर मैं कह सकता हूँ कि असाधारण रूपसे सुसंस्कृत भी थे। उनका पिता सुशिक्षित ही नहीं, लेखक भी था। यह कहना व्यर्थ है कि ग़रीबीमें उसने जान दी, पर मरनेके पहले अपने बच्चोंको वह बहुत अच्छी शिक्षा दे चुका था। वह एक पुस्तकालय छोड़ गया था। रोगिणीकी जीतोड़ सेवा सुश्रूषाके कारण या किसी और बातने कुटुम्बमें मुझे ऐसा सर्वप्रिय बना दिया था, जैसे मैं भी उनका कोई अपना सगा हूँ।...इस बीचमें सड़कें पहलेसे भी खराब हो गई थीं। आने-जानेके सब मार्ग और साधन रुक गये थे। शहरसे दवा तक कठिनाईसे मँगाई जा सकती थी।...बीमारकी हालत भी सुधर नहीं रही थी।...दिन-प्रतिदिन...लेकिन...यहाँ......" (डाक्टर क्षण-भरके लिए रुक गया।) "समझमें नहीं आता कि तुमसे कैसे कहूँ..." (उसने फिर नास सूँघी, खाँसा और एक घूँट चाय पी।) "बिना लाग-लगावके मैं तुम्हें साफ़-साफ़ सब कुछ बता दूँगा। मेरी रोगिणी....कैसे कहूँ?....अजी, वह मुझसे प्रेम करने लगी थी......या नहीं, वह मुझे प्यार नहीं करती थी....फिर भी...कोई कैसे बताये।" (डाक्टरकी आँखें नीची हो गईं और चेहरा लाल हो गया) उसने जल्दी-जल्दी कहना शुरू किया—"नहीं, प्रेम कहाँका! किसीको अपने मुँह मियाँ मिट्ठू न बनना चाहिए।

वह पढ़ी-लिखी और समझदार लड़की थी, और मैं तो लेटिन भूल चुका था। रूपरंगका (डाक्टरने मुसकराते हुए अपने आपको निहारा) भी मैं अभिमान नहीं कर सकता,

परन्तु सर्वशक्तिमान ईश्वरने मुझे घोंघाबसंत नहीं बनाया है। रातको मैं दिन नहीं समझ लेता। दो-चार बातें मुझे भी मालूम हैं। उदाहरणार्थ, मैं खूब जानता था कि अलकज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना—यही उसका नाम था—मुझसे प्रेम तो नहीं करती थी, फिर भी उस भावको मित्रतापूर्ण, आदर या ऐसा ही कुछ कहा जा सकता है। हालाँ कि कदाचित इस भावको वह भी ठीक ठीक न समझ सकी थी, पर बर्ताव उसका कुछ ऐसा ही था। अब चाहे जो समझो।" इन सब बेजोड़ वाक्योंको स्पष्ट अनिच्छापूर्वक डाक्टर एक ही साँसमें कह गया था। "लेकिन मैं क्या कह रहा हूँ—तुम इन बातोंको क्या समझोगे? अच्छा, तुम अनुमति दो तो अब पूरी कहानी सिलसिलेवार सुना दूँ।"

एक प्याला चाय पीकर बड़ी नर्म आवाज़में उसने कहना शुरू किया—"खैर, रोगिणीकी दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ने लगी। सुनो भाई, तुम डाक्टर नहीं हो, इसलिए जब उसे सन्देह होने लगता है कि व्याधि उसे पछाड़ रही है, तो पहले-पहल उस बेचारेपर क्या बीतती है, इसका अनुमान तुम नहीं लगा सकते। उसके आत्म-विश्वासकी क्या हालत होती है? एकाएक जी ऐसा मुरझा जाता है कि बयान नहीं हो सकता। तब वह सोचता है कि जो कुछ याद था, सब भूल गया और रोगीको उसपर भरोसा नहीं रहता। वह समझता है कि दूसरे लोग उसकी बेचैनीको समझकर बिलकुल बेदिलीसे अपनी शिकायत सुनाते हैं। उसे संदिग्ध-दृष्टिसे देखकर एक दूसरेके कानमें जाने क्या फूक रहे हैं!··· उफ़! रोंगटे खड़े हो जाते हैं! डाक्टर सोचता है कि इस रोगका कोई उपचार ढूढ़ निकालना चाहिए है या नहीं? एक औषधि निकाली, फिर सोचा, नहीं यह क्या है। स्वास्थ्यदानके लिए औषधिको जितना समय चाहिए, तब तक उसे धैर्य कहाँ? कभी एक चीज़ उठाई, कभी दूसरी! कभी चिकित्साशास्त्रमें से एक नुस्खा निकालकर वह सोचता है, यही तो है! सच जानो, कभी दूसरी औषधि निकालकर उससे भाग्य-परीक्षा करना चाहता है।···इधर एक जीव मृत्युशय्यापर है, और कोई दूसरा डाक्टर उसकी प्राण-रक्षा कर सकता है। वह सोचता है—'किसीसे परामर्श कर लेना चाहिए, सारी ज़िम्मेवारी मैं अपने ऊपर न लूँगा।' ऐसे अवसरपर वह कैसा वज्रमूर्ख मालूम होता है। ज़माना उसमें सहनशक्ति भी पैदा कर देता है। इस झंझटसे उसे क्या मतलब? किसीकी जान गई, तो उसका क्या क़ुसूर? नियमानुसार उसने रोगीकी चिकित्सा की थी! पर उसे यह देखकर और भी करुण व्यथा होती है कि सब उसपर अन्ध-विश्वास करते हैं, और वह स्वयं अपनेको असमर्थ समझता है। अस्तु, अलेकज़ेंड्रा ऐंड्रीयवनाका समस्त परिवार मुझपर ऐसा ही अन्ध-विश्वास करता था। मा भूल गई थी कि बेटीकी जान खतरेमें है। मैं भी उन्हें सान्त्वना देता था कि कुछ न होगा, पर इधर मेरा दिल बैठता जाता था। सड़कें इतनी दुर्गम हो गई थीं कि कोचवान कई दिनसे औषधि लाने गया था और अबतक न लौटा था। इससे हमारा सकट और भी बढ़ गया।

मैं कभी रोगिणीके कमरेसे दूर न होता था। अपने आपको वहाँसे हटा भी नहीं सकता था। मैं उसे मनोरंजक कहानियाँ सुनाता और उसके साथ ताश खेलता था। रातको मैं उसकी देखरेख करता था। बूढ़ी मा आँखोंमें आँसू भरकर मुझे धन्यवाद देती थी, पर मैं मन-ही-मन सोचता था कि मैं धन्यवादका पात्र नहीं हूँ। तुमसे साफ़-साफ़ कह देता हूँ—अब इसे छिपाना बेकार है—अपनी रोगिणीसे मुझे प्रेम हो गया था। अब अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना भी मुझे चाहने लगी थी। कभी-कभी तो मेरे सिवा किसी दूसरेको अपने कमरेमें वह आने भी न देती थी। वह मुझसे बातचीत करने लगी, पूछताछ करने लगी—'तुमने कहाँ पढ़ा था? तुम कैसे रहते हो? तुम्हारे नातेदार कौन हैं? तुम किनसे मिलते-जुलते हो?' मैं समझता था कि उसे बोलना न चाहिए, लेकिन उसे मना करना—कड़ाईसे—मेरे लिए असम्भव था। कभी-कभी अपने सिरको हाथोंमें लेकर मैं सोचता था, 'अरे दुष्ट, तू क्या कर रहा

है ?'···और मेरे हाथको अपने करकमलमें लेकर वह टकटकी बाँधकर मुझे देखती थी, मुँह फिराकर ठंढी साँस भरती थी और कहती थी—'तुम कितने भले मालूम होते हो !' उसके हाथ कितने गर्म होते थे, आँखें कैसी फैली-फैली और झुकी-झुकीसी मालूम होती थीं···फिर वह कहती थी—'तुम बड़े भलेमानस हो, हमारे पड़ोसियों जैसे नहीं, हरगिज़ नहीं ! अब तक तुमसे क्यों न भेंट हो सकी !'

मैं कहता था—'अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना अपनेको सँभालो।··· सच जानो, यह सौभाग्य मुझे कैसे प्राप्त हुआ, यह मैं ही जानता हूँ···पर अपनेको तुम सँभालो······परमात्मा भला करेगा, तुम स्वस्थ हो जाओगी।"

डाक्टरने भृकुटि तानकर आगे झुकते हुए कहा—"हाँ, मैं तुमसे यह भी कह दूँ कि वे अपने पड़ोसियोंसे बहुत कम मिलते-जुलते थे, क्योंकि निम्न-श्रेणीके आदमी तो उनसे काफी नीचे दर्जेके थे और स्वाभिमान उन्हें धनिकोंसे मिलने न देता था। सच कहता हूँ कि वह परिवार असाधारण रूपसे सुसंस्कृत था, इसीलिए मैं उसे इतना पसन्द करता था। वह केवल मेरे ही हाथोंसे दवा पीती थी······बेचारी उठ बैठती थी। मेरा सहारा लेकर दवा पीती और मुझे देखती जाती थी।······मेरा दिल जैसे टूक टूक हुआ जाता था ! इधर उसकी दशा पल-पलपर बिगड़ती जाती थी। मैं सोचता था 'यह मर ही जायगी, हरगिज़ न बचेगी।' सच जानो कि उसके पहले मैं अपने प्राण वारनेके लिए तैयार था। उधर उसकी माँ और बहनोंकी आँखें मुझपर थीं···और मुझपर से उनका विश्वास कम होता जा रहा था। 'कहिये ? उसकी हालत कैसी है ?' 'बिलकुल ठीक।' 'जी हाँ, बिलकुल ठीक !' मेरा दिमाग़ चकरा रहा था।

एक रातको मैं रोगिणीके पास बैठा हुआ था। परिचारिका भी वहीं बैठी हुई खर्राटे भर रही थी। उस बेचारीका क्या दोष, वह भी बिलकुल थक गई थी। सन्ध्या समय अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवनाकी हालत बड़ी खराब हो रही थी। ज़ोरका बुखार था। अर्धरात्रिपर्यन्त वह करवट बदलती रही। अन्तमें उसे नींद आ गई, या कमसे कम वह निश्चल पड़ गई। कोनेमें मरियमकी पवित्र मूर्तिके आगे लैम्प जल रहा था। मैं सर झुकाये वहीं बैठा रहा। थोड़ी देर ऊँघ भी लिया। एकाएक जान पड़ा, जैसे किसीने कुहनीको धक्का मारा। मैं चौंक पड़ा······अरे यह क्या। ······अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना एकटक मुझे देख रही थी······ ओठ अधखुले थे और गाल अंगार हो गये थे।

'क्यों, क्या हुआ ?'

'क्यों डाक्टर, क्या मैं मर ही जाऊँगी ?'

'ईश्वर दया करे !'

'नहीं, नहीं, डाक्टर, न कहो कि मैं अब भी जी उठूँगी······नहीं, नहीं······अगर तुम जानते, सुनो ! ईश्वरके लिए सब सच-सच कह दो।' वह तेज़ीसे साँस लेने लगी—'यदि मुझे विश्वास हो गया कि मैं मर रही हूँ, तो तुम्हें सब कुछ सुना दूँगी !'

'अलेक्ज़ेंड्रा, मेरी प्रार्थना······।'

'सुनो, आज मेरे पलक भी नहीं लगे हैं······मैं तबसे तुम्हें ताक रही थी······ईश्वरके लिए सुन लो।······ मुझे तुमपर भरोसा है; तुम सज्जन हो और ईमानदार भी। संसारके सब पावन पदार्थोंकी सौगन्ध, तुम सच-सच बतला दो ! तुम क्या जानो कि मेरे लिए यह कितनी महत्त्वपूर्ण बात है।······डाक्टर, ईश्वरके लिए बता दो कि क्या मेरी हालत नाजुक है !'

'अलेक्ज़ेंड्रा, तुम क्या पूछना चाहती हो ?'

'मैं पैर पड़ती हूँ, ईश्वरके लिए बता दो !'

'तब अलेक्ज़ेंड्रा, मैं तुमसे कुछ न छिपाऊँगा। तुम्हारी दशा वास्तवमें खतरनाक है, पर ईश्वर दयावान है।'

'मैं मर जाऊँगी, मैं मर जाऊँगी।' ऐसा जान पड़ा कि वह बड़ी प्रसन्न है। उसका मुँह दमक उठा। मैं घबरा गया। वह एकाएक उठ बैठी और कुहनी टेककर बोली—'डरो मत, डरो मत। मुझे मृत्युका लेशमात्र भय नहीं है। अब······हाँ, अब मैं तुम्हें बताऊँगी कि मेरा

रोम-रोम तुम्हारा आभारी है।……तुम दयालु और कृपाशील हो……और मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।' मैं भौंचकासा होकर उसे ताकता रह गया ; सच जानो, यह मुझपर वज्रपात था।

'सुना, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।'

'अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना, मैं तुम्हारे इस प्रेमका अधिकारी कैसे बना ?'

'नहीं नहीं, तुम्हारी समझमें नहीं आया—' और एकाएक अपने युगल बाहु खोलकर उसने मेरे कपोलको अपने हाथोंमें लेकर चूम लिया। सच जानना, मैं चीख उठा।……घुटनेके बल बैठकर मैंने अपना सिर तकियेमें छिपा लिया। वह चुपचाप रही, उसकी अँगुलियाँ मेरे बालोंके भीतर कँप रही थीं। मैंने उसके रोनेकी आवाज़ सुनी। मैं उसे समझाने-बुझाने लगा।……याद नहीं कि उसमें मैंने क्या-क्या कहा—'तुम्हारे रोनेसे नौकरानी जग जायगी। अलेक्ज़ेंड्रा, मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ……सच जानो……अपनेको सँभालो।'

उसने ज़ोरसे कहा—'बस बस, उन सबकी कुछ पर्वाह नहीं ; चाहे जागें, चाहे अन्दर घुसें—इसमें क्या होगा ! तुम देखते हो कि मैं तो मर रही हूँ।……और तुम किससे डरते हो ? क्यों सहमे जाते हो ? अपना सिर उठाओ।……या शायद तुम मुझसे प्रेम नहीं करते, शायद मुझसे ग़लती हुई……ऐसा हो तो माफ़ करना।'

'अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना, तुम क्या कहती हो, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।''

मेरी आँखोंमें आँखें डालकर उसने हाथ फैला दिये, और कहा—'मुझे अपने सीनेसे लगा लो।' कह नहीं सकता कि उस रातको मैं पागल क्यों न हो गया। मैं समझ रहा था कि रोगिणी आप अपने प्राण ले रही है। वह सुधबुध बिसार बैठी है। मैं यह भी जानता था कि यदि वह अपनेको मरणासन्न न समझ लेती, तो कभी मेरा ख़याल भी न करती। तुम जो भी कहो, प्रेमका पाठ पढ़े बिना बीस वर्षकी अवस्थामें मर जाना बड़ा दुर्भाग्य है, यही विचार उसके कलेजेको छेद रहा था, इसीलिए निराश होकर उसने मेरी बाँह पकड़ी थी। अब समझे तुम ! वह मुझे आलिंगनपाशसे मुक्त न होने देती थी।

'अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना मुझपर और अपने आपपर रहम करो।'

उसने जवाब दिया—'क्यों ? अब किसका विचार किया जाय ? तुम जानते हो कि मैं मरूँगी ही'—यह रट उसकी ज़बानपर बराबर थी—'अगर मुझे मालूम होता कि मैं नवजीवन लाभ करूँगी और पहले जैसी अच्छी-भली युवती हूँगी, तो लज्जित होती……सचमुच शर्म करती… पर अब क्यों ?'

'लेकिन कौन कहता है कि तुम मर जाओगी ?'

'अरे, चुप भी रहो ! तुम मुझे क्या धोखा दोगे ? तुम्हें झूठ बोलना नहीं आता, ज़रा अपना मुँह तो देखो।'

अलेक्ज़ेंड्रा ऐंड्रीयवना, तुम जिओगी, मैं तुम्हें भलाचंगा कर दूँगा। मैं तुम्हारी मातासे विवाहकी अनुमति लूँगा… हमारा ब्याह होगा और हम आनन्दपूर्वक जीवन बितावेंगे।'

'नहीं, नहीं, तुमने वादा किया है……मैं अवश्य मरूँगी……तुमने वचन दिया है……तुमने प्रतिज्ञा की है।' यह मेरे लिए कितना व्यथाजनक था ; कई कारणवश इससे मुझे कैसी यातना हुई।

देखो तो सही, कभी-कभी छोटीसी बात क्या कर दिखाती है, कुछ मालूम नहीं होता, फिर भी कितना शोक होता है ! कहीं उसे मेरा नाम पूछनेकी सूझी। अभाग्यवश मेरा नाम था 'ट्राइफ़न ! * वास्तवमें ट्राइफ़न दवेनिच' मेरा नाम था। घरमें प्रत्येक आदमी मुझे डाक्टर कहता था। क्या कहूँ इस लाचारीका कोई इलाज न था। मैंने जवाब दिया—'मेडम, मेरा नाम ट्राइफ़न है।' उसने भौंहें कमान की, सिर हिलाया और फ्रेंचमें कुछ बुदबुदाया…'

* रूसमें "ट्राइफ़न" वैसा ही परिहासजनक नाम है, जैसे भारतमें पीपलराय और शेख़ भोंदा।

वास्तवमें कोई अप्रीतिकर बात !—और हँस पड़ी ! इस हासमें कैसा ताना छिपा हुआ था।

खैर, इसी प्रकार मैंने उसके साथ रात काट दी। प्रातःकाल जब मैं बाहर निकला, तो अपने-आपको पागल समझ रहा था इसके बाद सवेरेकी चाय पीकर जब मैं उसके कमरेमें गया, तो सूरज निकल चुका था। यह क्या! मैं बड़ी कठिनाईसे उसे पहचान सका। उससे कहीं अच्छी दशामें लोग कब्रमें रखे जाते हैं, समझमें नहीं आता—बिलकुल समझमें नहीं आता—कि यह देखने-सुननेके बाद भी मैं जीता कैसे बच गया! रोगिणी तीन दिन और तीन रात तक साँस लेती रही। कैसी रातें! कैसी बातें! आखिरी रातको—सोचो तो सही—मैं उसके पास बैठा-बैठा ईश्वरसे केवल यही माँगता रहा कि उसे जल्दी उठा ले, और मुझे भी उसके साथ अपने दामनमें लपेट ले।'

एकाएक बूढ़ी मा कमरेमें घुस आई, पिछली शामको उसे मैंने कह दिया था कि आशाकिरण ओझल हुआ चाहती है और किसी पादरीको बुलानेका समय आ गया है। बीमार लड़कीने अपनी मासे कहा—'अच्छा हुआ कि तुम आ गईं। देखो, हम एक दूसरेसे प्रेम करते हैं—एक दूसरेके हाथमें हाथ दे दिया है। क्यों डाक्टर, मा क्या कहती हैं? बताओ, क्या कहती हैं?' मेरे मुँहपर पीलापन छा गया। मैंने कहा—'बकझक रही है, बुखार है।' लेकिन वह कहने लगी—'छिः तुमने तो अभी कुछ और ही कहा था और मेरी अंगूठी पहन ली थी। छिपाते क्यों हो? मेरी मा बड़ी सीधीसादी है—वह माफ कर देगी—वह सब कुछ समझ जायगी। अब मेरी जान निकल रही है। झूठ बोलनेकी मुझे क्या ज़रूरत है; ज़रा अपना हाथ तो दो।' मैं कूदकर कमरेसे बाहर निकल भागा। फिर भी बुढ़िया समझ गई कि बात क्या है। अब मैं तुम्हें अधिक कष्ट न दूँगा और इस रामकहानीको दोहरानेसे मुझे भी बड़ी व्यथा होती है। दूसरे दिन मेरी रोगिणी चल बसी! ईश्वर उसकी आत्माको शांति प्रदान करें।"

डाक्टरने ठंडी साँस भरकर कहा—"मृत्युके पहले भी मा-बहनोंको उसने बाहर चले जाने और मुझे उसके साथ अकेला छोड़ देनेके लिए कहा। उसने कहा—'क्षमा कीजिए, शायद कुसूर मेरा ही है···मेरी बीमारी—पर सच जानना कि तुमसे अधिक किसीको मैंने प्यार नहीं किया···मुझे भूलना मत···मेरी अंगूठी पहने रहना।"

डाक्टरने मुँह फेर लिया, मैंने उसका हाथ थाम लिया।

वह कहने लगा—"आह! अब हम किसी दूसरे विषयपर बात करें या थोड़ी बहुत बाज़ी लगाकर प्रिफरेंस खेलें? मुझ जैसे आदमी भावुक होनेका भान नहीं कर सकते। अब एक ही चिन्तामें मुझे मग्न रहना पड़ता है, बच्चोंका रोना-धोना और पत्नीकी डाँट-फटकार किस प्रकार बन्द रहे। उसके बाद, जैसा लोग कहते हैं, मुझे शास्त्रानुसार विवाह करनेका अवसर मिल गया।···अजी···मैंने एक व्यापारीकी पुत्रीसे ब्याह रचाया—उसके दहेज़में सात हज़ार मिले। उसका नाम है अकूलिना। 'ट्राइफ़न' और 'अकूलिना' की जोड़ी बड़ी मज़ेदार है। बड़े चिड़चिड़े स्वभावकी औरत है, पर खैरियत यही है कि वह दिन-भर सोया करती है!···अच्छा, प्रिफरेंस ही खेला जाय!"

दो-दो पैसेके दावँ लगाकर हम प्रिफरेंस खेलने बैठ गये। ट्राइफ़न इवेनिचने मुझसे ढाई रुबल जीत लिये, और अपनी जीतपर मगन होता रात बीते घर लौट गया।

अनुवादक—अख़्तर हुसेन रायपुरी

विचित्र बलिदान

श्रीयुत मुन्शी अजमेरीजी

क्या कहते हो ? कहो स्वयंसेवक, हम सुन लें ;
विद्यार्थीकी बात सुनाओ, सुन सिर धुन लें।
हाँ, दुर्बल थी देह, जेलके कष्ट झेल कर, –
कूद पड़ा वह किन्तु जानपर हाय ! खेल कर,—
हठधर्मीसे भरे पागलोंके उस दलमें,
निर्ममताके उस नृशंसतम युद्धस्थलमें !
वह प्रख्यात 'प्रताप' पत्रका प्रिय सम्पादक,
भारतीय स्वातंत्र्य-युद्ध-दुन्दुभिका वादक,
लाख लोभ पर भी न सत्यसे डिगनेवाला,
दुबला-पतला, किन्तु मनोबलका मतवाला,
तीव्र तपस्वी, पूर्ण अहिंसाव्रतका पालक,
यू० पी० की कांग्रेस-कमेटीका संचालक,
हिन्दीकी साहित्य-सभाका सौम्य सभापति ;
निडर, सुलेखन-कलाकुशल, शुचि, सभ्य, महामति,
देशभक्तिका खुला ख़ज़ाना, खद्दरधारी,
चश्मेवाला, निपट निराला पर-उपकारी,
मज़दूरोंका मित्र, नागरिक दलका नेता,
हिन्दू-मुस्लिम उभयपक्षका वह शुभचेता,
माता पुत्रकलत्र आदिका मोह छोड़कर,
अपने उस अनमोल प्राणका छोह छोड़कर,
उन्मत्तोंको सही बात समझाने दौड़ा,
कुपथगामियोंको सुपन्थपर लाने दौड़ा,
असहायोंकी द्रुत सहायता करने दौड़ा,
हतभाग्योंकी हीर-पीरको हरने दौड़ा।
पर-अपरोंको प्यार किया उस धीर-वीरने,
अबलोंका उद्धार किया उस वीर-धीरने।
उसे बिराने आर्त, नहीं अपनोंसे कम थे,
दुखी विधर्मी और स्वधर्मी दोनों सम थे।
हिन्दू-मुस्लिम कई कुटुम्बोंको उबारता,
उस असमयमें धर्म समझकर धैर्य धारता।
हुआ अग्रसर वीर निहत्था रण-प्रांगणमें,
आततायियोंके समक्ष वह पहुंचा क्षणमें।

गुरु होकर भी रहा हमेशा जो विद्यार्थी,
क्षमा-शान्तिका वह गणेशशंकर था प्रार्थी।
हाथ उठाकर कहा भीड़से विद्यार्थीने,
आत्मोत्सर्ग-निमित्त समुद्यत परमार्थीने—
"सुनो भाइयो, भ्रान्त भाव अपने सब छोड़ो,
आपस की इस मार-काटसे मुंह अब मोड़ो।
हिन्दू हों या मुसलमान अथवा ईसाई,
हम भारत-सन्तान परस्पर हैं सब भाई।
जो हमने इस समय परस्पर रक्त बहाया,
हो जायेगा तो स्वराज्य सपनेकी माया।
दृष्टि फेरकर ज़रा देशके रुखको देखो,
कठिन समय है, इसे परीक्षाका तुम लेखो।
कर दो दिलसे दूर ग़लतफ़हमीकी बातें,
चालाकोंकी चाल भरी, घरफोड़ू घातें।
करलो तहक़ीक़ात, न उबलो अफ़वाहोंपर,
भीड़ इकट्ठी करो न राहों-चौराहोंपर।
क्षमा भाइयो, क्षमा ! देशके दिव्य नामपर,
क्षमा अदोषोंके शरीर, धन और धामपर।
परमेश्वरसे डरो, पड़ोसीको न सताओ,
व्यर्थ बातके लिए न उसका ख़ून बहाओ।
प्यासे हो तुम अगर ख़ूनहीके तो आओ,
मुझे मारकर प्यास बुझाओ, घरको जाओ।
होने दूँगा नहीं भाइयो, रुष्ट तुम्हें मैं,
देकर अपने प्राण, करूँगा तुष्ट तुम्हें मैं !"
इतना कहकर जहाँ शूरने शीश झुकाया,
वह अशान्त दल तनिक शान्त होता-सा पाया।
निकले क्रूर, कृतघ्न किन्तु कुछ पामर कैसे ?
रौरवमें भी हों न कदाचित बर्बर वैसे !
उन गुण्डोंने किया हाय ! गंगाजल गदला,
चले चुकाने दुष्ट, देशसेवाका बदला !
हा ! उनकी—उन विकृत मस्तकोंकी—कुदृष्टिमें,
पड़कर फंसा तुरन्त शूर शस्त्रास्त्र-वृष्टिमें !

हुआ वीरका घोर घृणित इस दलमें घिरना—
बलिवेदीकी अग्नि-मध्य आहुति-सम गिरना!
हुत हानेको गिरा कानपुरका वह गौरव,
अरे! नहीं था गिरा कानपुरका वह गौरव;
गौरव था वह प्रान्त—नहीं, सारे स्वदेशका;
था गणेश अनमोल रत्न प्यारे स्वदेशका।
उस हीरेको काच समझ दुर्मति विभ्रमसे,
खो बैठा हा हन्त! कानपुर कुत्सित क्रमसे!
आपसमें लड़ एक अनोखा अगुआ खोया,
छूटेगा न कलंक किसो साबुनका धोया।
क्या होता है हाय हायकी अब रटनासे,
लें न सबक उद्भ्रान्त अगर इस दुर्घटनासे।
शान्त रहें हड़ताल कराने करनेवाले,
और व्यर्थके लिए मारने-मरनेवाले।
भारतकी सन्तान सभी अपनेको जानें;
भारतीय बन, भारतीयको भाई मानें।
धार्मिक वैर विरोध हृदय-पटसे धो जावे,
हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य चिरस्थायी हो जावे।
आपसमें हम लोग हृदय परिवर्त्तन कर लें,
भारतीयता भलीभाँति नस-नसमें भर लें।
भ्रातृ-भावके लिए परस्पर हाथ बढ़ा दें,
गुण्डोंको भी देशभक्तिका पाठ पढ़ा दें।
वैमनस्यकी आग, बुझे विश्वास-नीरसे,
न हो बखेड़ा किसी देवता और पीरसे।
पीर रहें, पर रहें न वे बनकर परदेशी,
हो देशी बर्ताव, भाव हों भीतर देशी।
हिन्दू मन्दिर-तुल्य मान्य मानें मसजिदको,
और छोड़ दें मुसलमान बाजेकी ज़िदको।
वे रामायण सुनें और मौलूद सुनावें,
हिन्दू पढ़ें कुरान और वे गीता गावें।
करें आपसी एक फैसला गोरक्षाका,
जो इस कृषिप्रधान देशहित हो रक्षाका।
तो शहीदको शान्ति स्वर्गमें मिल सकती है,
मुरझे मनकी जली कली फिर खिल सकती है।
कार्य हमारे किये कहीं इतना हो जावे,
तो वह घोर कलंक कानपुरका धो जावे।
सार्थक हो बलिदान तभी प्यारे गणेशका,
उसकी स्मृतिमें सबल संगठन हो स्वदेशका।
जिसमें उसकी याद न भूलें कभी भुलाये,
झूलें मनमें मूर्ति सर्वदा बिना झुलाये।
आँखोंमें वह दिव्य ज्योति दमदमा रही हो,
कानोंमें गम्भीर गिरा गमगमा रही हो।
हृदय मध्य हो—'हा गणेश!' नीरव भाषामें,
जिह्वापर हो—'जय गणेश!' उन्नति-आशामें।
भारतमाता हमें हर्षसे देख रही हो,
सब विध पूर्ण स्वतन्त्र आपको लेख रही हो।
जगदीश्वरसे हाथ जोड़ है विनय अन्तमें,
परिवर्तित यह ग्रीष्म हमारा हो वसन्तमें।
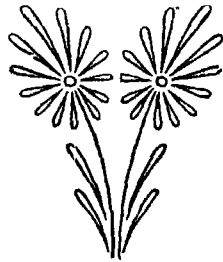
सोवियट रूसकी औद्योगिक उन्नति

श्री भालचन्द्र आपटे

(अप्रेलके अंकसे आगे)

सन् १६२१ में सरकारने एक विज्ञप्ति निकालकर छोटे, बड़े तथा अराजकीय व्यवसायोंकी परिभाषा की। बीससे अधिक मज़दूर या क्लार्क जिस कारखानेमें काम नहीं करते हैं, वह छोटा व्यवसाय है। बीससे अधिक, पर एक सौसे कम मज़दूर या क्लार्क जिसमें काम करते हैं, वह अराजकीय (Private) व्यवसाय है। जो व्यक्ति इस प्रकारका कोई व्यवसाय चलाता हो, उसे एकसे अधिक कारखाने खोलनेका अधिकार नहीं है। सौसे अधिक मज़दूर या क्लार्क जिसमें काम करते हैं, वह बड़ा व्यवसाय है।

इसके अलावा जो देहाती दस्तकारियाँ हैं, उनको पूरी स्वतंत्रता दे दी गई है। इतना ही नहीं, उनको उत्साहित करनेका पूरा प्रयत्न किया जाता है। रूसमें शीतकालमें किसानोंको कोई काम नहीं रहता। उन दिनों इन्हीं उद्योग-धन्धोंपर वे अपना निर्वाह करते हैं। रूसकी सरकार इस बातको समझती है कि किसान देशके अर्थशास्त्रके एक बड़े महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इसीलिए किसानोंको सहयोग (Co-operative) के तरीक़ोंपर शिक्षा दी जाती है, जिससे घरेलू उद्योग-धन्धोंसे वे पूरा लाभ उठा सकें। इन उद्योग-धन्धोंसे तैयार होनेवाले मालपर कम-से-कम कर लगाया जाता है, और उनको हर प्रकारकी सुविधा देनेका प्रयत्न किया जाता है। किसानोंकी दस्तकारीसे पैदा किये मालके निर्यातका काम व्यापारके मंत्रिमंडलने सन् १६२४ में एक समितिके सुपुर्द किया था। इस समितिने सन् १६२४–२६ में दस गुना व्यापार बढ़ाया है।

यू० एस० एस० आर० का कुल उद्योग चार प्रकारसे विभाजित है—(१) राज-उद्योग, (२) सहयोग-समिति-उद्योग, (३) अराजकीय उद्योग और (४) देहाती उद्योग। यद्यपि इसका प्रारम्भ सन् १६२१ से ही हुआ है, तो भी १६२३-२४ के पूर्वके अंक (statistics) ठीक-ठीक नहीं मिलते। कुछ काल तक राज और सहयोग-समितियोंमें स्पर्धा होती रही, परन्तु देशका भला सोचकर राजने सहयोग-समितियोंसे समझौता कर लिया ; मगर अराजकीय व्यवसायोंको जहाँ तक हो सके, कम किया जाय, यही नीति रही है। देहातके उद्योग-धन्धोंको सहयोगके अथवा नवीन तरीक़ोंपर चलानेके उद्देश्यसे या तो सहयोग-समितियोंमें या राजके नियन्त्रणमें लिया गया है। यही कारण है कि राजका तथा सहयोग-समितियोंका उद्योग बढ़ता गया और अराजकीय उद्योग तथा देहाती उद्योग कम होते गये। यह बात नीचे दिये हुए अंकोंसे स्पष्ट हो जायगी। इन अंकोंमें देशके सम्पूर्ण उद्योगोंको १०० मानकर विभिन्न प्रकारके उद्योगोंका प्रति सैकड़ा अनुपात दिया गया है।

वर्ष	राज-उद्योग	सहयोग-समिति उद्योग	अराजकीय उद्योग	देहाती उद्योग
१६२३-२४	६३·५	३·६	३·५	२६·४
१६२४-२५	६७·८	४·६	३·१	२४·२
१६२५-२६	७१·५	४·६	२·७	२१·२
१६२६-२७	७७·१	८·८	२·४	११·७
१६२७-२८	७८·२	६·५	२·२	१०·१
१६२८-२६	७८·६	१०·१	२·०	६·०

नवीन आर्थिक नीतिकी घोषणा मजबूरीसे हुई थी। रूसकी सरकारका यही उद्देश्य रहा है कि उत्पत्तिके सब साधन राष्ट्रीय होने चाहिए, और इसी उद्देश्यको आगे रखकर वह काम करती आई है। सन् १६२१ में ७५३·६ मिलियन रूबल्सकी उत्पत्ति राष्ट्रीय कारखानोंमें हुई। सन् १६२६ में वही ७,६५६·३ मि० रूबल्सकी हुई। इससे स्पष्ट है कि रूसकी सरकार उद्योगको राष्ट्रीय बनानेमें कहाँ तक सफलता प्राप्त कर सकी है।

नवीन आर्थिक नीतिकी घोषणाके उपरान्त सन् १९२१–२९ में सोवियट यूनियनके औद्योगिक क्षेत्रमें अतुलनीय परिवर्तन हो गया है। महासमरकी पूर्वकालीन उत्पत्तिका केवल १५-२० प्रतिशत सन् १९२१ में बच गया था, परन्तु सन् १९२१ में नवीन आर्थिक नीतिकी घोषणाके बाद मृतप्राय उद्योगमें एक नवीन जीवनका संचार हुआ। जिस प्रकार कोई रोगी अच्छी दवा पानेपर दीर्घ कालके बाद बिछौनेको छोड़ते ही मांसपेशियोंसे हृष्टपुष्ट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार सोवियट यूनियनका उद्योग नवीन आर्थिक नीतिकी घोषणाके बाद उन्नति कर रहा है। सन् १९२१-२९ में उद्योग कितनी उन्नति कर सका है, इस बातको जाननेके लिए हमें तीन बातोंका आधार लेना पड़ेगा—(१) सन् १९१३ में उद्योगसे कितनी उत्पत्ति होती थी, (२) सन् १९२१ में वह कितनी घट गई और (३) १९२१–२९ में वह कितनी और किस गतिसे बढ़ती गई। सन् १९३० की 'सोवियट यूनियन इयर बुक' (Soviet Union Year Book) में निम्न-लिखित कोष्टक (table) दिया गया है।

वर्ष	कुल उत्पत्ति महासमरके पूर्वकालीन मिलियन रूबल्समें	१९१३का प्रतिशत	एक वर्ष पूर्वका प्रतिशत
१९१३	८,४३०	१००	१००
१९२०-२१	२,०८०	२४'७	१२०'९
१९२१-२२	२,५४०	३०'१	१२२'२
१९२२-२३	३,३३०	३९'५	१३१'१
१९२३-२४	४,०५०	४८'०	१२१'६
१९२४-२५	५,६५०	६७'०	१३९'५
१९२५-२६	८,७६०	१०३'९	११५'६
१९२६-२७	९,९००	११७'४	११३'०
१९२७-२८	११,५६०	१३७'२	११७'८
१९२८-२९	१४,५५०	१७२'६	२२५'९

उपर्युक्त अंकोंसे यह मालुम पड़ता है कि सन् १९२०–२१में जितनी उत्पत्ति होती थी, उसकी सात गुनी सन् १९२९ में हो गई, अर्थात् महासमरके पूर्वकी उत्पत्तिसे डेढ़ गुनी हो गई। महासमरके पूर्व जितनी उत्पत्ति होती थी, उससे कुछ ही अधिक १९२५-२६ में हुई। सन् १९२१ से १९२६ तकका काल महासमरके पूर्वके उद्योगकी पुनर्स्थापनाका काल कहा जा सकता है। इस कारण उद्योग जिस गति (१३ प्रतिशत) से बढ़ा है, उसको अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। महासमरके पूर्वकी उत्पत्तिकी मर्यादाको पार करनेके बाद भी यह गति कम नहीं हुई, बल्कि लगभग दुगुनी (२५ प्रतिशत) हो गई।

रूसके उद्योगकी वृद्धि-गति (rate of increase) का महत्त्व तभी समझमें आ सकता है, जब हम इसके साथ महासमरके पूर्वके रूसकी और अन्य प्रगतिशील राष्ट्रोंकी वृद्धि-गतिसे तुलना करें। सन् १९१३ में रूसकी वृद्धि-गति ३'८७ प्रतिशत, फ्रान्सकी ३'३५ प्रतिशत, इंग्लैंडकी १'१६ प्रतिशत और अमेरिकाकी ३'५ प्रतिशत रही है। महासमरके पूर्वका पन्द्रह वर्षका काल उद्योग-प्रगतिके लिए स्पर्द्धाका काल था। इतना होनेपर भी कोई राष्ट्र रूसकी वृद्धि-गतिको नहीं पा सका था।

सन् १९१३ में उद्योगसे ४५ प्रतिशत और खेतीसे ५५ प्रतिशतकी उत्पत्ति होती थी। सन् १९२९ में केवल उद्योगसे ६० प्रतिशत और खेतीसे ४० प्रतिशत हुई। पंचवर्षीय कार्यक्रम (Five years plan) के अनुसार सन् १९३२-३३ में उद्योगसे ६५ प्रतिशत और कृषिसे केवल ३५ प्रतिशत उत्पत्ति होगी, परन्तु वृद्धि-गतिको देखनेसे मालुम होता है कि वह इससे भी अधिक बढ़ जायगी। इस कार्यक्रमके अनुसार सन् १९२८–२९ में १२९६० मि० रूबल्सकी उत्पत्ति होनी चाहिए थी, परन्तु १४५५० मि० रूबल्स हुई। अनुमानसे १६ प्रतिशत अधिक बढ़ गई। इस कार्यक्रमकी अवधिके समाप्त होने तक उद्योग खेतीसे अधिक बढ़ जायगा, यह उपर्युक्त संख्याओंका पर्यावलोकन करनेके बाद कल्पनासे ही तय किया जा सकता है।

वृद्धि-गतिका बढ़ना मात्र इतना महत्त्वका स्थान नहीं

रखता, जितना उसके साथ-साथ उत्पादन-शक्तिका बढ़ना रखता है। सन् १९२१ में जितनी उत्पत्ति होती थी, उससे सातगुनी सन् १९२९ में हुई, यह ऊपर कहा गया है। सन् १९२१में बारह लाख चालीस हज़ार मज़दूर उद्योग-व्यवसायमें काम करते थे। सन् १९२९ में वह संख्या तेईस लाख चौंतीस हज़ार हो गई। उत्पत्ति सातगुनी हुई, परन्तु मज़दूरोंकी संख्या केवल दुगुनी हुई। इससे स्पष्ट है कि श्रमकी उत्पादन शक्ति बढ़ गई है। सन् १९२१-२२ में मज़दूरकी जो उत्पादन-शक्ति थी, वह यदि मान ली जाय, तो उसके बादके वर्षोंमें निम्न-प्रकारसे वह बढ़ती गई :—

१९२२-२३	१२६·९	१९२५-२६	२२६·२		
१९२३-२४	१४६·४	१९२६-२७	२४१·६	१९२८-२९	३०४·४
१९२४-२५	१८५·१	१९२७-२८	२६१·२		

उपर्युक्त अङ्कोंसे मालूम होता है कि सन् १९२१-२२में जितनी उत्पादन-शक्ति थी, उसकी तिगुनी उत्पादन-शक्ति सन १९२९ में हो गई थी। उत्पादन-शक्तिके बढ़नेका मुख्य कारण यह है कि बिलकुल नये प्रकारकी यन्त्र-सामग्री काममें लाई जाती है, बिजलीका उपयोग अधिक किया जाता है और मज़दूरोंको अधिक वेतन दिया जाता है, जिससे वे अधिक मन लगाकर काम करते हैं। उनको इस प्रकारसे शिक्षित किया जाता है कि वे थोड़े समयमें अधिक काम कर सकें। ट्रस्ट और सिन्डिकेट जैसे संगठनोंकी स्थापनासे उत्पत्तिका खर्च कम होता है, और इस कारण ये उत्पादन-शक्ति बढ़ानेमें सहायक होते हैं।

उत्पत्तिके बढ़ जानेसे कच्चे माल और ईंधन-सामग्रीकी माँग भी बढ़ती गई। इस माँगकी पूर्तिके लिए कच्चे मालकी पैदावारको बढ़ानेका प्रयत्न शुरू किया गया। उसके फल-स्वरूप कपास और सन दो वस्तुओंको पैदा करनेवाले खेतोंका क्षेत्रफल बढ़ गया, और उनसे होनेवाली उत्पत्ति भी बढ़ गई। सन् १९२५ में कपास १६ लाख और सन ३५ लाख एकड़में बोया जाता था, और उनसे १,५८,००० टन कपास और २,७४,००० टन सन पैदा होता था। परन्तु सन् १९२९में कपास २५ लाख और सन ४६ लाख एकड़में बोया जाने लगा, और उनसे ३,१०,००० टन कपास और ४,२७,००० टन सन पैदा होने लगा।

ईंधन सामग्री किस प्रकारसे बढ़ती गई, इस बातको दिखलानेके पूर्व हम रूसके लोहा, फौलाद आदि बजनी धातुओंसे सम्बन्ध रखनेवाले उद्योगोंकी उन्नतिपर, जिसपर ईंधन-खर्च मुख्य रूपसे निर्भर करता है, प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं। महासमरके बाद उद्योगका यह महत्त्वपूर्ण अंग नहींके बराबर रह गया था। सन् १९२१ के बाद रूसकी पुनर्गठन (reconstruction) का जबसे प्रारम्भ हुआ, ट्यूब (tube), पाइप (तेलके लिए), सादे टीनके तख्तों (plane sheets) और नालीदार तख्तों (corrugated sheets) की माँग बढ़ती गई। परन्तु इनसे भी अधिक महत्त्व रखनेवाली वस्तुओंमें—जैसे रेल, तार, यन्त्र, इंजन इत्यादिमें—लोहा और फ़ौलादकी ज़रूरत बढ़ती गई। सन् १९२१ के बादके प्रारम्भिक वर्षोंमें इन वस्तुओंकी उत्पत्तिकी वृद्धि-गति बहुत तेज़ थी। पुनर्स्थापनाके कालमें ऐसा होना स्वाभाविक था, परन्तु अंतके तीन वर्षके छोटे कालमें (सन् १९२६-२७ से १९२८-२९) ११ लाख टनकी उत्पत्तिका बढ़ जाना (२७,२४,०००से ३८,४३,००० टन) साधारण बात न थी। फ़ौलादकी उत्पत्तिने महासमरके पूर्वकी उत्पत्तिकी मर्यादाको सन् १९२९में पार किया (सन् १९१३में ४२ लाख टनसे ४७ लाख टन)। कच्चा लोहा महासमरके पूर्व एक करोड़ टन पैदा होता था; सन् १९२९में केवल सत्तर लाख टन पैदा हुआ। सन् १९२९ की तादाद १९१३ की तादादसे कम है, परन्तु कच्चे लोहेकी उत्पत्तिकी वृद्धि-गतिको देखनेके बाद निश्शंक होकर हम अनुमान कर सकते हैं कि केवल तीन ही वर्षकी अवधिमें कच्चा लोहा भी उस मर्यादाका उल्लंघन कर जायगा। ऊपर हम कह चुके हैं कि महासमर और अशान्ति कालका सबसे अधिक प्रभाव यदि किसीपर पड़ा है, तो वह लोहा, फ़ौलाद आदि धातुओंका व्यवसाय है। कई

वर्षों तक कोयला, लोहा आदिकी खानें विदेशियोंके कब्जेमें रहीं, और अब भी कुछ उनके अधिकारमें हैं।

महासमरके पूर्व अनुमान किया जाता था कि रूसी साम्राज्यमें (पोलैण्डको लेकर) कोयलेका खज़ाना २,३४,००० मिलियन टनका है। सन् १९२१ के उपरान्त साइबीरियाके कुज्नेटस्क (Kuznetsk) टापूमें खोज करनेसे मालूम हुआ कि सोविएट यूनियनके कोयलेका वर्तमान खज़ाना महासमरके पूर्वके रूसी साम्राज्यके खजानेका दुगना—४,७४,६७३ मिलियन टनका है। सोविएट यूनियनके कोयलेका ८३·६ प्रतिशत अर्थात् ३,९८,०७३ मिलियन टन एशियाई भागमें और केवल १६·४ प्रतिशत अर्थात् ७६६०० मिलियन टन यूरोपीय भागमें हैं। एशियाई भागमें उद्योगकी इतनी उन्नति नहीं हुई है और न रेल आदि वाहन-व्यवसायका भी अच्छा प्रबन्ध है। यही कारण है कि सोविएट यूनियनके यूरोपियन हिस्सेमें से ८७ प्रतिशत और एशियाई हिस्सेमें से केवल १३ प्रतिशत कोयला हर साल निकाला जाता है।

सोवियट यूनियनके तेल-कुएं मुख्य रूपसे बाकू, कुबान (काले समुद्रके आसपास), मध्य-एशिया, उराल पर्वत तक और जार्जिया इत्यादि स्थानोंमें है, परन्तु सबसे पुराना और महत्त्वका स्थान बाकू प्रदेश है। सन १८८३ से ही यहाँसे तेल निकाला जाता था। उपर्युक्त सब स्थानोंमें तेलका खज़ाना ३००० मिलियन टनका है। कुछ लोग ५५०० मिलियन टनका भी बतलाते हैं, परन्तु इतनी बात सच है कि तेलमें रूसका मुक़ाबला करनेवाला कोई राष्ट्र संसारमें इस समय वर्तमान नहीं है।

सोवियट यूनियनमें जितने तेलके ट्रस्ट हैं, वे सब सरकार-द्वारा नियुक्त सोयुज्नेफ्ट (Soyuzneft)* नामक एक संगठनमें शामिल किये गये हैं। सोयुज्नेफ्ट आन्तरिक और विदेशी व्यापारके वितरण और बिक्रीका प्रबन्ध करता है। इसके नियन्त्रणमें नये-नये कुओंसे तेल निकाला जा रहा है, और उत्पत्ति-खर्च (Cost of production) घटानेके लिए नई-नई यन्त्र-सामग्री काममें लाई जा रही है। १९१३ में कोयला, 'कोक' और तेल इन तीनों ईंधनकी वस्तुओंकी जितनी उत्पत्ति होती थी, उस मर्यादा तक पहुँचनेके लिए अथवा उसको पार करनेके लिए सन् १९२६-२७ तक रुकना पड़ा। नीचे दिये अंकोंमें कोयला, 'कोक' और तेल इन तीनोंकी सन् १९१३ में, १९२६-२७ में और उसके बादके वर्षोंमें क्या स्थिति रही, यह दिखाया गया है।

(हज़ार टनमें)

वस्तु	१९१३	१९२६-२७	१९२७-२८	१९२८-२९
कोयला	२८,७७१	३१,९३०	३६,३००	४०,५७०
'कोक'	...	३,४१५	४,०४१	४,७१५
तेल	९,२००	१०,२००	११,८००	१३,७००

अन्तिम वर्षमें कोयला चार मिलियन टन और तेल दो मिलियन टन, एक वर्ष पहलेकी उत्पत्तिसे, बढ़ गये, परन्तु तेलकी वृद्धि-गति पूर्वके कुछ वर्षोंकी वृद्धि-गतिसे तुलना करनेपर विशेष रूपसे बढ़ी हुई है।

व्यवसायोंका परिमाण बढ़ानेके साथ-साथ आवश्यक यान्त्रिक शक्तिको कमसे कम खर्चमें बढ़ाना अत्यावश्यक था। कोयला और तेल आदिमें उत्पत्ति-खर्च (Cost of production) अधिक पड़ता है, इसलिए किसी ऐसी शक्तिको बढ़ानेकी आवश्यकता मालूम पड़ी, जिसमें कम खर्चमें अधिक पैदावार हो। रूसमें विद्युत शक्तिको बढ़ानेकी काफ़ी गुजाइश है। 'पीट', कोयलेका बचा हुआ अवशेष, मामूली लकड़ी और जल-शक्तिसे (रूसमें नीपर, वोलगा आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं, जिनके प्रपातोंसे काफ़ी शक्ति मिल सकती है) बहुत कम खर्चमें बहुत बड़ी विद्युत-शक्ति पैदा की जा सकती है। नये बिजली-घर ऐसे ही स्थानोंमें अधिकतर बनाये जाते हैं।

सन १९१८ में जब कि रूसका सम्बन्ध उसके बाकू

* १ जनवरी सन् १९३० को प्रधान आर्थिक समितिने तेल गैसके व्यवसायोंको सोयुज्नेफ्ट (Soyuzneft) नामक एक संगठनमें आबद्ध करनेका निश्चय किया है।

और हानसे तोड़ा गया और इस प्रकारसे उसकी ईंधन-सामग्री बन्द कर दी गई, उस समय अधिकारियोंका ध्यान विद्युत-शक्तिकी ओर आकर्षित हुआ। इसी समय केन्द्रीय विद्युत-समिति (Central Electrical Council) की स्थापना हुई। सब तरहकी आर्थिक कठिनाइयोंके रहते हुए भी वालकाफ (Volkhov), कशिरा (Kashira), शतुरा इत्यादि स्थानोंपर बिजलीघर खोल दिये गये। सन् १६२० में लेनिनके ही आदेशसे सारे रूसको विद्युन्मय बनानेके उद्देश्यसे एक दूसरा कमीशन नियुक्त हुआ। इस कमीशनको बहुत सफलता मिली। इसका कारण यह है कि उस समय तक आन्तरिक कलह और आक्रमणोंका अन्त हो गया था और शान्ति स्थापित हो गई थी। महासमरके पूर्व रूसके कुछ बिजलीघरोंकी विद्युत-शक्ति केवल चार लाख किलोवाट्की थी। विद्युत-कमीशनके स्थापित होनेके बाद सबसे पहले सन् १६२६ में एक मिलियन किलोवेट्के ऊपर विद्युत-शक्ति बढ़ गई। इसके तीन ही वर्ष बाद अर्थात् सन् १६२८-२६ में २·१५५ मिलियन किलोवाट्की विद्युत-शक्ति हुई। सन् १६२६-३० में २·८ मिलियन किलोवाट्की विद्युत-शक्ति देनेवाले बिजलीघर बन रहे थे।

उद्योग-व्यवसायके प्रत्येक अंगको लेकर उसमें कितनी और किस गतिसे उन्नति हुई है, इस बातको जितना विस्तारके साथ लिखा जाय, उतना कम ही है। साधारणतः हम निश्शंक होकर इतना कह सकते हैं कि रूसका उद्योग, जिसके शरीरके प्रत्येक अंगपर महासमर और आन्तरिक कलहके कारण कई प्रहार हुए थे, सात वर्ष तक मरहम-पट्टी और औषधोपचार करने और पौष्टिक पदार्थ खानेके बाद अब कहीं अपने पुराने कलेवरको प्राप्त कर सका है। यही कारण था कि रूसके अधिकारियोंने औद्योगिक क्षेत्रमें असाधारण तरीक़ोंसे असाधारण उन्नति करनेके लिए इस अवसरको ही उचित समझा। रूसके औद्योगिक अथवा कृषि-सम्बन्धी क्षेत्रोंमें प्रतिवर्ष किस प्रमाणमें उन्नति की जाय, इसका एक अनुमानपत्र तैयार करनेके लिए प्रधान आर्थिक समितिके नीचे काम करनेवाली एक समिति (Gosplan) सोविएट सरकार द्वारा नियुक्त हुई है। उसने सन् १६२८-३३ के भीतर पूरा किया जानेवाला एक पंचवर्षीय कार्यक्रम (Five Years Plan) तैयार किया है। इस कार्यक्रमके लिए सोविएट सरकारकी पूरी सम्मति मिल गई, और उसको सफल बनानेके लिए प्रयत्न भी शुरू हो गया। इसके कार्यमें परिणत हो जानेसे आशा की जाती है कि राष्ट्रीय आय (National Income) दुगनी हो जायगी; जनसंख्या ११·८ प्रतिशत बढ़ जायगी तथा मज़दूरोंकी संख्यामें १८·२ प्रतिशतकी वृद्धि हो जायगी। साथ ही लोहा, फ़ौलाद आदि वज़नी व्यवसायों (Heavy Industries) से होनेवाली उत्पत्ति ४४ प्रतिशत और कृषिकी उत्पत्ति भी ५५ प्रतिशत बढ़ जायगी। उद्योग और कृषिकी जितनी सम्मिलित उत्पत्ति सन् १६२७-२८ में होती थी, उसकी दुगनी अर्थात् ६६ हज़ार मिलियन रूबल्सकी उत्पत्ति सन् १६३२-३३ में होनेकी सम्भावना है। मूल पंचवर्षीय कार्यक्रम इस प्रकारका था, परन्तु प्रारम्भके दो ही वर्षोंमें जिस वेगके साथ प्रगति हुई है, उसको देखकर रूसके अधिकारी उसे पाँचके स्थानमें चार ही वर्षमें समाप्त कर देनेकी महत्वाकांक्षा रखते हैं। रूसके औद्योगिक क्षेत्रमें होनेवाली इस भयानक उन्नतिको देखकर पूँजीवादका समर्थन करनेवाले इंग्लैण्ड आदि राष्ट्रोंको यदि भय मालूम होता हो, तो उसमें आश्चर्य करनेकी बात नहीं है। आज तक किसी भी राष्ट्रने उद्योग-व्यवसायकी उन्नतिके लिए इतना अधिक त्याग किया हो, ऐसा कोई उदाहरण इतिहासमें नहीं पाया जा सकता।

पंचवर्षीय कार्यक्रमके अनुसार प्रथम वर्षमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई, यह देखनेके बाद द्वितीय वर्षके कार्योंका पर्यालोकन करना ठीक होगा। निर्दिष्ट कार्यक्रमके अनुसार प्रथम वर्षके अन्तमें २११६० मिलियन रूबल्सकी उत्पत्ति

होनी चाहिए थी, उसके स्थानमें २२२६० मि० रूबल्सकी हुई, अर्थात् अन्दाजसे ५'३ प्रतिशत बढ़ गई। प्रथम वर्षमें स्थिर पूँजी (Fixed capital) १८ प्रतिशत बढ़ गई और ६१ नये कारखाने खुल गये, जिनसे १६८ मि० रूबल्सकी उत्पत्ति होने लगी। सरकारकी तरफसे प्रकाशित अंकोंसे मालूम होता है कि साधारण रूपसे २३'४ प्रतिशत अर्थात् अन्दाजसे २ प्रतिशत अधिककी उत्पत्ति हुई। तेल, कृषिके यंत्र, बिजलीकी चीज़ें, रबर इत्यादिकी उत्पत्ति अनुमानसे अधिक हुई और इमारतें, रासायनिक वस्तु, चीनी इत्यादि अन्दाजसे कम तैयार हुईं।

१६२८-२६ में उत्पत्ति जिस तेज़ीसे बढ़ी, उसके आधारपर पंचवर्षीय कार्यक्रमपर पुनर्विचार किया गया, जिसके अनुसार १६२६-३० में उत्पत्तिकी वृद्धि प्रतिवर्ष २१ के स्थानपर ३१ प्रतिशत की गई, परन्तु इसमें सफलता नहीं मिल सकी। ३१ प्रतिशतके स्थानपर केवल २४ प्रतिशत अर्थात् प्रथम वर्षसे कुछ ही अधिक हुई। लोहा, फ़ौलाद आदि भिन्न-भिन्न धातुओंकी उत्पत्ति १५ से ४० प्रतिशतके बीचमें गई। कोयलेकी उत्पत्ति जो महासमरके पूर्व २३ मिलियन टनकी थी, सन् १६३० में वह यद्यपि दुगनी हो गई है, फिर भी वह पंचमवर्षीय सीमा तक पहुँच न सकी। हलके व्यवसायों (Light industries) में भी गत वर्षकी तरह उन्नति नहीं दिखलाई दी। गत वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष कपड़ा कम तैयार हुआ। ऊन और चमड़ेके व्यवसायोंमें अनुमानसे अधिक उत्पत्ति हुई, परन्तु वह विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती।

पुनर्विचारके बाद जो कार्यक्रम तैयार किया गया, उसके अनुसार उत्पत्ति नहीं हुई, यह ऊपर कहा गया है; परन्तु *यह वास्तविक असफलता नहीं है। केवल दो वर्षके अल्प कालमें लगभग ५० प्रतिशत बढ़ जाना एक असाधारण बात है।* इसीके आधारपर पाँचके स्थानपर चार ही वर्षमें पंच-वर्षीय कार्यक्रम सम्पन्न करनेकी आशा करते हैं, परन्तु जिस शीघ्रताके साथ अब तक उन्नति हो सकी है, उतनी ही तेज़ीसे आगेके दो वर्षोंमें होनेकी आशा कम है। कोई काम जब प्रारम्भ किया जाता है, तब शुरूमें वह वेगके साथ होता है, परन्तु सर्वदाके लिए उसकी गति उसी प्रकारसे बनी रहेगी अथवा नहीं, यह कहना कठिन है।

उद्योगको बढ़ानेके लिए किसी भी देशमें मुख्यत: तीन बातोंका होना अत्यावश्यक है— पूँजी, श्रम और कच्चा माल। जिस देशमें इन तीनोंमें से किसी एककी भी कमी है, उस देशको औद्योगिक उन्नति करनेके लिए असमर्थ समझना चाहिए।

इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, जापान इत्यादि राष्ट्रोंमें बड़े-बड़े पूँजीपति विद्यमान हैं। वहाँपर उद्योगको बढ़ानेमें पूँजीकी किसी प्रकारकी कमी नहीं है। उसी तरह अगर इन राष्ट्रोंको विदेशोंसे ऋणकी आवश्यकता पड़ती है, तो मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं है। रूसकी इसके ठीक विपरीत स्थिति है। रूसमें न बड़े-बड़े पूँजीपति ही हैं और न उसे बाहरसे ऋण मिलनेकी आशा ही है, क्योंकि ज़ारकालीन ऋणको अदा करनेसे इन्कारकर वह काफ़ी बदनाम हुआ है। इस कारण उसको अपने देशकी पूँजीपर ही विश्वास रखना पड़ता है। कर, ऋण, सेविंग बैंक, स्पेशल इन्श्योरेन्स, सहयोग-समितियोंका मुनाफ़ा, ट्रेड यूनियनका चन्दा इत्यादि पूँजीके साधन हैं, परन्तु ये साधन इस प्रकारके नहीं हैं कि पूर्ण रूपसे उनपर निर्भर किया जा सके। इसके अतिरिक्त ऐसे साधनोंसे प्राप्त पूँजी दीर्घ कालके लिए व्यवसायमें लगाना उचित भी नहीं है। पंचवर्षीय कार्यक्रमके कारण राष्ट्रीय आयपर भी बहुत भार पड़ता है। राष्ट्रीय आयका ३५ प्रतिशत नये रूपसे व्यवसायोंमें लगाया गया। यदि चलता खर्च (current expenditure) भी शामिल किया जाय, तो *व्यवसायका भार राष्ट्रीय आयपर* **६० प्रतिशतके लगभग होगा,** परन्तु यह भार आगेके वर्षोंमें और कितना बढ़ेगा, यह नहीं कहा जा सकता।

पूँजीके बाद महत्वकी बात श्रम है। रूसकी जनसंख्या बहुत है। मजदूर काफी मिल सकते हैं, परन्तु यन्त्रोंसे चलाये जानेवाले कारखानोंमें देहातोंसे पकड़कर लाये हुए मामूली मज़दूरोंसे काम नहीं लिया जा सकता। इसके लिए कुशल कारीगरों (skilled labourers) की आवश्यकता है। रूसमें आजकल दो हज़ारके लगभग अमेरिका-निवासी व्यवसायमें निपुण मज़दूर काम कर रहे हैं। जर्मनी आदि पड़ोसके राष्ट्रोंसे भी इंजीनियर, फिटर आदि आते हैं, परन्तु रूसको जहाँ तक हो सके, अपने देशके योग्य और निपुण आदमियोंपर निर्भर करना चाहिए। तीसरे वर्षके निर्धारित कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए कमसे कम पाँच लाख शिक्षित मज़दूरोंकी आवश्यकता है। कारखानेकी शिक्षा देनेवाले स्कूलोंमें केवल तीस हज़ारके लिए जगह बाकी रह गई है, और इन स्कूलोंमें जो शिक्षा दी जाती है, वह जल्दबाज़ीके कारण अधूरी रह जाती है।

सबसे अन्तमें कच्चा माल है। रूसमें कच्चे मालकी उपज बढ़ रही है, यह ऊपर कहा ही गया है; परन्तु जिस मात्रामें उद्योग बढ़ रहा है, उस मात्रामें वह नहीं बढ़ रही है। अगले वर्षमें कच्चा माल पूरा पड़ेगा या नहीं, इसमें सन्देह करनेके लिए जगह है।

उपर्युक्त त्रुटियाँ अगर किसी प्रकार सुधर सकेंगी, तो पंचवर्षीय कार्यक्रमके सफल होनेमें किसी प्रकारकी शंका करनेकी आवश्यकता नहीं है। पंचवर्षीय कार्यक्रममें जिस प्रकार त्रुटियाँ हैं, उसी प्रकार भलाइयाँ भी हैं। सबसे महत्वकी बात यह है कि रूससे बेकारी चली गई। संसारमें ऐसा शायद ही कोई राष्ट्र होगा, जो बेकारीसे पीड़ित नहीं है। इंग्लैण्ड सबसे अधिक पीड़ित है। सन १६२६ के अप्रेलमें रूसमें बेकारोंकी संख्या १७ लाख ४० हज़ार (registered) थी। सन् १६३० के अन्तमें केवल तीन रह गई। ४ फरवरीके 'बम्बई क्रानिकल' में प्रकाशित उसके मास्कोके संवाददाताके पत्रमें यहाँ तक लिखा है—"While the rest of the world complains of unemployment the Soviet Union suffers from the reverse complaint." अर्थात् 'जब कि सारा संसार बेकारीकी शिकायत कर रहा है, उसी समय रूसमें उसके ठीक विपरीत मज़दूरोंकी कमीके शिकायत की जा रही है। रूसमें एक सूचना-द्वारा घोषित किया गया है कि बेकारीका अन्त हो गया है, अब किसी व्यक्तिको बेकारीके लिए राजकोषसे कुछ नहीं दिया जायगा।

उत्पत्ति-शक्ति किस प्रकार बढ़ती जा रही है, यह फिरसे यहाँपर दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु इसीसे सम्बन्ध रहनेवाली एक महत्वकी बात यहाँपर उल्लेख करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। सरकारने अपने देशके लोगोंकी उत्पत्ति-शक्तिको बढ़ानेके लिए प्रतिस्पर्धाको प्रोत्साहन दिया है। पूँजीवादी राष्ट्र रूस-जैसे साम्यवादी राष्ट्रमें इस तरीकेके चलाये जानेकी बातको सुनकर हँसेंगे, परन्तु यह प्रतिस्पर्धा किस प्रकारकी है, यह देखनेके बाद ही इसके सम्बन्धमें कोई निश्चित राय क़ायम करना ठीक होगा। प्रतिस्पर्धाका पहला नमूना लेनिनग्राडकी कार्ल मार्क्स फैक्टरी है, जिसको प्रति वर्षकी नियत उत्पत्तिसे तीन प्रतिशत अधिक उत्पत्ति करनेके कारण भोजनालय (dining room) और सभागृह (meeting room) बनानेके लिए सात लाख पचास हज़ार रूबल्सका इनाम दिया गया। दूसरा उदाहरण कुछ इंजीनियर और मज़दूरोंका है, जिनको नियत कामसे अधिक काम करनेके उपलक्षमें विदेश यात्राके लिए आवश्यक धनका पुरस्कार दिया गया।

साधारण रूपसे देखा जाय, तो रूसने अपने औद्योगिक क्षेत्रमें जो उन्नति दिखलाई है, उसे मानना ही पड़ेगा। उसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं, जैसे जो माल तैयार होता है, वह इतना अच्छा नहीं होता कि विदेशी मालका मुक़ाबला कर सके। इंग्लैण्ड आदि राष्ट्रोंने रूसको बदनाम करनेका जी-जानसे प्रयत्न किया, परन्तु उसकी उन्नतिमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आ सकी। उसको पूर्णरूपसे अपने ऊपर ही

निर्भर करना पड़ा। जर्मनीको छोड़कर उसके पड़ोसके राष्ट्रोंने उसे मदद नहीं दी, परन्तु अमेरिकासे उसको बहुत सहायता मिली। रूस अपने पंचवर्षीय कार्यक्रमको चार वर्ष या पाँच वर्षमें समाप्त करता है, यह भविष्यके अधीन है, परन्तु इस समय तो यही मालूम होता है कि उसकी प्रगतिमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं आई है और वह बढ़ता ही जा रहा है। यदि रूस अपनी गतिको थोड़ा मन्द भी कर देगा, तो बिना किसी प्रकारकी टक्कर खाये वह अल्प कालमें ही संसारके बड़े-बड़े राष्ट्रोंसे आगे बढ़ जायगा।

द्विविधा

श्री पद्मकान्त मालवीय

किसीने गाया कैसा गान ?
छुटा जाता है मेरा मान।
किसीको किया प्यार मैंने न,
किसीने किया मुझे ही प्यार।
लोकमें रह कर भी क्या अलग,
बनाया अपना ही संसार।
हीनता आज उसे यह कौन ?
निमंत्रण देकर मुझको मौन।
चाटुकारी जगकी की नहीं,
रहा यद्यपि मैं उसके बीच।
खींचता उसको ही मैं रहा,
कभी वह सका न मुझको खींच।
आज फिर कैसा हृत्कंपन।
त्याग निजको पर आराधन।
बह रही थी विरागकी नदी,
धार यह कैसी जिसमें राग।
भावकी गंगा-यमुना मिलीं,
हृदयको मेरे बना प्रयाग।
करूँ या करूँ न इसमें स्नान ?
कहो मेरे प्यारे अनजान ?

रघुका दिग्विजय और कालिदासका राष्ट्रीय आदर्श

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

महाकवि कालिदासने रघुके दिग्विजयका जो वर्णन किया है, उसमें पूरब, दक्खिन और पच्छिमके सभी देशों और जातियोंकी पहचान हो चुकी है, किन्तु रघुके उत्तरी मार्गके देशों और जातियोंमें से एक हूणोंके अतिरिक्त और किसीकी भी शिनाख्त आज तक भारतवर्षके पुरातत्त्ववेत्ता नहीं कर पाये थे। कम्बोज देशकी ठीक पहचान मिलनेसे मुझे रघुका समूचा उत्तरी रास्ता टटोल डालनेमें सफलता हुई। ज्यों ही रघुका रास्ता रोशन हुआ, त्यों ही उसकी रोशनीमें कालिदास एक राष्ट्रीय आदर्शवादी कविके रूपमें चमकते दीख पड़े! कालिदासके इस असली स्वरूप और गौरवको तथा उनके हृदयकी आन्तरिक प्रेरणाको पहचाननेसे पहले हमें राजा रघुके उत्तरी मार्गको टटोलना होगा।

रघु पहले अयोध्या या मध्यदेशसे पूरब तरफ़ जाते हैं। फिर दक्खिन और पच्छिमके सब देशोंको जीतते हुए उत्तर आ निकलते हैं। 'पूरब', 'पच्छिम', 'दक्खिन' और 'उत्तर' केवल आपेक्षिक दिशाओंके ही नहीं, प्रत्युत भारतवर्षके बड़े-बड़े विभागोंके नाम थे, जो मध्यदेश या अपरले गंगाकाँठेके चारों तरफ़ थे, यह बात मैंने 'भारतीय इतिहासकी रूपरेखा' और 'भारतीय इतिहासका भौगोलिक आधार' (द्वितीय संस्करण) में भली प्रकार प्रकट की है। भारतवर्षके इन पाँच प्राचीन विभागोंका एक बहुत स्पष्ट वर्णन राजशेखरकी काव्यमीमांसामें मौजूद है।

उत्तर देशमें रघुने सबसे पहले हूणोंको जीता और फिर कम्बोजोंको। हूणोंका देश वक्षाब और अकसाब नामकी वंक्षु नदी या आमू दरियाकी दो धाराओंके बीचका दोआब 'खुत्तल' था, यह पुरातत्त्ववेत्ता निश्चित कर चुके हैं, और कम्बोजोंका देश उससे ठीक सटा हुआ बदख्शां-पामीर प्रदेश था, यह 'विशाल-भारत' के मार्च-अंकके मेरे लेखमें सिद्ध हो चुका है।

कम्बोजके पड़ोसमें गंगा

कम्बोजके ठीक बाद रघुकी सेनाको कालिदासने गंगाकी हवा कैसे खिला दी है (रघुवंश ४, ७३), यह बात विद्वानोंको आज तक चकराया करती थी; किन्तु अब वह पहेली सुलझ गई है। पामीर या कम्बोज देशकी पूर्वी सीमा सीता (यारकद) नदी है, जिसे चीनी लोग उसके संस्कृत नामके अनुसार आज तक सी-तो कहते हैं। एक विशेष कालके प्राचीन भारतीय विश्वासके अनुसार सीता और गंगाका स्रोत एक ही अनवतप्त सरोवर था, जिसपर देवता निवास करते थे। सीता उसके उत्तर और गंगा पूरबसे निकलती थी।[1] इस प्रकार उस सरोवरके उत्तरसे पूरब परिक्रमा करनेसे रघुकी सेना कम्बोज देशके ठीक बाद गंगाके स्रोतपर पहुँच सकती थी।

गंगासे कालिदासका अभिप्राय काश्मीरके उत्तरकी किशनगंगा (प्राचीन नाम कृष्णा), या उत्तरगंगा (जेहलम नदीकी, जिसे काश्मीरी लोग व्यथ कहते हैं, एक शाखा छोटी सिन्ध), या उत्तरगंगाकी एक शाखाके स्रोत गंगा-सरोवरसे नहीं हो सकता, क्योंकि वे तीनों हिमालयकी गर्भ-शृंखलाके नीचे हैं, जब कि कालिदासके वर्णनके अनुसार रघुकी सेना कम्बोजके बाद हिमालयपर चढ़ी और किन्नरोंको जीतनेके बाद उसपर से उतरी थी। स्पष्ट ही हिमालयसे अभिप्राय वहाँ उसकी गर्भ-शृंखलासे कारकोरम-शृंखला तकके पहाड़ोंसे है। दूसरी बात, किशनगंगा, उत्तरगंगा या गंगा-सरोवर तक पहुँचनेके लिए सिन्ध नदीको पार करना आवश्यक है। रास्तेकी उतनी बड़ी नदीका उल्लेख किये बिना काश्मीरकी तुच्छ गंगा-सरोवरका उल्लेख कालिदास करते, यह नहीं जँचता।

---

[1] अभिधर्मकोश, तृतीय कोशस्थान, ५७ कारिका; वैटर्स सम्पादित य्वान् च्वाङ्का यात्रा-विवरण, जि० १, पृ० ३२-३५।

अनवतप्त सरोवर ठीक कहाँपर माना जाता था, इसका निश्चय हो सके, तो हम रघुका ठीक रास्ता जान सकें। पूर्वोक्त विश्वासके अनुसार सिन्धु उस सरोवरके दक्खिन उतरती थी और सीता उत्तर ; वंक्षु पच्छिम तथा गंगा पूरब। यदि शिओकको सिन्धुकी मुख्य धारा मानें तो कारकोरम जोत [२] के पासके गलों (glaciers) [३] पर उक्त बात आधी ठीक घट जाती है—सिन्ध उनके दक्खिन और सीता उत्तर उतरती है ; किन्तु वंक्षु और गंगाका स्रोत वहाँ कैसे माना जा सकता था ?

इस सम्बन्धमें हमें आधुनिक भूगोलशास्त्रियोंके इस मतपर ध्यान रखना चाहिए कि पामीर और कारकोरमकी अनेक नदियोंके प्रस्रवण-क्षेत्र (Catchment areas) गलोंके रास्तोंकी पथरीली रचनाओं (Moraine formations) में परिवर्तन होते रहनेके कारण ऐतिहासिक कालमें बदलते रहे हैं। एक प्रामाणिक विद्वानका कहना है कि यह असम्भव नहीं है कि पामीरोंकी ज़ोरकुल (विक्टोरिया) झीलका पानी कभी पूरब और चकमकतिन झीलका पच्छिम—आजकलसे ठीक उलटा—बहता रहा हो [४]। इस दशामें क्या यह सम्भव नहीं कि कारकोरमके गलोंसे पूरब तरफ़ प्राचीन कालमें कोई धारी बहती रही हो, जिसके विषयमें यह भ्रम रहा हो कि वह गंगाकी उपरली धारा है ? ऐसा भ्रम होना अस्वाभाविक नहीं है। पिछली शताब्दीके उत्तरार्द्ध तक आधुनिक भूगोलवेत्ता निश्चय-पूर्वक न जानते थे कि तिब्बतकी चाङ्पो [५] ब्रह्मपुत्रकी उपरली धारा है या इरावती या साल्वीनकी।

किरात

कम्बोज और गंगाके आगे रघुके रास्तेमें किरातोंका उल्लेख है (रघुवंश, ४, ७६)। किरात शब्द भारतीय वाङ्मयमें हिमालयकी एक जंगली जातिके नामके रूपमें बहुत प्रसिद्ध है। महाभारत और पुराणोंके अनुसार किरातोंका मुख्य घर हिमालयके पहाड़ी प्रदेशोंमें था। यहाँ कालिदासने भी उन्हें हिमालयका निवासी ही बताया है, किन्तु दूसरी जगह पुराणोंमें स्पष्ट लिखा है कि भारतके पूर्वी छोरके म्लेच्छ किरात थे। [६] म्लेच्छ विशेषणसे सूचित होता है कि उनकी भाषा आर्य न थी—वे कोई अनार्य जातिके थे। नेपाल राज्यका पूर्वी छोर सप्तकौशिकी अब भी किरात देश कहलाता है। उस किरात देशकी सीमा कुचबिहारसे लगती है, और उसके तथा कुचबिहार-आसामके द्वारा भारतवर्षके पूर्वी छोरके किरातोंका देश उत्तरके पहाड़ोंकी किरात भूमिसे जुड़ जाता है।

२ पहाड़ोंकी किसी शृंखला या रीढ़को लांघनेवाले रास्ते दो तरहके हो सकते हैं—या उसके आरपार या ऊपरसे। आरपार वे जहां नदीकी घाटी आदिके कारण पहाड़ बीचमें कटा मालूम हो, वैसे स्थानोंको दर्रा कहते हैं, जैसे बोलन दर्रा, शिपकी दर्रा। ऊपर वे जहाँ रास्ता पहाड़की रीढ़के एक तरफसे चढ़कर दूसरी तरफ उतरता है। ऐसे स्थान प्रायः जल-विभाजक भी होते हैं। अफ़गानिस्तानमें उन्हें कोतल या गर्दन कहते हैं, जैसे लंडी कोतल (खैबर), पैवार कोतल या शुतुर गर्दन। वैसे ही स्थानोंको कांगड़ा-कुल्लूमें जोत कहते हैं। जोत शब्दमें भी वही भाव है, क्योंकि जानवरकी गर्दनपर ही जोत रखी जाती है। कुमाऊँमें उन्हें ही धाटा कहते हैं। महाराष्ट्रके घाट और राजस्थानकी घाटी भी वही चीज हैं—अजमेर-पुष्करके बीचकी 'घाटी' पहाड़की गर्दन ही है। अंगरेजीमें दर्रा और जोत दोनोंको Pass कहते हैं, और असावधान भारतीय लेखक Pass का अनुवाद सदा दर्रा कर डालते हैं।

३. गल कुमाउनी शब्द है। हिन्दी-जगतको उसका परिचय पहले-पहल स्वामी सत्यदेवकी 'कैलाश-यात्रा' से मिला था।

४. 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' (ब्रिटिश विश्वकोश), तेरहवां संस्करण, जि० २०, पृ० ६४७—वंक्षुका स्रोत।

५. चीनी, तिब्बती, काश्मीरी और पठान लोग 'च' को जरा दबाकर बोलते हैं, उस दन्त-तालव्य उच्चारणको पाश्चात्य विद्वान् रोमन अक्षरोंमें 'ts' संकेतसे प्रकट करने लगे हैं। मराठीमें भी वह उच्चारण है, पर वहां च ही लिखा जाता है। मेरे विद्वान् मित्र भिक्षु राहुल सांकृत्यायन तथा मैंने उसे ड़ लिखना शुरू किया है।

६. द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु नित्यशः।
पूर्वे किरातास्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः॥
—वायुपुराण १,४५, ८२ ; विष्णुपुराण २,३,८।

आधुनिक जनविज्ञान (Ethnology) और भाषाविज्ञानके अनुसार भी उक्त सब देशोंमें एक ही अनार्य जाति रहती है, जिसे आधुनिक विद्वान् तिब्बत-बर्मी (Tibeto-Burman) कहते हैं। ऊपरकी विवेचनासे यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतवासी तिब्बतियों और बर्मियोंके पुरखोंकी सगोत्रता पहचानते थे, और हमारा किरात शब्द ठीक उसी अर्थको सूचित करता था, जिसे आधुनिक भाषाविज्ञान और जनविज्ञानका तिब्बत-बर्मी शब्द प्रकट करता है। इसीलिए अपनी दोनों पुस्तकोंमें मैंने आधुनिक तिब्बत-बर्मीके अर्थमें किरात शब्दका ही प्रयोग किया है। तिब्बतियों और बर्मियोंकी सगोत्रता पहचानना कुछ कठिन नहीं है। दोनोंकी भाषाओंके पहले दस अंकोंका मिलान करनेसे ही वह सगोत्रता स्पष्ट झलक जाती है। प्राचीन कालमें दोनों जातियोंके भेदका और भी कम विकास हुआ होगा, इसलिए तब हमारे पुरखा उन्हें एक ही नामसे पुकारते थे, इसमें कुछ भी अचरज नहीं है।

पामीरसे कारकोरम जोत तक हम रघुका रास्ता टटोल चुके हैं, उसके बादके किरात निश्चय ही लदाखके तिब्बती थे। लदाखको तिब्बती लोग मरगुल अर्थात् मक्खनका देश कहते हैं। उसके उत्तर-पच्छिम सिन्धकी घाटीमें बोलौर या बाल्तिस्तानमें भी, जिसे कश्मीरी लोग लुखबुदुन—लघु भोट या छोटा तिब्बत—कहते हैं, तिब्बती लोग रहते हैं। किन्तु रघुके रास्तेके किरात वे नहीं हो सकते। कारण, कालिदासके समय तक वहाँ तिब्बती लोग नहीं थे। उस भारतीय प्रदेशमें तिब्बतियोंका प्रवेश पहले-पहल लगभग तभी हुआ, जब सिन्धमें अरबोंका दो रहा था। भारतवर्षके कम्बोज देश तथा दरद देशके बीच वह तिब्बती पच्चर घुस आनेसे चीनके पच्छिमी व्यापार-पथको भी खतरा था; क्योंकि चीनका रेशम पच्छिमी देशों तक जिस रास्तेसे जाता था, वह तरीम नदीके काँठेके बाद पामीरके बीच या उत्तरसे ही गुज़रता था, जिसपर तिब्बतवाले आसानीसे झपट सकते थे। इसीलिए काश्मीरके राजा 'मुत्तोपी' (मुक्तापीड ललितादित्य) ने बोलौरसे तिब्बतियोंको निकालनेके लिए तब चीन-सम्राट्से सहायता माँगी थी, इस बातका उल्लेख चीनके इतिहासमें है। भारतवर्ष और चीनके विरुद्ध मध्य-एशियाकी उस मध्यकालीन राजनीतिमें अरबों और तिब्बतियोंके परस्पर मिल जानेके अनेक मनोरंजक दृष्टान्त उस समयके इतिहासमें हैं।

किरातोंके देशमें कालिदासने 'सरल' वृक्षोंका उल्लेख किया है, वह भी मनोरंजक है। हम अभी देखेंगे कि एक पाली ग्रन्थमें भी उसके पड़ोसके पहाड़ी प्रदेशमें ही सरल (एक किस्मके देवदार) का ज़िक्र मौजूद है।

उत्सव-संकेत और किन्नर

किरातोंका देश लाँघनेके बाद रघुकी 'पर्वतीय गणोंसे घोर लड़ाई हुई,' जिसमें 'उत्सव-संकेतोंको विरतोत्सव करके उसने किन्नरोंसे अपने विजयके गीत गवाये।' उसके बाद वह कैलाश पर्वत गये बिना हिमालयसे उतर आया (रघुवंश, ४, ७७-८०)। अन्तिम सूचना कामकी है। वह सिद्ध करती है कि किन्नरोंका देश हिमालयकी गर्भ-शृंखलामें और कैलाशके पच्छिम था। वह लदाखके परली तरफ़ भी नहीं हो सकता। महाभारतमें अर्जुनके उत्तर-दिग्विजयमें भी किम्पुरुषोंके देशके बाद गुह्यकोंका हाटक देश आता है और फिर मानसरोवर [७]। इस प्रकार किन्नर-देशकी स्थिति आधुनिक रामपुर-बशहर रियासतके ऊपरले भाग कनौरसे ठीक मिलती है।

यों भौगोलिक दृष्टिसे तो किन्नर-देश कनौर प्रतीत होता है, लेकिन जनता और भाषाकी दृष्टिसे इस प्रस्तावित शिनाख्तको हमें जाँचना है। उक्त निर्देशके अनुसार किन्नर किरातोंसे भिन्न थे। भारतीय वाङ्मयमें उनका नाम यक्षों, गन्धर्वोंके साथ आता है। आजकलके भाषाविज्ञानियोंके मतमें कनौरी एक किरात (तिब्बत-बर्मी) बोली है, किन्तु उसमें और उसके पड़ोस तथा पूर्वी नेपालकी कुछ और बोलियोंमें—जिनमेंसे एकका नाम याखा भी है—स्पष्ट

७. सभापर्व २८, १-५। महाभारतके सब प्रतीक कुम्भकोणम् संस्करणके अनुसार हैं।

अ-किरात लक्षण हैं, और उन लक्षणोंमें वे सब 'मुंड' भाषाओंका अनुसरण करती हैं [८]।

विन्ध्याचलकी मेखलामें, विशेषकर छोटा नागपुरमें और उड़ीसा-सीमान्तके जंगलोंमें, सन्थाल, मुंडा, शबर आदि जातियाँ रहती हैं, जिनका सामूहिक नाम आजकलके भाषाविज्ञानियोंने मुंडा-जातिके नामपर 'मुंड' या 'मुंडा' रख दिया है [९]। जर्मन विद्वान् श्मिटने सिद्ध किया है कि मुंड-जातियोंका परिवार एक बड़े वंशकी शाखा है। उस वंशका नाम उन्होंने आग्नेय (Austric) रखा है, क्योंकि वह एशियाके आग्नेय कोण (दक्खिन-पूरब) में रहता है। आग्नेय वंशके दो स्कन्ध [१०] हैं—एक आग्नेयदेशी (Austro-Asiatic), दूसरे आग्नेयद्वीप (Austronesian)। आग्नेयद्वीपीमें सुमात्रा, जावा आदि भारतीय द्वीपोंकी जातियोंकी गिनती है। आग्नेयदेशी स्कन्धकी दो शाखाएँ हैं—एक मुंड और दूसरी मोन-ख्मेर। मोन लोग बर्माके तटके तथा ख्मेर हिन्दचीनीके कम्बुज देश (कम्बोडिया) के निवासी हैं। इन बातोंका पूरी विवेचना पाठकोंको 'भौगोलिक आधार'के नये संस्करणमें मिलेगी। यहाँ इतनी बात उनके ध्यानमें विशेष रूपसे लाना अभीष्ट है कि भारतवर्षकी मुंड-जातियाँ और हिन्दचीनी तथा भारतीय महासागरकी प्राचीन प्रमुख जातियोंकी परस्पर घनिष्ठ सगोत्रता है। भारतीय महासागरके मेडागास्कर द्वीपसे प्रशान्त महासागरके ईस्टर द्वीप तक वही वंश फैला हुआ है। आसामके खासी-जयन्तिया पहाड़ोंके खासी लोग भी मुंडोंमें शामिल हैं।

मुंड भाषाओंमें एक विचित्र विशेषता है। उनमें क्रिया नहीं होती, धातुका रूप-परिवर्तन सर्वनामकी सहायतासे किया जाता है, इसीलिए उन्हें सर्वनामाख्यातिक [११] (Pronominalised) भाषाएँ कहा जाता है। हमने ऊपर अभी कहा कि कनौरी आदि हिमालयकी कुछ किरात बोलियोंमें अस्पष्ट अ-किरात लक्षण हैं, और ठीक उन्हीं लक्षणोंमें उनकी मुंड भाषाओंसे अनुरूपता है। वे भी सर्वनामाख्यातिक भाषाएँ हैं।

शताब्दियोंसे किरात भाषाओंसे घिरे रहने और उनके प्रभावसे ओतप्रोत होनेके बावजूद उन बोलियोंमें जो आग्नेय तलछट मौजूद है, उससे यह परिणाम निकलता है कि वे मूलतः आग्नेय थीं और बादमें किरात साँचेमें ढली हैं। यह प्रक्रिया हिमालयकी कई भाषाओंमें हमारे देखते चल रही है। सन् १८४७में हॉग्सनने नेपालकी किराँती भाषाओंका अध्ययन किया। नेपालकी सुनवार बोली तब मुंड भाषाओंकी तरह सर्वनामाख्यातिक थी, अब वह असर्वनामाख्यातिक हो गई है [१२]।

हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें यक्ष, किन्नर आदि जातियोंके विषयमें जो सूचनाएँ मिलती हैं, उन्हें अब भाषाविज्ञानकी नई रोशनीमें हमें परखना है। पुराण-महाभारतमें यक्ष हिमालयके निवासी हैं, किन्तु जातकोंमें वे लंका तथा पूर्वी सागरके द्वीपोंके हैं [१३]। अर्थात् हमारे पुरखोंके मतमें भी पूर्वी द्वीपोंके निवासी तथा हिमालयके कुछ हिस्सोंके निवासी एक ही जातिके थे। पार्जीटरका कहना है कि हिमालय और छोटा नागपुर-उड़ीसाका सम्बन्ध पुराणोंमें भी परिचित है [१४]। आधुनिक भाषा-पड़तालने कनौरी,

---

८. 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इंडिया' (भारतीय भाषा-पड़ताल), भाग १, जि० १, पृ० ५६-५६।

९. बाज बाज लेखक मुंडके बजाय कोल या कोलरी (अंग्रेजी—कोलरियन) शब्द प्रायः बर्तते हैं।

१०. जनविज्ञान और भाषाविज्ञानकी कुछ परिभाषाओंके हिन्दी अनुवाद मैंने इस प्रकार किये हैं—

Family-वंश : Sub-family-स्कन्ध; Branch-शाखा; Sub-branch-उपशाखा ; Group-वर्ग ; Sub-group-उपवर्ग।

११. यह नया हिन्दी शब्द भी मैंने गढ़ लिया है। और भाषाविज्ञानके पंडित मेरे मित्र डा० मंगलदेव शास्त्री डी० फिलने इसे पसन्द किया है। अंग्रेजी शब्दकी अपेक्षा यह अभीष्ट विचारको अधिक स्पष्ट करता है।

१२. 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया', १, १, पृ० ५६।

१३. वलाहस्स जातक (नं० १९६), समुद्दवाणिज जातक (४६६)

१४. 'एन्शियेण्ट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन' पृ. ३९७।

शाखा आदि भाषाओंकी सगोत्रता खोज निकाली है, उसे प्राचीन भारतवासी भी पहचानते थे। उस पहचानका एक और प्रमाण भी मुझे मिला है। टालमीके भूगोलमें, जो दूसरी शताब्दीमें लिखा गया था, मर्त्तबानकी खाड़ीसे मलक्काकी समुद्रसन्धि [१४] तकके समुद्रको 'सिनस् सबरिकस्' कहा है। उस समुद्रके तटपर मोन था तलैंग लोग रहते थे. उसके ठीक सामने भारतके पूर्वी तटपर तेलंगण और शबरी नदी है। आन्ध्रके पड़ोसकी शबर-जातिका परिचय भारतीय आर्योंको ऐतरेय ब्राह्मण [१६] के समयसे है। आज तक भी वह जाति अपने उसी नामसे आन्ध्र और उड़ीसाके सीमान्तपर रहती है। भाषाविज्ञानियोंके मतसे वह मुंड शाखाकी है। टालमीके उक्त प्रयोगपर ध्यान देनेसे पहले ही 'भारतीय इतिहासकी रूपरेखा' में मैंने यह प्रस्ताव किया था कि समूची शाखाके नामके रूपमें पाश्चात्य भाषाओंमें तो मैक्समूलरके समयसे मुंड शब्द चल चुका है, परन्तु भारतीय भाषाओंमें शबरका तद्धित 'शाबर' शब्द अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि शबरोंके नामसे भारतीय जनता अधिक परिचित है, और वह नाम जहाँ मुंडसे कहीं अधिक पुराना है, वहाँ उसकी तरह आज तक चला भी आता है। किन्तु टालमीके उक्त प्रयोगसे तो यह सन्देह होता है कि शबर शब्द सचमुच सामूहिक अर्थमें शायद बर्ता ही जाता था, और वह न केवल मुंड-शाखाकी प्रत्युत मोन-शाखाकी जातियोंको भी सूचित करता था, इसलिए आजकल हम यदि समूचे आग्नेयवंशी स्कन्धको शाबर कहें, तो अनुचित न होगा। खैर, वह प्रासंगिक बात है। इस समय हमारे सामने मुख्य बात यह है कि बर्माके तलैंग तथा तेलंगण (आन्ध्र देश) के शबरोंके लिए एक ही नाम प्रयुक्त होता था, जिससे यह सूचित होता है कि उनकी सगोत्रता सुपरिचित थी।

१४. समुद्रसन्धि=जलग्रीवा, (straits)। सरल शब्द आधुनिक सिंहली वाङ्मयमें प्रचलित है, और मुझे हिन्दी 'जलग्रीवा' से कहीं सुन्दर लगा है।

१६. ऐ० ब्रा०, ७, १८।

इस विवेचनसे यह परिणाम तो स्पष्ट निकला कि प्राचीन भारतीय वाङ्मयमें यक्ष, किन्नर आदि शब्द निश्चित मानव-जातियोंके वाचक हैं, जिनके जनविज्ञान-विषयक रिश्ते-नातेको भी हमारे पुरखा काफ़ी अच्छी तरह पहचानते थे। किन्नर लोग खास उसी जातिके पूर्वज थे, जो आज कनौरमें रहती और कनौरी बोली बोलती है।

इस किन्नर—कनौर शिनाख्तको बौद्ध वाङ्मयका एक निर्देश सोलह आना सिद्ध कर देता है। सुत्तपिटकके खुद्दक-निकायके अन्तर्गत थेरी-अपदानमें बौद्ध थेरियोंकी जीवनियाँ दी गई हैं। उसके अनुसार थेरी सामा अपने एक पहले जन्ममें किन्नरी थी, जिसका यों वर्णन किया गया है—

''चन्दभागा नदीतीरे अहोसिं किन्नरी तदा।
अथऽद्दस देवदेवं चंकमन्तं नरासभम् ॥
ओचनित्वान सललं बुद्धसेट्ठस्स दासहम्।
उपसिंघ महावीर सललं देवगन्धिकम् ॥
सकं चित्तं पसादेत्वा ततो पब्बतमारुहिं [१७] ॥''

वह चन्द्रभागा नदीके किनारे एक किन्नरी थी, जहाँ बुद्ध विपस्सीके उसे दर्शन मिले। उसने उन्हें सरल पुष्प भेंट किये, जिन्हें लेनेके बाद वे पर्वतपर चढ़ गये, इसलिए चिनावकी किसी पहाड़ी घाटीमें ही यह घटना घटी थी। वहाँ सरल वृक्ष भी थे। पहाड़ोंमें चिनाब अब तक चन्द्रभागा कहलाती है, और उसका श्रोत कनौरके ठीक पच्छिमी किनारे पड़ता है। हम देख चुके हैं कि उसीके पड़ोसमें कालिदासने भी सरल वृक्षोंका वर्णन किया है।

उत्सव-संकेतोंका नाम किन्नरोंके साथ आया है तथा किरातों और किन्नरोंके नामके बीच। इससे मैं यह परिणाम निकालता हूँ कि वे लद्दाख और कनौरके बीचकी कनौरी-वर्गकी छोटी-छोटी बोलियाँ—मनचाटी, लाहुली, बुनान, रंगलोई, कनाशी—बोलनेवालोंके पूर्वज थे। पार्जीटरने रघुवंशकी एक टीकासे उस शब्दकी जो व्याख्या उद्धृत की

१७. थेरीगाथापर धम्मपालकी अत्थकथा परमत्थ-दीपनीमें उद्धृत, पाली टेक्स सोसाइटी संस्करण, पृ० ४५-४६।

है, [१८] इससे प्रकट होता है कि 'उत्सव-संकेत' उनका नाम न था, प्रत्युत एक समाजशास्त्रीय परिभाषा थी, जो उन जातियोंके लिए प्रयुक्त होती थी, जिनमें विवाह बन्धन स्थापित न हो, और खुली प्रमिश्रणा (Promiscuity) या अनावरण [१९] जारी हो—संकेत करनेसे कोई स्त्री या पुरुष 'उत्सव'के लिए जा सकता हो। विवाह-बन्धनकी शिथिलता उक्त जातियोंमें आज तक है, जिस बातसे मेरी शिनाख्तको और भी पुष्टि मिलती है।

कालिदासका राष्ट्रीय आदर्श

रघुके उत्तर-दिग्विजयका मार्ग इस प्रकार टटोल चुकनेपर मुझे यह दीख पड़ा कि कालिदासने भारतवर्षकी उत्तरी और पच्छिमी सीमाएँ रघुके दिग्विजयके बहाने हूबहू वही बतलाई हैं, जो मैंने 'भारतीय इतिहासकी रूपरेखा' के भूमिका-खण्डमें आधुनिक भूगोलशास्त्र जनविज्ञान और भाषाविज्ञानकी सहायतासे निश्चित की हैं! यह ध्यान देनेकी बात है कि रघुके समूचे दिग्विजयमें संक्षेपकी खातिर केवल सीमान्त देशोंके नाम आये हैं, किन्तु उनमें भारतकी पूरी परिक्रमा हो गई है। उस क्रान्तदर्शी महाकविने अपनी सहज प्रतिभासे भारतवर्षकी भौगोलिक और जातीय एकताको पहचाना और उसे एक राष्ट्रीय आदर्शके रूपमें चित्रित किया है। उसने सहज दृष्टिसे भारतवर्षकी उन सीमाओंको पहचाना है, जिन्हें आजकल भारतवर्षकी विज्ञान-सम्मत सीमाएँ (Scientific frontier) कहा जाता है, और अफ़ग़ानिस्तानसे आसाम तक तथा कनौरसे कन्याकुमारी तक एकछत्र *साम्राज्य स्थापित करने और दृढ़तापूर्वक अपने सीमान्तोंकी* रक्षा करनेका आदर्श उसने भारतवासियोंके सामने रखा है। 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' में बालक भरतसे शेरके दाँत गिनवानेवाले और 'रघुवंश' में रघुसे वंक्षु (आमू दरिया), लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) और ताम्रपर्णीके समूचे तिकोनेका दिग्विजय करानेवाले कविके सामने राष्ट्र-वीर्यका क्या एक स्पष्ट आदर्श नहीं है?

कहा जाता है कि कालिदासके हृदयको गुप्त सम्राटोंके विजयोंने जगाया था। मेहनती पंडितोंने काव्योंमें से बीन-बीनकर ऐसे निर्देश इकट्ठे कर डाले हैं, जिनमें गुप्त सम्राटोंकी तरफ़ अस्फुट इशारे उन्हें सूझ पड़े हैं। कहीं यह ज़िक्र आया कि राजा प्रजाका गोपन (रक्षण) करता था, तो वह गुप्तोंकी तरफ इशारा हो गया! कहीं युद्धके देवता स्कन्दकी स्तुति आ गई, तो वहाँ स्कन्दगुप्तकी याद दीख पड़ी! यह सब युक्ति-जाल उतना ही सुन्दर, उतना ही बारीक, उतना ही मज़बूत और उतना ही नाज़ुक है, जितना एक मकड़ीका जाला।

गुप्तोंके स्पष्ट विजयोंके बिना कालिदासकी कल्पना एक ऊँची उड़ान न उड़ सकती थी, यह आग्रह कोई कविके हृदयको पहचाननेवाला न कर सकेगा। यह पूरी तरह सम्भव है कि कालिदासकी हृदय-स्पन्दनाओंने ही देशमें एक नया जीवन फूँका हो, जिसने गुप्त विजेताओंको अनुप्राणित किया हो। कविके आदर्शवादने विजेताओंके बल, साहस और कर्तृत्वको जगाया हो। उस कविकी प्रतिभाका वास्तविक गौरव, उसके बड़प्पनका असल रहस्य यही है कि उसकी पुकारने एक राष्ट्रको जगा दिया। भारतवर्षकी उस गुप्त-कालीन जाग्रतिकी लहर, जिसकी सूचना कालिदासके शंख-नादने दी थी, पूरब तरफ चीनमें पहुँची और पीले समुद्रको पारकर उसने जापानको हिला दिया! उत्तर तरफ हिमालयको लाँघकर वह तिब्बतमें और तिब्बतसे मंगोलिया उतरी। पच्छिम तरफ खलीफ़ोंका तरुण अरब साम्राज्य उसकी धारामें तैरने लगा और अरबके रास्ते वह पच्छिमी यूरोपमें जा पहुँची! दक्खिन तरफ़ हिन्दचीनी और जावा-सुमात्रा तो भारतवर्षके साथ-ही-साथ उसकी स्पन्दनाओंका अनुभव कर चुके थे। गुप्तकालीन भारतवर्षके आदर्श, विचार और संस्कृति एक हज़ार वर्ष तक संसारमें ब्रह्मवाक्य माने जाते रहे,

---

१८. मार्कण्डेय पुराणका अनुवाद, पृ० ३१६।

१९. अनावरण शब्द महाभारतमें प्रमिश्रणाके अर्थमें आया है—

अनावृताः किलपुरा स्त्रिय आसन् वरानने।
कामाचारविहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनी ॥१,१२८,४।

जब तक कि तरुण ट्यूटन जातियोंने एक नई दुनियाकी सृष्टि शुरू नहीं की। उन ट्यूटन जातियोंने भी अपनी पहली ज्योति यूरोपके उन्हीं विद्यापीठोंमें पाई थी, जिनमें अरबोंके काफ़िले भारतवर्षके ज्ञानको ढो-ढोकर ले गये थे, ये सब परिचित बातें हैं। जब हम उस गुप्त-जागरणमें कालिदासके प्रभावका अनुभव करते हैं, तभी हम उस महाकविके पूरे महत्त्वको पहचान पाते हैं।

कालिदासने हूणोंको वंक्षुके काँठेमें रखा है, इस या ऐसी और स्पष्ट बातोंसे उसके समयका निश्चय किया जा सकता है। गोलमाल और कल्पित इशारोंके आधारपर किये हुए फ़ैसलोंकी कुछ क़ीमत नहीं है। उसका समय ठीक-ठीक निश्चित होनेके बाद ही हम उसकी प्रतिभाका ठीक मूल्य आँक सकेंगे, किन्तु उसके राष्ट्रीय आदर्शका पूर्ण और स्पष्ट चित्र, जो कम्बोज और उसके पड़ोसी देशोंकी पहचानसे रोशन हुआ है, हमें उसकी प्रतिभाके महत्त्वकी एक झलक दिखलाता और यह सोचनेको प्रेरित करता है कि शायद गुप्तकालका राजनैतिक पुनर्जीवन साहित्यिक जागरणका परिणाम था, न कि कारण। यदि कालिदासके हृदयके असल स्वरूपको उन खोजोंने कुछ भी स्पष्ट किया हो, तो मैं अपनी मेहनतको सफल मानूँगा।

शिवाजीकी सामुद्रिक शक्ति

सर यदुनाथ सरकार

राजापुरके अंग्रेज़ोंने शिवाजीके साथ शत्रुता की

सन् १६५९ के अन्तमें जब शिवाजी बीजापुर राज्यमें बहुतसे स्थान जीतनेमें लगे थे, उस समय अंग्रेज़ोंकी प्रधान कोठी सूरतमें थी। सूरत मुग़ल-साम्राज्यमें था। बम्बई-द्वीप तब पोर्चुगीज़ोंके हाथमें था। इसके आठ वर्ष बाद अंग्रेज़ोंके राजा द्वितीय चार्लसको पोर्चुगाल राजासे विवाहमें दहेज-स्वरूप यह द्वीप मिला। कई वर्ष बाद अंग्रेज़ोंका प्रधान आफिस सूरतसे यहाँ लाया गया। सूरतके अतिरिक्त राजापुर (रत्नगिरि ज़िलेका बन्दर), कारवार (गोवाके दक्षिणका बन्दर), कनाड़ी अधित्यकाका हुबली और खानदेश-प्रदेशका धरणगाँव इत्यादि कतिपय बड़े व्यापारिक केन्द्रोंमें अंग्रेज़ोंकी कोठियाँ और कपड़े तथा मिरिचकी आढ़तें थीं।

सन् १६६० के जनवरीके शुरूमें ही शिवाजीकी सेनाने कुछ दिनके लिए राजपुर बन्दरपर कब्ज़ा कर लिया। वहाँकी अंग्रेज़ी कोठीके मालिक हेनरी रेमिंग्टनने बीजापुरी अफ़सरोंके मालको कम्पनीका माल बनाकर मराठोंको उसे लेनेसे रोका। इस घटनापर शिवाजीके साथ अंग्रेज़ोंका झगड़ा हुआ, परन्तु वह जल्दी ही निपट गया।

इसके कुछ महीने बाद जब सिद्दी जौहरने शिवाजीको पनहाला-क़िलेमें घेर लिया, तब उसी रेमिंग्टन और दो-चार अंग्रेज़ोंने कुछ छोटी तोपें (मर्टार) और एक प्रकारके (ग्रेनेड) जौहरको बेचनेके लिए वहाँ जाकर उन अस्त्रोंकी शक्ति दिखानेके लिए शिवाजीके क़िलेके ऊपर कुछ ग्रेनेड छोड़े। शिवाजीने देखा कि अंग्रेज़ी झंडेके नीचे गोरोंका एक दल ये गोले छोड़ रहा है।

राजापुरकी अंग्रेज़ी कोठीकी लूट

विदेशी बनियोंकी इस अकारण शत्रुताकी सज़ा दूसरे साल मिली। सन् १६६१ के मार्चके महीनेमें शिवाजीने रत्नागिरि ज़िलापर कब्ज़ा कर लिया, और फिर राजापुर

पहुँचकर अंग्रेज़ी कोठीवालोंको क़ैद कर लिया और उनको साथ ले गये। कोठी लूटने और जलाकर भस्म करनेके बाद रुपयेकी तलाशमें ज़मीन खोदी गई। इसका नतीजा यह हुआ कि राजापुरमें अंग्रेज़ोंका कारबार नष्ट हो गया। मराठोंने यह कहकर कि 'बहुत रुपये लिए बिना न छोड़ेंगे'—उन चार अंग्रेज़ क़ैदियोंको दो वर्ष तक अपने पहाड़ी क़िलोंमें रोक रखा।

कम्पनीके मालिकोंने कहा कि जब रेमिंग्टन-प्रभृति कर्मचारियोंने अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए शिवाजीके साथ शत्रुता कर स्वयं आफत मोल ली है, तो कम्पनीको रुपये देकर छुड़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अन्तमें बहुत कष्ट झेलनेके बाद उन लोगोंने सन् १६६३ की ५ फरवरीको यों ही छुटकारा पाया।

उसके बाद कम्पनीने राजापुरकी कोठी लूटने और ध्वंस करनेकी क्षतिपूर्तिका दावा किया। शिवाजीने इस लूट-पाटमें अपनी जिम्मेदारी अस्वीकार कर दी, अथवा बहुत थोड़े रुपये देने चाहे। इस बातपर बीस वर्षसे भी अधिक समय तक वाद-विवाद और लिखा-पढ़ी चलती रही। अंग्रेज़ोंने आश्चर्यमयी सहनशीलता और ज़िदका परिचय दिया, और बहुत दिनों तक अपना दावा न छोड़ा। शिवाजीके पास बार-बार दूत* भेजते रहे। बादमें हुबली, धरणगाँव आदि स्थानोंकी अंग्रेज़ी कोठियाँ भी मराठोंने लूटीं और उनकी भी माँग पेश की गई। यह झगड़ा शिवाजीके जीते जी नहीं निपटा। इसके लिए दोनों दलोंमें लड़ाई भी न हुई, क्योंकि उन दिनों अंग्रेज़ और शिवाजी दोनों ही बहुतसी बातोंमें एक दूसरेके मुखापेक्षी थे। बम्बई टापूमें तरकारी, चावल, जलानेकी लकड़ी, मांस आदि कुछ भी नहीं होता था। ये सब चीज़ें उस पार शिवाजीके देशसे न आनेसे बम्बईके लोग भूखों मर जाते, और शिवाजीके राजमें नमक, मोमबत्ती, बारीक रेशमी कपड़े (बनात और सकरलात), तोप, बारूद आदि अंग्रेज़ बणिक ही लाकर दे सकते थे। इसके सिवा अंग्रेज़ोंके व्यापारसे शिवाजीकी प्रजाकी और हाट-बाज़ारके महसूलसे सरकारको बहुत आमदनी थी। इसीसे यह झगड़ा युद्धमें परिणत न हुआ।

राजापुर-कोठीकी हानिका दावा

अंग्रेज़ बनियोंको अच्छी तरह मालूम था कि शिवाजीको चिढ़ानेसे उनके विस्तृत राज्यमें उनकी ख़रीद-बिक्री एकबारगी ही बन्द हो जायगी, और उन लोगोंमें इतनी शक्ति नहीं कि वे युद्ध करके शिवाजीको अपने वशमें करते या उनसे पावना वसूल करते। दूसरी ओर उनको यह भी डर था कि यदि वे शिवाजीको तोप और बारूद आदि न बेचेंगे, तो वे (शिवाजी) चिढ़कर उनका व्यापार बन्द कर देंगे। इसके अलावा एक और भी बड़ी भारी आफत थी। वह यह कि मराठा राजाको इस प्रकारकी मदद देनेकी बात यदि प्रकट हो जाय, तो मुग़ल बादशाह गुस्सेसे अंग्रेज़ी कोठी अपने राजसे हटा देंगे और अंग्रेज़ व्यापारियोंको क़ैद कर लेंगे। फरासीसियोंने इस मौक़ेपर चुपके-चुपके कुछ छोटी-छोटी तोपें और शीशे शिवाजीके हाथ बेचे।

होशियार अंग्रेज़ मालिकोंने अपने स्थानीय नौकरोंको लिख भेजा—"इन दोनों संकटोंके बीच बड़ी सावधानीसे चलना, जिसमें कोई पक्ष भी न चिढ़े। शिवाजीके हाथ तोप-बारूद मत बेचना और खुल्लमखुल्ला बेचनेसे इनकार भी मत करना। खुलासा जवाब न देकर जितने अधिक दिन काटे जायँ, वैसा उपाय करना। शिवाजीको यह लोभ दिखाकर कि हम लोग अपने जहाज़ और तोप ले जाकर हबशी राजधानी दण्डा-राजपुरी जीतनेके लिए उनकी मदद कर सकते हैं, बातचीत छेड़ना। इस प्रकार उनको बहुत दिन तक अपने हाथमें रखना।"

शिवाजी भी जो रुपये एक बार हाथ लगे, उनको वापस देनेमें राज़ी न थे। इस हालतमें राजपुर कोठीकी क्षतिपूर्तिकी बातका निपटारा होना असम्भव था। अंग्रेज़ोंने

* अष्टिक (१६७२), निकोलस (१६७३), हेनरी अक्सिन्डेन (१६७४)।

एक लाखका दावा किया था। शिवाजीके मन्त्रियोंने पहली हानिका हिसाब बीस हज़ार लगाया था। बादमें अट्ठाईस हज़ारपर आये। अन्तमें चालीस हज़ार तक पहुँचे; परन्तु वह भी नक़द नहीं। इसमें से ३२ हज़ार रुपयोंमें कुछ नकद और कुछ व्यापारका माल देकर चुकता किया जायगा। बाक़ी अठारह हज़ार रुपये तीनसे लेकर पाँच वर्ष तक राजापुर-बन्दरमें अंग्रेज़ोंकी आनेवाली चीज़ोंके ऊपर महसूल माफ कर पूरे किये जायँगे।

शिवाजीके राज्याभिषेकके दरबारमें (१६७४ जूनको) उपस्थित होकर अंगरेज़ दूत हेनरी अक्सिन्डेनने निम्न-लिखित तीन शर्तें तय करके एक सन्धिपत्रपर दस्तखत करा लिये :—

(१) क्षतिपूर्तिके लिए शिवाजी अंगरेज़ोंको चालीस हज़ार रुपये देंगे। इसका एक-तिहाई हिस्सा नक़द और माल (सुपारी) के रूपमें शिवाजीके मरनेके पहले चुकता किया जायगा।

(२) शिवाजी अपने राज्यकी अंग्रेज़ी कोठियोंकी रक्षा करेंगे। तदनुसार सन् १६७५ में अंग्रेज़ोंने राजापुरमें फिर अपनी कोठी खोली।

(३) उनके राज्यके समुद्र-तटपर यदि तूफानमें कोई जहाज़ आकर ज़मीनपर अचल हो जाय अथवा टूटे हुए जहाज़का माल आवे, तो वे उसे खुद ज़ब्त न करके जहाज़के मालिकको लौटा देंगे।

परन्तु शिवाजी अंग्रेज़ोंकी चौथी प्रार्थना यानी उनके राज्यमें अंग्रेज़ोंके सिक्के चलानेमें किसी प्रकार भी राजी न हुए।

शिवाजीके साथ अंग्रेज़ बनियोंकी भेंट

राजापुरकी नई कोठीके साहबोंने सन् १६७५ में शिवाजीके साथ मुलाक़ात कर यह सुन्दर वर्णन लिखा है—

"२२ मार्चको दोपहरके समय राजा आये। साथमें बहुतसे सवार और डेढ़ सौ पालकियाँ थीं। उनके आनेका समाचार मिलते ही हम लोग तम्बूसे बाहर निकले और थोड़ी ही दूरपर उनसे मिले। हम लोगोंको देख उन्होंने पालकी रुकवाई, और नज़दीक बुलाकर कहा कि तुम लोगोंके हमारे साथ मुलाक़ात करने आनेसे हम बहुत खुश हुए, परन्तु इस समयकी भीषण गर्मीमें तुम्हें खड़ा न रखकर शामको बुलायेंगे।

× × ×

"२३ मार्चको राजा आये और पालकी रुकवाकर हम लोगोंको अपने पास बुलाया। हम लोगोंके पास आनेपर हाथसे इशारा करके और भी पास आनेको कहा। जब हम उनके पास गये, तो उन्होंने अचरजके मारे हमारी ज़ुल्फ़ोंको टटोल, इधर-उधर हिलाया और बहुतसी बातें पूछीं। जवाबमें उन्होंने कहा कि हम राजापुरकी तुम्हारी सब असुविधायें दूर करेंगे और तुमारे समस्त उचित अनुरोधोंको मानेंगे।

× × ×

दूसरे दिन फिर हम लोगोंकी बुलाहट हुई। दो घंटे तक बातचीत हो चुकनेपर हम लोगोंकी दरख़्वास्तका मराठी अनुवाद उनको सुनाया गया। उन्होंने हम लोगोंकी सब प्रार्थनाएँ स्वीकार कर फर्मान देनेका भरोसा दिया।"

जंजीराके हबशी

भारतके पश्चिमीय किनारेपर बम्बईसे ४५ मील दक्षिणमें जंजीरा नामक पत्थरका एक छोटासा द्वीप है। उसके आध मील पूर्वकी ओर समुद्रकी एक खाड़ी कोलाबा ज़िलेके भीतर घुस गई है। इसी खाड़ीके मुहानेमें उत्तरी किनारेपर दंडा नामक शहर है। उसके तीन ओर समुद्रका जल है। दंडाके दो मील उत्तर-पश्चिमकी ओर राजपुरी नामक और एक नगर है। (राजापुर-बन्दर यहाँसे बहुत दूर दक्षिणमें है।) यह सब और इनके आसपासकी ज़मीनको मिलाकर एक छोटा राज्य था। उसके मालिक हबशी-जातिके थे। यह जाति अफ्रिकाके ऐबिसीनियाँ प्रदेशसे आई है। हबशियोंका रंग अत्यन्त काला, होंठ मोटे और बाल घुँघरवाले होते हैं।

वहाँ हबशियोंके मात्र दो-चार घर थे। उनको भारतके असंख्य लोगोंके साथ रहकर उनपर अपनी प्रभुता जमानी थी। वे सब लड़ाईमें और जहाज़ चलानेके काममें बड़े होशियार थे, दूसरा कोई काम नहीं करते थे। हरएक अपनेको एक छोटा-मोटा रईस समझता था, और किसी राजपुत्रकी शानके घमंडमें रहता था। उनका दलपति बापके उत्तराधिकारीके हिसाबसे नहीं होता था। अपनी जातिके सबसे बुद्धिमान और कामकाजमें होशियार वीरको चुनकर वे सब उसे नेता स्वीकार करते थे और उसकी आज्ञा मानते थे। उस समय भारतवर्षमें हबशी-जाति अपनी बहादुरी, परिश्रम और कष्ट सहन करनेकी शक्ति, लड़ाई और राजकाजमें एकसी बुद्धिमानी तथा स्वामिभक्तिके लिए प्रसिद्ध थी, और मनकी स्थिरता, लोगोंको संचालन करनेकी शक्ति और जल-युद्धके परिपक्व ज्ञानमें यूरोपियनोंके सिवा और सब जातियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ थी। ये सिद्दी (सैयद या उच्च वंशमें पैदा होनेवाले) के नामसे परिचित थे।

शिवाजी और सिद्दियोंमें झगड़ेका कारण

जंजीराके पूरबकी समुद्र-तटकी भूमि कोलावा ज़िलेमें पड़ती है। यहाँ हबशियोंके खाने-पीनेका अन्नादि उगता था, राजस्व जमा होता था और अनुचर लोग भी यहीं बसते थे। शिवाजीने उत्तर-कोंकणमें कल्याण यानी वर्तमान थाना जिलेपर कब्ज़ा कर लिया। उसके बाद ही उनके कोलावा ज़िलेमें प्रवेश करनेसे हबशियोंके साथ उनकी मुठभेड़ हुई। ऐसा होना अनिवार्य था। क्योंकि इस समुद्र-तटकी ज़मीनको खो बैठनेपर हबशी लोग भोजन बिना भूखों मरते, इसलिए वे दंडा-राजपुरीको अपने हाथमें रखनेके लिए दिलो-जानसे लड़ते रहे। दूसरी ओर शिवाजी भी यह जानते थे कि तटभूमि और जंजीरेके टापूसे हबशियोंको भगाये अथवा वशमें किये बिना उनके कोंकण प्रदेशका स्थलभाग भी असम्पूर्ण और अरक्षित ही रहेगा। वे सब शत्रु जहाज़में चढ़ जिधर चाहे उधर उतरकर गाँव लूटेंगे और प्रजाको दास बनाकर ले जायँगे। 'जैसे घरका चूहा, सिद्दी लोग भी ठीक उसी प्रकारके बैरी हैं।' (सभासद)। खासकर वे हिन्दू प्रजाके ऊपर अत्यन्त कठोर अत्याचार करते थे। ब्राह्मणोंको पकड़कर मेहतरका काम करवाते और छोटे-मोटे लोगोंके तो नाक-कान काट लेते थे। साथ ही वे इस टापू और क़िलेके आश्रयमें अपने जहाज़ रखकर समुद्रमें जब तब मराठोंके जहाज़ पकड़ सकते थे।

सिद्दियोंके साथ मराठोंका युद्ध

इसलिए जंजीरा द्वीपपर अधिकार करके पश्चिमी समुद्र-तटसे सिद्दियोंके प्रभावको बिलकुल नष्ट कर डालना शिवाजीके जीवनका व्रत हो गया। इस काममें वे असंख्य फौज लेकर पानीकी तरह रुपये खर्च करने लगे।

परन्तु मराठोंके पास न तो अच्छी तोपें थीं और न तोप चलानेकी सहूलियत। उनके जहाज़ हबशियोंके जहाज़ोंके सामने कुछ भी नहीं थे। इन दो शक्तियोंकी लड़ाई बंगालमें लड़कोंको भुलावा देनेवाली 'सुन्दरवनके शेर और मगर' की कथाकी तरह हुई। शिवाजीकी फौज अगणित और स्थल-युद्धमें अजेय थी। उधर हबशी लोग जल-युद्धमें मोर्चा लेनेमें उतने ही श्रेष्ठ थे, परन्तु उनकी स्थल-सेना एक हज़ारसे ज्यादा न थी।

शिवाजी सन् १६५८ से कोलावा ज़िलेमें बराबर अधिकाधिक फौज भेजकर हबशी राज्यके स्थलभागपर जितना हो सका, अधिकार जमाने लगे। लड़ाई बहुत दिन तक चली। कभी यह दल जीतता, तो कभी वह दल। अन्तमें शिवाजीने दंडा-दुर्ग छीन लिया और केवल टापू ही सिद्दियोंके हाथमें रह गया। उन लोगोंने तट-प्रदेशके समस्त क़िले और शहर गँवा दिये, परन्तु 'पेट भरनेके लिए' वे जहाज़ोंके द्वारा रत्नागिरि ज़िलेमें जा-जाकर गाँव लूटने लगे। हर साल वर्षाऋतुके बाद शिवाजी कई महीनों तक समुद्र-तटसे जंजीरा-द्वीपके ऊपर गोले छोड़ते थे, परन्तु उससे कुछ लाभ न होता था। उन्होंने सोचा कि

जब तक अपने लड़ाईके जहाज़ न होंगे, तब तक उन्हें अपनी इज़्ज़त और राज क़ायम रखना मुश्किल है, इसलिए नौ-बल संगठन करनेकी ओर उनकी दृष्टि गई।

शिवाजीका नौ-बल

शिवाजीके जंगी जहाज़ों और सामुद्रिक प्रभावके विस्तारका हाल बड़े मज़ेसे और धाराप्रवाह-रूपसे मालूम किया जा सकता है। सन् १६५६ में कल्याणपर अधिकार करनेके बाद उसके नीचे समुद्रकी खाड़ीमें (बम्बईसे २४ मील पूरबकी ओर) शिवाजीने पहला जहाज़ तैयार कराकर उसे समुद्रमें प्रविष्ट कराया। इस नई शक्तिकी जाग्रतिसे पुर्तगीज़ लोगोंके मनमें भय और ईर्ष्याका संचार हुआ। बादमें कोंकणके तटपर जैसे जल्दी-जल्दी उनका राज फैलने लगा, वैसे ही उसके साथ साथ जहाज़ बनाना, नौ-सेना भर्ती करना, किनारेपर जहाज़ोंके अड्डेके लिए जल-दुर्ग और बन्दर बनाने आदिका काम बढ़ता गया। 'राजाने समुद्रकी पीठपर जीन चढ़ाया' (सभासद)।

शिवाजीके सब मिलाकर चार सौ जहाज़ थे। उनमें छोटे-बड़े सब किस्मके जहाज़ थे; जैसे घुरब (तोपवाला, चौरस और ऊँचे फर्शका युद्ध-जहाज़), गलवट् (जल्दी चलनेवाला पतला लड़ाईका जहाज़) तराही, तार्वे, शिवार और मचवा (माल ढोनेवाले जहाज़), पगार इत्यादि। उनके अधिकांश जहाज़ छोटे थे। वे भारी धातुकी चादरोंसे मढ़े न थे और किनारा छोड़कर समुद्रमें बहुत दूर जाकर देर तक ठहर नहीं सकते थे। तोपके एक गोलेसे ही डूब जानेवाले थे। अंग्रेज़ी कोठीके अध्यक्षने इनके बारेमें लिखा है—"ये सब जहाज़ निकम्मे हैं। अंग्रेज़ोंका एक अच्छा जंगी जहाज़ ऐसे सौ जहाज़ोंको मज़ेमें डुबा दे सकता है।" यानी इनको "मच्छर जहाज़ कहा जाना चाहिए। सूरत, बम्बई और गोआको छोड़ पश्चिमी किनारेके प्रायः सब बन्दरोंमें पानीकी गहराई इतनी कम है कि बड़े-बड़े जहाज़ न तो वहाँ जा सकते हैं और न तो आँधीके समय आश्रय ले सकते हैं, इसीलिए पुराने ज़मानेसे ही कोंकण और मलाबारके समुद्र-तटोंकी व्यापारिक वस्तुएँ छोटी और छिछली (चिपटी पेंदीवाली) नावोंमें इधरसे उधर भेजी जाती थीं। ये सब नावें तूफ़ान देखते ही किनारेके पास, जहाँ मन चाहा वहाँ, छोटी खाड़ी या नदीमें भागकर अपना बचाव कर लेती थीं। इस देशके लड़ाईके जहाज़ भी उसी ढंगसे बनाये जाते थे। ये सब छोटे होते थे। इनमें बड़ी-बड़ी अथवा बहुतसी तोपें वहन करनेकी शक्ति न थी। तूफ़ानके समय समुद्रमें टिकनेके लिए अथवा ज़मीनका किनारा छोड़ दूर जाकर बहुत दिन तक एक साथ बेड़ेमें चलनेके लिए ये उपयुक्त नहीं थे। वे संख्याके ज़ोरसे लड़ाई जीतनेकी कोशिश करते थे, तोपके गोलोंके ज़ोरसे नहीं। शिवाजीने भी अपने जहाज़ इसी पुराने ढाँचेके तैयार कराये और जल युद्धकी इस पुरानी रणनीतिमें कोई परिवर्तन या उन्नति नहीं की। इसीसे अंग्रेज़ोंकी तो बात दूर रही, सिद्दियोंसे भी सहज ही में हार जाते थे।

शिवाजीके नाविक और नौ-सेनापति

शिवाजीका नौ-बल दो हिस्सोंमें बाँटा गया था। दरिया सारंग (मुसलमान) और मयानायक (हिन्दू) उपाधिधारी दो नौ-सेनापति (ऐडमिरल) इनके नेता थे। रत्नागिरि ज़िलेमें समुद्रके किनारेके गाँवोंमें भंडारी जातिके मछुवे खेतिहर बहुत रहते हैं। ये समुद्रमें रहनेमें, जहाज़ चलानेमें और समुद्री लड़ाई लड़नेमें पुश्त-दर-पुश्तसे अभ्यस्त थे। पहले ये समुद्री डकैती करते थे। इनका शरीर पुष्ट, बलिष्ठ और कसरत करनेसे गठीला था। स्थल-युद्धमें जिस प्रकार मराठे और कुनबी-जाति बड़ी होशियार है, ठीक उसी प्रकार जल-युद्धमें ये लोग थे। इन भंडारी तथा दूसरी कई नीच हिन्दू जातियाँ—जैसे कोली, संघर, बघेर और आंग्रे (वंश)—से शिवाजीको बहुत अच्छे जल-सैनिक और नाविक मिले।

बादमें (सन् १६७७) में घरेलू झगड़ोंके कारण सिद्दी सम्बल और उसके भतीजे सिद्दी मिसरी इन दोनों हबशी सरदारोंने शिवाजीके अधीन नौकरी ली। उनके दूसरे

मुसलमान नौ-सेनापतिका नाम दौलत खां था, परन्तु जंजीरेके सिद्दियोंके जहाज़ मराठोंके जहाज़ोंकी अपेक्षा अधिक मज़बूत, सुरक्षित, अच्छी तोपों और चालाक सैनिकोंसे पूर्ण थे। इसीलिए लड़ाईमें सिद्दियोंकी ही जीत होती थी। मराठे अकसर अपने बहुतसे आदमियों और नावोंको खोकर भागते थे।

शिवाजीके अनेकों जहाज़ उनका तथा उनकी प्रजाका माल लेकर अरबके मोचा और फारसके बसरा इत्यादि बन्दरोंमें जा-जाकर विभिन्न देशोंसे व्यापार करने लगे। दक्षिणके आठ-दस बन्दरगाह उनके इन व्यापारी जहाज़ोंके केन्द्र और विश्राम स्थान थे। उनकी युद्धकी नावें, जब सम्भव होता, तब समुद्रमें वैरियोंके अरक्षित जहाज़ों और समुद्र-तटपर अन्यान्य राजाओंके बन्दरगाहोंको लूटती थीं। सूरतसे मक्केकी हजको जानेवाले बादशाही प्रजाके जहाज़ोंपर शिवाजीके जहाज़ अकसर आक्रमण करते थे, और कभी-कभी उन्हें पकड़ भी ले जाते थे। अन्तमें औरंगज़ेबने बहुत अधिक वेतन देकर इन सब जहाज़ोंकी रक्षा करने तथा पश्चिम समुद्रमें पहरा देकर शिवाजीकी जल शक्तिको दमन करनेका भार सिद्दियोंके ऊपर दिया।

जंजीराका विप्लव और सिद्दी क़ासिमका दंडा जीतना

शिवाजी जितने दिन जीवित रहे, प्राय: हरसाल जंजीरेके ऊपर चढ़ाई करते रहे। इस लगातार निष्फल चेष्टाका विस्तार पूर्वक वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। सन् १६६९-७० में उन्होंने ज़िदके साथ घमासान युद्ध करके सिद्दी-सरदार फतह खांको परेशान कर डाला। अन्न न मिलनेसे जंजीराका प्राय: पतन हो गया! ऐसी स्थितिमें भी सिद्दियोंके राजा आदिलशाहसे किसी प्रकारकी मददकी उम्मीद न थी, तब फतह खांने रुपये और जागीर लेकर यह द्वीप शिवाजीको दे देना स्वीकार कर लिया, परन्तु अन्य तीन सिद्दी-सरदारोंने उसको क़ैद करके जंजीरा और सिद्दियोंके जहाज़ोंका अधिकार अपने हाथमें ले लिया। मुग़ल बादशाहने सिद्दीको पुश्त-दरपुश्तके लिए 'याकूत खां' की पदवी और वार्षिक तीन लाख रुपये वेतन देकर अपना नौकर बना समुद्रमें पहरा देनेका काम उसे सौंपा। सिद्दी क़ासिम जंजीरेके और सिद्दी खैरियत स्थलभूमिके हाकिम नियत हुए, और सिद्दी सम्बल जहाज़ोंका नेता (ऐडमिरल, अमीर अल-बहर) हुआ।

सिद्दी क़ासिम बड़ा चतुर, साहसी और परिश्रमी आदमी था। उसने सुशासनमें और काम-काजमें सर्वदा तीखी नज़र रखी, लड़ाईके जहाज़ों और गोला-बारूदको बढ़ाया और बहुतेरे मराठे जहाज़ोंको पकड़-पकड़कर धन वसूला। अन्तमें सन् १६७१ की १० वीं फरवरीको, जब कि दंडा-दुर्गके मराठे सिपाही दिन-भर होली खेलकर मतवाले हो थके-माँदे रातको बेखबरीसे सो रहे थे, तब क़ासिम चुपचाप चालीस जहाज़ोंमें फ़ौज लेकर बिना आवाज़के दंडाके पास समुद्र-किनारेके घाट (क़िलेके दक्षिण तरफ) के ऊपर जा पहुँचा। दूसरी ओर सिद्दी खैरियतने पाँच सौ सेना साथ ले स्थलकी ओर दीवालके समीप (क़िलेके उत्तर और पूरबकी ओर) जाकर, बड़े बाजे-गाजेके साथ हल्ला मचा कर उस दीवालपर चढ़ाई करनेका बहाना किया। मराठी फौजके अधिकांश लोग इधर ही टूट पड़े। इसी मौकेपर क़ासिम बिना रोक-टोकके, घाटकी दीवालके ऊपर चढ़कर क़िलेमें घुस गया। उनके कुछ लोग मरे ज़रूर, परन्तु वहाँ मराठोंके जितने सिपाही थे, सब हारकर भाग गये। क़ासिम क़िलेके भीतर और भी आगे बढ़ा। इसी समय अकस्मात् क़िलेकी मेगज़ीनमें आग लग गई, जिससे मराठे क़िलेदार और दोनों पक्षके बहुतसे लोग जलकर खाक हो गये। इस आकस्मिक दुर्घटनाके मारे फौजके लोग स्तम्भित हो ठगे-से खड़े रहे। क़ासिम उसी समय चिल्ला उठा—"खासुसु, खासुसु (उसकी लड़ाईका नाद)! बहादुरो! घबड़ाओ मत। हम जिन्दा हैं। हमें कोई चोट नहीं लगी है।" उसके बाद उसका दल शत्रुओंको मारता-काटता आगे बढ़कर पूरबसे आये हुए खैरियतके दलके साथ जा मिला। इस प्रकार समूचे क़िलेपर कब्ज़ा करके मराठोंको ख़त्म कर दिया।

इधर शिवाजी रात-दिन जंजीरा लेनेकी चिन्तामें थे, उधर दंडा भी उनके हाथसे निकल गया! इस खबरने उनको बड़ी भारी चोट पहुँची। लोग कहते हैं कि रातको जिस समय दंडामें आग लग जानेसे बारूदका गोदाम उड़ गया था, उस समय शिवाजी चालीस मीलकी दूरीपर अपने गढ़में सो रहे थे, एकाएक उनकी नींद टूट गई। वे बोल उठे—"मन न जाने कैसा हो रहा है, दंडामें अवश्य कोई विपत्ति आ पड़ी है।"

इस विजयके उपरान्त क़ासिमने इस प्रदेशके और भी सात क़िले मराठोंके हाथसे छीन लिये, और हारे हुए लोगोंके ऊपर चरम सीमाका अत्याचार किया। शिवाजी और शम्भूजी दोनोंने अपने राजत्वके समय इस प्रदेशको पुन: जीतनेकी कोशिश की, लेकिन सफल न हुए।

शिवाजी और औरंगजेब दोनों ही एक दूसरेको जहाज़ोंके द्वारा एकबारगी हरा देनेके लिए, बम्बईके अंग्रेजोंकी सहायता प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे, परन्तु अंग्रेज़ अपनी वणिकोंके उपयुक्त शान्तिपर दृढ़ रहे। इस अवसरपर फ्रेंच कम्पनीने चुपचाप शिवाजीको ८० छोटी तोपें और दो हज़ार मन शीशा बेचकर मज़ेका नफा उठाया। डच लोगोंने शिवाजीसे प्रस्ताव किया—"आप फौज दें, हम जहाज़ देंगे और हम दोनों मिलकर बम्बईके ऊपर आक्रमण करके अंग्रेज़ोंको निकाल बाहर करेंगे। फिर उसके बाद दंडा छीनकर आपको देंगे।" परन्तु शिवाजीने इस बातपर ध्यान न दिया। उसके बाद कई वर्ष तक यह लड़ाई धीरे धीरे चलती रही। दोनों पक्ष अमानुषिक अत्याचार करते रहे।

शिवाजीका जल-युद्ध

सन् १६७४ के मार्चके महीनेमें सिद्दी सम्बलने सातवली नदीके मुहानेकी खाड़ीमें घुसकर शिवाजीके नौ-सेनापति दौलत खांपर आक्रमण किया, पर अन्तमें उसको हार मानकर लौटना पड़ा। इस लड़ाईमें दोनों पक्षके प्रधान सेनापति आहत हुए तथा १४४ आदमी मारे गये। सिद्दी सम्बल अन्यान्य हबशियोंके साथ झगड़ा करनेके कारण जल-सेनापतिके पदसे हटा दिया गया। अन्तमें वह (१६७७, नवम्बर-दिसम्बरमें) अपने जहाज़ और अपनी जातिका साथ छोड़कर अपने परिवार और अनुचर लेकर शिवाजीके अधीन नौकरी करने लगा।

खान्देरी द्वीपके लिए शिवाजीकी अंगरेज़ोंके साथ लड़ाई

जंजीरा-जयकी आशा छूट जानेपर शिवाजीने अपना एक जहाज़ी अड्डा स्थापित करनेकी इच्छासे आसपास ही एक दूसरा द्वीप ढूँढ़ निकाला। इसका नाम था खान्देरी। यह बम्बईसे ग्यारह मील दक्षिण और जंजीरासे ३० मील उत्तरमें था। सन् १६७६ के सितम्बर महीनेमें उनके डेढ़ सौ आदमियोंने चार तोपें लेकर मया नायकके अधीनस्थ जहाज़ोंपर जाकर इस छोटे निराले द्वीपपर कब्ज़ा कर लिया, और चटपट पत्थर और मिट्टीकी दीवाल खड़ीकर उसे चारों ओरसे घेर दिया। राजाने इस खर्चके लिए पाँच लाख रुपये मंजूर किये। इससे अंग्रेज़ोंको डर हुआ, क्योंकि बम्बईमें जो जहाज़ आते-जाते थे, वे सब खान्देरीसे मज़ेमें दिखाई देते थे, और वहांसे उनपर शीघ्रता और आसानीसे आक्रमण किये जा सकनेकी सम्भावना भी थी। यदि खान्देरी शत्रु द्वारा अभेद्य हो जायगी, तो इसके सहारे मराठोंके जंगी जहाज़ोंको समुद्रमें अंग्रेज़ोंके व्यापारी जहाज़ोंका नाश करना सहज हो जायगा।

इसलिए बम्बईमें रहनेवाली अंग्रेजी फौज और उनके लड़ाकू जहाज़ मराठोंको खान्देरीसे भगानेके लिए आये। १९ वीं सितम्बर सन् १६७९ को अंग्रेज़ों और मराठोंके बीच पहली लड़ाई हुई। अंग्रेज हारे। कारण, यह था कि सच पूछिये तो यह स्थल-युद्ध ही था। बड़े-बड़े अंग्रेज़ी जहाज़ किनारेसे बहुत दूर रुककर खान्देरीकी खाड़ीमें घुसनेमें हिचकिचाते थे, क्योंकि उस समय तक उस स्थानके पानीकी थाह नहीं ली गई थी। ऐसे समय प्रधान

सेनापतिकी आज्ञा न मानकर लेफ्टिनेन्ट फ्रान्सिस थार्पने सिपाहियोंसे लदे तोप-हीन केवल तीन छोटे शिवाड़ (माल लादनेवाले जहाज़) साथ ले, इस द्वीपमें उतरनेकी कोशिश की। किनारेसे उनके ऊपर गोली बरसने लगी। थार्प और दो अंग्रेज़ मारे गये, बहुतसे ज़ख़म हुए और बहुतसे किनारेपर उतरनेके बाद मराठोंके हाथ क़ैद हुए। थार्पके शिवाड़पर शत्रुओंने अधिकार कर लिया। अन्य दो शिवाड़ बाहर समुद्रमें भाग गये।

१८ वीं अक्टूबरको दूसरी बार जल-युद्ध हुआ। उस दिन सवेरे दौलत खांने ६० जंगी जहाज ले आक्रमण किया। अंग्रेज़ोंके केवल आठ जहाज़ थे। उनमेंसे 'रिवेंज' नामका फ्रिगेट और दो घुराब बड़े थे। बाक़ी सब छोटे थे। इन सबोंमें दो सौ अंग्रेज़ी सेना तथा देशी और गोरे मल्लाह थे। चौल दुर्गके कुछ उत्तर किनारेकी ओर अपने आश्रयसे बाहर निकलकर मराठे जहाज़ सामनेके हिस्सेसे तोप दागते हुए इतनी तेज़ीसे आगे बढ़े कि खान्देरीके बाहर अंग्रेज़ी जहाज़ोंको लंगर उठाकर भागनेका भी समय न मिला। आध घंटेके अन्दर ही अंग्रेज़ोंके 'डोभर' नामक घुराबमें मार्जेन्ट मले मारा गया और कईएक गोरोंने अत्यन्त कायरताके साथ आत्म-समर्पण कर दिया और जहाज़-सहित सब मराठोंके हाथ क़ैद हुए। * अन्य छै छोटे अंग्रेज़ी जहाज़ भी मारे डरके रणस्थलसे दूर ही रहे, परन्तु एक सिंह ही हज़ारों सियारोंको हरा सकता है। चारों ओर शत्रुओंके जहाज़ोंके बीच 'रिवेंज' फ्रिगेटने निर्भयतासे खड़े होकर तोपके गोलोंसे पाँच मराठे गलबट डुबा दिये, और अन्य दूसरोंकी भी ऐसी दशा कर डाली कि दौलत खां अपना जहाज़ ले नागोतनाको भाग गया। रिवेंज उसके पीछे-पीछे दौड़ा।

दो दिन बाद दौलत खां खाड़ीसे बाहर आया, परन्तु अंग्रेज़ी जहाज़को अपनी ओर आते देख पुनः लौटकर भागा। नवम्बरके अन्तमें सिद्दी क़ासिम ३४ जहाज़ ले अंग्रेज़ोंके साथ जा मिला, और दोनों दल खान्देरीके ऊपर रोज़ गोलाबारी करने लगे।

परन्तु इन सब लड़ाइयोंका खर्च और शिवाजीके राजमें अपना व्यापार बन्द होनेके डरसे अंग्रेज़ोंके मालिक डर गये। उनमें धन और जनकी कमी थी। गोरे सिपाहियोंके मरनेपर नये लोगोंका मिलना कठिन था, इसलिए उन लोगोंने शिवाजीको खूब मीठी चिट्ठी लिखकर निपटारा कर दिया। जनवरी महीनेमें अंग्रेज़ी जंगी जहाज खान्देरीकी खाड़ी छोड़ बम्बई लौट गये।

सिद्दीके साथ जल-युद्ध

परन्तु सिद्दी क़ासिमने खान्देरीके पास आन्देरी द्वीप पर कब्ज़ा कर लिया। वहाँ वह तोपें चढ़ा, दीवाल बाँध (१६८० की ८ वीं जनवरीको) खान्देरीके ऊपर गोले दागने लगा। दौलत खांने नागोतना खाड़ीसे जहाज़ोंके साथ आकर दो रात तक आन्देरीपर कब्ज़ा करनेकी वृथा चेष्टा की। २६ वीं जनवरीको उसने तीनों ओरसे आन्देरीपर आक्रमण किया। चार घंटे तक लड़ाई हुई। अन्तमें मराठे लोग हार खाकर चौलको लौटे। उनके चार घुराब और चार छोटे जहाज़ नष्ट हो गये। दो सौ सिपाही मरे, एक सौ घायल हुए और बहुतसे शत्रुके हाथमें क़ैद हुए। दौलत खांके पैरमें बड़ी भारी चोट आई। सिद्दीकी तरफ़ एक भी जहाज़का नुक़सान न हुआ, केवल चार आदमी मरे और सातको चोट लगी।

* शिवाजीने इनको सुरगढ़-क़िलेके अन्दर बन्द रखा। वहां ६ ठी नवम्बरको २० अंग्रेज फरासी और डच, २८ पोर्तुगाल अर्थात् फिरंगी और ६ खलासी क़ैद थे।

पिछले सात वर्षोंमें खादीकी प्रगति

श्री कन्हैयालाल

एक बार—शायद दो वर्ष पहलेकी बात है—किसीने गांधीजीसे पूछा था कि क्या आपको विश्वास है कि आपके न रहनेपर भी खादीका काम बढ़ता जायगा और लोग इसे अपनाये रहेंगे? गांधीजीने संक्षेपमें उत्तर देते हुए कहा था कि अब खादी केवल मेरे ही पागलपनकी चीज़ नहीं रह गई है; जब राजगोपालाचारी, राजेन्द्रप्रसाद, बल्लभभाई और जवाहरलाल उसमें लग गये हैं, तो मुझे उसके भविष्यके बारेमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है।' प्रश्नकर्ताकी शंका इस धारणापर स्थित है कि खादीमें वस्तुत: कोई उपयोगिता नहीं है। भारतवर्षकी आर्थिक समस्याको हल करनेके लिए खादीकी योजना उपयुक्त नहीं है। नैतिक और धार्मिक दृष्टिसे वह कुछ लोगोंके लिए लाभदायक हो सकती है। सादगी और ग़रीबीका चिह्न होनेके कारण अध्यात्मिक अभिरुचिके लोग उसे अवश्य ही अपनायेंगे। महात्मा गांधीकी तपस्या और शक्तिके कारण लोग अनायास ही उनकी ओर आकर्षित होते हैं, इसलिए जब तक वे इस संसारमें हैं, तब तक तो भावावेशके कारण लोग खादी पहनते रहेंगे और उसका प्रचार भी होता रहेगा, किन्तु जिस दिन वे न रहेंगे, उस दिन जनसाधारणमेंसे भावुकताका वह वेग कम हो जायगा और धीरे-धीरे जाता रहेगा। उस समय वे अपना कोई काम वास्तविकताकी उपेक्षा करते हुए न कर सकेंगे। चूँकि खादीमें कोई वास्तविक उपयोगिता नहीं है, इसलिए संसारकी कशमकशके सामने वह ठहर नहीं सकेगी। एक वाक्यके उस छोटे-से किन्तु सारगर्भित प्रश्नका उत्तर भी गांधीजीने अपने तरीकेके मुताबिक़ एक छोटेसे सारगर्भित वाक्यके द्वारा ही दिया। मुमकिन है कि कुछ लोगोंके लिए खादी अपने आध्यात्मिक स्वरूपके कारण ही आकर्षक होती हो, लेकिन उसका आर्थिक महत्व कम नहीं है, और इसी कारण राजगोपालाचारी, राजेन्द्रप्रसाद, वल्लभभाई और जवाहरलाल इतनी तल्लीनतासे उसमें लग गये हैं। उन्होंने उसके आर्थिक महत्वको समझ लिया है। जो लोग मेरी खातिरसे आध्यात्मिक भावावेशके कारण खादी पहनते होंगे, उनके भावोंमें मेरे बाद भले ही शिथिलता आ जाय, पर जिन लोगोंने खादीको उसकी आर्थिक उपयोगिताके कारण ही अपनाया है, वे तो उसे मेरे मना करनेपर भी अब नहीं छोड़ेंगे। गांधीजीके उस एक वाक्यके उत्तरका यही अर्थ है। इसमें निर्देश केवल इस बातका पाया जाता है कि गांधीजीके अलावा भी शिक्षित समाजके कुछ लोगोंने खादीके आर्थिक महत्वको समझ लिया है और उनकी अनुपस्थितिमें भी वे उसका प्रचार करते रहेंगे; लेकिन वास्तवमें खादी इससे भी आगे बढ़ चुकी है। गाँवोंके लाखों आदमियोंके घरोंके साथ उनके दिलोंपर भी उसने इतना कब्ज़ा कर लिया है कि वहाँ उसका स्थान बनाये रखनेके लिए अब किसी प्रचारककी आवश्यकता नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि खादीके कामको अब नेताओं अथवा प्रचारकोंकी आवश्यकता नहीं है। अभी इनकी बहुत आवश्यकता है और उनके सामने बहुत बड़ा क्षेत्र है। कहनेका अभिप्राय केवल यह है कि जहाँ-जहाँ खादी पहुँच चुकी, वहाँ-वहाँ वह अब अपनी वास्तविक उपयोगिताके बलपर ही स्थित रहेगी। जिन लोगोंके हितके लिए उसकी योजना की गई है, उन लोगोंने तो आरम्भसे ही उसके महत्वको समझ लिया और तबसे वे बराबर लाभ उठा रहे हैं।

साधन और विस्तार

खादीका नाम तो कांग्रेसके भीतर सन् १९२० से ही लिया जा रहा है। लेकिन नियमित रूपसे यह काम कोकोनाडा-कांग्रेसमें अखिल भारतीय खद्दर-बोर्डकी स्थापना

होनेके बाद सन् १९२४ से ही शुरू हुआ। सन् १९२५ के सितम्बर महीनेमें चरखा-संघकी स्थापना होनेपर बोर्डका अन्त हो गया और उसका काम संघने ले लिया।

सन् १९२४ से आज तक भिन्न-भिन्न वर्षोंमें संघकी जितनी पूँजी खादीके काममें लगी रही है, वह इस प्रकार है—

सन्	पूँजी—रुपयोंमें
१९२४	७,८९,९५७।≋)
१९२४-२५	९,७६,४३७=)
१९२५-२६	१५,११,१३१॥=)।
१९२६-२७	१९,५४,३७७)॥।२
१९२७-२८	२१,७१,६३५।॥≋)।
१९२८-२९	२२,८२,३७७॥=)।१/२
१९२९-३०	२७,२५,८६१≡)

इस स्थानपर और इस लेखमें सर्वत्र ही सन् १९२४ का अर्थ है उस सालके सितम्बर तकका महीना। अन्य वर्ष अक्टूबरसे आरम्भ होकर सितम्बरमें समाप्त होते हैं।

भिन्न-भिन्न वर्षोंमें खादीकी उत्पत्ति और बिक्रीके केन्द्रोंका संगठन करनेमें लगे हुए कार्यकर्ताओंकी संख्या इस प्रकार थी—

	१९२६-२७	१९२७-२८	१९२८-२९	१९२९-३०
(१) चरखा-संघमें	४३५	५११	६६३	...
(२) संघसे सहायता-प्राप्त संस्थाओंमें	२९३	२४७	...	...
(३) स्वतंत्ररूपसे खादीका काम करनेवाली संस्थाओंमें	२०	...	...	...
जोड़	७४८	७५८	६६३	

पहलेके वर्षोंके कार्यकर्ताओंकी संख्या प्राप्य नहीं है। इसके अतिरिक्त १९२७-२८ के स्वतंत्र संस्थाओंकी तथा १९२८-२९ के संघसे सहायता-प्राप्त और स्वतंत्र दोनों ही प्रकारकी संस्थाओंके कार्यकर्ताओंकी संख्या प्राप्य नहीं है। रिपोर्टोंमें लिखा है कि कुल कार्यकर्ताओंकी संख्या सन् १९२७-२८ में लगभग १००० और १९२८-२९ में हज़ारसे कुछ ऊपर थी। सन् १९२९-३० के रिपोर्टमें भी कार्यकर्ताओंकी संख्या नहीं दी हुई है, जैसा कि आगे चलकर प्रकट होगा। इस वर्ष खादीकी उत्पत्ति और बिक्री पिछले वर्षकी अपेक्षा बहुत अधिक हुई है। साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलनकी तेज़ीके कारण कार्यकर्ताओंका जेलोंमें जाना भी बहुत ज़ोरोंपर था, इसलिए जब तक संघकी ओरसे हिसाब लगाकर न बतलाया जाय, तब तक अनुमानसे यह कह सकना कठिन है कि इस वर्ष कार्यकर्ताओंकी संख्या भी बढ़ गई थी या पिछले वर्षके बराबर अथवा उनसे भी कम कार्य-कर्ताओंने ही इस सारे कामको सम्हाला था। एक बात और है। ऊपर केवल तीन प्रकारकी संस्थाओंके द्वारा खादीका काम करनेवाले कार्यकर्ताओंकी संख्या दी गई है, लेकिन इनके सिवा कुछ लोग खानगी तौरपर भी केवल व्यवसायकी दृष्टिसे यह काम कर रहे हैं। उनकी तादादका कोई हिसाब नहीं लगाया जा सका है।

भिन्न-भिन्न वर्षोंमें खादीका काम कितने गाँवोंमें फैलाया जा सकता था, और खादीकी उत्पत्ति तथा बिक्रीके कितने केन्द्र थे यह नीचेकी तालिकासे प्रकट होगा—

सन्	कितने गाँवोंमें काम हुआ	उत्पत्ति-केन्द्र	बिक्रीकी दूकानें
१९२६-२७	२८३१	१७७	२०४
१९२७-२८	२६५५	१३८	१७२
१९२८-२९	३९९७	१७६	२०८
१९२९-३०	६४९८	३५९	२४१

पहले वर्षोंके अंक प्राप्य नहीं हैं। ऊपर जो अंक दिये गये हैं, उनमें भी उन लोगोंका कार्यक्षेत्र शामिल नहीं है, जो खानगी तौरपर व्यवसायके रूपमें खादीका काम कर रहे हैं। इसके अलावा बहुतसे स्थानोंपर खादीका काम करनेवाली वर्तमान संस्थाओंके जन्मके पहलेसे ही पुरानी परम्पराके अनुसार हाथकी कताई-बुनाईका काम चलता आ

पत्र-लेखक

चित्रकार—श्री वीरेश्वर सेन

रहा है। उसके विस्तारका भी ऊपरके अंकोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

उत्पत्ति, बिक्री, दाम और बनावट

खादी-कार्यके महत्त्व और उसके विस्तृत क्षेत्रको देखते हुए इसमें लगी हुई पूँजी तथा सफलताके लिए अन्य आवश्यक साधन बहुत कम तो हैं ही, साथ ही उसके मार्गमें अनेक प्रकारकी बाधाएँ भी आती रही हैं। समाजकी और विशेषकर शिक्षित समाजकी मनोवृत्ति कुछ ऐसी रही है कि इसमें परिवर्तन हुए बगैर उनके बीच खादीका प्रवेश होना असम्भव था। राजनैतिक दृष्टिसे खादीको अपनानेवालोंके मनमें भी उसकी आर्थिक उपयोगिताके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी भ्रान्तियाँ थीं। देशी और विदेशी मिलोंने भी खादीका प्रचार बढ़ते देखकर अपना मोटा कपड़ा खादीकी तरहका बनाकर उसे खादी कहकर बेचना शुरू किया। इससे भी शुद्ध खादीके प्रसारमें बाधा पड़ी। इन सबके अतिरिक्त हमारे देशकी विदेशी सरकार तो खादीके मार्गमें एक बड़ी बाधा रही ही है। खादीका काम करनेवालोंका एक पैर हमेशा जेलमें रहा है, और इस कारण वे निश्चिन्त होकर इस काममें बहुत कम समयके लिए लग सके हैं। फिर भी पिछले सात वर्षोंमें खादीके कामकी बहुत अधिक प्रगति हुई है। भिन्न-भिन्न वर्षोंमें खादीकी उत्पत्ति और बिक्री नीचे लिखे अनुसार हुई है :—

सन्	उत्पत्ति (रुपया)	बिक्री (रुपया)
१६२४	६४६३४८)	१६१६४११)
१६२४-२५	१६०३०३४)	३३६१०६१)
१६२५-२६	२३७६६७०)	२८६६१४३)
१६२६-२७	२४०६३७०)	३२८८७६४)
१६२७-२८	२४१६३८२)	३३०८६३४)
१६२७-२६	३१५५४८७)	३६४३०७७)
१६२६-३०	५३००८१६)	६३४४५५३)

पिछले दो वर्षोंसे खादीकी उत्पत्तिका हिसाब वज़न और लम्बाईकी दृष्टिसे भी रखा जाने लगा है, और वह इस प्रकार है :—

सन्	वज़न (पौण्ड)	लम्बाई (वर्गगज़)
१६२८-२६	२१०२७६५)	६२६१८१६)
१६२६-३०	३६६४६७५)	११२६२५११)

उत्पत्ति और बिक्रीकी सात वर्षोंवाली तालिकाके अंकोंसे खादीकी बिक्रीमें उत्तरोत्तर वृद्धिका जो क्रम प्रकट होता है, वास्तवमें उससे कहीं अधिक वृद्धि हुई है। सन् १६२४ से १६२७-२८ तक प्रतिवर्ष खादीकी बिक्री जितने रुपयोंकी बतलाई गई है, उसमें कुछ गलतियाँ हैं। पहननेवालोंके पास पहुँचनेके पहले खादीकी थोक बिक्री यदि एकसे अधिक बार हुई है, तो आरम्भके दो वर्षोंमें अर्थात् सन् १६२४ और १६२४-२५ में वह उतने ही बार जोड़ी गई है। १६२५-२६ से १६२७-२८ तकके तीन वर्षोंके हिसाबमें इस प्रकारकी दुहरावट केवल दो प्रान्तोंके बीच होनेवाली बिक्रियोंमें है। एक ही प्रान्तमें होनेवाली बिक्रीकी रकममें कोई गलती नहीं है। और १६२८-२६ तथा १६२६-३० का हिसाब हर तरहसे ठीक है। इस प्रकार आरम्भके वर्षोंमें दुहरावट अधिक है और बादके वर्षोंमें धीरे-धीरे वह कम होती गई है, और अन्तके दो वर्षोंका हिसाब बिलकुल ठीक है। इससे स्पष्ट है कि आरम्भके वर्षोंका हिसाब भी यदि बिलकुल ठीक-ठीक मिल सके, तो मालूम होगा कि खादीकी बिक्रीमें वास्तविक उत्तरोत्तर वृद्धिका क्रम और अनुपात उससे कहीं अधिक है, जो इन थोड़े बहुत गलत अंकोंसे ज़ाहिर होता है।

यह तो बिक्रीके सम्बन्धमें हुआ। खादीकी उत्पत्ति भी उत्तरोत्तर उससे कहीं ज्यादा होती गई है, जितना कि ऊपर दिए हुए अंकोंसे प्रकट होता है; क्योंकि खादीकी उत्पत्तिका हिसाब तो वहाँपर रुपयोंमें दिया गया है, लेकिन प्रतिवर्ष खादीका दाम सस्ता होता गया है, और उसकी बनावटमें भी बहुत सुधार होता गया है।

खादीके दाममें धीरे-धीरे किस प्रकार कमी आती गई, यह सभी खादी पहननेवाले भली भाँति जानते हैं। रिपोर्टोंमें उसका सिलसिलेवार ब्योरा भी मिलता है, किन्तु विस्तारके भयसे उसका उद्धरण यहाँ नहीं दिया जा सकता। खादीकी बनावटकी उन्नति भी प्रत्यक्ष है। आरम्भमें खादी केवल वही लोग पहन सकते थे, जिन्हें उसके लिए उत्साह हो, पर अब तो इतने तरहकी खादी बनने लग गई है कि हर तरहकी रुचिके लोग सन्तुष्ट हो सकते हैं। कपड़ा अधिक बारीक और साफ़ बुनावटका तैयार होने लगा है। खादी-केन्द्रोंमें सम्बद्ध रंगाई और छपाईके कारखाने भी खुल गये हैं, और बारीक खादीपर गोट-पट्टे और कसीदेका काम भी होने लग गया है। रिपोर्टों और खादी-गाइडोंमें इसका पूरा-पूरा वर्णन मिलता है, लेकिन विस्तार-भयसे यहाँ उसका अधिक ब्योरा नहीं दिया जा सकता।

ऊपरका ब्योरा केवल चरखा-संघका है। देशी रियासत भी खादीके काममें योग देने लगी हैं।

मैसूरकी सरकारने इस ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया है। सन् १९२६-२७ में चरखा-संघसे एक विशेषज्ञकी सहायता लेते हुए यहाँकी सरकारने बदनवालमें खादीका काम शुरू कराया। उसके लिए पूँजी देनेके अलावा घाटेकी रक़मको पूरा करनेके लिए भी कुछ रुपया सरकारी ख़ज़ानेसे मंजूर किया गया था, पर घाटा हुआ ही नहीं। बदनवालके केन्द्रमें खादीके प्रयोगकी सफलताको देखते हुए एक सरकारी कमेटीने यह सिफ़ारिश की कि इसी लाइनपर सभी ज़िलोंमें खादीके केन्द्र खोले जायँ। यहाँके उद्योग-विभागके डाइरेक्टर इस काममें बहुत दिलचस्पी लेते हैं। नये-नये तरहके चरखे बनवाये जा रहे हैं, और एक ऐसी धुनकी भी तैयार की गई है, जिससे धुनी हुई रुईसे बहुत अच्छी पूनी बन सके। मैसूरके अलावा बड़ोदाकी सरकारने चरखा-संघसे कहकर बढ़ियालमें एक खादीका केन्द्र खुलवाया और उसके लिए पाँच हज़ार रुपयेकी पूँजी तथा दीगर ख़र्चके लिए बारह सौ रुपये दिये। रियासत सावन्तवाड़ीके कामलेर नामक स्थानमें खादीका काम शुरू होनेपर राज्यकी ओरसे सहायता दी गई, और बादको उसका आधा ख़र्च भी राज्यकी ओरसे दिया जाता रहा। सावन्तवाड़ी और ग्वालियरके कुछ स्कूलोंमें हाथकी कताईकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया गया था। जब गांधीजी दक्षिण-भारतका दौरा कर रहे थे, तब सावन्तवाड़ी और कोचीनके राज-परिवारोंकी ओरसे उन्हें दानकी रक़में भी मिली थीं। काश्मीरकी सरकार भी चरखा-संघकी श्रीनगरकी शाखाको कुछ आर्थिक सहायता पहुँचानेकी बात सोच रही है।

परवरिश

खादीका महत्व केवल इस बातमें नहीं है कि वह हिन्दोस्तानकी कपड़ेकी ज़रूरियातको पूरी करे और हर प्रकारकी रुचिके लोगोंके लिए तरह-तरहके कपड़े तैयार कर दे। इसकी भी बहुत ज़रूरत है, और हमने देखा कि खादीके द्वारा उसकी पूर्ति हो रही है, पर खादीका इससे भी अधिक महत्व तो इस बातमें है कि वह भारतवर्षके लाखों भूखों मरनेवालोंके लिए उनकी रोज़ीका सहारा हो सकती है। अब इस बातका हिसाब रखनेकी कोशिश की जा रही है कि खादी-केन्द्रोंके द्वारा कितने धुनने-कातने और बुननेवालोंकी परवरिश हो रही है। कुछ वर्षोंके सम्बन्धमें जो अंक प्राप्त हैं, वे नीचे दिये जाते हैं :—

सन्	कातनेवाले	बुननेवाले	धुननेवाले
१९२५-२६	४२९५९	३४०७	११०
१९२६-२७	८३३३९	५१९३	६२७
१९२७-२८	९७७००	४९४४	७०३
१९२८-२९	१०९६३३	७८७६	...
१९२९-३०	१३९९६९	११४२६	१००६

धुननेवालोंकी संख्या सन् १९२८-२९ के सम्बन्धमें प्राप्य नहीं है और सन् १९२९-३० के सम्बन्धमें दिया हुआ अंक केवल आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र और राजस्थान

इन चार प्रान्तोंका ही है। शेष प्रान्तोंके अंक प्राप्य नहीं थे। इसके अतिरिक्त इस बातकी कोशिश की जाती है कि धुननेका काम कातनेवाले स्वयं कर लिया करें। कातने और बुननेवालोंके सम्बन्धमें भी जो अंक दिये गये हैं, वे पूर्ण नहीं हैं। वास्तवमें खादी-केन्द्रोंके द्वारा जितने कातने और बुननेवालोंकी परवरिश हो रही है, उनकी संख्या ऊपरके दिये हुए अंकोंसे कहीं अधिक है। इनकी मजदूरीकी शरहके सम्बन्धमें नीचे हम तामिल प्रान्तके तिरुचंगोड़ गांधी आश्रमकी सन् १९२६-२७ की मजदूरीका हिसाब देते हैं। बहुत कम हेर-फेरके साथ और स्थानोंके सम्बन्धमें भी यह लागू होता है।

कताईकी मजदूरी

गाँवका नाम	कातनेवालेका नाम	३ मासकी मजदूरी	१ मासका औसत मजदूरी
नालीपलायम	पवाई	१२॥-)	४≤)
पुदुपलायम	करुप्पाई	१२॥≡)	४)॥
माचमपलायम	पवालक्का	६॥≤)	३≡)।
कारुक्कमपलायम	कुत्तीयक्का	८॥-)	१॥≤)
पेरुमकुरीची	अंगाई	६॥≤)	२≡)॥
सम्बमपलायम	पेरुमई	६॥≤)	३≤)॥

बुनाईकी मजदूरी

गाँवका नाम	बुननेवालेका नाम	३ मासकी मजदूरी	१ मासकी औसत मजदूरी
चित्तावन्दर	पलानीअप्पामुदाली	६७॥≥)	२२॥)॥।
वालनीकमपलायम	नागामुतु मुदाली	१००॥-)॥	३३॥≈)
नादान दाई	मुत्तुसामी मुदाली	१११≡)	३७-)
मनाथी	नेलम्मा मुदाली	६३॥-)	२१≤)
कालियप्पानूर	वादीवेला मुदाली	२५०॥)	८३॥)

कताईकी एक महीनेकी मजदूरी कम-से-कम १।≤) और अधिकसे अधिक ६।-) तक गई है। इसी प्रकार बुनाईकी एक महीनेकी मजदूरी कम-से कम १३≈) और अधिकसे अधिक १०४॥-) तक रही है। बिहार प्रान्तके उसी वर्षकी रिपोर्टमें एक केन्द्रके धुनने, कातने और बुननेवालोंकी एक महीनेकी ज्यादासे ज्यादा मजदूरी इस प्रकार बतलाई गई है—

धुननेवालोंकी	...	१२)
कातनेवालोंकी	...	६।)
बुननेवालोंकी	...	४६॥≥)

औसत मजदूरीका हिसाब उस रिपोर्टमें नहीं दिया गया है, लेकिन इन अंकोंको देखते हुए इतना अनुमान किया जा सकता है कि यहांका औसत भी तामिल प्रान्तके ही समान है।

कताईकी मजदूरीके सम्बन्धमें कुछ लोगोंका यह ऐतराज है कि वह बहुत कम होती है, उतनेसे किसीकी गुजर नहीं हो सकती, किन्तु इस तरहका एतराज करनेवाले यह भूल जाते हैं कि कताईका काम किसी भी वर्गके मनुष्योंके लिए मुख्य पेशेके रूपमें नहीं पेश किया गया है। वह एक सहायक पेशेके रूपमें उस वक्तका सदुपयोग करनेके लिए रखा गया है, जिस वक्त दूसरा कोई भी काम न हो। ऐसी अवस्थामें कताईसे मिलनेवाली मजदूरी अगर एक पैसा हो, तो भी बहुत है, क्योंकि वह उस वक्तका दाम है, जब कोई दूसरा काम करनेको था ही नहीं। लेकिन क्या बचे हुए वक्तमें भी सूत कातकर कमानेसे जितना मिलता है, वह बहुत कम होता है? हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि, भारतवासियोंकी औसत रोजाना आमदनी है एक आना सात पाई, अर्थात् तीन रुपया महीना। इस प्रकार मुख्य पेशेकी आमदनीकी तुलनामें भी कताईकी आमदनी एक अच्छी रकम ही साबित होती है। तामिल प्रान्तके कुछ खादी-केन्द्रोंमें इस बातका हिसाब लगाया गया है कि सहायक पेशेके रूपमें कताईका काम अख्तियार करनेवालोंको कताईसे जो मजदूरी मिलती है, वह उनके मुख्य पेशेके आमदनीका कौनसा अंश होती है। नीचेकी तालिकामें यह बात इस प्रकार दिखलाई गई है—

१ गाँवका नाम

२ कितने चरखे चलते हैं ?

३ कताईसे वार्षिक आय (रुपयोंमें)

४ कताईका काम करनेवाले परिवारोंकी मुख्य पेशेसे वार्षिक आय (रुपयोंमें)

५ कताईकी आय मुख्य पेशेकी आयका कितने प्रतिशत है ?

१	२	३	४	५
पुदुपलायम-केन्द्र—				
१ उत्तुपलायम	२५	४६०	३३६०	१३ प्रतिशत
२ मेम्बमपलायम	२६	४५०	३०६५	१५ „
३ पुलियमपट्टी	२०	३४६	२६५०	१३ „
४ चिथालन्दुर	२५	३७५	२१५०	१७½ „
५ पुदुपलायम	२५	३३६	२३६८	१४ „
कानूर-केन्द्र —				
६ कोमारापलायम	६०	१३६८	६००६	१५⅓ „
७ चेलमपलायम	१८	२४२	२१६०	११ „
उत्तुकुली-केन्द्र —				
८ वेलमपलायम	२५	४०१	१४००	२८⅓ „
९ पापमपलायम	६८	१२०५	५२२०	२३ „
१० सेम्बमपलायम	१४	३७२	२६५२	१४ „

इन अकोंसे यह बात स्पष्ट है कि फुरसतके वक्त कताईका काम करनेवालोंको उनके मुख्य पेशेकी आमदनीका ११ से लेकर २८⅓ प्रतिशत तक कताईकी मज़दूरीसे मिल जाता है, लेकिन यह गाँव-भरका औसत है। यदि व्यक्तियों और परिवारोंका अलग-अलग हिसाब लगाया जाय, तो मालूम होगा कि उन्हें अपनी मुख्य आमदनीका पचास-साठ प्रतिशत तक कताईकी मज़दूरीसे मिलता है।

वस्त्र-स्वावलम्बन और अन्य लाभ

यहाँ तक तो मुख्य रूपसे खादीके व्यावसायिक अंककी प्रगतिकी ही विवेचना की गई है। लेकिन खादीके कार्यक्रममें सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान गाँवोंकी वस्त्र-स्वावलम्बन सम्बन्धी योजनाको प्राप्त है। खादीके कार्यक्रमका एक बहुत ही महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि गाँवोंके रहनेवाले अपनी वस्त्र-सम्बन्धी आवश्यकताओंको स्वयं पूरा कर लें—न तो वे मिलका कपड़ा खरीदें और न उन्हें खादी ही खरीदनी पड़े। वे अपने खेतमें अनाजकी तरह कपास पैदा कर लें और फुरसतके वक्तमें ओटने धुनने और कातनेका काम करके गाँवके ही जुलाहेको मज़दूरी देकर वहीं कपड़ा तैयार करा लें। यहाँके किसानोंको खेतीका काम करते हुए भी इतना अधिक वक्त बच रहता है कि उस समय वे बड़ी आसानीसे यह सब काम कर सकते हैं। जो वक्त महज़ बेकारीमें बीतता है उसके बदले उन्हें कपड़ा मिल जायगा, केवल जुलाहेकी मज़दूरी देनी पड़ेगी ; इसके अतिरिक्त उनका जितना रुपया आजकल कपड़ेपर खर्च होता है वह सब बच जायगा।

गाँवोंके लोगोंके लिए वस्त्र-स्वावलम्बनकी इस योजनाको सामने रखकर खादीका जो काम शुरू किया जायगा, उसका प्रत्यक्ष फल उतनी जल्दी दिखाई नहीं दे सकता, जितनी कि व्यावसायिक दृष्टिसे होनेवाले कामका। फिर भी यह काम वास्तविक महत्त्व और अधिक गहराईका होगा। इसके लिए ऐसे एकनिष्ठ और धैर्यशाली कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है—जिन्होंने इस कामको ही अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया हो और जिन्हें इसमें रस मिलता हो। स्वभावसे ही इस प्रकारका काम उतने विस्तृत रूपसे नहीं चलाया जा सका, जितना कि खादीका व्यावसायिक काम। फिर भी जहाँ-जहाँ वह शुरू किया गया, वहाँ-वहाँ काफ़ी सफलता मिली है। इन स्थानोंमें राजस्थानमें बिजौलिया और रींगस, गुजरातमें बारदोली, वेडची, महुआ और व्यारा तथा तामिल प्रान्तमें कनाऊर विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। बिजौलियाका काम श्री जेठालाल गोविन्दजीने सन् १९२५-२६ में शुरू किया था। सन् १९२८-२९ में वहाँके साढ़े छः हज़ार आदमी कपड़ेके सम्बन्धमें पूर्णतया स्वावलम्बी हो गये। उनमें इतना उत्साह आ गया कि वे रंगीन खादी भी स्वयं तैयार करने लगे और शादी-ब्याहके अवसरपर भी बाज़ारसे कपड़ा नहीं

खरीदते। बिजौलियाकी सफलताको देखकर रींगसमें काम शुरू किया गया, और दो ही वर्षोंमें वहाँ २६५६ आदमी पूर्ण स्वावलम्बी हो गये। उनके अलावा ६७१ और आदमी भी अपना थोड़ा-बहुत कपड़ा तैयार कर लेते थे। बारदोलीके स्वराज्य-आश्रम-संघके द्वारा बारदोली तथा अन्य तालुकोंमें काम हो रहा है। सन् १६२८-२६ में रानीपरज लोगोंके ४०६ परिवार पूर्ण स्वावलम्बी हो चुके थे। स्वराज्य-आश्रम-संघका काम सन् १६२८-२६ में २६४ गाँवोंमें फैला हुआ था, और वहाँ ४३५६ चरखे चल रहे थे। तामिल प्रान्तके कनाऊर नामक स्थानमें भी इस कामको अच्छी सफलता मिली है।

नीचे लिखे स्थानोंपर भी इस प्रकारका काम चलाया गया है :—आन्ध्रमें सीतानगरम तिरुपाती और गुरावेरेदाप लायम; तामिलप्रान्तमें तिरुपुर और कासीपालायम; बिहारमें मधुबनी; काठियावाड़में अमरेली और पचतालाब; महाराष्ट्रमें मुकाती, हातेद और कामलेर; बंगालके तीन और उत्कलके दो ज़िलोंके कुछ गाँवोंमें (राष्ट्रीय संघके द्वारा) और मध्यप्रान्तमें अनन्तपुर।

खादीका काम गाँवोंमें जहाँ कहीं भी शुरू किया जाता है, वहाँ ग्राम संगठन और शिक्षा-सम्बन्धी अन्य काम शुरू हो ही जाते हैं। सभी स्थानोंके कार्यकर्ताओंका अनुभव है कि जिन स्थानोंपर खादीका काम होता है, वहाँके लोगोंसे शराब, गांजा, भाँग आदिकी आदतें छूटने लगती हैं, और मुक़दमेबाज़ी भी बहुत हदतक कम हो जाती है। गाँववालोंके लिए खादी नवयुग और समृद्धिका एक प्रतीक है। इसके द्वारा गाँववालोंके जीवन और मनोवृत्तिमें किस प्रकारका सुखमय परिवर्तन हो जाता है, यह तो किसी खादी-केन्द्रको देखकर ही जाना जा सकता है।

ऊपरके विवेचनसे यह बात स्पष्ट है कि जो लोग यह समझे बैठे हैं कि खादीकी उन्नति केवल गांधीजीकी वजहसे हो रही है, वे बड़ी ग़लतीपर हैं। गांधीजीकी महत्ता इसमें नहीं है कि उन्होंने एक अनाप-शनाप बात कह दी और लोगोंने उनकी भक्तिके कारण उसे अपना लिया। गांधीजीकी वास्तविक महत्ता तो इसमें है कि उन्होंने भारतवर्षके आर्थिक पुनर्संगठनकी समस्या और ग़रीबोंके दर्दको ठीक-ठीक समझकर उसकी अचूक औषधि बतला दी है। हिन्दोस्तानके लाखों ग़रीबोंने चरखेको गांधीजीके कारण नहीं स्वीकार किया है, बल्कि गांधीजीने ही चरखेको ग़रीबोंके कारण स्वीकार किया है।

ग्राम-गीत

श्री श्रीराम शर्मा, बी० ए०

इन पंक्तियोंका लेखक न तो काव्य-मर्मज्ञ ही है और न कवि ही; पर काव्यमें उसकी हृत्तंत्रीके तार बजने लगते हैं, हृदय वीणामें एक ऐसी चोट लगती है कि उसकी प्रतिक्रिया कभी-कभी तो अश्रुपात कर देती है। कविताका स्रोत हृदय ही तो है, फिर हृदयकी बातके लिए नियम और उपनियम क्या? पिंगलका सहारा हो चाहे न हो, हृदयका तूफ़ान इतना भयंकर और प्रलयकारी हो सकता है कि वह बुद्धिके किनारोंको भी बहा दे, और अपने बहावमें—उत्ताल तरंगोंमें विश्वको डुबा दे। कालिदास, गेटे, होमर, सूर, कबीर और तुलसीके काव्य ऐसे ही तूफ़ान तो थे, पर तूफ़ान महासागरोंमें भी आता है और छोटी-छोटी नदियोंमें भी। दोनोंकी दिशा एक है, क्षेत्र और गतिका भेद है।

गाँववाले भी—वे अशिक्षित भोलेभाले लोग भी, जिन्होंने

कालिदास और सूरदासका नाम तक नहीं सुना—कविता करते हैं। उनके हृदयोंमें भी तरंगें उठती हैं और फलस्वरूप ग्राम-गीतोंका जन्म होता है। समुद्र-मन्थनसे अमृत और रत्न मिलते हैं। विष भी मिलता है। छोटी पोखरमें सीप मिलते हे। कोई मादक वस्तु भी मिले, पर हलाहल विष न मिलेगा। ग्राम-काव्यको मैं इसी दृष्टिसे देखता हूँ। ग्राम-काव्यके सम्मुख मैं सूर, तुलसी और कालिदासकी रचनाको तुच्छ नहीं कह सकता। वे तो अतुलनीय हैं। मैं केवल एक बात कहता हूँ, वह यह कि ग्राम-काव्य काव्यकी कसौटीपर चोखा उतरता है। उसमें पिंगल न सही, बिना पिंगलके भी काव्य हो सकता है।

× × ×

गत होलीके उत्सवपर मैं गाँवमें बीमार पड़ा था। एक कुम्हारने आकर कहा—"लला, डुकरिया मरी जाति है; नैक चलिकें देखि लेउ।"

"मैं खुद बीमार हूँ। २७ २८ लघनके बाद आज ही पथ्य लिया है। दवा न दूँगा। चल नहीं सकता।"—मैंने दुखी होकर कहा।

बुड्ढेने आँखें नीचे कर लीं, और कहा—"तौ अब हूँ कौ आँउ?"

कितनी गहरी मार थी। उस बुड्ढेके लिए मैं ही सब कुछ रह गया था। सौ गज ही जाना था। लाठीके सहारे गया। बुढ़ियाको देखकर बाहर चबूतरेपर बैठ गया। पासके मकानपर गाँवकी एक मंडली गा रही थी। गीत यह था:—

"जीमनु नाँईं कछू कछु ऐ रे।
कोई मति करौ गुमानु जगतमें, जीमनु नाँईं कछू कछु ऐ रे।
जैसें मोती परे ओसकौ, बियार परें ढुरि जाइगौ रे। जीमनु०
जौनूँ तेल रहै दीपकमें तौजू बाती अमर है रे। जीमनु०
जौनूँ आम रहे अमडरियाँ तौजू सुआ बिरमि रहि रे। जीमनु०"

यह गीत 'अनरा' अथवा 'शोक' का गीत है। ब्रजमें यह रीति है कि गाँवमें होली तब तक नहीं गाई जाती, जब तक सब मिलकर अनरा न उठा लें, अर्थात् उनके दरवाज़ोंपर जाकर न गा लें, जिनके यहाँ पिछली होलीसे वर्तमान होली तक किसीका देहावसान हो गया हो। अनराके गीत वैराग्य-भावको लिये होते हैं। स्त्री और पुरुषके लिए कुछ गीत तो एकसे होते हैं और कुछ भिन्न। गीत कितना सारगर्भित है। गाँववालोंके लिए यदि गीताका दूसरा अध्याय नहीं है, यदि—

"वासांसि जीर्णानि, यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानिनन्यानि संयाति नवानि देही॥"

की फ़िलासफ़ी नहीं है, तो जीवनकी 'ओसके मोती' से तुलना कितनी मनोहर और सुन्दर है। जीवन ओसके मोतीके समान है। मोती नहीं, केवल देखनेमें मोती है, जो वायुके झकोरेमें गिर जायगा। अनराका एक दूसरा गीत देखिये:—

"चौं बैठे बदन मलीन, उदासी मन अपनेमें मति करौ।
आयो है सो जायगौ, राजा रंक फकीर॥ उदासी०
होनहार सो है गई, अनहोनी नहिं होइ॥ उदासी०
लिखिया ओ सो लिखि गयौ, मिटवैया कोई नाँइ। उदासी०"

'होनहार सो है गई' में 'गतासून गतासूश्च' का भाव कैसा छिपा है। सीधी-सादी भाषामें कैसा अच्छा उपदेश है। 'भाग्यमें जो बदा है वही होगा' का कैसा अच्छा मनोविज्ञान है। 'लिखिया ओ सो लिखि गयो मिटवैया कोई नाँइ' की तुलना 'करम रेख ना मिटै, करो कोई लाखन चतुराई' से कीजिये।

अनरा सुननेके उपरान्त मैंने सोचा कि गाँववालोंके कुछ और गीतोंका भी संग्रह करके देखूँ, जिससे ब्रजमंडलमें प्रचलित ग्राम-गीतोंका संकलन हो सके। अपने गाँवसे ही मैंने बहुतसे गीत संग्रह किये हैं। उनकी बानगी नीचे दी जाती है। पाठकगण इन गीतोंको ब्रजमंडलके सर्वश्रेष्ठ गीत न समझें। परिश्रम करने और ब्रजकी यात्रासे ब्रज-ग्राम-गीतकी लड़ीमें अनेक सुन्दर मणि पिरोये जा सकेंगे।

गाँववालोंने राधाकी छबिका वर्णन एक गीतमें इस प्रकार किया है:—

"कन्हैया फूल गुलाब। राधे रंगा भरी।
पानतैं पतरी हल्दतैं पियरी, मौं पतरौ सुत डार।
पैरें नथ बुलरी। कन्हैया०
सालू सरत रेममी लहँगा, बिंदिया दियें लिलार।
मोतिन माँग भरी। कन्हैया०"

कृष्ण गुलाबके फूलके समान हैं और राधा भिन्न-भिन्न रंगोंके वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित हैं। राधिका पानसे भी अधिक पतली हैं। हल्दीका पीलापन भी उनके रंगके सम्मुख हेच है। उनका चेहरा तो (कोमल) शाखाके समान पतला है और नाकमें वे नथ पहने हैं। सालू,* सरत और रेशमी लहँगा वे पहने हैं। लिलारपर बेंदी दीप्तमान है और उनकी माँग मोतियोंसे भरी है। गाँववालोंकी कल्पनामें पानसे अधिक पतली और कोमल वस्तु और नहीं है। 'कनक छरी सी कामिनी' की सूक्ष्म उन्हें न सही, पर पानकी सी कोमलता छरीमें नहीं होती। ब्रजमें पीला रंग कुछ अच्छा माना जाता है। गाँववालोंको यह कहते मैंने प्राय: सुना है—"तेई सौं बु पीरी जद ऐ। भूरी भक है।" (तेरी शपथसे कहता हूँ वह पीली ज़र्द है। बिलकुल ही भूरी है।) बिहारीका एक दोहा है—'*तिय लिलार बेंदी दिये, अगनित होत उदोत*।' 'बिंदिया दियें लिलार' भी कितना सुन्दर वर्णन है। स्त्रीके लिलारपर बेंदीसे वैसे ही उसकी छवि अपरिमित हो जाती है, तिसपर राधाके लिलारपर बेंदीकी शोभा तो अपार ही होगी। एक सुन्दर व्यंगका नमूना लीजिये।

किसी गोपिकाने कृष्णसे गागर उठानेमें सहायता चाही थी। कृष्ण गागरको उठवानेमें राज़ी तो हो गये, पर मज़दूरी विचित्र माँगी। गोपिकाने कैसी मीठी चुटकी ली। कोई साहित्य-मर्मज्ञ इसमें श्लेषालंकार भी कह सकते हैं। गोरसमें ही श्लेषालंकार न हुआ, तो फिर किसमें होगा, पर मैं तो इसे साधारण दृष्टिसे ही देखता हूँ। गीत यह है :—

"गागरि मेई स्याम उठाइ जैऔ। गागरि मेई०।
जमुना जीके रेतमें हो, जमुनाजीके रेतमें।
अपनौ हाथु लगाइ जैऔ॥ गागरि मेई०
गागरि तिहारी तबई उठावैं, गागरि तिहारी तबई उठावैं।
घूँघट खोलि दिखाइ जैऔ। गागरि०
घूँघटमें का लेउ साँवरे, घूँघटमें का लेउ नरे।
बगर हमारे है जैऔ॥ गागरि०
कोरी मलरियन दही जमाऔ, कोरी मलरियन दही जमाऔ।
गोरसको रसु लै जैऔ॥ गागरि मेई०"

कृष्ण कहते हैं कि गागर तो मैं उठवा दूँगा, पर तुम्हें बदलेमें मज़दूरी या पुरस्कारमें अपनी मुख-छवि दिखानी होगी। गोपी हँसकर उत्तर देती है—"कृष्ण, तुम तो वैसे ही रहे। घूँघट खोलकर यदि मैं अपनी मुख-छवि दिखाऊँ, तो उससे तुम्हारी तृप्ति थोड़े ही होगी। मेरे घर आना। मैंने कोरी मलरियों (छोटी हँड़ियों) में दही जमाया है, उसे खाकर अपनी तृप्ति कर लेना। कुछ पेटमें डालकर तृप्ति करो, या गायका दूध पी लेना।" कोरी मलरियाके दहीका स्वाद गाँववाले खूब जानते हैं।

× × ×

एक बार किसी ग्वालिनने यशोदासे कृष्णकी शिकायत की कि वे उसे बहुत दिक्क करते हैं। पानी नहीं भरने देते। गागर फोड़ देते हैं और ऊधम मचाते हैं। यशोदाने बिगड़कर कहा :—

"जि बड़ी ग्वालि लबरी ऐ, झबरी ऐ, इन मोहन सूं झगरी ऐ।
मेरो कन्हैया कछू न जानैं, तू ग्वालिन धिंगरी ऐ।
ओसन प्यास बुझै नहिं सुन्दरि बालक खेल परी ऐ। जि०
चलि मेई मैया बाइ बताइ देंउ जो हमसू झगरी ऐ,
मोहूँ खड़ी लील भरि सारी कईऔ रंगभरी ऐ। जि०
औरनके दस-पांच खिलत ऐं, जाईकूँ रारि परी ऐ।
औरनके दस-पांच भले ऐं, जाई पै आगि परी ऐ। जि०"

अर्थात्—'यह ग्वालिन बड़ी झूठी है, बड़ी बहकानेवाली है और मेरे कृष्णसे झगड़ती है। (अभी बालक) कृष्ण हंसी

* सालू लालरंगकी ओढ़नी। सरतका अर्थ मेरी समझमें नहीं आया। 'सरज' तो नहीं है? —लेखक।

मज़ाककी बात क्या जाने ? ऐ ग्वालिन, तू ही ज़बर्दस्त है। तू बालकसे उलझती है। हँसी-मज़ाक करती है। क्या कभी ओससे भी प्यास बुझ सकती है ?"

कृष्णने यह जानकर कि यशोदाने उनका पक्ष लिया, कहा—"ऐ मा ! मैं तुझे चलकर बता सकता हूँ कि कौनसी ग्वालिन मुझसे झगड़ा करती थी। वह नीले रंगकी साड़ी पहने है और उसकी साड़ीमें कईएक रंग हैं।"

तब यशोदाने आवेशमें आकर कहा—"मेरे तो यह अकेला कृष्ण ही है। और स्त्रियोंके तो अनेक बच्चे हैं। इस अकेलेके लिए मुझसे क्यों लड़ती हो।"

गोपीने भी आवेशसे उत्तर दिया—"और स्त्रियोंके अनेक बालक भी भले हैं, पर तुम्हारे इस अकेलेने ही ऊधम मचा रखा है। इसीपर आग पड़ी है।"

मैंने इसी विषयपर किसी सुकविकी रचना पढ़ी है, उसका एक पद इस प्रकार है—'अबे लाल मेरो भोरौ बारौ, मदमाती बौरानी।' इसी बातको ग्राम-गीतमें ऊपर इस प्रकार कहा गया है—'मेरौ कन्हैया कछू न जाने, तू ग्वालिन धिंगरी ऐ।'

इन गीतोंका आनन्द पढ़नेकी अपेक्षा सुननेमें अधिक आता है। बीस-पचीस आदमी एक साथ एक लयसे गाते हैं। मंजीरा और ढोलक बजती रहती है।

एक ग्रामीण नायिकाका वर्णन भी लीजिये :—

"पातरिया छैलु रिझाइवेकूँ, पातरिया छैलु रिझाइवेकूँ। पात०
चढ़ि मढ़आ पै टेर नहिनियाँ आइजा सोति नभाइवेकूँ।
तातौ पानी भरौ ततैंडो, सियरौ धरौ समोइवेकूँ। पात०
तेलु फुलेलु हाथमें दरपनु, धन गई बेनु गुहाइवेकूँ। पात०"

अपने पतिको रिझानेके लिए किसी स्त्रीने शृंगार करना चाहा। छतपर चढ़कर उसने नाइनको गाली देकर (सौति कहकर) बुलाया। स्नानके लिए गरम पानी रखा है और उसमें मिलानेके लिए—यदि पानी अधिक गरम हो तो—ठंडा पानी भी पास रखा है। (स्नानके उपरान्त) हाथमें तेल, फुलेल और दर्पण लेकर वह स्त्री (धन) अपनी वेणि गुहानेके लिए गई। नायिका गाँवके किसी भले घरकी है। अमीर नहीं है, पर कुलीन है और पुराने रीति-रिवाज़को माननेवाले घरकी है। घरमें परिचारिका नहीं है, इसलि स्वयं ही नाइनको बुलाने छतपर चढ़ जाती है। कदाचित् नाइनका घर पड़ोसमें ही है। नाइनकी प्रतीक्षा करते-करते वह तंग आ जाती है, इसीलिए छतपर चढ़कर और शायद नाइनके घरमें उझककर वह कहती है—"आवति नाएं मेई सोति, हूँ कबते बैठी ऊँ।"

× × ×

करुण-रसका नमूना भी लीजिये। द्रौपदीका करुण-क्रन्दन कितना मर्मस्पर्शी है—

"असुर गहौ हो चीर सभामें काहूने बरजौ नहीं।
भरी सभाके बीचमें हो, भरी सभाके बीचमें।
बहुत होइ आधीन सभामें काहूने बरजौ नहीं।
भीषमसे बैठे रहे, हो भीषमसे बैठे रहे।
बैठे दवर जेठ सभामें काहूने बरजौ नहीं।
द्रौपती ऐसे कहै हो द्रौपती ऐसे कहै।
सिब तन रहि गई हेरि सभामें काहूने बरजौ नहीं।"

× × ×

ग्रामीण गीत ग्राम-जीवनके सभी अंगोंपर प्रकाश डालते हैं। उनका घासलेटी काव्य भी है, पर वह तुलनात्मक दृष्टिसे इतना गन्दा नहीं, जितना कि कुछ पढ़े-लिखे लोग टका कमानेकी ग़रजसे साहित्यके नामसे उसे निकाल रहे हैं। घासलेट तो घासलेट ही है, उसके नमूनेकी आवश्यकता नहीं, परन्तु सास-बहूकी कलहपर कैसा फबता गीत है। गानेवालेने उँगली उठाकर और सिर हिला-हिलाकर सुनाया था। उसके कहनेके पश्चात् ढोलक, मजीरा और कोरससे लोग उसे गाते थे। गीत इस प्रकार है :—

"सासु बऊ कौ दंगा सो सासे हो।
सासु ससुर कूँ चना-मटरकी, दिवरा कूँ बिझरंगा। सो०
आपु तो खाय चुपरमा फुलका, बलमु जिमाइ दये अंगा। सो०
सासु ससुर कूँ टूटी खटुलिया, दिवरा कूँ अधरंगा। सो०

अपु तो सोई लाल पलिंगपर बलमु चढ़ाइ दये अट्टा। सो०
सासु ससुर कूँ फटे पुराने दिवरा कूँ अधरंगा। सो०
अपु तो ओढ़े चटक चुंदरिया बलमु सिवाय दये अंगा। सो०"

बड़ी कर्कशा 'Dame Van Winkle' होगी। ऐसी स्त्रियाँ कम ही होती हैं, पर होती तो हैं ही। पतिदेव ऐसी स्त्रियोंके रुखको ही देखा करते हैं। Curtain lecture के मारे बेचारेकी नाकमें दम होगा।

× × ×

अब तनिक अनुप्रास और भाव व्यंजनाका मज़ा लीजिए—

"छोड़ो छोड़ो जसुदाके लाल मेरो मारग छोड़ो।
हूँ निकरी अपनी घरतें, बित स्याम फिरावत ए चकई,
उरझौ ककना चकईकी डोरी, हूँ बैठी सुरझावति डोरी,
ठोड़ी पकरि मोसूँ कईए कोरी, पीतिके बात लगे रुकमाछी,
टूटे न डोरी, छूटै न गाँठ। मेरो मारग छोड़ो छोड़ो०
आवतु ऐ नँदलालको हातो, टोरत वह मगोरत छाती,
भाजी परी मथुरा नगरी, मथुरा नगरीको छैल चिकनिया,
बाँधतु ओ ऐंठा पगरी, हाथ गिलोल फैंटमें गिल्ला,
तकि मारी सिरकी गगरी, फूटै गगरी, भीजै चुंदरी। छोड़ो०"

अन्तिम पद कितना बढ़िया है। एक दूसरा गीत भी इसीसे मिलता-जुलता यह है—

"मोहन नँदलाल बरसाने सजि आये।
बरसानेकी गूजरी, दधि बेचन जाय, दधि बेचन जाय;
बीच मिले कन्हाई, दधि लई छिडाइ, दधि लई छिडाइ;
बैठि कदमकी छैयाँ, ग्वाल लये बुलाइ, ग्वाल लये बुलाइ;
पातु पातु दौना बाँटों, दधि दई लुटाइ, दधि दई लुटाइ;
बरसाने०
होरी तो खेले साँवरो, अपनी ससुरारि, अपनी ससुरारि;
हाथ गहैं पिचकारी, मा उड़े गुलाल, मा उड़े गुलाल;
रचि दई अटा-अटारी, रचि दई चौपारि, रचि दई चौपारि;
रचि दई सारी सेरजै, भुमि है गई लाल, भुमि है गई लाल;
आधी धार जमुनाकी, बादर भये लाल, बादर भये लाल;
बरसाने०"

पता नहीं, ये गीत किसने बनाये, पर मेरे गाँवसे एक मीलपर एक किसान रहता है। वह प्रति वर्ष नये-नये गीत बनाता है। हालका बनाया हुआ उसका एक गीत यह है—

"ऐसौ हेतु लगाऔ हरिसैं ऐसौ रे।
जैसें करवल तकै हिरन कूँ, आपु सधे, बन्दूके साधे,
साधे अपनी देह, ध्यान गोलीपै लागे रे। ऐसौ०
जैसें सती चढ़े सर ऊपर, आपु सधे, अरु पति ऐ साधे,
साधे अपनी देह, ध्यान नरियल पै लावै रे। ऐसौ०
जैसें कुआ भरे पनिहारी, आपु सधे, और लेजुये साधे,
साधे अपनी देह, ध्यान गागरपै लावै रे। ऐसौ०"

करवल शिकारीको कहते हैं। मैंने इस शब्दको पहले-पहल 'विहारी-सतसई' में पढ़ा था।

'विशाल-भारत' के पाठकों और विशेषकर काव्यमर्मज्ञोंसे मेरा निवेदन है कि वे ऐसे गीत अथवा इन गीतोंपर अपनी सम्मति 'विशाल-भारत' के सम्पादककी मार्फत भेजें, जिससे गीत संग्रह करनेमें मुझे सहायता मिल सके।

क्यों ?

श्री विजय वर्मा

चन्द्र अपने पिताका इकलौता लड़का था। पिता 'रामायण' के भक्त थे। चन्द्रने लड़कपनमें ही 'रामायण' और 'सुखसागर'के पाठ आरम्भ किये। उसके सुकुमार मनपर इन धार्मिक ग्रन्थोंका विचित्र प्रभाव पड़ा। वह प्रह्लाद, शुकदेव, नारद और ध्रुवकी भाँति तपस्वी बननेमें जीवनकी पूर्णता, सच्चा बड़प्पन और मनुष्यत्व समझने लगा। यहाँ तक तो ठीक था, पर धीरे-धीरे वह अपनेको इन्हीं लोगोंके पथपर चलनेके योग्य मानने लगा। वह अपने मित्रोंसे चुपचाप यही मन्त्रणा करता कि हम लोग भी संन्यासी बनकर प्रह्लाद और ध्रुवके समान होंगे।

पर प्रह्लाद आदिके समान संयमी बननेका उसने प्रयत्न नहीं किया। वह बुरी संगतिमें पड़ा, और उसकी बड़प्पनकी बातें धोखेका रूप धारणकर सनकमें परिणत हो गई, परन्तु वह इसे समझ नहीं सका। जब उसके पिताने देखा कि चौदह वर्षकी अवस्थामें भी वह संयमहीन रहनेपर घरसे भागनेकी बातें सोचा करता है, तब उन्होंने उसका विवाह कर दिया। स्त्रीके साथ रहकर चन्द्र एक ओर और भी असंयमी बना और दूसरी ओर संन्यासकी सनक और अधिक हो गई। उसके पिता उसकी यह दशा देखकर घबराये। उन्होंने बहूकी विदा कर दी, परन्तु इससे चन्द्र बहुत दुखी हुआ। अन्तमें उसके पिताने फिर बहूको बुलाया और चन्द्रसे कहा—''अपनी तन्दुरुस्तीका खयाल रखो, योग और संन्यासकी सनक छोड़ दो, कसरतकी तरफ़ झुको और अपने शरीरको बनाओ।''

चन्द्र यह सुनकर हँसा—''मैं शरीर तो हूँ नहीं, योग और संन्यासमें ही तो जीवनकी पूर्णता है। मेरा जीवन इन्हींके लिए है। गृहस्थीमें तो मैं ज़बरदस्ती फँसा हूँ।''

वह अपना उच्छृंखल जीवन संन्यासकी तैयारीका जीवन समझता रहा।

× × ×

नवीं कक्षामें चन्द्र अनुत्तीर्ण हुआ, पर जब लोगोंने उसपर व्यंग किया, तो उसने अभिमानसे कहा—''मैंने 'कर्मयोगी' में इस देशका जो 'झूठा' इतिहास पाठशालाओंमें पढ़ाया जाता है, उसकी आलोचना पढ़ी है। मैं यह इतिहास और ये पाठ्य-पुस्तकें पढ़ ही नहीं सकता। कोई देशप्रेमी इन्हें किसी तरह नहीं पढ़ सकता।''

वह अपनेको देशभक्त भी समझने लगा था। आलस्य, अभिमान और बड़प्पनकी अमित चाहसे उसका दिमाग़ किस तरह धोखा देनेवाला या खोखला बन रहा था, इसे देखनेमें वह असमर्थ था।

उसका संयमहीन जीवन ज्योंका त्यों था। 'अनहद' योग और 'त्रोटक' का अभ्यास भी वह करता जाता था।

'मैं अब प्रयागमें किसी पाठशालेमें पढ़ूँगा, क्योंकि वहाँ झूँसीमें महात्मा लोग रहते हैं, जो मुझे अपनी सच्ची पाठशालामें किसी दिन सम्मिलित कर लेंगे।' इस तरह अपने आपको और अन्य सब लोगोंको धोखा देकर वह प्रयागमें आकर पढ़ने लगा। कुम्भमें महात्माओंकी खोजके लिए भी दौड़-धूप करने लगा।

एक साधुने एक दिन उससे पूछा—''क्या चाहते हो?''

वह बोला—''मुझे गृहस्थीसे वैराग्य हो गया है। मैं *जीवनकी साधनाके लिए संन्यास-पथपर चलना चाहता हूँ।''*

साधुने कहा—''जाओ, जाओ, वैराग्य नहीं, सब कुछ हो गया है।''

चन्द्रके अभिमानको चोट लगी, पर इससे उसमें कमी नहीं हुई।

× × ×

कालेजमें उसने अपने सहपाठियोंको यह समझाना चाहा कि 'इन कालेजोंमें पढ़ना पाप है।' 'मर्यादा' और 'सरस्वती' के अंकोंसे ढूँढ़-ढूँढ़कर जितनी बातें इस समयकी

शिक्षाके विरुद्ध वह लिख सकता था, वे सब लिख डालीं। इसका प्रभाव और तो किसीपर न पड़ा, स्वयं उसके मनपर इन बातोंका गहरा रंग चढ़ गया। अब उसने एक पत्र 'समालोचक' निकालनेका विज्ञापन दे दिया, और पढ़ना छोड़कर स्त्रीके साथ अपने पिताके पास आ गया।

पितासे इस 'शिक्षा' की सब बुराइयाँ बता-बताकर वह कहने लगा—'या तो मैं राष्ट्रीय आश्रमोंमें से किसीमें जाकर सच्ची शिक्षा पाऊँगा, या पत्र निकालूँगा।"

पिताने मुँह फेरकर मन-ही-मन कहा—'अगर मेरे कोई लड़का और होता, तो मैं तुम्हारा यह घमंड और तुम्हारी यह धोखेबाज़ी सहज ही दूर कर सकता। तुम जानते हो कि मैं तुम्हें अपनेसे अलग नहीं कर सकता, इसीलिए धमकी देते हो। पत्रके लिए रुपये मेरे पास कहाँ है ? मुझे धनवान मानकर भी अपनेको धोखा दे रहे हो।'

चन्द्र बहुत देरमें यह समझ सका कि वह पत्र नहीं निकाल सकता और न किसी आश्रममें जा सकता है, तब उसका प्रत्येक अंग जलने लगा। वैद्य-हकीमके यहाँसे दवा और रोग़न लानेकी ज़रूरत पड़ी। वह लौटकर फिर पढ़नेके लिए आया!

आकर कहा—"मुझे अभी काम करनेका अवसर नहीं मिला।"

अब भी वह अपनेको धोखेसे न छुड़ा सका, अपनी असमर्थता देख न सका!

× × ×

फिर पढ़ना छोड़कर उसने एक पुस्तक लिख डाली, और स्वयं उसे प्रकाशित की। अपनी कृति किसे अच्छी नहीं लगती? वह उसे पढ़कर बेहद आनन्दित हुआ पर अन्य किसीने उसको पढ़नेकी ज़रूरत नहीं समझी। दीमकोंकी अलबत्ता उसपर विशेष कृपादृष्टि हुई।

इस बार चन्द्रके पिताको बहुत दुःख हुआ। वे अब पेन्शन पा रहे थे। उनका पुत्र फिर इस तरह अपने आपको और उन्हें धोखा देना चाहेगा, अपनी अशक्ति और अनुभवहीनताको न समझकर महत्वाकांक्षाके पीछे सरपट दौड़कर इतनी आर्थिक और मानसिक हानि करनेपर उतारू होगा, यह उन्होंने कभी सोचा तक न था।

चन्द्रकी मा जब-तब कहती थीं—'यह लड़का बचपनमें कहता था कि बड़े होनेपर मैं तुम्हें खूब गहने बनवा दूँगा। अब चन्द्रके पिताने देखा कि बड़े होनेपर सब गहने बिकवा डालनेका काम ही यह करेगा।'

चन्द्रने लोगोंसे इस बार कहा—"ऐसी पुस्तक प्रकाशित करना जीवनकी साधना है, इसमें जितना भी व्यय हो, वह पुण्य है।"

आह! अब भी वह अपने आपको धोखा देता चला जाता है, अपनेको पुण्यात्मा और साधक समझ रहा है।

× × ×

अन्तमें उसके पिताने कोशिश करके उसे एक दफ्तरमें क्लार्की दिला दी। उन्होंने समझा, अब इसका जीवन-पथ निश्चित हो गया। यह चुपचाप यहीं पड़ा रहेगा।

किन्तु पिताका देहान्त होते ही उसने एक सज्जनको साथी बना एक पत्र निकालना प्रारम्भ किया, और यह जानते हुए भी कि पत्रका चलाना कितना कठिन है, नौकरी छोड़ दी। अब उसकी स्त्री और उसकी सन्तान उसकी मूर्खता, अनुभवहीनता और धोखेबाज़ीके लिए उसे कोस रही हैं।

इस बार वह जग पड़ा है—अब वह अपने-आपको धोखेमें नहीं रख सकता। उसके मनकी सब उलझनें सुलझ *गई हैं, और वह अपने पशु-रूपको ठीक तरह देख रहा है, पर चौंतीस वर्षकी अवस्थामें अपना सर्वस्व स्वाहा करके इस तरह अपनी पतित अवस्था देखनेके योग्य होना क्या उचित कहा* जा सकता है? ज्योतिषियोंने बतलाया है कि यह सब ग्रहोंका फेर है; मनुष्य यंत्रकी भाँति काम किया करते हैं। पर वह तो बराबर चिल्ला-चिल्लाकर यही पूछ रहा है कि—'सम्पूर्ण जीवन ऐसा क्यों हुआ?' इस 'क्यों' का उत्तर कौन दे सकता है?

बिहार प्रान्तके ग्रामीण उद्योग-धन्धे

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, बी०ए०, बी०एल०,

बिहार, उड़ीसा और छोटानागपुर इन तीन छोटे-छोटे प्रान्तोंको मिलाकर बिहार प्रान्तका संगठन किया गया है। इनमें छोटानागपुरका भाग खनिज पदार्थोंके लिए सारे भारतवर्षमें प्रसिद्ध है। कोयला, अबरख, लोहा आदि खनिज पदार्थोंसे छोटानागपुरकी भूमि अत्यन्त समृद्धि-शालिनी है, किन्तु यह बड़े ही खेदकी बात है कि यहाँके जितने बड़े-बड़े व्यवसाय हैं, वे प्रान्तवासियोंके हाथमें न होकर अन्य प्रान्तवालोंके अधिकारमें हैं। यही कारण है कि भारतके अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा यह प्रान्त व्यवसायकी दृष्टिसे बिलकुल ही असंगठित है। इसके सिवा इस प्रान्तके जंगल और उसकी पैदावारकी आमदनी भी अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा कम नहीं है। छोटानागपुर और उड़ीसाको छोड़कर बाकी भाग जो खास बिहार (Bihar proper) कहलाता है, मुख्यतया कृषि-प्रधान है। यहाँकी ऊँची उपजाऊ ज़मीन हिमालय पर्वतकी नदियोंके जलसे सिंचित होनेके कारण बड़ी ही समृद्धिशालिनी है। यहाँके किसान और मज़दूर बड़े परिश्रमी और उद्योगी होते हैं। प्रतिवर्ष लाखों मज़दूर बिहार प्रान्तके विभिन्न ज़िलोंसे नौकरीकी तलाशमें या दूसरे कामकी खोजमें बंगाल और आसाम प्रान्तको जाया करते हैं। किन्तु यह सब होते हुए भी यह प्रान्त अन्य प्रान्तोंकी तुलनामें बिलकुल ही पिछड़ा हुआ है, और यहाँके निवासी जीवनोप-योगी आवश्यकताओंसे अनेकांशमें वंचित रहा करते हैं। इसका एक प्रधान कारण यह है कि बिहारी किसानोंके पास खेतीके सिवा और कोई ऐसा खास सहायक पेशा नहीं रह गया है, जिससे वे अपने अवकाशके समयका सदुपयोग कर सकें। उत्तर-बिहारमें प्रति सहस्र मनुष्य पीछे सिर्फ २७ मनुष्य शहरोंमें रहते हैं और बाकी ९७३ मनुष्य, जो ग्रामोंमें रहा करते हैं, ८८१ आदमी अपनी जीविकाके लिए सर्वथा कृषिपर निर्भर रहते हैं। दक्षिण-बिहारमें भी ७२शहरोंमें और ९२८ ग्रामोंमें रहते हैं, जिनमें ७२६ खेतीपर निर्भर करते हैं। बिहारकी आबादीका ⅘ भाग कृषिकार्य द्वारा अपनी जीविका अर्जन करता है। दक्षिण बिहारमें कुछ अबरख, चूना और स्लेट-पत्थरकी खानोंके सिवा यहाँ अन्य प्रकारके खनिज पदार्थ नहीं पाये जाते। खास बिहारमें बड़े-बड़े व्यवसाय, उद्योग-धन्धे या कल-कारखाने भी बहुत कम हैं। जमालपुर रेल्वेका कारखाना, मुँगेरका तम्बाकूका कारखाना, मुक्तापुरका जूट मिल तथा उत्तर-बिहारमें चीनीकी फैक्टरियोंके सिवा और कोई कल-कारखाना यहाँ नहीं है। किसानोंके पास भी इतनी काफी ज़मीन नहीं होती कि उसकी पैदावारसे वे अपना भरणपोषण अच्छी तरह कर सकें। यहाँकी आबादीके अनुसार ज़मीनका औसत प्रति

व्यक्ति पीछे एक एकड़से भी कुछ कम ही है। इस थोड़ीसी ज़मीनमें अच्छी, बुरी और साधारण तीनों किस्मकी ज़मीन सम्मिलित है। इस ज़मीनमें सिर्फ खाद्यान्न ही नहीं, बल्कि उनके अलावा तेलहन, ईख, लाल मिर्च, साग-सब्ज़ी, तरकारी आदि अन्य चीज़ें भी पैदा की जाती हैं। ऐसी दशामें यहाँके किसानोंके पास अवकाशका समय कितना अधिक रहता होगा और उस समयका सदुपयोग करनेके लिए किसी अतिरिक्त उद्योग-धन्धेकी कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है; परन्तु यह बड़े ही खेदकी बात है कि इस प्रकारके घरेलू उद्योग धन्धे या गृहशिल्प इस समय बिलकुल ही लुप्तप्राय हो गये हैं, और जो थोड़े शेष रह भी गये हैं, वे भी क्रमशः ग्रामवासियोंके हाथसे निकलकर कल-कारखानेके मालिकोंके हाथमें जा रहे हैं। घरेलू उद्योग-धन्धों और कुटीर-शिल्पका यह सर्वनाश देशके लिए बड़े ही दुर्भाग्यका विषय है। आज इन उद्योग धन्धोंका स्थान बड़े-बड़े कल-कारखानों और मिलोंने ले लिया है, जिसमें लाखों ग़रीब आदमी बेकार बन गये हैं। सूत कातने और कपड़ा बुननेकी मिलोंने ही कितने आदमियोंको बेकार बना दिया है, इसकी कोई सीमा नहीं। खासकर स्त्रियोंका एकमात्र व्यवसाय सूत कातना, जिसमें उनके अवकाशका समय काममें लग जाता था और वे कुछ थोड़ीसी आमदनी भी कर लिया करती थीं, इस समय उनके हाथसे छिनकर मिल-मालिकोंके हाथमें चला गया है, और वे इस आमदनीसे सर्वथा वंचित होकर बेकार बन गई हैं। अभी सिर्फ बीस-पचीस वर्ष पहलेकी बात है कि बिहारमें मुश्किलसे चावल, आटा या तेलकी दो-चार मिलें पाई जाती थीं। धान कूटकर चावल तैयार करना, आटा पीसना और कोल्हूसे तेल निकालना गाँवके मुख्य व्यवसाय थे, और इनसे बीसियों ग़रीब स्त्री-पुरुषोंका हर गाँवमें भरण-पोषण होता था। आज ये व्यवसाय भी ग़रीब ग्रामवासियोंके हाथसे निकलकर मिल मालिकोंके हाथमें चले गये हैं। इन मिलोंकी संख्या भी धड़ाधड़ बढ़ रही है, और आये दिन नई-नई मिलें खुल रही हैं। सन् १६२५ में सिर्फ बिहारमें चावलकी मिलोंकी (Rice mills) संख्या ३६ और आटेकी मिलोंकी संख्या ४ थी। इन ३६ मिलोंमें काम करनेवाले मज़दूरोंकी संख्या ११०० थी। इस समय इन मिलोंकी संख्या ५० से अधिक है। एक मिलमें काम करता हुआ अकेला एक मज़दूर इतना धान कूटकर चावल निकाल सकता है, जितना गाँवके पन्द्रह मज़दूर हाथसे काम करके ढेंकुल द्वारा निकाल सकते हैं। इस प्रकार इन कारखानोंमें काम करनेवाले मज़दूरोंमें हरएक मज़दूरसे गाँवके चौदह आदमी बेकार बन जाते हैं। इन बेकारोंके लिए कोई दूसरे कामका कुछ प्रबन्ध भी नहीं किया जाता। इसी तरह तेलकी मिलोंकी संख्या भी दिन-दिन बढ़ रही है। सन् १६२५ में तेलकी मिलोंकी कुल संख्या २५ थी, जिनमें १४८२ मजूर काम करते थे। इस समय इनकी संख्या ४० के लगभग है।

उत्तर-बिहारमें ईखसे गुड़ तैयार करनेका व्यवसाय देहातोंमें बहुत प्रचलित है। इससे सालके कुछ महीनों तक किसानोंको पूरा काम रहता है और उन्हें मुनाफा भी काफी होता है। इसके सिवा ईखकी पत्ती और रस निचोड़ा हुआ छूँछ मवेशियोंके खानेके लिए बड़ी ही अच्छी चीज़ समझी जाती है। ईखका रस और गुड़ किसानोंके दैनिक भोजनमें विशेष रूपसे व्यवहृत होते हैं। इस समय चीनी तैयार करनेके बड़े-बड़े कारखाने खुल जानेसे गुड़ बनानेका व्यवसाय भी किसानोंके हाथसे निकला जा रहा है। ईखकी फसल कटनेपर प्रायः रोज ही कारखानेके आसपासके गाँवोंसे गाड़ी भरे हुए ईखके पेड़ कारखानोंमें या पासके स्टेशनोंमें पहुँचाये जाते हैं। इन पेड़ोंकी पत्ती और छूँछसे किसानोंको कोई फायदा नहीं पहुँचता। वे सब चीज़ें कारखानेमें पहुँचकर बेकार हो जाती हैं। चीनीके इन कारखानोंके खुल जानेसे गुड़ बनानेका व्यवसाय देहातोंमें दिन-दिन कम हो रहा है, और इसके बदलेमें विदेशी चीनीकी आमदनी बढ़ रही है। गुड़से चीनी बनानेका व्यवसाय भी किसी समय

उत्तर-बिहारके ज़िलोंमें खूब प्रचलित था, किन्तु विदेशी और देशी कारखानोंकी बनी हुई चीनीने इस व्यवसायको भी लुप्तप्राय कर दिया है।

एक और ग्रामीण व्यवसाय जो इस समय अपनी अन्तिम साँसें ले रहा है, वह है गाँवके ठठेरों द्वारा काँसा और पीतलके बर्तन बनानेका व्यवसाय। इस प्रकारके बर्तन देखनेमें बहुत ही सुन्दर, ठोस, टिकाऊ और मजबूत हुआ करते हैं; किन्तु इनके स्थानपर अब विदेशी अलमुनियम, कलई किये हुए बर्तन तथा काँच और शीशेके बर्तन अपना सिक्का जमा रहे हैं। यद्यपि इन द्रव्योंके बने हुए बर्तन दाममें सस्ते होते हैं, किन्तु ये बहुत थोड़े दिन तक कामके लायक़ रहते हैं और पुराने होनेपर तो ये बिलकुल बेकार हो जाते हैं। काँसा और पीतलके बर्तनोंके साथ यह बात नहीं होती। फूट जाने या कामके लायक़ न रहनेपर भी ठठेरोंके हाथ कुछ कम मूल्यपर बिक जाते हैं, अथवा नये बर्तनोंमें बदल लिये जाते हैं। आलमुनियमके बने हुए सस्ते बर्तनोंमें हमारे घर पट रहे हैं, और यदि हम इन्हें विदेशी समझकर इनका बहिष्कार नहीं करेंगे, तो यह निश्चय है कि कुछ समयमें ही काँसा और पीतलके बर्तनोंका व्यवसाय नष्ट हो जायगा, और इस प्रकार गाँवके ठठेरे रोज़गार विहीन हो जायँगे।

गाँवोंमें रहनेवाले लुहार, कुम्हार और चमारोंके हाथसे भी उनके व्यवसाय छिनकर विदेशी या देशी पूँजीपतियोंके हाथमें चले जा रहे हैं। कृषिके उपयुक्त जितने औज़ार होते हैं, वे सब औज़ार गाँवके लुहार ही पहले बनाया करते थे। इसके सिवा इन औज़ारोंकी मरम्मत भी यही लोग किया करते थे। इसके बदलेमें उन्हें सारे गाँवका ओरसे फसलके कटनेपर एक निश्चित तादादमें अनाज मिला करता था, जिससे उनके परिवारवर्गका भरण-पोषण हो जाया करता था। गाँवके विशेष कारीगर लुहार छुरी, छुरा, कैंची, सरोता आदि भी बनाया करते थे। इन चीज़ोंकी बिक्री भी काफी हुआ करती थी, लेकिन ये सब बातें अब बदल गई हैं। कल-कारखानोंमें बने हुए हल, फार, कुदाली, खुर्पी, कुल्हाड़ी आदि औज़ारोंने तथा विदेशी छुरा, छुरी, कैंची आदि चीज़ोंने बेचारे लुहारोंको अपने पुश्तैनी रोज़गारसे वंचित करके उन्हें किसान बना दिया है। गाँवके कुम्हार पहले बहुत ही सुन्दर चित्र-विचित्र मिट्टीके खिलौने बनाया करते थे। इस प्रकारके खिलौनोंकी गाँवोंमें खूब खपत होती थी, गाँवके लड़के इन्हें बड़े चावसे मोल लेते थे, लेकिन आज इन देशी खिलौनोंका स्थान जापानी खिलौनोंने ग्रहण कर लिया है! यही हाल गाँवके चमारोंकी भी है। गाँवके चमार मरे हुए मवेशियोंके चमड़ेको तैयार करके उनका जूता, चाबुक तथा अन्य कामकी चीज़ें बनाया करते थे और गाँववालोंको बेच दिया करते थे, लेकिन अब इनके स्थानपर विदेशी तथा देशी कारखानेकी बनी हुई चमड़ेकी चीज़ोंने हमारे घरोंको भर दिया है। गाँवके चमार अपने पेशेको छोड़कर मज़दूरी और नौकरी-पेशा अख्तियार कर रहे हैं। कपड़ा बुननेका व्यवसाय यद्यपि इस समय भी मुसलमान जुलाहोंमें विशेष रूपसे प्रचलित है और इससे उन्हें आमदनी भी अच्छी हुआ करती है, लेकिन हिन्दू जुलाहोंने तो इस कामको बिलकुल छोड़ ही दिया।

इसके सिवा और भी बहुतसे ऐसे छोटे-छोटे ग्रामीण उद्योग-धन्धे हैं, जो इस समय मृतप्राय दशाको प्राप्त हो रहे हैं, *और उनमें लगे हुए ग्रामवासी* जीविका-विहीन होकर नौकरीकी शरण लेने लगे हैं। लाह और काँचकी चूड़ियाँ, सिन्दूर, 'टिकुली' आदि चीज़ें, जिन्हें इस प्रान्तकी स्त्रियाँ सौभाग्य (सोहाग) का चिह्न समझकर व्यवहार करती हैं, पहले गाँवोंमें ही तैयार हुआ करती थीं, किन्तु अब वे चीज़ें भी विदेशोंसे आने लगी हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि इन कामोंमें लगे हुए स्त्री-पुरुष बेकाम बन गये हैं। मूंज और सनकी रस्सी और डोरी बाँटनेका काम, कुशकी चटाई, ताड़के पंखे और चटाई, बाँसकी टोकरी, सूप, डगरा, चँगेल, चलनी, चिक, सींककी बनी हुई कई तरहकी चीज़ें तथा इसी प्रकारके और भी कई ऐसे घरेलू उद्योग-धन्धे

और गृह-शिल्प हैं, जो अब तक किसी-न-किसी रूपमें अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। इनके अलावा और भी बहुतसे ऐसे उद्योग-धन्धे हैं, जो बड़ी शीघ्रतासे ग्राम-वासियोंके हाथसे छिनकर दूसरोंके हाथमें चले जा रहे हैं, और उनके अभावमें लाखों देशवासी निठल्ले हो रहे हैं। गाँवोंमें पहले बड़े-बड़े ज़मींदार हाथी, घोड़ा, टमटम आदि सवारियाँ रखा करते थे, जिनसे बहुतोंकी परवरिश हुआ करती थी। एक-एक हाथी या घोड़ाके पीछे कमसे कम दो महावत या साईस रहा करते थे, लेकिन आज इन सवारियोंका स्थान मोटर, साइकिल और मोटरबसने ग्रहण कर लिया है। अब ज़मींदारोंको सुन्दर हाथी-घोड़ा रखनेका शौक़ नहीं रह गया है। इनके बदलेमें विदेशी मोटरकारोंकी ही सजावट दीख पड़ती है। गत कई वर्षोंके अन्दर इस प्रान्तके देहातोंमें साइकिलका प्रचार जितनी तेज़ीसे बढ़ा है, वह तो और भी आश्चर्यप्रद है। कहाँ तक गिनावें ! न मालूम आज इस तरहके कितने घरेलू उद्योग-धन्धे हैं, जिनके नष्ट हो जाने अथवा नष्टप्राय दशाको प्राप्त हो जानेसे गाँवोंमें रहनेवाले लाखों आदमी या तो खेती करने लगे हैं अथवा नौकरीकी तलाशमें प्रतिवर्ष हज़ारोंकी सख्यामें पूर्व बंगालके ज़िलों और कलकत्तेकी चटकलोंमें जाया करते हैं। पाश्चात्य देशोंके समान भारतवर्ष न तो व्यवसाय-प्रधान देश बनाया जा सकता है और न ऐसा बनाना वांछनीय ही है। पाश्चात्य देशोंको अपने तैयारी मालकी खपतके लिए एशिया और अफ्रिकाके बहुतसे पराधीन एवं असंगठित देशोंपर निर्भर करना पड़ता है। इन देशोंमें भी अनेक देश स्वाधीन बनकर अथवा स्वाधीनता-प्राप्तिकी चेष्टामें संलग्न रहकर अपना औद्योगिक संगठन कर रहे हैं, और इस प्रकार अपनी आवश्यकताके अनुसार चीज़ें तैयार करके आत्मनिर्भर (self-supporting) बननेका प्रयत्न कर रहे हैं।

जिस समय एशिया और अफ्रिकाके पराधीन देश पाश्चात्य राष्ट्रोंके औद्योगिक चंगुलसे निकलकर स्वतंत्र और स्वावलम्बी बन जायँगे, उसी समय इन उद्योग-प्रधान देशोंका दिवाला निकल जायगा। आज इंग्लैण्डके तैयारी मालकी अधिकांश खपत चीन और भारत जैसे देशोंमें ही हुआ करती है। चीन तो अब अंग्रेज़ सौदागरोंके पंजेसे छुटकारा पा ही चुका है। सिर्फ़ रह गया भारतवर्ष, सो वह भी अपनी मुक्तिके लिए प्राणपणसे चेष्टा कर रहा है। विदेशी कपड़ेके ज़बरदस्त बहिष्कारसे विलायतके सूती कपड़ेका व्यापार बिलकुल चौपट हो चला है। ऐसी दशामें स्वतंत्र भारत इंग्लैण्डकी बनी हुई चीज़ोंके लिए कब तक Dumping ground बना रहेगा, यह सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है। उद्योग-प्रधान सुसंगठित शक्तिशाली पाश्चात्य देशोंका ही भविष्य जब इतना नैराश्यपूर्ण है, तो फिर भारतवर्ष उनकी नक़ल करके अपनेको उद्योग-प्रधान बनाकर कहाँ तक लाभान्वित हो सकता है, यह विज्ञ पाठक स्वयं सोच सकते हैं। भारतवर्ष यदि अपनी आवश्यकतासे अधिक माल तैयार करेगा, तो फिर उसकी खपतके लिए बाज़ार कहाँ होंगे ? इस समय अमेरिका, जर्मनी, रूस आदि देश कृषिपर विशेष रूपसे ध्यान दे रहे हैं। इंग्लैण्डने भी इस ओर क़दम बढ़ाया है। ऐसी दशामें भारतको कृषिके बदले उद्योग प्रधान बनाना न तो सम्भव ही है और न उसके लिए कल्याणकारक ही। पाश्चात्य देशोंके ढंगपर जो लोग इस देशको भी उद्योग-प्रधान बनाना चाहते हैं, उनके सामने यह गम्भीर समस्या है, जिसपर उन्हें शान्त चित्तसे विचार करना चाहिए। *ग्रामीण उद्योग-धन्धे, दस्तकारी और कुटीर-शिल्पको नष्ट करके तथा लाखों आदमियोंको अपने शरीरके परिश्रमकी कमाईसे वंचित करके देशमें कल-काँटों और कारखानोंका जाल बिछा देना देशके लिए कदापि मंगलजनक सिद्ध नहीं हो सकता, और न इससे मानव-समाजके बीच शान्तिकी स्थापना ही हो सकती है।* नवीन वैज्ञानिक साधनों, नूतन आविष्कारों तथा नये-नये तरीक़ोंका उपयोग करके अपने देशके उद्योग-धन्धों और शिल्प-व्यवसायको भले ही उन्नतिशील बनाइये, किन्तु सारे देशको यन्त्रमय बनाकर देशवासियोंको यन्त्र-परिचालित जड़वत् बना डालना मानव-जातिके साथ घोर अत्याचार करना है। देशके विचारशील नेताओंका ध्यान इस गम्भीर प्रश्नकी ओर आकर्षित होना नितान्त आवश्यक है।

हिन्दी-पत्रकार-परिषद्

(*स्वामी भवानीदयालका भाषण* *)

पत्रकार-परिषद्‌की उपस्थितपर दृष्टिपात करते ही मेरे हृदयमें अमर-शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थीकी स्मृति जाग्रत हो आती है, जो हिन्दी-पत्रकार-कलाकी उन्नति, उत्कर्ष और विकासके लिए जीवनकी अन्तिम घड़ी तक अमोघ प्रयत्न करते रहे। साथ ही लाला भगवानदीनजी और श्रीकृष्ण-बलदेव वर्माका भी स्मरण आये बिना नहीं रह सकता। यदि ये सज्जन आज हमारे मध्यमें होते, तो हमारा कार्य बहुत कुछ सरल हो गया होता, किन्तु यह सोचकर हृदयमें व्यथा हो रही है कि वे हमसे सदाके लिए विदा ले चुके! परमात्मा उनकी आत्माको शान्ति और सद्गति दे।

पत्रकारोंके इस परिषद्‌के हेतुके सम्बन्धमें पूर्वके प्रधानोंने बहुत कुछ कहा है, अतएव उन्हीं बातोंकी पुनरावृत्ति करके आपका समय नष्ट करना उचित नहीं है। सबसे पहले मैं इस बातका स्मरण दिलाना अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ कि किसी भी संस्थाकी उन्नति—वास्तविक उन्नति—उसके आदर्शकी स्थिरतापर निर्भर करती है। जिसके सामने आदर्श है, उसकी गति निश्चित है। जिसका लक्ष्य है, वह उसको प्राप्त करेगा ही। इसलिए ऐसे सम्मेलनोंके अवसरपर हम लोगोंको नित्यकी अशान्तिमय दिनचर्यासे एक बार बाहर निकलकर यह सोचना ही होगा कि हमारा आदर्श क्या है और क्या हम उसकी ओर जा रहे हैं? मैं तो यह समझता हूँ और यह चाहता हूँ कि आप लोग भी स्थिरतापूर्वक इस बातका विचार करें कि पत्रकारोंका आसन वास्तवमें संसारको शिक्षा देनेवाले व्यासका आसन है। मैं तो कर्मसे चातुर्वर्ण्य मानता हूँ। जो लोग लेखनके द्वारा—समाचार पत्र या ग्रन्थोंके द्वारा—लोकशिक्षाका कार्य करते हैं, उन्हींको मैं ब्राह्मण मानता हूँ। पत्रकारोंका कार्य यथार्थमें ब्रह्मकर्म ही है। कोई भी पत्रकार इसे न भूले। जो पत्रकार इसे भूल जाते हैं, मेरे विचारमें, वे पत्रकारके आदर्श और कर्मसे च्युत होते हैं। अतएव इस आदर्शके विषयमें जितना ही कहा जाय, थोड़ा होगा। कारण, पत्रकार-कर्म यदि ब्रह्मकर्म न हो और उसका आसन यदि ब्रह्मका आसन न हो, तो उसमें कोई बात ऐसी नहीं है, जो विद्वानोंके लिए वरेण्य हो। मेरी यह धारणा है कि भारतीय सभ्यता और संस्कृतिसे जिनका हृदय ओतप्रोत है, वे इस आदर्शको भलीभाँति जानते हैं, और इसी आदर्शसे प्रेरित होकर इस कर्मको करना भी चाहते हैं। परन्तु अनेक बार परिस्थिति उन्हें पथभ्रष्ट भी कर देती है, और वास्तवमें ऐसी परिस्थिति अत्यन्त भयावह है। कहा जाता है कि यह युग वैश्य-प्रधान होनेसे ब्रह्मकर्म भी उसके आश्रित हो रहा है। यह भी प्रकट किया जाता है कि 'कामर्शलाइज़ेशन' हो रहा है अर्थात् लोकशिक्षाका यह पवित्र कर्म व्यापारकी एक वस्तु बन रहा है; किन्तु सोचनेकी बात तो यह है कि लोकशिक्षाका काम व्यापारकी एक वस्तु हो, इससे बढ़कर इस आसनकी अप्रतिष्ठा और इस कर्मका उल्लंघन दूसरा और क्या हो सकता है? लोकशिक्षाका कर्म जब व्यापारकी वस्तु हो जाता है, तब उसे लोकशिक्षाके नामसे पुकारना इस पवित्र शब्दका दुरुपयोग करना है। इस बातको पाश्चात्य देशके पत्रकार चाहे न मानें, पर भारतीय सभ्यताके अनुयायी, राष्ट्रके पुजारी और देशकी सेवाके लिए ही इस कर्ममें प्रवृत्त होनेवाले पत्रकारोंसे मैं यह अवश्य कहूँगा और मुझे यह विश्वास है कि वे इसे मानेंगे कि लोकशिक्षा व्यापारकी वस्तु नहीं हो सकती—नहीं होनी चाहिए। हाँ, परिस्थिति एक चीज़ है, जिसका विचार करना होगा।

---

* यह भाषण स्वामी भवानीदयालने पत्रकार-परिषद्‌के प्रधानकी हैसियतसे गत २८ मईको दिया था।

महात्मा गान्धी इस बातको नहीं मानते। उपार्जनके जिस साधनके कारण लोकशिक्षा सबसे पहले व्यापारकी वस्तु होती है, उस साधनको ही ग्रहण करनेसे महात्मा गान्धीने अस्वीकार कर दिया है। मैं आप लोगोंसे यह नहीं कहूँगा कि आप लोग भी इसका अनुकरण करें और अपने पत्रोंमें विज्ञापनोंका छापना बन्द कर दें, क्योंकि सब लोग महात्मा नहीं हो सकते। सबको अपने गन्तव्य स्थानका मार्ग परिस्थितिसे होकर ही निकालना पड़ता है। यदि हम विज्ञापन न लें, तो बहुत कम मूल्यमें हम समाचारपत्र नहीं दे सकते और समाचारपत्रको तैयार करनेमें जो विपुल धन व्यय होता है, उसको भी प्राप्त नहीं कर सकते। आधुनिक अवस्था यह है, अतएव विज्ञापन हमें लेने ही होंगे और हम ले ही रहे हैं, परन्तु इन विज्ञापनोंको प्रकाशित करनेमें हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि हम धनके लोभमें कोई ऐसा विज्ञापन तो नहीं छाप रहे हैं, जिससे देशकी हानि होती हो।

लोकशिक्षाको व्यापारकी वस्तु बनानेवाली दूसरी बात प्रतिद्वन्द्विता है। प्रतिद्वन्द्विता स्वयं कोई बुरी वस्तु नहीं है, यदि वह धर्माविरुद्ध हो। लोकशिक्षाका उत्तमसे उत्तम प्रकार ढूँढ़ निकालनेमें जो प्रतिद्वन्द्विता होगी, वह तो ब्रह्मकर्म ही होगा, और उससे लोकशिक्षाके कार्यकी उन्नति ही होगी; पर जब तक शिक्षाका ध्यान एक ओर रह जाता है और किसी तरह पत्रकी बिक्री बढ़े यह ध्यान मुख्य हो जाता है, तब भले आदमी ऐसे उपाय भी करते हुए दिखाई देते हैं, जिनके विषयमें महात्मा टाल्सटायके ये शब्द बहुत ही उपयुक्त जान पड़ते हैं कि 'यदि वे होशमें होते तो ऐसा कभी न करते।' सन्सेशन जिसे कहते हैं—सनसनी फैलानेवाला समाचार, चाहे वह सच हो या झूठ और सच भी हो, तो आधा सच और आधा झूठ, और सचका वह आधा हिस्सा भी भ्रम फैलानेवाला हो ? यह है क्या ? किसी भी शिष्ट मंडलीमें कोई भी भद्र पुरुष ऐसी बात भी नहीं करता, पर समाचारपत्रोंके सम्पादक बेधड़क अपने पत्रोंमें ऐसे शीर्षक छापते हैं। आस्ट्रेलियामें खून हुआ हो, तो खूनकी खबर ऐसे ढंगसे छापी जायगी कि एक पाठकको भ्रम हो कि उसके मकानके पास ही हत्याकाण्ड हुआ है। पर लोकशिक्षाको व्यापारकी वस्तु बनानेका यह एक ही प्रकार नहीं है। किसी भद्र पुरुषके विषयमें बिना सोचे-समझे सत्यासत्यका ज़रा भी विचार न करके ऐसी गन्दी भाषामें कि गन्दी भाषा पसन्द करनेवालोंको रुचिकर हो कोई भी बात बेजिम्मेवारीसे लिख देना यह भी पत्रकी बिक्री बढ़ानेका किसी-किसी पत्रके लिए साधन हो जाता है। एक और भी ढंग है। वह यह कि किसी भद्र पुरुषको समाचारपत्रमें लेख लिखकर झूठमूठ धमकाना या उसकी खुशामद करना अथवा उसके विचारोंका महत्व इसलिए कि वे उसके विचार हैं, प्रचार करना या चित्र छापना, जिससे वह खुश हो, लोकशिक्षाके उच्च आदर्शसे गिरकर व्यापार करनेका एक बहुत ही गन्दा और घृणित ढंग है। पत्रको लोकप्रिय बनानेके इस ढंगमें जो प्रतिस्पर्धा है, वह बहुत ही भयंकर है। ऐसी प्रतिद्वन्द्विता लोकशिक्षाके पवित्र कार्यकी अप्रतिष्ठा और ब्रह्मकर्मकी मर्यादाका उल्लंघन है। जिन्होंने अपने सामने लोकशिक्षाका उच्च आदर्श रखा है, वे ऐसी प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकते, पत्रको लोकप्रिय बनानेका ऐसा गन्दा ढंग अख्त्यार नहीं कर सकते, और वे ही वास्तवमें श्रेष्ठ और लोकोपकारी पत्रकार हैं। थोड़ीसी चमक दिखाकर मर जानेवाले जीव नहीं—लोकशिक्षाका अपना कार्य पूरा करके अमर रहनेवाले पत्रकार हैं। इसलिए मैं यह चाहता हूँ कि जो कोई भी पत्रकार हो—नये हों या पुराने—वे अपने आदर्शके पथसे भ्रष्ट न हों, चाहे उन्हें अपने व्रतमें रहते हुए धन मिले या न मिले। केवल धन ही पैदा करनेकी जिनकी इच्छा हो, उनके लिए यह कोई आवश्यक नहीं है कि वे पत्रकार बनें। बहुतसे धन्धे हैं। भक्त बनकर भगवानकी लीलाका भाव बताकर अन्दर-ही-अन्दर व्यभिचार करनेवाला पुरुष लोक-समाजकी दृष्टिमें अत्यन्त निन्दनीय होता है। इस निन्दाका कारण यही है कि वह कर्म तो ऐसा करता है, जो भक्तका नहीं है और अपने आपको बताता है भगवद्भक्त ही। उसी प्रकार

लोकशिक्षाका भाव बताकर जो लोग सभी उपायोंसे धन कमानेमें ही व्यस्त हो जाते हैं और अपने कर्मको छोड़ देते हैं, वे भी निन्दनीय कर्म करते हैं।

हिन्दी-पत्रकारोंका यश इतना निष्कलंक और इतना गौरवमय होना चाहिए कि वे लोकशिक्षाको व्यापारकी वस्तु बनानेकी पाश्चात्य पद्धतिके वशमें न होकर पाश्चात्य देशोंके पत्रकारोंके लिए भी आदर्श बनें, अपने हृदयोंको ऊँचा करें—उनके लिए कोई बात असम्भव नहीं है।

परिस्थितिकी दूसरी बात पत्र-कर्म करनेवाले कर्मियोंकी आर्थिक अवस्था की है। बड़ी ही भयंकर दुर्दशा है। चौबीसों घंटे जो लोकहितका ही चिन्तन करते हैं, उनके जीवननिर्वाहका भी पर्याप्त प्रबन्ध नहीं है। इतने कम वेतनपर इतनी जिम्मेदारी और इतनी चिन्ताका भार सिरपर रखनेवाला और दूसरा कोई भी व्यवसाय नहीं है। अंग्रेज़ों द्वारा चलनेवाले अंग्रेज़ी पत्रोंके प्रधान सम्पादक तीन-चार हज़ार रुपये तक मासिक वेतन इसी देशमें पाते हैं, और उन्हें जो काम करना पड़ता है, वह हिन्दी पत्रोंके प्रधान सम्पादकोंके कामका दशांश भी नहीं होता। "सर्वाग्रे तण्डुल: प्रस्थमूल:" इसका अर्थ सभी कामोंमें ध्यान रखा जाता है, पर समाचार-पत्रोंके काममें इसकी केवल उपेक्षा ही होती है, और इसका फल यह होता है कि जो उत्तम पत्रकार अपने आदर्शसे च्युत होकर लोकशिक्षाको व्यापारकी वस्तु बनाना पसन्द नहीं करते, वे सदा दरिद्र ही रहते हैं और गृह-चिन्ता तथा अति परिश्रमकी थकावटके कारण अपने आदर्शमय निश्चित मार्गको प्रशस्त करनेमें समर्थ नहीं होते। जब तक पत्रकारोंकी आर्थिक अवस्था इतनी अच्छी न हो कि निश्चिन्त होकर वे लोक-शिक्षाका काम कर सकें, तब तक उनके द्वारा संसारके सामने समाचारपत्रोंका आदर्श रखनेके महान् कार्यका उपक्रम भी नहीं हो सकता। इसलिए इस परिषद्में हम लोगोंको इन्हीं तीन बातोंपर विचार करना होगा, और इन्हींका उपाय भी करना होगा :—

(१) हिन्दी-पत्रकारोंके सामने उनका विमलादर्श सदा बना रहे।

(२) लोकशिक्षा और व्यापारका सम्बन्ध इस प्रकार नियन्त्रित हो कि व्यापार लोकशिक्षामें सहायक हो—लोकशिक्षा व्यापारके अधीन न हो।

(३) पत्रकारोंकी आर्थिक अवस्था अच्छी हो।

मुझे आशा है कि इन बातोंपर आप लोग अच्छी तरहसे विचार करेंगे।
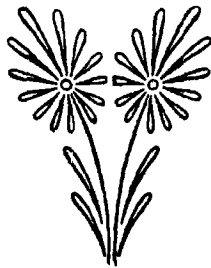
कलावान

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

गोधूलिका समय था। सूर्यनारायण क्षितिजके नीचे पहुँच चुके थे। ऐसे ही समयमें एक धूलधूसरित बटोही सुन्दरपुर ग्राममें प्रविष्ट हुआ। बटोहीकी पीठपर एक गठरी थी, दाहने हाथमें बाँसका एक डंडा और बाएँ हाथमें लोटा-डोर थी। बटोही इधर-उधर देखता हुआ जा रहा था। सहसा उसकी दृष्टि एक चौपालपर पड़ी। इस चौपालमें एक ओर एक तख्त पड़ा था, जिसपर एक वृद्ध बैठा हुआ था। सामने ही नीचे एक अलावसे अग्निकी ज्वालाएँ उठ रही थीं। बटोही अलावके निकट जा खड़ा हुआ और खड़े ही खड़े हाथ सेकने लगा। अलावके निकट चार व्यक्ति बैठे हुए ताप रहे थे। उनमें से एक व्यक्ति बोला—"भइया, खड़े क्यों हो; बैठ जाओ—अच्छी तरह ताप लो।"

इतना कहकर उस व्यक्तिने एक ओर सड़ककर बटोहीके बैठनेके लिए स्थान छोड़ दिया।

बटोही बोला—"बैठेंगे नहीं, सबसे पहले रात काटनेको स्थान ढूँढ़ना है।"

एक दूसरे व्यक्तिने पूछा—"कहाँसे आ रहे हो?"

—"इधर पछाँहसे आ रहे हैं।" बटोहीने उत्तर दिया।

—"जाना कहाँ है?"

—"जहाँ नौकरी मिल जाय।"

वृद्ध बड़े ध्यानपूर्वक बटोहीको देख रहा था। नौकरीका नाम सुनकर उसने पूछा—"क्या काम जानते हो?"

बटोही बोला—"ये बातें तो सुभीतेकी हैं। बैठनेका अवसर मिले तो बतावें। इस प्रकार चलते-फिरते न हम कुछ बता सकते हैं और न आप समझ सकते हैं। एक अन्य व्यक्ति बोला—"ठीक कहते हो भइया! न जाने कहाँसे थके-माँदे चले आ रहे हो।"

—"बहुत लम्बी मंजिल मारे चले आ रहे हैं। देखो न, देहभरमें धूल-ही-धूल है।" एक तीसरे व्यक्तिने कहा।

वृद्ध बोल उठा—"ऐसी बात है तो हमारी यह कुटिया हाजिर है, यहीं टिक जाओ। जो कुछ चूनी-भूसी हम खायँगे, वही तुम्हें भी खिलावेंगे। रातको इसी तख्तपर पड़ रहना।"

एक अन्य व्यक्ति बोल उठा—"वाहवा! बन गई बात। अब देखते क्या हो ज्वान। कमर खोल डालो।"

बटोहीने किंचित मुसकराकर पीठपर से गठरी उतारी, और वृद्धके संकेतपर चौपालकी एक खूँटीपर टाँग दी। डंडा एक कोनेमें खड़ा कर दिया। तत्पश्चात् बोला—"यहाँ कहीं कुआँ है, ज़रा दिशा-जंगलसे निपट लेते।"

वृद्ध बोला—"बड़ी सुन्दर बात है, दिशा-जंगलका तो समय ही है। वह सामने कुआँ है।" बटोही लोटा-डोर लेकर कुएँकी ओर चला गया। उनके चले जानेके पश्चात् एक व्यक्ति बोल उठा—"देहातमें नौकरी ढूँढ़ते-फिरते हैं। देहातमें नौकरी धरी है। इन्हें तो सहरमें जाना चाहिए।"

वृद्ध बोल उठा—"सो कोई बात नहीं। देहातमें भी नौकरी मिलती है। हमारे ठाकुरको ही देखो, कितने नौकर हैं?"

—"हाँ, सो तो हैं, पर सहर सहर ही है, देहात देहात ही है।"

—"ग़रीब आदमीको देहातमें ही सुख मिलता है। सहरके खरचे बड़े लम्बे होते हैं।" वृद्धने कहा।

—"यह बात ठीक है।"

एक अन्य व्यक्ति बोला—"काका, ठाकुरके यहाँ इन्हें नौकर करा दो।"

वृद्ध बोला—"पहले यह तो पता लगे कि यह काम कौनसा कर सकते हैं। लाठी तो चला नहीं सकते होंगे।"

—"हाँ, सो तो नहीं जान पड़ता, वैसा बदन ही नहीं है।"

—"हाँ, इसीसे तो कहा। ज़मींदारोंके यहाँ तो लठैतोंका काम ज्यादा रहता है।" वृद्धने कहा।

इसी प्रकारकी बातें हो रही थीं कि बटोही आ पहुँचा। वह हाथ-मुँह धोकर ताज़ा दम हो आया था। लोटा-डोर खूँटीपर टाँगकर वह अलावके पास बैठ गया। वृद्धने पूछा—"भइया, तुम्हारा नाम क्या है?"

—"हमारा नाम तो उजागर सिंह है।"

—"अच्छा, ठाकुर हो! कौन ठाकुर हो?"

—"कछोह।"

—"ठाकुर तो कुलीन हो।"

—"क्या कुलीन हैं! अब आजकल तो सब बराबर हैं। आजकल तो जिसके पास पैसा है, वही कुलीन है।"

—"यह बात ठीक है, परन्तु कुलीन कुलीन ही है।" एक अन्य व्यक्ति बोला।

वृद्धने कहा—"तब तो हमारे घरकी रसोई तुम खा सकते हो, हम ब्राह्मण हैं।"

—"हाँ, क्यों नहीं खायेंगे? ब्राह्मणके घरका न खायेंगे, तो फिर किसके घरका खायेंगे।"

—"तमाखू पीते हो?"

"हाँ, पी तो लेते हैं।"

—"तो इन्हें चिलम-भरके देओ। बेचारे न जाने कहाँसे चले आ रहे हैं। यह पेट भी आदमीको न जाने कहाँ ले जाता है।"

उजागर सिंह एक दीर्घनिश्वास छोड़कर बोला—"यही बात है महाराजजी, पेट न होता तो अपना घर-द्वार छोड़कर मारे-मारे क्यों फिरते।"

—"तुम कौन काम जानते हो?" वृद्धने पूछा।

—"यही बैल-बछियाका काम जानता हूँ।"

उजागर सिंहकी बात सुनकर उपस्थित लोग एक दूसरेके मुँहकी ओर ताकने लगे। उनकी समझमें नहीं आया कि बैल-बछियाका काम कैसा होता है।

—"यही, बैलोंको पालना, सिखाना, हाँकना इत्यादि।

फिर सन्नाटा छा गया। इस बार सब लोग किंचित् मुसकराये।

वृद्ध बोला—"यह काम तो देहातमें सब कोई जानता है। यह काम तो ऐसा नहीं है, जिसके लिए तुम्हें कोई नौकर रखे।"

उजागर सिंह बोला—"जो जानते हैं, वे रखते हैं। जो जानते ही नहीं, वे क्या रखेंगे।"

वृद्ध सिर हिलाकर बोला—"हम तो नहीं जानते। तुम्हीं कुछ बताओ, कैसा क्या होता है?"

उजागर सिंहने कहा—"ये बातें रजवाड़ोंमें देखनेको मिलती हैं, यहाँ कोई जानता भी नहीं। हमारा तो यह मौरूसी पेशा है। हमारे हाथके बैलोंका मुक़ाबला साधारण बैल नहीं कर सकते। हमारे पिता रियासतमें नौकर रहे। उनके ताल्लुक बैलोंका ही काम था।"

उजागर सिंहकी बात सुनकर लोगोंको उसकी बातपर कुछ विश्वास हुआ, और सबने उत्सुकताके साथ उसकी बातें सुननेकी इच्छा प्रकट की। उन्हें सन्तुष्ट करनेके लिए उजागर सिंह इधर-उधरकी बातें सुनाने लगा।

[२]

सुन्दरपुरके ज़मींदार ठाकुर सुजान सिंह एक बड़े ज़मींदार हैं। सुन्दरपुरमें उनका बहुत बड़ा पक्का भवन बना हुआ है, जो गढ़ीके नामसे विख्यात है।

सुबहके आठ बज चुके थे। ठाकुर सुजान सिंह गढ़ीके विशाल प्रांगणमें एक तख्तपर बैठे हुए दातून कर रहे थे। अगल-बगल तीन नौकर खड़े थे। इसी समय हमारे पूर्वपरिचित वृद्ध उनके सम्मुख पहुँचे। वृद्धको देखकर ठाकुर

साहब बोल उठे—"पालागन पंडितजी, आज सवेरे-सवेरे कैसे ?"

तख्तके समीप ही चार-पाँच कुरसियाँ पड़ी हुई थीं। पंडितजी आशीर्वाद देकर कुरसीपर बैठ गये, और बोले—"एक कामके लिए आपके पास हाज़िर हुआ था।"

ठाकुर साहब बोले—"कहिये, क्या हुक्म है ?"

पंडितजीने कहा—"कल आपके गाँवमें एक ठाकुर नौकरीकी तलाशमें आया है। मैंने उसे अपने यहाँ टिका लिया है। आपकी आज्ञा हो, तो हाज़िर करूँ।"

—"नौकरीके लिए आया है! नौकर तो आपकी दयासे हमारे यहाँ काफ़ी हैं।" ठाकुर साहबने कहा।

पंडितजी बोले—"सो तो मालूम है। आपके यहाँ कमी किस बातकी है, जगदम्बाका दिया हुआ सब कुछ है ; परन्तु ऐसा आदमी आपके यहाँ एक नहीं है, बड़ा गुणी आदमी है।"

—"अच्छा! क्या गुण है ?" ठाकुर साहबने पूछा।

—"बैलोंका काम अच्छा जानता है।"

—"बैलोंका काम कैसा ?"

—"बैलोंको निकालनेका, सिखानेका, हाँकनेका।"

ठाकुर साहब मुसकराकर बोले—"पंडितजी, क्षमा करना, आप तो सठिया गये हैं। भला, यह भी कोई काम है, यह काम तो देहातमें लगभग सब लोग जानते हैं।"

—"मेरा भी यही विचार था, परन्तु उसकी बातें सुनकर समझमें आया कि यह भी एक कला है।"

—"घोड़ोंकी बाबत तो सुना था, परन्तु बैलोंकी बाबत आज आप ही से सुना।"

—"मैंने भी नहीं सुना था, मैंने कल उसीकी ज़बानी सुना।"

—"अच्छा, उसे बुलवाइये।"

पंडितजीने एक नौकरकी ओर देखकर कहा—"ज़रा हमारे घर चले जाओ। चौपालमें बैठा है, बुला लाओ—उजागर सिंह नाम है।"

नौकर चला गया। इधर ठाकुर साहब बोले—"प्रथम तो आजकल घोड़ोंके आगे बैलोंकी क़दर ही नहीं रही।"

पंडितजी बोले—"मोटरोंने घोड़ोंका भी नाश मार दिया। आजकल जिधर देखो, मोटर ही दिखाई पड़ती है। घोड़ागाड़ीका तो रिवाज़ ही उठ गया।"

—"यही बात है। अब आप ही बताइये, ऐसी दशामें बैलोंको कौन पूछता है ?"

—"हाँ, यह बात ठीक है, परन्तु बैलकी ही सवारी ऐसी है, जो सब जगह जा सकती है—चाहे कच्चीमें ले जाओ, चाहे पक्कीमें। घोड़े और मोटरमें यह बात नहीं है।"

—"कुछ भी हो, परन्तु घोड़ा घोड़ा ही है, बैल बैल ही है। बैल तो अब केवल खेती-भरके कामके लिए रह गये।"

—"हमारे जैसे ग़रीब आदमियोंका आधार तो बैल ही हैं, सरकार। हम लोगोंको घोड़ा और मोटर कहाँ नसीब है।"

इसी प्रकारकी बातें हो रही थीं कि उजागर सिंह आ पहुँचा। उसने ठाकुर साहबको झुककर सलाम किया। ठाकुर साहबने उसे सिरसे पैर तक देखकर पूछा—"कहाँके रहनेवाले हो ?"

—"जयपुरकी तरफ़का रहनेवाला हूँ, सरकार!"

—"ठाकुर हो ?"

—"हाँ सरकार, कछोह ठाकुर हूँ।"

—"क्या काम जानते हो ?"

—"बैलोंका काम जानता हूँ।"

—"बैलोंका काम तो कोई बड़ा काम नहीं है, बिलकुल मामूली बात है।"

उजागर सिंह हाथ जोड़कर बोला—"सरकार, अधिक तो मैं कुछ कह नहीं सकता, क्योंकि जब तक आप अपनी आँखों न देखेंगे, तब तक कैसे पतियायेंगे। केवल इतना

कहता हूँ कि दो बछड़े मेरे सिपुर्द कर दीजिए। सालभर बाद फिर देखियेगा कि वे क्यासे क्या हो जाते हैं।"

—"क्या हो जायँगे, आदमी बन जायँगे या घोड़ा बन जायँगे?"

—"ऐसे बन जायँगे कि आपका चित्त प्रसन्न हो जायगा।"

—"और जो चित्त प्रसन्न न हुआ?"

—"होगा कैसे नहीं, मैं तो दावेके साथ कहता हूँ। सरकार, यह समयकी बात है कि मैं सरकारके दरबारमें आया हूँ। नहीं तो हम लोग रजवाड़ोंको छोड़कर कहीं नहीं जाते। मेरे पिता सदा रियासतोंमें ही रहे।"

—"तो तुमने रियासत क्यों छोड़ दी?"

—"बात यह है सरकार कि अब रजवाड़ोंमें बैलोंका शौक़ नहीं रहा। जबसे मोटरें चल गईं, तबसे घोड़े-हाथीका मान जाता रहा, बैलोंकी कौन कहे।"

—"यह दशा तो सब जगह है।"

—"हाँ, है तो सही, परन्तु देहातोंमें तो अब भी बैल ही काम देते हैं।"

पंडितजी बोल उठे—"यह भी करके देख लीजिए धर्मावतार! आप ही जैसे श्रीमान् इन लोगोंका कमाल देख सकते हैं।

उजागर सिंह बोल उठा—"इतना मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपका पैसा बेकार नहीं जायगा।

ठाकुर साहब कुछ क्षणों तक सोचकर बोले—"अच्छी बात है,—क्या तनख्वाह लोगे?"

—"जो आपका जी चाहे।"

—"आखिर कुछ मालूम तो हो।"

—"अभी तो मैं इतना ही चाहता हूँ कि मेरा और मेरे बाल-बच्चोंका पालन-पोषण होता रहे। फिर तो, यदि मुझमें कुछ खूबी होगी, तो मैं जो चाहूँगा, ले लूँगा।"

—"अच्छा, तो फिलहाल तुम्हें बीस रुपये मासिक और तुम्हारी खुराक मिलेगी, बादको देखा जायगा।"

—"उजागर सिंह सोचकर बोला—"खैर, अभी इतना ही सही। मैं कुछ कहूँ भी तो क्या कहूँ, अभी आपने मेरा कुछ कमाल तो देखा ही नहीं। इतना भी आप देते हैं, तो बड़ी दया है।"

—"तो बस ठीक है। अपना असबाब ले आओ, तुम्हे रहनेके लिए जगह बता दी जाय।"

"बहुत अच्छा।" कहकर और सलाम करके उजागर सिंह चला गया।

[३]

उजागर सिंहको पश्चिमीय बछड़ोंकी एक जोड़ी सौंपी गई। छै मास तक उसने उनके साथ परिश्रम किया। उससे और किसी बातसे सरोकार नहीं था। वह रात-दिन उन्हींकी सेवा-सुश्रूषामें लगा रहता था। सुबह-शाम वह उन्हें एक हल्की गाड़ीमें जोतकर मीलों तक ले जाता था। छै मास पश्चात् उसने एक दिन ठाकुर साहबसे कहा कि मेरी इच्छा है कि आज बछड़ोंकी चाल आपको दिखाऊँ। ठाकुर साहबने स्वीकार किया। संध्या समय एक हलकी बेहलीमें दोनों बछड़े जोड़े गये और ठाकुर साहब सवार होकर चले। बछड़े उजागर सिंहके इशारोंपर चलते थे। ठाकुर साहब बछड़ोंकी चाल-ढाल देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने उजागर सिंहकी प्रशंसा की। उजागर सिंह बोला—"तीन महीनेकी कसर और है, तीन महीने पश्चात् आप देखियेगा कि ये क्या हो जाते हैं।" ठाकुर साहबको इसके पूर्व कभी बैलगाड़ीकी सवारीका शौक़ नहीं था। वह केवल आवश्यकतावश कभी-कभी बैलगाड़ीका सत्कार कर दिया करते थे, परन्तु अब उन्हें कुछ शौक़ उत्पन्न हो चला।

इस प्रकार तीन मास और व्यतीत हो गये। क्रमशः ठाकुर साहबके बैलोंकी यथेष्ट ख्याति हो गई।

इसी बीचमें ठाकुर साहब और एक दूसरे ज़मींदारमें कुछ भूमिकी बाबत मुक़दमेबाज़ी होने लगी। एक दिन ठाकुर साहब

मुक़दमेकी पेशीमें शहर गये हुए थे। शामको जिस समय वह लौटे, तो नियमानुसार उजागर सिंह लँहडू लिये स्टेशनपर उपस्थित था। ठाकुर साहबके साथ दो लठबन्द आदमी थे। तीनों व्यक्ति लँहडूपर सवार हो गये। उजागर सिंह बोला—"सरकार, अभी मैंने स्टेशनपर एक बड़ी बुरी खबर सुनी है।"

ठाकुर साहबने पूछा—"वह क्या ?"

—"एक आदमीने अभी-अभी मुझे बताया कि आज ठाकुर रौशन सिंहके कुछ आदमी रास्तेमें लगे हुए हैं, वे हम लोगोंपर हमला करेंगे।"

ठाकुर साहब घबराकर बोले—"तुमसे किसने कहा।"

उजागर सिंह बोला—"एक आदमी था, मैं उसे पहचानता नहीं।"

—"वह कहाँ है ?"

—"इसी गाड़ीसे सहर जा रहा था। चला गया होगा।"

ठाकुर साहब बोले—"यों ही बकता होगा, हमपर कौन हमला करेगा ?"

—"खैर, मैंने बता दिया, अब जैसा आप उचित समझें।"

लठ्ठबन्द व्यक्तियोंमें से एकने कहा—"हमारे सरकारपर हमला करनेकी हिम्मत किसमें है ? हमला करना दिल्लगी नहीं है। दस-पन्द्रह आदमियोंके लिए तो हमीं दोनों काफ़ी हैं। दूसरे इन बैलोंका पीछा करना कठिन हो जायगा। इनके बराबर दौड़नेवाले बैल इधर हैं किसके पास ? तुम बेखटके चले चलो जी।"

उजागर सिंह बोला—"यह बात तो पक्की है—अच्छा बैठिये।"

तीनों व्यक्ति लँहडूपर बैठ गये। लँहडू तेज़ीके साथ चल निकला। कोस-भर निकल जानेके पश्चात् वे लोग एक ऐसे रास्तेपर पहुँचे, जिसके दोनों ओर आमके घने बाग़ थे। वे लोग तेज़ीके साथ चले ही जा रहे थे कि किसीने कड़ककर कहा—'रोक लो लँहडू !' ठाकुर साहब तथा उनके साथियोंने देखा कि आठ-दस आदमी सड़कके बीचोंबीच खड़े हुए हैं और सबके हाथोंमें मोटे लठ हैं।

ठाकुर साहब तथा दोनों लठैतोंका चेहरा फ़क़ हो गया। ठाकुर साहब बोले—"उजागर सिंह अब क्या होगा ?"

उजागर सिंह बोला—"आप चुपचाप बैठे रहिये।"

यह कहकर उसने बैलोंको हुसकाया। उजागरके हुसकाते ही बैलोंने कनौतियाँ बदलीं और हवा हो गये। इतनी तेज़ीके साथ बैल भागे कि बीच रास्तेमें खड़े हुए आदमी कूदकर अलग हो गये और लँहडू साफ निकल गया। दो-एक लाठियाँ भी पड़ीं, परन्तु वे किसी आदमीके न लगकर लँहडूके पिछले भागपर लगीं। ठाकुर साहब और उनके साथियोंने पीछे फिरकर देखा, परन्तु उन्हें धूलकी दीवारके अतिरिक्त और कुछ न दिखाई पड़ा। सब लोगोंने निश्चिन्तताकी श्वास ली। ठाकुर साहब उजागर सिंहसे बोले—"इस समय तो बड़ा काम किया, नहीं तो प्राणोंकी खैर न थी।" ठाकुर साहब यह कह ही रहे थे कि पीछे घोड़ोंकी टापोंका शब्द सुनाई पड़ा। ठाकुर साहब घबराकर बोले—"जान पड़ता है, इनके साथ घोड़े भी हैं। अब तो निश्चय ही प्राण गये।"

उजागर सिंह बोला—"प्राण जाना इतना सहज नहीं है। आप लोग खूब सम्हलकर बैठ जाइये। आज आपको अपना कमाल दिखाता हूँ।" यह कहकर वह थोड़ा आगे खिसककर बैठ गया, और उसने न जाने क्या किया कि बैल प्राण छोड़कर भागे। इधर अश्वारोहियोंने भी अपने घोड़े छोड़ दिये, परन्तु लँहडूके आगे रहनेके कारण इतनी धूल उड़ रही थी कि अश्वारोहियोंको रास्ता नहीं दिखाई पड़ता था। उनके मुँह, नाक और आँखोंमें धूल भर रही थी, फिर भी वे पीछा कर रहे थे। लगभग चार मील तक अश्वारोहियोंने लँहडूका पीछा किया, परन्तु वे उनके बराबर न पहुँच सके। इतने समयमें ठाकुर साहबका गाँव निकट आ गया, अतएव अश्वारोहियोंने घोड़े रोक लिये। कुछ ही क्षणोंमें ठाकुर सुजान सिंह अपने गाँवकी हदमें पहुँच गये।

ठाकुर साहब बोले—"बस, अब कोई खटका नहीं। अब चाल धीमी कर दो।"

उजागर सिंहने बैलोंको रोका और लँहडू मन्दगतिमे चलने लगा।

ठाकुर साहब बोले—"उजागर सिंह, तुमने तो आज कमाल कर दिखाया। मुझे स्वप्नमें भी यह आशा नहीं थी कि ये बैल घोड़ोंसे पेश पा सकेंगे।"

उजागर सिंह बोला—"सरकार, अभी छै मील तक इसी चालसे इनको ले जा सकता हूँ।"

ठाकुर साहब चकित होकर बोले—"वाकई कमाल है। बैलोंमें इतनी ताक़त!"

उजागर सिंह बोला—"बस, सरकार इतना ही हुनर आता है। इसीकी बदौलत मेरे पिता सदा राजाओंके दरबारमें रहे। मैं उनकी बराबरीका दावा तो कर नहीं सकता—उनको जो बातें मालूम थीं, वे सब मुझे मालूम नहीं हैं। उन्हें ऐसे-ऐसे नुसखे मालूम थे कि दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह कोस तक बैल एक चालसे जाते थे, और उनका दम नहीं टूटता था। बैलोंको इतना बसमें कर लेते थे कि कभी फूलकी छड़ी छुवानेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती थी, केवल आवाज़पर काम करते थे। अब तो सरकार यह विद्या ही लुप्त हुई जा रही है। घोड़ों तक ग़नीमत थी। बैलों और घोड़ोंका सदा साथ रहा है, परन्तु इन मोटरोंने तो सब चौपट कर दिया; अब घोड़ोंकी पूछ तो रही नहीं, बैल किस गिनतीमें हैं। बैल और घोड़ेकी सवारीमें देर तो अवश्य लगती है, परन्तु ये भरोसेकी सवारी हैं, कभी दगा नहीं देतीं। मोटर ससुरीका तो कोई ठीक नहीं, न जाने कब कहाँ दगा दे जाय।

ठाकुर साहब बोले—"उजागर सिंह तुमने आज अपने कौशलसे हमारे प्राण बचा लिये। आजसे तुम नौकर नहीं, हमारे भाईके समान हो।"

उजागर सिंहने प्रसन्नमुख होकर सन्तोषकी श्वास ली। गुणी अपने गुणका योग्य ग्राहक पाकर जैसी श्वास लेता है, वह श्वास भी वैसी ही थी।

भग्न

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

टूट गया वह स्वर्ण कलश सखि!
ढुलक गया मेरा पानी,
रीते हाथों अब हा कैसे
प्रियकी होगी अगवानी?

छलक रहा था जब वह मगमें
मेरी गति थी मनमानी—
मदमाती-इठलाती चलती
कैसी थी मैं दीवानी!

टूट गया अह, स्वर्ण कलश सखि!
ढुलक गया मेरा पानी,
रीते हाथों अब हा कैसे
पियकी होगी अगवानी?

नदिया तो पीछे लहराती
लौट चलूँ फिर क्या आली?
पर, पथ तो मैं भूल गई हूँ—
औ' अँधियारी है काली!

लौट चलूँ तो कलश कहाँ है
कैसे भर लूँगी पानी,
रीते हाथों सखि! अब कैसे
पियकी होगी अगवानी?

रियासती-प्रजाकी समस्या*

श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

ब्रिटिश राजनैतिक विचारोंका एक दल ऐसा है, जो भारतीय समस्याको ब्रिटेनकी घरेलू समस्या समझता है, जिसमें किसी बाहरी विदेशीका दखल देना धृष्टता है। ठीक इसी प्रकारकी भावना हमारे कुछ देशी नरेशोंमें भी पाई जाती है। इसी भावनासे प्रेरित होकर वे समझते हैं और अकसर खुल्लमखुल्ला कहते भी हैं कि यदि उनकी रियासतोंके बारेमें कुछ करनेकी आवश्यकता होगी तो वे स्वयं ही, जब और जहाँ ज़रूरत समझेंगे, करेंगे।

इस स्थानपर किसी ब्रिटिश राजनैतिक दलकी किसी धारणाकी विवेचना करना उपयुक्त न होगा, परन्तु देशी नरेशोंकी उपर्युक्त भावनाके सम्बन्धमें कुछ विचार प्रकट करना आवश्यक है। यदि देशी रियासतोंकी प्रजा और ब्रिटिश भारतकी प्रजा एक दूसरेसे इतनी अधिक अपरिचित होती—जैसे हब्शके लोग उत्तरी ध्रुवके इस्किमो जातिवालोंसे—तो भी हम रोमन लेखक टेरेन्सके इस सिद्धान्तपर—"मैं मनुष्य हूं, अतः मनुष्य-सम्बन्धी किसी भी बातको मैं अपनेसे पराई नहीं समझता।" (I am a man ; I deem nothing that relates to man a matter foreign to myself)—अपने देशी राज्योंके पड़ोसियोंकी बातोंमें कुछ अनुराग रख सकते हैं। अथवा हम अपने पूर्वज ऋषियोंकी शरण लेकर उनके इस कथनके अनुसार अपनी नीति निर्धारित करते—

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥"

"केवल लघुचेता व्यक्ति ही यह विचार करते हैं कि यह आदमी हमारा है, यह आदमी पराया है; परन्तु उदारमना व्यक्तियोंके लिए समूची वसुधा ही कुटुम्ब है।"

परन्तु देशी और विदेशी पंडितोंके उक्त आदेशोंका अनुगमन करनेका बहाना करके हमें हास्यास्पद बननेकी जोखिम उठानेकी सचमुच कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि ब्रिटिश भारतके लोग और देशी रियासतोंके लोग एक दूसरेसे ऐसे अपरिचित नहीं हैं, जैसे बन्टूलोग पेरू देशवालोंसे। भारतके दो भागों—ब्रिटिश भारत (खेद है कि मुझे बारबार यह लज्जाजनक शब्द दोहराना पड़ेगा) और देशी रियासतोंका विभाजन केवल शासन-सम्बन्धी और राजनैतिक विभाजन है, वह किसी भी दृष्टिसे प्राकृतिक और भौगोलिक विभाजन नहीं है। वास्तवमें भारतवर्ष एक है।

स्वयं अंग्रेज़ लोग—जब वे साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञ बनकर नहीं लिखते—भारतकी इस एकताको स्वीकार करते हैं। मैं ख़ास तौरपर उनका उल्लेख करता हूं, क्योंकि उनमें से अधिकांश स्वार्थवश भारतकी एकतासे इनकार कर रहे हैं। वर्तमान ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० रैमसे मैकडानल्ड अपनी पुस्तक 'दी गवर्नमेंट आफ् इंडिया' में लिखते हैं:—

* भारतीय राज्य-प्रजा-परिषदके बम्बईके अधिवेशनपर सभापतिके पदसे दिया हुआ भाषण।

"हिमालयसे कुमारी अन्तरीप तक और बंगालकी खाड़ीसे बम्बई तक समूचा भारतवर्ष प्राकृतिक रूपसे एक ही शासन-क्षेत्र है। उसके नकशेपर एक बार दृष्टि डालते ही मालूम हो जाता है कि प्रकृतिने कैसे पहले ही से एक भारतीय साम्राज्यका विधान रच दिया है। उसके महान् विस्तारसे उसकी एकता अस्पष्ट नहीं होती, उसकी विभिन्नताएँ उसकी एकताको छिपा नहीं सकतीं। हिमालय और उसकी श्रेणीबद्ध दीवारें भारतके महान् प्रायद्वीपको बाक़ी एशियासे अलग कर देती हैं। उसकी लम्बी नदियां उसकी चरम सीमाओं और अन्तर्देशको समुद्रसे सम्बन्धित करती हैं तथा आयात-निर्यात और आवागमनके मार्गोंका एक जालसा बुन देती हैं। इसमें उत्पन्न होनेवाली नाना प्रकारकी वस्तुओंके एक दूसरेसे बदलने योग्य होनेके कारण भारत एक सुविधा-जनक औद्योगिक क्षेत्र बन जाता है, जो अपने पूर्वी और पश्चिमी बन्दरगाहोंके द्वारा संसारसे सम्बन्ध स्थापित रखता है।

"राजनैतिक और धार्मिक परम्पराओंने भी इसे एक ही भारतीय चेतनाके रूपमें गढ़ा है। भारतकी आध्यात्मिक एकता भारतीय संस्कृतिके आदि कालसे चली आती है।"

इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ अपनी पुस्तक 'Early History of India' में लिखते हैं—

"भारतवर्ष समुद्र और पर्वतोंसे चारों ओरसे इस प्रकार घिरा है कि वह निर्विवाद रूपसे एक ही भौगोलिक इकाई है और इसीलिए उसे एक ही नामसे पुकारना उचित है। उसकी सभ्यतामें भी बहुतसी ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जो उसे संसारके अन्य सब भागोंसे पृथक कर देती हैं। साथ ही वे विशिष्टताएँ समस्त देशमें ऐसी पर्याप्त मात्रामें, समान रूपसे फैली हैं, जिससे मानव-जातिके धार्मिक, सामाजिक और बौद्धिक विकासके इतिहासमें भारतकी गणना एक ही देशके रूपमें होना उचित है।"

विलियम आर्चर अपनी 'India and the Future' (भारत और भविष्य) नामक पुस्तकमें कहते हैं कि भारतकी एकता "निर्विवाद" है। अमेरिकाके डाक्टर जे० टी० सन्डरलैण्डने अप्रिल सन १६२८ के 'माडर्न रिव्यू' में लिखा था—

"सत्य तो यह है कि यदि संसारमें कोई भी सच्चा राष्ट्र है—ऐसा राष्ट्र जिसकी एकता इतनी प्राचीन और इतनी गहरी है (सहस्रों वर्षोंसे विकसित) कि अब वह लोगोंके प्रत्येक बौद्धिक और नैतिक तन्तुका एक अंग बन गई है, वह उनके रक्तमांसका एक अभिन्न अंश हो गई है—तो वह राष्ट्र भारतवर्ष ही है। भारतकी एकताकी तुलनामें प्रत्येक यूरोपियन और अमेरिकन राष्ट्र थोथा और क्षणभंगुर है।"

भारतकी एकता उसकी विभिन्नतासे बनी हुई है, अनेकों तत्त्व उसके अवयवमें सम्मिलित हैं, इस बातको भारतके महान कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपनी निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियोंमें बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त किया है—

"We are one all the more, because we are many
We have made room for a common love,
A common brotherhood, through all our separateness.
Our unlikenesses reveal the beauty of a common life deeper than all,
Even as mountain peaks in the morning sun
Reveal the unity of the mountain range from
Which they all lift up their shining heads"

"हम लोग इसलिए और भी एक हैं, क्योंकि हम अनेक हैं;

हमने एक सार्वजनिक प्रेमके लिए स्थान बना लिया है ;
समस्त पार्थक्यके द्वारा हमने एक सामान्य भ्रातृभाव
उत्पन्न किया है ।
हमारी असमानता हमारे सामान्य जीवनकी जो
सबसे गहरा है, सुन्दरताको प्रकट करती है ।
जिस प्रकार प्रभातकालीन सूर्यकी ज्योतिमें पर्वतकी
चोटियाँ

पर्वतमालाकी—जिससे वे चोटियाँ अपने चमकदार सिर ऊपर उठती हैं—एकताको प्रकट करती है ।"

स्वर्गीय कुमारी मारगरेट नोबिलने, जो भगिनी निवेदिताके नामसे प्रसिद्ध और सम्मानित थीं, और जिन्होंने भारतको अपनी मातृभूमिके रूपमें ग्रहण किया था, लिखा है—

"भारतीय एकताके आश्चर्य देखनेके लिए किसी विदेशीकी दृष्टि चाहिए। पहले-पहल अंग्रेज़ोंने ही देखा था कि हमारी एकता कितनी महान है ? साथ ही इस एकताके विषयमें हमारा अज्ञान कितना सर्वव्यापी है और उन्होंने पहले-पहल यह देखा कि हमारे काम-काजोंका एक ही इकाईके रूपमें शासन करके और टैक्स लगाकर कैसी बड़ी फसल काटी जा सकती है। इस दृष्टिसे हमें अपनी एकताका पाठ अपने अंग्रेज़ शिक्षकोंसे मिला है······जैसे प्रत्येक उच्च श्रेणीके जीवके शरीरमें कोई भी अंग किसी दूसरे अंगकी केवल पुनरावृत्ति-मात्र नहीं होता, वल्कि प्रत्येक अंग किसी विशेष प्रकारसे समूचे शरीरकी सेवा करता है, उसी प्रकार भारतका प्रत्येक प्रदेश किसी दूसरे प्रदेशके कार्योंकी नक़ल या प्रतिद्वन्द्विता मात्र नहीं करता। मराठे बंगालियोंकी सेवा करते हैं, तो बंगाली मराठोंकी ; हिन्दू और मुसलमान देखते हैं कि वे एक दूसरेके परिपूरक हैं ; पंजाबी और मदरासी दोनों ही समूचे भारतके लिए आवश्यक हैं ; उनकी आवश्यकता उनकी पारस्परिक विभिन्नतासे सिद्ध होती है, न कि उनकी समानतासे।"

भारतीय एकताके लिए और अधिक प्रमाण उद्धृत करना अनावश्यक है। इस एकतामें देशी भारत और ब्रिटिश भारत दोनों ही का सम्मिश्रण है। एक ही जाति, एक ही वर्ण और एक ही धर्मके लोग देशी रियासतों और उनके निकटवर्ती ब्रिटिश भारतके भागोंमें बसे हुए हैं, और उनमें समान वर्णवालोंमें प्रत्येक प्रकारका सामाजिक सम्बन्ध और आदान-प्रदान प्रचलित है। देशी रियासतों और ब्रिटिश भारतके संलग्न भागोंमें एक ही भाषाएँ बोली जाती हैं। प्रत्येक मर्दुमशुमारीमें भाषाविज्ञ अंग्रेज़ अधिकारी-गण भारतमें बोली जानेवाली नई-नई भाषाएँ खोज निकालनेका बंदोबस्त कर लेते हैं। सन् १६०१ की मर्दुमशुमारीमें सब भाषाओंका जोड़ १४७ था ; सन् १६११ तक यह संख्या बढ़कर २२० हो गई और सन् १६२१ में २२२ पर जा पहुंची। यह अभी तक नहीं मालूम हुआ है कि इस वर्षकी मर्दुमशुमारीमें भी कोई और नई भाषा आविष्कृत हुई या नहीं ; परन्तु भाषाओंके इस जंगलमें भी एक सन्तोषजनक बात है, वह यह कि भाषाविज्ञ अंग्रेज़ोंने अब तक संसारको यह नहीं बताया कि उन्होंने कोई ऐसी भी भाषा या भाषाएँ ढूँढ़ निकाली हैं, जो केवल देशी रियासतों ही में बोली जाती हों, और जो निकटवर्ती ब्रिटिश भारतमें बोली जानेवाली भाषाओंसे बिलकुल विपरीत और भिन्न हों।

वैदेशिक सम्बन्धोंमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्य दोनों मिलकर एक ही देशके रूपमें माने जाते हैं। राष्ट्र-संघमें भारतको ओरसे जो प्रतिनिधि-मंडल भेजा जाता है, उसमें कोई-न-कोई देशी नरेश सम्मिलित कर लिया जाता है, जिससे यह प्रकट होता है कि देशी राज्य और ब्रिटिश भारत भिन्न-भिन्न नहीं हैं। प्रवासी भार-तीयोंको विदेशोंमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, वे ब्रिटिश भारत और देशी राज्य दोनों ही के निवासियोंके हिस्सेमें समानरूपसे आती हैं।

इस प्रकार जब भारतवर्ष एक हो है, तब यह

स्वाभाविक ही है कि ब्रिटिश भारत और देशी रियासतोंमें रहनेवाले एक दूसरेके मामलोंमें दिलचस्पी रखें, एक दूसरेके सुख-दुःखमें हाथ बटायें और पारस्परिक भलाई करें।

'इंडियन नेशनल कांग्रेस' अपने जन्मसे ही भारतकी सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण राजनैतिक संस्था रही है। कुछ वर्ष पहले तक कांग्रेसके मेम्बर और नेतागण विभिन्न कारणोंसे भारतकी देशी रियासतोंके शासन और उनकी साधारण अवस्थापर अपने विचार प्रकट नहीं करते थे ; मगर सौभाग्यसे अब वह बात नहीं रही। १ली जनवरी सन् १९२९ को कलकत्ता-कांग्रेसमें श्री मणिलाल कोठारीने एक प्रस्ताव पेश किया था, जिसका समर्थन श्री सत्यमूर्तिने किया था। इस प्रस्तावमें देशी रियासतोंमें उत्तरदायी शासनकी माँग पेश की गई थी, और देशी नरेशोंसे अनुरोध किया था कि वे अपनी प्रजाको नागरिकताके प्रारम्भिक अधिकार देनेकी घोषणा कर दें, जिससे समूचा भारतवर्ष एक जातीय राष्ट्र बन सके। कांग्रेसमें यह प्रस्ताव पास हो गया था। इस प्रस्तावसे इस बातका प्रत्यक्ष आभास मिलता है कि देशी रियासतोंके सम्बधमें इंडियन नेशनल कांग्रेसका क्या रुख है।

मैं पहले ही कह चुका हूं कि कुछ देशी नरेशोंके मनमें यह धारणा विद्यमान है कि यदि रियासतोंके लिए कुछ करनेकी आवश्यकता होगी, तो उसे वे लोग स्वयं ही करेंगे। यह मानी हुई बात है कि उनकी यह भावना बिलकुल स्वाभाविक है। चाहे राजा हो या किसान, साधारण मनुष्य हो या खान्दानी रईस, कोई भी किसी अच्छे कामको—जो चाहे उसीके मतलबका क्यों न हो—करनेके लिए मजबूर होना पसन्द नहीं करेगा। यदि स्वयं देशी नरेश ऐसा करें, जिससे वास्तवमें उनकी प्रजाका ज्ञान बढ़े, उसकी उन्नति हो तथा वे समृद्धिशाली बनें, साथ ही जिससे नरेशोंकी भी शक्ति दृढ़ हो, तो उससे भारतके दोनों कृत्रिम भागोंके राजनैतिक कार्यकर्ताओंको जितनी अधिक प्रसन्नता और गर्व होगा, उतना किसी औरको नहीं हो सकता। हम लोग निश्चय ही गर्वसे अपना मस्तक ऊँचा कर सकेंगे, यदि हम यह घोषित कर सकें कि हमारे देशी नरेशोंने विभिन्न दिशाओंमें ब्रिटिश भारतकी सरकारके लिए एक आदर्श उदाहरण उपस्थित किया है। कुछ दिशाओंमें कुछ भारतीय रियासतोंने इस प्रकारका उदाहरण उपस्थित भी कर दिखाया है, और उनपर हमें गर्व है।

प्रत्येक देशी नरेश इस प्रकारके उदाहरण उपस्थित कर सकता है, यदि वह स्वयं अपनी इच्छासे ही एक नियन्त्रित वैध शासक (Limited Constitutional Rules) बन जाय और लोकप्रिय व्यवस्थापिका सभा द्वारा बनाये हुए क़ानूनके अनुसार शासन करे। यह बात प्रत्येक समझदार नरेशकी समझमें आ जानी चाहिए कि किसी भी प्रजाहितैषी स्वेच्छाचारी शासकमें, चाहे कितनी ही शक्ति और बुद्धि क्यों न हो, वह परिमित ही होगी, क्योंकि महानसे महान व्यक्तियोंकी शक्ति और बुद्धि परिमित हुआ करती है। उसे यह बात भी समझमें लेनी चाहिए कि किसी भी देश या रियासतमें इस बातकी गारन्टी नहीं की जा सकती कि उसके शासकका प्रत्येक स्वेच्छाचारी उत्तराधिकारी वैसा ही प्रजाहितैषी, शक्तिशाली और बुद्धिमान होगा। यदि इस बातकी गारन्टी भी की जा सके, तो भी स्वेच्छाचारी शासनोंमें एक बड़ा भारी दोष हो जाता है। वह यह है कि बड़े-से-बड़े प्रजाहितैषी, परन्तु स्वेच्छाचारी शासकके राज्यमें व्यावहारिक रूपसे शासक ही एकमात्र देशभक्त रह जाता है। देश या राज्यके अन्य सब सम्भव देशभक्तोंमें सर्वसाधारणकी भलाई करनेकी शक्ति विकसित नहीं हो पाती और वह बेकार चली जाती है। इससे देश और संसारकी बड़ी भारी हानि है। दूसरी ओर जिन राज्योंमें प्रतिनिधि-शासन है,

उनमें इस बातकी सम्भावना है कि प्रत्येक वयप्राप्त व्यक्ति जनसाधारणकी भलाई कर सकता है। मैंने यह युक्ति इस धारणाको सामने रखकर पेश की है कि स्वेच्छाचारी शासक प्रजाहितैषी हैं, परन्तु खेद है कि बात बहुत कम ऐसी होती है। उत्तरदायित्वहीन शक्ति आमतौरसे लोगोंको शक्तिके दुरुपयोग, अत्याचार और बरबादीकी ओर ले जाया करती है।

इन कारणोंसे तथा इसलिए कि किसी भी राज्यकी प्रजा उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है, सब रियासतोंके नरेशोंको चाहिए कि वे अपनी प्रजाको अपना सहकारी बनावें। मुझे आशा है कि राजसी कानोंको भी यह सुनकर विशेष आश्चर्य न होगा कि प्रजा राज्यका सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव है। जो लोग इस विषयपर विचार करते हैं, उनके लिए यह बात तो स्वतःसिद्ध है ही; क्योंकि प्रजा ही वह धन-सम्पत्ति उत्पन्न करती है, जिससे राजा लोग धनशाली बनते हैं, और प्रजा ही अपनी जान देकर देश और राजमुकुटोंकी रक्षा किया करती है। परन्तु जिन लोगोंको यह बात स्वतः सिद्ध न समझ पड़े, उन्हें मैं दो बातोंका स्मरण दिलाना चाहता हूं। पहली बात तो यह है कि प्राचीन कालसे प्रत्येक युगमें अनेकों ऐसे राज्य मौजूद रहे हैं, जिनमें कोई सम्राट्, राजा या नरेश नहीं रहा; लेकिन कभी कोई ऐसा राज्य नहीं रहा और न कभी हो सकता है, जिसमें केवल सम्राट्, राजा या नरेश और उसके घरेलू नौकर-चाकरमात्र हैं। इससे प्रकट होता है कि प्रत्येक राज्यकी प्रजा ही उसका अनिवार्य अंग है, न कि पुश्तैनी सम्राट्, राजा या शासक।

दूसरी बात यह है कि यदि हम संसारके सब छोटे-बड़े सभ्य और स्वाधीन देशोंकी गणना करें, तो हम देखेंगे कि आजकल उनमें से अधिकांश प्रजातन्त्र या रिपब्लिक हैं। हालके एक अभिधान-ग्रन्थ (Reference Book) को उठाकर देखनेसे मुझे ज्ञात हुआ कि संसारके ७० स्वाधीन देशोंमें ४५ प्रजातन्त्र हैं। बाक़ी राज्योंमें अल्बानिया, बेल्जियम, बल्गेरिया, डेनमार्क, ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैण्ड, हंगरी, नेदरलैण्ड्स, नार्वे, रूमानिया, स्वेडन, जापान, अफ़ग़ानिस्तान और फारसमें प्रतिनिधि व्यवस्थापिका सभाएँ हैं। इनके अलावा आयरिश फ्रीस्टेट, यूनियन आफ् साउथ अफ्रिका, कनाडा, न्यूफाउन्डलैंड, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड आदिमें भी उत्तरदायी शासन संस्थाएं हैं। इससे प्रकट है कि संसारके अधिकांश स्वाधीन देशोंमें प्रजाकी इच्छा ही सर्वोपरि है, और बाक़ी देशोंके अधिकांशमें भी प्रजाका मत एक ऐसी शक्ति है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। पूर्वोक्त वाक्यके अन्तिम अंशमें जो बात कही गई है, उसे कम ही समझना चाहिए; क्योंकि संसारका सबसे महत्त्वपूर्ण राज ग्रेट ब्रिटेन भी व्यावहारिक रूपसे एक पुश्तैनी रिपब्लिक (प्रजातन्त्र) ही है। वहाँपर राजा राज करता है, शासन नहीं करता। साथ ही ब्रिटिश साम्राज्यके स्वराज-प्राप्त डोमीनियन भी व्यावहारिक रूपमें प्रजातन्त्रके ही समान हैं।

संसारके सबसे शक्तिशाली स्वेच्छाचारी—जैसे रूसके ज़ार, जर्मनीके क़ैसर—अपने समयमें यह सोचते थे कि सर्वसाधारणकी इच्छाके विरुद्ध उनकी मनमानी सदा ही चलती रहेगी; परन्तु इतिहासने यह दिखला दिया कि वे ग़लतीपर थे। आजकलका सबसे शक्तिशाली राजतन्त्र देश ग्रेट ब्रिटेन है, वह इसीलिए है कि वहाँके राजाकी शक्ति जनसाधारणके प्रेम और इच्छाकी विशाल नींवपर स्थित है।

भारतीय रियासतोंके नरेश हिज़ मैजेस्टी महाराज पंचम जार्जको सम्राट् मानकर उनके प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करनेके लिए बाध्य हैं और करते भी हैं। लेकिन कहावत है कि किसीका अनुकरण करना ही उसकी सच्ची सराहना करना है। इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि हमारे देशी नरेशोंके लिए सम्राट्का अनुकरण

करना ही सम्राट्के प्रति उनको राजभक्तिका सच्चा प्रदर्शन है। यह बात निरापद रूपसे कही जा सकती है कि यदि हमारे देशी नरेश अपनी राजभक्तिको इस विशेष रूपसे प्रकट करेंगे, अर्थात् अपनी रियासतोंको परिमित राजतन्त्र (Limited monarchies) बना डालेंगे, तो सम्राट् महोदय उनसे उससे कम प्रसन्न न होंगे, जितने अभी होते हैं।

लेकिन जैसे भारतके ब्रिटिश शासक और ब्रिटिश जातिवाले भारत और भारतवासियों की स्वराजकी योग्यताको माननेमें बराबर अनिच्छा प्रकट करते आये हैं और इस अनिच्छाका निस्सन्देह भूलसे यह कारण बताते है कि भारतमें कभी प्रतिनिधि-शासन नहीं रहा, वह उसका आदी नहीं है। भारतीय किसी प्रजाहितैषी राजाको माई-बाप मानना अधिक पसन्द करते रहे हैं। ठीक इसी प्रकार हमारे देशी नरेश भी—कमसे कम उनमें से अधिकांश—यह सोच सकते हैं कि वैध शासक बनना भारतकी प्राचीन राजनैतिक परिपाटीके विरुद्ध होगा। परन्तु यह सोचना भूल है कि भारतमें जिन-जिन धर्मवालोंने शासन किया है, उन्हों ने किसी भी युगमें केवल स्वेच्छाचारी राजतन्त्रके सिवा और किसी प्रकारका शासन जाना ही नहीं। अंग्रेज़ोंके आगमनके पूर्व भारतमें तीन धर्मवालों ने शासन किया है—हिन्दू (जिनमें बौद्ध और जैन भी हैं), मुसलमान और सिख।

इनमें से हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें कई वर्ष पूर्व मैंने 'माडर्न रिव्यू'में अनेकों ब्रिटिश इतिहासरोंका—जैसे रिहस डेविड्स, विन्सेन्ट स्मिथ आदि—के उद्धरण यह सिद्ध करनेके लिए प्रकाशित किये थे कि प्राचीन भारतमें प्रजातंत्र-शासनपद्धति विद्यमान थी। इन उद्धरणों से मैं इस नतीजेपर पहुंचा कि प्राचीन भारतमें प्रजातन्त्र थे, और बुद्ध और महावीरके प्राचीन समय (ईसासे पूर्व छठी शताब्दी) में *और बादमें समुद्रगुप्तके शासन काल तक (ईसाकी चौथी शताब्दी)* प्रजातन्त्र थे। वे पंजाबसे बिहार तक और नेपालसे मध्य-प्रदेशकी दक्षिणी सीमा तकके विस्तृत भूभागमें फैले हुए थे। इस प्रकार भारतमें प्रजातन्त्र-शासन कमसे कम एक हज़ार वर्ष तक जारी रहा। मैं संसारके किसी भी प्राचीन अथवा अर्वाचीन देशको नहीं जानता, जिसमें जनतन्त्रवाद (डिमाक्रैसी) इतने दीर्घकाल तक चलता रहा हो। निस्सन्देह ये प्राचीन भारतीय प्रजातन्त्र छोटे-छोटे थे ; लेकिन संसारके अन्य देशोंके प्राचीन प्रजातंत्र भी तो ऐसे ही थे। प्राचीन इटलीमें रोमका प्रजातन्त्र ५०० वर्ष तक चला। प्राचीन ग्रीसमें एथेन्सका प्रजातन्त्र तीन सौ वर्षसे कुछ अधिक चला। और ये देश—जिनमें छोटे-छोटे प्रजातन्त्र थे—निश्चय ही विस्तारमें भारतके उन भागों से कहीं छोटे हैं, जिन्हें प्राचीन कालमें कई प्रजातन्त्र रखनेका गौरव प्राप्त था।

मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है कि पूर्व कालमें भारतवर्षमें स्वेच्छाचारी राजतन्त्र थे ही नहीं। वे निश्चय हो थे ; लेकिन साथ ही विभिन्न प्रकारके वैध राजतन्त्र भी, जिनके साथ लोकप्रिय अथवा अन्य प्रकारकी पंचायतें और सभाएँ संलग्न थीं, मौजूद थे। उस समय निर्वाचित राजा भी होते थे और बुरे राजाओंको गद्दीसे उतारनेकी क्रिया और विधान भी निर्धारित थे। बात यह है कि प्राचीन भारतने शासन-प्रणाली और राजनैतिक मेशीनरीमें कमसे कम उतने ही विभिन्न प्रकारके प्रयोग किये थे, जितने किसी भी अन्य जातिने किये हैं। यह व्याख्यान प्राचीन हिन्दू राजनीतिकी मीमांसा नहीं है, इसलिए मैं अपने कथनके समर्थनमें कोई प्रमाण उपस्थित करना नहीं चाहता। ये प्रमाण इस विषयकी पुस्तकोंमें मिल सकते हैं।

रहा यह प्रश्न कि मुस्लिम राजनैतिक विचार जनतन्त्रवाद पसन्द करते हैं या स्वेच्छा शासन। सौभाग्यसे हमें इस प्रश्नके उत्तरके लिए प्राचीन काल तक जानेकी आवश्यकता नहीं है। आजकल संसारकी अधिकांश मुस्लिम रियासतोंमें न्यूनाधिक रूपमें जनतन्त्रवादी राजनैतिक संस्थाएँ हैं। मैं इनमें से कुछकी ओर आपका

ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, क्योंकि इस विषयपर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था, नहीं दिया गया।

इस समय सबसे अधिक शक्तिशाली मुसलमानी राज्य टर्कीका प्रजातन्त्र है। टर्कीके 'फंडामेन्टल ला' के अनुसार देशका सम्पूर्ण आधिपत्य प्रजाका है, और देशका समस्त शासन-सम्बन्धी और व्यवस्थापक अधिकार 'ग्रैण्ड नेशनल एसेम्बली' (राष्ट्रीय महासभा) को है, जो प्रजाकी एकमात्र प्रतिनिधि है।

फारसमें भी एक राष्ट्रीय सभा या 'मजलिस' है। प्रत्येक 'मजलिस' दो वर्ष तक रहती है।

सन १६२२ से अफ़ग़ानिस्तानका शासन वैध राजतन्त्र है, जिसमें व्यवस्थापिका सभा, राज-परिषद् और एक मंत्री-सभा है, जिसका सभापति स्वयं राजा होता है।

सन १६२८ के विधानके अनुसार अलबानिया एक स्वतन्त्र जनसत्तात्मक पार्लमेन्टरी व्यवस्थायुक्त राजतन्त्र है। वहाँ राज्य किसी धर्मविशेषका अनुयायी नहीं है। व्यवस्था केवल एक ही निर्वाचित सभा द्वारा होती है। अधिवासियोंमें अधिकांश मुसलमान हैं।

अरबमें हेजाजकी रियासतके शासन-विधानमें कई परामर्शदात्री सभाओंकी व्यवस्था है, जिनमें मक्केमें एक व्यवस्थापिका सभा है। मदीना और जेद्दा, प्रत्येकमें म्यूनिसिपल कौन्सिलें और समस्त प्रदेशोंमें ग्राम और जाति सभाएँ हैं।

ईजिप्ट (मिश्र) के पैत्रिक राजतन्त्रका शासन भी प्रतिनिधि-शासन है। ईजिप्टवालोंको जाति, भाषा अथवा धर्मके भेद-भावके बिना, समान राजनैतिक, नागरिक और क़ानूनी अधिकार प्राप्त हैं। वहाँ व्यक्तिगत और धार्मिक स्वतन्त्रता निश्चित रूपसे निर्धारित हैं। सरकारी स्कूलोंमें बालक-बालिकाओंको अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्तमें दी जाती है। सम्पूर्ण शक्ति राष्ट्रसे उत्पन्न होती है।

सीरिया और लेबाननकी मनडेटेड् टेरिटोरी (अनुशासन-प्राप्त प्रदेश) प्रजातन्त्र हैं।

ईराकके 'आरगेनिक ला' के अनुसार वहाँ परिमित राजतन्त्र और उत्तरदायी शासन है। वहाँ दो व्यवस्थापिका सभाएँ हैं। एकमें २० मनोनीत 'वयस्क राजनीतिज्ञ' होते हैं और दूसरीमें ८८ निर्वाचित सदस्य।

बाशकिर, तातार, किरग़िज़ और दागेस्तान स्वतन्त्र प्रजातन्त्र रियासतें हैं। बुख़ारा और ख़ीवा साम्यवादी प्रजातन्त्र हैं। तुर्कमनिस्तान, उज़बकिस्तान और ताजिकिस्तान साम्यवादी सोवियेट प्रजातन्त्र हैं। अज़रबैजन भी एक साम्यवादी सोवियेट प्रजातन्त्र है।

मैं इन सब बातोंका उल्लेख यह प्रकट करनेके लिए कर रहा हूं कि जिन देशोंके अधिवासियोंका बड़ा भाग मुस्लिम है, उनमें से अधिकांशमें जनसत्तात्मक राज्य प्रणालियाँ ही प्रचलित हैं। मेरा उद्देश इस ग़लत धारणाको दूर करना है कि सब कहीं अथवा आमतौरसे मुसलमानोंकी मनोवृत्ति स्वेच्छाचारी शासनके पक्षमें है। इसका बिलकुल प्रतिकूल ही सत्य दिखाई देता है।

सिखोंके सम्बन्धमें स्वर्गीय डा० लीटनरने अपनी 'भारतीय स्वायत्तशासनमें देशी अवयव' (Indigenous Elements of Self-government of India) नामक पुस्तकमें लिखा है—"उनकी समस्त समस्याओं सांसारिक और आध्यात्मिक—का विधान उनके चार 'तख़्त' में हुआ करता था। 'तख़्त' के शाब्दिक अर्थ चौकी, मंच या सिंहासन हैं। ये चार तख़्त अखलगढ़, आनन्दपुर, पटना और अबचलनगरमें थे, जहाँ प्रत्येक सिखको, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, बोलनेका अधिकार था……।"

चूँकि भारतीय रियासतोंके नरेश या तो हिन्दू हैं या मुसलमान हैं अथवा सिख हैं, इसलिए मैंने जिन बातोंका यहाँ उल्लेख किया है, उनसे उन्हें इस बातका विश्वास हो जायगा कि यदि वे अपनी प्रजाको उत्तरदायी
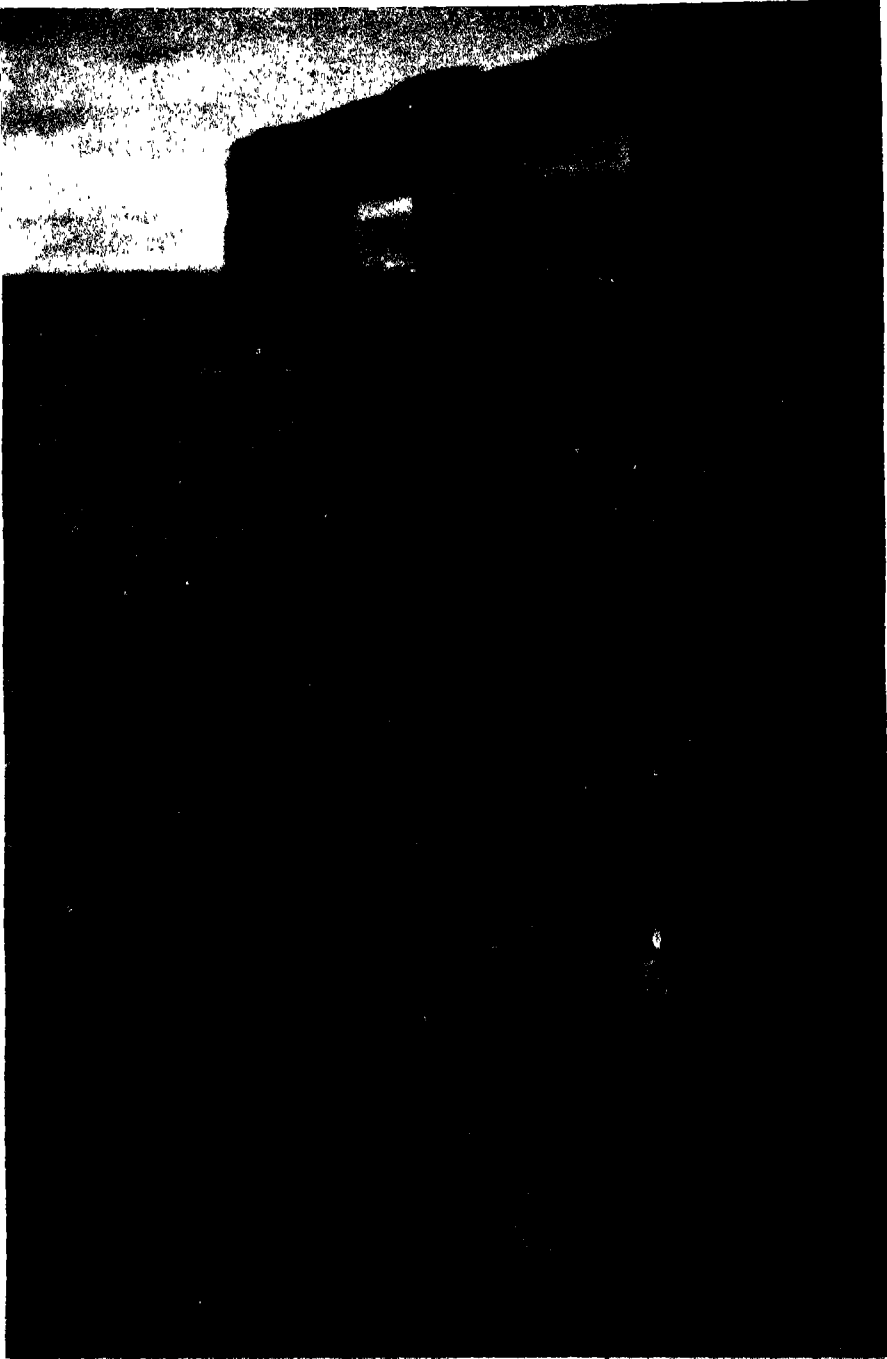
"विशाल-भारत"]

दुर्जयशक्तिसे चलकर मध्यकालीन स्वेच्छाचारिता, सामन्तवाद और अनियन्त्रित शासनके गढ़ोंको हिला देंगी।

हमारे देशी नरेश अपने सुलहनामोंकी बड़ी दुहाई देते हैं; मगर उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि जिस प्रकार संसारके अन्य भागोंने तमाम सुलहनामोंके रहते हुए भी अपने अधिकार प्राप्त कर लिए हैं, उसी प्रकार भारतीय रियासतोंकी प्रजा भी अपने अधिकार प्राप्त करेगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश नरेश व्यवहारमें इस बातको ध्यानमें नहीं रखते कि उनमेंसे कुछके सुलहनामोंमें स्पष्ट व्यवस्था है, जो उन्हें इस बातके लिए बाधित करती है कि वे सदा अपने राज्यका शासन न्याय-रूपसे करते रहें, जिससे प्रजाका हित हो और उसके सुखकी वृद्धि हो। उदाहरणके लिए इस प्रकारकी व्यवस्था निम्न-लिखित देशी राज्योंके सुलहनामोंमें पाई जाती है—पटियाला, कोल्हापुर, प्रतापगढ़, रामपुर, कूचबिहार, झींद, कपूरथला, नाभा, अजयगढ़, बिजावर, बिलासपुर, चम्बा, चरखारी, छतरपुर, फरीदकोट और पन्ना। अधिकांश रियासतोंके सम्बन्धमें यह व्यवस्था अब तक व्यर्थ ही रही है, क्योंकि मुख्य शक्ति (ब्रिटेन) देशी रियासतोंकी प्रजाके प्रति अपने कर्तव्यका उचित पालन नहीं करती और देशी नरेशोंपर भले प्रकार शासन करनेके लिए उस मुख्य शक्ति (ब्रिटेन) के दबावको छोड़कर अन्य कोई विधान नहीं है।

भारतीय गोलमेज़-कान्फ्रेन्समें भारतके लिए फेडरल विधान स्वीकार हो जानेसे हमारी रियासती प्रजाको नागरिकताके अधिकार प्राप्त करनेकी आवश्यकता पहलेकी अपेक्षा और भी प्रत्यक्ष हो गई है। यहाँपर फेडरल (संघबद्ध) अथवा एकक (Unitary) शासन-प्रणालियोंके आपेक्षिक गुण-दोषकी आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं है। भारतकी वर्तमान अवस्थामें भारतके विभिन्न प्रान्तों और रियासतोंको जनसत्तात्मक आधारपर संघबद्ध करके ही हम समूचे भारतको स्वतन्त्र कर सकते हैं।

खेदकी बात है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे इस फेडरल (संघ) विचारकी ओर अग्रसर होनेमें प्रत्येक क़दमपर भारतीय रियासतोंकी प्रजाके अस्तित्वकी पूरी उपेक्षा की गई है। यहाँपर यह आवश्यक नहीं है कि बटलर-कमेटीके सदस्यों और उसके कार्यक्षेत्र और उसके निष्कर्षकी आलोचना की जाय; मगर यह बतला देना चाहिए कि उस कमेटीके सामने रियासती प्रजाको गवाही न देने देना अनुचित और अन्यायपूर्ण है। उसके बाद फिर गोलमेज़-कान्फ्रेन्समें यद्यपि कई नरेश और उनके अधिकारी निमन्त्रित किये गये थे, मगर उसमें भी रियासती प्रजाकी उपेक्षा की गई। इस अन्यायका अब भी मार्जन किया जा सकता है। दस वर्ष पहले देशी रियासतोंकी आबादी मोटे हिसाबसे ७ करोड़ २० लाख थी। आजकल यह संख्या शायद ८ करोड़ होगी। यह संख्या फ्रांसकी जनसंख्यासे दूनी है, इटलीकी जन-संख्यासे दूनी है, ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैण्डकी जनसंख्यासे प्रायः दूनी है और जर्मनीकी जनसंख्यासे ३० प्रतिसैकड़ा अधिक है। इतनी बड़ी जनसंख्याको अपने भाग्यनिर्णयमें बोलनेका अधिकार न देना इतना गहरा अन्याय है, जो ईसाकी इस बीसवीं सदीमें कहीं भी न सुना गया होगा।

कुछ नरेशोंने यह दावा पेश किया है कि वे अपनी प्रजाके प्रतिनिधि हैं। कुछ नरेश ऐसे हो सकते हैं, और मैं विश्वास करता हूं कि कुछ ऐसे हैं, जो अपनी उदारता और जनसत्तात्मक स्वभावके कारण अपनी प्रजाके नामपर बोलनेके अधिकारी हैं; मगर वे भी अपनी प्रजाके प्रतिनिधि नहीं माने जा सकते। विलायतमें मज़दूर-दलके हाथमें शक्ति जानेसे एक क्रान्तिसी हो गई है। ब्रिटेनके राजवंशने, जिसके शिरोमणि सम्राट्

पंचम जार्ज हैं, अपनेको इस क्रान्तिकारी परिवर्तनके अनुकूल बना लिया है। राजवंशमें अपनेको समयके अनुकूल बना लेनेकी शक्तिके रहते हुए भी ग्रेट ब्रिटेनके लोग इस बातपर कभी भी राज़ी न होंगे कि उनके अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करनेका अधिकार छीन लिया जाय। ब्रिटिश राजा जन्मसे ब्रिटिश होते हैं, अपनी प्रजाकी भाँति उनकी मातृभाषा अंग्रेज़ी है, अधिकांश प्रजाकी भाँति वे ईसाई हैं और वे सर्वसाधारणकी इच्छाका अनुकरण करके पब्लिककी भलाईको अपने सार्वजनिक कार्योंका मुख्य ध्येय बनाते हैं। फिर भी वे अपनी प्रजाके प्रतिनिधि होनेकी अनुचित डींग नहीं मारते। हमारे देशी नरेशोंको चाहिए कि वे अपने राज-राजेश्वर सम्राट् पंचम जार्जके उदाहरणसे सबक़ सीखें।

संघबद्ध भारत (Federated India) की समस्त समस्याओंकी विवेचना यहाँ नहीं हो सकती; मगर मैं कुछका उल्लेख करूँगा।

गोलमेज़-कान्फ्रेन्समें नरेशों और उनका पक्ष-प्रतिपादित करनेवाले उनके अधिकारियोंने यह बात साफ़ कर दी थी कि वे उसी दशामें भारतीय फेडरेशन (संघ) में सम्मिलित होंगे, जब कि उनकी रियासतोंके भीतरी मामलोंमें उनकी स्वेच्छाचारिता वैसी ही बनी रहे, जैसी अभी है। चाहे जो हो, वे इस बातकी पूरी स्वतंत्रता चाहते हैं कि वे अपनी रियासतकी शासन-प्रणालीको बदलें या न बदलें। यदि अधिकांश रियासतोंका शासन उसी प्रकार होता रहे, जैसा अभी होता है, यानी नरेशकी इच्छाके अनुसार; और दूसरी ओर, जैसी आशा है, भारतीय सूबोंका शासन जनसत्तात्मक विधानके अनुसार निर्वाचित व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा हो, तब तो संघबद्ध भारत क्या होगा—असमान और एक दूसरेके विरोधी अंगोंका एक विचित्र सम्मिश्रण होगा। आजकलके किसी भी और संघमें यह बात नहीं है।

इस समय जितने महत्त्वपूर्ण संघबद्ध विधान मौजूद हैं, उनकी एक बड़ी विशेषता यह है कि उनमें साधारण सिद्धान्तोंकी एक घोषणा कर दी जाती है, जिसके अनुसार संघमें शामिल होनेवाली सभी रियासतोंको अपना शासन-विधान बनाना पड़ता है। उदाहरणके लिए अमेरिकाके संयुक्त-राज्यके विधानमें ऐसी व्यवस्था है, जिसके अनुसार संयुक्त-राज्यकी प्रत्येक रियासतके शासनमें प्रजातन्त्र-प्रणाली होनेकी गारंटी की गई है। इसी प्रकार स्विस-संघ-विधानमें भी विभिन्न 'कन्टनों' को संघ-सरकारसे इस प्रकारकी गारंटी माँगनेका अधिकार है। इस गारंटीके अनुसार अन्य बातोंके साथ-साथ प्रजातन्त्र-प्रणालीके अनुसार राजनैतिक अधिकारोंके उपयोग करनेका हक़ दिया गया है। इसी प्रकार जर्मनीके नये विधानमें इस बातकी व्यवस्था है कि जर्मन-प्रजातन्त्रमें सम्मिलित होनेवाली प्रत्येक रियासतका संगठन प्रजातन्त्र-प्रणालीका होगा।

इस प्रकारकी व्यवस्था रखनेका कारण बिलकुल साफ़ है। यह इसीलिए किया जाता है, जिससे संघ-प्रणाली सरलतासे काम कर सके; यही नहीं, बल्कि जिससे संघका मामूली तौरसे व्यावहारिक संचालन हो सके। उसको बनानेवाले भागोंमें परस्पर विरोधी अवयव न हों, जो विपरीत राजनैतिक आदर्शोंका अनुकरण करके प्रतिकूल दिशाओंमें उसकी खींचातानी करें। हमारे संघबद्ध भारतमें ब्रिटिश प्रान्तोंको न्यूनाधिक रूपमें उन्नत प्रतिनिधि-शासन मिलेगा। रियासतोंके शासनकी भी यही व्यवस्था होनी चाहिए। अगर रियासतोंके नरेश एकाएक यह परिवर्तन नहीं कर सकते, तो उन्हें इसके लिए कुछ समय ले लेना चाहिए, वे इसे छै वर्ष या नौ वर्ष अथवा पाँच या दस वर्षमें पूरा कर सकते हैं। इससे अधिक समयकी आवश्यकता नहीं।

भारतके प्रान्तों और देशी रियासतोंके शासन-विधानमें समानताकी जो माँग पेश की जाती है, वह

केवल इसीलिए नहीं है कि देशके भागोंमें कलापूर्ण सामंजस्य दीख पड़े, अथवा हम अमेरिकन, स्विस और जर्मन उदाहरणोंकी नकल करें; यद्यपि यह बात प्रत्यक्ष है कि जो लोग बहुत दिनोंसे स्वायत्तशासन कर रहे हैं, उनकी व्यवस्थामें राजनैतिक बुद्धिमानीका काफी अंश है। यहाँ तक कि लार्ड विन्टरटन सरीखे कट्टर उन्नति-विरोधीने भी 'फोर्टनाइटली रिव्यू' में लिखा है कि रियासतोंको कमसे कम कुछ हद तक जनसत्तात्मक बनना पड़ेगा। मैं एकसे अधिक दृष्टिकोणोंसे यह दिखला चुका हूं कि रियासती प्रजाके स्वार्थके लिए उन्हें स्वतंत्रतापूर्ण प्रतिनिधि-शासन मिलना चाहिए। यही नहीं, बल्कि प्रान्तोंके भी स्वार्थोंके लिए भी यह जरूरी है कि उन्हें नागरिकताके अधिकार प्राप्त हों। यह कथन उपस्थित करनेके सम्पूर्ण कारणोंपर मैं यहाँ विवेचना नहीं कर सकता। मैं यहाँ केवल एक ही कारण बताऊंगा।

यद्यपि रिपोर्टमें गोलमेज़-कान्फ्रेन्स और उसकी सब-कमेटियोंके फैसले अस्थायी कहे गये हैं, फिर भी ब्रिटिश जनमत उन्हें निश्चित बात मानकर व्यवहार करता जान पड़ता है, इसलिए यह सम्भव है कि उनमें से कुछ ज्योंके त्यों रह जायं। उनमें से एक यह है। 'फेडरल स्ट्रकचर सब-कमेटी'ने शिफारिश की है और कान्फ्रेन्सने उसे मंजूर भी कर लिया है कि—"मन्त्री तब तक इस्तीफा देनेके लिए बाध्य न हों, जब तक दोनों व्यवस्थापिका सभाओंके सम्मिलित सदस्योंका दो-तिहाई बहुमत उनके विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव पास न कर दे।"

अब, देशी नरेश फेडरल व्यवस्थापिका सभा की सीटोंकी कुछ संख्या अपनी रियासतोंकी ओरसे मांग रहे हैं। शायद जितना वे माँगते हैं, उन्हें पूरा उतना न मिले; मगर सम्भवतः समस्त रियासतोंकी सम्मिलित आबादी और क्षेत्रफलके आधारपर उन्हें कमसे कम एकतिहाई सीटें मिल जायँ, खासकर उस हालतमें जब कि बर्मा भारतसे पृथक् कर दिया जाय। साथ ही नरेशोंकी यह भी मांग है कि व्यवस्थापिका सभामें जानेवाले रियासतोंके प्रतिनिधि नरेशों द्वारा मनोनीत हों। इन स्वेच्छाचारियोंके मनोनीत व्यक्तियोंको स्वभावतः ही ब्रिटिश नौकरशाहीका समर्थन करनेकी आज्ञा होगी, क्योंकि नरेशों और नौकरशाहीमें यह भीतरी समझौता रहेगा कि नौकरशाही नरेशोंकी स्वेच्छाचारितामें हस्तक्षेप न करेगी। इस प्रकार नौकरशाही और नरेश जिस मन्त्रिमंडलके पक्षमें होंगे, उसे फेडरल व्यवस्थापिका सभाके एकतिहाई सदस्योंका समर्थन निश्चित है। बाकी दोतिहाई सदस्य जो बचे, उनमें यूरोपियन दल और कुछ संकुचित विचारोंके स्वार्थ-लोलुप भारतीयोंसे ऐसे मंत्रिमंडलके पक्ष-समर्थनकी आशा है। इस प्रकार ऐसे मंत्रिमंडलको निकाल बाहर करना कठिन होगा।

मंत्रिमंडलको निकालनेके प्रश्नके अलावा भी बचावके इतने नियम बनाये गये हैं और इतनी क़ैदें लगाई गई हैं, साथ ही ज़रूरत पड़नेपर शासन-कार्य चलानेके लिए केवल रक्षित विभागों ही में नहीं, बल्कि अरक्षित विभागोंमें भी—गवर्नरों और वायसरायको इतनी अतिरिक्त शक्ति दी गई है कि रियासती प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंकी सहायताके बिना फेडरल एसेम्बली जनसाधारणकी भलाईके लिए बिलकुल बेकार होगी। वह देशी स्वेच्छाशासकों और ब्रिटिश नौकरशाहीके हाथकी कठपुतलीके सिवा और कुछ नहीं हो सकती। इसके अलावा इस बातका भी डर है कि स्वेच्छाचारी नरेशों और नौकरशाहीके सम्मिलित प्रभावमें हमारा शासन-विधान उन्नतिप्रद मार्गपर विकसित होनेके स्थानमें कहीं और न गिर जाय।

इसलिए मैं यह कहता हूं कि रियासतोंका शासन-विधान प्रान्तोंके सदृश ही होना चाहिए। यदि फौरन

ही ऐसा न हो सके, तो कुछ निश्चित अल्प समयके भीतर ऐसा किया जाय।

नरेशोंने भारतके लिए संघ-विधानका समर्थन किस उद्देश्यसे किया है, इसपर विचार करनेकी मुझे आवश्यकता नहीं है। और न मुझे इस बातकी आवश्यकता है कि मैं यह पता लगाऊँ कि संघ-विधानमें शामिल होनेसे नरेशोंको कुछ त्याग भी करना पड़ेगा। इसके लिए जितना श्रेय वे चाहें, उन्हें ले लेने दीजिए। उनमें से कुछ नरेशोंने यह भी घोषित किया है कि उन्हें ब्रिटिश भारतके लोगोंकी राजनैतिक आकांक्षाओंसे प्रत्येक प्रकारकी सहानुभूति है। निस्सन्देह कुछ नरेश ऐसे हैं, जिन्हें यह सहानुभूति है और इसके लिए वे प्रशंसाके पात्र हैं। उन्हें वह प्रशंसा भी ले लेने दीजिए। हमारा आशय तो केवल जनताके स्वार्थोंकी रक्षा करना और उसकी उन्नति करना है। जनताकी भलाई और नरेशोंकी भलाईमें कुछ प्रतिद्वन्द्विता जरूरी नहीं है। यदि राजा लोग संघबद्ध भारतकी भलाईका उपाय कर रहे हैं, तो हम उनसे हार्दिक प्रार्थना करते हैं कि वे अपनी रिआयाको उत्तरदायी शासनका वरदान देकर और उनके नागरिकताके मौलिक अधिकारोंकी गारंटी देकर अपने लोकोपकारी उपायोंको जारी रखें।

एक देशी नरेशने, जो मानो खानगी तौरसे अन्य नरेशोंके प्रतिनिधि-रूपमें बोल रहे थे, यह कहा था कि रियासतें संघमें इसी शर्तपर शामिल हो रही हैं कि केन्द्रीय शासनमें उत्तरदायित्व मिले। क्या इसी प्रकार ब्रिटिश भारतवालोंको यह शर्त पेश करनेकी अनुमति नहीं मिल सकती कि वे संघमें शामिल होनेके लिए तभी राजी होंगे, जब देशी नरेश अपनी प्रजाको उत्तरदायी शासन *प्रदान करेंगे?*

यह कभी युक्तिपूर्ण और सुसंगत बात नहीं हो सकती कि भारतकी संघ-सरकार तो औरोंके साथ साथ नरेशों अथवा एसेम्बलीमें बैठनेवाले उनके मनोनीत व्यक्तियोंके प्रति उत्तरदायी हो; मगर स्वयं नरेश अपनी रियासतमें किसीके प्रति भी उत्तरदायी न हों। संघ-सरकारसे युक्तिपूर्वक और न्यायपूर्ण रीतिसे यह नहीं कहा जा सकता कि वह उन लोगोंके प्रति उत्तरदायी हो, जो अपने 'घरेलू मामलों'में अनुत्तरदायी हैं।

यदि संघबद्ध भारतके विधानमें रियासती प्रजाको ठीक उसी प्रकारकी नागरिकता नहीं दी जाती, जैसी ब्रिटिश भारतवालोंको, यदि रियासती प्रजाको हीनतर राजनैतिक अधिकार दिये जायँ, तो ब्रिटिश भारतवालोंका यह कर्तव्य होगा कि वे उस विधानको स्पर्श भी न करें।

प्रान्तों और रियासतों दोनों ही की सरकारोंको अपनी-अपनी जनताके प्रति—जनताके निर्वाचित किये हुए कौन्सिलके सदस्योंके द्वारा—उत्तरदायी होना चाहिए। जनसत्तात्मकके अर्थसे यही ध्वनि निकलती है। संघबद्ध भारतका शासन-विधान, यदि हम चाहते हैं कि वह रचनात्मक रूपसे समूचे भारतका कल्याण करे, तो उन सिद्धान्तोंकी नींवपर स्थित होना चाहिए। इसके लिए अन्य बातोंके साथ-साथ यह आवश्यक है कि जनताके मूल अधिकारोंकी घोषणा कर दी जाय। सभी नये पुराने महत्त्वपूर्ण राज्योंके विधान, जहाँ कहीं लिखित विधान प्रचलित है, इन्हीं मूल अधिकारोंकी घोषणासे अपने नागरिकोंकी स्वतन्त्रता और अधिकारोंकी रक्षा करते हैं। हमारी इंडियन नेशनल कांग्रेस भी अपने सुधारोंकी योजनामें बार-बार इन अधिकारोंकी घोषणाकी माँग पेश करती रही है। नेहरू-रिपोर्टके कर्ताओंने भी उसमें इस प्रकारके मौलिक अधिकारोंकी सूची दी है। दीवान बहादुर रामचन्द्ररावने, जो गोलमेज-कान्फ्रेन्सके एक सदस्य थे, कान्फ्रेन्समें इस विषयपर एक योग्यतापूर्ण *वक्तव्य उपस्थित किया था।*

मैसूरके दीवान सर मिर्ज़ा मुहम्मद इस्माइल, जो गोलमेज़-कान्फ्रेन्समें मैसूरके प्रतिनिधि थे, अपनी संघकी योजनामें यह स्वीकार किया है कि देशके शासन-

विधानमें इन मौलिक अधिकारोंकी व्यवस्था करना वांछनीय है। परन्तु इसके अतिरिक्त इस विषयपर कान्फ्रेन्समें कुछ न हुआ। जब अगली फेडरल स्ट्रक्चर सब-कमेटी अथवा समूची गोलमेज़ कान्फ्रेन्सकी बैठक हो, तब यह बात अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि इस विषयपर सबसे अधिक ध्यान दिया जाय, जिससे हमारे भावी शासन-विधानमें ऐसी व्यवस्था रहे, और प्रान्तों तथा रियासतों दोनों ही के अधिवासियोंकी स्वतन्त्रता और मौलिक अधिकारोंकी रक्षा हो सके।

देशी राज्य-प्रजा-परिषद्ने तीन मास पहले [illegible] कमेटीके पास जो लिखित वक्तव्य भेजा था, उसमें इस बातपर बहुत ज़ोर दिया गया था कि :-

(१) एकाधिपत्य ([illegible]) विभाजित न होना चाहिए। (२) अन्तमें केन्द्रीय संघ-सरकारके हाथमें होना चाहिए।

(२) यदि आवश्यक समझा जाय, तो यह एकाधिपत्य परिवर्तन-कालमें सुरक्षित विषय माना जाय।

(३) इस परिवर्तन-कालमें नरेशोंको चाहिए कि वे अपने शासनमें इस प्रकारके हेर-फेर कर लें, जिससे उनकी रियासतोंमें उत्तरदायी शासन स्थापित हो सके, और उन्हें इस शासनकी क्रमशः उन्नति करके उसे कार्यमें परिणत करनेका जिम्मा लेना चाहिए।

(४) रियासतें संघमें इसी शर्तपर दाखिलकी जायें कि उनके शासनका 'स्टैन्डर्ड' ब्रिटिश भारतके प्रान्तोंमें प्रचलित शासनके ढंगका ही होना चाहिए।

(५) यही शर्त रियासतोंको ब्रिटिश प्रान्तोंके लगभग समान बना देगी और संयुक्त भारतकी उन्नतिकी गतिको बढ़ावेगी। केवल यही शर्त संघ-सम्बन्धी विषयोंकी संख्या बढ़ावेगी। फलतः केन्द्रीय विषयोंकी संख्या घटेगी और केवल इसी क्रियासे सच्चे अखिल भारतीय संघके पूर्ण विकासमें सहायता मिलेगी।

(६) संघमें रियासतोंके प्रतिनिधि जनता द्वारा चुने हुए होने चाहिए और संघकी व्यवस्थापिका सभाके किसी भवनमें नरेशों द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियोंको किसी भी हालतमें स्थान न मिलना चाहिए।

(७) संघके विषयों (Federal Subjects) सम्बन्धी क़ानून-कायदे रियासतोंमें सीधे-सीधे चालू होने चाहिए। इन विषयोंका शासन संघकी कार्यकारिणीके हाथमें होना चाहिए। यदि रियासतकी सीमामें संघके क़ानून तोड़े जायँ या उनकी पाबन्दी न हो, तो संघके सुप्रीम कोर्टमें उसपर मुक़दमा चल सके।

(८) जब तक रियासतोंमें उत्तरदायी शासन न स्थापित हो जाय, जब तक स्वतन्त्र अदालतें न क़ायम हो जायँ और जब तक रियासतोंमें क़ानूनका शासन जारी न हो जाय, तब तक रियासतकी अदालतें संघके सुप्रीम कोर्टसे संलग्न कर दी जायँ।

(९) संघके विधानमें जनताके मौलिक अधिकारोंकी घोषणाकी व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए, और रियासतोंके लोगोंको भी इन अधिकारोंका आश्वासन मिलना चाहिए, और इन अधिकारोंपर आघात करना संघके सुप्रीम कोर्ट द्वारा दंडनीय होना चाहिए।

(१०) रियासती प्रजाको यह अधिकार मिलना चाहिए कि वह उन सब भावी कान्फ्रेन्सोंमें अपने प्रतिनिधि भेज सके, जो भारतका विधान बनानेके लिए बुलाई जायँ।

यह सब मांगें समर्थनके योग्य हैं।

देशी नरेश कहते हैं कि उनके इंगलैण्डके बादशाहके साथ सीधे सुलहनामे हैं। अतः भारतको संघ-शासन-विधान प्राप्त हो जानेपर भी उनका वायसरायके द्वारा बादशाहसे सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। देशी नरेश किस उद्देश्यसे ऐसा कहते हैं, उसकी परीक्षा करनेकी मुझे ज़रूरत नहीं है। स्वयं वकील न होनेके कारण मैं इस विषयपर अपनी कोई राय नहीं दे सकता ; मगर मैंने

कुछ बड़े-बड़े भारतीय वकीलोंकी इस विषयपर राय पढ़ी है। उनमें से सर शिवस्वामी अय्यरकी विद्वत्तापूर्ण और विचारपूर्ण कृति—"भारतकी विधान समस्यायें" (Indian Constitutional Problems) से यह उद्धृत करता हूं—

"अब रहा यह प्रश्न कि देशी नरेशोंने किसके साथ सन्धि की थी, सो इस विषयमें यह कहना कि ये सन्धियाँ ब्रिटिश सम्राट्के साथ की गई थीं और इस बातका बिलकुल खयाल नहीं रखा गया था कि वे ब्रिटिश भारतके शासक हैं, ठीक नहीं है ... ये सन्धियाँ सम्राट्ने अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे नहीं की थीं अथवा ब्रिटेनके शासककी हैसियतसे नहीं, बल्कि ये ब्रिटिश भारतके शासककी हैसियतसे की गई थीं ... ये सन्धियाँ ......जिस समय देशी राज्योंका जो कोई भी शासक हो, उसे भारत-सरकारके तत्कालीन शासकके प्रति अपने कर्तव्य पालन करनेके लिए बाधित करती हैं ... गवर्मेन्ट आफ् इंडिया ऐक्टमें भारत-सरकारकी कार्यकारिणी-समिति और देशी राज्योंमें राजनैतिक सम्बन्धके अस्तित्वको ध्यानमें रखा गया है। ब्रिटिश भारतकी सरकारकी कार्यकारिणी समितिको देशी राज्योंके साथ काम-काज करनेका पूर्ण अधिकार है। एक बातसे यह मामला बिलकुल साफ़ और निर्विवाद हो जाता है, वह यह कि गवर्मेन्ट आफ् इंडिया ऐक्टकी २०वीं धाराके द्वितीय वाक्यके अनुसार भारत-सरकारकी आमदनीमें वे सब भेट (खिराज) शामिल समझी जाती हैं, जो देशी राज्योंसे ईस्ट इंडिया कम्पनीको सन १८५८ के गवर्मेन्ट आफ् इंडिया ऐक्टके पास हो जानेसे पहले मिला करती थीं। भारत-सरकारके संबंधका इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण भला और क्या मिल सकता है कि ये भेंटें भारत-सरकारकी आमदनीमें सम्मिलित समझी जाती हैं......यह कहना कि किसी देशका राजा अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे सन्धि करता है, न कि उस देशके शासककी हैसियतसे, इतना ऊटपटाँग है कि इस बीसवीं सदीमें इसको कोई युक्तिसंगत नहीं कह सकता ... जिन बातोंका ज़िक्र इन सन्धिपत्रोंमें आता है, उनका सम्बन्ध भारत-निवासी व्यक्तियों तथा वस्तुओंसे है और उनकी उत्पत्ति देशी नरेशों तथा ब्रिटिश भारतके शासकोंके सम्बन्धसे है, तो फिर शासन-विधानके नियमानुसार यह एक ऐसी अचिंत्य ऊटपटाँग बात होगी कि इन सन्धियोंके अनुसार कार्य करनेका अधिकार भारतके तत्कालीन शासकोंको न हो, बल्कि किसी दूसरेको हो।"

भारतके इन महान क़ानूनदाँके ये शब्द हमारे जैसे आदमियोंको, जो इस विषयके विशेषज्ञ नहीं हैं, युक्ति-संगत प्रतीत होते हैं।

अनेक महाराजाओंने कहा है—"हम और हमारी प्रजा इस बातको एक क्षणके लिए भी गवारा नहीं कर सकती कि ब्रिटिश भारतके निवासी हमपर अपनी हुकूमत चलायें।" पर देशी राजाओं और उनकी प्रजाओंको प्रान्तोंके अधीन तो कोई नहीं करना चाहता। फेडरेशन या संघ-राज्यके माने यह है कि राज्यों और प्रान्तोंको एक सरकारकी आज्ञाका पालन करना होगा, और यह सरकार इन राज्यों तथा प्रान्तोंसे मिलकर बनेगी। दूसरेकी हुकूमत सहनेमें जो अपमान होता है, उसे हम आसानीसे समझ सकते हैं; लेकिन जिन आदमियोंको विदेशी पोलिटिकल आफिसरोंकी मनमानी बराबर सहनी पड़ती है, अच्छा होता, यदि वे अपने स्वदेश-बंधुओंके सम्बन्धमें इस प्रकार अपमानभरी बात कहनेका कष्ट स्वीकार न करते।

हमारे राजा-महाराजा चाहे जो खयाल करें, पर हम साधारण भारतीय तो भारतमाताको प्रणाम करनेमें जिस अभिमानका अनुभव करते हैं, उस अभिमानका अनुभव हम बड़ीसे बड़ी विदेशी शक्तिको प्रणाम करनेमें कदापि नहीं कर सकते, चाहे वह शक्ति अस्त्र-शस्त्रोंसे कितनी ही अधिक सुसज्जित क्यों न हो।

देशी नरेशोंके विषयमें सबसे अधिक गम्भीर शिकायत यह भी है कि उनके घरेलू खर्चों तथा निजी आमोद-प्रमोदोंमें राज्यकी आमदनीका एक बहुत बड़ा हिस्सा खर्च किया जाता है। राज्य उनकी कुछ व्यक्तिगत सम्पत्ति तो है नहीं। वैसे मामूली आदमी भी अपनी आयका बहुत बड़ा भाग मौज उड़ानेमें खर्च करे और सर्वसाधारणके हितार्थ बहुत कम व्यय करे, तो जनता उनको भी यह कहकर दोषी ठहराती है कि वे मनुष्योंके साधारण आदर्शसे बहुत पिछड़े हुए हैं। इसलिए देशी नरेशोंसे यह आशा की जाती है कि वे अपने निजी खर्चको घटाव और उन विभागोंपर, जिन्हे प्रान्तोंमें राष्ट्र-निर्माण-सम्बन्धी विभाग कहते है, जैसे शिक्षा-विभाग इत्यादि, पर अधिकाधिक खर्च करें।

इस विषयमें ब्रिटिश सम्राट्का आदर्श हमारे देशी नरेशोंके लिए शिक्षाप्रद होना चाहिए। अब जरा ब्रिटिश सम्राट्के घरेलू खर्चपर दृष्टि डालिये। सन १९२९-३० में ब्रिटेनकी साधारण आमदनीका योग ७३,४१,८८,७४८ पौण्ड था, जिसमें ५७,६,००० पौण्ड सम्राट्के घरेलू खर्चके लिए नियत था, यानी ब्रिटेनकी कुल आमदनीका ·०८ फीसदी (अर्थात् ८ प्रति हज़ार)। आजकलके एक्सचेंजकी दरके अनुसार ब्रिटिश सम्राट्के घरेलू खर्चकी रक़म ७६ लाख ८० हज़ार रुपये हुई। खेद है कि इस समय मेरे पास उन देशी राज्योंकी शासन-सम्बन्धी रिपोर्टें नहीं हैं, जो इस प्रकारकी रिपोर्ट निकाला करती हैं। इस कारण मेरे लिए यह उचित न होगा कि मैं उन दो उन्नतिशील राज्योंका यहाँ नामोल्लेख करूं, जिनकी आख़िरी रिपोर्ट इस समय मेरे सामने है और ब्रिटेनकी सिविल लिस्टके अंकोंसे तुलना करनेके लिए जिन रिपोर्टोंसे मैं अंक उद्धृत करूँगा।

एक राज्यमें जिसकी वार्षिक आय दो करोड़ उनचास लाख थी, घरेलू राजाके खर्चकी मदमें उन्तीस लाख साठ हज़ार रुपये लिखे हुए हैं। यह रक़म कुल आमदनीकी १२ फीसदीसे कुछ ही कम बैठती है। दूसरी रियासतमें कुल आमदनी दो करोड़ सैंतालीस लाख तेईस हज़ार है, और राजाका घरेलू खर्च तेरह लाख सड़सठ हज़ार है, जो ६·५४ फीसदी आकर पड़ता है। यह पिछली रियासत अपनी कुल आमदनीका २०·१२ शिक्षापर खर्च करती है, इसलिए उसके राजाका घरेलू खर्च मामूली दर्जेका ही समझा जाना चाहिए; पर यदि ब्रिटिश सम्राट्के खर्चसे उसकी तुलना की जाय, तो हमारे इन देशी राजाओंका घरेलू खर्च उतना मामूली नहीं जँचेगा। यह मैं मानता हूं कि ब्रिटेनकी आमदनी बहुत ज्यादा है, इसलिए उसकी सिविल लिस्टकी रक़में अनुपातमें बहुत छोटी प्रतीत होती है, पर साथ ही यह भी तो खयाल करना चाहिए कि सम्राट् पंचम जार्ज संसारके सबसे विस्तृत साम्राज्यके शासक हैं, और इस दृष्टिसे उनके घरेलू खर्च उपर्युक्त दोनों देशी राजाओंके घरेलू खर्चोंके मुक़ाबलेमें बहुत कम प्रतीत होते हैं। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, ये दोनों राज्य तो उन्नतिशील हैं; पर हमारे यहाँ तो ऐसे-ऐसे राज्य भी पड़े हुए हैं, जिनके शासक अपने अस्तबल, मोटर-गृह और कुत्ता-घर पर जितना व्यय करते हैं, उतना अपनी प्रजाकी शिक्षापर भी नहीं करते!

हमारे देशी नरेश चाहे और बातोंकी परवाह करें या न करें, पर मैं यह विश्वास करता हूं कि वे इस बातसे अवश्य प्रसन्न होंगे कि उनके राज्योंकी आमदनी बढ़ जाय। आमदनी तभी बढ़ सकती है, जब राज्यके प्राकृतिक द्रव्यसाधनोंका विकास हो और उनका उपयोग किया जाय। यह विकास और उपयोग तभी सम्भव है, जब उन राज्योंकी प्रजा अधिक स्वस्थ हो और उसे उपयुक्त शिक्षा - औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा—मिले।

यह बात भी स्पष्ट ही है कि इन देशी नरेशोंके

राज्योंमें धनकी वृद्धिके लिए न केवल उनकी प्रजाकी शारीरिक शक्ति, ज्ञान और चातुर्यकी वृद्धिकी आवश्यकता है, बल्कि मजदूरोंकी वृद्धिकी भी ज़रूरत है और साथ-साथ राज्यमें उपलब्ध उस शक्तिकी भी, जो इनका नियंत्रण करे। कहनेका अभिप्राय यह है कि यदि स्वास्थ्य-साधनोंमें उन्नति की जाय, उचित प्रकारकी शिक्षाका प्रचार किया जाय और जनसंख्याकी वृद्धिमें मजदूरोंकी संख्यामें भी वृद्धि हो जाय, तो राज्यमें धनकी वृद्धि हो सकती है। संक्षेपमें यों कहिये कि उन राज्योंके लिए उत्साही और बहुसंख्यक कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है।

जिन सुधारोंका निर्देश मैंने किया है उनमें प्रजा और राजा दोनोंका ही हित होगा। इस समय देशी राज्योंके बहुतसे आदमी ब्रिटिश भारतका चक्कर लगाते हैं अथवा वहाँ स्थायी रूपसे बस जाते हैं और धनवान बन जाते हैं, जिससे प्रकट होता है कि उनमें उत्साह और बुद्धि है। उनके इस उत्साह और शक्तिका उपयोग इसी प्रकार उन देशी राज्योंके द्रव्यसाधनोंके विकासमें हो सकता है, क्योंकि वे निवासी हैं।

कुछ आदमी यह ख़याल कर सकते हैं कि देशी राज्योंकी जनसंख्या-वृद्धिके विषयमें बोलते हुए मैं आवश्यकतासे अधिक आबादी होनेके ख़तरेकी उपेक्षा कर रहा हूँ, लेकिन यह बात नहीं है। ब्रिटिश भारतमें औसतन एक वर्गमील पीछे २२६ आदमी रहते हैं, और देशी राज्योंमें सिर्फ १०१ आदमी प्रति वर्गमीलके हिसाबसे। देशी राज्योंमें यदि कोई स्थान ऐसा है, जहाँकी आबादी बहुत घनी है, तो वे मदरासकी रियासतें हैं, जहाँ वर्गमील पीछे ५११ आदमी रहते हैं। दूसरी रियासतोंकी आबादीका औसत बहुत कम है। देशी राज्योंका क्षेत्रफल ७,१२,०३२ वर्गमील है, और उनकी आबादी ७,१६,३९,१८७ है और प्रान्तोंका क्षेत्रफल १०,९४,३०१ वर्गमील तथा जनसंख्या २४,७०,०३,२९३ है। इसका मतलब यह हुआ कि ब्रिटिश भारतका क्षेत्रफल देशी राज्योंके क्षेत्रफलसे ड्योढ़ा है, पर उसकी आबादी देशी राज्योंकी आबादीसे तीन गुनीसे भी अधिक है।

यह अन्तर और भी अधिक आश्चर्यजनक प्रतीत होगा, यदि हम बर्माको ब्रिटिश भारतसे निकाल दें। तब ब्रिटिश भारतका क्षेत्रफल [illegible] वर्गमील और जनसंख्या [illegible] होगी। मुकाबला कीजिए देशी राज्योंके क्षेत्रफल [illegible] तथा मनुष्य-गणना [illegible] और [illegible] उनपर ब्रिटिश भारतकी आबादीका औसत [illegible] प्रति वर्गमील होगा, जब कि देशी राज्योंका केवल [illegible] वर्गमील है।

यह हो सकता है कि [illegible] देशी राज्योंकी अपेक्षा कहीं अधिक कृषियोग्य और उपजाऊ [illegible] जाती हो और यह भी सम्भव है कि [illegible] लिहाजसे ब्रिटिश भारतके [illegible] अपेक्षा कहीं अधिक समृद्धिशाली [illegible] ठीक तौरपर अपना मत [illegible] अंक और विवरण [illegible] चाहिए कि सर्वश्रेष्ठ और बहुसंख्यक [illegible] ब्रिटिश भारतमें ही [illegible] ब्रिटिश भारतका विदेशोंसे समुद्री व्यापार [illegible] बहुत कुछ सुविधा होती है, और यह सुविधा [illegible] भारतमें बसी हुई देशी रियासतोंको नहीं है। लेकिन उपर्युक्त मामलोंमें इन सब सुविधाओंको ध्यानमें रख लेनेके बाद भी हमें यह कहना पड़ेगा कि ये सुविधाएँ इतनी अधिक नहीं हैं, जिनके कारण ब्रिटिश भारत और देशी राज्योंकी जनसंख्याके औसतमें इतना फर्क पड़ जाय। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इनके सिवा कुछ अन्य कारण भी अधिक काल तक अपना प्रभाव डालते रहे होंगे, जिनके कारण यह अन्तर उत्पन्न हुआ। ये कारण इन बातोंसे सम्बन्ध रख सकते हैं — उन स्थानोंके द्रव्य-

साधनोंका उपयोग, पुष्टिकारक खाद्य-पदार्थ, स्वास्थ्य और सफाई, इलाजका सुभीता, शिक्षा, व्यापार तथा कृषिके लिए सुविधा। इनके अतिरिक्त क़ानून द्वारा शासन, व्यक्तिगत स्वाधीनता, जायदाद तथा ज़िन्दगीकी रक्षा, न्यायालयोंकी पूर्ण स्वाधीनता, भाषण, मीटिंग तथा प्रेसकी स्वतन्त्रता। उपर्युक्त बातोंकी घटा-बढ़ीसे जनसंख्याके औसतपर काफ़ी असर पड़ सकता है। समस्त देशी राज्योंके विषयमें जन्म मृत्यु-विषयक अंक नहीं मिल सकते हैं। शायद कुछ रियासतें ऐसी हैं, जो शिक्षा इत्यादि विषयोंमें ब्रिटिश भारतका मुक़ाबला कर सकती हैं, और बहुत थोड़ी ऐसी भी हो सकती हैं, जो ब्रिटिश भारतकी अपेक्षा कुछ विषयोंमें अधिक उन्नत हों। लेकिन यह बात हमें लज्जापूर्वक स्वीकार करनी पड़ेगी कि समग्ररूपसे देशी भारत उपर्युक्त सभी अथवा अधिकांश विषयोंमें ब्रिटिश भारतकी अपेक्षा अधिक पिछड़ा हुआ है। साधारणतः भारतीय देशी राज्य मनुष्यके मस्तिष्कको संकुचित बनाते हैं। यह बात बिलकुल ठीक है कि मनुष्य सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, और मनुष्यमें भी उसका मस्तिष्क सर्वोच्च है। यदि किसी देशमें मनुष्यकी केवल आर्थिक उन्नतिका ध्यान रखा जाय और मस्तिष्कको संकुचित रहने दिया जाय, तो वह देश एक सुप्रबन्धयुक्त मवेशी-खानेके समान होगा। यदि जनताके मस्तिष्कको अविकसित और संकुचित दशामें रखा जाय, तो उससे जो हानि होगी, उसकी पूर्ति किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती; पर कुल मिलाकर भारतीय भारत (देशी राज्यों) के विषयमें तो यह भी नहीं कहा जा सकता कि वहाँ जनताकी आर्थिक उन्नतिका भी ख़याल रखा जाता है।

बड़े खेद और लज्जाके साथ मैं भारतके देशी राज्योंकी त्रुटियोंका निर्देश करता हूं। कर्तव्यसे प्रेरित होकर ही मुझे ऐसा करना पड़ता है।

मेरा विचार था कि कुछ देशी राज्योंकी तुलना उन विदेशी राज्योंसे करूँ, जो जलवायु, आर्थिक साधन तथा भौगोलिक स्थितिमें उनके समान हों, जिससे कि मेरे श्रोता इनकी आर्थिक तथा बौद्धिक स्थितिके अंतरको समझ सकें; पर उपर्युक्त सब बातोंमें समान दो देशोंका मिलना लगभग असम्भव है, फिर भी कुछ-न-कुछ तुलना हो सकती है और वह शिक्षाप्रद होगी।

काश्मीर और स्विट्ज़रलैंडको ही लीजिए। दोनों ही देश पहाड़ी हैं, सर्द हैं, दोनोंका जलवायु स्वास्थ्यप्रद है और दोनोंमें ही समुद्री किनारेका अभाव है।

स्विटजरलैंडके महान पुत्रोंकी बौद्धिक कृतियों और उनके स्वतन्त्रताके संग्रामने स्विस-जातिको सदाके लिए प्रसिद्ध कर दिया है। काश्मीरी भी बड़ी प्रतिभाशाली जाति है, यह बात उन काश्मीरियोंकी, जो पंजाब तथा संयुक्त-प्रदेश आगरा-अवधमें जाकर बस गये हैं, बौद्धिक उन्नतिसे प्रकट होती है। काश्मीरसे आये हुए लोग स्वतन्त्रताके भी बड़े प्रेमी होते हैं, यह बात उनके प्रमुख व्यक्तियोंके राजनैतिक कार्योंमें भाग लेने और उसके फलस्वरूप कष्टसहन करने और त्याग करनेसे प्रकट होती है; मगर अपने देशमें रहनेवाले काश्मीरियोंकी बौद्धिक कृतियाँ क्या हैं? उन्होंने कौनसी राजनैतिक विज्ञता और वीरता दिखलाई है? अपने देशमें रहनेवाले तथा बाहर जाकर बसनेवाले काश्मीरियोंमें जो यह अन्तर दिखाई देता है, क्या इसका कारण वह विभिन्न राजनैतिक परिस्थिति नहीं है, जिनमें वे रहते हैं? सम्पूर्ण संयुक्त भारतवर्षमें शिक्षाके विचारसे काश्मीरका स्थान सबसे नीचा है। काश्मीरमें खनिज द्रव्य काफी परिमाणमें मौजूद हैं, जिनकी अब तक जाँच-पड़ताल भी नहीं की गई है।

स्विट्ज़रलैंडका क्षेत्रफल १५,९४० वर्गमील और आबादी चालीस लाखसे ऊपर है। सन् १९२९ में वहांकी आय १,३१,८०,००० पौंड (१७,५७,३३,३३३) रुपये) थी। काश्मीरका क्षेत्रफल ८४,२५८ वर्गमील (स्विट्ज़रलैंडके क्षेत्रफलके पांचगुनेसे भी अधिक) और

आबादी ३३,२०,५८८ (स्विट्ज़रलैंडसे कम) है। सन् १९२७-२८ में काश्मीरकी आय २,३९,००,०००) रुपये अथवा स्विट्ज़रलैंडकी आयका सातवां भाग थी।

भारतके हैदराबादकी भांति चेकोस्लोवेकिया यूरोपमें एक चारों ओर थलसे घिरा हुआ राज्य है। दोनों ही खनिज पदार्थोंसे भरेपूरे हैं। मगर हैदराबादके खनिज पदार्थोंका अब तक सफलतापूर्वक विकास नहीं हुआ है। दोनोंमें पहाड़, हरेभरे सुन्दर भूभाग और साथ ही अबपाशी की हुई उपजाऊ भूमि हैं। हैदराबादका क्षेत्रफल ८२,६९८ वर्गमील और आबादी १,२४,७१,७७० है। सन १९२८-२९ में उसकी आयका अनुमान ७९.३ लाख था। शिक्षाके विचारसे हैदराबाद भारतवर्ष-भरमें केवल काश्मीरसे ही कुछ थोड़ासा बढ़ा हुआ है। चेकोस्लोवेकियाका क्षेत्रफल ५४,२०७ वर्गमील अर्थात हैदराबादसे बहुत कम है, मगर आबादी अधिक है, अर्थात सन् १९२१ में १,३६,१३,१७२ थी। चेकोस्लोवेकियाकी आय अस्सी करोड़ रुपया है। और इस प्रजातन्त्रके लोग बहुत अधिक सुशिक्षित हैं।

इसी प्रकारसे अन्य छोटी रियासतोंकी तुलना सुनते-सुनते आप ऊब जायँगे, इसलिए मैं बस करता हूं।

मैं यह कह चुका हूं कि बोलनेकी स्वतन्त्रता, सभा करनेकी स्वतन्त्रता और प्रेसकी स्वतन्त्रता सांसारिक और बौद्धिक उन्नतिके लिए आवश्यक हैं। आधुनिक समयमें ये बातें सभ्य जातियोंके मौलिक अधिकारोंमें हैं। अभाग्यवश साधारण तौरपर हमारी रियासतोंमें इनका अस्तित्व नहीं है। इसके अतिरिक्त ऐसा कोई नियम नहीं है, जो रियासतकी किसी प्रजाको किसी भी समय रियासतसे निकाल बाहर किये जानेसे रोक सके।

सभ्य देशोंमें समाचारपत्र (प्रेस) केवल शिकायतोंको प्रकाशित करने और अन्यायों तथा अत्याचारोंका भण्डाफोड़ करनेके लिए ही नहीं होते। वे सामाजिक बुराइयोंको भी दूर करते हैं और सब विषयोंपर लाभदायक ज्ञानका प्रसार करते हैं। वे एक ज्ञानवर्द्धक मार्ग हैं। अतः हमारी रियासतोंमें उनके विकासको प्रोत्साहन देना चाहिए; मगर दुर्भाग्यसे ऐसा नहीं होता। अधिकांश रियासतोंमें एक भी समाचारपत्र नहीं है।

यह बात देखकर कि ब्रिटिश भारतमें बहुतसे समाचारपत्र हैं, परन्तु भारतीय भारतमें इतने कम हैं, कुछ लोग जल्दीमें यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि समाचारपत्र तभी आवश्यक होते हैं, जब देश विदेशियोंकी अधीनतामें हो। इससे यह मतलब निकलता है कि समाचारपत्र केवल विदेशी शासनकी बुराइयोंके विरोधमें लिखनेके लिए ही होते हैं; मगर यदि यह मान भी लिया जाय कि समाचारपत्रोंका एकमात्र मुख्य काम सरकार और उसके अधिकारियोंकी आलोचना करना है, तो भी यह ऐतिहासिक सत्य बतला देना चाहिए कि देशी शासक और देशी सरकारें भी अकसर दोषी हुआ करती हैं। यही कारण है कि उन देशोंमें भी जहांके राजा उसी जातिके थे, जिस जातिकी प्रजा थी, विद्रोह हुए हैं।

हमारी रियासतोंका शासन ऐसे लोग करते हैं, जो भारतीय हैं; मगर उनका शासन सर्वांगपूर्ण नहीं है बल्कि ऐसा विश्वास है कि उनमेंसे अधिकांशमें बहुत कुछ कुशासन विद्यमान है। इसलिए रियासतोंमें समाचारपत्र होने चाहिए, जिससे वे उन्नति कर सकें। समाचारपत्रोंका अस्तित्व और उन्नतिशील शासनका पारस्परिक वही सम्बन्ध है, जो कारण-कार्य अथवा कार्य-कारणका है। जो देश जितना ही अधिक स्वतन्त्र और सुशासित है, वहाँ उतने ही अधिक सुचारु-रूपसे परिचालित समाचार-पत्र हैं, और जिस देशमें जितने अधिक उच्चकोटिके समाचारपत्र हैं, उस देशके उतने ही अधिक स्वतन्त्र और सुशासित होनेकी सम्भावना है।

इस सत्यको न समझकर और शायद आलोचनाके डरसे देशी रियासतोंके नरेशोंने अपने राज्योंमें न केवल

समाचारपत्रोंकी वृद्धिको ही रोका है, बल्कि समय-समय पर ब्रिटिश भारतके अख़बारोंको भी अपने राज्यमें आनेकी मनाही की है। उन्होंने इतनेपर ही बस नहीं किया। उन्होंने भारत-सरकारसे 'देशी नरेश-संरक्षण ऐक्ट' (Prince's Protection Act) नामक क़ानून भी बनवाया, जिससे किसी नरेशके पब्लिक चरित्र अथवा उसकी रियासतके शासनकी (बहुधा ये दोनों बातें पर्यायवाची होती हैं) प्रभावपूर्ण और ब्योरेवार आलोचना करना ख़तरनाक हो गया है। देशी नरेशोंको ब्रिटिश भारतकी प्रजासे संरक्षणकी आवश्यकता है, इस विचार ही को सुनकर देवतागण भी हँस पड़ेंगे। क्या हम लोग ऐसे अत्याचारी हैं? अधिकसे अधिक हम यही कर सकते हैं कि कड़े शब्द कहें, परन्तु कड़े शब्दोंसे किसीकी हड्डियाँ नहीं टूटतीं। यदि देशी नरेश इतना झुक सकते हैं कि संरक्षण पानेके लिए वे भारत-सरकारसे प्रार्थना करते फिरें, तो यदि हम उनके ख़िलाफ़ कोई अपराध करें, तो वे हमपर उन अपराधोंके लिए ब्रिटिश अदालतमें मुक़दमा चलानेके लिए राज़ी क्यों नहीं होते?

बाक़ी रही उनकी प्रजा, सो उससे नरेशोंको संरक्षणकी आवश्यकता नहीं है। वहाँ तो बेचारी प्रजाको अत्याचारी नरेशोंसे संरक्षणकी आवश्यकता है।

कुछ नरेशोंने इस बातपर ज़ोर दिया है कि "ब्रिटिश भारत और देशी रियासतें दो एकदम भिन्न वस्तुएँ हैं।" मुझे आश्चर्य है कि किसी देशी रियासतके शासनकी आलोचना कहीं उस नये क़ानूनके फंदेमें न आ जाय, जो ब्रिटिश भारत और विदेशी राज्योंमें दुर्भाव रोकनेके नामपर बनाया गया है!

मुझसे शायद यह आशा की जायगी कि मैं बीकानेरके दीवान सर मनुभाई मेहताकी हालकी वक्तृताके सम्बन्धमें कुछ कहूं। सर मनुभाई कोई अज्ञान व्यक्ति नहीं है, वरन् वे बड़े जानकार राजनीतिज्ञ हैं। इसलिए मैं अभी तक यह अच्छी तरह नहीं समझ सका कि वे क्यों बोले थे।

वे गोलमेज़-कान्फ्रेन्सके सदस्य थे, अतः उन्हें इस बातका पूरा मौक़ा था कि वे अपने साथियोंको जो कुछ वे अब कह रहे हैं, बतलाते। वे कहते हैं कि "फेडरेशन (संघ) जिसे देशी नरेशोंके स्वीकार करनेकी सम्भावना है, ऐसा होगा जो ख़ास तौरपर निश्चित किये हुए विषयों—जिनमें सबका समान स्वार्थ हो—के संबंधमें सम्मेलन या यूनियनकी अपेक्षा 'कनफेडरेशन' (Confederation) की ओर अधिक झुका हुआ होगा।" सर मनुभाईको इस सम्मेलन या यूनियन (Union and Unity) का हौआ उठानेकी कोई आवश्यकता न थी। किसीने यह बात नहीं कही कि रियासतें अपना पृथक् अस्तित्व अथवा व्यक्तिस्वातन्त्र्य खो दें। रहा कनफेडरेशन, सो कोषकार वेबस्टरने उसकी व्याख्या इस प्रकार की है—"कनफेडरेशन स्वतन्त्र राज्योंकी एक गोष्ठी है, जो न्यूनाधिक स्थायीरूपमें इस बातके लिए सम्मिलित होते हैं कि आपसके साधारण स्वार्थोंपर, विशेषकर विदेशी मामलोंमें, सम्मिलित कार्यवाही कर सकें।" न तो ब्रिटिश भारतके सूबे ही स्वतन्त्र हैं और न देशी रियासतें, अतः उनके सम्मेलनको 'कनफेडरेशन' नहीं कहा जा सकता। अमेरिकन लोग 'फेडरेशन' और 'कनफेडरेशन' को एक दूसरेके इतना विपरीत समझते हैं कि अमेरिकाके संयुक्त-राज्यमें सम्मिलित रियासतोंको किसी 'कनफेडरेशन' में शामिल होनेकी मनाही कर दी गई है।

'कनफेडरेशन' के विभिन्न अंग कोई नया राज्य नहीं बनाते। 'कनफेडरेशन' में सम्मिलित होनेवाले राज्योंकी स्वाधीनता अक्षुण्ण रहती है। दूसरी ओर 'फेडरेशन' (संघ) में सम्मिलित होनेवाली रियासतें एक नये संयुक्त राज्यकी सृष्टि करती है, जिनमें स्वाधीनता केन्द्रीय राज्य और फेडरेशन बनानेवाले विभिन्न राज्योंमें बटी रहती है। इसी प्रकारके राजनैतिक संगठनका प्रस्ताव गोलमेज़-कान्फ्रेन्समें किया गया है।

सर मनुभाईने आगे चलकर कहा है—"इस प्रस्तावसे

कि भावी भारतका सुप्रीम फेडरल कोर्ट रियासतोंके सबसे बड़े न्यायालयोंके फैसलोंकी भी अपीलें सुन सके, ब्रिटिश भारत और देशी राज्योंके सम्पूर्ण सम्मेलनकी ध्वनि निकलती है, जब कि केवल कुछ निर्धारित विषयोंके लिए ही संघ बनानेका इरादा था।" क्या ही अच्छा होता, यदि थोड़ी भी रियासतोंमें उचित रीतिसे संगठित न्यायालयोंका नाम भी होता। खैर, यह तो केवल प्रसंगक्रमकी बात है। निस्सन्देह सर मनुभाई जानते हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि संसारके किसी भी संघमें अपीलकी अन्तिम अदालत नहीं है। उदाहरणके लिए स्विट्ज़रलैंडकी 'फेडरल ट्रिब्यूनल' अपने अन्य कर्तव्योंके साथ अपीलकी अन्तिम अदालतका भी काम करती है। इससे स्विट्ज़रलैंडकी संघ-प्रणालीके विभिन्न अंगों (Cantons) की स्वाधीनतामें फ़र्क पड़ता नहीं माना जाता। संयुक्त-राज्य अमेरिकाका सुप्रीम कोर्ट अनेक बातोंमें अपीलकी अन्तिम अदालत है। इसके अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेनकी प्रिवी कौन्सिलकी जुडीशल कमेटीके अधिकारोंकी सीमामें उपनिवेशोंकी क़ानूनी अदालतोंकी अपीलें सुनना भी है। यह भी उपनिवेशोंकी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करना नहीं माना जाता। सर मनुभाईकी रायमें भारतीय रियासतें अनन्वय (केवल अपने ही समान *Sui generis*) हैं, लेकिन निस्सन्देह इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके सम्बन्धकी सब बातें ऐसी हों, जो कभी जल, थल, आकाशमें हुई ही न हों।

मुझे संक्षेपमें सर मनुभाईकी वक्तृताके कुछ अंशोंका उल्लेख करना पड़ेगा। वे घोषणा करते हैं :—

"यह कहना कि भारतीय रियासतोंकी प्रजा आगेसे संघबद्ध भारतकी प्रजा हो जायगी, और इसलिए उसे ब्रिटिश भारतकी प्रजाके समान मौलिक अधिकारोंकी घोषणाकी आवश्यकता है, राजभक्तिके प्राकृतिक नियमोंकी पूरी-पूरी उपेक्षा करना है। देशी नरेश जिस प्रकार अपनी आन्तरिक स्वाधीनताको एकदम अक्षुण्ण और एकाकी रखनेके लिए चिन्तित हैं, उसी प्रकार वे यह नहीं चाहते कि उनकी प्रजाकी राजभक्ति विभाजित हो।"

जैसा सर मनुभाई चाहते हैं, यदि यह मान भी लिया जाय कि रियासती प्रजा केवल अपनी-अपनी रियासतोंकी ही प्रजा बनी रहे, तो भी क्या यह आवश्यक न होगा कि उसे सभ्य नागरिकोंके प्रारम्भिक अधिकार—जैसे देहकी स्वतन्त्रता, बोलने-लिखनेकी स्वतन्त्रता, सभा करनेकी स्वतन्त्रता, अख़बारोंकी स्वतन्त्रता और नियमानुकूल बनाये हुए क़ानूनोंके अनुसार खुली अदालतमें मुकदमा चलाकर दंडित हुए बिना किसी प्रकारकी सज़ा न पानेकी स्वाधीनता आदि प्रदान किये जायँ? रियासती प्रजाको अभी ये अधिकार प्राप्त नहीं है, पर चाहे संघ हो, या न हो, उन्हें ये अधिकार मिलना चाहिए। क्या सर मनुभाई यह चाहते हैं कि देशी रियासतोंकी प्रजा हमेशा अपने शासकोंकी अनुकम्पाकी भिखारिणी और ग़ुलाम बनी रहे? वे लोग इस बातपर कदापि राज़ी नहीं हो सकते।

एक मार्ग ऐसा है, जिसके द्वारा नरेशोंकी स्वाधीनता, जैसी कुछ वह है—बनी रह सकती है, साथ ही लोगोंकी माँग पूरी हो सकती है। हालहीमें एक अवसरपर हिज़ हाइनेस महाराज बीकानेरने रियासती प्रजाकी मौलिक अधिकारोंकी घोषणाकी माँगपर कहा था—

"हम जानते कि परिवर्तनशील अवस्थाके अनुसार हमें अपनी शासन-प्रणालीमें कब और कैसे हेर-फेर करना चाहिए, और हम अपने निजी ढंगपर बिना किसी बाहरी हस्तक्षेपके यह हेर-फेर करेंगे।"

हिज़ हाइनेस और उनके अन्य भाइयोंको चाहिए कि वे स्वयं अपनी इच्छासे अपनी प्रजाको नागरिकताके प्रारम्भिक अधिकार उदारतापूर्वक प्रदान कर दें। इससे इस सम्बन्धमें बाहरी लोगोंके हस्तक्षेपकी सम्भावना ही मिट जायगी।

बीकानेरके दीवान साहब 'राजभक्तिके प्राकृतिक

नियम' का क्या अर्थ निकालते हैं? यह एक विचित्र पद है। क्या उनका यह मतलब है कि पृथ्वीको आकर्षणशक्तिके भौतिक नियमके समान यह भी कोई ऐसा अपरिवर्तनशील नियम है, जो नरेशोंको अपनी प्रजाकी राजभक्तिपर पूर्ण अधिकार देता है? संघबद्ध भारतके जन्मके बाद हम ब्रिटिश भारतके रहनेवाले अपने-अपने प्रान्तोंके राजभक्त होंगे, साथ ही संघबद्ध भारतके भी राजभक्त होंगे। हम अपने-अपने प्रान्तीय क़ानूनोंका पालन करेंगे, साथ ही संघके नियमोंको पालेंगे। हम लोग यथाक्रम आसाम, बिहार आदिके नागरिक होंगे, साथ ही संघबद्ध भारतके भी नागरिक होंगे। इसी प्रकारसे क्या किसी ख़ास रियासतकी प्रजाके लिए यह असम्भव होगा कि वह अपनी रियासत और संघबद्ध भारत दोनोंकी राजभक्त रहे, रियासतके और साथ ही संघके नियमोंका पालन करे और रियासतकी नागरिक बननेके साथ-साथ संघकी भी नागरिक बने?

संघका तत्त्व यही है कि संघ बनानेवाले विभिन्न अंग अपनी कुछ शक्तियाँ समूचे संघबद्ध भागको दे डालें। यदि देशी नरेश सचमुचमें सम्पूर्ण भारतवर्षके लिए संघ चाहते हैं, तो यह कैसे हो सकता है कि उनकी रियासतकी "आन्तरिक स्वाधीनता अक्षुण्ण और अछूती बनी रहे?" शायद सर मनुभाईके मालिक तथा उनके अन्य भाई (नरेश) की इस चिन्ताने कि वे लोग अपनी स्वेच्छाचारिताका अक्षुण्ण उपभोग करते रहें, सर मनुभाईके विचारोंमें परिवर्तन कर दिया है और विलायतसे लौटनेपर उन्होंने पुनः विचार करके 'फेडरेशन' की जगह 'कनफेडरेशन' की बात कही है।

सर मनुभाई सोचते हैं कि—"केवल प्रजाके सम्मिलित स्वार्थोंके क्षेत्रमें—जिनका सम्बन्ध सबसे हो—जैसे, रक्षाका प्रबन्ध, वैदेशिक सम्बन्ध, रेलवे, चुंगी, डाक और तार तथा करेन्सी और एक्सचेंज आदिमें ही उनकी प्रजा संघकी व्यवस्थापिकामें बैठेगी और देशके लिए एक सामान्य नीति निर्धारित करनेमें अपनी राय देगी।"

वक्ता महोदयने यह बड़ा अच्छा किया, जो उन्होंने संघको व्यवस्थापिकामें रियासती प्रजाको (नरेशोंके मनोनीत सदस्योंके रूपमें?) बैठने और देशकी सामान्य नीति निर्धारित करने तथा मैं समझता हूँ कि संघ-सम्बन्धी विषयोंपर क़ानून बनानेमें भाग लेनेकी अनुमति देनेकी बात कही। लेकिन क्या रियासतकी प्रजा संघ-सम्बन्धी विषयोंके जिन नियमोंको बनानेमें सहायता देगी, उन नियमोंके प्रति राजभक्त न होगी? इससे क्या उनकी राजभक्ति विभाजित न हो जायगी? क्या सर मनुभाईको इस बातका पूरा निश्चय है कि संघके विषयोंमें कोई ऐसे विषय न होंगे, जिनपर आजकल रियासतोंका पूरा या आंशिक अधिकार है? क्या इन विषयोंके संघमें सम्मिलित करनेसे नरेशोंकी घरेलू स्वतंत्रता एकदम अक्षुण्ण बनी रहेगी?

यह प्रश्न उठाया गया है कि अवशिष्टात्मक शक्तियाँ (Residuary powers) किसके हाथमें दी जायँ। मुझे रत्तीभर भी सन्देह नहीं है कि ये शक्तियाँ केन्द्रीय या संघ-सरकारको मिलनी चाहिए। रियासतों और प्रान्तोंके लिए अत्यधिक चिन्ताका विषय यह होना चाहिए कि वे आन्तरिक मतभेद, सम्बन्ध-विच्छेद करनेवाली, विभाजनकारी और विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों तथा बाहरी आक्रमणोंसे संघबद्ध भारतकी स्वतंत्रताकी रक्षा करें तथा उसे अक्षुण्ण बनाये रखें। केवल इसी कारणसे ही अविशिष्टात्मक शक्तियाँ (Residuary powers) संघ-सरकारके ही हाथमें होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रियासतों और प्रान्तोंकी विधि-व्यवस्था और शासनको समकक्ष करने तथा उनके आपसी झगड़े निपटानेके लिए भी इन शक्तियोंकी आवश्यकता होगी। आरम्भमें निस्सन्देह सभी विषय फेडरल (संघ-सम्बन्धी) और नान-फेडरल (असंघ-सम्बन्धी) श्रेणियोंमें विभक्त किये जायँगे; मगर समय पाकर

अनेकों नये और अश्रेणीबद्ध विषय उठ खड़े होंगे। उनके लिए सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि विधानमें यह व्यवस्था रहनी चाहिए कि इस प्रकारके सब विषय अपने ही आप संघ-सरकारके अधिकारमें समझे जायँ।

सभी भारतीयोंकी—जीवनमें उनका चाहे जो स्थान हो—यह हार्दिक अभिलाषा होनी चाहिए कि भारतवर्ष शीघ्र ही हमारी महत्त्वाकांक्षाके चरम लक्ष्यकी ओर शुभ यात्रा आरम्भ कर दे। ऐसे अवसरपर अधिकसे अधिक सहयोग और शान्तिका नियम होना चाहिए। मेरा यही विश्वास है, इसलिए आलोचना करना मुझे एक दुखदायी कर्तव्य जान पड़ता है; मगर मैं आशा करता हूं कि मेरी आलोचना केवल खंडनात्मक ही नहीं हुई। मैं आशा करता हूं कि जहाँ कहीं मेरी आलोचना खंडनात्मक हुई भी है, वहाँ मेरा उद्देश्य उन बातोंको दूर करना ही है, जो हानिकर, जरा जर्जरित तथा सड़ी हुई है, जिससे उनके स्थानमें उनसे उत्तम और अधिक कार्यप्रद वस्तुएँ रखी जा सकें।

कार्यकर्ता होना एक गर्वप्रद अधिकार है। और कार्यकर्ता सदा सेवक हुआ करता है। हमारी यह महत्त्वाकांक्षा है कि हम मातृभूमिके सेवक बनें। हममें जो सबसे महान हैं,—चाहे वे अपने पैतृक पदके कारण या अपनी बुद्धि और आध्यात्मिकताके कारण अथवा दोनों ही कारणोंसे महान हों—उन्हे सेवक कहलानेमे लज्जित होनेकी आवश्यकता नहीं है। रोमके पोपका समस्त संसारमें अपने करोड़ों सहधर्मियोंपर निर्विवाद रूपसे आध्यात्मिक प्रभाव है; और वे अपनेको 'ईश्वरके सेवकोंका सेवक' कहते हैं। भूतपूर्व अमीर अमानुल्लाने अपनेको प्रजाका सेवक घोषित किया, और इस सत्य-कथनसे उनको प्रशंसा प्राप्त हुई। स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखलेने भारतके सेवकोंकी एक समिति ही स्थापित की, और वे स्वयं उसके प्रथम सेवक थे। महात्मा गांधी अपनेको जनताका सेवक कहते और मानते हैं।

प्राचीन भारतके निर्वाचित राजाओं और विभिन्न प्रकारके परिमित शक्तिवाले नरेशोंकी बात छोड़ दीजिए, जो लोग नितान्त स्वेच्छाचारी राजा कहलाते थे, उनसे भी धर्म और परम्पराके अनुसार प्रजाकी सेवाकी आशा की जाती थी। 'राजा' शब्दकी उत्पत्ति ही—"प्रजान् रञ्जयतीति राजा" अर्थात् प्रजाको जो सन्तुष्ट रखे, वह राजा है—इस आन्तरिक भावको प्रकट करती है। कालिदासके 'रघुवंश'की एक पंक्तिसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—

"तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृति रञ्जनात।"

अर्थात्—'वह अपनी प्रजाको सन्तुष्ट करके अक्षरशः राजा हो गया।'

उसी महाकाव्यमें एक सूर्यवंशी राजाके लिए कहा गया है -

"प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥"

अर्थात्- "वह केवल प्रजाकी भलाईके निमित्त ही उनसे कर लिया करता था। जिस प्रकार सूर्य जल सोखकर उससे सहस्रों गुणा अधिक बरसाता है।"

राजा प्रजाका सेवक होता था, यह बात केवल कहने-भरकी नहीं थी। यह प्राचीन भारतीय राजनीति शास्त्रका एक स्पष्ट रूपसे कथित सिद्धान्त था। प्रमाणके लिए मुझे शुक्रनीतिसारका एक श्लोक देना पर्याप्त है—

"स्वभागभृत्या दास्यत्वे प्रजानां च नृपः कृतः।
ब्रह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हि सर्वदा॥"

अर्थात्—'ईश्वरने स्वामीके रूपमें राजाको प्रजाका सेवक बनाया है। उसे करके रूपमें अपना भाग मिलता है, जिससे वह सर्वदा प्रजाकी रक्षा और पालन कर सके।'

आइये, हम सब परमेश्वरसे प्रार्थना करें, कि वह हमें मातृभूमिकी सच्ची सन्तान और सच्चा सेवक बनावे।

हिन्दीकी उत्पत्ति

डा० सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय, एम०ए० (कलकत्ता), डी० लिट् (लन्दन)

हिन्दी भारतवर्षकी राष्ट्रभाषा है, यह तो एक स्वतःसिद्ध बात है। हर काममें, अपने प्रतिदिनके जीवनमें हम ऐसा ही देखते हैं। हिमालयके तुषारमंडित गिरिराजस्थित सरल पीलू और चीर-वृक्षकी अरण्यावलीसे दक्षिण-समुद्रके पास कन्या कुमारी और सेतुबन्ध-रामेश्वरके नारिकेल-कुंजोंतक, आसाम और बर्माके अति-वृष्टिसिक्त 'सेगुन' वन और हरिद्वर्ण धान्यक्षेत्रोंसे अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तानके दुर्गम वारिहीन मरुपर्वत तक, उत्तरसे दक्षिण और पूरबसे पश्चिम आसमुद्र हिमाचल समग्र भारतवर्षकी तमाम देशी भाषाओंमें एक हिन्दी ही भारतीय जातिकी विभिन्न शाखाओंके मनुष्योंमें एक दृढ़ और उपयोगी मिलन शृंखला बनी है। यदि इसका कारण पूछा जाय, तो एक ही बातमें हम इसका उत्तर दे सकते हैं। भारतीय सभ्यताका उत्पत्तिस्थान तथा केन्द्र गंगा और यमुनाका तीरवर्ती देश आर्यावर्त ही है। आर्यावर्तके श्रेष्ठ अंश मध्यदेशकी भाषा हिन्दी है। हिन्दीके प्रसारका पहला मुख्य कारण यही है कि हिन्दी भारतके हृदयदेशकी भाषा है। दूसरा कारण है हिन्दी-भाषियोंकी उद्यमशीलता। हिन्दी जितने लोगोंकी स्वाभाविक मातृभाषा या घरेलू भाषा है, उससे दूने चौगुने लोगोंकी शिक्षा, साहित्य और सामाजिक जीवनकी भाषा बनी है। सहज जन्मगत अधिकारसे पूर्व-पंजाब, मध्यभारत और पछाँहके जो लोग हिन्दी बोलते हैं—चाहे यह हिन्दी अपने विशुद्ध भारतीय रूपमें हो, चाहे अपने मिश्रित मुसलमानी रूप उर्दूमें—और पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, और बिहार प्रान्तके जो लोग साहित्यिक और सामाजिक भाषाके रूपमें हिन्दीको स्वीकार कर उसे सब कामोंमें व्यवहार करते हैं, इन दोनों प्रकारके मनुष्य अपनी-अपनी जीविकाकी फ़िक्रमें समग्र भारतवर्षमें फैले हुए हैं, और दूसरे प्रान्तोंके सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवनको आर्यावर्तके प्रभावसे इतना प्रभावान्वित कर रहे हैं कि साथ-साथ आर्यावर्तकी भाषा बिना प्रयत्न किये हुए भी सुप्रतिष्ठित हो गई है। हिन्दीका यह उच्च स्थान स्वाभाविक कारणोंसे प्राप्त हुआ है, इसलिए जब तक आर्यावर्त भारतकी संस्कृतिका मूल-स्थान रहेगा, तब तक हिन्दीका यह आसन नहीं मिटनेका।

ऐतिहासिक और भाषातत्त्वकी भी दृष्टिसे अगर देखा जाय, तो हिन्दीकी व्यापकता और भारतकी राष्ट्रभाषा होनेके लिए एक हिन्दी ही की योग्यता सब लोगोंको माननी पड़ेगी।

अन्ध तिमिराच्छादित प्राग् ऐतिहासिक युगके अवसानके साथ जिस समय वैदिक युगके अरुणिमा-मंडित ज्योतिर्मय उषःकालमें भारतीय संस्कृतिक सूर्यका उदय हुआ, उस समय हमारी हिन्दी, बंगला आदि आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओंकी आदि जननी वैदिक भाषा भारतमें श्रेष्ठ भाषा थी। भारतीय अनार्य लोगोंकी अपनी-अपनी पृथक् बोलियाँ थीं, पर वैदिक भाषाके सामने इनमें किसीको कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं मिली। वैदिकोत्तर अर्थात् संहितोत्तर कालमें ब्राह्मण ग्रन्थोंका युग आया। पंजाब और मध्यदेशके दक्षिण और पूर्वमें आर्य-भाषाका फैलाव हुआ। स्वाभाविक परिवर्तन-धर्मके अनुसार, तथा हज़ारों और लाखों अनार्यभाषियोंके आर्य-भाषाको ग्रहण करनेके कारण वैदिक तथा ब्राह्मण-युगकी आर्यभाषा भी विशुद्ध नहीं रही, प्राकृतोंका उद्भव होने लगा। भगवान बुद्धके आविर्भावके पूर्व ही आदिम या प्राचीन आर्यभाषा प्राकृत या मध्यकालीन अवस्थामें पहुँच गई। इसी समय आर्योंके गुरुकुलोंमें लौकिक साहित्य-भाषा संस्कृतकी प्रारंभिक प्रतिष्ठा हुई। पाणिनी आदि बड़े बड़े व्याकरणकार ऋषियोंने इसका व्याकरण लिखकर इसे चिरकालके लिए परिमार्जित किया।

प्राकृतोंके उद्भव होनेके समयसे ही, लौकिक संस्कृत प्राचीन भारतके जनगणकी—विशेषतः ब्राह्मण-शासित समाजकी—भाषा हुई। मुहावरेमें विभिन्न प्रान्तोंकी आदि आर्यभाषाओंकी प्रगति पृथक्-पृथक् रीतिसे होने लगी। इसीसे पृथक्-पृथक् प्रान्तीय प्राकृतोंकी उत्पत्ति हुई। जिस संस्कृत भाषाको सारे हिन्दू-संसारने अपनी धार्मिक और संस्कृति-सम्बन्धी भाषा मान लिया, उसका आधार उदीच्य अर्थात् पंजाब और मध्यदेशकी लौकिक बोली ही थी। भगवान बुद्धदेवके पहले, ब्राह्मण-ग्रन्थोंके युगमें, ब्राह्मण सभ्यताका केन्द्र मध्यदेश अर्थात् कुरुपंचाल देश और उदीच्य अर्थात् मद्र, केकय, गंधार आदि देश थे। उन प्रान्तोंमें तथा अन्तर्वेदकी ब्राह्मणादि शिष्ट जातियोंमें व्यवहृत भाषा यह संस्कृत थी। अस्तु, संस्कृत आर्यसभ्यताका वाहन या माध्यम स्वरूप होकर इस सभ्यताके साथ तमाम भारतवर्षमें फैली, और भारतवर्षके बाहर बृहत्तर भारतमें—बर्मा, श्याम, कम्बोज, चम्पा, मालय, यवद्वीप, बलिद्वीप आदिमें भी—इसका प्रसार पहुँचा। भारतवर्षके इतिहासके प्रारम्भमें आर्यावर्त—मध्यप्रदेश अर्थात् हिन्दुस्तानके पछाँहकी बोली संस्कृतके रूपमें सारे भारतवर्षमें गृहीत हो गई। जहाँ तक पता चलता है, संस्कृतका मौखिक रूप सिर्फ पंजाब और अन्तर्वेदमें ही प्रचलित था। अन्यान्य प्रान्तोंमें जब आर्यभाषा फैली, तब इसकी अवस्था बदल गई थी—संस्कृत प्राकृत हो गई थी।

सारे उत्तर-भारतमें जिस समय प्राकृत या प्रादेशिक बोलियाँ प्रचलित हुईं, तब प्रान्तीय प्राकृतोंमें अन्तर्वेद—विशेषतया ब्रह्मर्षिदेश या कुरुपंचालकी प्राकृत शौरसेनी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। संस्कृत नाटकोंमें श्रेष्ठ सद्वंशज पात्र बात करनेमें इस शौरसेनी ही का प्रयोग करते थे। इससे यह साबित होता है कि प्राकृत-युगमें शौरसेनीका स्थान क्या था। गानेमें महाराष्ट्रीय प्राकृतका प्रयोग था, यह ठीक है; इसका कारण इतना ही मालूम होता है कि महाराष्ट्रीय प्राकृतमें स्वर बहुत होनेसे शौरसेनीसे श्रुतिमधुर मानी जाती थी, और गानेमें इसीलिए शायद लोग इसे ज्यादा पसन्द करते थे।

महाराज अशोकके लेखमें मुख्यतः तीन प्रकारकी प्राकृत मिली हैं—उदीच्य, लाट-देशीय, और प्राच्य। परन्तु मध्यदेशीय प्राकृत नहीं मिली—मध्यदेशमें टोपरा और मेरठके दो खम्भोंपर जो लेख हैं, उनमें पूरबकी बोली ही व्यवहार की गई है। महाराज अशोक पूरबके रहनेवाले थे, शायद इसीसे उनकी प्रान्तिक बोली मध्यदेशमें भी प्रयुक्त हुई। भारतके इतिहासमें सिर्फ एक ही बार पूरबकी बोलीने पछाँहपर चढ़ाई की।

परन्तु महाराज अशोकके समय एक नई साहित्यिक भाषा भारतसे सिंहलमें फैली—यह पालि भाषा है। पहले पंडित लोग सोचते थे कि पालिकी जड़ पूरबमें—मगधमें—थी, क्योंकि इसका एक और नाम है 'मागधी'। अब पालिके सम्बन्धमें पंडितोंकी राय बदल रही है। अब विचार है कि पालि पूरबकी नहीं, बल्कि पछाँहकी—मध्यदेशकी ही बोली थी—शौरसेनी प्राकृतकी एक प्राचीन रूपभेद थी। बुद्धदेवके उपदेश पूरबकी बोली प्राच्य प्राकृतमें, जो कोसल, काशी और मगधमें प्रचलित थी, उस ही में प्रकट हुए। फिर इस प्राच्य प्राकृतसे और प्राकृतोंमें अनुवादित किये गये। मथुरा और उज्जैनकी भाषामें जो अनुवाद हुआ, उसका नाम दिया गया 'पालि'। सिंहलमें जब इस अनुवादका प्रचार हुआ, तब वहाँके लोग भूलसे इसे 'मागधी'के नामसे पुकारने लगे, क्योंकि पालि बुद्धवचन था, और भगवान बुद्धने मगधमें अपने जीवनका बहुत अंश बिताया, इससे बुद्धवचन या पालिसे मगधका सम्बन्ध सोचकर 'मागधी' नाम रखा। सिंहलमें ब्रह्मदेश तथा श्याम और कम्बोजमें यह पालि भाषा फैली। ऐसे दो हजार वर्षके पहले मध्यदेशकी भाषा—जिसे हम हिन्दीका एक प्राचीन रूप कह सकते हैं—बहिर्भारतके बौद्धोंकी धार्मिक भाषा बनी। यह बात इस युगके पहलेकी है। ईसवी सदीके प्रारम्भसे संस्कृतके बाद उत्तरमें शौरसेनी भद्रसमाजमें बोली जाती थी। इसका प्रभाव दूसरी प्राकृत बोलियोंपर भी पड़ा। भाषा-तत्त्वके विचारसे ग्रियर्सन आदि पंडितोंने राजस्थान, गुजरात, पंजाब और

अवधकी प्राकृत बोलियोंपर शौरसेनीका विशेष प्रभाव स्वीकार किया। राजस्थानी, गुजराती पंजाबी और अवधीके विकासमें शौरसेनीने बहुत काम किया। सिर्फ प्रान्तिक प्राकृतोंसे इन बोलियोंकी उत्पत्ति नहीं हुई, ऐसा विचार होता है।

इस्वी प्रथम सहस्र वर्षोंके बीचमें प्राचीन भारतवर्षमें एक नवीन राष्ट्र या साहित्यिक भाषाका उद्भव हुआ। यह अपभ्रंश भाषा थी, जो शौरसेनी प्राकृतकी एक रूप थी। अपभ्रंश भाषा—यह शौरसेनी अपभ्रंश—पंजाबमें बंगाल तक और नेपालसे महाराष्ट्र तक साधारण शिष्ट भाषा और साहित्यिक भाषा बनी। लगभग ईस्वी सन् ८०० से १३ या १४ सौ तक शौरसेनी अपभ्रंशका प्रचार-काल था। गुजरात और राजपूतानेके जैनोंके द्वारा इसमें एक बड़ा साहित्य बना। बंगालके प्राचीन बौद्ध सिद्धाचार्यगण इसमें पद रचते थे जो अन्तमें भोटभाषा (तिब्बती) में उलथा किये गये। इसके अलावा भारतमें इस अपभ्रंशमें एक विराट् लोकसाहित्य बना, जिसके टूटे-फूटे पद और गीत आदि हेमचन्द्रके प्राकृत व्याकरण और प्राकृत-पिंगल और छन्द-ग्रन्थमें पाये जाते हैं। शौरसेनी अपभ्रंशकी प्रतिष्ठाके कई कारण थे। इस्वी प्रथम सहस्रकी अन्तिम सदियोंके राजपूत राजाओंकी सभामें यह भाषा बोली जाती थी, क्योंकि यह भाषा उसी समय मध्यदेश और उसके संलग्न प्रान्तोंमें—आधुनिक पछाँहमें—साधारणत: घरेलू भाषा-स्वरूप इस्तेमाल होती थी। द्वितीय कारण यह है कि इस समय गोरखपन्थी आदि अनेक हिन्दू सम्प्रदायके गुरु लोग जो पंजाब और हिन्दुस्तानमें नवजाग्रत हिन्दू-धर्मकी वाणी लेकर भारतके अन्य प्रदेशोंमें गये, वे भी इसी भाषाको बोलते थे, इसमें पद आदि बनाते थे, और इसीमें उपदेश देते थे। उसी समय उत्तर-भारतके कनौजिया आदि ब्राह्मण बंगाल आदि प्रदेशोंमें ब्राह्मण आचार और संस्कृति ले उपनिविष्ट हुए। इन सब कारणोंसे, आजसे लगभग एक हज़ार साल आगे, जिसे हम हिन्दीका पूर्व रूप कह सकते हैं, वही शौरसेनी अपभ्रंश, ठीक उसी प्रकार जैसे आजकल हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है, एक राष्ट्रीय, साहित्यिक तथा धार्मिक भाषा हुई थी।

संस्कृत, प्राकृत और भाषा—भारतकी आर्यभाषाके क्रम-विकासमें ये तीन पीढ़ियाँ हैं। संस्कृत आदि-युगकी धर्म, राष्ट्र तथा साहित्यकी भाषा थी। यह संस्कृत भाषा पंजाब और मध्यदेशकी प्राचीन बोलीके आधारपर बनी। संस्कृतसे प्राकृतका उद्भव हुआ। प्राकृतोंमें पालि है। पालि भाषा मगधसे सम्बन्ध नहीं रखती, परन्तु शूरसेन या मथुरा और उज्जैनसे—यह मूलत: मध्यदेश ही की भाषा है, ऐसे सिद्धान्तपर आजकल पंडित लोग पहुँचे हैं। पालिके बाद मध्यदेशकी शौरसेनी भाषा थी। प्राकृतका अंतिम रूप था अपभ्रंश। अपभ्रंश बदलता हुआ हिन्दी आदि भाषाओंमें परिणत हो गया। जिस समय शौरसेनी अपभ्रंश परिवर्तित होकर ब्रजभाषा (हिन्दी) बन रहा था, उसी समय हिन्दुस्तानमें तुर्क और ईरानी मुसलमान आये। पहले पंजाबमें इनका अधिकार हुआ, और पंजाब ही में क़रीब सौ वर्ष उन लोगोंने राज किया। पंजाबके कुछ लोग मुसलमान बने। फिर पंजाबसे खास हिन्दुस्तानपर मुसलमानोंकी चढ़ाई हुई, और उनकी फतेह हुई। मुसलमान देहलीमें आये, और उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। अफ़ग़ानिस्तानके तुर्की और फारसी बोलनेवाले विदेशी मुसलमान तो थे ही, पर पंजाबी बोलनेवाले देशी मुसलमान भी इधर ज्यादा करके आने लगे। पंजाबकी बोलियोंका मूल शौरसेनीसे कुछ अलग प्राकृत था, परन्तु शौरसेनीका प्रभाव इनपर बहुत पड़ा। पंजाबमें राज करनेवाले विदेशी मुसलमान थोड़ी बहुत पंजाबी जानते थे। देहलीके आसपास कई पछाँही बोलियाँ प्रचलित थीं, और उनका पंजाबीसे कुछ सयोग था। हिन्दुस्तानमें आकर पंजाबीपर जाटू (बांगरू), मेवाड़ी, ब्रजभाषा प्रभृति बोलियोंका असर कुछ तो अवश्य पड़ा। प्राचीन पंजाबीका आदिम रूप देहलीमें कुछ बदल गया। भाषाके व्याकरणमें बहुतसा पंजाबीपन रह गया, परन्तु स्थानीय बोलीके व्याकरणके अनुसार भी रूप आ गये। भाषाको *हिन्दी* या *हिन्दुस्तानी* नाम मिला। शब्द विशेष करके ब्रज आदि प्रान्तिक भाषाओंसे लिये जाने लगे। इस प्रकार उदीच्य और मध्यदेश, अर्थात् पंजाब और हिन्दुस्तानके पश्चिमी प्रांतकी भाषाएँ मिलकर एक

नवीन रूपमें प्रकट हुई। साधारणतः हिन्दुस्तानी मुग़लोंके बदौलत सारे भारतवर्षमें फैल गई। ब्रजभाषा आदि प्राचीन और साहित्यिक बोलियोंके साथ-साथ यह भाषा हिन्दू-साहित्यमें भी व्यवहृत होने लगी। अन्तमें इस कलकत्ते शहरमें अंगरेज पंडितोंकी चेष्टासे गद्य साहित्यकी भाषा खड़ी बोली हिन्दी ही हो गई। इस समय हिन्दीकी प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है—उत्तर-भारतकी संस्कृतिमूलक प्रगतिका एक प्रधान वाहन या साधन या माध्यम बनकर इस भाषाकी जय सर्वत्र हो रही है।

ऐतिहासिक आलोचनामें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उदीच्य और मध्यदेश—पंजाब और पछाँह—विशेष करके मध्यदेशमें—भारतीय आर्य-सभ्यताने अपनी विशेषताएँ प्राप्त कीं, और इन प्रान्तोंकी भाषा युग-युगमें सर्वजनगृहीत और सर्वजनसमादृत हुई। संस्कृत, पालि, शौरसेनी प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश, ब्रजभाषा; फिर शौरसेनी प्रभावयुक्त पंजाबकी बोली, हिन्दुस्तानमें आकर शौरसेनीकी दुहिता स्थानीय ब्रज आदि बोलियोंसे मिल-जुलकर हिन्दुस्तानी या हिन्दी बनी। इस प्रकार हिन्दीको वर्तमान मर्यादा मिली। मध्यदेशकी भाषाकी प्रतिष्ठा भारतके इतिहासकी एक प्रधान और साधारण बात है। कालकी गतिसे मूल आर्यभाषाने संस्कृत, पालि, शौरसेनी अपभ्रंश इत्यादि रूप बदलते-बदलते आखिर हिन्दीका रूप ग्रहण किया।

प्राचीनकालमें भारतीय सभ्यताविशिष्ट वस्तुएँ यानी हिन्दू-सभ्यतामें जो कुछ श्रेष्ठ वस्तुएँ हैं उन सबका उद्भव आर्यावर्त ही में हुआ। मध्यकालमें जब मुसलमान सभ्यता आई, तब हिन्दू-सभ्यतामें उसका मिश्रण आर्यावर्तमें हुआ। आर्यावर्तकी भाषा हिन्दीमें अरबी, फारसी और तुर्कीका शब्दभंडार इस मिश्रणका फल है। इस मिश्रणमें भारतीय सभ्यताने नवीन रूप पाया।

प्राचीनकालके धर्म राष्ट्र तथा साहित्यकी भाषाओंके साथ हिन्दीका सम्बन्ध विचार करनेसे हिन्दीका इतना प्रचार स्वाभाविक ही मालूम होगा। ऐतिहासिक कारण और हिन्दी भाषाकी नानामुखी कर्मशक्तिके सिवा हिन्दीमें ऐसे कुछ गुण हैं जिनसे यह एक श्रेष्ठ भाषा कही जा सकती है। हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, जिन्होंने इस भाषाको अपनाया है, उनकी राय क्या होगी, इसका पता हमें नहीं, पर एक महाराष्ट्रीय मित्रने अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की कि "हिन्दीमें जो गुण हैं, उनमेंसे एक यह है कि हिन्दी 'मर्दानी ज़बान' है।" मैं बंगाली होकर अपने महाराष्ट्रीय मित्रकी इस रायका पूरा समर्थन करता हूँ। आधुनिक हिन्दीके ओज-गुणके कई कारणोंमें इसकी संयुक्तव्यंजनबाहुल्यता एक प्रधान कारण है। 'उनका', 'देखके', 'चलना', 'हाथमें', 'मनमें' इत्यादि साधारण पदमें संयुक्त वर्णोंमें शब्दोच्चारणमें ज़ोर आ जाता है—शब्दपर धक्का सा देकर संयुक्त ध्वनि इसे जाग्रत और उद्यमपूर्ण बना देती है। मेरी मातृभाषाके पदसमूह इतने ज़ोरदार नहीं होते। विशेषकर साहित्यिक बंगलामें स्वरबाहुल्यके कारण मिठास आती है; पर वैसा ज़ोर नहीं रहता, जैसे 'उहार' या 'ओर', 'देखिया' या 'देखे', 'चलितेछे' (चालू घरेलू बंगलामें संयुक्त व्यंजन आ गया है—'चलछे'), 'हाते', 'मने' इत्यादि। पुरानी हिन्दीमें हलन्त उच्चारण बहुत ही कम होता था, सब स्वरवर्ण उच्चारण किये जाते थे। इससे ओजशक्ति कुछ कम होती थी। पर स्वरवर्णोंके पूर्ण उच्चारण होनेके कारण एक मनोहर मधुरतामें भरा हुआ गाम्भीर्य आ जाता था। विशेषतः ध्रुपद आदि गानेमें तानसेन प्रमुख संगीतकारोंकी वाणीसे इस बातका प्रमाण मिलेगा। हिन्दी उच्चारणमें और एक विशेष गुण है। इसमें सब ध्वनि प्रयत्नके साथ सुस्पष्ट उच्चारण की जाती हैं। बंगला आदि दूसरी भाषाओंमें बहुधा अस्पष्ट उच्चारणकी कुरीति चली है। इसीसे 'नाइहर' या 'नैहर', 'बहनोई', 'अखाड़ा', 'बनवाई', 'कन्हैया', 'रखवाल', 'मौसी', 'साँप' आदि शब्दके बंगला प्रतिरूप बन गये 'नाईर', 'बोनाइ', 'आखड़ा', 'बानी', 'कानाइ', 'राखाल', 'मासी', 'साप' इत्यादि।

उच्चारणके अलावा हिन्दीकी शब्द-सम्पत्ति इसका एक और गुण है। प्राकृतसे प्राप्त अनगिने शब्द हिन्दीमें विद्यमान

है, मानो इतने प्राकृतज शब्दोंका संरक्षण दूसरी किसी आर्यभाषामें हो ही नहीं सका। देहातमें सहस्रों उपयोगी प्राकृत शब्द मिल सकते हैं, जो साहित्यमें लानेके लायक हैं। प्राकृतज शब्द छोड़िये, तो देखिए हिन्दी संस्कृतके समग्र अभिधानकी अधिकारिणी बनी है! संस्कृत शब्दोंको हम सम्भाव्य हिन्दी शब्द कह सकते हैं। फिर उर्दू या मुसलमानी हिन्दीकी बदौलत फ़ारसी-अरबी-अभिधानसे भी हिन्दी अपना खज़ाना भरा कर सकती। प्राकृतज या विशुद्ध हिन्दी, संस्कृत और फारसी—इन तीन प्रकारके शब्दोंकी मिठास या मिष्टता या शीरीनी हिन्दीकी शक्ति तथा गौरव बढ़ा रही है। संस्कृत और अरबी-फारसीके शब्दभंडार हिन्दीके लिए खुले रहनेमे हिन्दी किसीकी परवाह नहीं करती। सामाजिक और गृहस्थ जीवनकी सब बातें केवल प्राकृतज शब्दोंसे ही हिन्दीमें अच्छी तरहसे बोली जा सकती हैं। यह सिद्धान्त 'ठेठ हिन्दीका ठाठ' और 'अधखिला फूल' में श्री हरिऔधजीने प्रमाणित किया है।

हिन्दीके इतने गुण होते हुए भी, इसे मातृभाषा रूपमें लाभ करनेका जन्म-सौभाग्य जिसको नहीं मिला, उसके लिए हिन्दीका व्याकरण कठिनाइयोंसे भरा हुआ होता है। एक तो मुश्किल है हिन्दीका लिंग-विचार। सुनते हैं इसमें श्रेष्ठ हिन्दी विद्वानोंका भी एक मत नहीं होता। हिन्दीकी इस स्वतंत्रताने इस विषयमें भाषाको अराजकतामें डाल दिया है। 'भात' पुलिंग शब्द है और 'दाल' स्त्रीलिंग, 'पुस्तक' स्त्रीलिंग और 'ग्रन्थ' और 'काग़ज़' पुलिंग। 'अग्नि, मृत्यु, वायु'— इन सबको इस कलियुगमें हिन्दीमें स्त्रीत्वकी प्राप्ति हुई है। हिन्दी अच्छी तरहसे अगर सीखना चाहते हैं, तो संस्कृत, व्याकरणको भूल जाइये। इसके ऊपर शब्दरूपमें, मौलिक रूप और सामान्य रूप, और 'का' और 'के' का दुरतिक्रमणीय हंगामा। लिंगविभ्राट और शब्दरूपकी कठिनाईसे बेचारे हिन्दी-शिक्षार्थी जब किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं, तब क्रियापदके कर्मणि और भावे-प्रयोग आकर उसे खतम कर देते हैं।

हिन्दीके व्याकरणको कुछ सहज-सा और तर्कशास्त्र सम्मत बनानेकी आवश्यकता है। हमारा सिद्धान्त यह है कि भविष्य कालका राजा King Demos या 'गण महाराज' इतनी सूक्ष्मता नहीं मानेगा। इनक़लाब जब सचमुच ज़िन्दा होगा और मज़दूर तथा किसान जब भाषाके सुधारका काम खुद ही अपने हाथमें ले लेंगे, तब चालू और बज़ारू, गँवार और देहाती तथा खड़ी बोली और पड़ी बोली सब एकाकार होकर एक नई गण-भाषा बन जायगी।

गणतन्त्रके अनुकूल हिन्दीका एक रूप अब भी विद्यमान है। इस कलकत्ता महानगरीमें नई शैलीके हिन्दी गद्य साहित्यका पहले प्रचार हुआ, पर यहाँ अनपढ़ लोग जो हिन्दी बोलते हैं, उसे हिन्दीके गणतान्त्रिक रूपके सिवा क्या कहूँ? कलकतिया बंगाली दो ज़बानें जानते हैं; एक अपनी मादरी ज़बान बंगला, और दूसरी कलकत्तेकी बज़ारू हिन्दी। बचपनसे अपनी मातृभाषाके साथ-साथ हमें इसका व्यवहार करना पड़ता है। मैं इस टूटी-फूटी हिन्दीके स्वरूपकी कुछ आलोचना किसी और सभामें कर चुका हूँ। इस स्वरूपकी मौलिक विशेषता यह है कि व्याकरणके नियम, शब्द धातु आदिके रूप, प्रत्यय प्रभृति जितने कम व्यवहार किये जा सके सिर्फ उतने ही व्यवहारमें लाये जायँ और स्वतन्त्रता पूर्वक बंगला शब्द और वाक्य रीतिका प्रयोग हो। इस कलकतिया हिन्दीको कलकत्तेके उड़िया, मैथिल, विहारी आदि सब प्रवासियोंने अपनाया है, क्योंकि इन्हींके हाथ शुद्ध हिन्दी बिगड़कर इसका संगठन हुआ। सीखनेसे भूलना अधिक कठिन है। इधर शुद्ध हिन्दीके साथ परिचय होनेका मौका नहीं मिलता, उधर जिन्दगी-भर बज़ारू हिन्दीके सिवा दिनका काम नहीं चलता;—हम करें क्या?

हिन्दीकी उत्पत्ति और प्रसार तथा इसके प्रादेशिक रूप आदि विषयोंपर गवेषणात्मक विराट् ग्रन्थ लिखा जा सकता है। मैं इस बारेमें और कुछ कहना नहीं चाहता। अन्तमें एक बात कहकर इसे समाप्त करूँगा।

जिसकी शक्ति और जिसका सौभाग्य हो उसे नम

होना चाहिए। हिन्दी-भाषियोंके उद्यम और उनकी कर्मशीलता ही नहीं, बल्कि उनकी नागरिकता और सौजन्य, उनकी संस्कृति और मानसिक उत्कर्ष हिन्दी-प्रचारके प्रबल कारणोंमें हैं। भारतके लोगोंने हिन्दीको 'राष्ट्रभाषा' मान लिया है; बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तामिल इत्यादि घरेलू भाषा या प्रादेशिक भाषा हो सकती हैं पर एकता-विधायिनी भाषा और भारतके संयुक्त राष्ट्रकी माध्यम हिन्दी ही हो सकती है, इसे आज अधिकांश लोग मानते हैं। शुद्ध हिन्दी बोलना सहज नहीं, रातोरात शुद्ध हिन्दी सीखना भी कठिन है। बहुतसे लोग टूटी-फूटी हिन्दी बोलनेमें शरमाते हैं। अशक्यताहेतु यदि कोई किसी राष्ट्र या धर्म सम्बन्धिनी सभामें हिन्दीमें व्याख्यान न दे सके, पर हिन्दीसे अपना प्रेम प्रकट करे, तो उसमें धैर्यके साथ व्यवहार करना उचित होगा, और यह गंगातीरकी आर्यसभ्यताके सौजन्यके अनुसार ही है। पर ऐसी अवस्थामें 'हिन्दी' 'हिन्दी' 'हिन्दी' पुकारकर बेचारेको यदि तंग किया जाय, और उसे अंग्रेज़ीमें या अन्य किसी प्रान्तीय भाषामें बोलने नहीं दिया जाय तो वह हिन्दीके प्रसारके अनुकूल नहीं बल्कि विपरीत होगा। हमें आत्म-परीक्षा करनी चाहिए। अनजानसे Linguistic Imperialism या भाषागत साम्राज्यवादके पुरोहित हम न बनें—जुल्म या बलात्कारसे हिन्दी प्रचारकी चेष्टा नहीं होनी चाहिए।

खैर, हिन्दीके जो गुण और कठिनाइयां हों, सो हों; पर यह सबको मानना पड़ेगा कि दुनियाके अव्वल दरजेकी अन्तर्जातीय भाषाओंमें हिन्दीका स्थान है। अंगरेज़ी, उत्तर चीनी, जर्मन, रूस, स्पेनिश, फरांसी, अरबी, फारसी, मालय आदि भाषाओंमें हिन्दीका नाम करना चाहिए। संख्याके विचारसे अंग्रेज़ी और उत्तर चीनीके नीचे हिन्दीका स्थान है; श्रुतिमाधुर्य, ज़ोर, कार्यशक्ति आदिमें हिन्दी एक अनोखी भाषा है। ऐसी भाषा हमारा गौरवस्थल है।

मैं हिन्दीसे बड़ा प्रेम रखता हूँ। यूरोप प्रवासके समय फ्रान्स या जर्मनीमें कहीं किसी भारतीय छात्रको दूरसे मैं देखता, तो उससे मिलने जाता और सबसे पहले हिन्दीमें उससे प्रश्न करता—"क्या भाई, हिन्दुस्तानी हो?" जिससे बात करता, अगर वह उत्तर-भारतीय होता, तो हिन्दी ही में मुझसे बात करता, और यदि वह दाक्षिणी होता, तो भावसे मेरी बात समझ लेता और यदि हिन्दी नहीं जानता, तो अंगरेज़ीमें माफी माँगता। अपने मित्र और छात्रोंमें मैं हिन्दी भाषा और साहित्यका गुण-गान किया करता हूँ। कबीरजीके पद और तुलसीजीकी रामायणको तो मैंने नित्य-पाठ्य-ग्रन्थ-सा बना रखा है। बहुत दिनोंसे इन दोनों विश्व-साहित्यके मुकुटमणियोंका पाठ किया करता हूँ।

बंगालमें हिन्दीका प्रचार हो, बंगाली सज्जन भी हिन्दी भाषा और साहित्यसे परिचय प्राप्त कर पार्थिव और आध्यात्मिक लाभ उठावें, यह मैं सर्वान्तःकरणसे चाहता हूँ। बंगालकी राजधानी कलकत्तेसे हिन्दीका संयोग खूब घनिष्ठ है। यदि कलकत्तेको हिन्दीकी आधुनिक गद्य-शैलीकी जन्मभूमि कहा जाय, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। हमारी बंगाली जातिके लिए यह बड़े अफसोसकी बात है कि हिन्दी ऐसी भाषासे वे यथोचित शक्ति और आनन्दको प्राप्त नहीं कर सके। इसके कारण निर्धारण होने चाहिए। रोगका निदान और कारण मिलनेसे इलाज ठीक हो सकता है। एक कारण मेरे विचारमें तो यह है कि इधर हिन्दीके उच्च शिक्षित सज्जनोंका बहुत कम शुभागमन होता है। बिहार और संयुक्तप्रान्तके पूरबके जो आम लोग रोज़ीके लिए इधर आते हैं, वे स्वयं शुद्ध हिन्दी नहीं बोल सकते,—उनकी व्यवहृत खिचड़ी बोली, साहित्यिक और शुद्ध हिन्दीके प्रचारका प्रधान अन्तराय होता है।

पर अवसर अब शुभ है। बंगालकी शिक्षित जनतामें हिन्दीका आदर होनेके लिए कांग्रेससे कुछ मदद मिल सकती है। कालेजोंसे भी बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। निर्दिष्ट हिन्दी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेसे यदि दस-बीस आर्थिक पारितोषिक कालेजोंके लड़कोंको दिये जायँ, तो बहुतसे नवयुवक इस ओर आकृष्ट होंगे। हिन्दी-प्रचारके ये सब साधन विशेष समितिमें विचार किये जा सकते हैं। बंगालमें हिन्दी प्रचारके लिए सम्मेलनकी ओरसे जो प्रयत्न किया जाय, उसका मैं पूरी तौरसे समर्थन करूँगा। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने इस विषयमें जो शुभकामना प्रकट की, उसके लिए मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

मैकडानल्डकी घोषणा और देशी रियासतें

प्रो॰ गणेश रघुनाथ अभ्यंकर

ता॰ १६ जनवरी सन् १६३१ को ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान मंत्री मि॰ मैकडानल्डकी घोषणा प्रकाशित होनेके समयसे भावी स्वराज्यके सम्बन्धमें अनेक तर्क वितर्क हो रहे हैं। इस घोषणाका रियासतोंकी दृष्टिसे क्या महत्व है, इसका हम इस लेखमें दिग्दर्शन कराना चाहते हैं। इसके पूर्वकी अर्थात् सन् १६१७ की घोषणामें ब्रिटिश सरकारका ध्येय भारतमें क्रमशः जिम्मेवार शासन प्रणाली (Responsible Government) स्थापन करनेका है, ऐसा प्रकट किया गया था। इस घोषणामें 'हिन्दुस्थान' शब्द एक व्यापक अर्थमें उपयोग किया है, जिससे रियासत और ब्रिटिश भारत दोनों सम्बोधित होते हैं। भारत-सरकारके क़ानूनमें 'इंडिया' अथवा हिन्दुस्तान शब्दकी परिभाषा इसी प्रकारकी है। सन १६१७ की घोषणाके पश्चात भारत-सरकारका सन १६१६ का नया क़ानून निर्माण हुआ। इस क़ानूनको ब्रिटिश भारतमें अमलमें लानेके लिए उसकी पहली दफ़ाके उपोद्घातमें 'ब्रिटिश भारत' शब्दका उपयोग करके यह उल्लेख किया है, कि ब्रिटिश भारतमें जिम्मेवार शासन-प्रणाली प्रस्थापित करनेके लिए यह क़ानून मंजूर किया गया। सन् १६१७ की घोषणा तथा सन् १६१६ के क़ानूनके शब्दभेदसे यह माननेमें कोई बाधा न होगी, कि सन् १६१७ की घोषणाके लेखकोंके मनमें इन दो शब्दोंका अर्थभेद पूर्णतया स्पष्ट था। इस 'इंडिया' शब्दके प्रयोगसे ही लोगोंके हृदयोंमें ऐसी आशा उत्पन्न हुई कि जिम्मेवार शासन-प्रणालीका ध्येय रियासतोंमें भी अमलमें लाया जायगा। गोल-मेज-परिषदकी प्रथम बैठकमें बीकानेर नरेशने कहा है कि सन् १६१७ की घोषणाका ध्रुवतारा अपने सम्मुख रखकर ही रियासतोंको अपना राज्य-शकट उस दिशामें हाँकना चाहिए। इसी कारण मैकडानल्ड साहबकी घोषणासे ऐसी आशा प्रकट होती थी कि उसमें रियासतोंकी जिम्मेवार शासन-प्रणालीके सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ उल्लेख अवश्य किया जायगा; किन्तु इस नई घोषणासे वे सब मनोरथ भग्न होकर रियासतकी प्रजाको घोर निराशा हुई है।

इस घोषणासे भारतपर एक दूसरा संकट उपस्थित हुआ है। ब्रिटिश शासनके प्रारम्भसे आज तक रियासतों तथा ब्रिटिश भारतका अन्तिम नियन्त्रण केवल एक ही राजसत्तामें—भारत-सरकारमें—केन्द्रीभूत था। रियासतोंका सार्वभौमत्व (Sovereignty) का तथा ब्रिटिश भारतके राज्य-शासनका अन्तिम अधिकार भारत-सरकारमें ही केन्द्रीभूत था, और वह अधिकार गवर्नर-जनरल-इन-कौन्सिल अमलमें लाते थे। 'वायसराय' शब्दका न तो क़ानूनमें कहीं उल्लेख है और न वह कहीं स्वीकार ही किया गया है। यह केन्द्रीभूत सत्ता अब विभाजित होकर भारतके दो पृथक् विभाग सदाके लिए होनेवाले हैं। देशी नरेश अपनी सम्मतिसे जो विभाग ब्रिटिश भारतके फेडरेशनको सौंप देंगे, उन्हें छोड़कर शेष सब विभागोंका राजनैतिक नियंत्रण आगामी राज्य-शासनमें वायसराय (बादशाहके प्रतिनिधि) के हाथमें रहेगा। वायसराय पोलिटिकल विभागकी गोरी नौकरशाहीकी सहायतासे यह नियन्त्रण लगभग छै सौ स्वेच्छाचारी रियासतोंपर चलानेवाले हैं। तात्पर्य यह कि रियासतों और वायसरायका एक नया सौतेला दल अब अस्तित्वमें आनेवाला है, और ब्रिटिश भारतका राज्य-शासन बादशाहके प्रतिनिधिके नाते गवर्नर जनरल अपने मंत्रिमंडलकी सहायतासे करनेवाले हैं। अर्थात् आगामी राज्य व्यवस्थामें वायसराय और गवर्नर-जनरलके अधिकारके दो पृथक् विभाग किये जायँगे। मैकडानल्ड साहबने अपनी घोषणामें यह द्विदल शासन-प्रणाली 'मूल सिद्धान्त' के ही आधारपर रचित है,

ऐसा बताया है , परन्तु इस मूल सिद्धान्तके स्वरूप और उसके आधारका कहीं पता तक नहीं चलता। यह नई सूझ प्रथम देशी नरेशोंके सलाहकारोंने चार वर्ष पूर्व निकाली थी। बटलर-कमीटीने इस कल्पनापर अपनी सम्मति दी, किन्तु अपनी सम्मतिका कोई कारण नहीं बताया। साइमन-कमीशनने भी इसी कल्पनाका समर्थन किया, किन्तु कोई आधार पेश नहीं किया। भारत-सरकारने भी खरीतेमें इस कल्पनाको कुछ पसन्द किया था, पर अब यह कल्पना राजमान्य होकर घोषणाके द्वारा खुल्लमखुल्ला प्रकट की गई है। इस नई योजनाकी कल्पना पूर्णतया अयोग्य और निराधार है, यह नेहरू-कमेटीने विस्तारपूर्वक सिद्ध किया है। सर तेजबहादुर सप्रू और सर शिवस्वामी ऐय्यरने भी इसका खंडन किया है, किन्तु इतनेपर भी क़ानून अथवा इकरारका कोई आधार न देकर, केवल देशी नरेशोंके अनुरोधसे इस कल्पनाको स्वीकारकर भारतके दो पृथक् विभाग किये गये हैं। आश्चर्य केवल इतना ही है कि ऐसी द्विदल राज्य-व्यवस्था पसन्द करनेवाले मेकडानल्ड साहब संयुक्त-भारतके गुणानुवाद गा रहे हैं।

वायसरीगल राज्य-व्यवस्थाकी इस नई सूझका कारण भी विचार करने योग्य है। यदि ब्रिटिश भारतमें स्वराज्यकी स्थापना हो गई, तो उसका रियासतोंपर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा, और उनकी निरंकुश राज्यशासन तथा स्वेच्छाचारितामें बाधाएँ उत्पन्न होंगी। रियासतोंके नरेशोंको यह भय उत्पन्न हुआ और ज्यों-ज्यों ब्रिटिश भारतमें आन्दोलनका जोर-शोर बढ़ता गया, त्यों-त्यों उनका यह भय और भी बढ़ने लगा। अपना अनियंत्रित अधिकार ब्रिटिश भारतको स्वराज्य प्राप्त होनेपर भी अबाधित रूपसे चलानेके लिए ही यह नई सूझ निकाली गई। ब्रिटिश भारतकी राज्य-व्यवस्थासे सदाके लिए छुटकारा पानेपर लोकसत्ताकी बाधा उन्हें किसी प्रकारसे न हो सके, इस कारण उन्होंने ऐसा कहना प्रारम्भ कर दिया है कि हमारे राजनैतिक सम्बन्ध ठेठ बादशाहसे हैं, गवर्नर जनरल अर्थात् वर्तमान भारत-सरकारसे नहीं। रियासतोंकी यह माँग आज राजमान्य हो गई है। अब रियासतोंके सार्वभौमत्वके अधिकार ब्रिटिश भारतकी केन्द्र-सरकारके अथवा फेडरेशनकी राज्य-व्यवस्था स्वीकृत होनेपर उस फेडरेशनके हाथमें कदापि नहीं आ सकते। घोषणामें संक्रमणावस्थाके कालमें जो दो रिज़र्व विभाग गवर्नर-जनरलके हाथमें रखे हैं, उसमें रियासतोंके नियंत्रण-अधिकारका समावेश नहीं होता। यद्यपि ब्रिटिश भारतमें फेडरेशन तथा औपनिवेशिक ढंगके सम्पूर्ण स्वराज्यकी स्थापना होगी, तो भी भारतमें वायसरायका ही अधिकार रहेगा, पोलिटिकल डिपार्टमेण्टकी गैरकाय नौकरशाही ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। छै सौ रियासतोंकी कठपुतलियोंको नचानेकी बागडोर उन्हींके हाथमें रहेगी, और रियासतोंकी रक्षा करनेके सुलहनामेके बहाने सैनिक अधिकारपर भी वायसरायकी हुकूमत रहेगी। इस प्रकार भारतमें आगामी सुधार-रूपी प्रबल सौतेला दल उत्पन्न होनेवाला है। इस महावृक्षकी घनघोर छायामें स्वराज्यका अंकुर कहाँ तक पनपने पायगा, इसका विचार ब्रिटिश भारतके नेताओंको अवश्य करना चाहिए। रियासतें तो लोकसत्ताके बन्धनोंके परे रहना चाहती थीं, और वे उसमें सफलमनोरथ भी हुई हैं, परन्तु ब्रिटिश भारतकी स्वराज्य उपभोग करनेवाली *लोकसत्तासे इस प्रकार हाथ धो बैठनेपर रियासतकी प्रजाकी* यह आशा अब पूर्णतया नष्ट हो गई है कि वायसरायके अमलमें उनका उद्धार होगा।

इसके सिवा यह विचार करना भी अपरिहार्य है कि ब्रिटिश सरकारने रियासतोंकी यह माँग क्यों स्वीकार की। ब्रिटिश भारतमें स्वराज्यकी स्थापना हुई, और वहाँकी राज्य-व्यवस्था लोकसत्ताके प्रति उत्तरदायी बनकर लोक-प्रतिनिधियोंके अधिकारमें गई, तो इन गैरकाय नौकरोंको कौन पूछेगा? इस प्रकार ब्रिटिश भारतकी वर्तमान राज्य-व्यवस्थामें राज्य सुख, ऐश्वर्य तथा बड़प्पनका उपभोग करनेका अब अधिक अवसर नहीं है। अधिकारका मज़ा चखनेको नहीं मिलता। मेहरबानीसे दूसरोंको उपकृत करनेका अवसर वैध शासन-प्रणालीमें नहीं मिलता। 'ईश्वरोऽहमं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी' इस उन्मादावस्थाका अनुभव तथा उसका

प्रदर्शन ब्रिटिश राज्याधिकारियोंके सम्बन्धमें यदि कहीं दृष्टिगोचर होता हो, तो वह रियासतोंमें ही। यदि किसीने गवर्नर अथवा गवर्नर-जनरलका रियासतोंमें होनेवाला अपूर्व ठाटबाट देखा है, तो उसको राज्य-वैभवकी कुछ कल्पना हो सकती है। प्रजाका अविश्रांत परिश्रमसे कमाया हुआ धन ज़बरदस्ती वसूलकर जब इन लाट साहबोंके लिए पानीके समान बहाया जाता है और बेचारा रियासतका नरेश अपना स्वाभिमान और अपनी पूर्व परम्परा सर्वथा भूलकर इन गौरांग हाकिमों तथा उनकी मेमों और परिवारको हर तरहसे प्रसन्न करनेमें जीतोड़ परिश्रम करता है, तब उसे देख कर किसी भी मनुष्यको ब्रिटिश राज्य-वैभवका ज्ञान हो सकता है। भोज, आतिशबाजी, आखेट और पार्थिव इन्द्रियोंके सब विषय-सुख ब्रिटिश अधिकारियोंको चैनसे भोगनेके लिए मिलते हैं। किसी भी निखट्टूको रियासतकी ओरसे उपकृत करा सकते हैं। किसी भी कार्यके लिए रियासतकी ओरसे सहायता दिला सकते हैं। नरेशों द्वारा मन चाहे कुकर्म करा सकते हैं। हर प्रकारसे व्यक्तिगत सम्पत्ति दिला सकते हैं। ऐसी व्यापक, सद्यः फलदायी और चिरन्तन लाभकी सत्ता भला कौन त्याग सकता है? सारांश यह कि ब्रिटिश नौकरशाहीको कुछ अवसर प्राप्त हो, उनके जात-भाइयोंको सहूलियतें मिलें और उनके ऐश्वर्यका उपभोग करनेके लिए स्थायी अधिष्ठान बना रहे—इन उद्देशोंसे ही यह वायसरीगल सौतेला दल निर्माण किया जा रहा है। यह चैनकी बंशी ब्रिटिश भारतके फेडरेशनकी अमलदारीमें कदापि नहीं बज सकती, यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। इसी मार्गने ब्रिटिश नौकरशाहीका स्थान अटल बना दिया है। इसका परिणाम यह होगा कि इस सौतेले दलका शल्य भावी स्वराज्यको सदाके लिए खटकता रहेगा, और इसीलिए रियासतकी प्रजाको इस घोषणाका तीव्र विरोध करना आवश्यक है।

रियासतोंने इस द्विदल-पद्धतिके लिए क्यों सम्मति दी और ब्रिटिश सरकारने उसे क्यों मान लिया इसका विवरण ऊपर दिया गया है, किन्तु गोलमेज़-परिषदमें सम्मिलित होनेवाले सदस्योंने इस योजनाका सम्पूर्ण निषेध क्यों नहीं किया, यह एक गूढ़ प्रश्न है। इस सम्बन्धमें रियासतके पुरस्कर्ता तथा उनके विश्वास योग्य नेता सर सी० पी० रामस्वामी ऐय्यरने भारत लौटनेपर एक लम्बी-चौड़ी वक्तृता दी है। उनका कथन है कि देशी नरेशोंने फेडरेशनकी कल्पनाको स्वीकार करनेकी एक मुख्य शर्त यह रखी थी कि पहलेकी राज्य-व्यवस्थाके सदृश किसी भी एकतंत्री सत्ताके अथवा स्वराज्यके नियन्त्रणमें वे हर्गिज़ सम्मिलित न होंगे। उन्होंने उसी फेडरेशनमें सम्मिलित होना कबूल किया जिसमें सघात्मक पद्धति—और विशेषकर केन्द्र-सरकारमें जिम्मेवार शासन-प्रणालीका अस्तित्व हो। इसी-लिए ये महाजन असीम स्तुतिके पात्र हैं। यह स्तुति-स्तोत्र देखकर कतिपय लोगोंको आश्चर्य हुआ। कुछ लोगोंको तो देशी नरेशोंका इस जिम्मेवार शासन-प्रणालीके ध्येयका असीम प्रेम देखकर 'न भूतो न भविष्यति' आदर होता होगा, किन्तु आज इस घोषणाने जो दृश्य दिखाया है, उसका सूक्ष्म अवलोकन करनेसे यह कहना पड़ता है कि सर रामस्वामी ऐय्यरकी स्तुति केवल अर्थहीन ही नहीं, किन्तु सर्वथा भ्रम पैदा करनेवाली है। उनके कथनसे इसमें कुछ गुप्त संकेत (*Secret understanding*) होनेकी आशंका होती है।

गोलमेज़-परिषद्‌के लिए जब रियासतोंके तथा अन्य प्रतिनिधियोंने भारतसे प्रस्थान किया, तब फेडरेशनकी कल्पनाका नामोनिशान भी नहीं था, अथवा किसी दलकी राजनैतिक चर्चामें उसे कभी प्राधान्य भी नहीं दिया गया था। इसी प्रकार देशी नरेशोंने ब्रिटिश भारतसे पृथक् होनेके लिए जो प्रयत्न किये थे और वायसरायकी सहायतासे एक सौतेला दल निर्माण करनेका उनका जो इरादा था, उसे भारत-सरकारका प्रोत्साहन था, यह भी कहीं घोषित नहीं हुआ था। इस अवस्थामें फेडरेशनकी कल्पना तथा जिम्मेवार राज्य-पद्धतिके प्रति देशी नरेशोंके हृदयोंमें जो प्रेम पैदा हुआ, और जो दृश्य आज हम देख रहे हैं, उसका कारण क्या है? यह बात स्पष्ट है कि ब्रिटिश भारतसे पृथक् होनेपर और

सार्वभौमत्वके अधिकार लोकसत्ताक स्वराज्यके हाथमें कभी भी न रहनेका आश्वासन मिलनेपर देशी नरेशोंको फेडरेशनकी योजनाका विरोध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। साथ ही यह बात भी बिलकुल स्वाभाविक है कि वायसरायके सौतले दलके मार्गसे अपनी राज्य-तृष्णाका चिरकाल तक उपभोग करनेको मिलेगा, इस खयालसे ब्रिटिश सरकारने इस योजनापर सम्मति दी। अब केवल ब्रिटिश भारतके नेताओंका ही प्रश्न रहा। उनको इस नये दलका तीव्र विरोध करना चाहिए था, क्योंकि इससे स्वराज्यका अन्तमें अहित होनेवाला है; किन्तु किसी भी प्रतिनिधिने इस द्विदल-पद्धतिके प्रति अपना विरोध नहीं प्रकट किया। इसका अन्तस्थ कारण क्या है? यदि देशी नरेशोंने केन्द्र-सरकारमें जिम्मेवार राज्य-पद्धतिके सिद्धान्तका ज़ोरसे समर्थन करनेका अभिवचन दिया हो, तो ब्रिटिश भारतके नेताओंके बर्तावका कुछ अन्दाज़ा लग सकता है। फेडरेशनकी केन्द्र-सरकारमें जिम्मेवार राज्य-पद्धतिका अस्तित्व प्रतिपादन करनेमें देशी नरेशोंका नुकसान होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी, क्योंकि रियासतोंकी सार्वभौमसत्ता इस सरकारके हाथमें कभी न रहेगी, यह एक बार निश्चित होनेपर अपने देश-बान्धवोंकी माँगपर अपनी सम्मति देकर ब्रिटिश लोगोंसे स्वीकृत करानेके काममें सहायता पहुँचानेका श्रेय यदि अनायास ही मिलता हो, तो देशी नरेश उसे क्योंकर छोड़ देंगे? फेडरेशनकी केन्द्र-सरकारमें जिम्मेवार राज्य-व्यवस्थाकी स्थापना करनेका अनुरोध करनेमें देशी नरेशोंका कुछ भी अहित नहीं था; क्योंकि इस जिम्मेवार मन्त्रिमंडलके हाथमें न तो सार्वभौमत्वकी सत्ता है और न रियासतोंमें कुछ हस्तक्षेप करनेका अथवा किसी प्रस्तावको अमलमें लानेकी आज्ञा देनेका—यहाँ तक कि खास फेडरेशनके विषयमें भी हुकूमत चलानेका—अधिकार है। ऐसी अवस्थामें अपने देश-भाइयोंके उत्तरदायित्वपूर्ण मन्त्रिमंडलकी माँगको देशी नरेशोंने हार्दिक अनुमोदन किया हो, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं, और इसलिए उनके उपकार माननेकी भी कोई आवश्यकता नहीं। खुदको किसी प्रकारका उपसर्ग न होते हुए देशी नरेशोंने बहती गंगामें हाथ धोनेके सिवा और कुछ नहीं किया। जिम्मेवार मन्त्रिमंडलकी माँगका ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने घोर विरोध किया होता। यदि देशी नरेशोंने उनका साथ दिया होता, तो यह माँग तुरन्त अस्वीकृत हो जाती; किन्तु उनके ब्रिटिश भारतके नेताओंके पक्षमें रहनेके कारण केन्द्र-सरकारमें उत्तरदायित्वपूर्ण मन्त्रिमंडलकी योजना स्वीकृत हुई है। इसीलिए भारतके दो विभिन्न विभाग करनेकी कल्पनाका ब्रिटिश भारतके राजनीतिज्ञोंने विरोध नहीं किया होगा, ऐसा हमारा अनुमान है। उन्होंने यह देखा कि देशी नरेश उनकी हुकूमतमें आनेके लिए राजी नहीं हैं और बिना उनकी सम्मतिके उन्हें भावी स्वराज्यकी हुकूमतमें रखनेके लिए ब्रिटिश सरकार बिलकुल तैयार नहीं है, क्योंकि उसमें उनका पूरा स्वार्थ है। इसीलिए इस सौतले दलकी अपरिहार्य योजनाका विरोधकर देशी नरेशोंको मुफ्तमें नाराज़ करना उन्हें अभीष्ट नहीं होगा। इसके बदलेमें देशी नरेशोंने केन्द्र-सरकारमें जिम्मेवार मन्त्रिमंडलकी माँगको ज़ोरसे समर्थन किया होगा। इस प्रकार यह तिरंगा खेल खेला गया, जिसमें देशी नरेशोंने अपना स्वतन्त्र दल बना लिया, ब्रिटिश सरकारको अपने सार्वभौमत्वके लिए अधिष्ठान मिला और ब्रिटिश भारतको फेडरेशन-योजनामें उत्तरदायित्वपूर्ण मन्त्रिमंडलकी माँग स्वीकृत हो गई। इसमें ब्रिटिश भारतकी प्रजाको कुछ लाभ हुए हैं। सारांश यह कि ये तीनों दल परस्पर लेन-देन करके ही इस परिणामपर आ पहुँचे हैं।

फेडरेशन

गोलमेज़-परिषद्के सभी दलोंने ब्रिटिश भारतमें फेडरेशनकी राज्य-व्यवस्था स्थापित करना स्वीकार किया है, किन्तु फेडरेशनकी यह योजना कहाँ तक विश्वास-योग्य और लाभदायक है, इसका विचार करना आवश्यक है। यह बात पहले ही स्पष्ट कर देनी चाहिए कि इस योजनाकी कतिपय ब्यौरेवार बातोंके सम्बन्धमें कोई विश्वास-योग्य जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। घोषणाकी भाषा बहुत ही त्रुटिपूर्ण और संदिग्ध होनेके कारण इस सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक

सम्मति प्रकट करना आपत्तिजनक जान पड़ता है, इसलिए हम दो-चार बातोंके सम्बन्धमें ही अपने विचार प्रकट करेंगे। भिन्न-भिन्न राष्ट्र अथवा किसी राष्ट्रके विभिन्न भाग जब अपने कुछ विशिष्ट विषयोंकी स्वाधीनताके अधिकार दूसरी संस्थाको देते हैं, अर्थात् अपनी इच्छासे एक केन्द्र-सरकारका निर्माण कर उसीकी हुकूमतमें रहनेकी इच्छा प्रकट करते हैं, तब उसे फेडरेशनकी राज्य व्यवस्था कहते हैं। दूसरा सिद्धान्त यह है कि फेडरेशनकी व्यवस्थापिका सभा (Legislative Council) तथा उसके मंत्रिमंडल और अदालतोंके अधिकार फेडरेशनमें सम्मिलित होनेवाले प्रत्येक भागके प्रत्येक नागरिकपर चलने चाहिए। तभी उसे फेडरेशन कह सकते हैं, अन्यथा ऐसी योजनाको 'कनफेडरेशन' या राष्ट्र-समूह कहना होगा। उपर्युक्त सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे ही हम देशी नरेशोंके फेडरेशनका विचार करेंगे। फेडरेशनको जो विषय सौंप दिये जायँगे, उनके सम्बन्धमें क़ानून बनानेके अधिकार भी फेडरल-व्यवस्थापिका सभाको होने चाहिए। यदि देशी नरेश इस योजनामें सम्मिलित होंगे, तो फेडरल-विषयोंके सम्बन्धमें फेडरल-व्यवस्थापिका सभामें स्वीकृत हुए क़ानून देशी रियासतोंमें प्रत्यक्षतया अमलमें लाने चाहिए। इसी प्रकार फेडरल विषयोंके सम्बन्धमें बनाये हुए कानूनोंको अमलमें लानेका तथा उन विषयोंकी देखभाल करनेका अधिकार फेडरल मन्त्रिमण्डलको होना चाहिए। इन दोनों बातोंपर देशी नरेशोंने अपनी स्वीकृति दी है यह बात ज़ाहिर नहीं हुई। बिना इस स्वीकृतिके देशी नरेशोंको फेडरेशनकी योजनामें सम्मिलित करना अनर्थकारक है। यदि फेडरेशनके कानून प्रत्यक्ष रीतिसे रियासतोंमें अमलमें नहीं लाये जायँगे तो रियासतोंके प्रतिनिधियोंके फेडरल व्यवस्थापिका सभामें रहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? आजकल जिस प्रकार व्यवस्थापिका सभाके बनाये हुए बहुतसे कानून देशी नरेश अपनी रियासतोंमें अमलमें लाते हैं उसी प्रकार वे भविष्यमें भी कर सकते हैं। यदि वे इन कानूनोंको मानना नहीं चाहते तो फेडरेशनकी व्यवस्थापिका सभामें रियासतोंके सभासदोंका हस्तक्षेप क्यों होने देना चाहिये ? इसके अलावा यदि फेडरेशनके मन्त्रिमण्डलकी हुकूमत रियासतोंमें फेडरल विषयोंके सम्बन्धमें नहीं चल सकेगी, तो मन्त्रि-मंडलका चुनाव करनेमें या उसे निकालनेमें या उसे पदभ्रष्ट करनेमें रियासतके सदस्योंको क्यों अधिकार होने चाहिये ? अतः इन दोनों बातोंके सम्बन्धमें देशी नरेशोंने कौनसा उत्तर दिया यह जानना आवश्यक है। यदि फेडरेशनके कानून तथा उसके राज्य-शासनमें देशी नरेशोंको सम्मिलित होना है तो उन्हें फेडरेशनकी हुकूमत माननेकी तत्परता दिखानी चाहिये और उसी प्रमाणमें फेडरल विषयोंपरके अपने अधिकार छोड़ना स्वीकार करना चाहिये। यदि ऐसा न होगा तो उसे फेडरेशन कहना ग़लत होगा। इसका परिणाम यह होगा, कि फेडरेशनके कानून और उसके शासनमें रियासतोंके ग़ैरजिम्मेवार प्रतिनिधियोंके निष्कारण हस्तक्षेप करनेसे ब्रिटिश भारतकी प्रजाका नुकसान होगा। इस दृष्टिसे यह प्रश्न बड़े महत्वका है।

इस सम्बन्धमें देशी नरेशोंका यह कहना है कि फेडरेशनकी व्यवस्थापिका-सभामें जो क़ानून मंजूर होंगे उन्हें हम निजी क़ानूनके ढंगपर अपनी रियासतोंमें शीघ्र ही अमलमें लावेंगे। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि हमारी इज्ज़त किसी प्रकारसे कम न हो। किन्तु यह दलील ऊपरी दिखावटमें जितनी भोलीभाली दीखती है उतनी नहीं है। उसमें देशी नरेशोंका कुछ दूसरा ही दांव है। यदि फेडरेशनके कानून प्रत्यक्ष रीतिसे रियासतोंमें जारी हो जायँगे तो रियासतोंमें उनका अतिक्रमण होनेपर उसकी फरियाद फेडरल कोर्टमें करनी होगी। किन्तु यदि वे रियासती क़ानूनके ढंगपर रियासतोंमें अमलमें लाये जावेंगे तो उनके अतिक्रमणकी दाद रियासतकी अदालतमें ही मिलेगी। इस प्रकार इज्ज़तके बुरक़ेमें छिपकर फेडरेशनकी अदालतकी हुकूमत न माननेका यह भीतरी दांव है।

इसका निष्कर्ष इतना ही है, कि फेडरल व्यवस्थापिका

सभा अथवा फेडरल अदालतका कोई भी अधिकार रियासतोंमें न चलने पावे। देशी नरेशोंका ऐसा अनुरोध है कि ये सब सुविधाएँ प्राप्त कर फेडरेशनकी व्यवस्थापिका-सभा तथा उसकी दोनों शाखाओंमें उनके नियुक्त किये हुए प्रतिनिधि लिए जायँ। सारांश, फेडरेशनसे होनेवाले सब लाभ बिना किसी स्वार्थत्यागके प्राप्त कर लेनेकी यह चेष्टा है। देशी नरेशोंकी इस स्वार्थान्धताके लिए अखिल-भारतवर्षके लोगोंको उनके फेडरेशन-योजनाके समर्थनका खयाल करके उनका अखण्ड ऋणी होना चाहिये; यह बात मुख्य प्रधानसे लेकर सब लोग गला फाड़कर कह रहे हैं। इसके लिए देशी नरेशोंने उपकार मानने योग्य कौनसा स्वार्थत्याग किया है और ब्रिटिश भारतपर उपकारका कौनसा बोझ लादा गया है यह देखना भी आवश्यक है। वास्तवमें सम्मिलित विषयोंके सम्बन्धमें आज उनको कोई भी अधिकार नहीं है। इन विषयोंकी नीति निर्धारित करनेमें न तो उनकी सलाह ली जाती है, और न कानून बनानेके समय उन्हें मत देनेका ही अधिकार है। ये दोनों अधिकार फेडरेशनकी व्यवस्थापिका सभामें रियासतके सभासदोंका प्रवेश होनेसे उन्हें मिल सकते हैं। किन्तु इसके बदले देशी नरेश कोई स्वार्थत्याग करनेकी तैयारी नहीं दिखाते। इसीलिए यदि ऊपर निर्दिष्ट परिस्थिति सत्य हो तो रियासतोंके सदस्योंके फेडरेशनकी व्यवस्थामें प्रवेश होनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। यदि उपर्युक्त शर्तपर उनका फेडरेशनमें समावेश होगा तो वह फेडरेशनके सिद्धान्तके विरुद्ध है; और इस प्रकारकी फेडरेशन-व्यवस्थाका समर्थन करना ब्रिटिश भारतकी प्रजाके लिए आत्मवंचना करनेके समान है।

और एक महत्वपूर्ण बात यह है कि रियासतोंके प्रतिनिधि किस प्रकार चुने जायँगे। यदि रियासतोंको ब्रिटिश भारतकी प्रजाके समान प्रतिनिधि चुननेका अधिकार होगा तो इस योजनाके स्वीकार करनेमें कोई बाधा नहीं। किन्तु यदि फेडरेशनमें देशी नरेशोंके नियुक्त किये हुए प्रतिनिधि आनेवाले हों तो इस योजनासे बड़ा नुकसान होगा। देशी नरेशोंके प्रतिनिधि अथवा उनके मुख्तार उनके इशारेपर अपना मत देंगे। देशी नरेश पोलिटिकल विभागकी नौकरशाहीके नियन्त्रणमें होनेसे रियासतोंके प्रतिनिधि उन्हींके इशारेपर चलेंगे। इस प्रकार रियासतोंके ये प्रतिनिधि आजकलकी व्यवस्थापिका-सभाके सरकारी सभासदोंके समान बन जायँगे। फेडरेशनकी व्यवस्थापिका-सभामें सरकारी सभासदोंका दल भविष्यमें न होगा ऐसा जाहिर हुआ है। ऐसी हालतमें सरकारके हितकी रक्षा करनेके लिए देशी नरेशोंके प्रतिनिधियोंका एक गुट तैयार करनेका यह दांव खेला जा रहा है। काँटेसे काँटा निकालनेकी नौकरशाहीकी यह तरकीब वास्तवमें अजीब है। गोलमेज-परिषदके आरम्भसे ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंका यह दुराग्रह था कि रियासतोंका प्रवेश फेडरेशनमें हुए बिना वे किसी भी योजनाका विचार करनेको तैयार नहीं होंगे। किन्तु उन्हें देशी नरेशोंके प्रति इतना असीम प्रेम कैसे पैदा हो गया इसका पहले बिलकुल ही पता न चला। यदि वे यह कहें कि उनका प्रयत्न रियासतकी राज्य-व्यवस्थाको ब्रिटिश भारतकी राज्य-व्यवस्थाके अनुसार लोकसत्तात्मक बनानेका है, तो लन्दनकी दस सप्ताहकी लम्बी चौड़ी चर्चामें इसका कहीं ज़िक्र भी नहीं किया गया। सच तो यह है कि देशी नरेशोंकी स्वेच्छाचारिता क़ायम रखनेके लिए वायसरीगल राज्य-पद्धतिका निर्माण किया जा रहा है। देशी नरेशोंकी प्रशंसाके पुल बांधते समय रियासतोंमें स्वराज्यकी कौन कहे, कमसे कम सुराज्यकी स्थापना करनेकी सादी प्रार्थना भी किसीने नहीं की। तब ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके इस दुराग्रहका कारण क्या था कि आगामी फेडरेशनमें देशी नरेशोंका समावेश होना ही चाहिये? देशी नरेशोंको बिना किसी स्वार्थत्यागके सम्मिलित विषयोंके सम्बन्धमें अधिकार दिये गये हैं, और इसके बदले रियासतोंके प्रतिनिधियोंका गुट लोकशाहीमें विघ्न उपस्थित करनेके लिए बनाया जा रहा है, जो कि आज तक सरकारी

सभासदोंका गुट करता आ रहा है। इसी प्रकारकी कुछ गुप्त मसलहत होनेकी ज़बर्दस्त आशंका प्रादुर्भूत होती है।

इसलिए यह बात अत्यन्त आवश्यक है, कि देशी नरेशोंको फेडरेशनमें सम्मिलित करनेकी घोषणा स्वीकार करनेके पूर्व ऊपर कहे हुए विचारोंका पूर्ण स्पष्टीकरण हो। अन्यथा इस योजनासे स्वाधीनताका अल्पसार भी प्राप्त होगा या नहीं इसमें काफ़ी सन्देह है। हम अपने ब्रि॰ भारतके देश-भाइयोंसे सानुरोध प्रार्थना करते हैं, कि वे इस बातपर अवश्य विचार करें।

देशी नरेशोंके विषयमें फेडरल योजनासे जो आपत्तियाँ आनेकी सम्भावना है, वे ऊपर बताई जा चुकी हैं। किन्तु उनका निराकरण बड़ी सरलतासे हो सकता है। फेडरेशनके सर्वसम्मत सिद्धान्तोंके अनुसार यदि राष्ट्रीय दल फेडरल कानून, मन्त्रि मंडलकी हुकूमत तथा सुप्रीम कोर्टकी अधिकार-मर्यादा केवल फेडरल विषयोंके सम्बन्धमें अमलमें लानेका अनुरोध करे तो उसको टालमटूल करना ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंको कठिन होगा और साथ ही देशी नरेशोंका यह विघातक व्यूह आपही नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार जब राष्ट्रीय दल यह अनुरोध करेगा, कि रियासतकी प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि ही फेडरेशनमें आने चाहिये तब उनकी यह मांग संसारके वर्तमान फेडरेशनोंके सिद्धान्तोंके अनुसार होगी, और उसी समय देशी नरेशोंके प्रतिनिधियोंका सरकारी सभासदोंके दलके समान आत्मनाशके मार्गपर चलनेका डर पूर्णतया नष्ट होगा। अतएव राष्ट्रीय दलको चाहिये कि वह अपना प्रस्ताव विशेष ज़ोर देकर पेश करे। उनकी मांग स्वीकृत होनेपर फेडरेशनकी योजना निःसंशय लाभदायक होगी। किन्तु यह होनेपर रियासतोंके नरेश फेडरेशनकी योजनाका बिल्कुल समर्थन न करेंगे। तिसपर भी, यदि केवल ब्रि॰ भारतका ही फेडरेशन बन जायगा तो भी स्वराज्य-प्राप्तिके मार्गमें कोई बाधा उपस्थित न होगी ऐसा हमारा ख़याल है।

उपयुक्त विवरणमें केवल रियासतोंके फेडरेशनका ही विचार किया है। ब्रिटिश भारतके हितकी दृष्टिसे जिन अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नोंका उल्लेख इस घोषणामें किया गया है उनपर विचार इस लेखमें नहीं किया गया। इस विषयमें नागरिकोंके अधिकारका अन्तर्भाव होता है। और यद्यपि वह रियासत तथा ब्रिटिश भारतकी प्रजासे उतना ही सम्बन्ध रखता है तथापि उक्त घोषणामें उसका नामनिर्देश न होनेके तथा इस सम्बन्धमें परिषदकी चर्चा अब तक प्रकाशित न होनेके कारण इस लेखमें उसका विचार करना असम्भव-सा है।

('लोकशिक्षण')

अनुवादक, :— आनन्दराव जोशी

रोगमुक्त

श्री पद्मादत्त त्रिपाठी, बी० ए०

वह बीमार पड़ा किशोरावस्था एवं यौवनके उस विचित्र सम्मिश्रण कालमें, जब कि किशोरावस्थाके निर्दोष दिन धीरे-धीरे किसी अज्ञात भावसे हठीले, चपल यौवनमें परिणत होते हैं, जब प्रत्येक वस्तु रहस्यहीन होकर अस्पष्ट कल्प-लोकके रंगीन प्रकाशसे अनुरंजित मालूम पड़ती है और समस्त वस्तुओंपर प्रेमका ही एक हलका आवरण चढ़ा दीखता है। उसकी बीमारी थी आरम्भमें साधारण ज्वर तथा सिरमें ज़ोरका दर्द, किन्तु दो-एक दिन बीत जानेपर जब ज्वरके घटनेके बदले बढ़नेके ही लक्षण दिखाई दिये, तब घरके लोग चिन्तित और व्यग्र हो उठे। उन्होंने एक डाक्टर बुला भेजा। डाक्टरने रोगीको देखा और एक काग़ज़पर नुस्खा लिखते हुए किसी एक ख़ास दूकानका नाम भी लिया और वहींसे दवा लानेके लिए विशेष ज़ोर दिया। जाते समय फीसके रुपयोंको जेबमें रखते हुए उसने कहा—"बीमारी कुछ भी नहीं, साधारण ज्वर है, चिन्ताकी कोई बात नहीं।" उसने फिर डाक्टरोंके ही द्वि-अर्थक तथा अस्पष्ट शब्दोंमें कहा—"यदि ठीक ढंगसे अच्छे डाक्टरका इलाज होता रहा, तो बुखार यथासमय शीघ्र ही छूट जायगा।" लोगोंको ढाढ़स बँधा।

दवाका यथाविधि सेवन होता रहा। परहेज़ करनेमें भी शायद कोई कोर-कसर न की गई, किन्तु, इतनेपर भी जब ज्वर ज़रा भी न घटा और न उसके जल्द घटनेके ही कोई शुभ लक्षण दिखाई दिये, तो वही डाक्टर फिर बुलाया गया। इस बार उसने बड़ी गम्भीर आकृति धारणकर रोगका निदान करना आरम्भ किया। पहले उसने रोगीकी जीभ देखी, फिर स्टैथेस्कोप (Stethoscope) से उसकी छातीकी भी परीक्षा की। इसके पश्चात् जेबसे घड़ी निकाल उसपर एकटक नज़र गड़ाकर उसने रोगीकी नाड़ीकी गतिका भी निरीक्षण किया। अन्तमें उसने रोगीके शरीरका टेम्परेचर लिया और रोगीसे कुछ प्रश्न भी किये—जैसे, ज्वर होनेके पूर्व भोजनके प्रति अरुचि हुई थी? उस समय क्या काम करनेको जी नहीं करता था? क्या बुखार ज़ोरके सिरदर्दके साथ हुआ था? रोगी द्वारा इन सब प्रश्नोंका उत्तर हाँमें दिये जानेपर डाक्टरने पास खड़े हुए लोगोंपर एक सशंक दृष्टि डाली। वे तुरन्त समझ गये कि अवश्य ही दालमें कुछ काला है। उनके चेहरोंपर हवाइयाँ उड़ने लगीं, और वे तरह-तरहके रंग बदलने लगे। डाक्टरके फिर बारबार बाँह, छाती तथा पेड़ूके निरीक्षणसे उनको पूर्ण विश्वास हो गया कि बीमारी कोई मामूली नहीं है। परन्तु वहाँ रोगीके सामने किसीको डाक्टरसे कुछ पूछनेका साहस नहीं होता था। सारे कमरेमें पूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था। इतने ही में एक छोटासा बालक, जो वहीं अपने एक आत्मीयके समीप बैठा था और जो हमेशा डाक्टरके ही नामसे डराया-धमकाया जाता था, अपने समस्त बाल्य साहसको एकत्रित कर खड़ा होकर कहने लगा—"डाक्टर बाबू! भैया अच्छे हो गये? क्या कलसे हम लोग फिर घूमने जायँगे?"

डाक्टर लड़केके प्रश्नोंसे कुछ चकितसा हो गया, उसने सिर्फ इतना ही कहा—"अभी नहीं, थोड़े दिनों बाद।" कमरेमें फिर पूर्ववत् सन्नाटा छा गया। लोग करुणा भरी दृष्टिसे एक दूसरेकी ओर देख रहे थे। प्रश्नकर्ता बालक कुछ लज्जितसा हो चुपचाप अपने आत्मीयकी गोदमें बैठ गया, और तुरन्त ही उसके बटन-

घरमें लगे हुए फूलसे खेलने लगा। बीच-बीचमें वह क्रोधभरी दृष्टिसे डाक्टरकी ओर भी देखता जाता था। उसकी समझमें इन सब अनर्थोंकी जड़ डाक्टर ही था।

इस बार डाक्टरने उन लोगोंसे, जो उसे गाड़ी तक पहुंचाने गये थे, कहा—"बुखार मोतीझले (टायफाइड) में परिणत हो गया है।" उसने इसका सारा दोष रोगी और उसके तीमारदारोंके मत्थे मढ़ दिया और आप साफ बच गया। उसने फिर ज्वरके सम्बन्धमें अपनी पूरी जानकारी दिखाते हुए कहा—"यह एक सांघातिक बीमारी है। इसका भोग-काल १४ से ४२ दिन तकका होता है। इस बीमारीमें आँतोंमें जख्म हो जाते हैं, और वे धीरे-धीरे आराम होते हैं। पूर्ण निरोग होनेपर भी कुछ दिनों तक इस बातका भय रहता है कि फिर दोबारा रोगका आक्रमण न हो जाय।" अन्तमें उसने कहा कि उसे इस बातका डर है कि कहीं यह रोग भीषण रूप न धारण कर ले, क्योंकि रोगीकी मा भी तो इसी ज्वरसे चल बसी थी। भोजनके लिए उसने साबू, 'हार्लिक्स-मिल्क' तथा अरारूट बताया और कहा कि यदि अधिक प्यास हो, तो दूध और चूनेके पानीको बराबर भागोंमें मिलाकर पीनेको दिया जा सकता है।

लोगोंके बारबार मना करनेपर भी कि यह बीमारी छूतैली है, वह बालक नित्य रोगीके ही पास रहता। जब कभी भी रोगी करवट बदलता या ज़रा भी खाँसता, तो वह पूछता "भैया! भूख लगी है? साबू या अरारूट बनानेको कह दूँ?"—इत्यादि! जब कभी भी रोगीको पानीकी आवश्यकता पड़ती, तो वह स्वयं अपनी कमज़ोर लड़खड़ाती हुई टांगों और काँपते हुए हाथोंसे पानीका गिलास रोगीके पास ले जाता। लाते वक्त वह किसीको गिलास छूने तक न देता था। कभी जब रोगीको झपकी आ जाती, तो वह बहुत ही धीमे स्वरमें—कहीं उसकी ही आवाज़से भैयाकी नींदमें व्याघात न पहुंचे—लोगोंसे कहता—"बोलो मत, भैया सोते हैं।"

कभी वह रोगीके मस्तिष्कपर हाथ रखता और फिर उसकी नाड़ीपर अपनी उंगलियां रखकर तुरन्त ही बड़ी प्रसन्नतासे कह उठता—"बुखार छूट गया है, माथेमें भी बिलकुल दर्द नहीं है। भैया अब अच्छे हो गये। कलसे हम लोग फिर घूमने जायँगे।" वह मंसूबा बांधकर कहता कि अगले सोमवारको वे लोग चिड़ियाखाने जायँगे। इस बार वह अफ्रिकाके भालू और उस हठीले वनमानुषके लिए बहुतसे बिस्कुट ले जायगा और दोनोंको खूब भरपेट खिलायगा। इसके बाद वह बड़ी बहादुरीसे कहता कि इस बार वह स्वयं छोटे हाथीको अपने हाथसे केला देगा और उसपर सवारी करनेमें ज़रा भी नहीं डरेगा।

कभी-कभी वह रोगीकी बग़लमें लेट जाता और अपने एक हाथकी उंगलियोंसे दूसरे हाथकी नब्ज़को पकड़कर कहता कि उसके सिरमें बड़े ज़ोरका दर्द है और बुखार चढ़ आया है। अब उससे उठा तक नहीं जाता। उसका बुख़ार किसी भी हालतमें १०५ डिगरीसे कम नहीं होगा। इसके बाद वह कहता कि उसे भी टाँयफिस हो गया है। इसलिए आज रातको वह साबूके सिवा और कुछ नहीं खायगा, परन्तु थोड़ी ही देर बाद वह एकाएक उठ बैठता और ईश्वरसे अपने भैयाके जल्द अच्छे होनेके लिए प्रार्थना करता और मनौती मनाता, लेकिन अफ़सोस! यह सब बेकार था, बुख़ार क्षणभरके लिए भी रोगीको न छोड़ता।

इसी तरह चौदह-पन्द्रह दिन बीत गये। अब रोगीपर बीमारीका बुरा असर साफ-साफ मालूम होने लगा। अब वह अधिकतर पीठके ही बल चुपचाप पड़ा रहता और बग़लके बल बहुत कम लेटता। उसका चेहरा अब एकदम आभाहीन और पीला पड़ गया था। उसमें

अब अधिक अनिद्रा, बेचैनी तथा कुछ प्रलापके चिह्न भी साफ़-साफ़ दीख पड़ने लगे।

। २ ।

धीरे-धीरे पूरे तीन सप्ताह बीत गये। रोगीके शरीरके टेम्परेचरमें कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। दिन-पर-दिन उसकी हालत और भी ख़राब होती गई। वह अब बिस्तरेपर भी अधिक हिल-डुल नहीं सकता था; करवट बदलना तो उसके लिए एक प्रकारसे असम्भव-सा हो चुका था। वह अब निरी श्वासोंका ढेर था। उसकी बोलनेकी भी सामर्थ्य जाती रही; क्योंकि जब कभी भी वह बोलनेकी चेष्टा करता, तो उसके होठ काँपते और उसकी जीभ लड़खड़ाने लगती। उसका पहलेका वह गठीला एवं सुडौल शरीर अब एक पतले, पीले, खुरखुरे और उष्ण चमड़ेसे ढका हड्डियोंका पंजरमात्र था। उसकी नाड़ी भी बहुत कमज़ोर और क्षीण हो चली थी। उसकी गति कभी-कभी १३० प्रति मिनट या इससे भी अधिक हो जाती। उसकी जीभ काली, खुरखुरी और मैली रहती और पेटका निम्न-भाग भी कुछ फूलासा मालूम होता था, अतः कमज़ोर नाड़ी, काली तथा खुरखुरी जीभ, फूला हुआ पेट, कमज़ोर हृदय इत्यादि लक्षणोंसे अब यह स्पष्ट हो गया कि रोगीकी अवस्था बहुत ही नाज़ुक हो चली है। बहुधा उसमें बहरेपनके भी लक्षण दीख पड़ने लगते और किसी बातको उसे समझाना तो नितान्त असम्भव था। वह कभी-कभी अस्थिर एवं उदास हो उठता और बहुधा काल्पनिक वस्तुओं, दीवारों तथा बिस्तरेके कपड़ोंसे ही प्रलाप करने लगता। फिर भी कभी वह बड़ी ही शान्तिके साथ सजग-सा हो जाता और अपने चंचल, धुंधले, मूक तथा करुणापूर्ण नेत्रोंको कमरेके चारों तरफ फेरता, किन्तु जब वह वहाँ अपनी निधिको न पाता तो एक हल्की दर्दभरी आवाज़में चीख उठता और अस्पष्ट तथा अव्यक्त स्वरमें कुछ बड़बड़ा जाता। लोग घबरा उठते। वे उसे समझनेकी चेष्टा करते, पर समझते कुछ न थे। वे उससे पूछते कि वह क्या चाहता है, किन्तु वह कुछ नहीं कह सकता था। उसकी क्षीण निस्तेज आँखें अपने कोटरोंमें एक अव्यक्त व्यथासे घूमतीं और सजल हो उठतीं। शायद वह इस संसारसे अन्तिम विदा लेनेके पहले किसीको देखना चाहता था; किन्तु वह इस बातको न तो वाणीके द्वारा ही और न इशारेसे ही व्यक्त कर सकता था, क्योंकि वह अब इतना कर सकनेमें भी बिलकुल असमर्थ हो चुका था। वह हर वक्त चुपचाप अर्ध चेतनावस्था ही में, अधखुली आँखोंसे, पीठके बल निश्चेष्ट भावसे पड़ा रहता।

घरके लोग जब एकदम निराश हो गये और रोगीकी अवस्था अब-तबकी जान पड़ने लगी, तब उन्होंने उसकी बालिका पत्नीको पतिके अन्तिम दर्शनोंके लिए बुला भेजा।

सांसारिक धन्धोंसे बिलकुल अपरिचित तेरह-चौदह वर्षकी कोमल बालिका, जिसने अभी तक सुन्दर नारीत्वकी देहलीपर अपना पहला पैर भी न रखा था, पतिके अन्तिम दर्शनोंके लिए उसके चरणोंके पास खड़ी की गई। रोगीको इस समय झपकी आ गई थी। वह स्वप्न-राज्यके दूसरे ही लोकमें, जिसके क्षीण दुःख-सुखकी आभा उसके चेहरेपर झलक रही थी, विचरण कर रहा था। उस समय कभी उसके होठोंपर क्षीण मुसकान दौड़ जाती, तो दूसरे ही क्षण वह दुखभरी सिसकियाँ भरने लगता। थोड़ी देरमें रोगीने आँखें खोलीं, इस बार उनमें पहलेकी-सी चंचलता तथा उद्विग्नता न थी। उसके निस्तेज मूक करुण नेत्र बालिकापर पड़े, शायद वे उसको पहिचान न सके; क्योंकि रोगी अब जीवनकी अन्तिम घड़ियोंकी प्रतीक्षामें था। उसका नाता धीरे-धीरे इस संसारसे टूट चुका था। अब वह

उस लोककी तैयारीमें था, जहाँ दुःख और वियोग होते ही नहीं।

बालिकाकी नज़र रोगीपर पड़ते ही उसका सिर किसी अज्ञात श्रद्धासे अपने ही आप झुक गया। अचानक उसके अन्तरसे एक वेदनाभरी आह निकल पड़ी, और उसकी समस्त पतली देह, सिरसे लेकर पैरके अँगूठे तक एकाएक, किसी चंचल वायुके झोंकेसे काँपती हुई नव लताकी तरह, सिहर उठी। उसका मुखमंडल गम्भीर हो उठा। किन्हीं अज्ञात भावी दुःखकी घटाओंने उसके चेहरेको मलिन कर दिया। उसे ऐसा भास होने लगा, मानो वह उसे शीघ्र ही खो देनेवाली है, जिसे वह इस जीवनमें सबसे अधिक प्यार कर सकती थी, जिसे वह केवल एकमात्र अपना कहकर गर्व कर सकती थी और जिसके बलपर वह इस संसारमें बड़ी थी। उसके दिलमें बारबार यही आने लगा कि अब शीघ्र ही उसके बेगारीके जीवनका आरम्भ होनेवाला है और थोड़ी ही देरमें समस्त चीज़ें उसके लिए अपना महत्त्व खो देनेवाली हैं। इसपर उसका हृदय बैठ गया और अनन्त दुःख और निराशाके कूलहीन अन्ध-सागरमें उसका मन डुबकियाँ खाने लगा। बालिकाके छोटेसे चित्तमें एक प्रकारकी भीषण उथल-पुथल-सी मच गई। कुछ ही क्षणोंमें उसके दोनों विशाल नेत्र धुँधले हो डबडबा आये, और उनसे दो बड़े आँसू उसके 'अमल कपोलों' से ढुलककर रोगीके दोनों चरणोंको नहलाते हुए ज़मीनपर जा पड़े। इसपर रोगी एक बार दर्दभरी तेज़ आवाज़में चीख़ उठा और उसकी निस्तेज मूक स्थिर आँखें एक बार फिर बालिकापर पड़ीं। उसने तुरन्त ही फिर आँखें बन्द कर लीं। कई दिनोंके बाद इस बार उसके चेहरेपर शान्तिकी झलक दिखाई पड़ी। अन्तमें बालिकाने रोगीको विदाईकी दृष्टिसे देखा और मुँह लटकाये दुःखकी साक्षात् प्रतिमूर्ति बनी हुई वह बाहर चली आई। संसारके समस्त सुख-दुःख और हास-परिहास उसके लिए चले गये। अब तो उसके लिए जीवन एक असह्य बोझमात्र था।

[३]

प्रातःकालका समय था। अभी पूर्ण सूर्योदय नहीं हुआ था। समस्त प्रकृतिमें एक प्रकारका विषादसा छाया हुआ था। पास ही के घरमें कोई बड़े ही मधुर स्वरमें हारमोनियमपर कोई सुन्दर, किन्तु करुण रागिनी बजा रहा था। इतने ही में रोगीके घरसे रोनेकी आवाज़ सुनाई दी, और थोड़ी ही देरमें सारे घरमें कोहराम मच गया। रोगी चल बसा!

घरके लोग सभी बेसुध हो रो रहे थे। किसीको किसीकी भी सुध न थी। उन्हींमें एक छोटासा बालक भी था। सबको रोते देख वह भी फूट-फूटकर रो रहा था। इतने ही में एक युवती बालकको गोदमें उठाकर कुछ दूर ले गई। युवतीने अपने आँचलसे बालकके आँसू पोंछकर पुचकारते हुए उससे पूछा—"मुन्ना! तुम क्यों रोते हो?"

बालकने अपने नन्हेंसे हाथोंसे दोनों आँखें मलीं, और हिचकी भरते हुए कहा—"भैया!" और फिर पहलेकी तरह और भी अधिक फूट-फूटकर रोने लगा।

युवतीने धीरेसे, किन्तु बड़े ही करुण स्वरसे कहा—"मुन्ना! वे तो रोगमुक्त हो गये।"

बालकने अपने बाल-सहज, अस्फुट तथा तुतले स्वरमें युवतीके 'रोगमुक्त' शब्दको दोहराया और फिर चुप हो गया। शायद उसके बाल-सुलभ हाथ इस रहस्यमय यवनिकाको उठानेमें असमर्थ थे, अथवा वह नवागन्तुक दार्शनिक बालक जीवन और मृत्युके रहस्यको साधारण लोगोंकी अपेक्षा अधिक समझता था। युवती बहुत देर तक अपने दुःखके वेगको न रोक सकी। उसने बालककी तरफ़से अपना मुँह आँचलकी ओटमें फेर

लिया। उसके दोनों नेत्रोंसे अविरल अश्रुधाराएँ बह चलीं।

× × ×

श्मशानसे लोग लौट आये। उन सबने रोगीके मधुर-स्वभाव, सद्व्यवहार, अपनेसे बड़ोंका अदब तथा सुशोलताकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की। निस्सन्देह वे उसको गौरवकी दृष्टिसे देखते थे, और उनको इस बातका पूर्ण विश्वास था कि वह एक-न-एक दिन बहुत बड़ा आदमी होगा। ऐसा कोई भी न था, जिसे ऐसे होनहार युवककी मृत्युपर अत्यन्त हार्दिक दुःख न हुआ हो। दिन-भर लोगोंमें रोगीके बारेमें बातचीत होती रही। धीरे-धीरे सन्ध्या हो चली। स्वच्छ नीलाकाशमें असंख्य 'तारोंके स्नेहहीन दीपक' जगमगा उठे।

घरकी समग्र वस्तुओंसे लोगोंको मालूम होता था कि प्रत्येक वस्तुमें रोगी अपनी एक ख़ास छाप छोड़ गया है। जिस किसी भी चीज़पर उनकी नज़र पड़ती, वही उनको तुरन्त रोगीकी याद दिलाती थी। उनको ऐसा मालूम पड़ता कि उस वस्तुका रोगीसे कोई विशेष सम्बन्ध है, और यह विचार आते ही उनकी आँखोंमें आँसू उमड़ पड़ते।

वहीं पास ही में दीवारपर एक घड़ी लटक रही थी, जो अपने क्षीण टिक-टिक शब्दसे वहाँकी शब्दहीन निस्तब्धता भंग कर रही थी। घरवाले यह बात भलीभाँति जानते थे कि थोड़े दिन पहले कितनी ज़िद, कितनी मिन्नत-आरज़ूसे रुपये माँगकर वह यह घड़ी लाया था। चारपाई पकड़नेके पूर्व तक वह कितनी तत्परताके साथ उसमें चाभी दिया करता था।

बाहर बरामदेमें गैसके धुँधले प्रकाशमें वही बालक अपने खिलौनोंसे खेल रहा था। वहाँ वह एक नये संसारकी ही सृष्टि कर रहा था, जिसका विधाता वह स्वयं था। वह अपने रचनात्मक तथा ध्वन्सात्मक कार्योंमें इस प्रकारसे तल्लीन था, जिसे देखकर साधारणसे साधारण मनुष्य भी यह जान सकता था कि इस विशाल विश्वका नियन्ता क्यों इतना निठुर है। वह क्यों एक क्षणमें इतनी चीज़ोंकी सृष्टि करता है, फिर क्यों दूसरे ही क्षण उनमें से बहुतोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है, और प्रत्येक वस्तुको हमेशा क्यों नहीं रहने देता। इसी प्रकार बालक अपने खेलमें व्यस्त था कि उसकी नज़र एकाएक सामने सड़कपर धीरे-धीरे जाती हुई एक परिचित गाड़ीपर गई। बालक अपने खिलौनोंको छोड़ चिल्ला उठा—"डाक्टर बाबू! डाक्टर बाबू!" मानो उसके पास कोई बड़ी-भारी ख़बर उसे देनेको थी। इसपर गाड़ी रुक गई, उसकी खिड़कीसे एक अंग्रेज़ी पोशाकसे विभूषित पुरुषने अपना कुछ अन्यमनस्क चेहरा बाहर निकाल बालककी ओर देखा। बालकने दोनों हाथोंसे ताली पीटते हुए, अत्यन्त प्रसन्नताके साथ तुतलाते हुए कहा—"डाक्टर बाबू, भैया रोगमुक्त हो गये!"

डाक्टरने उदास हो अपना सिर गाड़ीके भीतर कर लिया। गाड़ी धीरे-धीरे फिर चलने लगी, और कुछ देर बाद वह दूर सड़कके लैम्पोंके धुँधले प्रकाशमें अदृश्य हो गई। क्रमशः उसकी घरघराहट भी अनन्त कोलाहलमें विलीन हो गई। बालक फिर अपने खिलौनेसे खेलने लगा।

चित्र-चयन

पं० सकलनारायण शर्मा

कलकत्तेके बीसवें हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्वागत-समितिके सभापति पं० सकलनारायण शर्मा, काव्य-व्याकरण-सांख्यतीर्थ।

श्री पूरणचन्द नाहर

कलकत्ता साहित्य-सम्मेलनके प्रदर्शिनी-विभागके मन्त्री श्री पूरणचन्द्र नाहर, एम० ए०, बी० एल०ने प्रदर्शिनीको सफल बनानेके लिए सबसे अधिक प्रयत्न किया। नाहरजी प्रदर्शिनीके कार्यमें सपरिवार जुटे रहते थे। आपके प्रयत्नसे प्रदर्शिनीको खासी सफलता मिली।

कुमारसिंह हाल
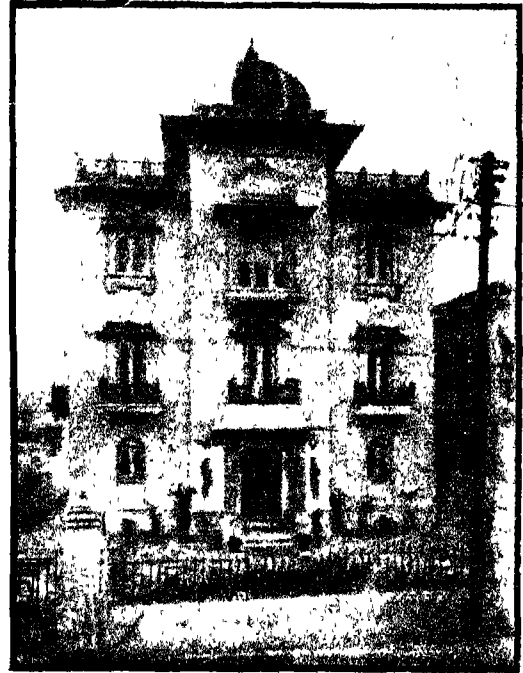
कुमारसिंह हाल

इसी हालमें हिन्दी साहित्य-सम्मेलनकी प्रदर्शिनी हुई थी।

बाबू बहादुरसिंह सिंघी

सम्मेलनके पास अब तक अपना कोई ऐसा संग्रहालय नहीं है, जिसमें हिन्दी-साहित्य-सेवियोंकी स्मारक वस्तुएँ, उनके चित्र, उनकी हस्त-लिपियाँ आदि सुरक्षित रूपमें रखी जा सकें। कानपुर सम्मेलनने संग्रहालय बनानेके लिए प्रस्ताव भी पास किया था, मगर वह प्रस्ताव अब तक कार्यरूपमें परिणत न हो सका। इस बीसवें सम्मेलनमें कलकत्तेके उदार धनाढ्य

बाबू बहादुरसिंह सिंघी

बाबू गोकुलचन्दजी

बाबू बहादुरसिंह सिंघीने सम्मेलनके इस संग्रहालयके लिए १२,५००) रु० दान देकर इस पुनीत काममें जो सहायता पहुँचाई है, वह हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगी।

श्री बहादुरसिंह अज़ीमगंज, जिला मुर्शिदाबादके एक प्रतिष्ठित श्वेताम्बर जैनकुलमें उत्पन्न हुए हैं। उनकी शिक्षा मुर्शिदाबादमें हुई थी। इस समय वे बंगालमें जूटके एक बड़े व्यापारी हैं। साथ ही बंगाल और बिहारमें उनकी बड़ी ज़मींदारी और मध्यप्रदेशमें कोयलेकी खान भी है। वे बड़े दानशील सज्जन हैं। जब महात्मा गांधी चित्तरंजन-सेवा-सदनके लिए चन्दा मांगने सिंघीजीके आफिसमें गये, तो सिंघीजीने फौरन १०,०००) रुपये महात्माजीको अर्पण किये। उन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्रकी विश्वभारतीमें 'जैन चेयर' स्थापित की है तथा मुर्शिदाबाद ज़िलेकी कई पब्लिक संस्थाओंको उदारतापूर्वक सहायता दी है। सिंघीजीके पास प्राचीन चित्रों, कलाकी वस्तुओं और जवाहरातोंका बड़ा अच्छा संग्रह है। सम्मेलनकी प्रदर्शिनीमें उन्हें अपनी प्रदर्शित वस्तुओंके लिए स्वर्ण पदक मिला है। उनका परिवार बड़ा सुशिक्षित है।

बाबू गोकुलचन्दजी

अबसे दस वर्ष पूर्व कलकत्तेमें साहित्य-सम्मेलनका जो अधिवेशन हुआ था, उसमें यहाँके उदारमना रईस बाबू गोकुलचन्दजीने ४०,०००) रुपये प्रदान किये थे, जिससे हिन्दीके 'नोबेल प्राइज़' मंगलाप्रसाद-पारितोषिककी स्थापना हुई थी। गोकुलचन्दजीकी इस उदारताके लिए हिन्दी संसार चिर कृतज्ञ रहेगा।

सम्मेलनके इस बीसवें अधिवेशनमें बाबू गोकुलचंदजीने एक पुस्तकमालाके प्रकाशनार्थ १०,०००) रुपये पुनः सम्मेलनको प्रदान किये हैं। बाबू गोकुलचन्दजीकी इस उदारताके लिए उन्हें जितने धन्यवाद दिये जायँ, कम होंगे। हिन्दी-भाषा-

बेल्जियमके ब्रुसेल्स और आन्टवर्पके कुछ दृश्य
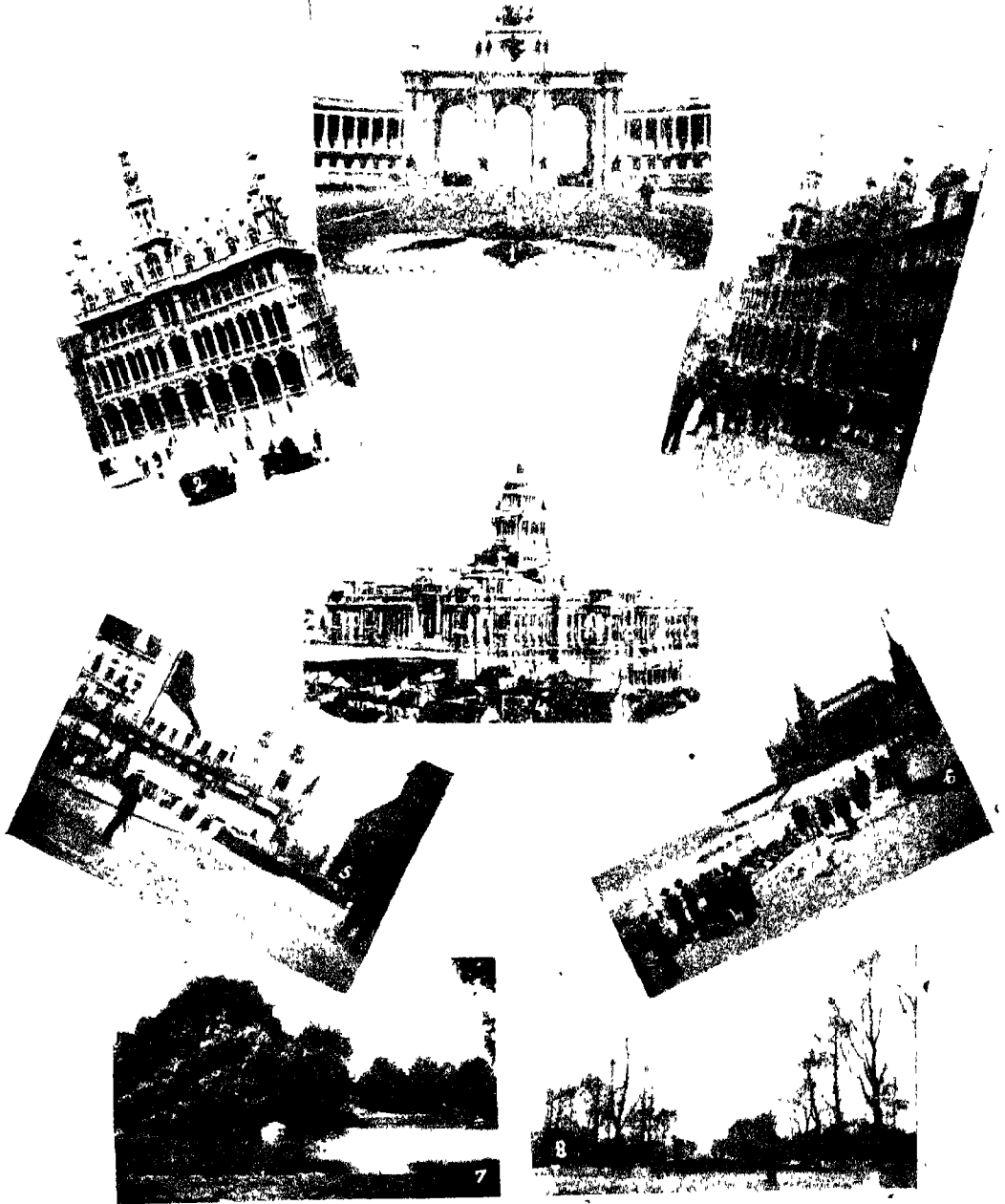
भाषी संसारमें धनी-मानी सज्जनोंकी कमी नहीं है ; मगर हिन्दी साहित्यको प्रोत्साहन देनेवाले धनी विरले ही होंगे। क्या ही अच्छा हो, जो हमारे अन्य लक्ष्मीपति बाबू गोकुलचन्दजीका अनुसरण करें।

बेल्जियमका शतवार्षिक उत्सव

कुछ दिन पूर्व बेल्जियमकी स्वाधीनताकी शतवार्षिक जयन्ती ब्रुसेल्स नगरमें मनाई गई थी।
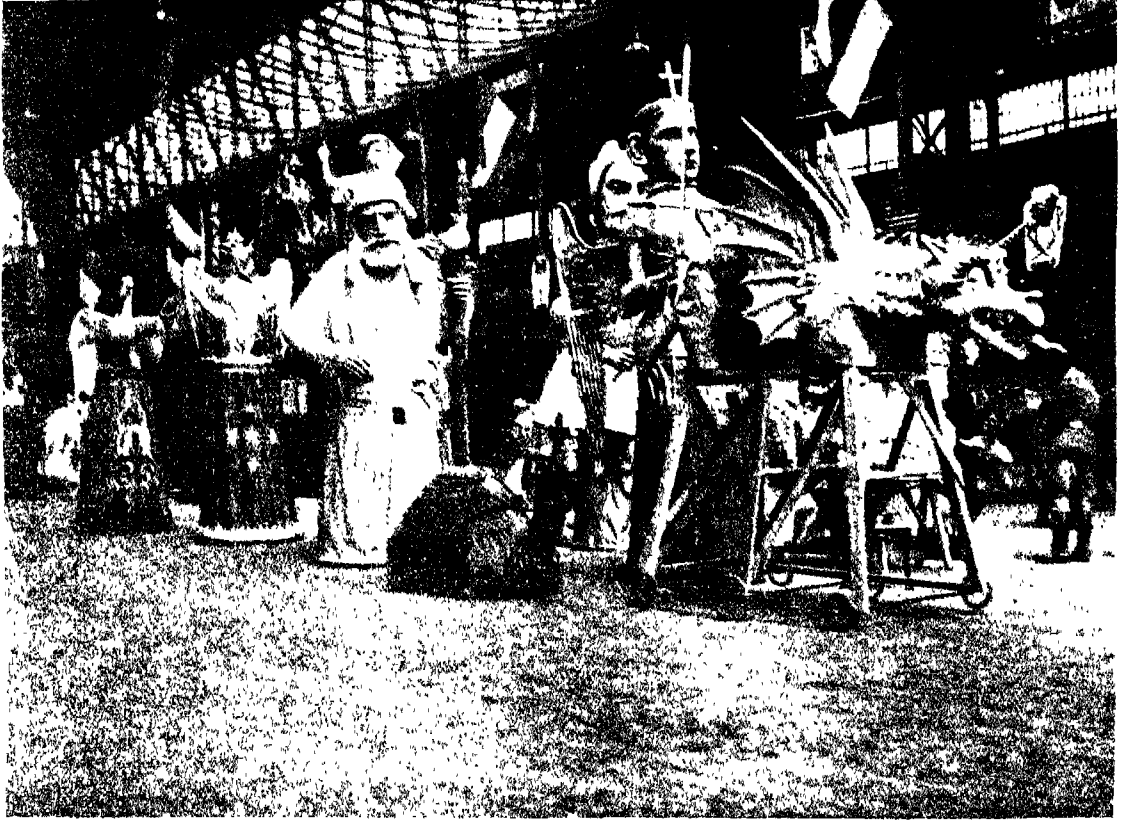
ब्रुसेलमें स्वाधीनता उत्सवका एक जुलूस

पश्चिम यूरोपमें एक छोटासा देश है। बेल्जियम जातिकी वर्तमान स्वतन्त्रता एक सौ वर्ष प्राचीन है। सोलहवीं शताब्दीके प्रथम भागमें स्पेनका राजा और जर्मनीका सम्राट् पंचम चार्ल्स बड़ा प्रतापशाली व्यक्ति हुआ है। उस समय बेल्जियम उसके राज्यका एक साधारण प्रान्त था। उसकी मृत्युके बाद बेल्जियम उत्तराधिकारके अनुसार आस्ट्रियाके हिस्सेमें आया। वाटरलूकी प्रसिद्ध लड़ाईमें नेपोलियनके हारनेके बाद यह नेदरलैण्डस (हालैण्ड) के अधीन हुआ। सन् १८३० के सितम्बर महीनेमें हालैण्डके राजा विलियमके जन्मोत्सवके उपलक्षमें बेल्जियमकी राजधानी ब्रुसेलमें बड़ेभारी उत्सवका आयोजन किया गया। उस समय देशकी आर्थिक और राजनैतिक दशा बहुत खराब थी। उच्छृंखल शासनके विरुद्ध जनताके हृदयमें गुप्तरूपसे आग सुलग रही थी। षड्यन्त्रकारीगण राजद्रोह करनेके लिए कोई उपलक्ष्य ढूँढ रहे थे। राजाके जन्मोत्सवके सुयोगसे उन्होंने लाभ उठाया।

ब्रुसेलसमें इस बातकी घोषणा की गई कि राजाका जन्मोत्सव दो दिन तक मनाया जायगा। इसी आशयके विज्ञापन भी जगह-जगह चिपके थे; मगर उत्सवके प्रथम दिन लोगोंने उठकर देखा कि स्थान-स्थानपर एक और विज्ञापन चिपका है, जिसमें लिखा था।

'—आज—बाल-नाच होगा,

कल —आतिशबाज़ी छूटेगी

परसों - विप्लव होगा—'

स्वाधीनता उत्सवका एक जुलूस
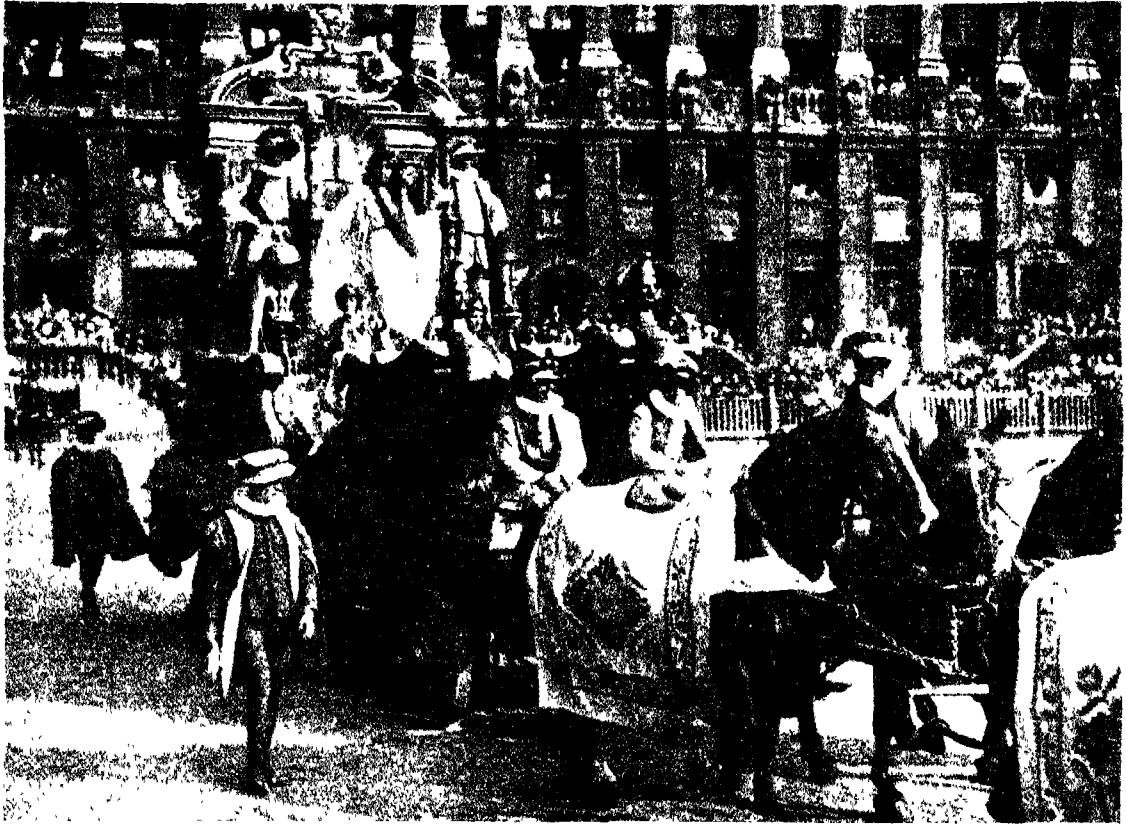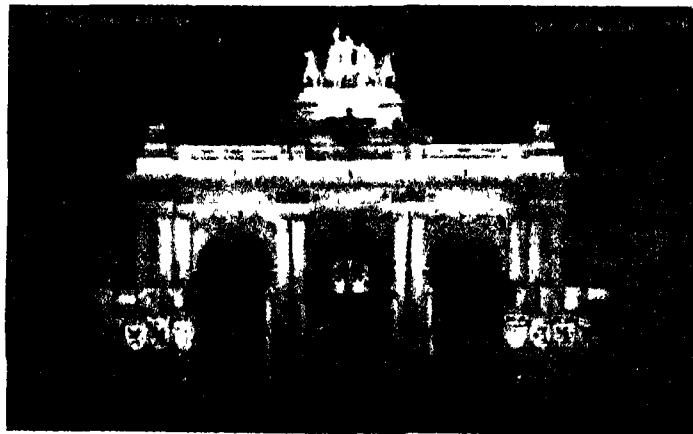
रातकी रोशनीमें 'स्याकान्तेनेयार' नामक तोरणका दृश्य

ब्रुसेलमें स्वाधीनता-उत्सव

इस विज्ञापनसे लोगोंमें सनसनी फैल गई। राज-कर्मचारियोंने कहा कि यह किसी पागलकी करतूत है; मगर लोगोंके मनमें सन्देह बना रहा। पहला दिन सकुशल बीत गया, दूसरा दिन भी आनन्दोत्सवमें धूमधामसे गुज़रा और तीसरे दिन भी कोई निराली बात नहीं हुई। चौथा, पाँचवाँ "एक सप्ताह बीत गया! लोगोंने समझ लिया कि वह निश्चय ही किसी पागलकी करतूत है। मगर अधिक दिन न बीते थे कि २१ सितम्बरको विप्लवकारियोंकी तोपें रायल पार्कमें गरजने लगीं। २१ से लेकर २३ तक घनघोर युद्ध हुआ। डच लोग पराजित होकर भाग खड़े हुए। कई दिन बाद एन्टवर्पमें एक और लड़ाई हुई, जिसमें डच पूरी तरह हारे और बेल्जियमसे निकाल बाहर किये गये। इसी युद्धसे बेल्जियम स्वतंत्र हुआ। नेशनल कौंसिल द्वारा निर्वाचित प्रथम लियोपोल्ड राजा बनाया गया। डच सेनाने एक बार फिर बेल्जियमपर अधिकार करना चाहा, मगर बेल्जियमवालोंने फ्रांससे सहायता लेकर उन्हें हटा दिया। लियोपोल्डके बाद द्वितीय-लियोपोल्ड राजा हुआ। इसने बेल्जियमकी धनसमृद्धिकी अच्छी वृद्धि की। इसीने ब्रुसेलमें "पैलेस डु जस्टिस" की विश्वविख्यात इमारत बनवाई और एन्टवर्पके बन्दरगाहकी बड़ी उन्नति की। लियोपोल्डने अफ्रिकाके कांगोप्रदेशको अपने निजी पैसेसे खरीदकर अपनी जातिवालोंको भेंट कर दिया। लियोपोल्डने

स्वतन्त्रता उत्सवका जुलूस

बेल्जियम जातिके लिए जो कुछ किया, उसके लिए बेल्जियन सदा उसके कृतज्ञ रहेंगे; लेकिन साथ ही उसने पैसा कमानेके लिए कांगोके हब्शियोंपर जो अत्याचार किये थे, वे मानव इतिहासमें सदा उसे कलंकित रखेंगे।

इन्हीं लियोपोल्डके भतीजे एल्बर्ट आजकल बेल्जियमके राजा हैं। गत यूरोपियन महायुद्धमें बेल्जियमको वास्तवमें युद्धकी अग्निमें होकर गुज़रना पड़ा था। जर्मनके आक्रमणोंका सबसे भयंकर प्रहार बेल्जियम ही के सिर बीता था।

गत १९३० में बेल्जियमकी स्वाधीनताकी शतवर्षी बड़ी धूमधामसे मनाई गई। बेल्जियमकी राजधानी ब्रुसेल नववधूकी भाँति सजाई गई थी। तोरण, पताके, झण्डे-झण्डियों और पुष्पमालाओंसे समूचा शहर सजा था। रातमें बिजलीकी सहस्रों बत्तियाँ जगमग जगमग करती थीं। सन १९३० के पिछले भागमें उत्सवका श्रीगणेश हुआ था और शहरमें कई महीने तक रोशनी होती रही! उत्सवके उपलक्षमें अनेकों जुलूस निकाले गये। जिस प्रकार इलाहाबादमें विजयादशमीपर रामदल और दशहरेका जलूस निकलता है, जिसमें नाना प्रकारकी सैकड़ों चौकियाँ होती हैं, इसी प्रकार ब्रुसेलके जुलूसोंमें भी अनेकों चौकियां और गेलरी निकाली गई थीं। बेल्जियमके प्रत्येक विभागने अपने अपने विभागोंकी ओरसे एक एक चौकी प्रदर्शित की थी। कुछ चौकियोंके नाम ये थे—'कांगोकी सभ्यता,' 'चन्द्रमा', 'वर्षाऋतु',

स्वतन्त्रता-उत्सवका एक जुलूस
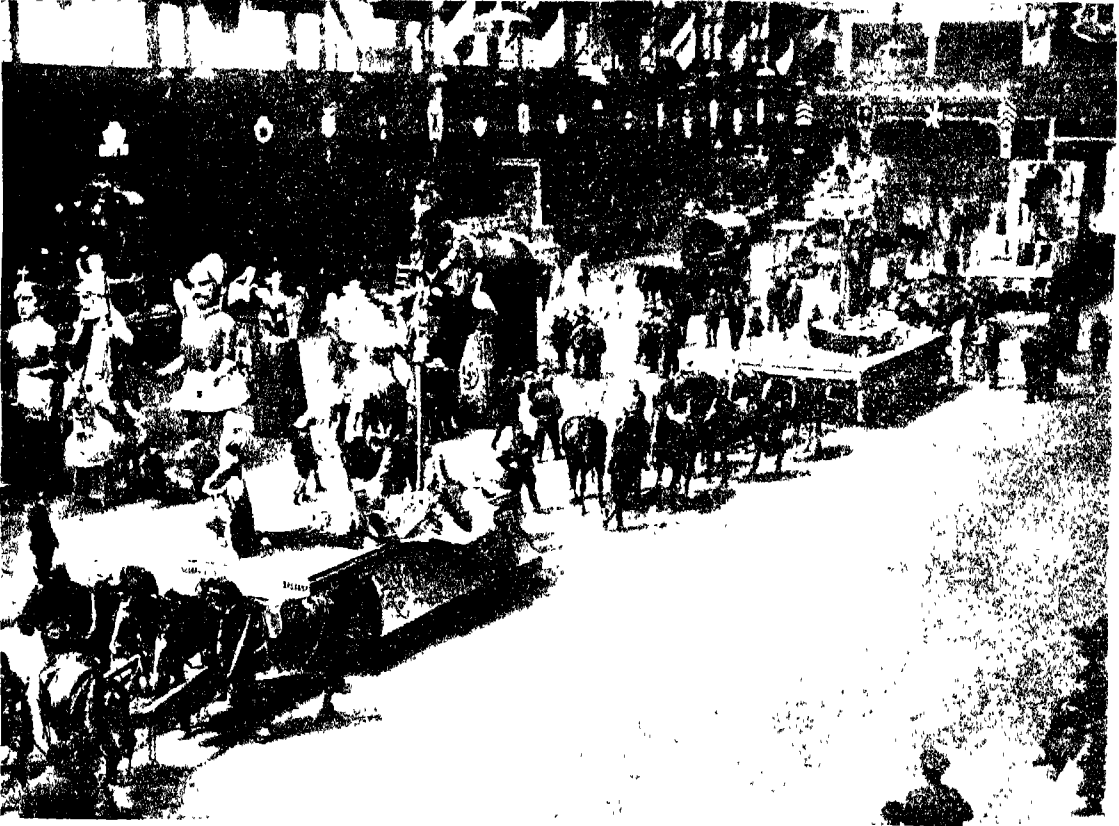
'स्वर्गानन्दित', 'टेलीविज़न', 'आज और कल (गत)' इत्यादि। पहले ये चौकियाँ बेल्जियमकी राजधानी ब्रूसेलमें प्रदर्शित की गईं, बादमें वे दर्शक भिन्न भिन्न प्रान्तों और नगरोंमें प्रदर्शनार्थ भेजी गई थीं। मुख्य उत्सव दिवसके लिए सब प्रान्तोंने एक एक, दो-दो चौकियाँ भेजी थीं। यहाँपर ब्रूसेलकी कुछ-प्रसिद्ध इमारतोंके दृश्य तथा शताब्दी उत्सवके जुलूसोंके दृश्य प्रकाशित किये जाते हैं।

कहीं हम भूल न जायँ

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त

स्वर्गीय श्री रामेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

[पुराने कागजोंके उलटने पलटनेमें यह लेख मुझे मिला है। मालूम होता है कि पूज्य भाई रामेश्वरप्रसादजीने इसे कलकत्ता-हिन्दी-साहित्य परिषदकी गुप्तस्मरण-सभामें पढ़नेके लिए लिखा था। उनकी लिखी जो प्रति मुझे मिली है, उसमें अन्तिम वाक्य पूरा नहीं है। इससे मालूम होता है कि लेख अपूर्ण ही रह गया। इसमें गुप्तजीके सम्बन्धकी बहुतसी नई बात देख इसे भेज रहा हूँ।

स्वर्गीय रामेश्वरप्रसादजी पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीके भानजे थे। उनका जन्म वैसाख वदी १३ संवत १९४८ वि० को हुआ था। वे बड़े होनहार और तीक्ष्णबुद्धि थे। गुप्तजी उनको बहुत प्यार करते थे। वे कलकत्तेके सिटी कालेजके बी० ए० क्लासमें पढ़ रहे थे। बी० ए० में नाम लिखानेके बाद ही आषाढ़ सुदी ६ सं० १९७० को अचानक उनका देहान्त केवल इक्कीस वर्षकी उम्रमें हो गया। वे हिन्दी-लेखकोंमें स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र और गुप्तजीको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। उत्साही नवयुवककी भाँति वे सामाजिक और राजनीतिक कार्योंमें सदा सम्मिलित होते थे।

—उमावल्लभ चतुर्वेदी

× × ×

१६ वर्ष पहले लिखा हुआ यह लेख दो व्यक्तियोंका स्मरण दिलाता है, एक तो स्वर्गीय गुप्तजीका और दूसरे स्वयं लेखकका। —सम्पादक]

इस असार-संसारमें लाखों जीव आते और चले जाते हैं, सहस्रों मनुष्य यह नश्वर शरीर धारण करते और त्याग देते हैं, परन्तु उनमें कितने ऐसे हैं, जिनके चले जानेपर साल दो सालमें दस-पाँच मनुष्य इकट्ठे हो, उनके गुणोंका वर्णन कर अपनी आत्मा पवित्र करते और जीवन सुधारते हैं तथा उनके लिए प्रेमाश्रुकी दो बूँदें टपकाते हैं। कविकी यह उक्ति बहुत ठीक है कि—

'जन्म लेत सो मरत रीति जगकी चलि आई।
धन्य जन्म है तासु करत जो जाति भलाई॥'

सचमुच स्वदेश, स्वजाति और स्वभाषाकी सेवा करना प्रत्येक पुरुषका कर्तव्य है। जो ऐसा न कर केवल स्वार्थ चिन्तामें ही सारा समय बिताते हैं, वे कभी श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं देखे जा सकते। वे कुबेरकी सम्पत्तिके स्वामी ही क्यों न हो जायँ, यह बिलकुल सत्य है कि उनकी पूजा न इस लोकमें हो सकती है और न उस लोकमें। वे ख्यातिके लिए सदा लालायित रहते है, पर उन्हें वह कभी प्राप्त नहीं होती। पर जो व्यक्ति देश और जातिकी

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त

सेवा करता है, वह न केवल इस लोकमें ही श्रद्धापात्र समझा जाता है, प्रत्युत उस लोकमें भी वह अवश्य सद्गति पाता है।

आज जिन पुरुष-रत्नका स्मरण हम यहाँ करते हैं, उन्होंने उल्लिखित कथनका मर्म भलीभाँति समझा था। उनके जीवनका उद्देश्य ही वह था, और उसकी पूर्तिके लिए उन्होंने प्राणपणसे प्रयत्न भी किया।

गुप्तजीको लोकान्तरित हुए धीरे-धीरे पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। सुना, स्वजनोंसे नाता तोड़ और मित्रोंसे मुँह मोड़ संवत १९६४ की भाद्रशुक्ला दशमीको वे भगवती यमुनादेवीके तटस्थ इन्द्रप्रस्थ नगरमें स्वर्ग सिधारे, किन्तु न जाने क्यों हृदयको विश्वास नहीं होता। जान पड़ता है, मानो वह सौम्यमूर्त्ति नयनोंके सम्मुख आ खड़ी हुई है और बड़े स्नेह-सहित इस बालकको गोदमें उठाकर उमंग-भरे शब्दोंमें कह रही है—

"आ मेरे मन्ना[१] आ मेरे लाल,
गोदमें आकर करो निहाल।"

गुप्तजीकी याद आते ही उनकी एक-एक बात मनमें दौड़ जाती है। उनका मनोहर चित्र आँखोंके सामने खिंच जाता है। मालूम होता है, वे मरे नहीं जीवित ही हैं। कहा भी है—"कीर्त्तिर्यस्य स जीवति।" गुप्तजी अपना नाम अमर कर गये हैं। स्वदेश, स्वजाति, स्वधर्म और स्वभाषाके लिए वे जो परिश्रम कर गये हैं, वह सुवर्णके अक्षरोंमें लिखा जायगा।

गुप्तजी जातिके अग्रवाल वैश्य थे। उनका घर गुरियानी था। गुरियानी पञ्जाब-प्रदेशके रोहतक ज़िलेमें है। यह दिल्लीके समीप है। गुप्तजीकी ससुराल रेवाड़ी थी। उनका जन्म कार्त्तिकशुक्ला चतुर्थी संवत् १९२२ को हुआ था।

[१]—लेखकका प्यारका नाम 'मन्ना' था और गुप्तजी इसी नामसे उसे पुकारते थे। —उ० चतुर्वेदी

इस हिसाबसे ४२ वर्षकी उम्रमें उन्होंने मानव-लीला समाप्त की, परन्तु इतने थोड़े समयमें वे जो कुछ कर गये, वह दूसरोंके लिए अनुकरणीय है। पञ्जाबमें सदासे उर्दू-फ़ारसीका प्राबल्य रहा है। हर्षकी बात है कि आर्यसमाजके प्रयत्नसे वहाँ हिन्दीका प्रचार बढ़ रहा है। गुप्तजीकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू-फ़ारसीमें ही हुई थी। हिन्दीका ज्ञान उन्होंने बहुत बड़े होनेपर प्राप्त किया। यह एक मार्केकी बात है कि लड़कपनमें हिन्दीसे नितान्त अनभिज्ञ रहनेपर भी प्रौढ़ावस्थामें उन्होंने उसे केवल सीखा ही नहीं, प्रत्युत उसपर पूरा अधिकार भी जमा लिया।

गुप्तजी पढ़ने-लिखनेमें बड़े तेज़ थे। एक बार स्कूलोंके इन्स्पेक्टर निरीक्षणके लिए उनके स्कूलमें गये। इन्स्पेक्टर साहबने एक सवाल दिया, जो किसीसे भी हल न हो सका। गुप्तजीने उसे तुरन्त बता दिया। उनकी ऐसी कुशाग्रबुद्धि देख इन्स्पेक्टर साहबने उनके पिताजीसे उन्हें उच्चशिक्षा देनेका अनुरोध किया था, पर पढ़ने-लिखनेकी ओर विशेष अभिरुचि होनेपर भी तेरह वर्षकी उम्रमें पिताजीके स्वर्गवासी होनेके कारण गुप्तजीको शिक्षाकी इतिश्री करनी पड़ी। किन्तु गुप्तजीसे कर्मनिष्ठ व्यक्ति इससे घबड़ानेवाले जीव न थे, वरंच उन्होंने स्थिरचित्त हो द्विगुणित उत्साहसे कार्य सिद्ध करनेका उपाय अवलम्बन किया।

बचपनसे ही पत्र-सम्पादनकी ओर उनकी अभिरुचि थी। बहुत थोड़ी अवस्थामें ही लखनऊके नामी उर्दू अख़बार 'अवध पञ्च' में लेखादि भेजने लगे। थोड़े ही दिनोंमें वे उसके नियमित लेखक बन गये। कहते हैं कि इसी पत्रमें लेख भेजकर उन्होंने परिष्कृत भाषा लिखना सीखा। हिन्दी सीखनेके पूर्व गुप्तजीने चुनारसे निकलनेवाले 'अख़बारे चुनार' और लाहौरके 'कोहेनूर' का सम्पादन असाधारण योग्यतासे किया था।

इसी बीच सन् १८८८ में एक ऐसी घटना हुई, जो गुप्तजीकी प्रतिभाके विकासका कारण हुई। मेरठमें सनातनधर्म-

सभाके उत्सवके समय गुप्तजीने हिन्दी सीखनेकी प्रतिज्ञा की। वाग्मिशिरोमणि प० दीनदयाल शर्माने भी वहीं जाति सेवाका शुभसंकल्प किया था। ईश्वरकी कृपासे गुप्तजीको प्रण पूरा करनेका अवसर शीघ्र ही हाथ लगा। सन् १८८(?) ईस्वीमें श्री भारतधर्म-महामण्डलके अवसरपर श्री वृन्दावनमें आदरास्पद पं० मदनमोहन मालवीयसे गुप्तजीका परिचय हुआ। मालवीयजी उस समय कालाकांकरसे प्रकाशित होनेवाले हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्थान' का सम्पादन करते थे। उन्होंने गुप्तजीको वहीं बुलाया। गुप्तजी भी 'कोहेनूर' से सम्बन्ध त्याग 'हिन्दुस्थान'के सम्पादकीय विभागमें प्रविष्ट हुए। सहृदय कवि प० प्रतापनारायण मिश्र उस समय उसके सहकारी सम्पादक थे। वहाँ गुप्तजीको सबसे बड़ा लाभ यह पहुँचा कि उन्होंने श्रद्धेय मिश्रजीसे हिन्दी सीख ली, और मेरठमें की हुई प्रतिज्ञाको पूरा किया। इस सम्बन्धमें स्वयं गुप्तजी लिखते हैं—

"हिन्दी मुझे कालाकांकरमें स्वर्गीय प० प्रतापनारायणके सत्संगसे आई। उन्हींकी कृपासे कुछ तुक मिलाना भी आया।"

गुप्तजीके कालाकांकरमें रहनेके समय ही हिन्दी संसारमें खड़ी बोली और ब्रजभाषामें घोर मल्लयुद्ध मच रहा था। दोनों ओरके उद्भट विद्वान् अपने-अपने पक्ष समर्थन करनेकी चेष्टामें जी-जानसे लगे थे। प्राचीनताके पक्षपाती थे पं० प्रतापनारायण मिश्र और नवीनताके नायक थे प० श्रीधर पाठक। इनके अतिरिक्त प० शिवनाथ मिश्र, प० राधाचरण गोस्वामी, बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री आदि भी इसके बादमें सम्मिलित थे। 'हिन्दुस्थान' ही इस विवादका केन्द्र बन रहा था। गुप्तजीने भी इस विषयपर 'मिस्टर हिन्दी'के नामसे कई लेख लिखे थे। इन लेखोंकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। इस सम्बन्धमें गुप्तजीने 'भैंसका स्वर्ग' नामकी कविता भी लिखी थी। यही उनकी पहली पद्यरचना है। इसमें उन्होंने खड़ी बोलीकी कविताकी दिल्लगी बड़ी खूबीसे उड़ाई है। कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

"भैंसके आगे बीन बजाई भैंस खड़ी पगुराती है।
कुछ-कुछ पूँछ उठाती है औ कुछ कुछ कान हिलाती है॥
हुई मग्न आनन्द कुण्डमें बँधा स्वर्गका ध्यान।
दीख पड़ा मनकी आँखोंसे एक दिव्य अस्थान॥

× × × ×

वहाँ नहीं है मनुष्य कोई बन्धन ताड़न करने को।
है सब विधि सुविधा स्वच्छन्द विचरनेको औ चरनेको॥
वहाँ करै है भैंस हमारी कोड़ाकोल किलोल।
पूँछ उठावैं भैंसियाँ रिझके मधुर मनोहर बोल॥"

कालाकांकर छोड़नेके बाद गुप्तजीने अपना जीवन यहीं (कलकत्तेमें) बिताया। यहींके 'हिन्दी बंगवासी' और 'भारतमित्र' की सेवामें ही गुप्तजीकी देशसेवा छिपी है। 'भारतमित्र' के कारण उनका नाम हुआ और उनके कारण 'भारतमित्र' का।

ये तो हुईं गुप्तजीके जीवनकी मोटी-मोटी बातें। गुप्तजीसे कर्तव्यपरायण पुरुषके कर्ममय जीवनकी सम्यक् आलोचना करना इस बालकके लिए असम्भवसा है। मेरी समझमें यदि किसीमें इस कार्यको सुचारुरूपसे करनेकी क्षमता है, तो वह गुप्तजीसे घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले हम लोगोंमें ही एक सज्जनमें है[१]। यदि मेरी स्मरणशक्ति ठीक बनी है, तो मैं कह सकता हूँ कि उन सज्जनने हिन्दी-प्रेमियोंको गुप्तजीकी बृहत जीवनी देनेका वचन भी दिया है। वह वचन अभी तक कार्यरूपमें परिणत नहीं हुआ है। जो हो, इससे मुझे मतलब नहीं। उसका पूरा करना या करवाना हिन्दी-प्रेमियोंके हाथ है। यदि उनकी इच्छा हो, तो वे जहाँ हिन्दीके अन्य श्रेष्ठ सेवकोंकी जीवनियाँ विलीन हो गईं, वहाँ इसे भी विलीन होने दें; पर यहाँपर इतना और निवेदन कर देता हूँ कि उल्लिखित सज्जनके अतिरिक्त

[१] लेखकने शायद प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीकी ओर इशारा किया है। चतुर्वेदीजीने देवनागरमें गुप्तजीकी छोटीसी जीवनी छपवाई थी, उसीके अन्तमें उन्होंने उनकी बृहत् जीवनी लिखनेका वचन दिया था। —उ० चतुर्वेदी

यदि कोई और यह कार्य अच्छी तरह कर सकता है, तो वे गुप्तजीके अन्यतम सहकारी गढ़मर-निवासी बाबू महावीरप्रसाद हैं। किन्तु उनमें कुछ अधिक उत्तमतासे जब दूसरा यह इस कार्यको कर सकता है, यह सोचकर ही वे शायद इसमें हाथ नहीं डाल रहे हैं। चाहे जो हो, गुप्तजीकी और दो चार बातें आपसे निवेदन कर देना मैं अप्रासंगिक नहीं समझता।

गुप्तजी सीधे स्वभावके थे। उनका हृदय बड़ा सरल था। सत्यके पक्के अनुरागी थे। सच्ची बात कहनेमें कभी नहीं हिचकते थे। मित्रोंसे बहुत प्रेमसे मिलते थे और किसी बातका दुराव नहीं करते थे। कई बार देखा है कि यदि कोई स्नेही उनसे असन्तुष्ट हो जाता, तो अपना तिल-मात्र दोष न रहनेपर भी वे उसके घर दौड़ जाते, उसे समझाते-बुझाते और आवश्यकता पड़नेपर उससे क्षमा भी माँग लेते थे। वे भीरु-हृदय थे, ऐसा न सोच लेना चाहिए। वे बड़े ही निर्भीक थे, जो उचित समझते, उसे करनेमें कदापि न हिचकते थे।

गुप्तजी बड़े हास्य-प्रेमी थे। दिन-रात हँसते-हँसाते रहते थे। उनकी बातोंको सुन मुहर्रमी स्वभाववालोंके पेटमें भी बल पड़ जाते थे। वे आडम्बरसे घृणा करते थे और खुशामदकी बात सुनकर उनका जी जल उठता था। कहते हैं कि गुप्तजी माताके परलोकवासका समाचार सुन कार्यालयमें उदास मन बैठे थे। 'भारतमित्र' के एक लाला साहबने उनसे दिखावटी समवेदना प्रकट करनी चाही। लालाजीने यों इर्शाद किया—"हुज़ूर यह क्या आफ़तकी बात सुन रहा हूँ, यह कैसी क़यामत······"

लालाजीकी बात मुँहकी मुँह ही में रही। गुप्तजी बोल उठे—"बस, बस, माफ कीजिए, आफिसमें जाकर काम कीजिए।" बेचारे लालाजी अपनासा मुँह लिए वापस लौट आये। इससे यह न समझना चाहिए कि अधीनस्थ कर्मचारियोंके साथ उनका व्यवहार खराब था। वह उनके साथ बड़ी सज्जनताका बर्ताव करते थे। उन्हें डाँटते-फटकारते बहुत कम थे। उनके सद्व्यवहारसे सब उनसे अतीव प्रसन्न रहते थे। एक बार तो गुप्तजीने अपने एक सहकारीको यहाँ तक लिख दिया था कि "आप शीघ्र आवें, अन्यथा आपकी अनुपस्थितिमें मुझे बहुत हानि सहनी पड़ेगी। आशा है, आप समयपर आ मेरी सहायता करेंगे।" यह बात बाबू महावीरप्रसाद अच्छी तरह जानते हैं। जो अधीनस्थ लोगोंकी प्रतिष्ठा करनेमें अपना अपमान समझते हैं, उन्हें इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

गुप्तजी न धनलोलुप थे और न नामके भूखे। 'बंगवासी' की नियुक्तिके समय 'वेंकटेश्वर समाचार' से भी बुलावा आया था। वहाँ अधिकार और वेतन दोनों ही अधिक थे, पर वहाँ न गये। कलकत्ते आना ही उन्होंने पसन्द किया, क्योंकि यहाँ सुलेखकोंकी सगति और जाति-सेवाका अधिक अवसर था। 'बंगवासी' में जानेके सम्बन्धमें भी बड़ी विचित्र बात कही जाती है, और वह उनके प्रकृतिके अनुकूल ही थी। 'बंगवासी' को अधिक रुचिकर बनानेके लिए उसके सम्पादक प० अमृतलाल चक्रवर्ती उसमें 'मौडल भगिनी' उपन्यासका उल्था छापने लगे। उल्थेकी भाषा लचर होती थी। यह देख बाबू बालमुकुन्द गुप्तसे न रहा गया। उन्होंने चटपट एक चिट्ठी 'बंगवासी' के सम्पादकके नाम लिखी। उसमें उन्होंने कठोर शब्दोंमें लिखा था—

"साहित्यकी मर्यादा बिगाड़नेवाला वह कौन मनुष्य है, जो 'मौडल भगिनी' उपन्यासकी मिट्टी खराब कर रहा है।"

कहनेकी ज़रूरत नहीं कि स्वयं चक्रवर्तीजी ही 'मौडल भगिनी' के भाषान्तरकार थे। अन्य लोगोंकी भाँति चक्रवर्तीजी आगबबूला नहीं हो उठे, वरन 'तेजस्विता ही सम्पादकोंकी विशेषता है', यह विचार उस तेजस्वी समालोचकको 'बंगवासी' में लानेका उन्होंने निश्चय कर लिया। उन्होंने गुप्तजीसे पुस्तक उल्था करनेकी प्रार्थना की, और थोड़े दिनोंमें ही वे उन्हें 'बंगवासी' में ले आये। इस प्रकार गुणियोंका सम्मान चक्रवर्तीजी और गुप्तजीकी भाँति आज कितने मनुष्य करते हैं?

कहते हैं, गुप्तजीके सम्पादन-कालमें 'भारतमित्र' में 'मौलिक लेखोंका अभाव और वस्तुवर्णनका आधिक्य' देखकर बम्बईसे एक सज्जनने गुप्तजीको एक पत्र भेजा था, और अपना नाम न दे 'आपको पूज्य समझनेवाला' लिखा था। यह पत्र बाबू महावीरप्रसादने लिखा था। उनके बड़े भाई बाबू गोपालराम 'भारतमित्र' में ही रहते थे। उनसे ही पत्र-लेखकका परिचय गुप्तजीको ज्ञात हुआ। उन्होंने बाबू महावीरप्रसादको धन्यवाद-सूचक पत्र भेजा। थोड़े दिनोंके बाद सन् १६०० में बाबू महावीरप्रसाद 'भारतमित्र' में बुला लिए गये।

गुप्तजी शुद्ध, सरल और चटकीली भाषा लिखनेमें अद्वितीय थे। शब्दोंका समुचित व्यवहार करनेमें वे सिद्धहस्त थे। उनकी शैली बहुत ही प्रभावशाली थी। व्यंगमयी समालोचना करनेमें वह अपना सानी नहीं रखते। 'आत्मारामके लेख और 'शिवशम्भुके चिट्ठे' इसके पुष्ट प्रमाण हैं। गुप्तजीकी कविताएँ सरस और सुन्दर हैं। वहाँ भी हास्यरसकी ही प्रधानता है। गुप्तजीमें रचनाओंको चित्ताकर्षक बनानेकी अद्भुत शक्ति थी। यही कारण है कि उनकी सब रचनाएँ चटकीली और भावपूर्ण हैं।

भाषापर तो उनका असाधारण अधिकार था। उनकी-सी सरल और मुहाविरेदार भाषा लिखनेवाला दूसरा नहीं है। वे बोलचालकी भाषा लिखना पसन्द करते थे। समयानुसार शैली भी बदलती रहती थी। लड़कोंके लिए बनाई एक कविताकी चार पंक्तियां इस बातको स्पष्ट कर देंगी—

> "आ जा री निंदिया तू आ क्यों न जा।
> मेरे बालेकी आँखोंमें घुलमिल जा॥
> हाट-बाटमें गली-गलीमें नींद करे चकफेरे।
> रातको आवे लाल सुलावे उठ जा बड़े सवेरे॥"

देखिये, भाषा कितनी सरल और मुहाविरेदार है, संयुक्त अक्षरोंका सर्वथा अभाव-सा है।

गुप्तजी भाषाकी शुद्धतापर ही अधिक ध्यान देते थे। वे कहते थे कि सारे संसारके गूढ़ विचारोंसे परिपूर्ण रहनेपर भी यदि लेखककी भाषा शुद्ध नहीं, तो वह लेख कौड़ी कामका नहीं। नहीं जानता, गुप्तजीसे विचारवाले और कोई हैं या नहीं, किन्तु मेरे गुरुवर प्रिंसिपल हेरम्बचन्द्र मैत्र महोदयने भी यही कहा था। उन्होंने कहा था—शेक्सपियर और वर्ड्सवर्थकी कविताका मर्मज्ञ होनेपर भी इमर्सन और कारलाइलके गूढ़ विचारोंको हृदयगम कर लेनेपर भी, स्पेन्सरके निगूढ़ दर्शनोंका पारायण कर लेनेपर भी, बर्क और ग्लैडस्टनकी तरह राजनीतिका पारगत होनेपर भी और सुरेन्द्रनाथकी भांति वक्तृता देनेकी शक्ति प्राप्त कर लेनेपर भी, यदि भाषा शुद्ध न हुई, तो (यह सब व्यर्थ है।) *

* वाक्य अपूर्ण था। ब्रैकेटके भीतरके शब्द मेरे हैं।
—उ० चतुर्वेदी

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

'विजय'—पिछले दो माससे कलकत्तेमें एक नवीन सचित्र साप्ताहिक 'विजय' का जन्म हुआ है। इसके सम्पादक 'भारतमित्र' और 'श्रीकृष्ण-सन्देश' के सुप्रसिद्ध सम्पादक पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे हैं, और यह वणिक प्रेसके मालिक श्री बैजनाथ केडियाके संचालकत्वमें निकलता है। उसमें प्रति सप्ताह बड़े साइज़के ३२ पृष्ठ और ३०-४० चित्र रहते हैं। 'विजय' के अब तक जितने अंक निकले हैं, उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह दिखलाई दी कि प्रत्येक अंक पिछले अंकसे कुछ उन्नत ही निकला है। उसमें सप्ताह-भरकी सचित्र खबरोंके अतिरिक्त अनेकों विषयोंपर मनोरंजक, ज्ञानवर्द्धक और विवेचनापूर्ण लेख रहा करते हैं। देशी खबरोंके साथ-साथ विदेशी समाचार, कथा कहानी, धर्म और दर्शन, स्वास्थ्य और व्यायाम, हास्य और विनोद आदि साहित्यके सभी अंगोंपर सुन्दर सुपाठ्य-सामग्री रहा करती है। श्री गर्देजीके लिखनेका अपना निजी ढंग है। वे जिस बातको लिखते हैं, बहुत सोच-विचारकर लिखते हैं, इसलिए उनके सम्पादकीय लेख आजकलके पत्रोंके बेसिर-पैरके सम्पादकीय लेखोंकी तरह न होकर पठन और मनन करनेकी वस्तु हुआ करते हैं। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' के बन्द होनेके बादसे एक उच्चकोटिके साप्ताहिककी बड़ी कमी थी। 'विजय'ने इस कमीको पूरा किया है। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यदि 'विजय' हमारे साप्ताहिक पत्रोंमें सर्वश्रेष्ठ नहीं है, तो सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिकोंमें अवश्य है, और यदि वह इसी प्रकार उन्नति करता रहा, तो वह दिन दूर नहीं कि हमारे साप्ताहिकोंमें वही प्रथम स्थान ग्रहण करेगा। ऐसा सुन्दर पत्र निकालनेके लिए हम 'विजय' के सम्पादक और सचालकको बधाई देते हैं।

'विजय' का वार्षिक मूल्य ५) और एक प्रतिका =) है। पता—नं० १, सरकार लेन, कलकत्ता।

'गंगा'—मिस्रके लोग कहते हैं कि मिस्र नील नदीका प्रसाद है (Egypt is the gift of the Nile), क्योंकि मिस्रकी समस्त समृद्धि नील नदी ही के कारण है। मिस्र नील नदीका प्रसाद हो या न हो, मगर यह बात निर्विवाद रूपसे कही जा सकती है कि हमारा भारतवर्ष निश्चय ही भगवती भागीरथीका प्रसाद है।

इस महान् भारतवर्षके आर्थिक, औद्योगिक, राजनैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक इतिहासमें गंगाने जो महत्त्वपूर्ण भाग लिया है, वह संसारके किसी देशकी किसी नदीको प्राप्त नहीं है। इस गंगाके जलमें संसारके सबसे बड़े सम्राट्, सबसे बड़े योद्धा, सबसे वीर सेनापति, सबसे महान् लेखक, कवि, नाटककार, दार्शनिक, ऋषि, वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञोंकी हड्डियाँ निमज्जित हैं। इसी गंगाके पावन जलमें भगवान रामचन्द्र, योगीश्वर कृष्ण और भगवान बुद्ध आदि महापुरुषोंने स्नान कर अपनेको पवित्र बनाया था।

परन्तु इस महत्त्वपूर्ण नदी—जिसने हमारे इतिहासमें ऐसा महान् भाग लिया है—के विषयमें हमारे यहाँ क्या साहित्य है? गंगा तटपर कौन-कौनसे तीर्थ हैं, कहां-कहां मेले लगते हैं, गंगाके द्वारा कौन-कौन उद्योग-धन्धे चलते हैं, उसके तटपरकी दृश्यावली कैसी है, उसके द्वारा कृषिको क्या-क्या लाभ पहुँचता है, उसके पानीमें कौन-कौनसे गुण हैं, उसके तटपर कौन-कौनसे स्वास्थ्यप्रद स्थान हैं आदि विषयोंपर हमारे यहाँ कौन-कौनसे ग्रन्थ हैं? हमें—जिन्हें गंगाजली उठाना संसारकी सबसे बड़ी शपथ है—शर्मसे सिर झुकाकर कहना पड़ता है कि एक भी नहीं। 'विशाल-भारत'के पिछले अंकमें पं० श्रीराम शर्माने इस विषयकी ओर हिन्दी-साहित्यकोंका ध्यान आकर्षित किया था।

सुल्तानगंजसे प्रकाशित होनेवाली 'गंगा' मासिक पत्रिकाने हाल ही में अपना 'गंगांक' प्रकाशित करके गंगा-सम्बन्

साहित्यके उत्पादनका स्तुत्य प्रयत्न किया है। सवा सौ पृष्ठोंमें सम्पादकोंने गंगा-सम्बन्धी अनेकों ज्ञातव्य बातें संग्रहीत की हैं। संस्कृत, फारसी, हिन्दी, मराठी आदि भाषाओंके साहित्योंमें गंगा, गंगाजलका महत्त्व, गंगोत्तरी, गंगा-तटके प्राचीन हिन्दू-साम्राज्य, गंगातटके स्थान और तीर्थ, वेदोंमें गंगा आदि अनेकों दृष्टियोंसे गंगापर प्रकाश डाला गया है। 'गंगा'का ऐसा सुन्दर 'गंगांक' निकालनेके लिए 'गंगा'के सम्पादकत्रय बधाईके पात्र हैं। 'गंगा'का वार्षिक मूल्य ४), और पता—'गंगा' कार्यालय सुल्तानगंज, भागलपुर है।

× × ×

'प्रभा'—गत सात महीनेसे जबलपुरसे 'प्रेमा' नामकी एक मासिक पत्रिका श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव तथा श्री परिपूर्णानन्द वर्माके सम्पादकत्वमें निकल रही है। हालमें इस पत्रिकाका 'हास्य-रसांक' नामक एक विशेषांक प्रकाशित हुआ है, जिसके सम्पादक श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा हैं। हमारे यहां सात्त्विक हास्यरसकी बहुत कमी है। यह कहना कि आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें गम्भीर हास्य अभी तक उत्पन्न ही नहीं हुआ, बहुत अत्युक्तिपूर्ण न होगा। 'प्रेमा'ने अपना हास्य-रसांक निकालकर साहित्यके इस अंगकी पूर्तिकी ओर पहला कदम बढ़ाया है, जिसके लिए उसके सम्पादक महाशय बधाईके पात्र हैं। इस अंकमें श्री सम्पूर्णानन्दका 'हँसीका तात्त्विक विवेचन और साहित्यमें हास्यरसका उचित स्थान' शीर्षक लेख बहुत विचारपूर्ण है। 'हिन्दीमें हास्यरसकी प्रगति' शीर्षक लेखमें श्री शिवपूजन सहायने हमारे आधुनिक हास्य-साहित्यका एक पर्यालोचन किया है। 'अपनी-अपनी' शीर्षकके अन्तर्गत हमारे सुप्रसिद्ध नेताओंके जीवनकी कुछ मजेदार घटनाओंका संग्रह किया गया है, जो बहुत मनोरंजक है। श्री जीवनशंकरजी याज्ञिकका लेख भी पठनीय है। श्री अन्नपूर्णानन्दजीको अपने प्रयत्नमें आशातीत सफलता मिली है, जिसके लिए उन्हें अनेक बधाई है।

× × ×

'माधुरी'—लखनऊकी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'माधुरी' गत कई वर्षोंसे हिन्दी-संसारकी जैसी सेवा कर रही है, वह हिन्दी पाठकोंको विदित है। आरम्भमें श्री दुलारेलाल भार्गव और पं० रूपनारायण पाण्डेय इसके सम्पादक थे। उन लोगोंके अलग होनेपर पं० कृष्णविहारी मिश्र और श्री प्रेमचन्दजीने इसके सम्पादनका भार ग्रहण किया, और कई वर्ष तक जिस योग्यता और विद्वत्तासे इसे चलाया, वह 'माधुरी' के पाठकोंको भलीभाँति विदित है। हालमें पिछले कई महीनेसे ये दोनों महानुभाव भी 'माधुरी' के सम्पादन-विभागसे पृथक हो गये हैं, और अब उसका समस्त सम्पादन कार्य पं० रामसेवक त्रिपाठीके ऊपर है। त्रिपाठीजीके सम्पादकत्वमें कई अंक निकल चुके हैं, जो काफी अच्छे हैं। हम आशा करते हैं कि त्रिपाठीजी इसी प्रकार 'माधुरी' के 'स्टैन्डर्ड' को ऊँचा बनाये रखेंगे तथा उसे और भी उन्नत बनानेकी चेष्टा करते रहेंगे।
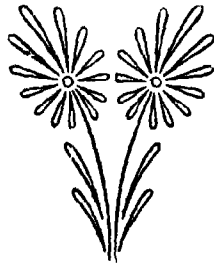
सम्पादकीय विचार

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

कलकत्तेमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका बीसवाँ अधिवेशन सकुशल समाप्त हो गया। पिछले अनेक वर्षोंमे इस संस्थाके वार्षिक अधिवेशनोंमें उपस्थित होनेका सौभाग्य हमें प्राप्त होता रहा है, और उनके देखे इस अधिवेशनको हम असफल नहीं कह सकते। सम्मेलनके सभापतिका स्वागत शानदार हुआ, उनका भाषण भी विचारपूर्ण था और प्रदर्शिनीका तो कहना ही क्या है। आर्थिक दृष्टिसे तो इस अधिवेशनको जैसी सफलता मिली, वैसी उसे अनेक वर्षोंमे नहीं मिली थी। सम्मेलनकी इस सफलताका श्रेय अधिकांशमें उसकी स्वागत-कारिणी समितिके मंत्री श्रीयुत कुमार कृष्णकुमारको है, जिन्होंने तन-मन-धनसे इसके लिए प्रयत्न किया। उनके अतिरिक्त श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्रीको भी है, जो पिछले महीने-भरसे इस कार्यमें बराबर जुटे रहे। तीसरे सज्जन जिनका नाम विशेष रूपसे उल्लेख-योग्य है, श्री पूरणचन्द्र नाहर हैं, जिनके प्रयत्नसे साहित्य-प्रदर्शिनीको आशातीत सफलता प्राप्त हुई। यदि प्रबन्धकी दृष्टिसे देखा जाय, तो सर्वोत्तम प्रबन्ध इस प्रदर्शिनीका ही था, और इसके लिए नाहरजीको जितने धन्यवाद दिये जायँ, थोड़े होंगे।

पर जहाँ हम सम्मेलनकी सफलताके लिए उसके कार्यकर्ताओंको बधाई देते हैं, वहाँ हमें अपनी त्रुटियोंकी ओर भी ध्यान देना चाहिए। यदि ये त्रुटियाँ न होतीं, तो सम्मेलनको और भी अधिक सफलता मिलती। इस समय सबसे बड़ी त्रुटि जो हमें इस नगरमें दीख पड़ी, वह थी हमारे यहाँ किसी ऐसे व्यक्तिका अभाव, जिसकी धाक धनियों तथा साहित्य-सेवियोंपर समानरूपसे हो। प्रारम्भिक दलबन्दीका कारण भी शायद यही अभाव था। जज बनकर हम किसी दलविशेष या व्यक्तिविशेषको अपराधी नहीं बतलाना चाहते, क्योंकि हम स्वयं दोषपूर्ण हैं और हमें किसीपर अपराध लगानेका अधिकार नहीं, पर इतना निवेदन हम अवश्य करेंगे कि यदि हम लोग लिखने-बोलनेमें अधिक संयमसे काम लें, साहित्य-क्षेत्रमें राजनैतिक कूटनीतिका प्रयोग त्याज्य समझें, कौन आदमी साहित्यिक है और कौन असाहित्यिक, पदाधिकार देते समय इस बातपर ध्यान रखें और यह विचार अपने मनसे निकाल दें कि बिना हमारे कोई काम ही नहीं चल सकता, तो इससे साहित्य-सेवका और हमारा—दोनोंका ही हित होगा।

सम्मेलनके इस अधिवेशनको देखकर अनेक विचार मनमें उत्पन्न हुए। पहला विचार तो यह था कि सम्मेलनका धनी धोरी कोई भी नहीं है। सम्मेलनके कार्यकर्ताओं तथा नेताओंमें एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जो उसके कार्यको अपने घरका काम समझकर तन-मन-धनसे करे। सम्मेलनके नेता उन पहलवानोंकी तरह हैं, जिनके शरीरमें अब दम नहीं रहे और मनमें स्फूर्ति या फुर्ती नहीं रही, पर जिन्हें अब भी अपने पुराने दिनोंकी याद करके दावँपेचोंके भरोसे अखाड़ेमें डटे रहना पड़ता है। इसमें उनका इतना दोष नहीं, जितना परिस्थितियोंका है; क्योंकि एक भी ऐसा नवयुवक वे तैयार नहीं कर सके, जो अपने कंधेपर इस बोझको उठा ले। सम्मेलनके कार्यकर्ताओं तथा नेताओंमें क्रियात्मक कल्पना-शक्तिका अभाव है, और अभाव है नवीन साहित्य-सेवियोंको मार्गप्रदर्शित करनेकी योग्यताका।

इसमें सन्देह नहीं कि नवयुवक साहित्य-सेवी सम्मेलनसे असन्तुष्ट हैं, और उनका असन्तोष निराधार नहीं है। नवयुवक निरन्तर कार्यशीलताको सर्वोपरि स्थान देते हैं और वे ऐसे आदमियों द्वारा प्रभावित और सञ्चालित नहीं किये जा सकते, जो सोतेसे जगकर साल भरमें दस बीस दिनके लिए सम्मेलनका कार्य कर लिया करते हैं। राजनैतिक कार्य भी महत्त्व रखता है, और निस्सन्देह उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

हम उन संकीर्ण विचारवाले महानुभावोंके सम्मेलनमें पद ग्रहण करनेके घोर विरोधी हैं, जो राजनीतिको हौआ समझते हैं और जिनकी मनोवृत्ति युगधर्मके विपरीत है, क्योंकि ऐसे आदमी साधारण जनताके विश्वासपात्र कदापि नहीं बन सकते, चाहे वे कितने ही बड़े विद्वान् या महाकवि क्यों न हों, पर उसके साथ हम यह भी नहीं चाहते कि सम्मेलनकी बागडोर ऐसे आदमियोंको सौंप दी जाय, जिन्हें अपने राजनैतिक झगड़ोंसे अवकाश ही न मिलता हो। सम्मेलनकी यथार्थ उन्नति तभी हो सकती है, जब उसे कम-से-कम दो तीन कार्यकर्ता ऐसे प्राप्त हो जायँ, जो राष्ट्रीय विचारोंके समर्थक होते हुए भी अपना सम्पूर्ण समय सम्मेलनको ही देनेके लिए उद्यत हों।

कई वर्षोंसे बराबर यह शिकायत चली आती है कि सम्मेलनके अवसरपर साहित्यिक निबन्धोंका पाठ नहीं होता। इस बार केवल एक अच्छा निबन्ध पढ़ा गया जो सुप्रसिद्ध बंगाली विद्वान् डा० सुनीतिकुमार चट्टोपाध्यायका था। इसे हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं। दूसरा सचित्र व्याख्यान सुप्रसिद्ध कलामर्मज्ञ श्री अर्द्धेन्दुकुमार गांगुलीने 'हिन्दीमें प्रेम-सम्बन्धी कविता' पर तैयार किया था, जिसे वे मैजिक लैनटर्नकी सहायतासे देना चाहते थे, जो दुर्भाग्यवश हम लोगोंके कुप्रबन्धके कारण न दिया जा सका।

कवि-सम्मेलनको देखकर हमारे मनमें यही भाव उत्पन्न हुआ कि यदि इस ढंगके कवि-सम्मेलन एकदम रोक दिये जायँ तो इससे जनताका बहुत हित होगा। कवि लोग निरंकुश होते हैं, यह कहावत तो हम बहुत दिनोंसे सुनते आये हैं, पर उनकी नंगी निरंकुशताका नाच जैसा हिन्दी कवि-सम्मेलनोंमें दीख पड़ता है, वैसा अन्यत्र शायद ही कहीं दीख पड़े। जो कुछ जिस किसीके मनमें आता है, वह उसे निस्संकोच पढ़ डालता है। न जनताकी सुरुचिका खयाल है, न कविताके नियमोंका। पुरस्कारों तथा पदकोंके देनेका ढंग बिलकुल भद्दा और उनकी घोषणाका ढंग और भी खराब है। एक सुप्रसिद्ध हिन्दी कविने कहा था कि पहले लोग रुपये देकर वेश्याएँ नचाते थे, अब पुरस्कार तथा पदक देकर कवियोंको नचाते हैं। मालूम नहीं, हमारी कुसंस्कृतिका यह प्रदर्शन कब तक जारी रहेगा। कवि-सम्मेलनोंके नियंत्रणके लिए कड़े-से कड़े नियम बनाये जाने चाहिए, और जहाँपर इन नियमोंके पालन करनेकी सम्भावना न हो वहाँ कवि-सम्मेलन होने न देना चाहिए। जिस प्रकार लोग मृतक-बिरादरी भोज बन्द करनेके लिए सत्याग्रह करते हैं, उसी प्रकार कुत्सित कवि-सम्मेलनोंको रोकनेके लिए सत्याग्रह होना चाहिए। जिस स्थानपर कवितादेवीके कंठपर कुठाराघात किया जा रहा हो, सुरुचिको शूलीपर लटकाया जा रहा हो और संस्कृतिका श्राद्ध किया जा रहा हो, यदि वहाँ अहिंसात्मक अस्त्रोंका प्रयोग न किया जायगा तो फिर कहाँ किया जायगा ?

सम्मेलनके अधिवेशनोंकी सफलताके लिए यह आवश्यक कि स्थायी-समितिकी ओरसे कम-से-कम दो कार्यकर्ता उस स्थानपर, जहाँ सम्मेलन होनेवाला हो, एक महीने पहले आ डटें। ऐन वक्तपर आकर यह आशा करना कि सारा प्रबन्ध ठीक हो जायगा और हमें प्रचुर आर्थिक सहायता भी मिल जायगी, बुद्धिमानीका काम नहीं। जिस प्रान्तमें सम्मेलन हो, उसके प्रधान-प्रधान नगरोंमें स्वागतकारिणीकी ओरसे डेपूटेशन जाना चाहिए। उदाहरणार्थ बंगाल तथा आसामके प्रधान-प्रधान नगरोंमें सम्मेलनकी ओरसे डेपुटेशन जाना चाहिए था। इससे कुछ साहित्यिक-चर्चा ही हो जाती और राष्ट्रभाषाके प्रचारमें सहायता मिलती।

संग्रहालय

जिस प्रकार इन्दौरका अधिवेशन दक्षिण-भारतमें हिन्दी प्रचारके लिए प्रसिद्ध है, कलकत्तेका इससे पहलेका अधिवेशन 'मंगलाप्रसाद-पारितोषिक'के लिए अमर हो चुका है, उसी प्रकार यह अधिवेशन संग्रहालयके लिए दिये हुए श्री बहादुरसिंह सिंघीके साढ़े बारह हजार रुपयेके दानके लिए चिरस्मरणीय होगा। सिंघीजीका संक्षिप्त परिचय और चित्र अन्यत्र प्रकाशित है। निस्सन्देह संग्रहालयकी अत्यन्त

आवश्यकता थी, पर संग्रहालयके लिए केवल मकान बन जानेसे तो काम नहीं चल जायगा। मन्दिर बनानेसे भी अधिक कठिन काम है उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करना, जिससे वह हमारी शिक्षा तथा संस्कृतिका जीता-जागता रूप जनताके सम्मुख उपस्थित कर दे। आवश्यकता इस बातकी है कि संग्रह योग्य वस्तुओंको इकट्ठे करनेका प्रयत्न अभीसे प्रारम्भ कर दिया जाय, क्योंकि जब तक संग्रहालयका भवन बनकर तैयार होगा, तब तक न जाने कितनी ही बहुमूल्य वस्तुओंके खो जानेका डर है। प्राचीन हिन्दी लेखकोंकी हस्तलिपि, उनके चित्र तथा चरित्र-सम्बन्धी मसाला, उनके द्वारा व्यवहारमें लाई गई वस्तुएँ इत्यादिका संग्रह अभीसे होनाचाहिए।

पुस्तक प्रकाशन

श्रीयुत गोकुलचन्दजीने सम्मेलनको दस हज़ार रुपये पुस्तक-प्रकाशनके लिए दिये हैं। यह एक अच्छी रकम है और उसके द्वारा अनेक अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित किये जा सकते हैं। उत्तम तो यह होगा कि सम्मेलन अपना एक प्रेस कर ले और उसीमें इन पुस्तकोंको छपावे। प्रकाशनका कार्य बड़ी जिम्मेवारीका है और यह अधिकारी विद्वानोंकी देख-रेखमें होना चाहिए। सम्मेलनके प्रधान श्री रत्नाकरजीने अपने भाषणमें ठीक ही कहा था—

"......सम्मेलनने प्रकाशनमें भी तत्परता दिखाई है, पर खेदके साथ कहना पड़ता है कि अब तक जो कार्य हुआ है, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है और न ऐसा ही है, जिससे हमारे साहित्यको विशेष लाभ पहुँचा हो। मेरा तो इतना ही निवेदन है कि साहित्य-निर्माणका काम सम्मेलन द्वारा ऐसा होना चाहिए, जो हमारी हिन्दीके गौरवको बढ़ानेवाला, हमारी अवश्यकताओंको पूरा करनेवाला तथा हमारे भांडारको सब प्रकारसे परिपूर्ण करनेवाला हो। काम चाहे थोड़ा ही हो, पर जो कुछ हो ऐसा हो, कि उसपर कोई अँगुली न उठा सके।"

सम्मेलनका आगामी-अधिवेशन झाँसीके लिए निमंत्रित किया गया है। झाँसी-निवासी साहित्य-प्रेमियोंसे निवेदन है कि वे अभीसे स्वागत-समितिके संगठनका-कार्य प्रारम्भ कर दें। कवि-प्रसविनी बुन्देलखण्डकी भूमिने हिन्दी-साहित्यके लिए बड़ा ज़बरदस्त कार्य किया है। ओरछा इत्यादि राज्योंके नरेश सैकड़ों वर्षोंसे हिन्दी-प्रेमी रहे हैं और अब भी उनके द्वारा हमारी मातृभाषाका बहुत कुछ हित हो सकता है। अवश्यकता इस बातकी है कि साहित्यिक कार्योंमें उनका सहयोग प्राप्त किया जाय।

इस पत्रमें समय समयपर सम्मेलनके कार्यकी तथा कार्यकर्ताओंकी जो आलोचना होती रहती है, उसका उद्देश्य छिद्रान्वेषण नहीं। हम अपनी इस सर्वप्रधान साहित्यिक संस्थाको शक्तिशाली देखना चाहते हैं और इसीलिए प्रायः इसकी चर्चा किया करते हैं। अन्तमें हम श्री रत्नाकरजीके निम्न-लिखित वाक्योंकी ओर सम्मेलनके अधिकारियोंका ध्यान आकर्षित करते हैं—

"हमारा यह सम्मेलन एक उपयोगी और आवश्यक संस्था है। इसका जन्म हुए इक्कीस वर्ष हो चुके। अब यह पूर्णवयस्क हो गया है। इसमें यौवनका बल और शक्ति होनी चाहिए थी, पर दुःखके साथ कहना पड़ता है कि इसकी दशा कुछ वर्षोंसे शिथिल हो रही है। इसमें उत्साहका अभाव है, शक्तिकी न्यूनता है। जान पड़ता है कि इसके शरीरमें कोई रोग लग गया है, जिसका निदान जैसा चाहिए, अभी तक नहीं हो पाया। जब तक रोगका ठीक-ठीक निदान न हो, तब तक उसकी औषधिकी व्यवस्था नहीं हो सकती। यदि आपको यह अभीष्ट हो कि यह सम्मेलन जीवित रहकर अपने उद्देश्योंकी पूर्तिमें प्रयत्नवान रहे, तो आप निःशंक होकर इसकी अवस्थामें आवश्यक सुधार करें। बिना इसके किये आपका काम नहीं चलेगा। जहाँ तक मैंने विचार किया है, मुझे इस सम्मेलनके कार्योंकी व्यवस्थामें एक बड़ी भारी त्रुटि यह देख पड़ती है कि इसके प्रमुख कार्यकर्ता बहुधन्धी हैं। जब तक आपको ऐसे कार्यकर्ता न मिल जाँय, जो जीविकोपार्जनके उपरान्त जितना समय उनके पास हो, सब सम्मेलनकी सेवामें अर्पित करनेको तैयार हों, तब तक आपके

कार्योंको सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। मुझे आशा है, आप लोग ऐसा प्रबन्ध अवश्य करेंगे जिससे इस सम्मेलनका कार्य सुचारुरूपसे बिना किसी बाधाके चलता रहे। थोड़े दिनके लिए यदि कार्य-क्षेत्रको कुछ संकुचित भी करना पड़े, तो कोई हानि नहीं। इस बातपर ध्यान रहना चाहिए कि सम्मेलनका अंग-भंग न हो और उसके कार्यकर्त्ता दक्ष, स्वार्थत्यागी और लगनवाले हों। इन्हीं दो बातोंमें सम्मेलनका भविष्य निहित है।"

—

भारतीय राज्य-प्रजा-परिषद्

इस परिषद्का तृतीय अधिवेशन बम्बईमें श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायके सभापतित्वमें गत ९ और १० जूनको हुआ। स्वागतकारिणीके प्रधान श्री एल० आर० तैय्यरसी तथा सभापति महोदयके भाषणोंकी प्रति परिषद्की ओरसे हमें प्राप्त हुई है। तदर्थ हम उसके अधिकारियोंके कृतज्ञ हैं। श्री तैय्यरसी महोदयका भाषण संक्षिप्त है, और संयत भाषामें लिखा हुआ है। उसमें न तो राजा-महाराजाओंको कोई धमकी दी गई है और न कोई अव्यावहारिक क्रान्तिकारी कार्यक्रम ही उपस्थित किया गया है। अपने भाषणके अन्तमें उन्होंने देशी नरेशोंसे इन शब्दोंमें अनुरोध किया है—

"अपने भाषणका अन्त करनेके पहले मैं यह आशा प्रकट करना चाहता हूँ कि देशी राज्योंके शासक समयकी स्पिरिटको समझेंगे और स्वयं ही उसके अनुसार लोकोपकारी कार्य करेंगे। क्या हमारे राजा-महाराजा इस अवसरपर कोई बड़ा काम न कर दिखायँगे, और इस प्रकार वर्तमान समयको, जो हमारे देशके इतिहासमें संकटका समय कहा जा सकता है, देशी राज्योंके लिए स्वर्ण युगमें परिवर्तित न कर देंगे? यदि वे आज अपनी राज़ी-खुशीसे अपनी प्रजाको अधिकार दे दें, तो उनका यह कार्य बड़ी ख़ूबीका होगा, और साथ ही बड़ा सुन्दर, ठोस और आनन्दप्रद भी होगा, पर यदि आज उन्होंने ऐसा नहीं किया और कल हम लोगोंको अपने वे अधिकार अन्य उपायोंसे लेने पड़े, तो फिर उसमें ख़ूबी क्या रहेगी। मेरी प्रकृति ही धमकी देनेकी विरोधी है, और मैं किसी भी ऐसी बातका ज़िक्र नहीं करना चाहता, जिससे राजा-महाराजाओंको यह प्रतीत हो कि हम लोग, जो देशी राज्योंकी प्रजा हैं, उन अस्त्रोंका प्रयोग करना चाहते हैं, जिनकी सफलता हाल ही में अच्छी तरह प्रमाणित हो चुकी है।"

श्री तैय्यरसीने अपने भाषणमें देशी राज्य-प्रजा-परिषद्के कार्योंकी एक तालिका भी दी है, और उससे सिद्ध होता है कि परिषद् निरन्तर कुछ-न-कुछ कार्य करती रही है, पर एक अंशमें भाषण अपूर्ण है, वह यह कि स्वागताध्यक्ष महोदयने यह बतलानेकी कृपा नहीं की कि मुख्य-मुख्य रियासतोंकी प्रजाकी राजनैतिक, सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी स्थिति इस समय कैसी है। भाषण जल्दीमें लिखा हुआ प्रतीत है और उससे यह प्रकट नहीं होता कि स्वागताध्यक्ष महोदय भिन्न-भिन्न देशी राज्योंकी स्थितिसे पूर्णतया परिचित हैं।

परिषद्के सभापति श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायका भाषण कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। देशी राज्योंके शासनमें इतनी अधिक त्रुटियाँ पाई जाती हैं कि उनसे उत्तेजित होकर असंयत भाषाका प्रयोग करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक है, पर सभापति महोदयने भी प्रारम्भसे अन्त तक जो कुछ लिखा है, रचनात्मक ढंगसे लिखा है और संयमपूर्ण भाषामें। फिर भी उन्होंने कई गहरी चुटकियाँ ली हैं, जो सर्वथा उचित और आवश्यक प्रतीत होती हैं। एक स्थानपर उन्होंने एक बड़ी मार्मिक बात कही है—

"लेकिन यह बात हमें लज्जापूर्वक स्वीकार करनी पड़ेगी कि समग्ररूपसे देशी भारत उपर्युक्त सभी अथवा अधिकांश विषयोंमें ब्रिटिश भारतकी अपेक्षा अधिक पिछड़ा हुआ है। साधारणत: भारतीय देशी राज्य मनुष्यके मस्तिष्कको संकुचित बनाते हैं। यह बात बिलकुल ठीक है कि मनुष्य सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, और मनुष्यमें भी उसका मस्तिष्क सर्वोच्च है। यदि किसी देशमें मनुष्यकी केवल आर्थिक

उन्नतिका ध्यान रखा जाय और मस्तिष्कको संकुचित रहने दिया जाय, तो वह देश एक सुप्रबन्धयुक्त मवेशी-खानेके समान होगा। यदि जनताके मस्तिष्कको अविकसित और संकुचित दशामें रखा जाय, तो उससे जो हानि होगी, उसकी पूर्ति किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती ; पर कुल मिलाकर भारतीय भारत (देशी राज्यों) के विषयमें तो यह भी नहीं कहा जा सकता कि वहाँ जनताकी आर्थिक उन्नतिका भी खयाल रखा जाता है।"

जो लोग देशी राज्योंकी स्थितिसे भलीभांति परिचित हैं, वे उपर्युक्त कथनका हार्दिक समर्थन करेंगे। प्राय: देशी राज्योंके अधिकारियोंका मस्तिष्क ही संकुचित नहीं हो जाता, उनकी आत्मा भी संकुचित (कलुषित शब्द जरा कड़ा होता, इसलिए उसका प्रयोग करना ठीक न होगा) हो जाती है। सभापति महोदयने कुछ देशी राज्योंकी उपमा मवेशीखानोंसे देकर उन राज्योंके साथ रियायत की है। एक सुप्रबन्धयुक्त मवेशीखानेके पशुओंकी दशा निस्सन्देह किसी मामूली देशी राज्यके निवासीसे कहीं अच्छी है, क्योंकि मवेशीखानेमें उन पशुओंको अपनी आंखोंसे वे व्यभिचारपूर्ण वीभत्स और आत्मिक पतनके दृश्य तो नहीं देखने पड़ते, जो अनेक देशी राज्योंमें नित्यप्रति दिखाई देते हैं। मध्य-भारतके देशी राज्योंके राजकुमारोंको छै वर्ष तक पढ़ानेका अवसर हमें मिल चुका है, और हमने अनेक राजा महाराजाओंकी करतूतोंको विश्वसनीय आदमियोंसे सुना है, और उनसे हम इसी परिणामपर पहुँचे हैं कि देशी राज्योंका लोप होना अनिवार्य है। अन्तिम प्रश्न यह नहीं है कि देशी राज्योंमें राजनैतिक सुधार किस प्रकार प्रचलित हो सकते हैं, बल्कि प्रश्न यह है कि ये देशी राज्य किस प्रकार अपने पृथक अस्तित्वको खोकर सम्पूर्ण भारतके अस्तित्वमें अपनी सत्ताको विलीन कर सकते हैं।

सभापतिने देशी नरेशोंसे एक अनुरोध बड़े उत्तम ढंगसे किया है। वे कहते हैं—

"भारतीय रियासतोंके नरेश हिज़मैजेस्टी महाराज पंचम जार्जको सम्राट् मानकर उनके प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करनेके लिए बाध्य हैं और करते भी हैं। लेकिन कहावत है कि किसीका अनुकरण करना ही उसकी सच्ची सराहना करना है। इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि हमारे देशी नरेशोंके लिए सम्राट्का अनुकरण सम्राट्के प्रति अपनी राजभक्तिका सच्चा प्रदर्शन है। यह बात निरापद रूपसे कही जा सकती है कि यदि हमारे देशी नरेश अपनी राजभक्तिको इस विशेष रूपसे प्रकट करेंगे, अर्थात् अपनी रियासतोंको परिमित राजतंत्र (Limited monarchies) बना डालेंगे, तो सम्राट् महोदय उनसे उससे कम प्रसन्न न होंगे, जितने अभी होते है।"

पर यह आशा नहीं की जा सकती कि हमारे राजा-महाराजा इतनी दूरदर्शिता दिखलावेंगे। कोई भी स्वेच्छाचारी जिसे अनियंत्रित शासनका चसका लगा हुआ है, अपने अधिकारोंको यों ही नहीं छोड़ सकता। जिस प्रकारकी निरर्थक शिक्षा इन राजा-महाराजाओंको मिलती है, जैसे कुत्सित वायुमंडलमें ये पलते हैं और बड़े होनेपर जिस तरहके खुशामदी आदमियोंसे ये घिरे रहते हैं, उनके कारण इन नरेशोंमें वह आत्मिक स्वास्थ्य ही नहीं रहता, जो उनके हृदयोंको नैतिक बल प्रदान कर सके और वे सद्भावनोंसे प्रोत्साहित हो सकें। सच तो यह है कि जब तक देशी राज्योंकी प्रजामें आत्म-त्याग तथा और बलिदानके भाव जाग्रत नहीं होंगे और जब तक वे अपनी शक्तिका परिचय अपने अभिमानी शासकोंको न दे देंगे, तब तक कुछ भी नहीं होना जाना। नाममात्रकी प्रतिनिधि संस्थाएँ खोलना ये लोग खूब जानते हैं। अपने शासनकी वार्षिक रिपोर्ट भी कुछ राज्य छपाने लगे हैं, पर इन रिपोर्टोंमें लिखे हुए अंक और विवरण कहाँ तक सत्य होते हैं, यह ईश्वर ही जाने। सभापति महोदयने ठीक ही कहा है—"हमारे यहाँ तो ऐसे-ऐसे राज्य भी पड़े हुए हैं, जिनके शासक अपने अस्तबल, मोटर-गृह और कुत्ता-घरपर जितना व्यय करते हैं, उतना अपनी प्रजाकी शिक्षापर भी नहीं करते!"

अपने घरेलू खर्चोंको घटाने, राज्यके द्रव्य-साधनोंकी उन्नति करने, प्रजाको स्वास्थ्य, सफाई इलाज, शिक्षा, व्यापार तथा कृषिके लिए सुविधा प्रदान करने, क़ानून द्वारा शासन करने, व्यक्तिगत स्वाधीनता, जायदाद तथा ज़िन्दगीकी रक्षा, न्यायालयोंकी पूर्ण स्वाधीनता, भाषण, मीटिंग तथा प्रेसकी स्वतंत्रता इत्यादि विषयोंपर जो बातें इस भाषणमें कही गई हैं, वे वास्तवमें महत्त्वपूर्ण हैं। यदि देशी नरेश उनपर ध्यान देकर तदनुसार कार्य करेंगे, तो इससे उनका भी हित होगा और उनकी प्रजाका भी।

—

कलकत्तेमें एक साहित्यिक क्लबकी आवश्यकता

साहित्य-चर्चा तथा मनोविनोदके लिए कलकत्तेमें एक साहित्यिक क्लबकी अत्यन्त आवश्यकता है। इस क्लबका संगठन कुछ इस प्रकारका होना चाहिए, जिससे इसमें केवल चुने हुए साहित्यिक और साहित्य-प्रेमी सज्जन ही सम्मिलित हो सकें। चार आने पैसे चन्दे देकर अपना वोट देनेवाले महानुभावोंके अधिक संख्यामें भर्ती कर लेनेसे इस प्रकारकी क्लबका वायुमंडल साहित्यिक नहीं रह सकता। आजकलके जनसत्तात्मक युगमें यद्यपि हम जनसाधारणकी किसी प्रकार भी उपेक्षा नहीं करना चाहते, फिर भी हमारी समझमें प्रत्येक समुदायका अधिकार है कि वह अपनी क्लबको सार्वजनिक रूप दे या न दे, और यह अधिकार साहित्यिकोंको भी होना चाहिए। दुर्भाग्यसे प्रत्येक ऐसे नगरमें आदमी काफ़ी संख्यामें उत्पन्न हो गये हैं जिनका संग किसी प्रकार भी वांछनीय नहीं कहा जा सकता। वोटोंके लिए कनवैसिंग करना, लड़ाई झगड़ोंके लिए हर वक्त तैयार रहना और शारीरिक शक्तिके बलपर अपनी धौंस जमाना इनके बाएँ हाथका खेल है। दलबन्दीके कार्यमें वे अत्यन्त निपुण होते हैं। सच्चे साहित्य-सेवी इस प्रकारके झंझटप्रिय महानुभवोंसे सदा दूर ही रहना पसन्द करेंगे और इसी कारण हम उपर्युक्त क्लबको सार्वजनिक रूप न देकर प्राइवेट ही रखना चाहते हैं।

इस क्लबमें साहित्यिक विषयोंकी चर्चा होनी चाहिए, कवितापाठ होना चाहिये, निबन्ध पढ़े जाने चाहिए, और कभी कभी साहित्यिक यात्राएँ भी होनी चाहिए। हिन्दीके तथा अन्य देशी भाषाओंके विद्वानोंको निमंत्रित करके उनसे बातचीत की जानी चाहिए।

उदाहरणार्थ यदि यह क्लब सुप्रसिद्ध औपन्यासिक श्री शरत्‌चन्द्र चट्टोपाध्याय और श्री प्रेमचन्दजीको एक स्थानपर एकत्रित कर सके और दोनों महानुभाव अपने-अपने अनुभव सुनावें, तो उपस्थित सदस्योंका कितना अधिक मनोरंजन हो सकता है। अभी उस दिन श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टंडनसे इस विषयमें हमारी बातचीत हुई थी। उन्होंने कहा कि इस प्रकारके कार्य सुविधा-पूर्वक तभी किये जा सकते हैं, जब हिन्दी प्रेमी धनाढ्य लोगोंकी रुचि इधर प्रवृत्त हो। खेदकी बात है कि कलकत्तेमें ऐसे धनाढ्योंका लगभग अभाव है, जिनकी रुचि साहित्यिक हो और जो अपना समय भी इस प्रकारके कार्योंके लिए दे सकें।

कलकत्ता हिन्दी-भाषा-भाषियोंका सबसे बड़ा नगर है। जितने हिन्दी बोलनेवाले यहाँ रहते हैं, उतने भारतके अन्य किसी नगरमें नहीं रहते। साहित्यिक दृष्टिसे भी कलकत्तेका स्थान हिन्दी जगतमें काफी ऊँचा है। जितने हिन्दी समाचार पत्र कलकत्तेसे निकलते हैं, उतने अन्य किसी नगरमें शायद ही निकलते होंगे। हिन्दी साहित्यसेवियोंकी संख्या भी यहां कम नहीं है। इन सब बातोंके होते हुए भी कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ सप्ताहमें एक दिन साहित्यिक लोग आपसमें विचार परिवर्तन कर सकें। हम जानते हैं कि इस नगरमें जो राजनैतिक दलबन्दियोंका केन्द्र है, एक ऐसी साहित्यिक क्लब क़ायम करना, जो दलबन्दीकी दलदलसे अपनेको सर्वथा बचा सके, बहुत आसान काम नहीं; फिर भी यह प्रयत्न किया जाना चाहिए। सुरुचि प्रेमी सुसंस्कृत साहित्यिक अपनी एक प्राइवेट क्लब भी स्थापित न कर सकें; यह तो एक विचित्र बात मालूम होती है। आशा है कि इस विषयपर हमारे अन्य सहयोगी भी अपने विचार प्रकट करेंगे।

श्रद्धाञ्जलि

अब तक 'प्रताप' तथा अन्य पत्रोंमें स्वर्गीय श्रद्धेय गणेशशंकरजीके विषयमें अनेक लेख निकल चुके हैं। इन लेखोंका सम्पादन किया जाय और इन्हें एकत्रित कर छपा दिया जाय। यहाँ सम्पादनसे हमारा अभिप्राय केवल यही है कि इन लेखोंमें जो बातें दुहराई गई हों, उन्हें काट दिया जाय। अभी तक जो हमारे देखनेमें आये हैं उनके लेखकोंके नाम निम्न-लिखित हैं —

श्री डाक्टर बेनीप्रसाद	'प्रताप'
श्री वृन्दावनलाल वर्मा	
श्री मंगलदेव शर्मा	अभ्युदय
श्री श्रीराम शर्मा	विशाल-भारत
श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी	
श्री कृष्णानन्द गुप्त	
श्री हरिभाऊ उपाध्याय	'त्यागभूमि'
श्री परशुराम मेहरोत्रा	'भारत'

इसकेअतिरिक्त और भी कई उत्तमोत्तम संस्मरण छपे हैं, पर इस समय उनके लेखकोंके नाम हमें याद नहीं आ रहे। इनके अतिरिक्त जिन महानुभावोंसे संस्मरण लिखाये जाने चाहिए, उनके नाम ये हैं :—पूज्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्री बालकृष्ण शर्मा, श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, श्री शिवनारायण मिश्र, श्री कृष्णकान्त मालवीय, श्री बी० एस० पथिक, श्री माखनलाल चतुर्वेदी श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री श्रीप्रकाश, श्री पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री शिवप्रसाद गुप्त, श्री विष्णुदत्त शुक्ल, श्री बसन्तलाल मुरारका, श्री दशरथप्रसाद द्विवेदी, श्री हरिशंकर (विद्यार्थीजीके सुपुत्र) इत्यादि। इन पंक्तियोंका लेखक भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर देगा।

इन संस्मरणोंमें श्रद्धेय विद्यार्थीजीके जीवनके भिन्न-भिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला जा सकता है। प्रारम्भमें एक विस्तृत भूमिका हो, जो क्रमबद्ध जीवन-चरितका काम दे सके। जितने चित्र विद्यार्थीजीके मिल सकें, वे भी इस पुस्तकमें दे दिये जायँ। कविवर सनेहीजी तथा मुन्शी अजमेरीजी इत्यादिकी कविताएँ भी इसमें रक्खी जायँ। एक लेख 'प्रताप' के इतिहासके विषयमें भी होना चाहिए। इस प्रकारकी २० फार्मकी डबलक्राउन १६ पेजी पुस्तककी दो हज़ार प्रतियोंके छपानेमें लगभग ६००) छ सौ रुपये व्यय होंगे। प्रति पुस्तकका मूल्य यदि १॥) रखा जाय तो ये दो हज़ार पुस्तकें इतने ही रुपयेमें बिक सकती हैं यह रुपया 'प्रताप' की भेंट कर देना चाहिए। इस प्रकार दो काम हो जायँगे, एक तो श्रद्धेय गणेशजीकी स्मृतिमें श्रद्धांजलि अर्पित करनेका अवसर अनेक मित्रों तथा भक्तोंको प्राप्त होगा। श्रद्धेय गणेशजीकी कीर्ति तो वैसे ही अमर हो गई है, वह हम लोगोंके क्षुद्र प्रयत्नकी अपेक्षा नहीं रखती, और दूसरे प्रतापकी भी कुछ भी सेवा हो जायगी। पुस्तककी एक हज़ार प्रतियोंका तो अकेले कलकत्तेमें खप जाना कठिन न होगा। आवश्यकता पड़नेपर इसकी दो-तीन हज़ार प्रतियाँ और भी छपाई जा सकती हैं। वैसे यदि प्रयत्न किया जाय, तो बिहार, राजपूताना तथा मध्यभारतकी रियासतोंमें सहस्रों ही प्रतियाँ खप सकती हैं।

हम इस प्रस्तावको श्रद्धेय गणेशजीके कलकत्ता-निवासी मित्रों तथा भक्तोंके सम्मुख रखते हैं, और आशा करते हैं कि वे इस पुण्य-कार्यको शीघ्र ही कर दें।

भारतवर्षका झंडा

कुछ दिनोंसे भारतवर्षके राष्ट्रीय झंडेके लिए आन्दोलन हो रहा है। आजकल जो राष्ट्रीय झंडा प्रचलित है, वह लाल, हरा, सफेद तीन रंगका है। कुछ लोगोंने इन तीनों रंगोंकी व्याख्या साम्प्रदायिक ढंगसे करना प्रारम्भ की, जिससे व्यर्थका कलह उठ खड़ा हुआ। लोग कहने लगे कि हरा रंग इस्लाम, लाल रंग हिन्दू-धर्म और सफेद रंग ईसाई तथा अन्य अल्पसंख्यक जातियोंका द्योतक है। इसपर सिक्ख कहने

हो कि झंडेमें उनकी जातिका द्योतक रंग भी रहना आवश्यक है। आजकल कांग्रेसने झंडेका स्थायी रूप निश्चय करनेके लिए एक कमेटी बनाई है। डा० सुनीतिकुमार चट्टोपाध्यायने इस कमेटीके पास झंडे लिए जो मन्तव्य भेजा है, वह विचारणीय है।

उनका कथन है कि झंडेके रंगोंकी व्याख्या साम्प्रदायिक ढंगसे न होनी चाहिए। झंडेमें तीन रंग रहें—लाल, हरा और गेरुआ। हरा रंग पेड़-पत्तोंका स्वाभाविक रंग है, और वह जीवन, विकास और आशाका द्योतक है। लाल रंग आकांक्षाओं और 'राग'का रंग है। हमारा जीवन आकांक्षाओं और राग विरागसे भरा है। हमारे जीवन-रक्तका रंग भी लाल है। गेरुआ रंग, त्याग, बलिदान और वैराग्यका रंग है। हिन्दू सन्यासी और ब्रह्मचारी, मुस्लिम फकीर, सिख, बौद्ध—सभीमें गेरुआ वस्त्र त्याग, संयम और ... भावका द्योतक हैं, इसलिए तीसरा रंग गैरिक होना चाहिए। इस रंगके होनेसे हमारी पताका अन्य देशोंकी पताकाओंसे भिन्न हो जायगी। अभी लाल, सफेद, हरा—ये तीन रंग संसारके चार अन्य देशोंके झंडोंमें भी मौजूद हैं।

आजकल हमारे झंडेपर अकसर एक चरखा बना रहता है। चरखा सरल ग्राम-जीवनका द्योतक है। डाक्टर चटर्जीकी राय है कि चरखेके स्थानपर केवल एक चक या पहिया हो, तो अच्छा है। साधारण गोल पहिया समयकी अविरल गति, उन्नति, संसार और अनन्तका द्योतक है। फारसीमें भी चर्ख संसारके समस्त परिवर्तनोंका करनेवाला माना जाता है। हमारे भारतके लिए संघबद्ध विधान बन रहा है, पहियेकी आरियाँ या तीलियाँ विभिन्न प्रान्तों और रियासतोंकी द्योतक होंगी।

एक प्रस्ताव यह भी है कि चरखेकी जगह एक कमल बना दिया जाय। कमल भारतीयताका एक सुन्दर और सुकोमल कवित्वपूर्ण चिह्न है। उसकी पंखुड़ियाँ हमारे संघमें सम्मिलित विभिन्न प्रान्तों और रियासतोंकी द्योतक होंगी। अगर झंडेपर कमलका चिह्न रहे, तो अच्छा है; मगर उसका अंकन ज़रा मुश्किल है और राष्ट्रीय झंडे लाखोंकी संख्यामें बनाये जायँगे, इसलिए क्रियात्मक दृष्टिसे शायद कमलकी अपेक्षा चक्र सहल पड़ेगा।

—

साहित्य-प्रदर्शिनीमें श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरकी वक्तृता

हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके साथ जो साहित्य-प्रदर्शिनी हुई थी, उसका उद्घाटन बंगालके सुप्रसिद्ध कलाविद श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने किया था। ठाकुर महोदय बड़े सरल हृदय सज्जन हैं। उन्होंने हिन्दीमें जो छोटी-सी वक्तृता दी थी, वह उनकी सरलता और सज्जनताके बिलकुल अनुकूल ही थी। हम उस वक्तृताको ज्योंका त्यों उद्धृत करते हैं। ठाकुर महोदयकी वक्तृतासे यह विदित हो जाता है कि पढ़े-लिखे बंगाली सज्जन हिन्दीकी शिक्षा पाये बिना भी हिन्दीमें अपने भाव व्यक्त कर लेते हैं। उनकी हिन्दी यद्यपि व्याकरणके अनुकूल नहीं होती; मगर उनका भावव्यक्त करनेके लिए काफी होती है। भाषण यों है—

"भद्र महोदय भद्र महिलागण,

हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके बीसवें अधिवेशनके साथ-साथ सुधीजनकी मनोरंजनके लिए जो साहित्यिक प्रदर्शनीका आयोजन किया गया, इस प्रदर्शनीका अनुष्ठातावर्गके तरफसे मैंने आज समागत भद्र-मंडलीको आपना हृदयका प्रीति और श्रद्धांजली अर्पण करता हूँ।

"भारतवर्षके शिल्प-साहित्यमें एकान्त अनुराग, भ्रातृ-प्रेम और देवतापर भक्ति, मानव-हृदयका इन तिनों उत्तम रसोंका मिलनसे ये 'कुमारसिंह-स्मृति-मन्दिर' का स्थापना हो चुका। आज आप लोकका चरणरेणुसे इस स्थानने पवित्र हुआ।

"आशा है कि पंडित और सज्जनोंका कृपादृष्टिसे ये प्रदर्शनी समितिका सकल चेष्टा सफल होगा। कारण, बिना सज्जनका आशीर्वाद कोई भी काम सार्थक होनेका नहीं।

"मैंने हिन्दि भाषा और साहित्यमें निहायत अपंडित केवल मित्रताके अनुरोधसे प्रदर्शनीका उद्घाटन कामपर अतीव आनन्दसे आप लोकका दरबारमें हाज़िर हूआ। मेरे मनमें ये भरोसा है, जो हमारा स्पर्द्धा और अज्ञता गुणी समाजमें मार्जना किया जायगा। कारण सुना कि—गुणिजन आपना स्वाभाविक उदारतासे अधमको भी उत्तम बना देता हैं, उपरन्तु सज्जनका संग सर्वदा फलदायक होता।

सज्जन (गन?) के संग मिले, प्रेम सहित जो कोय।
गंगादिक सब तीर्थ फल, बिन अस्नाने होय।

अलमति विस्तरेन

आप लोकका बहूत-बहूत आनन्द आउर समादरसे ये प्रदर्शनी दर्शन करनेका लिए आमन्त्रण देता हूँ, मेरा मनोवांछा परिपूर्ण हो जाय।"

—

प्रताप

अबसे पन्द्रह-बीस वर्ष पहले संयुक्त-प्रान्तके जनसाधारणकी राजनैतिक चेतना एकदम सोई हुई थी। जो कुछ थोड़ी-बहुत राजनैतिक जाग्रति थी, वह केवल शहरोंके मुट्ठीभर पढ़े-लिखे लोगों तक ही परिमित थी। प्रान्तकी ग्रामोंमें बसनेवाली मूक जनता तक राष्ट्रीयता और देश-भक्तिका सन्देश पहुँचनेवाला कानपुरका प्रसिद्ध राष्ट्रीय साप्ताहिक 'प्रताप' और उसका शहीद सम्पादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ही था। 'प्रताप' का इतिहास संयुक्तप्रान्तकी राजनैतिक जाग्रतिके इतिहासका एक अभिन्न अंश है। 'प्रताप' अपनी अनोखी आन बान रखता आया है। उसका आदर्श उच्च, ध्येय अटल और नीति सुदृढ़ रही है। सचाई उसका मूलमंत्र रहा है। 'प्रताप' के स्टैन्डर्ड, उसका प्रभाव और उसकी सेवाओंपर हिन्दी-संसार नाज़ कर सकता है। खरा राष्ट्रवादी होनेके कारण 'प्रताप' अपने जन्मसे ही विदेशी अधिकारियोंकी दृष्टिमें काँटेकी तरह चुभता आया है। 'प्रताप' पर अधिकारियोंके कोपाग्निके जितने प्रहार हो सकते थे, हुए, परन्तु इससे 'प्रताप' की नीतिमें रत्तीभर बल नहीं आया। गत वर्ष आर्डिनेन्सका शिकार होकर 'प्रताप' कई महीने तक बन्द रहा, जिससे उसे बड़ी गहरी हानि उठानी पड़ी परन्तु यह हानि तो कुछ नहींके बराबर है। 'प्रताप' के प्राण श्री गणेशशंकर विद्यार्थीके बलिदानसे 'प्रताप' को जो हानि पहुँची है, वह अकथनीय है। इस समय 'प्रताप' गहरे आर्थिक संकटमें है। हिन्दी-भाषा-भाषी मात्रका कर्तव्य है कि वह इस समय 'प्रताप' की सहायता करे। 'प्रताप' अब किसी व्यक्ति-विशेषकी सम्पत्ति नहीं है, वह समूचे राष्ट्रकी थाती है। इस थातीकी रक्षा करना प्रत्येक राष्ट्रभक्तका कर्तव्य है। हम हिन्दी-भाषा-भाषियोंसे अपील करते हैं कि वे 'प्रताप'के ग्राहक बनकर और उसे सहायता देकर विद्यार्थीजीकी इस पुण्य-स्मृतिको अमर बनावें।

—

भूल-सुधार

"रियासती-प्रजाकी समस्या" शीर्षक लेखमें पृ० ८३१ के पहले कालमकी २०वीं पंक्तिमें "अर्थात् ८ प्रति हज़ार" की जगह "अर्थात ८ प्रति दस हज़ार" पढ़ें।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक:—बनारसीदास चतुर्वेदी; प्रवासी-प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।